

विशेष—यदि काव्य में किसी एकपद का अर्थ लगाने के लिये पहले या पीछे के दो तीन पदों तक जाना पड़े, अथवा उनके साथ उसका अन्वय करना पड़े, तो वह भी 'विलष्टव' दोष माना जाता है।

विलष्टवर्त्म—सङ्घा पुं० [सं० विलष्टवर्त्मन्] आँख का एक रोग, जिसमें पलक में लाली और पीड़ा होती है। इस रोग में प्रायः भ्रष्ट-चिकित्सा कराने की आवश्यकता हुआ करती है।

विलष्टा—सङ्घा स्त्री० [सं०] पतजलि के अनुसार वे चित्तवृत्तियाँ जिनसे आत्मा को कष्ट पहुँचता हो।

विलष्टि—सङ्घा स्त्री० [सं०] १ पीड़ा। व्यथा। दुःख। कष्ट। २. तीमारदारी। सेवा [को०]।

क्लीत—सङ्घा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार कीड़ों की एक जाति जिसकी उत्पत्ति मल मूत्र और सड़ी लाश आदि से होती है और जिनके काटने से पित्त कुपित होता है।

क्लीतक—सङ्घा पुं० [सं०] मुलहठी। जेठी मधु [को०]।

क्लीतकिरी—सङ्घा स्त्री० [सं०] नील का पेड़।

क्लीतनक—सङ्घा पुं० [सं०] १ मधूलिका। मुलेठी। २ अतिरसा [को०]।

क्लीव—वि० पुं० [सं०] दे० 'क्लीव'।

क्लीवता—सङ्घा स्त्री० [सं०] दे० 'क्लीवता'।

क्लीवत्व—सङ्घा पुं० [सं०] दे० 'क्लीवत्व'।

क्लीव—वि० पुं० [सं०] १ पठ। नपु सक। नामर्द। २ डरभोक। कायर। कमहिम्मत। ३ नीच। अधम [को०]। ४ सुस्त। आलसी [को०]। ५ व्याकरण में नपु सक लिंग का।

क्लीवता—सङ्घा स्त्री० [सं०] क्लीव का भाव। वि० दे० 'नपु सकता'।

क्लीवत्व—सङ्घा पुं० [सं०] नपु सकता। हिजड़ापन। नामर्दी।

क्लृप्त—सङ्घा पुं० [सं०] १ मुकरें लगान या महसूल। नियत कर।

विशेष—नदियों के किनारे जो गाँव होते थे। उनको चद्रगुप्त के समय में स्थिर तथा नियत कर देना पड़ता था।

२ उपस्थित। तैयार। कृत [को०]। ३. सज्जित। शृंगारित [को०]। ४ कटा हुआ। कृतित [को०]। ५ निश्चित [को०]।

क्लेद—सङ्घा पुं० [सं०] १ ओढ़ापन। गीलापन। आर्द्रता। २. पसीना। ३. दुःख। कष्ट [को०]। ४ घाव या फोड़े का स्राव। मवाद। पीर [को०]।

क्लेदक—वि० [सं०] १ पसीना लानेवाला। २ गीला या नम करने वाला।

क्लेदक—सङ्घा पुं० शरीर में एक प्रकार का कफ जिससे पसीना उत्पन्न होता है। क्लेदन। ३ शरीर में की दस प्रकार की अग्नियों में से एक।

क्लेदन—सङ्घा पुं० [सं०] १ शरीर में पाँच प्रकार की श्लेष्माओं में से एक। यह आमाशय में उत्पन्न होती, वही रहती और भोजन पचाती है। शेष चारों श्लेष्माएँ भी इसी की सहायता से काम करती हैं। २ पसीना लाने का कार्य।

क्लेदु—सङ्घा पुं० [सं०] १ चद्र। २ सनिपात।

क्लेश—सङ्घा पुं० [सं०] १. दुःख। कष्ट। व्यथा। वेदना।

क्रि० प्र०—उठाना।—वेना।—पाना।—भोगना।—सहना।

विशेष—योग शास्त्रानुसार क्लेश के पाँच भेद हैं—प्रविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश। बौद्ध शास्त्रानुसार क्लेश दस हैं—लोभ द्वेष, मोह, मान, दृष्टि, चिकित्सा, स्थिति, उद्वेग, अहीक और अनुताप।

२ भगङ्गा। लड़ाई। टटा। जैसे,—दिन रात क्लेश करना अच्छा नहीं।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।—रखना।

क्लेशक, क्लेशकर—वि० [सं०] कष्ट पहुँचानेवाला। दुःखदायी [को०]।

क्लेशक्षम—वि० [सं०] कष्ट, दुःख सहने में समर्थ [को०]।

क्लेशित—वि० [सं०] जिसे क्लेश हो। दुःखित। पीड़ित।

क्लेशी—वि० [सं०] क्लेशिन् १ क्लेशकर। दुःखद। २ आहत करनेवाला। चोट पहुँचानेवाला [को०]।

क्लेश्टा—वि० [सं०] क्लेश्ट [कष्ट देनेवाला। क्लेशकर।

क्लेशु—सङ्घा पुं० [सं०] क्लेश दे० 'क्लेश'।

क्लेश्य—सङ्घा पुं० [सं०] क्लीवता। नपुंसकता। हिजड़ापन। वि० दे० 'नपु सकता'।

क्लोम—सङ्घा पुं० [सं०] दाहिनी ओर का फेफड़ा। फुफ्फुस। २ प्यास। पिपासा।—माधव०, पृ० १७१।

क्लोमस्थान—सङ्घा पुं० [सं०] हृदय का वह स्थान जहाँ प्यास उत्पन्न होती है।—माधव०, पृ० १०५।

क्लोरोफार्म—सङ्घा पुं० [अ० क्लोरोफार्म] एक प्रसिद्ध तरल ओषधि जिसमें एक विचित्र मीठी गंध होती है।

विशेष—इसका मुख्य उपयोग ऐसे रोगियों को अचेत करने के लिये होता है, जिनके शरीर पर भारी अस्त्रचिकित्सा या इसी प्रकार की शरीर को बहुत अधिक वेदना पहुँचानेवाली कोई और चिकित्सा की जाती है। इसे सूँघते ही पहले कुछ हलका सा नशा होता है और थोड़ी देर में मनुष्य बिल्कुल अचेत हो जाता है और गाढ़ी निद्रा में सोया हुआ मालूम होता है। यदि मात्रा अधिक हो जाय, तो मनुष्य मर भी सकता है। यह देखने में स्वच्छ जल की तरह और भारी होता है और यदि खुला छोड़ दिया जाय, तो शीघ्र सड़ जाता है। इसका स्वाद बहुत मीठा और भला मालूम होता है। खुले स्थान या प्रकाश में रखने से इसमें विकार उत्पन्न हो जाता है।

मूहा०—क्लोरोफार्म देना = क्लोरोफार्म सुँघाना।

क्वगु—सङ्घा पुं० [सं०] क्वङ्गु। प्रियंगु। कंगनी [को०]।

क्व—क्रि० वि० [सं०] कहाँ [को०]।

क्वचित्—क्रि० वि० [सं०] कोई ही। शायद ही कोई। बहुत कम।

क्वण—सङ्घा पुं० [सं०] १ वीणा का शब्द। २ घुँघरू का शब्द।

२ ध्वनि। आवाज [को०]।

क्वणन—सङ्घा पुं० [सं०] १ शब्द। ध्वनि। २ किसी वाद्य या घुँघरू, आभूषण आदि की ध्वनि। ३ मिट्टी का छोटा पात्र [को०]।

कवणित^१—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कवण' ।

कवणित^२—वि० [सं०] भङ्गित । ध्वनित । शब्दायमान । उ०—ककण
कवणित रणित नूपुर ये, हिलते ये छाती पर हार ।—
कामायनी, पृ० ११ ।

कवय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कवय' ।

कवयन—संज्ञा पुं० [सं०] काढा पकाना । उवातना (को०) ।

कवयित—वि० [सं०] १. उवाला हुआ । ओटाया हुआ । २. गरम ।
उष्ण (को०) ।

कवयिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वंद्यक मे एक प्रकार का रसा जो
धी में भूनी हुई हल्दी को दुध में पकाने से बनता है । यह बहुत
पाचक होता है । २. एक प्रकार का आसव जो शहद से
बनता है ।

कवाचर^१—संज्ञा पुं० [सं० कुचर] वह बेल जो काम करते करते बैठ
जाय । गरियार बेल ।

कवाचर^२—वि० दुर्बल । कमजोर ।

कवारटाइन—संज्ञा पुं० [अ०] वह स्थान जहाँ प्लेग या दूसरी छूतवाली
बीमारी के दिनों में रेल या जहाज के यात्री कुछ दिनों के
लिये सरकार की ओर से रोककर रखे जाते हैं ।

कवारा^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कुमार' ।

कवारा^२—वि० [हि०] दे० 'कवारा' ।

कवारापन—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कवारपन' ।

कवाचित्क—वि० [सं०] बहुत कम होने या मिलनेवाला । विरल ।
अल्पप्राप्य (को०) ।

कवाड—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'कवाडेट' ।

कवाडेट—संज्ञा पुं० [अ०] छापे में सीसे का ढला हुआ चौकीर टुकड़ा
जो कपीज करने में खाली लाइन आदि भरने के काम में
आता है । वह स्पेस से बड़ा और कोटेशन से छोटा होता है ।
इसकी चौड़ाई टाइप के बराबर और लंबाई १ एम से ४ एम
तक होती है । क्वाड ।

कवाण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कवण' (को०) ।

कवाय—संज्ञा पुं० [सं०] १. पानी में उवालकर ओषधियों का निकाला
हुआ गाढ़ा रस । काढ़ा । जोशावा ।

विशेष—जिस ओषधि का कवाय बनाना हो उसे एक पल लेकर
छोख पल पानी में भिगोकर मिट्टी के बरतन में आग पर चढ़ा
देते हैं, और जब उसका आठवाँ अंश वाकी रह जाता है, तब
उतार लेते हैं । यदि ओषधि अधिक और तेल में एक
कुडव तक हो, तो उसमें आठगुना जल और यदि एक कुडव
से अधिक हो, तो उसमें चौगुना जल देना चाहिए और क्रम
से, आधा और तीन चौथाई बच रहने पर उतार लेना चाहिए ।

२. व्यसन । ३. बहुत अधिक दुःख ।

कवायोद्भव—संज्ञा पुं० [सं०] रसोत् ।

कवान^१—संज्ञा पुं० [सं० कवाण] दे० 'कवण' ।

कवार—संज्ञा पुं० [सं० कुमार] १. आश्विन का महीना । २. दे०
'कवारा' ।

कवारछन—संज्ञा पुं० [सं० कुमार, हि० कवारा + छन] कवारापन ।

मुहा०—कवारछन उतारना = प्रथम समागम करना ।

कवारपत—संज्ञा पुं० [हि० कवार + पत] दे० 'कवारछल' या 'कवारपन' ।

कवारपन—संज्ञा पुं० [हि० कवारा + पन (प्रत्य०)] कवारापन ।

कुमारपन । कवारा का भाव ।

मुहा०—कवारपन उतारना = विवाह होना । कवारपन उतारना =

प्रथम समागम करना । ब्रह्मचर्य छोड़ना ।

कवारा—संज्ञा पुं० वि० [सं० कुमार] [वि० स्त्री० क्वारी] जिसका

विवाह न हुआ हो । कुयारा । बिन व्याहा । उ०—सखि ।

यही जगत की चाल जितो है क्वारी । उनके सबही विधि मात

पिता अधिकारी ।—भारतेन्दु ग्रं० भा० १, पृ० ६८६ ।

कवारपन—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कवारपन' ।

क्वार्टर—संज्ञा पुं० [अ०] १. गस्ती । टोला । बाड़ा । जैसे,—कुनियों

का क्वार्टर । २. अफसरों और कर्मचारियों के रहने की जगह ।

जैसे,—रेलवे क्वार्टर । ३. वह स्थान जहाँ पर एनटन ने

डेरा डाला हो । डेरा । छावनी । मुकाम ४. चौथाई भाग ।

चतुर्थ अंश । चौथा हिस्सा (को०) । ५. एक तोल जो २८ पौंड

की होती है (को०) ।

क्वार्टर मास्टर—संज्ञा पुं० [अ०] १. एक फौजी अफसर जिसका पद

लेफ्टनैंट के बराबर समझा जाता है और जिसका काम

सैनिकों के लिये स्थान, भोजन और वस्त्र आदि आवश्यक

सामग्री का प्रबंध करना होता है । २. जहाज का एक

अफसर जो रंगीन झंडी, लालटेन या अन्य सकेत दिखाकर

मल्लाहों को जहाज चलाने में सहायता देता और उन्हें

समुद्र की गहराई और दिशा आदि पतलाता है । कोठ

मास्टर ।

क्वासि—वाक्य [सं० क्व + असि] तू कहाँ है ? तू किस स्थान पर है ?

उ०—गद्गद सुर पुलकित विरहानल स्रवत विलोचन नीर ।

क्वासि क्वासि वृषभानुर्दिनी विलपत विपिन अधीर ।—सूर

(शब्द०) ।

क्विनाइन—संज्ञा पुं० [अ०] कुर्नन ।

क्विल—संज्ञा पुं० [अ०] कुछ विशिष्ट पक्षियों के डैनों का पर जो

लिखने के लिये कलम बनाने के काम में आता है ।

क्वीन—संज्ञा स्त्री० [अ०] महारानी । राजमहिषी । मलका ।

क्वेश्चन—संज्ञा पुं० [अ०] प्रश्न । सवाल ।

यौ०—क्वेश्चन पेपर ।

क्वेश्चनपेपर—संज्ञा पुं० [अ०] वह छपा हुआ पत्र या पर्चा जिसमें

परीक्षाधियों से एक या अधिक प्रश्न किए गए हों । परीक्षा-

पत्र । प्रश्नपत्र ।

क्वैला—संज्ञा पुं० [हि० कोयला] दे० 'कोयला' । उ०—तू भी मुझे

जलाकर क्वैला कर दे—हाय रे ईश्वर !—श्यामा०, पृ० ७१ ।

क्वैलारी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कोइलारी' ।

क्वैलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० कोकिल, हि० कोयल, कोइल + इया

(प्रत्य०)] दे० 'कोयल' । उ०—बहु दाहुर मोर निन द मच्यों

तरु क्वैलिया हू करि सोर रही ।—मोहन०, पृ० ७३ ।

क्रोडपत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जो किसी पुस्तक या समाचारपत्र में उसकी पूर्ति के लिये ऊपर से लगाया जाय। प्रतिरिक्त पत्र। पुरक। जमीना।

क्रोडपर्णी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] भटकटैया। कटेरी।

क्रोडपाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कच्छप। कछुवा [क्रो०]।

क्रोडाक, क्रोडाघ्न—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] क्रोडाङ्कु क्रोडाङ्घ्रि दे० क्रोडपाद'।

क्रोडी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वाराही। शूकरी [क्रो०]।

क्रोडीकरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्रालिगन करना। छाती से लगाना [क्रो०]

क्रोडोमुख—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नैडा' [क्रो०]।

क्रोडोष्ठा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] मोया।

क्रोध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ चित्त का वह तीव्र उद्वेग जो किसी अनुचित और हानिकारक कार्य को होते हुए देखकर उत्पन्न होता है और जिसमें उस हानिकारक कार्य करनेवाले से उदत्ता लेने की इच्छा होती है। कोप। रोप। गुस्सा।

विशेष—वैशेषिक में क्रोध को द्वेष का एक भेद माना है और उसे द्रोह आदि की अपेक्षा शीघ्र नष्ट हो जानेवाला कहा है। भगवद्गीता के अनुसार जो प्रविलापा पूरी नहीं होती है, वही रजोगुण के कारण बदलकर 'क्रोध' बन जाती है। पुराणानुसार यह शरीरस्य दुष्ट त्रयग्रो में से एक है। साहित्य में इसे रोद्र रम का म्वायी भाव माना है।

पर्याय—अमर्ष। प्रतिघ्न। भीम। क्रूरा। ह्वा। क्रुत।

२ साठ सवत्सरो में से उनसठवाँ सवत्सर। इस सवत्सर में प्राकुलता और क्रोध की वृद्धि होती है।—(ज्योतिष)।

क्रोधकृत ऋण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जो क्रोध में आकर किसी का धन नष्ट कर देने के कारण लेना पड़ा हो।

क्रोधज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] क्रोध से उत्पन्न, मोह।

क्रोधन^१—वि० [सं०] क्रोधी। गुस्सिल। कोप करनेवाला।

क्रोधन^२—सञ्ज्ञा पुं० १ कोप करना। गुस्साना। २ कौशिक के एक पुत्र का नाम जो गर्ग मुनि के शिष्य थे। ३ ऋग्वेद के पुत्र और देवातिथि के पिता का नाम। ४ क्रोध नामक सवत्सर।

क्रोधना—वि० स्त्री० [सं०] क्रोधी स्वभाववाली। कर्कशा। वामा [क्रो०]।

क्रोधभवन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कोपभवन।

क्रोधमूर्च्छित—वि० [सं०] क्रोध के कारण विवेक खो देनेवाला। क्रोध से पागल। आपे से बाहर।

क्रोधवत्—वि० [हिं० क्रोध + वत् = वाला] गुस्से में भरा हुआ। कुपित। उ०—मादण्य धर्मराज पै आयो। क्रोधमंस यह वचन मुनायो।—सू (शब्द०)।

क्रोधवशा^१—क्रि० वि० [सं०] क्रोधवशात्। क्रोध में। जैसे,—उसने क्रोधवश ऐसा कहा।

क्रोधवशा^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ एक राक्षस का नाम। २ काद्रवेय नामक साँपो में से एक।

क्रोधवशा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दक्ष प्रजापति की एक कन्या और कश्यप प्रजापति की माठ पत्नियों में से एक।

क्रोधहा—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] क्रोधहन् विष्णु का एक नाम [क्रो०]।

क्रोधा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दक्ष प्रजापति की एक कन्या [क्रो०]।

क्रोवालु—वि० [सं०] क्रोधी। गुस्सिल [क्रो०]।

क्रोवित^१—वि० [हिं० क्रोध] कुपित। क्रुत। क्रोधयुत।

क्रोव^२—वि० [सं०] क्रोधि। [स्त्री० क्रोधिनी] क्रोध करनेवाला। गुस्सावर।

क्रोवी^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ क्रोध नामक सवत्सर। २ महिष। भेडा [क्रो०]। ३ कुत्ता। बवान [क्रो०]। ४ गडह। गंडा [क्रो०]।

क्रोवी^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] संगीत में गद्यार स्वर की दो ध्रुतियों में से अंतिम ध्रुति।

क्रोश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कोस। २ चित्ताना। चीय। कौत्साहन [क्रो०]। ३ रोना। रुदन [क्रो०]। ४ अङ्गनामक विनय का समय [क्रो०]।

क्रोशताल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बड़ा मानद वाद्य जिसे टाका करते हैं।

क्रोशन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चीय। चित्तनाहट। चित्ताना [क्रो०]।

क्रोशस्तम्भ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] क्रोश + स्तम्भ। सड़क के किनारे एक एक कोम की दूरी पर गाड़ा गया वह पत्थर जिसपर किसी म्वा से दूरी का परिमाण प्रकट रहता है (सं० माइन स्टोन)। उ०—यदि प्रेमचव का कथा साहित्य की क्रोशस्तम्भ हो, तो अच्छा होगा।—प्रेम०, और गोर्गी, पृ० २०६।

क्रोशग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आर्चट] लोहे, प्लास्टिक आदि की बनी वह सड़क जिससे गद्दी, मोटर, रोटार आदि जुना जाता है।

क्रोष्टा—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] क्रोष्टु। गृगाल। स्वार [क्रो०]।

क्रोष्टु क्रोष्टुक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'क्रोष्टा' [क्रो०]।

क्रोष्टुफल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] इगुरी का फल [क्रो०]।

क्रोष्टुमेखना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] पिष्टवन। पृग्निर्पाणिका [क्रो०]।

क्रोष्टुशिर्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'क्रोष्टुशीर्षक'।

क्रोष्टुशीर्षक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें वात के कारण घुटनों में पीड़ा और सूजन होती है।

क्रोष्ट्री—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ स्वारिण। गृगाली। २ कृष्णनृमि-कूमाद। ३ कृष्णविदारी। ४ लागली [क्रो०]।

क्रौंच—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] क्रौंच १ करीकुन नामक पक्षी। २ हिमालय के अतर्गत एक पर्वत का नाम जो पुराणानुसार मनाक का पुत्र है। ३ पुराणानुसार सात द्वीपों में से एक।

विशेष—विष्णुपुराण के अनुसार यह द्वीप दक्षिणोद समुद्र से घिरा हुआ है और अतिमान् नामक राजा यहाँ का अधिपति था। पर नागवत के अनुसार यह क्षीरसागर से घिरा हुआ है और प्रियव्रत का पुत्र धृतरुद्र इसका राजा था। इस द्वीप के सात खंड या बर्ष हैं और प्रत्येक बर्ष में एक नदी और एक पहाड़ है।

४. एक राक्षस का नाम जो मय दानव का पुत्र था और जिसे क्रौंच द्वीप में स्कंद भगवान् ने मारा था।

यो०—क्रौंचदारण, क्रौंचरिपु, क्रौंचशय, क्रौंचसुदन = (१) काविकेय। (२) परशुराम।

५. ग्रहणों की एक ध्वजा । ६. एक प्रकार का प्रस्त्र । उ०—
अग्नि प्रस्त्र अक्ष पर्वताक्ष पुनि त्यों पवनाक्ष प्रमायी । शिर
प्रस्त्र क्रीच ग्रहप्रद पुनि लेहलपण के साथी —रघुराज(शब्द०) ।
७. एकवर्ण वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में भगण, भगण
सगण, भगण, चार नगण अत में एक गुरु (SII SSS IIS SII
III III III IIS) होता है । जैसे—मूमि सुमोना चोगुन
राजें वसति सुमतिपुत जहें नर अर तो । शील सनेहा और
नय विद्या लखि तिन कर मन हरपत घरती । पूत जहाँ है
मानत माता जनक सहित नित अरचन करि कै । नारि सुशोना
क्रीच समाना पति वचननि सुन तिस तन धरि कै ।

क्रीचपदी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० क्रीचपदी] एक तीर्थ का नाम ।

क्रीचरंघ्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं० क्रीचरंघ्र] हिमालय पर्वत की एक घाटी का नाम ।

विशेष—पुराणानुसार परशुराम ने क्रीच पर्वत को एक तीर
से छेदकर यह घाटी बनाई थी । ऐसा प्रसिद्ध है कि इस इसी
मार्ग से मानसरोवर जाते और वहाँ से आते हैं ।

क्रीचादन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० क्रीचादन] कमलनाल ।

क्रीचादनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० क्रीचादनी] कमलगट्टा । कमल का
बीज [को०] ।

क्रीचाराति, क्रीचारि—सञ्ज्ञा पुं० [सं० क्रीचाराति, क्रीचारि] १.
कातिकेय । २. परशुराम [को०] ।

क्रीचारण—सञ्ज्ञा पुं० [सं० क्रीचारण] एक प्रकार की व्यूहरचना ।
क्रीची—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० क्रीची] १. कश्यप ऋषि की ताम्रा नामक
पत्नीसे उत्पन्न पाँच कन्याओं में से एक । उलूक आदि
पक्षियों की माता थी । २. मादा कराकुल [को०] ।

क्रीर्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] क्रूरता । हृदयहीनता । [को०] ।

क्रीशशक्तिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. सौ कोस चलनेवाला संन्यासी ।
२. वह व्यक्ति (शिक्षक) जिससे सौ कोस दूर से आकर
मिला जाय [को०] ।

कलत्र—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] साहित्य, विज्ञान, राजनीति आदि सर्वजनिक
विषयों पर विचार करने अथवा आमोद प्रमोद के लिये
संगठित की हुई कुछ लोगों की समिति ।

कलम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] यकावट । आति । बलाति ।

कलमय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. आयास । परिश्रम । मिहनत । २. अधिक
परिश्रम या आलस्य के कारण शरीर की यकावट या
शिथिलता ।

कलमयु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १०. 'कलमय' ।

कलक—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कलक] किसी कार्यालय का वह कर्मचारी जो
पत्र व्यवहार करने, नकल करने तथा हिसाब आदि रखने का
काम करता हो । मुशी । लेखिका । मुहरिर ।

कलकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० कलक + ई (प्रत्यय)] कलक का काम ।
लेखक का काम ।

कलात—वि० [सं० कलान्त] १. शका हुआ । आत । २. म्लान ।
मुरझाया हुआ [को०] । ३. क्षीणकाय । दुबला पतला [को०]
२-७१

कलाति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कलान्ति] १. परिश्रम । २. यकावट ।
उ०—सरयू सब कलाति पा रही, अब भी सागर और जा रही ।
साकेत, पृ० ३२४ ।

कलाउन—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] सरकस आदि का मसखरा ।

कलाक—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० कलाक] बड़ी घड़ी जो लकड़ी आदि के
चोखटों में जड़ी होती है । यह प्रायः लगर के सहारे चलती
और घंटे आदि बजाती है । घरमघड़ी ।

कलाक टावर—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] वह मोनार जिसमें सर्वसाधारण
को समय बतलाने के लिये बड़ी घड़ी लगी रहती है ।
घंटाघर ।

कलारनेट—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कलरिअनेट] एक प्रकार का अंग्रेजी बाजा
जो मुँह से बजाया जाता है । यह गहनाई के आकार और
प्रकार का, पर उससे कुछ अधिक लंबा होता है ।

कलारेट—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार की विलायती शराब जो लाल
रंग की होती है ।

कलास—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] कक्षा । श्रेणी । दरजा । जमाप्रत ।

किलन्न—वि० [सं०] आर्द्र । तर । गीला ।

यो०—किलन्नाक्ष = गीली आँखवाला । चौधियाई आँखवाला ।

किलन्नवर्त्म—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] किलष्टवर्त्म नामक आँख का रोग ।

किलन्नहृद्—वि० [सं०] आर्द्रहृदय । दगलु [को०] ।

किलप—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] वह कमानी जो चिट्ठियों, कागजों आदि को
एकत्र करके उनमें इसलिये लगा दी जाती है कि जिनमें वे
इधर उधर न हो जायें । यह सादी, पंजे के आकार की तथा
और कई तरह की होती है । पंजा । चुटकी ।

किलशित—वि० [सं०] जिसे बहुत क्लेश हुआ हो ।

किलष्ट—वि० [सं०] १. क्लेशयुक्त । क्लिशित । दुःखी । दुःख से
पीड़ित । २. वेमेन (वात) । पूर्वापरविरुद्ध (वाक्य) । ३.
कठिन । मुश्किल । जैसे—किलष्ट भाषा । किलष्ट शब्द । ४.
जो कठिनता से सिद्ध हो । खींच तान फा । जैसे,—किलष्ट
कल्पना । ५. मुरझाया हुआ । म्लान [को०] । ६. क्षतियुक्त
[को०] । ७. शर्मिदा किया हुआ [को०] ।

यो०—किलष्टवर्त्म ।

किलष्टघात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] साँस से मारना । तकलीफ देकर
मारना [को०] ।

किलष्टता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. किलष्ट का भाव । २. १०
'किलष्टत्व' ।

किलुष्टत्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. किलष्ट का भाव । कठिनता ।
किलष्टता । २. अलंकारशास्त्र के अनुसार काव्य का वह दोष
जिसके कारण उसका भाव समझने में कठिनता हो । जैसे—
ग्रहपति सुतहित अनुचर को सुत जारत रहत हमेश ।—सूर
(शब्द०) । यहाँ कवि ने सीधे यह न कहकर कि 'काम सदा
जलाया करता है,' कहा है—ग्रहपति सूर्य के पुत्र सुग्रीव उनके
हित (मित्र) रामचंद्र, उनके अनुचर हनुमान और उनका
पुत्र मकरध्वज (काम) सदा जलाया करता है ।

क्रिस्तानी—वि० [हि० क्रिस्तान + ई (प्रत्य०)] १ ईसाइयो का ।
२ ईसाई मत के अनुसार ।

क्रीडी०—सब्बा श्री० [सं० कृषि] दे० 'कृषि' । उ०—जैसे क्रीडी
करे किसाना । निस आसन्न तेहि ततु समाना ।—सं० दरिया,
पृ० ६० ।

क्रीज—सब्बा श्री० [अ० क्रीज] १ इस्तरी करके कपड़े पर छोड़ा हुआ
निशान । लोहा करते समय पतलून में पड़ी हुई धारी । उ०—
कहीं से बाल बराबर भी क्रीज बिगड़ने नहीं पाई थी ।—
सन्ध्यासी, पृ० ३५७ । २. क्रिकेट के खेल में वह निशान किया
हुआ स्थान जिसके अंदर बल्लेवाला खेलता है । यदि खिलाड़ी
उसके बाहर हो और गेंद स्टंप पर लग जाय तो खिलाड़ी
आउट हो जाता है । ३ सिक्कड़ा ।

क्रीट०—सब्बा पुं० [सं० किरिट] किरिट नाम का शिरोभूषण । उ०—
क्रीट मुकुट शोभा वनी शुभ अग वनी वनमाल । सूरदास प्रभु
गोकुल जनमे मोहन मदन गोपान ।—सूर (शब्द०) ।

क्रीटघर०—वि० [सं० किरिटघर] किरिट धारण करनेवाला (कुष्ण) ।
उ०—कान्हा कूरम कृपानिधि, केसव कृश्व कृपाल । कुजबिहारी
क्रीटघर, कंससुर को काल ।—दया०, पृ० १८ ।

क्रीड—सब्बा पुं० [सं०] १ खेल । क्रीड़ा । २ परिहास । मनोविनोद
[को०] ।

क्रीडक—सब्बा पुं० [सं०] १ खेलनेवाला । खिलाड़ी । २ द्वाररक्षक ।
द्वारपाल [को०] ।

क्रीडन—सब्बा पुं० [सं०] १ खेल । क्रीडा । २ खिलोना । खेलने की
वस्तु [को०] ।

क्रीडनक—सब्बा पुं० [सं०] खिलोना [को०] ।

क्रीडनीय, क्रीडनीयक—सब्बा पुं० [सं०] दे० 'क्रीडक' ।

क्रीडा—सब्बा श्री० [सं० क्रीडा] १ कल्लोल । केलि । आमोद प्रमोद ।
खेलकूद । २. ताल के सात मुख्य भेदों में से एक जिस ताल
में केवल एक प्लुत हो, उसे क्रीडा ताल कहते हैं ।—(संगीत) ।
३ एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में यगण और
एक गुरु (१५, ५) होता है । उ०—युगो चारो । हरी तारो ।
करे क्रीडा । रखो ब्रीडा ।

क्रीडाकानन—सब्बा पुं० [सं० क्रीडा कानन] दे० 'क्रीडावन' [को०] ।

क्रीडाकूट—सब्बा पुं० [सं० क्रीडा + कूट = पर्वत] दे० 'क्रीडाशैल' ।
उ०—वने मनोहर क्रीडाकूट विचित्र ये ।—कल्या०, पृ० ३ ।

क्रीडाकोप—सब्बा पुं० [सं० क्रीडाकोप] खेल में रूठना । बनावटी
गुस्सा [को०] ।

क्रीडागिरि—सब्बा पुं० [सं० क्रीडागिरि] दे० 'क्रीडाशैल' । उ०—क्रीडा-
गिरि ते अलिन की भवली चली प्रकाश ।—केशव (शब्द०) ।

क्रीडागृह—सब्बा पुं० [सं० क्रीडागृह] केलिमंदिर [को०] ।

क्रीडाचक्र—सब्बा पुं० [सं० क्रीडाचक्र] छह यगड़ का एक वृत्त जिसका
दूसरा नाम महामोदकारी वृत्त है । उ०—यची यो यशोदा जु
को साहिला जो कलापूर्णधारी । जिही भक्त गावें सदा चित्त
बाये खरारी पुकारी । यही पूर्वो सबै लासा तो लला देवकी
जो । करै गाय जाको महामोदकारी सबै काभ्य नीको ।

क्रीडानागी—सब्बा श्री० [सं० क्रीडानागी] वारवनिता । वेण्या [को०] ।
क्रीडा भांड—सब्बा पुं० [सं० क्रीडा + भाण्ड] क्रीडा की वस्तु ।
खिलोना । उ०—जो देखियत यह विस्व पसारो । सो सब
क्रीडा भांड तुम्हारो ।—नद प्र०, पृ० २८२ ।

क्रीडामृग—सब्बा पुं० [सं० क्रीडामृग] खेल के लिये पाला हुआ हरिन [को०] ।
क्रीडारत—वि० [सं० क्रीडारत] खेल में लगा हुआ । खिलवाड़ में
मग्न । उ०—उमड़ सृष्टि के अंतर्हीन अवर से घर से क्रीडारत
बालक से ।—अपरा०, पृ० ३३ ।

क्रीडारत्न—सब्बा पुं० [सं० क्रीडारत्न] रति कार्य । मंयून क्रिया [को०] ।

क्रीडारथ—सब्बा पुं० [सं० क्रीडारथ] फूलों का रथ ।

क्रीडावन—सब्बा पुं० [सं० क्रीडावन] पई बाग । नजर बाग ।

क्रीडाशैल—सब्बा पुं० [सं० क्रीडाशैल] बनावटी पर्वत । नकली
पर्वत ।

क्रीडित—सब्बा पुं० [सं० क्रीडित] १ खेल । क्रीडा । २ वह जो खेल
चुका हो । खेला हुआ [को०] ।

क्रीत^१—वि० [सं०] कय किया हुआ । खरीदा या मोन लिया हुआ ।

क्रीत^२—सब्बा पुं० [सं०] १ मनु के अनुसार बारह प्रकार के पुत्रों में से
एक जो मोल लिया गया हो । क्रीतक । २ पद्रह प्रकार के
दासों में से एक जो मोन लिया गया हो ।

क्रीत^३०—सब्बा श्री० [सं० क्रीति] यश । कीर्ति । सुनाम । उ०—
महाराज मोठा कहूँ क्रीता सुणे नीठा सूर ।—रघु० रू०,
पृ० १४५ ।

क्रीतक^१—सब्बा पुं० [सं०] मनु के अनुसार बारह प्रकार के पुत्रों में से
एक, जो माता पिता को धन देकर उनसे खरीदा गया हो ।

विशेष—ऐसे पुत्र का केवल अपने मोल लेनेवाले की संपत्ति के
अतिरिक्त पतृक संपत्ति पर किसी प्रकार का अधिकार नहीं
होता । आजकल इस प्रकार का पुत्र बनाने का अधिकार
नहीं ।

क्रीतक^२—वि० खरीद करने से प्राप्त । कय से प्राप्त [को०] ।

क्रीतदास—सब्बा पुं० [सं० क्रीत + दास] खरीदा हुआ दास । गुलाम ।
उ०—माइयों के शेर और क्रीतदास तुकों के ।—अपरा,
पृ० ६४ ।

क्रीतानुशय—सब्बा पुं० [सं०] धर्मशास्त्र के अनुसार मठारह प्रकार के
विवादों में से एक । जब कोई मनुष्य किसी चीज को मोल लेने
के बाद, नियमों के विषय, उसे फेरना चाहता है, तो उस समय
जो विवाद उपस्थित होता है, उसे क्रीतानुशय कहते हैं ।

क्रीतारथ०—वि० [सं० कृतार्थ] दे० 'कृतार्थ' । उ०—रहेउ दोउ
कर जोरि चरन चित दीन्हैउ । मोर जन्म हरि आहूँ क्रीतारथ
कीन्हैउ ।—अकबरी०, पृ० ३३६ ।

क्रीन०—सब्बा पुं० [सं० किरण] दे० 'किरण' । उ०—महा मोह
तम पुज अपारा । वचन तुम्हार क्रीन रविधारा ।—कबीर
सा०, पृ० ५२० ।

क्रील०—सब्बा श्री० [सं० क्रीडा] दे० 'क्रीडा' । उ०—तब पता गरा
निय बसन करि सुनि ब्रह्मा सकर हृषी । तिन देखे बर बडी
वज्रिय दास क्रील साधव रक्षी ।—पृ० १११, २ । ३५४ ।

श्रीलना(५)—क्रि० अ० [देश०] लेना । कीड़ा करना ।

श्रीला(५)—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कीड़ा] दे० 'कीड़ा' उ०—मुखसागर
श्रीला कर, पूरण परिमिति नाहि ।—दादू, पृ० ५८२ ।

क्रुद्ध—वि० [सं०] १ कोपयुक्त । क्रोध में भरा हुआ । २ क्रूर ।
निर्दय [को०] ।

क्रमुक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सुगारी ।

क्रुशवा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० क्रुशवन्] शृगाल । सियार । गीदड़ ।

क्रुष्ट^१—वि० [सं०] १ आहत । पुकारा या बुलाया हुआ । २
तिरस्कृत । कोमा हुआ । अपमानित [को०] ।

क्रुष्ट^२—सञ्ज्ञा पुं० १ चीखना । चिल्लाना । २ रुदन । रोना । ३.
शोर गुन । आवाज [को०] ।

क्रुजर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तेज चलनेवाला सशस्त्र या हथियारबंद जहाज
जिसका काम अपने देश के जहाजों की रक्षा करना और शत्रु
के जहाजों को नष्ट करना या लूटना है । यह युद्ध के अवसर
पर भी काम आता है । रक्षक जहाज ।

क्रूर^१—वि० [सं०] [स्त्री० क्रूरा] १. परपीडक । दूसरों को कष्ट
पहुँचानेवाला । २. निष्ठुर । निर्दय । जालिम । ३. कठिन ।
४. तीक्ष्ण । तीखा । ५. उल्लू । गम्भ । ६. नीच । बुरा ।
खराब । ७. घोर ।—(डि०) । ८. अपक्व । कच्चा [को०] ।
९. घायल । आहत [को०] । १०. खूनी । हिंसक [को०] । ११.
टोस । कड़ा [को०] ।

क्रूर^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ पका हुआ चावल । भान । २ लान करने ।
३ बाज पक्षी । ४ सफेद चील । कंक । ५ भूनाकुश । गाव-
जुवा । ६ ज्योतिष में विषम (पहनी, तीमरी, पाँचवी, सातवी,
नवीं और ग्यारहवी) राशियाँ । ७. रवि, मंगल, शनि, राहु
और केतु ये पाँच ग्रह जिन्हें पापग्रह भी कहते हैं ।

विशेष—जिस राशि में कोई पापग्रह हो उसमें यदि कोई शुभग्रह
आ जाय, तो वह भी क्रूर कहलाता है । पाराशर के मत से
लग्न से तीसरे, छठे या ग्यारहवें घर का स्वामी—चाहे जो
ग्रह हो—क्रूर या पापग्रह कहलाता है । क्रूरग्रहयुक्त तिथि
या नक्षत्र में यात्रा या विवाह आदि शुभ कर्म वर्जित है ।

८ वध । हत्या [को०] । ९. आघात । घाव । चोट [को०] । १०.
एक प्रकार का घोड़ा जो अशुभ माना गया है [को०] । ११.
क्रूरता । निर्दयता । १२. भीषण आकृति या रूप [को०] ।

क्रूरकर्मा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० क्रूरकर्मन्] १ क्रूर काम करनेवाला । २
तितलोकी का पेड़ । ३. सुरजमुखी । अर्कपुष्पी ।

क्रूरकोष्ठ—वि० [सं०] जिसका कोठा बहुत कड़ा हो । जिसका पेट
कड़ी दस्तावर दवाओं से भी साफ न हो ।

क्रूरगघ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० क्रूरगन्ध] गधक ।

क्रूरग्रह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'क्रूर' ६ और ७ ।

क्रूरचरित—वि० [सं०] निर्दय । क्रूरकर्मा [को०] ।

क्रूरचेष्टित—वि० [सं०] दे० 'क्रूरचरित' [को०] ।

क्रूरता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. निष्ठुरता । निर्दयता । कठोरता । २.
दुष्टता ।

क्रूरदत्तो—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० क्रूरदन्तो] दुर्गा का एक नाम ।

क्रूरदृक्^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. शनिग्रह । २. मंगल ग्रह ।

क्रूरदृक्^२—वि० १ दुष्ट । खल । २. बुरी दृष्टिवाला [को०] ।

क्रूरधूर्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कृष्ण घत्तूर । काला घत्तूर [को०] ।

क्रूररव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] स्यार । शृगाल [को०] ।

क्रूररावी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० क्रूरराविन्] द्रोण काक । डोम कोरा
[को०] ।

क्रूरलोचन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शनि ग्रह [को०] ।

क्रूरा^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. लाल फूल की गदहपुर्ना । २. कीड़ी ।

क्रूरा^२—त्रि० स्त्री० क्रूर स्वभाववाली ।

क्रूराकृति^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रावण । दशमुख [को०] ।

क्रूराकृति^२—वि० डरावने रूपवाला [को०] ।

क्रूराचार—वि० [सं०] निर्दय आचरणवाला [को०] ।

क्रूरात्मा^१—वि० [सं० क्रूरात्मन्] दुष्ट प्रकृति का । दुष्टस्वभाववाला ।

क्रूरात्मा^२—सञ्ज्ञा पुं० शनिग्रह ।

क्रूराशय—वि० [सं०] १. निर्दय या कठोर स्वभाव का । २. मयंकर
जीवों से युक्त (नदी, नद आदि) [को०] ।

क्रूस—सञ्ज्ञा पुं० [अ० क्राम] ईसाइयों का एक प्रकार का धर्मचिह्न
जिसका आकार त्रिशूल से मिलता जुलता होता है और
जिसमें दो रेखाएँ एक दूसरे को काटती हुई होती हैं । यह कई
प्रकार का होता है । जैसे,—†, ††, X । सलीब ।

विशेष—इस चिह्न का अग्रभाग उस सूली से है, जो ईसा के
मारने के लिये खड़ी की गई थी और जिसका आकार † था ।
उन दिनों रोमन लोग इसी प्रकार की सूली पर अपराधियों
को चढ़ाते थे ।

क्रेडिट—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] बाजार में वह मान मर्यादा जिसके कारण
मनुष्य लेना देन कर सकता हो । साख । जैसे,—बाजार में
अब उनका कोई क्रेडिट नहीं रहा, अब वे एक पैसे का भी
माल नहीं ले सकते ।

क्रेता—सञ्ज्ञा पुं० [सं० क्रतृ] खरीदनेवाला । मोल लेनेवाला ।
खरीददार ।

क्रेतृघसर्प—सञ्ज्ञा पुं० [सं० क्रेतृघसर्प] खर बनेराली की बड़ा
रूपरी ।—[को०] ।

क्रेय—वि० [सं०] खरीदने लायक [को०] ।

क्रेडिन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] साकमेघ यज्ञ का एक हवि जो मरुत देवता
के उद्देश्य से दिया जाता है ।

क्रेडिनीया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ ।

क्रौंच—सञ्ज्ञा पुं० [सं० क्रौञ्च] क्रौंच पर्वत ।

क्रोड^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ आलिंगन में दोनों बाँहों के बीच का

क्रित ④—सधा पुं [सं० कृय] दे० कृत्य' । उ०—पति दिन जो त्रिप
कृत मान मुक्के सु मोह घर ।—पृ० रा० २।४१३ ।

क्रिम—सधा पुं [सं० क्रिमि] दे० 'क्रिमि' । उ०—जे मुक्कन हारका
संसारा । क्रिम कूप महे परत निहारा ।—कवीर सा०,
पृ० ४६५ ।

क्रिमि—सधा पुं [सं०] १ कीड़ा । कीट । २ पेट का एक रोग ।
विशेष—दे० 'क्रिमि' ।

क्रिमिका—सधा औ० [सं०] दे० 'क्रिमि' [क्रि०] ।

क्रिमि कौंड—सधा पुं [सं० क्रिमिकोण्ड] चोल देश के एक राजा
का नाम ।

विशेष—यह कट्टर शैव था और इसने अपने देश के सब पंडितों
से लिखवा लिया था कि शिव सर्वोत्कृष्ट देवता है । इसने
रामानुज स्वामी को कैद भी करना चाहा था, पर सफलता
नहीं हुई ।

क्रिमिधनी—सधा औ० [सं०] सोमराजी [क्रि०] ।

क्रिमिज—सधा पुं [सं०] अग्रह । मगर [क्रि०] ।

क्रिमिजा—सधा औ० [सं०] लाघ । लाह ।

क्रिमिनख—पि० [प्र०] अपराधी ।

क्रिमिनल इनवस्टिगेशन डिपार्टमेंट—सधा पुं [प्र०] [सक्षिप्तरूप
सी० आई० डी०] सरकार का वह विभाग या महकमा जो
अपराधों का गुप्त रूप से अनुसंधान करता है । भेदिया विभाग ।
छुफिया महकमा । भेदिया पुलिस । छुफिया पुलिस । सी०
आई० डी० ।

क्रिमिनल प्रोसीजर कोड—सधा पुं [प्र०] अपराध और दंड संबंधी
विधानों का संग्रह । दंडविधान । जास्ता कोजदारी ।

क्रिमिभक्ष—सधा पुं [सं०] एक नरक का नाम ।

क्रिमिशैल—सधा पुं [सं०] वल्मीक । बाँवो [क्रि०] ।

क्रिय—सधा पुं [सं०] भेष राशि ।

क्रियमाण—सधा पुं [सं०] १ वह जो किया जा रहा हो । वह जो
हो रहा हो । २ कर्म के चार भेदों में से एक । पि० दे० 'कर्म' ।

क्रिया—सधा औ० [सं०] १ किसी प्रकार का व्यापार । किसी काम
का होना या किया जाना । कर्म । २ प्रयत्न । चेष्टा । हिलना
डोलना ३ अनुष्ठान । पारम् । ४ व्याकरण का वह भाग,
जिससे किसी व्यापार का करना या कराना पाया जाय ।
जैसे, माना, जाना, मारना इत्यादि । ५ शीघ्र आदि कर्म ।
नित्यकर्म । स्नान, सध्या, तर्पण आदि कृत्य । उ०—प्रातः
क्रिया करि मे गुह पाही । महाप्रमोद प्रेम मन माही ।—
तुलसी (शब्द०) । ६ श्राद्ध आदि प्रत्येक कर्म । उ०—प्रविरल
भगति माँगि बर गीघ गयउ हरिधाम । तेहि की क्रिया
यथोचित निज कर कोहीं रामा—तुलसी (शब्द०) ।

यो०—क्रिया कर्म = मृतक कर्म । अंत्येष्टि क्रिया ।

७ प्रायश्चित्त आदि कर्म । ८ उपाय । उपचार । चिकित्सा ।
९ न्याय या विचार का साधन । मुकदमे की कारवाही । १०,
११ छद्मपन । शिक्षण [क्रि०] । ११ किसी कृपा पर आधिपत्य

या उग्रका शाप [क्रि०] १२ याचन । याचना [क्रि०] ।
१३ कार्य की विधि [क्रि०] । १४, १५ कोदमो साहित्यिक
रचना [क्रि०] ।

क्रियाकलाप—सधा पुं [सं०] १ सामान्यतः क्रियाजनक कर्म ।
२ किसी व्यवसाय का उद्देश्य निरूपण [क्रि०] ।

क्रियाकटप—सधा पुं [सं०] १ रोगनिदान की एक विधि । पद्धति ।
विहारा का प्रकारविशेष । २ रोगनिर्णय । ३ काश्मिर भाषा
की विधि [क्रि०] ।

क्रियाकाण्ड—सधा पुं [सं० क्रियाकाण्ड] वह शास्त्र जिसमें व्यास आदि का
विधान हो । कर्मकांड ।

क्रियाकार—सधा पुं [सं०] १ कार्य करनेवाला व्यक्ति । २ निरा-
रत करनेवाला छात्र । ३ इकरारनामा [क्रि०] ।

क्रियाक्रम—सधा पुं [सं०] कार्यक्रम । कार्य क्रम का संग । उ०—
राश भाई के क्रियाक्रम को भी जानते न ।—प्रेमधन०, भा० २,
पृ० ३२० ।

क्रियाचतुर—सधा पुं [सं०] चतुरार रत न नायक का एक भेद । वह
नायक जो क्रिया या पात में चतुर हो, और उनकी सहायता
से प्रीतिकार्यें साधे । उ०—हरे क्रिया च चतुरो जो नायक
रसलील । क्रियाचतुर साकी कहुत कवि 'नतिगम' प्रबोन ।—
मति० प्र०, पृ० ३२२ ।

क्रियाचार—सधा पुं [सं०] कार्य और धारारण । प्रत्येक प्रकार के
काम । उ०—पा गत संस्कारों के इतिवृत्त, ये क्रियाचार करते
निश्चित ।—ग्राम्या, पृ० २३ ।

क्रियातय—सधा पुं [सं० क्रियातय] १ तन के चार, सोपानों में
से एक । २, युग [क्रि०] ।

क्रियातिपत्ति—सधा पुं [सं०] वह कामालंकार जिसमें प्रत्येक से भिन्न
कराना करने विषय का वर्णन किया जाय । जैसे,—मन्य
यदि सहस्र दूग घरिहे । तुम तु श्रुता निषंग जरिहे ।

विशेष—कुछ लोग इसे प्रतिशयोक्ति का एक भेद और कुछ लोग
संभावना प्रसंग के प्रवर्णन मानते हैं । व्याकरण शास्त्र में
भी यह शब्द प्रयुक्त है ।

क्रियात्मक—पि० [सं०] व्यावहारिक । उ०—हिंदी के ये सदा ही
परम भक्त रहे हैं और जित जित सहायकों ने न रहे उन सब
मे ही हिंदी की प्रगति क्रियात्मक रूप से करते रहे हैं ।—गुप्त
मणि० प्र०, पृ० १२ ।

क्रियाद्वेषी—सधा पुं [सं० क्रियाद्वेषिन्] धर्मशास्त्र में वह प्रतिवादी
जो साक्षी और प्रमाण आदि को न माने ।

विशेष—ऐसा प्रतिवादी पाँच प्रकार के तीन प्रतिवादियों में
माना गया है ।

क्रियानिर्देश—सधा पुं [सं०] गवाही । साक्षी [क्रि०] ।

क्रियानिष्ठ—पि० [सं०] स्नान, सध्या, तर्पण आदि नित्यकर्म
करनेवाला ।

क्रियापद—सधा पुं [सं० क्रिया + पद] कर्मकांड । उ०—क्रियापद
श्रुति ने जो भाष्यो से सब प्रसुर मिटायो । बृहदानु द्वे कं
हरि प्रगटे क्षण में फिर प्रगटायो—सूर (शब्द०) ।

क्रियापट्ट

क्रियापट्ट—वि० [सं०] कार्यकुशल । काम में दक्ष [को०] ।

क्रियापथ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ओपघोषचार की रीति । दवा करने का ढंग [को०] ।

क्रियापद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण में क्रिया अथवा क्रियावाचक शब्द० [को०] ।

क्रियापर—वि० [सं०] कर्तव्यनिष्ठ ।

क्रियापवर्ग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] क्रिया की पूर्ति । कार्य की समाप्ति [को०] ।

क्रियापाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ शब्द दर्शन के अनुसार विद्यापाद आदि चार पादों में से दूसरा पाद, जिसमें दीक्षा विधि का ग्रंथ और उपाग सहित प्रदर्शन हो । २. धर्मशास्त्र के अनुसार व्यवहार (मुकदमे) के चार पादों या विभागों में से एक, जिसमें वादी के कथन और प्रतिवादी के उत्तर लिखाने के उपरांत वादी अपने कथन या दावे के प्रमाण आदि उपस्थित करता है । वि० ६० 'व्यवहार' ।

क्रियाफल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वेदात्त की परिभाषा में कर्म के चार फल या परिणाम, अर्थात् उत्पत्ति, आप्ति, विकृति और संस्कृति । विशेष—मीमांसा के गुणकर्म या उसके फल के भी ये ही चार भेद किए गए हैं ।

क्रियाब्रह्म—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] क्रियाब्रह्मन्] ब्रह्म का वह रूप जो विश्व के सभी कर्मों का संपादन करता है ।

क्रियाम्युपगम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार किसी दूसरे का खेत इस शर्त पर जोतने के लिये लेना कि उसमें जो अनाज उत्पन्न हो, वह खेत का मालिक और जोतनेवाला दोनों आधा बाँट लें । अधिया ।

क्रियामातृका दोष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बालको का एक रोग जिसमें उन्हें जन्म के दसवें दिन, मास या वर्ष ज्वर, कंप और अधिक मल मूत्र होता है ।

क्रियामाधुर्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वास्तु अथवा कला का निर्माणगत सौंदर्य [को०] ।

क्रियायोग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ पुराणों के अनुसार देवताओं की पूजा करना और मन्त्र आदि घनवाना । २ क्रिया के साथ संबंध । ३ तरकीब और साधन का प्रयोग ।

क्रियार्थ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वेद में यज्ञादि कर्म का प्रतिपादक विधि-वाक्य ।

विशेष—मीमांसा ने ऐसे ही वाक्य को प्रमाण माना है ।

क्रियार्थकसञ्ज्ञा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] व्याकरण के अनुसार वह सञ्ज्ञा जो किसी क्रिया का भी काम देती है ।

क्रियालक्षण योग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जप और ध्यानादि द्वारा आत्मा और ईश्वर का संबंध स्थापित करना ।

क्रियालोप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हिंदू धर्म में विहित प्रमुख संस्कारों या नित्यनैमित्तिक कर्मों का त्याग [को०] ।

क्रियावस्तन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह वादी जो साक्षी या प्रमाण न देने के कारण हार जाय ।

क्रियावाचक—वि० [सं०] क्रिया का बोध करानेवाला । क्रियार्थक [को०] ।

क्रियावाची—वि० [सं०] क्रियावाचित्] २० 'क्रियावाचक' [को०] ।

क्रियावाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान, कर्म और उपासना नामक तीन वैदिक काष्ठों में से कर्मकांड को मान्यता प्रदान करना । कर्मवाद । कर्म को प्रधानता देनेवाला सिद्धांत । उ०—क्रियावाद वह मत है जिसके अनुसार आत्मा कर्मों से प्रभावित होती है ।—हिंदु० सम्प्रदाय, पृ० २२७ ।

क्रियावादी—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] क्रियावादिन] वादी अभियोक्ता [को०] ।

क्रियावान्—वि० [सं०] कर्मप्रवृत्त । कर्मनिष्ठ । कर्मठ ।

क्रियावाही—वि० [सं०] क्रिया + वाही] कर्म का बहून करनेवाला । कर्म का भार उठानेवाला । उ०—वास्तव में, इतिहास तो मानवी क्रियावाही समयवर्ताओं तथा उनसे उद्भूत कारनामों का, मानसिक शक्तियों से जनित विविध घटनाओं का एवं विकासक्रम के मूल में संयोजित विशेष प्रवृत्तियों का पुत्रीभूत आलेखन है ।—ग्रा० भा०, पृ० ३५ ।

क्रियाविदग्धा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह नायिका जो नायक पर किसी क्रिया द्वारा अपना भाव प्रकट करे ।

क्रियाविशेषण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण के अनुसार वह शब्द जिससे क्रिया के किसी विशेष काल, भाव या रीति आदि का बोध हो । जैसे, अब, तब, यहाँ, वहाँ, कर्मण, अचानक इत्यादि । जैसे,—(क) वह धीरे धीरे चलता है । (ख) वह मग जायगा ।

क्रियाशक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] ईश्वर से उत्पन्न वह शक्ति जिससे ब्रह्मांड की सृष्टि का होना माना जाता है । साध्य में इसी को प्रकृति और वेदात्त में माया कहा है ।

क्रियाशील—वि० [सं०] क्रियावान् । कर्मठ । कर्मनिष्ठ [को०] ।

क्रियाशून्य—वि० [सं०] कर्महीन ।

क्रियासंक्राति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] क्रियासंक्रान्ति] ज्ञानवान । शिक्षण [को०] ।

क्रियास्नान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] धर्मशास्त्र के अनुसार स्नान की एक विधि, जिसके अनुसार स्नान करने से तीर्थस्थान का फल होता है ।

क्रियेंद्रिय—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] क्रियेन्द्रिय] कर्मेन्द्रिय [को०] ।

क्रिश्चना—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] क्रिश्चियन] २० 'क्रिस्तान' । उ०—घरवालों का कौतूहल बढ़ चला । इस समय काशी में जारों से लोग क्रिश्चन बन रहे थे ।—काले०, पृ० ६४ ।

क्रिस्तन दीपायन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कृष्णदीपायन] वेदव्यास । उ०—बालमोक्ष रिपराज क्रिस्तन दीपायन धारिय । कोटि जनम समवं तोय हरि नाम अपारिय ।—पृ० २१०, २१५६६ ।

क्रिस्तान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कृशानु] २० 'कृशानु' उ०—भगने सुदति पंतिय विरुर । पलकत अदु मद भरत भूर । घबनेज चमर वंवर विनान । मन हू कि पव्व पल्लव क्रिस्तान ।—पृ० २१०, १६२४ ।

क्रिस्टल—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] १. स्फटिक । बिल्वोर । २ शोरे आदि का जमा हुआ रवादार टुकड़ा । कचम ।

क्रिस्तान—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] क्रिश्चियन्] ईसा के मत पर चलनेवाला । ईसाई ।

क्रमविकास—सङ्घा पुं० [सं०] धीरे धीरे होनेवाला विकास । क्रमशः
उन्नति [को०] ।
क्रमशः—क्रि० वि० [सं० क्रमशः] १ क्रम से । सिलसिलेवार । २
धीरे धीरे । थोड़ा थोड़ा करके ।
क्रमसंख्या—सङ्घा स्त्री० [सं०] क्रम को व्यक्त करनेवाली संख्या या
सिलसिला ।
क्रमसंन्यास—सङ्घा पुं० [सं०] वह संन्यास जो क्रम से अर्थात् ब्रह्मचर्य,
गृहस्थ वानप्रस्थ आश्रम मे रह चुकने के बाद लिया जाय ।
क्रमांक—सङ्घा पुं० [सं० क्रमाङ्क] दे० 'क्रमसंख्या' ।
क्रमागत—वि० [सं०] १ क्रमश किसी रूप को प्राप्त । जो धीरे धीरे
होता आया हो । २ जो सदा से होना आया हो । परंपरागत ।
क्रमानुकूल—क्रि० वि० [सं०] श्रेणी के अनुसार । नियमानुसार । क्रम
के अनुसार । क्रम से । सिलसिलेवार ।
क्रमानुयायी—वि० [सं० क्रमानुयायिन्] उत्तरवर्ती । परंपराप्राप्त ।
उ०—चंद्रसेन का उत्तराधिकारी कीर्तिसिंह और क्रमानुयायी
रामसिंह (दूसरा) हुआ ।—राज०, पृ० ११८३ ।
क्रमानुसार—क्रि० वि० [सं०] क्रमश । क्रमानुकूल ।
क्रमान्वय—क्रि० वि० [सं०] क्रम से । एक के बाद एक ।
क्रमि—सङ्घा पुं० [सं०] १ कीड़ा । क्रमि । २. पेट का एक रोग जिसमें
आँसो मे छोटे छोटे सफेद कीड़े पैदा हो जाते हैं । इन कीड़ों
को चुन्ना या चुनूना कहते हैं ।
क्रमिक—क्रि० वि० [सं०] १ क्रमयुक्त । क्रमागत । २ परंपरागत ।
क्रमिकता—सङ्घा स्त्री० [सं० क्रमिक + ता] क्रमबद्ध होने की स्थिति ।
उ०—इस क्रमिकता और परिच्छिन्नता के कारण इसमें प्रेम
तत्त्व अधिक गाढ़ और मानदमूलक होता है ।—गोदर अभि०
ग्र०, पृ० ६३७ ।
क्रमी०—सङ्घा पुं० [सं० कृषि] दे० 'कृषि' । उ०—फिल भिसटा
भसमी क्रमी, इण नर तन सुं थाम ।—वांकी० ग्रं०, भा० २,
पृ० ४६ ।
क्रमु—सङ्घा पुं० [सं०] १ सुपारी का वृक्ष [को०] ।
क्रमुक—सङ्घा पुं० [सं०] १ सुपारी का पेड़ । उ०—घर घर तोरण
विमल पता के कचन कु भ घराए । क्रमुक रभ के खंभ विराजत
पथ जल सुरभि सिचाए ।—रघुराज (शब्द०) । २ नागर-
मोथा । ३ कपास का फल । ४ शहतूत का पेड़ । ५ पठानी
लोघ । ६ एक प्राचीन देश का नाम ।
क्रमकी—सङ्घा स्त्री० [सं०] सुपारी का पेड़ [को०] ।
क्रमेल—सङ्घा पुं० [सं०] दे० 'क्रमेलक' ।
क्रमेलक—सङ्घा पुं० [सं०] ऊँट । शुतुर । उ०—मनहुँ क्रमेलक पीठ प
घरघो गोल घटा लसत ।—रस०, पृ० ४९ ।
क्रमोद्वेग—सङ्घा पुं० [सं०] बलीवर्द । वृषभ । बल [को०] ।
क्रम्य०—सङ्घा पुं० [सं० क्रम > क्रम्य०] दे० 'कर्म' । उ०—सब सौति
कह्यो दुप सुनहु तुम्ह । राजन तनय हम सों न क्रम्य ।—
पृ० २१० १।३७५ ।
क्रम्य—सङ्घा पुं० [सं०] मोल लेने की क्रिया । खरीदने का काम ।
खरीद । क्रयण ।

यो०—क्रम्यक्रीत = खरीदा या मोल लिया हुआ । क्रयलेख्य = विक्रय
पत्र । बंतामा । दातपत्र । क्रयविक्रय = खरीदने और बेचने की
क्रिया । व्यापार । क्रयविक्रयिक = व्यापारी । सीदागर ।
क्रयण—सङ्घा पुं० [सं०] खरीद । क्रय । खरीदना [को०] ।
क्रयलेख्यपत्र—सङ्घा पुं० [सं०] पदार्थ के क्रय विक्रय संबंधी पत्र ।—
(शुक्रनीति) ।
क्रमविक्रयानुशय—सङ्घा पुं० [सं०] मनु के अनुसार अठारह प्रकार के
विवादों मे से एक ।
विशेष—दे० 'क्रीतानुशय' ।
क्रयारोह—सङ्घा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ खरीदने बेचने का काम
होना है । हाट । बाजार । मंडी ।
क्रयिक—वि० पुं० [सं०] १ व्यापारी । बेचनेवाला । २ खरीदने-
वाला [को०] ।
क्रयिम सङ्घा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह कर या टैक्स जो माल
खरीद या बिक्री पर लिया जाय ।
क्रयी—सङ्घा पुं० [सं० क्रयिन्] मोल लेनेवाला । खरीदनेवाला ।
क्रयोपघात—सङ्घा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार पदार्थ के खरीदने को
रोकना । पदार्थ के क्रय मे रुकावट डालना ।
क्रय्य—वि० [सं०] जो बिक्री के लिये रखा जाय । जो चीज बेचने
के लिये हो ।
क्रवान०—सङ्घा स्त्री० [सं० कृपाण] कृपाण । तलवार । उ०—चल
विचलसान नौसान मुख गहि क्रवान कर मे कड़िय ।—सुबान०,
पृ० २० ।
क्रव्य—सङ्घा पुं० [सं०] मांस । गोشت ।
क्रव्याद—सङ्घा पुं० [सं०] १ मांस खानेवाला । वह जो मांस खाता
हो । जैसे, राक्षस, गिद्ध, सिंह आदि । उ०—लका के क्रव्याद
वहाँ आकर चरते थे ।—साकेत, पृ० ४१६ । २ वह आग
जिससे शव जलाया जाता है । चिता की आग ।
क्रशित—वि० [सं०] दुर्बल । क्षीणकाय [को०] ।
क्रशिमा—सङ्घा स्त्री० [सं०] दुर्बलापन । क्षीणता [को०] ।
क्रस०—सङ्घा स्त्री० [सं० कृषि] दे० 'कृषि' । उ०—ज्यो क्रस भजे तन
गलै घण गोलक तन लग ।—रा० रू० पृ० १०२ ।
क्रस०—वि० [सं० कृश] दुर्बल । कृश । उ०—तहाँ सु अंतर
रिष्य इक क्रस तन अग सरंग । दव दखी जजु द्रुम कोइ, क
कोइ भूत भुअग ।—पृ० २१०, ६।१७ ।
क्रसान०—सङ्घा पुं० [सं० कृशानु] दे० 'कृशानु' । उ०—विद्यो
सवय सुख निज थुई, टीटम हूत कान । उणरा बान सबारिया
महामत्र जस मान ।—वांकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ५१ ।
क्रसोदर०—वि० [सं० कृशोदर] दे० 'कृशोदर' । उ०—लोद लचीली
लों लचनि घालत नहि सकुचात । लगि जैतैं वोदर लला वहै
क्रसोदर आत ।—सं० सप्तक, पृ० २४३ ।
क्रस्त०—सङ्घा पुं० [सं० कृष्ण] दे० 'कृष्ण' ।—अनेकार्थ०,
पृ० ९१ ।
क्रस्तफला०—सङ्घा स्त्री० [सं० कृष्णफला] काली मिर्च । गोल मिर्च ।
अनेकार्थ०, पृ० ८० ।

क्रान्ति—वि० [सं क्रान्ति] १ जिसे कोई वस्तु ऊपर से आकार छेके हो । जिसे कोई वस्तु ऊपर से छेपे हो । दवा या ढाका हुआ ।
२ जिसपर आक्रमण हुआ हो । प्रसूत । उ०—महाबली विक्रम
विक्रान्त क्रांत मदर गिरि कीन्हे ।—रघुराज (शब्द०) ।

यो०—नाराक्रान्त ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

३. आगे बढ़ा हुआ । मनीत ।

यो०—सीमाक्रान्त ।

क्रि० प्र०—कटना ।—होना ।

४ गत । गया हुआ (क्रि०) ।

क्रान्ति^२—सञ्ज्ञा पुं० १. घोड़ा । २. पैर । ३. कदम । डग (क्रि०) । ४. जाना । गमन । चलना (क्रि०) । ५ किसी ग्रह के साथ चंद्र का योग होना (क्रि०) ।

क्रान्तदर्शी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं क्रान्तदर्शिन] १ ईश्वर । परमेश्वर ।
२ त्रिकालदर्शी । सर्वज्ञ ।

क्रान्ति^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं क्रान्ति] १ डग भरने की क्रिया । कदम रखना । एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमन । गति । २. खगोल में वह कल्पित वृत्त, जिसपर सूर्य पृथ्वी के चारों ओर घूमता जान पड़ता है ।

पर्या०—अपमंडल । अपवृत्त । अपक्रम । अपम ।

यो०—क्रान्तिक्षेत्र । क्रान्तिज्या । क्रान्तिपात । क्रान्तिभग । क्रान्तिमंडल । क्रान्तिमाना । क्रान्तिबलय । क्रान्तिवृत्त ।

३ खगोलीय नाडीमंडल से किसी नक्षत्र की दूरी । ४ एक दशा से दूसरी दशा में परिवर्तन । फेरफार । चलट फेर । जैसे, राज्यक्रान्ति ।

क्रान्ति^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं क्रान्ति] शोभा । तेजस्विता । उ०—
(क) कहा क्रान्ति छवि वरनो वरनत वरनि न जाय ।—कबीर
श०, भा० ४. पृ० २६ (ख) पोडश भान हंस की क्रांती ।
ममर चीर पहिरं बहु भांती ।—कबीर सा०, पृ० १००२ ।

क्रान्तिकक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [दि० क्रान्तिकक्ष] ३० 'क्रान्तिवृत्त' ।

क्रान्तिकारी^१—वि० [सं क्रान्तिकारिन्] किसी व्यवस्था में उलट फेर या परिवर्तन करनेवाला । इनकलाव लानेवाला ।

क्रान्तिकारी^२—सञ्ज्ञा पुं० सत्ता को उलट देने का प्रयास करनेवाला व्यक्ति । उ०—क्रान्तिकारियों को यह ज्ञात हो जाता कि जो कुछ वे कर रहे थे उसमें उन्हें गांधी जी का समर्थन प्राप्त न था ।—भारतवाचक, १९८ ।

क्रान्तिक्षेत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं क्रान्तिक्षेत्र] गणित में वह क्षेत्र जो क्रान्ति निकालने के लिये बनाया जाय ।

क्रान्तिज्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं क्रान्तिज्या] क्रान्तिवृत्त क्षेत्र में अक्षक्षेत्र का एक भग । वि० दे० ज्या ।

क्रान्तिपात—सञ्ज्ञा पुं० [सं क्रान्तिपात] वे विदु जिनपर क्रान्तिबलय और खगोलीय विपुवत की रेखाएँ एक दूसरी को काटती हैं ।

विशय—जब इन विदुओं पर पृथ्वी भारी है, तब रात और दिन बराबर होते हैं ।

क्रान्तिभाग—सञ्ज्ञा पुं० [सं क्रान्तिभाग] खगोलीय नाडीमंडल से क्रान्तिमंडल के किसी बिंदु की दूरी ।

क्रान्तिमंडल—सञ्ज्ञा पुं० [सं क्रान्तिमण्डल] वह वृत्त जिसपर सूर्य पृथ्वी के चारों ओर घूमता हुआ जान पड़ता है । उ०—विपुव और क्रान्तिमंडल के मिलन को क्रान्तिपात कहते हैं ।—बृहत्०, पृ० ६ ।

क्रान्तिबलय—सञ्ज्ञा पुं० [सं क्रान्तिबलय] ३० 'क्रान्तिवृत्त' (क्रि०) ।

क्रान्तिवृत्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं क्रान्तिवृत्त] सूर्य का मार्ग ।

क्रान्तिसाम्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं क्रान्तिसाम्य] ज्योतिष में ग्रहों की तुल्यक्रान्ति ।

विशेष—यद्यपि सब ग्रहों की तुल्यक्रान्ति होती है, तथापि सूर्य और चंद्र के क्रान्तिसाम्य में भग्नताएँ वर्जित हैं ।

क्राइस्ट—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] ईसा मसीह ।

क्राउन—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ राजमुकुट । ताज । २ राजा । सम्राट् ।
याह । सुल्तान ३ राजा । ४ छापने के मागज की एक नाप जो १५ इंच चौड़ी और २० इंच लंबी होती है ।

यो०—डबल क्राउन = क्राउन से दूना । ३० इंच लंबा और २० इंच चौड़ा ।—छापाखाना ।

क्राउन कालोनी—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] वह कालोनी या उपनिवेश जो किसी राज्य या साम्राज्य के अधीन हो । राज्य या साम्राज्यात्मक उपनिवेश ।

क्राउन प्रिंस—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] किसी स्वतंत्र राज्य का राजतन्त्रिहासन का उत्तराधिकारी । युवराज । जैसे,—प्रकानिस्तान के क्राउन प्रिंस ।

क्राकचिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आरे से लकड़ी चीरनेवाला माराकथ (क्रि०) ।

क्राय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ हिंसा करना २. एक नाग का नाम । ३ एक बदर का नाम जिसने राम-रावण-युद्ध में सेनापति का काम किया था । ४. एक राजा का नाम जो महाभारत के भवतार माने जाते हैं । उ०—चल्यो क्राव नरनाथ माय पर मुकुट मनोहर ।—गोपाल (शब्द०) । ५. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

क्रायक क्रायिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. व्यापारी । व्यवसायी । २. खरीददार । ग्राहक (क्रि०) ।

क्राल^१—वि० [सं कराल] भयंकर । भयावह । उ०—काल क्राव की नाहीं सारा । ऊँचे कबल सीस जमु मारा ।—प्राण०, पृ० २१० ।

क्रिकेट—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] एक प्रकार का घोंगरेजी डग का गेंद का खेल, जो ग्यारह ग्यारह घादियों के दो पक्ष में खेला जाता है । गेंद । बल्ला ।

यो०—क्रिकेट बैट—क्रिकेट खेलने का बल्ला ।

क्रिचयन—सञ्ज्ञा पुं० [सं कृच्छ्रचक्रायण] चांद्रायण व्रत ।

क्रिड^१—वि० [सं कृच्छ्र] ३० 'कृच्छ्र' । उ०—देवित' काङ्क कया सो, प्रात होत जो हाप । बाज प्रात मन बलान, प्रात क्रिड बिज साप ।—दंडा०, पृ० १६० ।

क्यो ? धन्य हो ? (२) ऐसी विलक्षण बात क्यो न कहोगे ? छि ।—(व्यग्न) ।

२ ॐ किस भाँति ? किस प्रकार ? कैसे ? उ०—क्यो वसिए क्यो निबहिए, नीति नेह पुर नाहि । लगा लगी लोयन करे, नाहक मन बँध जाहि ।—विहारी (शब्द०) ।

क्योडा—सखा पुं० [हि० केवडा] दे० 'केवड़ा' । उ०—प्रव तुम जाय घग्गे ओतारा । क्योडा केतकी नाम तुम्हारा ।—कवीर सा० पृ०, ३१ ।

क्योलारी—सखा स्त्री० [हि०] दे० 'कोइल री' ।

क्यों—क्रि० वि० [हि० क्योँ] किसी प्रकार । उ०—क्यों हू लुकत न लाज निगोड़ी बिसव सुप्रेम उरैषु ।—नंद ग्र०, पृ० ३८८ ।

कंत—वि० [सं० कान्त] सुंदर । मनोहर । उ०—बहुस्त्री रूपन वनि आरहि । कन गीत असमजस गावहि ।—प० रासो, पृ० २३ ।

कति—सखा स्त्री० [सं० कान्ति] दे० 'कांति' । उ०—तप्यो हेम ज्यों देह की कति सोहे । सुजोती रवी कोटि दिव्यंत मोहै ।—पृ० रा०, २ । १६० ।

कंदन—सखा पुं० [सं० कन्दन] १, रोना । विलाप । २, युद्ध के समय वीरो का आह्वान । ३, गर्जन । उ०—प्यारी अक दूरि रही ऐसैं, जैसे केहरि कंदन सुनि मृगछौनी ।—नंद० ग्र०, पृ० ३७३ । ४, मार्जार । विडाल ।

कदित—वि० [सं० कन्दित] १, ललकारा हुआ । आह्वान किया हुआ । २, रुदित । रोया हुआ [को०] ।

कंदित—सखा पुं० १, रोदन । विलाप । २, ललकार । चुनौती [को०] ।

ककच—सखा पुं० [सं०] १, ज्योतिष में एक योग जो उस समय पड़ता है जब चार और तिथि की सख्या का जोड़ १३ होता है ।

विशेष—इसकी गणना के लिये रविवार को पड़ला, सोमवार को दूसरा, मंगल की तीसरा और इसी प्रकार शनिवार को सातवाँ दिन मानते और उसी दिन की सख्या की तिथि की सख्या में जोड़ते हैं । जैसे, यदि शुक्रवार को सप्तमी, बुधस्पति को अष्टमी बुध को नवमी या रवि को द्वादशी हो, तो ककच योग होगा है । इस योग में कोई शुभ कार्य करना वर्जित है ।

२, करीब का पेड़ । ३, आरा । करवत । ४, एक प्रकार का वाजा । ५, एक नरक का नाम । ६, गणित में एक प्रकार की क्रिया जिसके अनुसार लकड़ी के तख्ते चीरने की मजदूरी स्थिर की जाती है ।

यो०—ककचच्छद = केतक वृक्ष । ककचपत्र = सागौन वृक्ष । ककचपृष्ठी = फवई नाम की मछली ।

ककचपाद—सखा पुं० [सं०] १, गिरगिट । २, छिपकली [को०] ।

ककचव्यवहारा—सखा पुं० [सं०] लकड़ियों के ढेर को घिनने का एक प्रकार [को०] ।

ककचा—सखा पुं० [सं०] केतकी ।

ककर—सखा पुं० [सं०] १, करील का पेड़ । २, किलकिला नाम की चिड़िया । ३, केकडा । ४, आरा । करवत । ५, दरिद्र । ६, रोग [को०] ।

ककरट—सखा पुं० [सं०] भरत नामक पक्षी [को०] ।

ककुच्छंद—सखा पुं० [सं० ककुच्छन्द] भद्रकल्प के पाँच बुद्धों में से पहले बुद्ध ।

ककस—सखा पुं० [सं० कर्कश] कशेर । बृद्ध । उ०—सुनि साहाय वजीर बोलि बल की अप्पानाँ । ककस करतें पर कमान तानी लागि कानाँ ।—पृ० रा०, १२ । १४८ ।

कतत—सखा पुं० [सं० कृतान्त] कृतांत । काल । उ०—दुर्व कि हाक हुक्कय, तवै कतत तनिकय ।—रा० रू०, पृ० ८४ ।

कत—सखा पुं० [सं० कृत] किया हुआ कार्य । कीर्ति । उ०—जग में वश उग्र गुण जोई । कत रवि वंश समी नह कोई ।—रा० रू०, पृ० ८ ।

कतक—सखा पुं० [सं०] वासुदेव के पुत्र का नाम ।

कनयुग—सखा पुं० [सं० कृतयुग] सत्य युग । प्रथम युग । उ०—यज्ञ ऋतयुग से भी पहले चलते थे ।—प्रा० भा० पृ०, पृ० ३०० ।

कतु—सखा पुं० [सं०] १, निश्चय । सकल्प । इच्छा । अभिलाषा । ३, विवेक । प्रज्ञा । ४, इन्द्रिय । ५, जीव । ६, विष्णु । ७, यज्ञ विशेषतः अश्वमेध ।

यो०—कतुपति = विष्णु । कतुपशु = घोड़ा । कतुफन = यज्ञ का फल, स्वर्ग आदि ।

८, आपाद (प्राय यज्ञ इसी महीने में होते हैं) । ९, ब्रह्मा के एक मानस पुत्र ।

विशेष—ये सप्त ऋषियों में से एक हैं । इनकी उत्पत्ति ब्रह्मा के हाथ से हुई थी । इनका विवाह कर्दम प्रजापति की कन्या क्रिया के साथ हुआ था, जिसके गर्भ से साठ हजार बालखिल्य ऋषि उत्पन्न हुए थे ।

१०, विश्वदेवा में से एक । ११, कृष्ण के एक पुत्र का नाम ।

१२, प्लक्षद्वीप की एक नदी का नाम ।

कतुद्रुह—सखा पुं० [सं०] असुर । दैत्य [को०] ।

कतुध्वसी—सखा पुं० [सं०] दक्ष प्रजापति का यज्ञ नष्ट करनेवाला, शिव ।

कतुपति—सखा पुं० [सं०] १, यज्ञ करनेवाला व्यक्ति । २, शिव [को०] ।

कतुपशु—सखा पुं० [सं०] घोड़ा । अश्व ।

कतुपुरुष—सखा पुं० [सं०] दे० 'यज्ञपुरुष' ।

कतुफल—सखा पुं० [सं०] यज्ञ का उद्देश्य या लक्ष्य [को०] ।

कतुमुक्—सखा पुं० [सं० कतुभुज] वह पदार्थ जो यज्ञ में देवताओं को अर्पण किया जाता है ।

कतुभुज—सखा पुं० [सं०] देवता । सुर ।

कतुयष्टि—सखा स्त्री० [सं०] एक पक्षी ।

कतुराज—सखा पुं० [सं०] १, राजसूय यज्ञ । २, अश्वमेध यज्ञ [को०] ।

कतुविक्रयी—सखा पुं० [सं०] धन लेकर यज्ञ का फल बेचनेवाला ।

कतुस्थला—सखा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा जिसका नाम यजुर्वेद में आया है । पुराणानुसार यह चंद्र में सूर्य के रंग पर रहती है ।

कतुत्तम—सखा पुं० [सं०] राजसूय यज्ञ [को०] ।

कृत्यर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञों अर्थवाद और विधान जो पुरुषार्थ की भाँति कर्ता की इच्छा के अनुसार नहीं, बल्कि शास्त्र के नियम से अनुकूल होता है। जैसे—पौर्णमास आदि यज्ञों में फन की लिप्ता या अपनी इच्छा से प्रवृत्ति होती है और इस यज्ञ या उसकी फनविधि को पुरुषार्थ कहते हैं। पर उसमें प्रवृत्त होने पर वरत्पपाकरण, गोदोहन और उष्वास आदि यज्ञ के अंग प्रथम संबंधी कर्मों को शास्त्र की विधि और अर्थवाद के अनुकूल ही करना पड़ता है। इसी विधि और अर्थवाद को कृत्यर्थ कहते हैं। संज्ञा पुं० यज्ञ जिस निमित्त किया जाय, वह फनविधि है, और यज्ञ का एक एक अंग, जिस प्रयोजन से किया जाय, वह अर्थवाद है।

कथ—संज्ञा पुं० [सं०] १ विद्वान् नामक राजा का एक पुत्र और कौशिक का भाई। २ कंद का एक गण। ३ एक असुर का नाम।

कथकौशिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्रप और कौशिक का वंश। २. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

कथन—संज्ञा पुं० [सं०] १ देवयोनि। २. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। ३ वध। हत्या। ४. काटना (को०)।

कथनक—संज्ञा पुं० [सं०] १ सफेद श्वेत। २ ऊँट।

कहम—संज्ञा पुं० [सं० कर्म] दे० 'कर्म'।

कर्म०—संज्ञा पुं० [सं० कर्म] कान। उ०—करपि मुट्ठि कम्मन तानि क्रम वान लनकिय।—पृ० रा० १।६३६।

कर्म०—संज्ञा पुं० [सं० कर्म] करण। कर। रश्मि। उ०—नाछिन्न छिपिग ससि क्रम प्रताप। उज्ज्वास आप घन मार चाप।—पृ० रा०, २।३६५।

कर्म०—संज्ञा पुं० [सं० कर्म, प्रा० कर्म] दे० 'कर्म'। उ०—कहे व्यास समरी कर्म इह उता प्रमान। कि जानै कि होइघरी इक घट्टन जान।—पृ० रा०, १।७०२।

कर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १ दयालु। २ कृपाचार्य।

कर्मण०—संज्ञा पुं० [सं० कर्मण] कर्मण। कंजूस। उ०—मैंसे घोर दोर बोलि, जिए सूर दोर रोके। कातर कर्मण प्राण आतुर हूँ छोले।—रा० ल०, पृ० ११७।

कर्मण०—संज्ञा स्त्री० [सं० कृपा] दे० 'कृपा'।

कर्मणी०—संज्ञा स्त्री० [सं० कृपाणी] दे० 'कृपाणी'। उ०—सुनी कान वानी कर्मणी गहाए।—पृ० रा०, पृ० ४४।

कर्मनी०—संज्ञा स्त्री० [सं० कृपाणी] दे० कृपाणी। (छोटी) तलवार। २ कर्मरनी। कर्मो। कल्पनी। उ०—तुही मध्य वारानसी मोक्ष देनी। कली काल दुर्ग कटन कर्मनी।—पृ० रा०, १।१६७।

कर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. पंर रखने की क्रिया। डग भरने की क्रिया। २ वस्तुओं या कार्यों के परस्पर आगे पीछे आदि होने का नियम। पूर्वपर संबंधी व्यवस्था। शैली। प्रणाली। तरतीब। सिलसिला। जैसे—(क) इन पौधों को किस क्रम में लगाओगे? (ख) इन जवों का क्रम ठीक नहीं है।

२-७०

मुहा०—क्रम से = क्रमानुसार।

क्रि० प्र०—रखना।—नगाना।

३ किसी कार्य के एक अंग को पूरा करने के उपरांत दूसरे अंग को पूरा करने का नियम। कार्य को उचित रूप से घीरे घीरे करने की प्रणाली।

क्रि० प्र०—बाँधना।

मुहा०—क्रम क्रम करके = घीरे घीरे। शनं शनं। उ०—जो कोउ दूर चलन को करे। क्रम क्रम करि डग डग पग धरे।—सूर (शब्द०) क्रम से, क्रम क्रम से = घीरे घीरे।

४. वेदपाठ की प्रणाली जो दो प्रकार की है—प्रकृति रूप। और विकृत रूप। प्रकृति रूप के दो भेद हैं—लड़ और योग। जैसे—'अग्निमीलपुरोहितम्' इस प्रकार का पाठ लड़ और अग्निम् ईळ पुरोहितम् इस प्रकार का पाठ योग कहलाया। विकृत रूप के आठ भेद हैं—जटा, माना, शिव, लेखा, छत्र, दंड, रय और घन। उ०—पढ़न लग्यो गेसा तब वेदा। पद-क्रम जटा क्रमहु विन खेदा।—रघुराज (शब्द०)।

५. किसी कृत्य के पीछे कौन सा कृत्य करना चाहिए इसकी व्यवस्था। वैदिक विधान। कला। ६. आक्रमण। ७. वामन का एक नाम जिन्होंने पृथ्वी को तीन डगों में नापा था। ८. वह काव्यालंकार जिसमें प्रयुक्त वस्तुओं का वर्णन क्रम से किया जाय। इसे संध्यालंकार भी कहते हैं। जैसे—नूतन घन हिम कनक कातिधर। खगपति वृष मराल वाहन वर। सरितपति गिरि सरसिज आनय। हरिहर विधि जसवैठ प्रति पालय।

क्रमक^१—वि० [सं०] १ व्यवस्थित। क्रमवद्ध। २ आगे जानेवाला। अप्रगामी। (को०)।

क्रमक^२—संज्ञा पुं० १ क्रमानुसार नियमित अध्ययन करनेवाला छात्र। २ वेदमंत्रों के क्रमपाठ की पद्धति को जाननेवाला (को०)।

क्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] १. पैर। पाँव। २. पारे के अठारह सस्कारों में से एक। ३. घोड़ा। अश्व (को०)। ४. उल्लघन (को०)। ५. पग रखना। कदम रखना (को०)।

क्रमत—क्रि० वि० [सं० क्रमतत्] दे० 'क्रमशः' (को०)।

क्रमदंडक—संज्ञा पुं० [सं० क्रमदण्डक] वेदों के पाठ का एक प्रकार।

क्रमनी०—क्रि० वि० [सं० क्रमनी] कर्म से। क्रिया द्वारा। व्यवहारतः। उ०—भगति भजन हरि नाँव है, दूरा दुख भगार। मनसा वाचा क्रमनी कवीर मुमिरण सार।—करीर ग्रं०, पृ० ५।

क्रमनासा०—संज्ञा स्त्री० [सं० क्रमनासा] दे० 'क्रमनासा'।

क्रमपद—संज्ञा पुं० [सं०] वेदों के पाठ का एक प्रकार।

क्रमपाठ—संज्ञा पुं० [सं०] वेदों के पाठ का एक प्रकार जिसमें सहिता और पाद दोनों को मिलाकर पाठ करते हैं।

क्रमपूरक—संज्ञा पुं० [सं०] वक्रुच वृक्ष। मोलसिरी का पेड़।

क्रमवद्ध—वि० [सं०] क्रमानुसार व्यवस्थित। क्रमयुक्त (को०)।

क्रमभंग—संज्ञा पुं० [सं० क्रमभङ्ग] क्रम या चिन्तित्वा टूट जाना (को०)।

कौशिकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चडिका । २. राजा कुशिक की पत्नी और श्रुचिक मुनि की स्त्री, जो अपने पति के साथ सदेह स्वर्ग गई थी । ३. कोसी नाम की नदी ।
विशेष—दे० 'कोसी' ।

४ एक रागिनी । हनुमत् के मत से यह मालकौश राग की आठ भार्याओं में से एक है । कोई कोई इसे पुरिया या भजयपाल आदि के संयोग से उत्पन्न सत्तर रागिनी भी मानते हैं ।
५. काव्य में चार प्रकार की वृत्तियों में से पहली वृत्ति । जहाँ कण्ठ, हास्य और शृंगार रस का वर्णन हो और सरल वर्ण आते उसे कौशिकी वृत्ति कहते हैं । दे० 'कौशिकी' ।
कौशिकी कान्हडा—संज्ञा पुं० [हिं० कौशिकी + कान्हडा] एक सत्तर राग जो कौशिकी और कान्हडे के योग से बचता है । इसमें सब स्वर कोमल लगते हैं ।

कौशिल्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रप्रवर्तक ऋषि ।
कौशिल्या—संज्ञा स्त्री० [सं० कौशल्या] दे० 'कौशल्या' । उ०—कौशिल्या तप कर्म जो करिया । कारण कर्म राम श्रोतरिया ।—कवीर सा० पृ० ९६० ।

कौशीतकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कौपीतकी' ।
कौशीधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रजाज जो कोश में उत्पन्न होते हैं । जैसे तिल आदि ।

कौशीभैरव—संज्ञा पुं० [सं०] दिन के पहले पहर में गाया जानेवाला एक राग [को०] ।

कौशील—संज्ञा पुं० [सं०] सूत्रधार । नट ।
कौशीलव—संज्ञा पुं० [सं०] नट या अभिनेता का कार्य [को०] ।
कौशेय^१—वि० [सं०] रेशमी । रेशम का । उ०—सिकुङ्गन कौशेय वसन को यो विश्वसुदरी तन पर या मादन मृदुतम कपन छाया सपूर्ण सृजन पर ।—कामायनी, पृ० २६३ ।

कौशेय^२—संज्ञा पुं० १ रेशमी वस्त्र । २ रेशम ।
कौशमाडी—संज्ञा स्त्री० [सं० कौशमाणी] यैदों की ३४ पवित्र करने-वाली श्रुचाओं से से एक ।

कौशाख—संज्ञा पुं० [सं०] कुपारु मुनि के पुत्र मंत्रेय ।
कौषिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कौशिकी' ।
कौषिकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक देवी ।

विशेष—इनकी उत्पत्ति काली के शरीर से हुई थी । इनके दस हाथ हैं और इनका वाहन सिंह है । इनकी आठ सखियाँ हैं जो सदा इनके साथ रहती हैं ।

२. दे० 'कौशिकी' ।

कौपीतक—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुपीतक ऋषि के पुत्र और ऋग्वेद की एक शाखा के प्रवर्तक । २. ऋग्वेद के अतर्गत एक ब्राह्मण ।
कौपीतकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अगस्त्य मुनि की पत्नी का नाम । २. ऋग्वेद की शाखा । ३. ऋग्वेद के अतर्गत एक ब्राह्मण या उपनिषद् ।

कौशीधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कौशीधान्य' [को०] ।
कौशेय^१—वि० [सं०] रेशम से सबंध रखनेवाला । रेशम का । रेशमी ।
कौशेय^२—संज्ञा पुं० रेशम का बना हुआ वस्त्र । रेशमी कपड़ा ।
कौशेयक—संज्ञा पुं० [सं०] वे कर या दंडस जो खजाने तथा वस्तु

भंडार को पूर्ण करने के लिये जनता से समय समय पर लिए जायें ।

कोसर—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग का एक कुंड या हीज । उ०—हर एक कतरा उसका है गोहर मिसाल । के गोहर तो क्या बल्के कोसर मिसाल ।—दक्खिनी०, पृ० २१४ ।

कोसल(१) संज्ञा पुं० [सं० कोशल] दे० 'कोशल' ।
कोसल्या(१) संज्ञा स्त्री० [सं० कोशल्या] दे० 'कोशल्या' ।
यो०—कौमल्यानदन = राम ।

कोसिक(१) संज्ञा पुं० [सं० कौशिक] दे० 'कौशिक' ।
कोसिया—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का सत्तर राग (मगीत) ।
कोसिला(१) संज्ञा स्त्री० [सं० कोशल्या] दे० 'कोशल्या' । उ०—कद्रु विनतहि देन्ह दुध तुहहि कोसिला देव ।—मानस, २।१९ ।
कोसीद—वि० [सं०] सूदघोर । व्याज लेनेवाला [को०] ।

कोसीय—संज्ञा पुं० [सं०] सूदघोरी । व्याज लेने की वृत्ति । २. आलस्य । धर्मभंग्यता । [को०] ।

कोसीस(१) संज्ञा पुं० [सं० कपिशोर्ष] कमूर । गुंभद । उ०—(क) सोवारी रहटघाट कोसीय मकार पुरविन्यास कया कद्रुघो का—कीर्ति०, पृ० १८ । (घ) कवन कोट जरे कोसीसा ।—पदमावत, पृ० ४०।६ ।

कोसु^१ भ^१—वि० [सं० कोसुम्भ] कुसुंभ पुष्प का । कुसुंभरजित । कुसुंभयुक्त [को०] ।

कोसु भ^२—संज्ञा पुं० १ जगती कुसुंभ । वनकुसुंभ । २. एक प्रकार का साग जो बहुत कोमल होता है ।

कोसुम^१—वि० [सं०] १ कुसुंभ निमित्त । पुष्प संबंधी [को०] ।
कोसुम^२—संज्ञा पुं० १. पराग २ पीतल या जस्ते के भस्म से निर्मित एक अंजन । पुष्पांजन । कुसुमांजन [को०] ।

कोसुसविद—संज्ञा पुं० [सं० कोसुसविन्व] एक प्रकार का यज्ञ जो दस रातों में होता है ।

कोसूतिक(१) संज्ञा पुं० [सं०] १. याजीगर । जादूगर । ठग । छली । वदमाश । [को०] ।

कोसेय, कोसेव(१) संज्ञा पुं० [सं० कौशेय] रेशमी वस्त्र । कौशेय, उ०—स्थी निकेत समस्याम पीत कोसेव देय दुति । धूमकेत बर जलद काम उदित सु कोट रति ।—पृ० रा, २।४१ ।

कोस्तुभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुराणानुसार एक रत्न जो समुद्र मंथन के समय निकला था और जिसे विष्णु अपने वक्षस्थल पर पहने रहते हैं । २. तंत्रके अनुसार एक प्रकार की मुद्रा । ३. घोड़े की गर्दन के बाल [को०] ४ एक प्रकार का तेल [को०] ।

कोह—संज्ञा पुं० [सं० ककुभ, प्रा० कउह] मजुन वृक्ष ।

कोहरी—संज्ञा पुं० [देश०] इंद्रायन ।

कोहा—संज्ञा पुं० [देश०] या हिं० कोवा] वह लकड़ी जो बड़े-से बड़े के लिये लगाई जाती है । बड़वा । कोवा ।

क्या^१—सर्व० [सं० किम्] एक प्रश्नवाचक शब्द जो उपस्थित या अभिप्रेत वस्तु की जिज्ञासा करता है । उस वस्तु को सूचित करने का शब्द, जिसे पूछना रहता है । कौन वस्तु ? कौन

बात ? जैसे,—(क) तुम्हारे हाथ में क्या है ? (ख) तुम क्या करते आए थे ?

मुद्दा—क्या उलझना = कुछ न कर सकना । कुछ हानि न पहुँचा सकना ।—(वाजाल) । क्या कहना है ? = (१) प्रशंसा सूचक) धन्य । साधु साधु । शांति । वाह वा । बहुत अच्छा है । बहुत बढ़िया है । (२) (व्यंग्य) प्रशंसा के योग्य नहीं है । बहुत बुरा है । बहुत अनुचित है । बिलकुल ठीक नहीं है । जैसे,—यहला व्यक्ति—वह बहुत अच्छा निखता है । दूसरा व्यक्ति—क्या कहना है । क्या खूब = दे० 'क्या कहना है' । क्या क्या = सब कुछ । बहुत कुछ । क्या कुछ क्या क्या कुछ = सब कुछ । बहुत कुछ । बहुत सी वस्तुएँ । बहुत सी बातें । जैसे—(क) उसने क्या क्या कुछ नहीं दिया ? (ख) तुमने क्या क्या कुछ नहीं कहा डाला । क्या यह और क्या वह = (१) जसा यह, वसा वह । दोनों बराबर हैं । जैसे,—(क) उसके लिये क्या अंधेरा और क्या उजाला । (ख) उसका क्या रहना और क्या न रहना । (२) जब इसी को हम कुछ नहीं समझते, तब उसको क्या समझते हैं । दोनों तुच्छ हैं । जैसे,—क्या भेड़, क्या भेड़ की लात । यह क्या करते हो ? = (आश्चर्य और खेदसूचक) यह ठीक नहीं करते । यह बुरा करते हो । यह बिलक्षण कर्म क ते हो । यह क्या किया ? = दे० 'यह क्या करते हो ?' (किसी की) क्या चलाते हो = क्या प्रसंग लाते हो ? क्या चर्चा करते हो ? बात ही कुछ और है । दशा ही भिन्न है । बराबरी नहीं कर सकते । जैसे,—उनकी क्या चलाते हो ? वे अभीर हैं चाहे दस घोड़े रखें । क्या चीज है ? = नाचीज है । तुच्छ है । (किसी की) क्या चलाई = दे० 'क्या चलाते हो ।' क्या जाता है ? = क्या नुकसान होता है ? कौन सा हर्ज होता है ? कुछ हानि नहीं । जैसे,—जरा कह देना, तुम्हारा क्या जाता है ? क्या जाने = कुछ नहीं जानते । शायत नहीं । मालूम नहीं । जैसे,—क्या जाने वह कहाँ गया है ? क्या जाती दुनिया देखी ? = क्या कारण हुआ (जो स्वभावविरोध कार्य किया ?) । क्या नाम । = नाम स्मरण नहीं आता ।—(जब बातचीत करते समय कोई बात याद नहीं आती, तब इस वाक्य को बीच में बोलकर रुक जाते हैं । जैसे—तुम्हारे साथ उस दिन वही—क्या नाम ?—मयुराप्रसाद थे न ? । क्या पड़ना = क्या आवश्यकता होना । कुछ जरूरत न होना । कुछ गरज न होना । जैसे,—हमें क्या पड़ी है जो हम पूछने जाय ? क्या पूछना है ? = दे० 'क्या कहना है' । क्या हुआ ? = क्या हर्ज है । कुछ हर्ज नहीं है । कुछ परवा नहीं है । क्या बात क्या बात है । = दे० 'क्या कहना है' । क्या से क्या हो गया = बिलकुल बदल गया । और ही दशा हो गई । क्या समझने या गिनते हैं ? = कुछ नहीं समझते । तुच्छ समझते हैं । तो फिर क्या है । = तो और किसी बात की आवश्यकता नहीं । तो सय पूरा है । तो सब ठीक है । तो बड़ी अच्छी बात है । जैसे—वे आ जायें, तो फिर क्या बात है ।

विशेष—यद्यपि यह शब्द सर्वनाम है, तथापि इसमें विवक्ति नहीं लगती । इसी से वस्तु की जिज्ञासा के लिये दो सर्वनाम हैं—

'कौन' और 'क्या' । 'कौन' में विभक्ति लग सकती है, 'क्या' में नहीं । 'क्या' के आगे संज्ञा आने से वह विशेषणवत् हो जाता है । जैसे,—क्या वस्तु ? इस शब्द के आगे अधिकतर वस्तु, पदार्थ, चीज आदि सामान्य शब्द विशेष्य रूप से आते हैं, विशेष जाति या व्यक्तिबोधक नहीं ।

क्या—वि० १. किन्ना ? किस कदर ? जैसे,—इस काम में तुम्हारा क्या खर्च पड़ा ? २. बहुत अधिक । बहुतायत से । इतना अधिक ऐसा । जैसे,—(क) क्या पानी बरसा कि सब तराबोर हो गए । (ख) क्या भीड़ थी कि तिल रखने को जगह न थी । ३. कैसा । किस प्रकार का । बिलक्षण ढंग का । अपूर्व । विचित्र । जैसे,—(क) वह भी क्या आदमी है । (ख) क्या क्या लोग हैं । ४. बहुत अच्छा । बहुत उत्तम । कैसा उत्तम । जैसे,—बाबू साहब भी क्या आदमी हैं कि जो मिलता है, प्रसन्न हो जाता है ।

क्या—क्रि० वि० १. क्यों ? किसलिये ? किस कारण ? जैसे,—(क) तुम मुझसे क्या कहते हो । मैं कुछ नहीं कर सकता । (ख) अब हम वहाँ क्या जायें ।

मुद्दा—ऐसा क्या = ऐसा क्यों ? इसकी क्या आवश्यकता है ? क्या आए, क्या चले ? = बहुत जल्दी जा रहे दो । अभी थोड़ा और बैठो । (जब कोई किसी के यहाँ आता है और जल्दी जाना चाहता है, तब उसके प्रति यह कहा जाता है) । २. नहीं । जैसे,—जब उसमें दम ही नहीं तो क्या चलेगा ।

क्या—अव्य० केवल प्रश्नसूचक शब्द । जैसे,—क्या वह चला गया ? मुद्दा—क्या आग, मे डालूँ = इस वस्तु को लेकर क्या करूँ ? यह मेरे किस काम का है ।—(स्त्रियाँ बिभ्रलाकर ऐसा बोल देती हैं) ।

क्यार^१—संज्ञा पुं० [सं० केदार] घालवाल । थाला । थाँवला । उ०—(क) भूगति भूमि किय क्यार, वेद निचिय जल पूरन ।—पृ०, रा०, १ । ४ । (ख) सब विधि भरत मनोरथ क्यार । ब्रज पावस नित दरसत प्यार ।—घनानंद, पृ० १८८ ।

क्यार^२—प्रत्य० [अव०] अवध की सबध कारक की विभक्ति । का । क्यारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कियारी] दे० 'कियारी' ।

क्यों—क्रि० वि० [सं० किम] १. किसी व्यापार या घटना के कारण की जिज्ञासा करने का शब्द । किस कारण ? किस निमित्त ? किसलिये ? किस बास्ते ? जैसे,—तुम वहाँ क्यों जा रहे हो ? यो०—क्योंकि = इसलिये कि । इस कारण कि । जैसे,—अब यहाँ से जाओ, क्योंकि वह छाता होगा ।

मुद्दा—क्योंकर = किस प्रकार ? कैसे ? जैसे,—मैं यहाँ क्योंकर रह सकता हूँ ? उ०—हम क्यों कर उसको बुरा कहें ।—प्रेम-घन०, भा० २, पृ० ३३ । क्यों नहीं । = (१) ऐसा ही है । ठीक कहते हो । नि सदेह । वेशक ।—(किसी बात के समर्थन में) । (२) हाँ । जरूर ।—(स्वीकार में) । जैसे,—प्रश्न—तुम वहाँ जाओगे ? उत्तर क्यों नहीं । (३) ऐसा नहीं है । ठीक नहीं करते हो ।—(व्यंग्य) । (४) कभी नहीं । मैं ऐसा नहीं कर सकता ।—(व्यंग्य) । क्यों न हों = (१) तुम ऐसे महानुभाव से ऐसा उत्तम कार्य क्यों न हो ? वाह बा ! क्या

कोलाचार—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कोलाचारी] कोल संप्रदाय का आचार । वाममार्ग [को०] ।

कोलालक^१—संज्ञा पुं० [सं०] मिट्टी का पात्र [को०] ।

कोलालक^२—वि० कुम्हार का बनाया । कुम्हार संबंधी [को०] ।

कोलिक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ जुलाहा । २ पाखंडी या डोगी आदमी । ३ कोल संप्रदाय में दीक्षित व्यक्ति । वाममार्गी । शक्ति का उपासक । उ०—तू है बकरा मैं हूँ कोलिक ।—कुरुर०, पृ० ५ ।

कोलिक^२—वि० कुल से संबंधित । परंपरा से चला आता हुआ ।

कोलिया—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा वृक्ष जो बराबर में होता है ।

कोलीन^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ कोल मत को माननेवाला । २ मिथारिन का पुत्र । ३ पशुधो (हाथी, भेड़ा, भैंसा आदि) का दूध युद्ध । ४ तीवरी, मुरगो की लड़ाई । ५. युद्ध । संग्राम । ६ कुलीनता । ७ कनक । अणुवाद । तोहमत । ८ जननेद्रिय । गुप्तांग [को०] ।

कोलीन^२—वि० १ ऊँचे खानदान का । खानदानी । कुलीन । २ वंशपरंपरागत [को०] ।

कोलीन्य—संज्ञा पुं० [सं०] कुलीनता । खानदानीपन [को०] ।

कोलीय—संज्ञा पुं० [सं०] सत्रियों की एक प्राचीन जाति जिसका उल्लेख बौद्ध शास्त्रों में आया है ।

कोलेज—संज्ञा पुं० [अ० कालेज] दे० 'कालिज' ।

कोलेणा^१—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'कमल' । उ०—रहे निमाणा समको रेणा । रहे अलेप ज्यो जल कोलेणा ।—प्राण०, पृ० १०८ ।

कोलेय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मोती जो सिंदूर के मयूर ग्राम की समीपवर्ती नदी में मिलता था [को०] ।

कोलेयक^१—संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता । श्वान । कुक्कुर । उ०—शावर भाव्य के विर्यगधिकरण में चर्चा है कि कुछ कोलेयक (कुत्ते) प्रतिमास की कृष्ण प्रतिपदा चतुर्दशी को उपवास करते हैं ।—संपूर्ण० ग्रं०, पृ० २४८ ।

कोलेयक^२—वि० कुलीन । उच्च कुलवाला । अच्छे वंश में उत्पन्न [को०] ।

कोलो—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कोलव' ।

कोलों^१—क्रि० वि० [हि० कव + लो] कवतक । किस अवधि तक । उ०—अब तो दया हि कीजे छिन दिन में तन जो छोले । बिन बोने कौलों रीजे दरसब हु एहि दीजे ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ४३ ।

कोल्य—वि० [सं०] १ कोल मतवाली । २. ऊँचे कुल का । कुलीन [को०] ।

कोवल—संज्ञा पुं० [सं०] बेर का फल । बबरीफल [को०] ।

कोवा—संज्ञा पुं० [सं० काक, प्रा० कापो] [स्त्री० कीवी (क्व०)] १ एक प्रसिद्ध पक्षी जो सत्तार के प्राय सभी भागों में पाया जाता है । काक । काग ।

विशेष—इसकी कई जातियाँ होती हैं, पर भारत में प्राय दो ही प्रकार के कोवे पाए जाते हैं । साधारण कोवा आकार में डेढ़ वातिष्ठ होता है । इसकी चोंच लंबी और कड़ी होती है और पर मजबूत होते हैं । इसका घड़ या गगला भाग खाकी और पीछे का भाग काला होता है । इसकी नाक ठीक मध्य में नहीं

होती, कुछ किनारे हटकर होती है । यह प्राय बूझो की टहनिष्ठों पर घोंसला बनाता है । यह बीसाख से मादो तक अंडा देता है, जिनकी संख्या ४ से ६ तक होती है । कहते हैं, यह अपने जीवन में केवल एक बार अंडे देता है । अंडे का रंग हरा होता है और उसार काने दाग होते हैं । कोयल भी अपने अंडे इसी के घोंसले में रख जाती है, पर जब उसमें से बच्चा निकलता है, तब यह उसे अपने घोंसले से निकाल देता है । दूसरे प्रकार का कोवा आकार में बड़ा और प्राय एक हाथ लंबा होता है । इसका सर्वांग बिल्कुल बाला होता है । इस जाति के कोवे आपस में बहुत लड़ते और प्राय एक दूसरे को मार डालते हैं । यह पूस से फागुन तक अंडे देता है । इसे ब्रोम कोवा कहते हैं । शेष सब बातों में यह प्राय साधारण कोवे से मिलता जुलता होता है । दोनों प्रकार के कोवे बहुत धूर्त होते हैं और प्राय किसी ऐसे स्थान पर जहाँ जरा भी भय की आशंका हो, नहीं जाते । पर शहरी और गाँवों में रहनेवाले कोवे बहुत डीठ होते हैं । साधारण कोवे जबतक अंडे देने की आवश्यकता न हो, घोंसला नहीं बनाते । कोवे दिन के समय भोजन आदि के लिये अपने रहने के स्थान से १०-१२ कोस दूर तक निकल जाते हैं । यह प्राय सभी खाद्य और अखाद्य पदार्थ खा जाते हैं । लोग कहते हैं कि इसकी केवल एक ही पुतली होती है जो आवश्यकतानुसार दोनों आँखों में घूमा करती है । यह बहुत जोर से काँव काँव शब्द करता है, जो बड़ा अप्रिय होता है । इसका मांस बहुत निकृष्ट होता है और मनुष्य या पशु पक्षियों के खाने योग्य नहीं होता ।

यो०—कोवा गुहार या कोवारोर = बहुत अधिक बकबक । बहुत जोर जोर से और व्यर्थ बोलना । कागारोल ।

मुहा०—कोवा गुहार में पड़ना या फँसना = हल्ला या शोर में पड़ना । बहुत बोलनेवालों के बीच में फँसना । कोवे उठाना = व्यर्थ या अनावश्यक कार्य करना ।

२ बहुत धूर्त मनुष्य । काइयाँ । ३ वह लकड़ी जो बेंडरी के सहारे के लिये लगाई जाती है । कोहा । बहुवाँ । ४ एक प्रकार का सरकड़े का खिलौना । ५ गले के श्दर तालू के कालर के बीच का लटकता हुआ मांस का टुकड़ा + घाँटी । लगर । ललरी ।

मुहा०—कोवा उठाना = बढ़ी या अधिक लटकी हुई घटी को दबाकर यथाम्यान करना ।

विशेष—फ भी कभी कोवा अधिक लटककर जीभ तक आ पहुँचता है, जिससे कुछ दर्द और खाने पीने में बहुत कष्ट होता है । यह दशा बाल्यावस्था में अधिक और उसके बाद कम होती है ।

६ कनकुटकी नाम का पेड़, जिसकी राल दवा और रंगाई के काम आती है । ७. एक प्रकार की मछली जिसका मुँह बगले के मुँह की तरह होता है । कंकथोट । जलव्यय ।

कीवाठोटी—संज्ञा स्त्री० [सं० काकुटुण्डी] एक प्रकार की लता जिसके फूल सफेद और नीले रंग के तथा आकार में कोवे की नाक के समान होते हैं ।

विशेष—इसमें कलियाँ लगती हैं जिनमें लोदिए के समान बीज होते हैं। बवावीर दूर करने तथा वालों को पकने से रोकने के लिये इसका प्रयोग औषध की भाँति होता है।

पर्याय—काकनासा। वायसी। सुरगी। काकाक्षी। शिरोवाला।

कौशापरी—संज्ञा स्त्री० [हि० कौशा + परी] बहुत कानी और कुल्पा स्त्री।—(व्यय में)।

कौवारी—संज्ञा स्त्री० [दिश०] १ एक प्रकार की चिड़िया। २. कचूर के आकार का एक वृक्ष जिसमें बहुत से लाल फूलों का एक गुच्छा लगता है। इसकी जड़ औषध के काम में आती है। ३. कौवाओं की।

कौवाल—संज्ञा पुं० [अ० कौवाल] मुसलमानों में गर्वियों का एक वर्ग। इस जाति के लोग कौवाली गाते हैं।

कौवाली—संज्ञा स्त्री० [अ० कौवाली] १ एक प्रकार का गाना।

विशेष—पीरो की मजार या सूफियों की मजलिसों में यह गाना होता है। इसके गाने की एक विशेष धुन होती है। इसमें प्रायः धर्म संबंधी या आध्यात्मिक गजलों होती हैं, जिनके कारण कभी कभी सुननेवाले तन्मय हो जाते हैं।

२. इस धुन में गाई जानेवाली कोई गजल। ३. कौवालों का पेरा। ४. सगीत में तिताला बजाने का एक भेद।

विशेष—यह मध्यमान से दूना जल्दी बजाया जाता है। कौवाली की गजलों के सिवा और रागिनियों में भी इसका प्रयोग होता है। इसका तबले का बोल यह है— + ३

धा दिन् दिन् धा, धा

० १ +

दिन् दिन् धा, ना तिन् तिन् ता। ता दिन् दिन् धा। धा। धा।

प्रषवा— + ३ ०

धाधिन् धिन् धा, धिन् धागे धिन् धिन् धा, ना तिन्

१ +

तिन् ता, तागे धिन् धिन् धा। धा

कौविंद—संज्ञा पुं० [सं० कौविन्द] [जी० कौविन्दी] जुलाहा। ततुवाय। बुनकर [को०]।

कौवेर—वि० [सं०] दे० 'कौवेरी' [को०]।

कौवेरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कौवेरी' [को०]।

कोश—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कोशेय] संज्ञा [जी० कोशी] १ कुश द्वीप। २. एक गोश का नाम। ३. कान्यकुब्ज देश का एक नाम। ४. रेशमी कपड़ा।

कोश—वि० १. रेशमी। उ०। स्वर्गिक शोभा स्तंभों से पेशल जघनों पर कँपती होगी कोश जलद छाया ओझल हों।—युगपय, पृ० ११५। २. कुश से बना हुआ [को०]।

कोशल—संज्ञा पुं० [सं०] कुशलता। चतुराई। निपुणता। उ०—हुए टाँकियों के कोशल से उपल सुकोमल उत्पन्न ज्यों।—शांकेर, पृ० ३७४। १. मगल। ३. कोशल देश का निवासी। ४.

मत्स्यपुराण के अनुसार वह कक्ष जिसमें ४६ स्तंभ हो [को०]।

कोशलिक—संज्ञा पुं० [सं०] उत्कोच। रिश्वत। घूस [को०]।

कोशलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उपहार। उपढोकर। भेंट। नजर। २. कुशल छेम। कुशल मगल [को०]।

कौशनी संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कौशनीका' [को०]।

कौशलेय—संज्ञा पुं० [सं०] कौशल्या के पुत्र, रामचंद्र।

कौशल्य—संज्ञा पुं० [म०] दे० 'कौशन' [को०]।

कौशल्य—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कोशल के राजा वत्स के प्रधान स्त्री श्री रामचंद्र की माता। २. पुत्रराज की स्त्री श्री जनमेजय की माता। ३. मत्स्यवान की स्त्री। ४. पुराण की माता। ५. पंचमुखी आरती। पाँच बत्ती की आरती।

कौशल्ययनि—संज्ञा पुं० [सं०] कौशल्य के पुत्र, राम।

कौशाव—संज्ञा पुं० [सं० कौशाम्य] राम के पौत्र और कुश के पुत्र का नाम। इन्होंने कौशावी नगरी बसाई थी [को०]।

कौशावी—संज्ञा स्त्री० [सं० कौशावी] एक बहुत प्राचीन नगर जिसे कुश के पुत्र कौशाम ने बसाया था। इसका दूसरा नाम वत्स-पट्टन है।

विशेष—प्राचीन काल में यह नगर यमुना के तिनारे था, पर अब यमुना वह स्थान छोड़कर दूर चली गई है। बुद्धदेव कुछ दिनों तक इस स्थान पर रहे थे। यहाँ एक मंदिर में उनकी चंदन की एक बहुत बड़ी मूर्ति है, इसलिए यह स्थान बुद्धों का एक तीर्थ हो गया है। प्रयाग से पंद्रह कोस पश्चिम की ओर यह स्थान है, और अब भी यहाँ कोशम नामक एक छोटा गाँव और बहुत से पुराने खड्डर हैं।

कौशिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ इंद्र। २. कुशिक राजा के पुत्र गाधि, जो इंद्र के अश से उत्पन्न हुए थे। ३. विश्वामित्र (कुशिक राजा के वंशज) ४. जरासंध के एक सेनापति का नाम। ५. कोशाध्यक्ष। ६. कौशिकार। ७. उल्लू। ८. नेवला। ९. एक प्रकार का शालवृक्ष। अरनकन। १०. रेशमी कपड़ा। ११. शृंगार रस। १२. मज्जा। १३. एक उपपुराण। १४. हनुमत के मत से छह रागों में से एक। कुकुमा, चंभावती, गुणकिरी, गौरी और टोड़ी रागिनियाँ इसकी पत्नी हैं।—(संगीत)। १५. अथर्ववेद का एक सूक्त।

विशेष—इससे देव, पितृ तथा पाकयज्ञ, मंत्रों के गण, युद्ध तथा राजनीति, वज्र तथा दृष्टिनिर्धारण के मंत्र, विवाह की विधि, वेदारंभ और वेदाध्ययन की विधि आदि विषयों का वर्णन है।

१६. गुगुल। गुग्गुल (को०)। १७. संपेरा (को०)। १८. शिर का एक नाम (को०)। १९. वह जो छिपे खजाने को जानता है (को०)।

कौशिक—वि० १. कोश या स्थान में रखा हुआ। २. रेशम का। रेशमी [को०]।

कौशिकप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] रामचंद्र [को०]।

कौशिकफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. नारियल का फल। २. नारियल का फल [को०]।

कौशिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जल आदि पाने का बरतन। कटोरा। गिलास। २. गुग्गुल।

कौशिकारम्भ—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र का पुत्र प्रजुन [को०]।

कौशिकामुच—संज्ञा पुं० [सं०] १. वज्र। २. इंद्रधनुष [को०]।

कौशिकाराति, कौशिकारि—संज्ञा पुं० [सं०] कौशा। कान [को०]।

कौबेरी—सङ्घा खी० [सं०] १ उत्तर दिशा जिसके अधिपति कुबेर हैं।
२ कुबेर की शक्ति [को०]।

कौम—सङ्घा खी० [ग्र० कौम] १ वर्ण० जाति। नस्ल। उ०—पाजी
हूँ मैं कौम का वदर मेरा नाम।—भारते दु प्र०, भा० २,
पृ० ७८६। २ सत्तनत। राष्ट्र (को०)।

कौमकुम—सङ्घा पुं० [मं०] १ एक केतु तारा जिसकी तीन शिखाएँ
हैं और जो मंगल का साठवाँ पुत्र माना जाता है। २. रक्त।
खून। लहू।

कौमार—सङ्घा पुं० [सं०] [खी० कौमारी] १ कुमार अवस्था। जन्म
से पाँच वर्ष तक की अवस्था।

विशेष—उत्र के एक मत से सोलह वर्ष तक की अवस्था को
कौमार कहते हैं।

२ एक प्रकार की सृष्टि जिसकी रचना सनत्कुमार ने की थी।
३ कुमार। ४ एक पर्वत का नाम (को०)। ५ कुमारी का
पुत्र। कौमारिकेय (को०)।

कौमारक—सङ्घा पुं० [सं०] १ लङ्कपन। वचपन। कुमार अवस्था।
२ एक राग [को०]।

कौमारचारी—वि० [सं० कौमारचारिन्] ब्रह्मचारी। कुमारव्रती [को०]।
कौमारबध्नी—सङ्घा खी० [सं० कौमारवध्नी] वेश्या। वार-
वनिता [को०]।

कौमारभृत्य—सङ्घा पुं० [सं०] धानको के लालन पालन और चिकित्सा
आदि की विद्या। यह आयुर्वेद का एक अंग है। धात्रीविद्या।
दाईमीरी।

कौमारव्रत—सङ्घा पुं० [सं०] जीवनभर अविवाहित रहने का व्रत [को०]।

कौमारिक—सङ्घा पुं० [सं०] १ सपूर्ण जाति का एक राग जिसमें
सब शुद्ध स्वर लगते हैं। २ वह पिता जिसे केवल कन्याएँ
ही हों (को०)।

कौमारिक—वि० कुमार सबधी। २ मृदु। कोमल [को०]।

कौमारिकेय—सङ्घा पुं० [सं०] वह पुत्र जो किसी स्त्री को उसकी
कुमारी अवस्था में उत्पन्न हुआ हो। कानीन।

कौमारी—सङ्घा खी० [सं०] १ किसी पुरुष की पहली स्त्री। २ सात
मातृकाओं में से एक। कार्तिकेय की शक्ति। ३ पार्वती का एक
नाम। ४ बाराहीकद। कोलकद।

कौमार्य—सङ्घा पुं० [सं०] कुमार अवस्था। कुआरापन [को०]।

कौमियत—सङ्घा खी० [ग्र० कौमियत] कोम या जाति का भाव।
जातीयता। जैसे,—वर्लियत और कौमियत सब लिखा दो।

कौमी—वि० [ग्र० कौमी] किसी कोम या जाति सबधी। जातीय।
जैसे—कौमी जोश। कौमी मजलिस।

कौमुद—सङ्घा पुं० [सं०] कार्तिक मास। कार्तिक।

कौमुदी—सङ्घा पुं० [सं०] १ ज्योत्सना। चाँदनी। जुन्हेया।

यो०—कौमुदीपति = चन्द्रमा।

२. कार्तिकोत्सव, जो कार्तिक की पूर्णिमा को होता है। ३
कार्तिरूपिणमा। ४ आश्विनी पूर्णिमा। ५ दीपोत्सव की
तिथि। ६ कुमुदिनी। कोई। ७ दक्षिण देश की एक नदी।

८ उत्सव (को०)। ९ (ग्रंथ नाम के अंत में प्रयुक्त) टीका।
व्याख्या। विवेचन। जैसे, तर्ककौमुदी = सावयनत्वकौमुदी,
सिद्धांतकौमुदी आदि।

कौमुदीचार—सङ्घा पुं० [सं०] कोजागर पूर्णिमा। शरत् पूर्णिमा।

कौमुदीतरु—सङ्घा पुं० [सं०] दे० 'कौमुदीवृक्ष' [को०]।

कौमुदीमहोत्सव—सङ्घा पुं० [सं०] शरत् पूर्णिमा के उत्तरार्ध में मनाया
जानेवाला उत्सव।

कौमुदीमुख—सङ्घा पुं० [सं०] चाँदनी का उदय। [को०]।

कौमुदीवृक्ष—सङ्घा पुं० [सं०] दीपस्तम्भ। दीपाशर [को०]।

कौमोदकी—सङ्घा खी० [सं०] विष्णु की गदा।

कौमोदी—सङ्घा खी० [सं०] विष्णु की गदा। कौमोदकी।

कोर—सङ्घा पुं० [सं० कवल] १ उतना मोजन, जितना एक बार मुँह
में डाला जाय। ग्रास। गुस्सा। निवाला। उ०—राम नाम
छाँड़ो जो भरोषा करे और को। तुलसी परोसो त्यागि माँग
कूर कोर को।—तुलसी (शब्द०)

क्रि० प्र०—उठाना।—खाना।

मुहा०—मुँह का कोर छिन जाना = जीविका का संकट होना
रोजी छिन जाना। उ०—कोर मुँह का क्यों न तब छिन
जायगा। जायगी पच क्यों न प्यारी थापियाँ।—बुभने०,
पृ० ३६। मुँह का कोर छिनना = देखते देखते किसी का अंश
दबा बैठना। कोर करना = खा जाना। ग्रास बनाना। उ०—
किनारे की सब कमलिनी क्रम से उखाड़ उखाड़ कोर कर
गए।—श्याम०, पृ० ११३।

२ उतना अन्न जितना एक बार चक्की में पीसने के लिये
ढाला जाय।

क्रि० प्र०—डालना।

कोर—सङ्घा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा, फँसनेवाला झाड़ू
जो उत्तर भारत की पहाड़ी और पयरीली भूमि में होता है।

कोरना—क्रि० स० [हिं० कोड़ा] थोड़ा भूना। सँकना। उ०—
कुँदुरु और ककोड़ा कोरे। कचरी चार चेंबेडा सोरे।—
सूर (शब्द०)।

कोरवी—सङ्घा पुं० [सं०] [खी० कोरवी] [वि० कोरवी] कुब राज की
संतान। कुब के वंशज।

कोरव—वि० [सं०] कुब सबधी। जैसे,—कोरवी सेना।

कोरव—वि० [सं० कुरव] कुरव या लाल फटपरैया के रंग का।
लाव रंग का। उ०—धर्यो तन कोरव वस्त्र कुँपारि। मैडी
जनु सम मनमथ राति।—तृ० रा०, २१।६२।

कोरवपति—सङ्घा पुं० [सं०] दुर्गेवन। सुयोग्यन।

कोरवेय—सङ्घा पुं० [सं०] कुब के वंशज। कोरव [को०]।

कोरव्य—सङ्घा पुं० [सं०] १ कोरव। कुबसंतान। २ एक नगर
जिसका वर्णन महाभारत में आया है।

कोरा—सङ्घा पुं० [सं० कोल, कोड़ या सं० कपाटक, प्रा० कवाडम]
[खी० कोरी] द्वार के इधर उधर का वह भाग जिसके
खुलने पर किवाड़ भिड़ रहते हैं। द्वार का कोना। उ०—
द्वार बुहारत फिरत अष्ट सिधि। कोरेन सधिया चीतत
नवनिधि।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—कौरे लगना = (१) किसी बात को चुपचाप सुनने के लिये द्वार के कोने पर छिपकर खड़ा होना। किसी बात में छिपा रहना। उ०—मन जिन सुन बात यह माई। कौरे लगयो होइगो कितहुँ कहि दैहै सो जाई।—सूर (शब्द०)। (२) लठकर द्वार के कोने में खड़ा होना। मुँह फुलाना।

कौरा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कवल] १. वह खाना जो कुत्ते, अंत्यज आदि को दिया जाय। २. भिखा। भीख। उ०—भले बुरे के कौरा खँहो।—कवीर० श्र०, पृ० २२।

क्रि० प्र०—खाना।—डालना।—देना।

कौरा^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कौड़ा'।

कौरापन^३—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कौरा + पन (प्रत्य०)] भीख माँगने की स्थिति। मिचमिच। भिक्षुवृत्ति। उ०—लोकी पाठ साठ तीरथ न्हाई। कौरापन तऊन जाई। कबीर श्र०, पृ० ३३२।

कौरी^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कौड] १. अक्वारी। गोद। उ०—कौरी में आये जिन्हें बाहु न हिनावे बलवान न भुकावे एते मान डिठियत है।—भारतेंदु (शब्द०)।

मुहा०—कौरी भरकर भेटना या मिलना = आलिप्तन करके मिलना। उ०—छत्रसाल खों गये विजौरा। भेटे रतन साहु भर कौरी।—लाल (शब्द०)

२ एक अक्वारी भर कटे हुए अनाज के पीछे जो फसल के समय मजदूरी को मजदूरी में दिए जाते हैं।

कौरी^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० गोराणी] ग्वालिन की फली। गुवार।

कौरी^६—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कौरव] दे० 'कौरव'। उ०—जित जित मन अजुन की तितहिरय चलायो। कौरी दल नासि नासि कीन्हो जन भायो।—सूर०, पृ० १। २३।

कौरी^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. एक राक्षस का नाम। २. सगिन। अनन। ३. पवन। वायु। हवा [को०]।

कौरी^८—वि० [सं०] १. कर्म या कलुषा सबधी। २. कर्म अवतार सबधी। जैसे, कौरी पुराण।

कौरी^९—सञ्ज्ञा पुं० एक कल्प का नाम [को०]।

कौलज^{१०}—सञ्ज्ञा पुं० [यू० कूलज] एक प्रकार का दंत जो पसलियों के नीचे होता है। वायसूल।

कौल^{११}—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. उत्तम कुल में उत्पन्न। अच्छे खानदान का। २. बाममार्गी। कौलाचारी। उ०—कहने की आवश्यकता नहीं कि कौल, कापालिक आदि इन्ही वज्रयानियों से निकले।—इतिहास, पृ० १३।

कौल^{१२}—वि० कुल संबंधी। खानदानी। कुलक्रम से भागव या प्राप्त। उ०—फूटि निगुन गुण धारिन्ह आनि परचो मोह मिदि कौल कानि।—जग० श्र०, पृ० ६२।

कौल^{१३}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कमल] कमल। सरोज। उ०—बहै लाल लोह लसै बारिधारा। मनो कौल फूले कलगी अपारा।—हृमीर०, पृ० ५२।

कौल^{१४}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कवल] प्राप्त। कौर।

कौल^{१५}—सञ्ज्ञा पुं० [तु० कालवल] सेना की छावनी का मध्य भाग।

कौल^{१६}—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कौल] १. कथन। उक्ति। वाक्य। २.

प्रतिज्ञा। प्राण। वादा। इकरार। उ०—कौल 'यावह' का या कि न जाऊँगा उम गनी। होकर के बेकरार देखो आज फिर गया।—कविता० को०, भा० ४, पृ० ११।

यो०—कौल करार = परम्पर दृढ़ प्रतिज्ञा। कौल का पूरा या पक्का = बात का सच्चा। जवान का धनी।

मुहा०—कौल तोड़ना = किसी से की हुई प्रतिज्ञा छोड़ना। प्रतिज्ञा के अनुसार कार्य न करना। कौल देना = किसी से प्रतिज्ञा करना। किसी को वचन देना। कौल निभाना = दावा पूरा करना। उ०—नट नागर कछु कहन वनै ना उनको कौल निभायो।—नट, पृ० २२। कौल लेना = प्रतिज्ञा कराना। वचन लेना। कौल से फिरना = दे० 'कोन तोड़ना'। कौल हारना = दे० 'कोन देना'। उ०—मगर मिथी आजाद कौल हार के निकल गए।—फिमाना०, भा० ३, पृ० ६३।

३ एक प्रकार का चलता गाना। सूकिया गीत। कौवाल।

कौल^{१७}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कौल] सूकर। सूपर। उ०—कहूँ कौलपुज कहूँ लीनगाह। कहूँ चीतल पांडुल व्याघ्र नाह।—ह० रासो, पृ० ३६।

कौल^{१८}—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कौर'। उ०—नाला विनोचनि कौलन सो, मुसकाइ इत अरुभाइ चितेगी।—मतिराम (शब्द०)।

कौलई^{१९}—वि० [हि० कौला = संगतरा + ई (प्रत्य०)] ललाई लिए पीला। संगतरे के रंग का। नारंगी।

कौलकेय^{२०}—वि० [म०] ऊँचे वंश में उत्पन्न। कुलीन [को०]।

कौलकेय^{२१}—सञ्ज्ञा पुं० कुलटा स्त्री से उत्पन्न पुत्र [को०]।

कौलटिनेय^{२२}—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. (साध्वी) प्रिक्खणी का पुत्र। २. जारजपुत्र [को०]।

कौलटेय^{२३}—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जार कर्म [को०]।

कौलटेर^{२४}—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. व्यभिचारिणी स्त्री की संतान। जारज एक जाति। इस जाति के कवूतर की दुम लवी और कमल पुत्र। २. भिखारिन का पुत्र [को०]।

कौलदुमा^{२५}—वि० [हि० कौल = कनल + दुमा = दुमदार] कवूतर की एक जाति। इस जाति के कवूतर की दुम लवी और कमल की पत्ती की तरह छिछनी होती है।

कौलव^{२६}—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में वह आदि ग्यारह करणों में से तीसरा। उ०—वदि मादौ, आठ दिन, अरध निसा बुधवार। कौलव करन सु रोहिनी, जनमे नदकुमार।—नद० श्र०, पृ० ३३६।

विशेष—इसके देवता मित्र हैं। इस कारण में जन्म लेनेवाला विद्वान और गुणी पर कृतघ्न होता है।

कौला^{२७}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कमला] एक प्रकार का सतरा जो बहुत अच्छा और स्वादिष्ट होता है। कमला।

कौला^{२८}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कौल = कौड़, गोद] १. द्वार के इधर उधर का वह भाग जिससे खुलने पर द्वार भिड़े रहते हैं। कोना। कौरा। मुहा०—कौले लगना = (१) लठकर द्वार के कोने में खड़ा होना।

(२) किसी बात को चुपचाप सुनने के लिये द्वार के कोने में छिपकर खड़ा होना। घात में रहना। कौले सोचना = पूजा, यात्रा आदि के समय द्वार के इधर उधर पानी छिड़कना। २. पादा।

पर्या०—कपर्दिका । वराटिका ।

मुहा०—कोडी का = जिसका कुछ मूल्य न हो । तुच्छ । कोडी काम का नहीं = किसी काम का नहीं । निकम्मा । निकृष्ट । कोडी या वो कोडी का = (१) जिसका कुछ मूल्य नहीं । तुच्छ । निकम्मा । (२) निकृष्ट । खराब । कोडी के काम का नहीं = दे० 'कोड़ी काम का नहीं' । कोडी के तीन तीन विकना = बहुत सस्ता होना । कोडी के तीन तीन होना = (१) बहुत सस्ता होना । (२) तुच्छ होना । बेकदर होना । नाचीज होना । कोडी मोल या कोडी के मोल विकना = बहुत सस्ता विकना । उ०—विकती जो कोडी मोल यहाँ होगी कोई इस निजंन में ।—अपरा, पृ० ६७ । कोडी को न पूछना = (१) मुफ्त भी न लेना । बिल्कुल निकम्मा समझना । (२) नितात तुच्छ ठहराना । कुछ भी कदर न करणा । जैसे,—वहाँ तुम्हें कोई कोड़ी को भी न पूछेगा । कोडी कोस दोडना = एक कोडी के पीछे कोसों का धावा मारना । थोड़ी सी प्राप्ति के लिये बहुत परिश्रम करना । कोडी कोडी = एक एक कोडी । कोड़ी कोड़ी को मुहताज = रुपए पैसे से बिल्कुल खाली । दरिद्र । कोडी कोड़ी अदा करना, चुकाना या भरना = सब ऋण चुका देना । कुल वेवाक कर देना । कोडी कोडी भर पाना = सारा लहना वसूल कर लेना । कोडी कोडी जोडना = बहुत थोड़ा थोड़ा करके धन इकट्ठा करना । बहुत कष्ट वे राया बटोरना । कोडी फिरना = (१) जुए में अपना दांव ण्डने लगना । (२) फौजी सिपाहियों का किसी विषय में एक मत होना । (पहले जब सिपाहियों को किसी बात में एका क ना होता था, तब वे कोड़ी धुमाते थे । जिन सिपाहियों को वह बात स्वीकार्य होती थी, वे कोडी ले लेते थे । कोडी के बदले हीरा देना = खराब वस्तु लेकर अच्छी वस्तु देना । उ०—मल न राख्या लाह लीया कोडी बदले हीरा दीया । फिर पछिताना सबलु नाही हारि चल्या क्यूं पाव साईं ।—दाद०, पृ० ६२८ । कोडियों पर बात देना = लोभी होना । उ०—कोडियों पर किसलिये हम दाँत दें । हे हमारा पाग तो फूटा नहीं ।—चुभते० पृ० ५२ । कोडी फेरा करना = घड़ी घड़ी आना जाना । थोड़ी थोड़ी बात के लिये भी आना जाना । बहुत फेरे लगाना । जैसे,—प्रब तो वे आपके मुहल्ले में आ गए हैं, थोड़ी फेरा करेंगे । कोडी भर = बहुत थोड़ा स । बरा सा । तनिक सा । जैसे,—कोडी भर चूना ला दो । कोडी लेना = मस्तूल के चारों ओर लपेटना । (लश०) । कानी, झंझी या फूटी कोडी = (१) वह कोड़ी जो टूटी हो । (२) अत्यंत अल्प द्रव्य । कम से कम परिमाण का धन । जैसे,—म तुम्हें काना कोड़ी भी न दूँगे । चित्ती कोड़ी = वह कोडी जिसकी पीठ पर उमरी हुई गाँठें हों । इसका व्यवहार जुए में होता है ।

२ धन । द्रव्य । रुपया पैसा । उ०—ब्रह्मज्ञान विनु नारि नर कहहि न दूसरि बात । कोडी लागि लोभवस, करहि विप्र गुरु घात ।—तुलसी (शब्द०) । ३ वह कर जो सम्राट् अपने अधीन राजाओं से लेता है ।

क्रि० प्र०—देना ।—लेना ।

४. आँख का डेला । ५ छाती के नीचे बीचोबीच की वह हड्डी जिसपर सबसे नीचे की दोनों पसलियाँ मिलती हैं ।

मुहा०—कोडी जलना = भूख, क्रोध आदि से शरीर में ताप होना ।

उ०—उसकी कोडी तो यो ही जल रही है, क्यों चिढ़ाते हो ?

६ जंघे, काँख या गले की गिलटी ।

क्रि० प्र०—उसकना ।—उसकना ।—छटकना ।—निकलना ।

७ कटार की नोक । उ०—कोडी के आर पार है कोडी कटार की ।—(शब्द०) ।

कोडी गुडगुड—संज्ञा पुं० [हि० कोडी + गुडगुड] लडको का एक खेल ।

विशेष—उहूत से लडके दो ओर पवित्तियों में आमने सामने बैठते हैं । इन दोनों पवित्तियों के दो सरदार होते हैं । पैसा या जूता आदि उछालकर वित्त पट से इस बात का निश्चय किया जाता है कि पहले किस पंक्ति से खेल आरंभ होगा । जिस पंक्ति से खेल आरंभ होता है, उसका सरदार अंजुनी में धूल भर लेता है जिसके अंदर कोडी छिपी होती है । सरदार थोड़ी थोड़ी धूल अपनी पवित्त के सब लडकों के हाथ में डाल आता है । फिर दूसरी पवित्तवाले वृत्तों में कि धूल के साथ कोडी किस लडके के हाथ में गई है । यदि वे ठीक वृत्त गए तो जिसके हाथ में कोडी रहती है, उसे चपत लगाते हैं ।

कोडी जगनमगन—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कोडी गुडगुड' ।

कोडी जूड़ा—संज्ञा पुं० [हि० कोडी + जूड़ा] एक प्रकार का गहना जिसे स्त्रियाँ सिर पर पहनती हैं ।

कोडेना^१—संज्ञा पुं० [देश०] [मलया० कोडेनी] कसेरो का लोहे का एक औजार जिससे वस्तुओं पर नकाशी की जाती है । यह डेढ़ बालिशत लबा और नोक पर पतला तथा चिपटा होता है ।

कोडेना^२—संज्ञा पुं० [हि० कोडियाला] कोडियाला नाम की जडी ।

कोडेना^३—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'कोडियाही' ।

कोडेनी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का जलपक्षी । उ०—घोबइन तलचरैया, कोडेनी, चवभा इत्यादि ।—प्रेमधन०, भा० २, पृ० २० ।

कोडी^१—संज्ञा पुं० [हि० कोड] दे० 'कोड़' । उ०—ओर वा बंणुव के सरीर में तें तत्काल सब ठीर तें कोड़ जात रह्यो ।—दो सौ बावन, भा० १, पृ० ३३० ।

कोणप—संज्ञा पुं० [सं०] १. राक्षस । २. वासुकी के वंश का एक सर्प । ३. पातकी या अधर्मी जीव ।

कोणपदत—संज्ञा पुं० [सं० कोणपदन्त] शीघ्र ।

कोतक^१—संज्ञा पुं० [हि० कोतुक] खेल तमाशा । उ०—सुर नर मुनि जब कोतक आए कोटि तेंतीसो जाना ।—कबीर ग्र०, पृ० २९६ ।

कोतिक^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कोतुक' । उ०—इनके कोतिक देखि देखि अपनी जीउ जियाऊँ ।—घनानन्द, पृ० ५४७ ।

कोतिगा^१—संज्ञा पुं० [हि० कोतुक] विलक्षण और अदभुत बात । कोतुक । उ०—देखत कछु कोतिगु इतें देखो नैंक निहारि । कब की इच्छ टक डटि रही तटिया अंगुरिन फारि ।—विहारी (शब्द०) ।

कौतिगहार^१—संज्ञा पुं० [हि० कौतिग + हार(प्रत्यय)] खेल

कोतिग

माहि कोतिगहार । देह अछत अलगी रहै, दाहू सेवि अपार ।—
दाहू. पृ० ५८३ ।

कोतिग(७)—सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'कोतिग' । उ०—खलकंत श्रोन
घर चलिवा खान । कोतिग देव हर हंड माल ।—पृ० १०,
१६६७ ।

कौतुक—सञ्ज्ञा पु० [सं०] [वि० कौतुकित, कौतुकी] १. कुतूहल । २.
आश्चर्य । अचंभा । उ०—सती दीख कौतुक मग जाता ।
माने राम सहित श्री आता ।—मानस, १।५४ । ३. विनोद ।
दिलनगी । ४. आनंद । प्रशंसा । ५. खेल तमाशा ।
क्रि० प्र०—करना ।—दिखलाना ।—देखना ।—होना ।

६. बहु मांगलिक सूत्र (कंगन) जो विवाह से पहले हाथ में पहना
जाता है । ७. विवाह के पूर्व कंगन बाधने की प्रथा ।
८. पर्व । उत्सव (को०) । ९. विवाह आदि शुभ कार्य (को०) ।
१०. उत्सुकता । आवेग । आतुरता (को०) । ११. आश्चर्यजनक
वस्तु (को०) ।

यो०—कौतुकक्रिया । कौतुकमंगल = (१) बड़ा उत्सव । महोत्सव ।
(२) विवाह संस्कार । कौतुकतोरण = उत्सव के निये निर्मित
मंगलसूचक डार । कौतुकागार = (१) क्रीडागृह । विनोदगृह ।
(२) दे० 'बोहवर' ।

कौतुकिया—सञ्ज्ञा पु० [हि० कौतुक + इया (प्रत्य०)] १. कौतुक
करनेवाला । २. विवाह संवध करानेवाला नाई; पुरोहित
आदि ।—उ०—तो कौतुकिग्रन्ह आलस नाही । वर कन्या
अनेक जग माही ।—तुलसी (शब्द०) ।

कौतुकी—वि० [सं० कौतुकिन्] १. कौतुक करनेवाला । विनोदशील ।
उ०—मुनि कौतुकी नगर ठेहि गयऊ । पुरवासिन सब पूछत
भयऊ ।—तुलसी (शब्द०) । २. विवाह संवध करानेवाला ।
३. खेल तमाशा करनेवाला ।

कौतूहल—सञ्ज्ञा पु० [सं०] कुतूहल । कौतुक ।

कौतूहलता—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० कौतूहल + ता (प्रत्य०)] कौतूहल का
भाव । आत्सुष्य । उत्सुकता । उ०—क्रीडा कौतूहलता
मन की, वह मेरी आनंद उमग ।—पल्लव, पृ० १०५ ।

कौतुमत्त—सञ्ज्ञा पु० [सं०] एक ऋषि जिनका वरुण गोपय ब्राह्मण
ने आया है ।

कौत्स—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १. एक ऋषि का नाम जो कुत्स ऋषि के पुत्र,
वरततु के शिष्य और जमिनि के आचार्य थे । २. कुत्स नामक
ऋषि के बनाए हुए कुछ साम (गान) जो विछुत यज्ञ में
गाए जाते थे ।

कौय—सञ्ज्ञा स्त्री [हि० कौन + तिवि] १. कौन सी तिवि । कौन
तारोख । जैसे—आज कौय है ? २. कौन संबंध । कौन वास्ता ।
उ०—राम नाम को ठोड़ि के राख करवा चौय । सो तो
होयगी सुकरी, तिन्ह राम सो कौय ?—कबीर (शब्द०) ।

कौया—वि० [हि० कौन + स० श्या (स्यान)] किस संवध का ।
गणना में किम स्यान का । जैसे,—दरजे में तुम्हारा नंबर
कौया है ?

२-६८

कौया—सञ्ज्ञा स्त्री [हि०] 'कौय' ।

कौयुमी—सञ्ज्ञा पु० [सं०] कौयुमी शाखा का अध्ययन करनेवाला ।

कौयुमी—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] सामवेद की एक शाखा जिसका प्रचार
कुयुम ऋषि ने किया था ।

कौद(७)—सञ्ज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'कोद' । उ०—दोय सख पैद चहुँ
गढ़न कोद ।—ह० रासो, पृ० ६० ।

कौदन—वि० [फ़ा०] मदबुद्धि । कमसमक । नासमझ ।

कौदालिक, कौदालीक—सञ्ज्ञा पु० [सं०] धीवर पिता और धोविन
माता से उत्पन्न एक वर्ण संकर जाति ।

कौद्रविक—सञ्ज्ञा पु० [सं०] साँवर नोन । काला नमक ।

कौघनी—सञ्ज्ञा स्त्री [हि० करघनी] करघनी । कौघनी ।

कौन—सर्व० [सं० क, पुन किम्, प्रा० कवण] एक प्रश्नवाचक
सर्वनाम जो अग्रिम प्रश्न व्यक्ति या वस्तु की विज्ञाना करता है ।
उस मनुष्य या वस्तु को सूचित करने का शब्द जिसको पूछना
होता है । जैसे,—(क) तुम्हारे साथ कौन गया था ? (ख) इन
आमों में से तुम कौन लोगे ?

मुहा०—कौन सा = कौन । कौन किसका होता है ? = कौन
किसके काम आता है । कोई दूसरे की सहायता नहीं करता ।
कौन होना = (१) क्या अधिकार रखना । क्या मतलब
रखना । जैसे,—तुम हमारे बीच बोलने वाले कौन होते हो ।
(२) क्या संबंध होना । क्या रिश्ता या नाता होना । जैसे,—
वे तुम्हारे कौन होते हैं ?

विशेष—विभक्ति लगने के पहले कौन का रूप किस हो जाता है ।
जैसे—किसने, किसको, किससे, किसमें इत्यादि । यद्यपि
संस्कृत के अनुसार हिंदी व्याकरणों में इस शब्द को केवल
सर्वनाम ही लिखा है, तथापि जब इसके आगे सञ्ज्ञा शब्द भी आ
जाता है, जैसे, 'कौन मनुष्य'—तब यह विशेषण के ही समान
जान पड़ता है ।

कौन?—वि० किस जाति का ? किस प्रकार का ? जैसे,—यह
कौन आम है, लंगड़ा या बबई ?

कौनप—सञ्ज्ञा पु० [सं० कौणप] दे० 'कौणप' । उ०—क्रेवट कुटिल
भालु कपि कौनप कियो सकल संग भाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

कौप—वि० [सं०] कुएँ का । कूप संबंधी [को०] ।

कौप—सञ्ज्ञा पु० कुएँ का जल । कूपजल [को०] ।

कौपीन—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १. ब्रह्मचारियों और सन्यासियों आदि की
लंगोटी । चौर । कफनी । फाछा । २. शरीर के वे भाग जो
कौपीन से ढाँके जायें—गुदा और लिंग । ३. पाप । गुनाह ।
४. अनुचित कार्य ।

कौपोदकी—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] कृष्ण की गदा [को०] ।

कौवेर—वि० [सं०] कुवेर संबंधी । कुवेर का [को०] ।

कौवेरतीय—सञ्ज्ञा पु० [सं०] कुवेर संबंधी तीर्थ विशेष । उ०—कौवेर
तीर्थ में देवताओं ने कुवेर का राज्याभिषेक किया था ।—
प्रा० भा० प०, पृ० १०३ ।

कौना—सद्वा पुं [सं कोण] कोना । उ०—चरित भई घर आंगन फिर । कौने जाय उसासिन सर ।—नद० ग्र० पृ० १५२ ।

कौभ^१—सद्वा पुं [सं कौम्भ] सो वरस का पुराना घो, जो बहुत गुणकारी समझा जाता है ।—(वैद्यक) ।

कौभ^२—वि० कुंभ या घड़े में रखा हुआ या उससे सज्जित [को०] ।

कौभसपि—सद्वा पुं [सं कौम्भसपि] दे० 'कौभ' ।

कौर—सद्वा पुं [देश०] एक प्रकार का बड़ा पेड़ । बनखोर ।

विशेष—यह वृक्ष प्रायः पंजाब, नेपाल और उसकी तराईयो में होता है । इसकी लकड़ी अंदर से हलकी गुलाबी होती है और हमारत के काम में आती है । इसके काठ से थालियाँ और रकबियाँ भी बनाई जाती हैं । इसके फलों को पहाड़ी लोग सुखकर चक्की में पीसते और दूसरे अनाज के साथ मिलाकर खाते हैं ।

कौरा—सद्वा पुं [हि० कौवर] दे० 'कौवर' ।

कौरी—सद्वा स्त्री [देश०] पान की चौलाई ढोली, जिसमें ५० पान होते हैं । कंवरी ।

कौल—सद्वा पुं [सं, प्रा० कमल] दे० 'कमल' । उ०—धीमी बयार लगने से छोटी छोटी लहरें उठती हैं, फूले हुए कौल अपने हरे हरे पत्तों में धीरे धीरे हिलते हैं ।—ठेठ०, पृ० २६ ।

कौला—सद्वा स्त्री [सं० कमला] कमला । सरस्वती । उ०—कवि बिभास रस कौला पुरी । दूरिहि निग्रह निग्रह भा दूरी ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १३६ ।

कौली हड्डी—सद्वा स्त्री [सं० कोमल + हि० हड्डी] कुरकुरी हड्डी ।

कौसल—सद्वा पुं [अ०] १ बैरिस्टर । ऐडवोकेट । २. राज का प्रतिनिधि ।

कौसलर—सद्वा पुं [अ०] परामर्शदाता । समति देनेवाला ।

कौसली—सद्वा पुं [अ० कौसल] बैरिस्टर । ऐडवोकेट । जैसे,—हाईकोर्ट में उसकी ओर से बड़े बड़े कौसली परीची कर रहे हैं ।—(प्रातिक) ।

कौसिल—सद्वा स्त्री [अ०] १. किसी विषय पर विचार करने के लिये कुछ लोगों की बैठक । २. कुछ विशेष मनुष्यों की वह समाज किसी राजा या शासक का शासन के समय में परामर्श देने के लिये बनाई जाती है । विधानसभा । जैसे,—बड़े लाट की कौसिल, प्रिवी कौसिल, आदि ।

कौहर—सद्वा पुं [देश०] इद्रायन की जाति का एक प्रकार का फल जो पकने पर बहुत सुंदर लाल रंग का हो जाता है । कहते हैं जिस स्थान पर यह फल रखा जाता है, वहाँ सारा नहीं आता । कवि लोग प्रायः इससे एंडी की उपमा दिया करते हैं । उ०—(क) कौहर सी एंडी की लाली देखि सुमाइ । पाय महावर देन को घाप भई वेपाय ।—विहारी (शब्द०) । (ख) जोहर, कौल, जपादल विद्रुम का इतनी जो वैद्युत् में कोत है ।—शमू (शब्द०) ।

कौहरी—सद्वा स्त्री [हि० कौहर] दे० 'कौहर' ।

कौ^१—सर्व० [हि०] दे० 'कौड़' । उ०—ईसीय न देखल पुतजो गयण सलूँया वचन सुमात । इसीय न खाती की घडद, इसी मरुती नही राब तल दीठ ।—बो० रावा, पृ० ४५ ।

कौ^२—प्रत्य० [हि०] कर्म, संप्रदान और संवध कारक का विभक्ति प्रत्यय । उ०—(क) चतुर्भुजदास वाद करते और पंडितन की जोत लेते ।—अकबरी०, पृ० ३८ । (ख) खंजीरठ मृग मीन विचारति, उपमा की अकुलाति । चंचल चारु चपल अवलोकनि, चित्ति न एक समाति ।—सूर० १० । १८११ । (ग) रावन अरि की अनुज विभीषण ता को मिले भरत नाई ।—सूर०, ११३ ।

कौम्रा—सद्वा पुं [हि०] दे० 'कौवा' ।

कौम्राता—क्रि० अ० [हि० कौम्रा] १. भौवका होना । चरुपठाना । आश्रय से इधर उधर ताकना । २. सोते में स्वप्न देखकर या यों ही अचानक कुछ बड़बड़ा उठना ।

क्रि० प्र०—उठना ।

कौम्रारा—सद्वा पुं [हि० कौम्रा + सं० रा = शब्द] कौवो का शब्द । कौवारो । कौन कौन को पुकार । शोरमुज ।

कौम्रारी—सद्वा स्त्री [हि० कौम्रा] एक प्रकार का जलपक्षी ।

कौम्राल—सद्वा पुं [अ० कौवाल] कौवाली गानेवाला व्यक्ति ।

कौवाली—सद्वा पुं [अ० कौवाली] दे० 'कौवाली' ।

कौकुव्यातिचार—सद्वा पुं [सं० काकुव्यातिचार] वह वाक्य जिसके कहने, बोलने या पढ़ने से अपने या औरों के मन में काम, क्रोध आदि उत्पन्न हों । जैसे, शृंगार के कवित्त, वारहमासा आदि—(जैन) ।

कौकृत्य—सद्वा पुं [सं०] १ दुष्कर्म । कुकृत्य । दुष्टता । २ पशचात्ताप । अनुशोचन [को०] ।

कौकुटिक—सद्वा पुं [सं०] १ कुक्कुटपालक या मुर्गे का व्यापारी । २ एक प्रकार के साधु जो जीवहिंसा न हो अतः जमीन देखते चलते हैं । ३ (लाक्ष०) दमी या घमडी व्यक्ति [को०] ।

कौक्षेय^१—वि० [सं०] १ कुक्षि या उदर सबंधी । २ म्यानयुक्त [को०] ।

कौक्षेयक—सद्वा पुं [सं०] खड्ग । तलवार [को०] ।

कौच^१—सद्वा पुं [अ०] मोटे गद्दे का अगरेजो का पलंग या बेंच ।

कौच^२—सद्वा पुं [सं० कपच] दे० 'कवच' । उ०—घरे टाय कुं डी कसे कौच अग ।—हम्मीर०, पृ० २४ ।

कौचुमार—सद्वा स्त्री [सं०] ६४ कलाओं में से एक । कुल्फ को सुंदर बनाने की विद्या ।

कौट^१—वि० [सं०] १ अपने घर या कुटी में रहनेवाला । स्वतंत्र । मुक्त । २. गृह में पाण्डित्य । घरेलू । घर का । ३ जालसाज । वेईमानी । ४. जान में फँसा हुआ या जालयुक्त [को०] ।

कौट^२—सद्वा पुं १ जालसाजी । वेईमानी । छल । धोखा । फरेब । २ वह जो झूठी गवाही दे [को०] ।

यौ०—कौटज = कुंज । कौटक्ष = स्वतंत्र रूप से काम करनेवाला बड़ई । ग्रामतक्ष का विलोम । कौटसाक्षी = झूठी गवाही ।

कौटसाक्ष्य = झूठी साक्षी । झूठी गवाही ।

कौटिकिक—सद्वा पुं [सं०] १ व्याघ्र । बहेलिया । २ कसाई । मातृ विक्रेता [को०] ।

कौटमी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम [को०] ।

कौटल्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कौटिल्य' ।

कौटवी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कौटवी' [को०] ।

कौटिक^१—वि० [सं०] १ फंडा या जाल सबधी । २ वेईमान । धूर्त । अविश्वसनीय [को०] ।

कौटिक^२—वि० सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कौटिक' [को०] ।

कौटिलिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ बहेलिया । शिकारी । २ लुहार [को०] ।

कौटिलीय—वि० [सं०] कौटिल्य का, कौटिल्यानिमित्त । कौटिल्य संबंधी [को०] ।

कौटिल्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. टेढ़ापन । २. कुटिलता । कपट । ३. चाणक्य का एक नाम ।

कौटुविक—वि० [सं० कौटुम्बिक] कुटुंब का । कुटुंब संबंधी । २ परिवारवाला ।

कौड़ा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कपटक प्रा० कवद्वह, कवडुह] बड़ी कौड़ी । उ०—कौड़ा आसू बूंद करि सांकर बरनी सजल । कीन्हें वदन निमूंद, दृग मलंग डारे रहैं ।—विहारी (शब्द०) । २ धन । पूंजी । उ०—गुह किन वाट नाहि कौड़ा विन हाट नाहि । सुदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ३८८ ।

कौड़ा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुण्डक] जाड़े के दिनों में तापने के लिये किसी गड्ढे में खर, पतवार फूंककर जलाई हुई आग । अलाव । उ०—जाड़े के दिनों में किसी गरम कौड़े के चारों ओर प्यार बिछा बिछा के अपने परिजनो के साथ युवती और वृद्धा, बालक और बालिका, युवा और वृद्ध सबके सब बैठ कया कह दिन बिताते हैं ।—श्यामा०, पृ० ४४ ।

कौड़ा^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कदच] एक प्रकार का जंगली प्याज । कौचिड़ा फफार ।

कौड़ा^३—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] बूई नाम का पौधा जिसे जलाकर सज्जी खार निकालते हैं । वि० दे० 'बूई' ।

कौड़ा^४—वि० [सं० कटु] दे० 'फडुप्रा' । उ०—भोरे भोरे तन करै, बड़े करि कुरवाण । मिट्ठा कौड़ा ना लगै, दाढ़ तोहू चाण ।—दादू०, पृ० ६५ ।

कौड़िया^१—वि० [हि० कौड़ी] कौड़ी की तरह का । कौड़ी के रंग का । कुछ स्याही लिए हुए सफेद रंग का ।

कौड़िया^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कौड़िल] कडिल्ला या किनकिला नाम का पक्षी । उ०—नयन कौड़िया हिय समुद्र गुह सो तेही जोति । मन मरजिया न होइ परे हाय न आये मोति ।—जायसी (शब्द०)

कौड़ियाला^१—वि० [हि० कौड़ी] कौड़ी के रंग का । हलका नीला (रंग) जिसमें गुलाबी को कुछ झलक हो । कोकई ।

कौड़ियाला^२—सञ्ज्ञा पुं० १ कोकई रंग का । २ एक प्रकार का विपैला साँप जिसपर कौड़ी के रंग और आकार की चितियाँ पड़ी रहती हैं । ३. वह धनी जो साँप की तरह रुपए के ऊपर बैठा रहे उसे खर्च न होने दे । कृपण धनाढ्य । कजूम भमीर ।

४ एक पौधा जो ऊसर भूमि में होता है । उ०—कौड़ियाला मेरी तुरवत पै लगाना यारो । नगनी जुल्फ के काटे की यह पहचान रहे । (देश०) ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ छोटी छोटी और कुछ मटमले रंग की होती हैं । इसमें कोप या छूछी के आकार के छोटे छोटे फूल लगते हैं । फूल के रंग के विचार से कौड़ियाला तीन प्रकार का होता है सफेद फूल का, लाल फूल का और नीले फूल का । नीले फूल के कौड़ियाले को विष्णुकाता कहते हैं । बंदक में कौड़ियाला तीक्ष्ण, गरम, मेघाजनक तथा कृमिघ्न और विषघ्न समझा जाता है । इसे शत्रुघ्नी या शत्रुहृन्नी भी कहते हैं ।

पर्या०—मेघ्या । चंडा । सुपुष्पी । किगोटी । कंबुमालिनी ।

सूतगना यनमालिनी । मलविनाशिनी । सर्पाक्षी, इत्यादि ।

क लियालो—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कौड़ियाला] दे० 'कौड़ियाला'—४ ।

कौड़ियाही^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कौड़ी] मजदूरी की एक रीति जिसमें मजदूरों को मिट्टी, ईंटें आदि उठाने की मजदूरी प्रति ईंट या प्रति खेप कुछ कौड़ियाँ दी जाती हैं । इस रीति से काम जल्दी होता है ।

कौड़ियाही^२—वि० स्त्री० वृद्ध बड़े धन के लालच से कोई काम करनेवाली ।

कौड़िल्ला—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कौड़ी] २ मछली पकड़कर खानेवाली एक चिड़िया । किलकिला । २ कसी नाम का पौधा

जिसे संस्कृत में कणुक और गवेधुक कहते हैं । दे० कसी' ।

कौड़िहाई^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कौड़ियाही] दे० 'कौड़ियाही' ।

कौड़ी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कपटिका, प्रा० कवडिप्रा] १. समुद्र का एक कौड़ा जो घोंघे की तरह एक अस्थिकोप के शंकर रहता है । बराटिका ।

विशेष—यह अस्थिकोण उमड़ा हुआ और चमकीला होता है तथा इसके नीचे बड़ा लंबा पतला छेद होता है, जिसके दोनों किनारे पर दाँत होते हैं । खुले मुँह को आवश्यकतानुसार बंद करने के लिये ऊपर ढक्कन नहीं होता । छेद के बाहर इसका सिर रहता है, जिसमें दो कोने निकले रहते हैं जो स्पर्शद्रव्य का काम देते हैं । कौड़िया भारत महासागर में लंका, मलाया, स्याम, सिंहल मालदीप आदि के पास इकट्ठी की जाती हैं । राजनिर्घट्ट में कौड़ियाँ पाँच प्रकार की बतलाई गई हैं—(क) सिही, जो सुनहले रंग की होती है । (ख) व्याघ्री जो धूमने रंग की होती है (ग) मृगो, जिसकी पीठ पीली और पेट सफेद होता है (घ) हँसी जो बिलकुल सफेद होती है । और (च) विदता, जो बहुत बड़ी नहीं होती । द्रव्य रूप में कौड़ी का व्यवहार भारत चीन आदि देशों में बहुत प्राचीन काल से होता रहा है । वाजयसनेयी संहिता में इसका उल्लेख आया है । भास्कराचार्य ने लीलावती में इसके मूल्य का विवरण दिया है । पैसे के आधे को अर्धला, चौथाई को दुकड़ा या छदाम और अष्टमांश को दमडी कहते थे । एक पैसे में प्रायः ८० कौड़ियाँ या २५ दाम माने जाते थे । ३ दाम की एक दमडी, छ दाम का एक दुकड़ा और १२॥ दाम का एक अर्धला माना जाता था

कोसाकाटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कोसना + काटना] शाप के रूप में गली । वददुष्टा ।

कोसिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कोशिका] १ मिट्टी का छोटा कसोरा । २ चूना रखने की कूँड़ी ।—(तैवली) ।

कोसिला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कोशल्या] दे० 'कोशल्या' । उ०—विहंग आइ माता सो मिला । रामहिं जनु भेंटि कोसिला ।—जायसी (शब्द०) ।

कोसिली—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] १. पिराक या गुफिया नाम का पक्वान । २ आम्रफल के भीतर की गुठली जिसमें बीज रहता है ।

कोसी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कोशिकी] एक नदी जो नेपाल के पहाड़ों से निकलकर चंपारन के पास पास गंगा में मिलती है ।

विशेष—इसका बहाव बहुत तेज है । रामायण में लिखा है कि विश्वामित्र की बहन सत्यवती (दूसरा नाम कोशिकी) जब अपने पति के साथ स्वर्ग चली गईं, तब इस नदी की उत्पत्ति हुई थी । एक मास तक इसके किनारे पर रहने से एक अश्वमेध यज्ञ का फल होता है ।

कोसी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कोशिका] घनाज के वे दाने जो दायने के बाद बाल या फली में लगे रह जाते हैं । गूड़ी । चंचरी ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः जुआर या भुँग के चिये ही होता है ।

कोसीस^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कपिशिषंक] दे० 'कोसीस' । उ०—कोट कोसीसा नयर विसाल । धार नग्री माहङ्गम कोयड ।—वी० रासो, पृ० १०४ ।

कोहंडोरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कुम्हड़ा + वरी] उर्द की पीठी और कुम्हड़े के गूदे से बनाई हुई वरी ।

कोहँरा—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कुम्हार' । उ०—एक मिट्टी का घड़ा घड़ला, एक कोहँरा सानो ।—कवीर० श०, पृ० ८६२ ।

कोह^१—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] पर्वत । पहाड़ ।

यौ०—कोहिस्तान ।

कोह^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० क्रोध] क्रोध । गुस्सा । उ०—किंकर, कचन, कोह काम के ।—तुलसी (शब्द०) ।

कोह^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ककुभ, प्रा० कउह] अर्जुन वृक्ष ।

कोह^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० खेह, पुं० हि० खोह] खोह । गर्द । उ०—राण दिस हालिया ठाण माराण रख, कोह मासमाण चढ भाण ठका ।—रघु ८०, पृ० १४६ ।

कोहकन—वि० [फा०] १ पर्वत काटनेवाला । पर्वतभेदी । २ शीरी के प्रेमी फरहाद की उपाधि (को०) ।

कोहकाफ—सञ्ज्ञा पुं० [फा० कोह = पहाड़ + काफ] एक पहाड़ जो यूरोप और एशिया के बीच में है । इसके पासपास के स्थानों के निवासी बहुत सुदूर होते हैं । फारस आदि देशों के निवासियों का विश्वास है कि इस पहाड़ पर देव और परियाँ रहती हैं । फाकेशस । उ०—कुछ का मत है कि मार्यों का आदि स्थान कोहकाफ के पास था ।—प्रा० भा० प०, पृ० ५६ ।

कोहकुन^५—वि० [फा० कोहकन] खोदने का काम करनेवाला । खनिक । उ०—है तुम दर अत्तल गौहर के लगन, लाल के इश्को हुई हूँ कोहकुन ।—दक्खिन०, पृ० १५२ ।

कोहकुनी—सञ्ज्ञा पुं० [फा० कोहकनी] पहाड़ खोदना । परिश्रम । उ०—शीरी लवाँ सँसग दिनों को असर नहीं । फरहाद काम कोहकुनी का किया तो क्या ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४१ ।

कोहन^६—वि० [सं० क्रोधन, प्रा० कोहण] १ क्रोधी । २ तुनक-मिजाज । उ०—हेरि चित्त तिरछी करि दृष्टि चली गई कोहन मूठि सो मारे ।—रसखान, पृ० १४ ।

कोहल^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कुहनी' ।

कोहनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कुहनी' ।

कोहनूर—सञ्ज्ञा पुं० [फा० कोह + अ० नूर] एक बहुत बड़ा और प्रसिद्ध हीरा ।

विशेष—इसके विषय में कहा जाता है कि यह राजा कर्ण के पास था और पीछे मालवा के राजा विष्णुमादित्य के हाथ लगा था । सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में यह हीरा म्वालियर के एक राजा ने गोलकुंडा के बादशाह को दिया था । सन् १७३६ में कर्नाल के युद्ध के बाद वह नादिरशाह को मिला था । उसके वंशज शाहजुजा से यह हीरा राजा रणजीतसिंह ने ले लिया । अतः सन् १८५६ में यह अंगरेजों के हाथ आया और दूसरे वर्ष इंग्लैंड में महारानी विक्टोरिया की भेंट हुआ और अबतक वहाँ के राजकोश में वर्तमान है । पहले यह हीरा ३१६ रत्ती का था और संसार में सबसे बड़ा समझा जाता था पर अब यह यह फिर से तराशा गया और तोल में केवल १०२३ रत्ती रह गया ।

कोहवर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोष्ठवर या कोतुकुह] वह स्थान या घर जहाँ विवाह के समय कुलदेवता स्थापित किए जाते हैं और जहाँ कई प्रकार की लौकिक रीतियों की जाती हैं । उ०—कोहवरहि आने कुँवर कुवर सुयासिनिन सुख पाइके । अति प्रीति लौकिक रीति लागी करन मगल गाइके ।—तुलसी (शब्द०) ।

कोहर^८—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोटर या कुहर] गुफा । कदर । खोह । उ०—नदी सु एक जल किंदु तहँ सु एकह सुभ कोहर ।—पृ० रा०, २४।३४२ ।

कोहरा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कुहरा] कुहासा । कुहिर । कुहरा ।

कोहरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] उवाले या तले हुए चने आदि । घुमनी ।

कोहल^९—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ एक मुनि जिन्होंने सोमेश्वर से संगीत सीखा था और जो नाट्यशास्त्र के प्रणेता कहे जाते हैं २. जो की शराव । ३. कुम्हड़े की शराव । ४. एक प्रकार का वाजा ।

कोहल^{१०}—वि० [सं०] अस्पष्ट बोलनेवाला । साफ साफ उच्चारण न करनेवाला (को०) ।

कोहल^{११}—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कुम्हार' ।

कोहा^{१२}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोश = पाग] १ मिट्टी का बड़ा कूँड़ा, जिसमें प्रायः ऊख का रस या काँजी आदि रखते हैं । नाद । २ कपाल की आकृति का मिट्टी का वर्तन ।

कौर्षी

कोहा^१—संज्ञा पुं [सं० कुल, हि० कोख, कोला] पेट । उदर ।
कोहान—संज्ञा पुं [फा०] ऊँट की पीठ पर का डिल्ला या कूदड़ ।
कोहाना^२—क्रि० अ० [हि० कोह] १. लटना । नाराज होना ।
मान करना । उ०—तुमहि कोहाव परम प्रिय अहई ।—तुलसी
(शब्द०) । २. गुस्सा होना । क्रोध करना ।

कोहिरा—संज्ञा पुं [हि०] दे० 'कोहुरा' । उ०—दुर्ग के पूर्व
त्रिवेणी अपनी गौरवयुक्त भौकी को कोहिर से आवेष्टित किये
हुए हैं ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३८ ।

कोहिल—संज्ञा पुं [देश०] नर घाही बाज ।

कोहिस्तान—संज्ञा पुं [फा०] पर्वतस्थली । पहाड़ी देश ।

कोही^३—वि० [हि० कोह + ई (प्रत्यय)] क्रोध करनेवाला । क्रोधी ।
गुस्संद । उ०—बाव ब्रह्मचारी अति कोही । विश्वविदित खत्री-
कुल द्रोही ।—तुलसी (शब्द०) ।

कोही^४—वि० [फा० कोह] पहाड़ी ।

यो०—कोही भांग=एक प्रकार की भांग जो सिध में होती है
और जिससे गाँवा या चरस नहीं निकलता । इसके बीजों का
तेल निकाला जाता है और रेशे से रस्ती आदि बनती है ।

कोही^५—संज्ञा स्त्री [देश०] घाही नामक बाज पक्षी की मादा ।

कोहु^६—संज्ञा पुं [सं० क्रोध, प्रा० कोह] दे० 'कोह' । उ०—
तुम्हें जागी बैरागी कहत न मानहु कोहु ।—जायसी प्र०,
पृ० २४ ।

कोहु^७—सर्व० [हि०] दे० 'कोऊ' । उ०—जा दिन दोरि कहे कोहु
सजनी, आए कुँवर कन्हाई ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २३८ ।

कौक—संज्ञा पुं [सं० कौकु] १. भारत के एक प्रदेश का प्राचीन
नाम । कौकण । २. कौकण का रहनेवाला । ३. कौकण का
शासक [को०] ।

कौकण—संज्ञा पुं [सं० कौकुण] दे० 'कौक' [को०] ।

कौकिर^८—संज्ञा स्त्री [सं० कर्कर, हि० कंकर] हीरे आदि की कनी ।
काँच की किरिच । काँच का नुकीला टुकड़ा । काँच की रेत ।
उ०—हो ता दिन कबरा में दैशैं । जा दिन नदनंदन के नैनन
अपने नैन मिलैंहैं । सुन रो सखी इहै जिय मेरे भूलि न और
चिंतैंहैं । अब हठ सूर इहै मत मेरो कौकिर खँ मरि जेहैं ।—
सूर (शब्द०) ।

कौकुम^९—संज्ञा पुं [सं० कौकुम] तीन पूँछ या चोटीवाले लाल
रंग के पुच्छल तारे जो बृहस्पति के अनुसार सव्या में ६०
हैं और मंगल के पुत्र माने जाते हैं । ये उत्तर की ओर उदय
होते हैं ।

कौकुम^{१०}—वि० १. कुंकुमयुक्त । २. कुंकुम के रंग का । केसरिया [को०] ।

कौच^{११}—संज्ञा पुं [सं० कौच] हिमालय का एक अश्व । ऊँच पर्वत
[को०] ।

कौच^{१२}—संज्ञा स्त्री [सं० कचु] १. सेम की तरह की एक बेल ।
केवाँच । २. इस बेल की फली ।

विशेष—इस लता में सेम की सी पत्तियाँ, फूल और फलियाँ
लगती हैं । सेम की फलियों से कौच की फलियाँ अधिक गोल,
बड़ी, गूदेदार और रोएँदार होती हैं । कौच तीन प्रकार की

होती है—भूरी, काली और सफेद । भूरी और काली फलियाँ
रोएँदार होती हैं, सफेद बिना रोएँ की होती हैं । काली और
सफेद तरकारी के काम में आती हैं, भूरी का अधिकतर
व्यवहार औषध में होता है और इसके भूरे और चमकदार
रोयों के शरीर में लगने से खुजली और सूजन होती है । बँचक
में कौच अत्यंत वीर्यवर्द्धक, पुष्ट, मधुर और वातघ्न मानी
जाती है । इसके बीज वाजीकरण औषधों में पड़ते हैं ।

पर्या०—कपिकच्छु । आत्मगुप्ता । शुक्शित्री । कंडूरा । सद्यःशोया ।

शूका । शूकवती । ऋपम । जटा । गात्रभंगा । प्रावृषा ।

वानरी । लागली । कुंडली । रोमवल्ली । वृष्या, इत्यादि ।

कौच^{१३}—संज्ञा [अं० कौच] दे० 'कौच' । उ०—बढिया साटन की
मड़ी हुई सुनहरी कौच ।—श्रीनिवास प्र०, पृ० १७७ ।

कौचा^{१४}—संज्ञा पुं [?] ऊँच के ऊपर का पतला और नीरस भाग
जिसकी गाँठें बहुत पास पास होती हैं । अगौरा ।

कौची^{१५}—संज्ञा स्त्री [सं० कच्चिका] वान की पतली टहवी ।

कौच्य^{१६}—संज्ञा स्त्री [सं० कच्यु] केवाँच । कौच । वि० दे० 'कौच' ।

कौजर^{१७}—वि० [सं० कौजर] कुँजर संवधी । हार्थी संवधी [को०] ।

कौजर^{१८}—संज्ञा पुं उपवेशन या बँठने का एक तरीका [को०] ।

कौट^{१९}—संज्ञा पुं [अं० काउट] [स्त्री० कौटेंस] यूरोप के कई देशों
के सामंतों तथा बड़े बड़े जमींदारों की उपाधि जिसका दर्जा
ब्रिटिश उपाधि 'अल' के बराबर का है ।

कौठ्य^{२०}—संज्ञा पुं [सं० कौठ्य] भोवरापन । कुठित होना [को०] ।

कौडल, कौडलिक—वि० [सं० कौडल, कौडलिक] कुडलवाला ।
कुँडलधारी [को०] ।

कौडिन्य^{२१}—संज्ञा पुं [सं० कौडिन्य] [स्त्री० कौडिनी] १. कुँडिन
मुनि के गोत्र का व्यक्ति । २. कुँडिन मुनि का पुत्र ।

कौतल—वि० [सं० कौतल] कुतल देश संवधी । कुतल देश का ।

कौतिक—संज्ञा पुं [सं० कौतिक] भालेवाला । बरछा चलावेवाला ।

कौती—संज्ञा स्त्री [सं० कौन्ति] रेणुका नाम का गंधद्रव्य ।

कौतेय^{२२}—संज्ञा पुं [सं० कौतेय] १. कुँती के युधिष्ठिर आदि पुत्र ।
२. अर्जुन वृक्ष ।

कौद^{२३}—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'कोद' । उ०—कैड्री वर बुद्ध ।
राहु सब कौद अहिनी ।—पृ० २१० । १६९ ।

कौध^{२४}—संज्ञा स्त्री [हि० कौधना] विजली की चमक । उ०—नयनों की
नीलम घाटी जिस रसघन से छा जाती हो, वह कौध कि जिसके
अंतर की शीतलता ठंडक पाती हो ।—कामायनी, पृ० १०१ ।

कौधना—क्रि० अ० [सं० कनन + चमकना = क्षय या सं० कक्षय] ।
विजली का चमकना ।

कौधनी^{२५}—संज्ञा स्त्री [सं० किड्ढिणी] करधनी ।

कौधा^{२६}—संज्ञा स्त्री [हि० कौधना] १. विजली की चमक । कौध ।

उ०—(क) कारी घटा सधूम देखिपति अति गति पवन
चलायो । चारो दिशा चित्त किन देखो दामिनि कौधा लायो ।
—सूर । (शब्द०) । २. विजली । उठ कौधा सा स्वरित
राजतोरण पर आया ।—साकेत, पृ० ४०३ ।

कोशनायक--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वह कर्मचारी जिसके जिम्मे खजाने का हिसाब किताब और उसकी रक्षा का भार हो। खजानची।

कोशाध्यक्ष--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुवेर का नाम (को०)।

कोशपति--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कोशाध्यक्ष। खजानची।

कोशपान--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की प्राचीन परीक्षाविधि।

विशेष--इस परीक्षाविधि के अनुसार यह जाना जाता था कि अभियुक्त अपराधी है अथवा नहीं। इसमें अभियुक्त को एक दिन उपवास करने के बाद परीक्षा के समय कुछ प्रनिष्ठित लोगों के सामने तीन चूल्ह जल पीना पड़ता था।

कोशपाल--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ खजाने की रक्षा करनेवाला। २ खजानची। ३. कुवेर (को०)।

कोशपेटक--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह पेटो या सड़क जिसमें खजाना रखा जाता है (को०)।

कोशफल--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अडकोश। २ जायफन। ३ घिया, तरौई, लोकी, ककड़ी, खीरा, कुम्हड़ा इत्यादि का गूँठ।

कोशफला--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] घिया, तरौई, लोकी, ककड़ी, खीरा, कुम्हड़ा आदि की लता।

कोशल--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ सरयू या घाघरा नदी के दोनों तटों पर का देश।

विशेष--उत्तर तटवाले को उत्तर कोशल और दक्षिण तटवाले को दक्षिण कोशल कहते हैं। किसी पुराण में इस देश को पाँच खंड और किसी में सात खंड बतलाए गए हैं। प्राचीन काल में इस देश की राजधानी अयोध्या थी।

२ उपयुक्त देश में बसनेवाली क्षत्रिय जाति। ३ अयोध्या नगर। ४. एक राग जिसमें गांधार और धंवर तो फोमल और शेष सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

कोशला--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कोशल की राजधानी। अयोध्या।

कोशलिक--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] उत्कोच। घूस। रिश्वत।

कोशवासी--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कोशवासिन् [सोप, शख, घोघा आदि में रहनेवाले जीव (को०)।

कोशवृद्धि--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ मूत्रवृद्धि का रोग। २ खजाने का बढ़ना (को०)।

कोशशायिका--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कटार छुरिका आदि शस्त्र जो म्यान में रखे जायें (को०)।

कोशशुद्धि--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दिव्य परीक्षा आदि से प्राप्त या होनेवाली शुद्धता (को०)।

कोशसधि--सञ्ज्ञा स्त्री० [कोशसन्धि] कोश देकर सधि करना। धन देकर किया जानेवाला मेल।

विशेष--कौटिल्य ने लिखा है कि यदि शत्रु कोशसधि करना चाहे तो उसको ऐसे बहुमूल्य पदार्थ दे जिनका कोई खरीने वाला न हो या जो युद्ध के लिये अनुपयोगी हो या जो जांगलिक पदार्थ हों।

कोशस्थ--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार पाँच प्रकार के जीवों में से एक। शख, घोघा आदि इसी के अंतर्गत हैं। इस जाति के

जीव का मांस मधुर, शीतल, वायुनाशक और कफ बढ़ानेवाला होता है।

काशाम--सञ्ज्ञा पुं० [मं० कोशाङ्ग] एक प्रकार का नरकुल या सरकटा (को०)।

कोशाड--सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोशाण्ड] भ्रूंडकोश।

कोशावी--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कोशाव्यो] ३० 'कोशावी'।

कोशागार--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] खजाना। भंडार।

कोशातक--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ यजुर्वेद की कठ नाम की शाखा। २ केश। बाल (को०)। ३. तरौई (को०)।

कोशातकी^१--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ तोरई। तरौई। २ शुक्ल पक्ष की रात (को०)। ३ एक वृक्ष का नाम। पटोल (को०)।

कोशातकी^२--सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोशातकिन्] १ व्यापार। वाणिज्य। २ व्यापारी। २ बढवानल। बढवानि (को०)।

कोशाधिप--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कोशाध्यक्ष। खजानची।

कोशाधिपति--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ३० 'कोशाधिप'।

कोशाघोश--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] खजानची। भंडारी।

कोशाध्यक्ष--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ३० 'कोशाधिप'।

कोशाभिसंहार--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] खजाने की कमी पूरा करना।

विशेष--चारण्य ने इसके कई ढंग बताए हैं, जैसे--(१) बाकी राजकर को एकदम बसूल करना। (२) दान्य का वृत्तीय या चतुर्थ भाग टैक्स में लेना। ३. सोने, चाँदी के उत्पादक, व्यापारियों, व्यवसायियों तथा पशुपालकों से निम्न निम्न ढंग पर राजकर लेना। (४) मदिरा की ग्रामदनी में से कर लेना। (५) धनियों के घरों से धन-गुप्त दूतों द्वारा चोरी करके प्राप्त करना।

कोशाग्र--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कोसम नामक वृक्ष या उसका फल।

कोशिका--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] पानपात्र। घ्रावखोरा (को०)।

कोशिन--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ग्राम का वृक्ष। रसाल वृक्ष (को०)।

कोशिश--सञ्ज्ञा पुं० [फा०] प्रयत्न। चेष्टा। उद्योग। धम।

कोशी--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ कली। कुड्मल। २ बीजकोश। ३ पादुका। ४ अन्न की बालों का ढूँड (को०)।

कोप--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ३० 'कोश'।

कोपकार--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ३० 'कोशकार'।

कोपफल--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कफोल मिर्च। २. ३० 'कोशफल'।

कोपफला--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'कोशफला'।

कोपवृद्धि--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'कोशवृद्धि'।

कोपातक--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ३० 'कोशातक' (को०)।

कोपाध्यक्ष--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कोप का अध्यक्ष या स्वामी। वह जिसके पास कोप रहता है। २ वह जिसके पास किसी व्यक्ति या संस्था का आयव्यय और रोकड़ आदि रहती है। रोकड़िया। खजानची।

कोपिन--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ३० 'कोशिन' (को०)।

कोपी--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'कोशी' (को०)।

कोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. उदर का मध्य भाग। पेट का भीतरी हिस्सा।

यो०—कोष्ठवद्ध। कोष्ठशुद्धि।

२. शरीर के अंदर का कोई वह भाग जो किसी आवरण से घिरा हो और जिसके अंदर कोई विशेष शक्ति रहती हो। जैसे,—पक्वाणय, मूत्राशय, गर्भाशय, आदि। ३. कोठा। घर का भीतरी भाग। ४. वह स्थान जहाँ अन्नसंग्रह किया जाय। गोला। ५. कोग। भंडार। सजाना। ६. प्रकार। कोट। शहरपनाह। चहारदीवारी। ७. वह स्थान जो किसी प्रकार चारों ओर से घिरा हो। ८. शरीर के भीतरी छह चक्रों में से एक, जो नाभि के पास है। इसे मणिपूर भी कहते हैं। ९. दे० 'कोष्ठक'—३।

कोष्ठक—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी प्रकार की दीवार, लकीर या और कोई चीज जो किसी स्थान या पद को घेरने के काम में आती हो। २. किसी प्रकार का चक्र जिसमें बहुत से खाने या घर हों। सारणी। ३. निम्नलिखित में एक प्रकार का चिह्नो का जोड़ा

जिसके अंदर कुछ वाक्य या अक्षर आदि लिखे जाते हैं। यह कई प्रकार का होता है, जैसे,—(), [] आदि।

विशेष—(क) जब यह चिह्न किसी वाक्य के अंतर्गत आता है, तब इसके अंदर आए हुए शब्दों का परस्पर तो व्याकरण संबंध होता है,

१				६
	२		५	
		३		
	७			४
६				५

[कोष्ठक सारणी]

पर प्रधान वाक्य से व्याख्यान या निदर्शनरूप अव्यवस्था होते हुए भी प्रायः उसका व्याकरणसंबंध नहीं होता। (ख) गणित में इन चिह्नों के अंतर्गत आए हुए अंक कुन मिलकर एक समझे जाते हैं और उनमें से किसी एक अंक का कोष्ठक के बाहरवाले किसी अंक से कोई स्वतंत्र संबंध नहीं होता।

४. कोष्ठ। भंडार। ५. चहारदीवारी। ६. ईंट, चूना आदि से निर्मित वह स्थान जहाँ पशु जल पीते हों (को०)।

कोष्ठपाल—संज्ञा पुं० [सं०] किसी नगर या स्थान की रक्षा करनेवाला व्यक्ति।

कोष्ठवद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] पेट में मल का रकना। कब्जित।

कोष्ठवद्धता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कोष्ठवद्ध'।

कोष्ठशुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पेट का मलरहित और बिल्कुल साफ हो जाना।

कोष्ठागार—संज्ञा पुं० [सं०] भंडार। भंडारखाना।

कोष्ठागारिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. भंडारी। भंडारगृह का प्रधान।

२. कोष में रहनेवाला जीव (को०)।

कोष्ठाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाचन शक्ति। जठराग्नि (को०)।

कोष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह पत्र जिसमें किसी मनुष्य के जन्मकाल और ग्रह, नक्षत्र आदि बिंदु हों। जन्मपत्री।

कोष्ण—वि० [सं०] कुछ गरम और कुछ ठंडा। कटुष्ण। कुनकुना।

कोस^१—संज्ञा पुं० [सं० कोश] दूरी की एक नाप जो प्राचीन काल में ४००० हाथ, या किसी किसी के मत से ८००० हाथ की होती थी। आधुनिक कोस प्रायः दो मील का माना जाता है।

मुहा०—कोसो या काले कोसो = बहुत दूर। कोसो दूर रहना = अलग रहना। बहुत बचना। कोसो भागना = दे० कोसों दूर रहना।

कोस^२—संज्ञा पुं० [सं० कोश] फूल का संगुट। फूल के भीतर का वह स्थान जहाँ मकरंद रहता है। उ०—कैवल प्रवेश मेंवर जो किया। कोस भूकोर सजन रस लिया।—माधवानन्द, पृ० १६८।

कोसक^१—संज्ञा पुं० [सं० कोशिक] दे० 'कोशिक'। उ०—एक दिहाड़े मुनिराज अजोबा कोसक भाव कीधी।—रघु० ह०, पृ० ६४।

कोसना—वि० सं० [सं० कोशन] शाप के रूप में गालियाँ देना। दुर्वचन कहकर बुरा मानना।

मुहा०—पानी पी पीकर कोसना = बहुत अधिक कोसना। कोसना फाटना = शाप और गाली देना।

कोसभ—संज्ञा पुं० [सं० कोशाभ] दे० 'कोसम'।

कोसम—संज्ञा पुं० [सं० कोशाभ] एक प्रकार का बड़ा पेड़ जिसके बीज औषध के काम आते हैं।

विशेष—यह पेड़ पंजाब, मध्य भारत और मद्रास में अधिकता से होता है और इसका पतझड़ प्रतिवर्ष होता है। इसके हीरे की लहड़ी ललाई लिए हुए भूरी, बहुत कड़ी और मजबूत होती है और इमारत के काम में आती है। इससे हन और खेती के औजार भी बनाए जाते हैं। इसमें लाख बहुत लगती है और बहुत अच्छी होती है। इसका फल कुछ खट्टापन लिए हुए मीठा होता है। वैद्यक में इसका फल उष्ण, गुण, रित्तवर्द्धक और दाहकारक माना गया है। इसके बीजों से एक प्रकार का तेल निकलता है, जो वैद्यक के अनुसार सारक, पाचक और वनकारक होता है। सुश्रुत में लिखा है कि इन तेल के मलने से कोढ़ या फोड़ा अच्छा हो जाता है।

कोसल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कोशन'।

कोसला—संज्ञा स्त्री० [सं०] मयोध्या नगरी (को०)।

कोसली—संज्ञा स्त्री० [सं०] पांडव जाति की एक राक्षसी जिसमें ऋषभ वर्जित है।

कोसा^१—संज्ञा पुं० [हि० कोग] एक प्रकार का रेशम जो मध्यभारत में अधिक होता है।

कोसा^२—संज्ञा पुं० [न० कोश = प्याला] [को० कोसिया] मिट्टी का बड़ा दिया जो घड़ा ठकने या खाने पीने की वस्तुएं रखने के काम में आता है।

कोसा^३—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कोशाकाटी'।

कोसा^४—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का गाढ़ा रस या अम्लेह जो चित्तनी सुपागे बनाते समय सुपादियों को उगलने पर तयार होता है और जिसकी सहायता से पटिया दबों की सुपादियाँ रोगी और स्वस्थित बनाई जाती हैं।

दिया। उन्हीं दोनों के संयोग से कोल वंश की उत्पत्ति हुई। स्कंद पुराण के हिमवत् खंड लिखा है कि कोल एक स्लेच्छ जाति थी जो हिमालय में शिकार करती हुई घूमा करती थी। १२ एक जंगली जाति। उ०—वन हित कोल किरात किसोरी। रचो मिरचि पिपय सुख मोरी।—मानस, २। ६०। विशेष—ब्रह्मवैवर्त पुराण में कोल को लोट पुरुष और तीवर स्त्री से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति लिखा है। स्कंदपुराण में इसे स्लेच्छ जाति लिखा है। पद्मपुराण में लिखा है कि जब यवन, पल्लव, कोलि, सर्प आदि सगर के भय से वशिष्ठ की शरण में आए, तब उन्होंने उनका सिर आदि मुड़ाकर उन्हें केवल संस्कारभ्रष्ट कर दिया। आजकल जो कोल नाम की एक जंगली जाति है, वह आर्यों से स्वतंत्र एक आदिम जाति जान पड़ती है, और छोटा नागपुर से लेकर मिरजापुर के जंगलों तक फैली हुई है।

कोल^२—संज्ञा पुं० [सं० कवल] चवेना। दाना। चरवन।

कोलकद—संज्ञा पुं० [सं० कोलकन्द] एक प्रकार का कंद।

विशेष—काश्मीर में इसे पडालू कहते हैं। यह गरम होता है और कृमिदोष दूर करता है। इस कंद के ऊपर सुग्ग के से रोएँ होते हैं, इसलिये इसे बाराही कद भी कहते हैं।

कोलक^१—संज्ञा पुं० [सं०] अखरोट का पेड़। २. काली मिरचि। ३. शीतलचीनी।

कोलक^२—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा लम्बा शीजारा जिसकी गतह पर दनदाने होते हैं। इससे रेती और आरी तेज की जाती है।

कोलककंटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] खजूर का एक प्रकार [को०]।

कोलका—संज्ञा स्त्री० [सं० कोलक] गोल मिर्च। उ०—तिक्ता उछना

कोलका फलफला पुनि नाउ।—अनेकार्यं, पृ० ८०।

कोलकुण—संज्ञा पुं० [सं०] मत्स्य। खटमल [को०]।

कोलगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण भारत का कोनाचल नामक पर्वत। इसे कोलमलय भी कहते हैं।

कोलदल—संज्ञा पुं० [सं०] नख नामक गव्यद्रव्य।

कोलना—क्रि० प्र० [सं० कोडन] लफड़ी, पत्यर आदि को बीच से खोदकर पोला या खारी करना। † २ काढ़ लेना। उ०—धुनि सुनि और होति गिर चर गति औरि विचारिनि की मति कोलै।—घनानंद पृ० ४०५।

कोलपार—संज्ञा पुं० [देश०] मकोने कद का एक प्रकार का वृक्ष।

विशेष—यह बराबर और दारजिलिंग की तराईयों में होता है। इसमें एक प्रकार की कलियाँ लगती हैं, जिनका मुरब्बा बनता है। इसकी लकड़ी मजबूत होती है और खेती के शीजारा बनाने और इमारत के काम में आती है। चीरने के समय लकड़ी का रंग अदर से गुलाबी निकलता है, पर हवा लगने से वह काला हो जाता है। इसे सोना भी कहते हैं।

कोलपुच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद चील। कफ। कक।

कोलमूल—संज्ञा पुं० [सं०] पिप्पलीमूल [को०]।

कोलशिबो—संज्ञा स्त्री० [सं० कोलशिबो] सेम की फली।

कोलसा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इगरी'।

कोला^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ छोटी पीपल। पिप्पली। २. चम्प। ३. बेर का पेड़।

कोला^२—संज्ञा पुं० [देश०] गीदड़।

कोला^३—संज्ञा पुं० [ग्र०] अफ्रीका के गर्म प्रदेशों में होनेवाला एक पेड़ जिसके फल अखरोट की तरह होते हैं।

विशेष—इसके फलों के बीजों में अस्वाद दूर करने और नसे का चस्का छुड़ाने का गुण होता है। ये बीज निर्मली के समान जल साफ करने के काम में भी आते हैं।

कोलाहट—संज्ञा पुं० [सं०] वह नृत्य में प्रवीण मनुष्य जिसके अंग नृत्य टूटें हों, जो अंगों को घूँव मोड़माड़ सकता हो जो तलवार की धार पर नाच सकता हो और जो मुँह से मीठी पिरों सकता हो।

कोलाहल—संज्ञा पुं० [सं०] १ बहुत से लोगों की अस्पष्ट चिल्लाहट। शोर। होरा। हल्ला। रोना।

क्रि० प्र०—फरना।—मचाना।—होना।

२. सपूर्ण जाति का एक संकर राग जो कल्याण कान्हुड़ा और विहाण के मेल से बनता है। इसमें मय गुडम्वर' गते हैं।

कोलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] बदरी। बेर। फक घु [को०]।

कोलिआर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का भाड़ोदार पेड़।

विशेष—यह वृक्ष हिमालय, उरना और मध्य तथा दक्षिण भारत में होता है। इससे एक प्रकार का गोंद निकलता है और इसकी छाल रँगने और चमड़ा सिक्काने के काम में आती है इसकी पत्तियाँ चारे के कान में आती हैं। बरई में इसकी पत्तियों में तमाकू या सुरती लपेटकर पीयी बनाती हैं।

कोलिक—संज्ञा स्त्री० [सं० कोलिक] जुनाहा। तबुवाय।

कोलिवल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कोलिवल्लिका] कपिलता। केवाच।—अनेकार्यं, पृ० २८।

कोलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० कोल=रास्ता] १ तग रास्ता। पतली गली। २. वह खेत जिसका आकार पतला और लंबा हो।

कोलियाना^१—क्रि० प्र० [हिं० कोलिया+ना (प्रत्य०)] १. कोलियाना^२—संज्ञा पुं० [हिं० कोली+घाना (प्रत्य०)] किसी गाँव का वह भाग या स्थान जहाँ कोई रहते हो कोलियों के रहने का स्थान।

कोली^१—संज्ञा स्त्री० [सं० कोड़, प्रा० कोल] १. आलिंगन के समय दोनों भुजाओं के बीच का स्थान। गोद। अँकवार।

क्रि० प्र०—मे भरना या लेना।—भरना।

२. कोना। कोण। ३. दे० 'कोलिया'।

कोली^२—संज्ञा पुं० [हिं० कोरी] हिंदू जुनाहा। कोरी। उ०—हाड़ देख के तजत तिय ज्यो कोली की रूप। त्योही घोरे केस लखि बुरी लगत नर रूप।—ग्र० प्र०, पृ० ७८।

कोली^३—संज्ञा स्त्री० [?] वह कासापन जो हाथों और पैरों में मेहरी लगाने के काम में आता है।

कोली^५—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेर का पेड़। बदरी [को०]।

कोलेंदा—संज्ञा पुं० [सं० कोल=वेर+अण्ड] महुए का पका फल।

गोलेंदा। कोइना।

कोल्हा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पीपर। पिपली [को०]।

कोल्हाड—संज्ञा पुं० [हिं० कोल्हा + आर (प्रत्य०)]। वह स्थान जहाँ ऊख पेरकर रस निकाला और गुड़ बनाया जाता हो।

कोल्हुआ^१—संज्ञा पुं० [हिं० कूल्हा] कुश्ती का एक पेंच। ३० 'कूल्हा'।

कोल्हुआ^२—संज्ञा पुं० [हिं०] ३० 'कोल्हू'।

कोल्हुआडा—संज्ञा पुं० [हिं०] ३० 'कोल्हाड'।

कोल्हू—संज्ञा पुं० [हिं० कूल्हा या देश०] तेल या ऊख पेरने का यंत्र जो कुछ कुछ डमरू के आकार का बहुत बड़ा होता है।

विशेष—यह प्रायः पत्थर का और कभी कभी लकड़ी या लोहे का भी होता है। इसके बीच में थोड़ा सा खोखला स्थान होता है जिसे ढांडी या कूँड़ी कहते हैं। इसके पेंदे में एक नाली होती है जिसमें से तेल या रस निकलकर बाहर की ओर रखे हुए बरतन में गिरता है। कूँड़ी के मध्य में लकड़ी का मोटा और ऊँचा लट्ठा लगा रहता है जिसे जाठ कहते हैं। यह जाठ नचे हुए बेल या बेलों के चक्कर काटने से घूमती है, जिसके कारण कूँड़ी में डाली हुई चीज पर उसकी दाब पड़ती है।

क्रि० प्र०—पेरना।—चलगना।

मुहां०—कोल्हू काटकर भोगरी बनाना=कोई छोटी चीज बनाने के लिये बड़ी चीज नष्ट करना। थोड़े में लाभ के लिये बहुत सी हानि करना। कोल्हू का बेल=(१) बहुत कठिन परिश्रम करनेवाला। दिन रात काम करनेवाला। (२) एक ही जगह बार बार चक्कर लगानेवाला। कोल्हू में डालकर पेरना=बहुत अधिक कष्ट पट्टा चक्कर प्राण लेना। बहुत दुख देकर जान से मारना।

कोल्हेना^१—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मोटा चावल जो पंजाब में होता है।

कोवड^७, कोवड^८—संज्ञा पुं० [सं० कोदण्ड] ३० 'कोदड'। उ०—कर करपि कोवड वान।—पृ० २१०, ६६। १४८५।

कोवा—संज्ञा पुं० [सं० कोश] कटहल का बीज जिस कोश में रहता है। कोषा। उ०—कटहर कोवा मेवा ल्यावों सोड पवात्रों प्यारा।—जग० श०, भा० १, पृ० ११।

कोवारी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जलपत्ती।

कोविद—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कोविदा] पंडित। विद्वान्। कृतविद्य। उ०—केलि कलाप कोविदा रहै। प्रेम भरी मद गज जिमि चहै।—नंद ग्रं०, पृ० १४७।

कोविदार—संज्ञा पुं० [सं०] १. कचनार का पेड़। २. कचनार का फूल।

कोश—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंड। अंडा। २. सपुट। डिब्बा। गोलक। जैसे, नेत्रकोश। ३. फूलों की बँधी कली। ४. मद्यपाय। शराब का प्याला। ५. पत्रपात्र नामक पूजा का वरतन। ६. २-६८

तलवार, कटार आदि का स्थान। ७. आवरण। खोल। जैसे,—बीजकोश।

विशेष—वेदांती लोग मनुष्य में पाँच कोशों की कल्पना करते हैं—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय। अन्न से उत्पन्न और अन्न ही के आधार पर रहने के कारण देह को अन्नमय कहते हैं। पंच कर्मेन्द्रियों के सहित प्राण, यमान आदि पंचप्राणों को प्राणमय कोश कहते हैं, जिसके साथ मिलकर देह सब क्रियाएँ करती है। श्रोत्र, चक्षु आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियों के सहित मन को मनोमय कोश कहते हैं। यही मनोमय कोश अविद्या रूप है और इसी से सासारिक विषयों की प्रतीति होती है। पंच ज्ञानेन्द्रियों के सहित बुद्धि को विज्ञानमय कोश कहते हैं। यही विज्ञानमय कोश कर्तृत्व मोक्षत्व, सुख, दुःख आदि अहंकारविशिष्ट पुण्य के संसार का कारण है। सत्त्वगुणविशिष्ट परमात्मा के आवरण का नाम आनंदमय कोश है।

८. थली। ९. संचित धन। १०. वह ग्रंथ जिसमें ग्रंथ या पर्वण्य के सहित शब्द इकट्ठे किए गए हों। ग्रन्थिघान। जैसे, अमरकोश। मेदिनीकोश। ११. समूह। १२. खान से ताजा निकला हुआ सोना या चाँदी। १३. अंडकोश। १४. योनि। १५. सुश्रुत के अनुसार घाव पर बाँधने की एक प्रकार की पट्टी। १६. एक प्रकार का पात्र जिसका व्यवहार प्राचीन काल में दो राजाओं के बीच संधि स्थिर करने में होता था। १७. ज्योतिष में एक योग जो शनि और बृहस्पति के साथ किसी तीसरे ग्रह के आने से होता है। १८. रेशम का कोषा। कुसयारी। १९. कटहल आदि फलों का कोषा। २०. दे० 'कोशपान'। २१. घनागार। खजाना (को०)। २२. वादल। मेघ (को०)। २३. लिए। शिशन (को०)। २४. तरल वस्तुओं के रखने का पात्र। (को०)।

कोशक—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंडा। २. अंडकोश (को०)।

कोशकार—संज्ञा पुं० [सं०] १. तलवार, कटार आदि के लिये स्थान बनानेवाला। २. शब्दकोश बनानेवाला। ग्रंथ सहित शब्दों का क्रमानुसार संग्रह करनेवाला। ३. रेशम का कीड़ा। ४. एक प्रकार की ऊख। कुसियार।

कोशकार—संज्ञा पुं० [सं०] रेशम का कीड़ा (को०)।

कोशकीट—संज्ञा पुं० [सं०] रेशम का कीड़ा।

कोशकृत—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की ईख (को०)।

कोशगृह—संज्ञा पुं० [सं०] १. मंडारघर। २. घनागार। खजाना (को०)।

कोशग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की प्राचीन काल की परीक्षा-विधि। कोशपान (को०)।

कोशचंचु—संज्ञा पुं० [सं० कोशचञ्चु] सरहंस पक्षी। सारस (को०)।

कोशचक्षु—संज्ञा पुं० [सं०] सारस।

कोशज—संज्ञा [सं०] १. रेशम। २. सीप, शंख, घोंघे आदि में रहनेवाले जीव। २. मोती। मुक्ता।

कोरम—सञ्ज्ञा पुं० [अं०] किसी सभा या समिति के उतने सदस्य जितने की उपस्थिति कार्यनिर्वाह के लिये आवश्यक होती है। किसी सभा या समिति के उतने सदस्य जितने के उपस्थित रहने पर सभा का कार्य प्रारम्भ होता है। कार्यनिर्वाहक सदस्य-संख्या। गणपूर्ति। जैसे,—साधारण सभा का कोरम ६ सदस्यों का है, दर ६ ही उपस्थित हुए, कोरम पूरा न होने के कारण अधिवेशन न हो सका।

कोरमकोर—वि० [हि० कोरमकोर] १ पूर्णतः। पूरी तोर से। २. एकमात्र। सिर्फ। उ०—ये दोनों लेखक मनुष्य के नैतिक व्यवित्तव को कोरमकोर अर्थाश्रित मानते हैं और क्षण क्षण में उसकी खिल्ली उड़ाने को तैयार रहते हैं।—नया०, पृ० १७।

कोरमा—सञ्ज्ञा पुं० [तु०] अधिक घी में भुना हुआ एक प्रकार का मास जिसमें जल का अश या शोरवा बिलकुल नहीं होता।

कोरवस—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] मदरास के आसपास रहनेवाली एक जाति। विशेष—इस जाति के लोग प्रायः दोरियाँ आदि बनाते और सारे भारत में घूम घूमकर अनेक प्रकार के पक्षियों के पर एकत्र करते हैं।

कोरवा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] १. पान की खेती का दूसरा वर्ष। विशेष—जो पान षोढो में दूसरे वर्ष लगता है वह अधिक उत्तम माना जाता है।

२. दे० 'कोरा'।

कोरस—सञ्ज्ञा पुं० [अं०] पाँच सात व्यक्तियों का एक साथ गान। समवेत गान। समूहिक गान। उ०—रंगभूमि को कोरस सो रस कव वरसार्व।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ४६।

कोरसाकेन—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक बड़ा और सुहावना पेड़।

विशेष—यह अवध, बगाल, आसाम और मदरास में अधिकता से होता है। लगाते ही यह पेड़ बहुत जल्दी बढ जाता है और घना तथा छायादार हो जाता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है जो अधिक दामो पर बिकती और इमारत के काम में आती है।

कोरहना—सञ्ज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का घान। उ०—कोरहन बड़हन जड़हन मिला। ओ ससार तिलक खंडविला।—जायसी (शब्द०)।

कोरहा[†]—वि० [हि० कोर+हा (प्रत्य०)] [स्त्री० कोरही] कोरदार। नोकदार। २. मन में किसी बात की कोर कसर बनाए रखनेवाला। बुराई का बदला लेनेवाला।

यो०—कोरही सबरी=कसेरों की वह पतली और छोटी सबरी जो महीन काम करने के लिये होती है।

कोरहा^२—वि० [हि० कोरा=गोद] गोद में बहुत रहनेवाला।

कोरा[†]—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोड] गोद। उद्ग। उ०—नैन जो चक्र फिरि चहुँ ओरी। चरच घाइ समाइ व कोरी।—जायसी ग्र०, पृ० २३७।

कोरा^१—वि० [सं० केवल] [स्त्री० कोरी] १ जो बरतान गया हो। जिसका भवदार न हुआ हो। नया। अछूता।

मुहा०—कोरा छुरा या उत्तरा=वह उत्तरा जिसपर ताजा सान रखा हो। वह सान रखा हुआ छुरा जो चलाया न गया हो। कोरे छुरे या उत्तरे से मूँड़ना=(१) ताजी धार के छुरे से सिर मूँड़ना, जिसमें बाल जबसे मुड़ जाय अथवा बटा कष्ट हो। (२) सूखा मूँड़ना। बिना पानी लगाए मूँड़ना। (३) खूब लूटना। खूब झँसना। कोरी धार या बाढ़=हथियार की धार जिसपर सान रखा हो। तीक्ष्ण धार। कोरा पिंडा=अछूता शरीर। बिना व्याहा पुरुष या विनव्याही स्त्री। २. (कपडा या मिट्टी का बरतन) जो धोया न गया हो। जिससे जल का स्पर्श न हुआ हो। जैसे, कोरा घड़ा। कोरा कपडा। कोरा नैनसुख।

मुहा०—कोरा बरतन=(१) मिट्टी का वह बरतन जिसमें पाणी न डाला गया हो (२) नवोडा स्त्री। अछूती कुमारी। (बाजारू)। कोरा सिर=(१) वह सिर जिसमें छुरा न लगा हो। वह सिर जिसमें पेट के बाल हो। (२) वह मला हुआ सिर जिसमें तेल न लगा हो।

३. जो रंगा न गया हो। जिसपर कुछ लिखा या चित्रित न किया गया हो। जिसपर कोई दाग या चिह्न न हो। सादा। साफ। जैसे,—कोरा कागज।

मुहा०—कोरा जवाब=साफ इत्कार। स्पष्ट शब्दों में अस्वीकार।

४. खाली। रहित। वंचित। विहीन। जैसे,—उन्हे कुछ वही मिला, वे कोरे लौट आए।

मुहा०—कोरा रह जाना=कुछ न पाना। सिद्धि लाभ न करना। वंचित रह जाना।

५. जिनपर कोई आघात या बुरा प्रभाव न पड़ने पाया हो। आपत्ति या दोष से रक्षित। निरापद या निष्कलक। वेदाग।

मुहा०—कोरा बचना=किसी आपत्ति या दोष से साफ बचना।

६. विद्याविहीन। मूर्ख। अपठ। जड़। ७. धनहीन। अकिंचन।

८. केवल। सिर्फ। खाली। जैसे—कोरी बातों से काम न चलेगा।

कोरा^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करक] एक चिड़िया जो तालों के किनारे रहती है। इसकी चोंच पीली और परं लाख होते हैं। यह जेठ असाढ़ में अढा देती है और ऋतु के अनुसार रंग बदलती है।

कोरा^४—सञ्ज्ञा पुं० [?] बिना किनारे की रेशमी धोती।

कोरा^५—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोड़] गोद। उछग।

क्रि० प्र०—लेना।

कोरा^६—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] १. एक छोटा पेड़।

विशेष—यह गढ़वाल, वरार, मध्यप्रदेश और आसाम में बहुतायत से होता है। यह पेड़ कद में छोटा होता है। इसके हीर की लकड़ी सफेद, चिकनी और नरम होती है। देहरादून और सहारनपुर में इसपर खोदाई का काम होता है। इसकी छाल, फल और पत्ते दवा के काम में आते हैं।

२. एक प्रकार का सलमा जो कारचोवी के काम में आता है।

३. ऊख के खेत की पहली सिंचाई।

कोरा^१—संज्ञा पुं० दे० 'चकोर' । उ०—जैसे स्नेह चंद कब कोरा ।

कबीर सा०, पृ० २०८ ।

कोरात—संज्ञा पुं० [फा० कुशन] दे० 'कुरान' ।

कोरापन—संज्ञा पुं० [हि० कोरा + पन (प्रत्य०)] नवीनता । अछूनापन ।

कोराहर^१—संज्ञा पुं० [म० कोलाहल] दे० 'कोलाहल' । उ०—

कुहकहि मोर मुहावन लागी । होइ कोराहर बोलहि कागा ।—

जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १३६ ।

कोरि^१—वि० [सं० कोटि] दे० 'कोटि' । उ०—ब्रजनिधि चतुर सुजान
उनको कबहु न तोरिए । वे ही जीवन प्रान कोरि नांति करि
जोरिए ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ३५ ।

कोरिया^१—संज्ञा पुं० [हि० कोरी] १ दे० 'कोरी' । उ०—डूँडि
फिरे घर कोउ न बतायो स्वपच कोरिया लौ ।—
सूर०, १।१५१ ।

कोरी^१—संज्ञा पुं० [सं० कोल = सुप्र] [झी० कोरिन] हिंदूओं की
एक जाति जो सादे और मोटे कपड़े बुनती है । हिंदू
बुलाहा । उ०—ज्यो कोरी रंजा बुनै, नियरा आवै छोर ।—
कबीर ना० सं० पृ० ७७ ।

कोरी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० कोटि या अ० स्कोर] बीस वस्तुओं का
समूह । कोड़ी ।

कोरी^३—वि० स्त्री० [हि० कोरा] १ जो काम में न लाई गई हो ।
अछूती । नवीन । २. जिसपर रंग न चढ़ा हो । जिसपर कुछ
न लिखा गया हो । सादी । वि० दे० 'कोरा' ।

कोरैया^१—संज्ञा पुं० [सं० कुटज या देश०] बनवेला । कुरैया । उ०—
बनवेले (कोरैया) ने फूलकर बाग के वेलो को लजाया ।—
प्रेमघन०, भा० २, पृ० १२ ।

कोरो^१—संज्ञा पुं० [हि० कोर] १ वह लकड़ी जिससे पनवारी का भीटा
छाया जाता है । २ काँड़ी जो छपरल में लगती है । ३ रेंड
का सूखा पेड़ ।

कोर्ट^१—संज्ञा पुं० [अ०] अदालत । कचहरी ।

कोर्ट^२—संज्ञा पुं० [अ०] कोर्ट पीस नामक ताश के खेल में एक
प्रकार की जीत जो लगातार सात हाथ जीतने से होनी और
सात गजियाँ जीतने के बराबर समझी जाती है ।

कोर्ट आफ वार्डस्—संज्ञा पुं० [अ०] वह सरकारी विभाग जिसके
द्वारा किसी अन्याय, विधवा या अयोग्य मनुष्य की भारी
जायदाद का प्रबंध होता है । कोर्ट ।

विशेष—जब से जमींदारी प्रथा समाप्त हुई यह विभाग बंद कर
दिया गया ।

कोर्ट इसपेक्टर—संज्ञा पुं० [अ०] पुलिस का वह कर्मचारी जो पुलिस
की ओर से फौजदारी मुकदमों की परबो करता है ।

कोर्टपीस—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का ताश का खेल जो चार
आदमियों में होता है ।

कोर्टपीस—संज्ञा स्त्री० [अ० कोर्ट + पी] अदालती रसम ।

विशेष—दे० 'रसम' ।

कोर्ट मार्शल—संज्ञा पुं० [अ०] फौजी अदालत जिसमें सेना के नियमों

की मग करनेवाले, सेना छोड़कर भागनेवाले तथा वाणी
सिपाहियों का विचार होता है ।

कोर्टशिप—संज्ञा स्त्री० [अ०] एक पाश्चात्य प्रथा जिसके अनुसार
पुरुष किसी स्त्री को अपने साथ विवाह करने के निवे उत्तम और
अनुकूल करना है । कन्याश्रवण ।

विशेष—यह प्रथा यूरोप, अमेरिका आदि सभ्य देशों में प्रचलित
है । प्राचीन काल में शायी में भी यह प्रथा थी, पर अब भारत
की केवल कुछ असभ्य जातियों में ही देखी जाती है । यह
प्रथा स्मृतियों के प्राठ प्रकार के विवाहों में से माधव विवाह के
अंतर्गत समझी जाती है ।

कोर्निस—संज्ञा स्त्री० [तु० कुनुश] १ अग्निवादन । नमस्कार ।
सन्नाम । वंदना । २ सती में एक घासन का नाम जो भजन
के समय लगाया जाता है । उ०—त्रप और भजन दो घासनों
में किए जाते हैं । प्रथम घासन को 'कोर्निस' कहते हैं ।—
सं० दरिया०, पृ० ३२ ।

कोर्निसि^१—संज्ञा पुं० [तु० कुनुश] अग्निवदन । उ०—दस्त जोरि
कोर्निसि किया प्रेम प्रीति लव साय ।—सं० दरिया० पृ० ५ ।

कोर्मा—संज्ञा पुं० [तु० कोर्मह] घी में बना हुआ मास । उ०—पहले वह
दस दस दोस्तों के साथ, नवावी दस्तरखान सजाकर बैठते,
कोर्मा होता, कलिया होती, और रात रात भर बीतने के
काग फटाफट खुलते रहते ।—शराबी, पृ० १०४ ।

कोर्स—संज्ञा पुं० [अ०] उन विषयों का क्रम जो किसी विश्वविद्यालय
स्कूल, कालेज, आदि में पढ़ाए जाते हैं । पाठ्यक्रम । जैसे,—
इस बार बी० ए० के कोर्स में शकुंतला के स्वान पर भवभूति
कृत 'उत्तररामचरित' रखा गया है ।

कोलबक—संज्ञा पुं० [म० कोलम्बक] बीणा का तूँवा और डंडा ।

कोउ—संज्ञा पुं० [सं०] १ सुप्र । शूकर । उ०—कमठ पीठ पर
कोल कोल पर फन फनिद फन ।—मकबरी०, पृ० १४६ ।

२. गोद । उत्संग । ३. यालिगन करने में दोनों भूजाओं के
बीच का स्थान ४. चीता नाम की शोषधि । चित्रक ।
५. शनैश्चर ग्रह । ६. वेर । बदरीकृत । ७. एक तीन जो
तोले नर की होती है । ८. काली मिर्च । ९. शीतलचीनी ।
चव्य नाम की शोषधि । १०. पुष्पजी या श्रीकृष्ण नामक राजा
का पुत्र । ११. एक प्रदेश या राज्य का प्राचीन नाम ।

विशेष—हरिवंश में कोल राज्य का नाम दक्षिण के पांडव और
केरल के साथ आया है । पर बौद्ध ग्रंथों में कोल राज्य कपिनवस्तु
के पूर्व रोहिणी नदी के उस पार बताया गया है । मुद्गोदन
और सिद्धार्थ दोनों का विवाह इसी वंश में हुआ था । इस
कोल वंश के विषय में बौद्धों में ऐसा प्रसिद्ध है कि इक्ष्वाकुवंश
के चार पुत्र अपनी कोटिज बहन की हिमालय के प्रचन में ले
गए और उसे एक गुफा में बंद कर आए । कुछ दिनों के
उपरांत हाथी का एक कोटी राजा भी उसी स्थान पर पहुँचा
और काली मिर्च (कोल) याकर अच्छा हो गया । राजा ने
एक दिन देखा कि एक सिंह उस गुफा के द्वार पर रमे हुए
पत्थर की हड्डाना चाहता है । राजा ने सिंह को मारा और
गुहा से उस कन्या का उद्धार करके उसका दुष्ट रोग छुड़ा

कोमल^१—वि० [सं०] [सद्वा कोमलता] १. मृदु । मुलायम । नरम ।
२ सुकुमार । नाजुक । ३ अपरिपक्व । कच्चा । जैसे—
कोमलमति वालक । ४ सुदर । मनोहर ।

यो०—कोमलचित्त=वह चित्त जो शीघ्र द्रवित हो जाय ।
दयापूर्ण चित्त ।

कोमल^२—सद्वा पुं० १ सगीत में स्वर का एक भेद ।

विशेष—सगीत में स्वर तीन प्रकार के होते हैं—शुद्ध, तीव्र और कोमल । पञ्चम और पञ्चम शुद्धस्वर हैं, और इनमें किसी प्रकार का विकार नहीं होता । शेष पाँचों स्वर (ऋषभ, गंधर्व, मध्यम, धैवत और निषाद) कोमल और तीव्र दो प्रकार के होते हैं । जो स्वर धीमा और अपने स्थान से कुछ नीचा हो, वह कोमल कहलाता है । धीमेपन के विचार से कोमल के भी तीन भेद होते हैं—कोमल, कोमलतर और कोमलतम ।
२ मृत्तिका । मिट्टी (को०) । ३ जातीफल । जायफल (को०) । ४ जल (को०) । ५. रेशम (को०) ।

कोमलक—सद्वा पुं० [सं०] कमल की नाल का रेशा । मृणालतंतु (को०) ।

कोमलता—सद्वा स्त्री० [सं०] १ मृदुलता । मुलायमियत । नरमी । २. कोमलाग—वि० [सं०] कोमलाङ्गी [वि० स्त्री० कोमलांगी] कोमल अंगोंवाला । जिसका शरीर मृदुल हो ।

कोमलांगी—वि० [सं०] कोमलाङ्गी सुकुमार अंगोंवाली ।

कोमला—सद्वा स्त्री० [सं०] १ वह वृत्ति जिसके अनुप्रासों में व्यासपद हो, पर उसकी मधुरता बनी रहे । इसके दूसरे नाम प्रसाद और लाठी या लाटानुप्रास हैं । २ खिरनी का पेड़ ।

कोमासिका—सद्वा स्त्री० [सं०] फलों के लिये छोटी जानी (को०) ।

कोयल^३—सर्व० [सं०] कोयल, हिं० कोई कोई भी । उ०—(क) जुगन जुगन समभावत हारा, कही न मानत कोय रे ।—कबीर श०, पृ० ३५ । (ख) मदामद बोलए सर्व कोय पियइत नीम बाँक मुँह होंय ।—विद्यापति, पृ० २८३ ।

कोयला—सद्वा पुं० [सं०] कर्ता, प्रा० कर्ता=छाया ताड़ी टपकाने-वालों का एक औजार जिससे वे छेव लगाते हैं ।

कोयरी—सद्वा पुं० [सं०] कोयल १ साग पात । सज्जी । तरकारी । २ वह हरा चारा जो गौ बैल आदि को दिया जाता है ।

कोयरी—सद्वा पुं० [हिं०] दे० कोइरी । उ०—यौ ही कोइरी और काछी भी अछी तरकारी और भाजी देख राजी हुए ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १८ ।

कोयल^१—सद्वा स्त्री० [सं०] कोयल काले रंग की एक प्रकार की चिड़िया । कोयल । कोइली ।

विशेष—यह आकार में कोवे से कुछ छोटी होती है और मैदानों में बसत ऋतु के आरंभ से वर्षा के अंत तक रहती है यह चिड़िया सारे ससार में पाई जाती है, और प्रायः सभी भाषाओं में इसके नाम भी इसके स्वर के अनुकरण पर बने हैं । भारत में कोयल अपने अड़े कोवे के घोंसले में रख देती और वही उसमें से बच्चा निकलता है । इसी लिए इसे संस्कृत

में 'अन्यपुष्ट' 'परमृत' भी कहते हैं । इसकी आँखें लाल, बीच-बीच में भुकी हुई घोर दुम चौड़ी तथा गोल होती है । इसका स्वर बहुत ही मधुर और प्रिय होता है । बँधक के अनुसार इसका मांस पित्तनाशक और कफ घटानेवाला है ।

कोयल^२—सद्वा स्त्री० एक प्रकार की लता । अपराजिता ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ गुनाव में मिलनी जुननी, पर कुछ छोटी होती हैं । इसमें नीले और सफेद फूल होते हैं, और एक प्रकार की फलियाँ लगती हैं । इसका प्रयोग औषधियों में बहुत होता है । बँधक के अनुसार यह ठंडी, विरेचक और वमनकारक होती है । इसकी पत्तियों का रस पीने से सर्प का विष उतर जाता है कभी कभी इसका प्रयोग अंगरेजी दवाओं में भी होता है ।

कोयला^१—सद्वा पुं० [सं०] कोयल=जलता हुआ आगारा २ वह जल, हुआ अन्न या पदार्थ जो जली हुई लकड़ी के आगारों को बुझाने से बच रहता है । २ एक प्रकार का खनिज पदार्थ जो कोयले के रूप का होता है और जनाने के काम में आता है ।

विशेष—यह कई रंग और प्रकार का होता है । जहाँजहाँ और रेलों के इंजनों तथा भट्ठों आदि में यही भोका जाता है । हैं । इसकी आँच बहुत तेज होती है और बहुत देर तक ठहरती है । इसकी खाने ससार के प्रायः सभी भागों में पाई जाती हैं । बनस्पति और वृक्ष आदि के मिट्टी के नीचे दब जाने और बहुत दिनों तक उसी दशा में पड़े रहने के कारण उनकी सड़ी लकड़ियाँ आदि जमकर पत्थर या चट्टान का रूप धारण कर लेती हैं और अंदर की गरमी से जलकर उसे वह रूप प्राप्त होता है जिसमें वह खानों से निकलता है । इसीलिए इसे पत्थर का कोयला भी कहते हैं । इसमें मिट्टी का भी कुछ अंश मिला रहता है जो इसके जल चुकने पर राख के साथ बाकी रह जाता है ।

मुहा०—कोयलो पर मोहर होना = केवल छोटे और तुच्छ खरबों की अधिक जाँच पड़ताल होना । छोटे और तुच्छ पदार्थों की अधिक और अनावश्यक रक्षा होना ।

कोयला^२—सद्वा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत उड़ा पेठ जो आसाम में होता है । इसकी लकड़ी चिकनी, कड़ी और बहुत मजबूत होती है और इमारत के काम में आती है । इसकी पत्तियाँ रेशम के कीड़े को खिलाई जाती हैं । इसे सोम भी कहते हैं ।

कोयलिट—सद्वा पुं० [सं०] एक जलपक्षी । श्वेत बक । कराकुल (को०) ।

कोयलिटक—सद्वा पुं० [सं०] दे० 'कोयलिट' (को०) ।

कोया^१—सद्वा पुं० [सं०] कोयल १. आँख का डेला । उ०—(क) कहत भरे जल लोचन कोये ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) बाल काह लाली परी लोचन कोयन माह । लाल तिहारे दूगन की परी दूगन में छाँह ।—विहारी (शब्द०) । २. आँख का कोवा ।

कोया^२—सद्वा पुं० [सं०] कोयल कटहल के फल के अंदर की वह गुठली जो चारों ओर गूदे से ढँकी होती है और जिसके अंदर बीज होता है । कटहल का बीजकोश । २ रेशम से कोड़े की छोल या आवरण ।

कोरड—संज्ञा पुं० [सं० कोरड] १. अश्वत्थ का रोग । २. एक पोषा (को०) ।

कोरगा—संज्ञा पुं० [दे०] गोबर और मिट्टी से पोती हुई एक प्रकार की बोरी जिसमें अनाज आदि रखते हैं ।

कोरबी—संज्ञा स्त्री० [सं० कोरबी] १. छोटी इलायची । २. पिप्पली ।

कोरबा—संज्ञा पुं० [हि० कोर + अनाज] वह अन्न जो मजदूरों को मजदूरी में दिया जाता है ।

कोर^१—संज्ञा स्त्री० [सं० कोर] १. किनारा । तट । उपकट । उ०—
चारि जना मिलि लेइ चले हैं, जाइ उतारे जमुनवा के कोर ।
—धरम०, पृ० ७४ । २. किनारा । सिरा । हाशिया । उ०—
केसरी बन्यो है बागो मोतिन की कोर लगी । फूज भरै जब
वह मुख बोलै ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ४६१ ।

मुहा०—कोर निकालना = किनारा बनाना । कोर मारना या
छांटना = बढ़े हुए या धारदार किनारे का कम या बराबर
करना ।—(बढई या संगतराश) ।

३. कोना । गोशा । अतराल ।

मुहा०—कोर दबना = किसी प्रकार के दबाव या वज्र में होना ।
कस में होना । जैसे—(क) अब तो उनकी कोर दबती है,
अब वे कहाँ जायेंगे ? (ख) जबतक उनकी कोर न दबेगी, तब
तक वे खपना न देंगे ।

४. द्वेष । ईर्ष्या । वैमनस्य । उ०—उतते सूत्र न टारत कतहूँ, मोतों
मानत कोर ।—सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—मानना ।—रखना ।

५. द्वेष । ऐव । बुराई । ६. कमी । कसर । उ०—सुती पूरवला
अकरम मोर । बलि जाउ करी जिन कोर ।—रं० बानी,
पृ० १७ ।

क्रि० प्र०—निकालना ।

यो०—कोरकसर ।

७. हथियार की धार । वाह । ८. पंक्ति । श्रेणी । कतार । उ०—
कोर बाधि पाँचो भये ठाढ़े । आगे धरे जँजालन गाढ़े ।—
सुदन (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—धापना ।

कोर^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. चैती फसल की पहली सिचाई । २.
बहु चर्वना या और खाद्य पदार्थ जो मजदूरों या कुलियों को
जलपान के लिये दिया जाता है । पनपियाव । छाक ।

क्रि० प्र०—देना ।—वांटना ।—पाना ।—लेना आदि ।

कोर^३—संज्ञा पुं० [सं०] सुख के अनुसार शरीर की आठ प्रकार की
संधियों में से एक प्रकार की संधि । इस संधि पर से अवयव
मुड़ सकते हैं । उँगली, कलाई, कुहनी और घुटने की संधियाँ
इसी के अंतर्गत हैं । २. कुड़मल । कली (को०) ।

कोर^४—संज्ञा पुं० [प्र०] पलटन । सैन्यदल । जैसे,—वालंटियर कोर ।

कोर^५—वि० [फा०] सुर । मंघा । बिना आँखवाला (को०) ।

कोर^६—वि०—[हि०] करोड़ । कोटि ।

कोरई—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास ।

विशेष—यह घास हिमालय में काश्मीर से बरमा तक ६०००

फुट उँची पहाड़ियों और तराइयों में पैदा होती है । बगल
और मदरास में अधिकता से इसकी चटाइयाँ बनती हैं ।
इसे कहीं कहीं मुदरकटी भी कहते हैं ।

कोरक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. कली । मुकुल । २. फूल या कली का
वह बाहरी भाग जो प्रायः हरा होता है और जिसके अंदर ।
पुष्पदल रहते हैं । फूल की कटोरी । उ०—कोरक सहित
अगस्तिया लख्यो राहु अवतार । कला कलाधर की गिली जनु
उगिलत एहि वार ।—गुमान (शब्द०) । २. कमल की
नाल या डंडी । मृणाल । ४. चोरक नाम का मधुद्रव्य । ५.
शीतल चीनी ।

कोरक^२—संज्ञा पुं० [सं० कोरक = मृणाल] एक प्रकार का मोटा और
मजबूत वेत जो आसाम और बरमा में होता है और जिसकी
छडियाँ बनती हैं ।

कोरकसर—संज्ञा स्त्री० [हि० कोर + फा० कसर] १. दोप और ऋति ।
ऐव और कमी । २. अधिकता या न्यूनता । कमी बेसी ।
जैसे,—अगर इसके दाम में कुछ कोर कसर हो तो उसे ठीक
कर दीजिए ।

क्रि० प्र०—निकलना ।—निकालना ।

कोरट—संज्ञा पुं० [अ० कोटं आफ् वाइंस] १. ३० 'कोटं आफ् वाइंस' ।
जैसे,—कोरट का मुहरिर । २. किसी जायदाद का कोटं आफ्
वाइंस में आना या लिया जाना ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—कोरट छूटना = किसी जायदाद का कोटं आफ् वाइंस
के प्रबंध से निकलना । किसी जायदाद पर से कोरट का प्रबंध
उठना । कोरट बैठना = किसी जायदाद का कोरट के प्रबंध
में आना ।

कोरड^७—संज्ञा पुं० [देश०] चावुक । कशा । कोडा । उ०—(क)
हने फटं ले कोरडे कीने मृतक समान । दिए छोट तिस बाय
तिनि आप निज निज यान ।—अर्थ०, पृ० १२ । (ख)
कोला राव बोला इ लुगाई नें उतारो । झाडा जो फिर तो
कोरडाँ सु फेरि मारो ।—शिवर०, पृ० ६ ।

कोरदार—वि० [हि० कोर + फा० दार] किनारेदार । तुकीला ।
अनियारा । उ०—ये न कअ खजन चकोर और गंजन सो,
करत कजाकी कजरारे नैन कोरदार ।—बोहार अभि० प्र०,
पृ० ५७३ ।

कोरदूप, कोरदूषक—संज्ञा पुं० [सं०] कीदो । कोद्व (को०) ।

कोरना^१—क्रि० सं० [हि०] ३० 'कोड़ना' ।

कोरना^२—क्रि० सं० [हि० कोर + ना (प्रत्यय)] १. लकड़ी आदि में
कोर निकालना । २. छील छालकर ठीक करना । कुस्त्व
करना । उ०—वनवासी पुर लोग महामुनि किए हैं काठ से
कोरि ।—तुलसी (शब्द०) । ३. किनारा बनाना । छांटना ।
३. धरोचना । खोदकर गड्ढा बनाना । उ०—आँकरी की
भीरी काँवे आँतनि की सेल्ही बाँधे, मूँड़ के कर्मडलु, खपय
क्रिये कोरि के ।—तुलसी प्र०, पृ० १६५ ।

कोरनी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] पत्थर पर खुदाई का काम । संगतराशो ।

कोदार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अन्नविशेष [को०] ।

कोदैकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] मोरनी । विहोर ।

कोदो—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोद्रव] दे० 'कोदो' ।

कोदो—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोद्रव] एक प्रकार का कदन्न जो प्रायः सारे भारतवर्ष में होता है । कोदरा । कोदई ।

विशेष—इसका पौधा घान या बड़ी घास के आकार का होता है । इसकी फसल पहली वर्षा होते ही बो दी जाती है और भादो में तैयार हो जाती है । इसके लिये बढ़िया भूमि या अधिक परिश्रम की आवश्यकता नहीं होती । कहीं कहीं यह रूई या अरहर के खेत में भी बो दिया जाता है । अधिक पकने पर इसके दाने झड़कर खेत में गिर जाते हैं, इसलिये इसे पकने से कुछ पहले ही काटकर खलिहान में डाल देते हैं । छिलका उतरने पर इसके अंदर से एक प्रकार के गोल चावल निकलते हैं जो छाए जाते हैं । कभी कभी इसके खेत में अगिया नाम की घास उत्पन्न हो जाती है जो इसके पौधों को जला देती है । यदि इसकी कटाई से कुछ पहले बदली हो जाय, तो इसके चावलों में एक प्रकार का विष या जाता है । बंदक के मत से यह मधुर, तिक्त, रूखा, कफ और पित्ताशक होता है । नया कोदो गुरु पाक होता है । फोडे के रोगी को इसका पथ्य दिया जाता है ।

मुहा०—कोदो देकर पढ़ना या सीखना = अघूरी या वेदगी शिक्षा पाना । कोदो दलना = निकुट पर अधिक परिश्रम का काम करना । छाती पर कोदो दलना = किसी को दिखलाकर कोई ऐसा काम करना जिससे उसे ईर्ष्या और ताप हो । किसी को जलाने या कुढाने के लिये उसे दिखलाकर या उनकी जानकारी में कोई काम करना ।

कोदो ④—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोद्रव] दे० 'कोदो' । उ०—फटे नाक न टूटे काधन कोदो को भुस खँहैं ।—कवीर ग्र०, पृ० २८१ ।

कोद्रव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कोदो । कोदई ।

कोद्रा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोद्रव] मडुआ नामक अन्न । उ०—और कोद्रा भी है किंतु वह हमारे देश का कोदो नहीं मडुआ (रागी) है ।—किन्नर०, पृ० ७० ।

कोध ④—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुत्र, हि० कोत्ति कोद] दे० 'कोद' । उ०—नर नारी सब देखि चकित भे दावा लग्यो चहुँ काध ।—सूर (शब्द०) ।

कोन^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोण] कोना ।

मुहा०—कोन देना = कोने से हल को घुमाना । कोन मारना = जोतने में छुटे हुए कोनों को गोड़ना ।

कोन^२—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] नौ की सख्या ।—(दलाल) ।

यौ०—कोनलाय ।

कोन^३ ④—सर्व० [हि०] दे० 'कोन' । उ०—(क) कही सर कोन करे पतिसाह । करै तब जग बचौ नहिं ताहि ।—ह० रासो, पृ० ५५ । (ख) फिरि फेरि बोलावहिं साहि मोहि सो आनि दिखावउं बोन मुख ।—अकबरी०, पृ० ६६ ।

कोनलाय—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] १६ की सख्या ।—(दलाल) ।

कोनसिला—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कोना + सिरा] कोनिया की छाजन में वह मोटी लकड़ी जो बेंडेर के सिरे से दीवार के कोने तक तिरछी गई हो । कोरो इसी के आधार पर रखे जाते हैं ।

कोना—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोण] १. एक बिंदु पर मिलती हुई ऐसी दो रेखाओं के बीच का अंतर जो मिलकर एक रेखा नहीं हो जाती । अंतराल । गोशा । २. नुकीला किनारा या छोर । नुकीला सिरा । जैसे—उसके हाथ में शीशे का कोना बँस गया ।

मुहा०—कोना निकालना = किनारा बनाना । कोना मारना या छांटना = दे० 'कोर मारना' ।

३. छोर का वह स्थान जहाँ लंबाई चौड़ाई मिलती हो । चूँट । जैसे,—दुपट्टे का कोना ।

मुहा०—कोना दबना = दे० 'कोर दबना' ।

४. कोठरी या घर के अंदर की वह सँकरी जगह जहाँ लंबाई चौड़ाई की दीवारें मिलती हैं । गोशा ।

मुहा०—कोना अंतरा = घर के अंदर का ऐसा स्थान जहाँ दृष्टि जल्दी न पड़ती हो । छिपा स्थान । जैसे,—(क) उमने सारा कोना अंतरा ढूँढ़ डाला । (ख) छड़ी कहीं कोने अंतरे में पड़ी होगी ।

५. एकांत और छिपा हुआ स्थान । जैसे,—कोने में बैठकर गाली देना बीरता नहीं है । उ०—पर नारी का राँचा, ज्यों लह सुन की खान । कोने बैठ के खाइए, परगट होय निदान ।—कवीर (शब्द०) ।

मुहा०—कोना झाँकना = किसी बात के पढ़ने पर नय या लज्जा से जी चुराना । किसी बात से बचने का उपाय करना ।—जैसे—तुम कहने को तो सब कुछ कहते हो पर पीछे कोना झाँकने लगते हो ।

६. चार भागों में से एक । चौथाई । चहायम ।—(दलाल) ।

मुहा०—कोने से = चार भागों में से एक के हिसाब से ।

कोनालक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० एक प्रकार का जनपदो [को०] ।

कोनालका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कोनालक' ।

कोनिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कोना + इया (प्रत्य०)] वह छाजन जिसमें बेंडेर के दोनों सिरे पाखों पर नहीं रहते, बल्कि दीवार के कोनों से कुछ दूर पर रखी हुई धरन के ऊपर रहते हैं जहाँ से दीवार के कोनों तक दो धरने (कोनसिले) तिरछी रधी जाती है । ऐसी छाजन के लिये पाखों की आवश्यकता नहीं होती । २. काठ की पटरी या पत्थर की पटिया जो दीवार के कोने पर चीजें रखने के लिये बँटाई जाती है । पटनी । ३. पानी के नल आदि में मोड़ पर लगाया जानेवाला लोहे का छोटा टुकड़ा जो कुहनी के आकार का होता है ।

कोनेदंड—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कोना + दंड] वह दंड नामक कसरत जो घर के कोने में दोनों ओर की दीवारों पर हाथ रखकर की जाती है ।

कोन्वशिर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह क्षत्रिय जो ब्राह्मण द्वारा शापित होने से शूद्रत्व को प्राप्त हुआ हो [को०] ।

कोप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० कुपित] १. क्रोध । रिस । गुस्सा ।
यो०—कोपभवन । कोपभाजन ।

२. प्रागुर्वेद में जागीरिक त्रिदोष विकार (को०) ।

कोपक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह लाम, जो मन्त्रियों के उपदेश से या राज-द्रोही मन्त्रियों के अनादर से दुःखा हो ।

विशेष—कौटिल्य ने कहा है कि पहली अवस्था में मंत्री यह समझने लगते हैं कि हम न होते तो राज्य की बहुत हानि हो जाती, और दूसरी अवस्था में शेष मंत्री यह समझते हैं कि जहाँ हमसे लाभ न पहुँचेगा, वहाँ हमारा नाश होगा ।

कोपडा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] पहाड़ । सराव । हंगा ।

विशेष—२० 'हंगा' ।

कोपन^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] क्रुद्ध होना । क्रोध करना [को०] ।

कोपन^२—वि० क्रोधी । उग्र स्वभाव का । २. दोष या विकार उत्पन्न करनेवाला [को०] ।

कोपनक^१—वि० [सं०] क्रोधी । क्रुद्ध [को०] ।

कोपनक^२—सञ्ज्ञा पुं० चोवा नामक गधद्रव्य ।

कोपना^१—क्रि० प्र० [सं० कोप + हि० ना० (प्रत्य०)] क्रोध करना । क्रुद्ध होना । नाराज होना । उ०—कोप्यो समर श्रीराम ।—तुलसी । (शब्द०) ।

कोपना^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] क्रोधी स्वभाववाली स्त्री [को०] ।

कोपना^३—वि० स्त्री० क्रोध करनेवाली । क्रोधी स्वभाव की (स्त्री) ।

कोपपद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कोप का कारण । क्रोध का कारण [को०] ।

कोपभवन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ कोई मनुष्य क्रोध करके या अपने घर के प्राणियों से लड़कर जा रहे । उ०—कोपभवन गवनी कँकेयी ।—तुलसी (शब्द०) ।

कोपर^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कपाल] पीपल या अन्य किसी धातु का बड़ा घान जिसमें एक ओर उसे सरलता से उठाने के लिये कुंडा लगा रहता है । उ०—कनक कलस भरि कोपर धारा । भाजन ललित अनेक प्रकारा ।—तुलसी (शब्द०) ।

कोपर^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कोपल] डाल का पका हुआ घाम । टपका । सीकर । साँप ।

कोपर^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कूपर, प्रा० कोप्पर] [स्त्री० कोपरी] । भुजा और हाथ के मध्य की संधि । कुहली उ०—(क) पाँच कोपर चरावे ? चित सौं वाछा राखीला ।—दक्खिनी० पृ० ३३ । (ख) दत्तकुत्री अगुनी, करी कोपरी कपाली । बीच खेत विस्वरी, फरी विहरी किरमाली ।—रा० रु०, पृ० २५१ ।

कोपल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोमल या कुपल्लव] वृक्ष आदि की नई मुलायम पत्ती । कल्ला । अकुर ।

कोपलता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कनफोड़ा नाम की वेल ।

कोपली^१—वि० [हि० कोपर] कोपल के रंग का । मान के नए निकले हुए पत्ते के रंग का । बंगनी ।

कोपली^२—सञ्ज्ञा पुं० एक रंग जो घाम के तुरंत निकले हुए पत्ते के रंग अर्थात् काष्ठापन लिए लाल बंगनी होता है और मजीठ और नीम के मिलाने से बनता है ।

कोपिका—वि० स्त्री० [सं०] कोप करनेवाली । कोपपूर्ण । उ०—
कूबरी इलाज सो भवाज करो कोपिका ।—मुजान० पृ० ४ ।

कोपित—वि० [सं०] क्रोध में लाया गया । क्रुद्ध [को०] ।

कोपिन—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कोपीन] दे० 'कोपीन' । उ०—कोपित बाँधे मूल दुवार, उलटे पवन उठे कनकार ।—गुलाब०, पृ० ५८ ।

कोपिलाँसा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कोइलाँस] दे० 'कोइलाँ' ।

कोपो^१—वि० [सं० कोपीन्] १ कोप करनेवाला । क्रोधी । २. एक प्रकार का पक्षी जो जल के किनारे रहता है । ३. सकोण रंग का एक भेद ।

कोपो^२—वि० [सं० कोपि] कोई । कोई भी । उ०—विमुच्य राम याता नहि कोपो ।—तुलसी (शब्द०) ।

कोपीन—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कोपीन' ।

कोप्यापणयात्रा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कौटिल्य ग्रंथास्य के अनुसार ऐसे जाली ठिकानों का चयन बिना रोकना जरूरी हो ।

कोफर—सञ्ज्ञा पुं० [फा० कोफ़र] १. रंज । दुःख । वेद । तरदुद । परेशानी । हैरानी ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—गुबरना ।—होना ।

३. लोहे आदि पर सोने चाँदी की पच्चीकारी ।

कोफ्तगरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० कोस्तगरी] लोहे के बरतों या हथियारों पर चाँदी या सोने की पच्चीकारी करने का काम ।

कोफता—सञ्ज्ञा पुं० [फा० कोफ़त] कूटे हुए मीठ बनवाया लू पादि का बना हुआ एक प्रकार का कबाब जो जामुन के आकार का होता है और जिसके अंदर अंदरक पुदीना, घसघम, भुने चने का आटा आदि भरा रहता है । उ०—कोफता तो ऐसा बना कि क्या कहिए ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८४ । २. वह कमाई जो मनुष्य से प्राप्त हो (को०) ।

कोवडी—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो वरमा और नेपाल में अधिकता से होता है ।

कोवर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोष्ठगृह या हि० कोहवर] १ निवास । कोठरी । कोठर । उ०—काया कोवर भरि भरि सीन्हीं जान भवीर उड़ोरी ।—गुनाल०, पृ० १०५ । २. दे० 'कोपर' ।

कोविद—वि० [सं० कौविद] [वि० स्त्री० कोविदा] दे० 'कोविद' ।

काविदार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कौविदार] दे० 'कोविदार' ।

कोवी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० गोभी] गोभी का फूल ।

कोम—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कूर्म, प्रा० कुम्म] दे० 'कूर्म' । उ०—चलत धाव वेग धाव धाव पाव चल । मही कपाल नीठ घोर पीठ कोन प्राकुवे ।—रा० रु०, पृ० १०६ ।

कोमता—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] भीकर की जाति का एक वृद्ध, मुदूबना और सदावहार पेड़ जो सिंध और मज्जेर के रेतीले इलाकों में अधिकता से होता है । इसमें कठिने वृद्ध अधिक होते हैं ।

कोमरां—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] खेत का यह काना जो किसी ओर कुछ अधिक बढ़ गया हो ।

कोड़ी^१—सञ्ज्ञा जी० [हि०] दे० 'कोड़ी' । उ०—(क) सुदर मनुष्य देह यह पायो रतन अमोल । कोड़ी सटै न पोइये मानि हमारी बोल ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६६६ । (ख) गुन को न लेश ताको बडे गुनवान कहै, दानी कहत जाको कोड़ी करते डरै नही ।—रघु० सू०, पृ० २८४ ।

कोड़ी^२—सञ्ज्ञा पुं० [देश० कुड्ड, कोडड] माशचर्य । कुतूहल । कौतुक । उ०—सीगण काँइ न सिरजियाँ, प्रीतम हाथ करत । काठी साहन मूँठि माँ, कोबी कासी सत ।—ढोला०, दू० ४१६ ।

कोड़ी^३—सञ्ज्ञा जी० [अ० स्फोर या स० कोटि] १ बीस का समूह । बीसी । २ तालाब का पक्का निकास जिससे तालाब भर जाने पर अधिक पानी निकल जाता है । पक्का ओना ।

कोड़ी^४—वि० बीस ।

कोड़—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुष्ठ] [वि० कोड़ी] एक प्रकार का रक्त और त्वचा संबंधी रोग जो सक्कामक और पुरुषानुक्रमिक होता है ।

विशेष—वैद्यक के अनुसार कोड़ १५ प्रकार का होता है जिनमें से कापाल, उदुवर, मडल, सिध्म, काकणक, पुंडरीक और ऋक्षजिह्व नामक सात प्रकार के कोड़ महाकुष्ठ कहे और असध्य नमझे जाते हैं, और एक कुष्ठ, गजचर्म, चर्मदल, विर्चचिका, विपादिका, पामा, कच्छू, दद्रू, विस्फोट, फिटिम और अलषक नामक शेष ग्यारह प्रकार के कोड़ क्षुद्र कुष्ठ कहे और साध्य समझे जाते हैं । कोड़ होने से पहले चमड़ा लाल हो जाता है और उसमें बहुत जलन होती है । गलित कोड़ से हाथ पैर की उँगलियाँ गल गलकर गिर जाती हैं । डाक्टरों के मत से यह सर्वा गव्यापी रोग है और प्लीषद आदि भी इसी के अंतर्गत हैं । इस रोग से पीड़ित मनुष्य धूम्रित और अस्पृश्य समझा जाता है ।

मुहा०—कोड़ चूना या टाकना=कोड़ के कारण अंगों का गल गलकर गिरना । कोड़ की बाज या कोड़ में खाज=दुख पर दुख । विपत्ति पर विपत्ति । उ०—एक तो कराल कलिकाल सुलमूल तमि, कोड मे की खाजु सी समीचरी है भीन की ।—तुलसी (शब्द०) ।

कोड़ा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोष्ठ, प्रा० कोड्ड] १. खेत में वह बाड़ा या स्थान जहाँ खाद के लिये गोबर आदि सग्रह करने के अभिप्राय से पशुओं को रखते हैं । २. सकल आदि लगाने या फँसाने का लोह आदि निमित्त गोला ।

कोड़िन, कोड़िनो—सञ्ज्ञा जी० [हि० कोड़ी] १ वह स्त्री जिसे कोड़ हुआ हो । २ (लाक्ष०) माया ।

कोड़िया—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कोड़] एक प्रकार का रोग जो तमाखू के पत्तों में होता है और जिसके कारण उसपर चकत्ते या दाग पड़ जाते हैं ।

कोड़िला—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक पोधा ।

कोड़ी^५—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कोड़] [अ० कोड़िन] कोड रोग से पीड़ित मनुष्य ।

कोड़ी^६—वि० कुष्ठ रोग से ग्रस्त ।

कोण^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ एक बिंदु पर मिलती या कटती हुई दो ऐसी रेखाओं के बीच का अंतर, जो मिलकर एक न हो जावी हो । कोना । गोशा ।

विशेष—जिन दो रेखाओं से कोण बनता है उनकी लंबाई के घटने बढ़ने से कोण के मान में कुछ अंतर नहीं पड़ता । कोण का मान निकालने का ढंग यह है कि जिस बिंदु पर दोनों रेखाएँ मिलती हैं उसे केंद्र मानकर दोनों रेखाओं को काटता हुआ एक वृत्त बनावे । फिर उसकी परिधि को ३६० अंशों में विभक्त करे । जितने अंश कोण बनानेवाली रेखाओं के बीच में पड़ेगे, उतने अंशों का वह कोण कहा जायगा । रेखाणित में कोण कई प्रकार के होते हैं, जैसे—समकोण (९० अंश का) न्यूकोण (९० अंश से कम का), इत्यादि ।

२. दो दिशाओं के बीच की दिशा । विदिशा ।

विशेष—कोण चार हैं—अग्निकोण (पूर्व और दक्षिण के बीच का कोण), नैऋति (पश्चिम और दक्षिण का), ईशान (पूर्व और उत्तर का) तथा वायव्य (उत्तर और पश्चिम का) ।

३. सारंगी का कमानी । ४. हथियारों की बाड़ । तलवार आदि की धार । ५. सोटा । डडा । लाठी । ६ डोल पीटने का चोय ।

कोण^२—सञ्ज्ञा पुं० [यू० कोनस] १ गनि ग्रह । २ मंगल ग्रह ।

कोणकुण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मत्कुण । घटमल [को०] ।

कोणनर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कोणशंकु' ।

कोणप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ३० 'कोणप' ।

कोणवादी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोणवादिन्] शंकर । शिव [को०] ।

कोणवृत्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह देशांतर वृत्त जो उत्तरपूर्व से दक्षिण-पश्चिम या उत्तरपश्चिम से दक्षिणपूर्व की ओर गया हो ।

कोणशंकु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोणशङ्कु] सूर्य की वह स्थिति जब वह न तो कोणवृत्त में हो और न उन्मूल में हो ।

कोणस्पृगवृत्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह वृत्त जो किसी क्षेत्र के सब कोनों को छूता हुआ घीसा जाय ।

कोणाकोणो—अव्य० [मं०] एक कोने से दूसरे कोने तक ।

कोणाघात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दस हजार दोनो और एक हजार हुडकों के एक साथ बजने का शब्द० ।

कोणार्क—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जगन्नाथपुरी का प्रसिद्ध तीर्थ । यहाँ का सूर्य मंदिर बहुत प्रसिद्ध है ।

कोणि—वि० [सं०] जिसका हाथ टेढ़ा हो । बक्रहस्त [को०] ।

कोत^१—सञ्ज्ञा जी० [अ० कुवत] बल । शक्ति । जोर । उ०—कौहर, कौल, जपादल, विद्रुम का इतनी जो बढूक में कोत है ।—शम्भु (शब्द०) ।

कोत^२—सञ्ज्ञा जी० [हि०] दे० 'कोद' ।

कोतका—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोतुक] दे० 'कोतुक' । उ० जयारो कोतक देख जुध, हुवे मुनिद्रा हास ।—वांकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ३ ।

कोतकहारा—वि० [सं० कोतुक + हि० हार (प्रत्यय)] कोतुकी । खेज रचनेवाला । तमाशा दिवानेवाला । उ०—माप चिरजन हुय रह्या कायमो कोतकहार । दादु निगुण गुण कहे जऊंगा बलिहार ।—राम० धर्म०, पृ० २५ ।

कोतर^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोटर] दे० 'कोटर' । उ०—जुवती जन

अढ़ि काम जाहि कोतर तर पंपी । अवृत्त वृत्त सुंदरिय काम
वदिय वर अ पी ।—पृ० रा०, २५।६७५ ।

कोतरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली ।

कोतल^१—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] १. सजा सजाया घोड़ा जिमपर कोई
सवार न हो । जलूसी घोड़ा । २. स्वयं राजा की सवारी का
घोड़ा । उ०—गवर्नरहि भरत पयादेहि पाये । कोतल सग जाहि
डोरिआये ।—तुलसी (शब्द०) । ३. वह घोड़ा जो जरूरत के
वकन के लिये साय रखा जाता है ।

कोतल^२—वि० जिसे कोई काम न हो । खाली ।

कोतल गारद—सञ्ज्ञा पुं० [अ० क्वार्टर गार्ड] छावनी का वह प्रधान
स्थान जहाँ हर समय गारद रहती है और जहाँ दलेनवाली
की निगरानी होती है ।

कोतवार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोटपाल] १० 'कोतवाल' । उ०—भरमहुं
मोरि न देख कोतवार । काहु न के ओ नहि करये विचार ।—
विद्यापति, पृ० ३८६ ।

कोतवाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोटपाल, प्रा० कोटवाल] १. पुलिस का
एक प्रधान कर्मचारी जो किसी जिले के प्रधान नगर में
रहता है और जिसके अधीन कई थाने और थानेदार होते हैं ।
इसपर नगर की शांतिरक्षा का भार रहता है । डिण्डी
सुपरिण्डेंडेंट पुलिस । २. वह कार्यकर्ता जिसका काम पड़तो
कोसमा या पंचायतवाली विरादरी अथवा साधुओं के अखाड़े
की बैठक, भोज आदि का निमंत्रण देना और उनका ऊपरी
प्रबंध करना हो ।

कोतवाली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० कोतवाल + ई (प्रत्यय)] १. वह स्थान
या मकान जहाँ पुलिस के कोतवाल का कार्यालय हो । २.
कोतवाल का पद या ओहदा ।

कोतह—वि० [फा०] छोटा । कम ।

कोतह् गर्दन—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] वह जिसकी गर्दन छोटी अर्थात् बहुत
कम लंबी हो ।

कोतहगरदनी—वि० [फा० कोतहगर्दन + ई] छोटी गरदनवाली ।
उ०—कोतहगरदनी ऐंचा तानी । कुवजा गाडर विप की खानी ।
कबीर सा०, पृ० १५६६ ।

कोतहनजर—वि० [फा० कोतह नजर] स्थूल बुद्धिवाला । अदूरदर्शी
[को०] ।

कोता—वि० [फा० कोतह] [स्त्री० कोती] छोटा । कम । अल्प ।
उ०—सुर गधर्व सरिस न नारी, नहि विद्या बुद्धि कोती ।
—रघुराज (शब्द०) ।

कोताह—वि० [फा०] छोटा । अल्प । कम ।

कोताही—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] झुटि । कमी । कोर कसर ।

कोति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुत्र = किधर या कुत] दिशा । ओर ।
उ०—दामिनि ! निज द्रुति दरपि कै चमुक न अब इहि कोति ।
शृ० सत० (शब्द०) ।

कोतिक—वि० [हिं०] दे० 'केतिक' । उ०—राजा येती दुखजनि
२-६७

करही । कोतिक नारि पुष्य जो मरही ।—हिंदी प्रेमा०,
पृ० २१६ ।

कोतिक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोतिक] दे० 'कोतिक' । उ०—कोतिक
लखे ह्व विकराल दीरघ रद किया ।—रघु० ह०, पृ० १२६ ।

कोतिग—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कोतिक' । उ०—गनपति सारद
मानिक, राखे पूजो पाय । कृष्णकेलि कोतिग कहों, ताकी कथा
वनाय ।—ब्रज ग्रं०, पृ० १ ।

कोतिल—सञ्ज्ञा पुं० [तु० कोतल] दे० 'कोतल' । उ०—चपल
कोतिल कलल चंचल, विहद मद गल भ्रमर अलवन ।—
रघु० ह०, पृ० ३२८ ।

कोथ^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. आँख की पलक के भीतर का एक रोग ।
कथुआ । २. भगंदर । ३. मयन । मयना (को०) । ४. सडन ।

कोथ^२—वि० पीड़ा से युक्त । २. मयित [को०] ।

कोथमीर—सञ्ज्ञा पुं० [?] हुरा घनिया ।

कोथरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] १. कोठरी । २. दे० 'कोथली' । उ०—
राम रतन मुख कोथरी पारख आगै खोलि ।—कबीर ग्रं०,
पृ० २५६ ।

कोथला—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० गूयल अथवा कोठला] १. बड़ा थैला ।
२. पेट ।

मुहा०—कोथला भरना = भोजन करना । (व्यंग्य) ।

कोथली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० कोथला] रुपए आदि रखने की एक प्रकार
की लंबी पतली थैली जिसे लोग कमर में बाँधकर रखते हैं ।
हिमयानी । उ०—खरे दाम घर में घरे खोटे ल्यायी जोरि ।
मिहि कोथली माहि घरि दोनी गाँठि मरोरि ।—ग्रं०, पृ०
४७ । (५) २. कोठरी ।

कोथी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] (तलवार के) म्यान के सिरे पर लगा हुआ
घातु का छल्ला या टुकड़ा । म्यान की साम ।

कोदंड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोदण्ड] १. धनुष । कमान ।

यो०—कोदंडकला = धनुर्विद्या ।

२. धनराशि । ३. मोह । ४. एक प्राचीन देश ।

कोद^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कोण अथवा कुज] १. दिशा । ओर ।
तरफ । उ०—भाग के भाजन जात जहाँ चहुँ कोदनि माँह
बिनोद निपाये ।—गुमान (शब्द०) । २. कोना । उ०—
साखी हैं वेनी प्रीतिन जु पँ अवही इतँ भाजि दुरे कहुँ कोद में ।
—वेनी (शब्द०) ।

कोदइता—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कोदो + ऐत (प्रत्यय)] कोदो दलेनवाला ।

कोदई—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कोदव] दे० 'कोदो' ।

कोदरा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोदव] दे० 'कोदो' ।

कोदरैता—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कोदो + वरना] कोदो दलने की चक्की
जो प्राय चिकनी मिट्टी की बनती है ।

कोदव—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोदव] कोदो ।

कोदवला—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० कोदो] कोदो के पेट के आकार की एक
प्रकार की घास, जिसके नरम पत्ते चोपाए शोक से खाते हैं ।

कोटिश्चर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कोटीश' ।

कोटीसङ्ग—वि० [सं० कोटीश] करोड़पति । कोट्यधीश । उ०—
नगर मध्य कोटीस बस वानिक भनत लछि ।—पृ० रा०,
२५। १७३ ।

कोटू—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कूट' ।

कोटेशन—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] लेख या वाक्य का उद्धृत अंश ।
उद्धरण । २ सीसे का ढला हुआ चौकोर पोला टुकड़ा जो
कंपोज करने में, खाली स्थान भरने के काम में आता है ।

विशेष—यह क्वाड्रेट से बड़ा होता है । इसकी चौड़ाई ४ एम
पाइका और लंबाई २, ४, ६ या ८ एम पाइका तक
होती है ।

कोट्ट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ किला । दुर्ग । २. नगर ।—देशी०,
पृ० ११० ।

कोट्टी—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ बाणासुर की माता ।

विशेष—जब श्रीकृष्ण और बाणासुर में युद्ध हुआ था, तब यह
अपने पुत्र की रक्षा के लिये नगी होकर युद्धक्षेत्र में उतरी थी ।
२ नगी स्त्री जिसके बाल बिखरे हों । ३ दुर्गा ।

कोट्टार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ किला । दुर्ग । २ किलेबंदीवाला नगर ।
३ कूप । कुआँ । ४ तालाब की सीढ़ी । ५ दुराचारी ।
लंपट [को०] ।

कोट्यधीश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] करोड़पति । करोड़ी । बहुत बड़ा धनी ।
कोठ^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कोठ जो मंडलाकार होता है ।
कोठ^२—वि० [सं० कुण्ठ] जिससे कोई वस्तु कूँची या चवाई न
जा सके । कुठित ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग दाँतो के लिये उस समय होता
है, जब वे खट्टी वस्तु लगने के कारण कुछ देर के लिये बेकाम
से हो जाते हैं ।

कोठ^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोट्ट] कोट । किला । उ०—दहति कोस
बिसतार कोठ मरदुष्य त्रिपुची ।—पृ० रा०, २६। ७५ ।

कोठ^४—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अक्कोठ] दे० 'अंकोल' । उ०—सो उनके द्वारे
एक कोठ को वृक्ष हतो ।—दो० सौ बावन०, भा० १, पृ० ५१ ।

कोठडी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कोठरी] दे० 'कोठरी' ।

कोठर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अंकोल का पेड़ ।

कोठरपुष्पी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] बिघारा नामक वृक्ष ।

कोठरिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कोठरी+इया] (प्रत्य०)] दे० 'कोठरी' ।

कोठरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कोठा+री (री) (अल्पा०) (प्रत्य०)]
(मकान आदि में) वह छोटा स्थान जो चारों ओर दीवारों या
दरवाजों आदि से घिरा और ऊपर से छाया हो । छोटा
कमरा । तंग कोठा ।

मुहा०—अँधेरी कोठरी=दे० 'अँधेरी' का योगिक । अँधेरी
कोठरी का मार=वि० दे० 'अँधेरी' का मुहावरा । कालकोठरी
=वि० दे० 'कालकोठरी' ।

कोठली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कोठरी' । उ०—सार की कोठली
जैठ तालिया पूरा, पच मुखा ससारा ।—रामानंद०, पृ० ३६ ।

कोठा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोष्ठक] १ बड़ी कोठरी । चौड़ा कमरा । २.
कमरा । २ वह स्थान जहाँ बहुत सी चीजें सग्रह करके रखी
जायें । भंडार ।

यौ०—कोठादार । कोठारी ।

३. मकान में छत या पाटन के ऊपर का कमरा । अटारी । बड़ा
मकान । व्यापारी, महाजन या संपन्न व्यक्ति का पक्का बड़ा
मकान ।

यौ०—कोठेवाली=बाजारू स्त्री । बेइया ।

मुहा०—कोठे पर चढ़ना=किसी ऐसे स्थान पर पहुँचना जहाँ
सब लोग देख सकें । अधिक ज्ञात या प्रसिद्ध होना । जैसे,—
(वात) ओठो निकली, काठो चढ़ी । कोठे पर बैठना=बेइया
बनाना । फसल फमाना ।

४ उदर । पेट । पक्वाशय ।

मुहा०—कोठा बिगड़ना=अपच आदि रोग होना । कोठा साफ
होना=साफ दस्त होने के बाद पेट का हलका हो जाना ।

५. गर्भाशय । धरन ।

मुहा०—कोठा बिगड़ना=गर्भाशय में किसी प्रकार का रोग होना ।

६. खाना । घर । जैसे,—शतरज या चौपड़ के कोठ ।

मुहा०—कोठा खीचना=लकीरो से खाना बनाना । कोठा भरना=
हिंदुओं में कार्तिक स्नान करनेवाली स्त्रियों का विशेष तिथियों
को भूमि पर ३५ खाने खींचकर ब्राह्मण को दान देने के
अभिप्राय से उनमें अन्न, वस्त्र आदि पदार्थ भरना ।

७ किसी एक अंक का पहाड़ा जो एक खाने में लिखा जाता है ।
जैसे,—आज उसने चार कोठे पहाड़े याद किए । ८ शरीर या
मस्तिष्क का कोई भीतरी भाग, जिसमें कोई विशेष शक्ति
रहती हो ।

मुहा०—कोठे में चित्त भरमना या जाना=अनेक प्रकार की
आशकाएँ होना । जैसे,—तुम्हारे चले जाने पर मुझे बहुत चिंता
हुई, न जाने कितने कोठों में चित्त भरमा । किसी कोठे में चित्त
जाना=किसी प्रकार की प्रवृत्ति या वासना होना । अर्धे कोठे
का=मूर्ख । बेवकूफ । विचारशून्य । कोठा न होना या कोठा
साफ होना=अतः कारण शुद्ध होना । हवय में कोई बुरा विचार
न रहना ।

कोठाकुचाल—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कोठा+कुचाल] हाथियों की वह
दीमारी जिसमें उनकी भूख मारी जाती है ।

कोठादार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोठा+दा० दार] भंडारी । कोठारी ।
भंडार का अधिकारी ।

कोठार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोष्ठागार] अन्न, धनादि रखने का स्थान ।
भंडार । उ०—कोठार और रसोई घर की गृहस्थ की रोज
आवश्यकता पड़ती है ।—रस०, पृ० ८२ ।

कोठारी—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कोठार+ई (प्रत्य०)] वह अधिकारी जो
भंडार का प्रबंध करता और उसके लिये पदार्थ आदि का
सग्रह करता हो । भंडारी । उ०—करिंदे कीच कोठारी ।
खरीदे माल सब भारी ।—सत सुरसी०, पृ० ६६ ।

कोठिला—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कुठला' ।

कोठी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कोठा+ई (प्रत्य०)] १. बड़ा पक्का मकान ।

कोच^४—संज्ञा पुं० [सं०] १ संकोच । संकोचन । २. एक मिश्र जाति ।

कैवर्त और कसाई स्त्री के संयोग से उत्पन्न जाति [को०] ।

कोचकी—संज्ञा पुं० [देश०] मकोइया से मिलता जुलता एक प्रकार का रंग जो ललाई लिये भूरा होता है और कई प्रकार से बनाया जाता है ।

कोचना—क्रि० सं० [सं० कुच=लकीर करना, खिलना] घँसाना । चुभाना । गढ़ाना ।

मुहा०—कोचा करेला=वह चेहरा जिसपर शीतला के बहुत से दाग हों । (व्यंग्य में) ।

कोचनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कोचना] १. लोहे का एक छोटा औजार जो सुई के आकार का होता है और जिससे तलवार की म्यान के ऊपर का चमड़ा सीया जाता है । २. बेल हाँकने की छड़ी । पेंना । श्रीगी । ३. कोचने की कोई भी वस्तु ।

कोचकस—संज्ञा पुं० [अ० कोच+कस] घोड़ा गाड़ी में वह कच्चा स्थान जिसपर हाँकनेवाला बैठता है ।

कोचरा—संज्ञा पुं० [देश०] बड़े पेड़ों पर चढ़नेवाला एक प्रकार की धनी लता ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ एक अँगुल लंबी तथा दोनों ओर नुकीली होती हैं । जेठ, अषाढ़ में इसमें पीले रंग के फूल गुच्छों में लगते हैं, और दूसरे वैसाख तक फल पक जाते हैं । यह लता गोडा, बहुराष्ट्र तथा खसिया और भूटान में होती है ।

कोचरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पक्षी । उ०—करँ कलोल कोचरी उलूक उड़ दूकहीं ।—सुजान०, पृ० ३० ।

कोचवान—संज्ञा पुं० [अ० कोचमैन] घोड़ागाड़ी हाँकनेवाला ।

कोचा—संज्ञा पुं० [हिं० कोचना] १. तलवार, कटार, आदि का हलका धाव जो पार न हुआ हो ।

क्रि० प्र०—देना ।—मारना ।—लगाना ।

२. लगती हुई बात । चुटीली बात । ताना । व्यंग्य ।

क्रि० प्र०—देना ।

कोचिडा—संज्ञा पुं० [देश०] जंगली प्याज जो दक्षिण हिमालय में होता है और खाने तथा दवा के काम में आता है । कोड़ा ।

कोचिला—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुचला' ।

कोची—संज्ञा पुं० [देश०] बबूल की तरह का एक जंगली पेड़ । बनरीठा । सीकाकाई ।

विशेष—यह पूरव और दक्षिण भारत के जंगलों में अधिकता से होता है । इसकी छाल और पत्तियाँ प्रायः औषध के काम में आती हैं । इसकी सूखी फलियों को लोग आवले या इमली की भाँति रगड़ कर उससे सिर के बाल घोंते हैं ।

कोचीन—संज्ञा पुं० [देश०] मद्रास प्रांत की एक देशी रियासत जो त्रावनकोर राज्य के उत्तर में है ।

कोजागर—संज्ञा पुं० [सं०] आश्विन मास की पूर्णिमा । शरद पुनो ।

विशेष—ऐसा माना गया है कि इस रात को लक्ष्मी ससरा का भ्रमण करती है और जिसे जागरण करते और उत्सव मनाते पाती हैं, उसपर प्रसन्न होती और उसे धन देती हैं । मानों

लक्ष्मी तमाश करती फिरती है कि 'को जागर' अर्थात् कोन जागता है ।

कोजागरी—वि० [सं० कोजागरीय] कोजागर के पर्ववाला । कोजागर या आश्विन पूर्णिमा सर्वधी । उ०—दीप कोजागरी बाले कि फिर आवें विधोणी सब ।—हरी घास०, पृ० ३६ ।

कोट^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ दुर्ग । गढ़ । किला ।

गौ०—कोटप । कोटपाल ।

२. शहरपनाह । प्राचीर । ३. राजमंदिर । महल । राजप्रासाद । ४ छप्पर । भोपडा (को०) । ५ दाढ़ी (को०) । ६ कुटिलता । कुटिलपन (को०) ।

कोट^२—संज्ञा पुं० [सं० कोटि] समूह । यूय । जत्था । उ०—चले तुरग अपार कोटि कोटि को कोट करि । सोहत सकल सवार रामा-गमन अनद भरि ।—रघुनाथ (शब्द०) । २ कोटि । करोड़ । उ०—अनतहि चढा ऊगिया सूर्य कोट परकास ।—रिया० बानी, पृ० १५ ।

कोट^३—संज्ञा पुं० [अ०] अगरेजी ढग का एक पहनावा जो कमीज या कुरते के ऊपर पहना जाता है और जिसका सामना बदन-दार होता है ।

गौ०—कोटपतलून=साहवी पहनावा । योरोपीय पहनावा ।

कोट अरलू—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो समुद्र में होती है और जिसका मांस खाने में बहुत स्वादिष्ट होता है ।

कोटक—संज्ञा पुं० [सं०] १ भोपड़ी बनानेवाला व्यक्ति । २ एक वर्णसंकर जाति । सगतराश और कुम्हार की लड़की से उत्पन्न व्यक्ति [को०] ।

कोटगधल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा पेड़ ।

विशेष—इसकी लकड़ी कड़ी, चिकनी और मजबूत होती है और इमारत के काम में आती है । बंगाल, मध्य प्रदेश और मद्रास में यह पेड़ अधिकता से होता है ।

कोटचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार एक प्रकार का चक्र, जिसका प्रयोग युद्ध से पहले अपने दुर्ग का शुभाशुभ परिणाम जानने के लिये होता है ।

विशेष—यह आठ प्रकार का होता है, जिनके नाम ये हैं—मृगमय, जलकोटक, ग्रामकोटक, गह्वर, गिरि, डामर, वक्रमूर्ति और विषम ।

कोटडी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कोठरी' । उ०—प्रोह नारायणदास ने अपने घर के आगे दोऊ और बँणवन के उतरिदे को न्यारी न्यारी कोटडी करि राखी हती ।—दो सी बावन०, भा० १, पृ० ११६ ।

कोटम—संज्ञा पुं० [सं०] शीत ऋतु । हेमंत ऋतु [को०] ।

कोटपाल—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्ग की रक्षा करनेवाला । किलेदार ।

कोटपीस—संज्ञा पुं० [अ० कोटपीस] दे० 'कोट पीस' ।

कोटभरिया—संज्ञा स्त्री० [सं० कोठ+हिं० भरना] वह लकड़ी जो नाव के किनारे किनारे ऊपर की ओर जड़ी रहती है ।

कोटमास्टर—संज्ञा पुं० [अ० क्वार्टर मास्टर] दे० 'क्वार्टर मास्टर' ।

कोटर—संज्ञा पुं० [सं०] १ पेड़ का खोजला भाग । उ०—रुखन तर

मुनि भन्न परचो है। गुक कोटर ते यह जु गिरयो है।—गकु-
लता, पृ० ११। २ दुर्गा के सासवास का वह कृत्रिम वन जो
रक्षा के लिये लगाया जाता है।

कोटरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] बाणामुर की माता का नाम।

कोटरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १. दुर्गा। चंडिका। काली। २. नग्न स्त्री।
नंगी महिला (को०)।

कोटली—सञ्ज्ञा पु० [तु० कोतल] दे० कोतल^१। उ०—दुग्र कोटल
दुग्र नृपति के किन्ने हाजुर आनि।—पृ० रा०, ७। १०६।

कोटवार—सञ्ज्ञा पु० [स० कोटपाल, प्रा० कोटवार] दुर्गरक्षक।
किलेदार। उ०—गौरि पंथ कोटवार बईठा। पेम क लुबुधा

मुरंग पईठा।—पदमावन, पृ० २६२।

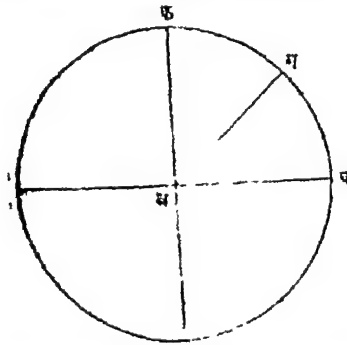
कोटवाल—सञ्ज्ञा पु० [ह०] दे० 'कोटपाल'। उ०—पायक चेतन
कोटवाल।—रामनद०, पृ० १५।

कोटवी—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'कोटरी' (को०)।

कोटा—सञ्ज्ञा पु० [अ०] वह निर्धारित अंश जो किसी को देने या लेने
के लिये हो।

यो०—कोटा परमिट।

कोटि^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १. धनुष का सिरा। कमान का गोशा।
उ०—सत्रियों के चाप कोटि समक्ष, लोक में है कोन दुर्गम
लक्ष।—साकेत, पृ० १२१। २. किसी अस्त्र की नोक या धार।
३. वगैरे। श्रेणी। दरजा। ४. किसी वादविवाद का पूर्वपक्ष।
५. उत्कृष्टता। उत्तमता। ६. अर्धचंद्र का सिरा। ७. समूह।
जत्था। ८. किसी ६० अंश के चाप के भागों दो में से एक।



(क से घ तक का चाप ६० अंश का है। उसका एक अंश क
ग उसके दूसरे अंश ग घ की कोटि है और ग घ उसके दूसरे
अंश घ ग की कोटि है।) ६. किसी त्रिभुज या चतुर्भुज की
भूमि या आधार और कर्ण से भिन्न रेखा। १०. राजचक्र
का तृतीय अंश। ११. असुरग नामक सुगंध द्रव्य जो घोष
के काम में आता है। १२. आखिरी सीमा या सिरा।

कोटि—वि० [स०] सो लाख की सत्था। करोड़।

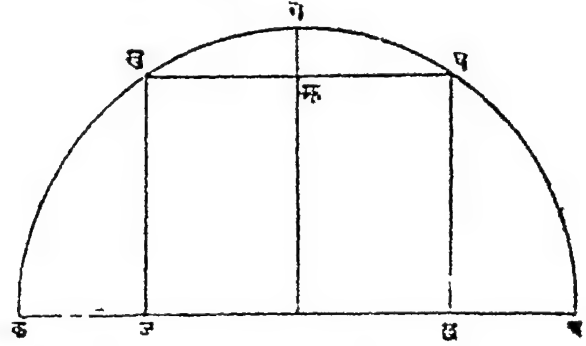
कोटिक—सञ्ज्ञा पु० [स०] १. मेढक। दादुर। २. इद्रव्यूटी। गोपव्यूटी
(को०)।

कोटिक^२—वि० [स० कोटि+क] १. करोड़। उ०—कोज कोटिक
संयहो कोज लाख हजार। मो सति उदुति सदा विपति
बिदारणदार।—बिहारी (जय०)। २. अनेक करोड़।

करोड़ों। अमित। असंख्य। अनगिनत। बहुत अधिक। उ०—
कीन हूँ कोटिक जतन अब कहि काई सोनु। भो मनमोहन
हनु मिलि पानी में की लोनु।—बिहारी (जय०)।

कोटिक्रम—सञ्ज्ञा पु० [स०] श्रेणी का क्रम। विकासक्रम। उ०—
हमने उपन्यास कता और उसके कोटिक्रम पर ही प्रतिक्रिया
रखकर * * * ऊपर की पंक्तियाँ लिखी हैं।—साहित्या०, पृ०
१५७।

कोटिज्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] ग्रहों की स्पष्टता के लिये बनाए हुए
एक प्रकार के क्षेत्र का एक विशेष अंश।



विशेष—इस क्षेत्र में ख-क या घ-ग, और ख-ज या घ-
छ अंश कोटिज्या है।

कोटितीर्थ—सञ्ज्ञा पु० [स०] तीर्थविशेष। इस नाम के तीर्थ अनेक हैं
पर उज्जैन और चित्रकूट के तीर्थ अधिक प्रसिद्ध हैं।

कोटिद्वज—सञ्ज्ञा पु० [स०] कोटपद्मेश। करोड़पति (को०)।

कोटिपात्र—सञ्ज्ञा पु० [स०] नाव का पत्तवार (को०)।

कोटिफली—सञ्ज्ञा पु० [स०] गोदावरी नदी के सागरसंगम के निकट
का प्रसिद्ध तीर्थ है।

विशेष—जब सिंह राशि पर बृहस्पति आता है, तब इस स्थान
पर बड़ा मेला लगता है। उस समय तीर्थ में स्नान करने
का बड़ा फल है। कहते हैं, इद्र का भद्रस्नान का पाप इसी
तीर्थ के स्नान से छूटा था।

कोटिर—सञ्ज्ञा पु० [स०] १. साधुओं के सिर पर सोंग के आकार की
बनाई हुई जटा। २. इंद्र। ३. नकुल। नेपाल। ४. बीरबहुटी
(को०)।

कोटिश^१—क्रि० वि० [स० कोटिशास्] अनेक प्रकार से। बहुत
प्रकार से।

कोटिश^२—वि० बहुत अधिक। बहुत बहुत। अनेकानेक। जैसे,—
आपको कोटिश धन्यवाद।

कोटिवेधी—वि० [स० कोटिवेधिन्] १. गिरावट पर प्रहार करने-
वाला। २. (लाक्ष०) प्रत्येक कठिन कार्य करनेवाला।

कोटिथी—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] दुर्गा (को०)।

कोटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'कोटि' (को०)।

कोटीर—सञ्ज्ञा पु० [स०] १. (नाथु के नाम पर) गोंग के आकार
की बटा। २. निषा। बूझ। ३. किराट (को०)।

कोटीश—सञ्ज्ञा पु० [स०] करोड़पति। कोटपद्मेश (को०)।

कोक^२—सङ्घा खी० [फा०] कच्ची सिलाई ।

कोकग्रागम (७)—सङ्घा पु० [सं० कोक + ग्रागमन] कामशास्त्र । काम-
कला । उ० - काव्य कोक ग्रागमहि वखानहु ।—माधवानल०,
पृ० २०८ ।

कोकई^१—वि० [तु० कोक] ऐसा नीला जिसमे गुलाबी की झलक
हो । कोडियाला ।

कोकई^२—सङ्घा पु० [तु० कोक] ऐसा नीला रंग जिसमे गुलाबी की
झलक हो । कोडियाला रंग ।

विशेष—यद्ग नील, शहाब और मजीठ के संयोग से बनता है ।

कोककला—सङ्घा खी० [सं०] रतिविद्या संभोग संबंधी विद्या । उ०—
गहि अग संग आसन दियव, कोक कला रस विस्तरिय ।
—ह० रासो, पृ० ४१ ।

कोकट—वि० [सं० कुक्कुटी] मटमैले रंग का । गदा । मंल से भरा
हुआ (कपड़ा) ।

कोकटी—सङ्घा खी० [सं० कुक्कुटी, हि० कुकटी] दे० 'कुकटी' । उ०—
कोकटी की रूई खरीदकर उसने दो सेर सुत इसलिये काते ।
—रति०, पृ० १३१ ।

कोकदेव—सङ्घा पु० [सं०] १ कोकशास्त्र या रतिशास्त्र का रचयिता ।
२ सूर्य (की०) । ३ कपोत । कवूतर (की०) ।

कोकन—सङ्घा पु० [देश०] एक ऊँचा पेड़ जो आसाम और पूरबी बंगाल
में होता है ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ शिथिल मे झुट जाती हैं । इसकी लकड़ी
अंदर से सफेद निकलती है जिसपर पीली पीली धारियाँ होती
हैं । लकड़ी का वजन प्रति घन फुट १० से १८ सेर तक होता
है । देखने में तो मुलायम होती है । पर न फटती है
और न झुकती है । यह चाय के सड़क और नाव बनाने के
काम में आती है तथा मकानों में भी लगती है ।

कोकनद—सङ्घा पु० [सं०] लाल कमल । १ लाल कुमुद । लाल कुई ।
कोकना^१—कि० सं० [फा० कोक (= कच्ची सिलाई) + हि० ना
(प्रत्यय०)] कच्ची सिलाई करना । कच्चा । करना । लंगर
ढालना ।

कोकना^२ (७)—कि० घ० [हि० कूकना] बुलाना । चिल्लाना । उ०—
कोक पाड्यो अरी परधान । दीघो छंजव तिहा चउगुणउ
मान ।—वी० रासो, पृ० ८७ ।

कोकनी^१—सङ्घा पु० [सं० कोक = चकवा] एक प्रकार का तीतर ।

कोकनी^२—सङ्घा पु० [देश०] एक प्रकार का सतरा जो सहायनपुर और
दिल्ली में होता है ।

कोकनी^३—सङ्घा पु० [तु० कोक = आसमानी] एक प्रकार का रंग जो
शहाब, लाजवर्द और फिटकरी से बनता है ।

कोकनी^४—वि० [देश०] १ छोटा । नन्हा । जैसे,—कोकनी बेर,
कोकनी केला । २. घटिया । निकुष्ट । जैसे,—कोकनी
कलविस्तू ।

कोकवधु—सङ्घा पु० [सं० कोकवधु] रवि । सूर्य । दिनकर (की०) ।

कोकम—सङ्घा पु० [सं०] एक छोटा सदावहार पेड़, जो केवल दक्षिण
भारत में होता है ।

विशेष—दे० 'ममसूल' ।

कोकव—सङ्घा पु० [सं०] एक संकर राग जो पूरबी बिलावल, केदारा,
मारू और देवगिरि से मिलाकर बनाया गया है ।

कोकवा—सङ्घा पु० [देश०] एक प्रकार का वाँस जो बरमा और
आसाम में बहुतायत से होता है । यह टोकरे बनाने के काम
में आता है ।

कोकशास्त्र—सङ्घा पु० [सं०] कोककृत रतिशास्त्र ।

कोकहर—सङ्घा पु० [सं० कोक + हर] चकवा का आनंद हरण करने
वाला—चंद्रमा । शशि ।

कोका^१—सङ्घा पु० [अ०] दक्षिणी अमेरिका का एक वृक्ष ।

विशेष—इसकी सुखाई हुई पत्तियाँ चाय या कढ़वे की भाँति
शक्तिवर्धक समझी जाती हैं । इसके व्यवहार से थकावट और
भूख नहीं मालूम होती, इसलिये वहाँ के निवासी पहाड़ों पर
चढ़ने से पहले थोड़ी सी सूखी पत्तियाँ चबा लेते हैं । इनमें एक
प्रकार का नशा होता है, इसलिये एक बार इनका व्यवहार
आरंभ करके फिर उसे छोड़ना कठिन हो जाता है । कोकेन
इसी से निकलता है ।

कोका^२—सङ्घा खी० [तु० कोकह] घाय की सनान । दूध पिलानेवाली
की सतति । दूधभाई या दूधबहिन ।

कोका^३—सङ्घा पु० [हि० को] एक प्रकार का कवूतर ।

कोका^४—सङ्घा खी० [?] नीली कुमुदिनी ।

विशेष—दे० 'कोकावेरी' ।

कोकावेरी—सङ्घा खी० [कोका + वेरी] नीली कुमुदिनी । नीली कुई ।

विशेष—यह पुरानी भीलो या तालावों में होती है । इसका फूल
नीले रंग का, बड़ा और सुहावना होता है । इसमें भी कुई
की तरह बीज होते हैं, जिनका आटा व्रत में फनाहार की
तरह खाया जाता है । इसके बीज भूनने से लावा हो जाते
हैं, जिसे चीनी में पागकर लड्डू बनाते हैं ।

कोकावेरी—सङ्घा खी० [सं० कोका + हि० वेरी] दे० 'कोकावेरी' ।

उ०—कोकावेली, पवन सियरी वारि की चारुताई । को है
ऐसो, करहि नहि ये आसु तल्लोनडाई ।—द्विवेदी (शब्द०) ।

कोकामुख—सङ्घा पु० [सं०] भारत का एक प्राचीन तीर्थ जिसका
उल्लेख महाभारत में आया है ।

कोकाह—सङ्घा पु० [सं०] सफेद रंग का घोड़ा । उ० हरं कुरग
महुम बहु भाँति । गरर कोकाह बलाह सुपाँती ।—जायसी
(शब्द०) ।

कोकिल—सङ्घा पु० [सं०] १. कोयल ।

पर्या०—पिक । परभूत । ताम्राक्ष । वनप्रिय । पंगुष्ट । अन्यपुष्ट ।
वसतदूत । रत्ताक्ष । मधुगायन । कलकठ । कामाक्ष । काली-
रव । कुहूख ।

यौ०—कोकिलकठी = दे० 'कोकिलवैनी' । कोकिलनयन = ताल
मखाना । कोकिलवैनी = कोयल जैसा मधुर बोलनेवाली ।
उ०—लक सिधिनी सारगनेनी । हंसगमिनी कोकिलवैनी ।
—जायसी ग्र०, पृ० १२ । कोकिलरव । दे० 'कोकिलारव' ।

२. नीलम की एक छाया । ३. एक प्रकार का चूड़ा जिस केकटने
से ज्वर आता है और बहुत जलन होती है । ४. छपर का

कोकिलक

१६ वां भेद जिसमें ५२ गुण, ४८ लघु अर्थात् १०० वर्ण या १५२ मात्राएँ होती हैं। ५ जलता हुआ अंगारा।

कोकिलक—सद्या पुं [सं०] एक प्रकार का छंद [को०]।

कोकिला—सद्या स्त्री० [सं०] १ कोयल। पिक। २ आग का अंगारा।

उ०—चकई निसि विछरै, दिन मिना। हौं दिन राति विरह कोकिला।—जायसी ग्रं०, पृ० १५४।

कोकिलाक्ष—सद्या पुं [सं०] तालमखाना।

कोकिलाप्रिय—सद्या पुं [सं०] संगीत में एक ताल जिसमें एक प्लुत (प्लुत की तीन मात्राएँ), एक लघु (लघु की एक मात्रा) और तब फिर एक प्लुत होता है। इसे लोग परमलु भी कहते हैं। इसके मृदंग के बोल ये हैं—धीकृत धीकृत धिधिकिट ५ तक यों। तकिडिंगि डिधिंगिन यों यो^१ ५।

कोकिलारव—सद्या पुं [सं०] ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक।

कोकिलावास—सद्या पुं [सं०] ग्राम का वृक्ष। रसालतब [को०]।

कोकिलासन—सद्या पुं [सं०] तब के अनुसार एक आसन।

कोकिलेष्टा—सद्या स्त्री० [सं०] बड़ा जामुन। फरेंदा।

कोकिलोत्सव—सद्या पुं [सं०] ग्राम का पेड़। सहकार वृक्ष [को०]।

कोका—सद्या स्त्री० [सं०] चकवी। चक्रवाकी। उ०—छिनु छिनु प्रभु पद कमल विलोकी। रहिहो मुदित दिवस जिमि कोकी।—मानस, २।६६।

कोकीन—सद्या स्त्री० [अ० कोकेन] दे० 'कोकेन'।

कोकुआ—सद्या पुं [सं० कोकाग्र] समष्टिल नाम का पौधा।

पर्या०—मद्याग्र। अन्नगेधक। कोकाग्र। कटकफल। उपदेश।

कोकेन—सद्या स्त्री० [अ० कोका] नामक वृक्ष की पत्तियों से तैयार की हुई एक प्रकार की ओषध, जो गघहीन और सफेद रंग की होती है।

विशेष—यह दवा की भाँति, मरहमों में मिलाने और खाँब आदि कोमल अंगों पर अस्त्रचिकित्सा करने से पहले उन स्थानों को सुख करने के काम में आती है। कुछ दिनों पूर्व भारत में इसका प्रयोग मादक द्रव्यों की भाँति होने लगा था और लोग इसे पान के साथ खाते थे, पर अब इसका प्रयोग केवल डाक्टर ही कर सकते हैं। कानून द्वारा साधारण लोगों में इसकी बिक्री बंद है।

यो०—कोकेनची=मादक द्रव्य की भाँति कोकेन का उपयोग करनेवाला। कोकेन का नशा खानेवाला।

कोको^१—सद्या स्त्री० [अनु०] कोआ। लड़की को बहकाने का शब्द।

उ०—मैं तो सोय रही सुख नींद, पिया को कोको ले गई रे। (गीत)।

विशेष—जब किसी वस्तु को बच्चों के सामने से हटाना होता है, तब उसे हाथ में लेकर कही छिपा देते हैं और उनके बहकाने के लिये कहते हैं कि कोआ ले गया। 'कोको ले गई'।

कोको^२—सद्या पुं [सं० कोकोआ] १. विषुवत् रेखा के आसपास के देशों में होनेवाला एक पेड़ जो ताड़ वृक्ष के आकार का होता है।

उ०—उमी ने कोको वृक्ष लगाना आरंभ किया।—प्रा० भा० पं०, पृ० १३। २. कोको के फल का चूर्ण। ३. कोको के बीज के चूर्ण से बनाया हुआ पेय।

कोकोजम, कोकोजेम—सद्या पुं [अ० कोको=नारियल] साफ करके जमाया हुआ, निर्गंध गरी का तेल जिसका व्यवहार घी के स्थान पर होता है।

कोख—सद्या पुं [सं० कुक्षि, प्रा० कुबिख] १. उदर। जठर। पेट। २. पसलियों के नीचे, पेट के दोनों बगल का स्थान।

मुहा०—कोख लगना या सटना=पेट खानी रहने या बहुत अधिक भूख लगने के कारण पेट अंदर घँस जाना।

३. गर्भाशय।

विशेष—इस अर्थ के सब मुहावरों और योगिक शब्दों का प्रयोग केवल स्त्रियों के लिये होता है।

यो०—कोखवद। कोखजली।

मुहा०—कोख उजड़ना=(१) संतान मर जाना। बालक मर जाना। (२) गर्भ गिर जाना। कोख बंद होना=वध्या होना। संतति उत्पन्न करने के अयोग्य होना। कोख या कोख साँग से ठंडी या भरी पूरी रहना=बालक या, बालक और पति का सुख देखते रहना—(आसीस)। कोख मारी जाना=दे० 'कोख बंद होना'। कोख की बीमारी या रोग=संतति न होने या होकर मर जाने का रोग। कोख की आँच=संतान का वियोग। संतान का कष्ट। जैसे—सब दुःख सहा जाता है, पर कोख की आँच नहीं सहो जाती। कोख खुलना=बाँझपन दूर होना। उ०—पर मिला पूत जो सपूत नहीं। क्या खुजी कोख जो न भाग खुला।—चोखे०, पृ० ३६।

कोखजली—वि० स्त्री० [हि० कोख + जलना] जिसकी संतति होकर मर जाती हो। जिसके बालक मर जाते हो।

कोखबंद—वि० [हि० कोख + बंद] जिसे संतति न होती हो। वध्या। बाँझ।

कोखा^१—सद्या पुं [हि०] दे० 'कोख'। उ०—बालक जन्मा मोरे कोखा। जन्म मरे की भागी घोखा।—कबीर सा०, पृ० ५३२।

कोगी—सद्या पुं [देश०] लोमड़ी से मिलता जुनता एक जानवर।

विशेष—यह भुँड में रहता और फसल को बहुत हानि पहुँचाता है। कहते हैं इनका भुँड मिलकर शेर पर दूब पड़ता है और उसके शरीर का सारा मांस खा जाता है। जिस जंगल में कोगी का भुँड जाता है, उसमें से शेर डरकर निकल जाते हैं।

कोच^१—सद्या पुं [अ०] १. एक प्रकार की चौपटिया बड़िया घोड़ा गाड़ी।

यो०—कोचबकत। कोचवान।

२. गद्ददार बड़िया पलंग, बेंच या आरामकुरसी।

कोच^२—सद्या पुं [हि० कोचना] वह लंबी छड़ जिसकी सहायता से मट्ठे में से ढले हुए वस्तु निकाले जाते हैं।

कोच^३—सद्या पुं [?] दूढ़े हुए जहाज का टुकड़ा।—(लश०)।

कोछी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० काछा] साड़ी या धोती का वह भाग जिसे चुनकर स्त्रियाँ पेट के आगे खोसती हैं । फुवती । तिन्नी । नीदी ।

कोड़ई—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक कैंटीला झाड़ या पेड़ ।

विशेष—यह झाड़ देहरादून, कुमाऊँ, बगाल और दक्षिण भारत में होता है । इसकी पत्तियाँ ३-४ अंगुल लंबी होती हैं । इसमें बहुत छोटे फूल छोटे छोटे गुच्छों में लगते हैं । पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं, फल खाए जाते हैं तथा जड़ और छाल की बजा वनती है ।

कोड़रा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डल] लोहे का वह कड़ा जो मोट के मुँह पर लगा रहता है । गोडरा ।

कोडरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डली] हुडक बाजे की वह लकड़ी जिसपर चमड़ा मड़ा रहता है ।

कोडहा—वि० [हि० कोड़ा] दे० 'कोड़ा' ।

कोडी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कोड़ा' । उ०—रैयत जगत सब की कोडी, दूजी मार न मारी ।—धरवी०, पृ० ३ ।

कोड़ा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुण्डल] धातु का वह छल्ला या कड़ा जिसमें जबीर या और कोई वस्तु अटकाई जाती है ।

कोड़ा—वि० [हि० कोड़ा + हा (प्रत्य०)] (स्वयं) जिसमें कोड़ा लगा हो या जिसमें कोड़ा लगे रहने का चिह्न हो ।

विशेष—इस देश में ६ पगो में छेद करके उनकी माला पिरोंकर स्त्रियों और बच्चों को पहनाते हैं । ऐसे रूपों को माला में से निकालकर बाजार में चलाने से पहले उनके छेद चाँदी से बंद कर देते हैं । इस प्रकार के रूपों को कोड़ा या कोड़हा कहते हैं ।

कोडी—सञ्ज्ञा, स्त्री० [हि० कोड़ा] का अल्पा०] दे० 'कोड़ा' ।

कोडी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कोडी] मुँहवैधी कली । अनखिली कली ।

कोथी—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] कुम्हारों की परिभाषा में बरतन आदि का वह पूर्वरूप जो मिट्टी को चाकर रखने के बाद बनता है ।

कोथना—क्रि० प्र० [सं० कुथन] दे० 'कूथना' या 'कूथना' ।

कोप—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कोपल' । उ०—उठे कोप जनु दाँखि दाखा । मई अनंत प्रेम की साखा ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १६० ।

कोपना—क्रि० प्र० [हि० कोपल या कोप + ना (प्रत्य०)] कोपल निकलना या लगना ।

कोपरी—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कोपन] छोटा अधपका या डाल का पका हुआ आम ।

कोपली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कोमल या कु + (प्रत्य०), छोटा + पल्लव] वृक्ष आदि की छोटी, नई और मुलायम पत्ती । अकुर । कल्ला । कनखा ।

कोवर—वि० [सं० कोमल] नरम । मुलायम । नाजुक । उ०—(क) कोंदरे पानि रची मेहदी डफ नीके वजाय हरि हियारी ।—सुदरीसर्वस्व (शब्द०) (ख) माखन सी जीम मुख कज सो कोवर कहु काठ सी कठौठी बाते कैसे निकरति हैं ।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० ७२ ।

कोवरि, कोवरी—वि० स्त्री० [सं० कोमल] मुलायम । नाजुक ।

कोमल । उ०—(क) घेदहुँ चाहि धनि कोंवरि मई ।—जायसी ग्र० (गुप्त) पृ० ३३६ । (ख) एक तो ताती सुठि कोवरी ।—जायसी ग्र०, पृ० १२४ ।

कोवल—वि० [हि०] दे० 'कोमल' । उ०—कोवल कुटिल केस नग फारे ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १२५ ।

कोवलि—वि० स्त्री० [हि०] दे० 'कोमल' । उ०—सुया सो नाक कठोर पवारी । वह कोवलि तिल पुहुप सवारी ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १२६ ।

कोस—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोश] लंबी फली । छीमी ।

कोहडा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कूष्माण्ड, प्रा० कोहडा] दे० 'कुम्हड़ा' ।

कोहड़ी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कोहड़ा + वरी] कुम्हड़े या पेट की बनाई हुई वरी ।

कोहरी—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] [कोहरी] उवाले हुए खड़े चने या मटर जिनको तेल में छोंककर और नमक मिचं लगाकर खाते हैं । घुघनी ।

कोहराना—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कोहार] वह वस्ती जहाँ कोहार रहते हैं ।

कोहाना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'कोहाना' ।

कोहारा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुम्भकार, प्रा० कुम्भार] दे० 'कुम्हार' । उ०—तुरी श्री नाव वाहिन रथ हाँका । बाए फिर कोहार क चाका ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३६८ ।

को—वि० [सं० क] १ कोन । उ०—तू को, कोन देस है तेरो । कै छल गह्यो राज सब मेरो ।—सूर०, १।२६० । २. कोई । उ०—पँदा जाको हुआ है वो सब उनो किया है ।—दक्खिनी० पृ० २१२ । ३. क्या । उ०—इतर धातु पाह-नहि परसि कंचन ह्वै सोहैं । नंदसुवन को परम प्रेम इह अचरज को है ।—नद० ग्र०, पृ० ८ ।

को—(प्रत्य०) [हि०] कर्म और संप्रदान का विभक्ति प्रत्यय । जैसे—साँप को मारो । राम को दो । उ०—और विद्या की अभ्यास विशेष हतो ।—अकवरी० पृ० ३८ ।

कोसा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोश या हि० कोसा] शरेशम के कीड़े का घर । कुसियारी । २ टसर नामक रेशम का कीड़ा । ३ महुए का पका फल । कोलेंदा । गोलेंदा ४ फटहल के पके हुए बीज-कोश । ५ घुने हुए ऊन की पोती, जिसे कातकर ऊन का तागा निकालते हैं । (महरिया) । ६ दे० 'कोया' ।

कोसारा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] कोरा नाम का वृक्ष ।

कोइदा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] दे० 'कोइना' ।

कोइदी—सञ्ज्ञा स्त्री० [कोइदा] महुए का बीज ।

कोइ—वि० [हि० कोई] दे० 'कोई' । उ०—लोग कहहि यह होइ न जोगी । राजकुंवर कोइ अहै वियोगी ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २६४ ।

कोइक—वि० [सं० कति + एक या कियत् + एक हि० कोई एक] दे० 'कोई' । उ०—(क) कोइक दिन गुर राम पैं पढी सुविद्या अष्ट । चवदसु विद्या चतुर बर लई सीध पर

कोइडार

लिप्प।—पृ० रा०, १। ७७६। (ख) कोइक आखर मति

वस्यउ उही पंख समार।—ढोला०, दू० ६७।

कोइडारा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कोइरी + आर (प्रत्य०)] वह खेत या स्थान जहाँ कोइरी लोग साग, तरकारी आदि बोते हो।
कोइना—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कोया + इना (प्रत्य०)] महुए का पका फल। गोलेंदा।

कोइराना—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कोइरी] वह वस्ती जना कोइरी रहते हो।

कोइरारा—[हि० कोइरी] दे० 'कोइडार'।

कोइरी—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कोयर = साग पात] एक जाति। इस जाति के लोग साग, तरकारी आदि बोते और बेचते हैं। काछी।

कोइल^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डली] १ गोल छेददार लकड़ी जो मक्खन निकालने के समय दूध के मटके या मेहँडे के मुँह पर रखी जाती है और जिसके छेद में मयानी इसलिये डाल दी जाती है कि जिसमें वह सीधी घुमे और उससे मटका न फूटे।
२ करघे में की वह लकड़ी जो ढरकी के बगल में लगी रहनी है।—(जुनाहा)।

कोइल^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कोलना] दे० 'कोइनारी'।

कोइल^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कोकिल] दे० 'कोयल' 'कोकिन'। उ०—
या ठोटी सरि को जव सफन भप बैराय। तबहि रसालनि को गई कोइल दाग लगाय।—गाम० धर्म०, पृ० २३४।

कोइलरी—सञ्ज्ञा पुं० [य० कोलियरी] कोयले की खान।

कोइलस—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कोइल + आंस] (प्रत्य०) दे० 'कोइरी'।

कोइला—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कोयला'। उ०—करम काट कोइला

किया ब्रह्म अग्नि परचार।—कवीर श०, पृ० २५।

कोइलारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कोलना] १. गराव की मुद्दी। १ लकड़ी का वह गोल ब्रह्म जिसे बदमाश चौपायों के गराव में इसलिये फँसा देते हैं जिसमें भटका देने या खींचने से उनका गला दबे। इस व्यवहार से बदमाश चौपाये सीधे हो जाते हैं और चुपचाप खड़े रहते हैं।

कोइलिया(उ०)—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कोयल + इया] (प्रत्य०)] दे० 'कोयल'।

कोइली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कोयल] १. वह कच्चा ग्राम जिसमें किसी प्रकार का आघात लगने से एक काला सा दग पड़ जाता है।
ऐसा ग्राम कुछ सुगन्धित और स्वादिष्ट होता है।

विशेष—साधारण लोगों का यह विश्वास कि ग्राम की यह दग उसपर कोयल के पादने या बैठने से हो जाती है।

२. ग्राम की गुठली। ३. दे० 'कोयल'।

कोई^१—सर्व० [सं० कोपि, प्रा० कोवि] १. ऐसा एक (मनुष्य या पदार्थ) जो अज्ञात हो। न जाने कौन एक। जैसे,—वहाँ कोई खड़ा था, इसी से मैं नहीं गया।

मुहा०—कोई न कोई = एक नहीं तो दूसरा। यह न सही, वह।

जैसे—कोई न कोई तो हमारी बात सुनेगा।

२. ऐसा एक जो अनिर्दिष्ट हो। बहुतों में से चाहे जो एक।
अविशेष वस्तु या व्यक्ति। जैसे,—(क) वहाँ बहुत सी पुस्तकें
२-६६

पड़ी हैं, उनमें से कोई ले लो। (ख) हमारा कोई क्या कर लेगा?

मुहा०—कोई एक या कोई सा = जो चाहे सो एक।

३. एक भी (मनुष्य) जैसे—वहाँ कोई नहीं है।

कोई^२—वि० १. ऐसा एक (मनुष्य या पदार्थ) जो अज्ञात हो।

मुहा०—कोई वम का मेहमान = बोड़े ही काल तक और जीनेवाला। शीघ्र मरनेवाला।

२. बहुतों में से चाहे जो एक। ऐसा एक जो अनिर्दिष्ट हो।

जैसे,—इनमें से कोई एक पुस्तक ले लो। ३. एक भी। कुछ भी। जैसे—(क) कोई चिन्ता नहीं (ख) यह कोई पड़ना

नहीं है।

मुहा०—यह भी कोई बात है? = यह कोई बात नहीं है। ऐसा नहीं हो सकता। ऐसा नहीं होना चाहिए। जैसे,—(क) जब हम आते हैं तब तुम चल देते हो। यह भी कोई बात है।

(ख) यह भी कोई बात है कि जो हम कहे वह न हो।

कोई^३—क्रि० वि० लगभग। करीब करीब। जैसे,—कोई दस आदमियों ने चढ़ा दिया होगा।

कोउ(उ०)—सर्व०, वि० [हि० को + उ = भी] कोई। उ०—कोउ नप होउ हमहि का हानी।—मानस, २। १६। वि० दे० 'कोई'।

कोउक(उ०)—सर्व० [हि० कोऊ + एक] कोई एक। कतिपय। कुछ लोग। उ०—जो इह फागुन पीय, फाग न नेनु आय ब्रज। कैं हों कै इह जीय, कोउक तुम पर आय है।
—नद० ग्रं०, पृ० १७१।

कोऊ(उ०)—सर्व० [हि० को + उ = भी] कोई। उ०—सावन सरित न रुकै करै जो जवन कोऊ अति। कृष्ण गहे जिनको मन ते वयो रुकैहि अगम अति।—नद० ग्रं०, पृ० ६।

कोकंव—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जिसके सब फल खट्टे होते हैं। वि० दे० 'विसाविल'।

कोक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कोकी] चकवा पक्षी। चकवाक। सुरदास।

यो०—कोकवधु = सुर्य।

२. एक पंडित का नाम जो रतिशास्त्र का आचार्य माना जाता है। इसका पूरा नाम कोकदेव कहा जाता है।

यो०—(७) कोक आगम। कोककला। कोकशास्त्र।

३. उगीत का छठा भेद जिसमें नायिका, नायक, रस, रसाभास, अलंकार, उद्दीपन, आलंयन, समय और समाजादि का ज्ञान आवश्यक होता है। ४. विष्णु। ५. भेड़िया।

यो०—कोकमुत्र। कोकाश।

६. मेढक।

यो०—कोकाद = लोमड़ी।

७. जगली खजूर। ८. कोयल। पिक (को०)। ९. छिपकनी या निरगिट (को०)। १०. कामशास्त्र। रति कला। उ०—उरनाइय कोक पडै सुपराई सिखावति है रसिकाई रस।—यतानंद,
पृ० २८।

कंरि^१—संज्ञा पुं० [सं० कंर, प्र० कंर] नदिर का वृक्ष। उ०—
मुन कंरि इव कंर्य कंरि।—पृ० रा०, २।३५५।

कंरट—संज्ञा पुं० [प० मि० प० किरात] १. काड़े तीन घने को एक
सोना। ३० 'करात'। २. एक प्रकार का नान जिससे सोने की
शुद्धता घोर उगन दिए हुए नेत्र का हिसाब जाना जाता है।

विशेष—पुराण घोर पंजरिका न वि० कुल चालिन सोने का
ध्वजदार प्रायः उही मोना घोर उसमें प्रवेशाकृत अधिक मेल
दिया जाता है। इसीलिए जो सोना बिलकुल शुद्ध होता है उसे
३० कंरट का कहा जाता है। यदि प्राधा सोना घोर प्राधा
दुमरी जामु का मेल हो तो वह सोना १२ कंरट का घोर यदि
सोना चोलाई मोना घोर एक चोलाई मेल हो तो वह सोना
१८ कंरट का कहा जाता है। इसी प्रकार १४, १६, २०
घोर २२ कंरट का भी मोना होता है जिनमें से अंतिम सबसे
पक्का सब्जा जाता है।

कंरय—संज्ञा पुं० [सं०] [सं० कंरयो] १. कुमुद। २. सफेद कमल।
३. नट। ४. जुवारी।

कंरयवपु—संज्ञा पुं० [सं० कंरयवपु] चंद्रमा। निशाचर [सं०]।

कंरबिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कुमुदगुप्त बापी। २. कुमुद पुष्पों
की उंदी या समूह [सं०]।

कंरवी^१—संज्ञा पुं० [सं० कंरविन्] चंद्रमा।

कंरवी^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चौदती (रात)। २. मेघी।

कंर^१—संज्ञा पुं० [सं० कंरय=कुमुद] [सं० कंरो] १. भूरा (रंग)।
२. यह सफेदी जिसमें सलाई की कक या घासा हो।
३. रंग के भेद से एक प्रकार का रंग जिसके सफेद रोमों
के घंवर से समझे की समझाई भलकती है। ऐसे रंग बड़े तेज
पर मुकुनार होते हैं। सोकना। सोकन।

कंरा^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. कंरे रंग का। २. जिसकी भूरी घांघें हो। कना।

कंराटक—संज्ञा पुं० [सं०] ग्वावर बिप का एक भेद, जिसके अंतर्गत
पकीम, कंर, सविमा आदि हैं।

कंरात^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. किरात जाति संघी। किरात देश
संघी।

कंरात^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. चिरायता। २. घबर चदन। ३. वनवान्
नमुष्य। ४. कंरत सी। ५. एक प्रकार की चिड़िया। ६.
गुड राग का एक भेद (संगीत)। ७. किरात देश का
राजा [सं०]।

कंरात ८, कंरातिक—संज्ञा पुं० [सं०] २० 'करात' [सं०]।

कंरात—संज्ञा [सं०] वायविडग।

कंरो^१—संज्ञा स्त्री० [सं० कंरा] १. भूरे रंग की। जैसे—कंरो घांघ।
२. समझाई मित्र सफेद रंग की। जैसे—कंरो गाय।

कंरो^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] २० 'कंरो'।

कंरुडर—संज्ञा पुं० [प०] १. पंगरेंद्रो विविध या पंचांग जिसमें
महीना वार घोर पारोघ उरो रहती है। २. मृचा। कंरुडिस्त।
रुडिडर।

कंरु—संज्ञा स्त्री० [सं० कंरु] किसी वृक्ष की नई निकली हुई लंबी
रसमी बांधा। कंरु।

कैल^२—संज्ञा पुं० [सं०] खेल। मनोज्ञोद। क्रीडा [सं०]।

कैलकिल—संज्ञा पुं० [सं०] गवन [सं०]।

कैलातक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुरा। नदिरा २. मधु [सं०]।

कैलास—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिमालय की एक चोटी का नाम, जो
विश्वत मे राक्षसताय या रावणहृद से उत्तर घोर पचास
मील की दूरी पर है। पुराणानुसार यह शिव जी तथा कुवेर
का निवासस्थान माना जाता है।

यो०—कैलासनाथ। कैलासपति=शिव। कैलासावास=मरण।
मृत्यु।

२. एक प्रकार का पटकोण देवमंदिर, जिसमें आठ भूमिका घोर
अनेक गिहर होते हैं। इसका विस्तार आठारह हाथ होता
है। ७. स्वर्ग। उ०—ऊँची पैवरी ऊँच उडासा। जनु
कैलास इद्र कर वासा।—जायसी (शब्द०)।

कैलासी—संज्ञा पुं० [सं० कैलास+ई (प्रत्यय)] १. कैलास निवासी
महादेव। १. कुवेर।

कैलैया—संज्ञा पुं० [सं० कोकिलाक्ष] ताल मखाना।

कैवर्त—संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार भार्गव पिता घोर अयोधवी
माता से उत्पन्न एक वर्षासंकर जाति। ब्रह्मवैवर्त पुराण मे
कैवर्त की उत्पत्ति सत्रिय पिता घोर वंश्य माता से लिखी
है। इसी शब्द से व्युत्पन्न आजकल का केवट शब्द है।

कैवर्तक—संज्ञा पुं० [सं०] मछुवा। केवट [सं०]।

कैवर्तमुस्त—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कैवर्तमुस्तक' [सं०]।

कैवर्तमुस्तक—संज्ञा पुं० [सं०] केवटी मोथा।

कैवर्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक लता का नाम जो ओषध के काम
आती है।

विशेष—यह अधिकतर मालवा मे होती है तथा हल्की, बूध्य
घोर कसली होती है। यह कफ, छाँपी घोर मदानि को
दूर करनेवाली समझी जाती है।

पर्वी०—सुरगा। वशावृद्धा। रगिनी। वल्लभा। सुभाग।

कैवल—संज्ञा पुं० [सं०] वायविडग। वागिरग।

कैवल्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. शुद्धता। खेलन। निलिप्तता। एकता।
२. मुक्ति। परवर्ग निर्वाण।

विशेष—दर्शनों का यह सिद्धांत है कि जीवात्मा या तो आवरणों
के कारण प्रत्यक्ष सविद्या से अमरता ससार में सुख दुःख भोग
रहा है। उसे शुद्ध या अमरहित करना ही आत्मा ने अपना परम
कर्तव्य समझा है और उसके भिन्न भिन्न साधन बतलाए हैं।
साध्य शास्त्र मे—निविद्य दुःखों की अत्यंत निवृत्ति को कैवल्य
माना है और विवेक को उसका एकमात्र साधन बतलाया है।
योगशास्त्र मे विशेषतः आत्मभाव की भावना अर्थात् प्रहकार
की निवृत्ति ही कैवल्य बतलाया है और चित्र की वृत्तियों के
निरोध को ही उसका साधन कहा है। वेदाव म प्रथितीय
ब्रह्मभाव की प्राप्ति को कैवल्य माना है और सविद्या की
निरोध को उसका साधन ठहराया है। न्याय मे बुद्ध की
अत्यंत विमुक्ति को कैवल्य या परवर्ग कहा और उसका
साधन प्रमादि योग्य पदार्थों का त्याग। बतलाया है।

३. एक उपनिषद् का नाम।

कैवा-^७क्रि० वि० [सं० कति + वार, हि० कै (= कई) + वा (वार)]
कई बार । कई दफा । उ०—मैं तोरों कैवा कह्यो तू जिन
इन्हें पत्याइ । लगानगी करि लोइननु उर में लाई लाइ ।—
बिहारी २०, बो० ६६ ।

कैशे—संज्ञा पुं० [अ०] रुपया पैसा । सिक्का । नगदी ।

यौ०—कैशवुकु = रोवड वही ।

कैशे—वि० जिसका दाम नगद दिया गया हो । सिक्का देकर लिया
हुआ ।

यौ०—कैशनेमो = नकद खरीदे माल की रसीद ।

कैशिके—वि० [सं०] १. कैशवाला । बडे बडे वालोवाला । २. वाल
के समान । कैश के समान सुंदर (को०) ।

कैशिके—संज्ञा पुं० १. कैशमूह । २. शृंगार । ३. नृत्य का एक
भाव जिसमें सुकुमारता से किसी की नकल की जाती है । ४.
प्रेम । प्रणय (को०) ।

कैशिक निपाद—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक विकृत स्वर जो तीव्र
नामक श्रुति से आरंभ होता है और जिसमें तीन श्रुतियाँ
नगती हैं ।

कैशिक पंचम—संज्ञा पुं० [न० कैशिक पञ्चम] संगीत में एक विकृत
स्वर जो सदीपनी नामक श्रुति से आरंभ होता है और जिसमें
चार श्रुतियाँ लगती हैं ।

कैशिकी—संज्ञा स्त्री० [म०] १. नाटक की चार वृत्तियों में से एक ।
विशेष—यह वृत्ति शृंगार-रस-प्रधान नाटकों में होती है । इसमें
नृत्य, गीत, वाद्य और भोग विलास का अधिक वर्णन किया
जाता है । ऐसे नाटकों में स्त्रीपात्र अधिक होते हैं ।

२. दुर्गा (को०) ।

कैशियर—संज्ञा पुं० [अ०] १. वह कर्मचारी जिसके पाम रुपया
पैसा जमा रहता हो और जो उसे खर्च करता हो । आम्दनी
लेने और खर्च करनेवाला आदमी । खजानची ।

कैशोर—संज्ञा पुं० [सं०] किशोर अवस्था । वचपन । अल्प वय (को०) ।

कैशोप—संज्ञा पुं० [सं०] वृद्धदारण्यक उपनिषद् में उल्लिखित एक
श्रुति (को०) ।

कैश्य—संज्ञा पुं० [म०] कैश्यमूह । कैशमार (को०) ।

कैसना—वि० [हि०] दे० 'कैसा' । उ०—कैसन देश राज वह भाही ।
चित इच्छा प्रभु देखन ताही ।—कबीर सा०, पृ० ४३६ ।

कैसर—संज्ञा पुं० [ल० सीज़र] १. सम्राट् । बादशाह । जैसे,—कैसर
हिंद । २. जर्मनी के सम्राट् की उपाधि ।

कैसा—वि० [सं० कीदृश, प्रा० केरस] [स्त्री० कैसी] [क्रि० वि० कैसे]
१. किस प्रकार का । किन ढंग का । जैसे,—यह कैसा आदमी
है ? २. (निषेधात्मक प्रश्न के रूप में) किस प्रकार का ?
किसी प्रकार का नहीं । जैसे,—जब हम उस मकान में रहते
नहीं तब किराया कैसा ? ।

कैसा—क्रि० वि० [हि० का + सा] के समान । का सा । की तरह का ।

कैसे—क्रि० वि० [हि० कैसा] किस प्रकार से । किस ढंग से ?
जैसे,—यह काम कैसे होगा ? । २. किस हेतु ? किसलिये ?
क्यों ? जैसे,—तुम यहाँ कैसे आए ?

कैपो^७—वि० [हि० कैसा] दे० 'कैसा' ।

कैसो^७—क्रि० वि० के समान । का सा । उ०—भिक्षिया कैसो घट
भयो, दिन ही में बन कुंज । मरि राम (शब्द०) ।

को^७—प्रत्यय [हि०] दे० 'को' । उ०—ब्रह्मादिक की जीति
महामद यदन भरयो जब । दर्पदन नंदनलन रास रस प्रागट
कयचो तब ।—नद० ग्रं० पृ० ३६ ।

कोइछाँ—संज्ञा पुं० [हि० खूँट] दे० 'खोइचा' ।

कोई^७—संज्ञा स्त्री० [हि० कुई] दे० 'कुई' । उ०—भरक पानी
डोमक को गरव उपज जाहि ।—विद्यापति, पृ० २४६ ।

कोकण—संज्ञा पुं० [सं० कोङ्कण] दक्षिण भारत का एक प्रदेश,
जिसके अंतर्गत कनारा, रत्नगिरि, कोलाबा, वंदई और याना
आदि हैं ।

विशेष—प्राचीन काल में केरभ, तुलव, सोराष्ट्र कोकण, करहाट,
कर्णाट और दर्वज मिलकर सप्तकोकण कहाते थे ।

२. उवत देश का निवासी । ३. एक प्रकार का शस्त्र (को०) ।

कोकणा—संज्ञा स्त्री० [सं० कोङ्कणी] परजुराम की माता रेणुका ।
इन्हे कोकणावती भी कहते हैं ।

यौ०—कोङ्कणामुठ = परजुराम ।

कोकणी—संज्ञा स्त्री० [सं० कोङ्कणी] कोकण देश की भाषा जो
भाषाओं के में से बनी है ।

कोचना—क्रि० सं० [सं० कुच = लिखना, खरोचना या देग०] चुमाना
गोटना । गाहना । उ०—कोचत करेजन कजाकी कमवात काम
कानन कमान तान कानन दिखावतो ।—श्यामा०, पृ० १३५ ।

कोचफली—संज्ञा स्त्री० [हि० केवाच + फली] दे० 'कोछ' ।

कोचा^१—संज्ञा पुं० [सं० कोच] एक प्रकार का जलपक्षी ।

कोचा^२—संज्ञा पुं० [हि० कोचना] १. बहेनियों की वह लकीर लगी
जिसके पत्ते सिरे पर वे लोग नासा लगाए रहते हैं और जिससे
वृक्ष पर बैठे हुए पक्षी को कोचकर कैसा लेते हैं । खोंवा । २.
भड़भूजे का वह कडवा जिससे बालू निकाला जाता है ।
३. मोड़ी लिट्टी ।

कोछ—संज्ञा पुं० [म० कछ, प्रा० कच्छ] [क्रि० कोछियाना] १.
स्त्रियों के अचल का एक कोना ।

मुहा०—कोछ भरना = पंचल के कोने में चावल, मिठाई, हलदी
आदि मगदम्य डालना (सोमायवर्त स्त्री के प्रस्थान के
समय तथा सीमंतोन्नयन संस्कार में यह रीति होती है) ।

कोछना—क्रि० सं० [हि० कोछ + ना (प्रत्यय)] कोछियाना । उ०—
केसर गों उमटी अन्हवाइ चूनी चुनरी चुटनीन सों कोछी ।
वेनी जु माँग भरे मुना बड़ी वेनी सुगंध फुनेल तिलोछी ।—
वेनी (शब्द०) ।

कोछियाना^१—क्रि० सं० [हि० कोछी] (स्त्रियों की) साड़ी का
वह भाग चुनना जो पहनने में पेट के आगे खोसा जाता है ।
फुवरी चुनना ।

कोछियाना^२—क्रि० म० [हि० कोछ] (स्त्रियों के) कोंड में कोई
चीज भरकर उसके दोनों छोरों को आगे की ओर कमर में
खोस लेना ।

तयार—मन्त्र १० [५० कौट=कौट] एक प्रकार का ऊँचा और
चुपचाप।

कैट—वि० [५०] कैट वस्त्र। कौटयुक्त [वि०]।

कैटन—संज्ञा पु० [५०] कुटन वस्त्र [वि०]।

कैटन—संज्ञा पु० [५०] मनु नानक बंम का छोटा भाई जिसे विष्णु
ने मारा था।

यो०—कैटनवि०। कैटनवि०। कैटनहा। कैटनार्थन=दे० 'कैटमारि'।

कैटना—संज्ञा पु० [५०] दुर्गा का एक नाम।

कैटमारि—संज्ञा पु० [५०] किरण।

कैटयं—संज्ञा पु० [५० कैटय, कैटय] १. कायफल। २. नीम। ३.

मगानिय। ४. मदन वृक्ष। मदनी।

कैटलग—संज्ञा पु० [५०] सुचोय। केहरिस्त। फंद।

कैटयं—संज्ञा पु० [५० कैटय, कैटय] १. कायफल। २. करंज। ३.
पुटिचरंज।

कैट०—संज्ञा पु० [५०] कैट [वि०]। कैट०। तरफ।

कैट०—संज्ञा पु० [५०] कैटय [२०] 'कैट'।

कैट०—संज्ञा पु० [५०] कैटकी का फूल।

कैट०—वि० कैटकी का। कैटकीवाला। कैटकी सबंधी [वि०]।

कैटयं—संज्ञा पु० [५०] १. घोड़ा। छन। कपट। घूर्तता। २.

जुमा। घूमा। घूमा। ३. घूर्णन। लक्ष्मिनी। ४. घुमरा।

कैटयं—वि० १. घूर्णन। छन। २. घूर्णन। छन। ३. जुमा खेलने-
वाला। घुमरा।

कैटयं—संज्ञा पु० [५०] १. जुमा खेलना। घुमकीड़ा। २. जुए में
की जानेवाली घूर्णता [वि०]।

कैटवापदनवि०—संज्ञा पु० [५०] अपस्तुति प्रलकार का एक भेद
जिनमें प्रत्यक्ष वास्तविक विषय का गोपन या निषेध
करके नतीज न निकाले ब्याप्त से किया जाय। इसमें प्रायः
व्याप्त, निषेध प्रादि शब्दों का प्रयोग होता है। जैसे,—'रसना मिस
विधि ने घरी उषिनि घल मुष्ट माहि'। इसमें जित्ना का
निषेध करने द्वारा नहीं बरिक्त प्रयोग होता है। इसे प्राप्ति
भी कहते हैं।

कैटवाप०—संज्ञा पु० [५०] कहन+का० साली] दुर्गति। प्रकाल।

मुचारी। उ०—बंती भूमि नरुं रावराजा की दुहाई। कोनू
राज नेत कोजागी भी न माई।—सिधार्थ, पृ० ११२।

कैटन—संज्ञा पु० [५०] कैटन] एक प्रकार की बारीक लस जो
रूप में हिनारे हिनारे बनाई जाती है। यह प्रायः सुनहले
गार और लाल के रंग की होती है, पर कभी कभी घासी रंग या
रंग के भी बनाई जाती है।

कैट—संज्ञा पु० [५०] इषिय, प्रा० इषिय] एक कटीला पेड़ जो
जस के पेड़ के समान होता है और जिसमें पेड़ के प्रकार के
फल होते हैं।

विशेष—इसकी पत्तियाँ छोटी, पत्र की ओर लंबवतरी ओर प्रागे
की ओर मोटी होती है और एक छोटे नमने रहती है।

कैटयं में कटन और घटनिद्ध होता है और सबसे बढी

तथा मचार बनाते हैं। कोप कहते हैं, हाथी पूरा कंधे बिना
चबाए निगल जाता है और कुछ समय बाद उसकी लीद के
साथ पूरा कंधे निकलता है, जिसमें गूदे के स्थान में लीद भरी
होती है। इसीलिये संस्कृतवालों ने एक 'गजकपित्त' व्याप
वना रखा है। इसकी लकड़ी जरदी लिए सफेद और मजबूत
होती है और सगहे बनाने के काम में जाती है।

पर्या०—कपित्त। दधित्त। प्राही। मनमय। दधिकन। पुष्पफल।

दंतशठ। कगित्त। मालूर। मगल्य। नीन। महिनका। प्राहि-

फल। चिरपाकी। यथिकल। कुचफर। कपिष्ठ। गधफल।

दतफल। करवल्लभ। काठिन्यफल। करजफल।

कैयां—संज्ञा पु० [५०] कैय [२०] 'कैय'।

कैयिन—संज्ञा पु० [५०] कैय [५०] कायस्य जानि की स्त्री।

कैयी—संज्ञा पु० [५०] कैय [५०] एक प्रकार का कंधे जिसके फल छोटे
छोटे होते हैं।

कैयी—संज्ञा पु० [५०] कैय [५०] एक पुरानी लिपि जो नागरी से
मिलती जुलती होती है।

विशेष—यह शीघ्र लिखी जाती है और इसमें टेक या शीघ्र रेखा
नहीं होती। इसमें एक ही सरकार होता है और अ. ल. ल.
स्वर तथा ड. ज. ण व्यंजन नहीं होते। समुक्तप्रात तथा
विहास में चिट्ठी पत्री और हिसाब किताब प्रायः इसी लिपि
में लिखे जाते हैं।

कैद—संज्ञा पु० [५०] कैद [५०] कैदी] १. बधन। अवरोध। २.

एक प्रकार का दंड जो राजनियम के अनुसार या राजाज्ञा से
दिया जाता है और जिसमें अभियुक्त को किसी बंद स्थान में
रखते हैं। कारागारवास। कारावास।

विशेष—प्राजकल या प्रोजी कानून में कैद तीन प्रकार की होती
है। कैद महज या सादी कैद, कैद सख्त और कैद तनहाई।

यो०—कैदखाना।

क्रि० प्र०—करना।—भुगतना।—रखना।—होना।

मूहा०—कैद काटना या भरना=कैद में दिन बिताना। कैद
में रहना।

३. किसी प्रकार की शर्त, प्रतिक या प्रतिश्रुति। जैसे, (क)—पहले
मिशन पास मुचतारी की परीक्षा दे सकते थे, पर अब इसमें
एंट्रेस की कैद लग गई है। (ख) सरकार ने नौकरी में उन्न की
कैद है।

क्रि० प्र०—रखना।—लगना।—लगाना।—होना।

कैदक—संज्ञा पु० [५०] कैदक] एक प्रकार का कागज का पद या
पट्टी जिसमें किसी एक विषय या व्यक्ति से संबंध रखनेवाले
कागज प्रादि रखे जाते हैं।

कैदखाना—संज्ञा पु० [५०] कैदखाना] वह स्थान जहाँ कैदी रक्ते
जाते हैं। कारागार। बंदीगृह। जेलखाना।

कैदतनहाई—संज्ञा पु० [५०] कैद+तनहाई] वह कैद जिसमें
कैदी को बहुत ही छोटी मोरतग कोठरी में बंधे रखा जाय।
कातकोठरी।

कैदमहज—संज्ञा पु० [५०] कैदमहज] वह कैद जिसमें कैदी को

किसी प्रकार का परिश्रम या काम न करना पड़े। सादी कंद।

कंदसस्त—संज्ञा स्त्री० [प्र० कंद + स्त] वह कंद जिसमें कंदी को कठिन परिश्रम करना पड़े। कड़ी कंद।

कंदसोवारी—संज्ञा स्त्री० [हि० कंद + सोवारी] तबले की एक गत जिसका बोल यह है—

+ ० । । । ।
केटे ता दिनता त्रेकेटे, धकिटे
० । । । ० +

दिनत धाकेट धाकेट। दिनता। धा।

कंदार—संज्ञा पुं० [सं०] १. पद्माञ्च नाम की लकड़ी। पद्माञ्च।
२. शानि घान। ३. एक प्रकार का बढ़िया घान। ४. खेतों का समूह (को०)।

कंदी—संज्ञा पुं० [प्र० कंदी] वह जो कंद किण गया हो। वह जिसे कंद की सजा दी गई हो। बंदी। बंधुवा।

कंधौ—अव्य० [हि० कं + धौ] या। वा। अथवा। उ०—प्यारो की ठोड़ी को बिंदु दिनेश किधौ विसराम गोविंद के जी को। चार चुर्यों कनिका मनि नील को केधौ जमाव जम्पो रजनी को। कंधौ अन्नंग सिंगार को रंग लिखो नर मंत्र वसीकर पी को। फूले सरोज में भौरी वसी किधौ फूल ससी मे लग्यो प्ररसी को।—दिनेश (शब्द०)।

कंन—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्जिका] १. वांस की टहनी। २. किसी वृक्ष की पतली टहनी।

कंना—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का लुप या पौधा, जिसकी पत्तियों का लोग साग बनाते हैं।

कंनित—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक खनिज पदार्थ जो खाद के काम में आता है। इसमें जवाहार या पुटाश का अंश अधिक होता है।

कंप—संज्ञा पुं० [प्र०] टोपी।

कंपिटल—संज्ञा पुं० [प्र०] १. किसी व्यक्ति या समुदाय का ऐसा। समस्त धन जिसे वह किसी व्यवसाय या काम में लगा सके। धन। संपत्ति। पूंजी। २. वह धन जो किसी व्यापार या व्यवसाय में लगाया गया हो या जिससे कारोबार प्रारंभ किया गया हो। किसी दुकान, कोठी, कारखाने, बैंक आदि को निज की चर या अचर संपत्ति। पूंजी। मूलधन। ३. वह सब सामग्री जिसके द्वारा संपत्ति अर्जित की जा सके। ४. किसी देश का मुख्य या प्रधान नगर जिसमें राजा या राज प्रतिनिधि या प्रधान सरकार हो।

कंपिटलिस्ट—संज्ञा पुं० [प्र०] दे० 'पूंजीपति'।

कंफ—संज्ञा पुं० [प्र० कंफ] नशा। मद। उ०—हरो हरो रंग देखि कै भूलत है मन हैफ। नीम पतौवन में मिलै कहू भांग को कंफ।—रसनिधि (शब्द०)। २. बुलबुल को खिलाने का वह चारा जिसमें भांग या और कोई मादक द्रव्य मिला रहता है और जो उसे खाने के पहले दिया जाता है।

कंफियत—संज्ञा स्त्री० [प्र० कंफियत] १. समाचार। हाल। वर्णन। २. विवरण। तफसील।

कं० प्र०—देना।—पूछना।—माँपना।—लिखना।

मुहा०—कंफियत तलब करना = निश्चयानुसार विवरण माँगना। कारण पूछना।

३. आश्चर्यजनक या हर्षोत्पादक घटना। जैसे—आज बड़ी कंफियत हुई।

कं० प्र०—दिखाना।—होना।

कंफा—वि० [प्र० कंफा] १. मतवाला। मद भरा। उ०—नेहिन उर आवत लखो जबही धोरज सैन। संपी हेरन में पड़े कंफी तेरे नैन।—रसनिधि (शब्द०)। २. नशेवाज।

कंफोयत—संज्ञा स्त्री० [प्र० कंफोयत] दे० 'कंफियत' (को०)।

कंवर—संज्ञा स्त्री० [देश०] तीर का फल या गांसी। उ०—(क) सीस भरोखे डारि कै, भांकी घूँघट टारि। कंवर सी कसकें हिये, बांकी चितवन नारि।—शृ० सत० (शब्द०)। (ख) रंगी नैन में ओरो ललाई दैरि आई है, कि साँवो काम कंवर विश्व शीनित में उवाई है।—प्रताप (शब्द०)। (ग) विप भरे कंवर न सँवर गरव एरे तेरे तुल्य वचन प्रपंचित की गायो है।—दुलह (शब्द०)।

कंवा—अव्य० [सं० कति + वार] अनेक बार। बार बार। कई बार।

कंवार(उ)—संज्ञा पुं० [सं० कपाट] किवाड़। द्वार का पल्ला।

कंविनेट—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १. वह कमरा जिसमें राजा, महाराज आदि अपने विश्वासपात्र मंत्रियों के साथ प्रबंध सबंध सलाह करते हैं। २. मुख्य मंत्रियों की वह विशेष समिति जो किसी एकांत स्थान में बैठकर राज्यप्रबंध पर विचार करे। मंत्रिसमाज। मंत्रिमंडल। ३. लकड़ी का बना हुआ सामान। जैसे, मेज, आलमारी, दर्राज इत्यादि। ४. फोटो का एक आकार जो काँडे साइज से बड़ा होता है।

कंम^१—संज्ञा पुं० [सं० कदम्ब, प्रा० कर्मव, कलव] दे० 'कंमा' उ०—अब तज नाम उपाय की आयो सावन मास। खेल न रहिबो खेम सो कंम कुसुम की वास।—(शब्द०)।

कंम^२—वि० [प्र० कायम] १. स्थित। २. दृढ़।

कंमा—संज्ञा पुं० [सं० कदम्ब] एक प्रकार का कदव। कर्म।

विशेष—इसके पत्ते कवनार की तरह चौड़े सिरे के होते हैं। इसमें फूल कदव की ही तरह पर उससे छोटे होते हैं और उनके ऊपर सफेद सफेद जीरे नहीं लगते। इसकी लकड़ी पीले रंग की और बहुत मजबूत होती है तथा इमारतों में लगती है।

कंमुतिक न्याय—संज्ञा पुं० [सं०] एक न्याय या उक्ति जिसका प्रयोग यह दिखलाने के लिये होता है कि जब इतना बड़ा काम हो गया, तब यह क्या है।

कंमेरा—संज्ञा पुं० [प्र०] दे० 'कमरा'।

कंयक—वि० [सं० कियत् + एक] कितने ही। उ०—डूँ मन्त्र लसै इह रूप। गढ़ जिन कंयक हैं महिभूप।—सुजान०, पृ० ३४।

कंया—संज्ञा पुं० [देश०] १. टीन का काम करनेवालों का एक मीज़ार जिससे बरतन राजे जाते हैं। यह करछी के आकार का और लोह का होता है और इसमें एक मोर लकड़ी की मूठ लगी रहती है। २. मध्य भारत का घी, तेल आदि नापने का एक मास जो लगभग आध पाव का होता है।

कंर^१—संज्ञा स्त्री० [सं० ककर, प्रा० कपर] दे० 'करोर'।

केशर^३—सखा पुं० [सं० केशरी] मिह । उ०—घक घकहि धुकहि तक्कहि चकहि, दिघ उसासन उल्हसहि । प्रथिराज कुँवर कोवट डर, गिर कदर केसर वसहि ।—पृ० रा० ६।१०३ ।

केशराचल—सखा पुं० [सं०] मेरु पर्वत [को०] ।

केशरामल^१—सखा पुं० [सं०] विजौरा नामक नीवू [को०] ।

केशरि^१—सखा पुं० [सं० केशर] दे० 'केशर' । उ०—पेट पत्र चदन जनु लावा । कुकुह केशर वरन सोहावा ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १६५ ।

केशरि^२—सखा पुं० [सं०] हनुमान के पिता का नाम [को०] ।

यौ०—केशरिक्किशोर = (२) हनुमान । (२) सिंहशावक ।

केशरितनय । केशरिनदन । केशरिपुत्र । केशरिसुत = हनुमान ।

केशरिका—सखा स्त्री० [सं०] सहदेई ।

केशरिया—वि० [सं० केशर + हि० हया (प्रत्य०)] १ केशर के रंग का पीला । जदं । जैसे,—केशरिया बाना । २ केशर के रंग में रंगा हुआ । ३. केशरमिश्रित । केशरयुक्त । जैसे—केशरिया चंदन । केशरिया वरफी ।

केशरी—सखा पुं० [सं० केशरिन्] १ मिह । घोड़ा ३ नागकेशर । ४ पुन्नाग । ५ विजौरा नीवू । ६ हनुमान जी के पिता का नाम । ७ उडीसा का एक प्राचीन राजवंश । ८ एक प्रकार का वगुला । ९ एक प्रकार का चारखाना (कपड़ा) ।

केशरी—सखा स्त्री० [सं० केशर, प्रा० केशर] मटर की जाति का एक अन्न, जिसे दुविधा मटर भी कहते हैं ।

विशेष—इसके दाने छोटे चिपटे चौकोर और मटमले होते हैं और पत्तियाँ लंबी तथा पतली होती हैं, इसकी फलियाँ छोटी और निपटी होती हैं जिनपर कभी कभी छोटे दाग भी होते हैं । बंदक में यह कदम कहा गया है और डावटरी मत से इसे खाने से लकवा हो जाता है । इसे कसारी, खसारी और लतरी भी कहते हैं ।

केसु, केसू—सखा पुं० [सं० किशुक] ठाक । टेसूपलास । उ०—(क) केसु कुसुम सिंदूर सम मास' केतकि धून वियुरलह पर वास ।—विद्यापति, पृ० १०६ । (ख) कहाँ ऐसी राँचनि हरदि केसु केसरि में, जैसी पियराई गात पगिय रहति है ।—घनानंद, पृ० ७१ ।

केसौ—सखा पुं० [सं० केशव] दे० 'केशव' । उ०—ता पाछे एक बार ही रोई सकल व्रजनारि हो कलणामय नाथ हो केसौ कृष्ण ! मुरारि ।—नंद ग्रं०, पृ० १८६ ।

केहड़—वि० [सं० कीदृश, अप० केह] दे० 'कैमा' उ०—यज मय्यइ, ऊजासडउ, थे इरा केहड़रंग । धण लीजइ, प्री मारिजइ, छाँडि विडायउ संग ।—ढोला०, दू० ६५३ ।

केहर—सखा पुं० [सं० केशरी] दे० 'केशरी' । सिंह । उ०—केहर रँहायल करी, कीधी दात वराह ।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० २ ।

केहरी, केहरी^१—सखा पुं० [सं० केशरी] सिंह । शेर । उ०—(क) लंक पुहुमि मस आहि न काहूँ । कहौं केहरि न ओहि सर ताहूँ ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६७ । (ख)

केहरि कप्रर बाहु बिसाता, उर प्रति दचिर नाग मनि माना ।

—तुलसी (शब्द०) । २ घोड़ा ।

केहरी^२—सखा स्त्री० [फा० कीसा = यंत्री] एक छोटा जुजवान जिममें दर्जी, मोची आदि अपने सीने की चीजे या अंगुष्ठाँ आवश्यक समान रखती हैं । छोटी यंत्री ।

केना—सखा पुं० [सं० केका, प्रा० केना] १ मोर । मयूर । २ एक छोटा जंगली पक्षी जो बटेर के समान होता है । उ०—धरी परेव पाहुक टेरी । केहा कदगो उतर वनेरी ।—जायसी (शब्द०) ।

केहि^१—वि० [प्रा० किस्ति] किस । उ० केहि कारण प्रागमन तुम्हारा । कहहु सो करत न लावहु वारा ।—तुलसी (शब्द०) विशेष—यह अवधी के' का कम, सपदान मोर अधिकरण रूप है ।

केहु^१—सर्व० [सं० केऽपि] कोई । उ०—मतगुरु जानु सत्ता सुख वानी, शब्द सौं व विरना केहु जानी ।—दरिया० वानी पृ० ८ ।

केहुनी—सखा स्त्री० [सं० कभोणी] १ कोहनी । कुहनी । २ पीतल या तंबू की वह टेढ़ी नली जो नचे में न चीर जलेबी को जोड़ती है ।

केहूँ^१—वि० [सं० कयम्] किसी प्रकार । किसी भाँति । किसी तरह ।

कैकर्य सखा पुं० [सं० कैङ्कर्य] किकरता । सेवफाई । सेवा । खिदमत । उ०—गजजहि मडाकिनी नित जाई निज कर करि कैकर्य सदाई ।—रघुराज (शब्द०) ।

कैचा^१—वि० [हि० काना + ऐचा] ऐचाताना । भेंगा ।

कैचा^२—सखा पुं० [?] वह बेल जिसका एक सींग सीधा खड़ा हो और दूसरा सींग आँख के ऊपर होता हुआ नीचे को जाता है ।

कैचा^३—सखा पुं० [हि० कैची] बड़ी कैची ।

कैची—सखा स्त्री० [तु०] १ लाल कपड़े आदि काटने या कतरने का एक औजार । कतरनी ।

विशेष—इसमें समान ग्राहति के दोलवे फाल होते हैं जो परस्पर एक दूसरे के ऊपर रखकर कील से जड़े जाते हैं । कैची कई प्रकार की होती है—जैसे बाल काटने की कैची, बत्ती काटने की कैची, दर्जी की कैची लोहार की कैची बागवान की कैची, डाक्टर की कैची इत्यादि ।

मुहा०—कैची कटना = काटना छांटना । जैसे—बागवान पेड़ों को कैची कर रहा है । कैची काटना = नजर बचाकर निकल जाना । रास्ता काटकर निकल जाना । कतराना । (२) पहले कहकर किसी बात से इनकार कर जाना । काट जाना । कैची बंधना = (१) दोनों रानों से दबाना ।—(सवार) । (२) विपक्षी को अपने नीचे लाकर दोनों गनों से दबाना ।—(फुफ्फू) । कैची लगाना = (१) काटना । बाल छांटना कलम करना । (२) सिर के बालों को कैची से काटना । छांटना । २. दो सींगी तीलियाँ या लकड़ियाँ जो कैची की तरह एक दूसरी के ऊपर तिरछी रखी, बाँधी या जड़ी हो ।

विशेष—ठाजन में कभी कभी एक सीधी धरन के स्थान पर दो उठी हुई लकड़ियाँ लगाते हैं, जो सिरों के पास एक दूसरी पर झाड़ी बांध दी जाती हैं ।

यो०—कँची का जंगला = वह जंगला जिसमें पतली पतली तालियाँ एक दूसरी पर निरखी लगी हो ।

मुहा०—कँची लगाना = दो या अधिक लकड़ियों को कँची की तरह एक दूसरी के ऊपर तिरछा रखना या बाँधना ।

३ सहारे के लिये धरन के वृह मे लगी हुई दो तिरछी लकड़ियाँ ।
४. कुश्ती का एक पंच, जिसमें प्रतिपक्षी की दोनों टाँगों में अपनी टाँग फँसाकर उसे गिराते हैं ।

क्रि० प्र०—बाँधना ।

५. मालखम की एक कसरन जिसमें खिलाड़ी दीड़ता हुआ या उड़कर सीधे बिना मानखम को हाथ लगाए, कमरपेटे की रीति में मालखम को बाँधता है ।

क्रि० प्र०—बाँधना ।

कैटीन—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] जलपानगृह । ऐसे जलपान गृह छात्रावासों, सैनिक छावनियों आदि में होते हैं, जहाँ उस विभाग के लोगों के लिये चाय, त्रिस्कुट जलपान आदि की व्यवस्था रहती है ।

कैडल—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कँडा वा देश०] एक प्रकार का पक्षी । बनतीतर ।

कैडा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० काण्ड = एक प्रकार की वर्गमाप] १ वह यंत्र जिससे किसी चीज का नकशा ठीक किया जाता है । डील डालने का औजार । २. किसी वस्तु का विस्तार आदि नापने का यंत्र । पैमाना । मान ।

मुहा०—कैडा करना = (१) सरसरी तौर से नापना । अदाज करना । (२) डील डालना । कैडा लेना = चिढ़ा लेना । साका बनाना ।

३ चाल । ढंग । तर्ज । काटछाँट । जैसे,—वह न जाने किस कँडे का आदमी है । ४ चालवाजी । चतुराई ।

कैता—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कैत = किनारा] पत्थर की वह पट्टी जो दीवार में फरकी के दोनों तरफ चौड़ाई के बल उसे गोकने के लिये गाड़ी लगाई जाती है ।

कंप—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] हाकिमों या सेना के ठहरने का स्थान । पड़ाव । लश्कर । छावनी । कंप ।

कैवाँ—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कैमा' ।

कैवच—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कपिकच्छु, प्रा० कडकच्छु, कवियच्छु] दे० 'कैवाच' । उ०—बैरी कटक नाग त्रिप वीछूँ कैवच बाध । यासू दूर रहतड़ा, दूर रहे दुख बाध ।—बाँकी० प्र०, भा० १, पृ० ६४ ।

कै—वि० [सं० कति प्रा० कड] कितना । किस कदर । जैसे—कै आदमी आए हैं ।

कै०—अव्य० [सं० किम्] या । वा । अथवा । या तो । उ०—जन्म सिरानो ऐसे ऐसे । कै घर घर भरमत जदुपति बिन, कै सोवत कै बैसे । कै कहूँ खान पान रसनादिक, कै कहूँ बाद फाँते ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—इस शब्द के साथ प्रश्न में 'धों', 'धों' प्रायः आता है ।

जैसे,—(क) कैधों व्योमवीयिका भरे हैं भूरि धूमकेतु कैधों रस बीर तरवारि सी उधारी है ।—तुलसी प्र०, पृ० १७० ।

(ख) कैधो अनंग सिंगार को रंग लिहयो नर मय वसीकर पी को ।—दिनेश (शब्द०) ।

कै०—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मोटा जड़हन घान ।

कै०—प्रत्य० [सं० प्रत्य० क] संबधवाचक का, की के स्थान पर प्रयुक्त विभक्ति । उ०—(क) रामकथा कै मिति जग नाही ।—मानस, १।३३ । (ख) घोड़ी कै मो कूकर न घर को न घाट को । तुलसी प्र०, पृ० ११२ ।

विशेष—करण कारक के रूप में भी इसका प्रयोग होता है, जैसे,—कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा ।—मानस, १ । २७० ।

कै०—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० कै] वमन । छाँट । उगटी ।

क्रि० प्र०—आना ।—करना ।—होना ।

कैडक(पु)—वि० [सं० कति + एक] कई एक । अनेक । उ०—कैडक रहे तही अरगाने । अक्रूरादिक अनसनमाने ।—नंद० प्र०, पृ० २२४ ।

कैउ(पु) कैउक(पु)—वि० [सं० कति + एक] ३० कैऊ । उ०—(क) कैउ वरस में काटि कै, महुँ पारयो अरिमाय ।—पोद्दार अभि० प्र०, पृ० ४९४ । (ख) मन कौन सी जाय अटकयो रे । ऐसे बधयो छोरचौ न छूटै कैउक वरियाँ मटवयो रे ।—सुदर० प्र०, भा० २, पृ० ६२४ ।

कैऊ(पु)—वि० [सं० कति + एक] कई एक । अनेक । उ०—ऐमे कैऊ जुद्ध जीते सिंह सुजान ने । तब मलार ह्वै सुद, कुरम सो एकौ कियो ।—सुजान०, पृ० ३५ ।

कैऊ(पु)—वि० [सं० कति + एक] कितने ही । कई एक । उ०—कैक वचन कहे नर्म कैक रसवर कमनि पर । एक कहे तिय धर्म परम भेदक सुदर वर ।—नंद० प्र०, पृ० २७ ।

कैऊई(पु)—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कैकेयी] दे० 'कैकेयी' । उ०—कैऊई सुप्रन जोगु जगु जोई । चतुर विरचि बौद्ध मोहि सोई ।—मानस, २।१८१ ।

कैकट—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कैकट] देशविशेष । कैकट । उ०—उतपन कैकट देश कलि असुर जय जय हारि । जयु जय बुद्ध सरूप सजि है सुर सिद्धि सुधार ।—पृ० रा०, २।५६५ ।

कैकय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन देश । दे० 'कैकय' ।

कैकयी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कैकय जनपद की स्त्री [को०] ।

कैकस—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] राक्षस ।

कैकसी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सुमाली राक्षस की कन्या मोर रावण की माता ।

कैकेय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कैकेयी] १. कैकय गोत्र का पुरुष । २ कैकय देश का राजा ।

कैकेयी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. कैकय गोत्र में उत्पन्न स्त्री । २ राजा दशरथ की वह रानी जो भरत की माता थी और जिसने मथुरा के बहकाने से रामचंद्र को वनवास दिवयाया था ।

केवाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० केवा] कुई ।

केवाँच, केवाँछु—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कौंच' । उ०—सेज केवाँछ जाजु कोइ लावा ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २३३ ।

केवाण—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृपाण] तलवार । उ०—इद्रभाण मुकनेश रौ, ग्रह केवाण तरस्स । आसमान छिव आखियो, भाई भाण सरस्स ।—रा० रू०, पृ० ७५ ।

केवा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुव = कमल] कमल कली । उ०—(क) नोहि अग्नि कीन्ह आप भा केवा । हौं पठवा गुरु बीच परेवा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) स्वर्ग सूर भूई सरवर केवा । वनखड भर्वर होय रस मेवा ।—जायसी (शब्द०) ।

केवा^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० क्वा] बहाना । मिस आनाकानी । सकोच । उ०—रघुराज कौनहू विसच नहि होन पँहै, खासे खासे खुसी खेल छूव खेलवँहौं मैं । केवा जनि कीजै मीरि सेवा सब भाति लीजै, मीठ मीठ मेवा लै कलेवा करवँहौं मैं ।—रघुराज (शब्द०) ।

केवाड^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कपाट] दे० 'किवाड' ।

केवाडा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कपाटक] दे० 'किवाड' ।

केवार^१—क्रि० वि० [सं० कति + वार] कई बार । अनेक बार । उ०—कई बार साहि वधयो पान । दीनो कैवार जिहि जोव दान ।—पृ० रा०, २४ ३१२ ।

केवार^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'किवाड' ।

केवारा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कपाट] दे० 'किवाड' । उ०—पौरि पौरि गढ़ लाग केवारा । औ राजा नो भई पुकारा ।—जायसी ग्र०, पृ० ६४ ।

केविका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक फूल का नाम जो कोकड प्रदेश में होता है । सद्गवा ।

केवी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० के + आपि = फेडपि (अन्येऽपि)] शत्रु । दुश्मन । उ०—(क) काँकण कह काम, काल कह कौंवी ।—वेलि०, दू०, ७६ । (ख) चूरलियो औ चौतरफ, केवी वयण कहत ।—वाँकी० ग्र० भा०, १, पृ० ३४ ।

केश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ सिर का घाल ।

यो०—केशविन्यास = बाल सँवारना । केशाकेशी = वह लड़ाई जिसमें दो आदमी एक दूसरे के बाल पकड़कर खींचे ।

२ रश्मि । किरण २ ब्रह्मा की शक्ति का एक भेद । ४. वरुण । ५ शिव । ६ विष्णु ७ सूर्य ।

८. शेर या घोड़े के गले पर बाल । ९ केशी नामक द्रव्य । १० एक ऋषद्रव्य (की०) ।

केशक—वि० [सं०] केशरचना में दक्ष [की०] ।

केशकर्म—सञ्ज्ञा पुं० [सं० केशकर्मन्] १ बाल झड़ने और गूथने की कला । केशविन्यास । २ केशात नामक संस्कार ।

केशकार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गन्ना [की०] ।

केशकीट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जूँ ।

केशगर्भ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वेणी । कवरी २ वरुणदेव [की०] ।

केशघ्न—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सिर के बाल उड़ाना । गजापन [की०] ।

केशच्छिद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नापित । हज्जाम [की०] ।

केशट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ खटमल । २ विष्णु । ३ छाया । ४. कामदेव के पाँच वाणों में से शोषण नामक वाण । ५. श्योनीक वृक्ष । टेंडू ७ भाई । सहोदर (की०) । ८ डील । जँ (की०) ।

केशपर्णी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अपामार्ग । चिचडा ।

केशपाश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बालों की लट । काकुन ।

केशप्रसाधनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कंधी [की०] ।

केशव—सञ्ज्ञा पुं० [सं० केशवन्ध] नृत्य का एक हस्तक जिसमें हाथों को कंधे पर से घुमाते हुए कमर पर लाते हैं और फिर ऊपर सिर की ओर ले जाते हैं ।

केशमथनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] शमी का पेड़, जिसके काँटों में बाल उन्मूल जाते हैं ।

केशमार्जक, केशमार्जन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] केशप्रसाधनी । ककहो । कधी [की०] ।

केशरंजन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० केशरञ्जन] भृगु राज । भंगरैया ।

केशर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० केशरी] दे० 'केशरी' ।

केशराज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का भुजगा पत्ती । २. भंगरैया । भृगराज ।

केशरामल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ बनार । दाडिम । २ विजौरा नीबू ।

केशगी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० केशरी] दे० 'केशरी' ।

केशरूपा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] पेड़पर का बौदा ।

केशलुचक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० केशलुचक] सिर के बाल नोचनेवाला, जैन यति ।

केशव^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ विष्णु का एक नाम २ कृष्णचक्र का एक नाम । राधारमण । गोपीनाथ ३ ब्रह्मा । परमेश्वर ।

विशेष—इस अर्थ का विवरण महाभारत में इस प्रकार वर्णित है—अश्वतो ये प्रकाशते मम केशसज्जिता । सर्वज्ञा केशव तस्मात् प्राहुर्महर्षि द्विजसत्तमा ।—महाभारत ।

४ विष्णु के चौबीस मूर्तिभेदों में से एक । ५. पुनाग वृक्ष । ६. मार्गशीर्ष का महीना । अग्रहन (की०) । ७. हिंदी के एक कवि जिनकी निखी रामचंद्रिका है ।

केशव^२—वि० सुंदर बालोवाला । प्रशस्त केशवाला [की०] ।

केशवपन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बाल बनवाना या कटाना [की०] ।

केशवपनीय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अतिरात्र यज्ञ जो दो पशु वध यागों के अनंतर किया जाता है । इस यज्ञ के अंत में ज्येष्ठा पूर्णिमासी सुत्य सोमयाग करना पड़ता है ।

केशवधिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सहदेवी नाम की बूटी । सहदेव्या ।

केशवायुध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु का आयुध । २. आम ।

केशवाल्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वायुदेव वृक्ष । पीपल ।

केशवावास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पीपल का वृक्ष [की०] ।

केशविन्यास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बालों की सजावट । बालों का सँवारना ।

केशवेश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वेणी । कवरीवध [की०] ।

केशवेष्ट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सोमत । माँग [की०] ।

केशशुद्धा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या । चारागना [स्त्री०] ।

केशहन्त्री—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] केशहन्त्री । समी का वृक्ष । केशघ्न ।

केशात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] केशान्त । १. सोलह संस्कारों में से एक ।

विशेष—ब्राह्मण को यह संस्कार सोलहवें वर्ष, क्षत्रिय को बारहवें वर्ष और वैश्य को चौदसवें वर्ष करने का विधान है । यह संस्कार यज्ञोपवीत के बाद और समावर्तन के पहले होता था और इसमें ब्रह्मचारी के सिर के बाल मूड़े जाते थे । इसे गोदानकर्म भी कहते हैं ।

३ मुंडन । ३. बाल का सिरा ।

केशारहा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सहदेवी नामक वृद्धी । सहदेइया ।

केशि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस जिसे कृष्ण ने मारा था ।

केशिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री०] केशिकी । अलंकृत या सुंदर धुंधराले चिकने बालोंवाला [स्त्री०] ।

केशिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सत्तावरी ।

केशिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ जटामासी । २ चोरपुष्पी नाम की एक भोपधि । ३. वह स्त्री जिसके सिर के बाल सुंदर और बड़े हों । ४ एक अम्बरा का नाम जो कश्यप की पत्नी और प्रघा की कन्या थी । ५ पार्वती की एक सहचरी । ६ राजा अजमीढ़ की रानी का नाम । ७ राजा सगर की एक रानी का नाम । ८ भागवत के अनुसार रावण की माता कैकसी का एक नाम । ९ एक प्राचीन नगरी का नाम । १० दमयंती स्त्री उस दूती का नाम जो नल के भेस ब्रदनकर आने पर उसके पास दमयंती का सबेसा लेकर गई थी ।

केशी^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] केशिन् । [स्त्री०] केशिनी । १. प्राचीन काल के एक गृहपति का नाम । २ एक असुर जिसे कृष्ण ने मारा था । ३. घोड़ा । ४. सिंह । ५. एक यादव का नाम ।

केशी^२—वि० १. किरण या प्रकाशवाला । २ अच्छे बालोंवाला ।

केशी^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. नील का पीछा । २ भूतकेश नाम की भोपधि । ३. केवाच । कौंच । ४. एक वृक्ष जिसकी पत्तियाँ खजूर की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं । ५. दुर्गा [स्त्री०] । ६. चोटी [स्त्री०] ।

केश्य^१—वि० [सं०] १. केश संबंधी । २ बाल बढ़ानेवाला [स्त्री०] ।

केश्य^२—सञ्ज्ञा पुं० १ काला अंगर । २. महाबला नामक पीछा [स्त्री०] ।

केश^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] केश । १. दे० 'केश' । २. आँख का एक रोग जिसमें आँख के कोने में लाल मांस निकलता है, जो क्रमशः बढ़ता जाता है और धीरे धीरे सारी आँख को ढक लेता है ।

केश^२—सञ्ज्ञा पुं० [अं०] १ किसी चीज को रखने का खाना या घर । जैसे—चश्मे का केश २ मुकदमा । ३ दुर्घटना । ४ लकड़ी का एक प्रकार का चौकोर घेरा जो प्रायः एक हाथ चौड़ा दो हाथ लंबा और तीन चार अंगुल ऊँचा होता है जिससे टाइप रखने के लिये बहुत छोटे छोटे खाने बने रहते हैं ।—[छापाखाना] ।

केशई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'केशई' या 'कसी' ।

२-६५

केशर^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. बाल की तरह पतले पतले वे सीकें जो फूलों के बीच रहते हैं । किजलक ।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है । एक वह जो घुड़ी के किनारे किनारे होता है और जिसमें नोक पर छोटे, चिपटे खाने होते हैं । इसमें पराग रहता है और यह 'परागकेशर' कहलाता है । दूसरा वह जो घुड़ी के बीच में होता है । इसमें पराग नहीं होता और यह 'गमकेशर' कहलाता है ।

२ एक प्रकार के फूल का बीच का पतला सीका या केशर जिसका पीछा बहुत छोटा होता है और पत्तियाँ घास की तरह लंबी और पतली होती हैं ।

विशेष—केशर का पीछा स्पेन, फारस, कश्मीर, तिब्बत और चीन में होता है । कश्मीर का केशर रंग में सर्वोत्तम माना जाता है और स्पेन का सुगंध में । इसका फूल बैंगनी रंग की भाँई लिए बहुत रंगों का होता है और पीछे में फूल निकलने के बाद पत्तियाँ लगती हैं । प्रत्येक फूल में केवल तीन केशर होते हैं, इसीलिये आधी छटाक असल केशर के लिये प्रायः चार हजार फूलों की आवश्यकता होती है । केशर निकाल लेने के बाद फूल को धूप में सुखाकर हलके डबों से कुटते हैं और तब उसे किसी जनमरे बरतन में ढाल देते हैं । उसमें से जो अश नीचे बैठ जाता है, वह 'मोंगला' कहलाता है और मध्यम श्रेणी का केशर होता है । जो अंश जल में न डूबकर पानी के ऊपर रह जाता है, वह फिर सूखकर और कुटकर पानी में डाला जाता है । इस बार जो केशर जल में डूब जाता है, वह निष्कण्ड श्रेणी का होता है और 'नीबल' या 'निबल' कहलाता है । केशर का पीछा विशेष प्रकार की ढालुपट्टी जमीन में होता है, जो इसी कार्य के लिये आठ वर्ष पहले से बिल्कुल परती छोड़ दी जाती है । इस पीछे की गाँठें जमीन में गाड़ी जाती हैं और एक बार की लगाई गाँठों से चौदह वर्ष तक फूल निकलते रहते हैं । इसके फूल कातिक में लगते और संग्रह किए जाते हैं । केशर बहुत ही सुगंधित और गरम होता है और खाने पीने की चीजों में सुगंध के लिये डाला जाता है । केशर का रंग देखने में गहरा लाल होता है, पर पीसने पर पोला हो जाता है । वैद्यक में केशर को सुगंधित तिक्त, उष्णवीर्य, रुचिकारक, कातिवर्द्धक, कडुनाशक, विरेचक और कास, वायु, कफ, कृमि तथा त्रिदोष का नाशक माना है । डाक्टरों मत से यह ज्वर और यकृत का नाशक और रजोनिस्सारक है, पर आंत्रकल के कुछ नए डाक्टर इसका कोई गुण स्वीकार नहीं करते ।

पर्या०—काश्मीरजन्म । प्रणिगिष । पीतन । रक्त । सकोच । पिडन । लोहित चंदन । चाय । श्विर । शठ । शोणित । अरुण । कर्त । सल । रज । दीपक । सौरभ । चदन ।

३. घोड़े, सिंहा आदि जानवरों की गरदन पर के बाल । अयाल । ४ नागकेशर । ५. वकुल । मोनसिरी । ६. पुन्नाग । ७. हींग का पेड़ । ८ एक प्रकार का विप । ९. रंग । १०. कसीच ।

केरी^१—प्रत्य० [प्रा० केर, केरक] की ।—सुरपति रवनी रमा की चेरी । सो बहु चेरी जसुमति केरी ।—नद० प्र०, पृ० २५७ ।

विशेष—यह 'केर' का स्त्री० रूप है ।

केरी^२—सभा स्त्री० [देश०] आम का कच्चा और छोटा नया फल । अविद्या ।

केरोसिन—सभा पुं० [अ०] मिट्टी का तेल ।

केल^१—सभा स्त्री० [सं० कवल, प्रा० कयल] दे० 'केना' । उ०—केल रहै नित कापती कायर जणु कपूर ।—बांकी प्र०, भा० १, पृ० २४ ।

केल^२—सभा पुं० [सं० केलिक, प्रा० केलिय] एक वृक्ष जो हिमालय पर ६००० से ११००० फुट की ऊँचाई तक होता है ।

विशेष—यह पेड़ सीधा और बहुत बड़ा होता है । इसकी लकड़ी प्रति घनफुट १७ सेर भारी होती है । इसके दो भेद होते हैं—देशी और विलायती । दोनों की लकड़ी प्रायः इमारत के काम में आती है । देशी केल की लकड़ी में से चीड़ के तेल की तरह तेल निकलता है और उसका कोयला भी अच्छा होता है जिससे लोहा पिघल जाता है । विलायती केल की लकड़ी जलाने के काम में नहीं आती वह जलावे से चिड़चिड़ाती और जल्दी बुझ जाती है । दोनों की छाल दृढ़ होती है और छत पाटने के काम में आती है । केल की पत्तियाँ और बालियाँ विलाची के काम में लाई जाती हैं । विलायती केल के पेड़ देखने में सीधे और सुंदर होते हैं, इसलिये सबको पर और मंदारों में लगाए जाते हैं ।

केलक—सभा पुं० [सं०] एक प्रकार के नाचनेवाले जो हाथ में तलवार, कटारी आदि लेकर नाचते हैं ।

केला—सभा पुं० [सं० कदलक, प्रा० कयल] एक प्रसिद्ध पेड़ । कदली ।

विशेष—यह भारतवर्ष, बरमा, चीन, मलाया के टापुओं, अफ्रीका, अमेरिका, दक्षिणी युरोप आदि गरम स्थानों में होता है । इसके पत्ते गज डेढ़ गज लंबे और हाथ भर चौड़े होते हैं । इस पेड़ में डालियाँ नहीं होती, अफई, बड़े आदि की तरह पेड़ी या पूती ही से एक एक पत्ता निकलता है । पेड़ी चिकनी, पतदार, छिद्रमय और पानी से भरी होती है । केले के लिये पानी की आवश्यकता बहुत होती है, इसी से इसे बालियों में लगाते हैं । पेड़ साल भर में पूरी बाढ़ को पहुँचता है और तब उसके नीचे से कमल के आकार का कालापन लिए लाल रंग का बहुत बड़ा फूल निकलता है, जो नीचे की ओर झुका होता है । यह फूल एकवारभी नहीं खिलता । प्रति दिन एक एक दल खुलता है, जिसके भदर आठ दस छोटी छोटी फलियों की पंक्तियाँ दिखाई पड़ती हैं । इन फलियों के सिरों पर पीले पीले फूल लगते हैं । इन फलियों की पंक्ति को पंजा कहते हैं । प्रत्येक दल के नीचे एक एक पंजा निकलता है । पीले फूलों के गिर जाने पर यही फलियाँ बढ़कर बड़ी बड़ी होती हैं । पूरे डठल की, जिसमें फलियों के कई पंजे होते हैं, घोव कहते हैं । केले की अनेक जातियाँ होती हैं, जिनमें सर्वान, चपा, चीनिया, मालभोग आदि प्रसिद्ध हैं । केले के फल साधारणतया पकने पर पीके होते हैं, पर कहीं कहीं लाल, गुलाबी, सुनहरे और

हरे रंग के केले भी मिलते हैं । केले की फलियाँ चार अंगुल से लेकर डेढ़ बित्ते तक की होती हैं । जावा में एक प्रकार का केला इतना बड़ा होता है जिससे चार आदमियों का पेट भरा सकता है । इस केले का फूल पेड़ी के बाहर नहीं निकलता, भीतर ही भीतर फलता फूलता है । पेड़ में एक ही फल लगता है जिसके पकने पर पेड़ी फट जाती है । फिलीपाइन द्वीप में भी बहुत बड़े बड़े केले होते हैं बहुत से केले बीजू होते हैं, जिनकी फलियों में काले काले गोल बीज भरे रहते हैं । इन्हें कटकेल कहते हैं । कच्चे केले की लोग ठरकारी बनाते हैं । कच्चे केले को सुखा कर आटा भी बनाया जाता है जो हलका होता है और दवा के काम में आता है । बंगाल में केले को डंठल की भी ठरकारी बनती है । पत्तों के डठल से जो रेशे निकलते हैं, उनसे चटाई बुनी जाती है और कागज भी बनता है । आसाम और चटगाँव की ओर केलों के जंगल भी हैं ।

२ केले का फल ।

पर्या—रभा । मोचा । कदली । अशुमत्फला । वारणवुषा । वारबुषा । सुफला । नि सारा । भानुफला । गुच्छफला । वारणवल्लभा । वन लक्ष्मी । रोचक । चर्मप्वती ।

३ पुरुषे द्वय (बाजारू) ।

केलि^१—सभा स्त्री० [सं०] १ खेल । क्रीड़ा । २ रति । मंयुन । समागमन । स्त्रीप्रसंग । उ०—अस कहि भ्रमित बनाये अगा । कीन्ही केलि सवन के संग ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

यो०—केलिंगह । केलिनिकेतन । केलिमखिर । केलिभवन, केलि-सवन = रति या क्रीड़ा का स्थान । केलिनगर = कामासक्त ।

केलिपर = विलासी । केलिपल्लव = क्रीडार्थ तालाब । क्रीडा-सरोवर । केलिरग = क्रीडा स्थान । केलिवन = क्रीडाउपवन । केलिशयन = विलासशय्या । केलिसचिव = नमंसचिव ।

३. वंसी । ठट्ठा । मजाक । विलसनी । ४ पृथ्वी ।

केलि^२—सभा स्त्री० [सं० कबली] दे० 'कदली' । उ०—केलि फूल दासी की हेतु ।—माधवानल० पृ० २७९ ।

केलि^३—सभा पुं० [सं०] अशोक वृक्ष ।

केलिकला—सभा स्त्री० [सं०] १. सरस्वती की बीणा । २. रति । केलि । रतिक्रीडा ।

केलिकिल—सभा पुं० [सं०] १. नाटक का विद्वक्ता । २. शिव के कुमांडक नामक अनुचर का एक नाम ।

केलिकिला—सभा स्त्री० [सं०] कामदेव की स्त्री । रति ।

केलिकिलावती—सभा स्त्री० [सं०] दे० 'केलिकिला' [की०] ।

कालकीर्ण—सभा पुं० [सं०] दे० 'क्रमेलक' । ऊँट [की०] ।

केलिकुचिका—सभा स्त्री० [सं० केलिकुचिका] स्त्री की छोटा बहन । छोटी साली [की०] ।

केलिकोष—सभा स्त्री० [सं०] १. नट । अभिनेता । नर्तक । [की०] ।

केलिनि^१—सभा स्त्री० [सं० कदली, प्रा० कयली] हि० केलि, केली,] दे० 'केली' उ०—पयी एक सदेसड़ लग डोलइ पेहचान । जघा केलिनि फलि गई स्वान जु बरसउ म ।—क्रीडा० द्व०, १३२ ।

केलिमुख

केलिमुख—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हास परिहास । हँसी । मजाक [को०] ।
 केलिवृक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कदंब वृक्ष का एक प्रकार [को०] ।
 केलिशुचि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी । धरती [को०] ।
 केनी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कवली, प्रा० कयली] केले की एक जाति जिसके फल छोटे होते हैं । वि० दे० 'केला' ।
 केनी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ खेल । श्रुद्धा । २ कामकेलि [को०] ।
 यौ०—केलोपिठ=मनोविनोदन के लिये रखी कोयल । केली-वनी=प्रमोदवाटिका । केलीशुक=मनोरजनार्थ पाला गया सुग्गा ।

केलुगव—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] दे० 'केल' ।

केली—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] दे० 'केल' ।

केव—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष ।

विशेष—यह सिध की पहाडियों में और पश्चिमी हिमालय में होता है । इसकी लकड़ी भूरे रंग की और भारी होती है तथा सजावट के सामान और खिलौने आदि बनाने के काम आती है । इसके फल खाए जाते हैं और बीजों से तेल निकलता है । इसके पीछे पर विलायती जंतुन की कलम लग जाती है ।

केवका—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कवक=घास] वह मशाला जो प्रसूता स्त्रियों को दिया जाता है ।

केवकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'केवटी' ।

केवट—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कंवर्त्ता, प्रा० केवट्ट] स्मृतियों के अनुसार कंवर्त्त सत्रिय पिता और वेश्या माता से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति थी । इस जाति के लोग आजकल नाव चलाने तथा मिट्टी खोदने का काम करते हैं । उ०—तब केवट ऊँचे चढ़ि जाई । कहेउ भरत सन भुजा उठाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—केवटपाल=केवट को पालनेवाला श्रीराम । उ०—तुलसी जाके होयगी अंतर बाहिर दीठि । सो कि कृपालुहि देखी केवटपालहि पीठि ? ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ६० ।

केवटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का बहुत छोटा कीड़ा ।

केवटीदाल—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० केवट=एक सकर जाति+दाल] दो या अधिक प्रकार की, एक में मिली हुई दाल ।

केवटीमोथा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० केवमुर्त्ता मुस्तक] एक प्रकार का सुगंधित मोथा जो मालवा में होता है ।

विशेष—इसकी जड़ बहुत सुगंधित होती है और औषधि के काम में आती है । वैद्यक में इसे गरम और कफ और वात का नाश करनेवाला तथा दाह, शूल, व्रण और रक्तविकार को दूर करनेवाला माना है ।

केवडई^१—वि० [हिं० केवडा+ई (प्रत्य०)] केवड़े के रंग का ।

केवडई^२—सञ्ज्ञा पुं० एक प्रकार का रंग जो केवड़े की तरह का हलका पीला मिला हुआ सफेद होता है और जो शाहाब, खटाई और तुन के फूलों को मिलाने से बनता है ।

केवडा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० केविका] १. सफेद केतकी का पौधा जो केतकी से कुछ बड़ा होता है ।

विशेष—इसके फूल और पत्तियाँ केतकी से बड़ी होती हैं । केतकी की पत्तियों की भाँति इसकी पत्तियाँ भी चटाइयाँ आदि बनाने के काम आती हैं और इसके फूल से भी अंतर और सुगंधित जल बनता तथा कत्था बसाया जाता है । इसमें भी केतकी के प्रायः सब गुण हैं । इसके सिवा वैद्यक में इसके केसर को गरम कंडुनाशक माना है और इसके फल को वात, प्रमेह और कफ का नाशक कहा है ।

विशेष—दे० 'केतकी' ।

२ इस पीछे का फूल ३ इसके फूल से उतारा हुआ सुगंधित जल या आसव । ४. एक पेड़ जो हरद्वार के जंगलों और वरमा में होता है ।

विशेष—यह गरमी के दिनों में फूलता है । इसकी लकड़ी सागवन आदि की तरह मजबूत होती है । जिसके तहतों से मेज, कुर्सी सड़क आदि बनाए जाते हैं ।

केवर^७—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० केवडा] दे० 'केवडा' उ०—बहु फुल्लि केवर फुल्लि । बग बंठि पावस भूमि ।—पृ० रा० १४।१३८ ।

केवरा^१—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'केवडा' । उ०—कहुँ रहे केवरा जूही जय ।—ह० रासी, पृ० ६३ ।

केवल^१—वि० [सं०] १. एकमात्र । अकेला । २ शुद्ध । पवित्र । ३ अमिश्रित । उत्कृष्ट । उत्तम श्रेष्ठ । ४. पूर्ण । समस्त । पूरा [को०] । ५. नग्न । अनावृत (भूमि) [को०] ।

केवल^२—क्रि० वि० सिफं । उ० केवल हूँ मा की हुँकारी की भाँई पर्वत के कंदरों में बोलती है ।—श्यामा०, पृ० ७६ ।

केवल^३—सञ्ज्ञा पुं० [वि० केवली] १ वह ज्ञान जो अतिशून्य और विशुद्ध हो ।

विशेष—साध्य के अनुसार इस प्रकार का ज्ञान तत्त्वाम्यास से प्राप्त होता है । यह ज्ञान मोक्ष का साधक होता है । इससे ज्ञानी को यह साक्षात् हो जाता है कि न मैं कर्ता हूँ, न मेरा किसी से कुछ संबंध है और न मैं स्वयं पृथक् कुछ हूँ । इस प्रकार के ज्ञान से वह पुरुष को साक्षी माय के रूप में देखता है ।

२ जैन शास्त्रानुसार सम्पूर्ण ज्ञान । ३. वास्तु विद्या में स्तंभ के आधार अर्थात् कुंभी के ऊपर का ढाँचा ।

केवलव्यतिरेकी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० केवलव्यतिरेकिन्] न्याय के अनुसार एक प्रकार का हेतु जिसका विलोम 'केवलान्वयी' होता है जिसकी सहायता अनुमान में ली जाती है और जिस 'शेषवत्' भी कहते हैं । वि० दे० 'अनुमान' ।

केवलात्मा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० केवलात्मन्] १ प.प और पुण्य से रहित-ईश्वर । २ शुद्ध स्वभाववाला मनुष्य ।

केवलान्वयी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० केवलान्वयिन] न्याय में एक प्रकार का हेतु जिसकी सहायता अनुमान में ली जाती है जिसे 'पूर्ववत्' भी कहते हैं । वि० दे० 'अनुमान' ।

केवली^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० केवलिन] [स्त्री० केवलिनी] १ मुक्ति का अधिकारी साधु । केवलज्ञानी । २ मुक्तिप्राप्त साधु । तीर्थंकर (जैन) ।

केवली^२—वि० १ अकेला । निःसंग २ विशुद्ध । आत्मवैय के सिद्धांत को माननेवाला । ३ पूर्ण ज्ञान प्राप्य ज्ञानी [को०] ।

के फोटे में तीन तीन अक्षर लिखे जाते हैं। इस प्रकार जन्म-नक्षत्र से वर्ष का निश्चय किया जाता है। वर्ष के वर्ष में अन्य ग्रहों का भवतिर होता है। इसका भी प्रकार उगल में अधिक है।

केतुम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वादल। मेघ [को०]।

केतुमती—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक वर्णार्ध समवृत्त का नाम जिसके विषम पादों में सगण, जगण, सगण और एक गुह होता है और समपादों में भगण, रगण, नगण और दो गुह होते हैं। जैसे,—प्रभु जी हरी हमहि तारो, मो मन ते सही भय निकारो। अपने हिसे यह विचारो, राम प्रनाय को लखि उबारो।—२ रावण की नानी यर्षात् सुमाती राक्षस की पत्नी का नाम।

केतुमान्—वि० [सं० फेतुमत्] १ तेजवान। तेजस्वी। २ ध्वजा-वाला। जिसके पास पताका हो। ३ बुद्धिमान्। ४ चिह्न या प्रतीकवाला। प्रतीकयुक्त [को०]।

केतुमान्—सञ्ज्ञा पुं० १. हरिवंश के अनुसार काशिराज दिवोदास के वंश का एक राजा जो धन्वतरि का पुत्र था। २ एक दानव का नाम।

केतुमाल—सञ्ज्ञा पुं० [नं०] जवूदीप के नौ खंडों में से एक खंड। विशेष—ब्रह्मांड पुराण के अनुसार इसमें सात पर्वत और कई नदियाँ हैं। सिद्ध और देवों प्रायः इन्हीं नदियों में स्नान करना पसंद करते हैं। इस खंड में प्रायः जंगली जानवर भी रहते हैं।

केतुमालक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] 'केतुमाल'।

केतुयष्टि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] ध्वज का बट। पताका का टंडा [को०]।

केतुरत्न—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] लहसुनिया नामक रत्न।

केतुवसन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पताका। ध्वजा। झंडा [को०]।

केतुवृक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार मेरु के चारों ओर के पर्वतों पर के चार वृक्षों के नाम।

विशेष—त्रिपुण्ड्रपुराण के अनुसार मेरु की पूर्वदिशा में मदराचल है जिसपर कदव का वृक्ष है, दक्षिण ओर गवमादन पर जंतू, पश्चिम ओर विपुल गिरि पर पीपल और उत्तर ओर सुपायव पर्वत पर वट वृक्ष है। इन्हीं चारों वृक्षों को केतुवृक्ष कहते हैं।

केतेक(७)—वि० [सं० कियत् + एङ्] कितने एक। कितने ही। उ०—ऐसे करत केतेक दिन भए।—दो सौ बावन, पृ० १६५।

केतो^१—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] अमेरिका के गरम देशों में रहनेवाला एक जानवर जो लोमड़ी के आकार का होता है और ईश्वर के सेतो को बड़ी हानि पहुँचाता है।

केतो^२(७)—वि० [सं० कति] कितना।

केथि(७)—क्रि० वि० [सं० कुय, अप०, क्त्थु, प० क्त्थ्यु, क्त्थ्ये] दे० 'कह्नी'। उ०—करहा पानी खच पिउ, त्रासा घणा सहसि। छीलरियउ ठूकिसि नहीं, भरिया केथि लहेसि।—डोला० दू०, ४२६।

केद(७)—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कंद] दे० 'कंद'। उ०—बदीखाने में कंद राखे।—दो सौ बावन०, पृ० १३८।

केदर^१—वि० [सं०] ऐसी या भोगी या उवाला। भोगा [को०]।

केदर^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. सव्यवहार। व्यवहार। २ एक बोध का नाम [को०]।

केदली—सञ्ज्ञा पुं० [सं० यदनी] फले का पेड़। फटली वृक्ष। उ०—विधिदि यदि तिन कीन्ह मरमा। विरचे कनक केदली खमा।—मुनसी (७२०)।

केदार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ यह धेत जिम घान रोया या रोया जाता है। कियारी। २ वृक्ष के नीचे जमीन पर बना हुआ चाला। यर्षा। ३. मेघ राग का बोया पुत्र। यह उर्षा जाति का राग है और रात के दूसरे पहर में गाया जाता है। उ०—मुच मुरली में केदारी कंस गावै।—धनानंद, पृ० ५५। ४. हिमालय पर्वत का एक शिखर और प्रसिद्ध तीर्थ जहाँ केदारनाथ नाम का एक शिवलिंग है। ५. निच का एक नाम।

विशेष—दे० 'केदारनाथ'।

५ कामरूप देश का एक तीर्थ।

केदारक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] साठी धान।

केदारखंड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० केदारखंड] १ स्कंदपुराण का खंड या भाग जिसमें केदारतीर्थ के माहात्म्य का वर्णन है। २ स्कंद पुराण (काशीखंड) के अनुसार बारगुर्वा के तीन खंड या भाग में से एक का नाम। काशी का दक्षिणपूर्व खंड जहाँ केदारनाथ का मंदिर है। ३ जल रोकने के लिये बनाया हुआ मिट्टी का छोटा घड़ा [को०]।

केदारगंगा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० केदारगंगा] गङ्गा नदी का एक प्रसिद्ध नदी जो गंगा में मिलती है।

केदारनट—सञ्ज्ञा पुं० [सं० केदार + नट] पांडव जाति का एक संकर राग जो नट मोक्ष केदार को मिलाकर बनता है।

विशेष—यह रात के दूसरे पहर में गाया जाता है। इसमें श्रवण वज्रित है। संगीतपारजात में इसे मोक्ष जाति का राग माना है और इसमें श्रवण तथा ध्रुव वज्रित बतलाया है। किंतु किसी के मत से यह नटनारायण का छटा पुत्र भी है।

केदारनाथ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हिमालय के पर्वतों पर एक पर्वत का नाम, जिसके शिखर पर केदारनाथ नामक शिवलिंग है।

विशेष—यह समुद्र से ७३३३ फुट ऊँचा है। इसका ऊपरी भाग महापर्वत कहलाता है और सदा बरफ से ढका रहता है। बहुत प्राचीन काल से यह स्थान एक पवित्र तीर्थ माना जाता है। इसके आसपास और भी अनेक छोटे छोटे तीर्थ हैं। बंसाघ से काफ़ी तक भारत के निम्न निम्न प्रांतों से अनेक यात्री दर्शनों के लिये यहाँ जाते हैं।

केदारा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० केदारी] दे० 'केदारी'।

केदारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दीपक राग की पाँचवीं रागिनी जो रात के समय दूसरे पहर की पहली धड़ी में गाई जाती है। इसे केदारा भी कहते हैं।

विशेष—यह मोक्ष जाति की रागिनी है और इसमें श्रवण तथा ध्रुव स्वर वज्रित हैं। इसका सरगम यह है।—नि स ग म प नि नि। पर सोमेश्वर के मत से यह सपूर्ण जाति की रागिनी

है और संध्या के समय गाई जाती है। इसका व्यवहार प्रायः वीर और शूरा रस के वर्णन में किया जाता है।

केन^१—सञ्ज्ञा पुं० [हं०] एक प्रसिद्ध उपनिषद् जिसका पहला मंत्र 'केनेपितम्' ... 'केन' शब्द से आरम्भ होता है। इसे तत्त्व-कार उपनिषद् भी कहते हैं। यह सामवेदी है और इसमें चार खंडों में ३४ मंत्र हैं।

केन^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] जिला बादा की एक नदी जो विंध्याचल से निकलकर यमुना नदी में गिरती है।

केना^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० क्रेणि = मोल लेना] १ वह थोड़ा सा अन्न जिसे देकर देहात में लोग तरकारी इत्यादि मोल लेते हैं। कनूका। केजा। २. सागपात। तरकारी। भाजी। ३ एक प्रकार की बरसाती घास जो साग के रूप में काम आती है।

केनार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. एक नरक का नाम। कुभीपाक नरक। २. कपोल। ३ खोपड़ी। ४. सिर। ५. सखि। जोड़ [को०]।

केनिपात, केनिपातक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] डाँड़ या बल्ली जिससे नाव चलाई जाती है। बहना। गिरना।

केनिपातन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'केनिपात'।

केम^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कदम्ब, प्रा० कयम्ब] कदंब। कदम। उ०—
अव तजि नाउ उपाय की आए पावस मास। खेनु न रहिबो
खेम सौं केम कुसुम की वास।—विहारी (शब्द०)।

केम^२—क्रि० वि० [सं० किम, गुज०] किस प्रकार। कैसे। क्यों।
उ०—बोसलह राज कथि पुव्व कथ्य। जरी ताप उधरों
केम नथ्य।—पृ० रा०, १।५५६।

केमद्रुम—सञ्ज्ञा पुं० [सं० केनोद्रोमस्] ज्योतिष में चंद्रमा का एक योग।

विशेष—वृहज्जातक में वाराहमिहिर के अनुसार यह योग उस समय होता है जबकि चंद्रमावाली राशि के आगे या पीछेवाली राशि पर कोई और ग्रह न हो। फलित के अनुसार यदि इस योग में किसी राजकुमार का भी जन्म हो, तो वह सदा दुखी और दरिद्र रहता है।

केमरा—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कैमरा] फोटो खींचने का यंत्र। दे० 'कमरा'।
२। उ०—केमरा कंधे से उतारकर रखा और कुर्सी पर बैठ
भी गए।—किन्नर, पृ० १४।

कैमि—क्रि० वि० [हि०] दे० 'किमि'। उ०—ब्रत ठरै कैमि छत्री
भगम।—ह० रासो, पृ० १०७।

कैमुक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] केउसा। बड़ा।

कैयूर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. बांह में पहनने का एक आभूषण।
विजायठ। वजुल्ला। भगद। बहूँठा। भुजवद। भुजभूषण।
उ०—कोऊ विशाल मृगाल के कैयूर बलय बनावते।—
प्रेमघन०, पृ० ११३। २. एक प्रकार का रतिवध (को०)।

कैयूरवल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ललितविस्तर के अनुसार एक बौद्ध देवता।

कैयूरी—[सं० कैयूरिन्] जो कैयूर पहने हो। कैयूरधारी।

केर—प्रत्यय [सं० कृत] [स्त्री० केरि, केरी] [प्रत्यय रूप-केरा, केरो]

सबध सूचक अव्यय जो अवधी भाषा तथा अन्य भाषाओं में 'का' और 'के' विभक्तियों के स्थान में आता है। उ०—(क) छमहु चूक अनजानत केरी। चहिय विप्र उर कृपा घनेरी।—
तुलसी (शब्द०)। (ख) मुँजे गेहूँ केरा भाड़ दिखलाया
तूँ।—दक्खिनी०, पृ० ३००। (ग) सुनत जु वेनुगीत पिय
केरो।—नंद० ग्र०, पृ० २६५।

केरक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन देश।

केरख—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. दक्षिण भारत का एक देश।

विशेष—यह कन्याकुमारी से गोकर्ण तक मनयवार (मलाबार) पर समुद्र के किनारे किनारे फैला हुआ है। इस देश की सीमा भिन्न भिन्न समयों में बदलती रही है। तत्रों के अनुसार केरल के तीन विभाग थे। (१) सिद्ध केरल (सुब्रह्मण्य से जनार्दन तक), (२) हम केरल (रामेश्वर से बेंकटगिरि तक) और (३) केरल (अनंतशैल से अव्यय तक)। आजकल इस देश को कनारा (कन्नड) कहते हैं और यहाँ कनारी (कन्नड) भाषा बोली जाती है।

२. [स्त्री० केरली] केरल देशवासी पुरुष। ३ एक प्रकार का फलित ज्योतिष, जिसका आविष्कार केरल देश में हुआ था। इसमें स्वर और व्यंजन अक्षरों के लिये कुछ अंक नियत होते हैं और उन्हीं की सहायता से गणित करके प्रश्न का फल या उत्तर निकाला जाता है। ४. एक घटे के बराबर का समय। होरा (को०)।

केरा^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'केला' उ०—सफल रसाल पुंगफल
केरा।—मानस, २।६।

केरा^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की वस्तु जिसे 'पतारी' भी कहते हैं।

केराना^१—क्रि० सं० [सं० किरण या हि० गिराना] सूप में अन्न रखकर उसे हिला हिलाकर बड़े और छोटे दाने अलग करना।

केराना^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कयण] नमक, मशाला, हलदी आदि चीजें जो नित्य के व्यवहार में आती और पसारियों के यहाँ मिलती हैं।

केरानी^१—सञ्ज्ञा पुं० [अ० किरिचयन] १ वह मनुष्य जिसके माता पिता में से कोई एक यूरोपियन और दूसरा हिंदुस्तानी हो। किरटा। यूरेशियन। २ अंगरेजी दरबार में निबने पढ़ने का काम करनेवाला मुन्शी। क्लर्क।

यौ०—केरानी खाना = अंगरेजी दरबार।

केराया^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'किराया'।

केरावा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कलाय] मटर।

केरावल—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'किरावल'।

केरि^१—प्रत्यय [सं० कृत] दे० 'केरी'। उ०—हाथ सुलेमाँ केरि
अंगूठी। जग कहँ दान दोन्ह भयि मूढी।—जायसी ग्र०, पृ० ५।

केरि^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० केलि] दे० 'केली'। उ०—तिन ठाम भाइ
नाहर सुधेरि। वाहत दृश्य जनु करिय केरि।—पृ० रा०,
७। १०१।

जिसमे साग तरकारी, फलादि वोए और लगाए जायें। नए पोघो का बाग। नीरगा।

केडा—सखा पुं० [मं० करीर = बौंस का कल्ला] १ नया पोघा या अकुर। कौपल। कल्ला। २ नवयुवक। उ०—वह सदा इसी ताक मे रहता था कि किस घराने मे कौन कौन नए केटे हैं।—सो अजान और एक सुजान (शब्द०)। ३ खेन से काटी हुई फसल या घास का गट्टा।

केरिका(उ)—सखा पुं० [सं० केरिका = खेमा] खेमा। तड्ड। रावटी।—(हि०)।

केरिका—सखा स्त्री० [सं०] दे० 'केरिका'।

केन—सखा पुं० [सं०] १ घर। भवन। २ स्थान। जगह। वस्ती।

उ०—फूल छूल फिर पूछो जो पट्टे चो वहि केत। तन ने उठावर क मिलो ज्यो मधुकर जिउ देत।—जायसी (शब्द०)। ३ केतु। ध्वजा। ४ बुद्धि। प्रज्ञा। ५ सकल। इच्छाशक्ति।

६ मन्त्रणा। सलाह। ७ अन्न। जैसे—केतपू। ८ (उ) केतु नाम का एक ग्रह। उ०—शनिवार तीसरो छठो केत।—प० रासो, पृ० ५४। ९ ग्रामश्रम। निमश्रम (को०)। १०.

सपत्ति (को०)। ११ आकाश (को०)। १२ (उ) केवड़ा।

केतक^१—सखा पुं० [सं०] केवड़ा। उ०—लखि केतक केतकि जाति गुलाब ते तीक्ष्ण जानि तजे डरि कै।—केशव (शब्द०)।

केतक^२—वि० [सं० कति + एक] १ कितने। किस कवर। २ बहुत। उ०—केतक दिवस राज्य तव कियऊ। एक दिवस नरद मुनि गयऊ।—सवल (शब्द०)।

केतकर(उ)—सखा स्त्री० [हि०] दे० 'केतकी'। उ०—तूह जो प्रीति निवाहे आटा। भौरै न देख केतकर कांटा।—जायसी (शब्द०)।

केतकी—सखा स्त्री० [सं०] १ एक प्रकार का छोटा भाड़ या पोघा। केवड़ा। उ०—गमक रहा था केतकी का गध चारो ओर।—साकेत, पृ० २७४।

विशेष—इसकी पत्तियाँ लबी, नुकीली, चिपटी, कोमल और चिकनी होती हैं और जिनके किनारे और पीठ पर छोटे छोटे कांटे होते हैं। केतकी दो प्रकार की होती है—एक सफेद और दूसरी पीली। सफेद केतकी को हिंदी में केवड़ा और पीली या सुवर्ण केतकी को केतकी कहते हैं। इसकी पत्तियों से चटाइयाँ छाते और टोपियाँ बनती हैं। इसका तना नरम होता है और बोटलो में ढाट लगाने के काम में आता है। कहीं कहीं इसकी नरम पत्तियों का साग भी बनाया जाता है। बरसात में इसमें फूल लगते हैं जो लवे सफेद रंग के और बहुत सुगंधित होते हैं। इसका फूल वाल की तरह होता है और ऊपर से लबी लबी पत्तियों से ढका हुआ होता है। फूल से अंतर और सुगंधित जल बनाया जाता है और उससे करवा भी बनाया जाता है। ऐमा प्रसिद्ध है कि इस फूल पर भौरा नहीं बैठता। पुराणों के अनुसार यह फूल शिव जी को नहीं चढ़ाया जाता। वैद्यक में सफेद केतकी बालों की दुर्गंध दूर करनेवाली मानी गई है और इसका शाक या मूल स्वाद में कड़वापन लिये हुए मोठा और गुण में कफनाशक तथा लघुपाक कहा गया है।

पर्याय—शूचीपत्र। हलीन। जवूल। जवूक। तीक्ष्ण पुष्पा। विफला।

धूलिपुष्पा। मेघ्या। इडुकलिका। शिवदिष्टा। ऋकषा। वीर्यपत्रा। ह्यिरगघा। कटकदला। दलपुष्पा। केवड़ा।

एक रागिनी का नाम। उ०—रामकली, गुनकली, कंतकी, सुन सधराई गायो। जैजैवली, जगतमोहिनी, सुर सौ बीन बजायो।—मूर (शब्द०)।

केतन—सखा पुं० [मं०] १ निमश्रम। आह्वान। २ ध्वजा। उ०—प्रकट सजीव चित्रसा या शून्य पट पर दंडनीन केतन दगा के निकेतन मे।—साकेत, पृ० ३६७। ३. विह्वल। प्रतीक। ४ घर। ५ ध्वजा। दाग (को०)। ६ शरीर (को०)। ७ स्थान। जगह।

केतपू—सखा पुं० [सं०] अन्न साफ करनेवाला।

केतनी—सखा स्त्री० [मं० कंटिल] पानी गरम करने का एक टोंटीदार बरतन, जिसके मुँह पर ढक्कन रहता है। इसमें विशेषतः चाय के लिये पानी गरम करते हैं। उ०—स्टोव जाकर शाति ने चाय की केतनी चढ़ा दी।—सन्ध्यासो, पृ० ७८।

केता(उ)—वि० [सं० कियत्] [स्त्री० केनी] कितना।

केतान(उ)—वि० [हि० 'केना' का बहु० व०] कितने। उ०—मूर वीर केतान गया मव लोग रे। वारो वार बिहय सुपन को जोग रे।—राम० धर्म०, पृ० २५४।

कतिक(उ)—वि० [मं० कति + एक] कितना। किय कदर। उ०—कही बात अपने गोकुल की केतिक प्रीति प्रजवालिनि।—मूर (शब्द०)।

केनी(उ)—वि० [हि०] दे० 'केना'। उ०—भूपन जहाँ लो गनो तहाँ लो भटक हारघो लखिए कछु न केनी वारें चिन चुनिये।—भूपण ग्र०, पृ० ३२।

केतीहेक(उ)—वि० [सं० कियदेक, प्रा० कतिप्र + राज० हेक = एक] दे० 'केतिक'। उ०—डोलउ मारु एम्मा कहि केनीहेक दुर।—डोला० दू०, ६४६।

केतु^१—सखा पुं० [सं०] १ ज्ञान २ दीप्ति। प्रकर। ३ ध्वजा। पताका। ४ निशान। चिह्न। ५ पुराणानुसार एक राक्षस का कवच।

विशेष—यह राक्षस समुद्रमंथन के समय देवताओं के साथ बैठकर अमृतपान कर गया था। इसलिये विष्णु भगवान् ने इसका सिर काट डाला। पर अमृत के प्रभाव से यह मरा नहीं और इसका सिर राहु और कबाघ केतु हो गया। कहा है इसे सूर्य और चंद्रमा ही ने पहचाना था, इसीलिये यह अबतक ग्रहण के समय सूर्य और चंद्रमा को ग्रसता है। ६ एक प्रकार का तारा जिसके प्रकाश की पूँछ दिखाई देती है। यह पुच्छल तारा कहलाता है। उ०—कह प्रभु हंसि जनि हृदय डेराहू। लूक न असनि केतु नहि राहू।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इस प्रकार के अनेक तारे हैं, जो कभी कभी रात को भांड की तरह भिन्न भिन्न आकार के दिखाई देते हैं। भारतीय ज्योतिषियों में इनकी सख्या के विषय में मतभेद है। कोई हजार, कोई १०१, कोई कुछ, कोई कुछ मानता है। नागदोजी का मत है कि केतु एक ही है और वही भिन्न भिन्न रूप का दिखाई पड़ता है। फलिन में भिन्न भिन्न केतुओं का उदय का भिन्न भिन्न फल माना गया है। ज्योतिषियों का मत

है कि वेतु अपने उदयकाल ही में या उदय से पंद्रह दिन पीछे शुभ या अशुभ फल दिखाते हैं। आजकल के पाश्चात्य ज्योतिषियों ने दूरबीन द्वारा यह निश्चित किया है कि वेतुओं की सदृश अनिश्चित है और वे निम्न निम्न पटनों में निम्न निम्न दीर्घवृत्त या परवलयवृत्त कक्षाओं में निम्न निम्न वेगों से घूमते हैं। इन कक्षाओं की दो नाभियों में सूर्य एक नाभि होता है। दीर्घवृत्तात्मक कक्षा होने से ये तारे जब रविनीच के या सूर्य के समीपवर्ती कक्षा में होते हैं, तभी दिखाई पड़ते हैं। रविनीच के कक्षा में आते ही ये तारे कुछ दिखाई पड़ने लगते हैं और पहले पहल प्रकाश के धब्बे की तरह दूरबीनों से दिखाई पड़ते हैं। ज्यों ज्यों ये सूर्य के समीप आते जाते हैं इनकी केतुनाभि दिखाई पड़ने लगती है फिर क्रमशः स्पष्ट होती जाती है। पर कितने ही केतुओं की केतुनाभि नहीं दिखाई पड़ती। उनमें केतुनाभि है या नहीं, यह सदिग्ध है। इन तारों की केतुनाभि उनके आवरण में ढिपटी हुई सूर्य से २ अंश से ६० अंश तक में दिखाई पड़ती है। इन तारों के साथ प्रकाश की एक घड़ी लगी होती है जिसे केतुपुच्छ कहते हैं। इस केतुपुच्छ में स्वयं प्रकाश नहीं होता। यह स्वयं स्वच्छ पारदर्शी और वायुमय होता है जिसमें सूर्य के सान्निध्य से प्रकाश आ जाता है। यही कारण है कि पुच्छ की दूसरी ओर का छोटे से छोटा तारा तक दिखाई पड़ता है। सन् १६८२ ई० के पूर्व के ज्योतिषियों की यह धारणा थी कि पुच्छल तारे बिना ठीक ठिकाने के मनमाने घूमा करते हैं, न इनकी कोई नियत कक्षा है और न इनके घूमने का कोई नियम है। पर सन् १८६२ ई० में हेली साहब ने हिसाब लगाकर एक तारे के विषय में यह अच्छी तरह सिद्ध कर दिया कि वह बहेल्ले की तरह नहीं घूमता, बल्कि लगभग ७६ वर्ष के बाद दिखाई पड़ता है। इस तारे को हेली साहब का पुच्छल तारा या 'हेली केतु' कहते हैं। तब से ज्योतिषियों का ध्यान इन केतुओं की गति की ओर आकर्षित हुआ और अबतक कि उन ही तारों की गति और कक्षा आदि का पूरा पता लग चुका है। ऐसे तारों को ज्योतिष में नियत-कालिक केतु कहते हैं। सबसे बिलक्षण बात—जिम्हा पता सन् १८६२ ई० में इटली के शेपरले नामक ज्योतिषी ने लगाया—यह है कि कितने ही पुच्छल तारों की कक्षा और कितने ही उल्कापुंजों की कक्षा एक ही है। उसने इस बात को सिद्ध कर दिया कि १८६२ के केतु और सिद्दहत्त उल्का, ये एक ही कक्षा में भ्रमण करते हैं। केतु को पुच्छलतारा, बड़नी, झाड़ू, भावि भी कहते हैं।

७. नवग्रहों में से एक ग्रह। यद्यपि फलित में इसे यह माना है तथापि सिद्धांत ग्रहों में चन्द्रकक्ष और अतिरेखा के प्रधानत के विषुव को ही केतु माना है।

विशेष—६० 'पात'।

८ प्रकाशकिरण [को०]। ९ प्रतान या विशिष्ट आवृत [को०]। १०. दिन का समय। दिन [को०]। ११. आकार। रूप। आकृति [को०]। १२ एक वामन या बोनी जाति [को०]। १३. शत्रु। वंरी [को०]। १४. एक प्रकार का रोग [को०]।

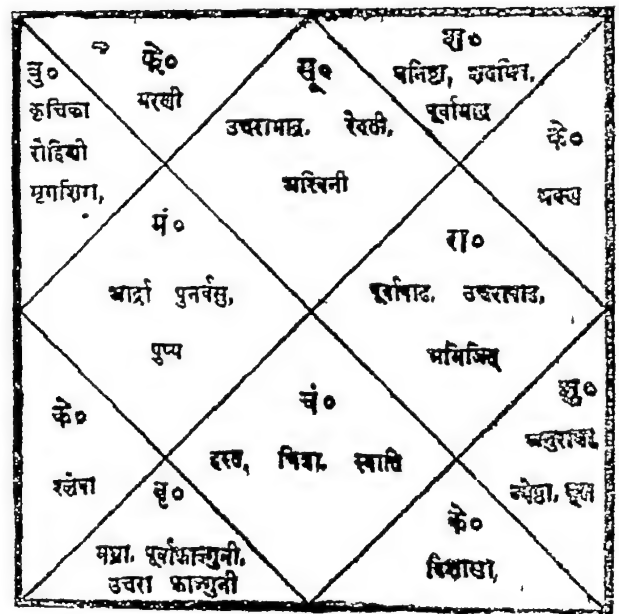
केतु^२—संज्ञा पुं० [सं० केतकी] केवडा।

केतुकि^३ केतुकी—संज्ञा पुं० [सं० केतकी] केतकी। केवडा। उ०—
(क) पल्लव सुवीर केतुकि नवल, बर बसत वायह हले। तम तेज रुधिर नीज्यो बहल कलह किति जावक पुल।—पृ० रा० ७। १६०। (ख) कोइ केतुकि मालति फलवारी।—जायसी पृ०, पृ० २४७।

केतुकुंडली—संज्ञा स्त्री० [सं० केतुकुंडली] फलित ज्योतिष के अनुसार बारह कोष्ठों का एक चक्र, जिससे प्रत्येक वर्ष का स्वामी निकाला जाता है।

विशेष—इस चक्र के बनाने की रीति यह है कि कोष्ठों में पहले कोष्ठ से आरंभ करके ग्रहों के नाम इस क्रम से रखते हैं—सूर्य, केतु, बुध, मंगल, केतु, बृहस्पति, चंद्रमा, केतु, शुक्र, राहु, केतु और शनि। फिर उत्तराभाद्र से आरंभ करके नक्षत्रों को कोष्ठों में इस प्रकार भरते हैं कि सूर्य आदि ग्रहों के नीचे तीन तीन नक्षत्र और केतु के नीचे एक एक नक्षत्र यथाक्रम पड़े। इसके उपरांत चक्र में कुंडलीवाले के जन्मनक्षत्र को देखते हैं। वह नक्षत्र जिस ग्रह के कोष्ठ में होता है, वही प्रथम वर्ष का वर्षेश होता है वही प्रकार दूसरे, तीसरे आदि वर्षों का भी निकालते हैं। इसका प्रचार बंग देश में विशेष है।

चक्र



केतुचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'केतुकुंडली' [को०]।

केतुतारा—संज्ञा पुं० [सं०] पुच्छल तारा [को०]।

केतुपताका—संज्ञा स्त्री० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार नौ कोष्ठों का एक चक्र जिससे वर्षेश निकाला जाता है।

विशेष—इस चक्र में नौ ग्रह, सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, शनि, बृहस्पति, शुक्र, केतु क्रम से रखे जाते हैं। फिर रुचिका से लेकर भरणी तक और सूर्य से लेकर शुक्र तक प्रत्येक प्र

यह कभी अपने शरीर को सिकोड़ लेता है, और कभी लवा कर देता है। यह मिट्टी ही खाता है। इससे पीले रंग की एक लसदार वस्तु निकलती है, जो रात को चमकती है।

२ कंचुए के आकार का सफेद कीड़ा जो पेट से मल द्वारा बाहर निकलता है।

क्रि० प्र०—गिरना। पड़ना।

कंचुकी ७—सद्वा ली० [सं० कञ्चुकी] दे० 'कचुकी' उ०—ब्रेथे भवर कंठ केतुकी। चाहहि प्रेथ कीन्ह कंचुकी।—जायसी ग्रं० (गुप्त) पृ० १९५।

कंचुरी—सद्वा ली० [हि०] दे० 'कंचुली'। उ०—अनग के घाट नहाय नखे भनै पातक केचुरी मानो भुजग।—श्यामा०, पृ० १२६।

कंचुल—सद्वा ली० [सं० कञ्चुक] [वि० केचुली] सर्प आदि के शरीर पर की खोल जो प्रति वर्ष आपसे आप पृथक् होकर गिर जाती है। उ०—निज केचुल भिम धरत हैं, फाहा तब वन पास।—भारनेदु ग्रं०, भा० २, पृ० २२१।

क्रि० प्र०—छोड़ना।—झगड़ना।—वदलना।

मुहा०—केचुल वदलना=पोशाक बदलना। कपड़ा बदलना।—(व्यग्य)। केचुल में आना या भरना=कंचुव छोड़ने पर होना।

केचुली^१—वि० [दि० केचुल] केचुल की तरह का।

यो०—केचुली लचका या केचुली का लचका=एक प्रकार का लचका जो खींचने पर साँप की तरह बढ़ता है।

केचुली^२—सद्वा ली० दे० 'केचुल'।

केचुवा—सद्वा पुं० [हि०] दे० 'केचुआ'।

केत—सद्वा पुं० [वैत का अनु या० अं० केत] एक प्रकार का मोटा वैत जिसकी छड़ियाँ रनती है।

केंदु—सद्वा पुं० [सं० केन्दु] तेंदू का पेड़।

केंदुक—सद्वा पुं० [सं० केन्दुक] १ एक माप। २ एक प्रकार का तेंदू [को०]।

केंदुवाल—सद्वा पुं० [सं० केन्दुवाल] नाव खेने का डौड़। बल्ना। अग्रि। केनिपात।

केंद्र—सद्वा पुं० [सं० केन्द्र] तेंदू।

केंद्र—सद्वा पुं० [सं० केन्द्र, यू० केन्द्र] १ किसी वृत्त के अंदर का वह बिंदु जिससे परिधि तक खींची हुई सब रेखाएँ परस्पर बराबर हों। नाभि। २ किसी निश्चित अंश से ६०, १८०, २७० और ३६० अंश के अंतर का स्थान। ३ ज्योतिष शास्त्र में ग्रहों के दो केंद्र—शीघ्र केंद्र और मद केंद्र। ग्रह के मध्य में से मंलोच्च घटाने से मद केंद्र और शीघ्रोच्च घटाने से शीघ्र केंद्र का ज्ञान होता है। ४ फलित के अनुसार कुंडली में पहला, चौथा, सातवाँ और दसवाँ स्थान। ५ मुख्य या प्रधान स्थान। ६ सदा रहने का स्थान। ७ बीच का स्थान। ८ किसी वस्तु के उत्पादन, वितरण आदि का स्थान सेंटर।

यो०—केंद्रग। केंद्रगामी=केंद्र की ओर गमन करनेवाला।

केंद्रस्थ=केंद्र में स्थिति। केंद्रस्थान।

केंद्रातीत—वि० [सं० केन्द्र + अतीत] केंद्र का प्रतिगामी। केंद्र से बहिर्मुख। केंद्रापग। उ०—पुरुष केंद्रातीत शक्ति के प्रति आकर्षित होकर विश्वविषय की प्राकाशा करके बाह्य जगत् में अपनी कीर्ति प्रसारित करना चाहता है।—प्रेम० और गोकी० पृ० १०७।

केंद्रापगामी^१—वि० [सं० केन्द्रापगामिन्] केंद्र की विपरीत दिशा में जानेवाला।

केंद्रापगामी^२—वि० दे० 'केंद्रापमुखी'।

केंद्रापमुखी—वि० [सं० केन्द्रापमुखिन्] केंद्र का विरोधी। केंद्र से बाहर रहनेवाला। उ०—जो नागवर्ष के जीवन में केंद्रापमुखी प्रवृत्ति जगते पर अलग राष्ट्र बन जाते हैं।—भारत० नि०, पृ० १६२।

केंद्राभिगामी—वि० [सं० केन्द्राभिगामिन्] केंद्र की ओर जानेवाला।

केंद्र का समर्थन करनेवाला। उ०—मौर्य काल की राज्य-संस्था में केंद्राभिगामी और केंद्रापगामी प्रवृत्तियों की किस प्रकार कलमरुत थी, उसका जल्द कर चुके हैं।—भा० इ० इ०, पृ० ६६१।

केंद्री—वि० [सं० केन्द्रिन्] केंद्र में स्थित। केंद्रस्थित। उ०—केंद्री है चवके कर स्वामी योग चद्र चडामणि। गुन द्विज भक्त सकल गुणमागर दाता शूर शिरोमणि।—स्वराज (पृष्ठ०)।

केंद्रीभूत—वि० [सं० केद्रीभूत] केंद्र में स्थित वा एकत्रित। पुंजीभूत। उ०—सुख, केवल मुजरा रह मंत्रह केंद्रीभूत हुआ इतना, छायापय में नव तूपार का सपन मिलन होता जितना।—कामायनी, पृ० ८।

केंद्रीय—वि० [सं० केंद्रीय] १ केंद्र संबंधी। २ केंद्रस्थ। केंद्र में स्थित। ३ प्रधान। मुख्य। वरिष्ठ। श्रेष्ठ।

केंद्राभिमुखी—वि० [सं० केन्द्राभिमुखिन्] दे० 'केंद्राभिगामी'।

केंद्रिक—वि० [सं० केन्द्रिक] केंद्र संबंधी। केंद्र का। केंद्रीय। उ०—कई मामलों में जनसत्ता का सिद्धांत मानते हुए भी यहाँ केंद्रिक शासन में जनमत्ता का रूप लाना टेढ़ी खीर थी।—हिंदु० सभ्यता, पृ० १२।

केंद्रित—वि० [सं० केन्द्रित] १ केंद्र में स्थित। २ निश्चित स्थान पर एकत्रित [को०]।

के^१—प्रत्य० [दि० का] सबधसूचक 'का' विभक्ति का बहुवचन रूप। जैसे,—राम के घोड़े।

विशेष—यदि सबधवान् के आगे कोई विभक्ति होती है, तो एक वचन में 'की' का के स्थान पर 'के' आता है। जैसे—(क) वह राम के घोड़े से गिर पड़ा। (ख) हम उसके घर (पर) गए थे।

के^२—सर्व० [सं० 'क' का बहु० व०] कौन? उ०—कहनु कहिहि के कीन्ह मलाई।—मानस, २।१८१।

के^३—सर्व० [हि०] क्या? उ०—के और हू मन के सदेह हैं।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ३११।

केइ^७—सर्व० [हि० कोई] १. दे० 'कोई'। उ०—तुहँ केइ धीरा केइ अघोरा। केइ धीरा धीरा रस भीरा।—नंद य०, पृ०

पृ० १४७ । २. किसने । उ०—कैड तव नासा कान निपाता ।—तुलसी (शब्द०) ।

कैडक(७)—वि० [हि०] कुछ । कई एक । उ०—सुंदर घर घर रोवणों परयो काल की मास । कैडक जारन को गए फिर कैडक को नास ।—सुंदर० पृ०, भा० २, पृ० ७०४ ।

कैडो—संज्ञा पुं० [सं० केमुक] १. कच्चा । २. चुकंदर । ३. शलगम । कैडो—सर्व० [हि० के + उ (प्रत्य०) — भी] कोई । उ०—अलख अलौकिक रूप तव, तर्क सकि नहि कैड । जानै सोइ करि कप, तुम, जाहि जनावो देउ ।—विश्राम (शब्द०) ।

कैडक(७)—वि० [हि०] कुछ । कितने एक । उ०—कैडक कलप बीतें लोन मपरत हैं ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ४१४ ।

कैडो—संज्ञा पुं० [सं० कर्कट] एक प्रकार का बहुत विपला काला साँप । श्रौषधों में डमी का विष काम में आता है । करंत ।

कैडो—वि० [हि०] दे० 'कैवटी' ।

कैडर(७)—संज्ञा पुं० [सं० कैयूर] दे० 'कैयूर' ।

कैडो(७)—वि० [हि०] कुछ । कई ।

कैडो(७)—सर्व० [हि०] दे० 'कैड' ।

कैडो—सर्व० [हि० कई + एक] कितने । कुछ ।

कैडो—संज्ञा पुं० [ग्रं०] चीनी फल और आटे के मिश्रण द्वारा तैयार की हुई एक तरह की अँगरेजी मिठाई जो गोलाई लिये हुई ऊँची होती है ।

विशेष—यह छोटे मँझोले और बड़े आकार में कई प्रकार की होती है । जन्मोत्सव के लिये बड़ा कैड बनाया जाता है ।

कि० प्र०—काटना = जिसका जन्म दिन मनाया जा रहा हो उसके द्वारा या जिसका सम्मान स्वागत किया जा रहा हो उसके द्वारा कैड काटा जाना और उपस्थित जनो में वितरण ।

कैडड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कर्कट, पा० ककड] पानी का एक कीड़ा जिसे आठ टाँगें और दो पजे होते हैं ।

विशेष—यह साधारण गडहियों से लेकर समुद्र तक में पाया जाता है और भिन्न भिन्न आकार का, छोटा, बड़ा और कई रंगों का होता है । यह अडज है और इसके विषय में कहा जाता है कि इसकी माता अड़ा देने से पहले मर जाती है । बरसात में कैडड़े जोड़ा खाते हैं, और जब मादा का पेट अड़ा से भर जाता है तब वह मर जाती है, और अंडों में से पकने पर, छोटे छोटे बच्चे निकलते हैं । कहते हैं कि पाँच घोल बदलने पर यह पूरा कैडड़ा होता है । यह सूखी भूमि पर भी चल सकता है । गरमी में छिछले पानी या किनारे पर रहता है और जाड़े में गहरे जल में चला जाता है, जहाँ कुछ बाँधकर किसी दरार या गड्ढे में रहता है । बड़ा कैडड़ा अपने छोटे और निर्बल कैडड़ों को खा जाता है । भिन्न भिन्न प्रदेशों में लोग इसका मास भी खाते हैं । वैद्यक में सफेद कैडड़े का मास वायु और पित्त का नाश करनेवाला और रक्तकारक तथा काले कैडड़े का मास बलकारक, गरम और वातनाशक माना गया है ।

मुहा०—कैडड़े की चाल = टेढ़ी विरही चाल ।

२-६४

कैकय—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राचीन देश का नाम ।

विशेष—रामायण के अनुसार यह देश व्यास और शालमली नदी की दूसरी ओर या और उस समय वहाँ की राजधानी गिरिव्रज या राजगृह थी । अब यह देश कश्मीर राज्य के अंतर्गत है और कक्का कहलाता है । वहाँ के निवासी गक्कर, गक्कर या कक्का कहलाते हैं ।

२ [स्त्री० कैकयी] कैकय देश का राजा या निवासी । ३ दशरथ के श्वशुर और कैकयी के पिता का नाम ।

कैकयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कैकय देश की स्त्री । २. राजा दशरथ की रानी जिससे भरत जी उत्पन्न हुए थे । ३. 'कैकयी' ।

कैकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऐंवा । भेंगा । २. तब में चार अक्षरों का एक मंत्र ।

यी०—कैकराक्ष । कैकरनेय । कैकरलोचन = वक्र दृष्टि का । ऐंवी माँखवाला ।

कैकर—सर्व० [हि० के + कर (प्रत्य०)] कितना ।

कैकरा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कैकड़ा' ।

कैकसी—संज्ञा स्त्री० [सं० कैकसी] १. 'कैकयी' ।

कैका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मोर की बोली । मोर की कू ।

यी०—कैकारव = मोर की बोली । उ०—एक मोर गहरी खाई में सोया तरुणों का तम । कैकारव से चकित बखेरे मुख स्वप्नों का सभ्रम ।—ग्राम्या, पृ० १०५ ।

कैकाण—संज्ञा पुं० [सं०] कैकाण देश का घोड़ा । उ०—हाथी चालया दोढसो । अमीय सेहस चालया कैकाण ।—वी० रागो पृ० १२ ।

कैकान(७)—संज्ञा पुं० [सं० कैकाण, राज० कैकाण, कैकाण गु० ककाण] कैकाण देश का घोड़ा । उ०—दुरद अयुत रथ अयुत एक हज्जार कैकान ।—पृ० रा० २ । २१७ ।

कैकावल—संज्ञा पुं० [सं०] मोर । मयूर [क्रो०] ।

कैकिघा(७)—संज्ञा स्त्री० [सं० कैकिघा] दे० 'कैकिघा' । उ०—बालग्रजो ध्याकाड विघ मुणिया सूक्ष्म माड । कहे मँछ जिमिही कहूँ, कैकिघा हिव काड ।—रघु० क०, पृ० १४४ ।

कैकिक—संज्ञा पुं० [सं० कैकिकस] मयूर । मोर [क्रो०] ।

कैकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मयूरी । उ०—जो छा जाती गगन तल के अंक में मेघ माला । जो कैको ही नदित करता कैकिनी साय झीड़ा ।—प्रिय०, पृ० २६३ ।

कैकि, (७) कैकी—संज्ञा पुं० [सं० कैकिन्] मोर । मयूर । उ०—(क)

कैकि कंठ दुति स्यामल अंग । तडित विनिदक वसन मुरगा ।

—तुलसी (शब्द०) । (घ) कैकि कैंकी कपोतन के कुन कैलि करै सति घनैद वारी ।—महाराज (शब्द०) ।

कैचित्—सर्व० [सं०] कोई । कोई कोई ।

कैचुपा(७)—संज्ञा पुं० [सं० कैचुप = चीनी] दे० 'कैचुपी' उ०—किनमिल कैचुपा उनत यन हार ।—विद्यापति, पृ० १३१ ।

कैचुवारी—वि० [सं० कैचु + हि० वारी] कच्छ की । कच्छवासी । उ०—कछु कैचुवारी सुपारी नियारी ।—प० रासो, पृ० १५ ।

कैजा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कैना' ।

कैडवारी—संज्ञा स्त्री० [हि० कैन = ताप भावो + वारी] बहु शाग

पीछे ये द्वारका चले गए और वहाँ इन्होंने यादवों का राज्य स्थापित किया। महाभारत के युद्ध में इन्होंने पांडवों को बहुत सहायता दी थी। इनकी मृत्यु एक वहेलिए का तीर लगने से हुई थी। ये विष्णु के दस अवतारों में से आठवें अवतार माने जाते हैं।

२ एक असुर जिसका जिह्र वेदों में आया है और जिसे हृद्र ने मारा था। ३ एक ऋषि जिन्होंने ऋग्वेद के कई मंत्रों का प्रकाश किया था। ४ अथर्ववेद के अंतर्गत एक उपनिषद्। ५ छप्पय छद का एक भेद, जिसमें २२ गुण और १०८ लघु, कुन १३० वर्ण या १५२ मात्राएँ, अथवा २२ गुण १०४ लघु, कुन १२६ वर्ण या १४८ मात्राएँ होती हैं। ६ चार अक्षरों का एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में एक 'तगण' और एक लघु होता है। जैसे—तू ला मन। गोपीधन। तृष्णं तज। कृष्णं भज। ७ वेदव्यास। ८ अर्जुन। ९. कोयल। १०. कोवा। ११. कदम का पेड़। १२. मास का वह पक्ष जिसमें चंद्रमा का ह्रास हो। अंधेरा पक्ष। १३. कलियुग। १४. शात्मलि द्वीप के निवासी शुद्र। १५. करोंदा। १६. नील। १७. पीपल। १८. जैनियों के मतानुसार नौ काले वसुदेवों में से एक। १९. बौद्धों के मतानुसार एक राक्षस जो बुद्ध का शत्रु माना जाता है। २०. चंद्रमा का घन्ना। २१. लोहा। २२. सुरमा।

कृष्णकचुक—सज्ञा पुं० [सं० कृष्णकचुक] काला चना [को०]।

कृष्णकद—सज्ञा पुं० [सं० कृष्णकन्द] रक्त कमल। लाल रंग का कमल [को०]।

कृष्णक—सज्ञा पुं० [सं०] कृष्ण वर्ण के मृग का चर्म [को०]।

कृष्णकर्म—सज्ञा पुं० [सं०] १ हिंसा आदि पापपूर्ण कर्म। २ वह कर्म जो दिना फल की कामना के किया जाय। ३ फोड़े की चिकित्सा की एक प्रक्रिया।

कृष्णकर्म—वि० [सं० कृष्णकर्मन्] दुष्कर्म करनेवाला। अपराधी। पापी [को०]।

कृष्णकाय—सज्ञा पुं० [सं०] १ महिष। भैंसा। २ कोई भी वस्तु या प्राणी जो काले रंग का हो।

कृष्णकाष्ठ—सज्ञा पुं० [सं०] कृष्णागुह। काला चंदन या अगर [को०]।

कृष्णकेलि—सज्ञा पुं० [सं०] १ गुल अञ्जास। गुलाबाँस का फूल। २ गुलाबाँस का पेड़।

कृष्णकेलि—सज्ञा स्त्री० [सं०] कृष्ण की क्रीड़ा। कृष्णलीला। सं०—कृष्णकेलि कीर्तिग कहौ ताकी कया बनाय।—ब्रज० ग्र०, पृ० १।

कृष्णकोहल—सज्ञा पुं० [सं०] जुआ खेलनेवाला। जुआरी [को०]।

कृष्णगंगा—सज्ञा स्त्री० [सं० कृष्णगङ्गा] कृष्णा नदी। कृष्ण वेणी।

कृष्णगधा—सज्ञा स्त्री० [सं० कृष्णगन्धा] सहिजन। शोभाजन।

कृष्णगति—सज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग [को०]।

कृष्णगर्भ—सज्ञा पुं० [सं०] कायफन।

कृष्णगर्भ—सज्ञा स्त्री० कृष्ण नामक असुर की भार्या।

कृष्णगिरि—सज्ञा पुं० [सं०] नीलगिरि पर्वत [को०]।

कृष्णगोधा—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक जहरीला कीड़ा। विषकीट [को०]।

कृष्णग्रीव—सज्ञा पुं० [सं०] नीलकण्ठ। शिव [को०]।

कृष्णचचुक—सज्ञा पुं० [सं० कृष्णचचुक] नीले रंग की मटर। काली केराव [को०]।

कृष्णचद्र—सज्ञा पुं० [सं० कृष्णचन्द्र] दे० 'कृष्ण'।

कृष्णचूडा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ गुजा। घुँघुची। २ एक प्रकार का कंटीला वृक्ष जिसके फूल पीले या लाल होते हैं और जिनमें हल्की सुगंध होती है। यह साधारणतः सब ऋतुओं में और विशेषतः वरसात में फूलता और फलता है।

कृष्णचूडिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कृष्णचूडा' [को०]।

कृष्णचूर्ण—सज्ञा पुं० [सं०] लोहे का चूरा। लोहमल [को०]।

कृष्णचैतन्य—सज्ञा पुं० [सं० कृष्ण + चैतन्य] दे० 'चैतन्य'।

कृष्णच्छवि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ काले हिरन का चमड़ा। २. काला बादल।

कृष्णजटा—सज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी।

कृष्णजीरक—सज्ञा पुं० [सं०] काला जीरा।

कृष्णताम्र—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चंदन [को०]।

कृष्णतार—सज्ञा पुं० [सं०] १. काले मृग का एक भेद या जाति। २. मृग या हरिण [को०]।

कृष्णदेह—सज्ञा पुं० [सं०] काले रंग की बड़ी मधुमक्खी या अमर [को०]।

कृष्णद्वैपायन—सज्ञा पुं० [सं०] पराशर के पुत्र वेदव्यास। पाराशर्य।

कृष्णघन—सज्ञा पुं० [सं०] अर्न्तक उपाय से अजित घन [को०]।

कृष्णपक्ष—सज्ञा पुं० [सं०] १. वह पक्ष जिसमें चंद्रमा का ह्रास हो। अंधियारा पक्ष। २. अर्जुन का एक नाम [को०]।

कृष्णपर्णी—सज्ञा स्त्री० [सं०] काले पत्तों की तुलसी। कृष्णा।

कृष्णपवि—सज्ञा पुं० [सं०] अग्नि [को०]।

कृष्णपही—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की गानेवाली चिट्ठिया।

विशेष—लंबाई में यह एक बालिष्ठ होती है। यह कश्मीर से भूटान तक पाई जाती है और जाड़ों में नीचे उतर आती है। यह वृक्षों की जड़ में घोंसला बनाती है और एक बार में चार अड़े देती है।

कृष्णपाक—सज्ञा पुं० [सं०] करोंदा।

कृष्णपिंगला—सज्ञा स्त्री० [सं० कृष्णपिङ्गला] दुर्गा [को०]।

कृष्णपुच्छ—सज्ञा पुं० [सं०] रोहू मछली।

कृष्णपुष्प—सज्ञा पुं० [सं०] काला घुँघुरा।

कृष्णफल—सज्ञा पुं० [सं०] करोंदा।

कृष्णफला—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. मिर्च की लता। २. एक प्रकार का छोटा जामुन।

कृष्णवीज—स्त्री० पुं० [सं०] तरबूज।

कृष्णभुजग—सज्ञा पुं० [सं० कृष्णभुजङ्ग] करैत साँप। काला सर्प।

कृष्णभूमि—सज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ की मिट्टी काली हो।

कृष्णभेदा—सज्ञा स्त्री० [सं०] कुटकी।

कृष्णमंडल—सज्ञा पुं० [सं० कृष्णमण्डल] घाँव की पुतली।

कृष्णमणि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नीलम ।

कृष्णमालिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कृष्णपर्णी । काली पत्तियोंवाली तुलसी ।

कृष्णमुख—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ लंगूर । २. एक दानव का नाम ।

कृष्णमृग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कृष्णसार मृग । काला हिरन [को०] ।

कृष्णयजुष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] यजुर्वेद के दो भेदों में से एक । इसमें २६ शाखाएँ हैं, जिनमें तैत्तिरीय और आपस्तम्ब आदि शाखाएँ प्रधान हैं । वि० ३० 'यजुर्वेद' ।

कृष्णयाम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अग्नि [को०] ।

कृष्णरक्त^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गहुरा सुखं रंग । लाल टेस रंग [को०] ।

कृष्णरक्त^२—वि० गहरे लाल रंगवाला [को०] ।

कृष्णराज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] भुजंगा पत्नी ।

कृष्णरुहा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जतुका नाम की लता [को०] ।

कृष्णाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ घुँघुची । गुंजा । २ गुजा का पोषा [को०] ।

कृष्णाला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. घुँघुची । २. शीशम का वृक्ष । ३. रत्नी (परिमाण) ।

कृष्णलोह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चुत्रक पर्यर [को०] ।

कृष्णवल्लिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जतुका [को०] ।

कृष्णवेणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कृष्णानदी । दे० 'कृष्णा' ३ ।

कृष्णसखा—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन ।

कृष्णसखी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ द्रौपदी । २ जीरा ।

कृष्णसार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ काला मृग । काला हिरन । करसा-यल । २. सेंदड़ । ३. शीशम का वृक्ष । ४ खैर का वृक्ष ।

कृष्णसारथि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन ।

कृष्णस्कन्ध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कृष्णस्कन्ध । सुरती का पेठ ।

कृष्णा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. द्रौपदी । २. पीपल । पिप्पली ३. दक्षिण देश की एक नदी जो पश्चिमी घाट से निकलकर (मठली-पट्टम् में) बंगाल की खाड़ी में गिरती है । कृष्णगया । कृष्ण-वेणी । ४ कच्चे नील की बट्टी । नीलवरी । ५ काली दाख । ६. काला जीरा । ७ अमर । ऊद (लकड़ी) । ८ काशी (देवी) । ९ एक प्रकार की जहरीली जोंक । १० पपरी नाम का गधद्रव्य । ११. कुटकी । १२. राई १३ अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक । १४. एक योगिनी । १५ काले पत्ते की तुलसी । १६. माछ की पुत्तली ।

कृष्णागह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कृष्णागह । काला अमर । काले रंग का अमर । उ०—ऊपर तें कृष्णागह भरि भरि डारति फनक कभीरी ।—छोत०, पृ० २२ ।

कृष्णागुह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] काला अमर । काला चंदन [को०] ।

यो०—कृष्णागुहवतिका=काले अमर की बत्ती । उ०—कृष्णागुहवतिका जन चुकी त्वणं पात्र के ही प्रथिमान मे ।—लहर, पृ० ८२ ।

कृष्णाचल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. रंयतक पर्वत । (प्राचीन द्वारका इन्ही पर्वत पर थी ।) २. नीलगिरि पर्वत ।

कृष्णाजिन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ काले मृग का चमड़ा । मृगवर्म । २ एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

कृष्णाधवा—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कृष्णाध्वन् अग्नि । आग [को०] ।

कृष्णाभिसारिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह अभिसारिका नायिका जो अंधेरी रात में अपने प्रेमी के पाम संतस्थान में जाय ।

कृष्णायस—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] लोहा । काना लोह [को०] ।

कृष्णाचि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अग्नि [को०] ।

कृष्णार्जक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वनतुलसी । वर्धरी [को०] ।

कृष्णापंग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कृष्णा के निमित्त वर्षण करना या देना ।

कृष्णापन०—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कृष्णापंग कृष्ण के निमित्त प्रदान करना या देना । उ०—या प्रसार निष्काम भाव सो कृष्णापन किए कर्म ब्रह्मरूप होई, भक्ति को उत्पन्न करत है —श्री श्री बावन० भा० १, पृ० ८४ ।

कृष्णावास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अश्वत्थ । पीपल का वृक्ष [को०] ।

कृष्णाष्टमी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सादो कृष्ण पक्ष की अष्टमी, जिन दिन श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था ।

कृष्णिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ राई । २ श्यामा पत्नी ।

कृष्णिमा—सञ्ज्ञा स्त्री० [कृष्णिमन्] कालापन । कालिमा [को०] ।

कृष्णी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अंधकारमयी रात्रि । अंधियारी रात [को०] ।

कृष्णोदर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप ।

कृष्णोदुवरक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कृष्ण + उदुवरक] एक प्रकार का गूलर । कठगूर [को०] ।

कृष्ण०—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कृष्ण] दे० 'कृष्ण' । उ०—अग अग सुमग प्रति, चनति गजराज मति, कृष्ण उँ एक मति जमुन जाहीं ।—सूर०, १० । १७५१ ।

कृष्ण—वि० [सं०] कर्पण या नेती के योग्य (भूमि) ।

कृस०—वि० [सं०] कृश] दे० 'कृश' ।

कृसर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कृसर' [को०] ।

कृसान्—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कृगानु] दे० 'कृगानु' । उ०—नाहिन या मृग मृदुल तन लगन जोग यह वान । ज्यो फूलन की राशि में उचित न धरन कृसान ।—'महत्तमा' पृ० ६ ।

कृसोदी०—वि० [सं०] कृसोदी] दे० 'कृसोदी' ।

कृस००—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कृष्णा वसुदेव देवकी के पुत्र । कृष्ण ।

कृम्नला०—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कृष्णला] घुँघुची । गुंजा । उ०—काक चचुका कृम्नला गजा करति पनाम ।—प्रनेकार्यं, पृ० २८ ।

कृम्ना०—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कृष्ण] पिपली । उ०—काना कृम्ना मागधी तिगलतुला रोइ ।—प्रनेकार्यं, पृ० ५८ ।

के० के०—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] चिठियों का कपटमुक्क शब्द । २. झगड़ा या प्रमतोपनृक्क शब्द ।

कि० प्रा०—रत्ना । चाना ।

केचुप्रा—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] किञ्चित्क, प्रा० केचुप्रा] १ एक वरजाती कीड़ा ।

विशेष—इसके मनेक प्रकार होते हैं । यह एक वायवित भर था इससे अधिक बढ़ा होना । इसके शरीर में हड्डी नहीं होती ।

कृपाणी—सधा श्री० [सं०] १ छोटी तलवार । २ तेची । फतारी (को०) । ३ फटारी या चर्ची (को०) ।

कृपानु—सधा पु० [सं० कृपाण] तलवार । छुरी । फटारी । उ०—
रिष्ट कुसेय कृपान मसि मडलाप्र करवाल ।—मनेकायं०,
पृ० २६ ।

कृपापात्र—सधा पु० [सं० कृपा + पात्र] वह व्यक्ति जिसपर कृपा हो । कृपा का अधिकारी । जैसे—याप उनके बड़े कृपापात्र हैं ।
कृपायतन—सधा पु० [सं०] कृपा के भवन । कृपा के गौदार । मर्याद कृपालु । उ०—तो मैं जाऊँ कृपायतन सादर देखन सोइ ।—
मानस, १ । ६१ ।

कृपा—पु०—वि० [सं० कृपालु] ६० 'हृपालु उ०—सत्यवद सत्यस्वरूप सत्यप्रतिज्ञा पूरन कृपाल ।—धनानन्द पृ० ५०५ ।

कृपालता—पु०—सधा श्री० [सं० कृपालता] ६० 'कृपालता' ।

कृपालु—वि० [सं०] कृपा करनेवाला । दयालु । उ०—सत्यन जियामे सगुन सुग सुमिरहु राम कृपालु ।—तुलसी ग्र०, पृ० ६० ।

कृपालुता—सधा श्री० [सं०] दया का भाव । नेहवाली ।

कृपासिधु—वि० [सं० कृपासिधु] दयाविधि । यकारण कृपा करनेवाला (परमात्मा) । उ०—परदायक प्रनतारति भजन ।
कृपासिधु सेवक मनरजन ।—मानस, १ । ७० ।

कृपिण—पु०—वि० [सं० कृपण] ६० 'कृपण' ।

कृपिणता—पु०—सधा श्री० [सं० कृपणता] ६० 'कृपणता' ।

कृपित—पु०—वि० [सं० कृपण, हि० कृपिया] ६० 'कृपण' । उ०—
कहा कृपित की माया गनियं करत फिरत भवनी प्रपनी ।—
सूर० १ । ३६ ।

कृपितता—पु०—सधा श्री० [सं० कृपणता, हि० कृपिणता] ६० 'कृपणता' ।

कृपिनाई—पु०—सधा श्री० [हि० कृपित + नाई (प्रत्यय)] ६० 'कृपिनाई' ।

कृपी—सधा श्री० [सं०] कृपाचार्य की वहन जो श्रेयाचार्य की व्याही थी और श्रवत्यामा की माता थी ।

यौ०—कृपीपति = श्रेयाचार्य । कृपीसुत = श्रवत्यामा ।

कृपीट—सधा पु० [सं०] १ जग की लकड़ी । २ जलाने की लकड़ी ।
ई घन । ३ जल । ४ कुटि । उदर । पेट (को०) ।

यौ०—कृपीटपाल = (१) पतवार । (२) समुद्र । (३) वायु ।
कृपीटयोनि = मग्न ।

कृवाल—सधा श्री० [सं० करवाल] करवाल । तलवार । उ०—
वनकन मूठिगु लागि कृवाल । ठनकत डाय परे छुटि नाल ।—
सुजान०, पृ० ३४ ।

कृमि—सधा पु० [सं०] [वि० कृमिल] १ क्षुद्र कीट । छोटा कीड़ा ।
२. हिरमिजी कीड़ा या मिट्टी । किरमिजी । ३ बाह । ४. गवहा (को०) । ५ मकड़ा (को०) ।

यौ०—कृमिकोश = कुसवारी ।

कृमिकटक—सधा पु० [सं० कृमिकटक] १ वायविडग । नाभी रग । बिडग । २. चित्राग । ३ गूलर । उदुवर (को०) ।

कृमिक—सधा पु० [सं०] एक छोटा कीड़ा (को०) ।

कृमिकर—सधा पु० [सं०] एक गहरी या कीड़ा (को०) ।

कृमिकर्ण—सधा पु० [सं०] कान की पूँया कीड़ा । कान का एक रोग (को०) ।

कृमिकर्णक—सधा पु० [सं०] ६० 'कृमिकर्ण' (को०) ।

कृमिरोश—सधा पु० [सं०] रेशम के कीड़े का घर । रोवा । कटून ।
कुम्हारो ।

कृमिरोप—सधा पु० [सं०] ६० 'कृमिरोश' ।

कृमिघ्न—सधा पु० [सं०] कान के रोग की दवाधि के रूप में काम
में आनेवाला पोषा । कुम्हारो (को०) ।

कृमिघ्नी—सधा श्री० [सं०] हुरी । हरिण (को०) ।

कृमिज—वि० [सं०] [वि० कृमिज] कीड़ों से उत्पन्न ।

कृमिज—सधा पु० [सं०] १. रेशम । २. प्रार । ३. किरमिजी ।
हिरमिजी ।

कृमिजा—सधा श्री० [सं०] कीड़े से उत्पन्न नास रस । लस (को०) ।

कृमिण—वि० [सं०] ६० 'कृमिण' (को०) ।

कृमिदत्तक—सधा पु० [सं० कृमिदत्तक] रीत की कीड़ा । रीतों में
होनेवाला रोग (को०) ।

कृमिपचत—सधा पु० [सं०] ६० 'कृमिपच' (को०) ।

कृमिफल—सधा पु० [सं०] उदुपर चर । गूलर (को०) ।

कृमिभोजन—सधा पु० [सं०] एक तरह का दान ।

कृमिरिपु—सधा पु० [सं०] वायविडग का पोषा जो कृमिनास
है (को०) ।

कृमिरोग—सधा पु० [सं०] आमाश्व घोर पाशाश्व में कौए या
कीड़े उत्पन्न होने का रोग ।

कृमिल—वि० [सं०] जिसने कीड़े पक गये हो ।

कृमिला—सधा श्री० [सं०] वह रीति जिसके पशु लड़ते पंदा होन हो ।
बहुप्रवृत्ता स्त्री ।

कृमिलाश्व—सधा पु० [सं०] हरिण के प्रवृत्तार घाजनी चर का
एक राजा ।

कृमिवर्ण—सधा पु० [सं०] लाल रस (को०) ।

कृमिशल—सधा पु० [सं० कृमिशल] वाय के भीतर रहनेवाला
मरत्य (को०) ।

कृमिशय—सधा पु० [सं०] ६० 'कृमिरिपु' (को०) ।

कृमिशुक्ति—सधा श्री० [सं०] १ सीप का कीट । २. रोहरी पीठ-
वाला पोषा । ३. सीप (को०) ।

कृमिखैल—सधा पु० [सं०] वल्मीक । विमोट । वाँवो । वामी ।

कृमिलक—सधा पु० [सं०] अन्य मुद्रग । जगली मूग (को०) ।

कृश—वि० [सं०] १. दुबला पतला । क्षीण । २. गरीब । नगण्य
(को०) । ३. मल । छोटा । नुस्न ।

यौ०—कृशकूट = एक प्रकार का पक्षी । कृशनास । कृशमुख ।
कृशोदरी ।

कृशता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ दुबलापन । दुर्बलता । क्षीणता ।
पतलापन । २ अल्पता । सूक्ष्मता । कमी ।

कृशतार्द्ध(पु)—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कृशता + हि० ई (प्रत्य०)] दे० कृशता ।
कृशत्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. क्षीणता । दुबलापन । २. अल्पता ।
सूक्ष्मता । कमी ।

कृशन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ मुक्ता । मोती । २. सोना । हिरण्य ।
३ आकार । आकृति । गठन (को०) ।

कृशनास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शिव ।

कृशमृत्यु—वि० [सं०] भूल्य या नौकरो को कम खाना देनेवाला ।

कृशर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कृशरा] १ तिल और चावल की
खिचड़ी । २. खिचड़ी । ३ लीयिया मटर । केसारी । दुबिया ।

कृशरान्न—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] खिचड़ी ।

कृशला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] चिर के केश । शिरोरुह (को०) ।

कृशान्न—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृशान्न] शिव (को०) ।

कृशान्न—वि० [सं० कृशान्न] दुबला पतला । क्षीणकाय (को०) ।

कृशागी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कृशाङ्गी] १. दुबले पतले शरीर की
पुवती । तन्त्रंगी । २. प्रियणु लता (को०) ।

कृशाक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जर्जरात । अष्टपद । मकड़ा (को०) ।

कृशातिथि—वि० [सं०] १. अतिथियों को कम भोजन देनेवाला । २
कृष्णता के कारण जिसके घर अतिथि कम आते हों (को०) ।

कृशानु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि । २. चित्रक । चीठा ।

यो०—कृशानानुयत्र । कृशानुरेता ।

कृशानुयत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृशानुयत्र] अग्नि यंत्र ।

कृशानुरेता—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृशानुरेतस्] शिव । महादेव ।

कृशाश्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ भागवत के अनुसार तृणविदु वश का
एक राजपि जो समय का पुत्र और महादेव का का बड़ा भाई
था । २. दक्ष के एक जामाता ।

विशेष—भागवत के अनुसार इन्होंने दक्ष की अर्चि और धीपणा
नाम की कन्याओं से विवाह किया था । अर्चि के गर्भ से
धूमकेश और धीपणा के गर्भ से देवल नामक पुत्र हुए थे ।
रामायण के मत से कृशाश्व ने दक्ष की जया और सुमना
नाम की कन्याओं को व्याहा था, जिनसे पचास पचास
शस्त्रस्वरूप पुत्र हुए थे ।

३. हरिवंश के अनुसार धुधुमारवशी एक राजा, जो नाट्यशास्त्र
के एक आचार्य माने जाते हैं ।

कृशाश्वी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृशाश्विन्] १. कृशाश्वकृत नाट्यशास्त्र
का पढ़नेवाला या पढ़ानेवाला । २. नाट्यकला में कुशल
व्यक्ति । नट ।

कृशित—वि० [सं०] दुबला पतला । दुर्बल । क्षीणकाय ।

कृशोदर—वि० [सं०] जिसका पेट बढ़ा न हो । कृश उदरवाला (को०) ।

कृशोदरी—वि० स्त्री० [सं०] पतली कमरवाली (स्त्री) ।

कृशोदरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] प्रगतमूल ।

कृषक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. किसान । खेतिहर । काश्तकार । २. हल
का फाल । ३. बेल (को०) ।

कृषाण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] किसान । खेतिहर । काश्तकार ।

कृषि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] [हि० कृष्य] १. खेती । काश्त । किसानी ।
२. हल चलाता । जोतना बोना (को०) । ३. पृथिवी । जमीन ।
धरती (को०) ।

कृषिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ खेतिहर । किसान । २. हल का फाल ।

कृषिकर्म—सञ्ज्ञा पुं० [कृषिकर्मन्] खेती का काम । किसानी (को०) ।

कृषिकार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] किसान । खेतिहर ।

कृषिजीवी—वि० [सं० कृषिजीविन्] खेती के द्वारा जीविका उपाजित
करनेवाला (किसान) (को०) ।

कृषी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कृषि] दे० 'कृषि' ।

कृषी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कर्पण भूमि । खेत (को०) ।

कृषीवल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] किसान । खेतिहर । कृषिकार (को०) ।

कृषकर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव (को०) ।

कृष्ट—वि० [सं०] १ जोता हुआ । हल चराया हुआ । उ०—उद्ये
उचित है कि कृष्ट भूमि पर न रहे ।—हिंदु० सम्प्रदा,
पृ० १३३ । २. खींचा हुआ । घसीटा हुआ ।

कृष्टपच्य—वि० [सं०] खेत में बोने से पैदा होनेवाला । खेत में पकने
या तैयार होनेवाला । उ०—ग्रन्थ दो प्रकार के होते थे, कृष्ट-
पच्य तथा अकृष्टपच्य ।—संपूर्णा० मणि० ग्रं०, पृ० २४८ ।

कृष्टपाक्य—वि० [सं०] दे० 'कृष्टपच्य' (को०) ।

कृष्टफल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] खेत में पैदा होनेवाली फसल (को०) ।

कृष्टि^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] विद्वान् पुरुष (को०) ।

कृष्टि^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ खींचना । आकृष्ट करना । २. खेत
जोतना । खेत कमना (को०) ।

कृष्टोप्त—वि० [सं०] (खेत) जोता बोया हुआ हो (को०) ।

कृष्ण^१—वि० [सं०] १ श्याम । काला । सियाह । २. नीला या
आसमानो ३. दुष्ट । अनिष्टकर (को०) ।

कृष्ण^२—सञ्ज्ञा पुं० [स्त्री० कृष्णा] १ विष्णु के दस अवतारों में आठवाँ
अवतार । यदुवंशी वसुदेव के पुत्र, जो भोजवशी देवकी की
कन्या देवकी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे ।

विशेष—उस समय देवकी के भाई राजा उग्रसेन का पुत्र कंस
अपने पिता को कैद करके मयूरा का राज्य करता था ।
देवकी के विवाह के समय कंस को किसी प्रकार यह बात
मालूम हो गई थी कि देवकी के आठवें गर्भ से जो बालक
उत्पन्न होगा, वह मुक्तको मार डालेगा । इसलिये कंस ने
देवकी और वसुदेव को अपने यहाँ कैद कर लिया था । देवकी
के सात बालकों को तो कंस वे जन्म लेते ही मार डाला था,
पर आठवें बालक कृष्ण को, जिसका जन्म मादो की कृष्ण
अष्टमी की राती रात के समय हुआ था, वसुदेव जी गोकुल
में जाकर नंद के घर रक्ष भ्राए थे । बड़े होने पर कृष्ण ने
अनेक मद्भूत कार्य किए थे, जिनके कारण अकित होकर
कंस ने उन्हें मरवा डालने के अनेक उपाय किए, पर सब
व्यर्थ हुए । अंत में कृष्ण ने कंस को मार डाला । इन्होंने
विद्वान् के राजा की कन्या रत्निणी से विवाह किया था ।

कृताह्वान—वि० [सं० कृत + आह्वान] जिसे पुकारा वा ललकारा गया हो [को०] ।

कृति^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. करतूत । करनी । २. कार्य । काम । ३. आघात । क्षति । ४. इद्रजाल । जादू । ५. गणित में दो समान अंको का घात । वर्गसंख्या । ६. डाकिनी । ७. अनुष्टुप जाति का एक छंद, जिसमें बीस बीस अक्षरों के चार चरण होते हैं । जैसे—रोज रोज राज गैल तें गुपाल ग्वाल तीन सात । वायु सेवनार्थं प्रति वाग जात आव लें सुफूल पात । लाय कैं धरें सर्व सुफल पात मोदयुक्त मातु हात । धन्य मान मातु बाल वृत्त देखि हर्षं रोम रोम गात ।—(शब्द०) । ८. बीस की संख्या । ९. कटारी । १०. रचना (को०) । ११. चाकू । छुरी (को०) । १२. मारण । वध । हनन (को०) ।

कृति^२—सञ्ज्ञा पुं० विष्णु ।

कृतिकर सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ (बीस हाथवाला) रावण । २. जादूगर (को०) ।

कृतिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कृतिका] दे० 'कृतिका' ।

कृतिकार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृति = रचना + कार = कर्ता] गद्य पद्य आदि में रचना करनेवाला व्यक्ति । रचनाकार । काव्यलब्ध । उ०—कृति का रूप कृतिकार के सामने पहले से ही उपस्थित नहीं होता ।—पा० सा० सि०, पृ० १ ।

कृती^१—वि० [सं० कृतिन] १ कुशल । निपुण । दक्ष । उ०—कितने कृती हुए, पर किसने इतना गौरव पाया है ?—साकेत, पृ० ३७२ । २ साधु । ३ पुण्यात्मा । ४ कृतकार्य । सफल (को०) । ५ सौभाग्यशाली । भागवान् (को०) । ६. अनुवर्ती । आज्ञाकारी (को०) ।

कृती^२—सञ्ज्ञा पुं० च्यवन ऋषि के पुत्र और उपरिचर वसु के पिता का नाम ।

कृतु^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृतु] दे० 'कृतु' । उ०—जागति है जाइ कठ नाग दिगपालन के, मेरे जान सोई कृतु कीरति तिहारो को ।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १५३ ।

कृतोत्साह—वि० [सं०] १ उत्साहयुक्त । २ परिश्रमी । उद्योगी (को०) ।

कृतोदक—वि० [सं०] नहाया हुआ । स्नात (को०) ।

कृतोद्वाह—वि० [सं०] जिसका विवाह हो चुका हो । विवाहित (को०) ।

कृत्—वि० [सं०] १ छिन्न । विमर्षित । कटा हुआ । २ इच्छित । आकांक्षित (को०) ।

कृत्तम^१—वि० [सं० कृत्रिम] दे० 'कृत्रिम' । उ०—ना मैं कृत्तम कर्म बखानौ । नाँ रसूल का कलमा जानौ ।—मुं० दर० ग्रं०, भा० १, पृ० ३०३ ।

कृत्ति^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ मृगचर्म । २ चमड़ा । खाल । ३ भोजपत्र । ४ कृतिका नक्षत्र । ५ भूजं वृक्ष (को०) । ६ गृह । मकान (को०) ।

कृत्ति^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृत्य] दे० 'कृत्य' । उ०—तदपि केई तजि तजि सब कृत्ति । निर्मल करत चित्त की वृत्ति ।—नद० ग्रं०, पृ० २६६ ।

कृत्तिकाजि—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृत्तिकाजि] वह शकटाकार तिलक जो अश्वमेध यज्ञ में घोड़े को लगाया जाता था ।

कृतिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. मत्तार्द्ध नक्षत्रों में से तीसरा नक्षत्र ।

विशेष—इस नक्षत्र में छह तारे हैं, जिनका समुक्त प्रकार अग्निशिखा के समान होता है । यह चंद्रमा की पत्नी और कार्तिकेय का पालन करनेवाली मानी जाती है और इसकी अधिष्ठात्री 'अग्नि' है ।

यो०—कृत्तिकातय । कृत्तिकापुत्र । कृत्तिकासुत = कार्तिकेय । २ छकड़ा । बेलगाड़ी ।

कृत्तिवास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कृत्तिवासा' ।

कृत्तिवासा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृत्तिवास] शिव । महादेव ।

विशेष—महादेव जी ने गजामुर को मारकर उसकी खाल छोड़ ली थी, इसी से उनका यह नाम पड़ा ।

कृत्य^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कर्तव्य कर्म । वेदनिहित आवश्यक कार्य ।

विशेष—वोदों के मत से जानानुसार कृत्य चौदह प्रकार के होते हैं । यथा—(१) प्रतिपद्यि (२) भवाग, (३) आवाजन, (४) दशन, (५) श्रवण, (६) घ्राण, (७) जपन, (८) स्पर्श, (९) सप्रतिच्छन, (१०) गतीर्ण, (११) उर्यान, (१२) गमन, (१३) तदालंवन और (१४) च्युति । इनके प्रतिरिक्त कालानुसार उन्होंने इसके पाँच और भेद किए हैं—(१) पूर्वभाषण कृत्य, (२) पश्चात्तभाषण कृत्य, (३) प्रथमयाम कृत्य, (४) मध्यमयाम कृत्य और (५) पश्चिमयाम कृत्य । जैनियों के अनुसार कृत्य छह प्रकार के होते हैं—(१) दिनकृत्य (२) रात्रिकृत्य, (३) पर्वकृत्य, (४) चातुर्मास्य कृत्य, (५) सवत्सर कृत्य और (६) जन्मकृत्य ।

२. भूत, प्रेत, यक्षादि जिनका पूजन अभिचार के लिये होता है । ३. कार्य । व्यवसाय । कर्म (को०) । ४. प्रयोजन । लक्ष्य । उद्देश्य । कारण (को०) । ५. कर्मवाच्य कृदन्त के चार प्रत्यय अनिय, एलिप, तव्य और य (को०) ।

कृत्यका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह स्त्री जो हत्या आदि बड़े बड़े मयकर कार्य कर सकती हो । २ चुड़ैल । डाकिनी (को०) ।

कृत्यकृत्य^१—वि० [सं० कृतकृत्य] दे० 'कृतकृत्य' । उ०—तदपि तनक अभिमान के साथ । हम सब कृत्यकृत्य भए नाथ ।—नद० ग्रं०, पृ० २७२ ।

कृत्यम^१—वि० [सं० कृत्रिम, प्रा० कित्तिम] दे० 'कृत्रिम' । उ०—कृत्यम घट कला नाहीं, सकल रहित सोई । दाढ़ू निज भगन निगम, हुआ नहि कोई ।—दाढ़ू०, पृ० ५१० ।

कृत्यवाह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] करणीय कार्य को सग्न करनेवाला (को०) ।

कृत्यविद्—वि० [सं०] कर्तव्य कर्म जाननेवाला । कर्तव्य में चतुर । कुशल । निपुण ।

कृत्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ तप के अनुसार एक राक्षसी, जिसे तांत्रिक लोग अपने अनुष्ठान से उत्पन्न करके किसी शत्रु को विनष्ट करने के लिये भेजते हैं । यह बहुत भयकर मानी जाती है । इसका वर्णन वेदों तक में आया है । २ अभिचार । ३ काम । कर्म (को०) । ४. जादू (को०) । ५. दुष्टा या कर्कशा स्त्री ।

यो०—कृत्यादूषण ।

कृत्याकृत्य—वि० [सं०] करने और न करने योग्य काम । भद्रा और बुरा काम ।

कृत्यादूषण

कृत्यादूषण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का कृत्य जो कृत्या के प्रतिकार के लिये किया जाता है। २ एक प्रकार की शोषधि जिससे कृत्या के दोष का निवारण होता है। ३ अगिरमवश के एक ऋषि, जो कृत्या के दोष का निवारण किया करते थे।
कृत्यार०—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कृत्या] क्रिया। उ०—हम कहें नृप राज विचार जो पूछी कारन कृत्यार।—पृ० रा०, २५। १६५।
कृत्रिम^१—वि० [सं०] १ जो असली न हो। नकली। बनावटी। जानी। २ बारह प्रकार के पुत्रों में से एक।

विशेष—पुत्राभिलाषी पुरुष, यदि किसी माता-पिता हीन बालक को धन संपत्ति का लोभ दिखाकर उससे अपना पुत्र बनना स्वीकार कराके उसे पुत्रवत् अपने संग रखे तो वह बालक उस पुरुष का कृत्रिम पुत्र कहलाएगा।

कृत्रिम^२—सञ्ज्ञा पुं० १ काच लवण। कचिया नोन। २. जवादि गधद्रव्य। ३. रसोत। रसावन।

कृत्रिम प्ररिकृति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह राजा जो किसी दूसरे को विजेता के विरुद्ध भड़काता हो।

कृत्रिमधूप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दशागादि धूप जो अनेक प्रकार के सुगंधित द्रव्यों की मिलाकर बनाया जाता है।

कृत्रिमपुत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह पुत्र जो माता पिता की सहमति के बिना गोद लिया गया हो [को०]।

कृत्रिमभूमि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह चतुर्वरा जो किसी मकान या इमारत के नीचे उसे सीढ़ आदि से बचावे के लिये बनाया जाता है। कुर्मी।

कृत्रिमपुत्रक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गुड्डा। गुड्डा [को०]।

कृत्रिम मित्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह मित्र जिसके साथ किसी उपकार आदि के कारण मित्रता स्थापित हो। शास्त्रों में ऐसा मित्रश्रीर प्रकार के मित्रों से श्रेष्ठ माना गया है।

कृत्रिम मित्रप्रकृति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह राजा जो धन तथा जीवन के हेतु मित्र बन गया हो।

कृत्रिमवन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] उमन। उद्यान। बगीचा [को०]।

कृत्रिमप्रकृति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कृत्रिम प्ररिकृति'।

कृत्सु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ जन। २ भीड़। समूह। ३ कलुष। पाप। अघ [को०]।

कृत्स्न^१—वि० [सं०] संपूर्ण। सब। पूरा [को०]।

कृत्स्न^२—सञ्ज्ञा पुं० १. जन। २. उदर। कुक्षि [को०]।

कृदन्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृदन्त] वह शब्द जो धातु में कृत प्रत्यय लगाने से बने। जैसे,—पाचक, नवन, भुक्त, मोक्तव्य, भोक्ता आदि।

कृप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वैदिक काल के एक राजा का नाम। २. दे० कृपाचार्य।

कृपण^१—वि० [सं०] [सञ्ज्ञा कृपणता] १ कजूस। सूत। अनुदार। कदम। २ क्षुद्र। नीच। ३ विवेकरहित [को०]। ४ गरीब। दयनीय। प्रमाणा [को०]।

कृपण^२—सञ्ज्ञा पुं० १ अनुदार या सूत व्यक्ति। २. एक प्रकार का कीट। ३. बुरी हानत। बुद्धिमान [को०]।

कृपणता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. कजूसी। २. दीनता। दैन्य [को०]।
कृपणधी—वि० [सं०] क्षुद्रबुद्धि।

कृपणी—वि० [सं० कृपणित्व] दुःखी। विपन्न। दयनीय [को०]।

कृपण०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृपण] दे० 'कृपण'। उ०—मीत्रि हाय सिद्ध धुनि पक्षिताई। मनहु कृपण धन रासि गंवाई।—मानस, २। १४४।

कृपणाई०—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कृपण + हि० आई (प्रत्यय)] कृपणता। कजूसी। उ०—दानि कहाउब भर कृपणाई। होइ कि वेम कुशल रीताई।—मानस, २। ३५।

कृपणु०—वि० [हि०] दे० 'कृपण'। उ०—कृपणु देइ, पाइय परो, विन साधन सिद्धि होइ।—तुलसी ग्रं० पृ० ६६।

कृपया—क्रि० वि० [सं०] कृपापूर्वक। अनुग्रहपूर्वक। जैसे—कृपया हमारा यह काम कर दीजिए।

कृपाँन०—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कृपाण] दे० 'कृपाण'। उ०—बाँत कृपाँन विधान अखिल भूपति मन मोहै।—ह० रासो, पृ० १३।

कृपा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० कृपालु] १ बिना किसी प्रतिकार की आशा के दूसरे की मलाई करने की इच्छा या वृत्ति। अनुग्रह। दया। मेहरबानी।

यो०—कृपादृष्टि = दया की दृष्टि। कृपानिकेत = दे० कृपायतन।

कृपापात्र, कृपभाजन = दया का पात्र। दया के योग्य।

कृपायतन = दया के निवास। दयालु। कृपासिन्धु = कृपा के सागर (भगवान्)।

२. क्षमा। माफी। जैसे—जो कुछ हो गया, सो हो गया, अब कृपा करो।

कृपाचार्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गौतम के पोत्र श्रीर शरदत् के पुत्र। अश्वत्थामा के मामा।

विशेष—इनकी बहन कृपा से द्रोणाचार्य का विवाह हुआ था। ये अनुविद्या में बड़े प्रवीण थे। द्रोणाचार्य की भाँति इन्होंने भी कौरवों और पांडवों को अस्त्रशिक्षा दी थी। कुक्षेत्र के युद्ध में ये कौरवों की ओर से लड़े थे, पर युद्ध समाप्त होने पर युधिष्ठिर के यहाँ रहने लगे थे। राजा परीक्षित की भी इन्होंने अस्त्रविद्या सिखाई थी।

कृपाण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री अल्पा० कृपाणी] १. तलवार। २. कटार। ३. दंडक वृक्ष का एक भेद।

विशेष—यह छद्म ३२ दण्डों का होता है। प्राठ प्राठ दण्डों पर यति होती है। इसमें ३१ वाँ दण्ड और ३२वाँ लघु होता है। यतियों पर अनुप्रासों का मिलान और अंत में 'नकार' का होना इस छद्म की जान है। उ०—चनी ह्वै फँ विकरान्, महा कालहू को काल, किये दोऊ दूग लाल, घाय रण समुद्धान। तहाँ लागे लहरान, निसिचरह पराब, वहाँ कानिका रिसान, भुकि भारी किरपान।

कृपाणक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. तलवार। २. कटार।

कृपाणिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटी तलवार। २. कटारी।

तत्संबंधी । उ०—फूले फाँस सकल महि छाई । जनु वरपा
कृत प्रगट बुढाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—यहाँ 'कृत' संबंध विभक्ति 'का' के स्थान पर आया है ।

कृत^२—सज्ञा पुं० [सं०] १ चार युगो मे से पहला युग । सतयुग ।
२ पद्रह प्रकार के दासो मे से एक । वह दास जिसने कुछ
नियत काल तक सेवा करने की प्रतिज्ञा की हो । ३ एक
प्रकार का पासा, जिसमे चार चिह्न बने होते हैं । ४ चार
की सख्या । ५ फल । परिणाम । ६ उद्देश्य । लक्ष्य । ७.
उपकार । उ०—कृत चित्त चकोर कछूक धरो । मिय देह
वताय सहाय करो ।—राम० चं०, पृ० ७६ । ८ कर्म ।
काम । कृत्य । उ०—रोवत समुक्ति कुमातु कृत, मीजि हाय
धुनि माय ।—तुलसी ग्र०, पृ० ७४ । ९ सेवा । लाम
(को०) । १० युद्ध मे प्राप्त धन या इनाम (को०) । ११ देवता
या समानित व्यक्ति को अर्पित वस्तु । भेंट (को०) ।

कृतक^१—वि० [सं०] १ किया हुआ । २ अनित्य । नैसर्गिक का
उलटा (न्याय) । ३ कृत्रिम । फरबी । बनावटी । ४.
कल्पित । दिखावटी । उ०—य राज्य, प्रजा, जन, साम्य तंत्र,
शासन चालन के कृतक यान ।—युगात, पृ० ६० । ५ दत्तक ।
गोद लिया हुआ (को०)

यौ०—कृतकपुत्र = दत्तक पुत्र ।

कृतक^२—सज्ञा पुं० एक प्रकार का नमक । विट्त्वण (को०) ।

कृतकर्म^१—वि० [सं० कृतकर्मन्] १ जो अपना काम सिद्ध कर
चुका हो । सफलताप्राप्त । कामयाब । २ चतुर । प्रवीण ।
कुशल ।

कृतकर्म^२—सज्ञा पुं० १ तीनों ऋणों (ऋषि, देव और पितृ) से युक्त
संन्यासी । २ परमेश्वर ।

कृतकाम—वि० [सं०] जिसकी कामना पूरी हो गई हो ।

कृतकारज(उ)—वि० [सं० कृतकार्य] दे० 'कृतकार्य' ।

कृतकार्य—वि० [सं०] जिसका प्रयोजन सिद्ध हो चुका हो । सफल-
मनोरथ । कामयाब ।

कृतकाल—सज्ञा पुं० [सं०] निश्चित समय । निर्धारित काल (को०) ।

कृतकालदास—सज्ञा पुं० [सं०] वह दास जिसने कुछ ही समय के
लिये अपने को दास बनाया हो ।

कृतकृत(उ)—वि० [सं० कृतकृत्य] दे० 'कृतकृत्य' । उ०—हैं तो
कृतकृत हूँ गयो इनक दर्शन मात्र ।—नद० प्र०, पृ० १८६ ।

कृतकृत्य—वि० [सं०] जिसका काम पूरा हो चुका हो । कृतार्थ ।
सफलमनोरथ । जैसे—हम आपके दर्शन से कृतकृत्य हो गए ।

विशेष—एक शब्द का ५ योग प्राय, आवर, समान, श्रद्धा आदि
सूचित करने मे होता है ।

कृतकृत्य—सज्ञा पुं० [सं०] क्रय करनेवाला व्यक्ति । खरीददार (को०) ।

कृतक्षण—वि० [सं०] १ निर्धारित समय की उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा
करनेवाला । २ सुप्रवसर पानेवाला । सुयोगप्राप्त (को०) ।

कृतघ्न(उ)—वि० [सं० कृतघ्न] दे० 'कृतघ्न' । उ०—सकट परें तुरत
उठि धावत, परम सुमट निज पन कौं । कोटिक करै एक नहि
मानै सुर महा कृतघ्न कौं ।—सूर०, १।६ ।

कृतघ्न—वि० [सं०] किए हुए उपकार को न माननेवाला । अकृतज्ञ ।
नमकहराम ।

कृतघ्नता—सज्ञा स्त्री० [सं०] किए हुए उपकार को मानने का भाव ।

अकृतज्ञता । नमकहरामी ।

कृतघ्नताई(उ)—सज्ञा स्त्री० [सं० कृतघ्नता + हि० ई (प्रत्य०)] दे०
'कृतघ्नता' ।

कृतघ्नी(उ)—वि० [सं० कृतघ्न + हि० ई (प्रत्य०)] दे० 'कृतघ्न' ।

२ मुनिवता । कर्मनाश करनेवाला । वधन से छुड़ानेवाला ।

उ०—कृतघ्नी कुहावा कुकन्यादि चाहे ।—राम चं०, पृ० ६६ ।

कृतज्ञ^१—वि० [सं०] [सज्ञा कृतज्ञता] किए हुए उपकार को मानने
वाला । एहसान माननेवाला । जैसे,—यह कार्य कर दीजिए,
तो हम आपके वडे कृतज्ञ होंगे ।

कृतज्ञ^२—सज्ञा पुं० कृता । श्वान (को०) ।

कृतज्ञता—सज्ञा स्त्री० [सं०] किए हुए उपकार को मानने का भाव ।
निहोरा मानना । एहसानमंदी ।

कृततीर्थ—वि० [सं०] १. ओ तीर्थस्थानो मे भ्रमण कर चुका हो । २.
अध्यापन वृत्तिवाले अध्यापक से शिक्षा प्राप्त करनेवाला । ३
जिसे तरकीब खूब सूझती हो । ४. पयप्रदर्शक । ५. सरल
किया हुआ (को०) ।

कृतदंड—सज्ञा पुं० [सं० कृतदण्ड] यमराज । उ०—गोपन सखा
भाव करि देखे, दुष्ट नृपति कृतवड । पुत्र भाव वसुदेव देवकी,
देखे नित्य अखंड ।—सूर (शब्द०) ।

कृतधी—वि० [सं०] १. दूरदर्शी । २ विद्वान् । शिक्षित । ज्ञानवान्
(को०) ।

कृतनिन्दक—वि० [सं० कृतनिन्दक] कृतघ्न । नाशुकरा । नमकहराम ।
उ०—जो न तरे भवमागर नर समाज अस पाइ । सो कृत-
निन्दक मवमति आरमाहन गति जाइ ।—मानस, ७ । ४४ ।

कृतनिश्चय—वि० [सं०] जिसने दृढ़ निश्चय कर लिया हो । कृत
सकल्प । दृढ़प्रतिज्ञ (को०) ।

कृतपुंख—वि० [सं० कृतपुङ्ख] बाणविद्या या धनुर्विद्या मे कुशल (को०) ।

कृतपूर्व—वि० [सं०] पहले किया हुआ । पूर्व संपन्न (को०) ।

कृतप्रतिज्ञ—वि० [सं०] जिसने प्रतिज्ञा कर ली हो (को०) ।

कृतफल^१—सज्ञा पुं० [सं०] सफल (को०) ।

कृतफल^२—सज्ञा पुं० [सं०] १ शीतल चीनी । २ कोलशिवी । सुमरा
सेम ।

कृतम(उ)—वि० [सं० कृत्रिम] दे० 'कृत्रिम' ।—यातम माँहै ऊपजं
दादू पंगुल ज्ञान । कृतम जाइ उलधि करि, जदू निरजन
थान ।—दादू०, पृ० ५ ।

कृतबुद्धि—वि० [सं०] दे० 'कृतधी' (को०) ।

कृतमाल—सज्ञा पुं० [सं०] १. अमिलतास । २ चितकवरा सृग ।
धव्वादय हिरन (को०) । ३. कर्षोदा का एक भेद । कासमर्द
(को०) ।

कृतमाला—सज्ञा स्त्री० [सं०] वक्षिण (द्रविड) देश की एक छोटी
नदी, जिसके जल के पान का माहात्म्य भागवत मे लिखा है ।

कृतमुख—सज्ञा पुं० [सं०] पंडित ।

कृतयुग—सज्ञा पुं० [सं०] सतयुग ।

कृतवर्मा—सज्ञा पुं० [सं० कृतवर्मन्] १. राजा कनक का पुत्र और कृतवीर्य का भाई । २. हृदिक का पुत्र । ३. जैन मतानुसार वर्तमान अवर्माणी के तेरहवें अर्हत् के पिता ।

कृतविदूषण संधि—सज्ञा स्त्री० [सं० कृतविदूषण सन्धि] कौटिल्य के अनुसार शत्रु के वागियों या अपने गुप्तचरो द्वारा यह सिद्ध करके कि शत्रु ने संधिभंग किया है संधिभंग करना ।

कृतविद्य—वि० [सं०] जिसे विद्या का अभ्यास हो । जानकार । उ०—हुआ रूप दर्शन जब कृतविद्य तुम मिले ।—अपरा, पृ० १४१ ।

कृतवीर्य—सज्ञा पुं० [सं०] १. राजा कनक का पुत्र और कृतवर्मा का भाई । २. सह्याजुन का पिता (की०) ।

कृतवेदी—वि० [सं० कृतवेदिन्] उपकार माननेवाला । कृतज्ञ ।

कृतवेश—वि० [सं०] सुसज्ज । विभूषित (की०) ।

कृतशुल्क—वि० [सं०] कौटिल्य के अनुसार (मान) जिसपर चुगी दी जा चुकी हो ।

कृतशोभ—वि० [सं०] १. शानदार । २. सुंदर । ३. पटु । चतुर । दक्ष (की०) ।

कृतशोच—वि० [सं०] पवित्र । शुद्ध किया हुआ । २. जिसने स्नानादि नित्यकर्म कर लिया हो (की०) ।

कृतश्लेषण संधि—सज्ञा स्त्री० [सं० कृतश्लेषण सन्धि] कौटिल्य के अनुसार वह पक्की संधि जो मित्रों को बीच में डालकर की जाय और जिससे युद्ध या विग्रह की संभावना न रह जाय ।

कृतसंकल्प—वि० [सं० कृतसङ्कल्प] दे० 'कृतनिश्चय' (की०) ।

कृतसज्ज—वि० [सं०] १. होश में लाया हुआ । चेतनाप्राप्त । २. उदबोधित । जगाया हुआ । ३. पंखी बुद्धिवाला । तीक्ष्ण-बुद्धि (की०) ।

कृतसापत्नी—सज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके पति ने उसके जीवन-काल में ही दूसरा विवाह कर लिया हो ।

कृतहस्त—वि० [सं०] १. किसी काम के करने में होशियार । चतुर । कुशल । २. बाण चलाने में निपुण ।

कृताक^१—वि० [सं० कृताङ्क] १. चिह्नित । दागी । २. संदपाकित ।

कृतांक^२—सज्ञा पुं० पासे का वह भाग जिसपर चार बिंदु हों (की०) ।

कृताजलि^१—वि० [सं० कृताञ्जलि] हाथ जोड़े हुए । हाथ बाँधे हुए ।

कृताजलि^२—सज्ञा स्त्री० लाजवती । लजाघुर ।

कृतात^१—वि० [सं० कृतान्त] १. समाप्त करनेवाला । अंत करनेवाला ।

कृतात^२—सज्ञा पुं० १. यम । धर्मराज ।

यो०—कृतातजनक = सूर्य । कृतातपुर = यमलोक । कृतातम-गिनी = यमुना ।

२. पूर्व जन्म में किए हुए शुभ और अशुभ कर्मों का फल । ३. सिद्धांत । ४. मृत्यु । ५. पाप । ६. अनिवार । ७. देवतामाय । ८. भरणी नक्षत्र । ९. दो की संख्या । १०. शनि ग्रह (की०) ।

कृताता—सज्ञा स्त्री० [सं० कृतान्ता] रेणुका नाम का गंध द्रव्य ।

२-६३

कृताकृत—सज्ञा पुं० [सं०] १. किया और बिना किया हुआ । २. अधूरा काम । ३. कार्य और कारण । ४. सोना और चांदी । ५. वह हव्य द्रव्य जो कच्चा और अपक्व हो । जैसे—कच्चे चावल आदि ।

कृतागम^१—वि० [सं०] प्रवीण । समर्थ । कुशल (की०) ।

कृतागम^२—सज्ञा पुं० परमात्मा । ब्रह्म (की०) ।

कृतात्मा—सज्ञा पुं० [सं० कृतात्मन्] वह मनुष्य जिसकी आत्मा शुद्ध हो । महात्मा ।

कृतात्यय—सज्ञा पुं० [सं०] साध्य दर्शन के अनुसार भोग द्वारा कर्मों का नाश ।

विशेष—साध्य का मत है कि एक बार जो कर्म उत्पन्न होता है वह बिना भोग किए हुए नष्ट नहीं होता । यद्यपि ज्ञान उत्पन्न होने पर कर्म का अंत हो जाता है और नए कर्म की उत्पत्ति नहीं होती, पर इसमें पहले का किया हुआ कर्म बिना भोग किए नष्ट नहीं हो सकता । इसीलिये मुक्त पुण्य की दो अवस्थाएँ होती हैं—जीवन्मुक्ति और विदेहकैवल्य । ज्ञान उत्पन्न होने पर मनुष्य के कर्मों का अंत हो जाता है और उसे जीवन्मुक्ति मिलती है । लेकिन पूर्वसंचित या प्रारब्ध कर्मों का फल भोगने के लिये या तो मुक्त पुण्य का शरीर विद्यमान रहता है और या उसे पुनः शरीर धारण करना पड़ता है । इसी अवस्था में फल भोगकर कर्मों की जो समाप्ति की जाती है, उसे 'कृतात्यय' कहते हैं । विदेहकैवल्य इसके बाद मिलता है ।

कृतान्न—सज्ञा पुं० [सं०] १. पकाया हुआ अन्न । २. (भोजन के बाद) पचाया हुआ अन्न ।

कृतापराध—वि० [सं०] दोषी । अपराधी । मुजरिम (की०) ।

कृताभिपेक—वि० [सं०] (राजा) जिसका अभिपेक हो चुका हो (की०) ।

कृतायास—वि० [सं० कृत + आयास] १. परिश्रम करनेवाला । २. कष्ट उठानेवाला (की०) ।

कृतारथ—सज्ञा पुं० [सं० कृतारथ] ३० 'कृतारथ' । उ०—'क' माइ है जनम कृतारथ भेला ।—विद्यापति, पृ० १६२ । (ख) हमहि कृतारथ करन लागि फल तृन अकुर लेहु ।—मानस, २।२४६ ।

कृतार्थ—सज्ञा पुं० [सं०] गत अवसंधि के १२वें अर्हत् का नाम ।

कृतार्थ—वि० [सं०] १. जिसका अनिष्टप्राय पूरा हो चुका हो । जो अपने सब काम कर चुका हो । कृतकृत्य । सकल मनोरथ । २. सतुष्ट । ३. कुशल । निपुण । होशियार । ४. जो मुक्ति प्राप्त कर चुका हो ।

कृतालक—सज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक अनुचर ।

कृतालय^१—वि० [सं०] जिसने कहीं घर बना लिया हो । घर बना लेनेवाला (की०) ।

कृतालय^२—सज्ञा पुं० १. मेडक । मंडूक । २. कृता (की०) ।

कृतावधि—वि० [सं०] १. जिसकी समयसीमा निश्चित हो । निरिक्त समय का । २. सीमित (की०) ।

कृतास्थ—वि० [सं०] १. अस्थवाला । अस्थायिपुत्र । २. अस्थ के प्रयोग में कुशल (की०) ।

उ०—राम नाम ललित लनाम क्रियो लाखन को बडो कूर कायर कपूत कोडी आष की।—तुलसी (शब्द०)। ५ जितका किया कुछ न हो सके। अकर्मण्य। निकम्मा। उ०—गुप्त शरीर वीर चारी भारी भारी तहाँ सूरन उछाह कूर कादर डरत हैं।—तुलसी (शब्द०)। ६. नासमझ। अनजान। मूर्ख। उ० हंसिहहि कूर कुटिल कुविचारी। जे परदुपन भूपन धारी।—मानस, १।५।

कूर^२—सङ्घा पुं० [हि० कूरा=अश] लगान की वह कमी जो उच्च जातियों को मुजरा दी जाती है, जिससे वे लोग हलवाहा रख सकें।

कूर^३—सङ्घा पुं० [सं०] उवाला हुआ चावल। भात [को०]।

कूर^४—सङ्घा पुं० [हि० कूर=भरना] गुभिया, समोसे आदि में भरने का मसाला।

कूरता—सङ्घा ली० [सं० कूरता वा हि० कूर+ता (प्रत्य०)] १. निर्दयता। कठोरता। बेरहमी। २. जडता। मूर्खता। ३. अरसिकता। उ०—कृष्णचरित रस पूर, नमो सूर कलि सूर कवि। जासु भणित रसमूर, होत दुरि सुनि कूरता।—रघुराज (शब्द०)। ४. कायरता। डरपीकपन।

कूरपन—सङ्घा पुं० [हि० कूर+पन (प्रत्य०)] ३० 'कूरता'।

कूरम(पु)—सङ्घा पुं० [सं० कूर्म] ३० 'कूर्म'। उ०—कूरम पं कोल कोलहू पं सेप कु डली है, कु डली पं फवी फैल सुफन हजार की।—पद्याकर ग्रं०, पृ० २५३।

कूरा—सङ्घा पुं० [सं० कूट, प्रा० कूड=ढेर] [ली० कूरी] १. ढेर। राशि। उ०—सीस बसै वरदा वरदानि चडयो वरदा धरनिउ वरदा है। घाम घतुरो विभूति को कूरो निवास तहाँ सब लं मरवा है।—तुलसी (शब्द०)। २. भाग। अश। हिस्सा।

कूरी^१—सङ्घा ली० [देश०] एक प्रकार की घास जिसे चपरेला या मोतिया भी कहते हैं।

कूरी^२—सङ्घा ली० [हि० कूरा] छोटा ढेर। ढेरी।

कूर्च—सङ्घा पुं० [सं०] १ मुट्ठी भर कुश। २ दोनों मोँही के बीच का स्थान। ३ अँगूठे और तर्जनी के बीच का स्थान। ४. भ्रू। ५. असत्य। ६. दंभ। ६. एक प्रकार का आसन। ७. एक वीजमंत्र। ८. कूँची। ९. मस्तक सिर। १०. गोदाम। भांडार। ११. पुला (को०)। १२. दाढ़ी (को०)। १३. मोर पक्ष (को०)।

कूर्चक—सङ्घा पुं० [सं०] १ कूँची। २. दाँतो को स्वच्छ करने की कूँची। ३. एक माप या तोल [को०]।

कूर्चिका—सङ्घा ली० [सं०] १ कूँची। २. कली। ३. कुजी। ४. सूई। ५. फटा हुआ धुप। छेना।

कूर्दन—सङ्घा पुं० [सं०] १. कूदने की क्रिया। उछलना कूदना [को०]।

कूर्दनी—सङ्घा ली० [सं०] चैत्र मास की पूर्णिमा। इस तिथि को कामदेव का उत्सव होता था।

कूर्प—सङ्घा पुं० [सं०] मोँहों के बीच का स्थान। त्रिकुटी [को०]।

कूर्पर—सङ्घा पुं० [सं०] १ पंर के बीच का जोड़। घुटना। २. हाथ के बीच का जोड़। कुहनी [को०]।

कूर्टम—सङ्घा पुं० [सं०] कीटिल्य के अनुसार घड़ की रक्षा के लिये लहे की जातियों का छोटा कवच।

कूर्म—सङ्घा पुं० [सं०] १ कच्छप। कछुआ। २. पृथिवी। ३. प्रजापति का एक अवतार। ४. एक ऋषि जिन्होंने ऋग्वेद के कई सूत्रों का विकास किया था। ५. एक वायु जिसका निवास घाँवों में है और जिससे प्रभाव से पलकें खुलती और बंद होती हैं। यह वस प्राणों में से एक है। ६. नाभिचक्र के पास की एक नाडी। कछुआ। पोतनहर। ७. विष्णु का दूसरा अवतार, ८. तंत्र के अनुसार एक मुद्रा या आसन जिसका व्यवहार देवता के ध्यान के समय किया जाता है १. ३० 'कूर्मसितन'।

कूर्मक्षेत्र—सङ्घा पुं० [सं०] हिंदुओं का एक तीर्थ, जहाँ कूर्मवतार भगवान् के दर्शन होते हैं।

कूर्मखंड—सङ्घा पुं० [सं० कूर्मखण्ड] पुराण के अनुसार एक वर्ष या खंड का नाम [को०]।

कूर्मचक्र—सङ्घा पुं० [सं०] एक प्रकार का चक्र, जो तांत्रिक लोग बनाते हैं और जिससे शुभाशुभ का अनुमान और फल जाना जाता है।

कर्मदादशा—सङ्घा ली० [सं०] पीप शुक्ला द्वादशी। इसी तिथि को कूर्मवतार का होना माना जाता है।

कूर्मपुराण—सङ्घा पुं० [सं०] अठारह मुख्य पुराणों में से एक।

कूर्मपृष्ठ—सङ्घा पुं० [सं०] १. कछुए की पीठ। २. वह स्थल जो कछुए की पीठ तरह ऊँचा नीचा हो। ३. बाणपुष्प या भ्रमलान नामक वृक्ष। ४. तश्तरी या किसी वस्तु का ढक्कन [को०]।

कूर्ममुद्रा—सङ्घा ली० [सं०] तांत्रिकों की उपासना में एक प्रकार की मुद्रा जिसमें एक हथेली दूसरी हथेली पर इस प्रकार रखते हैं कि कछुए की आकृति बन जाती है।

कूर्मराज—सङ्घा पुं० [सं०] १. विष्णु का कूर्मवतार। २. बहुत बड़ा कछुआ [को०]।

कूर्मा सङ्घा ली० [सं०] एक प्रकार की वीणा।

कूर्मसिन—सङ्घा पुं० [सं०] योग में एक आसन का नाम। इसमें दोनों पैरों को तले ऊपर रखकर एँडियों से गुदा को दबाकर घुटनों के दल खड़ा होना पड़ता है।

कूर्मिका, कूर्मी—सङ्घा ली० [पुं० कूर्मिका] एक प्रकार का बहुत प्राचीन वाजा, जिसमें बजाने के लिये तार लगे होते थे।

कूलकष—वि० [सं० कूलकष] तट को छूनेवाला [को०]।

कूलकष—सङ्घा पुं० १. नदी की धारा या प्रवाह। २. समुद्र। सागर [को०]।

कूलंकषा—सङ्घा ली० [सं० कूलकषा] सरिता। नदी [को०]।

कूलज—सङ्घा पुं० [अ०] माँत का दंड़। अंतर्द्वियों की पीड़ा [को०]।

कूल—सङ्घा पुं० [सं०] १. किनारा। तट। तीर।

यौ०—कूलवती=नदी।

२. सेना के पीछे का भाग। ३. समीप। पास। ४. बड़ा नाला। नहर। ५. तालाब। ६. दुहा टीला [को०]।

कूलक—सङ्घा पुं० [सं०] १. तट। किनारा। २. बल्मीक। बाँधी। ३. दुहा। टीला [को०]।

कूलचर—सङ्घा पुं० [सं०] आयुर्वेद के अनुसार नदी किनारे विचरनेवाले हाथी, भैंस, हिरन, सूँर आदि पशु।

कूला—सङ्घा पुं० [सं० कुल्या] [ली० कुलिया] १. वह छोटा भाग

जो किसी नदी नाले आदि में से पानी लाने के लिये छोड़ा गया हो। छोटी नहर। २. दे० 'कूल्हा'।

कूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बीणा या सितार के नीचे का भाग।

कूलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी।

कूली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बहुत छोटी मछली जो दक्षिण भारत की नदियों में होती है।

कूलेचर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कूलचर'।

कूल्हना†—क्रि० घ० [सं०] कुन्य=क्लेश] पीड़ामुचक शब्द करना। काँटना। कराहना।

कूल्हा—संज्ञा पुं० [सं०] श्रोत्र=कोड़, कोल अथवा देश०] १. कोख के नीचे, कमर में पेड़ के दोनों ओर निकनी हुई हड्डियाँ।

मुहा०—कूल्हा उतरना या सरकना=गिरने या किसी प्रकार का आघात लगने के कारण कूल्हे का अपने स्थान से हट जाना। कूल्हा मटकाना=चूतड़ मटकाना।

३. कुशती का एक पेच, जिसमें पहलवान सामने खड़े हुए विपक्षी की पीठ पर दाहिनी तरफ से प्रपना दाहिना हाथ ले जाकर उसका दाहिना जाँघिया पकड़ता है और अपने बाएँ हाथ से उसका दाहिना पट्टेचा पकड़कर खींचता हुआ अपने कूल्हे पर से लाद कर सामने चित गिराना है।

कूल्ही—संज्ञा स्त्री० [देश०] पीतल (सोनारों की बोली)।

कूवत—संज्ञा स्त्री० [प्र०] कूवत] शक्ति। बल। जोर। ताकत।

यी०—कूवतेजस्मानी=शारीरिक शक्ति। कूवतेराजू=भुजबल। कूवतेबाह=रतिकर्म की शक्ति। कूवतेरुहानी=प्राप्तबल। मनोबल।

कूवर^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. रथ का वह भाग जिसपर जूआ बाँधा जाता है। युगधर। हरसा। उ०—किए हेमदंडन पै मंडन विचित्र चित्र, बने कीर मोर चार ओर मनभावते। कूवर भनूप रूप छतरी छजत तेंसी, छज्जन मे मोती लटकत छवि छावते।—(शब्द०)। २. रथ में रथिक के बैठने का स्थान। ३. कुवडा। ४. कुब्जक। कूजा। कूल।

कूवर^२—वि० मनोहर। सुंदर।

कूवार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कूपार' [को०]।

कूश्म—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के हवनीय देवता।

कूष्माण्ड—संज्ञा पुं० [सं०] कूष्माण्ड] १. कुम्हड़ा। २. पेठा। ३. वैदिक काल के एक ऋषि। ४. एक प्रकार के पिशाच जो शिव के गण हैं। ५. बाणासुर का प्रधान मंत्री।

कूष्माण्डा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कूष्माण्ड] नौ दुर्गा में चौथी दुर्गा। दुर्गा का एक रूप।

कूष्माण्डी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कूष्माण्डी] १. दुर्गा। २. यजुर्वेद की एक ऋचा, जिसके द्रष्टा कूष्माण्ड ऋषि थे।

कूसल—संज्ञा पुं० [सं०] कुश] एक प्रकार की घास जिसके उडनों का भाड़ बनता है।

कूह^५—संज्ञा स्त्री० [क्रि०] १. चिगाड़। हाथी की चिक्कार। २. चीख। चिल्लाहट। उ०—संतु सतावत हैं जग की हैं

कठोर महा सब को मद तूरत। कूह कैं कर मारें कहीं लखि कुन वारन छारन पूरत।—शमसुताय (शब्द०)।

कूहा†—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुहरा'।

कूही—संज्ञा स्त्री० [देश०] बाज की जाति की एक प्रकार की गिकारी चिडिया। कुही।

कूंतत्र—संज्ञा पुं० [सं०] कून्तत्र] १. खंड। भाग। विभाग। २. टुकड़ा। चिप्पी ३. हल [को०]।

कूंतन—संज्ञा पुं० [सं०] कून्तन] काटना। कनरना। खंड खंड करना। टुकड़े टुकड़े करना [को०]।

कूंतनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कून्तनिका] १. कतरनी। कंची। २. छोटा चाकू [को०]।

कूतनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कून्तन] दे० 'कूतनिका' [को०]।

कूक—संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्रीवा। गला। २. नामि [को०]।

कूकण—संज्ञा पुं० [पुं०] १. एक प्रकार का तीतर। २. एक कीड़ा। ३. शिव का एक नाम [को०]।

कूकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. मस्तक की वह वायु जिसके वेग से छोक आती है। १. शिव। ३. चात। चव्य। ४. एक प्रकार का पक्षी। ५. कूनेर का पेड़।

कूकल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कूकर'।

कूकला—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी पीपर [को०]।

कूकलास—संज्ञा पुं० [सं०] गिरगिट।

कूकवाकु—संज्ञा पुं० [सं०] १. मयूर। २. मुर्गा। ३. छिपकली [को०]।

कूकाटिका संज्ञा स्त्री० [सं०] कप और गले का जोड़। घाँटी। उ०—सुगढ़ पुष्ट उन्नत कूकाटिका कबु कंठ सोभा मन मानति।—तुलसी (शब्द०)।

कूच्छ—वि० [सं०] कूच्छ=कण्टसाध्य] १. कण्टसाध्य। उ०—तेज क प्रताप गात कूच्छहू लखान नीको दीपन चढ़ाये सान हीरा जिमि छिनो है।—शकुंतला, पृ० ११०।

कूच्छ^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. कण्ट। दुःख। २. पाप। ३. मूत्रकूच्छ रोग। ४. कोई व्रत जिसमें पचगव्य प्राशन कर दूसरे दिन उपवास किया जाय। जैसे, कूच्छगातपन।

कूच्छ^३ वि० १. कण्टसाध्य। २. कण्टयुत। ३. दुष्ट। बुरा [को०]। ४. पापी। पावात्मा [को०]।

कूच्छपराक—संज्ञा पुं० [सं०] १२ दिन तक निरन्तर रहने का व्रत।

कूच्छातिकूच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] २६ दिन तक दूध पर निर्वाह करने का व्रत।

विशेष—गौतम के मत से इस व्रत में दूध के स्थान पर पानी पीकर ही रहना चाहिए।

कृत्^१—वि [सं०] करने या बनानेवाला। कर्ता। प्राय समासों में प्रयुक्त, जैसे, व्रंयकृत् [को०]।

कृत्^२—संज्ञा पुं० १. धातु के साथ मिलकर विशेष्य आदि बनाने वाले प्रत्यय। २. उक्त प्रत्ययों के योग से बना हुआ शब्द [को०]।

कृत^१—वि० [सं०] १. किया हुआ। संगठित। २. बनाया हुआ। रचित। जैसे—तुलसीदास रामायण। ३. संबंध रखनेवाला।

कुछ अदल बदल न हो सके। अटल। अचल ३. अविनाशी।
विनाशरहित। ४ छिपा हुआ। गुप्त। अतर्व्याप्त। पोशीदा।
कूटस्थ^२—सच्चा पुं० १ व्याघ्रनख नाम का सुगन्धित द्रव्य। २

परमेश्वर। परमात्मा। ३ जीव।

विशेष—साध्य मे 'कूटस्थ' ऐसे आत्मा पुरुष को कहते हैं जो
परिमाणरहित हो और जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों
अवस्थाओं मे एक समान रहे। न्याय में परमेश्वर को 'कूटस्थ'
कहा है और उसे जन्म-गुण-रहित अर्थात् किसी से न उत्पन्न
होनेवाला माना है।

कूटस्वर्ण—सच्चा पुं० [सं०] खोटा सोना। बनावटी सोना।

कूटा—सच्चा पुं० [हिं० कूटना] [खी० कूटी] कुटनपन करनेवाला।
कुटना।

कूटाक्ष—सच्चा पुं० [सं०] जाली पासा। बनावटी पासा।

कूटाख्यान—सच्चा पुं० [सं०] ३ कूट अर्थवाले शब्दों मे लिखी गई
कहानी। २ कल्पित कथा [को०]।

कूटागार—सच्चा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार वह मंदिर जो मानुषी
बुद्धों के लिये बना हो।

कूटायुध—सच्चा पुं० [सं०] छिपाकर रखा गया हथियार [को०]।

कूटाय—सच्चा पुं० [सं०] वह छिपा हुआ अर्थ जिसे बौद्धिक प्रयत्न से
समझा जाय।

कूटावपात—सच्चा पुं० [सं०] ऊपर से छिपा हुआ गड़ढा, जो जंगली
जानवरो को फँसाने के लिये बनाया जाता है।

कूटि^३—सच्चा खी० [सं० कूट] वह व्यंग्य भरी बात जिससे किसी का
परिहास छवित हो।

कूटी^१—सच्चा पुं० [सं० कूट + ई (प्रत्य०)] १ हँसी उड़ानेवाला।
मसखरा। २ जालसाल। जालिया।

कूटी^२—सच्चा खी० [हिं० कुटनी या कूटा का खी०] कुटनी। द्वी।

कूट—सच्चा पुं० [देश०] एक पौधा जो हिमालय पर्वत पर ४००० फुट
से १०,००० फुट की ऊँचाई तक होता है। वहाँ इसे प्रायः
सरकारी के लिये बोते हैं। मँदानों मे भी इसकी खेती होती
है। फाफर। कुल्टू। काठू। तुवा। कसपत। कोठू।

विशेष—इसकी खेती वगाल, आसाम, बरमा, दक्षिण भारत,
मध्य प्रदेश और उत्तरप्रदेश मे भी होती है। धीज जुलाई
में बोया जाता है और अक्टूबर मे इसकी फसल तैयार होती
है। पौधा डेढ़ दो फुट ऊँचा होता है और उसके सिरे पर नीले
फूलों का गुच्छा लगता है। फूल देखने में बहुत सुंदर होते
हैं। फूल गिर जाने पर फल लगते हैं। पकने पर बीजों को
डटल से मलकर अलग कर लेते हैं। बीज काले रंग के तिकोने
लगे और नुकीले होते हैं। भूसी निकल जाने पर उनके अंदर
से दाने निकालकर झाड़ा पीसते हैं जो फलाहार के लिये ब्रतों
में काम आता है।

कूड़ा—सच्चा पुं० [सं० कूट, प्रा० कूड = ढेर] १ जमीन पर पड़ी
हई गई खर पत्तें आदि जिन्हें साफ करने के लिये झाड़ू दिया
जाता है। कतवार।

यी०—कूड़ा करकट। कूड़ाखाना।

क्रि० प्र०—करना।—बटोरना।—झाड़ना।—उठाना।—
फेंकना। फेंलाना।—लगाना।

२ व्यर्थ और निकम्मी चीज। बेकाम चीज।

कूड़ाखाना—सच्चा पुं० [हिं० कूड़ा + फा० खाना] वह स्थान जहाँ कूड़ा
फेंका जाता हो। कतवारखाना।

कूडय—सच्चा पुं० [सं०] दे० 'कुडय' [को०]।

कूड^१—सच्चा पुं० [सं० कुष्टि, प्रा० कुड्ढि] १ हल का वह भाग जिसके
एक सिरे पर मुठिया और दूसरे पर खोपी होती है। जाँघा।
हलपत। पग्गित। बोलने की वह प्रथा जिसमें हल की गरारी
मे बीज डाला जाता है। छीटा का जलटा।

विशेष—जब खेत मे तरी कम रह जाती है तब रबी की फसल
इसी तरह बोई जाती है। गेहूँ, तीसी आदि की बोवाई भी
इसी तरह होती है।

कूड^२—वि० [सं० कु + ऊह = कूह, पा० कूध अथवा कुण्ड]
नासमझ। प्रज्ञानी। बेवकूफ।

यी०—कूडमगज।

कूडमगज—वि० [हिं० कूड + फा० मगज] जिसे कोई बात समझने में
बहुत कठिनाता हो। मंदबुद्धि। कुदजिहन।

कूण^३—सर्व० [डि०] दे० 'कुण'।

कूणिका—सच्चा खी० [सं०] चीणा, सितार, सारंगी या चिकारा आदि
तन्त्री बीजों की वह खूँटी जिसमे तार बँधे रहते हैं और समय
समय पर जिसे मरोड़कर तार को ढीला या कड़ा करते हैं।

कूणित—वि० [सं०] बब। सकुचित। सिमटा हुआ। अविकसित [को०]।

कूणितेक्षण—सच्चा पुं० [सं०] श्येन। बाज पक्षी [को०]।

कूत—सच्चा पुं० [सं० प्राकृत = आशय] १ वस्तु को बिना गिने, नापे
या तोल उसकी सख्या, मूल्य या परिमाण का अनुमान।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. दे० 'कनकूत'।

कूतना—क्रि० सं० [हिं० कूत + ना (प्रत्य०)] १ अनुमान करना।
अंदाज लगाना। उ०—त्रै सुनै न परे श्रुति लो मुखकंबो मिलै
अधरान को कूते।—सेवक (शब्द०)। २ किसी वस्तु को
बिना गिने नापे या तोले उसकी सख्या मूल्य या परिमाण
आदि का अनुमान करना ३ कनकूत करना।

कूथना^१—क्रि० सं० [सं० कुन्थन] बहुत मारना। बुरी तरह पीटना।

कूथना^२—क्रि० म० दे० 'कूथना'।

कूद—सच्चा खी० [सं०] कूदने या उछलने की क्रिया या भाव।

यी०—कूदफाव = कूदने या उछलने की क्रिया।

कूदना^१—क्रि० म० [सं० स्कुन्वन या सं० कूदन प्रा० कुवन] २ दोनों
पैरों को पृथिवी या किसी दूसरे आधार पर से बलपूर्वक उठा
कर शरीर को किसी ओर फेंकना। उछलना। फाँदना।
जैसे—वह यहाँ से कूदकर वहाँ चला गया। २ जान बूझकर
ऊपर से नीचे की ओर गिरना। जैसे—वह स्त्री कुएँ में कूब
पड़ी। ३ किसी काम या बात के बीच में सहसा आ मिलना
या दखल देना। जैसे—तुम यहाँ कहाँ से कूद पड़े ? ४ कम

भग करके एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच जाना। जैसे,—
तुम तो अभी चौथा पन्ना पढ़ते थे, बीसवें पन्ने में कैसे कूद
गए ? अत्यंत प्रसन्न होना। खूशी से फूलना। उछलना।
६ बढ़ बढ़कर वातें करना। शेखी बघारना।

मुहा०—किसी के बल पर कूटना=किसी का सहारा पाकर
बहुत बढ़ बढ़कर बोलना।

कूटना^१—क्रि० सं० किसी वस्तु की एक ओर से दूसरी ओर चला
जाना। उत्सव मन कर जाना। लाघ जाना। फलाना जाना।

जैसे—जब महावीर जी समुद्र कूद गए, तब सबको बड़ा
आश्चर्य हुआ।

सयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

यो०—कूदाकूदी। कूवकूव।

कूदर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] श्वेतुमती ब्राह्मणी और ऋषि के संयोग से
उत्पन्न सतान [क्रि०]।

कूदा^१—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कूदना] खेत आदि नापने का एक प्रकार का
परिमाण, जिसमें कुछ निश्चित कुदानों कूदनी पड़ती हैं।

कूदी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] पैर बाँधने की शृंखला या जजीर [क्रि०]।

कूदाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गहाड़ी कचनार [क्रि०]।

कूना—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] १. दे० 'कूँडा'। २. दे० 'कुँद'।

कूनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० कूँडी] कोल्हू का वह गड्ढा जिसमें ऊँख के
टुकड़े डालकर पेरते हैं। कूँडी।

कूप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कुआँ। इनारा। २. छिद्र। छेद। सुराख।

जैसे—रोमकूप। ३. गहरा गड्ढा। कुँड।

यो०—कूपमंडूक।

४. चमड़े का कुप्पा [क्रि०]। ५. नदी के बीच की चट्टान
या बूँद [क्रि०]। ६. नाव आदि बाँधने का खूँटा [क्रि०]।

मस्तूल [क्रि०]।

कूपक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. छोटा कुआँ। २. चमड़े का बना हुआ तेल।
या घी रखने का पात्र। कुप्पा। ३. नाव बाँधने का खूँटा।
४. नाव या जहाज का मस्तूल। ५. चिता। ६. कूले के नीचे
का गड्ढा [क्रि०]। ७. नौका। नाव। किशती [क्रि०]। ८. छिद्र
छेद।

कूपकच्छप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कुएँ में रहनेवाला कछुआ। २.
सीमित जानकारी रखनेवाला मनुष्य। कूपमंडूक। अनुभवहीन
व्यक्ति [क्रि०]।

कूपकार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुआँ बनाने या कुआँ खोदनेवाला आदमी
[क्रि०]।

कूपस्तानक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कूपकार' [क्रि०]।

कूपचक्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुएँ से पानी खींचने की चरखी। रहट।
कूपयत्र [क्रि०]।

कूपदंड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कूपदण्ड] जहाज या नाव का मस्तूल [क्रि०]।

कूपन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. मनीग्रार्डर फार्म का वह भाग जिसपर
रक्का भेजनेवाला कुछ समाचार आदि लिख सकता है और
जो रक्का पानेवाले के पास रह जाता है २. नियंत्रित या
सीमित किसी भी वस्तु को प्राप्त करने की चिन्त या पुरजा।

कूपमंडूक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कूपमण्डूक] १. कुएँ का मेढक। कुएँ में
रहनेवाला मेढक। २. वह मनुष्य जो अपना स्थान छोड़कर

कहीं बाहर न गया हो, या वाह्य जगत् की जिसको कुछ भी
खबर न हो।

कूपयत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कूपयत्र] दे० 'कूपचक्र' [क्रि०]।

यो०—कूपयंत्रघटिका, कूपयंत्रघटी=कुएँ से पानी खींचने के यंत्र
में लगी छोटी डोल। रहट में लगी हुई डोलची जिनसे पानी
क्रमशः गिरता रहता है। कूपयंत्रघटिका न्याय=सांसारिक
अस्तित्व की विभिन्न अवस्थाओं को व्यक्त करने का न्याय
जिसमें रहट की डोलों के क्रमशः ऊँचा नीचा, भरा खाली,
भरता हुआ खाली होता हुआ आदि के द्वारा सांसारिक स्थिति
व्यवस्था की जाती है (मुच्छकटिक)।

कूपार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सागर। समुद्र [क्रि०]।

कूपी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटा कुआँ। १. कुप्पी। बोटल। ३.
नाभि [क्रि०]।

कूपपु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मूत्राशय।

कूव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कूवड़'।

कूवड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कूवर] १. पीठ का टेढ़ापन २. किसी वस्तु
का टेढ़ापन।

क्रि० प्र०—उठना।—निकलना।

कूवर^१—सञ्ज्ञा पुं० [पुं०] १. कुवड़ा व्यक्ति। २. गाड़ी या रथ की वह
बत्ती जिससे जुआ बाँधा जाता है [क्रि०]।

कूवर^२—वि० १. सुंदर। चंचल। २. कुवड़वाला [क्रि०]।

कूवरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. दे० 'कुवरी'। २. पद आदि से ढँकी गाड़ी
[क्रि०]। ३. रथ या गाड़ी की बत्ती जिससे जुआ बाँधा जाता
है [क्रि०]।

कूवा^१—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कूवड] १. कुवड़। २. वह धनुषाकार लकड़ी
जिसपर बेंडरा रखा जाता है। इसके दोनों सिरे दीवार पर
रहते हैं, और इसके बीच के टेढ़े उभड़े हुए भाग पर बेंडरा
रखा जाता है।

कूवा^२—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] बिटाई करनेवालों का सीसे का एक
गोलाकार औजार जिसे टेकुरी को भारी करने के लिये उसके
नीचे चिपका देते हैं। यह दुयन्नी या एकन्नी के बराबर गोल
गोल होता है।

कूम^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तालाब। जलाशय [क्रि०]।

कूम^२—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत मजबूत
होती है।

विशेष—गडवाल और चटगाँव में यह पेड़ बहुत होता है। इसकी
लकड़ी इमारत के काम में आती है और कहीं कहीं, जहाँ यह
अधिक होता है, जलाई भी जाती है।

कूमटा^१—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जो राजपुताने और
सिंध देश में होता है।

कूमटा^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] धारवार प्रांत में पैदा होनेवाली एक
प्रकार की कपास।

कूर^१—वि० [सं० कूर] १. दयारहित। निर्दय। २. भयकर।
डरावना। ३. मनहूस। असंगुनि। दुष्ट। बुरा। क्रमांगी।

का नाम, जिसकी पत्तियों को पीसकर कुत्ते के काटे हुए स्थान पर रखते हैं।

कूकरनिदिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कूकर + नीद + इया (प्रत्य०)] वह हलकी नीद जो थोड़े ही खटके से टूट जाय।

कूकरबसेरा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कूकर + बसेरा] थोड़ा विश्राम।

क्रि० प्र०—करना।—लेना।

कूकरभेंगरा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कूकर + हि० भेंगरा] १ काला भेंगरा। २ कुकरोष्ठा।

कूकरमुत्ता—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कुकुरमुत्ता'।

कूकरलेंड—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कूकर + लेंड] कुत्ते का मैयुन।

कूका—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कूकना = चिल्लाना] † १ चिल्लाहट भरी लवी पुकार। २ सिक्खो का एक पथ।

विशेष—सन् १८६७ में रामसिंह नामक एक बड़ई ने यह पथ चलाया था। वह अपना उपदेश बहुत चिल्ला चिल्लाकर देता था और श्रोता लोग भी खूब मक्ति में लीन होकर चिल्ला चिल्लाकर ग्रंथ साह्य के पद गाते थे, इसी से इस पथ का नाम ही कूका पड़ गया।

कूकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का कीड़ा, जो जाड़े की फसलो को हानि पहुँचाता है।

कूकुद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुकुद'।

कूख—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुक्षि] दे० 'कोख'।

कूच^१—सञ्ज्ञा पुं० [तु०] १. प्रस्थान। रवानगी। २. मृत्यु। मोत। परलोकयात्रा [को०]।

मुहा०—कूच कर जाना = मर जाना। (किसी के) देवता कूच कर जाना = होश हवाश जाता रहना। भय या किसी और कारण से विवेक नष्ट हो जाना। कूच का डका या नक्कारा बाजाना = (१) फौज या समूह का रवाना होना। (२) मर जाना। कूच बोलना = प्रस्थान करना।

कूच^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुच' [को०]।

कूच^३—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] महुए के पेड़ में पतझड़ के बाद टहनियों में लगनेवाला वह गुच्छा, जिसमें फूल निकलते हैं।

कूच^४—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कूचिका, हि० कूच] पैर के नचले भाग की एक नस। घोड़ा नस।

कूचा—सञ्ज्ञा पुं० [फा० कूचह] १ छोटा रास्ता। गली।

यो०—कूचागर्दी = इधर उधर फिरना। व्यर्थ घूमना।

मुहा०—कूचा झांकना = इधर उधर ठोकर खाना। गली गली मारना फिरना।

२ रेशेदार लकड़ी या मूँज को कूट कर बनाया हुआ झाड़न। ३. झाड़ू। घोहारी।

कूचिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ कूची। कूचिका। २ कुंजी। ताली [को०]।

कूची—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ दे० 'कूची'। २ दे० 'कूचिका' [को०]।

कूज—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कूजना] १ ध्वनि। शब्द। पावाज। २ शब्द करने की क्रिया। ३ पहियों की घरघराहट [को०]।

४, कूजने की क्रिया। कू कू की ध्वनि [को०]।

कूजन—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० कूजित] दे० 'कूज'।

कूजना—क्रि० प्र० [सं० कूजन] १ कोमल और मधुर शब्द करना।

उ०—(क) विमल मनिन सरमिज वदुरगा। जन खग कूजत गुजव भृगा।—तुलसी (शब्द०)। (घ) फनक किङ्कणी नूपुर कलरव, कूजत बाल मराल।—सूर (शब्द०)।

कूजा^१—सञ्ज्ञा पुं० [फा० कूजह] १ प्याले या पुग्गे के पाकार का मिट्टी का वस्तु। कुल्हड़। २. मिट्टी के पुरवे में जमाई हुई श्रद्धा गोलाकार मिसरी। ३ कुञ्ज। कुचडा [को०]।

कूजा^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुञ्जक] मोतिया या बेल का फूल। उ०—कोई कूजा सततगं चमेरी। कोई कदम मुरम रस बेनी।—जायसी (शब्द०)।

कूजित—वि० [सं०] १ जो बोला या कहा गया हो। ध्वनित। २. गूँजा द्वारा या ध्वनिपूर्ण। (स्थान आदि) उ०—कोकिल कूजित कुँज कुटीर।—हरिश्चन्द्र (शब्द०)।

कूट^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. पहाड़ की ऊँची चोटी। जैसे—हेमकूट, विजयकूट। २. सींग। ३. (प्रनाज आदि की) ऊँची और बड़ी राशि या ढेरी। उ०—कोस भरे ओ हेम मणि मञ्जन के करि कट। विप्रन दीन्हो नद नृप भई श्लोकिष्ठ नूट।—गोपाल (शब्द०)। यो०—मयकूट।

४. हल की वह लच्छड़ी जिसमें फल लगा रहता है। खोती। परिहारी। ५. लोहे का मोगरा। हथोड़ा। ६. हरिनों के फँसने का फंदा या जाल। ७. लच्छड़ी के म्यान में छिपा हुआ हथियार। जैसे—तलवार, गुप्ती आदि। ८. छल। धोखा। फरेव। जैसे—कूटनीति। ९. मिथ्या। असत्य। झूठ। १०. अगस्त्य मुनि का एक नाम। ११. घडा। १२. गुप्त वंश। कीना। १३. नगर का द्वार। १४. गूढ़ भेद। गुप्त रहस्य। १५. जिसके अर्थ में हेर फेर हो। जिसका समझना कठिन हो। जैसे, सूत्र का कूट। १६. वह हास्य या व्यंग्य जिसका अर्थ गूढ़ हो। उ०—करहि कूट नारदहि सुनाई। नीक दीन्ह हरि सुदरताई।—तुलसी (शब्द०)। १७. निहाई। १८. वह बेल जिसके सींग टूटे हो। १९. घर। आवास [को०]। २०. घट। घडा [को०]। २१. उमार सहित माथे की हड्डी [को०]। २२. धिरा। छोर। किनारा [को०]।

कूट^२—वि० [सं०] १ झूठा। मिथ्यावादी। २. धोखा देनेवाला। छलिया। ३. कुत्रिम। बनावटी। नकली। ४. प्रधान। श्रेष्ठ। ५. निश्चल। ६. धर्मश्रद्ध।

कूट^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कूट] कूट नाम की शोधधि।

कूट^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० काटना या कूटना] क'टने, कूटने या पीटने आदि की क्रिया। जैसे—मारकूट, का'कूट।

कूट^५—संज्ञा स्त्री० [हि० कुटी] भोपडी।

कूटक—संज्ञा पुं० [सं०] १ छल। कपट। धोख। धूर्तता। २. उठान। मुख्यता। ३. हल का फाल। ४. बेणी। कवरी। ५. एक सुगन्धद्रव्य [को०]।

यो०—कूटकाव्यान = दे० 'कूटाव्यान'।

कूटकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १, छल। कपट। धोखा। २, कौटिल्य के

कूटस्थ

अनुसार जूझा खेलते समय वेईमानी करना या हाथ की चतुराई या सफाई से पासे उलटना ।

कूटकर्मा—वि० [सं० कूटकर्मन्] छली । कपटी । धोखेवाज ।

कूटकार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. दुष्ट या धोखा देनेवाला व्यक्ति । २. झूठा गवाह [को०] ।

कूटकृत्—वि० [सं०] १. धोखेवाज । ठगनेवाला । २. जाली दस्तावेज बनानेवाला । ३. उत्कोच या घूस देनेवाला [को०] ।

कूटकृत्—सञ्ज्ञा पुं० १. कायस्थ । २. शिव [को०] ।

कूटकोष्ठ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. मकान का सबसे ऊपर का भाग । २. कूशाग [को०] ।

कूटखद्ग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह तलवार जो किसी छड़ी में छिपी हो [को०] । गुप्त ।

कूटच्छद्मा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कूटच्छद्मन्] ठग । धूर्त । धोखेवाज [को०] ।

कूटना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. कठिनाई । २. झूठाई । ३. छल । कपट ।

कूटतुजा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह तराजू जिसमें पसंगा हो या जिसकी हड्डी में कुछ हेर फेर हो । डाँडीचोर तराजू ।

कूटत्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ३० 'कूटता' ।

कूटन—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० कूटना] १. कूटने की क्रिया या भाव । २. मारना । पीटना । कुटाई । ३०—फेरत नैन चेरि सो छूटी । यह कूटन कुटनी तस कूटी ।—जायसी (शब्द०) ।

कूटना—क्रि० सं० [सं० कुटन] १. किसी चीज को नीचे रखकर ऊपर से लगातार बलपूर्वक प्राघात पहुँचाना । जैसे—धान कूटना, सड़क कूटना, छाती कूटना ।

मुहान—कूट कूटकर भरना = ठूस ठूस कर भरना । कस कस कर भरना । ठसाठस भरना । जैसे,—उसमें कूट कूटकर चालाकी भरी है ।

२. मारना । पीटना । ठोकना ३. मिल, चक्की आदि में टाँही से छोटे छोटे गड्ढे करना या दाँत निकालना । ४. बल या नसे का अशक्तोप कूटकर उसे बधिया करना ।

कूटनाति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दाँव पेंच की नीति या चाल । वह चाल या नीति जिसका रहस्य कठिनता से खुले ।

कूटपणकारक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. जाली सिक्का या माल तैयार करनेवाला । २. जाली दस्तावेज बनानेवाला । जाल-साज ।—[को०] ।

कूटपूर्व—कूटपाठ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पित्तज्वर । ३० 'कूटपूर्व' ।

कूटपाठ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] (संगीत में) मृदंग के चार वर्णों में एक वर्ण ।

कूटपालक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कुम्हार । कुम्हार । २. कुम्हार का धोबी । ३. ३० 'कूटपूर्व' [को०] ।

कूटपाश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पक्षियों को फँसावे का जाल । फदा ।

कूटपूर्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] द्वापयों का शिरोपज ज्वर ।

कूटप्रश्न—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गहरी । बुझी । प्रहेलिका [को०] ।

कूटवध—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कूटवध] ३० कूटपाश [को०] ।

कूटमान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वह पैमाना जो ठीक नाप से उठा या छोटा हो । २. वह वाट जो ठीक तोल से हटका या भारी हो ।

कूटमुद्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कीटिल्य के अनुसार जाली मुद्र या सिक्का बनानेवाला ।

कूटमुद्रा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कीटिल्य के मत में जाली मुद्र या परवाना ।

कूटमोहन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कुद । कुमार कार्तिकेय [को०] ।

कूटयज्ञ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कूटयज्ञ] पशुओं और पक्षियों को फँसाने का जाल ।

कूटयुद्ध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह लड़ाई जिसमें शत्रु को धोखा दिया जाय । धोखे की लड़ाई ।

कूटरचना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. जाल । फदा । २. कुटनियों का मायाजाल [को०] ।

कूटरूप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कीटिल्य के अनुसार जाली दाया या मिक्का ।

कूटरूपकारक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जाली सिक्का तैयार करनेवाला । विशेष—कीटिल्य ग्रंथशास्त्र में चाणक्य ने लिखा है कि नौ लोग

भिन्न भिन्न प्रकार के लोहे के मोजार खरीवते हो तब जिनके पास सबसे बड़े प्रकार के रासायनिक द्रव्य हो और जो पूर्ण में सने हों, उनको जाली सिक्का तैयार करनेवाला समझना चाहिए । इनको गुप्त दूत लगाकर पकड़ना और देश से निकाल देना चाहिए ।

कूटरूपनिर्यादण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कीटिल्य के अनुसार जाली निर्यात निकालना या चलाना ।

कूटरूपप्रतिग्रहण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कीटिल्य के अनुसार जाली सिक्का ग्रहण करना ।

कूटलिपि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] झूठा या जाली दस्तावेज, फरमा कागज पत्र [को०] ।

कूटलेख—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] झूठा या जाली दस्तावेज ।

कूटलेखक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जाली दस्तावेज लिखनेवाला । जानसाज ।

कूटलेख्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ३० 'कूटलेख' [को०] ।

कूटशालमलि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का शालमलि जो जग से होता है ।

विशेष—इसके पत्तों जिनकी के समान और फूल गहरे लालरंग के होते हैं । इसकी जड़ प्रोपघ के काम में आती है । वंशक में इसे कड़ुआ, चरपरा, गरम और कफ, प्लीहा, उदररोग और रुधिरविकार को दूर करनेवाला माना है ।

२. यमराज की गदा । ३. पुराणानुसार नरक में शालमलि के आकार का लोहे का एक कैला वृक्ष ।

कूटशासन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जाली या फरजी शासन [को०] ।

कूटसाक्षी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कूटसाक्षिन्] झूठा गवाह ।

कूटसाक्षी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] झूठी गवाही । झूठी गवाह ।

कूटसाक्ष्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] फरजी गवाही । बनानेवाली गवाही [को०] ।

कूटस्थ—वि० [सं०] १. सर्वोपरि स्थिति । घाता दण्ड का । २. जिसमें

कुहकवान—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कुहकना + वान] एक प्रकार का बाण, जो वाँस की कई पट्टियों को जोड़कर बनाया जाता है और जिसे चलाते समय कुछ शब्द निकलता है।

कुहकाना०—क्रि० प्र० [हि० कुहक] दे० 'कुहकना'। उ०—केइ मधुमत्त मधुप संग गावत। केइ मिलि कल कोकिल कुहकावत।—नव० प्र०, पृ० २६०।

कुहूँ०—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुहूँ] दे० 'कुहूँ'। उ०—तिन हेरें अँधेरेई दीसँ सबै, विन सुक तें पून्यो प्रवृत्त कुहूँ।—घनानन्द, पृ० ७४।

कुहूँ—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह अमावस्या जिसमें चंद्रमा बिल्कुल दिखाई न दे। २ अमावस्या की अघिष्ठात्री देवी और अगिरा ऋषि की कन्या, जो उनकी श्रद्धा नाम की स्त्री के गर्भ से उत्पन्न हुई थी। प्लक्ष द्वीप की एक नदी। ४ मोर या कोयल की कक। मोर या कोयल की बोली।

विशेष—इस अर्थ में 'कुहूँ' के साथ कठ, मूख, रव आदि शब्द लगाने से कोकिलवाची शब्द बनते हैं। जैसे—कुहूँकठ कुहूँमुख, कुहूँरव, कुहूँशब्द आदि।

यो०—कुहूँ कुहूँ=मयूर या कोयल की बोली। उ०—(क) डहडहे भए दूम रचक हवा के गुन कुहूँ कुहूँ मोरवा पुकारि मोद भरिगे।—रसकुसुमाकर (शब्द०)। (ख) कारी कुरू कसाइन ये सु कुहूँ कुहूँ बरलिया ककन लागी। पद्याकर (शब्द०)।

कुहूँकवान०—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कुहूँकवान'। उ०—चले चंदवान घनवान ओ कुहूँकवान चलत कमान धूम आसवान छवै रहो।—भूपण (शब्द०)।

कुहूँकाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अमावस्या का दिन [को०]।

कुहूँमुख—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कोयल २. विपत्ति ३. दुःख का चाँद [को०]।

कुहेडिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कुहरा। कुहेलिका।

कुहेडो—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कुहेडिका' [को०]।

कुहेरा०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुहेलिका] दे० 'कुहरा'। उ०—राम विना ससार धन कुहेरा सिरि प्रगट्या जम का पेरा।—कवीर श्र०, पृ० १६५।

कुहेला०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुवि] एक प्रकार का शिकारी पक्षी। एक प्रकार का छोटा बाज उ०—कुही कुहेला बाज दिय नूप जसहन के हृदय।—प० रासो पृ० १००।

कुहेलिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ कुहरा। २. कुहरे के कारण फैला अंधकार। उ०—भाषा के विषय में आज हम अनिश्चितता की कुहेलिका में नहीं हैं।—पोद्दार अभि० प०, पृ० ७५।

कुहेलो—सञ्ज्ञा [सं०] दे० 'कुहेलिका' [को०]।

कुहेसा०—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कुहासा] दे० 'कुहामा'। उ०—जनों के अज्ञानरूपी कुहे से को नास करके।—भक्तमाल (श्री०), पृ० ३७७।

कुहौ०—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुहूँ या अनुर०] १ मोर या कोकिल की कूल। उ०—वन वान्तु पिक वटपरा लखि विरहित मत मैं न। कुहौ कुहौ कहि कहि उठै करि करि राते नैन।—विहारो र०, दो० ४७५।

कुहौकुहौ०—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कुहूँ कुहूँ वा अनु०] काकिल की बोली। कोयल की कूक।

कूँग्रा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कूप दे०] 'कूय'।

कूँई०—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कूँई] दे० 'कूँई'।

कूँख—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० कुक्षि] कोख। पेट। गर्भ।

कूँखना—क्रि० प्र० [सं० कुन्य० = वलेश] दुख या पीडा से उहँ-उहँ शब्द फरना। काँखना।

कूँग—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कुनना] एक यंत्र जिसपर कसेरे पीतल, ताँवे के बरतन उरादते और जिला करते हैं। खराद। चरख।

कूँगा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] बबूल की छाल का काढा जिससे डुबोकर चमड़ा पिभाया जाता है।

कूँच^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कूँचा] १ खस या नारियल के रेशे का बना हुआ डेढ़ हाथ लंबा एक बड़ा वृक्ष जिससे जोलाहे ताने का सूत साफ करते हैं। २ लोहारों की बड़ी सँडसी।

कूँच^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुचिका = नली] मोटी नस जो मनुष्यों की एंडी के ऊपर और पशुओं के टखने के नीचे होती है। पै। घोड़ा नस।

मुहा०—कूँचे काटना = घोड़े की नस काटकर उसे बेकाम कर देना।

कूँचना—क्रि० सं० [हि० कूटना या अनु० 'कुच कुच'] कूटना। कुचलना। उ०—कह आसग अहँ हम पाथ साँच वाज वरनी। समर शत्रु मुख कूँचत छन मे कटिन करै करनी।—गोपाल (शब्द०)।

मुहा०—मुँह कूँचना = (१) मारना पीटना (२) मान ध्वस्त करना। ध्वस्त करना।

कूँचा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुच या कून] [स्त्री० कूची] १. किसी रेशेदार लकड़ी या मूँज आदि का कूटकर बनाया हुआ भाड़ू जिसमें चीजों को भाँडते या साफ करते हैं। २. बोहारी। ३. टूटे हुए जहाज के टुकड़े।

कूँचा^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि० करछा] भड़भूजे का बड़ा करछा।

कूँची^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कूँचा] १ छोटा कूचा। छोटी भाड़ू।

२ कूटी हुई मूँज या वालों का गुच्छा, जिससे चीजों को मँल साफ करते या उनपर रंग फेरते हैं। जैसे—सफेदी करने की कूँची, सोनार की कूँची, तमबीर रँगने की कूँची।

मुहा०—कूँची देना = (१) कूँची से रंग चढ़ाना। (२) कूँची से साफ करना। निखारना। † (३) खेत की एक कोने से दूसरे कोने तक जोतना।

३ चित्रकार की रंग भरने की कूँची। तूलिका।

कूँची^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० कुत्रह] १ कुहिया जिसमें मिथी जमाई जाती है। जैसे—कूँची की चीनी। २ मिट्टी का बड़ बरतन जिसमें कोल्ह से निकलकर रस इकट्ठा होता है।

कूँची^३०—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कुँची] ताली। कुजी।

कूँज—सञ्ज्ञा पुं० [सं० क्रीच पा० कौच] क्रीच पक्षी। कर कुल।

कूँजडा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कुँजडा] दे० 'कुजडा'।

कूँजडी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कुँजडा] १. कुँजड़े की स्त्री। २. वह स्त्री जो शाक तरकारी इत्यादि बेचती हो। कवाडिन।

कूजना

कूजना^{७१}—क्रि० प्र० [हि० कूजना] दे० 'कूजना' ।कूजरा^{७२}—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कूजड़ा' ।

कूजरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कूजरी' ।

कूजा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कूज] दे० 'कूज' ।

कूट—सञ्ज्ञा पुं० [हि० सं० कूट] पर का वधन । शृङ्खला ।

कूड—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुण्ड] १. सिर को वचाने के लिये लोहे की

एक लोची टोपी, जिसे लड़ाई के समय पहनते थे । खोद ।

उ०—ग्रौरी पहिरि कूड सिर धरही । फरसा बाँस खेल

सम करही ।—तुलसी (शब्द०) । २. चोगेशिया टोपी के

आकार का मिट्टी या लोहे का गहरा बरतन, जिसे डेकुन में

सगाकर निचाई के लिये कुएँ से पानी निकालते हैं । ३. वह

गहरी लक़र जो खेत में हल जोतने से बन जाती है । कुड ।

४. मिट्टी, लोहे या पीतल आदि का बना हुआ वह गहरा

पात्र जिसके ऊपर चमड़ा मढ़कर 'वायाँ' या ठेका बजाते हैं ।

कूडा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुण्ड] [स्त्री० कूड़ी] १. पानी रखने का मिट्टी

का गहरा बरतन । २. छोटे पीछे लगाने का बाला । गमला ।

३. रोज़नी करने की एक प्रकार की बड़ी हाँडी, जिसे डोन

भी कहते हैं । ४. मिट्टी या काठ का बड़ा बरतन जिसमें

घाटा गूँथते हैं । कठोता । मगोता ।

कूड़ी^{७३}—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कूड़ा] १. पत्थर का बना हुआ कठोरे के

आकार का बरतन । पत्थर की प्याली । पथरी । २. छोटी

नदी । ३. कोल्हू के बीच का वह गड्ढा जिसमें जाट रहता है ।

कूड़ी^{७४}—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डली] एंडुरी जिने सिर पर रखकर

स्थिरा घड़ा उठाती हैं ।

कूयना^{७५}—क्रि० प्र० [न० कुयन=दुख उठाना] १. दुख से

अस्पष्ट शब्द मुँह से निकालना । कराहना । २. कबूतरों का

गुटरगू करना । उ०—गूढ गूहचरी निरी चुरी चहचर करे

कुसत कपोत भट काम के कटक के ।—देव (शब्द०) ।

कूयना^{७६}—सञ्ज्ञा पुं० १. कराह । दुख या कष्ट में निकलनेवाला

अस्पष्ट शब्द । २. कबूतरों की गुटरगू की ध्वनि ।

कूयना^{७७}—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'कुनना' ।

कू—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. पिणाची । डाइन । २. पृथ्वी । धरती (को०) ।

कूपा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कूप, प्रा० कूब, हि० कुप्रा, कुवाँ] दे० 'कुपा' ।

कूई—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुमुदिनी] जल में होनेवाला कमल की तरह

का एक पीछा, जिसके पत्ते कमल की के पत्तों के समान, पर

कुछ लंबे और कटावदार होते हैं ।

विशेष—यह पीछा भारतवर्ष भर में ऐसे ताँतो, पोखरी या गड्ढों

में होता है, जिनमें बरसात का पानी इकट्ठा होता है । यह

बरसात के प्रारंभ में बीजों या पुरानी जड़ों से निरुपता है ।

इसके पत्ते पानी के ऊपर रहते हैं और डठन अंदर । गर्द

श्वेतु अर्थात् बवार कानिक में, इसमें मुँदर सुंदर सफेद फूल

समते हैं, जो लंबी लंबी नालों या डंठलों में लगे रहते हैं ।

इसकी नाल और कमल की नाल में इतना भेद होता है कि

कमल की नाल के ऊपर गड्ढेवाली रोई होती है, पर इसकी

नाल चिकनी होती है । गुई या मुमुवनी के फूल रात को

३-६२

खिलते हैं और चाँदनी रात में बहुत मनोहर लगते हैं । इसी

से कवियों ने चंद्रमा का नाम 'कुमुदवांधव' प्रदि रखा है ।

सफेद फूल ही की कूई अधिक देखने में आती है, पर कहीं कहीं

लाल और पीले फूलों की कूई भी होती है । कमल के फूल की

तरह इसके फूल के अंदर छत्ता नहीं होता, बल्कि एक

कणिका मध्य होता है, जिसके नीचे नाल की घुंटी होती है ।

यह घुंटी बड़कर लड्डू की तरह हो जाती है और बीजों से

भर जाती है । ये बीज फाली सरसों की तरह के होते हैं और

'वेरा' कहलाते हैं । भूने पर इनके सफेद लावे या चीने हो

जाती हैं । अतः के दिन इन बीजों के लावे खाए जाते हैं ।

पटने में वेरे के लड्डू अच्छे बनते हैं । कूई की जड़ खाई

जाती है और दवा के काम में भी आती है । वैद्यक में कूई

का फूल शीतल, कफ और पित्ताशक तथा दाह और श्वेत को

दूर करनेवाला माना जाता है ।

पर्या०—कंख । कुमुदिनी । कुमुद । गर्दभ । सौगंधिक । कंठ ।

कुब । सितोत्पल । कुवल । हल्लक (लाल फूँ) । कोका ।

उत्पल (सफेद फूँ) रात्रिपुष्प । हिमाञ्ज । शीतलज ।

निशाकुल । कुवल । कुवेलय । कुवेल ।

कूक^{७८}—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कूज] १. लरी सुरीली ध्वनि । २. मोर या

कोयल की बोली । उ०—(क) मोरन मनहुँ इद्रधनु मोहत मोर

कक सहनाई । बरसत आनंद आसु अतु सोई भवध प्रजा

समुदाई ।—रघुराज (शब्द०) । (ख) कोकिल कूक कपोतन

के कुन केलि करें अति आनंद वारी ।—मतिराम (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—मारना ।

३. महीन और सुरीले स्वर से रीने का शब्द (जैसे स्त्रियों का) ।

कूक^{७९}—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कुंजी] घड़ी या बाजे आदि में कुंजी देने

की क्रिया, जिससे गति उत्पन्न हो । जैसे,—यह घाट दिनों

की कूक की घड़ी है ।

कूकना^{८०}—क्रि० प्र० [नं० कूजन या अनु०] १. लयी सुरीली ध्वनि

निकालना । २. कोयल या मोर का रोना । उ०—(फ)

कौवत वासिनी कूकत मोर रटें मिलि मेरी भयानक ओढ़े ।—

रघुनाथ (शब्द०) । (ख) कारी कुल्ल कसाईने ये सु ठूठ ठूठ

क्वेलिया कूहन लागी ।—पद्माकर (शब्द०) ।

कूकना^{८१}—क्रि० प्र० [हि० कुंजी] कमानी कसने के लिये पड़ी या

बाजे के पेंच को घुमाना । घड़ी चलाने या बाजा बजाने के

लिये कुंजी घुमाना । कुंजी भरना ।

कूकरा^{८२}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कूकर] [स्त्री० कूकरी] पुता । रान ।

यौ०—कूकरकोर । कूकरचदी । कूकरानिया ।

कूकरकोर—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कूकर+कोर] १. वह पचा घुसा बूझा

नोशन जो कुत्ते के आगे डाला जाता है । टुकड़ा । २. तुच्छ

वस्तु । उ०—आकी कूकर करे तुलजी नु सजान न नागड

कूकरकोरहि । जानकीजीवन को जन हूँ जरि जात सो जीन

ओ जानत औरहि ।—तुलसी (शब्द०) ।

कूकरचदी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कूकर+चद+प्रत्यय] एक जंगली बड़ी

कुसुमितलतावेल्लिता—सखा श्री० [सं०] अठारह यक्षरो का एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में मगण, तगण, नगण, यगण, यगण का क्रम रहता है। जैसे—माता नाथो काल इन वरजोरी दही मूँ हमारे। झूठे लाई तो यह उलहनी अगज होते सकारे। मैं ना जाऊँ अत कतहुँ लखी नित्य भानू सुता की। शोभा वारी है कुसुमितलतावेल्लिता वीचि जाकी।—(शब्द०)।

कुसुमेधु—सखा पुं० [सं०] १. कामदेव। २. पुष्पमय बाण। फूल का बाण [को०]।

कुसुमोदर—सखा पुं० [सं०] ओट का पेट [को०]।

कुसुली—सखा श्री० [हिं०] दे० 'कुसली'।

कुसूत—सखा पुं० [सं० कु + सूत, प्र० सूत, हिं० सूत] १. बुरा सूत। उ०—कहति कवीर फरम सो जोरी। सूत कुसूत बिनै मल कोरी।—कवीर (शब्द०)। २. कुप्रबंध। कुसूत। उ०—रोग भयो भूत सो, कुसूत भयो तुलसी को भूतनाथ पाहि पद पकज गहतु हो।—तुलसी प्र०, पृ० २४०।

कुसूर—सखा पुं० [अ० कुसूर] दे० 'कसूर'।

यौ०—कुसूरमद। कुसूरवार। अपराधी। दोषी।

कुसूल—सखा पुं० [सं०] १. एक देवयोनि। २. दे० 'कुशूल'।

कुसूर्ति—सखा पुं० [सं०] १. इद्रजाल। हथकड़ा। २. दुराचार। ३. शठता। दुष्टता।

कुसेसय—सखा पुं० [सं० कुशेशय] कमल। पद्म। उ०—राखिवदल इदीवर सतदल कमल कुसेसय जाति। निसिमुद्रित प्रातहि वे विगसत ए बिगसत दिनराति।—सूर (शब्द०)।

कुसेसे^५, कुसेसे^५—सखा पुं० [सं० कुशेशय] दे० 'कुसेसय'। उ०—(क) फूल फूल रहे जलज सुदेसे। इदीवर, राजीव, कुसेसे।—नंद० प्र०, पृ० ११६। (ख) कुसल रहै वे केस कुसस ननि सुघारे।—दीन० प्र०, पृ० १७।

कुस्टि, कुस्टी^५—वि० [सं० कुष्ठिन्] दे० 'कुष्ठी'। उ०—(क) बाहन बल कुस्टि कर भेसु।—जायसी प्र०, पृ० २६०। (ख) कुस्टी अग कठ विष बाँध।—चित्रा०, पृ०, १६।

कुस्तबर—सखा पुं० [सं० कुस्तम्बर] धनियाँ का बीज।

कुस्ती—सखा श्री० [हिं०] दे० 'कुस्ती'।

कुस्तु बरी—सखा श्री० [सं० कुस्तुम्बरी] धनियाँ।

कुस्तु बर—सखा दे० [सं०] धनियाँ।

कुस्तुभ—सखा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. समुद्र। सागर [को०]।

कुस्याली^५—सखा श्री० [फा० खुशहाली] प्रसन्नता की स्थिति। खुशी की हालत। उ०—वागा वादिस्याद्वा के कुस्याली का कुगारा।—शिखर०, पृ० १६।

कुस्सा—सखा पुं० [देश०] कुदाल।

कुहँचा^५—सखा पुं० [सं० कफोण हिं० कोहनो, कोहनी] पट्टा का कड़ाई। उ०—मुच्छा उमैठव समझि पैंठ कठिन कर कुहँचाव का।—पद्माकर प्र० पृ० १६।

कुह—सखा पुं० [सं०] १. कुवेर। २. छली या फरेवी व्यक्ति [को०]।

कुहक^५—सखा पुं० [सं०] १. नाया। घोड़ा। जाल। फरेव। २. घूर्त।

मक्कार। वचक। ३. मेढक। ३. मुर्ग को नूक। ५. नाग-विशेष। ६. इद्रजाल जाननेवाला।

यौ०—कुहककार=कपटी। छली। कुहकचित=दाँव पेंच से डरा हुआ। सदेह करनेवाला। सजग। कुहकजीये=इद्रजा की मायावी। वंचक। कुहकस्वन, कुहकस्वर=मुर्गा। कुहकवृत्ति=दे० कुहकजीवी'।

कुहक^५—वि० [सं० कुह + क] आश्चर्यजनक। उ०—कालि कलह कलि करहु कुहक विक्रम सुज्जि जिम।—प० रासो, पृ० १७४।

कुहकना—कि० अ० [सं० कुहक या कुहया अनुर०] पक्षी का नव्य स्वर में बोलना। पीकना। उ०—कुहकहि मोर सुहावन लागा। होय कुगहर बोलहि काका।—जायसी (शब्द०)।

विशेष—प्राय मोर और कोयल के ही बोलने को कुहकना कहते हैं।

कुहकनी—सखा श्री० [हिं० कुहकना] कुहकनेवाली। कोकिल। कोयल।

कुहकना^५—कि० स० [हिं० कुहकना] कूकने या कूकने के लिये प्रेरित करना। उ०—पिक गवाय केकी कुहकाई।—नंद० प्र०, पृ० १४१।

कुहकुह^५—सखा पुं० [सं० कुहकुह] केसर। कुम्कुम। जाफरान। उ०—कनक हाट सब कुहकुह लोरी। बैठि महाजन सिंहलदीपी।—जायसी (शब्द०)।

कुहकुहाना—कि० अ० [सं० कुह=कोयल की आवाज] १. कोयल या मोर का बोलना। कान के अंदर पानी जाने से हलकी सुरसुरी या खजलाहट होना।

कुहक—सखा पुं० [सं०] ताल के साठ भेदों में से एक। इसमें दो द्रुत और दो लघु मात्राएँ होती हैं।

कुहककडाँ—सखा श्री० [हिं० कुहकना अथवा सं० कुहान=कंकश ध्वनि] पुकार। कूकना। आवाज। उ०—वानउ वावा देसइउ, बाँणी जहाँ कुवाँह। आधी रात कुहककडा, ज्यउ माणसां गुवाँह।—ढोला० दू० ६५५।

कुहन^५—वि० [सं०] ईर्ष्या करनेवाला। २. मक्कार। धोखेबाज।

कुहन^५—सखा पुं० [सं०] १. चूहा। मूसा। २. मिट्टी का वर्तन। ३. शीशे का वर्तन। ३. साँप।

कुहना^५—कि० स० [सं० कु + हनना=मारना] मारना। बुरी तरह से मारना। उ०—पाहि हुमान ! कनुनानिधान राम पाहि। कासी कामधेनु कलि कुहव कसाई है।—तुलसी प्र०, पृ० २४५।

कुहना^५—सखा पुं० [अनु० कुह=कोकिल की बोली] गावा। अलापना। उ०—आपु व्याध को रूप धरि कुहो कुरगहि राग। तुलसी जो मृग मन मरे परे प्रेम पर दाग।—तुलसी (शब्द०)।

कुहना^५—वि० [फा० कुहनह] जीर्ण। पुराना। बेकाम का [को०]।

कुहना^५—सखा श्री० [सं०] दे० 'कुह्निका' [को०]।

कुह्निका—सखा श्री० [सं०] १. स्थायित्व के निमित्त धार्मिक अथ पूजा का दिवावा। ३. दोग। पादज। दम [को०]।

कुहनी

कुहनी—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० कपोलि, प्रा० कद्दोणि] १ हाथ और बाहु के जोड़ की हड्डी। उ०—किसी को चुटकी, किसी को कुहनी किसी को ठोकर निपट लड़ाका।—नजीर (शब्द०)। २. तंत्र या पीतल की बनी हुई टेढ़ी नली जो हुक्के की निगाली से लगाई जाती है।

कुहनीउड़ान—सञ्ज्ञा स्त्री [हि० कुहनी + उड़ान] कुश्ती का एक पंच त्रिभुज फुरती से कुहनी के झटके से प्रतिद्वंद्वी के हाथों को पकड़कर रक्ता दिया जाता है। यह पंच ऐसी प्रवस्था में काम में लाया जाता है, जब प्रतिद्वंद्वी के दोनों हाथ अपनी गर्दन पर होते हैं।

पौं—कुहनीउड़ान की टाँग=कुश्ती का एक पंच। जब विपक्षी अपने दोनों हाथ खेनाड़ी के कंधे पर रखे, तो खेनाड़ी उनका एक हाथ पकड़कर और दूसरा हाथ कुहनी से उठाकर अपनी बगल में दबा उसी समय अपनी टाँग झोके से उसके पैर में मारे कि वह गिर पड़े। तोड़—उड़ाया हुआ हाथ खेलाडी की जीत में अडा देना और पैर से पीछे की टाँग मारकर गिराना इन दांव का तोड़ है। कुहनीउड़ान की डूब=कुश्ती का एक पंच। जब विपक्षी अपने कंधे पर हाथ रखे तब उसकी दोनों कुहनियों को उठाकर झट उसके पेट में घुसे और डाँव से पकड़ उसके दोनों पैरों को उड़ाता हुआ गिरावे।

कुहपुं—सञ्ज्ञा पुं [सं० कुह = प्रमावस्था + प] रजनीचर। राक्षस। उ०—गुनि मानव विनोकि मधु मधुवन आज बुधि होत देव, दानव, कुहप की।—देव (शब्द०)।

कुहवर—सञ्ज्ञा पुं [हि० कोहवर] दे० 'कोहवर'।

कुहर^१—सञ्ज्ञा पुं [सं०] १ गड्ढा। गर्त। २ विज्र। छेद। सुराख। जैसे—कणकुहर। ४ कान। ४. गला। कठ। ५ सनीपता। निकटता। ६ रतिक्रिया। ७. कठस्वर। ८. वातायन। विडकी [को०]। ८ गले का छेद। ७. कुहरा।

कुहर^२—सञ्ज्ञा स्त्री [देश०] एक प्रकार का शिकरा जो पक्षियों को पकड़ता है। बहरी।

कुहर^३—सञ्ज्ञा पुं [देश०] एक प्रकार का पत्नी जिसका मांस खाया जाता है।

कुहरा—सञ्ज्ञा पुं [सं० कुहेडी] वायु में जल के अत्यंत सूक्ष्म कणों का समूह जो ठंड पाकर वायु में मिली हुई भाप के जमने से उत्पन्न होता है। ये जनकण पत्तियों और घासों पर पड़कर बड़ी बड़ी बूंदों के रूप में दिखाई पड़ते हैं।

क्रि० प्र०—उड़ना।

कुहराम—सञ्ज्ञा पुं [अ० कहर + आम] १ विलाप। रोना पीटना। आर्तनाद। बावला। उ०—रनिवास में कुहराम पड़ गया। लल्लू (शब्द०)। २. डलचल। उ०—सारे रावी गाँव के ब्राह्मणों में कुहराम मचा हुआ है।—किन्नर०, पृ० ३८।

क्रि० प्र०—करना।—डालना।—पड़ना।—मचना।—होना।

कुहरित—सञ्ज्ञा पुं [सं०] ३ कोकिल की कूक। २ ध्वनि। स्वर। ३ रतिक्रिया में मुख से निकला शब्द या सौत्कार [को०]।

कुहरी—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० कुहेडा] हल्का कुहरा। कुहेलिका। उ०—

जलाशय के किनारे कुहरी दी, हरे नीले पत्तों का घेरा या।—अपरा, पृ० १६१।

कुहलि—सञ्ज्ञा पुं [सं०] पान की पत्ती [को०]।

कुहसार—सञ्ज्ञा पुं [फा० कोइसार] १ पर्वत। पहाड़। २. उपत्यका। घाटी [को०]।

कुहारा—सञ्ज्ञा पुं [हि० कुम्हार] दे० 'कुम्हार'।

कुहा—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] कटुकी नाम की औषध [को०]।

कुहाड़उ—सञ्ज्ञा पुं [सं० कुहार, प्रा० कुहाड़] दे० 'कुहारा'। उ०—बाबा म देसद माववां सूचा एवावाह कनि कुहाड़उ सिरि घडउ वासउ मकि यलाह।—डोना०, पृ० १५६।

कुहाड़ा—सञ्ज्ञा पुं [हि० कुल्हाड़ा] [सञ्ज्ञा स्त्री कुहाड़ी] कुहार। परशु। उ०—(क) कभी तोड़ा म न गड पकड़े पाँवो रान। जान कुहाड़ा कर्म बन, काटि किया मंदान।—कबीर सा० सं० भा० १, पृ० २६। (ख) गव्व कुहाड़ी सूद सौंनो सुकृत करि फिरसान। नान निज नए बहन ने भूष दुख नवन।—राम०, धर्म० पृ० ११३।

कुहाना—क्रि० प्र० [सं० क्रीडन, प्रा० कोहन] रिसाना। नाराज होना। लडना। उ०—(क) आप कुहाय मंदिर कइ सिंह जान गो मोन।—जायसी (शब्द०)। (ख) तुम्हहि कुहाय परम प्रिय ग्रहई।—तुलसी (शब्द०)।

कुहारा—सञ्ज्ञा पुं [सं० कुहार] [स्त्री कुहारि, कुहारी] कुल्हाड़ा। टांगी। उ०—(क) इन्द्रिय स्वाद त्रिवस निनिवासर आयु अपनवी हारयो। जल उनमेद मोन जो वपुरो, पाउं कुहारो मारयो।—सूर (शब्द०)। (ख) विरह कुहारी तन बहै धावन बाँधे रोह।—कबीर (शब्द०)। (ग) कविरा यह तन बन भया करम जो भया कुहारि।—कबीर (शब्द०)।

कुहासा—सञ्ज्ञा पुं [सं० कुहेडी] कुहरा। कुहेमा।

कुहिर—सञ्ज्ञा पुं [हि०] दे० 'कुहरा'।

कुहिरा—सञ्ज्ञा पुं [हि० दे०] कुहरा।

कुही^१—सञ्ज्ञा स्त्री [कुहि=एक पक्षी] एक प्रकार की शिकारी चिड़िया जो बाज से छोटी होती है। कुहर। उ०—(क) वह कुही बाज सिञ्चान सँव लगर लाग लगत फिरे।—पृ० रा० (उ०), पृ० ११६। (ख) नीबीर नीनी निपट दीठि कुही लीं दोरि। उठि ऊँचे नीचे दियो मन कुलग नकमोरि।—विहारी (शब्द०)।

कुही^२—सञ्ज्ञा स्त्री [फा० कोही=पहाड़ी] घोड़े की एक जाति। टाँगन। उ०—नूरको ताजी कुही देश खजारी इनकी। अरबी एरावी र पर्वती कच्छी यलकी।—सूदन (शब्द०)।

कुहु—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] दे० 'कुह'। उ०—मनइ विद्यापति सुनह अभयपति कुकु निकट पनिनाने।—विद्यापति, पृ० ८८।

कुहुक—सञ्ज्ञा पुं [अनु०] पक्षियों का मुर स्वर। पाँच।

कुहुकना—क्रि० प्र० [हि० कुहुक + ना (प्रत्यय)] पक्षियों का मधुर स्वर में बोलना। कुहुकना। उ०—कुह कुह कोकिल कुहुक रहे ये।—सदल मित्र (शब्द०)।

वर्ष भर में बीतती हैं वे एक युगक कहलाते हैं। कहीं कहीं, जैसे चीन में, ऐसे कीड़े भी पाए जाते हैं जिनकी वर्ष भर में दो पीढ़ियाँ हो जाती हैं। ऐसे कीड़ों को द्वियुगक कहते हैं। बहुत से देशों में शियुगक और चतुर्गुणक कीड़े तक मिलते हैं। विशेष दे० 'रेशम'।

२ रेशम का कोया। उ०—अरे हाँ पलटू कुसवारी में कीटहि चारा देत है।—पलटू, पृ० ६८।

कुसवाहा—सझा पुं० [हिं०] हिंदुओं में तरकारी, सब्जी आदि पंदा करनेवाली जाति। कोइरी।

कुसाँव(५)—सझा पुं० [सं० कुशाम्ब] दे० 'कुशाव'।

कुसाइत—सझा स्त्री० [सं० कु + अ० सायत] १. बुरी साइत। बुरा मुहूर्त। कुसमय। उ०—न जानिये आज किस कुसाइत में घर से निकले कि हाथ गरम होना कैसा, एक फूटी झुकी से भी भेट न हुई।—सौ अजान० (शब्द०)। २. अनुवयुक्त समय। वेमोका।

कुसाखी(५)—सझा पुं० [सं० कु + शाखिन = वृक्ष] बुरा पेड़। कुवृक्ष। उ०—सठ सुधरे सतसग ते, गए बहुत बुध भावि। जैसे मलय प्रसंग ते चदन होहि कुसाखि।—वीनदयानु (शब्द०)।

कुसाद(५)—वि० [हिं० कुसावा] दे० 'कुशादा'। उ०—देवे मँहे कुसाद खाय मे तग है।—पलटू, पृ० ७७।

कुसारी—सझा स्त्री० [हिं० कुसवारी] दे० 'कुसवारी'।

कुसाव(५)—सझा पुं० [सं० कच्छ] कुच्छाव। कच्छी घोड़े। उ०—गज्जनेस अवदेश साहि पल्लान कुसाव।—पृ० २० (उ०), पृ० २८६।

कुसिया—सझा स्त्री० [हिं० कुसी + या] दे० 'कुसी'। उ०—वे धरती माता की छाती में कुसिया घुसेडकर पीडा नहीं देना चाहते।—शुक्ल अभि० ग्र०, पृ० ४०।

कुसियार—सझा पुं० [देश०] एक प्रकार की ईख जो मोटी, सफेद और नरम होती है। इसमें रस अधिक होता है। इसे विशेषकर लोग चूसने के काम में लाते हैं, इससे गूड नहीं बनते। यून। उ०—माडी भर जोधरी, पोरिसकुसियारे, जल्दी जल्दी बढ़ो भोजली होकर हुसियारे।—शुक्ल अभि० ग्र०, पृ० १३८।

कुसियारी—सझा पुं० [हिं०] दे० 'कुसवारी'।

कुसी^१—सझा स्त्री० [सं० कुशी] हन की फाल।

कुसी^२(५)—सझा स्त्री० [फा० कुशी] इच्छा। खुशी। उ०—विदर विदर जाणै नहीं, मादर विदरा भून। रा खँगणत रगरा दिलरी कुसी डुकूल।—वांकी० ग्र०, भा० २, पृ० ८५।

कुसीद^१—सझा पुं० [सं०] [वि० कुसीदिक] १. व्याज पर रुपया देने की रीति। सूद। व्याज। बृद्धि। २. व्याज पर दिया हुआ धन।

यौ०—कुसीदजीवी। कुसीदपथ। कुसीदवृद्धि।

३ रक्त चंदन। ४ सूद या व्याज लेनेवाला व्यक्ति। सूदखोर [को०]।

कुसीद^२—वि० आलसी। सुस्त। अकर्मण्य [को०]।

कुसीदजीवी—सझा पुं० [सं० कुसीदजीविन्] सूदखोर [को०]।

कुसीदपथ—सझा पुं० [सं०] १. सूद पर रुपया देना। २. वह सूद या व्याज जो ५ प्रतिशत से अधिक हो [को०]। ३. व्याज। सूद [को०]।

कुसीदवृद्धि—सझा स्त्री० [सं०] ऋण का व्याज [को०]।

कुसीदा—सझा स्त्री० [सं०] ऋण देनेवाली स्त्री। व्याज पर रक्का देनेवाली स्त्री [को०]।

कुसीदायी—सझा स्त्री० [सं०] महाजन की या व्याज पर रुपए देनेवाले की पत्नी [को०]।

कुसीदिक—वि०, सझा पुं० [सं०] सूद पर रुपया देनेवाला। महाजन।

कुसीदी—वि०, सझा पुं० [सं० कुसीदिन्] महाजन या सूदखोर [को०]।

कुसीनार—सझा पुं० [हिं०] २० 'कुशीनार'।

कुसुव—सझा पुं० [सं० कुसुम्भ या कुसुम्बक] एक बड़ा वृक्ष जो भारत, वरमा और चीन में होता है।

विशेष—इसकी लकड़ी कड़ी और मजबूत होती है और कोल्हू का जाठ और गाड़ियाँ बनाने के काम में आती है। इसकी लाख बहुत अच्छी होती है और अधिक दामों पर बिकती है। इसके फल खाए जाते हैं और बीजों से तेल निकलता है, जो जलाने, खाने और औषध के काम में आता है। इसकी पत्तियाँ ८-१० अंगुल लंबी होती हैं और सीके में दो दो आंगुलें सामने लगती हैं। फूल चपा के फूल के रंग के होते हैं। इसमें दो अंगुल लंबे, नुकीले, चिकने फल लगते हैं जो त्वार कांतिक में पकते हैं। जहाँ ये पेड़ अधिक होते हैं, जैसे अवध में वहाँ इनकी पत्तियाँ गरमी में चोपायो को खिलाई जाती हैं।

कुसु विया—सझा स्त्री० [हिं० कुसुं + विया (प्रत्यय)] दे० 'कुसुव'।

कुसुभ—सझा पुं० [सं० कुसुम्भ] १. कुसुम। बर्रें। अग्निशिखा। २. केसर। कुमकुम। ३. तपस्वी का जनपात्र। ४. स्वर्ण। सोना। ५. वाह्य प्रेम। ऊपरी या दिखावटी प्रेम [को०]।

यौ०—कुसुभराग।

कुसुभला—सझा स्त्री० [सं० कुसुम्भला] दाहलदी [को०]।

कुसुभा^१—सझा पुं० [सं० कुसुम्भ] १. कुसुम का रंग। २. अग्नी और भाग के योग से बना हुआ एक मादक द्रव्य।

कुसुभा^२—सझा स्त्री० [सं० कुसुम्भा] आपाढ़ शुचन पक्ष की छठ।

कुसुभी—वि० [सं० कुसुम्भ] कुसुम के रंग का। लाल। उ०—(क) मुख तेंवोल सिर चीर कुसुभी। कानन कनक जडाऊ खुभी।—जायसी (शब्द०)।

कुसुम^१—सझा पुं० [सं०] [वि० कुसुमित] १. फूल। पुष्प। २. वह गद्य जिसमें छोटे छोटे वाक्य हों। जैसे—हे राम! दास पर दया करो। ३. आँख का एक रोग। ४. जँतियों के अनुसार वर्तमान अवसापणी के छठे अर्हत् के गणधर। ५. एक राजा का नाम। ६. मासिक धर्म। रबोदर्शन। रज।

मुहा०—कुसुम का रोग = रजसाव का रोग।

७ छद में ठगण का छठा नेद, जिसमें लघु, गुण, लघु, लघु (।।।) होते हैं। जैसे,—कृपा कर'। ८ एक प्रकार का फल [को०]।

९. अग्नि का एक भेद। य रूप [को०]।

कुसुम^२—सञ्ज्ञा पुं० [कुसुम्भ, कुसुम्बक] १. २० 'कुसुव' । २. हनुमत् के मत से मेघ राग का एक पुत्र । यह पांडव जाति का राग है और इसके गाने का समय दोपहर है । ३. लात रंग । जैसे—कुसुम रंग ।

कुसुम^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुसुम्भ] एक पौधा जो पाँच ठह फुट ऊँचा होता है और जो रबी फसल के साथ खेतों में बीजो या फूनों के नये बोया जाता है । वर्रे ।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है एक जंगली और काँटेदार, और दूसरा बिना काँटे का । जंगली कुसुम की पत्तियों की नोकों पर काँटे होते हैं और उसके बीजों से तेज निकलता है । इसके फूल पीले, लाल, गुलाबी और सफेद होते हैं । दूसरी जाति में काँटे नहीं होते अथवा बहुत कम होते हैं । इसके बीजों से तेल और फलों से बढिया लाल रंग निकलता है । इसके फूल प्रायः पीले या नारंगी रंग के होते हैं । कभी कभी बंगनी या गुलाबी रंग के फूल भी पाए जाते हैं । पीले और लाल फूल वाले कुसुम खेतों में बीज और फूल के लिये और दूसरे रंग के फूल वाले कुसुम बगीचों में शोभा के लिये लगाए जाते हैं । इसकी डालियों के सिरे पर छोटा, गोल नुकीला ढोड़ निकलता है, जिसपर पतले पतले बहुत से फूल होते हैं । जो पेड़ फूल के लिये बोए जाते हैं, उनके फूल नित्य प्रातः काल चुन लिए और छाया में सुखाए जाते हैं, पर बीज के लिये बोए जाते हैं, जो पहले बूझी में ही लगे लगे सूख जाते हैं । चुने हुए फूल एक कपड़े में रखकर ऊपर से खार मिला हुआ जल गिराते हैं, जो पहले तो पीला होकर निकलता है, पर पीछे खार आदि मिलाने से वह लाल हो जाता है । इनका बीज कौलू में डालकर पेटा जाता है और उससे जो तेल निकलता है, वह खाने, जलाने और शरीर में लगाने के काम में आता है । वैद्यक में तेल को दस्तावर माना है इसके सिवा यह कई तरह से औषधियों में काम आता है और इससे मोमजामा भी बनता है ।

कुसुमकार्मुक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कामदेव ।

कुसुमकुतला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुसुम + कुतला] बेणी में पुष्प लगाने वाली स्त्री । उ०—नदन की शत शत दिव्य कुसुमकुतला । —लहर, पृ० ६६ ।

कुसुमदल—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुसुमदल] फूल की पेंखुरी या पत्ती । पुष्पदल । उ०—कवलि कुसुमदलि भीतरि जाता, दश अंगुलि के बीच समाता । —प्राण०, पृ० ६३ ।

कुसुमवन्दा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुसुम + वन्दन्] दे० 'कुसुमवाण' [को०] ।

कुसुमपञ्चक—स्त्री० पुं० [सं० कुसुमपञ्चक] कमल, अशोक, आम्र, नवमल्लिका और नीलकमल ये पाँच फूल कामदेव के वाण में कहे गए हैं [को०] ।

कुसुमपल्ली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. पाटलिपुत्र । पटना नगर । २. रजस्वला स्त्री [को०] ।

कुसुमपुर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पाटलिपुत्र । पटना का एक प्राचीन नाम ।

कुसुमवाण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कामदेव । मदन [को०] ।

कुसुमरेणु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पराग । पुष्परेणु ।

कुसुमविचित्रा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्षावृत्त जिसके प्रत्येक चरण में नगण, यगण, नगण, यगण का क्रम होता है । जैसे—नयन यही ते तुम वदनामा । हरि छत्रि देखीं किन वसु जामा । अनुजसमेता जनकदुलारी । कुसुमविचित्रा कर फुलवारी ।

कुसुमवार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुसुमवाण' [को०] ।

कुसुमसर(पुं०)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुसुमसर] कामदेव । उ०—वचन अगोचर चरित अति, नमो कुसुमसर देव । —ब्रज० ग्रं०, पृ० ९६ ।

कुसुमसायक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुसुमवाण' [को०] ।

कुसुमभस्तवक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दडक का एक भेद जिसके प्रत्येक पद में नौ या नौ से अधिक सगण होते हैं । जैसे—भजिए हर को हर को हर को हर को हर को हर को हर को हर को ।

कुसुमाजन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुसुमाञ्जन] जिस्ते का भस्म ।

कुसुमांजलि—सञ्ज्ञा स्त्री० [वि० कुसुमाञ्जलि] १. फूल के भरी हुई अजली । २. पौडशोपचार पूजन में अंतिम उपचार जिसमें देवता पर हाथ की अंगुलि में फूल भरकर चढ़ाते हैं । पुष्पांजलि । ३. न्याय का एक ग्रंथ जिसे उदयनाचार्य ने बनाया है ।

कुसुमाउह(पुं०)—स्त्री० पुं० [सं० कुसुमायुध, प्रा० कुसुमाउह] १. 'कुसुमायुध' । उ०—तसु नदन भोगी सरास, वर भोग पुरंदर । हुआ हुआसन तेजिकति कुसुमाउह सुंदर । —कीर्ति०, पृ० १० ।

कुसुमाकर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वसन । २. छप्पय का एक भेद जिसमें ६ गुरु और १४० लघु अर्थात् कुल १४६ वर्ण या १५२ मात्राएँ अथवा ६ गुरु, १३६ लघु, कुल १४२ वर्ण या १४८ मात्राएँ होती हैं । ३. वाग । वगीचा । वाटिका । उ०—अब फूल रहे कुसुमाकर मैं सु कह पहचान की वास नहीं । —घनानंद, पृ० ९६ ।

कुसुमागम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वसन ।

कुसुमादापि—क्रि० वि० [सं० कुसुमात् + अपि] फूल से भी । शु०—वह शोभा पात्र नहीं कुसुमादपि मृदुल गात्र । —ग्राम्या, पृ० २० ।

कुसुमाविप, कुसुमाधिराज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ चम्पा का वृक्ष २. चपा का पुष्प [को०] ।

कुसुमायुध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कामदेव । ई०—प्रियवर' । मैं तब हृदय की नहीं जानती बात । सतापित करता मुझे कुसुमायुध दिन रात । —शकु०, पृ० १३ ।

कुसुमाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चोर ।

कुसुमावचाय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पुष्पो का चयन । फूलों का चुनना [को०] ।

कुसुमावतंसक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुसुम + अवतंसक] फूलों का गजरा ।

२. कुसुमाभरण [को०] ।

कुसुमावलि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] फूलों का गुच्छा । फूलों का समूह ।

कुसुमासव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. फूल का रस । मकरद । २. मधु । पुष्पमधु ।

कुसुमित—वि० [सं०] फूला हुआ । पुष्पित ।

से यह विदित हुआ कि कुशिक वंश के द्वारा उनके वंश में क्षत्रिय धर्म का संचार होगा, तब उन्होंने कुशिक वंश को भस्म करना विचारा और वे राजा कुशिक के पास गए। बहुत दिनों तक अनेक प्रकार के कष्ट देने पर भी जब राजा और रानी ने उन्होंने शाप देने के लिये कोई छिद्र न पाया तब उन्होंने प्रसन्न होकर राजा कुशिक को वर दिया कि तुम्हारा पौत्र ब्राह्मणत्व लाभ करेगा।

३ कुशिक वंश का पुष्प। ४. हल की कुसी। फाल। ५ वहेडा ६ साल। साखू। ७. तेल की तलछट।

कुशिक^३—वि० [सं०] जिसकी आँखें टेढ़ी मेढ़ी हो। ऐंचालाना।

कुशित—वि० [सं०] जल मिला हुआ। जलमयुक्त [को०]।

कुशिवा^७—सद्वा श्री० [सं० कु + शिवा] अमंगल सूचित करनेवाली सिमारिन। उ०—मुख में उलका लए फिरति हैं कुशिवा कारी।—श्यामा०, पृ० ५।

कुशी^१—सद्वा पुं० [सं० कुशिन] १ वह जिसके हाथ में कुश हो।

कुशाला या कुशधारी व्यक्ति। २. वाल्मीकि ऋषि।

कुशी^२—वि० १ कुश का बना हुआ। ३ जल से युक्त [को०]।

कुशी^३—सद्वा श्री० [सं०] १ हल की फाली। २ एक प्रकार की दर्वी।

कुशीद—सद्वा पुं० [सं०] दे० 'कुसीद'।

कुशीनगर—सद्वा पुं० [सं०] दे० 'कुशीनार'।

कुशीनार—सद्वा पुं० [सं० कुशिनगर] वह स्थान जहाँ साल वृक्ष के नीचे गौतमबुद्ध का निर्वाण हुआ था। यह स्थान गोरखपुर जिले में है और इसे आजकल कसया कहते हैं।

कुशीलव—सद्वा पुं० [सं०] १ कवि। चारण। २ नाटक खेलने-वाला। नट। ३ गर्वया। ४ वाल्मीकि ऋषि का एक नाम। ५ वार्ताप्रसारक। सवाददाता [को०]। ६ गण्य हाँकनेवाला व्यक्ति [को०]।

कुशुभ—सद्वा पुं० [सं० कुशुम्भ] १ सन्यासी का कमंडलु। २ जल का पात्र [को०]।

कुशूल—सद्वा पुं० [सं०] १ अन्न रखने का घेरा। कोठला। कोठार। डेहरी।

यी०—कुशूलधाय। कुशूलधान्यक।

२ तुपाग्नि। ३ कड़ाही। ४ एक राक्षस। ५ बुरी पीड़ा। बुरा दर्द।

कुशूलधान्यक—सद्वा पुं० [सं०] गृहस्थों का एक भेद। वह गृहस्थ जिसके पास तीन वर्ष तक के लिये खाने भर को अन्न संचित हो।

कुशेश^७—सद्वा पुं० [सं० कुशेशय] दे० 'कुशेशय'।

कुशेशय—सद्वा पुं० [सं०] १ पद्म। कमल। २ सारस। ३ कनक चपा। कनिशारी। ४ कुशद्वीप का एक पर्वत।

कुशोदक—सद्वा पुं० [सं०] (दान आदि के लिये हाथ में लिया हुआ) कुश मिल जल।

कुशोदका—सद्वा श्री० [सं०] एक देवी का नाम।

कुशतमकुशना—सद्वा पुं० [फा० कुशती] उठापटक। गुत्थमगुत्था। कुशी। मुठभेड़। लड़ाई।

कुशना सद्वा पुं० [फा० कुशतह] १ वह गम्भ जो घातुओं को रासायनिक क्रिया में फूँककर प्रनाया जाय। गम्भ। जैसे—अवरक का कुशना। चाँदी का कुशना। सोने का कुशना। २ वह जो मार डाला गया हो। निह्न। ३ लाश। मृत शरीर [को०]।

कुशती—सद्वा श्री० [फा०] दो आदमियों का परस्पर एक दूसरे को पलपूक पछाड़ना या पटने के लिये लड़ना। मल युद्ध। पकड़।

यी०—कुशतीवाजी = कुशती लड़नेवाला।

किं० प्र०—लड़ना।—जीतना।—हारना।—करना।—होना।

मुहा०—कुशती में बढ़ा रचना = कुशती में जीत होना। कुशती बराबर रहना या छूटना = कुशती में किसी का न हारना। दोनो पक्षों का बराबर रहना। कुशती मारना = कुशती जीतना। कुशती में दूसरे को पछाड़ना कुशती बदना = कुशती लड़ने का निषेध करना। कुशती माँगना = (किसी को) अपने साथ कुशती लड़ने के लिये कहना। कुशती लड़ना = (किसी को) शिता देने के लिये (उसमें) लड़ना। कुशती खाना = कुशती में हार जाना। कुशतमकुशना = मुठभेड़। लड़ाई।

कुशतीवाज—वि० [फा० कुशतीवाज] कुशती लड़नेवाला। लड़ता। पहनवान।

कुशतीखून—सद्वा पुं० [फा०] खूनखरापा। मारकाट। रक्तपात। [को०]।

कुपन वि० [सं०] दे० 'कुशल' [को०]।

कुपाकु^१—सद्वा पुं० [सं०] १ सूर्य। दिनकर। २ अग्नि। आग। ३ वानर। बदर। कपि [को०]।

कुपाकु^२—वि० १ जलता हुआ तप्त। २ बुरा। खराब। धुँसित [को०]।

कुपित—वि० [सं०] जलमिश्रित। पानी मिला हुआ [को०]।

कुपीतक—सद्वा पुं० [सं०] १. एक ऋषि का नाम। २ एक पक्षी।

कुपीद^१—सद्वा पुं० [सं०] दे० 'कुसीद' [को०]।

कुपीद^२—श्री० तटस्थ। उदासीन [को०]।

कुपूभ—सद्वा पुं० [सं० कुपुम्भ] कीड़ों की वह यँली या कोश जिसमें उनका विष रहता है।

कुण्ड—सद्वा पुं० [सं०] १ कोढ़ २ कुट्ट नामक ओषधि। ३ कुड़ा नामक वृक्ष। ४ निनंब का गड्ढा [को०]।

कुण्डकेतु—सद्वा पुं० [सं०] भुईं खेवसा नाम की लता। माकंडिका। भूमपावृक्ष।

कुण्डगधि—सद्वा श्री० [सं० कुण्डगन्धि] एनुपा।

कुण्डघ्न—सद्वा पुं० [सं०] हितावली नाम की ओषधि।

कुण्डघ्नी—सद्वा श्री० [सं०] कठूमर। काकोदुबरिका।

कुण्डनाशन—सद्वा पुं० [सं०] क्षीरीश नामक वृक्ष [को०]।

कुण्डसूदन—सद्वा पुं० [सं०] अमलतास।

कुण्डहता—सद्वा पुं० [सं० कुण्डहन्तृ] हस्तिकंद नामक ओषधि [को०]।

कुण्डहन्त्री—सद्वा श्री० [सं० कुण्डहन्त्री] बकुबी [को०]।

कुण्डहृत्—सद्वा पुं० [सं०] १ खँर का पेड़ २ विड्खदिर। ३ कुण्डवायक।

कुष्ठा- सज्ञा ली० [म०] टोकरी का मुँह ।

कुष्ठारि- सज्ञा पुं० [सं०] १. अरुणपत्र । २. गधक । ३. परवल ।
४. दे० कुष्ठहृत् ।

कुष्ठी- सज्ञा पुं० [सं० कुष्ठिन्] [ली० कुष्ठिनी] वह जिसे कोष्ठ हुआ हो । कोठी ।

कुष्मन्- सज्ञा पुं० [सं०] १. कर्तन । काटना । २. पत्र । पत्ता [ली०] ।

कुष्मांड- सज्ञा पुं० [सं० कुष्माण्ड] ६. कुम्हड़ा । २. एक प्रकार के देवता जो शिव के अनुचर हैं । ३. जरायु । गर्भस्थली ।

पर्मा- कुष्मांड नवमी = कार्तिक शुक्ल नवमी । इस दिन कुम्हड़े में म्यर्ष आदि रखकर दान करते हैं ।

कुष्मांडक- सज्ञा पुं० [मं० कुष्माण्डक] दे० 'कुष्मांड' [ली०] ।

कुष्मांडी- सज्ञा ली० [सं० कुष्माण्डो] १. पार्वती का नाम । २. एक ऋचा । दे० 'कूष्मांडो' । ३. यज्ञ में प्रयुक्त क्रिया वा कार्य ।
४. कार्वाह । कुम्हड़ा [ली०] ।

कुसंग- सज्ञा पुं० [सं० कुसङ्ग] बुरे लोगों का साथ । बुरी सोहवन ।
उ०- सपजइ बिनसइ ज्ञान जिमि पाइ कुसंग सुसंग ।-मानस, ४. १५ ।

कुसंगति- सज्ञा ली० [सं० कुसङ्गति] बुरी का संग । बुरे लोगों के साथ उठना बैठना । उ०- को न कुसंगति पाइ नसाई ।
-मानस, २।२४ ।

कुसंस्कार- सज्ञा पुं० [सं०] अतःकरण में अयथार्थ या निषिद्ध बात का प्रभाव जिससे बुद्धि ठीक निश्चय न कर सके या मन अच्छे कामों की ओर न जाय । चित्त में बुरी बातों का जमना । बुरा संस्कार ।

कुस०- सज्ञा पुं० [सं० कुशा] दे० 'कुश' । उ०- दुरवासा दुरजोधन पटयो पाइव अहित विचारी । सक पत्र लं सर्व अवाए न्हात भजे कुस डारी ।-सूर०, १। १२२ ।

कुसगुन- सज्ञा पुं० [सं० कु + हि० सगुन] १. बुरा सगुन । असगुन । कुलक्षण । उ०- कुसगुन लक्ष अवघ अति सोकू ।-तुलसी (शब्द०) ।

कुसद्व०- सज्ञा पुं० [सं० कुशद्व] बुरे शब्द । उ०- उजहू कुसद्व वालु सुन वानी, अपने मारग चलिये । जग० वानी, पृ० २४ ।

कुसमय- सज्ञा पुं० [सं०] १. बुरा समय । २. वह समय जा किसी कार्य के लिये ठीक न हो । अनुपयुक्त अवसर । ३. विपत्त स प्राप्ति या पीछे का समय । ४. सकल का समय । दुख के दिन ।

कुसमल०- सज्ञा पुं० [सं० कुसमल] ४०. कश्मल । उ०- सकल भुवन सब आत्मा, निविष कारि हरि लइ । पढ़दा ह सा हरि कार, कुसमल रहण न दइ ।-दाद०, पृ० ४५२ ।

कुसमाजु०- सज्ञा पुं० [सं० कु + समाज] बुरा समाज । बुरे लोगों का साथ या साहचर्य । उ०- बिगरी जनस जनक की पुषर अही आबु । दाहि राम का, नाम जप तुलसा राज कुसमाजु ।-तुलसी ग्रं०, पृ० ८८ ।

कुसमेकु०- सज्ञा पुं० [सं० कुसुमेकु] कामदेव । पुष्पधन्वा । उ०- धूँह अलवाराल वदन, मोह चढ़ो जमान । जाल रोपि कुसमेकु, जनु, मारन चाहति प्रान ।-चित्रा०, ४५ ।

कुसवारी- सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कुसवारी' ।

कुसर^१- सज्ञा पुं० [देश०] पानीवेल या मूस नामक जल की जड़ जो दवा के तौर पर काम में आती है ।

कुसर^२०- वि० [सं० कुशल] दे० 'कुशल' । उ०- तुमरी कुसर कुमर मदा ब्रज में नित है हो ।-घनानंद, पृ० १६३ ।

यो०- कुसरखेम = कुशलखेम । उ०- ब्रज में कुसरखेम ती आहि । कारन कवन कहह किन ताहि ।-नंद० ग्रं०, पृ० ३१६ ।

कुसराता०- सज्ञा ली० [हि० कुशलात] दे० 'कुशलात' । उ०- चाहे निरवाहे नित हित कुसरात को ।-घनानंद, पृ० ६२ ।

कुसरा०- वि० [मं० कुशलित्] दे० 'कुश' । उ०- गोवरधन को मूरति दुमरी । श्री गोविंद चंद हित कुसरी ।-नंद० ग्रं०, पृ० ३०६ ।

कुसल पुं०- वि० सज्ञा पुं० [सं० कुशल] दे० 'कुशल' ।

कुसलई०- सज्ञा ली० [सं० कुशल + ई (प्रत्य०)] निपुणता । चतुराई । उ०- जो कहूँ सिखई जाहि सुनेनी कला कुसलई सारी । तो मनुजन की कोन चलाई मोहित होय चतुरनुज-धारी ।-प्रताप (शब्द०) ।

कुसलछेमां कुसलछेमां- सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कुशलक्षेम' ।

कुसलाई०- सज्ञा ली० [सं० कुशल, हि० कुशल + लाई (प्रत्य०)] १. कुशलता । निपुणता । २. कुशलक्षेम । परियत । आनंद मंगल । उ०- कौसिक राउ लिए उर लाई । कहि असीस पूछी कुसलाई ।-तुलसी (शब्द०) ।

कुसलात०- सज्ञा ली० [हि०] दे० 'कुशलात' ।

कुसलायत०- सज्ञा ली० [हि० कुसल + आयत (प्रत्य०)] दे० 'कुशलता', 'कुशलात' । उ०- ता तन कुसलायत तणी बालम पूछूँ बात ।-वांकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० २५ ।

कुसली०- सज्ञा ली० [सं० कुशली] दे० 'कुशली' ।

कुसली^१- सज्ञा पुं० [हि० कुसली अथवा सं० कुश = आवरण, घोल + हि० ली (प्रत्य०)] १. आम का गुठला । २. एक पकवान जो आम की गुठला के आकार का होता है और जिसके मध्य में मोठा पुर या कूरा भरा रहता है । गाफा । पिराक ।

कुसवा- सज्ञा पुं० [सं० कुश] जड़हन का एक राग, जिसमें उसके पत्ते पीले पड़ जाते हैं, और उनका रंग खैर के ऐसा लाल हो जाता है । खैरा ।

कुसवारी- सज्ञा पुं० [सं० कुश = हि० कुश + वारी (प्रत्य०)] १. रेखम का जगली काड़ा या बर और पयासाल आदि पत्तों पर काया बनाकर उसके अंदर रहता है ।

विशेष- इस कीड़े के जीवन में चार अवस्थाएँ होती हैं, जिन्हें युग कह सकते हैं । सब के पहले यह अंड के रूप में रहता है । अंड से निकलकर यह कमला की तरह का कीड़ा हो जाता है । फिर उसमें पक्षावरण दिखाई पड़ता है और यह धीरे धीरे निकलता है । अब यह एक ऐसा निकलकर फटिगा होकर उड़ने लगता है, अंड खाता है और मर जाता है । जिन कीड़ों का ये चार अवस्थाएँ या चक्र होते हैं

कुवाच्य^१—वि० [सं०] जो कहने योग्य न हो। गदा। बुरा।

कुवाच्य^२—सज्ञा पुं० कठोर शब्द। दुर्वचन। गाली।

कुवाट^(१)—सज्ञा पुं० [सं० कपाट] क़िवाड। दरवाजा।—(डि०)।

कुवाट^२—सज्ञा पुं० [सं०] दरवाजे का पत्ता [को०]।

कुवाण^(१)—सज्ञा पुं० [सं० कृपाण] धनुष।—(डि०)।

कुवा—वि० [सं०] परनिन्दक। नीच। निम्न कोटि का [को०]।

कुवार^१—सज्ञा पुं० [सं० अश्विनो = कुवार] [वि० कुवारी] आश्विन का महीना। असोज। उ०—आइ सरद रितु अधिक पियारी। नव कुवार कानिउ उजियारी।—जायसी ग्र०, पृ० ३१०।

कुवार^२—सज्ञा पुं० [सं० कुमार] कुमार। पुत्र। उ०—फिर वदनेस कुवार विमोसु फनेपनी, रँठे इकले जाइ करन मसलति भली।—सुजान, पृ० १२।

कुवारी^१—वि० [सं० कुमारी] जिसका विवाह न हुआ हो। कुमारी। उ०—सुरनि कुवारी कन्या हँसा सँग व्याहिये।—कवीर शं०, भा० ४, पृ० ५।

कुवारी^२—वि० [हिं० कुवार] कुवार के महीने में होनेवाला। कुवार का। जैसे—कुवारी फल। कुवारी धान।

कुवासना—सज्ञा स्त्री० [सं०] दुष्ट इच्छा। बुरी इच्छा।

कुवाहुल—सज्ञा स्त्री० [सं०] ऊँट। उष्ट्र [को०]।

कुविद—सज्ञा पुं० [सं० कुविद] जुलाहा। कोरी।

कुविचार—सज्ञा पुं० [सं०] दुष्ट विचार। बुरा विचार।

कुविचारी—वि० [सं० कुविचारिन्] [स्त्री० कुविचारिणी] बुरे विचार वाला। जिसके विचार बुरे हो।

कुविसन—सज्ञा पुं० [सं० कु + विसन] बुरा व्यसन। बुरी आदत। पाप बर्म। उ०—कुविसन करै कुसगति जाइ। खोवै दास अमल बहु खाइ।—रस०, पृ० ३२।

कुवेणी—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कुवेणी' [को०]।

कुवेणी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. तुरत पकड़ी गई मछलियों के रखने की टोकरी। मछली रखने की डलिया। २. बिना तरीके बँधी हुई वेणी। सिर के बेतरतीब केशगुच्छ [को०]।

कुवेर^१—सज्ञा पुं० [सं०] १. एक देवता, जो इन्द्र की नौ निधियों के भडारी और महादेव की के मित्रसमझे जाते हैं।

विशेष—यह विद्युत्त ऋषि के पुत्र और रावण के सौतेले भाई थे। इनकी माता का नाम हलविता था। कहते हैं, इन्होंने विश्वकर्मा से लका बगवाई थी। पर जब रावण ने इन्हें वहाँ से निकाल दिया तब इनके तपस्या करने पर ब्रह्मा ने इन्हें देवता बनाकर उत्तर दिशा का राज्य दे दिया और इन्द्र का भडारी बना दिया। यह समस्त संसार के स्वामी समझे जाते हैं। इनके एक आँख तीन पैर और आठ दाँत हैं। देवता होने पर भी इन का वही पूजन नहीं होता। कोई कोई इन्हें पुलस्त्य ऋषि का भी पुत्र बताते हैं।

यो०—कूवेराचल। कूवेराद्रि। कूवेरदिशा = उत्तरदिशा। कूवेर-वाधव = शिव।

पर्या०—यवकसज्ञा। यक्षराज। गृह्यकेशवर। मनुष्यधर्मा।

घनद। राजराज। घनाद्रिप। किन्नरेश। वैश्रवण। नर-बाहन। यज्ञ। एकपिंग। ऐलविल। श्रीद। पुण्यजनेश्वर। हर्यंस। अलकाधिप।

२. जैन मत में वर्तमान अवसर्पिणी (कालगति) के १६वें अर्हत् का एक उपामक। ३. तुन का पेड़

कुवेर^२—वि० १. बुरा। खराब। २. बुरे या बेशर्मे होठवाला [को०]।

कूवेराचल—सज्ञा पुं० [सं०] कैलाश पर्वत का एक नाम।

कूवेराद्रि—सज्ञा पुं० [सं०] कैलाश पर्वत।

कूवेल—सज्ञा पुं० [सं०] पत्त। कमल। पद्म [को०]।

कुव्वत—सज्ञा स्त्री० [अ० कुव्वत] 'दे० 'कूवत'। उ०—पंडित कहे आई मौत गई कुव्वत अकल की।—दमिखनी०, पृ० ४७।

कुशडिका—सज्ञा स्त्री० [सं० कशडिका] दे० 'कुशकडिका'।

कुश^१—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुशा, कुशी] १. काँप की तरह की एक पवित्र और प्रसिद्ध घास। दाभ। डाम। दम। उ०—कुश किसलय साधरी सुझाई। प्रभु सग मजु मनोज तुराई।—तुलसी (शब्द०)

विशेष—इसकी पत्तियाँ नुकीली, तीखी और कड़ी होती हैं। प्राचीन काल में यज्ञों में इसका बहुत उपयोग होता था। इसकी रस्सियाँ ईंधन लपेटने, जुआ बाँधने आदि कामों में आती थीं। अब भी कुश पवित्र माना जाता है और कर्मकांड तथा तर्पण आदि में इसका उपयोग होता है।

पर्या०—कुश। दर्न। पवित्र। याज्ञिक। बर्हि। ह्रस्वगर्भ। कुतुप। शूङ्गप्र।

२. जन। पानी। ३. एक राजा जो उपरिचर वसु का पुत्र था। ४. रामचंद्र का एक पुत्र। ५. पुराणानुसार सात द्वीपों में से एक द्वीप। ६. बलाकाश्व का पुत्र। ७. फाल। कुशिया। कुसी (हल की)।

कुश^२—वि० १. कुत्सित। नीच। २. उन्मत्त। पागल।

कुशकडिका—सज्ञा स्त्री० [सं० कुशकण्डिका] वेदी पर या कुंड में अग्निस्थापन करने की आनुष्ठानिक क्रिया, जिसका विधान ऋग्वेदियों, यजुर्वेदियों और सामवेदियों के लिये भिन्न भिन्न है। इसमें होम करनेवाला कुशासन पर बैठ दाहिने हाथ में कुश लेकर उसकी नोक से वेदी पर रेखा खींचता जाता है।

कुशकेतु—सज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मा। २. राजा कुशध्वज।

कुशचीर—सज्ञा पुं० [सं०] कुश का बना हुआ वस्त्र [को०]।

कुशद्वीप—सज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सात द्वीपों में से एक, जो चारों ओर घृणगमुद्र से घिरा है।

कुशध्वज—सज्ञा पुं० [सं०] १. हस्वरोम राजा के पुत्र और सीरध्वज जनक के छोटे भाई। इनकी कन्याएँ मांडवी और श्रुतकीर्ति भरत और शत्रुघ्न को व्याही थीं। २. एक ऋषि जो बृहस्पति के पुत्र और वेदवती के पिता थे।

कुशन—सज्ञा पुं० [अ०] मोटा गद्दा।

कुशनाभ—सज्ञा पुं० [सं०] अयोध्या के राजा कुश का पुत्र।

कुशपा—सज्ञा पुं० [सं०] जल पीने का पात्र।

कुशपत्रक—सज्ञा पुं० [सं०] फोडा चोरने का एक औजार (बंदक)।

कुशपुष्प—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अदिपूर्ण [को०] ।

कुशपुष्पक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का विष [को०] ।

कुशप्लवन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक तीर्थ जिसका उल्लेख महामारत में आया है ।

कुशमुद्रिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कुश की बनी हुई अंगूठी । पवित्री । पेंती । उ०—कुशमुद्रिका समिधे जुवा कुश औ कमडल को लिये ।—केशव (शब्द०) ।

कुशय—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] पानी पीने का बरतन । आबखोरा [को०] ।

कुशल^१—वि० [सं०] [स्त्री० कुशला] १ चतुर । दक्ष । प्रवीण ।

उ०—पर उपदेश कुशल बढ़तेरे ।—तुलसी (शब्द०) । २ श्रेष्ठ । अच्छा । भला । ३ पुण्यशाल । ४ प्रसन्न । खुश [को०] ।

कुशल^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुशला, कुशली] १ क्षेम । मंगल । खरियत । रात्री खुशी । उ०—प्रब कह कुशल वाति कहें ग्रह^१ । विहंसि वचन अंगद अस कहई ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—कुशलक्षेम । कुशलमंगल ।

२ वह निमके हाथ में कुण हो । ३ शिव का एक नाम । ४ कुश द्वीप का निवासी । ५ गुण [को०] ६ चतुरता । चतुराई [को०] ।

कुशलकाम—वि० [सं०] कुशल की कामना रखनेवाला । राजीवशी चाहनेवाला [को०] ।

कुशलक्षेम—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ रात्री नृमी । खैर आफिन ।

कुशलता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ चतुराई । निपुणता । चालाकी । २ योग्यता । प्रवीणता । ३ क्षेम । कुशलाई [को०] ।

कुशलप्रश्न—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] किसी का कुशल मगन पूछना ।

क्रि० प्र०—कगना ।—पुछना ।

कुशलमगल—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] कुशलमङ्गल] दे० कुशलक्षेम ।

कुशलाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० कुशल] कल्याण । क्षेम । खरियत । कुशल । उ०—मेरो कह्यो नत्य कैसे जानो । जो चाहो वृज की कुशलाई तो गोवर्धन मानो ।—सूर (शब्द०) ।

कुशलार्थ—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कुशल + वार्ता, या संकुशल + हिं० आत (प्रत्य०)] कुशल समाचार । मगल समाचार । खरियत । उ०—(क) दच्छ न कछु पूछी कुशलागा ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) मयुक्त लक्ष्मणयोग सदैवो । मली श्याम कुशलात सुनाई सुनतों मयो अदेमो ।—सूर (शब्द०) ।

कुशली^१—वि० [कुशलित्] [स्त्री० कुशलिनी] १ कल्याणयुक्त । सकुशल । २ नीरोग । तंदुल्लस्त । ३ निम्न जाति का । छोटी जाति का [को०] ।

कुशली^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ अश्वमेध का भावूटा नामक वृक्ष । २ नोटा या अश्वमेधी नामक साग । क्षुद्राम्बुकी ।

कुशवन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक वन जो राज ने गोकुल के पास है ।

कुशवारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुशवरी' ।

कुशस्तरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] होम करने के पहले यज्ञभूमि या यज्ञकुंड के चारों ओर कुश बिछाने का काम । कुशरुडिका ।

२-६१

कुशस्थल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] उत्तर भारत के एक स्थान का नाम जिसे संभवतः कन्नौज कहते हैं ।

कुशस्थली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ द्वारका का एक नाम । २ कुशावती नामक नगरी जो विष्णु पर्वत पर थी और जहाँ रामचंद्र जी के पुत्र कुश राज्य करते थे ।

कुशहस्त—वि० [सं०] श्राद्ध, तर्पण या दानादि करने के लिये उद्यत । कुशागरीय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुशाङ्गरीय] कुश की बनी अंगूठी । पेंती पवित्री [को०] ।

कुशागुलीय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुशाङ्गुलीय] कुशमुद्रिका । पवित्री [को०] ।

कुशाव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुशाम्ब] निमि बंशीय राजा कुश का पुत्र जिसने पिता के आदेश से कौशावी नगरी बनाई थी ।

कुशानु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुशाम्बु] १ दे० 'कुशाव' । २ कुश के अगले भाग से टपकता हुआ पानी ।

कुशा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ कुण । २ रस्सी । ३ एक प्रकार का मोठा नींबू । ३ लगाम । बला [को०] । ४ लकड़ी का टुकड़ा । काष्ठखंड [को०] ।

कुशाकर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुश + आकार] यज्ञ की प्रगति [को०] ।

कुशाक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] वानर । वंदर [को०] ।

कुशाग्र—वि० [सं०] कुश की नोक की तरह तीखा । तीव्र । तेज । मुकीला । जैसे—कुशाग्रबुद्धि = तीव्र बुद्धि रखनेवाला ।

कुशादगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] फैलाव । विस्तार । चौड़ाई ।

कुशादा—वि० [फा०] कुशादह] [सञ्ज्ञा] कुशादगी] १. खुला हुआ । आवरणरहित । २ विस्तृत । लंबा चौड़ा । बुनता ।

मुद्रा०—कुशादा करना = (१) खोलना । (२) फैलाना । चौड़ा करना ।

कुशादादिल—वि० [फा०] विशाल हृदयवाला । महान् ।

कुशारणि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दुर्वाभा श्लिषि ।

कुशावनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] रामचंद्र जी के पुत्र कुश की राजधानी का नाम ।

कुशावर्त—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १. हरिद्वार के पास एक तीर्थ का नाम । २ एक श्लिषि का नाम ।

कुशाश्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] इक्ष्वाकुवंशी एक राजा जिसकी राजधानी विशाल थी । यह सहदेव का पुत्र और सोमदत्त का पिता था ।

कुशासन^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुशा + आसन] कुश का बना हुआ आसन । कुश की चटाई ।

विशेष—आश्वो मे दान, यज्ञ, श्राद्ध, उपासना आदि के समय कुशासन पर ही बैठने का विधान है ।

कुशासन^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कु + आसन] पुरा शासन । व्यवस्थित राज्य । मन्वायुपूर्वक किया जानेवाला शासन ।

कुशिक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्राचीन प्रायद्वीप । विश्वामित्र जी इसी वन के थे । २ एक राजा जो विश्वामित्र के पितामह और गांधी के पिता थे ।

विशेष—महामारत में लिखा है कि जब च्यवन श्लिषि को ध्यान

अच्छी नस्ल का घोड़ा (को०) । ३. नाखून में होनेवाला एक रोग (को०) । ४. शक्तिपूजक (को०) ।

कुलीनक^१—सद्भा पुं० [सं०] जगली मूंग या मुद्ग (को०) ।

कुलीनक^२—वि० उच्च वंश में उत्पन्न । कुलीन (को०) ।

कुलीनस—सद्भा पुं० [सं०] [सं०] पानी । जल । वारि (को०) ।

कुलीर—सद्भा पुं० [सं०] १. केकड़ा । २. कर्क र'शि (को०) ।

कुलीरक—सद्भा पुं० [सं०] दे० 'कुलीर' (को०) ।

कुलीश—सद्भा पुं० [सं०] दे० 'कुलिश' (को०) ।

कुलु—सद्भा पुं० [सं०] जीम पर जमनेवाली मेल । जिह्मामल (को०) ।

कुलुवकगुजा—सद्भा स्त्री० [सं०] कुलुवकगुञ्जा । लूक । लुकाठी । उल्मुक (को०) ।

कुलुफ—सद्भा पुं० [अ० कुफल]—उाला । उ०—(क) नंना न रई रो मेरे हटके । कछु पड़ि दिये सखी यहि छोटा घूँघरवारे लटकी । कज्जल कुलुफ मेलि मंदिर मे पलक सँदुक पट भटके ।—सूर (शब्द०) । (ख) जुलुफ में कुलुफ करी है मति मेरी छनि एरी अलि कहा करो कल ना परति है ।—दीन प्र०, पृ० १० ।

कुलुसा—सद्भा पुं० [सं० कुलिश] एक प्रकार की मछली जो सिंधु, सयुक्त प्रांत, बंगाल और आसाम में पाई जाती है । लवाई में यह पाँच फुट तक होती है इसे लोग तालाबों में पालते हैं । कुरसा ।

कुलू^१—सद्भा पुं० [सं० कुलूत] कुलू नामक प्राचीन देश, जो कांगड़े के पास है ।

कुलू^२—सद्भा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़, जिसकी मुलायम छाल के पर्त निकलते हैं । गुलु ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ १०-११ इंच लंबी होती हैं और टहनियों के सिरो पर गुच्छों में होती हैं । इसके फूल छोटे छोटे और गंधकी रंग के होते हैं । यह पेड़ नेपाल की तराई, बुंदेलखंड तथा बंगाल में होता है । इसमें से एक प्रकार का गोंद निकलता है जिसे कतीरा या कतीला कहते हैं । वि० दे० 'गुलू' ।

कुलूत—सद्भा पुं० [सं०] दे० 'कुलू' ।

कुलेल—सद्भा स्त्री० [सं० कुल्लोल] क्रीड़ा । कलोल । उ०—कोउ साँग बरछीन साधि हँसि करत कुलेलन ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ११ ।

कुलेलना—सद्भा स्त्री० [सं० हि० कुलेल + ना (प्रत्य०)] क्रीड़ा करना । आमोद प्रमोद करना । उ०—देखि सरोवर हँसि कुलेली । पद्मावति संग कहहि सहेली ।—जायसी (शब्द०) ।

कुलोद्भव—वि० [सं०] १. कुलविशेष में उत्पन्न । २. कुलीन (को०) ।

कुलोपदेश—सद्भा पुं० [सं०] कुल का नाम । कुलगत नाम (को०) ।

कुलू—सद्भा पुं० [हि०] दे० 'कोट' ।

कुल्यो—सद्भा स्त्री० [हि०] दे० 'कुल्यो' ।

कुलफ—सद्भा पुं० [हि०] दे० 'कुलुफ' । उ०—कोई माल इकट्ठा करता है कोई कुंजी कुलफ लयाता है ।—राम० धर्म०, पृ० ६२ ।

कुलफ^२—सद्भा पुं० [सं०] १. एक रोग । २. गुल्फ । दन्तना (को०) ।

कुल्फी—सद्भा स्त्री० [हि०] दे० 'कुल्फी' । उ०—मेवे, फल, मिठाई, बर्फी की कुल्फी सब मेजों पर सजा दिए गए । गवन, पृ० १०३ ।

कुलमाप—सद्भा पुं० [सं०] १. कुतथी । २. उर्व । माप । ३. बोरो धान । ४. वह धन्न जिसमें दो भाग या दल हो, जैसे—चना, उद, मटर आदि । ५. वन कुलवी । ६. सूर्य का एक पारिपार्श्वक । ७. विचट्टी । ८. काँजी एक प्रकार का रोग ।

कुल्य—सद्भा पुं० [सं०] प्रतिष्ठित व्यक्ति । आदरणीय मनुष्य (को०) । २. मित्रता का प्रकाशन (समवेदना, वधाई आदि) (को०) । ३. हड्डी । अस्त्रि (को०) । ४. डलिया । छाज (को०) । ५. मास (को०) । ६. अन्न नापने का एक परिमाण या पैमाना । उ०—कुल्य अनाज नापने का एक साधन छोटी टोकरी के सदृश था ।—पूर्व०, म० पृ० १२३ ।

कुल्या—सद्भा स्त्री० [सं०] १. कृत्रिम नदी । नहर । २. छोटी नदी । नाला । ३. पनाला नाली । ४. कुलीन स्त्री । ५. जीवन्ती नामक श्रोत । ६. ग्राठ द्रोण के बराबर की एक प्राचीन तोल (को०) । ७. साध्वी स्त्री (को०) । ८. परिखा । खाई (को०) ।

कुल्यावाप—सद्भा पुं० [सं०] गुल्फाकीन भूमि नापने की एक माप ।—पूर्व० म० भा०, पृ० १२३ ।

कुल्ला—सद्भा पुं० [देशी] कठ । गला । ग्रीवा (को०) ।

कुल्ल^१—वि० [अ० कूल] सब । समस्त । पुरा । तमान । उ०—(क) मुजलिम जोरे ध्यान कुल्ल को हरि सों रहैं लं राखे ।—सूर०, १।१४२ । (ख) हँसे स्याम बलभद्र अक्कूर कुल्ली ।—पृ० रा०, ३।४७७ ।

कुल्लह—सद्भा पुं० [सं० कुलाह] दे० 'कुलाह' । उ०—रंग रंग के सजे तुरगा । कुल्लह समुद्र कुमंत सुरगा ।—हम्मौर०, पृ० ३ ।

कुल्ला^२—सद्भा पुं० [सं० कवल] [स्त्री० कुल्ली] १. मुँह को साफ करने के लिये उसमें पानी लेकर इधर उधर हिलाकर फँकने की क्रिया । गरारा ।

क्रि० प्र०—करना ।—फँकना ।—होना ।

२. उतना पानी जितना एक बार मुँह में लिया जाय ।

कुल्ला^३—सद्भा पुं० [सं० कुल्या] ईख के खेत की वह हलकी सिंचाई, जो अकुर निकलने पर होती है ।

कुल्ला^४—सद्भा पुं० [अ० कुल्लह] घोड़े का एक रंग जिसमें पीठ की रीढ़ पर बराबर काली धारी होती है । २. इस रंग का घोड़ा कुल्ला^५—सद्भा पुं० [फा० काकुल, मि० सं० 'कुतल'] [स्त्री० कुल्ली] बाल । जुल्फ । काकुल । पट्टा ।

कुल्ला^६—सद्भा पुं० [अ० कुल्लह] १. शृंग । चोट । २. किसी भी वस्तु का शीर्षभाग । ३. तलवार की मूठ । कब्जा (को०) ।

कुल्ली^१—सद्भा स्त्री० [हि० कुल्ला] १. मुँह को साफ करने के लिये उसमें पानी लेकर और इधर उधर हिलाकर फँकने की क्रिया ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

२. उतना पानी जितना एक बार मुँह में लिया जाय ।

कली

कुली^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [का० काकुल, मि० सं० कुल्ल] वाल। जुल्ल।
पट्टा। उ०—विश्वामित्र ने आकर उस यज्ञ की रक्षा के लिये
कुल्लिवाँवाला राम माँगा।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)।

कुल्लुक—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वीस। वि० दे० 'वीसिनी'।
कुल्लुक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मनुसंहिता (मनुस्मृति) के टीकाकार जो
शिवान्नर भट्ट के पुत्र थे। कुल्लुक भट्ट।

कुल्ला—सञ्ज्ञा पुं० [देशी/कुल्ल] कंठ। ग्रीवा। गला।
कुल्लक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जीम पर जमी हुई मूल। जिह्वामूल [को०]।
कुल्लइया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कुल्लही'। उ०—छोटी छोटी
सीस नदियाँ अमरावलि जनु प्राई री। तँसी तनिक कुल्लइया
तारं देवत अति सुखदाई री।—भारतेन्दु ग्रं०, भा० २,
पृ० ४४३।

कुल्लह—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुल्लह] [स्त्री० कुल्लहिया] पुरवा। चुक्कड़।
कुल्लहरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कुल्लहाडी'। उ०—काटि है जमदूत
कुल्लहरी, अइहँ नहिं होइ काम।—जग० वानी, पृ० ३०।

कुल्लहा—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कुल्लहा'।
कुल्लहाड—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'कुल्लहाड'। उ०—साखी कंध कुल्लहाड भयान,
मनक दुनिया भाग। गरीबदास शाह यो कहें बबगो प्रबकी
वार।—कबीर मं०, पृ० १२०।

कुल्लहाडी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुल्लहाडी] [स्त्री० अदपा० कुल्लहाडी] एक भोजार,
जिसमें बटई आदि पेड़ काटते और लकड़ी चीरते हैं।
कुल्लहा। टाँगा।

विशेष—यह वारह चौदह अंगुल लंबा और चार छह अंगुल
चोड़ा लोहे का होता है, जिसके एक सिरे पर, जो तीन चार
अंगुल मोटा होता है, एक लंबा, मोला छेद, ईंच सवा इंच
व्यास का होता है जिसमें लकड़ी का दस्ता लगाया जाता है,
और दूसरा सिरा पतला, लंबा और घाटदार होता है।

कुल्लहाडी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कुल्लहाडी का स्त्री० अलगा०] १. छोटा
कुल्लहाडा। कुल्लहा। टाँगी। २. वसूला (नशा०)।

कुल्लहार—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कुल्लह] वह स्थान जहाँ ईख परेने का
कोल्लू चलता है। कोल्लू चलने का स्थान। उ०—चलत
कुल्लहार जब कोल्लू पर चढ़त घाय कोउ।—प्रेमघन०,
भा० १, पृ० ४६।

कुल्लहारी—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कुल्लहाडा'। उ०—जल घोंडे में चहुँ
दिसि परयो पाउ कुल्लहारी मारी।—सूर०, १।१५२।

मुहा०—हाथ में कुल्लहारा मारना = अपने हाथों अपनी हानि
करना।

कुल्लहिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कुल्लह] छोटा पुरवा। छोटा कुल्लह।
चुक्कड़। उ०—तोरे चोच न कीर तू यह पजर है लोढ़।
बुनिहै खुने कपाट के तजि कुल्लहिया को मोह।—दीनदयालु
(शब्द०)।

मुहा०—कुल्लहिया में गुड़ फोड़ना = कोई कार्य इस प्रकार करना
जिसमें किसी को कानों कान खबर न हो। उ०—सतगुरु
कबीर विचारि कहें, क्या कुल्लह में गुड़ फोरना जी।—
कबीर० दे०, पृ० ४७।

कुल्लह—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुल्लह] एक देश का नाम जो काँगड़े के पास है।
कुल्लू।

कुल्लहैया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कुल्लही'। उ०—नददास
बलिहारी छवि पै वारी नवल पाग वनी नवल कुल्लहैया —
नद० ग्रं०, पृ० ३७३।

कुल्लग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुल्लग] सीसा नाम की धातु।

कुल्ल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कमल २. फूल।

कुल्लज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कमल से उत्पन्न। ब्रह्मा। उ०—सुत मरीचि,
नाती कुल्लज, देव दनुज के तात। तपत यहाँ परजपती, सहित
सुरन की मात।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)।

कुल्लट—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुल्लट, प्रा० कुल्लट] कुमायं। खराब रास्ता।
उ०—तिमिर वीर गवन कुल्लट। त्रिगुन तेज रवि नास।—
पृ० रा०, २५।३०८।

कुल्लत—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुल्लत, प्रा० कुल्लत] बुरी बात न कहने
योग्य अनुचित बात। उ०—बुल्लिव ब्रह्म कुमार, अस कुल्लत
किम बुझियो।—पृ० रा०, पृ० १६६।

कुल्लम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सूर्य। रवि। आदित्य [को०]।

कुल्लर्प—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक वर्षा होना। अतिवृष्टि।

कुल्लल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कुमुदिनी। कुई। २. मोती। ३. जल।
पानी। ४. साँप का पेट [को०]।

कुल्ललय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुल्ललयिनी] १ नीली कोई। कोका।
२ नील कमल। ३ भूमडल। ४. एक प्रकार के असुर।

कुल्ललयानंद—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुल्ललयानंद] संस्कृत का एक प्रसिद्ध
अलंकार ग्रंथ जिसकी रचना अप्य दीक्षित ने, जो द्रविण थे,
की थी। इनका समय १७वीं शताब्दी है।

कुल्लयापीड—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक हाथी का नाम, जिसे कसने
कृष्ण को मारने के लिये अनुपयुक्त के मंडप के द्वार पर रख
छोड़ा था। इसे कृष्णचंद्र ने मार डाला था।

कुल्लयाश्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ धुंधुमार राजा का एक नाम। २
प्रद्वेन का एक नाम। ४ अश्वध्वज राजा का नाम।
४ एक घोड़ा, जिसे ऋषियों का यज्ञ विध्वंस करनेवाले
पातालकेतु को मारने के लिये पुराणों के अनुवारसूर्यने
पृथिवी पर भेजा था।

कुल्लयित—वि० [सं०] नील कमलोंवाला। नील कमल युक्त [को०]।

कुल्लयिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] २. नीली कुई का फूल और पौधा। २
नीले कमल से व्याप्त स्थान [को०]।

कुल्लयी—वि० [सं० कुल्लयिन्] १. नील कमल से भरा हुआ कुल्लय-
वाला [को०]।

कुल्लाय—संज्ञा पुं० [सं० कूप, प्रा० कू] दे० 'कुल्लाय'।

कुल्लायी—संज्ञा पुं० [सं० कुल्लाय] जगन्नी गुलाब।

कुल्लायी—संज्ञा पुं० [कूप प्रा० कू] दे० 'कुल्लाय'। उ०—नाना
अपभ्रंश सागर हुवा, काहे के कारण रोता है कुल्लाय।—
दक्खिनी, पृ० २२।

कुल्लायक्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अयोग्य बात। दुर्वचन। गाली।

कुलराज्य—संज्ञा पुं० [सं०] किसी एक वंश के सरदारों का राज्य ।
किसी एक कुल के नायकों द्वारा चलेनेवाला शासन ।
सरदारतन ।

विशेष—चाणक्य के अनुसार ऐसे राज्य में स्थिरता रहती है ।
अराजकता का भय नहीं रहता और ऐसे राज्य को शत्रु भी
जल्दी नहीं जीत सकता ।

कुलवत—वि० [सं० कुलवन्त] [ओ० कुलवन्ति, ७ कुलवन्ती] कुलीन ।
उ०—(क) कुलवत निकारहि नारि सती । - तुलसी (शब्द०)
(ख) जोवन चचल डीठ है करे निकार्ज काज । धनि कुनवती
जो कुलधरै कै जीवन मन लाज । - जायसी (शब्द०) ।

कुलवान—वि० [सं० कुलवत्] [ओ० कुलवती] कुलीन । अच्छे वंश
का अच्छे । खानदान का ।

कुलसकुल—संज्ञा पुं० [सं० कुलसङ्कुल] एक नरक का नाम ।

कुलसध—संज्ञा पुं० [सं० कुलसद्ध] कुलीन तंत्र राज्य का शासक
महान । वि० दे० 'कुलराज्य' ।

कुलम (७) —संज्ञा पुं० [सं० कुलम] वज्र । उ०—याण भरकट हुलस
गुरज रिमसिर पड़े । भट कुलस हूत गिर जाण टोला भड़े ।
—रघु० ६०, पृ० १८४ ।

कुलशतावर ग्राम—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह ग्राम
जिसकी आबादी सौ से अधिक हो ।

कुलसन—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिट्ठिया ।

कुलस्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऊँचे कुल की नारी । साध्वी स्त्री [को०] ।

कुलस्थिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ वंश की उन्नति । २ वंशपरंपरा से
चले आती प्रथा [को०] ।

कुलह—संज्ञा स्त्री० [फा० कुलाह] १ टोपी । उ०—पीत कुलह राजै,
चूनरी सुपीत साजै, लहगा पीत, कचुकी पीत सोहै तन गोरै ।
—नद० प्र०, पृ० ३७७ । २ शिकारी । ३ चिट्ठियों की
आँखों पर का ढक्कन । टोपी । अधियारी । उ०—वात द्वाइ
कुमति हँस बोली । कुमति कुविहँग कुह जनु खोली ।—
तुलसी (शब्द०) ।

कुलहवरा—संज्ञा पुं० [फा० कुलाह + वाला] वच्चों के पढ़ाने का
एक प्रकार का कंठोप, जिसके नीचे पीछे की ओर पैर तक
लटकता हुआ लंबा कपड़ा चुनकर सिला रहता है ।

कुलहा (७) —संज्ञा पुं० [फा० कुलाह] १ टोपी । २ शिकारी चिट्ठियों
की आँख ढकने की अधियारी । ढोका । उ०—बगुला भूपट
बाज पै, बाज रहे सिर नाय । कुलहा दीने पग वधे, खोटे दे
फहराय ।—सभाविवास (शब्द०) ।

कुलही—संज्ञा स्त्री० [फा० कुलाह] वच्चों के सिर पर बने की टोपी ।
कनठोप । उ०—(क) कुलही चित्र विचित्र भगुली । निरखहि
मातु मुदित मन फुली ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) खेलत कुँवर
कनक भाँगन में नैन निरखि छवि छाई । कुनहि लसत चिर स्याम
सुभग प्रति बहु विधि सुरंग बनाई ।—सूर (शब्द०) ।

कुलहीन—वि० [सं० कुल + हीन] [वि० स्त्री० कुलहीनी] अकुलीन ।
हीन या निम्न कुल का । उ०—बँटु सभा में सो कुलहीनी ।
वेस्वा की पति साकर चीन्ही ।—स० दरिया, पृ० ४६ ।

कुलागना—संज्ञा स्त्री० [सं० कुलाङ्गना] दे० 'कुलप्रार्थी' [को०] ।

कुलागार—संज्ञा पुं० [सं० कुलाङ्गार] कुल का नाग करनेवाला ।
सत्पानाशी । उ०—ये दान्यकुब्ज कुन कुलागार । खाकर
पत्तल में करें छेद ।—अपरा, पृ० १७६ ।

कुलांच—संज्ञा स्त्री० [तु० कुलाच] १ दो ठो हाथों के बीच की दूरी ।
२ चौकड़ी । ३ छलांग । उछाल । (क) लेन कुनांच
नखो तुम प्रवही । घरत पाँव घरनी जः तरही ।—ब्रह्मण
मिह (शब्द०) । (ख) दस योजन करवीन तहँ, पंचे एक
कुलांच । मिहाएन तें प्रवनि पर पटवयो मारि तमान ।—
विश्राम (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—भरना ।—मारना ।—लेना ।

कुलांचना—क्रि० प्र० [हि०] चौकड़ी भरना । उठाना करना ।

कुलांट (७) —संज्ञा स्त्री० [तु० कुलाच] छलांग । चौकड़ी । उछाल ।
उ०—अप्रमान हृदयोंन दा विक्रम बढ़काया । करि कुनांट
अतुक मनो किलकार सुधाया ।—यूदन (शब्द०) ।

कुला^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल मँसल [को०] ।

कुला^२—संज्ञा स्त्री० [फा० कुलाह] एक प्रकार की ऊँची टोपी ।
कुनाह । उ०—उन्हे कुला लगाकर साफा बांधने में एक
असुविधा अवगत होती थी ।—जंवे देशी की ।—भाँसी०
पृ० २२४ ।

कुलाकुल—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार कुछ निरवत नक्षत्र, वार
और तिथियाँ, जैसे—आर्द्रा, मूल, प्रभिक्षित आदि नक्षत्र,
बुधवार और द्वितीया, छठ और द्वादशी आदि तिथियाँ ।

कुलाक्रम (७) —संज्ञा पुं० [सं० कुल + आक्रम] कुलमर्दा । उ०—तजि
कुलाक्रम अमिमाना, भूँटे भरमि भूलाना ।—कवीर प्र०,
पृ० १७८ ।

कुलाचल—संज्ञा पुं० [सं० कुल + अचल] दे० 'कुलपर्वन' ।

कुलाचार—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुल परंपरा से यागत आचार व्यवहार
या रीति रस्म । कुलरीति । कुलधर्म । २. वाममार्ग ।
कौलाचार [को०] ।

कुलाचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] कुलगुरु । पुरोहित ।

कुलाधि (७) —संज्ञा स्त्री० [पुं० कुल = समूह + आधि = रोग बोध]
पाग । दोष । उ०—मछरी तुरकें पकरिया, बसै गग के तीर ।
घोष कुलाधिनी भाजही, राम न कहै सरीर ।—बबीर (शब्द०) ।

कुलावा—संज्ञा पुं० [फा०] १ लोहे का जमुरका, जिसके द्वारा किवाड़
वाजू से जकड़ा रहता है । पायजा । २. मछली फँसाने का
काँटा । ३ जुलाहों के करघे की वह लकड़ी जो चकवा के
बीच लगी रहती है । ४ नाली जिसमें होकर पानी निकलता
है । मोरी ५ जजीर । सिकड़ी । उ०—लड़ करे मेराज
कुकर का खोलि कुलावा । तीसो रोजा रहै अदर में सात
रिकावा ।—पलटू०, पृ० ४३ ।

कुलाय—संज्ञा पुं० [सं०] १ शरीर । देह । जिसमें २ खोता । घोंसला ।
३ स्थान । जगह ।

कुलायिक—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पक्षिण या चिट्ठियाघर । २ पिंजर ।
पिंजड़ा [को०] ।

कुलान—नग पुं० [सं० तुल का० कुलाल] [का० कुलाली] १ मिट्टी के बरतन बनानेवाला। कुम्हार। उ०—जैसे चक्र कुलान का फिरता बहु दीर्घ। टोर छाड़ि कतहूँ न गया यह बिसव दीर्घ।—सुदर० प्र०, भा० २ पृ० ८६४।

यौ०—कुलाल चक्र=कुम्हार का चाक।

२ जगनी मुर्गी। ३. उलूक। उल्ल।

कुलालिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] चिड़ियाखाना।

कुलाली^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [पुं०] १ कुम्हार की स्त्री। कुम्हारिन। २ कुम्हार जाति की स्त्री। ३ अजन या सुरमे में प्रयुक्त होनेवाला एक प्रकार का नीला पत्थर (को०)।

कुलाली^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कल्पसाली] उलान की स्त्री। कलाली। कलारिन। उ०—भरि भरि प्याला देत कुलाली बाई भक्ति वृमारा।—चरण० बानी, पृ० १७१।

कुलाली^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [दे०] दूरवीन।—(डि०)।

कुलाह^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] भूरे रंग का घोड़ा, जिसके पैर गाँठ से सुभो तक काले हों।

कुलाह^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [का०] १ एक प्रकार की ऊँची टोपी जो फारस और अफगानिस्तान आदि में पहनी जाती है। उ०—खडा रहूँ दरवार तुम्हारे, ज्यों घर का बंदाजादा। नेनी की कुनाह खिर दीये, गले पर रहत साजा।—सतवाणी०, भा० २, पृ० १०३। २ ताज। मुकुट (को०)। टोपी (को०)।

कुलाहक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गिरगिट। कृकवाकु। प्रतिमूर्त्यक (को०)।

कुलाहल^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोलाहल] दे० 'कोलाहल'। उ०—आपुस में सब करत कुनाहल घोरी घूमरि धेनु बुलाए।—पूर० १०।४७७।

कुलिग^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुलिङ्ग] १. एक प्रकार का पक्षी। २. बिडा। गोरा ३. पक्षी चिड़िया। ४. काकड़ा। सींगी। ५. एक प्रकार का सर्प (को०)। ६. एक किस्म का चहा (को०)। ७. भूमिकूमाड। भुईं कुम्हड़ा (को०) ८. हाथी। मतगज (को०)।

कुलिग^३—सञ्ज्ञा स्त्री० एक नदी का नाम।

कुलिग^३—वि० बुरे लिए का।

कुलिगक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुलिङ्गक] बिड़ा। गोरा। पक्षी। चटक।

कुलिजन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुलञ्जन] दे० 'कुलजन'।

कुलिद—सञ्ज्ञा पुं० [पुं० कुलिन्द] १ एक प्राचीन देश जो उत्तर-पश्चिम भारत में था। कुनिद। २ उक्त देश का निवासी। ३ उक्त देश का राजा।

कुलि^३—वि० [हिं०] दे० 'कुल' उ०—त्रिविध दोष दुख दारिद्र्य बावन। कलि कुचालि कुलि कलुष नसावन।—मानस १।३५।

कुलि^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ हाथ। हस्त। कर। २ नटकटैया (को०)।

कुलिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. शिल्पकार। दस्तकार। कारीगर। २. उत्तम वंश में उत्पन्न पुरुष। ३. आठ महानागों में से एक। ४. घूँघची का पेड़। ५. तालमखाना। ६. किसी जाति या कुल का प्रधान पुरुष ७. ज्योतिष में दिन और रात का कुछ निश्चित भग्न, जो यात्रा या अन्य शुभ कर्मों के लिये

निषिद्ध समझा जाता है। ८. केकडा। कर्कट ९. स्वजन। परिजन (को०)। १०. आखेटिक। शिकारी (को०)।

कुलिज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] करज। नख (को०)।

कुलिया^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कोलिया'।

कुलिर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] केकडा। ३ कर्कट राशि (को०)।

कुलिश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ हीरा। उ०—माणिक्य मकंत कुलिश पिरोवा। चीर कोरि पच रचे सरोजा।—तुलसी (शब्द०)।

२ वज्र। बिजली। गाज। विल्ली। उ०—मयो कुलाहल अवध अति, सुनि नृप राउर सोर। विपुल विहंग बन परधो निमि, मानो कुलिस कठोर।—तुलसी (शब्द०)। ३ ईश्वरावतार राम, कृष्णादि के चरणों का एक चिह्न, जो वज्र के आकार का माना जाता है। उ०—ग्रहण चरण अकुशध्वज, कंज कुलिश चिह्न रचिर, आजत अति नूपुर वर मधुर मुखरकारी।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—कुलिशधर=वज्रधर। इद्र। ४ कुठार। ५. एक प्रकार की मछली।

कुलिशकर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुलिशधर' (को०)।

कुलिशधर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] इन्द्र। सुरराज।

कुलिशपाणि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुलिशधर'।

कुलिशनायक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रतिवध (को०)।

कुलिशासन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव का एक नाम।

कुलिशो—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक वेदोक्त नदी जो आकाश के मध्य में मानी जाती है।

कुलिस—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुलिश] वज्र। कुलिश। उ०—छोटि कुलिस सम बचनु तुम्हारा। व्यथं घरहु धनु वान कुठारा।—मानस, १।२७३।

कुलीजन—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुलजन'।

कुली^३—सञ्ज्ञा पुं० [तु०] १ बोक डोनेवाला। मजदूर। मोटिया। २ गुलाम (को०)।

यौ०—कुली कदारी=छोटी जाति के लोग।

कुली^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुलिन्] १. सप्त कुलवर्तों में से एक। १. पवंत (को०)।

कुली^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. बड़ी साली। पत्नी की बड़ी बहन। २. भटकटैया (को०)।

कुली^३—वि० [सं० कुलिन्] कुलीन। कुलवाले। ऊँचे वंश में उत्पन्न। जैसे,—कुली छतीस=छत्तीस कुलवाले।

कुलीन^३—वि० [सं०] [सञ्ज्ञा कुलीनता] १ उत्तम कुल में उत्पन्न। अच्छे घराने का। खानदानो। २ पवित्र। शुद्ध। साफ। उ०—गंग जो निरप्रल नीर कुलीना। नार मिले जलहोइ मलीना।—जायसी (शब्द०)।

कुलीन^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार के बंगाली ब्राह्मण, जो उन पाँच ब्राह्मणों की संतान हैं, जिन्हें पंचगौड़ के महाराज आदि-शूर अपने राज्य में साग्निक ब्राह्मण न होने के कारण, आठवीं शताब्दी के आरम्भ में काशी से अपने साथ ले गए थे। २,

कुलती—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] १ बुरी आदत । कुटेव । २. कोलसंप्रदाय की साधना में प्रयुक्त होनेवाली स्त्री । कुलस्त्री । उ०—नजो कुन्ती मेठी मंग । ग्रहनिशि रापो भोजुद बंधि ।—गोरख०, पृ० ७४ ।

कुलत्ती—वि० [म०कु + हि० लत] बुरी आदतवाला । कुटेववाला ।

कुलत्थ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुलथी । कुरथ ।

कुलत्थिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कुलथी । कुरथी ।

कुलथ—सञ्ज्ञा पुं० [पुं० कुलत्थ] कुलथी ।

कुलथी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुलत्थ या कुलत्थिका] उरद की तरह का एक मोटा मन्त्र जो प्रायः बरसात में ज्वार के साथ बोया जाता है ।

विशेष—इसकी बेल भी उरद की भाँति पृथ्वी पर फैलती है, पर इसकी पत्तियाँ पजे के पाकार की होती हैं । फलियाँ गुच्छों में लगती हैं और एक एक फली में तीन तीन चार चार दाने निकलते हैं । दाने उरद ही के से होते हैं, पर कुछ चिपटे और भिन्न भिन्न रंगों के, जैसे—भूरे, लाल, काले होते हैं । कुलथी घोड़ो और चौपायों को बहुत खिलाई जाती है । गरीब लोग इसकी दाल भी खाते हैं । यह कदम मानी गई है । बंधक में इसे रूखी, कसली, गरम, कब्ज करनेवाली तथा रक्तपित्ताकारिणी मानते हैं ।

पर्या०—ताम्रबीज । श्वेतबीज । सितेतर । कालवृत्त । ताम्रवृत्त ।

कुलदीप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वंश की दीप की भाँति प्रकाशित करनेवाला व्यक्ति (को०) ।

कुलदीपक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुलदीप' (को०) ।

कुलदुहिता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुलदुहितृ] दे० 'कुलकन्या' (को०) ।

कुलदूषण—वि० [सं०] ते० 'कुलकलक' (को०) ।

कुलदेव—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] [स्त्री० कुलदेवी] वह देवता जिसकी पूजा किसी कुल में परंपरा से होती आई हो । ऐसे देवताओं की पूजा विवाह आदि के समय या वार्षिक नवरात्र आदि के दिनों में होती है । कुलदेवता ।

कुलदेवता^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुलदेव' ।

कुलदेवता^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] षोडश मातृकाओं में से एक ।

कुलदेवी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह देवी जिसकी पूजा किसी कुल में परंपरा से होती आई हो ।

कुलद्रुम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दस प्रमुख वृक्ष, जिनके नाम हैं—(१) पीपल, (२) वरगद, (३) बेल, (४) नीम, (५) कर्बूज, (६) गूलर, (७) इमली, (८) आमला, (९) लसोड़ा और (१०) करज ।

कुलघन^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पैतृक संपत्ति । खानदान की अत्यंत प्रिय एवं मूल्यवान् संपत्ति या परंपरा ।

कुलघन^२—वि० जिसका घन वंश की प्रतिष्ठारक्षा के लिये लगेको० ।

कुलघन्या—[सं०] कुल की प्रतिष्ठा बढ़ानेवाली । वंश की मर्यादा की रक्षा करनेवाली । उ०—जो कुछ मेरे वह, कन्या का, कुलघन्या का ।—मपरा, पृ० १८२ ।

कुलवर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पुत्र । बेटा ।

कुलधर्म—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वंशपरंपरा से आनेवाला कर्तव्य कर्म । पूर्व-पुरुषों द्वारा पालित धर्म ।

विशेष—धर्मयोगों के निर्णय में भी इसका विचार किया जाता था ।

कुलधारक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पुत्र । बेटा ।

कुलना—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कुलाना] दर्द । टीस । जैसे,—दाँतों की कुलन ।

कुलनक्षत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार भरणी, रोहिणी, पुष्य, मघा, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा, विशाखा, ज्येष्ठा पूर्वाषाढ, श्रवण, उत्तरभाद्रपद ये सब नक्षत्र ।

कुलना—क्रि० प० [हि० कुलाना] टीस मारना । दर्द करना ।

जैसे—आजकल दाँत कुल रहे हैं ।

कुलनायिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वामभाग या कोल धर्म के अनुसार वे स्त्रियाँ जिनकी पूजा कोल लोग चक्र में करते हैं । ये नौ प्रकार की होती हैं—नटी, कपालिनी, वेश्या, घोविन, नाइन ब्राह्मणी, शूद्रा, धहीरिन और मालिन ।

कुलनार—सञ्ज्ञा पुं० [नेपा०] एक छनिज पदार्थ या पत्थर जो सफेद या कुछ सुरमई रंग लिए होता है ।

विशेष—इसे सिलखड़ी, सग जराहत, सफेद सुरमा और कपूर शिलासित्र भी कहते हैं । इसे भस्म करके गन्ध या प्लस्टर आफ् पेरिस बनाते हैं । इस भस्मचूर्ण में यह गुण होता है कि यह पानी पाने से लस पकड़ने लगता है और अतः सूखने पर उसके सब कण मिलकर फिर ठोस पत्थर हो जाते हैं । इसकी मूर्तियाँ, खिलोने, इलेक्ट्रोटाइप के सचित्र और बहुत सी चीजें बनती हैं । इससे शीशा भी जोड़ते हैं । कुलनार मद्रास, पंजाब राजपूताने तथा भारतार्थ के और कई भागों में मिलता है । जोधपुर और बोकानेर में इसकी बड़ी बड़ी खानें हैं, और इससे बहुत से काम होते हैं । इससे खिडकी की जालियाँ बड़े कोशल के साथ बनाते हैं । गन्ध या गीले कुलनार की दो बराबर पट्टियाँ लेते हैं और उनमें एक ही नक्काशी की जालियाँ काटते हैं । फिर एक पट्टी की जालियों पर रंग विरंग के शीशे बँटाकर ऊपर दूसरी पट्टी भी सटीक जमाकर बाँध देते हैं । इस प्रकार दोनों पट्टियाँ मिलकर एक हो जाती हैं और कटाव के बीच रंग विरंग के शीशे दिखाई पड़ते हैं । आगरा, लाहौर आमेर आदि के शीशे महल इसी गन्ध की सहायता से बने हैं । कुलनार या सिलखड़ी का चूरा खेतों में भी खाद के लिये डाला जाता है । नील की खेती के लिये इसकी खाद बहुत उपयोगी होती है । पेशाब लाने के लिये बंध सिलखड़ी का चूरा दूध के साथ खिलाते हैं ।

कुलनीवीग्राहक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] किसी समाज या सभ की आमदनी को अपने पास जमा रखनेवाला ।

विशेष—कोटिल्य ने ऐसे घन का प्रयोग करनेवाले पर १०० पण जुर्माना लिखा है ।

कुलप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुल का प्रधान पुरुष । किसी कुल को अनु-

शासन में रखनेवाला प्रधान व्यक्ति । उ०—सामाजिक सगठन की मूलभूत इकाई कुल थी जिसमें एक पिता या ज्येष्ठ भ्राता के, जो कुलप कहलाता था, अनुशासन को मानते हुए कई सदस्य एक ही गृह में एक साथ रहते थे ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ८२ ।

कुलपति—संज्ञा पुं० [सं०] १ घर का मालिक । मुखिया । सरदार । २ वह अध्यक्ष जो विद्यार्थियों का भरण पोषण करता हुआ उन्हें शिक्षा दे । ३ शास्त्रानुसार वह ऋषि जो दस हजार मुखियों या ब्रह्मचारियों को अन्नदान और शिक्षा दे । ४. महान् । ५ किसी विद्यासंस्था विशेषतया कालिज या विश्व विद्यालय का वैधानिक प्रधान ।

कुलपरंपरा—संज्ञा स्त्री० [सं० कुलपरंपरा] वंश में चली आती रीति । वंशपरंपरा । उ०—इन खिलाफियों के लड़के भी कुलपरंपरा से बहुधा सिपाही का काम अंगीकार करते थे ।

हिंदु सभ्यता, पृ० ४६ ।

कुलपर्वत—संज्ञा पुं० [सं०] सात पहाड़ों का एक समूह जिसके अंतर्गत ये पर्वत आते हैं—महेंद्र, मलय, सह्य, शुक्ति, ऋक्ष, विंध्य और पारिवात्र ।

कुलपासुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलटा । व्यभिचारिणी स्त्री [को०] ।

कुलपालक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की नारंगी ।

कुलपालक—वि० वंश या खानदान का पालन और रक्षण करने-वाला [को०] ।

कुलपालि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कुलपालिका' [को०] ।

कुलपालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सती स्त्री । २ कुलजा स्त्री । उत्तम कुल की नारी [को०] ।

कुलपाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कुलपालिका' [को०] ।

कुलपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] कुलीन मनुष्य । उच्चवर्ण का व्यक्ति [को०] ।

कुलपूज्य—वि० [सं०] जिसका माव कुलपरंपरा से होता प्राया हो । जो कुल का पूज्य हो । उ०—गुरुवसिष्ठ कुल पूज्य हमारे ।—कुलजी (शब्द०) ।

कुलफा—संज्ञा पुं० [सं० कुलफ] ताबा । उ०—(क) श्री रघुराज मनो जुलफ की जंजीरन की कुलफ खुलवाई ।—रघुराज (शब्द०) । (ख) अम करहु कुलफ कपाट है जब जीव जाहिर् ना चलै ।—कबीर सा०, पृ० ११ ।

विशेष—कुछ लोग इसे स्त्रीनिग भी मानते और लिखते हैं ।

कुलफत—संज्ञा स्त्री० [सं० कुलफत] मानसिक चिंता या दुःख । विकलता । उ०—उलफत नेहा कुलफता नारी ।—कबीर सा०, पृ० ६ ।

किं प्र०—मिटना ।—होना ।

कुलफा—संज्ञा पुं० [फा० खुफा] एक साग जिसके पत्त दलदार, नीचे डठल के पास नुकीले और फिर पर चौड़े होते हैं ।

विशेष—इसके पत्ते दो अंगुल लंबे और डठल में दो दो प्रामाण्य सामने लपेटे हैं । इसके फूल पीले रंग के होते हैं । फूल भड़ जाने पर छोटे छोटे कंगूरे निकलते हैं जिनमें काले काले, गोल बिपदे बाने होते हैं । ये दाने बहुत छोटे होते हैं और बब के

काम में आते हैं । लोग ठंडाई में इन्हें प्राय डालते हैं । इसकी पीघा एक वाजिपत से बड़े वाजिपत तक ऊँचा है और ठंडी जगह में सपता है । यह वसंत ऋतु के पहले बोया जाता है और गरमी में तैयार होता है । इसका पीघा बहुत जल्द बढ़ता है । बरसात में यह आपसे आप खेतों में जमता है । लोग इसका साग खाते हैं । बंदर में यह ठंडा माना गया है । इसी की छोटी जाति को लोनी, अमलोनी या नोनिया कहते हैं ।

यो०—वृहत्सोणी । घोलिका ।

कुलफा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कुलफ' । उ०—चर्म दृष्टि का कुलफा दे के, चोराही परमाई हो ।—कबीर सा०, पृ० ६३ ।

कुलफी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुलफी] १ पंच । २. दूध या किसी धातु अथवा मिट्टी आदिका बना हुआ चोगा जिसमें दूध आदि भरकर खपें जमाते हैं । ३. उद्युक्त प्रकार से जम हुआ दूध, मलाई या कोई शर्बत । जैसे—मलाई की कुलफी । ४ पीतल या ताँबे आदि की गोल या भुकी हुई नली जिसे नरकुल में लगाकर नंचा बाँधा जाता है ।

कुलवधु—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलवती स्त्री । मर्यादा से रहनेवाली स्त्री । उ०—कितनी न गोकुल कुलवधू, काहि न केहि सिखदीन ।—विहारी (शब्द०) ।

कुलवाँसा—संज्ञा पुं० [हि० कुल+वाँस] जुलाहों के करघों का एक वाँस जिसमें कंबी बंधी रहती है ।

कुलबुल—संज्ञा पुं० [अनु०] [संज्ञा कुलबुलाहट] छोटे छोटे जीवों के हिलने डुलने की आहट ।

कुलबुलाना—क्रि० प्र० [अनु० कुलबुल] १ बहुत से छोटे छोटे जीवों का एक साथ मिलकर हिलना डोलना । इधर उधर रेंगना । जैसे,—मोरी में कीड़े कुलबुला रहे हैं । २ धीरे धीरे हिलना डोलना । जैसे,—बच्चा गोद में कुलबुला रहा है ३. चंचल होना । आकुल होना । जैसे—(क) सोया हुआ लड़का कुलबुलाकर सठ बैठे (ख) भूख के मार अतड़ियाँ कुलबुला रही हैं ।

कुलबुलाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० कुलबुल] धीरे धीरे हिलने डुलने का भाव । इधर उधर रेंगना ।

कुलबोर—वि० [सं० कुल+हि बोरना] कुल को डुबानेवाला । कुल-कलंक । उ०—घरमबास बिनवँकर जोरी, नगरी के लोग कहें कुलबोर ।—घरम, पृ० ७४ ।

कुलबोरन—वि० [हि० कुल+बोरना] १. कुल को डुबानेवाला । वंश की मर्यादा को भ्रष्ट करनेवाला । कुल में दाग लगानेवाला । कुलकुशार । १. मर्यादा । नालाक ।

कुलबोरना—वि० [हि०] दे० 'कुलबोर' । उ०—मोहि कुलबोरना के विरई हुंकाव ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३५८ ।

कुलमोड़ा—वि० [सं० कुल+मोड़ हि मोर] कुलवेष्ट । वंश में श्रेष्ठ मोर व्याप्त । वंशभूषण । उ०—मोरग जैसे अन्विचयो, दूजे दिन रागीड़ । गया दरगदु माह रे, माखर कुलमोड़ ।—रा० क०, पृ० २७ ।

कुरी—सञ्ज्ञा [देश०] १ हेगा। पटरा। पट्टला। सुहागा। २ कुरकुरी हड़डी। वि० दे० 'कुरकुरी'। ३ गोल टिकिया।

कुसं—सञ्ज्ञा पु० [अ० कुसं = गोल टिकिया] १. गोल टिकिया। २ अरब देश का चाँदी का एक पुराना सिक्का जो लगभग डेढ़ आने मूल्य का होता है। ३. चीन देश का सोने या चाँदी का एक सिक्का जो नाव के आकार का होता है और जो तौल में पचास या सौ तोले और इससे कम या अधिक भी होता है।
कुसं^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जिसकी जड़ लचीली नरम और मजबूत होती है और रस्सी बटने और चटाई बनाने के काम में आती है। इसकी खेती केवल जड़ के लिये होती है।

कुसीं—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० कुरसी] दे० 'कुरसी'।

कुसींनामा—सञ्ज्ञा पु० [अ० कुसीनामा] दे० 'कुरसीनामा'।

कुलग—सञ्ज्ञा पु० [फा० कुलग] एक विशेष प्रकार का पक्षी। कुलग। उ०—बहुरी अमल हित पक्ष बल गहे कुनक असक गत। सोनंग दुरग यकवर सहित सभों एम घर नेम सत।—रा० २०, पृ० १५३।

कुलग^१—सञ्ज्ञा पु० [फा०] १ वह पक्षी जिसका सिर लाल और बाकी शरीर मटमले रंग का होता है। इसकी गरदन लचीली होती है। यह लकलक से बड़ा होता है और पानी के किनारे रहता है। उ०—तीतर, कपोत, पिक, केकी, कोक, पारावत, कुरर, कुलग, कलहस गहि लाए हैं।—केशव (शब्द०)। २ मुर्गा। कुलकुट। ३ लरी टांग का आदमी।—(व्यग)।

कुलग^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] कुलाँच। कूद। चौकड़ी। उ०—हेरय तहो हृदि कुलग करि कूदयो एक ताही समे साहसोफ साहसनि मात के।—हम्मीर०, पृ० ६।

कुलज^१—सञ्ज्ञा पु० [सं० कुलज] 'कुलजन'।

कुलज^२—सञ्ज्ञा पु० [देश०] घोड़े का एक दोप जिसमें चलते समय टाँगें आपस में टकराती हैं।

कुलजन—सञ्ज्ञा पु० [सं० कुलजन] १ अदरक की तरह का एक पौधा।

विशेष—यह बर्मा, मलाया द्वीप, चीन आदि में होता है। इसकी रेशदार जड़ बाहर बहुत भेजी जाती है। यह कबूती, गरम और दापन होती है तथा मुख की दुर्गंध को दूर करती है। कुलजन के दो भेद हैं—बड़ा कुलजन और छोटा कुलजन।

पर्या०—कुलज। कुर्णज। गधमूल।

२ पान की जड़ या डठल।

विशेष—इसे लोग खाली या पान की तरह चूना, कत्था आदि मिलाकर खाते हैं। इसमें बड़ा हुआ गला खुल जाता है।

कुलधर—वि० [सं० कुलधर] वंश परंपरा को चलानेवाला [स्त्री०]।

कुलभर—सञ्ज्ञा पु० [सं० कुलभर] चोर [स्त्री०]।

कुल^१—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ वंश। घराना। खानदान।

यो०—कुलकानि। कुलपति। कुलकलक। कुलांगार। कुलतिलक। कुलसूषण। कुलफटक, आदि।

मुह^१—कुल वंशानुता (१) वंशविश्वामनी वर्णन करना (२) बहुत गालियाँ देना।

२ जाति। ३ समूह। समुदाय। झुंड। जैसे—कविकुलसूषण। कविकुलतिलक आदि। ४. भवन। घर। मकान। जैसे—गुहकुल, ऋषिकुल आदि। ५ तंत्र के अनुसार प्रकृति, काल, आकाश, जल, तेज, वायु आदि पदार्थ। ६ वाम मांग। कोल धर्म। ७ संगीत में एक ताल जिसमें इस प्रकार १५ मात्राएँ होती हैं—द्रुत, लघुद्रुत, लघु, द्रुत, लघु द्रुत, द्रुत, द्रुत लघु, द्रुत, द्रुत, द्रुत और लघु। ८. स्मृति के अनुसार व्यापारियों या कारीगरों का सघ। श्रेणी। कंपनी। ९. कौटिल्य के अनुसार शासन करनेवाले उच्च कुल के लोगों का मंडल। कुनीनतत्र राजा। १० देह। शरीर (स्त्री०)। ११. भगला भाग। भागे का हिस्सा (स्त्री०)। १२ एक प्रकार का नीला पत्थर [स्त्री०]। १३ गोत्र (स्त्री०)। १४ नगर। जनपद (स्त्री०)। १५ तंत्र के अनुसार कुंडलिनो शक्ति जो मूलाधार चक्र में है (स्त्री०)।

कुल^२—वि० [अ०] समस्त। सब। सारा। पूरा। तमाम।

यो०—कुल जमा = (१) सब मिलाकर। (२) केवल। मात्र। कुलकटक—सञ्ज्ञा पु० [सं० कुलकटक] अपनी कुचाल से अपने वंश-वालों को दुखी करनेवाला।

कुलक^१—वि० [सं०] अच्छे कुल, पानदान का [स्त्री०]।

कुलक^२—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ मकर तंडुप्रा नाम का वृक्ष। २ कुविला। ३ परवल या उसकी लता। ४ हरा साँप। ५ दीपक। ६. श्रेणी या समूह का प्रधान [स्त्री०]। ७ समूह [स्त्री०]। ८. वल्मीक। बाँधी। ९ सस्कृत में गद्य लिखने का एक ढग। १० सस्कृत में कविता लिखने का एक विशेष ढग। उ०—यद्यपि हिंदी में इस ढग की कविता का प्रचार नहीं है, तथापि अन्य भाषाओं में (जैसे, सस्कृत में कुनक, मराठी में बलेकवसं, बँगला में अमिताक्षर छंद आदि) इसका उपयुक्त प्रचार है।—कव्या०, (सु०)।

विशेष—कुनक में ५ से १४ तक एक साथ अन्वित पद्य या कविताएँ होती हैं। व्याकरण की दृष्टि से इनका वाक्यविन्यास और प्रधान ऐसा होता है कि सब एक ही वाक्य में लिखा जा सकता है।

कुलकज्ज्वल—वि० [सं०] वंश को कलकित करनेवाला।

कुलकना—कि० प्र० [हि० किलकना] आनंदित होना। खुशी से उछलना। उ०—लक्ष्मण का तन पुलक उठा, मन मानो कुछ कुलक उठा।—साकेत, पृ० ६३।

कुलकन्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न कन्या [स्त्री०]।

कुलकर्ता—सञ्ज्ञा पु० [सं० कुलकर्तृ] वंश का आदिपुरुष। सत्पापक। कुलपति।

कुलकलक—सञ्ज्ञा पु० [सं० कुलकलक] अपनी कुचाल से अपने वंश की कीर्ति में ध्वजा लगानेवाला।

कुलकाट—वि० [सं० कुल + हि० काट = मूल] कुल को कलक लगाने वाला। उ०—कम हीमत, कुलकाट, मामी मरण, मलीख मत।—बाँकी प्र०, भा० १, पृ० ६१।

कृष्णकान(१) -सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कुलकानि' । उ०—क्यों न तलें
ताके सुनै और सर्व कुलकान ।—स० सप्तक, पृ० १८८ ।
कुलकानि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुल + हि० कान = मर्यादा] कुल की
मर्यादा । कुल की लज्जा । उ०—छटेउ लाज डगरिया औ
कुलकानि । करत जात अपरधवा परि गड वानि ।—
रहीम (शब्द०) ।

कुलकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [वं०] चित्रम ।

कुलकुडिलिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र के अनुसार एक शक्ति जिसका
मन्त्र सप्ताक्ष एक अक्ष है । इसकी महिमा 'प्रकृति' या शक्ति
के समान कही जाती है और इसकी उपासना होती है ।

कुलकुल—सञ्ज्ञा पुं० [अनु०] पत्थरों की मधुर छानि । उ०—वृगकुल
कुलकुल सा दीन रहा ।—लहर, पृ० १६ ।

कुलकुल—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] बोनल वा सुराही से मदिरा या जल
गिराने के समान होनेवाली आवाज (को०) ।

कुलकुलाना - क्रि० अ० [अनु०] कुल कुल शब्द करना ।

मूहा—ग्रन्थि कुलकुलाना = अत्यंत भूख लगना । उ०—पेट की
ग्रन्थि कुलकुल रही थी ।—दुर्गेनदिनी (शब्द०) ।

विशेष—जब पेट खाली होता है, तब आँतों से कुलकुल शब्द
निकलना है ।

कुलकुली—सञ्ज्ञा स्त्री० [अनु०] १ कनकलाहट । छुजली । २
वेचनी ।

कुलकेतु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुल में पताका के समान श्रेष्ठ । कुल की
यशस्वी बनानेवाला व्यक्ति (को०) ।

कुलक्षणा—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ बुरा लक्षण । बुरा चिह्न । २ कुचाल ।
वदचलनी ।

कुलक्षणा—वि० [सं०] [स्त्री० कुलक्षणा] १ बुरे लक्षणवाला । २.
बुराचारी ।

कुलक्षणी—सञ्ज्ञा पुं० [कुलक्षणा + ई (प्रत्य०)] १ बुरे लक्षणवाला ।
२. बुराचारी ।

कुलक्षणी—सञ्ज्ञा स्त्री० १ बुरे लक्षणवाली । २. बुराचारिणी ।

कुलक्षय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुल या वंश का विनाश (को०) ।

कुलगरिमा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वंश का गौरव । खानदान की
इज्जत (को०) ।

कुलगिरि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुलवंत' (को०) ।

कुलगुर(१)—सञ्ज्ञा पुं० [सं०, कुलगुरु] दे० 'कुलगुरु' । उ०—वेदविहित
कुलगीति कीन्ह दुइ कुलगुरु ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५७ ।

कुलगुरु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वंश या खानदान का गुरु । कुल-
पुरोहित (को०) ।

कुलगृह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] उच्चवर्ण का भवन । प्रतिष्ठित घर ।

कुलघ्न—वि० [सं०] वंश या कुल का विनाश करनेवाला (को०) ।

कुलचण्डी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुलचण्डी] एक देवी का नाम ।

कुलचंद्र—वि० [सं० कुल + चंद्र] कुल या वंश को चंद्रमा के समान
प्रकाशित करनेवाला । कुलभूषण । उ०—साहि तनै कुलचंद्र
२-६०

सिवा जस चंद सो चंद कियो छवि छीनो ।—भूपण ग्रं०,
पृ० ४८ ।

कुलचा—सञ्ज्ञा पुं० [फा० कलीचह] १ एक प्रकार की खमीरी रोटी,
जो खूब फूली होती है । २ तबू या खेमे के डंडे के ऊपर का
गोल लट्ट । ३ छिपाकर इकट्ठा किया हुआ रुपया ।

कुलच्छन—सञ्ज्ञा पुं० वि० [हि०] दे० 'कुलक्षण' ।

कुलच्छनी—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कुलक्षणी' ।

कुलच्छनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कुलक्षणी' । उ०—(क) वेहतर
यह है कि राजा से कहिए, यह कुलच्छनी है, आपने योग
नहीं ।—लल्लू (शब्द०) । (ख) पति को दुख देखनेवाली
में कुलच्छनी सती हुई ।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०) ।

कुलज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुलजा] १ उत्तम वंश में उत्पन्न ।
कुलीन । २. परवेल । परोरा ।

कुलजन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सत्कुलोत्पन्न व्यक्ति । कुलीन जन (को०) ।

कुलजा—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की जंगली भेड़ जो पामीर
और गिलगित में होती है । यह डीलडोल में बड़ी होती है ।
कुचकार ।

कुलजा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कुलवधू ।

कुलजान—वि० [सं०] वंश में उत्पन्न । वंशोद्भव ।

कुलजाया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कुलीन स्त्री । पतिव्रता (को०) ।

कुलट—वि० पुं० [सं०] [स्त्री० कुलटा] बहुत स्त्रियों से प्रेम रखने-
वाला । व्यभिचारी । वदचलन । उ०—श्याम सखी कारेहु ते
कारे । तब चितचोर भोर ब्रजवासिन प्रेम नेक ब्रत टारे । लै
सरबस नहि मिले मूर प्रम कहिये कुलट विचारे ।—
सूर (शब्द०) ।

कुलट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] औरस के अतिरिक्त और किसी प्रकार का
पुत्र । क्षेत्रक, गोलक, इत्क या कीत पुत्र ।

कुलटा—वि० स्त्री० [सं०] बहुत पुरुषों से प्रेम रखनेवाली (स्त्री) ।
छिनाल । वदचलन । व्यभिचारिणी । पुंश्चली ।

पर्या—पुंश्चली । स्वरिणी । पाशुना । व्यभिचारिणी ।

कुलटा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह परकीया नायिका जो बहुत पुरुषों से
प्रेम रखती हो ।

कुलतंतु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुलतंतु] वह पुरुष जिसे छोड़ और कोई
दूसरा सद्दारा उसके कुलवालों को न हो ।

कुलतारन—वि० [सं० कुल + हि० तारन] [वि० स्त्री० कुलतारनी] कुल
को तारनेवाला । कुल को पवित्र करनेवाला । उ०—सुतहि
कट्यो तै भो कुलतारन । मोहि दरवायो बारन तारन ।—रघु-

राज (शब्द०) ।

कुलत—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कु + हि० लत] बुरी आदत । कुदेव ।

कुलतिथि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] प्रसिद्ध चांद्र दिवस । शुक्ल पक्ष की
चतुर्थी, प्रष्टमी, द्वादशी या चतुर्दशी तिथि (को०) ।

कुलतिलक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वंश की प्रतिष्ठा बढ़ानेवाला पुरुष ।
वंश का गौरव (को०) ।

कुलतिलक—वि० कुल की प्रतिष्ठा बढ़ानेवाला । कुल में श्रेष्ठ ।

कुरी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] १ धुमे । टीना । उ०—हान सो करे गोइ लेइ बाढ़ा । कुरी दुवो पंज के काढ़ा—जायसी (शब्द०) । २ ढेर । समूह । उ०—तेइ सन बोहित कुरी चलाए । तेई सन पवन पख जनु लाए ।—जायसी (शब्द०) ३ कोल्हू ।

कुरी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कूरा = ढेर, भाग] विभाग । खड । टुटड़ा । उ०—सीधैं हैं कड़े चने, मिली एक एक कुरी ।—भरचना । पृ० ६४ ।

मुहा०—कुरी कुरी हो । = टुकड़े टुकड़े होना । उ०—जाके रूप आगे रभा रति उरवसी, शची हची मान मैनका को ह्वै गयो कुरी कुरी ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

कुरीज^१—सञ्ज्ञा पुं० [फा० कुरीज] १ चिड़िया का सालाना पख गिराना । २ बेत या नरकट की वनी झोपड़ी ।

कुरीज^२—वि० परकटी (चिड़िया) । (वह पक्षी) जिसके पख टूट या गिर गए हों । उ०—आइ पिता के पद गहे माँ रोई उर ठोकि । जंसे चिरी कुरीज की त्यों सुत दसा बिलोकि ।—अर्ध०, पृ० १६ ।

कुरीति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ बुरी रीति । कुप्रथा । २. कुवाल ।

कुरीर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ स्त्रियों का शिरोवस्त्र । स्त्रियों के लिये सिर का एक पहनावा । कुव । २ सभोग । रतिक्रिया [को०] ।

कुरुट—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुरुण्ड] लाल फटसरैया [को०] ।

पर्या०—कुरुण्टक—कुरुण्ड ।

कुरुम—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कूर्म] दे० 'कूर्म' । उ०—तरहि, कुरुम बासुकि के पीठी । ऊपर इद्र लोक पैं दीठी ।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० १४६ ।

कुरु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वैदिक ग्रायों का एक कुल । २ एक प्राचीन देश जो दो भागों में विभक्त था—उत्तर कुरु और दक्षिण कुरु । दक्षिण कुरु हिमालय के दक्षिण में था, जिसमें पाचाखादि देश थे, और उत्तर कुरु हिमालय के उत्तर में था जिसमें फारस, तिब्बत आदि देश थे । इसको लोग स्वर्ग भी कहते थे । ३ एक सोमवशी राजा का नाम जिसके वंश में पांडु और धृतराष्ट्र हुए थे । ४ कुरु के वंश में उत्पन्न पुरुष । ५ पुरोहितकर्ता । ६. पका हुआ चावल । भात ।

कुरुग्रा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुरुग्व] अन्न नापने का एक मान, जो दस छटाई के बराबर होता है ।

कुरुग्रा^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कड़ुग्रा' । उ०—कुरुग्रा क तेल आइग लाइम बाँधी बड दासग्री छपाइअ ।—कीर्ति०, पृ० ६८ ।

कुरुई—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुरुव] बाँस या मूँज की बनी हुई छोटी डलिया । मोनी ।

कुरुकदक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुरुकन्दक] मूलक । मूनी (को०) ।

कुरुक्षेत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक बहुत प्राचीन तीर्थ, जो सरस्वती नदी के बाएँ किनारे पर अ बाला और दिल्ली के बीच में है ।

विशेष—ऋग्वेद के कई ब्राह्मणों में लिखा है कि प्राचीन काल में ऋषि लोग इसी स्थान पर यज्ञादि किया करते थे । अब तक

यहाँ एक बहुत पवित्र और प्राचीन सरोवर के चिह्न वर्तमान हैं, जिसका नाम ऋग्वेद में 'सूर्यनावत' लिखा है । किसी समय में इसके घाटों पर सवेक वृक्ष और पवित्र वीथी थी, जिनके

कुछ चिह्न अब तक पाए जाते हैं । ऐसा प्रसिद्ध है कि यहाँ के ब्रम्हसर नामक सरोवर में परशुराम ने स्नान करके अपने आप को क्षत्रिय हत्या के पाप से मुक्त किया था और महाराज पुरुरवा ने इसी के किनारे विछड़ी हुई उर्वशी को फिर से पाया था । चंद्रवशी राजा कुरु इन्हीं सरोवरों में से किसी एक के तट पर बहुत दिनों तक तप करके गुप्त हुए थे । तभी से इसका नाम धर्मक्षेत्र और कुरुक्षेत्र पड़ा । महाभारत के प्रसिद्ध युद्ध के सिवा इस स्थान पर और भी प्रत्येक बड़े युद्ध हुए थे । भीष्मे से यहीं पर स्वयं नामक महादेव की एक मूर्ति स्थापित हुई और (थानेसर) नामक नगर बसा, जहाँ राजा पुष्पमूर्ति ने वर्द्धन नामक राजवंश की प्रतिष्ठा की, जिसमें प्रसिद्ध महाराज हर्षवर्द्धन हुए । ग्रहण, पर्व आदि अवसरों पर अब भी यहाँ बहुत बड़े बड़े मेले लगते हैं ।

कुरुख—वि० [सं० कुरु + फा० ख] जो मुँह बनाए हुए हो । नाराज । कुपित । उ०—(क) घकित सुमल दूग अन्न सनीद कुरुख कटाक्ष करत मुख थोरी । खजन मृग अकुलात घात उर श्याम व्याध बाँधे रति डोरी ।—सूर (शब्द०) । (ख) मिलतहि कुरुख चकत्ता को निरखि कीन्हो सरजा, सुरेस ज्यो दुविरा ब्रजराज को ।—भूपण (शब्द०) ।

कुरुखेती—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुरुक्षेत्र] कुरुक्षेत्र । उ०—निदक न्हाय गहन कुरुखेत । अरपे नार सिंगार समेत । चौसठ कुप्रा वाउ खुदवाव । तवहूँ, निदक नरकहि जाव ।—कवीर (शब्द०) ।

कुरुजागल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुरुजाङ्गल, कुरुजाङ्गल] एक प्राचीन देश जो पांचाल देश के पश्चिम में था ।

कुरुविल्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ पद्मराग मणि । मानिक । २ बत-कुलथी ।

कुरुम^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कूर्म] कूर्म । कच्छप । उ०—कुरुम टूट भुईं फाटै तन्ह हस्तिन्ह के चालि ।—जायसी (शब्द०) ।

कुरुराज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ दुर्धन । २. युधिष्ठिर ।

कुरुल^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बान की लट, जो माथ पर बिखरी हो ।

कुरुल^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कुरुल' ।

कुरुला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सगीत में एक प्रकार की गमक ।

कुरुवष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] उत्तर कुरु ।

कुरुवद—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुरुविन्व] १ मोथा । २. काच लवण । ३. उरनद । ४. मानिक । ५. वर्षण । ६. ई गुर । शिगरफ ।

कुरुविन्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक पुरानी तेल का नाम ।

कुरुवस्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सोने का एक निश्चित परिमाण [को०] ।

कुरुवृद्ध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] भीषम [को०] ।

कुरुष्रष्ठ, कुरुसत्तस—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन (को०) ।

कुरुप—वि० [सं०] [स्त्री० कुरुपा] बुरा शकल का । बदसूरत ।

बेडोल । बेडगा । उ०—कार कुरुप विधि परबस कीन्हा ।

बवा सो जुनिय बहिय जो दोन्हा ।—मानस, २।१६ ।

कुरुपता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कुरुप होने का नाव । बदसूरती ।

कुरुप्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दान [को०] ।

कुरेदना—क्रि० सं० [सं० कर्त्तन] खुरचना । खरोचना । कुरोदना ।

उ०—(क) कभी कभी सौं के काटने से एक सामान्य छाला सा पड़ जाता है और सूई के कुरेदने के से दाग पड़ जाते हैं।

—दुर्गप्रसाद मिश्र (शब्द०), (ख) पक्षियों का कुरेदा हुआ।—सदमणसिंह (शब्द०)।

कुरेदनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कुरेदना] लकड़ी या लोहे आदि का एक औजार जो भट्ठों की आग, डेर आदि कुरेदने के काम आता है और लवा, नुकीला और छड़ के आकार का होता है।

कुरेमा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुरम = बच्चा] एक प्रकार की गाय जो साल में दो बार बच्चा देती है।

कुरेर(१)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० फल्ललो या कल + केलि] कुलेल। आमोद प्रमोद। उ०—हँसहि हम औ करहि कुरेरा। चुनहि रतन मुक्ताहल हेरा।—(शब्द०)।

कुरेरा(२)—क्रि० प्र० [हि० कुरेर] कुलेल करना। क्रीड़ा करना।

उ०—करहि कुरेरे सुरेग रंगोली। धी चोत्रा चदन सब गौली।—जायसी ग्र०, पृ० २४५।

कुरेलना—क्रि० सं० [हि० कुरेदना] खोदना। करोदना।

सयां क्रि०—डालना।

कुरेदनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कुरेदनी'।

कुरेते—स्त्री० [हि० कुरा = भाग या डेर + अइत वा एत (प्रत्यय)]

[स्त्री० कुरतिन] भाग पावेवाला। हिस्सेदार।

कुरेना^१—क्रि० सं० [हि०] दे० 'कुरीना'।

कुरेना^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कुरा] [स्त्री० कुरेनी] डेर। राशि।

कुर्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुरुज] एक वृक्ष जो जंगलों में होता है और जिसकी पत्तियाँ लंबी और लहरदार होती हैं। इसमें लंबे और सुगंधित फूल लगते हैं जो सफेद, लाल, पीले और काले या नीले रंग के होते हैं।

विशेष—फूल के रंगों के विचार से ही इसके चार भेद हैं जिनके गुण भी पृथक् पृथक् माने गए हैं। सफेद फूल की कुरेया का बीज मीठा इंद्रिय और काले फूल की कुरेया का बीज कष्टुरा इद्रमव कहलाता है। यह कसैला दीपक और हलका होता है और बवासीर बलिसार और सप्रहणी को दूर करता है। यह बरसात में फूलता है और देखने में बहुत भला मालूम होता है।

पर्या०—कुडज। वत्सक। गिरिमल्लिका। वरतित्त। पांडुर। कुटक। कटुक। कौटजा। तित्तक। रक्तनाशक। वृक्षक। कूटज। काही। कालिण। प्रावृष्य। यवफल। सप्राही। प्रावृषण। महागघ। इद्रुद। कौट।

कुरीना(१)—क्रि० सं० [हि० कुरा = डेर] डेर लगाना। कुरा लगाना

कुरीनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कुरा] डेर। राशि।

कुर्क—स्त्री० [सं० कुर्क] [सञ्ज्ञा कुर्की] जन्त। उ०—रह रह आँवों में चुमती वह कुर्क वरघो की जोड़ी।—ग्राम्या, २५।

पौ०—कुर्कप्रमीन। कुर्कनामा।

कुर्कप्रमीन—सञ्ज्ञा पुं० [तु० कुर्क + फा० प्रमीन] वह मरकारी रत्नकारी जो मदान्त के आशानुसार जायदाद की कुर्की करता है।

कुर्कनामा—सं० पुं० [तु० कुर्क + फा० नामा] प्रदाता का वह पर-

वाना जिसके अनुसार कुर्कप्रमीन किसी की जायदाद की कुर्की करता है। जव्ती का परवाना।

कुर्की—सञ्ज्ञा स्त्री० [तु० कुर्क + ई(प्रत्यय)] देना चक्राने या भागे हुए अपराधी को अदालत में हाजिर कराने के लिए कर्जदार या अपराधी की जायदाद का सरकार द्वारा जव्त किया जाया।

विशेष—कभी कभी महाजन के विशेष कारण दिखलाने पर कर्जदार की जायदाद फंसला या डिग्री होने से पहले ही इसनिये जव्त कर ली जाती है कि जिसमें वह जायदाद इधर उधर न कर सके। इसे बच्ची कुर्की कहते हैं।

मुहा०—कुर्की उठाना = जव्त की हुई जायदाद को छोड़ देना।

कुर्की बंधाना = कुर्क करना। जव्त करना। कुर्की ले जाना =

कुर्कनामा लेकर किसी की जायदाद कुर्क करने के लिये जाना।

कुर्कुट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ मुर्गा। कुक्कुट। २ कूड़ा। ३ रक्त (स्त्री०)।

कुर्कुर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता। श्वान (स्त्री०)।

कुर्चिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कूर्चक' (स्त्री०)।

कुर्ता—सञ्ज्ञा पुं० [तु० कुरता] दे० 'कुरता'।

कुर्ती—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कुर्ती] दे० 'कुरती'।

कुर्दन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कूर्दन'।

कुर्दमी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] जहाज का रम्सा। आलात।—(लश०)।

कुर्पर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कुहनी। २ घुटना। पैरों के बीच का हड्डियों का जोड़ (स्त्री०)।

कुर्पास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुर्पासक' (स्त्री०)।

कुर्पासक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अगिया। चोली।

कुर्व—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० कुर्व] निकटता। समीपता।

कुर्वान—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० कुर्वान] बलि। निछावर। भेंट (स्त्री०)।

कुर्वानी—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० कुर्वानी] दे० 'कुरवानी'।

कुर्वि(१)—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] फंलाव। विस्तार। उ०—प्रथम ही आप तें मूल माया करी। वद्विग वह कुर्वि करि विगुन ह्वै विस्तरी।—सुंदर २०, भा० १ पृ० २५६।

कुर्वीवार—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० कुर्व व जवार] आस पास। अगल बगल। पास पड़ोस (स्त्री०)।

कुर्मी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुटुम्ब, प्रा० कुटुम्ब या सं० कु (=पृथ्वी) + हि० श्रो या देश०] एक जाति जो सेती करती है। कुनबी।

विशेष—कही कही इस जाति के लोग अपना परिचय 'गृहस्थ' कहकर देते हैं।

कुर्मुक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० प्रमुक] मुपारी।—(हि०)।

कुम्हँ(१)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुर्म] दे० 'कुर्म'। उ०—मीन रूप जो प्रथम सुभाज। ता फेछे कुम्हँहि निर्भाज।—कबीर सा०, पृ० ११।

कुर्ना—स्त्री० प्र० [प्रनु०] दे० 'कुरना'।

कुरा—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० कुराह] रमल के काम में प्रयुक्त पाँता। पाँता। पाशक। सारि। उ०—एक मोक्षा नाम निक सने के त्रिद बुलाया गया। मोलरी मर्द ने कुरा फेंका।—मान० भा० ५, पृ० २५३।

२ आत्मत्याग । आत्मवलिदान [को०] । ३ त्याग । स्वायं-
त्याग (को०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—चढ़ाना ।—देना ।

कुरम^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्म] कछुआ । कच्छप । उ०—कुरम
मुतन को धरत है ऊँचे आगु उद्र को धावै ।—कवीर श०,
भा० ३, पृ० १६ ।

कुरमा^७—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कुनवा] कुट्टव । परिवार । उ०—भेद
की भेरी अलोक के भालरि, कोतुष भो कलि के कुरमा में ।
जुहुत ही वलवीर वज्र बहु दारिद के दरवार दमामें ।—केशव
प०, भा० १, पृ० १३१ ।

कुरमा का वाँक—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] वे आड़ी लकड़ियाँ जो जहाज के
नीचे अंदर की ओर शहतीरो के बीच में उनको जकड़े रखने के
लिये लगाई जाती हैं ।—(लश०) ।

कुरमी—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कुर्मी' । उ०—नव कुरमी सवह कोरी ।
तेरह कुम्हार सब सिर मोरी ।—कवीर सा०, पृ० ५६३ ।

कुरमुराना—क्रि० प्र० [मनु०] कुर कुर करना । गतिशील होना ।
उ०—लता टूटी, कुरमुराता मूल मे है सुख भय का कीट ।—
हरी वास०, पृ० १८ ।

कुरर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ गिद्ध की जाति का एक पक्षी । २. करकुल ।
क्रौंच ।

कुररा—सञ्ज्ञा [सं० कुररा] [ली० कुररी] १ करकुल । क्रौंच ।
उ०—छत्र विटप वट पट्ट पिक डाढ़ो । कुरर नकीर करत
धुनि गाढी ।—देव (शब्द०) । २ टिटिहरी । उ०—लै के
कत भा कुररा लोपी । कठिन बिछोह जियहि किमि गोपी ।—
जायसी ।—(शब्द०) ।

कुरराव^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुरराज] दुर्योधन । उ०—जाप को
पेगवर, आपका दरियाव । ताप का सेस ज्वाल दाप का
कुरराव ।—रा० रू०, पृ० ६७ ।

कुरराव^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] क्रौंच या वाज पक्षियों से विरा स्थान ।

कुररी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ आर्या छंद का एक भेद, जिसमें चार गुरु
और उनचास लघु होते हैं । २. कुररा का स्त्रीलिंग रूप ।
क्रौंची । उ०—लै दच्छिन दिसि गयो गुसाई । विलपति अति
कुररी की नाई ।—तुलसी (शब्द०) । ३. 'कुररा' ।

कुरल^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. क्रौंच । २. वाज पक्षी । ३. कुवित केश ।
धुंधराले बाल ।

कुरल^२—सञ्ज्ञा पुं० [तं०] मद्रास के निकट मयलापुरम् मे जन्म लेनेवाले
सत कवि तिरुवल्लवर रचित तमिल मापा का धर्मनीति शास्त्र
ग्रंथ जो 'तमिलवेद' नाम से प्रसिद्ध है ।

कुरलना^७—क्रि० प्र० [सं० कलरव या कुरव, हिं० कुरं या मनु०]
मधुर स्वर से पक्षियों का बोलना । उ०—(क) कुरलहि सारस
करहि हुलासा । जीवन मरन सु एकद्व पासा ।—जायसी
(शब्द०) । (ख) कोतुक कलि करहि हुल नंसा । खूँदहि कुरलहि
जनु सर हुआ ।—जायसी (शब्द०) ।

कुरला—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] १ खेल । क्रीड़ा । २. कुल्ला । मुँह मे
सरकर पानी गिराना ।

कुरली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ कुररी पक्षी । २. वाज की मादा ।

कुरव^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. एक वृक्ष जिसके फूल लाल होते हैं । लान
फूल की कटमरैया । नाल कुरैया । कुरवक । मडुवा । उ०—
घट वकुल कदव पनम रसाल । कुमुमित तरनिकर कुरव
तमाल ।—तुलसी (शब्द०) । २. सफेद मदार । भाक । ३.
सियार । ४. कर्णकटु स्वर । कर्कश स्वर ।

कुरव^२—वि० [सं० कू + रव] कर्कश या बटु शब्द करनेवाला (को०) ।

कुरवक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुरैया का वृक्ष और फूल । कुरव । उ०—
छोटा सा कुरवक का पेड़ कैसा एक साथ फूल उठा ।—भारतेंदु
प्र० भा० १, पृ० ३६३ ।

कुरवा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुरवक] कटसरैया ।

कुरवा^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुडव] लकड़ी का एक वर्तन जो घन
नापने के काम आता है । यह एक सेर का होता है ।

कुरवारना^१—क्रि० प्र० [सं० कर्त्तन] खोदना । करोदना । खरोचना ।
उ०—(क) पग द्वे चलति ठठकि रहे ठाढ़ी मोन घरे हरि के
रस गीली । घरनी नख चरनन कुरवारति सोतिन भाग सुहाय
डहीली ।—सूर (शब्द०) । (ख) कोन्यो यिरिकि बंठु तेहि
डूरा । कोन्यो कली केन कुंवारा ।—जायसी (शब्द०) ।

कुरविद—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुरुविन्द] दे० 'कुरुविंद' ।

कुरुपेत^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुरुपेत्र] 'कुरुक्षेत्र' ।

कुरसय—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मैली खाँड़ ।

कुरसा^१—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] १ एक वृक्ष जो बहुत शीघ्र बढ़ता है
और देखने में बहुत अच्छा मालूम होता है । इसकी लकड़ी लान
रग की और मजबूत होती है और मकान तथा पुल के बनाने
के काम आती है । यह कुमायूँ, नीलगिरि अवध, बंगाल,
आसाम और मद्रास में होता है । २ जंगली गोभी ।

कुरसा^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुलिश] १ एक प्रकार की बड़ी मछली ।

कुरसी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार की चौकी जिसके पाये कुछ
ऊँचे होते हैं और जिसमें पीछे की ओर सहारे के लिये पटरी
या इसी प्रकार की और कोई चीज लगी रहती है । किसी
किसी में हाथों के सहारे के लिये दोनों ओर दो लकड़ियाँ भी
लगी रहती हैं । यह केवल एक आदमी से बैठने योग्य बनाई
जाती है ।

विशेष—कुरसी प्रायः लकड़ी की बनती है और उसमें बैठने और
सहारा लपाने का स्थान बैठ से बुना या चमड़े आदि से मड़ा
होता है । कभी कभी पट्टर, खोहे या किसी दूसरी धातु से
भी कुरसी बनाई जाती है । यह कई कई आकार और प्रकार
की होती है ।

यौ०—आराम कुरसी—एक प्रकार की बड़ी कुरसी जिसपर
आदमी लेट सकता है ।

२ वह चट्टन जिसके ऊपर इमारत या इसी प्रकार की और
कोई चीज बनाई जाती है । यह घासपास की भूमि से कुछ
ऊँचा होता है और पानी, सीढ़ आदि से इमारत की रक्षा
करता है । ३ पीढ़ी । पुत्र ।

यौ०—कुरसीनामा ।

४. वह चौकीर ताबीज जो हुमेल के बीच में रहती है। चौकी।
उरबसी। ५. नाव के किनारे किनारे की तछतावदी। जहाज
में इसी तछतावदी पर नीचे पाल बंधा रहता है। ६. जहाज
के मस्तुस के ऊपर की वे आड़ी तिरछी लकड़ियाँ जिनपर खड़े
होकर मल्लाह पाल की रस्सियाँ तानते हैं। ७. नदियों में
चलनेवाली छोटी नाव की लंबाई में पट्टियों का बना हुआ वह
चौरस स्थान जिसपर आरोही बैठते हैं। पादारक।

कुरसीनामा—सब्बा पुं [फा०] वह पत्र जिसमें किसी की वंशपरंपरा
लिखी हो। वंशवृक्ष। शजर। पुस्तनामा।

कुरह—सब्बा स्त्री [सं० कु + फा० रह या राह] बुरा रास्ता। कुमांग।
उ०—जो देख देजावी कुरह सो भर्म अंधेरी पुरा।—कवीर
म०, पृ० ३७१।

कुरहम—सब्बा पुं [सं० कु + प्र० रहम] पाप। निर्दयता। उ०—रहम
की नजर कर कुरहम दिल से दूर कर।—मलूक०, पृ० २६।

कुरां०—सब्बा पुं [प्र० कुरान] कुरान का संक्षिप्त रूप। उ०—
गवनी तोड़े सोमनाथ को, कावे को दे फूँक शिवा। जले कुरां
भरवी रेतों में सागर जा फिर वेद बहै।—ब्रह्म०, पृ० ३२।

कुरा—सब्बा पुं [प्र० कुरह] वह गाँठ जो पुराने जखम में पड़ जाती
है। इसमें पीब जमा रहता है और नासूर हो जाता है।

कुरा०—सब्बा पुं [सं० कुरव] कटसरैया। उ०—कुरे की डाल में
भँचल उलझा है।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)।

कुराई०—सब्बा पुं [हि० कुराह] बुरा रास्ता। तग और नीचा
ऊँचा रास्ता। उ०—कृष्ण कंदक काँकरी कुराई। कटुक कठोर
कुवस्तु दुराई।—तुलसी (शब्द०)।

कुराई—सब्बा स्त्री [देश०] पाँव में डालने का काठ।

कुराई—वि० [हि०] दे० 'कुराही'।

कुरान—सब्बा पुं [प्र० कुरान] अरबी भाषा की एक पुस्तक जो
मुसलमानों का धर्मग्रंथ है। उनका विश्वास है कि ईश्वर ने
इस ग्रंथ के वाक्यों को भिन्न भिन्न काल में जिवरईल
के द्वारा मुहम्मद साहब के पास भेजा था। इस ग्रंथ में तीस
भाग हैं जिन्हें 'पारा' कहते हैं।

विशेष—मुसलमान लोग आदर के लिये कुरान के साथ 'शरीफ'
'मजीद' आदि शब्द भी जोड़ते हैं। जैसे,—पढ़त कुरान शरीफ
अजब मुख विकृत वनावत।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २०।

मुहा०—कुरान उठाना या कुरान पर हाथ रखना = कुरान की
साखी देना। कुरान की कसम खाना। कुरान का जामा
पहनना = प्रत्यंत धर्मनिष्ठ बनना।

कुरानी—वि० [हि० कुरान + ई (प्रत्य०)] १. कुरान पर विश्वास
करनेवाला (मुसलमान)। २. कुरान से संबंधित।

कुराय०—सब्बा स्त्री [सं० कु + फा० राह] रास्ते का ऊँचा नीचा
स्थान। गड्ढा। खदरा। दे० 'कुराई'। उ०—काँट कुराय लपेटन
लोटेन ठाँवहि ठाँव बसाक रे। जस जस चलिय दूरि तस तस
निज बासन भेट जगाक रे।—तुलसी (शब्द०)।

कुरारी०—सब्बा स्त्री [हि० कुरीर] दे० 'कुररी'। उ०—बाएँ कुरारी

दाहिन कूचा। पहुँचें मुगुति जैस मन ल्हा।—जायसी ग्रं०
(गुप्त), पृ० २१२।

कुराल—सब्बा पुं [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो हिमालय के उत्तर-
पश्चिम विभाग में शिमला, गढ़वाल और कुमाऊँ आदि स्थानों
में होता है। इसमें फलियाँ लगती हैं।

कुरासी—सब्बा पुं [हि०] दे० 'कुरसा'।

कुराह—सब्बा स्त्री [सं० कु + फा० राह] [वि० कुराही] कुमांग।
बुरी राह। खराब रास्ता।

कुराहरा०—सब्बा पुं [सं० कोलाहल हि० कुलाहल] शोर। गुज
गपाडा। कोलाहल। उ०—कुहकहि मोर सुहावन लागा।
होय कुराहर बोलहि कागा।—जायसी (शब्द०)।

कुराही—वि० [हि० कुराह + ई (प्रत्य०)] कुमांगी। वदचलन।
उ०—कुटिल कुराही कुलदोषी सो कलक मरो कुमति मते मैं
अति महा मव पूर है।—रघुनाथ (शब्द०)।

कुराही—सब्बा स्त्री वदचलनी। कुराचार।

कुरिद—सब्बा पुं [देश०] दरिद्र।—(डि०)।

कुरिया—सब्बा स्त्री [सं० कुटी या कुटिका] १. फूस की झोपड़ी।
मँड़ई। कुटी।

क्रि० प्र०—उलना।—पड़ना।—छान।

२. बहुत छोटा गाँव।

कुरिया—सब्बा स्त्री [हि० कुरीना] १. ढेर। बोझ। गाँज। २.
राव क बोरो को जूसी निकालने के लिये तले ऊपर रखना।

कुरियाना—क्रि० सं० [हि० कुरिया + ना (प्रत्य०)] कूरा लगाना।
ढेर लगाना। एकत्र करना।

कुरियारी—सब्बा स्त्री [हि० कुरियाल] दे० 'कुरियाल'। उ०—सुख
कुरियार फरहरी खाना। विज भा जवहि विप्राध तुलाना।—
जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६७।

कुरियाल—सब्बा स्त्री [सं० कलनेल] चिड़ियों का मोज में बैठकर
पख खुलाना या झड़झड़ाना।

मुहा०—कुरियाल में आना = (१) चिड़ियों का आनंद में
होना। (२) मोज में आना। आनंद या उमंग में होना।
कुरियाल में गुलेला लगना = रंग में भग होना। आनंद में
विघ्न पड़ना।

कुरिला—सब्बा पुं [सं० कुरट] जूता बनानेवाला या चमड़े का कार-
वार करनेवाला चमार।

कुरिहार०—सब्बा पुं [सं० कोलाहल] शोरगुल। हल्ला गुल्ला।

कुरी—सब्बा पुं [सं०] १. चेना नाम का अन्न। २. भरदूर की
फलियाँ।

कुरी०—सब्बा स्त्री [सं० कुर] वंश। घराना। खानदान। उ०—
(क) भइ आही पदुमावति चली। छत्तिस कुरि भइ गोहन
भली।—जायसी (शब्द०)। (ख) निव नव मंगल कोसलपुरी।
हरषित रहहि लोग सब कुरी।—तुलसी (शब्द०)।

कुरी०—सब्बा स्त्री [हि० कोइरी] दे० 'कोइरी'। उ०—तब लगि
बोषो कुरी चमारा।—कवीर सा०, पृ० ६३५।

कुम्हलाना—क्रि० अ० [सं० कु + म्लान] १ राजगी का जाता रहना । सरसता और हरापन न रहना । मुरझाना । जैसे,—पौधे, पत्ते, फूल आदि का कुम्हलाना । उ०—तय पर फूल कमल पर जल कण सुंदर परम सुहाते हैं । अल्प काल के बीच कितु वे कुम्हलाकर मिट जाते हैं ।—श्रीधर पाठक (शब्द०) । २ सूखने पर होना । ३ प्रफुल्लता रहित होना । कातिका मलिन पडना । प्रमाहीन होना । जैसे—इतनी धूप में आए हो, चेहरा कुम्हलाया हुआ है । उ०—सुनि राजा अति अग्रिय वानी । हृदय कप मुख दुति कुम्हलानी ।—तुलसी (शब्द०) ।

कुम्हार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुंभकार, प्रा० कुंभार] [बी० कुम्हारन] १ मिट्टी का बरतन बनानेवाला मनुष्य । २ मिट्टी का बरतन बनानेवाली जाति ।

कुम्हलाना(उ०)—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'कुम्हलाना' । उ०—(क) सुंदर तन सुकुमार दोउ जन सूर किस्मि कुम्हलात ।—सूर०, ६।४३ । (ख) भजन बेलि जात कुम्हलाइ । कोनि जुक्ति कै भक्ति दूढाइ ।—जग० श०, भा० २, पृ० ६८ ।

कुम्ही(उ०)—सञ्ज्ञा बी० [सं० कुम्भी] एक पौधा जो पानी पर फैलता है । उ०—लोचन सपने के भ्रम भूने । मोते गए कुम्ही के जर ज्यो ऐसे वे निरमूले । सूरश्याम जल राशि परे अब रूप रंग अनुकूले ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—३० 'कुम्भी' ।

कुम्हड़ा(उ०)—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कुम्हड़ा] दे० 'कुम्हड़ा' ।

कुयलिया(उ०)—सञ्ज्ञा बी० [हि० कोयल + इया (प्रत्य०)] दे० 'कोयल' । उ०—कूकनि लगी कुयलिया मधुर महान ।—नट०, पृ० १०४ ।

कुयोनि—सञ्ज्ञा बी० [सं०] क्षुद्र जंतुओं की कोटि । तिर्यक्योनि ।

कुरकर, कुरकुर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुरङ्कर, कुरङ्कुर] सारस पक्षी [को०] ।

कुरंग^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुरङ्ग] [बी० कुरगी] १ वादामी या तामड़े रंग का हिरन । २ मृग । हिरन ।

यो०—कुरगलाछन ।

३ बरवें छद का एक नाम । ४ चंद्रमा में दृश्यमान धब्बा (को०) ।

कुरग^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कु + हि० रंग] १ बुरा रंग ढग । बुरा लक्षण । २ घोड़े का एक रंग जो लोहे के समान होता है । गीला । कुम्भत । लखोरी । ३ इस रंग का घोड़ा । कुन्ठा, लखोरी । उ०—हरे कुरग मह्य वहु भाँती । गरर कोकाह वलाह सुपाँती ।—जायसी (शब्द०) ।

कुरग^३—बुरे रंग का । बदरग ।

कुरगक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुरङ्गक] हरिण । मृग [को०] ।

कुरगनयना—वि० बी० [सं० कुरगनयन] हिरन की आँखों के समान बड़ी बड़ी आँखोवाली [को०] ।

पर्या०—कुरगनयनी ।—कुरगनेत्रा ।—कुरगलोचना ।

कुरगम—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुरङ्गम] हरिण । मृग । कुरंगक [को०] ।

कुरगनाभि—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुरङ्गनाभि] कस्तूरी [को०] ।

कुरगवाछन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुरङ्गवाछन] चंद्रमा । मृगलाछन ।

कुरगिन, कुरगिनि(उ०)—सञ्ज्ञा बी० [सं० कुरङ्ग] हिरन । उ०—(क) चदन माँझ कुरगिन खोजू । तेहि को पाव को राजा भोजू ।—जायसी (शब्द०) । (ख) जोवन पखी विरह विभाधू । केहरि भयो कुरगिनि छाध ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २३६ ।

कुरगसार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुरङ्गसार] कस्तूरी । मृग । उ०—केसर कुरगसार रंग से लिपित दोऊ दूह मे दिपति ओ छिपति जात छाठी में ।—देव (शब्द०) ।

कुरगी^१—सञ्ज्ञा बी० [सं० कुरङ्गी] हरिणी । मृगी ।

कुरगी^२—वि० [सं० कु + हि० रंग] बुरे लक्षण, स्वभाव या रंगवाला ।

कुरच(उ०)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० क्रीच] दे० 'क्रीच' । उ०—ठाम ठाम जल थान मँदिर जल जीव निवासिय । ढँक कुरम कुरच हस सारस सुम भासिय ।—गृ० रा० ६।६५ ।

कुरचदोप(उ०)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० क्रीचचदोप] दे० 'क्रीचदोप' । उ०—कुरचदोप जव मनुष्या वहैं । रचक हरि जस अतरि गहैं ।—प्राण०, ४६ ।

कुरट—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुरण्ट] दे० 'कुरंटक' [को०] ।

कुरटक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुरण्टक] [बी० कुरटिका] पीली कटसरैया ।

कुरड^१—सञ्ज्ञा पुं० [कुर्दाद = गाणिक] एक खनिज पदार्थ, जो एक प्रकार का सूक्ष्म अनुमीनम है और मिस्त्री की चमकीली डली के रूप में जमा हुआ मिलता है ।

विशेष—कड़ाई में यह हीरे से कुछ ही कम होता है । इसके चूणों को लाख आदि में मिलाकर हथियार तेज करने की सान बनाते हैं । अविशुद्ध अवस्था में चूबक आदि से मिला हुआ जो दानेदार कुरड मिलता है, वह मानिकरेत कहलाता है, जिससे सोनार सोने चाँदी के गहनों पर जिना देते हैं । अधिक फातिवाले जो कुरड मिलते हैं वे रत्न माने जाते हैं, और रंग के अनुसार उन्हें मानिक (लाल), नीलम, पुखराज, गोमेद आदि कहते हैं ।

कुरड^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुरण्ड] १ ओपध के काम में प्रयुक्त होनेवाला एक पौधा ।

विशेष—यह पौधा खेतों के किनारे और इधर उधर उगता है । इसमें सफेद रंग के फूल लगते हैं । बँधक में इसे अग्निदीपक, रुचिकारक, वीर्यवर्द्धक और मूत्रकृच्छ को दूर करनेवाला माना है ।

२ फोटा बढ़ने का रोग । अडबृद्धि रोग (को०) ।

कुरंडक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुरण्डक] पीली कटसरैया ।

कुरंद^१, कुरंदरी—सञ्ज्ञा पुं० [दिश०] गरीबी । वरिद्रता । उ०—(क) मनरा महराण समापण मोजा, कापण दीना तरण कुरद ।—रघु० ६०, पृ० १६ । (ख) वामण चार वेद के वकता, आगम दुष्टी ज्ञान धूरधर । साहुकार सकी धजबंधी दूनी गण अलेप कुरदर ।—रघु० ६०, पृ० २७४ ।

कुरवा—सञ्ज्ञा पुं० [दिश०] भेड़ की एक जाति डी। डोल में छोटी होती है और जिसके बाल नीचे से काने पर सिर पर सफेद होते हैं । इसका मांस अच्छा और स्वादिष्ट होता है ।

कुरम

कुरम^७—सब्बा पुं [सं० कर्म] कर्म । कछुवा । उ०—डेंक कुरम कुरच । हस सारस सुम भासिय ।—पृ० रा० ६ । ६५ ।

कुरप्रान—सब्बा पुं [ग्र० कुरप्रान] दे० 'कुरान' । उ०—जर दीन है, कुरप्रान है, ईमा है, नवी है । जर ही मेरा अल्लाह है, जर राम हमारा ।—भारतेदु ग्र०, भा० १, पृ० ५२५ ।

कुरकनी—सब्बा स्त्री [देश०] घोड़े या गधे के चमड़े का अगला भाग जिसका कीमुक्त नहीं बन सकता ।

कुरका—सब्बा स्त्री [सं०] १ सलाई । चीड़ । २ दक्षिण का एक देश जिसे अब कुर्ग कहते हैं । ३ एक नगर जो कुर्ग देश में ताम्रपर्णी नदी के किनारे था और जहाँ वंष्णव आचार्य शठकोप का जन्म हुआ था ।

कुरकी—सब्बा स्त्री [तु० कुर्क] दे० 'कुर्की' ।

कुरकुड—सब्बा पुं [देश०] एक ग्रास जिसे रीहा और कनखुरा भी कहते हैं । यह आमाम और वगान में होती है । इसका रेशा बहुत बड़ और बारीक होता है और जाल कपड़े आदि बनाने के काम में आता है ।

विशेष—दे० 'रीहा' ।

कुरकुट^१—सब्बा पुं [सं० कुट = कुटना या कुट का आन्त्रेयित रूप] किसी वस्तु का छोटा टुकड़ा ।

कुरकुट^२—सब्बा पुं [सं० कुक्कुट] १. गुर्गा । तमचुर । २. मुर्गे की बोनी । उ०—कुरकुट सुनि चुरकट भई वाला । लीने उससि उसाय बिसाला ।—नद० ग्र०, पृ० १४२ ।

कुरकुटा—सब्बा पुं [सं० कुट = कूटना] १ किसी वस्तु का कूटा हुआ रवा । टुकड़ा २ रोटी का टुकड़ा । उ०—कैसे सहव खिनहि बिन भूखा । कैसे खाव कुरकुटा खूबा ।—जायसी (शब्द०) ।

कुरकुर—सब्बा पुं [अनु०] खरी वस्तु के दबकर टूटने का शब्द । जैसे,—पापड़ दाँत के नीचे कुरकुर बोलता है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।—बालना ।

कुरकुरा—वि० [हि० कुरकुर] [स्त्री० कुरकुरी] खरा और करारा जिसे तोड़ने पर कुरकुर शब्द हो ।

कुरकुराना—क्रि० अ० [हि० कुरकुर] १ कुरकुर शब्द करना । २. कुरकुर शब्द करते हुए खाना (को०) ।

कुरकुराहट—सब्बा स्त्री [हि० कुरकुर] कुरकुर शब्द होने का भाव । कुरकुरी—सब्बा पुं [देश०] अनु० १ घोड़े की एक बीमारी जिसमें उसका पखाना, पेशाब बंद हो जाता है और पेट फूल आता है ।

२. पतली मुलायम हड्डी, जैसे, कान की ।

कुरसेत^१—सब्बा पुं [सं० कुरसेत्र] १ वह स्थान जहाँ महाभारत का युद्ध हुआ था । २. युद्ध । संघर्ष ।

कुरसेत^२—सब्बा पुं [हि०] वह खेत जिसकी जुताई हो गई हो किंतु बुवाई न हुई हो ।

कुरगरा—सब्बा पुं [हि० कोर + गर] एक छोटी बापी जिसमें दर्जबंदी तथा कारनिश आदि का बारीक काम किया जाता है ।

कुरय^१—सब्बा पुं [सं० कौश्व] कराकुल गती । उ०—इति विधि रोबनि जाति सिय, कुरच सरिस नन माहि । हे रघुवर हे शरणपाति केहि मय राखवु नाहि ।—(शब्द०) । (२) बाराह बाघ

धिलाप करि कुरच सरिस रघुराइ । तब लगि मैं सिप्यन सहित पढ़ेचेउ तेहि वन आइ ।—मधुसूदनदास (शब्द०) ।

कुरचिल्ल—सब्बा पुं [सं०] केकड़ा ।

कुरट—सब्बा पुं [सं०] १ चमड़ा वेचनेवाला । २ जूते बनानेवाला । चर्मकार (को०) ।

कुरडा—सब्बा पुं [देश०] [स्त्री० कुरड़ी] अरबी और नुरकी जाति के घोड़ों के जोड़े से उत्पन्न एक दोगली जाति का घोड़ा । इस जाति के घोड़े अरब में मिलते हैं ।

कुरता—सब्बा स्त्री [तु०] [स्त्री० कुरती] एक पहनावा जो बालकर पहना जाता है और जिसमें सामने छाती के नीचे किसी प्रकार का जोड़ या परदा नहीं होता ।

कुरती—सब्बा स्त्री [हि० कुरता] १ स्त्रियों का एक पहनावा जो फन्ही की तरह का होता है । २ (सोनार लोगों की बोली में) स्त्री ।

कुरथी^१—सब्बा स्त्री [हि०] दे० 'कुलथी' ।

कुरन^१—सब्बा पुं [हि०] दे० 'कुरड' । उ०—शब्द मस्कला करे ज्ञान का कुरन लगावै ।—पलटू, पृ० ६ ।

कुरन^२—सब्बा पुं [हि० कूरा] राशि । ढेर ।

कुरना^१—क्रि० अ० [हि० कूरा = ढेर] १ ढेर लगना । कूरा लगना । उ०—(क) वैभव विभव ब्रह्मानंद की अपार धार कोशल की कोश एकवार ही कुरे परी ।—रघुराज (शब्द०) । (ख) पारावार, पूरन, अपार परब्रह्म राशि, जसुदा की कोरें एकवार ही कुरे परी ।—देव (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

२. दे० 'कुरलना' । उ०—सारी मुग्धा जो रहचह करही । कुरहि परेवा ओ करवरही ।—जायसी (शब्द०) ।

कुरव^१—सब्बा पुं [हि०] इज्जत । उ०—कवियण किए पायो कुरव मागे मावडियाह ।—वांकी ग्र०, भा० २, पृ० १५ ।

कुरव^२—सब्बा पुं [सं०] कुरवक नामक वृक्ष और उसका फूल । लाल कटसरैया (को०) ।

कुरवक—सब्बा पुं [सं०] कटसरैया ।

कुरवनही—सब्बा स्त्री [हि० कोर + वनना] बड़ियों का एक ओगार जो खानी के आकार का होता है और जिससे कोने की कस छीलकर साफ करते हैं । इसमें दस्ता नहीं होता ।

कुरवान—वि० [प्र०] १. जो न्योछावर किया गया हो । जो बनिदान किया गया हो । २. न्योछावर । निरावर । ३. बलि । सदका (को०) ।

मुहा०—कुरवान करना = न्योछावर करना । बारवा । उ०—चंचल चाव विशाल विवि लोचन मोचन मान । चितवत दिशि कब देविहो मन की करि कुरवान ।—विश्राम (शब्द०) ।

कुरवान जाना = न्योछावर होना । बलि नाना । कुरवान होना = (१) न्योछावर होना । (२) मरना । प्राण देना ।

कुरवानी—सब्बा स्त्री [प्र०] १ किसी दाना आदि के लिये किसी जीव को बलिदान करने की क्रिया । कुरवान करने का आन ।

सोर्गहि नसावै । प्रमोद उपजावै । अतीव सुकुमारी । कुमार ललिता री । २ बालको की क्रीडा ।

कुमारलसिता—सखा श्री० [सं०] आठ अक्षरों का एक वृत्त, जिसमें एक जगदण, एक सगण और अत में एक लघु और एक गुरु होता है । उ०—भजो जु सुखकद को । हरो जु दुख छद को । (शब्द०) ।

कुमारवाहन—सखा पुं० [सं०] मोर । शिखी । बर्ही । मयूर [को०] । कुमारव्रत—सखा पुं० [सं०] जीवन भर ब्रह्मचर्य पालन करने का व्रत [को०] ।

कुमारसम्भव—सखा पुं० [सं० कुमारसम्भव] कालिदासप्रणीत एक महाकाव्य ।

विशेष—इस काव्य में शिव-पार्वती-विवाह और कुमार कर्तिकेय की उत्पत्ति का विस्तृत वर्णन है । इस महाकाव्य में कुल १७ सर्ग हैं जिसमें प्राचीन टीकाएँ पाठ सर्ग के बाद नहीं मिलती । अतः ऐसा विश्वास किया जाता है कि कालिदास ने आठ ही सर्गों की रचना की है तथा शेष नव सर्ग किसी अन्य ऋषि की कृति हैं ।

कुमारसू—सखा श्री० [सं०] कुमार कार्तिकेय की जननी । पार्वती [को०] ।

कुमारगामात्य—सखा पुं० [सं०] गुप्तकाल में उच्च पदाधिकारियों को दी जानेवाली एक उपाधि । उ०—सम्भवतः सम्राट् तो कुसुमपुर चले गए हैं, और कुमारगामात्य महाबनाधिकृत बीरसेन स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया ।—रकद०, पृ० ४ ।

कुमारि(पु)—सखा श्री० [सं० कुमारी] दे० 'कुमारी' । उ०—मौन ते निकसि घुपमानु कं कुमारि देखयो, ता समं सहैत को निकुंज गिरयो तीर को ।—मति० ग्रं०, पृ० २६० ।

कुमारिका—सखा श्री० [सं०] कुमारी । उ०—जागी पृथ्वी तनया कुमारिका छवि मधुत ।—प्रपरा, पृ० ४० ।

कुमारिख भट्ट—सखा पुं० [सं०] प्रसिद्ध मीमांसक और शबर भाष्य तथा अन्य श्रोत सूत्रों के टीकाकार ।

विशेष—पहले इन्होंने जैन धर्म ग्रहण किया था पर कुछ समय पीछे अपने जैन गुरु को शास्त्रार्थ में परास्त करके ये वैदिक धर्म का प्रचार करने लगे थे । कहते हैं गुरुसिद्धान्त का खडन करने के प्रायश्चित्त के लिये ये कूटाग्नि में जल मरे थे । यह भी कहा जाता है कि इनके अग्नि में जलने के समय शकराचार्य इनके पास बैठ करने के लिये गए थे ।

कुमारी^१—सखा श्री० [सं०] १ दस वर्ष से बारह वर्ष तक की अवस्था की कन्या ।

यौ०—कुमारीपूजा ।

२ अविवाहिता कन्या (को०) ३ कन्या । पुत्री । लडकी (को०) । ४ घोकुशर ५ नवमल्लिका । ६ बौद्ध ककोड़ी । ७. बड़ी इलायची । ८ श्यामा पक्षी ९ सीता जी का एक नाम । १० पार्वती ११ दुर्गा १२ एक अतरीय जो भारतवर्ष के दक्खिन में है । १३ चमेली १४ सेवती । १५ पृथ्वी का मध्य भाग १६ शाकद्वीप की सात नदियों में एक । १७ अषराजिता ।

कुमारी^२—वि० विना व्याही । जिस (स्त्री) का विवाह न हुआ हो । कुमारीपुत्र—सखा पुं० [सं०] १ कुमारी से उत्पन्न व्यक्ति । २ कर्ण का नाम [को०] ।

कुमारीपुर—सखा पुं० [सं०] राजभवन का वह भाग जिसमें कुमारी लडकियाँ रहती हैं [को०] ।

कुमारीपूजन—सखा पुं० [सं०] एक प्रकार की पूजा जो देवी पूजन के समय होती है और जिसमें कुमारी बालिकाओं का पूजन करके उन्हें मिष्ठान्न आदि दिया जाता है ।

कुमार्ग—सखा पुं० [सं०] [वि० कुमार्ग] १ दुरा मार्ग । बुरी राह । २ अधर्म ।

कुमार्गगामी—वि० [सं० कुमार्गगामिन्] १ कुमारी । कुमार्गी । २ अधर्मी ।

कुमार्गी—वि० [सं० कुमार्गिन्] [श्री० कुमार्गिनी] १ वदचलन । कुचाली । २ अधर्मी । धर्महीन ।

कुमालक—सखा पुं० [सं०] १ एक प्राचीन प्रदेश जो वर्तमान मालवा के अंतर्गत था । इसे सोवीर भी कहते हैं । २ उक्त देश के निवासी ।

कुमाला—सखा पुं० [देश०] एक छोटा पेड़ जिसका फल खाया जाता है ।

विशेष—यह पेड़ देहरादून, अथवा, छोटा नागपुर, बंबई तथा दक्षिण भारत में होता है । यह ८१० फुट ऊँचा होता है और इसकी पत्तियाँ चार पाँच इंच लंबी होती हैं । यह जेठ अथाह में फूलता है और इसका फल खाया जाता है ।

कुमिस—सखा पुं० [सं० कु + मिष प्रा० मिस] कुम्माज । बुरा घोड़ा । दुष्टता से भरा बहाना या छद्म । उ०—भूपण कुमिस गैर मिसिल खरें किए को ।—भूपण ग्रं०, पृ० २० ।

कुमीच(पु)—सखा श्री० [सं० कु + मृत्पु > प्रा० मिच्चु] बुरी मृत्पु । अपमृत्पु ।

कुमुख^१—सखा पुं० [सं०] १ रावण के दुर्मुख नामक एक योद्धा का नाम । २ यूपुर ।

कुमुख^२—वि० पुं० [सं०] [वि० श्री० कुमुखी] १ बुरे मुखवाला जिसका चेहरा देखने में अच्छा न हो । २ कुत्सित या अपविचार की व्यवहार करनेवाला (मुख) । उ०—सार्गह कुमुख वचन सुम कैमै ।—पानस, २४३ ।

कुमुद—सखा पुं० [सं०] १ कुई २ लाल कमल । ३ निर्दय । बेरहम । ४ कजूर ।

कुमुद^१—सखा पुं० [सं०] १ कुई । कोका २. लाल कमल ।

यौ०—कुमुदवधु = चंद्रमा ।

३ चाँदी । ४ विष्णु । ५ एक वदर का नाम जो रावण के युद्ध में लडा था । ६ एक प्रकारका वृक्ष । ७ एक द्वीप का नाम ८ कपूर ९ एक नाग का नाम । इसकी बहन कुमुद्वती कुश की पत्नी थी । १० आठ दिग्गजों में से एक जो दक्षिणपश्चिम कोण में रहता है ११ विष्णु का एक पारिपद । १२ सगीत का एक ताल १३ एक केतु तारा जो कुई के आकार का है ।

विशेष—इ शब्द में चद्र होता है और एक ही तर्ज को चन्द्रादिना है। इसकी लिका पूर्व की ओर होती है। कहे हैं कि इसके चद्र होने पर चद्र वरं उक्त कुमुद स्वयं है।
कुमुद—सं० [चं०] कुमुद। २. लोनी। चानवी।

कुमुदका—सं० [चं०] चंद्रादी। ज्योत्स्ना। उ०—कुमुदका है वही किच्छी वह नम जैसा निर्मल है।—दोहा, पृ० २।
कुमुदिका—सं० [चं०] चंद्रा की किरण। चंद्ररश्मि। उ०—
उ०—मुहिन विदु बनकर मुंदर, कुमुदिका से सहव वर।
—दोहा, पृ० २।

कुमुदी—सं० [चं०] कुमुदिनी। उ०—‘कुमुदिनी’।
कुमुदवृ—सं० [चं०] कुमुदवृ। चंद्रा।
पद्यो—कुमुदनाथ। कुमुदपति। कुमुदवांघव। कुमुदसुहृत्।
कुमुदिन—सं० [चं०] कुमुदिनी। उ०—
वसु कुमुदिन घर चली चंद्रा दीन परन सुख।—नंद० प्र०,
पृ० २०६।

कुमुदिक—वि० [चं०] १. कुमुद से संबंध रखनेवाला। २. कुमुदो से भरा हुआ।

कुमुदिका—सं० [चं०] कटफन (को०)।

कुमुदिनी—सं० [चं०] १. कुई। कोई २. वह स्थान जहाँ कुमुद हों। उ०—कहुं संवालन मध्य कुमुदिनी लगी रहि पतिन।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ४५४।

विशेष—इस शब्द के साथ ‘पति’ वाची शब्द जोड़ने से जो समस्त शब्द बनते हैं वे चंद्रमा का अर्थ देते हैं।

कुमुदिनीपति—सं० [चं०] चंद्रमा।

कुमुदती—सं० [चं०] १. पड़ज स्वर की चार श्रुतियों में से दूसरी श्रुति। १. नागराज कुमुद की भगिनी और कुश की स्त्री। २. कुमुद से पूर्ण वावड़ी। उ०—किन तीक्ष्ण करो से छिन हई, यह कुमुदती जल भिन हई।—साकेत, पृ० १४६।

कुमेटी—सं० [चं०] [दिश० कुमंड] बुराई। उ०—मेटी सकन कुमेटी थोथी पोथी पठत मरौरी।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ५०४।

कुमेटी—सं० [चं०] [प्र० कनिटी] विचार विमर्श। राय मशविरा।

कुमेडिया—सं० [चं०] [दिश०] एक छोटी जाति का हाथी।

कुमेता—सं० [चं०] [दिश०] दे० ‘कुम्मत’। उ०—मुसकी पंचकल्पानी कुमेता केहरि रगा।—सुजान०, पृ० ८।

कुमेक—सं० [चं०] दक्षिणी ध्रुव।

कुमेडी—सं० [चं०] [दिश०] छल। कपट। धोखा। दगा।

कुमेत—सं० [चं०] [दिश०] ‘कुम्मत’। उ०—रंग रंग के सजे तुरंगा।

कुल्लह समुद कुमेत सुरगा।—हमीर० पृ० ३।

कुमेडिया—सं० [चं०] [दिश०] कुमंड छली। कपट। दगावाग।

कुमोद—सं० [चं०] कुमुद। कुई। उ०—चली सदै माया लैग मुले कमल कुमोद। वेध रही गन गधरव बाग पारंग लामोद।—जायसी (शब्द०)।

कुमुदी—सं० [चं०] [दिश०] कुमुदी। उ०—कुमुदी।

कुमुदी—सं० [चं०] [दिश०] कुमुदी। उ०—कुमुदी।

कुमुदी—सं० [चं०] [दिश०] कुमुदी। उ०—कुमुदी।

कुमुदी—सं० [चं०] [दिश०] कुमुदी। उ०—कुमुदी।
नारदों के वर कुमुदी में गरी। उ०—कुमुदी।
हरिचंद्र विचारी।—कुमुदी, पृ० १, पृ० १११।

कुम्मत—सं० [चं०] [दिश०] कुम्मत। उ०—कुम्मत।
लाव होता है। तादी। २. नर जोर जोर हो निरकार हो। इस रंग का जोड़ा ब्रह्म नन्दन और तेज रंग है।

पौ०—प्राची पांड कुम्मत = मलय बसुर। उ०—प्राची। पांडव।

कुम्मत—सं० [चं०] कुम्मत रंग का।

कुम्मत—सं० [चं०] [दिश०] दे० ‘कुम्मत’।

कुम्हड़ा—सं० [चं०] कुम्हड़ा, पा० कुम्हड़ा, पा० कुम्हड़ा।
फँसनेवाली येन जिसके ऊरी की तरफारी और मुरग, पास मादि बनाया जाता है।

विशेष—इसके पत्ते बड़े, घोल रोहंशर होते हैं। पत्ते का डंडल पड़ा और पोता होता है। इसमें पंखों के आकार के बड़े बड़े पीले फूल लगते हैं। कुम्हड़े की रंग रंगत दूर तक फैली है। इसके फल घोल और रंगत बड़े बड़े तात भांड सेर तक के होते हैं। कुम्हड़ा जो प्रसार ला होता है—एक सफेद, दूसरा पीला। सफेद रंग के कुम्हड़े को पेडा कहते हैं। यह खाने में बहुत फीला सा होता है। लोग इसका मुरग बनाते हैं और इसके महीन टुकड़ों को पीडी में गिराकर चरी भी बनाते हैं। पीले कुम्हड़े का गुता लाल रंग का और खाने में भीड़ा होता है। इसकी दो फसलें होती हैं—एक मरगो में, दूसरी बरसात में। मरगो का कुम्हड़ा जमीन पर और बरसात का छप्पर आदि पर फोलाता है। कुम्हड़े के फल की तरफारी होती है और फूलो तथा पत्तों का रंग बनाता है।

परा—परासीफल। पेडा।

२. कुम्हड़े का फल।

मुम्हड़ा—सं० [चं०] [दिश०] कुम्हड़े का छोटा फल। (२) मरगो और मिर्च मरगो। उ०—दहा कुम्हड़मरगो कोउ लादी। जो तजनि येका गरि जादी।—प्राची (पं० २०)।
कुम्हड़े की बरसात—(१) कुम्हड़े का छोटा फल। (२) मरगो और मिर्च मरगो।

कुम्हड़ी—सं० [चं०] [दिश०] कुम्हड़ा की पीरी (पं० २०)। १. एक प्रकार की मरी, जो पीडी में कुम्हड़े के महीन महीन टुकड़े गिराकर

कुविज^५—वि० [सं० कुवज] दे० 'कुव' । उ०—कुविज खज अर
स्यामर्दत नर ।—पं० रासो, पृ० १४ ।

कुविजा^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कुवजा' ।

कुवुजवा^५—वि० [सं० कुवज, हि० कुविल, कुवुज + वा (प्रत्यय)]
कुवडा । कुवज । उ०—सइयाँ हमरे कुवुजवा हो हम घन अल्प
कुमारि ।—गुलाल०, पृ० ५३ ।

कुवुजा^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कुवजा' । उ०—कोउ कहे रे मधुप
स्याम जोगी तुम चेला । कुवजा तीरथ जाइ कियो इद्रिन को
मेला ।—नद० ग्र०, पृ० १८५ ।

कुवुद—सञ्ज्ञा पुं० [वेश०] एक प्रकार का वगला ।

कुवुद्धि^५—वि० [सं०] जिसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई हो । दुबुद्धि ।
मूर्ख ।

कुवुद्धि^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ मूर्खता । वेवकूफी । २ बुरी सलाह ।
कुमत्रणा ।

कुवुधि^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कुवुद्धि' । उ०—नाम श्री क्रोध
दुइ पाप का मूल हैं, कुवुधि का बीज का जानि बोव ।—कबीर
रे०, पृ० ३२ ।

कुवेर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुवेर] दे० 'कुवेर' ।

कुवेला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुवेला] बुरा समय । अनुपयुक्त काल ।
उ०—अगर डोला कभी इस राह से गुजरे कुवेला, यहाँ अववा
तरे एक एक पल विश्राम लेना ।—ठंडा०, पृ० १८ ।

कुवोल—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कु + हि० बोल] १ बुरी बात । अशुभ
वचन । अमंगल बात ।

कुवोलना^५—वि० [हि० कुबोल] बुरी या अशिष्टतायुक्त बात कहने-
वाला । अशुभभाषी । कुभाषी ।

कुवोलनी—वि० स्त्री० [हि० कुबोल] बुरा बोल बोलनेवाली ।
कुभाषिणी । उ०—युवांत कुरूप कुबोलनि जाके । सदा शोक
दिय ह्वै है ताके ।—निश्चल (शब्द०) ।

कुवज^५—वि० [सं०] [स्त्री० कुवजा] जिसकी पीठ टेढ़ी हो । कुवड़ा ।

कुवज^५—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ एक रोग जिसमें वायु का विकार स छाती
या पोठ टढ़ा होकर ऊँचा हो जाता है । यह दो प्रकार का
होता है । एक में पोठ आगे का ओर और दूसरे में पीठ की
ओर झुकता है । २ अशामाग । लहचिचड़ा । लटजोरा ।

कुवजकठ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुवजकठ] सनिपात का एक रोग ।

विशेष—इसमें कठ एक जाता है और रोग के गल क नीचे पानी
नहीं उतरता । इसमें दाह, माह आदि भी होता है । वंशक में
इस असाध्य माना है, और इसको अवधि १३ दिन बतलाई है ।

कुवजक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ माखती । २ नगर के आठ प्रकारों में
से एक । उ०—शहर आठ तरह के होते हैं—राजधानी, नगर,
पुर, नगरी, खेड, खवाट, कुवजक, पहन ।—हिंदु० सभ्यता,
पृ० ४८४ ।

कुवजा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ कप की एक दासी, जिसकी पीठ कुवड़ी
थी । यह कृष्णचंद्र से अधिक प्रेम रखता था । कुबरी । २.
कंकरी की मयरा नाम का एक दासी । उ०—लखनू, भरतु,
पिपुदमन सुमित्रा कुवरी के उर साल ।—मूलसी (शब्द०) ।

कुवजिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ आठ वर्ष की अवस्था की लड़की । २
दुर्गा देवी का एक नाम ।

कुव्वा^५—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कुव्वा] डिल्ला । कुवड़ ।

कुव्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ जंगल । २ यज्ञार्थ निमित्त कुड । ३ अंगूठी ।
४ कान में पहनने का एक आभूषण । वालो । ५ डोरा ।
ततु । घागा । ६ गाड़ी । कफट (को) ।

कुभरा^५—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कुम्हार] दे० 'कुम्हार' । उ०—कुमरा ह्वै
करि वासन घरिहूँ घोवी ह्वै मल धोम्र ।—कबीर ग्र०,
पृ० २१७ ।

कुभा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ पृथ्वी की छाया । २. बुरी दीप्ति । ३.
काबुल नदी ।

कुभाय^५—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुभाव] दे० 'कुभाव' । उ०—नायें कुभायें
अनख आलस हूँ । नाम जपत मंगल दिसि दखूँ ।—
मानस, १।२८ ।

कुभाव—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कु + भाव] अनुचित भाव । दुर्वृत्ति । प्रेमशून्य
भाव ।

कुभूत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. पर्वत । २ सात की सञ्ज्ञा । ३ काबुल
नदी ।

कुमठी^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कमठ = वाँस] पतली लचीली टहनी ।
उ०—पाता बड़ बड़ देखि के चढ़े कुमठी घाय । तबवर होय तो
भार सह टूट रेड अरराय ।—गिरिधर (शब्द०) ।

कुमत्रणा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुमत्रणा] बुरी सलाह ।

कुमत्रित—वि० [सं० कु + मत्रित] जिसे असत् परामर्श दिया गया हो ।

कुमइत^५—सञ्ज्ञा पुं०, वि० [हि०] दे० 'कुर्मत' ।

कुमकु—सञ्ज्ञा स्त्री० [तु०] १ सहायता । मदद । उ०—लार्ड माकलेड
ने जाने से पहले जलालाबादवालों की कुमक के लिये पेशावर
में फौज जमा होने के लिये हुक्म जारी किया ।—शिवप्रसाद
(शब्द०) । २ पक्षपात । हिमायत । तरफदारी ।

क्रि० प्र०—करना ।—पहुँचना ।—पहुँचाना ।—देना ।—माना ।
मुहा०—कुमक पर होना = हिमायत करना । पक्ष लेना । तरफ
दारी करना ।

कुमका^५—वि० [तु० कुमक] कुमक या कुमक से संबंध रखनेवाला ।
जैसे—कुमकी फौज ।

कुमका^५—सञ्ज्ञा स्त्री० हाथियों के पकड़ने में सहायता करने के लिये
सिन्धुई दुई हाथना ।

कुमकुम—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुकुम] १. केशर । उ०—जहाँ स्याम घन
रास उपायो । कुमकुम जल सुख दृष्टि रमायो ।—सुर (शब्द०) ।
२ कुमकुमा । उ०—चंदन कालकूट सम जानहु । कुमकुम पवि
प्रहार सब मानहु ।—मधुसूदनदास (शब्द०) ।

कुमकुसा—सञ्ज्ञा पुं० [तु० कुमकुसा] १. लाव का बना हुआ एक
प्रकार का पोला, गाल या चिपटा लट्ठ जिसमें अवीर और
गुलाल भरकर होली में लोग एक दूसरे पर मारते हैं । इसके
टूटने से गुलाल अवीर आदि दूधर उधर बिखर जाता है । उ०—
चलत कुमकुसा रंग पचकारी सब गुलाल का गारा ।—भारतेंद्र
ग्र०, भा० १, पृ० ४०४ । २. पक्ष प्रकार का वृक्ष मुँह का छोका

कुपट—वि० [सं० कु + हि० पट्] अनपढ़। मूर्ख।

कुपट्य^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुपट्य, प्रा० कुपथ्य] १ किसी रोगी के रोग को बढ़ानेवाला आहार विहार। २ अस्वास्थ्यकर खान पान।

कुपट्यो^२—वि० [सं० कुपथ्य] कुपथ्य करनेवाला। असयमी।

कुपट्यो^३—सञ्ज्ञा पुं० वह व्यक्ति जो पथ्य से न रहे। बदपरहेज आदमी।

कुपथ^४—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ बुरा रास्ता। २ निषिद्ध आचरण। बुरी चाल।

यो०—कुपथगामी=कुमारी। निषिद्ध आचरण का।

कुपथ^५—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुपथ्य] वह भोजन जो स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हो। उ०—राज आज कुपथ कुसाज भोग रोग को है वेद वृष विद्या वायु बिवस बलकहीं।—तुलसी। (शब्द०)।

कुपथ्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कु + पथ्य] वह आहार विहार जो स्वास्थ्य को हानिकारक हो। बदपरहेजी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

कुपना^६—क्रि० प्र० [हि० कोपना] दे० 'कोपना'।

कुपली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कोपली'। उ०—जीम न जीम विगोयनो। दध का दाधा कुपली, मेल्ही।—वी० रासो, पृ० ३७।

कुपाठ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बुरी मन्त्रणा। बुरी सलाह। उ०—कीन्हेसि कठिन पड़ा कुपाठ। जिमि न नव पुनि उकठि कुकाठ।—तुलसी (शब्द०)।

कुपाठी—वि० [सं० कुपाठिन्] बदमाश। नटखट। दुष्ट। उल्लासी।

कुपातर—वि० [सं० कुपात्र] दे० 'कुपात्र'। उ०—मदारी जात में भी कोई कुपातर निकल गयो।—श्रीनिवास प्र०, पृ० ४४।

कुपात्र—वि० [सं०] १ किसी विषय का अनधिकारी। अयोग्य। नालायक। २ वह जिसे दान देना शास्त्रों में निषिद्ध है।

कुपार^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अकूपार] समुद्र। उ०—देख अन्न रत्न लक्ष जारत निशक तेरी तऊ न बुझैगी जो लो आइहो कुपार को।—हनुमान (शब्द०)।

कूपिद—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुविन्] जुलाहा। तंतुवाय।

कूपित—वि० [सं०] १. क्रुद्ध। क्रोधित। २. अप्रसन्न। नाराज।

कूपितमूल (सैन्य)—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] भड़की हुई सेना।

विशेष—कौटिल्य के मत में भड़की हुई और भिन्नगर्भ (तितर बितर हुई) सेनाओं में से कूपितमूल सामादि उपायों से शांत की जाकर उपयोग में लाई जा सकती है।

कुपिन^८—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कोपीन'।

कुपिया—क्रि० वि० [अ० कुपीयद्] छुपे छुपे। चुपचाप। छिपे हुए। खोपिया। पोषोदा। उ०—के प्रपच कुपिया करै, रपिया जोड़ण रोक। परपीडा पेखै नहीं, ऐ लोभीडा लोक।—बाँकी प्र०, भा० ३, पृ० ५६।

कुपीन^९—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कोपीन] कोपीन। लंगोटी। उ०—गाँठी सत्त कुपीन में सदा फिरे नि सक। नाम अमल माता रहे गिने इद को रक।—मल्लक०, पृ० ३३।

कुपुत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह पुत्र जो कुपथगामी हो। कुपूत। दुष्ट पुत्र।

कुप्पक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोप] घोड़े का एक रोग जिसमें छन्दे ज्वर आता है और उनकी नाक से पानी बहता है।

कुप्पना^{१०}—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कोपना] दे० 'कोपना'। उ०—सुनी राव हम्मीर कुप्पे सुमारी।—ह० रासो, पृ० ६६।

कुप्पल—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की सज्जी जिसके कलम वारीक और नुकीले होते हैं। यह लाल रंग की होती है और बरार की लोनार झील के पानी को सुखाकर निकाली जाती है।

कुप्पा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कूपक] [स्त्री० घटपा० कूपी] चमड़े का बना हुआ घड़े के आकार का एक बड़ा वर्तन जिसमें घी, तेल आदि रखे जाते हैं।

यो०—कुप्पासाज।

मुहा०—कुप्पा लुढ़ना या लुढ़कना=(१) किसी वड़े आदमी का मरना। (२) अधिक व्यय होना। कुप्पा होना या हो जाना=

(१) फूल जाना। सूजना। वरम होना। जैसे—भिड़ के काटने से उसका मुँह कुप्पा हो गया (२) मोटा होना। हूटपुष्ट होना।

जैसे,—बह दो महीने में ही कुप्पा हो गया (३) रुठना।

रुठकर बोलचाल बंद करना। जैसे—वह जरा सी बात में

कुप्पा हो जाते हैं। फूलकर कुप्पा होना=(१) मोटा होना।

हूटपुष्ट होना। (२) अत्यंत हर्षित होना। मानद से फूल जाना। जैसे,—जिस समय वह यह सुनेगा फूलकर कुप्पा हो

जायगा। किसी का मुँह कुप्पा होना=किसी का नाराज होकर मुँह फूलाना। किसी का रुठकर बोलचाल बंद करना।

जैसे—जरा सी बात पर तुम्हारा मुँह कुप्पा हो जाता है।

कुप्पा सा मुँह करना=मुँह फूलाना। रुठकर बोलचाल

बंद करना।

कुप्पासाज—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कुप्पा + साज] कुप्पा बनानेवाला व्यक्ति।

कुप्पी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कुप्पा का अल्पा०] चमड़े का बना हुआ कुप्पे से छोटा वर्तन जिसमें तेल, फुलेल आदि रखते हैं। फुलेली।

कुफर—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कुफ] दोप। पाप। अपराध। अपावचना। कृतघ्नता। उ०—अपना कुफर चीहन नहि भाई, हिंदू को काफर

बतलाई।—तुलसी० श०, पृ० ३११।

कुफरान—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कुफान] १ एहसानफरामोशी। कृतघ्नता।

उ०—कुफरान जिकिर छोड़ो। पद साँच देव गोड़ों।—

गुलाल०, पृ० ११३।

कुफराना—वि० [अ० कुफान] कृतघ्नता से भरा हुआ। उ०—काफिर

कुफर करे कुफराना। दिल दलील हैराना।—सत नुरसी०,

पृ० १६८।

कुफल—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कुफल, कुपल] ताला। तालिका। द्वारयंत्र।

उ०—जिन यह कु जी कुफल उघाटी।—कबीर श०, पृ० २२।

कुफार^{११}—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कुफार, काफिर का बहुव०] काफिर लोग।

अविश्वासी लोग। सूतिपूजक लोग उ०—गारों बकत कुफार

जीति दख तासु न सोच लयो री।—भारतेंदु प्र०, भा० १,

पृ० ५०३।

कुफार^{१२}—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कु + फार] कुवचन। बुरी बात। अगष्टदा।

कष्ट । उ०—पार परोसिन डाहै हो निस दिन करत कुफार ।
—गुलाल०, पृ० ५४ ।

कुफारी—वि० [हि० कु + फार] अश्लील । गंदी । असभ्यो की सी ।
उ०—भापुन हंसत हँसावत ओरन देत कुफारी गारी । —
भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ४११ ।

कुफुर^१—संज्ञा पुं० [अ० कूफ] मुसलमानी मत के विरुद्ध अन्य मत ।
उ०—डाहि देवालय कुफुर मिटाऊ । पातसाह को द्रुकुम
चलाऊ ।—लाल (शब्द०) । वि० दे० 'कूफ' ।

कुफुर^२—संज्ञा पुं० पाप । अपराध । दोष । अविश्वाम । उ०—भीखा
कहै कूफुर तब टूटै जब साहब करहि सहाई ।—भीखा श०,
पृ० ३२ ।

कुफेर^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] कावुल नदी का पुराना नाम । इसे वैदिक
काल में कुभा कहते थे ।

कुफेर^२—संज्ञा पुं० [सं० कु + हि० फेर] बुरे दिनों का चक्कर । दुर्भाग्य ।
उ०—मुख सो नाम रटा करै, निस दिन साधन संग । कहो
धौं कौन कुफेर से, नाहिन लागत रंग ।—कवीर सा० स०,
भा० १, पृ० ३३ ।

कुफ़—संज्ञा पुं० [अ० कूफ] १ मुसलमानी मत से भिन्न अन्य मत ।
उ०—सब कूफ़ और इस्लाम के भगडों में है झूले । देखा न
कभी जिसम का बुतखाना किमू ने ।—इबिखनी०, पृ० २४१ ।
२ मुसलमानी धर्म के विरुद्ध वाक्य ।

कि० प्र०—बकना ।

कुफल—संज्ञा पुं० [अ० कुफल] ताला । जतर । उ०—कुंजी-
उसकी जवान सीरीं है । दिन मेरा कुफल है वतासे का ।—कविता-
कौ०, भा० ४, पृ० १६ ।

कुफली—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कुल्फी' ।

कुवड^१—संज्ञा पुं० [सं० कौण्ड, प्रा०, पु० हि० कौवड] धनुष ।
उ०—(क) कुवड कियो विविखंड महा बरबड प्रचंड मुजा
बल ते ।—हनुमान (शब्द०) । (ख) भुसु डिय और कुवडिय
साधि । परे दुहु औरन तेमट आँध ।—सुदन (शब्द०) ।

कुवड^२—वि० [सं० कु + षण्ड = खज] खोडा । विह्वल । उ०—
हौं जीति सुरेश महेश को पूत गणेश को दत उपार लियो ।
यम को वश के पुनि वाहन का जिन तोरि विपाण कुवड कियो ।
—हनुमान (शब्द०) ।

कुव—संज्ञा पुं० [फा० कुवह] ३. छोटा गुबद । बुर्जी । गुमटी । २.
गुबद क आकार की पीठ । कूवर ।

कुवग—संज्ञा पुं० [?] एक जतु जा गलहरी क आकार का होता है ।

कुवज—संज्ञा पुं० [सं० कुवज] कुवड़ा ।

कुवजा—संज्ञा स्त्री० [सं० कुवजा] दे० 'कुवजा' ।

कुवज्या—संज्ञा स्त्री० [हि० कुवजा] दे० 'कुवजा' । उ०—ऊधो बेगि
सिधारा ब्रज ते तुन जाते हम हारे । नट नागर सो यो कहियो
कुवज्या को न बिसारे ।—नट०, पृ० ४५ ।

कुवड़ा^१—संज्ञा पुं० [सं० कुवज + हि० डा (प्रत्यय)] [स्त्री० कुवड़ी] वह
पुरुष जिसकी पीठ टेढ़ी हो गई हो या झुक गई हो । उ०—

सबसे अधिक किरात डरे जो ये भी ठीक गँवार । कुवड़े नीचे
नीचे चल के डर से हो गए पार ।—रत्नावली (शब्द०) ।

कुवडा^२—वि० [वि० स्त्री० कुवडा] झुका हुआ । टेढ़ा । उ०—सन सूखा
कुवडी पीठ हुई घोडे पर जीन धरो बाबा ।—नजीर ।
(शब्द०) ।

कुवड़ापन—संज्ञा पुं० [हि० कुवडा + पन] कुवड़ा होने का भाव ।

कुवडो—संज्ञा स्त्री० [हि० कुवड़ा] १ दे० 'कुवरी' । २. वह छड़ी
जिसका सिरा झुका हुआ हो । टेढ़िया ।

कुवत—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + हि० वात] १. बुरी वात । निदा ।
उ०—करो कुवत जग कुटिलता तजो न दीनदयाल । दुखी
होहुगे सरल हिय बसत त्रिमयी लान ।—विहारी (शब्द०) ।
२ कुचाल । बुरी चाल । उ०—कहति ने देवर की कुवत,
फुल तिय कनह डराति । विजरगत मंजार डिग सुक लौं
सुखति जाति ।—विहारी (शब्द०) ।

कुवरी—संज्ञा स्त्री० [हि० कुवड़ा] १. कंस की एक दासी जिसकी पीठ
टेढ़ी थी । यह कृष्णचंद्र पर अधिक प्रेम रखती थी । कुवजा ।
उ०—योग कया पठई ब्रज को सब सो सठ चेरी की चाल
चलाकी । ऊधो जू बयो न कहै कुवरी जो बरी नटनागर हेरि
हलाकी ।—तुलसी (शब्द०) । २ वह छड़ी जिसका सिरा
झुका हो । टेढ़िया । ३. एक प्रकार की मछली जो भारत,
चीन और लका मे पाई जाती है ।

कुवल्य—संज्ञा पुं० [सं० कुवल्य] कुमुद । कमल । उ०—क्यों न
फिरे सब जगत में करत दिगांब्रज्य मार । जाके दूगसामत हैं
कुवल्य जीतनहार ।—मति० ग्र०, पृ० ३६६ ।

कुवलयापीड़—संज्ञा पुं० [सं० कुवलयापीड] दे० 'कुवलयापीड़' ।

कुवली—संज्ञा स्त्री० [सं० कुवल्य = गोल] पिंडी गोला ।

कुवहा—वि० [हि० कुव + हा (प्रत्यय)] कूबड़वाला ।

कुवाक—संज्ञा पुं० [सं० कुवाक्य] १ कुवच । टेढ़ा बोल । कठोर
वचन । कड़ी बात । उ०—तजो सक सकुचति नचति बोलति
बाक कुवाक । दिन छिनदा छाका रहति उठत न छिन छि-
छाक ।—विहारी (शब्द०) २. गाली । अपशब्द । ३. शाप ।

कुवादो—वि० [सं० कु + वादिन] व्यर्थ का विवाद करनेवाला ।
उ०—श्री शंकराचार्य जी न उस कामकीतुकवाद को, इस
ढग से समझ के कुवादा सेवड़ा का बाद मे परास्त किया ।
—मक्तमाल (श्रा०) पृ० ४६७ ।

कुवानि—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + हि० वानि] बुरी भादत । बुरी टेव ।
बुरी लत । कुटेव ।

कुवानी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + वाणी] बुरा बोल । अशिष्ट शब्द ।
अमंगल बात ।

कुवानी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + वानी (वाणिज्य)] बुरा व्यवसाय ।
खराब वाणिज्य । उ०—अपन चलन स कोन्ह कुवानी । लाभ
न देख मूर भइ हानी ।—जायसी (शब्द०) ।

कुवासन—संज्ञा स्त्री० [सं० कुवासन] दे० 'कुवासन' ।

कुविचार—वि० [सं० कुविचार] दे० 'कुविचार' ।

कुविचारी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुविचारिन्] दे० 'कुविचारी' ।

कुदाय(५) —सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृ + हि० बाँव] कुदाँव । उ०—लेन केहरि को वयर जनु भेरु हनि गोमाय । त्योहि रामगुलाम जानि निकाम देन कुदाय ।—गुलसी ग्रं०, पृ० ५६७ ।

कुदारा—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कुदाल' । उ०—ज्ञान कुदार ले वदर गोड़ें ।—कवीर ग्रं०, पृ० १३६ ।

कुदारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कुदाली' ।

कुदाल—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुदाल] लोहे का बना एक औजार ।

विशेष—यह प्रायः एक हाथ लंबा और चार अंगुल चौड़ा होता है । इसके ऐन सिरे पर छेद में लकड़ी का लंबा बेंट लगा रहता है । यह जमीन या मिट्टी खोदने और खेत गोड़ने के काम आता है ।

मूहा०—कुदाल घजाना = (घर का) खोवा जाना ।

कुदाली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कुदाल] छोटी कुदाल ।

कुदाना—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कूदना] कुदान । उ०—पूरे को पूरा मिलै, पड़े सो पूरा दाव । निगुरा तो ऊपर चलै, जब तब करै कुदाव ।—कवीर सा० सं०, भा० १, पृ० १७ ।

कुदास^१—सञ्ज्ञा पुं० [?] जहाज की पतवार का खंभा । खड़ा पठान ।

कुदास^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कू + दास] बुरा सेवक । आज्ञा न माननेवाला नोकर [को०] ।

कुदास^३—सञ्ज्ञा स्त्री०, [हि० कूदना + दास] (प्रत्य०) कूदने की प्रवृत्ति इच्छा ।

कुदिन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ आपत्ति का समय । कष्ट के दिन । खराब दिन । २ दिन का वह परिमाण जो एक सूर्योदय से लेकर दूसरे सूर्योदय तक के मध्य में होता है । सावन दिन । ३ वह दिन जिसमें ऋतुविरुद्ध या इसी प्रकार की और कष्ट देनेवाली घटनाएँ हो । जैसे—पूस माघ में खूब वर्षा होना, बरसात में बिलकुल जल न बरसना, अथवा दिन रात लगातार जल बरसना आदि ।

कुदिष्टि(५)—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कृदिष्टि] बुरी दृष्टि । बुरी नजर । पाप दृष्टि । बद निगाह ।

कुदृष्टि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ बुरी नजर । पाप दृष्टि । बद निगाह । उ०—इनहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई । ताहि वधे कछु पाप न होई ।—गुलसी (शब्द०) । २ वह तर्क जो वेद से अनुमोदित न हो । वेद से स्वतंत्र तर्क ।

कुद्वरत—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] १ मेल । मिलापन । गंदलापन । २ मनो-मालिन्य । रज्जि । ३ द्वेष । अमर्ष । खूनस ।

कुदेव^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कु = भूमि + देव = देवता] भूदेव । भूपुर । उ०—कुदेव देव नारिको न वाल वित्त ली जिए । विरोध विप्र वश सो सो स्वप्न हू न कीजिए ।—केशव (शब्द०) ।

कुदेव^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कु = बुरा कुदेव = देवता] १ राक्षस । दैत्य । दानव । उ०—देव कुदेवनि के चरणोदक दोरघो सर्व कलि को कुपानु ।—केशव (शब्द०) । ३ जैनियों के अनुसार ऐसे देवता, जो उनसे भिन्न धर्मवालों के हो ।

कुदेस—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कु + देश] बद्ध देश जहाँ शासन की समुचित व्यवस्था न हो । बुरा देश । उ०—सेत सेत सब एक से, जहाँ

कपूर कपास । ऐसे देस कूदेग में कवहुँ न कीजै वास ।—भारतेंगु ग्रं०, भा० १, पृ० ६६५ ।

कुदेह^१—वि० [सं०] कुरूप । बदशक्ल [को०] ।

कुदेह^२—सञ्ज्ञा पुं० कु वेर का एक नाम [को०] ।

कुद्दार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] लोहे का बना एक औजार । कुदान ।

कुद्दाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुदाल' [को०] ।

कुद्मल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुड्मल' [को०] ।

कुद्घ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुड्घ' [को०] ।

कुद्द्रक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुद्द्रक] घटाघर । वह स्थान जहाँ ऊँची जगह पर घड़ी लगी हो [को०] ।

कुद्द्रग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुद्द्रग] दे० 'कुद्द्रक' [को०] ।

कुद्द्रव^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुद्द्रव, कद्द्रव] कोदो । कोदई ।

कुद्द्रव^२—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] तलवार चसाने के ३२ हाथों या प्रकारों में से एक । उ०—तिमि सव्य जानु विजानु सन्नोचित सुप्रार्थित चित्र को । धृतनपन कुद्द्रव क्षिप्त सव्येतर तथा उत्तरत को ।—रघुराज (शब्द०) ।

कुधर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुध] १ पहाड़ । पर्वत । भूधर । उ०—कुधर समान सरीर विसाला । गरजि सिधु दब रन विकराना ।—द्विज (शब्द०) । २ शेषनाग ।

कुघातु—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ बुरी घातु । २. लोहा । उ०—सठ सुधरहि सत सगति पाई । पारस परस कुघातु सुहाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

कुघान्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह अन्न जो पाप की कमाई का हो । बुरा अन्न ।

कुघि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] उल्लू । उलूक [को०] ।

कुघी—वि० [सं० कु + घी] १. मबुद्धि । दुबुद्धि । मूर्ख । २. बदमाश [को०] ।

कुघ्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पर्वत । पहाड़ । कुवर [को०] ।

कुनक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कोवा । काक [को०] ।

कुनकाना(५)—क्रि० सं० [सं० क्वण] क्वणित करना । ध्वनित करना । उ०—सेज परी नूपुर रनघाव । कर के कल ककन कुनकाव ।—नद० ग्रं०, पृ० १५६ ।

कुनकुन—वि० [हि०] दे० 'कुनकुना' ।

कुनकुना—वि० [सं० कुकुण प्रा० कउणह] आघा गरम (पानी) । कुछ गरम (पानी) । गुनगुना ।

कुनख—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें नख खराब हो जाते और प्रायः पककर गिर जाते हैं । बंदों ने इसे त्रिदोषज माना है ।

कुनखी—वि० [सं० कुनखिन्] १ बुरे नखवाला । २ कुनख रोगवाला ।

कुनना—क्रि० सं० [सं० क्षुण्ण या घूर्णन = घुमाना] १ बरतन खरा दना । २ खुरचना । छीलना ।

कुनप—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुणप] दे० 'कुणप' ।

कुनवा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुदुम्भ, प्रा० कुदुव] परिवार । कुटुंब ।

खानदान । उ०—इनकी वदीलत उसके कुनवे ने खूब चैन किए ।—सूर ७०, पृ० १४ ।

मुहा०—कुनवा जोड़ना = नाते गोते के लोगो को इकट्ठा करना । परिवार जुड़ना । उ०—कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा ।

भानमती का कुनवा जोड़ा ।

कुनवी—सब्बा पुं० [सं० कुटुम्ब, हि० कुनवा] हिंदुओं की एक जाति जो प्रायः खेती करती है । कहीं कहीं ये लोग अपने को गृहस्थ कहते हैं ।

कुनवाई—सब्बा स्त्री० [देश०] एक कंटोला छोटा पेड़, जिसमें बहुत सी पतली टहनियाँ होती हैं ।

विशेष—इसकी छाल ऊपर से सफेद होती है । पत्तियाँ ३-४ अंगुली की होती हैं । गरमी के दिनों में इसमें बहुत छोटे-छोटे पीले फूल लगते हैं । इसकी लकड़ी बहुत कड़ी होती है और खेती के खूटे आदि बनाने के काम में आती है ।

कुनवा—सब्बा पुं० [हि० कुनवा] [स्त्री० कुनवी] खरादनेवाला मनुष्य । वरतन आदि चरख पर चढ़ाकर खरादनेवाला मनुष्य । खरादा ।

कुनहूँ—सब्बा स्त्री० [फा० कानहूँ] । वि० कुनही । १. द्वेष । मना-मात्स्य । मनमोहाव । उ०—कीन कुनहूँ बिन गुनइ जिन तिन सुख सुना न पाव । सहस्रबाहु सुरनाथ भूगु अत्रिय सुत भूगराव ।—विश्राम । (शब्द०) । २. पुराना वर ।

क्रि० प्र०—करना । निकालना ।—रखना ।

कुनही—वि० [हि० कुनहूँ] द्वेष रखनेवाला । बुरा माननेवाला ।

कुनाई—सब्बा स्त्री० [हि० कुनना = खरादना, खुरचना] १. वह चूरा या बुकना जा । कसा वस्तु का खरादन या खुरचन पर निकलवा हो । बुरादा । २. खरादन की क्रिया । ३. खरादने की मजदूरी ।

कुनाकु—सब्बा पुं० [सं०] एक पहाड़ी पक्षी [कौ०] ।

कुनाभि—सब्बा पुं० [सं०] १. ववडर । वातावर्त २. दो निधिया म स एक ।

कुनाम—सब्बा पुं० [सं०] कुख्यात । बदनामी । उ०—वृंदावन द्वारे वठ धाम । काह का पय हरयो सवन को काह अपना किया कुनाम ।—सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—दाना ।

कुनालका—सब्बा स्त्री० [सं०] काकिल पक्षी । कायल । परभृत [कौ०] ।

कुनात—वि० [सं० क्वाणत] शब्द करता हुआ । गुजार करता हुआ । बोलता हुआ । बजता हुआ । झनकार करता हुआ । उ०—काकला काट कुनात ककव काचुरा झनकार । हृदय चाका चमाकि बंठा सुभय मातिन द्वार ।—सूर (शब्द०) ।

कुनिया—सब्बा पुं० [हि० कुनना + इया (प्रत्यय)] खरादनेवाला व्यक्ति ।

कुनिया—सब्बा पुं० [हि० कुनना] कनकूत करनेवाला ।

कुनिया—सब्बा स्त्री० [सं० काण, हि० कानिया] काना । उ०—गाम क वक्त वह पक कर दावार छ कुनिया स पीठ लगा बंठ ।

प्रभादा ।—कृष्ण १० पृ० ५० ।

कुनीव—सब्बा स्त्री० [सं० कू + नीति] कुनीति । बुरी नीति । सविचार ।

उ०—अपने उन अग्रगण्यो की कुनीति की हानियाँ कुछ सूझने लगी हैं ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २४५ ।

कुनेर, कुनेरा—सब्बा पुं० [हि० कुनना] लोहे पीतल आदि के वरतनों की कुनाई करनेवाली जाति और उस जाति का व्यक्ति ।

कुनेन—सब्बा पुं० [अ० क्विनिन] एक शोषधि जो अंग्रेजी चिकित्सा में ज्वर के लिये अत्यंत उपकारी मानी जाती है । कुनाइन ।

विशेष—यह एक पेड़ की छाल का सत है, जिसे सिकोना कहते हैं । यह पेड़ पहले दक्षिण अमेरिका में ही होता था पर अब यह भारतवर्ष के नीलगिरि, मंसूर, सिकिम आदि ऊँचे पहाड़ी स्थानों में भी लगाया जाता है । यह दो ढग से लगाया जाता है । कहीं तो धीज बोकरी पोछे उगाते हैं और कहीं डालियाँ काटकर कलम लगाते हैं । इसके धीजों को घना बोते हैं और खूब सिंचाई करते हैं । ऊपर से फूम आदि की छाया भी करते हैं । ४०-४१ दिनों में अखुए निकल आते हैं । जब दो या तीन जोड़ी पत्तियाँ निकल आती हैं तब पोछों को दूसरी जगह लगाते हैं । इसी प्रकार पोछों की कई बार उखाड़ उखाड़कर अन्यत्र लगाना पड़ता है । ये पोछे चार या छह छह फुट के अंतर पर लगाए जाते हैं । सिकोना कई प्रकारोंका होता है—भूरी छाल का लाल, छाल का और पोनी छाल का । लाल छाल का पेड़ बड़ा होता है, भूरी छाल का मध्यम आकार का होता है और पीली छाल का भाड़ी के आकार का छोटा होता है । जब पोछा चार वर्ष का होता है तब उसकी छाल में सच्छी तरह क्षार आ जाता है और वह काम नायक हो जाती है । सातवें वर्ष से क्षार कुछ घटने लगता है, इससे १२-१४ वर्ष के भीतर ही सारे पेड़ छाल के लिये उखाड़ दिए जाते हैं । जड़ में क्षार का अंश विशेष होता है, इससे यह और भागों की अपेक्षा बहुमूल्य समझी जाती है ।

कुन्याई—सब्बा पुं० [कू = बुरा + न्यायी, हि० न्याई] अन्याय करनेवाला । अन्यायी । उ०—एकहि मूल सर्व उपजाई । भेंटयो तेज अड कुन्याई ।—कबीर सा०, पृ० ६ ।

कुन्याय—सब्बा पुं० [कू + न्याय] अन्याय । न्यायविरुद्ध काम । उ०—बालक पं तेग वाही सो कुन्याय सल्ला ।—शिवर०, पृ० ६२ ।

कूपलि—सब्बा पुं० [सं० कू + पक्षिन्] बुरा पक्षी । कटु शब्द करनेवाला पक्षी । दुष्टपक्षी । उ०—हंस सु मान सरोनरी, छपड़ि आया वासु । सगति काय कूपलि की किउ छूटे तिन पासु ।—प्राण०, भा० १, पृ० १०५ ।

कूपय—सब्बा पुं० [सं० कूपय] [वि० कूपयी] १. बुरा मार्ग । २. निषिद्ध आचरण । कुचाल । उ०—रघुवसिंह छय चहुँ सुमाऊ । मन कूपय पग धरै न काऊ ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—पर चलना ।

३. बुरा मत । कृत्स्न सिद्धांत । उ०—चतुर्दश कूपय वेद मय छाड़े । कपट कलवर कस्मिन्मल भड़े ।—मानस, १।१२ ।

कूप—सब्बा पुं० [देश०] घास, भूसा, पुमाड आदि का ढेर [कौ०] ।

कूपक—सब्बा पुं० [फा० कवक] एक पक्षी जिसकी आवाज मूरीनी होती है ।

यो०—कुतुब जन्मी = दक्षिणी ध्रुव । कुतुबनुमा । कुतुब शिमाली, कुतुबशमाली = उत्तरी ध्रुव ।

कुतुब^२—[अ० फिताव का बहु व०] पुस्तकें । फितावें [को०] ।

कुतुबखाना—सब्जा पु० [फा० कुतुबखानह] पुस्तकालय ।

कुतुबनुमा—सब्जा पु० [अ० कुतुबनुमा] एक यंत्र जिससे दिशा का ज्ञान होता है । दिग्दर्शक यंत्र ।

विशेष—यह एक छोटी डिविया के आकार का होता है, जिसके भीतर लोहे की एक सूई के मुँह पर अयस्कात की शक्ति रहती है जिससे वह सदा उत्तर दिशा की ओर रह करती है । यह यंत्र सामुद्रिक नौकाओं और मापकों के काम आता है ।

कुतुबफरोश—सब्जा पु० [फा० कुतुबफरोश] पुस्तकविक्रेता । फितावें बेचनेवाला ।

कुतुबमीनार—सब्जा स्त्री० [अ० कुतुबमीनार] पुरानी दिल्ली की एक बहुत ऊँची मीनार ।

विशेष—कहते हैं इमे गुलामवश के बादशाह कुतुबुद्दीन ऐबक ने निर्मित कराया था । इसी के पास लोहे की एक लाट है जिसे कुतुब साहब की नाट कहते हैं । यह लाट चौहान राजा पृथ्वी राज द्वारा निर्मित कही जाती है ।

कुतुबशाही—सब्जा स्त्री० [अ०] दक्षिण भारत के पाँच बहमनी राज्यों में से एक ।

कुतुरझा—सब्जा पु० [देश०] एक हरा पक्षी जिसकी चोंच, पीठ और पैर लाल होते हैं ।

कुतुली—सब्जा स्त्री० [देश०] इमली का कोमल फल, जिसके बीज मुलायम हो । कंटिया ।

कुतू—सब्जा स्त्री० [सं०] चमड़े की वह कुप्पी जिसमें तेल रखा जाता है [को०] ।

कुतूणक—सब्जा पु० [सं०] दे० 'कुतुआ' ।

कुतूहल—सब्जा पु० [अ०] [कुतूहली] १ किसी वस्तु के देखने या किसी बात के सुने की प्रबल इच्छा । उत्कठा । २ वह वस्तु जिसके देखने को इच्छा हो । कौतुक । उ०—वन तो मेरे लिये कुतूहल हो गया ।—साकेत, पृ०, १३८ । ३ श्रींहा । खिलवाड़ । उ०—काफ़ कुतूहल में बिलस निशि वारवधू मन-मान हरे ।—नेत्रव (शब्द०) ४ आश्चर्य । अचमा ५ नायिका का एक आचकार ।

कुतूहली—वि० [सं० कुतूहलिन] २ जिसे वस्तुओं को देखने या जानने की उत्कठा हुआ करे । तमाशा देखनेवाला । उ०—यदि वह मुझ बहुत कुतूहली न समझे तो मैं एक बात जानने के लिये उत्सुक हूँ ।—जिप्सी, पृ० २६७ । २ कौतुकी । खिलवाड़ी ।

कुतूण—सब्जा पु० [सं०] कृमा । जलकृमी । आकाशमूली [को०] ।

कुत्ता—सब्जा पु० [देश०] [स्त्री० कुत्ती] १. भेड़िए, गीदड़ और लोमड़ी आदि की जाति का एक हिंसक पशु जिसे लोग साधारणतः घर की रक्षा के लिये पालते हैं । श्वान । कूकुर ।

विशेष—इसकी छोटी बड़ी अनेक जातियाँ होती हैं और यह सारे संसार में पाया जाता है । इसकी अचण शक्ति बहुत प्रबल होती

है और यह जरा से खटके से जाग उठता है । अपने स्वामी का यह बहुत शुभचिह्न और भक्त होगा है । किसी किसी जाति के कुत्ते की प्राण शक्ति बहुत प्रबल होती है जिसके कारण वह किसी के पैरों के निशान सूँघकर उसके पास जा पहुँचता है । शिकार में भी इससे बहुत सहायता मिलती है । पागल कुत्ते के काटने से मादपी उगी की तरह घे बूँकने लगता है और प्रायः कुछ दिनों में मर जाता है । बरसात में इसके बिप का दौरा अधिक होता है । काटे हुए स्थान पर कुत्ता घिसकर लगाना लाभदायक होता है ।

यो०—कुत्ते छसी = व्ययं और तुच्छ कार्य ।

मुहा०—क्या कुत्ते ने काटा है = क्या पागल हुए हैं ? उ०—

क्या हमे कुत्ते ने काटा है जो हम इतनी रात को वहाँ जाँएँ ?

विशेष—साधारणतः पागल कुत्ते के काटने से मनुष्य पागल हो जाता है इसी से यह मुहावरा बना है । इसका प्रयोग प्रायः प्रश्न के लिये होता है और काकु अलंकार से अर्थ सिद्ध होता है ।

कुत्ते ने नहीं काटा है = दे० 'क्या कुत्ते ने काटा है ? कुत्ता

घसीटना = नीच और तुच्छ कार्य करना । कुत्ते की मौत

मरना = बहुत बुरी तरह से मरना । कुत्ते की हड्डि उठना =

(१) पागल कुत्ते के काटने की तरह उठना (२) अचानक

या कुसमय में किसी वस्तु के लिये आतुर होना । कुत्ते का

दिमाग होना या कुत्ते का नेजा खाना = बहुत अधिक बर्ताव

करने की शक्ति होना । बहुत बक्की होना । कुत्ते की दुम =

कमी अपनी बुरी चाल न छोड़नेवाला । जिसपर समझाने

बुझाने या सत्संग आदि का कोई प्रभाव न पड़े ।

विशेष—कुत्ते की दुम सदा टेढ़ी रहती है, वह कभी सीधी नहीं होती । इसी से यह मुहावरा बना है ।

२ एक प्रकार की घास जो फपड़ों में लिपट जाती है और जिसे

लपटोवा कहते हैं । ३ फल का वह पुरजा जो किसी चमकर

को उलटा या पीछे की ओर घूमने से रोकता है ४ लकड़ी

का एक छोटा चौकोर टुकड़ा जो करगहने में लगा रहता है

और जिसके नीचे गिरा देने पर दरवाजा नहीं खुल सकता ।

बिल्ली । ५ संदूक का घोड़ा । ६. नीच या तुच्छ मनुष्य ।

क्षुद्र ।

कुत्ती—सब्जा स्त्री० [हि० कुत्ता] कुकुरी । कुतिया । कुत्ते की मादा ।

कुत्र—क्रि० वि० [सं०] कहाँ । किस जगह ? किस वातावरण में [को०] ।

कुत्स—सब्जा पु० [सं०] एक ऋषि का नाम, जिनकी बनाई हुई बहुत सी ऋषाणें ऋग्वेद में हैं ।

कुत्सन—सब्जा पु० [सं०] [वि० कुत्तिन] १. निंदा । २. नीच काम । निंदित काम ।

कुत्सा—सब्जा स्त्री० [सं०] निंदा ।

कुत्सित^१—सब्जा पु० [सं०] १. कुठ या कुट नाम की औषधि । २. कुड़ा । कोरैया ।

कुत्सित^२—वि० १. नीच । प्रथम । २. निंदित । गहित । खराब ।

कूत्स्य—वि० [सं०] निंदनीय । निंदा के योग्य ।

कुय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कयरी। कया। २. हाथी की भून। ३. रय, पालकी आदि का ओहार। ४ एक कीड़ा। ५ प्रातःकाल स्नान करनेवाला ब्राह्मण। ६ कुश (की०)।

कुयना—क्रि० प्र० [हि० कूयना] बहुत मार खाना। पीटा जाना।
कुयरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कु = पृथिवी + √स्तृ = स्तरण, आस्तरण] दे० 'कयरी'।

कुयल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुतल] ग्रंथ का एक रोग।

कुया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. कया। कयरी। २. हाथी की भून (की०)।

कुयुप्रा—सञ्ज्ञा मं० [सं० कुतल] बालको की ग्रंथ का एक रोग जिसमें पलकों के भीतर दाने पड़ जाते और बड़ी बुजली होती है।

कुदई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कूदई] दे० 'कूदो'।

कुदकड़ा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कूदना] दे० 'कुदका'। उ०—जिसकी गोदी में जी चाहें खुल कर लेंटे, हँसे, शरारत करें, कुदकड़े मारें।—चाँदनी०, पृ० ६२।

कुदकना—क्रि० प्र० [हि० कूदना] उछलकूद करना। उ०—मेमनों से मेघों के बल, कुदकते ये प्रमुदित गिरि पर।—रत्नलव, पृ० २०।

कुदकड़—वि० [हि० कूदना या √कुदक + कड़ (प्रत्यय)] कूदने में कुशल। कूदनेवाला।

कुदका—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कूदना] उछलकूद।

मुहा०—कूदका मारना = इधर उधर कूदते फिरना।

कुदरत—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० कुदरत] १. शक्ति। प्रभुत्व। इश्वर। सामर्थ्य। उ०—कुदरत पाई खरी सौ चित सौ चित मिलाय। भँवर बिलंबा कमल रस अदकंसे उडि जाय।—कवीर (शब्द०) २. प्रकृति। माया। ईश्वर शक्ति। महिमा। उ० उ०—कुदरत बाकी भर रही, रसनिधि सबही जाग। ईंधन विन बनि यों रहे ज्यो पाहन मे आग।—रसनिधि (शब्द०)।

मुहा०—कुदरत का खेल = ईश्वरीय लीला। प्रकृति की रचना। उ०—पढ़े फारसी वेचें तेल। यह देखो कुदरत का खेल।

२. कारीगरी। रचना।

कुदरती—वि० [प्र० कुदरती] दे० 'कुदरती'। उ०—अप्यय भाइ जहाँ मिलि पान। कुदरति कया एक परमान।—पृ० १०, २४। ३३१।

कुदरती—वि० [प्र०] १. प्राकृतिक। स्वभाविक। २. दैवी। ईश्वरीय।

कुदरा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुदाल] कुशर। उ०—कुदरा खुरपा बेल गुनसफा छुरा कतरनी। नहनी सँहिन परी डरी बहु भरना भरनी।—सूदन (शब्द०)।

कुदर्शन—वि० [सं०] जो देखने में बुरा मालूम हो। कुहप। बदसूरत। भद्दा। अमन्य। उ०—कामी रूपण कुचील कुदर्शन कौन रूपा करि तारयो। ताते कहत दयालु देव मुनि काहे चूर बिचारयो।—सूर। (शब्द०)।

२—५८

कुदलाना—क्रि० प्र० [हि० कूदना] कूदते हुए चटना। उछलना। कूदना। उ०—एहि विधि बरपा ऋतु के माहीं। वन बछल तिन सम कुदलाही।—(शब्द०)।

कुदली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कुवाली] दे० 'कुदाल'।

कुदशा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कु + दशा] बुरी गति। बुरी दशा। अधोगति। उ०—कार्यकर्ताओं का विशेष ध्यान देश की कुदशा की ओर खींचा जाय।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०६।

कुदसियाँ—वि० स्त्री० [प्र०] फरिश्ता। पवित्र उ०—के महेश्वर लग रहे ओ जाजा होर तर। अद्ये नित कुदसियाँ उसपर भूवर।—दक्खिनी०, पृ० २३७।

कुदाँव—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कु + हि० दाँव] १. बुरा दाँव। कुवात। विश्वासघात। दगा। धोखा। उ०—दूरे को पूरा मित्र पूरा परसें दाँव। निगुरा तो कुबट चलें, जब तब करे कुदाँव।—कवीर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—देना उ०—समुक्ति सुमित्रा राम सिय रूप सुखीन सुमाँव। नृपसनेह लखि धुनेहु सिर, पापिनि दोन्ह कुदाँव।—तुलसी (शब्द०)।

१२. अचट। बुरी स्थिति। संकट की स्थिति। ३. बुरा स्थान। विकट स्थान।

कुदाई—वि० [हि० कुदाँव] बुरे ढग से दाँव घात करनेवाला छली। विश्वासघाती उ०—बार बहारन मोर ही हों पठई मतिहीन मतो के लुगाइन। छेरी किवार उचारत ही पलि मोर चकोर फडोर कुदाइन।—देव (शब्द०)।

कुदाउ—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कुदाँव'।

कुदाता—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कु (= १ बुरा। २ पृथिवी) + दाता] १. कृपण। २. पृथ्वी का दान देनेवाला। उ०—ऊठघनी कुदाता कुकम्पादि चाहे।—राम च०, पृ० ६६।

कुदान—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कु + दान] १. बुरा दान (लेनेवाले के लिये)। विशेष—शय्यादान, गजदान आदि लेनेवाले के लिये बुरे समझे जाते हैं।

२. कुपात्र या अयोग्य आदि को दान।

कुदान—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० √कूद + दान (प्रत्यय)] १. कूदने की क्रिया। कूदने का भाव। २. बहुत पहुँचकर कहना। दूर की कोड़ी लाना। ३. उतनी दूरी जितनी एक बार कूदने में पार की जाय। जैसे—वह पाँच पाँच गज की कुदान मारता है।

क्रि० प्र०—मारना।

४. कूदने का स्थान। जैसे—लोरिक की कुदान।

कुदाना—क्रि० स० [हि० कूदना] १. कूदने का प्रेरणार्थक रूप। कूदने में प्रवृत्त करना। उ०—सन्मुख जाइ सुवाजि कुदाई। तजत भून छाटयो रिसि छाई।—गोपान (शब्द०) २. धोड़े आदि पर चढ़कर उसे दोड़ाना। जैसे—धोड़ा कुदाना।

कुदाम—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कु + हि० दाम] छोटा सिक्का। छोटा रुपया। उ०—जो पै चैराई राम की करनी न लजावो। तो नू दाम कुदान ज्यो कर कर न बिकावो।—तुलसी २०, पृ० ५३५।

विशेष १२ प्रकृति या मुट्ठी का एक कुंडव और ४ कुंडव का एक प्रस्य होता है। पर वैद्यक में कुंडव ३२ तोले का होता है और प्रकृति १६ तोले की मानी जाती है।

कुंडा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुण्डज]। इन्द्रजी का वृक्ष। कुरैया।

कुंडा^२—सञ्ज्ञा पुं० [ग्र० करहह, हि० कुड़ा] दे० कुड़ा।

कुंडाली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डारी] कुल्हाड़ी (लश०)।

कुडि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] देह। शरीर [को०]।

कुडिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] मृत्तिका का या काँठ का बना हुआ जल पात्र [को०]।

कुडिठिठा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुड्ठि] कुड्ठि बुरी नजर। उ०—रूप हमर वरी भए गेल देखि कुडिठि साल।—विद्यापति पृ० ३५०।

कुडिया—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुण्ड, हि० कुंड, कुँड, कुड़ि + ईया (प्रत्य०)] टोंप। उ०—सुन वे साँवलिया कुडिया दे ऊपर की हुया फिरदा सिपाही।—घनानंद, पृ० ६६७।

कुडिला—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुडिका] स्नान कराने का पात्र। उ०—माटी के कुडिल न्हावाओ भटोले सुताओ।—पोद्दार अभि० ग्रं० पृ० ६१७।

कुडिश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली [को०]।

कुडी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कुटी। कुटिया। कुटीर [को०]।

कुडी—सञ्ज्ञा स्त्री० [प०] लड़की। कन्या [को०]।

कुडुक^१—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिसपर चमड़ा मड़ा होता था।

कुडुक^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० कुरक] अडा न देनेवाली मुरगी।

कुडुक^३—वि० व्यर्थ। खाली।

मुहा०—कुडुक बोलना = व्यर्थ होना। खाली जाना।

कुडेर—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कुडेरना] वह नाली जो कुरिया में राब का सीरा निकालने के लिये घनाई जाती है।

कुडेरना—क्रि० सं० [देश०] राब के वीरो को एक दूसरे पर इस प्रकार रखना जिसमें उसकी जूसी वहकर निकल जाय।

कुडोल—वि० [सं० कु + हि० डोल] वेढगा। भड़ा।

कुडमूल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कभी। मुकुल। २. श्वकीस नरको में से एक नरक। ३. नोक। अनी [को०]।

कुडय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुड्या] १. दीवार। भित्ति।

यो०—कुडयच्छेदी = सेंध लगानेवाला चोर। कुडयच्छेद्य = दीवार का गड्ढा। कुडयमत्सी, कुडयमत्स्य = छिपकिली। गृहणोन्धिका।

२. (दीवार पर) पलस्तर करना या चढाना। ३. उत्सुकता। कौतुहल [को०]।

कुडयक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दीवार। भित्ति [को०]।

कुडयारी—सञ्ज्ञा पुं० [प०, हि० कूडा] तुच्छ। नगण्य। उ०—इक सूही दूजी सोहणी, तीजी सो भावती नारि। सुने ह्ये पंचरी, नानक विनु नावे कुडयार।—सतवाणी०, पृ० ६८।

कुडग^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कु + हि० डग] बुरा डग। कुचाल। बुरी रीति।

कुडग^२, कुडग—वि० १. बुरे डग का। वेढगा। भड़ा। बुरा। उ०—कुडग कोप तजि रंग रली करति जुवति जग जोइ। पावस

वातन गूढ यह, बूढन हूँ रँग होइ।—बिहारी (शब्द०)।

२. बुरी तरह का। बदमजा। कुडगा।

कुडगा—वि० [हि० कुडग] [स्त्री० कुडगी] १. बुरी चाल का। वेशऊर। उजड्ड। २. वेढंगा। भड़ा।

कुडगी—वि० [हि० कुडग] कुमार्गी। बुरी चालचलन का। उ०—परचो एक पतित पराग तीर गग जू के, कुटिल कृतघ्नो कोढो कूठित कुडगी अघ।—पद्माकर (शब्द०)।

कुड—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० क्वप् प्रा०, कूड, कुट्य] दे० 'कुडन'।

कुडन—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कूड, प्रा० कुड्ड] १. वह क्रोध जो मन ही मन रहे। वह क्रोध जो भीतर ही भीतर रहे, प्रकट न किया जाय। चिड़। २. वह दुःख जो दूसरे के अनिवार्य कष्ट को देखकर हो।

कुडना—क्रि० अ० [सं० कूड, या कूष्ट, प्रा० कुड्ड] १. भीतर ही भीतर क्रोध करना। मन ही मन खीझना या चिड़ना। बुरा मानना। २. डाह करना। जलना। उ०—चंद्रगुप्त से उसके भाई लोग बुरा मानते थे और महानंद अपने सब पुत्रों का पक्ष करके इससे कुडता था।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। ३. भीतर ही भीतर दुखी होना। मसोसना। उ०—श्रीकृष्णचंद इतना कह पाताल पुरी को गए कि माता तुम अब मत कुड़ो, मैं अपने भाइयों को अभी जाय ले आता हूँ।—लल्लू। (शब्द०)। ४. दूसरे के कष्ट को देख भीतर ही भीतर मसोसकर रह जाना।

कुडव वि० [सं० कु + हि० डव] १. बुरे डग का। वेढव। २. कठिन। दुस्तर।

कुडा—सञ्ज्ञा पुं० [ग्र० करहह] सूजाक के रोग में वह गाँठ जो पेशाब की नली में पड़ जाती है और जिसके कारण पेशाब बाहर नहीं निकलता और वही पीड़ा होती है। यह गाँठ रक्त और पीब के भीतर जम जाने से पड़ जाती है।

कुडाना—क्रि० सं० [हि० कुडना] १. क्रोध दिलाना। विड़ाना। खिझाना। २. दुखी करना। कलपाना।

कुडावना—क्रि० सं० [हि० कुडाना] ३. 'कुडाना'। उ०—मौर वैष्णव, मात्र को काहू प्रकार सों कुडावनी नाही।—दा सो बावन०, पृ० ३३६।

कुण^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. चीलर। २. नामि का मँल। कीट। ३. वच्चा। उ०—कोल कोल कुण कीचर माही। वल तें भिरे सकोप तहाँ ही।—गापाल। (शब्द०)।

कुण^२—सर्व० [हि०] कौन। उ०—चंद वदन कइ कारणइ। कुण वर वरसी भीज कुवार।—बी० रासो, पृ० ७।

कुणक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सद्य उत्पन्न हुआ पशुशावक [को०]।

कुणप^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कुणपी] दुर्गंधयुक्त। अशुचि गंध वाला [को०]।

कुणप^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. मृत शरीर। शव। लाश। २. इंगुदी। गोंदी। ३. रांगा। ४. बरछा। भाला। ५. अशुचि गंध। दुर्गंध [को०]।

कुणपा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] बरछी। भाला।

कुणपाशी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुणपाशिन] १. एक प्रकार का प्रेन जो मुर्बा खाता है। २. मुर्बा खानेवाला जंतु। जैसे, मीघ, कौआ, गीवड़।

कुणपी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी चिड़िया मँना आदि [को०] ।
 कृणाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार की चिड़िया । २. मयोक का एक पुत्र [को०] ।
 कुणि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. तुन का पेड़ । २. वह मनुष्य जिसकी वाहु टेढ़ी हो गई हो या मारी गई हो । ३. नखत्रण । अर्बुद । गनका [को०] ।
 कुत—क्रि० वि० [सं० कुतस्] १. कहाँ से । किस स्थान से । २. कहाँ । किस जगह । ३. क्यों । कैसे [को०] ।
 कुतक—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कुतका' ।
 कुतका—सञ्ज्ञा पुं० [हि० गतका] १. गतका । २. मोटा डंडा । सोटा । उ०—लै कुतका कहै 'दम्भ मदारा' । राम रहे इनहू ते न्यारा । उ०—कवीर (शब्द०) । ३. भाँग घोटने का डंडा । भँगघोटना ।
 मूहा—कुतका दिखलाना या देखना = किसी चीज के देने से साफ इनकार कर जाना । अँगूठा दिखलाना ।
 कुनकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कुतका] छोटी लकड़ी । छड़ी । उ०—अरघ चद हेका दिए हेका गाल हजार । हेका कुनकी हे दुवै एह दुष्ट अवतार —बाकी प्र०, भा० २, पृ० २६ ।
 कुतका—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कुतका' । उ०—जहँघ वीधि कुतका लीना दम दम करे दिवाना ।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ८८५ ।
 कुना—क्रि० अ० [हि० कूतना] कुतने का कार्य होना । कूता जाना ।
 कुतप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. दिन का आठवाँ मुहूर्त जो मध्याह्न समय में होता है । २. मिताक्षरा के अनुसार आठ वस्तुएँ जिनकी आद्व में आवश्यकता होती है, अर्थात्—मध्यह्न, खड्गपात्र या गेंडे के चमड़े का पात्र, नेपाली कंबल, चादी का बरतन, कुग, तिलु, गाय और दोहित्र । इसे कुतपाष्टक भी कहते हैं । ३. एक बाजा । ४. बकरी के बाल का कबल । ५. सूर्य । ६. अग्नि । ७. द्विज । ८. अतिथि । ९. भाजा । १०. वृषभ । शैल [को०] । ११. अन्न [को०] । १२. कन्या का पुत्र [को०] । १३. कुश [को०] ।
 कुतवा—सञ्ज्ञा पुं० [अ० खुतवह्] १. वह धार्मिक व्याख्यान जिसे इमाम जुमा (शुक्रवार) की या ईद की नमाज के बाद देता है और जिसमें तत्कालीन खलीफा या शाह की प्रशंसा रहती है । दे० 'खुतवा' । उ०—कुतवा पढ्यो छत्र सिरतान । बँठि तखत फेरी निज थान ।—अर्थ०, पृ० ४ ।
 कुतर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुतर] १. बुरा वृक्ष, नीम, बबून आदि । उ०—कुतब हूँ त आठो कुतर ऊगे चंदण पास ।—बाकी प्र०, भा० २, पृ० ८२ । २. एक प्रकार का तृण जो कपड़े में चिपक जाता है । इसे कुता भी कहते हैं ।
 कुतरक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुतरक] दे० 'कुतक' । उ०—कुपय कुतरक कुचालि कलि कपट दंभ पाखंड ।—मानस, १।३२ ।
 कुतरकी—वि० [सं० कुतकिन्] दे० 'कुतकी' । उ०—हरि हर रति मति न कुतरकी । तिन्ह कव मधुर कथा रघुवर की मानस, १।६ ।

कुतरन—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कुतरना] कुतरा हुआ टुकड़ा ।
 कुतरना—क्रि० सं० [सं० कर्तन = कतरना] १. किसी वस्तु में से बहुत थोड़ा सा भाग दाँत से काटकर भलग करना । दाँत से छोटा सा टुकड़ा काट लेना । जैसे—(क) चूहो ने कई जगह कपड़े कुतर डाले हैं । (ख) हिरन पोघो की पत्तियाँ कुतर गए हैं । २. किसी वस्तु में से कुछ अंश निकाल लेना । बीच ही में कुछ अंश उड़ा लेना । जैसे—(५) रुपए हमें मिले थे, उसमें से दो रुपए तुम्ही ने कुतर लिए ।
 कुतरा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कुतरा] कुतरा । कुतुर । श्वान । उ०—दीन हो दीन हों दीन महा नटनागर के घर को कुतरा हों । नट०, पृ० ३ ।
 कुतरु—वि० [सं० कु + तरु] बुरा पेड़ । उ०—कुतब कुतरपुर राजमग लहत भुवन विख्यात ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ८८ ।
 कुतर्क—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बुरा तर्क । वेदगी दलील । बकवाद । विनडा ।
 कुतर्की—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुतर्किन्] व्यर्थ तर्क करनेवाला । बकवादी । विनडावादी ।
 कुतर्की—वि० कुतर्कद्विपित ।
 कुनला—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कतरना, तुलनीय अ० कत्ल = काट डालना] हँसिया ।
 कुतवारी—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कूतना + वार] (प्रत्य०) वह पुरुष जो बँटाई के लिये खेत की फसल का कनकृत करे ।
 कुतवार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोटपाल, कोतवाल] कोतवाल । उ०—नी पीरी तेहि गढ मँझियारा ओ तहँ फिरहि पाव कुनवारा । जायसी (शब्द०) ।
 कुतवारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० कोटपाली, हि० कोतवाली] १. कोतवाल का कान । उ०—शेष न पायो अत पुहुमि जा की फनवारी । पवन ब्रुहारत द्वार सदा सकर कुतवारी ।—सूर (शब्द०) । २. कोतवाल का कार्यस्थान । कोतवाली ।
 कुतवाली—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कोतवाल' । उ०—ग्रापु भए कुतवाल भली विधि लूटही ।—कवीर रा०, भा० ४, पृ० २ ।
 कुतवाली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कोतवाली' ।
 कुतारी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कु + हि० तार] अडस । प्रसुविधा ।
 कुताल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कु + ताल] संगीत में वह ताल जो असामयिक और अनियमित हो । उ०—ताल कुताल सप्त सुर जाने ।—माधवानल०, पृ० १६२ ।
 कुताही—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कोताही] दे० 'कोताही' ।
 कुतिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कुत्ती] कुत्ते की मादा । कूकरी । कुत्ती । उ०—इह दसा स्वान पाई तऊ कुतिया सँ उरझत गिरत ।—अज० ग्रं०, पृ० ११० ।
 कुतुक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. इच्छा । अभिलाषा । लालसा । २. लोचक । कुतूहल । ३. उत्कट इच्छा या कामना [को०] ।
 कुतुप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. दिनमान का आठवाँ मुहूर्त । कुतप । २. तेल रब । मड़े की कृष्णी ।
 कुतुब—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कुतब] १. ध्रुवतारा । नेता । नायक । उ०—कुतुब हैं वो खबर लिए माय सँ आपने सीस १०, पृ० २६८ ।

वाना। कुनवेवाला। ३ कुटुब के लोग। सबधी। नातेदार।
३ वह व्यक्ति जो किसी वस्तु को देखभाल करता हो [को०]।
४ किसान। कृपक [को०]।

कुटुनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० कुटनी (को०)।

कुटुम(५)†—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुटुम्ब] दे० 'कुटुंब'।

यौ०—कुटुमकीला = कुटुबीजन।

कुटुवा†—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कूटना] १ कूटनेवाला। २ बेल या भेंस को वधिया करनेवाला।

कुटेक—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कु + हि० टेव] अत्रचित हठ। बुरी जिद।

कुटेव—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कु + हि० टेव] खराब आदत। बुरी धान।
बुरा अश्रय। उ०—नैनन यहै कुटेव परी। लूटत स्याम रूप
आपुन ही निसि दिन पहर धरी।—सूर (शब्द०)।

कुटेशन—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कोटेशन] दे० 'कोटेशन'।

कुटौनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कूटना + ओनी (प्रत्य०)] १ धान कूटने का काम। उ०—कंकशा अपढ़ स्थियो का दिल बहलाव
लड़ाई है। घर गृहस्थी के साथ काम पिसोनी कुटौनी से छुट्टी
पाय जबतक दांत न करं लें, आपस में भोटीभोटा न कर
लें, तबतक कमी न अघायें।—हिंदी प्रदीप (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—कुटौनी पिसोनी = (१) धान कूटने और गेहूं पीसने का काम। (२) जीविका के लिये कठिन परिश्रम (स्त्रियो का)।
जैसे—माँ तो कुटौनी पिसोनी करती है और बेटे का यह हाल है।

२ धान कूटने की मजदूरी। जैसे—दो मन धान की कुटौनी कितनी हुई।

कुट्ट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ गुणक। गुणा करनेवाला। २ वह अक्र जिससे गुणा किया जाय [को०]।

कुट्टक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कूटने पीसनेवाला व्यक्ति। २. एक शिकारी पक्षी। ३. गुणक [को०]।

कुट्टन सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ नृत्य में वह मुद्रा जिसमें बूढ़ावस्था के कारण दाँत से दाँत बजने का भाव दिखाया जाता है। २ कूटना (को०)। ३ पीसना (को०)। ४ काटना (को०)।

कुट्टनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ कुटनी। दलाला। २ मनमोटाव करने के लिये एक आदमी की बात दूसरे आदमी से कहनेवाली।
हथर की उधर लगानेवाली।

कुट्टमित—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सुख के अनुभव-काल में स्त्रियो की मिथ्या दुःख-चेष्टा। यह ग्यारह प्रकार के हावों में से एक माना गया है।
हेमचन्द्र ने इसे स्त्रियो के दस प्रकार के अलंकारों में माना है।

कुट्टा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कटना] १ परकटा कवूतर। वह कवूतर जिसकी पूँछ के पर कतरकर उसे उड़ने के अयोग्य कर देते हैं और जिसे दूसरे कवूतरों को बुलाने के लिये हाथ में लेकर उछालते हैं। २ वह पक्षी जिसके पर वाँधकर जाल में इसलिये छोड़ देते हैं कि उसे देखकर और पक्षी आकर जाल में फँसे। मुल्लह।

कुट्टाक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कुट्ट कि] १ काटने या बिभस्त करने-वाला। २ कूटने पीसने का काम करनेवाला। कुट्टक।

कुट्टार—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ कबल। ओढ़ने का ऊनी वस्त्र। २ रतिक्रिया। सभोग। ३ पहाड़। पर्वत। ४. पृथक्ता। पार्थक्य [को०]।

कुट्टित—वि० [सं०] १ फटा हुआ। २ पिसा हुआ। कूटा हुआ [को०]।

कुट्टिम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वह भूमि जिसपर ककड़, पत्थर या ईंटें बँठाई हो। पक्का फर्श। गच। २ अनार। दाडिम। ३. रत्न की खान (को०)। ४. कुटी। छोटा गृह (को०)।

कुट्टिमित—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० कुट्टमित (को०)।

कुट्टिहारिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [पुं०] दे० 'कुट्टिहारिका' [को०]।

कुट्टी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० काटना] १ घास, प्याल या घोर चारे को छोटे छोटे टुकड़ों में काटने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२ गेंडासे से वारीक कटा हुआ चारा। ३ कूटा और सड़ाया हुआ कागज, जिससे पुट्टे और फलमदान इत्यादि बनते हैं। ४. लडकी का एक शब्द, जिसका प्रयोग वे एक दूसरे से मित्रता तोड़ने के समय दाँतो पर नाखून खूट से बुलाकर करते हैं।
५. मैत्रीभंग।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

५. परकटा कवूतर। वि० दे० 'कुट्टा'।

कुट्टीर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] छोटा पहाड़। पहाड़ी [को०]।

कुट्टीरक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुट्टीरक' [को०]।

कुट्टमल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुट्टमल' (को०)

कुठ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पेड़। वृक्ष। गाछ [को०]।

कुठर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वें० 'कुठर' [को०]।

कुठला—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोष्ठ, प्रा० कोट्ट + ला (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्पा० कुठली] १. अनाज रखने का मिट्टी का बड़ा बरतन।
२. चूने की मट्ठी।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।

कुठाँउ, कुठाँय(५)—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कु + ठाँव] दे० 'कुठाव'।

कुठाँव(५)†—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कु + हि० ठाँव] बुरी ठौर। बुरी जगह। उ०—यह सब कलियुग को परभाव। जो नृप को मन गयो कुठाँव।—सूर (शब्द०)।

मुहा—कुठाँव मारना = (१) मर्म स्थान पर मारना, अथवा ऐसे स्थान पर मारना जहाँ बहुत कष्ट या दुर्गति हो। (२) घोर आघात पहुँचाना। बुरी मोत मारना। उ०—घरम घुरघर धीर धीर नयन उधारे राव। सिर धुनि लीन्ह उसास अंसि मारेसि मोहि कुठाँव।—तुलसी (शब्द०)।

कुठाकु†—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] कठफोड़वा पक्षी।

कुठाटक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुठारटङ्क] [स्त्री० कुठाटका] छोटा कुल्हाड़ा। कुल्हाड़ी।

कुठाट—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कु + हि० ठाट] १. बुरा साज। बुरा सामान।

उ०—राग को न साज न विराग जोग जाग जिय, काया नहि छाड़ि देत ठाटिबो कुठाट को।—तुलसी (शब्द०)। २. बुरा प्रबंध। बुरा आयोजन। उ०—(क) नट ज्यों जिन पेट कुपेट कु कोटिक चेटक कोटि कुठाट ठटो।—तुलसी (शब्द०)।

(ख) मोहि लगि यह कुठाट वेहि ठाटा। तुलसी (शब्द०)।

कुठाय(१)—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कुठाँव' ।
 कुठार^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुठारी] १ कुल्हाड़ी । २ परशु ।
 उ०—कर कुठार में अकरन कोही । आगे अपराधी गुल्होही ।
 —तुलसी (शब्द०) ।
 यौ०—कुठाराघात । कुठारपाणि ।
 ६ नाच करनेवाला । सत्यानासी । कुलकुठार । ४. वृक्ष ।
 पेड़ [स्त्री०] ।
 कुठार^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोष्ठागार, प्रा० कोट्टार, हि० कोठार] ग्रनाज
 आदि रखने का बड़ा वरतन । कोठिला ।
 कुठारक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुल्हाड़ी [स्त्री०] ।
 कुठारपाणि^१—स्त्री० [सं०] जो हाथ में परशु या कुठार लिए हो ।
 कुठारपाणि^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] परशुराम जी का एक नाम ।
 उ०—निषट निदरि वोले बचन कुठारपानि मानी आस ओनिपन
 मानो योनता गही ।—तुलसी (शब्द०) ।
 कुठारपानि—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुठारपाणि] परशुराम ।
 कुठाराघात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कुल्हाड़ी का आघात । कुल्हाड़ी का
 घाव । २. गहरी चोट । भारी सदमा । ३. पूर्णतः नष्ट करने
 वाला व्यवहार ।
 क्रि० प्र०—करना ।—होना ।
 कुठारिक^१—वि०, सञ्ज्ञा पुं० [सं०] लकड़ी काटकर जीविका अर्जित
 करनेवाला । लकड़हारा [स्त्री०] ।
 कुठारिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कुल्हाड़ी [स्त्री०] ।
 कठारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. कुल्हाड़ी । टांगी । उ०—रामकया
 कलि विटप कुठारी । सादर सुनु गिरिराजकुमारी ।—मानस,
 १।११४ । २. नाश करनेवाली उ०—गहि पद वितय कीन्ह
 बंठारी । जनि दिनकरकुल होसि कुठारी ।—मानस, २।३४ ।
 कुठारी^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कोठारी] दे० 'कोठारी' ।
 कुठार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वृक्ष । पेड़ । ३. वानर । बंदर । ३.
 शस्त्रकार । अस्त्रनिर्माता [स्त्री०] ।
 कुठाली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कु + स्थाली = बटलोई हि० कुठार + ई (अल्पां
 प्रत्यय)] मिट्टी की घरिया जिसमें सोना चाँदी गलाते हैं ।
 घरिया । उ०—पंडित जी ने सखिया मंगा दिया तो बाबा जी
 ने तुरत कुठाली में डाल के पंडित जी के हाथ से एक बूटी का
 रस उसके ऊपर पिरवाया ।—अक्षराम (शब्द०)
 कुठार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कु + ठार = जगह] १. कुठार । कुठाँव ।
 बुरा स्थान । उ०—कह लकेश सहित परिवारा । कुसल कुठार
 बास कुम्हारा ।—मानस १।४६ । २. वे मौका । बुरा
 अवसर । उ०—सो सब मोर पाप परिनाम । मयउ कुठार
 जेहि विधि वामू ।—मानस २।३६ ।
 कुठि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. पेड़ । तह । २. पर्वत । पहाड़ [स्त्री०] ।
 कुठियाँ—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कोठिका, प्रा० कोट्टिया] ग्रनाज रखने
 का मिट्टी का गहरा वरतन ।
 कुठिला—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कुठला' ।
 कुठी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कंठीली बरें या कुसुम का पेड़
 जो बंगाल में होता है और रंग बनाने के काम में माता है ।

कुठार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कु + हि० ठार] १. कुठाँव । बुरी जगह । २.
 वे मौका । वे ठिकाना । अनुपयुक्त अवसर ।
 कुठेर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] २. तुलसी का पौधा । २. अग्नि [स्त्री०] ।
 कुठेरक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] श्वेत तुलसी का पौधा [स्त्री०] ।
 कुठेर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चेंबर या पखे की वायु [स्त्री०] ।
 कुडग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुडङ्ग] कुज । पेड़ों का भुरमुट्टा [स्त्री०] ।
 कुड—सञ्ज्ञा पुं० [कुट, कुठ प्रा० कुड] वृक्ष । पेड़ । उ०—सेही
 सियाल लगूर बहु, कुड कदम भरि तर रहिय —पृ०
 रा० ६।६४ ।
 कुड^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुठ, प्रा० कुट्ट] कुट नाम की ओषधि ।
 कुड^२—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] या सं० कुट = समूह] अन्न की राशि । कूरा ।
 कुड^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कोड़ना = खोदना] हल की अगवोसी । जोधा ।
 कुडकी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [तु० कुर्क] दे० 'कुर्क' । उ०—किसपर कुडकी
 नहीं आई ।—गोदान, पृ० १ ।
 कुडकुड—सञ्ज्ञा पुं० [अनु०] एक निरर्थक शब्द, जिसकी सहायता से
 पक्षी, पशु आदि खेती से हटाए जाते हैं ।
 कुडकुड़ाना^१—क्रि० अ० [अनु०] किसी अनुचित या अप्रिय बात को
 देख या सुनकर भीतर ही भीतर दुःख होना । मन ही मन
 कुड़ना । कुडबुड़ाना ।
 कुडकुड़ाना^२—क्रि० सं० खेत में चिड़ियों को उड़ाना या जानवरों
 को भगाना । जैसे,—वह दिन भर खेत में बैठा कोए
 कुडकुड़ाया करता है ।
 कुडकुडी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अनु०] भूख या अजीर्ण से होनेवाली पेट की
 गुडगुड़ाहट ।
 मुहा०—कुडकुडी होना = किसी बात को जानने के लिये गहरी
 आकुलता या उत्कंठा होना । पेट में चूहे कुड़ना ।
 कुडप—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुडप] दे० 'कुडव' ।
 कुड पना—क्रि० सं० [हि० कुड = हलकी लकीर] कंगनी के खेत को
 उस समय जोतना जब फसल एक बिस्ती की हो जाय ।
 कुडबुड़ाना—क्रि० प्र० [अनु०] मन ही मन कुड़ना । कुडकुड़ाना ।
 कुडमल(१)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुडमल] दे० 'कुडमल' । उ०—कुलिस
 कुड कुडमम दामिनि दुति दसननि देखि लजाई ।—तुलसी प्र०,
 पृ० ४६२ ।
 कुडमाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [पं०] विवाह के पहले विवाह के निश्चय के
 उपलक्ष्य में होनेवाला लोकाचार । मंगनी । सगाई ।
 कुडरियाँ—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कुडरी + इया (प्रत्यय)] दे० 'कुडरी' ।
 कुडरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [कुण्डली] १. गेडुरी । ईडुरी । मिडई ।
 बिडवा । २. वह भूमि जो नदी के घूमने से बीच में पड़कर
 तीन तरफ जल से घिर जाय । कुडरिया ।
 कुडल—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्चन] शरीर में ऐठन जो रक्त की कमी
 या उसके ठंडे पड़ने से होती है । यह अवस्था मिरगी आदि
 रोगों में या निर्मलता के कारण होती है । वयःपूज ।
 कुडव—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुडव] लोहे या लकड़ी का अन्न नापने का एक
 पुराना मान जो चार अंगुल चौड़ा और उतना ही गहरा
 होता था ।

भी होता है। इसकी पत्तियाँ लची लची कटावदार और ऊप्य को चीड़ी होती हैं। इसकी जड़ में गोल गोल वेडोल गाँठें पड़ती हैं जो शीपघ के काम में आती हैं। स्वाद में कुटकी कड़वी, चरपरी और रूखी होती है। प्रकृति इसकी शीतल है। यह भेदक, कफनाशक तथा पित्तज्वर, श्वास, कोष्ठ और छमि को दूर करनेवाली मानी जाती है। इसमें दीपक और मादक गुण भी होता है। यह २ रत्ती से ४ रत्ती तक खाई जा सकती है। इसे कानी कुटकी भी कहते हैं।

पर्याय—तिवता। काडंरहा। अरिष्टा। चक्राग्री। शकुलादिनी। कटुका। मलयपित्ता। नकुलासादिनी। शतपर्वा। द्विजाग्री। मलयभेदिनी। कृष्णा। कृष्णभेदा। कृष्णभेदी। मधोपधि। कटवी। अजनी कटु। वामघ्नी। चित्राग्री।

२ एक जड़ी जो शिमले से काश्मीर तक पाँच से दस हजार फुट की ऊँचाई पर पहाड़ों में होती है। यह जिनशियन नाम की अग्नेजी दवा के स्थान में व्यवहृत होती है। यह बल और वीर्यवर्धक होती है।

कुटकी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [दि०] १ एक छोटी चिडिया।

विशेष—यह भारत के घने जंगलों में होती है और ऋतु के अनुसार रंग बदलती है। यह पाँच इंच लंबी होती है और तीन चार अङ्ग देती है। यह कमी जोड़ने में और कमी फुट रहती है। बोली इसकी कड़ी होती है। यह पत्ते, फूल, बाल, कपास आदि गूँथकर घोंसला बनाती है।

२ बाटिए के पेंच का वह भाग, जिसमें लोहे की कीलों या छड़ों में पेंच बनाया जाता है।

कुटकी^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कूटका = छोटा टुकड़ा] कंगनी। चेना।

कुटकी^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कटु + भीट] एक उड़नेवाला कीड़ा जो कुत्ते, बिल्ली आदि पशुओं के शरीर के रोवों में घुसा रहता है और उन्हें काटता है।

कुटचारि^५—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कूटचार] चुगुली। चवाव। उ०—अस को आहि कुटीचर सगा। कै कुटचारि कीन्ह रस भंगा।—चित्रा० पृ० ५३।

कुटज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कुरैया। कर्ची। इद्रजी। अगस्त्य मुनि। ३. द्रोणाचार्य का एक नाम। ४. पद्म। कमल।

कुटनई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कुटनपन'।

कुटनपन, कुटनपना—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुटन अथवा हि० कुटनी + पन (प्रत्य०)] १ कुटनी का काम। शिष्यों को फोड़ने फासने का काम। दूसी धर्म। २. इधर उधर लगाने का काम। भगडा लगाने का काम।

कुटनपेशा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कुटन + फा० पेशा] दे० 'कुटनपन'।

कुटनहारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कूटना + हारी (प्रत्य०)] धान कूटने का काम करनेवाली स्त्री। वह स्त्री जो धान कूटकर भूसी और चावल अलग करने का व्यवसाय करती हो।

कुटना^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कुटनी] १. स्त्रियों को बहकाकर उन्हें परपुरुष से मिलाने वाला अथवा एक का संदेश दूसरे तक पहुँचानेवाला व्यक्ति। स्त्रियों का बलात्कार। टाला। २. एक

की बात दूसरे से कहकर दो आदमियों में झगडा करानेवाला। चुगलखोर।

कुटना^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कूटना] १ वह मोजार या हथियार जिससे कूटाई की जाय। २ कूटे जाने की क्रिया।

यी०—कुटना विसना = कूटे और पीसे जाने का काम।

कुटना^३—कि० प्र० [हि० कूटना] १ कूटा जाना। २. मारा या पीटा जाना।

कुटनाई^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कुटनपन'।

कुटनाना—कि० सं० [हि० कुटना] १ किसी स्त्री को बहकाकर कुमार्ग पर ले जाना। २. उहकाना।

कुटनपन—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कुटना + पन (प्रत्य०)] दे० 'कुटनपन'।

कुटनापा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कुटना + पा (प्रत्य०)] दे० 'कुटनपन'।

कुटनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुटनी] १ स्त्रियों को बहकाकर उन्हें परपुरुष से मिलाने अथवा एक का संदेश दूसरे तक पहुँचानेवाली स्त्री। दूसी। २ चुगली खाकर दो व्यक्तियों में झगडा करानेवाली स्त्री। इधर की उधर लगानेवाली औरत।

कुटनीपन—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कुटनी + पन (प्रत्य०)] दे० 'कुटनपन'।

कुटन्नक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] केवट मोथा। कसेरु।

कुटन्नट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ स्थोनाक। छोका। २ केवट मोथा। कंवर्तमुखा।

कुटप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अन्न की एक नाप। कुडव। २ घर से लगा हुआ या समीपवर्ती बगीचा। ३ सत। तपस्वी। ४ कमल। पद्म [स्त्री०]।

कुटम^५—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुटुम्ब] दे० 'कुटुम्ब'। उ०—कुटम सेव करि खेस, करद लै अदल पठाए।—ह० रामो०, पृ० १२१।

कुटर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह डंडा जिसमें मयानी की रस्सी लपेटो जाती है।

कुटर, कुटर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] किसी बड़ी वस्तु के चढ़ाने का शब्द।

कुटर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. काग। २ तड़। खोमा [स्त्री०]।

कुटल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] छप्पर। छत [स्त्री०]।

कुटवाना—कि० सं० [हि० 'कूटना' का प्र० रूप] कूटने की क्रिया कराना। कूटने में तत्पर करना।

कुटवारी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोटपाल] गाँव का गोडइत। चौकीदार।

कुटवारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कोटपाल प्रा० कुटुवाल = नगररक्षक, हि० कोतवाल, पोवाली] कोतवाल का कार्य। नगररक्षा या चौकसी। दे० 'कोतवाली'। उ०—कैसे नगरि करौ कुटवारी, चबल पुरिप विचपन नारी।—कवीर ग्रं०, पृ० ११३।

कुटहारिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दासी। सेविका। नौरानी [स्त्री०]।

कुटाई—सञ्ज्ञा [हि० कूटना] १ कूटने का काम। १ कूटने की मजदूरी। ३ किसी को बहुत अधिक पीटना। कुटास।

कुटार—सञ्ज्ञा पुं० [हि० काटना] नटखट टटटू।

कुटास—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कूटना] खूब मारना। पीटना।

कुटि^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ देह। शरीर। २. वृक्ष।

कुटि^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] । भोपड़ी । कुटे । २. मोड़ । घुमाव ।

कुटि^४—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] । वह गाँव जिसका प्रधान एक गति हो [को०] ।

कुटि^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कुटिया' ।

कुटिचर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जपशूचर । शिशुमार । सूँस [को०] ।

कुटिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुटिका] छोटी झोपड़ी ।

कुटिर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] भोपड़ी । कुटिया [को०] ।

कुटिल^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कुटिला] १. वक्र । टेढ़ा ।

यो०—कुटिलकीट = साँप । कुटिलबुद्धि, कुटिलमति, कुटिलस्वभाव, कुटिलाशय = दुरात्मा । टेढ़ी प्रकृति का । बुरे स्वभाववाला ।

२. दगाबाज । कपटी । छली ।

कुटिल^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. शठ । खल । २. वह जिसका रंग पोला लिए सफेद हो और आँखें लाल हो । ३. चौदह अक्षरों का एक वर्ण वत्त जिसके प्रत्येक चरण में स, भ, न, य, ग, ग, होते हैं । उ०—सुम नायो गगरिक तुव गगा पानी । जिन शशू सिर जननि दया की खानी तजि सारे कुटिलन कपटी को साया । तिनपाई अति सुभ गति गावै गाया । ४. तगर का फूल । ५. दिन [को०] ।

कुटिलई^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] कटिलता ।

कुटिलक—वि० [सं०] मुड़ा हुआ । वक्र [को०] ।

कुटिलकीट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सर्प । साँप । उ०—तनु तज्यो कुटिल-कीट ज्यों तज्यो मात पिता हूँ ।—तुलसी (शब्द०) ।

कुटिलकीटक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मकड़ा [को०] ।

कुटिलगति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. वक्रगति । टेढ़ी चाल । २. एक बणवृत्त [को०] ।

कुटिलगा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नदी । सरिता [को०] ।

कुटिलता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. टेढ़ापन । २. खोटाई । धोखेबाजी । छल । कपट ।

कुटिलपन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुटिल + हिं० पन (प्रत्य०)] ३. 'कुटिलता' । उ०—केकयनदिनि मदमति कठिन कुटिलपन कीन्ह ।—मानस, २।६१ ।

कुटिललिपि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कुटिला नामक एक लिपि । वि० दे० कुटिला २ ।

कुटिला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. सरस्वती नदी । २. एक प्राचीन लिपि, जिसका प्रचार भारतवर्ष में आठवीं शताब्दी से ग्यारहवीं शताब्दी तक था ।

विशेष—भारतीय प्राचीन लिपिमाला (पृ० ४२) के विवरण के अनुसार इसके अक्षरों तथा विशेषकर स्वरों की मात्राओं की कुटिल आकृतियों के कारण इसका नाम कुटिल रखा गया । यह गुप्त लिपि से निकली और इसका प्रचार ई० स० की छठी शताब्दी से नवीं तक रहा और इसी से नागरी और शारदा लिपियाँ निकली ।

१. प्रसरण नामक गद्यद्रव्य, जिसका उपयोग भोपड़ों में भी होता है । ४. चैतन्य संप्रदाय के अनुसार राधिका की नन्द और सायानधोष की बहन ।

कुटिलाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुटिलता' ।

कुटिलिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. विना आहट के पैर दबाकर माना ।

निशब्द प्रागमन । २. लोहार की धौंकनी या भायो [को०] ।

कुटिहा—वि० [हिं० कूट + हा (प्रत्य०)] १. कूट कहनेवाला । २. व्यग्य से हँसी उड़ानेवाला । ३. दिलगीवाज ।

कुटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. जगलो या देशान्तर में रहने के लिये पास फूस से बनाया हुआ छोटा घर । पणगावा । कुटिया । भोपड़ी । २. मुरा नामक गद्यद्रव्य । ३. नफेद कुड़ा । कुटज । ४. मरुग्रा नामक पौधा । ५. मदिरा । मद्य [को०] । ६. लतागृह । लतामंडप [को०] । ७. पुष्प का स्तवक । फूल का गुच्छा [को०] । ८. मोड़ । घुमाव [को०] ।

कुटीका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा घर । कुटिया [को०] ।

कुटीचक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चार प्रकार के सन्ध्यास्थियों में से पहना ।

विशेष—इस कोटि का सन्ध्यासी शिखायुक्त का त्याग नहीं करता । यह तीन दंड और कमंडलु रखता, कपाय पहनता और त्रिचाल संव्या करता है । यह अपने कुटुंब और वधूपों के अतिरिक्त दूसरे के घर की मिक्षा नहीं लेता । मरने पर इसका दाहकर्म किया जाता है ।

कुटीचर^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुटीचक' । उ०—प्राचीन आर्यों की धर्मनीति में इसी लिये कुटीचर और एकतवासियों का ही अनुमोदन किया है ।—कंकाल, पृ० १८ ।

कुटीचर^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुचर या या सं० कूट + चर या सं० कुटीचर] कुटिल । कपटी । छली । उ०—जोवन वर पर्यो है कुटीचर काम पं बाहु अनेक चहोंगी ।—घनानंद, पृ० ६०० ।

कुटीप्रवेश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आयुर्वेद के अनुसार कल्पचिकित्सा के लिये विशेष प्रकार से निर्मित कुटी में रहना [को०] ।

कुटीर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'कुटी' । २. रति क्रिया । ३. सपु-गुंता [को०] ।

कुटीरक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुटी । कुटिया ।

कुटुगक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुटुङ्गक] १. वृक्ष पर चढ़ी हुई लता से बना हुआ मंडप । लताकुंज । २. वृक्ष पर चढ़ी हुई लता । ३. छत । छाजन । ४. कुटीर । भोपड़ी । ५. अन्न का भांडार [को०] ।

कुटुंब—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुटुम्ब] १. परिवार । कुनवा । खानदान । २. परिवार के प्रति कर्तव्य कर्म [को०] । ३. रिश्तेदार । संबंधी [को०] । ४. नाम [को०] । ५. जाति [को०] । ६. समूह [को०] ।

कुटुंबक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुटुम्बक] १. दे० 'कुटुंब' । २. एक प्रकार की घास [को०] ।

कुटुंबिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुटुम्बिक] दे० 'कुटुंबी' ।

कुटुंबिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुटुम्बिनी] १. एक क्षुद्र गुल्म जो मीठा, संप्राहक, कफपित्त का नाशक, रक्तशोधक और व्रण में उपकारी होता है । २. घर गृहस्थीवासी स्त्री । परिवारवाली स्त्री [को०] । ३. कुटुंब के प्रधान की परनी । ४. घर की नोकरी ।

कुटुंबी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुटुम्बिन्] [स्त्री० कुटुम्बिनी] १. परिवार ।

कुचोद्यां—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कु + चोद्य] कुत्सित प्रश्न । त्रितडा । कुतकं ।
खुचुर ।

क्रि० प्र०—करना ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग काशी के पंडित ही बहुधा करते हैं ।

कुच्चा—सञ्ज्ञा पुं० [फा० कुल्ह] [स्त्री० कुच्चो] चमड़े आदि का बना हुआ कप्पा ।

कुच्चो^१—सञ्ज्ञा पुं० [फा० कुणह] मिट्टी का लगा बरतन जिससे तेली तेल नापते हैं ।

कुच्चो^२—वि० छोटी । मही । उ०—मोटा तन व बुंदना बुंदना मूव कुच्चो घाँव ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ७८६ ।

कुच्छ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जलकमल का एक भेद । कुई [को०] ।

कुच्छित, कुच्छित्त (उ०)—वि० [सं० कुत्सित] कुत्सित । नीच । उ०—

(क) सुरधुनी मोघ संसर्ग तें नाम बदल कुच्छित नरो । परमहंस

वंसानि मे भयो विभागी बानरो ।—नाभा (शब्द०) । (ख)

कुच्छित्त देस कारन विक्रम । तहँ सु केम किजै गमन ।—पृ०

रा०, पृ० १७६ ।

कुछ—वि० [सं० कश्चित् पा० किची, पू० हिं० फछु फछु] थोड़ी

सख्या या मात्रा का । जरा । थोड़ा सा । टुक । जैसे—

(क) देखो पेड़ में कुछ फल हैं । (ख) कुछ लोग भ्रा रहे हैं ।

(ग) कुछ देर ठहरो तो बातचीत करे ।

मुहा०—कुछ एक = थोड़ा सा । कुछ ऐसा = विलक्षण । असाधारण । जैसे—

(क) रात तो कुछ ऐसी नींद आई कि पड़ते ही

सो गए । (ख) वह लड़का कुछ ऐसा घबड़ाया कि भागते ही

बना । कुछ कुछ = थोड़ा । जैसे—आज बुखार कुछ कुछ

उतरा है । कुछ न कुछ = थोड़ी बहुत । कम या ज्यादा । बहुत

कुछ । कितना कुछ = बहुत अधिक ।

कुछ^२—सर्व० [न० कश्चित् प्रा० कोचि] १ कोई (वस्तु) । जैसे—

कुछ खाओ तो ते आवे । (ख) कुछ दिलवाओ । (ग) हम कुछ

नहीं जानते ।

मुहा०—कुछ का कुछ = भीर का शीर । विपरीत । उलटा ।

जैसे—वह सदा कुछ का कुछ समझता है । कुछ से कुछ होना =

भारी उठाट फेर होना । विशेष परिवर्तन हो जाना । कुछ कह

बैठना = फड़ी बात कह देना । ऊची नीची सुना देना । गाली

दे देना । कुछ कहना = बड़ी बात कहना । गाली देना ।

विगडना । जैसे—तुम्हें किसी ने कुछ कहा है ? कुछ सुनोगे या

कुछ सुनने पर लगे हो = ऊँचा नीचा सुनोगे । गाल खाओगे ।

जैसे—तुम नहीं मानते हो, अब कुछ सुनोगे । कुछ खा लेना =

विष खा लेना । जैसे—इसने कुछ खा तो नहीं लिया ।

कुछ खाकर मर जाना = विष खाकर मर जाना । कुछ कर

देना = जादू डोना कर देना । मन्त्रप्रयोग कर देना । जैसे—

जान पड़ता है कि किसी ने उसपर कुछ कर दिया है । कुछ

हो जाना = कोई रोग या भूत । प्रेत की बाधा हो जाना । जैसे—

उपवो कुछ हो तो नहीं गया । (किसी बुरी बात) या वस्तु का नाम लेकर लोग कभी कभी केवल इसी सर्वनाम

का प्रयोग कर लेते हैं । जैसे—उसे कुछ हो तो नहीं गया ।

उसने कुछ खा तो नहीं लिया ? किसी ने कुछ कहा तो नहीं ?
इत्यादि । कुछ हो = चाहे जो हो ।

२ कोई बड़ी बात । कोई अच्छी बात । जैसे,—यदि ५०) दी

दिए तो कुछ नहीं किया । ३ कोई सार वस्तु । कोई काम की

वस्तु । जैसे,—उसमें तो कुछ भी नहीं निकला ।

कुहां०—कुछ (फछु) न रहना = इज्जत न रहना । प्रतिष्ठा न

रहना । उ०—नददास प्रभु कछु न रहंगी, जब भरतन

उधरंगी ।—नंद प्र०, पृ० ३६२ । कुछ सगाना = (प्रपने को)

बड़ा या थोड़ा समझना । कुछ हो जाना = किसी योग्य हो

जाना । किसी बात में समर्थन या किसी गुण से युक्त हो जाना ।

गण्यमान्य हो जाना । जैसे,—(क) यह नडका परिश्रम करेगा

तो कुछ हो जायगा । (ख) यदि यह काम चमक गया तो हम

भी कुछ हो जायेंगे ।

कुजत्र (उ०)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कु + यत्र, प्रा० जत्र] १. बुरा यत्र । २.

अभिचार । टोटका । टोना । उ०—कलि कुकाट कर कीन्ह

कुजंत्रू । गाडि भवधि पडि कि न कुमनू ।—तुलसी (शब्द०) ।

कुजभल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुजम्भल] संघ लगानेवाला । चोर (को०) ।

कुजंभा^१—वि० [सं० कुजम्भा] विचराल दाँतवाला ।

कुजभा^२—सञ्ज्ञा पुं० एक अनुर जो प्रह्लाद का पुत्र था ।

कुजभिल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुजम्भिल] ३० 'कुजमल' ।

कुज^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मंगल ग्रह । उ०—(क) माल विसाल

ललित लटकन मनि बाल दसा के चिकुर मृदापू । मानो गुरु

शनि कुब आगे करि ससिहि मिलन तम के गन आए ।—

सूर०, १०।१०४ । (ख) माल लाल बेंदी ललन भावन रहे

विराजि । इंदु कला कुज मे वसी मनहु राहु भय भाजि ।—

विहारी (शब्द०) । २ वृक्ष । पेड़ । उ०—चदन वदन जोग

तुम धन्य द्रुमन के राय । देत कु कुज ककोल लो देवन सीस

चढ़ाय ।—दीन० प्र०, पृ० २१३ । ३ नरकासुर का नाम,

जो पृथ्वी का पुत्र माना जाता था ।

कुज—वि० [मंगल तेसमान] लाल रंग का । लाल । उ०—(क)

फहरी अनत सोई पुजा । सित स्याम रंग कीती कुजा ।—

सूदन (शब्द०) । (ख) यह स्याम धुता बहुरंग कुजा ।—

सूदन (शब्द०) ।

कुज^२—क्रि० वि० [फा० कुजा = फहरा, क्यों] कहाँ । किस जगह ।

उ०—कुज रौला पाया अलमा कुज जागजा पाया मल ।—

सतवाणी०, भा० १, पृ० १५१ ।

कुज^३ (उ०)—वि० [हिं० कुज] ३० 'कुज' । उ०—वहा कुज ऐतबार सिकत

का नही सिचाए एहानियत के ।—दक्खिनी०, पृ० ४४२ ।

यो०—कुजकोई = हर एक । प्रत्येक । जो चाहे । उ०—कुजकोई

चु बन करे गनका हदो गाल । कुजकोई खावण करे मावडि-

यारी माल ।—वाकी० प्र०, भा० २, पृ० १५ ।

कुजन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बुरा व्यक्ति । दुर्जन व्यक्ति । असत्पुरुष ।

कुजन्मा—वि० [सं० कुजन्मन्] १ नीच से उत्पन्न । अकुलीन । २

पृथ्वी से उत्पन्न (को०) ।

कुजस—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कु + जस (सं० यशस्)] अपशय । निंदा ।

अपकीर्ति ।

कुजा—संज्ञा स्त्री० [सं० कु = पूर्यो + जा = जायमान] १ सीता । जानकी । उ०—दूटे धनुष कठिन है व्याहू । विन भजे को बरी कुजाहू ।—विश्राम (शब्द०) । २. कात्यायिनी का एक नाम । कुजात—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कुजाति' । यो०—जात कुजात ।

कुजाति^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी जाति । नीच जाति । उ०—दुख सुख, पाप, पुण्य दिन राती । साधु, असुधु, सुजाति कुजाती—। तुलसी (शब्द०) ।

कुजाति^२—संज्ञा पुं० १ बुरी जाति का आदमी । नीच पुरुष । उ०—नहि तोप विचार न सीतलता । सब जाति कुजाति भये मंगता ।—तुलसी (शब्द०) । पतित या अवम पुरुष । उ०—कूर कुजाति कपून अधी सबकी सुघर जो करै नर पूजा ।—तुलसी (शब्द०) ।

कुजामी—संज्ञा पुं० [सं० कु + याम] दे० 'कुजून' । कुजाष्टम—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार एक योग जो जन्मकुंडली के चक्र में मंगल के आठवें स्थान पर होने से होता है । यह योग बड़ा ही अशुभ माना जाता है । ज्योतिषियों का मत है कि कुजाष्टम योग कुंडली के अन्य शुभ योगों को नष्ट कर देता है ।

कुजियाँ—संज्ञा स्त्री० [फा० कुजट = प्याला] छोटी धरिया । कुजून—संज्ञा स्त्री० [सं० कु + हि० जून = समय] १. कुसमय । बुरा समय । २. अतिकाल । देर । नावक ।

कुजोग पुं०—संज्ञा पुं० [सं० कुयोग] १. कुसंग । कुमेल । बुरा मेल । उ०—ग्रह सैपज जन पवन पट, पाइ कुजोग सुजोग । होहि कुवस्तु सुवस्तु जग लखहि सुलच्छन लोग ।—तुलसी (शब्द०) । २. बुरा संगोग । बुरा अवसर । प्रतिकूल अवस्था ।

कुजोगी (७)—वि० [सं० कुयोगी] असंयमी । उ०—पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी । मोह विटप नहि सकहि उरारी ।—तुलसी (शब्द०) । कुज्जा—संज्ञा पुं० [फा० फूज्जु = प्याला] १. मिट्टी का प्याला । पुरवा ।

२. मिट्टी के कूजे में जमाई हुई मिस्त्री की बड़ी गोल डली । कुज्जटि, कुज्जटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सं० 'कुज्जटिका' [को०] । कुज्जटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुहरा । कुहेलिका । उ०—क्षण क्षण विद्युत् प्रकाश, गुरु गजन कधुर भास । कुज्जटिका अट्टहास, मरद्ग विनिस्तद ।—पाराधना, पृ० १३ ।

कुटकी—संज्ञा पुं० [सं० कुटकु] छाजन । छप्पर । छन [को०] । कुटगक—संज्ञा पुं० [सं० कुटङ्गक] १. लताकुज । लतामडप । २. भोपडी । कुटी । आवास [को०] ।

कुटत—संज्ञा स्त्री० [हि० कूटना + त (प्रत्य०)] १. कूटने का भाव । कुटाई । २. मार । पहार । जैसे—जामो घर पर खूब कुटत होगी । उ०—जेहि जियत ईदपुर मे कूटत । गज बाज ऊँट प्यना लूटन ।—सूदन (शब्द०) ।

कुटम (७)—संज्ञा पुं० [सं० कुटम्ब] दे० 'कुटम्' । उ०—कुटम कलित या ने रहत नदी ही हम, जाहि के खवास खास विस्व में रिमात हैं ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ४३४ ।

२-५७

कुट^१—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुटी] १. घर । गृह । २. कोट । गढ़ । ३. कलश । ४. वह घन जिससे पत्थर तोड़ा जाता है । ५. वृक्ष । ६. पर्वत ।

कुट^२—संज्ञा स्त्री० [सं० कुट, प्रा० कुठ] एक बड़ी मोटी भाड़ी जिसकी जड़ सुगन्धित होती है ।

विशेष—कश्मीर के छिनारे की डालू पहाड़ियों पर ८००० से ६००० फुट की ऊँचाई तक यह होती है । चनाव और केनम के ऊँचे कठारों में भी यह मिलती है । कश्मीर में इसकी जड़ खोदकर बहुत इकट्ठी की जाती है और छोटे छोटे टुकड़ों में काटकर बाहर कलकत्ते और बंबई भेजी जाती है, जहाँ से इसकी चलान चीन और योरप को होती है । कश्मीर में इसका सग्रह राज्य की ओर में होता है । प्रत्येक कायतकार को कुछ जड़ कर के रूप में देनी पड़ती है । इसकी सुगंध बड़ी मनोहर होती है और चीन में इसे धूप की तरह जलाते हैं । इससे बाल भी मला जाता है । इसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि इससे नफेद बाल काले हो जाते हैं । काश्मीर में घाल के व्यापारी इसे दुआलों की तह में उन्हे कीड़ों में बचाने के लिये रखते हैं । पहले लोग अमली कश्मीरी शान की पहचान इसी की महक से करते थे । बँचक में यह गरम, कठ और वात-नाशक, दाद, खुजली आदि को दूर करनेवाली और शुकजनक मानी गई है । हकीम लोग कुट तीन प्रकार की मानते हैं । एक मीठी, तेल में हलकी, सुगन्धित और पीलापन लिये सफेद होती है । दूसरी कड़वी, कुछ कड़ी रंग की और गिना महक की होती है । तीसरी लान रंग की और स्वाद में फीकी होती है और उसमें धीक्वार की सी महक होती है ।

पर्या०—कुष्ट । व्याधि । परिमात्र्य । व्याप्य । पाकल । उत्पन्न । कदाच्य । दुष्ट । आप्य । जरण । कीवेर । मामुग । गदाह्व । कुठिक । काकल । नीरज । ग्रामय । रजा । गद । पारिमद्रक कुत्सित । पावन ।

कुट—संज्ञा पुं० [सं० कुट = कूटना] १. कूटा हुआ टुकड़ा ।

यो०—कसकुट । तिलकुट । तिसकुट ।

मुहा०—कुट करना = मंत्री खंडित करना । बालको का दाँतो पर नाखून छूट से बुलाकर मियता तोड़ना । कुट्टी करना ।

२. फूटा और सड़ाया हुआ कागज । कुट्टी ।

कुटक—संज्ञा पुं० [सं०] १. हल का फल । २. मवाना की रन्ती लपेटने का डडा । ३. भागवत वर्णित एक देश और उसके निवासी । ४. वृक्षविशेष का नाम [को०] ।

कुटका^१—संज्ञा पुं० [हि० काटना] [स्त्री० अल्पा० कुटकी] १. छोटा टुकड़ा । उ०—साधुन की झुपडी भली, ना साकट को गाँव । चदन की कुटकी भली, ना बखल बनराव ।—कवीर (शब्द०) ।

२. कसीदे में का तिकोना वृद्ध । तिघाडा ।

कुटकारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दाती । परिवारिका [को०] ।

कुटकी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० कुटका] १. एक पीड़ा जिसकी जड़ खोदकर प्रकृति की होती है और दवा के काम में आती है ।

विशेष—यह पश्चिमी और पूरबी घाटों में तथा पञ्च पञ्जी प्रदेशों में

कुक्षेत्र—सङ्घा पुं० [सं० कुक्षेत्र, पा० कुक्षेत्र] बुरा स्थान। खराब जगह। कुठाव। उ०—(क) असगुन ठोहि नगर पैठारा। रटहि कुमाति कुक्षेत्र करारा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) चारों ओर व्यास खगपति के भुंउ भुंउ बढ़ आये। ते कुक्षेत्र बोलत मुनि मुनि के अग अग कुम्भिलाये।—सूर (शब्द०)।

कुक्ष्यात—वि० [सं०] निदिन। उदनाम।

कुक्ष्याति—सङ्घा स्त्री० [सं०] निदा। वदनामी।

कुगति—सङ्घा स्त्री० [सं०] दुर्गति। दुर्दशा। बुरी हालत। उ०—हम सुगति छोड़ क्यों कुगति विचारें जन की।—साकेत, पृ० २२०

कुगहनि—सङ्घा स्त्री० [सं० कु+ग्रहण] अनुचित आग्रह। हठ। जिद। उ०—महामदभ्रं दसकष न करत कान मीचु वस नीच हठि कुगहनि गही है।—तुलसी (शब्द०)।

कुग्रह—सङ्घा पुं० [सं०] पापग्रह। खोटे ग्रह। अनिष्टकारी ग्रह (को०)।

कुघा—सङ्घा स्त्री० [सं० कुक्षि] दिशा। ओर। तरफ। उ०—चोहूँ कुघा तडिता तडपै डरपै बनिता कहि केशव साँचै।—केशव (शब्द०)।

कुघाई—सङ्घा स्त्री० [सं० कु+घात, प्रा० घाड] दे० 'कुघात'। उ०—कहिय कठिन कृत कोमलहु हित हठि होइ सहाइ। पलक पानि पर ओडिअत समुझि कुघाई सुघाई।—तुलसी ग्र०, पृ० १०६।

कुघात—सङ्घा पुं० [हिं० कु+घात] १ कुग्रहसर। वेमोका। २ बुरा दाँव। बुरी चाल। छल कपट। उ०—बड़ कुघात करि पात-किनि कहेसि कोपगूह जाहु। काजु सँवारेहु सजग सब सहसा जनि पतिपाहु।—मानस, २। २२।

कुचदन—सङ्घा पुं० [सं० कुचन्दन] १ रक्त चदन। लाल चदन। देवी चदन। २ बक्कम। पटरंग। ३ कुँकुम।

कुच^१—सङ्घा पुं० [सं०] स्तन। छाती।

यौ०—कुचकुभ।—कुचतट। कुचतटी=स्तन।

कुच^२—वि० १, सकुचित। २ कृपण। कजूस।

कुच^३—सङ्घा पुं० [सं० कञ्चुक] काँचली। कंचुल। उ०—साँप कुच छोड़े विख नही छाँडे। उदक माँहि जैसे वक्र ध्यान माँडे।—दक्खिनी०, पृ० ४०।

कुच^४—सर्व० [हिं० कुछ] दे० 'कुछ'। उ०—ना कुच खावे ना कुच पीवे।—दक्खिनी०, पृ० १६।

कुचकार—सङ्घा पुं० [दे०] भेड़ की एक जाति जो गिलगिल के उत्तर हजा में पाई जाती है। यह पामीर में भी होती है। कुलजा।

कुचकुचवा—सङ्घा पुं० [अनु०] उल्लू।

कुचकुचाना—क्रि० सं० [अनु० कुच कुच] १ सगातार कोचना। बार बार नुकीली चीज घँसाना या बोधना जैसे,—मुरखे के लिये भावना कुचकुचाना। २ थोड़ा कुचलना।

कुचक—सङ्घा पुं० [सं०] दूसरे को हानि पहुँचानेवाला गुप्त प्रयत्न। पड्यत्र। साजिश।

क्रि० प्र०—चलाना।—रचना।—खड़ा करना।

कुचक्री—सङ्घा पुं० [सं० कुचक्रिन] पड्यत्र रचनेवाला। गुप्त प्रयत्न करके दूसरों को हानि पहुँचानेवाला।

कुचना—क्रि० अ० [सं० कुञ्चन] मिकुटना। सिमटना (व०)। उ०—कंपै वर वानी डगै उर डीठ तुचाति कुचै सकुचै मति वेली।—केशव (शब्द०)।

कुचफल—सङ्घा पुं० [सं०] १ दाड़िम। अनार (को०)। २ स्तन। कुचमदन—सङ्घा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का सन या पटुआ जिससे रस्से बनाए जाते हैं। २ हाथ से किसी स्त्री के स्तन मसलना।

कुचमुख—सङ्घा पुं० [सं०] स्तन का अग्र भाग। कुचाग्र। चूचुक (को०)। कुचर^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कुचरा, कुचरी] १ बुरे स्थानों में घूमनेवाला। आचारा। २ नीच कर्म करनेवाला। ३ वह जो पराई निंदा करता फिरे। परनिंदक। ४ धीरे धीरे चले वाला। रंगनेवाला (को०)। ५ बुरी सुहृद का (को०)। ६ चोर (को०)।

कुचर^२—सङ्घा पुं० निश्चल वा स्थिर नक्षत्र (को०)।

कुचरचा—सङ्घा स्त्री० [सं० कु+चर्चा] अपवाद। अपकथन। निंदा। उ०—राम कुचरचा करहि सब, सीतहि लाइ कलक। सदा अमागी लोग जग कहत सकौचु न सक।—तुलसी ग्र०, पृ० ६३।

कुचरा—सङ्घा पुं० [हिं० कुँचा] [स्त्री० अल्पा० कूचरी] भाड़ू।

कुचराई—सङ्घा स्त्री० [सं० कुचर] कुचाल। बुरी चाल। उ०—नाम रटन को करत निठुराई कूदि चर्च कुचराई।—धरनी०, पृ० ५।

कुचलना—क्रि० सं० [हिं० कुचना या अनु०] १ किसी चीज पर सहसा ऐसी दाव पहुँचाना जिससे वह बहुत दब और विकृत हो जाय। मसलना। २ पंगे से रौंदना। पीव से दवाना।

स यो० क्रि०—जाना।—डालना।—वेना।

मुहा०—सिर कुचलना=पराजित करना। मान ध्वश करना।

कुचल वेना=शक्तिहीन कर देना।

कुचला—सङ्घा पुं० [सं० कञ्चौर] १ एक प्रकार का वृक्ष जो सारे भारतवर्ष में, पर बंगाल और मद्रास में अधिकता से होता है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ पान के आकार की चमकीले हरे रंग की होती हैं और फूल लंबे, पतले और सफेद होते हैं। फूल झड़ जाने पर इसमें नारंगी के समान लाल और पीले फल लगते हैं, जिनके भीतर पीले रंग का गूदा और बीज होता है। कच्चा फल मलावरोधक, वातघ्नक और ठंडा होता है और पक्का फल मारी तथा कफ, वात, प्रमेह और रक्त के विकार को दूर करता है। इसका स्वाद कुछ मिठास लिए हुए कड़ुवा और कसैला होता होता है। इस वृक्ष की छाल और इसके बीज का उपयोग औषध में होता है। इसकी लकड़ी में घुन नहीं लगता और वह बहुत मजबूत और चिमड़ी होती है और गाड़ियाँ, हल, तख्ते आदि बनाने का काम में माता है।

२. इस वृक्ष का बीज जो बहुत जहरीला होता है। कुचला।

विशेष—यह गोन श्री चपटा होता है। इसके ऊपर मटमैले रंग का छिन्का होता है जिसके अंदर दो दाँते होती हैं। जिसके मध्य एक छोटा हरे रंग का अँखुआ रहता है। यह बहुत अधिक कड़ा होता है इसलिए इसका पीसना या तोड़ना बड़ा कठिन होता है। यह कड़वा गरम मादक और बहुत विषैला होता है और कफ, वात हृदयरविकार, कृम और ववालीर को दूर करता है। वमन कराने और सुगंध सुँवाने से इसका विष उतर जाता है। कुत्ते के लिये यह बहुत घातक होता है।

पर्या—कारस्कर। विषतिवृ। कालरूठरु। मर्कंडतिवृ। कृपाक। रिपाक।

कुचनी—सद्वा श्री [हि० कुचलना] वे दाँत जो डाढ़ों और राजदंत के बीच में होते हैं। ये नोकदार और बड़े होते हैं। कीला। सीता दाँत।

कुचा शक—सद्वा पुं [म०] स्तनो को बाँधने का वस्त्रखंड। स्तनोत्तरीय। चोली श्री०।

कुचाग्र—सद्वा पुं [सं० कुच + अग्र पुं०, हि० कुचा अग्र (व०)] युवती के कच या उरोज का अग्रभाग। कुचमुख। उ०—(क) उनके हृदयों को कवित कठोर कुचाग्र प्रकुश से छेदती। प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५। (ख) कालिंदी न्हावर्हि न नयन यजे न भ्रगगद। कुचाग्र परसे न नील दल कवल तौरि सद।—पृ० रा०, २।३४६।

कुचाना—क्रि० सं० [हि० कौचना] चुपाना। गोदना। गडाना। उ०—अपनी अँगुली से आँख कुचा कर आप ही पूछते हो कि आँसु क्यों आए।—शकुंतला, पृ० ३०।

कुचाल—सद्वा श्री [सं० कु + हि० चाल] १ बुरा आचरण। खराब चालचलन।

क्रि० प्र०—चलाना।

२. दुष्टता। पाजीपन। छोटाई। बदमाशी। उ०—राजा दशरथ रानी कोसिला जाये। कंकरी कुचाल करि कानन पयाए।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—चाल कुचाल = छोटापन। उ०—नाहि तो ठाकुर है अति वारण करिहे च लु कुचाली हो।—कवीर (शब्द०)।

कुचाजिया—सद्वा पुं [हि० कुचाल + इया (प्रत्य०)] दे० कुचानी। कुचाली—सद्वा पुं [हि० कुचाल] १ कुमारी। २ बुरे आचरणवाला। ३ दुष्ट। पाजी। बदमाश। उ०—सकन कहहि कव होइहि काली। विधन बनावहि देव कुचाली।—मानस २।११।

कुचाह—सद्वा श्री [कु + हि० चाह] अमंगल। अशुभ वान। उ०—(क) जातुधान तिय जानि वियोगिनि दुखई सीय सुनाइ कुचाहें।—तुलसी ग्र०, पृ० ४१३। (ख) लखन मपन यह नीरु न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई।—मानस, २।२२५।

कुचिक—सद्वा पुं [सं०] ईशान [पूर्वोत्तर] दिशा का एक प्राचीन देव, जो कदाचित् आधुनिक कूचविहार हो।

कुचिका—सद्वा श्री [सं०] एक प्रकार की मछली [को०]।

कुचित—वि० [सं०] १ सिकुड़ा हुआ। सकुचिन। २ प्रत्य। थोडा [को०]।

कुचिया—सद्वा श्री [सं० कुञ्चिक या गुञ्जिका] छोटी छोटी टिकिया।

कुचियादाँत—सद्वा पुं [हि० कुचना > कूचिया + दाँत] वह दाँत जिससे प्राणी अपने आहार का कुचल कुचलकर खाते हैं। डाढ़। चोमर।

कुचिल—वि० [हि०] दे० 'कुचील'। उ०—पतिव्रता मैली मली, काली कुचिल कुल्फ। पतिवरता के रूप पर, वारों कोटि सरूप।—कवीर भा० सं०, भा० १ पृ० ३०।

कुचिना—वि० [हि०] दे० 'कुचलना'। उ०—फूल की सी मालवान लाल जो लपटि लागी तन मन ओऽ पट काट कुचिलगे।—देव (शब्द०)।

कुचिला—सद्वा पुं [हि०] दे० 'कुचना'।

कुची—सद्वा श्री [सं० कुञ्चिका, हि० कुची, कुची] दे० 'कुची'। कुचील—वि० [सं० कुचेन] मैले वस्त्रवा। मैला कुचैला। मलिन उ०—(क) हों कुचील मनिहीन सकन विधि तुम कृपालु जग जान।—सूर०, १।१००। (ख) कञ्जन कीच कुचीन किए तट अचर अघर कपोत। यकि रहे पथिक सुयश हिन ही के हस्त चरन मुख बोल।—सूर (शब्द०)।

कुचीला—वि० [हि० कुचील] दे० 'कुचैला'।

कुचुमार—सद्वा पुं [सं०] कामशास्त्र के एक प्रधान आचार्य का नाम जिनका मत वारस्यायन के कामशास्त्र में उद्धृत मिलता है।

कुचेन^१—सद्वा पुं [सं०] १ मैला कपड़ा। मलिन वस्त्र। १. पाठ। कुचेन^२—वि० १ मैला कपड़ा पहननेवाला। जिसके कपड़े मैले हो। २ मैला। गदा। मलिन।

कुचेष्ट—वि० [सं० कु + चेष्टा] बुरी चेष्टावाना। जिसकी बुरी चेष्टा हो।

कुचेष्टा—सद्वा श्री [सं०] [वि० कुचेष्ट] १ बुरी चेष्टा। कुप्रवृत्त। हानि पहुँचाने का यत्न। बुरी चाल। २ चेहरे का बुरा भाव।

कुचैन—सद्वा श्री [सं० कु + हि० चैन] कष्ट। दुःख। व्याकुलता। उ०—सोवन जागत सपन वस रस रिस चैन कुचैन। सुरति स्याम घन की सुगति बिनरे हूँ विमरे न।—विहारी र०, दो० २२७।

कुचैन^२—वि० कुचैन। व्याकुल। उ०—माजे मोहन मोह को मोड़ी करत कुचैन। नहा करी उनटे परे डोने गोने नैन।—विहारी र०, दो० ४७।

कुचैन—वि० [सं० कुचैल] कटा पुराना। मै। गदा। उ०—(क) पट कुचैल दुरवल द्विज देखत, त के तदुन याए (हो)।—सूर० २।७। (ख) रे कुचैन तन तेजिया अपनी मुख सो हेर सुमनन वासे तेल को काह डारत पेर।—राजनिधि (शब्द०)।

कुचैला—वि० [सं० कुचेन] [वि० श्री कुचैनी] १ जिसका काड़ा मैला हो। मैले कपड़ेवाला। २. मैला। गदा। जं।—मैली कुचैनी घोड़ी। मैले कुचैने कपड़े।

कुकुर—सन्धा पुं० [अ०] रसोई बनाने का एक आधुनिक यंत्र जिसपर एक साथ अनेक चीजें बनाई जाती हैं ।

कुकुरी^१—सन्धा स्त्री० [सं० कुक्कुट, कुक्कुटी, पुं० हिं० कुकडी (कबीर), कूकडा (खुरो)] मुरगी । वनमुरगी । उ०—हारिल चरज आइ बंद परे । वनकुकुरी, जलकुकुरी घरे ।—जायसी (शब्द०) । २ कच्चे सूत का लपेटा हुआ लच्छा । अटी । कुकडी । मुहडा । उ०—छह मास वागा बरस दिन कुकुरी । लोग बोले भल कातल वपुरी ।—कबीर (शब्द०) ।

कुकुरी^२—सन्धा स्त्री० [देश०] १ पीड़ा । दर्द । २ वह भिल्ली या सल जो घाव पर पड़ जाती है । पर्दा । भिल्ली । ३ खूबडी । कुकुरौदा—सन्धा पुं० [सं० कुक्कुट] दे० 'कुकुरौघा' ।

कुकुरौघा—सन्धा पुं० [सं० कुक्कुट] ओपधि में प्रयुक्त होनेवाला एक प्रकार का छोटा पीघा ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ पाल की पत्तियों से कुछ बड़ी होती हैं । इससे एक प्रकार की कडी गंध निकलती है । बरसात के अंत में ठंडी जगहों पर या मोरियों के किनारे यह उगता है । पहले इसकी पत्तियाँ बड़ी होती हैं, पर डालियाँ निकलने पर वे क्रमशः छोटी होने लगती हैं । पत्तियों और डालियों पर छोटे छोटे घने रोए होते हैं जिनके कारण वे बहुत मुलायम मालूम होती हैं । जब यह हाथ डेढ़ हाथ का हो जाता है, तब इसकी चोटी पर मजरी लगती है, जिसमें तुलसी की भाँति बीज निकलते हैं, जो पानी में डालने पर इसबगोल की भाँति फूल जाते हैं । वैद्यक के अनुसार यह कडवा, चरपरा और ज्वरनाशक है तथा रक्त और कफ के दोष को दूर करता है । यह आमरवत, सग्रहणी और रक्तातिसार में भी उपकारी होता है ।

पर्याय—कुकुर वर । कुक्कुट । ताम्रचूड़ । कुकुरमुत्ता । कुकुरौघा ।

कुकर्म—सन्धा पुं० [सं०] बुरा काम । खोटा काम ।

कुकर्मी—वि० [हिं० कुकर्म + ई (प्रत्यय)] बुरा काम करनेवाला । पापी । खोटा ।

कुकुरी^३—सन्धा पुं० [सं० फूल, प्रा० कुकुस, कुक्कुस = तुष, भूसी] अभक्ष्य पदार्थ । साधारण भोज्य पदार्थ । निकृष्ट पदार्थ । उ०—पूरव देश को पूरव्यालोक, पानफूल तण्डुल लवण भोग । कण सचइ कुकुर भक्षइ अति चतुराई राजा गढ़ ग्वालर ।—वी० रासी०, पृ० ३५ ।

कुकील—सन्धा पुं० [सं०] पहाड़ । पर्वत [को०] ।

कुकुदर—सन्धा पुं० [सं० कुक्कुट] १ कुकुरौघा । २ सूतड़ पर का गहड़ा ।

कुकुज—सन्धा पुं० [देश०] एक विशेष फूल या वृक्ष उ०—येत कुक्कुज ककोल सो देवन सीस चढ़ाय ।—दीन० प्र०, पृ० ६९ ।

कुकुत्सद—सन्धा पुं० [कुकुत्सद] एक बुद्ध का नाम जो गौतम से पहले हुए थे ।

कुकुद^१—सन्धा पुं० [सं०] वह पिता जो अपनी कन्या को विधिवत् पूरी साजसज्जा के साथ दान करता है [को०] ।

कुकुद^२—सन्धा पुं० [सं० कुक्कुट] १. चोटी । शिखर । २. सींग । ३,

राजचिह्न । ४ बेल का डिल्ला । उ०—ज४ तें तेरे कूचि, रुचिर, हरि हेरे भरि नैन । कनक कलस कुक्कुट, नीके तनक लयें न ।—सं० सप्तक, पृ० २५७ ।

कुकुद्मत्—वि० [सं० कुक्कुट] चोटी या शृंगवाला । डिल्लवाला । उ०—पागुर करते दृढ़ निर्वंद कुक्कुट शूल वृषभवत् ।—अतिमा, पृ० १३७ ।

कुकुभ—सन्धा पुं० [म०] १ एक राग का नाम । वि० दे० 'ककुभ' । २. एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में १६ और १४ के विश्राम से ३० मात्राएँ होती हैं । छंद के पादांत में दो गुरु का होना आवश्यक है । जैसे,—गिरिधर मोहन वशीधारी, राधापति हरि बलवीरा । ब्रजवासी संतन हितकारी, शूरा हलधर रणधीरा । सुंदर रामप्रताप मुरारी, जसुदा को पीछो छीरा । चक्रपाणि कह सुनो विहारी, चितवन से हर मम पीरा ।

कुकुभा—सन्धा स्त्री० [सं०] एक रागिनी । वि० दे० 'ककुभा' ।

कुकुर—सन्धा पुं० [सं०] १ यदुवंशी क्षत्रियों की एक जाति । ये लोग अश्वक राजा के पुत्र कुकुर के वंशज माने जाते हैं ।

पर्याय—यादव । वाशर्ह । सात्वत । कुक्कुट ।

२ एक प्रदेश जहाँ कुक्कुट जाति के क्षत्रिय रहते थे । यह देश राजपूताने के अंतर्गत है । ३ एक साँप का नाम । ४ कुत्ता । ५ गेंठवन का पेड़ ।

कुकुरभालू—सन्धा पुं० [हिं० कुकुर + भालू] एक बेल जो नेपाल, भूटान, आसाम और छोटा नागपुर आदि जंगलों में होती है । इसके कंद या जड़ को अकाल के दिनों में गरीब लोग खाते हैं ।

कुकुरखासी—सन्धा स्त्री० [हिं० कुक्कुट + खासी] वह सूखी खासी जिसमें कफ न गिरे । डाँसी ।

कुकुरडाँसी—सन्धा स्त्री० [हिं०] दे० 'कुकुरखासी' ।

कुक्कुरदत्त—सन्धा पुं० [हिं० कुकुर + दत्त] [वि० कुकुरदत्ता] वह दाँत जो किसी किसी को साधारण दाँतों के अतिरिक्त और उनसे कुछ नीचे झाड़ा निकलता है तथा जिसके कारण दोठ कुछ उठ जाता है ।

कुकुरदत्ता—वि० [हिं० कुकुरदत्त] जिसके मुँह में कुकुरदत्त हो ।

कुकुरनिदिया—सन्धा स्त्री० [हिं० कुकुर + निदिया] थोड़ी सी आदत से भी टूट जानेवाली नींद । श्वाननिद्रा । उ०—नींद नहीं आई, कुकुरनिदिया की तरह दो एक भपकियाँ ली ।—झाले०, पृ० ३४ ।

कुकुरभंगरा—सन्धा पुं० [हिं० कुकुर + भंगरा] काला भंगरा । भंगरा । वि० दे० 'भंगरा' ।

कुकुरमाछी—सन्धा स्त्री० [हिं० कुकुर + माछी] एक प्रकार की मक्खी जो घोड़े, बेल और कुत्ते आदि के शरीर पर लगती और काटती है । यह बहुत दुढ़ होती है । इन मक्खियों का रंग कुछ ललाई लिए हुए भूरा होता है ।

कुकुरमुत्ता—सन्धा पुं० [हिं० कुक्कुट + मूत] एक प्रकार की खुसी जिसमें से बुरी गंध निकलती है । वि० दे० 'खुमी' ।

कुकुरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कूकुर] १. कुकुडी । २. कुत्तिया ।
३. 'कुकुर' ।

कुकुरीली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० कूकुर + माछो] एक प्रकार की मछली ।
३. 'कुकुरमाछी' ।

कुकुरी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कूकुर, प्रा० कुक्कुह] वनमुर्गी । उ०—
मानुस तें बढ पापिया, यक्षर गुरहि न मान । बार बार वन
कुकुरी गनं धरे चौखान ।—कमीर (शब्द०) ।

कुकुरी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] बाजरे की फसल का एक रोग जिसमें
बाल पर काली बुट्टी सी जम जाती है और दाने नहीं
पड़ते ।

कुकूण—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुकूणक] आँखों का एक रोग जो प्रायः बच्चों
को होता है । कुयूर । रोहा ।
विशेष—इस रोग में आँखों की पलकों में खुजलाहट होती है
और पलक खोलने और मूँदने में कष्ट होता है । इस रोग
में लड़के प्रायः आँख मलते हैं, तथा नाक और माया रगड़ा
करते हैं ।

कुकूणक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुकूण' ।

कुकूद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुकूद' ।

कुकूल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. भूसी । २. भूसी की आग । ३. वह गड्ढा
जिसमें लकड़ियाँ भरी हों । ४. कवच [को०] ।

कुकुलाग्नि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुकुल + अग्नि] भूसी की आग । तुपाग्नि ।
तुपानल [को०] ।

कुकुर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कूकुर] दे० 'कुकुर' उ०—निपिद्ध मास
विना हमारा भोजन ही नहीं बनता, कुकुर हमारा जलपान
है ।—भारतेंदु श०, ना० ३, पृ० ८५६ ।

कुकुट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. मुर्गी ।

यो०—कुकुटध्वनि । कुकुटमस्तक । कुकुटशिख । कुकुटाडक
कुकुटभृत्य ।

२. चिनगारी । ३. लुक । ४. जटाधारी । मुर्गकण ।

कुकुटक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वनमुर्गी । कुकुही । २. निषादी माता
और शत्रु पिता से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति ।

कुकुटकनाडी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक ठेड़ी नली या यंत्र जिससे भरे
वरतन या स्थान से खाली वरतन या स्थान में पानी आदि
पहुँचाया जाता है ।

कुकुटकपाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गया के पास एक पर्वत का प्राचीन
नाम जिसे अब कुक्षिहार कहते हैं ।

विशेष—यह पर्वत गया से आठ कोस उत्तरपूर्व की ओर है ।
चीनी यात्रियों के यात्राविवरण से मालूम होता है कि यह
यह उस समय बौद्धों का प्रधान तीर्थस्थान था । अब भी इसके
आसपास कई टूटे फूटे स्तूप और मूर्तियाँ पाई जाती हैं ।

कुकुटमडप—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुकुटमण्डप] जैन धर्म के अनुसार वह
स्थान जहाँ कोई निर्वाण प्राप्त करता है [को०] ।

कुकुटमस्तक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चव्य । चाव । गजपिप्पली ।

कुकुटयव—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुकुटयव] दे० 'कुकुटनाडी' ।

कुकुटव्रत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक व्रत जो मादो की शुक्ला सप्तमी को
होता है । इस दिन स्त्रियाँ सतान के लिये शिव और दुर्गा की
पूजा करती हैं ।

कुकुटशिख—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुसुम (कुसुम) का पेड़ या फूल ।

कुकुटाड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुक्कुटाण्ड] दे० 'कुकुटाडक' [को०] ।

कुकुटाडक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुक्कुटाण्डक] सुश्रुत के अनुसार एक धान
जो खावे में कसला और मीठा होता है । दुडी ।

कुकुटाभ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप [को०] ।

कुकुटासन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] भोगसाधना में एक आसनविशेष [को०] ।

कुकुटाहि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सर्प [को०] ।

कुकुटि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कुकुटी' ।

कुकुटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. मुर्गी । २. दमचर्मा । पाखंड । ३.
सेमल का पेड़ । ४. एक प्रकार का कीड़ा । छिपकली या
बहानी ।

कुकुभ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. मुर्गी । २. वनमुर्गी । ३. वानिश [को०] ।

कुकुर^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कुकुरी] १. कुत्ता । श्वान । २.
आत्र वंश का एक यदुवंशो राजा । ३. यदुवशियों की एक
शाखा । कूकुर । एक मुनि का नाम । ५. एक वनस्पति ।
ग्र विपणी । गंडर [को०] ।

कुकुर^२—वि० गौठदार । गंठीला ।

कुक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पेट । उदर ।

कुक्षि^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. पेट ।

यो०—कुक्षिभरि = (१) पेट । (२) स्वार्या ।

२. काख ।

यो०—कुक्षिगत = गम या कोख में आगत । गमंस्य । कुक्षिज =
पुत्र । कुक्षिस्य = कुक्षिगत ।

३. किसी चीज के बाच का भाग । ४. गुहा । ५. सतति । ६.
गत । गड्ढा [को०] । ७. घाटी [को०] । ८. खाड़ी [को०] ।

कुक्षि^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. महाभारत के अनुसार एक दानव का
नाम २. बाल नामक दानव राजा का नाम । ३. रामायण
के अनुसार इक्ष्वाकु का पुत्र जो विकुक्षि का पिता था । ४.
बाल का दूसरा नाम । ५. प्रियव्रत का दूसरा नाम । ६. एक
प्राचीन देश ।

कुक्षिभेद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. बृहत्संहिता के अनुसार ग्रहण के सात
प्रकार के मोक्ष के भेदों में से एक ।

विशेष—इसके दो भेद होते हैं । 'दक्षिण कुक्षिभेद' और 'वाम
कुक्षिभेद' । जब मोक्ष दाहिनी ओर से होता है, तब उसे दक्षिण
कुक्षिभेद और जब बाईं ओर से होता है, तब उसे वाम कुक्षिभेद
कहते हैं ।

कुक्षिशूल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पेट की पीड़ा । उदरशूल [को०] ।

कुलडो—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुक्कुटी] कच्चे सूत का लपेटा हुआ
लच्छा । खटी । कुकड़ी । उ०—पिउनी पाँच पचोस रंग की,
कुलडो नाम नजन का ।—कवीर श०, पृ० ७६ ।

कुँद—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कण्डूर = करेला] एक पेन जिसमें चार पाँच
ग्रमुन नये फल लगते हैं और जिनकी तरकारी होती है।

विशेष—ये फल पकने पर बहुत नान होते हैं, इसी से कवि लोग
प्रोडों की उपमा इनसे देते हैं। कुँदल की पत्तियाँ चार पाँच
ग्रमुन जरी और पक्कीनी होती हैं। इससे सफेद फूल लगते
हैं। चंदक में कुँदल का फल पीतल, मन्तमक, स्तनी में दूध
उत्पन्न करनेवाला तथा श्वास, दमा, वात और सूजन को दूर
करनेवाला माना गया है। इसकी जड़ प्रमेहनाशक और
धातुप्रसक्त मानी गई है। बरई पाय अपने पान के पीठो पर
परपन की तरह इसकी रेल भी चढ़ाते हैं। कुँदल के विषय
में यह भी प्रवाद चला आता है कि यह बुद्धिनाशक होता है।
पर्याय—विद्यो। विद्या। रक्तकला। तुडी। श्रौटोपमफला।
प्राण्डी। कर्मकरी। गोह्नी। छविनी।

कुँदला—सञ्ज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का खेपा या तबू।

कुँदरना—हि० सं० [सं० कुवलन = खोदना या सं० कुन्वरण =
छीलना पुरचना] चुरचना। छीलना। खरोचना। खूँदहेरना।
कुँदे—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुन्वर = खरादनेवाला शयवा हि० कुँदरना +
एरा (प्रत्यय) तुलनीय फा० कुँवहकार] [खी० कुँदनेरी]
खरादनेवाला। खरादी। कुनेरा। उ०—फनक दड दुइ भुजा
फलाई। जानहु फेर कुँदरे भाई।—जायमी (शब्द०)।

कुँभडा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुम्भाण्ड] दे० 'कुम्हडा'।

कुँभार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुम्भकार] कुम्हार।

कुँभिला—हि० अ० [हि०] दे० 'कुम्हलाना'।

कुँवर(७)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुमार] दे० 'कुँवर'। उ०—किर मोसो मैया
फिर कहिहुँ, कुँवर फछुह तुतराई।—पोद्दार अभि० ग्र०,
पृ० २३३।

कुँवर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कु मार, प्रा० कुँवार] [खी० कुँवरि] १
लड़का। पुत्र। बेटा। २ राजपुत्र। राजा का लड़का।

कुँवराई—सञ्ज्ञा खी० [सं० कोमल] मृदुता। १ कोमलता। उ०—
हेम फँयल सन सुदरनाई। फूल सरीय गाव कुँवराई।—
चित्रा०, पृ० २११।

कुँवरि—सञ्ज्ञा खी० [सं० कुमारी] १ कुमारी। २. राजकन्या।
उ०—इक दिन राधे कुँवरि, स्याम धर तेलनि भाई।—नद०
ग्र०, पृ० १२४।

कुँवरी—सञ्ज्ञा खी० [सं० कुमारी] दे० 'कुँवरि'।

कुँवरेठा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कुँवर + एठा (प्रत्यय)] [खी० कुँवरेठी]
सामान। छोटा लड़का। बच्चा।

कुँवाँ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुप] सं० 'कुम्भी'।

कुँवारा—हि० [सं० कुमार, प्रा० कुवार] [खी० कुवारी] जिसका
प्यात न हुआ हो। पिन व्याहा। जैसे,—यह सभी कुँवारा
है। उ०—तो वाली एक पेटी कुँवारी हती। सो फन्वा के
गिरासत यह रर डूउन को पायो।—दो सो बावन०, पृ० ३७।

कुँदरु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुडुम] केशर। जाफरान। उ०—
साँतु कुँदरु परियन लिए रहे। ताँवें भग रहन अनु चहे।—
आय० (अ० २०)।

कुँहडा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुम्भाण्ड] कुम्हडा। उ०—फद्दू कुँहडे धेले,
खरबूजे मटमैले।—भारतधरा, पृ० ७५।

कुँ—उप [सं०] एक उपसर्ग जो सञ्ज्ञा के पहले लगकर विशेषण का
काम देता है। जिन शब्द के पहले यह लगाया जाता है, उसके
अर्थ में 'नीच', 'कुत्तित' आदिका भाव आ जाता है। जैसे—
सग कुसंग। पुत्र कुपुत्र। टेव, कुटेव आदि। पर जिन शब्दों के
आदि में स्वर होता है उनमें लगने से पहले इसका रूप 'कू' (कदू)
हो जाता है। जैसे—कदन्न, कदाचार, कदुष्ण।
हिंदी में यह नियम नहीं है, जैसे कुप्रन्न, कुप्रसर आदि शब्दों
में। इसके रूपा 'कव' का भी मिलते हैं। जैसे,—
किप्रभु।

कुँ—सञ्ज्ञा खी० [सं०] पृथिवी।

यौ०—कुज।

२ विशेषण वा विभुज का आधार (कौ०)।

कुँप्रटा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुप, प्रा० कू + हि० टा (प्रत्यय)]
कुम्भी। उ०—कुप्रटा एक पच पनिहारी टटी, लेजुरि भरे
मतिहागी।—करीर सा० सं०, भा०, २, पृ० ७।

कुँप्रन्न—सञ्ज्ञा पुं० [सं०, हि० कु (खराब) + अन्न =] रद्दी अन्न।
मोटा अनाज। रसहीन अन्न। उ०—प्रब बढ़ाई तीन
सेर का मिनता है वह भी अन्न नहीं, कुप्रन्न।—अभिषाप्त,
पृ० २३।

कुप्रवसर—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] अनुपयुक्त समय या वातावरण। उ०—
जानि कुप्रसर प्रीति दुराई।—मानस १। ६८।

कुम्भी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कूप, प्रा० कुव] पानी निकालने के लिए पृथ्वी
में खोदा हुआ एक गहरा गड्ढा। कूप।

विशेष—यह भीतर पानी की तरह तक चला जाता है। इसके
किनारे को लोग ईंट या पत्थर से बाँधते हैं। इसके घेरे को जो
पहले खोदा जाता है, भगाड या ढाल कहते हैं। भगाड खोदे
जाने पर उसमें लकड़ी के पहिए के आकार का चक्र रखते हैं
जिसे निवार या जमवट कहते हैं। इसी निवार के ऊपर ईंटों
की जोड़ी होती है जिसे कोठी कहते हैं। किसी किसी कोठी
में दो निवार लगाए जाते हैं। दूसरा निवार पहले निवार के
पाँच छ हाथ ऊपर रहता है और दोनों के बीच में पत्थरी
लकड़ियों की पटरियाँ लगाई जाती हैं जिन्हें कँची कहते हैं।
कोठी तैयार हो जाने पर उसके बीच को मिट्टी निकाली जाती
है जिससे कोठी नीचे घँसती जाती है और कुम्भी गहरा होता
जाता है। इस क्रिया को कोठी गलाना कहते हैं। इस प्रकार
कई बार कोठी गलाने पर भीतर पानी का स्तब्ध मिलता है।
पतले स्तब्ध की 'सोती' और मोटे स्तब्ध को 'भूमना' कहते हैं।
कुएँ के ऊपर मुँह पर जो चतुररा बनाया जाता है, वह 'जगत'
कहलाता है कुएँ के मुँह पर के चौकड़े को 'जान' कहते हैं।

पर्याय—कुप। अंधु। प्रहि। उदरान। भवव। कोट्टार। कात।
कन। यत्र। काट। सात। अतत। किधि। सूत। उत्त।
शृणुदात्। कारोतरात्। कुशेप। केवट

मृदा—कुशडी खोदना=(१) हमने की बुराई का सामान करना । दूसरे का नाश करने या उसे हानि पहुँचाने का प्रयत्न करना । जैसे—जो दूसरे के लिये कुशडी खोदना है, वह आप गिरता है । (२) जीविक के लिये परिश्रम करना । जैसे—उन्हें तो राज कुशडी खोदना और खाना है । कुशडी चाना या जोतना=कुएँ से खेत सींचने के लिये पानी निकालना । कुशडी या कुएँ साँकना=यत्न में इधर उधर दौड़ना । खोज में चारों ओर मारे मारे फिरना । कोशिश में हैरान घूमना । जैसे,—इसके लिये हमें कितने कुएँ साँकने पड़े । कुशडी या कुएँ सफाई, सँकाना=खोज में हैरान करना । यत्न में इधर उधर घूमना । जैसे,—इस वस्तु ने हमें कितने कुएँ साँकाए । (लोगों का विश्वास है कि कुत्ते के काटने का विष सात कुएँ साँकने से उतर जाता है । इसी बात से यह मुहाविरा लिया गया है ।) कुएँ में गिरना=आपत्ति में फँसना । विपत्ति में पड़ना । जैसे,—जो जान बूझ कर कुएँ में गिरता है, उसे कोई वहाँ तक बचाएगा । कुएँ की मिट्टी कुएँ में लगना=जहाँ की आमदनी हो वही खर्च होना । कुएँ में डाल देना=जन्म नष्ट करना । सत्यानाश करना । जैसे,—ऐसी जगह संवध करके तुमने लड़की कुएँ में डाल दी । कुएँ में वाँस डालना=बहुत तलाश करना । बहुत ढूँढ़ना । बहुत छानबीन करना । जैसे,—तुम्हारे लिये कुशडी में वाँस डाले गए, इतनी देर कहाँ थे । कुएँ में वाँस पड़ना=बहुत खोज होना । कुएँ में भाँग पड़ना=मंडली की मंडली का उन्मत्त होना । सबकी बुद्धि मारी जाना । जैसे,—यहाँ तो कुएँ में भाँग पड़ी है, कोई कुछ चुनता ही नहीं है कुएँ में बोलना या कुएँ में से बोलना=इतने धीरे से बोलना कि सुनाई न पड़े । कुशडी पर से प्यासे प्राना=ऐसे स्थान पर पहुँचकर भी निराश लोटना जहाँ कार्य सिद्धि की पूरी आशा हो ।

यो—मया कुशडी=वह अंधेरा कुशडी जिसमें पानी न हो और जो घासपात से ढका हो ।

कुशडी—सखा श्री [सं कु + हिं घाड़ी] संगीत में वह लय जिसमें बराबर और ड्योड़ी (घाड़ी) दोनों लयें पाई जायें ।

कुशडी—सखा श्री [सं कुनार, प्रां कुवार] [विं कुशारी] हिंदुस्तानी सातवाँ महाना जो भादो के बाद और कार्तिक के पहले होता है । आसिन । आश्विन । असीज ।

विशेष—शरद ऋतु का प्रारम्भ इसी महीने से माना जाता है । इस महीने के कृष्णपक्ष को पितृपक्ष और शुक्लपक्ष को देवपक्ष कहते हैं । सूर्य इस महीने में कन्या राशि का होता है और कन्या की सश्रुति प्रायः इसी महीने में पड़ती है ।

कुशारी—विं [हिं कुशारी] [विं श्री कुशारी] कुशार का । जो कुशार में है । उ०—माघ पूस की बादरी, और कुशारा घाम । ई तीनों परित्यक्त, करे पराया काम ।—(शब्द०) ।

कुशारी—विं [देश०] क्वार मास में होनेवाला । जैसे,—कुशारी फसल, कुशारी धान ।

कुशारी—सखा श्री क्वार में होनेवाला मोटे किस्म का एक धान । कुशदरी—सखा श्री [हिं कुशडी + वर=जगह] वह गड्ढा जो कुएँ के दब या बैठ जाने से उस स्थान पर बह जाता है ।

कुशडी—सखा श्री [हिं कुशडी] छोटा कुशडी ।

यो—कुकुशडी ।

कुइला—सखा श्री [सं कोकिल, देश० कोइला (देशी० २।४८), हिं कोयला] कोयला । उ०—डाढ़ी एक सँदेस डूँड, प्रीतम कहिया जाइ । सा घण बलि कुइला भई भसम डँडोलिसि ग्राइ ।—ढोला०, दू० ११२ ।

कुई—सखा श्री [हिं] दे० कुई ।

कुई—सखा श्री [देश०] एक जंगली मनुष्य जाति । उ०—महाराष्ट्र, उड़ीसा और चेदि, कोशल के सीमांत जंगलों में रहनेवाले गोष्ठ तथा कुई लोगो की बोलियों के साथ सीधा और स्पष्ट नाता है ।—भारत० नि०, पृ० २३२ ।

कुकीटी—सखा श्री [सं कुक्कुटी=सेमल] कपास की एक जाति जिनकी रुई नलाई लिए सफेद रंग की होती है । यह गोरखपुर, बन्ती आदि जिलों में बोई जाती है ।

कुकठ—विं [सं कुकाष्ठ, प्रां कु + कठ=शुष्क, अथवा सं० कुकप्य] शुष्कहृदय । अरसिक । जो (प्राणी) कहने योग्य न हो । उ०—उनिगण गुण वरणां । कुकठ कुमाणसां निण कहुइ रास ।—वी० रासी, पृ० २ ।

कुकड़ना—क्रि० प्र० [हिं सिकुड़ना] सिकुड़कर रह जाना । सकुचित हो जाना । उ०—कोडिनि सी कुकरे कर कजनि केशव ध्वेत सर्व तन तातो ।—केशव (शब्द०) ।

कुकड़वेल—सखा श्री [सं कु + कटवल्ली] बडाल ।

कुकडी—सखा श्री [सं कुक्कुटी] १ कच्चे सूत का लपेटा हुआ लच्छा, जो कातकर तकले पर से उतारा जाता है । मुड्डा । अटी । २ मदार का डोडा या फल । ३. दे० 'खुड्डा' । ४ मुरगी । उ०—कुकडी मारे बकरी मारे, हक हक करि बोल । सर्व जीव साई के प्यारे, उवरहुगे किस बोल ।—कवीर १०, पृ० १०८ ।

कुकनू—सखा श्री [यू०] एक पक्षी, जिसके बारे में यह प्रसिद्ध है कि वह अकेला नर ही पैदा होता है । उ०—कुकनू पंख जइस सर साजा । तस सर साजि जरै चह राजा ।—जायसी (शब्द०) ।

विशेष—यह गाने में बहुत निपुण समझा जाता है । कहते हैं, इसकी चोंच में बहुत से छिद्र होते हैं, जिनमें से तरह तरह के स्वर निकलते हैं । इसका गान ऐसा विलक्षण होता है कि उसमें से आग निकलती है । जब यह पूर्ण युवा होता है, तब वसंत ऋतु में लकड़ियाँ सग्रह कर उसपर बैठ कर गाता है । इसके गाने से आग निकलता है और यह जलकर भस्म हो जाता है । जब बरसात आती है, तब पानी पड़ने से इसकी राख में से अडा निकल आता है जिससे कुछ दिनों में एक दूसरा पक्षी निकलता है । इसे फारसी में 'आतजजन' कहते हैं ।

कुकुबि—सखा श्री [सं कु + कवि] बुरा कवि । कम प्रतिभावाला कवि । उ०—सब गुन रहित कुकवि कृत वानी । राम नाम जस अकित जानी ।—मानस, १ । १० ।

कुम्भ—सखा श्री [सं] एक प्रकार का मद्य (को०) ।

कए पुछलए धुरि ससार, तर सूते गड़ि फाट कुम्भार ।—
विद्यापति, पृ० ४३४ ।

कुम्भिक—सङ्घा पुं० [सं० कुम्भिक] १ एक प्रकार का नपुंसक ।

कुम्भिका—सङ्घा पुं० [सं० कुम्भिका] १ कुम्भी । जलकुम्भी । २
वेण्या । ३. कायफल । ४ आँख का एक रोग जिसमें पलकों
के किनारे आँखों की कोरी में छोटी छोटी फुसियाँ हो जाती
हैं । वैद्यक के अनुसार यह रोग विदोष से उत्पन्न होता है ।
इसे बिलनी भी कहते हैं । ५. परवन की लता । ६. एक रोग
जिसमें लिंग पर जामुन के बीज की तरह फुडिया होती है ।
यह रोग उन लोगों को हो जाता है जो लिंग बढ़ाने का इनाज
करते हैं । शूक रोग । ७ छोटा घड़ा । गगरी (को०) ।

कुम्भिनी सङ्घा स्त्री० [सं० कुम्भिनी] १ पृथ्वी । २ जमालगोटा
का वृक्ष ।

यो०—कुम्भिनीफल कुम्भिनीबीज = जमालगोटा ।

कुम्भिर—सङ्घा पुं० [सं० कुम्भी] मछली फँसाने का काँटा । बसी ।
उ०—बसी कुम्भिर मीठा, मच्छवातिननी नाम । बेसरसो
उलझी जु लट, मानो बसी काम ।—नट० ग्र०, पृ० ८२ ।

कुम्भिल, कुम्भिलक—सङ्घा पुं० [सं० कुम्भिल, कुम्भिलक] १ वह
चोर जो संध लगाता हो । संधिया चोर । २ वह सतान जो
अपूर्ण वस्त्र में प्रयत्न अपूर्ण गर्भ से उत्पन्न हो । ३ साला ।
की मछली । प्रकार ४ एक ५ साहित्यिक चोरी करनेवाला ।
साहित्यिक चोर (को०) ।

कुम्भी^१—सङ्घा पुं० [सं० कुम्भिन्] हाथी । २ मगर । ३ गुग्गुन
या वह पेड़ जिससे गुग्गुल निक्कलता है । ४ एक जहरीला कीड़ा ।
५ पारस्वर के अनुसार एक राक्षस जो वच्चों को बलेश देता
है । ६ एक प्रकार की मछली । ७ आठ की संख्या (को०) ।

कुम्भी^२—सङ्घा स्त्री० [सं० कुम्भी] १ छोटा घड़ा । २ कायफल का
पेड़ । ३ दाँती का पेड़ । दाँती । ४ पाँडर का पेड़ । ५
तरबूज । ६ बसी । ७ एक पेड़ ।

विशेष—इ की लकड़ी डगारते और आरायसी चीजें बनाने में
काम आती हैं । इसकी छाल से जमड़ा सिझाते और रस्सी
बटते हैं, और फल, जिसे कुन्नी (खुन्नी) कहते हैं, पंजाब के
लोग खुद खाते और पशुओं के खिलाते हैं ।

८ एक तनस्पति जो अलाशयो में पानी के ऊपर फैलती है ।
जलकुम्भी ।

विशेष—इ के पत्तों का रस पाँच अंगुल लंबे और उतने ही चौड़े तथा
मोटे दल के होते हैं । इसकी जड़ भूमि में नहीं होती, बल्कि
पानी पर स्वतः के रीति में होती है । यह फूलती फलती नहीं दिखाई
देती, पर इसके बीज अवश्य होते हैं । इसकी बहुत सी जातियाँ
होती हैं जिनकी पत्तियाँ निम्न निम्न आकार की होती हैं ।

९ एक नरक का नाम । कुम्भीपाक नरक । १० सलई का पेड़ ।
११ गनिगारी या अर्णों का पेड़ । १२ तल । आधार । उ०—
उन रतनों की कुम्भियों (आधार) पर शिल्पियों ने एक
एक करके 'अ' को छोड़कर 'घ' से 'ट' तक के अक्षर खोद
डाले हैं ।—भा० प्रा० लि०, पृ० ४६ ।

कुम्भीक—सङ्घा पुं० [सं० कुम्भीक] १ एक प्रकार का नपुंसक । इसे
गुदयोनि भी कहते हैं । कुम्भिक । २ कुम्भी । जलकुम्भी ।
पुन्नाग वृक्ष ।

कुम्भीका—सङ्घा स्त्री० [सं० कुम्भीका] १ कुम्भी । जलकुम्भी । २
आँख का एक रोग । कुम्भिका । बिलनी । ३ एक प्रकार का
रोग जो व्यभिचारियों और लिंग बढ़ाने का औपद्र्य करनेवालों
को हो जाता है । कुम्भिका । शूक रोग ।

कुम्भीघान्य—सङ्घा पुं० [सं० कुम्भीघान्य] घडा या मटका भर अन्न,
जिसे कोई गृहस्थ रविवार छह दिन, या किसी किसी के मत से
साल भर तक खा सके ।

विशेष—मनु, याज्ञवल्क्य आदि संहिताकारों के मत से प्रत्येक
व्यक्ति को अपने कुटुंब के पालन के लिये कुछ निश्चित दिनों
के वास्ते अन्न सग्रह कर रखना चाहिए । इस प्रकार रखे हुए
अन्न को 'कुम्भीघान्य' भी कहते हैं ।

कुम्भीघान्यक—सङ्घा पुं० [सं० कुम्भीघान्यक] घडा भर अन्न रखने-
वाला । उतना अन्न रखनेवाला जितना कोई गृहस्थ छह दिन
या किसी के मत से सालभर खा सके ।

कुम्भीनस—सङ्घा पुं० [सं० कुम्भीनस] [स्त्री० कुम्भीनसा] १ क्रूर
साँप । २ एक प्रकार का जहरीला कीड़ा । ३ रावण ।

कुम्भीनसि—सङ्घा पुं० [सं० कुम्भीनसि] शंवर नाम का असुर ।

कुम्भीनसी—सङ्घा स्त्री० [सं० कुम्भीनसी] लवणासुर की माता जो
सुमाली राक्षस की चार कन्याओं में से एक थी और कैतुमती
से उत्पन्न हुई थी ।

कुम्भीपाक—सङ्घा पुं० [सं० कुम्भीपाक] १ पुराणानुसार एक नरक
जिसमें मांस खाने के लिये पशु पक्षी मारनेवाले लोग खोलते
हुए तेल में डाले जाते हैं । २. एक प्रकार का सन्निपात जिसमें
नाक के रास्ते काला खून जाता और फिर घूमाता है । ३.
हँडिका में पहाई हुई वस्तु (को०) ।

कुम्भीपाकी—सङ्घा स्त्री० [सं० कुम्भीपाकी] कायफल (को०) ।

कुम्भीपुर—सङ्घा पुं० [सं० कुम्भीपुर] हस्तिनापुर । पुरानी दिल्ली ।

कुम्भीमद—सङ्घा पुं० [सं० कुम्भीमद] हाथी के मस्तक से चूनेवाला
मदजन (को०) ।

कुम्भीमुख—सङ्घा पुं० [सं० कुम्भीमुख] चरक के अनुसार एक प्रकार
का फोड़ा ।

कुम्भीर—सङ्घा पुं० [सं० कुम्भीर] १ नक्र या नाक नामक जंतु जो जन
में होता है । २ एक प्रकार का छोटा कीड़ा । ३ एक वृक्ष ।

कुम्भीरक—सङ्घा पुं० [सं० कुम्भीरक] चोर (को०) ।

कुम्भीरासन—सङ्घा पुं० [सं० कुम्भीरासन] योग में एक प्रकार का
आसन, जिसमें भूमि पर चित लेटकर एक पैर को दूसरे पैर
पर और दोनों हाथों को माथे पर रख लेते हैं ।

कुम्भील, कुम्भीलक—सङ्घा पुं० [सं० कुम्भील कुम्भीलक] १ तकर ।
चोर । २ नक्र । घडियाल (को०) ।

कुम्भीवलक—सङ्घा पुं० [सं० कुम्भीवलक] कायफल (को०) ।

कुम्भीर—सङ्घा स्त्री० [सं० कुम्भीर] खमारी । खमारि । गमारि ।

कुम्भीदर—सङ्घा पुं० [सं० कुम्भीदर] महादेव के एक गण का नाम ।

रघुवंश के अनुसार इसी ने सिंह बनकर वशिष्ठ की गो नदिनी पर आक्रमण किया था ।

कुंभोलूक—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भोलूक] एक प्रकार का उल्लू जो बहुत बड़ा होता है ।

कुंभर—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भार] [स्त्री० कुंभारि] १. लड़का । पुत्र । बालक ।

यौ०—राजकुंभर ।

२ राजपुत्र । राजकुमार । उ०—देखन बागकुंभर दोउ आए ।

वय किशोर सब भनि सुहाए ।—तुलसी (शब्द०) ।

कुंभरपुरिया—संज्ञा पुं० [हिं० कुम्भरपुर] एक प्रकार की हलदी जो कटक के पास कुंभरपुर राज्य में पैदा होती है ।

विशेष—यह प्रति पाँचवें वर्ष खेत से खोदी जाती है । इसकी जड़ या पत्ती लंबी होती है । इसके खेत में भैंस के गोबर की खाद दी जाती है ।

कुंभरपुन—संज्ञा पुं० [हिं०] कुमारपुन । कौमारावस्था । कौमार्य ।

उ०—कुंभरपुन प्रथिराज तप तेजह मु महावर । सुकल बीजु दिन दूनें कला दिन चढ़त कलाकर ।—पृ० रा०, ५।२ ।

कुंभरविरास—संज्ञा पुं० [हिं० कुंभर + विलास] कुंभर विरास । एक प्रकार का घान या चावल । उ०—धी खाडो ग्री कुंभर-विरास । रामदाम आवैं अति वासु ।—जायसी (शब्द०) ।

कुंभरि, कुंभरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भारी, प्रा० कुंभारी] १ कुमारी । कन्या । २ राजकुमारी । उ०—(क) कुंभरि कुंभारि रहौ का करजै ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) कुंभरी पिगल रायनी, मारुवणी उस नाम । ढोलान्, दू० ६० ।

कुंभरेटा—संज्ञा पुं० [हिं० कुंभर + एटा (प्रत्य०)] [स्त्री० कुंभरेटी] लड़का । बालक । उ०—लालन मान जरी पट लाल सखी संग बाल बधू कुंभरेटी ।—देव (शब्द०) ।

कुंभल—संज्ञा पुं० [सं० कुम्बल, प्रा० कुम्बल] दे० 'कमल' । उ०—जय सुपतल करि कुंभल, भीणी लव प्रलव । डोना एही मादइ जाणि क कणयर कव ।—ढोना०, दू० १७३ ।

कुंभ्रा—संज्ञा पुं० [सं० कूष, प्रा० कूष, कूय] [स्त्री० अल्पा० कूँइयाँ] कुंभ्रा । कूय ।

कुंभ्रा—वि० [सं० कुम्भारक] [स्त्री० कुंभारी] जिसका व्याह न हुआ हो । विन ब्याहा । उ०—सुकुत जाइ जो पन परिहरजै ।

कुंभ्रि कुंभ्रारि रहौ का करजै ।—तुलसी (शब्द०) ।

कुंइयाँ—संज्ञा स्त्री० [सं० कूपिका, प्रा० कूविद्या हिं० कुंभ्रा] छोटा कुंभ्रा । उ०—गगन मंडन विच उर्वमुख कुंइयाँ ।—कवीर श०, पृ० ५७ ।

यौ०—कठकुइयो = वह छोटा कुंभ्रा जो काठ से बँधा हुआ हो ।

कुंई—संज्ञा स्त्री० [सं० कुमुबिनी, प्रा० कुंई] कुमुदनी । उ०—कानो मे गुडहल खोस धवल, या कुंई, कनेर, लोध, पाटल ।—ग्राम्या पु० १८ ।

कुंकु—संज्ञा पुं० [हिं० कूंकु] दे० 'कुकु' उ०—मोती का आसा किया कुंकु चदन तिलक सिद्धर ।—वी० रासो, पृ० २० ।

कुंजडा—संज्ञा पुं० [सं० कुंज + डा (प्रत्य०) या देश०] [स्त्री० कुंजडी, २-५६

कुंजड़िन] एक जाति जो तरकारी बोती और बेचती है ।

इस जाति के लोग प्रायः अब मुसलमान हो गए हैं ।

मुहा०—कुंजड़े कसाई = नीच जाति के लोग । नीची श्रेणी के मुसलमान । कुंजड़े का गल्ला = (१) वह गल्ला, राशि या वस्तु जिसके लेनदेन का लेखा न लिखा जाता हो । (२) वे सिर पर का लेखा । गडबड़ हिसाब । (३) गोलमाल । गड़बड़ । कुंजड़े की दूकान = वह स्थान जहाँ सब छोटे बड़े जा सकें या जहाँ भीड़भाड़ और शोरगुल हो । जैसे—व्या तुम लोगो ने कचहरी को कुंजड़े की दूकान समझ लिया है ?

कुंजड़ई, कुंजड़ाई—वि० [हिं० कुंजड़ा + ई (प्रत्य०)] कुंजड़ापन उ०—गुरु शब्द का वंगन करि लै तब बनिहे कुंजड़ाई ।—

कवीर श०, भा० ३, पृ० ४८ ।

कुंड—संज्ञा पुं० [सं० कुण्ड] १. खेत में वह गहरी रेखा जो हल जोतने से पड़ जाती है । दे० 'कूँड़' ।

कुंडपुजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुण्ड + पूजना = भरना] किसानों का एक उत्सव जो उस दिन किया जाता है जिस दिन रबी की बोआई समाप्त होती है । कुंडमुदनी ।

कुंडवजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुण्ड + वजना = भरना] कुंडपुजी । कुंडमुदनी ।

कुंडमुदनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुण्ड + मुदना] कुंडपुजी ।

कुंडरा—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डल] [स्त्री० अल्पा० कुंडरी] १ मंडाकार स्त्री की हुई रेखा (क) जिसके भीतर खड़े होकर लोग शपथ करते थे । (ख) जिसके भीतर किसी वस्तु को रखकर उसे मंत्र आदि से रक्षित करते थे, और (ग) जिसके भीतर भोजन रखकर उसे छन से बचाते हैं । २ कई फेरे देकर मंडलाकार लपेटी हुई रस्सी या कपड़ा जिसे सिर के ऊपर रखकर मोक्ष या घडा आदि उठाते हैं । इड्डा । गेंडरी ।

कुंडरा—संज्ञा पुं० [सं० कुण्ड + हिं० रा० (प्रत्य०)] कुंडा । मटका । कुंडरा—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डल] इंडुरी । गेंडुरी ।

कुंडाला—संज्ञा पुं० [सं० कुण्ड + हिं० ला (प्रत्य०)] मिट्टी की कूंडी या पचरी जिसमें कालावत्तू बनानेवाले टिकुरियो पर कलावत्तू लपेटकर रखे रहते हैं ।

कुंडिया—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्ड + हिं० इया (प्रत्य०)] १. एक चौखूँटा गड्ढा जो शोरे के कारखानों में होता है । कोठी ।

विशेष—यह गड्ढा दो हाथ चौड़ा, पाँच हाथ लंबा और हाथ भर गहरा होता है । शोरा जमाने के लिये इसमें नोनी मिट्टी पानी में मिलाकर डाली जाती है ।

२ मिट्टी का वरतन जिसमें बादले की मिटाई, करनेवाले पीटने के लिये बादला रखते हैं । कूंडी ।

कुंडवा—संज्ञा पुं० [सं० कुण्ड + हिं० वा (प्रत्य०)] मिट्टी का कूड़ा । कुलिया । पुरवा ।

कुंणी—सर्व [सं० क] कौन । उ०—करें कुंण तेज परमाण काया ।—रघु०, दू०, पृ० २६ ।

कुंदना—संज्ञा पुं० [हिं० कुंदन = सोना] बाजरे का एक रोग जिससे डठल नाल हो जाते हैं, वान में काली काली धूल जम जाती है और दाने नहीं पड़ते ।

पिछला लकड़ी का तिकोना भाग जिसमें घोड़ा और नली आदि जड़ी रहती है और जो बहुत चलावेवाले की और रहता है।

मुहा०—कुंदा चढ़ाना = बहुत की नली में लकड़ी जड़ना।

४ वह लकड़ी जिसमें अपराधी के पैर ठोके जाते हैं। काठ ५ दस्ता। मूठ। बेंट। ६. लकड़ी की बड़ी मोगरी जिसे कपड़ों की कुंदी की जाती है।

कुंदा^२—सभा पुं० [सं० स्फुट, हिं० कषा] १ चिड़िया का पर। डंका।

मुहा०—कुंदा बाँध, जोड़ या तौलकर उतरना = पक्षी का अपने दोनों पंख समेटकर नीचे आना।

२ कुश्ती का एक पेंच। ३ 'कुंदा'। ३ कुश्ती में एक प्रकार का आघात, जो प्रतिद्वंद्वी को नीचे लाकर उसकी गरदन पर अपनी कलाई कोहनी के बीच की हड्डी से रगड़ते हुए किया जाता है। रद्द। घस्सा।

क्रि० प्र०—बैना।—लगाना।

कुंदा^३—सभा पुं० [सं० कर्ण, हिं० कर्ना] १ पतंग या गुड्डे के दो दोनों कोने जिनके बीच में कमाना लगी रहती है २ पायजामे की वह तिकोनी कली जो दोनों पायजो के ऊपर मध्य में रहती है। कली।

क्रि० प्र०—लगाना।

कुंदा^४—सभा पुं० [सं० कुण्ड = फड़ाही] मुना हुआ दूध। खोवा। मावा।

मुहा०—कुंदा कराना या भुनाना = दूध से खोवा तैयार करना।

कुंदा^५—वि० [फ० कुन्दा] ३० 'कुन्दा'। उ०—कुल शों में दिसता चदा है। ओ पाया नैन सो कुंदा है।—विखनी०, पृ० ३२३।

कुंदा^६—सभा पुं० [हिं० कुंदा] दरवाजे की साँकल या कोठा। उ०—जरमत का प्रसिद्ध विद्वान् लेसिंग एक बार बहुत रात गए अपने घर आया और कुंदा खटखटाने लगा।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १६३।

कुंदा^७—सभा स्त्री० [हिं० कुंदा] १ धुले या रंगे हुए कपड़ों की वह करके उनकी सिकुड़न और रखाई दूर करने तथा वह जमाने के लिये उसे लकड़ी की मोगरी से कूटने की क्रिया।

विशेष—इस देश में इस्खरी की प्रथा का प्रचार होने से पहले धोबी इसी का व्यवहार करते थे। आजकल भी कमखाब आदि पर कुंदा ही की जाती है।

२. खूब मारना। ठोंकना। पीटना।

क्रि० प्र०—करना।

यो०—कुंदागर।

कुंदागर—सभा पुं० [हिं० कुंदा + गर (प्रत्यय)] कदी करनेवाला व्यक्ति।

कुंदा^८—सभा पुं० [सं० कुन्दा] मूस। चूहा[की]।

कुंदा^९—सभा पुं० [सं०, अ०] १ एक प्रकार का सुगंधित पाखा गोद।

विशेष—यह एक प्रकार के कंदीले पीछे से निकलता है जो दो

हाथ ऊँचा होता है और अरब के यमन आदि पथरीले स्थानों में मिलता है। इसके फल और बीज कड़ुए होते हैं। जब मूय कर्क राशि में होता है तब गोद इकट्ठा किया जाता है। हकीम लोग इसे पुष्ट, हृद्य और रक्तलाव की रोकनेवाला मानते हैं। २ एक प्रकार का सुगंधित गोद जो सलई के पेड़ से निकलता है। वैद्यक में यह रुचिकारक, स्वेदनायक त्वचा को हितकारी और जूँ को दूर करनेवाला माना जाता है।

पर्या०—सोराष्ट्री। पालकी। तीक्ष्णघ। कुंदा^{१०}। नीपण। सुगंध। विडालाक्ष। खपुर। नागवधुप्रिय। शलजकी नियास।

कुंदा^{११}—सभा स्त्री० [सं० कुम्भी] १. काय फल। २. कुंभी जलकुंभी।

२ कुंभ नामक पेड़ ५ एक प्रकार का बड़ा वृक्ष। अरजम।

विशेष—यह बहुत जल्दी बढ़ता और प्रायः सार भारत में पाया जाता है। इसकी छाल से चमड़ा सिन्काया जाता है और रेशों से रस्से आदि बनते हैं। कहीं कहीं अकाल के दिनों में इसकी छाल आटे की तरह पीसकर खाई भी जाती है। लकड़ी से सेती के औजार छाजन की बलियाँ गाढ़ियों के घुरे और बहुत के कुंदा बनाए जाते हैं। यह पानी में जल्दी सड़ता नहीं। जंगली सूअर इसकी छाल बहुत मजे में खाते हैं, इसलिए शिकारी लोग उनका शिकार करने के लिये प्रायः इसका उपयोग करते हैं।

कुंभ—सभा पुं० [सं० कुम्भ] १. मिट्टी का घड़ा। घट। कनश।

उ०—गुरु कुम्हार सिप कुम्भ है गड़ गड़ काढ़ें खोट। अतर हाथ सहार दे, बाहर बाहे चोट।—कबीर सा०, स०, पृ० ३।

यो०—कुंभज। कुंभकण। कुंभकार।

२ हाथी के सिर के दोनों ओर ऊपर उभड़े हुए भाग। उ०—मत्त नाग तम कुंभ विदारी। ससि केसरी पगन वनचारी। तुलसी (शब्द०)। ३. एक राशि का नाम जो दसवीं मानी जाती है।

विशेष—यह धनिष्ठा नक्षत्र के उत्तरार्द्ध और शतभिष तवा पूर्व भाद्रपद के तृतीय चरण तक उदय रहती है। इसका उदय-काल ३६६ ५८ पल है। यह राशि शीर्षोदय है।

४ एक मान जो दो द्रोण या ६४ सेर का होता है। इसे सूर्य भी कहते हैं। किसी किसी के मत से बीस द्रोण का भी एक कुंभ होता है। उ०—दो द्रोणों का शूर्प और कुंभ कहा है।—शाङ्ग० सं०, पृ० ६। ५ योगशास्त्र के अनुसार प्राणायाम के तीन भागों में से एक। कुंभक। ६ एक पर्व का नाम जो प्रति १२ वर्ष लगता है। इस अवसर पर हरद्वार, प्रयाग नासिक आदि में बड़ा मेला लगता है। यह पर्व इसलिए कुंभ कहा जाता है कि जब सूर्य कुम्भराशि का होता है तभी यह पड़ता है। ७ मिट्टी आदि का वह षड़ा जा देवालयों के शिखर पर तथा घरों की मुँहरी पर शोभा के लिये लगाया जाता है। कलश ८. गुग्गुल ९ वह पुरुष जिसने वेष्टा रख ली हो। वेष्टापति।

यो०—कुम्भासी।

१०. जैन मतानुसार वर्तमान प्रवर्तमान के १६वें मर्हत का नाम। ११. बौद्धों के अनुसार बुद्धदेव के गव चौबीस जन्मों

में से एक व्रत का नाम । १२ एन राग का नाम जो श्री राग का आठवाँ पुत्र माना जाता है ।

विशेष—यह संतुर्ण जाति का राग है और सध्या समय रात के पहने पहर में गाया जाता है । संगीत दामोदर में इसे सरस्वती और धनायी रागिणियों के योग से बना हुआ संकर राग माना है ।

१३ एक दैत्य का नाम । यह एक दानव था और प्रह्लाद का पुत्र था । १४ एक राजस का नाम जो कुंभकर्ण का पुत्र था । १५ एक दानव का नाम । १६ हृदय का एक प्रकार का रोग (बी०) । १७ एक पेट का नाम जो बंगाल, मद्रास, आसाम और प्रबन्ध के जंगलों में होता है । कुंभी । कुंभी ।

विशेष—इसकी लकड़ी मजबूत होती है । छाल काले रंग की होती है । लकड़ी मकान और आरायशी चीजें बनाने के काम में आती है और पानी में नहीं सड़ती । इसकी छाल रजेश्वर होती है और उससे रस्सी बड़ी जाती है । यह औषधों में भी काम आती है । इसके फल को खुन्नी कहते हैं, जिसे पंजाबी स्त्रियाँ खाते तथा पशुओं को भी खिलाते हैं । इनके पत्ते मान, फागुन में भड़ जाते हैं । इसे कुंभी और अर्जुमा अरजम भी कहते हैं ।

कुंभक—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भक] प्राणायाम का एक भाग, जिसमें साँस लेकर वायु को शरीर के भीतर रोक रखते हैं ।

विशेष—यह क्रिया पूरक के बाद की जाती है और इसमें मुँह बंद करके नाक के रन्ध्रों को एक ओर से अँगूठे और दूसरी ओर से मध्यमा तथा अनामिका से दबाकर बंद कर देते हैं, जिससे उसमें वायु आ जा नहीं सकती । इसे कुंभ भी कहते हैं ।

कुंभकरण, कुंभकरन(७)—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भकर्ण] दे० 'कुंभकर्ण' । उ०—(क) कुंभकरण गहि समर अपारा ।—कवीर सा०, पृ० ४१ । (ख) उठि विमान विकरान बड़ कुंभकरनु जमहान ।—तुलसी श०, पृ० ८६ ।

कुंभकर्ण—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भकर्ण] एक राजस का नाम, जो रावण का भाई था । रामायण के अनुसार यह छह महीने सोता था ।

कुंभकला—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भकला] घड़ी का खेल जिसमें नट लोग तिर पर बड़े रजकर वान पर चढ़ते हैं । उ०—जैसे सीप समुद्र में बित देत अकाला । कुंभकला ह्वे खेलही, तस साहेव दाना ।—कवीर श०, भा० ३, पृ० १४ ।

कुंभकामला—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भकामला] कामला रोग का एक भेद ।—माधव०, पृ० ७५ ।

विशेष—पांडु रोग की उपेक्षा करने से कामला रोग होता है, उसी की दूसरी अस्या कुंभकामला है । वैद्यक में इसे कृच्छ्र-साध्य कहा गया है ।

कुंभकार—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भकार] १. एक सकर जाति । कुम्हार ।

विशेष—ब्रह्मवर्त पुराण के अनुसार इस वर्णसंकर जाति की उत्पत्ति विश्वकर्मा पिता और जूड़ा माता से हुई है । जातिमाना में इसे पटभ्रा (पटिका) पिता और गोप माता से उत्पन्न

माना है । उसना ने चोरी से वेश्यागमन करनेवाले विप्र और वेश्या की संतान माना है और पाराजतर ने मालाकार और कर्मकरी के योग से इनकी उत्पत्ति मानी है ।

२ मुर्गा । कुक्कुट । ३ साँप (की०) । ४ जंगली पक्षी (की०) ।

कुंभकारिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भकारिका] १. दे० 'कुंभकारी' । कुंभकारी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भकारी] १. कुंभकार की स्त्री । २. कुलयी । ३. मंसिल ।

कुंभज—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भज] १. घड़े से उत्पन्न पुत्र । २. अगस्त्य मुनि । उ०—जामु कथा कुंभज रिपि गई ।—मानव, १।५।१३ ३. वसिष्ठ । ४. द्रोणाचार्य ।

कुंभजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भजन्मन्] दे० 'कुंभज' ।

कुंभजात—संज्ञा पुं० दे० [सं० कुम्भजात] 'कुंभज' ।

कुंभदास—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भदास] ब्रज के अष्टछाप के कवियों में से एक कवि । यह सच्चा भाव से कृष्ण की उपासना करते थे ।

कुंभदासी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भदासी] १. कुटनी । २. कुंभिका । जलकुंभी ।

कुंभवर—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भवर] कुंभराजि ।

कुंभनी(७)—संज्ञा स्त्री० [प्रा० कुम्भनी = जल का गर्त] जल भरा छोटा गड्ढा । उ०—रज्जव चला चषपद् विन गुह भिन्ना जा चद । कूप भई पड़ कुंभनी क्यूँ पार्थहि प्रभु पद ।—उदय०, पृ० १४ ।

कुंभपंजर—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भपञ्जर] वह स्थान या आधार जो दीवार में बना हो । गरान । गोख । तान्ना । (की०) ।

कुंभपदी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भपदी] द्रोणपदी (की०) ।

कुंभमंडूक—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भमण्डूक] १. घड़े का मेडक । २. अनुभवहीन व्यक्ति (की०) ।

कुंभयोनि—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भयोनि] १. अगस्त्य मुनि का एक नाम । २. गुमा का पेड़ ।

कुंभरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भरी] दुर्गा का एक नाम (की०) ।

कुंभरेता—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भरेतस्] अग्नि का एक नाम (की०) ।

कुंभला—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भला] गोरखमुंडी ।

कुंभशाला—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भशाला] मिट्टी के घड़े बनाने का स्थान (की०) ।

कुंभसंवि—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भसन्धि] हाथी के सिर का वह गड्ढा जो उसके दोनों कुंभों के बीच में होता है ।

कुंभसंभव—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भसंभव] अगस्त्य मुनि का एक नाम । उ०—जयति लवणाशुनिवि कुंभसंभव महा श्रुज दुर्जन दवन दुरित हारी ।—तुलसी (शब्द०) ।

कुंभनु—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भनु] रावण के दल के एक राजस का नाम, जिसे वाल्मीकि के अनुसार तार नामक वदर ने मारा था ।

कुंभांड—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भाण्ड] वाणपुर का एक मंत्री का नाम ।

कुंभा—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भा] १. वेश्या । २. नागदी ।

कुंभार(७)—संज्ञा स्त्री० [सं० कुम्भार] कुम्हार । उ०—न

काग सब भए अभावन । कह गिरिधर कविराय सुनो हो ठाकुर
मन के । विनु गुण लहे व कोइ सहस गुण गाहक नर के ।
कुडली^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डली] १ जलेवी । २ कुडलिनी ।
३ गुडुचि । गिलोय । ४ कचनार । ५ केवौव । ६ जन्मकाल
के ग्रहों को बतलानेवाला एक चक्र जिसमें बार घरह होते हैं ।
७ गेंडुरी । इंडुवा । ८ साँप के बैठने की मुद्रा । फेंटी । ९.
खंझरी । डफती ।

कुडली^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुण्डलिन्] १ साँप । २ वरुण । ३
मयूर । मोर । ४ चित्तल हरिण । ५. विष्णु । ६ शिव (को०) ।

कुडली^३—वि० १ जो कुडल पहने हो । कुंडलधारी । २ घुमावदार ।
लपेटा हुआ । ३ कुडली की आकृति का ।

कुडलीकरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुण्डलीकरण] धनुष को खींचकर
इतना मोड़ना कि वह कुडल के आकार का हो जाय (को०) ।

कुडलीकृत—वि० [सं० कुण्डलीकृत] कुडली के समान गोल आकृति
का बनाया हुआ (को०) ।

कुडा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुण्डक] मिट्टी का बना हुआ चौड़े मुँह का
एक गहरा बरतन, जिसमें पानी, अनाज आदि रखा जाता है ।
बड़ा मटका । कछरा ।

कुडा^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुण्डल] १. दरवाजे की चौखट में लगा
हुआ कोड़ा, जिसमें साँकल फँसाई जाती है और ताला लगाया
जाता है । २ कुशती का एक पेंच ।

विशेष—इसमें नीचे आए हुए विपक्षी की दाहिनी और खड़े होकर
अपनी दाहिनी टाँग उसकी गरदन में बाईं तरफ से डालकर
उसकी दाहिनी बगल से बाहर निकाल लेते हैं और अपने बाएँ
पंर के घुटने के अंदर अपने दाहिने मोर्जे को दबाकर उसके
सिर पर बैठकर बाएँ हाथ से उसका जाँघिया पकड़कर उसे
चित्त कर लेते हैं ।

कुडा^३—सञ्ज्ञा पुं० [लश०] जहाज के अगले मस्तक का चौथा
खंड । निरकट । तावर डोल ।

कुडा^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डा] दुर्गा का एक नाम (को०) ।

कुडाशी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुण्डाशिन] १ कुंड नामक जारज पुरुष
का अन्न खानेवाला । २ धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

कुंडिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुण्डिक] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

कुंडिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डिका] १ कमंडलु । २ कूंडी ।
अथरी । पथरी । ३ तावे का कुंड जिसमें हवन किया जाता
है । ४ अथर्ववेद का एक उपनिषद् । ५ छोटा कुंड । उ०—
ता रस की कुंडिका नाभि अस सोमित गहरी । त्रिवली ता
महँ ललित भाति मनु उपजति लहरी ।—नद० प्र०, पृ० ४ ।

कुडिन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुण्डिन] एक प्राचीन नगर, जो विदर्भ देश
की राजधानी था ।

विशेष—वहाँ का राजा भीष्मक था जिसकी कन्या रुक्मिणी
को श्रीकृष्ण हर ले गए थे । विदर्भ का आधुनिक नाम बीदर
है, जो हैदराबाद राज्य में है । बीदर से कुछ दूर पर कुडिल
वती नाम की एक पुरानी नगरी आज तक है । इसमें पूर्व
समृद्धि के चिह्न पाए जाते हैं । यही स्थान प्राचीन कुडिन या
कुडिनपुर हो सकता है ।

कुडिल^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुण्डल] १० 'कुडल' । उ०—कगवक
काम कुडिल हलत तेज उम्भरे ।—पृ० २१०, २५ । ३१२ ।

कुडी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुण्ड] पत्थर या मिट्टी का कटोरे के आकार
का बरतन जिसमें लोग दही, चटनी आदि रखते हैं । पत्थर की
कुडी में भाँग भी घोटी जाती है ।

यी०—कुडी सोंटा = भाँग घोटने का सामान ।

२ लोहे की टोपी या शिरस्त्राण । कूँड । उ०—घरे टोप कुंडी
फसे काँच अग ।—हम्मोर०, पृ० २४ ।

कुडी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० कुण्डा] १ जजीर की कड़ी । कडी । २.
किवाड़ में लगी हुई साँकल जो किवाड़ को बंद रखने के लिये
कुडी में फँसाई या डाली जाती है ।

क्रि० प्र०—खोलना —बंद करना ।

मुहा०—कुडी खटखटाना = द्वार खुलवाने के लिये साँकल को
जोर जोर से हिलाना । कुडी देना, मारना लगाना = कुंडी
बंद करना ।

३ लगर का बड़ा छल्ला, जो उसके सिरे पर लगा रहता है ।

कुडी^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डल] मुराई में जिसकी सींग घुमी हुई
होती हैं । ३० 'मुराई' ।

कुडू—सञ्ज्ञा पुं० [विश०] काले रंग की एक चिड़िया जिसका कठ
और मुँह सफेद और पूँछ पीली होती है । लवाई में यह ग्यारह
इंच की होती है । यह काश्मीर से आसाम तक मिलती है ।
इसे कस्तूरी भी कहते हैं ।

कुडोघनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डोघनी] १ बड़ गाय जिसके थन बड़े
हो । बड़े थनवाली गाय । २ वह स्त्री जिसके स्तन बड़े हों ।
भरी छातीवाली औरत (को०) ।

कुडोदर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुण्डोदर] महानेव जी का एक गण ।
उ०—विरूपाक्ष कुडोदर नामा । रहिहै तुव समीप सब
यामा ।—रघुराज (शब्द०) ।

कुत—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुन्त] १ गवेष्टक । कोडिल्ला । केसई । २.
भाला । बरछी । उ०—कुवल्य विपिन कुत वन सरिसा ।
वारिद तपत तेल जनु बरिसा ।—तुलसी (शब्द०) । ३
जू । ४ चड भाव । क्रूर भाव । अनल । ५ जन । ६ कुश
७ अग्नि । ८ आकाश । ९ काल । १० कमल । ११
खड्ग । उ०—कुत सनिल श्री कुत कुस, कुत मनन नभ,
काल । कुत कनक कवि कमल सो कुत जु खंग कराल ।—
अनेकार्थ० पृ० १२३ ।

कुतक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुन्तक] संस्कृत साहित्य में वक्रोक्ति संप्रदाय
के प्रवर्तक आचार्य । वक्रोक्तिजीवित इनका ग्रंथ है ।

कुतल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुन्तल] १ सिर के बाल । केश । उ०—
श्रवण मणि तार्क मजुल कुटिल कुतल छोर ।—सूर
(शब्द०) । २ प्याला । चुक्कड़ । ३ जो । ४ सुगंधवाला ।
५ हल । ६ संगीत में एक प्रकार का ध्रुपद, जिसके प्रति पाद
में १६ अक्षर होते हैं । ७ एक देश का नाम जो कोकण और
बरार के बीच में था । ८ संपूर्ण जाति का एक राग जो
दीपक का चौथा पुत्र माना जाता है । इसके गाने का समय

ग्रीष्म ऋतु का दोषहर है । ६ सुवधार (अने०) । १० वेप वदनेवाला पुरुष । बहुरुपिया (अने०) । ११ राम की सेना का एक बंदर ।

कुंतल^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० निवृत्तल] एक तौल । कुं टल ।

कुंतलवर्द्धन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुन्तलवर्द्धन] भृंगराज । भृंगरा । भृंगरेया ।

कुंतलिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुन्तलिका] १. एक पौधा । २. छुरिका-विशेष । दवौं । कलठा (को०) ।

कुंतली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुन्त = भाला] एक छोटी मक्खी जिसके छत्ते से डामर नामक मोम निकलती है । इन मक्खियों को ढंक नहीं होता । अलमोड़ा, बेलगाँव, छिदवाड़ा, खानदेश आदि में ये मक्खियाँ बहुत होती हैं ।

पर्या०—कुन्ती । भिनकवा । नसरी । बेंकुआ ।

कुता^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुन्ती] दे० कुंती^१ ।

कुतिभोज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक राजा का नाम, जिसने कुंती (पृथा) को गोद लिया था ।

कुंती^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुन्ती] युधिष्ठिर, अर्जुन और भीम की माता । पृथा ।

विशेष—यह शूरसेन यादव की कन्या और वसुदेव की बहन थी । इसे इसके चचा भोज देश के राजा कुतिभोज ने गोद लिया था । यह दुर्वासा ऋषि की बहुत सेवा करती थी, इससे उन्होंने इसे पाँच मन्त्र ऐसे बतलाए कि वह पाँच देवताओं में से किसी को आह्वान कर पुत्र उत्पन्न करा सकती थी । उसने कुमारी भवभ्या में ही सूर्य से कर्ण को उत्पन्न कराया । इसके उपरांत इसका विवाह पांडु से हुआ ।

कुंती^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुन्त] १. बरछी । भाला । २. एक छोटी मक्खी । ३. कुंतली ।

कुंती^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] कजे की जाति का एक पेड़ ।

विशेष—यह मध्य बंगाल, बरमा, आसाम आदि स्थानों में होता है । इसकी फलियाँ रंगने और चमड़ा सिझाने के काम आती हैं और बीज से जो तेल निकलता है वह जलाने के काम में आता है । इसके फलों को टेंटी कहते हैं ।

पर्या०—बकेटी । अमलकुच्ची ।

कुंथु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुन्थु] १. जैन शास्त्रानुसार छठा चक्रवर्ती २ जैनियों के मत से वर्तमान अवसर्पिणी (काल) का सत्रहवाँ अर्हत । उ०—फिरि आए हस्तिनापुर जहाँ । साति कुंथु अरपूजे तहाँ ।—अर्थ०, पृ० ५३ ।

कुंद^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुन्ध] १. जूही की तरह का एक पौधा, जिसमें सफेद फूल लगते हैं । इन फूलों में बड़ी मीठी सुगंध होती है ।

विशेष—यह पौधा क्वार से लेकर फागुन चंत तक फूलता रहा है ।

वैद्यक में यह शीतल, भयुर, कर्षला, कुछ रेचक, पाचक तथा पित्तरोग और रुधिर विकार में उपकारी माना जाता है । प्रायः कवि लोग दाँतो की उपमा कुंद की कलियों से देते हैं ।

जैसे—वर दत्त की पंगति कुंदरली, मधराधर पल्लव खोलन को ।—तुलसी (शब्द०) ।

पर्या०—माध्य । मकरंद । श्वेतपुष्प । महामोद । सदापुष्प । वरट । मुत्तापुष्प । वनहास । मृगवधु । अट्टहास ।

२ कनेर का पेड़ । ३ कमल । ४ कदर नाम का गोद । ५.

एक पर्वत का नाम । ६ कुंवर की नौ निधियों में से एक ।

७ नौ की सख्या । ८ विष्णु । ९ खराद । उ०—गड़ि गड़ि

छोलि छोलि कुंद की सी माई वाते जंसी मुख कही तंसी उर जब आनिहौं ।—तुलसी (शब्द०) ।

कुंद^२—वि० [फा०] १ कुठित । गुठला । ३. स्तब्ध । मद ।

यौ०—कुंदजेहन = कुठित बुद्धि का । मदबुद्धि ।

कुंदर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुन्दकर, टनर] खराद का काम करने-वाला व्यक्ति [को०] ।

कुंदन^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुन्द = श्वेतपुष्प या देस०] १ बहुत अच्छे और साफ सोने का पतला पत्तर, जिसे लगाकर जड़िए नगीने जड़ते हैं ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

२. स्वच्छ सुवर्ण । बढ़िया सोना । खालिस सोना । उ०—पीतर पटतर विगत, निपफ (निकप) ज्यां कुंदन रेखा ।—मत्तमाल (प्रिया०), पृ० ५२३ ।

विशेष—दमकती हुई स्वच्छ निर्मल वस्तु की उपमा प्रायः कुंदन से देते हैं, जैसे—कुंदन सा शरीर ।

मुहा०—कुंदन सा दमकना = स्वच्छ सोने की भाँति चमकना । कदन हो जाना = खूद स्वच्छ और निर्मल हो जाना । निखर आना ।

कुंदन^२—वि० १ कुंदन के समान चोखा । खालिस । स्वच्छ । बढ़िया । जैसे—यह कुंदन माल है । २ स्वस्थ और सुंदर । नीरोग । जैसे—चार दिन ओषध खाओ तुम्हारा शरीर कुंदन हो जायगा ।

कुंदनपुर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कुठिनपुर' ।

कुंदनसाज—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कुंदन + फा० साज] १ कुंदन का पत्तर बनानेवाला । २. कुंदन देकर नगीना बँटानेवाला । जड़िया ।

कुंदम—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुंदम] विल्ली । माजरी [को०] ।

कुंदर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुंदर] १ निषट्ट में कवित एक घास जो कलिंग देश में होती है और जिसकी जड़ ओषध के काम आती है ।

पर्या०—कडूर । मिटी । दीघपत्र । खरच्छद । रसाल । सुतृण । मृगवलेभ ।

२. विष्णु ।

कुंदल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुण्डल] दे० 'कुंदल' ।

कुंदलता—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुन्दलता] १. छब्बीस भद्रारों की एक वर्षवृत्ति जिस 'सुख' भी कहते हैं । दे० 'सुख' । २ माधवा-लता ।

कुंदा^१—सञ्ज्ञा पुं० [फा०, तुल० सं० स्कन्ध] १. लकड़ी का बहुत बड़ा, मोटा और बिना चोरा हुआ टुकड़ा जो प्रायः जलान के काम में आता है । लकड़ । २. लकड़ा का वह टुकड़ा जिसपर रखकर बड़ई कड़ा गड़ते, कुंदांगर कड़े पर कुंदा करत और किसान घास काटते हैं । निहठा । निळा । ३. बहुत मजबूत

-वि पायो जेही गर निगरयो । सूरदास प्रभु रूप थकयो मन
कु जल पक परयो ।—सूर(शब्द०)।

कुजविहारी—सञ्ज्ञा पुं० [कुञ्जविहारिन] १ कुजो में विहार करने
वाला पुष्प । २ श्रीकृष्ण ।

कुजा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कौञ्च, प्रा० कुञ्च कौञ्च, राज० कुञ्ज, कूज,
कुंफ, क फ] शौच पक्षी । उ०—प्रवर कुंजा कुरलिया गरजि
भरे राग तन । जिन पैं गोविंद वीछुटें, तिनके कौण हवाल ।
—करीर ग्र० पृ० ७ ।

कुजा^२—†—सञ्ज्ञा पुं० [ग्र० कूजा] पुरवा । चुक्कड । उ०—प्याली
गंगा जली टोकनी गंगा सागर । कुजा जमूडवा गौर तवि
की गागर ।—सूदन (शब्द०) ।

कुजा^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुक] कंचुल । निमोक्त । उ०—नानक
देह न जे ज्यो कुज मनु निरवान समाना ।—प्राण०, पृ० ६६ ।
कुजिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्चिका] १ कृष्णजीरा । कालाजीरा ।
२ कुजी । ३ टीका । ग्रथ की व्याख्या ।

कुजित—वि० [सं० कूजित] दे० 'कूजित' ।

कुजी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्जिका] चाभी । ताली । उ०—कुजी
उमकी जगान शरी है । विल मेरा कुपल है वताशे का ।—
कविता को०, भा० ४, पृ० १६ ।

कुहा०—(किसी की) कुजी हाथ में होना = किसी का वश में
होना । किसी की चाल या गति का वश में होना । जैसे,—
वे तमसे कूठ न बोलेंगे उनकी कुजी तो हमारे हाथ में है ।

२ पुस्तक जिससे किसी दूसरी पुस्तक का ग्रंथ खुले । टीका ।

कुझा^१ कुझी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [कौञ्च, कौञ्ची] एक पक्षी ।
३० कुंजा^१ । उ०—(क) कुभी छउ नइ पखडी, बाकउ विनउ
वहेसि ।—डोला०, पृ० ६३ । (ख) कुभी परदेसों करै, भवु
धरै घर माहि ।—दरिया० वानी, पृ० ४ ।

कुट^१—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] कोण । दिशा । खूंट । उ०—प्रठसठ तीरथ
पगि भवै साधु निरखन जाय । चारि कुंठ चोदह भवन निरखि
निरखि विगसाय ।—प्राण०, पृ० १८ ।

कुटला^१—सञ्ज्ञा पुं० [ग्र० क्विन्टल] एक तोल जो १०० किनोग्राम
की होती है ।

कुठ—वि० [सं० कुण्ठ] [सञ्ज्ञा कुण्ठता, कुण्ठत्व । वि० कुठित] १ जो
चोखा या तीक्ष्ण न हो । गुठला । भोथरा । कुद २ मूख ।
स्थूल बुद्धि का । कुदजेहन । ३ झालसी । सुस्त (को०) । ४
कमजोर । निर्वल (को०) ।

यी०—कुठधी । कुठमना = मूख । कुदजेहन ।

कुठक—वि० [सं० कुठक] बुद्धिहीन । नासमझ (को०) ।

कुंठा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुण्ठ + प्रा] १ खीझ । विड़ । २ निराशा ।
३ मन की गाँठ । मानसिक ग्रंथि । उ०—प्रोत्तिक मधुर
कुंठा निष्ठुर पावक मरद रज के युग मन ।—प्रतिभा,
पृ० १३८ ।

यी०—कुंठाजत = निराशा, खीझ या मन की अवृत्त इच्छाओं से
बना हुआ । उ०—ने तो राज के समूचे साहित्य को कुंठाजत
माना है ।—हिं० आ० प्र०, पृ० ३ ।

कुठित—वि० [सं० कुण्ठित] १ जिसकी धार चोखी या तीक्ष्ण न
हो । कुद । गुठला । उ०—वह न हाथ दहइ रिम छाती ।
भा कुंठारकुंठित नृपघाती ।—तुलसी (शब्द०) । २ मद ।
वेकाम । निरुम्मा । जैसे—नुम्हारी बुद्धि कुठित हो गई है ।
३ गूनीत । ग्रहण किया हुआ (को०) । ४ विह्वल । परिवर्तित
(को०) । ५ मूर्ख । जड़ (को०) । ६ बाधित । विघ्नित ।
अपहृत (को०) ।

कुड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुण्ड] १ चोडे मुँह का गहरा उत्तन । कुंड । २
एक प्राचीन काल का मान जिससे मनाज नापा जाता था । ३
छोटा बंधा हुआ जलाशय । बहुत छोटा तालाब । जैसे—भरत-
कुड, सूर्यकुड । ४ पृथिवी में छोदा हुआ गड्ढा घसवा मिट्टी,
धातु आदि का बना हुआ पात्र जिसमें प्रग्नि जलाकर अग्निहोत्र
आदि करते हैं । उ०—जज्ञ पुण्य प्रसन्न सब नए । निकसि
कुड ते दरसन दए ।—सूर० ४।५ । ५ बटलो । म्वाली ।
६ जलपात्र । कमंडलु (को०) । ७ शिव का एक
नाम । ८ एक नाग का नाम ।—प्रा० भा०, पृ०,
पृ० ८६ । ९ घृतराष्ट्र का एक लडका । १०, ऐसी स्त्री का
जारज लडका जिसका पति जीता हो । ११ मुशरी ।
पूला । गड्ढा । जैसे—इंद्रकुड । १२ ज्योतिष के अनुसार
चंद्रमा के मंडल का एक भेद । १३ गर्व । गड्ढा । उ०—
उठै रुड भू में परे मुड लोटें । भरें कुड लोह बहे
बीर डोलें ।—हम्मोर०, पृ० १६ । १४ लोहे का
टोप । कुंड । छोद । उ०—(क) तीर तरवारि भाला बरछी
बडूक हाथ आयस के कुड माय करन पनाइ के ।—गोपाल
(शब्द०) । (ख) कुडन के ऊपर कढ़ाके उठे ठीर ठीर —
भूपण ग्र०, पृ० ७३ । १५ होदा । उ०—चढ़ि चित्रित
सुड मुमुंड पै सोमित कचन कुड पै । नृप सजेउ चलत जडु भुंड
पै जिमि गज मृग सिर पुड पै ।—गोपाल (शब्द०) । १६
श्री राग के आठ पुर्यों में से एक का नाम । स०—सावा
सारंग सागरा ओ गधारी भीर । अष्ट पुत्र श्री राग के गोल कुड
गमीर ।—माधवानल०, पृ० १६४ ।

कुडक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुण्डक] १ पात्र । २ मटका । कुडा ।
३ घृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम (को०) ।

कुडकीट—सञ्ज्ञा पुं० [कुण्डकीट] १ चार्वाक के मत का अनुयायी ।
पतित ब्राह्मणी पुत्र । ३ रखेनी या सुरैतिन के रूप में
किसी स्त्री को रखनेवाला (को०) ।

कुडकोल—सञ्ज्ञा पुं० [कुण्डकोल] नीच या जगनी व्यक्ति (को०) ।
कुडकोदर^१—वि० [सं० कुण्डकोदर] कुंडे या गटके की तरह पेट
वाला (को०) ।

कुडकोदर^२—सञ्ज्ञा पुं० १ शिव जी का एक गण । २ एक नाग का
नाम (को०) ।

कुडगोल, कुडगोलक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुण्डगोल, कुण्डगोलक] काँजी ।

कुडनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डनी] मिट्टी का बडा घरतन (को०) ।

कुडपायिनामयन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुण्डपायिनामयन] एक यज्ञ
जिसमें यजमान को २१ रात्रि तक दीक्षित रहना पड़ता है

और उसके एक मास के उपरांत सोम संग्रह करने के लिये जाना पड़ता है।

कुंडपायी—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डपायिन्] १ सोमयाग करनेवाला वह यज्ञमान जिसने १६ ऋत्विजों से सोमसत्र कराके कुंडाकार चमसे से सोमपान किया हो। २ याज्ञिकों का एक संप्रदाय जिनके पूर्वज कुंडपायी थे या जिनके कुल में सोमयाग में कुंडाकार चमसे से सोमपान होता था।

विशेष—ऐसे लोगों के अयनयागादि औरो से कुछ विलक्षण हुआ करते थे। आश्वलायन श्रौतसूत्र में इनके अयनयाग का पृथक् विधान मिलता है।

कुंडर(५)—संज्ञा पुं० [सं० कुण्ड + र(प्रत्यय)] अथवा कुण्डल = घेरा, मंडल दे० 'कुंडल'। उ०—नामी कुंडर वानारसी। सौह को होइ मीचु तहें बसी।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १६६।

कुंडरा(५)—संज्ञा पुं० [सं० कुण्ड या हि० कुंडर] १ कुंडा। मटका। उ०—प्रस कहि इक कुंडरा मंगायो। निज तुवा तेहि ओघ करायो।—रघुराज (शब्द०)। २ दे० 'कुंडरा'।

कुंडल—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डल] १ सोने। चांदी आदि का बना हुआ एक मंडलाकार आभूषण जिसे लोग कानों में पहनते हैं। वाली। मुरकी। उ०—घुघरारी लटें लटकेँ मुख ऊपर कुंडल लोल कपोलन की।—तुलसी (शब्द०)। पहिए के आकार का एक आभूषण जिसे गोरखनाथ के अनुयायी कनफटे कानों में पहनते हैं। यह सींग, लकड़ी, काँच, गेंडे की छाल तथा सोने आदि धातुओं का भी होता है। २ कोई मंडलाकार आभूषण जैसे—कड़ा, चूड़ा आदि। ४. रस्सी आदि का गोल फंदा। ५. लोहे का वह गोल मंडरा जो मोट या चरस के मुँह पर लगाया जाता है। मेखड़ा। मेढ़री। ६ कोल्हू के चारों ओर लगा हुआ गोल वद ७ किसी लंबी लंबी वस्तु की कई गोल फरों में सिमट कर बँधने की स्थिति। फेंटी। मडल। जैसे,—साँप कुंडल बाँधकर बँठा है।

क्रि० प्र० बाँधना।—मारना।

८. वह मडल जो कुहरे या वदली में चद्रमा या सूर्य के किनारे दिखाई पड़ता है।

क्रि० प्र०—मे बँठना।

९. छद में वह मात्रिक गण जिसमें दो मात्राएँ हो, पर एक ही अक्षर हो। जैसे—'श्री'। १०. बाईस मात्राओं का एक छद जिसमें बारह और दस पर विराम होता है और अंत में दो गुरु होते हैं।

विशेष—इस छंद में अंतिम दो गुरु के अतिरिक्त शेष अठारह मात्राओं का यह नियम है कि पहली बारह मात्राओं के शब्द या तो सब द्विकल वा त्रिकल अथवा दो त्रिकल के बाद तीन द्विकल अथवा तीन द्विकल के बाद दो त्रिकल होते हैं और शेष बारह मात्राओं में त्रिकल के पश्चात् त्रिकल या तीन द्विकल होते हैं। इस छंद के चरणांत में अगर एक ही गुरु हो तो उसे चक्षिणाना कहते हैं। जैसे,—तू दयालु दीन हों तू दानि हों भिखारी। हों प्रसिद्ध पातकी तू पाप पुज दारी। नाथ तू

अनाथ को अनाथ कौन मोसो। मो समान आरन नहि आरनिहर तोसो।

कुंडलपुर—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डलपुर] दे० 'कुंडिनपुर'।

कुंडलाकार—वि० [सं० कुण्डलाकार] १ वतुंलाकार। गोल। २ मंडाकार।

कुंडलि(५)—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डलि] सर्प। शेषनाग। उ०—मेरु कछू न कछू दिग्दंति न कुंडलि कोल कछू न कछू है।—भूपण प्र०, पृ० ३४।

कुंडलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डलिका] १ मंडलाकार रेखा। २ जलेबी नाम की एक मिठाई। ३. कुंडलिया छंद।

कुंडलित—वि० [सं० कुण्डलित] १ जो कुंडली मारे हुए हो। जो फेंटी मारे हुए हो। कई वलों में घूमा हुआ। २ कुंडल नामक आभूषण से युक्त। उ०—कोमल कुटिल कुंडलित कनका-भरण भूषित कान।—वर्ण०, पृ० ४।

कुंडलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डलिनी] १ तंत्र और उसके अनुयायी हठयोग के अनुसार एक कल्पित वस्तु, जो मूलाधार में सुषुम्ना नाडी के नीचे मानी गई है।

विशेष—यह वहाँ साढ़े तीन कुंडली मारकर त्रिकोण के आकार में पड़ी सोती रहती है। योगी लोग इसी को जगने के त्रिये अष्टांग योग का साधन करते हैं। अत्यंत योगाभ्यास करने से यह जागती है। जागने पर यह साँप की तरह अत्यंत चंचल होती है, एक जगह स्थिर नहीं रहती और सुषुम्ना नाडी में होती हुई मूलाधार से स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध, अग्नि और मेरुशिखर होती हुई या उन्हें भेदती हुई ब्रह्मरंध्र से सहस्रार चक्र में जाती है। ज्यों ज्यों यह ऊपर चढ़ती जाती है त्यों त्यों साधक में अलौकिक शक्तियों का विकास होता जाता है और उसके सांसारिक बंधन ढाले पड़ते जाते हैं। ऊपर के सहस्रार चक्र में उसे पकड़ कर योगबल से ठहराना और सदा के लिये उसे वहीं रोक रखना हठयोग के साधकों का परम पुद्गल माना गया है। उनके मत से यहाँ उनके मोक्ष का साधन है। किसी किसी तंत्र का यह भी मत है कि कुंडलिनी नित्य जागती है और वह बीच के चक्रों को भेदती हुई सहस्रार कमल में जाती है और वहाँ देवगण उसे अमृत से स्नान कराते हैं। उनका कथन है कि यह कुंडलिनी मनुष्यों के सोने की समस्या में ऊपर चढ़ती है और जागने के समय अपने स्थान मूलाधार में चली जाती है।

पर्या०—कुटिलांगी। भुजगी। ईश्वरी। क्षिति। क्षयपती। कुंडली।

२. जलेबी नाम की मिठाई। इमरती। ३. गुडूची। गिलोय।

कुंडलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डलिका, प्रा० कुंडलिया] एक मात्रिक छंद जो एक दोह और रोले के योग से इस प्रकार बनता है कि दोह के अंतिम चरण के कुछ शब्द रोले के दाहिने अक्षरों के साथ मिल जाते हैं। जैसे,—गुण क याहक सहस नर विनु गुण लहे न कोय। जैसे कागा कोकिला शब्द सुनै सब कोय। शब्द सुनै सब कोय कोकिला सब सुहावन। दाऊ के एक रूप

३ मधु। शब्द। ४ खून। रक्त। ५ देगो का एक मधुर पेय पदार्थ। ६ चौपाया। पशु।

यो०—कीलालज = माम। कीलालधि = समुद्र। कीलालप = (१) भीरा। (२) राक्षस। प्रेत।

कीलाल^२—वि० बघन हटाने या दूर करनेवाला।

की ली—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कीलालिन्] विसतुह्या। छिपकली।

कीलिका—सञ्ज्ञा पुं० १ मनुष्य के शरीर की वे हड्डियाँ जो श्लेष्म और नागन को छोड़ दूसरे स्नायु में बँधी होती हैं। २ एक प्रकार का बाण। ३ धुरी (को०)।

कीलित—वि० [सं०] १ जिसमें कील जड़ी हो। २ मत्र से स्तम्भित। कीला द्रव्य।

कीलिया—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कील] मोट के बँलो को हाँकनेवाला। पुरबोलवा। पँरवा।

कीली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कील] १ किसी चक्र के ठीक मध्य के छेद में पड़ी हुई वह वील या डडा जिसपर वह चक्र घूमता है। जैसे—पृथ्वी अपनी कीली पर घूमती है, जिससे रात और दिन होता है। २ दे० 'कील' और 'किल्ली'।

कीवाँ(उ)—शब्द० [हिं० किमि] कैसे। उ०—तुझ बाजू खरी वो नामिनी कीवाँ दिन परच वी।—धनानंद०, पृ० ३८४।

कीश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ बदर। वानर। लंगूर।

यो०—कीशध्वज। कीशकेतु = अर्जुन।

२ चिडिया। ३ सूर्य।

कीशपर्णी—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अषाढार्ग नामक पौधा। चिडा (को०)।

कीशपर्णी = सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कीशपर्णि] अषाढार्ग नामक पौधा (को०)।

कीस^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कीश] बदर। वानर। उ०। धन्य कीम जो निज प्रभुकाजा। जहँ रहँ नाचँ परिहरि लाजा।—मानस, ६।२।

कीस^२—सञ्ज्ञा पुं० [फा० कीसह] गन्ध की थैली।

कीमउ(उ)—वि० [सं० कीदृश] कीदृश। कैमा। उ०—राजा दुली महूत कीसउ म्हाँ तो ओलग चालस्या प्राज।—वी० रासो, पृ० ६१।

कीमा—सञ्ज्ञा पुं० [फा० कीसहू] १ थैली। खीसा। २ जेब। खरीमा।

कीसीव(उ)—क्रि० वि० [सं० कीदृश + हव] कैसे। क्यों। कीदृश। उ०—कहहू समझाई, पर पेलवी। राजा कीसीव तु मागि चितोड।—वी० रासो, पृ० २४।

कुंकर(उ)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोकरू] दे० 'कोकरू'।

कु कुम—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुकुन] १ केसर। जाफरान। उ०—कु कुम रग सुग्रज जितो मुख चंद सो चदन होइ परी है।—तुलसी (शब्द०)। २ लाल रंग की वस्तु, जिसे स्त्रियाँ माथे म लगाती हैं। रोंली। ३ कुकुमा।

कु कुमज्वर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुकुज्वर] एक प्रकार का ज्वर। श्वाश लेने में कष्ट, छाती में पीड़ा, रक्ता थोड़ी गरमी आदि इसके लक्षण हैं—माधव० पृ० ४३।

कु कुमफूल—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] गुणहरिषा का फूल।

कु कुमा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुकुम] १ भिल्लो की कुपी या ऐसा बना

हुआ लाख का पोला गोला जिसके भीतर गुनाल भरकर होली के दिनों में मारते हैं। लाख को लोहे की नली में भरकर फूँकते हैं जिससे उसका फूँकर गोला बन जाता है। २ दे० कुंकुम-१। उ०—कोई गटे कुकुमा चोवा। दरसन आस ठाढ़ि मुख जोवा।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३१७।

कु कुमाद्रि—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुकुमाद्रि] एक पर्वत का नाम जो काश्मीर में है (को०)।

कु कुह(उ)—सञ्ज्ञा पुं० [पि०] दे० 'कु कुम'। उ०—पेट पत्र चदन जनु लावा। कु कुह केसर वरन सोहावा।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १९५।

कु चन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुञ्चन] १ सिकुड़ने या बटुड़ने की क्रिया। सिमटना। २ आँख का एक रोग, जिसमें आँख की पलकें सिकुड़ जाती हैं।

कु चि—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुञ्चि] माठ मुट्ठी का एक परिमाण।

कु चिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्चिका] १ घूँघची। गुंजा। २ बाँस की टहनो। ३ कुंजी। ताल। चामी। ४ एक प्रकार की मछली। ५ हरद्वार। ६ एक प्रकार का नरकट (को०)।

कु चित—वि० [सं० कुञ्चित] १, घूमा हुआ। टेढ़ा। बक। २ घूँघर-वाले। छल्लेदार (वाल)। उ०—कु चित अत्रक मिलक गोरो-चन, ससि पर हरि के ऐन। कवहुँ खेलत जान घटुवनि उपजावत सुख चैन।—सूर० १०।१०३। (ख) चिक्कन कच कु चि तगमुघारे। बहु प्रकार रचि मातु सँवारे।—तुलसी (शब्द०)।

कु ची, कुं चो(उ)—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्चिका] ताली। कु जी। चामी। उ०—घमँघोर कुलकानि कुं चो कर तेहि तारी दे हरि घरयो री। गलक कपट कठिन उर आर इतेहु जतन कछु न सरयो री।—सूर (शब्द०)।

कु ज—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुञ्ज, तुल, फा० कुज] १ वह स्थान जिसके चारों ओर घनी लता छाई हो। वह स्थान जो वृक्ष लता यादि से मड़न की तरह ढका हो।—उ० (क) जइ वृक्षावन आदि अजर जहँ कु न लना विस्तार। तहँ विहरत प्रिय प्रीतम दोऊ, निगम भूग गुजार।—सूर (शब्द०)। (ख) सघन कुंज छाया सुखद सीतल मद समीर। मन ह्वँ जात अजहुँ वहे कानिदी के तीर।—विहारी (शब्द०)।

यो०—कु ज कुटीर = जतागृह। कु ज की खोरी = दे० 'कु जगरी'।

(१) उ०—सूरदास प्रभु सकुचि निरखि मुख नजे कु ज की खोरी।—सूर० १०।२६७। कु जगती = (१) बाटिका में लताओं से छायापथ। भूभुलैया। (२) तप गौर पतली गनी। कु जविहारी = दे० श्रीकृष्ण। उ०—जय ते विछुरे कु ज विहारी। नौद न परे घटै नहि रजनी बिया निरह नुर नारी।—सूर०, १०।३२८७।

२ हाथी का दाँत। ३ नीचे का जवड़ा (को०)। ४ दाँत (को०)।

५ गुफा। कदरा (को०)।

कु ज^२—सञ्ज्ञा पुं० [फा० कुज = कोना] १ वे वृटे जो दुशाले के कोनों पर बनाए जाते हैं। २ खपरैल या छप्पर की छाजन में वह लकड़ी जो बँड़े से अकर काने पर निरखी गिरती है। कोनिया। कोनसिता। ३ कोण। कोना।

कुंजक—संज्ञा पुं० [सं० कुञ्जक] डेवटी पर का वह चोवदार जो ग्रन्थपुर में आता जाता हो। कचुकी। क्वाजमरा। उरदा-वेग। उ०—कुञ्जक क्लीव त्रिविध परिचारक। जे रनिवास खरि परचारक।—रघुराज (शब्द०)।

कुञ्जकुटीर—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्जकुटीर] लतागृह। कुञ्जगृह। लतामो मे घिरा हुआ घर। उ०—चन्हि किन मानिनि कुञ्जकुटीर। तो विनु कुञ्जर कोटि वनिताजुत विलास विपिन अधीर।—हित हरिवंश (शब्द०)।

कुंजगनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुंज + गनी] १. वगीचो मे लता से ढाया हुआ पय। २. पनली तग गली।

कुंजड^१—संज्ञा पुं० [अ० कुंजड] पिस्ते का गोद जो दवा के काम आता है और देखने में रूमी मस्तगीसे भिन्नता जलता होता है। कुंदुर।

कुंजड^२—संज्ञा पुं० [हिं० कुंजडा] [स्त्री० कुंजडी] दे० 'कुंजडा'।

उ०—उस कुंजड ने ठाकुर के शीश पर मुकुट रख दिया।—कबीर सं०, पृ० ३४५।

कुंजर—संज्ञा पुं० [सं० कुञ्जर] [स्त्री० कुजरा कुजरी] १. हाथी।

मुहा०—कुजरो व (नरो वाकुजो, नरो) = हाथी या मनुष्य। श्वेत या कृष्ण। यह या वह। अनिश्चित या दुविधे की बात। उ०—सोहो सुमिरत नाम मुघारस पेंखत परसि धरो। स्वारय हू परमारय हू की नहि कुजरो नरो।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—द्रोणाचार्य जी को वरदान था कि उनका प्राण पुत्र-शोक में निकलेगा। महाभारत व युद्ध में जब द्रोणाचार्य जी के बाणों से पांडव दल को बड़ी क्षति पहुँची तब कृष्णचंद्र ने यह गप उड़ाने की सलाह दी कि 'अश्वत्थामा मारा गया, और इसकी सत्यता के लिये अश्वत्थामा नाम के एक हाथी को मरवा डाला। द्रोणाचार्य जी से बहुतों ने अश्वत्थामा के मारे जाने का ममाचार कहा, पर उन्हें विश्वास नहीं आया, यहाँ तक कि स्वयं श्रीकृष्ण के कहने पर भी उन्होंने सत्य नहीं माना और कहा कि जबतक धर्मराज युधिष्ठिर न कहेंगे मैं इसे गत्य नहीं मानूँगा। इसपर कृष्णचंद्र ने युधिष्ठिर को इतना कहने के लिये राजी किया कि 'अश्वत्थामा मारा गया, न जाने हाथी या मनुष्य'। अश्वत्थामा हतो, नरो वा कुंजरो वा'। कृष्ण जी ने ऐसा प्रवचन किया कि ज्यों ही युधिष्ठिर के मुँह से 'अश्वत्थामा हतो' वाक्य निकला, अश्वत्थामा होने लगी और द्रोणाचार्य जी शेष कुंजरो वा नरो वा' जो धीरे से कहा गया था, न मुन मके। वे प्राणायाम द्वारा सब बातों को जानकर प्राण त्यागना चाहते थे कि द्रुपद के पुत्र वृष्टसूत द्वारा, जो द्रोणजी का नाई था, उनका सिर काट लिया गया। युधिष्ठिर के इन सदिग्ध वाक्यों को लेकर यह मुहावरा दुविधे की बातों के प्रथम प्रयुक्त होता है।

२. एक नाग का नाम। २. बाल। केश। ४. एक देव का नाम। ५. रामायण के अनुसार एक परंत का नाम। यह मन्वयानिधि की हिंसी शृंखला का नाम था। ६. यजुना के पिता और हनुमान के नाना का नाम। ७. पदमपुराण के अनुसार एक वृद्ध शुक पक्षी का नाम जिसने महर्षि च्यवन को उपदेश दिया था। ८. छपय के २१ वे भेद का नाम जिसमें ५० गुरु, ३-५५

५२ लघु, १०२ वर्ण और १५२ मात्राएँ या ५० गुरु, ४८ लघु, ६८ वर्ण और १५८ मात्राएँ होती हैं। १. पाँच मात्रा के छंदों के प्रस्तार में पहला प्रस्तार। १०. हस्त नक्षत्र। ११. पीपल। १२. घाठ की संख्या। १३. शिर (को०)। १४. एक मास्यण (को०)।

कुंजर^३—वि० श्रेष्ठ। उत्तम। जैसे, पुनःकुंजर, कतिकुंजर।

विशेष—इन अर्थों में यह शब्द समस्त पक्षों के अर्थ में आता है।

धर्मर कोणकार ने इन प्रसंग में व्याघ्र, पुगव, श्याम, कुंजर,।

सिंह शार्दूल और नाग आदि शब्दों को भी श्रेष्ठ अर्थ में प्रयोग सूचित किया है।

कुंजरकरण—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्जरकरण] गजपिप्पली। गजगीपल।

कुंजरग्रह—संज्ञा पुं० [सं० कुञ्जरग्रह] वह व्यक्ति जो हाथी पकड़ने का व्यवसाय करता हो [को०]।

कुंजरच्छाय—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्जरच्छाय] ज्योतिष के अनुसार एक योग।

विशेष—जब कृष्ण त्रयोदशी मघा नक्षत्र में युक्त होती है मघरा सूर्य और चंद्र मघा नक्षत्र के होते हैं तब यह योग होता है।

मनु के अनुसार जब कृष्णपक्ष में त्रयोदशी और चतुर्दशी का योग हो और उसी दिन पूर्वाह्न में हस्त नक्षत्र भी हो तब 'कुंजरच्छाय' होता है। यह एन परं माना गया है और शास्त्रों में इस दिन पितरों के श्राद्ध का बड़ा फल लिखा है।

कुंजरदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्जरदरी] एक प्रदेश का नाम। अनुमनय।

कुंजरपिप्पली—संज्ञा स्त्री० [सं० कुंजरपिप्पली] गजपिप्पली।

कुंजरमणि^४—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्जरमणि] गजमुक्ता। उ०—कुंजर मणि कटा कनित उरहि तुलसिका माल।—मानस १। २८३।

कुंजरा—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्जरा] १. हथिनी। २. घातकी। पक्ष।

कुंजरानीक—संज्ञा पुं० [सं० कुञ्जरानीक] गजानन्य। हाथियों की नेता [को०]।

कुंजरासति—संज्ञा पुं० [सं० कुञ्जरासति] हाथी का अणु, सिंह। २. शरम। एक अष्टापद ननु [को०]।

कुंजरासि—संज्ञा पुं० [सं० कुञ्जरासि] हाथी का पैरों सिंह।

उ०—प्रथम प्रपठ गरि उड शत्रुदंड और पार जागुधान हनुमान लिए नेगिहैं। मदा वा पुंज कुंजरासि ज्यो गरति नट नही तही पटक नंगूर फेरि फेरिहैं।—तुलसी (अन०)।

कुंजरासिह—संज्ञा पुं० [सं० कुञ्जरासिह] हाथीपान। मशरव। पीनवान।

कुंजराशन—संज्ञा पुं० [कुञ्जराशन] धनस्य। पीपल।

कुंजरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्जरी] हथिनी। हस्तिनी। २. पक्ष। पनास [को०]।

कुंजल^१—संज्ञा पुं० [सं० कुञ्जल] काँची।

कुंजल^२^४—संज्ञा पुं० [सं० कुञ्जल] हाथी। हस्ती। गज। उ०—(क) पय जोरन घरी को राधा। पुंजल सिंह विजयद माया।—चमत्तौ (अन०)। (ख) ग्यो निजदरदन

कीमत—सञ्ज्ञा पुं० [अ० की० मत] [वि० कीमती] वह धन जो किसी चीज के विक्रय पर उसके बदले में मिलता है। दाम। मूल्य।
क्रि० प्र०—देना।—पाना।

मुहा०—कीमत बढ़ना या बढ़ना = १. चीज का महँगी होना।

२. महत्व होना। कीमत उतरना = १. चीज का मूल्य या सस्ता होना। २. महत्व घटना। कीमत ठहरना = मूल्य निश्चित होना। दम तै होना।

कीमत ठहराना = मूल्य निश्चित करना। दाम तै करना।

कीमत चुकना = (१) दाम देना। (२) दे० कीमत ठहराना।

कीमत लगाना = दाम आँकना। (खरीदनेवाले का) दाम कहना।

कीमती—वि० [अ० कीमत + फा० ई (प्रत्य.)] अधिक दामो का। बहुमूल्य।

कोमा—सञ्ज्ञा पुं० [य० कीमह] बहुत छोटे छोटे टुकड़ों में कटा हुआ गोश्त (खाने के लिये)।

क्रि० प्र०—करना।—वनाना।

महा०—कोमा करना = किसी चीज के बहुत छोटे छोटे टुकड़े करना। उ०—चाहूँ तो अग्नि में दहन कर दूँ चाहूँ तो दीवार में चुन दूँ—चाहूँ तो टुकड़े टुकड़े काटकर कोमा करूँ और यदि चाहूँ तो बटुए में चुरा डालूँ।—कवीर म०, पृ० ११६।

कीमिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [य० कीमियह] १. रासायनिक क्रिया। रसायन। २. सोना चाँदी बनाने की विद्या। ३. वह रसायन जो अक्सीर या अमोघ हो। ४. कार्य सिद्ध करनेवाली युक्ति।

यो०—कीमियागर।

कीमियागर—वि० [य० कीमियह + फा० गर (प्रत्य०)] १. रसायन बनानेवाला। रासायनिक परिवर्तन में प्रवीण। २. सोना चाँदी बनानेवाला। ३. कार्यकुशल।

कीमियागरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कीमियागर + ई (प्रत्य०)] १. रसायन बनाने की विद्या। २. सोना चाँदी बनाने की विद्या।

कीमियागरी—वि० [अ० कीमियह + फा० गरी] दे० 'कीमियागर'।
कीमुस्त—सञ्ज्ञा पुं० [य० कीमुस्त] गंधे या घोड़े का चमड़ा जो हरे रंग का और दानेदार होता है। इसके जूते बरसात में पहने जाते हैं।

कीमुस्ती—वि० [य० कीमुस्त + फा० ई (प्रत्य०)] कीमुस्त का बना हुआ।

कीर^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. शुक। सुगा। तोता। २. व्याध। वहेलिया। ३. कश्मीर देश। ४. कश्मीर देशवासी। ५. मास (की०)।

कीर^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि० केवट] कछुवा। केवट। उ०—कड़िया छटकी जाल की आइ पहुँचा कीर।—कवीर सा० सं०, पृ० ७५।

कीरक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. उपलब्धि। प्राप्ति। २. एक वृक्ष। ३. एक वृक्ष का नाम (की०)।

कीरणा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम (की०)।

कीरत^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कीर्ति] दे० 'कीर्ति'। उ०—बलभद्र।
कीरत की लीक सुकुमार है।—श्याम०, पृ० ३६।

कीरतन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कीर्तन] दे० 'कीर्तन'।

कीरति^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कीर्ति] १. दे० 'कीर्ति'। २. उ०—
कवीर मनोहरि विजय बसि, कीरति भति कमनीय। पावनहास
विरचि जय, रयेउ न घन दमवीय।—गुप्तजी (शब्द०)।

२. राधिका की माना 'कीर्ति'।

यो०—कीरतिकुमारी = राधा। उ०—पीतपट नद जसुमति
नवनीत दियौ कीरतिकुमारी सुखारी दई वाँसुरी।—रत्नाकर,
भा० २, पृ० १। कीरतिनदिनी = राधा। उ०—रसिक रासि को
रूप, तूनी कीरतिनदिनी। रसिया ब्रज को भूप, करि किनि
सुख चो चदिनी।—ब्रज० ग्र०, पृ० २।

कीरतिन्या—सञ्ज्ञा पुं० [हि० क्तिन्या] दे० 'कीर्तनिया'।

कीरम^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृमि, हि० किरम] दे० 'कृमि' उ०—
करम किए कीरम हुआ नैन विहूना सोय।—सं० दरिया, पृ०
१८१।

कीरशब्दा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] चतुर्दश ताल का एक भेद जिसमें तीन
आघात, एक खाली और फिर तीन आघात होते हैं।

कीरा^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कीड़ा] दे० 'कीड़ा'। उ०—वर मागत
मन भइ नहि पीरा। गरि न जीइ मुह परेउ न कीरा।—
मानस, २। १६२।

कीरात—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कीरात] चार जो की तील। किरात।

कीरि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. स्तुति। प्रशंसा। २. स्तोत्र (की०)।

यो०—कीरिचोदन = प्रशंसा की प्रेरणा करना। प्रशंसक को
बढ़ावा देना।

कीरिभारा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जूँ (की०)।

कीरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कीट अथवा कीटिका] १. महीन कीड़ेछोटे कीड़े
जो गेहूँ, जौ या चने की बाल के भीतर जाकर उसका दूध खा
जाते हैं। २. चीटी। कीडी। उ०—साई के सब जीव है कीरी
कुजर दोय।—कवीर (शब्द०)। ३. बहुत छोटे कीड़े। ४.
व्याध या वहेलिया की स्त्री।

कीर्त^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कीर्ति] दे० 'कीर्ति'। उ०—कीर्तं वधाऊँ
तो नाम न मेरा काहे झुटा पछताऊँ घेरा।—दक्खिनी०,
पृ० १०५।

कीर्ण^१—वि० [सं०] १. फैला हुआ। बिखरा हुआ। उ०—बधु, विदा
दो उसी भाव से तुम हमें वन काटे वने काँपें कुकुम
हमें।—संकेत, पृ० १४४। २. उका हुआ (की०)। ३. धारण
किया हुआ (की०)। ४. स्थिति (की०)। ५. आहत। चोट
खाया हुआ (की०)।

कीर्ण^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. बिखरने या फैलानेवाली स्त्री। २. आच्छा
दन या गोपन करनेवाली स्त्री। ३. आघात करनेवाली स्त्री
(की०)।

कीर्णित—वि० [सं० कीर्ण] अकृत। उत्कीर्ण। उ०—जहाँ तुम्हारे
धरण-कमल, चकर कीर्णित कर जाते हैं।—कुकुम, पृ० ४६।

कीर्तन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कथन। यथार्थन। गुणकथन। २. राम
संबंधी या कृष्णलीला संबंधी भजन और कथा आदि।

यो०—हरिकीर्तन। नगरकीर्तन।

३. कथन। वर्णन। जैसे, गुण कीर्तन। ४. मंदिर। भवन (की०)।

कीर्तनकार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कीर्तनकार] कीर्तन करनेवाला भक्त।

कीर्तना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. कथन। वर्णन। २. प्रशंसा। स्तुति
(की०)।

कीर्तनिया—सङ्घ पुं० [सं० कीर्तन + हिं० इया (प्रत्य०)] कृष्ण
लीला संबंधी भजन और कथा सुनानेवाला। कीर्तन करने-
वाला। उ०—कीर्तनिया सो कोन त्रिस, संन्यासी सो तीस।—
कबीर सा० सं०, पृ० ६२।

कीर्ति—सङ्घ स्त्री० [सं० कीर्ति] १ पुण्य। २ ख्याति। बड़ाई।
नामवरी। नेकनामी। यश।

यो०—कीर्तिस्तम्भ।

३ सीता की एक सखी का नाम। ४ आर्या छंद के भेदों में से
एक। इसमें १४ गुरु और १६ लघु वर्ण होते हैं। ५ दशाक्षरी
वृत्तों में से एक वृत्त, जिसके प्रत्येक चरण में तीन सगण और
एक गुरु होता है। जैसे,—शशि है सकलक खरोरी। अकलकित
कीर्ति किशोरी। ६ एकादशाक्षरी वृत्तों में से एक वृत्त, जो
इंद्रवज्र के मेल से बनता है। इसके प्रथम चरण का प्रथम
अक्षर लघु होता है और शेष तीन चरणों के प्रथमाक्षर गुरु
होते हैं। जैसे—मुकुंद राधा रमण उचारो। श्री रामकृष्ण
भजिओ सवारो। गोपान गोविंदहि ते पसागो। हूँ हैं जब सिधु
भव सवारो। ७ प्रसाद। ८ शब्द। ९ दीप्ति। १० मातृका
विशेष। ११ विस्तार। १२ कीचड़। १३ एक ताल(सगीत)।
१४ दक्ष प्रजापति की कन्या और धर्म की पत्नी।

कीर्तित—वि० [सं० कीर्तित] [वि० स्त्री० कीर्तिता] १ कथित।
कहा हुआ। वर्णित। २. जिसका यश गाया गया हो।
प्रशंसित। ३ ख्यात। ४ कुख्यात (की०)।

कीर्तितव्य—वि० [सं०] कीर्तन योग्य (की०)।

कीर्तिदा—वि० [कीर्ति (= यश) + दा] यशोदा।

कीर्तिमत—वि० [सं० कीर्तिमत] दे० 'कीर्तिमान'। उ०—प्रथमहि
कीर्तिमत सुत भयो। वसुदेव ताहि लय ही गयो।—नद०
प्र०, पृ० २२२।

कीर्तिमान्—वि० [सं० कीर्तिमान्] यशस्वी। नेकनाम। मशहूर। विख्यात।

कीर्तिलेखा—सङ्घ स्त्री० [सं० कीर्तिलेखा] कीर्ति की रेखा या चिह्न।
उ०—और आज गंगा के उत्तरी तट पर विदेह, वज्जि, लिच्छवि
और मल्लो का जो गणतंत्र अपनी ख्याति से सर्वोच्च है वह
उन्हीं पूर्वजों की कीर्तिलेखा है।—इंद्र०, पृ० १२५।

कीर्तिवत—वि० [सं० कीर्तिवत] दे० 'कीर्तिमान्'।

कीर्तिवान्—वि० [हिं० कीर्तिमान] दे० 'कीर्तिमान्'।

कीर्तिशाली—वि० [सं० कीर्तिशालिन्] कीर्तिमान। यशस्वी।

कीर्तिशेष—वि० [सं० कीर्तिशेष] दिवंगत कीर्तिमान्। मरा हुआ
यशस्वी। जिसकी कीर्ति ही शेष हो। नामशेष। आलेखशेष।

कीर्तिस्तम्भ—सङ्घ पुं० [सं० कीर्तिस्तम्भ] १. वह स्तंभ जो किसी की
कीर्ति को स्मरण करने के लिये बनाया जाय। २. वह कार्य
या वस्तु जिसके द्वारा किसी की कीर्ति स्थायी हो।

कील^१—सङ्घ स्त्री० [सं०] १ लोहे या काठ की मेख। कांटा। परेण।
खूंटो।

यो०—कील पॉटा = (१) लोहार या बढई का औजार। (२)
हरवा हथियार। उ०—सभारे तो पहने ही मे कील काटे से
लेस था।—किसाना०, भा० ३, पृ० ३८३।

२ वह मड़ गम जो योनि में अटक जाता है। ३ नाक में पहिने
का एक छोटा आभूषण, जिसका आकार नाग के तमान होता
है। लॉग। ४ मुहासे की मामूली। ५ स्त्री प्रसंग में एक
प्रकार का आसन जिसे 'कीनासन' कहते हैं। ६ जति के
वीचोवीच का खूंट जो जिनके आगार पर वह गड़ा रहता है।
७ वह खूंटो जिसपर कुम्हार का चारु घमना है। ८ आंग
की लवर। अग्निशिखा। ९ दे० 'कीलक'। १० भाला
(की०)। ११ अस्त्र (की०)। १२ कुहनी धेंना या मारना
(की०)। १३ सूक्ष्म कण (की०)। १४ शिव (की०)। १५
जुआरी। १६ एक प्रेत (की०)।

कील^२—सङ्घ स्त्री० [देश०] खुगी या देवकास जो आसाम की गारो
पहाड़ियों में होती है।

कीलक^१—सङ्घ पुं० [सं०] १ खूंटो। कील। २. गोशो और नौ के
बाँधने का खूंटो। ३ तंत्र के अनुसार एक देवता। ४ किमी
मंत्र का मध्य भाग। ५ वह मंत्र जिसमें किसी अन्य मंत्र की
शक्ति या उसका प्रभाव नष्ट कर दिया जाय। ६ ज्योतिष में
प्रभव आदि ६० वर्षों में से ४२ वाँ वर्ष।

कीलक^२—इस वर्ष अमंगलो का नाश होकर सब जगह मंगल और
सुख होता है।

७ एक स्तव जो सप्तशती पाठ करने के समय किया जाता है।
८ केतु विशेष।

यो०—कीलकन्याय।

कीलक^३—(७) सङ्घ स्त्री० [हिं० किनक] दे० 'किनक'। उ०—यथामाशक्ति
श्याम सुन्दर जू कीलक सब थल मोहै।—यथामा० पृ० १६३।

कीलन—सङ्घ पुं० [सं०] १. वधन। रोक। रुकावट। २ किसी मंत्र
को कील देने का काम। एक टांत्रिक या मानिक क्रिया।

कीलना—क्रि० सं० [सं० कीलन] १. मंड जड़ना। कील लगाना।
२ किसी मंत्र या युक्ति के प्रभाव को नष्ट करना। ३ साँप
को ऐसा मोहित कर देना कि वह किसी को काट न सके। ४.
अधीन करना। वश में करना। ५. तोप की नगी में आगे की
और से कसकर लकड़ों का कुदा ठोकना जिसे सेप चलाई न
जा सके।

कीलमुद्रा—सङ्घ स्त्री० [सं० कील + मुद्रा] दे० 'कीलाक्षर'।

कीलसंस्पर्श—सङ्घ पुं० [सं०] एक वृक्ष का नाम (की०)।

कीला—सङ्घ पुं० [सं० कील] १ खड़ी कील। कांटा। गहु। दे० 'कील
६, ७'। उ०—ग्रामे पामे जो किरे निपट पिनावे गोय।
कीला से ल गा रई ताको विपन न होय।—कबीर सा०,
पृ० १२।

कीलाक्षर—सङ्घ पुं० [सं० कील + अक्षर] एक प्रकार की बहुत प्राचीन
लिपि जिसके अक्षर कील के आकार के होते थे। इस लिपि के
ईसा से कई सौ वर्ष पूर्व के कई लेख खंडों में पाए गए
हैं। उ०—य लेख मिट्टी की पट्टिकाओं पर कीलाक्षर में लिखे
गए हैं।—भोज० भा० सा०, पृ० १५।

कीलाल^१—सङ्घ पुं० [सं०] १ अमृत। २ जा। पाना। उ०—प्रंम
कमन कीलाल जन पय पुकर बन बारि।—अनेककार्य०,
पृ० ४६।

कीकना—क्रि० प्र० [अनु०] की की करके चिल्लाना । हर्ष, क्रोध या भयसूचक शब्द करना । चीत्कार करना ।

कीकर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० किङ्कराल] वृक्ष का पेड़ । उ०—छल कीकर कूँकाटि के बाँधो धीरज वार ।—वरण० वानी, पृ० ६ ।

कीकरी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कीकर] एक प्रकार । कीकर या वृक्ष जिसकी पत्तियाँ बहुत नहीन महीन होती हैं ।

कीकरी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कँगूरा] एक प्रकार की सिलाई जिसमें कपड़े को कतरकर लहरदार या कँगूरे ार बनाते हैं ।

क्रि० प्र०—काटना ।—काटना ।—बनाना ।

कीकश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चाकाल (को०) ।

कीकस^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ हड़्डो । २ एक कीड़ा । (को०) ।

कीकस^२—वि० [सं०] कठोर । दृढ़ (को०) ।

कीकसमुख—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पक्षी । चिड़िया (को०) ।

कीकसास्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कीकसमुख' (को०) ।

कीका(उ) सञ्ज्ञा पुं० [सं० कीकट] घोड़ा ।

कीकाना—सञ्ज्ञा पुं० [सं० केकाण] १ केकाण देश जो किसी समय घोड़ों के लिये प्रसिद्ध था । २ इस देश का घोड़ा । ३ घोड़ा । अश्व । उ०—हरि जान लसे कीकान इमि उमउ कान उन्नत करे ।—गोपाल (शब्द०) ।

कीगिनी(उ)—सञ्ज्ञा स्त्री० [अनु० या देश०] पक्षियों की बानी । उ०—प्रथम वानि कीगिनी जो होई । अठम वानि समानी सोई ।—कवीर० सा०, पृ० ८८० ।

कीच—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कच्छ] कीचड़ । कदम । पक । उ०—(क) गगन चढ़ै रज पवन प्रसंगा । कीचहि मिलै नीच जल संग । तुलसी (शब्द०) । (ख) पायर डारे कीच मे, उठरि विगारे अग ।—(शब्द०) ।

कीचक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ बाँस, जिसके छेद में घुसकर वायु हूँ हूँ शब्द करती है । २. पोला बाँस (को०) । ३ राजा विराट का साला और उसकी सेना का नायक ।

विशेष—जब पांडव लोग राजा विराट के यहाँ अज्ञातवास करते थे, उस समय कीचक ने द्रौपदी से छेड़छाड़ की थी । इसी पर भीम ने उसे मार डाला था ।

यौ०—कीचकजित्=भीम ।

कीचड़—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कीच+ड़ (प्रत्य०)] १. गीली मिट्टी पानी मिली हुई धूल या मिट्टी । कदमपक ।

मुहा०—कीचड़ में फँसना=असमजस में पड़ना । संकट में पड़ना । कठिनाई में पड़ना ।

२. आँख का सफेद मल जो कभी कभी आँख के कोने पर आ जाता है ।

क्रि० प्र०—घाना ।—निकलना ।—घरना ।

कीचम(उ)—वि० [हि० कीच+म (प्रत्य०)] गदी । मलिन ।

उ०—सुन्दर सदगुरु ब्रह्म मय परि शिप कीचम दृष्टि । सुधी वोर न देखई देप दपन पृष्टि ।—सुन्दर प्र०, भा० १, पृ० ६७२ ।

कीचर(उ)—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कीचड़] दे० 'कीचड़' उ०—चोया चिच

अरगजा आसा, कुमकुम कुमति विसार । घर घर धूर कूर सम बाँधो, करमन कीचर धोरी ।—घट०, पृ० २८० ।

कीट^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ रेंगने या उड़ानेवाला क्षुद्र जंतु । कीड़ा । मकोड़ ।

विशेष—सुश्रुत ने कीटवत्प में उनके जो नाम गिनाए हैं और उनके काटने और डक मारने आदि से जो प्रभाव मनुष्य के शरीर पर पड़ता है, उसके विचार से उनके चार भेद किए हैं वातप्रकृति, जिनके काटने आदि से मनुष्य के शरीर में वात का प्रकोप होता है । पित्तप्रकृति, जिनके काटने से पित्त का प्रकोप होता है । श्लेष्मप्रकृति, जिनके काटने से कफ कृषित होता है । त्रिदोषप्रकृति, जिनके काटने से त्रिदोष होता है । अग्न्या (अग्निनामा), ग्वान्नि (आवर्तक) आदि को वातप्रकृति, भिद भौरा, ब्रह्मनी (ब्रह्मणिना), पतविडिया या छिउकी (पत्रवृश्चिक), कनखजूरा (जतपादक) मकड़ी, गदहला (गर्दभी) आदि को पित्तप्रकृति तथा काली गोहू आदि को श्लेष्मप्रकृति लिखा है । ऊपर की नामावली से स्पष्ट है कि कीट शब्द के अंतर्गत कुछ रीढ़वाले जंतु भी आ गए हैं, पर अधिकतर बिना रीढ़वाले जंतुओं ही को कीट कहते हैं । पाश्चात्य जीवतत्त्वविदों ने इन बिना रीढ़वाले जंतुओं के बहुत से भेद किए हैं, जिनमें कुछ तो आकारपरिवर्तन के विचार से किए गए हैं, कुछ पक्ष के विचार से और कुछ मुखकृति के विचार से । हमारे यहाँ कीट शब्द के अंतर्गत जिन जीवों को लिया गया है, वे सब ऊँमज और अडज हैं । ऊँमज तो सब कीट हैं, पर सब अडज कीट नहीं हैं । जैसे, पक्षी मछली आदि को कीट नहीं कह सकते ।

२ हीनता या तुच्छताव्यजक शब्द । जैसे, छिपकीट=तुच्छ हाथी । पक्षिकीट ।

कीट^२—वि० कड़ा । कठोर (को०) ।

कीट^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० किट्ट] जमी हुई मल । मल ।

क्रि० प्र०—जमना ।—सगना ।

कीटक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कीड़ा । २. मागध जाति का चारण (को०) ।

कीटक^२—वि० कड़ा । कठोर ।

कीटन्त^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गधऊ (को०) ।

कीटन्त^२—वि० कुमिनाशक । कीटाणुनाशक ।

कीटव^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रेशम । रेशमी वस्त्र । कोशेय (को०) ।

कीटज^१—वि० कीट से उत्पन्न (को०) ।

कीटजा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] लाक्षा । लाख (को०) ।

कीटनामा, कीटपादिका, कीटपादी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] लाख (को०) ।

कीटभृग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कीटभृङ्ग] एक न्याय, जिसका प्रयोग उस समय होता है जब दो या कई वस्तुएँ विलकुल एक रूप हो जाती हैं । उ०—नइ गति कीटभृग की नाई । जहँ तहँ मैं देखे रघुराई ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—भृग या गुहाजनी (जिसे विलनी और भैरवी भी कहते हैं) के विषय में यह प्रवाद प्रसिद्ध है कि वह दूसरे कीटों को अपनी बिल में पकड़ ले जाती है और उन्हें अपने रूप का कर लेती हैं ।

यो०—कीटभूगव्याय ।

कीटमणि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जुग । खद्योतनू ।

कीटमवार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कीट, हि० अवारना] एक संप्रदाय का नाम । उ०—पश्चिम ओर शारदा मठ कीटमवार संप्रदाय का क्षेत्र-सिद्धेर देवता ।—कवीर मं०, पृ० ६२ ।

कीटमाना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कीटमान] लाठ [को०] ।

कीटाणु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अत्यंत छोटा कीड़ा । सूक्ष्मतम कीट । ऐसे छोटे कीड़े जो सूक्ष्मवीक्षण यंत्र से दिखाई पड़ें या उनसे भी न देखे जा सकें ।

।वशेष—ये छोटे छोटे कीड़े आँखों से दिखाई नहीं देते और सच्चा तीत परिमण में पाए जाते हैं । सूक्ष्मदर्शक यंत्र से ही इन्हें देखा जा सकता है । पश्चिमी डाक्टरो ने रोगों का कारण किण्वणुओं को माना है । हैजा, ताज्ज आदि रोग इन्हीं के कारण फैलते हैं ।

कीटावपन्न—वि० [सं०] १. कीटग्रस्त । कीटयुक्त । २. कीड़ा द्वारा खाया हुआ [को०] ।

कीटिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. झुद्र कीट । छोटा कीड़ा । २. चुच्छ प्राणी या जीव [को०] ।

कीटात्कर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वल्मीक । बमोट [को०] ।

कीड(उ)—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कीड़ा, प्रा० कीड, कील] दे० 'कीड़ा' । उ०—अवहीं परा समुक्षि कै, काँधे पर दुख भार । खेल कीड़ कित पाइव, जव गवनव ससुरार ।—इंद्रा०, पृ० ४१ ।

कीड़ा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कीट, प्रा० कीड] १. कीट । छोटा उड़ने या रेंगनेवाला जंतु । मकोड़ा । जैसे, कनखजूरा, विच्छू, भिन्न आदि ।

यो०—कीड़ा कतिगा । कीड़ा मकोड़ा ।

२. कृमि । सूक्ष्म कीट ।

मुहा०—कीड़े काटना=चुनचुनाहट होना । बेचनी होना । चंचलता होना । जी उकताना । जैसे, दम भर बैठे नहीं कि कीड़े काटने लगे । कीड़े पड़ना=(१) (वस्तु में) कीड़े उत्पन्न होना । जैसे,—घाव में कीड़े पड़ना । पानी में कीड़े पड़ना (२) दोष होना । एव होना । जैसे—इसमें क्या कीड़े पड़े हैं जो नहीं लेते । कीड़े लगना=बाहर से आकर कीड़ों का किसी वस्तु को खाने या नष्ट करने के लिये घर करना । जैसे—कपड़े कागज आदि में कीड़े लगना ।

३. साँप । ४. जूँ । खटमल आदि । ५. थोड़े दिन का बच्चा । कीड़ाकीड़ी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कीड़ाकीड़ित] बच्चा का एक खेल । उ०—सामने गाँव के बच्चे कीड़ाकीड़ी का खेल खेल रहे थे ।—फूलो०, पृ० ८ ।

कीड़ी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कीड़ा का लघ्वर्थक स्त्री०] १. छोटा कीड़ा । २. कीड़ी । पिपीलिका । उ०—कीड़ी के पग नेवर बाजे सो भी साहव सुनता है ।—कवीर मं०, भा० १, पृ० ३६ ।

कीटमिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जेठी मधु । मुलेठी [को०] ।

कीतवु(उ)—वि० [हि० कीतो या देतो] कितना ही । उ०—पूजी याहि भक्तो जो चाहो । विनु नाग कीतवु सर गाहो ।—नंद० ग्रं०, पृ० १६० ।

कीताना(उ)—वि० [सं० कीयत्, हि० कितना] कितने ही । बहुव

से । उ०—हरि दिन सर्व मया हैराना । पडि पडि भक्त कीताना ।—राम० घर्म०, पृ० ३०३ ।

कीदउ(उ)—प्रथ्य० [हि० कीधो] दे० 'कीधो' ।

कीदृक्ष—वि० [सं०][वि० स्त्री० कीदृक्षी] कैसा (आकार या प्रकृति में) [को०] ।

कीदृश, कीदृश—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कीदृशी] कैसा (रूप या स्वभाव में) [को०] ।

कीन^१—सञ्ज्ञा पुं० [फ़ा०] १. घृणा । २. शत्रुता । ३. मनोमालिन्य । ४. प्रतिशोध । उ०—हर चार तरफ कारे हसद युगजा कीन का, देखो जिधर को जा के तमाशा है तीन का ।—कवीर मं०, पृ० २२३ ।

कीन^२(उ)—वि० [फ़ा० कीनवर] शत्रुता या वैमनस्य रखनेवाला । द्वेषी । उ०—जो कोइ कीन जानिहै मोही, तेहिका दूर बहावो ।—जग० वानी०, पृ० ११ ।

कीन^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मास [को०] ।

कीन(उ)—वि० [हि० करना क्रिया का भूत कृदन्त रूप] किया । किया हुआ ।

कीनखाव—सञ्ज्ञा पुं० [फ़ा० कमखाव] दे० 'कमखाव' ।

कीनना—क्रि० सं० [सं० कीणन] खरीदना । मोल लेना । क्रय करना ।

कीनर(उ)—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० किगिरी] दे० 'किगिरी' । उ०—अनहद ताल पखाउज कीनर सोना सुमति विचारा ।—सं० दरिया, पृ० १५५ ।

कीना—सञ्ज्ञा पुं० [फ़ा० कीनह] द्वेष । वैर । शत्रुता । दुश्मनी । उ०—किवर होर कीना कर पाक इसते सीना ।—दक्खिनी०, पृ० ५२ । क्रि० प्र०—रखना ।

यो०—कीनाकश=द्वेष रखनेवाला । मन में मेल रखनेवाला । कीनापरवर=कीना रखनेवाला । कीनावर=मन में दुर्भाव या द्वेष रखनेवाला ।

कीनार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दुष्ट या बुरा आदमी [को०] ।

कीनाश^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. यम । मृत्युदेवता । २. एक प्रकार का वानर । ३. कसाई । बधिक [को०] ।

कीनाश^२—वि० १. गरीब । दरिद्र । अकिंचन । २. छोटा । क्षुद्र । ३. थोड़ा । अल्प । ४. धोखे से मारनवाला । ५. खेती करनेवाला । ६. क्रूर । निर्दय [को०] ।

कीनास—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कीनाश] १. यम । यमराज ।—(हि०) । २. एक प्रकार का बदर । ३. किसान । खेतिहर ।

कीनिया—सञ्ज्ञा पुं० [फ़ा० कीनह] कपट रखनेवाला । वैर रखनेवाला ।

कीप^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० कीफ] वह चोगी जिसे तग मुँह के बरतव में इसलिये लगाते हैं जिसमें तेल, अर्क आदि द्रव पदार्थ उसमें ढालते समय बाहर न गिरे । छुछी ।

कीप^२(उ) सञ्ज्ञा पुं० [हि०] रस । उ०—कज्जी वन अलगी धलो, अलगी सिहल दोप । किम इण वन लं केहरी, कु ना थल रो कीप ।—बाँकी ग्रं०, भा० १, पृ० ३५ ।

किसमिस—सब्जा पुं० [फा० किशमिश] दे० 'किशमिश' ।
 किसमिसी—वि० [फा० किशमिशी] दे० 'किशमिशी' ।
 किसमी०—सब्जा पुं० [अ० कसबी] श्रमजीवी । कुली । मजदूर ।
 उ०—किसमी, किसान, कुलत्रनिक, भिखारी, भाट, चाकर,
 चपल, नट, चोर, चार चेटकी ।—तुलसी (शब्द०) ।
 किसल—सब्जा पुं० [सं०] दे० 'किसलय' । उ०—नव किसल धनुक
 जनु कनक वेलि । तिरि चलिय जमुन जल कदम केलि । लटके
 सुवाल वैनिय सुरग । सोमै सु दुति विच जन तरंग ।—पृ०
 रा०, २।३७४ ।

किसलय—सब्जा पुं० [सं०] दल । नवपल्लव । नया पत्ता ।
 किसलै०—सब्जा पुं० [सं० किगलय] दे० 'किसलय' । उ०—कचन गुच्छ
 विचित्र सूच्छ जहँ किसलैलाल लखाही ।—श्यामा० पृ०, ११८ ।
 किसलै०—वि० [सं० कीदृश (कीदृशक), प्रा० किसल] दे० 'कैसा' ।
 उ०—दिन दिन जोवन तन खिसइ, लाभ किसा कउ लेसि ।—
 ढोला दू० १७७ ।

किसान^१—सब्जा पुं० [मं० कृषाण प्रा० किसान] १ कृषि वा खेती
 करनेवाला । खेतिहर । २ गाँव में नाई, वारी आदि जिनके
 घर कमाते हैं उन्हें किसान कहते हैं ।

किसान^२०—सब्जा स्त्री० [सं० कृषाणु] भाग । ज्वाला । उ०—भूति
 के सुनि के वचन, उर मे उठी किसान । उठी सभा मृग सिंह
 ज्यो बुल्लव नहीं जुवान ।—पृ० रासो०, पृ० ११६ ।

किसानी^३—सब्जा स्त्री० [हि० किसान] खेती । कृषि कर्म । किसी
 का काम ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

किसानी^२०—वि० कृषि सबधी । खेती से सर्वंध रखनेवाला ।

किसमी—सब्जा स्त्री० [अ० किस्म] दे० 'किस्म' ।

किसी^१—सर्व०, वि० [हि० किस + ही] हिंदी के प्रश्नार्थक 'क'
 श्रृंखला का वह रूप जो उसे विभक्ति लगने से पहले प्राप्त होता
 है । जैसे, किसी ने, किसी को, किसी पर आदि ।

किसी^२—वि० हिंदी के प्रश्नार्थक 'क' श्रृंखला का वह रूप जो उसे उस
 समय प्राप्त होता है जब उसके विशेष्य में विभक्ति लगाई
 जाती है ।

मुहा०—किसी न किसी = कोई न कोई । कोई एक । एक न एक ।

किसीस०—सब्जा पुं० [सं० कीशेश] हनुमान । वानरेश । उ०—करा
 जोड़ रूप कीस, साम पाय नाम सीस । बाघ चाल महावीर,
 कूदियो किसीस ।—रघु० रू०, पृ० १६५ ।

किसु०—सर्व० [सं० कल्य प्रा० कीस, अप किसी] किसका । उ०—
 नारद कर उपदेश मुनि कहहु वसेउ किस्सु गेह ।—मानस,
 १।७८ ।

किसुन०—सब्जा पुं० [सं० कृष्ण] श्री कृष्ण ।

किसू०—सर्व० [हि० किसी] दे० 'किसी' । उ०—अरे हमना किसू
 के हैं अगर कोई ना हमारा है ।—संत तुरसी०, पृ० ३३ ।

किसेन—सब्जा पुं० [सं० कृषाण हि० किसान] दे० 'किसान' । उ०—
 घण माल ज्युंही अमुराण घड़ा । खित आवतु मेन किसेन
 खड़ा ।—रा० रू०, पृ० ३३ ।

किसोरि०—सब्जा स्त्री० [मं० किशोरी] दे० 'किशोरी' । उ०—
 सुनि निकसी नव लाडिली थी राधा राज किशोरि ।—नद०
 ग्रं०, पृ० ३२३ ।

किसोरो०—सब्जा स्त्री० [सं० किशोरी] दे० 'किशोरी' ।

किस्त—सब्जा स्त्री० [अ० किस्त] १ ऋण या देन चुकाने का वह ढग
 जिसमें सब क्षया एकवारभी न दे दिया जाय, बल्कि उसके
 कई भाग करके प्रत्येक भाग के चुकाने के लिये अलग अलग
 समय निश्चित किया जाय । जैसे—सब रुपए एक साथ न
 दे सको तो किस्त कर दो ।

यो०—किस्तवंदी ।

क्रि० प्र०—करना ।—वांधना ।

२ किसी ऋण या देन का वह भाग जो किसी निश्चित समय पर
 दिया जाय । जैसे—उसके यहाँ एक किस्त लगान बाकी है ।

यो०—किस्तवार ।

क्रि० प्र०—अदा करना ।—चुकाना ।—देना ।

३ किसी ऋण या देन के किसी भाग के चुकाने का निश्चित
 समय । जैसे,—दो किस्ते तीन गई अभी तक रुपया नहीं आया ।

किस्तवदी—सब्जा स्त्री० [अ० किस्त + फा० वदी] थोड़ा थोड़ा करके
 रुपया अदा करने का ढग ।

किस्तवार—क्रि० वि० [फा० किस्तवार] १, किस्त के ढंग से ।
 किस्त किस्त करके । २, हर किस्त पर । जैसे,—वह किस्तवार
 नजराना लेता है ।

किस्ती०—सब्जा [फा० किस्ती] दे० 'किस्ती' । उ०—साहिब
 किस्ती चही, पठाई मुनसी 'कसबी' ।—प्रेमघन, भा० २, पृ०
 ४१५ ।

किस्त०—सब्जा पुं० [सं० कृष्ण] दे० 'कृष्ण' । उ०—किस्त कै करा
 चढा ओहि माये । तब सो छूट भव छूट न नाये ।—जायसी
 ग्रं०, (गुप्त) पृ० १६६ ।

किस्म—सब्जा पुं० [अ० किस्म] १ प्रकार । २, भेद । भाँति ।
 तरह । ३, ढंग । तज । चाल । जैसे,—वह तो एक अजीब
 किस्म का आदमी है ।

किस्मत—सब्जा स्त्री० [अ० किस्मत] १ प्रारब्ध । भाग्य । नसीब ।
 करम । तकदीर । उ०—यह न थी हमारी किस्मत कि विसाले
 यार होता । अगर और जीते रहते यही इंतजार होता ।—
 कविता कौ० । भा० ४, पृ० १६ ।

मुहा०—किस्मत आजमाना = भाग्य की परीक्षा करना । किसी
 क र्य को हाथ में लेकर देखना, कि उसमें सफलता होती है या
 नहीं । उ०—हम कहाँ किस्मत आजमाने जायें । तू ही जब
 खजर आजमा न हुआ ।—गालिव० । किस्मत उलटना =
 भाग्य खराब हो जाना । स्मित खुलना = भाग्य अच्छा होना ।
 किस्मत चमकना = भाग्य प्रबल होना । किस्मत जगना या
 जागना = भाग्य का अनुकूल होना । किस्मत पलटना = भाग्य
 में परिवर्तन होना । प्रारब्ध का अच्छे से बुरा या बुरे से अच्छा
 होना । किस्मत फिरना = दे० 'किस्मन पलटना' । किस्मत
 फूटना = भाग्य का बहुत मद हो जाना । किस्मत लड़ना =

(१) भाग्य की परीक्षा होना । जैसे,—इस समय कई आदमियों की किस्मत लड़ रही है, देखें किसे मिलता है । (२) भाग्य छूटना = प्राग्ध्र अच्छा होना । जैसे,—उनको किस्मत लड़ गई वे इतने उंचे पद पर पहुँच गए । किस्मत का लिखा पूरा होना = भाग्य का फल मिलना ।

यो० - किस्मतवाला = भाग्यवान् । बड़े भाग्यवाला । किस्मत का घनी = जिसका भाग्य प्रबल हो । भाग्यवान् । किस्मत का हठा = जिसका भाग्य मद हो । अभागा । बदकिस्मत । किस्मत का फेर = भाग्य की प्रतिकूलता । किस्मत का लिखा = वह जो भाग्य में लिखा है । करमरेख ।

२ किसी प्रदेश का वह भाग जिसमें कई जिले हों और जो एक कमिश्नर के अधीन हो । कमिश्नरी ।

किस्मतवर = वि० [प्र० किस्मत + फा० वर] भाग्यवान् । उ०—इस दुनिया में आज कौन मुझमें बढ़कर है किस्मतवर ।—ठंडा०, पृ० २५ ।

किस्सा—संज्ञा पुं० [प्र० किस्सह] १ कहानी । कथा । आख्यान । क्रि० प्र०—कहना ।—सुनना ।—सुनाना, इत्यादि ।

यो०—किस्सा कहानी = झूठी कल्पित कथा । २ वृत्तांत । समाचार । हाल । जैसे,—उनका किस्सा बड़ा भारी है ।

नि० प्र०—कहना ।—सुनना ।

मुहा०—किस्सा छोटाह या मुलसर = (क्रि० वि०) थोड़े में संक्षेप । मे । सारास । किस्सा नाघना = अपनी बीती सुनाना । अपने कष्ट का वृत्तांत आरंभ करना । जैसे—अब चलो, वे अपना किस्सा नाघेंगे तो रात हो जायगी । किस्सा बढ़ाना = किसी वृत्तांत का विस्तार से कहना ।

३. काड । झगडा । तकरार ।

मुहा०—किस्सा खड़ा करना = काड खड़ा करना । झगडा खड़ा करना । किस्सा खतम करना, चुकाना, तमान करना या पाक करना = (१) झगडा मिटाना । झगडा दूर करना । (२) किसी वस्तु या विषय को समूल नष्ट करना । किस्सा खतम होना, चुकना, तमान या पाक होना = (१) झगडा मिटना । (२) किसी वस्तु या विषय का समूल नष्ट होना । किस्सा मोल लेना = झगडा खड़ा करना । किस्सा नाघना = झगडा खड़ा करना ।

किस्साकहानी—संज्ञा पुं० [हि० किस्सा + कहानी] कल्पित बात । झूठी या मनगढ़त बात । निरयक चीज ।

किस्सागो—संज्ञा पुं० [फा० किस्सागो] १ कहानी कहनेवाला । २ कहानीकार । कथाकार । उ०—प्रेमचंद पंदायशा किस्सागो थे ।—प्रेम० और गोर्की, पृ० २१७ ।

किस्सागोई—संज्ञा स्त्री० [फा० किस्सागोई] कहानी कहना । उ०—उनकी वणनात्मक प्रवृत्ति में कवकडा स्वभाव में किस्सागोई में परिवर्तन आता गया है ।—प्रेम० और गोर्की, पृ० १६८ ।

किहू^१—सर्व० [सं० कः] कोई । किसी । उ०—दुख खनि बेस सुदृढ़ बरन तजें न किहू तनकत नयन । बीसन नारद रह भय प्रकनि सह न कहू निश दिन ।—पृ० चयन २१०, १४११

किहू^२—संज्ञा पुं० [पा० कहे-कहिं, कही] २० कही । उ०—

ते देखी तिरा पृष्ठियउ, कुण ए राजकुमारि । किहू पीहर किहू सासरउ, विगन-इ कहइ विचारि ।—डोना०, दू० ८६ ।

किहूकल—संज्ञा पुं० [देश०] एक चिडिया ।

किहू^३—क्रि० वि० [हि०] के यश । उ०—वेदे तीरय वरत करावे अनबोले किहू धावें । चलते चलने पांव गिराना रोवत घर क आवें ।—मं० दरिया, पृ० १२४ ।

किहि^१—सर्व० [हि०] दे० 'किसी' । किसे । उ०—कन्ह के वन मोनों करी खाती । हरिदे कहा, गोप किहि वाती ।—नंद० ग्रं०, पृ० १६१ ।

किहि^२—सर्व० वि० [सं० कम् + हि०] किसको किसे । उ०—काहू न करे अवला प्रवल, किहि जग काल न छाये ।—हं रासो, पृ० २८ ।

किहि—सर्व० [हि०] दे० 'किस' । उ०—तुच्छ, मल्प, लव, मूढम, तनु, निपट किशोर वोर । किहि बलि एतो मान सचि, गद्यो है किहि ओर ।—नंद० ग्रं०, पृ० ६७ ।

किहुनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कुहुनी' ।

कींगरी—संज्ञा स्त्री० [हि० किंगरी] दे० 'किंगरी' । उ०—वाजत कींगरी निरवना, सुनि सुनि चित भइ बावरी, रीझे मन मुलतान ।—कवीर शं०, भा० ३, पृ० १६ ।

कीच—संज्ञा पुं० [हि० कीच] दे० 'कीच' । उ०—कुमति कीच चेना भरा गुरु जान जल होय । जनम जनम का मोरचा, पन मे डारै धोय ।—कवीर सा० सं०, भा० १, पृ० १० ।

की^१—प्रत्य० [हि० का] हि० विभक्ति 'का' का स्त्री० । जैसे,—उसकी गाय ।

का^२—क्रि० सं० [सं० कृत, प्रा० किय] हि० 'करना के भूतकालिक रूप 'किया' का स्त्री० । जैसे,—उसने बड़ी सहायता की ।

की^३—प्रत्य० [हि० 'कि' का विकृत रूप] १ कथा । उ०—अपयश योग की जानकी, मणि चारो की कान्हि ।—तुलसी (शब्द०) २ या । या तो । उ०—को मुख पट दीन्ह रई, की यवायं माखत ।—तुलसी (शब्द०) ।

की^४—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १. वह पुस्तक जिसमें किसी ग्रंथ या पुस्तक के कतिन शब्दों के अर्थ या उनकी व्याख्या की गई हो । कुंजी २. चाबी । ताली ।

कीरु—संज्ञा पुं० [प्रनु०] चीत्कार । चीख । चिल्लाहट । शोरगुल । क्रि० प्र०—देना ।—मारना । उ०—तर्द काक बिपुन शृंगान गीध बलाक ग्रामिण भवत है । योगिनि जमाति छरात काके देत पल अनित्यत है ।—रघुराज (शब्द०) ।

कीकट—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कीकटी] १ मगध देश का प्राचीन वैदिक नाम ।

विशेष—तंत्र के अनुगार चर्याद्रि (चुनार) से नकर गुरुकुल (गिहोर) तक कीकट देश है । मगध उसी के अंतर्गत है ।

२. [स्त्री० कीकटी] घोड़ा । ३. प्राचीन काल की एक मनार्थ जाति जो कीकट देश में बसती थी ।

कीकट^२—वि० [वि० स्त्री० कीकटी] १ निर्धन । गरीब । २ लोथी । रूपय । कपूत ।

होता है। इसका रंग खाकी होता है और यह नाव के मस्तूल वनाले के काम में अधिक आता है।

किलोहडा (७) — सञ्ज्ञा पुं० [हिं० छोटी उम्र के बाल]। उ०—काई जीम किलोहडा खध न भाल भार ।—बाकी० पं०, भा० १, पृ० ४१।

किलोमी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० किलमी] दे० 'किलमी'।

किल्की, किल्वी—सञ्ज्ञा पुं० [किल्किन्, किल्विन्] घोड़ा [को०]।

किल्विख (७) — सञ्ज्ञा पुं० [सं० किल्विष] दे० 'किल्विष'। उ०—ऐन वृजिन दुकृत दुरित भय मनीन मति पक्ष । किल्विष कलमख कलुष पुनि कर्मल ममल कलक ।—प्रनेकार्य, पृ० १५।

किल्विष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ पाप । २ अपराध । ३. वीमारी । ४ विपत्ति । ५ धूर्तता । ठगी । ३. शत्रुता । बर [को०]।

किल्विषी—वि० [किल्विषिन्] पापी । पातकी [को०]।

किल्लत—सञ्ज्ञा स्त्री० [पं० किल्लत] १ कमी । न्यूनता । २ सकोच । तंगी । ३ दुर्लभ होना । दुर्लभता ।

किल्ला—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० किल्ला] बहुत बड़ी कील या मेख । खूँटा । २ लकड़ी की बूँद मेख जो जाँते के बीचोबीच गड़ी रहती है और जिसके चारों घोर जाता घूमता रहता है । कील ।

मुहा०—किल्ला गाड़कर घैठना = घटल होकर बैठना ।

किल्ला—सञ्ज्ञा पुं० [पं० किल्ला] दे० 'किला'।

किल्ली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० कील] १ कील । दूँटी । मेख । उ०—मयो पुँवर मतिहीन करिय किल्ली तै डिल्लिय ।—चद (शब्द०) । २ मिटकिली । पिल्ली । २ किसी कल या पेंच की मुठिया जिसे घुमाने से वह चले ।

क्रि० प्र०—ऐठना ।—घुमाना ।—दबाना ।

मुहा०—किसी की किल्ली किसी के हाथ में होना = किसी का वश किसी पर होना । किसी की चाल किसी के हाथ में होना । जैसे—वह हम में भागकर किल्ली जायगा, उसकी किल्ली तो हमारे हाथ में है । किल्ली घुमाना या ऐठना = बात या पेंच चलाना । युक्ति लगाना । जैसे,—उसने न जाने कौसी किल्ली ऐँठ दी है वहाँ कोई हमारी बात नहीं सुनता ।

किल्विष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ पाप । अपराध । दोष । २ रोग । व्याधि ।

किलहोरा—सञ्ज्ञा पुं० [देग०] १ बछड़ा । २. किशोर अवस्था का बालक । उ०—पतना छरहरा क्या ही खूबसूरत किलहोर था ?—रति०, पृ० १३८ ।

किव (७) —अव्य० [अप० किवे] कैसे । उ०—आज उमाहुव मो घणउ, ना जाणु किब केण । पुत्त परायउ वीर वड, अहुइ फुरवकइ केण ।—बोला०, दू० ५१८ ।

किवरिया (७) —सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कपाटिका] छोटा किवाड़ । किवाड़ी । उ०—(क) खूनी किवरिया मिटि अघियरिया ।—घरम०, पृ० ५३ । (ख) घाठ मरातिव दस दवाजा. नों में लगी किवरिया ।—कवीर रा०, भा० १, पृ० ५५ ।

किवाँच—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० केवाँच] दे० 'केवाँच' ।

किवाट—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कपाट] दरवाजा । कपाट । किवाड । उ०—उठिठी कुँवर प्रियराज लपि, गयो महल निज मद्धि । दे किवाट मिनि घाट जूव, मच्यो कलह सम मद्धि ।—पृ० रा०, ५, ४४ ।

किवाड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कपाट, प्रा० कवाड] [स्त्री० किवाडी] लकड़ी का पल्ला जो द्वार बंद करने के लिये द्वार की चौखट में जड़ा जाता है । (एक द्वार में प्रायः दो पल्ले लगाए जाते हैं) । पट । कपाट । उ०—(क) गोट गोट सखि सद गेति बहराय । बत्रर किवाड पहुँ दे न्हि लभाय ।—विद्यापति, पृ० २७६ । (घ) भूत गए रस गीति अनीति किवाड न खोले ।—कविता को०, भा० २, पृ० १०० ।

क्रि० प्र०—उड़काना ।—खोलना ।—घपकाना ।—बंद करना ।

मुहा०—किवाड देना लगाना या निडाना = किवाड बंद करना ।

किवाड खटखटाना = किवाड खोलवाने के लिये उसकी कुडी हिलाना या उसपर आघात करना ।

किवाडी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० डिवाड़ + ई (प्रत्य०)] दे० 'किवाड' ।

उ०—दिन बड़ी कठिनाई के साथ बीतने लगे, भूख बुगी होती है, जब कोई न्योत न रहा, तो घर की कच्ची और किवाडी तक बेंच दी गई पर ऐसे कितने दिन चल सकता है ।—ठठ०, पृ० ४३ ।

किवार (७) —सञ्ज्ञा पुं० [सं० कपाट, प्रा० कवाड़, हिं० किवाड़] दे० 'किवाड' । उ०—ज्यों में खोले किवार सो ही आदि न लवड़ि गो गरै ।—वनानंद, पृ० ३६६ ।

किवारी (७) —सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० किवाडी] दे० 'किवाड' । उ०—नाम पान में कहीं विचारी । जातें छूटै भर्म किवारी ।—कवीर सा०, पृ० ६६५ ।

किशदा—सञ्ज्ञा पुं० [फा० किस्ता] एक प्रकार का छोटा शफनाबू । विशेष—इसका मुखवा पडता है और इसकी गुठलियों से चाँदी साफ की जाती है ।

किशनतालू—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृष्णतालु] वह हाथी जिमका तालू काना हो ।

विशेष—ऐसा हाथी अच्छा समझा जाता है ।

किशमिश—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] [वि० किशमिशी] सुखाया हुआ छोटा लंबा वेदाना अगूर । सुखाई हुई छोटी दाख । वि० दे० 'अगूर' ।

किशमिशी—वि० [फा०] १ किशमिश का । जिसमें किशमिश हो । २ किशमिश के रंग का ।

किशमिशी—सञ्ज्ञा पुं० एक प्रकार का अमोघा रंग ।

विशेष—यह किशमिश के ऐसा होता है और इस प्रकार बना है—पहले कपड़े को घोंवर उसे हड़ के पानी में डुबाते हैं फिर गेरू देकर हल्दी और उसके उपरांत तुत या अनार की छान में रंगकर सुखा लेते हैं । दूसरी रीति यह है कि कपड़े की ई गुर में रंगकर सुखाते हैं और कटहल की छान, कुसुम हर मिंगार और तुत के फूलों के अर्क में उसे रंगते हैं ।

किशल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'किशल्य' (को०)

किशल्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नया निकला पत्ता । कोमल पत्ता । कलना ।

उ०—नूतन किशल्य मनहुँ कृशानू ।—नुलसी (शब्द०) ।

किशोर—वि० [सं०] [वि० स्त्री० किशोरी] ११ वर्ष से १५ वर्ष तक की अवस्था का ।

स्त्री०—किशोरी । स्या ।

किशोर^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ ११ से १५ वर्ष तक की अवस्था का बालक ।

यी०—युगलकिशोर ।

२ पुत्र । वेडा । जैसे—नरकिशोर । ६—घोड़े का बछेडा । ४. सिंह प्रादि का बच्चा जो जवान न हो । जैसे, केसरीकिशोर, सिंहकिशोर । ५ सूर्य [को०] ।

किशोरक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ छोटा बालक । २ किसी जीव का बच्चा । उ०—शशिहि चकोर किशोरक जैसे ।—तुलसी (शब्द०) ।

किशोरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] किसी जानवर की मादा सतान । जैसे, बछेड़ी । २. युवती । तरुणी । ३ पुत्री । जैसे, जनककिशोरी वपमानुकिशोरी ।

किस्त—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] १ शतरंज के खेल में बादशाह का किसी मोहरे की घात में पड़ना । इसे 'शह' भी कहते हैं ।

कि० प्र०—देना ।—लगना

२ खेती । कृषि ।

यी०—किस्तकार = किसान । कास्तकार । किस्तकारी = खेती का काम । किसानी । किस्तजार = वह भूभाग जहाँ चारों ओर हरे नरे खेत हों ।

किस्तवार—सञ्ज्ञा पुं० [फा० किस्त = खेत + वार (प्रत्य०)] पटवारियों का एक कागज जिसमें खेतों का नक्का, रकबा आदि दर्ज रहता है ।

किस्तिया^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० किस्ती] दे० 'किस्ती' । उ०—फूहे दिये गुन धेवो किस्तिया होय पार ।—सं० दरिया, पृ० ११ ।

किस्तिया^२—वि० [फा० किस्ती + हि० इया (प्रत्य०)] किस्ती के अकार की । जैसे किस्तिया टोपी ।

किस्ती—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] १ नाव ।

यी०—किस्तीनुमा = नाव के आकार का ।

२ एक प्रकार की छिछली या तो या लरी तश्तरी जिसमें रखकर किसी को कुछ भोगाने देने हैं । ३ शतरंज का एक मोहरा जिसे हाथी भी कहते हैं ।

किस्तीनुमा—वि० [फा०] नाव के आकार का । जिसके दोनों किनारे टेढ़े वा घ वाकार होकर दोनों छोरों पर कोना ढागते हुए मिलें । जैसे—किस्तीनुमा टोपी ।

किष्किध—सञ्ज्ञा पुं० [सं० किष्किध] १. मंसूर के मासपास के देश का प्राचीन नाम ।

विशेष—राम के समय में यह देश बिलकुल जंगल था और यहाँ का राजा बा ।

२ एक पर्वत जो किष्किध देश में है ।

किष्किधा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० किष्किध] १. किष्किध पर्वतश्रेणी ।

२ किष्किध पर्वत की गुफा । ३ रामायण का एक कांड जिसमें किष्किधा स्वर्गीय राम का चरित्र वर्णित है ।

किष्किध—सञ्ज्ञा पुं० [सं० किष्किध] दे० 'किष्किध' [को०] ।

किष्किध्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० किष्किध्या] दे० 'किष्किधा' [को०] ।

२-५६

किष्कु^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ २४ या ४२ अंगुल का परिमाण । २ वित्त । बालिशता । बिलाद । ३ लवाई नापने का एक पैमाना [को०] ।

किष्कु^२—वि० १ घृण । नर्हणीय । २ बुरा [को०] ।

किष्कुपर्वी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० किष्कुपर्वन्] १ ईख । गन्ना । २. नरकट । ३ वीम [को०] ।

किष्ण^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृष्ण] दे० 'कृष्ण' । उ०—किष्ण विरह गोपिका भई व्याकुल सु विकल मन ।—पृ० रा०, २।३६८ ।

किस^१—सर्व० [सं० कस्य] 'कौन' का वह रूप जो उसे विभक्ति लगने के पहले प्राप्त होता है । जैसे—किसने, किसको, किसमें इत्यादि ।

किस^२—वि० 'कौन' का वह रूप जो उसे उस समय प्राप्त होता है जब उसके विशेष्य में विभक्ति नगई जाती है । जैसे, किस व्यक्ति को, किस वस्तु में ।

विशेष—इस शब्द के अंत में जब निश्चयार्थक 'हो' लगता है, तब उसका रूप 'किमी' हो जाता है ।

किसत^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० किस्त] दे० 'किस्त' । उ०—चार किस्त कीधी चल दिक्खण हदै राह ।—रा० ल०, पृ० ३५० ।

किसती^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० किस्ती] दे० 'किस्ती' ।

किसन^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृष्ण] दे० 'कृष्ण' । उ०—राम किमन किन्ती सरस कहुन लगे बहु बार । छुछुआव कवि चंद की सिर चहुवाना भार ।—पृ० रा०, २।५८५ ।

यी०—किसन दीपायन = कृष्ण दीपायन अर्थात् व्यास । उ०—बालमीक रिपराज किमन दीपायन धारिय ।—पृ० रा०, २।५८६ ।

किसनई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० किसान + ई] (प्रत्य०) किसान का काम । किसानी । खेती ।

किसना^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कृष्णा] कृष्णा नाम की दक्षिण की एक नदी । उ०—गीगा धुनी पयस्वनी गोदावरी गह्वीर । ऊँत मद्रा पूरणा किमना निरमल नीर ।—वांकी प्र०, भा० ३, पृ० ७३ ।

किना^१—वि० स्त्री [सं० कृष्णा] कासी । श्रेष्ठी । उ०—उर नभ जितै न ऊगमै, औ सतोप अदीन नर तिसना किमना निसा, भिदे इतै नैह मोत ।—वांकी प्र०, भा० ३, पृ० ५४ ।

किसनू^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृष्ण] कृष्ण । वामुदेव ।

किसव^१—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कस्य] १ रोजगार । व्यवसाय । २ कारीगर । कला कौशल । उ०—चाकरी न याकरी न खेती न वनिज भोख जानत न कूर कछु किसव कागह है ।—तुलसी (शब्द०) ।

किसवन—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० किमवत] १ एक थैली जिसमें नाई और जरहि अपने उस्तरे, कंबी आदि औजार रखते हैं । २. पोशाक । उ०—रूपा और सोना तूँ एक बार देखत । अकड़ता है क्यों पहन जर तार किमवत ।—दक्खिनी, पृ० २५५ ।

किमम^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० कस्य] दे० 'किमम' ।

किमम^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० किमम] दे० 'किमम' ।

यी०—किमम किमम का = भाँति भाँति का । अनेक प्रकार का ।

किममत—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० किममत] दे० 'किममत' ।

आनंद प्रकट करना किन्कार मारना। हर्षध्वनि करना।
उ०—(क) तुलसी निहारि कपि भालु किलकत ललकत लखि ज्यों
कंगाल पातरी सुनाज की।—तुलसी (शब्द०)। (ख) गहि
पलका की पाटी डोलै। किलकि किलकि दसननि दुनि खोलै।—
लाल (शब्द०)। (ग) प्रत ग्रसि दुलकाकर भी खिली पखु-
डियाँ पकज किलके।—हिम त०, पृ० ३६।

किलकाना—क्रि० अ० [अ०फलक, हि० किलक] व्याकुल होना।
दुखी होना। उ०—विछुरि परी सहचरिन संग तें डोलत वन
किलकाइ रे।—घनानंद, पृ० ५३७।

किलकार—सद्वा श्री० [हि० किलक] वह गभीर और अस्पष्ट स्वर
जिसे लोग आनंद और उत्साह के समय मुँह से निकालते हैं।
हर्षध्वनि। उ०—कलरव करते किलकार रार ये मोन मूक
तृण तरुदल पर। तकते अपलक निश्चल सोए उड़ उड़ पञ्च-
द्वियो पर सुंदर।—युग०, पृ० ६०।

किलकारना—क्रि० अ० [अनु०] किलकार भरना। चिड़ियों का
प्रसन्नतापूर्वक बोलना। चहचहाना। उ०—खग कुल किलकार
रहे थे, कलहस कर रहे कलरव।—कामाग्निनी, पृ० २८५।

किलकारी—सद्वा श्री० [हि० किलकना] वह गभीर और अस्पष्ट
स्वर जिसे लोग आनंद के समय मुँह से निकालते हैं।
हर्षध्वनि।

क्रि० प्र०—वेना।—मारना। उ०—चले हनुमान मारि किन्-
कारी।—तुलसी (शब्द०)।

किलकिचित्त—सद्वा पु० [सं० किलकिञ्चित्] सयोग शृंगार के ११
हावों में से एक, जिसमें नायिका एक ही साय कई एक भावों
को प्रगट करती है। जैसे,—(क) सी करति ओठन वसी-
करति आखिन रिसोही सी हँसी करति ओहनि हँसी करति।
—देव (शब्द०)। (ख) कहति, नटति, लिभति,
मिलति, खिनति-लजि जात। भरे भौन मे करत हैं नैनन ही
सो बात।—विहारी (शब्द०)।

किलकिल^१—सद्वा श्री० [अनु०] झगड़ा। लड़ाई। वादविवाद।
किटकिट। जैसे,—रोज की किलकिल मच्छी नहीं।

यौ०—दाँता किलकिल।

किलकिल^२—सद्वा पु० [सं०] १ आनंद या हर्षसूचक ध्वनि। किल-
कारी। २ शिव [को०]।

किलकिला^१—सद्वा श्री० [सं०] हर्षध्वनि। आनंदसूचक शब्द।
किलकारी। उ०—लाधि सिंधु एहि पारहि आवा। शब्द
किलकिला कपिन सुनावा।—तुलसी (शब्द०)।

किलकिला^२—सद्वा श्री० [सं० कूलक] मछली खानेवाली एक छोटी
चिड़िया। उ०—मेरे कान सुजान तुव नैन किलकिला आइ।
हृदय सिंधु ते मोन मन, तुरत पकरि लै जाइ।—रसनिधि
(शब्द०)।

विशेष—जिस पानी में मछलियाँ होती हैं, उस पानी के ऊपर
लगभग १० हाथ की ऊँचाई पर उड़ती रहती है। मछली
को देख कर अचानक उसपर टूटती है और उसे पकड़कर उड़
जाती है।

किलकिला^३—सद्वा पु० [अनुध्व०] समुद्र का वह भाग जहाँ की
लहरें मयकर शब्द करती हो। उ०—तुनि किलकिला
समुद्र में द्यौं। गा धीरज देखन डर चाई।—त्रायसी
(शब्द०)।

किन्किना^४—क्रि० अ० धूँधराया। कुनित। उ०—वरस
बाबीस की गान्धी, वस दन कबाडचा, सिर किलकिला केस—
वी० रामो, पृ० १।

किलकिलाना—क्रि० अ० [हि० किलकिला] १. पानंदसूचक
शब्द करना। हर्षध्वनि करना। उ०—चली चमूचुँ घोर फोक
कठु वने न वरनत भीर। किलकिलात कसममन कानाहल
होत नोगनिगि तीर।—तुलसी (शब्द०)। २. अस्पष्ट शब्दों में
विल्लाना। हल्लागुल्ला करना। ३. वादविवाद करना।
झगड़ा करना।

किलकिलाहट—सद्वा श्री० [हि० किलकिलाना] किलकिलाने का शब्द।
किलकिलित—सद्वा पु० [सं०] आनंद, हर्ष यादि का व्यञ्जन शब्द [को०]।

किलकी—सद्वा श्री० [फा० किलक=नरकट या कलम] बड़इयो का
एक प्रोजार, जिससे वे नाप के अनुसार काठ पर निशान
करते हैं।

किलकैया^१—सद्वा पु० [देश०] नहरण के ढग का एक प्रकार
का रोग, जिसमें घोरायो के पुरों में कीड़े पड़ जाते हैं।

किलकैया^२—सद्वा पु० [हि० किलकना] किलकनेवाला।

किलक्क^(३)—सद्वा श्री० [हि० किलक] १० 'किलक'। उ०—घडक
उर कातर सोर धुँवें। मच हक्क किन्क्क अनेक मुँवें।—
रा० रू०, पृ० ३४।

किलचिया—सद्वा पु० [देश०] एक प्रकार का बहुत छोटा बगला जो
सारे भारत में पाया जाता है।

किनटा—सद्वा पु० [देश०] बेंत का टोकरा।

विशेष—यह इस युक्ति से बना रहता है कि इसमें रखी हुई वस्तु
का भार ढोनेवाले के कंधों ही पर पड़ता है। इसे पहड़ी लोग
लेकर उँचाई पर चढ़ते हैं।

किलना^१—क्रि० अ० [सं० कीलन] कीलन होना। कीला जाना।
३ वश में किया जाना। गति में अवरोध होना। जैसे,—शत्रु की
जीम किल गई।

किलना^२—सद्वा पु० [हि० किलनी फा पु०] १ बड़ी किलनी। २
नर किलनी।

किलनी—सद्वा श्री० [सं० कोट, हि० कोडा + नी (प्रत्य०)] एक प्रकार का
छोटा कीड़ा जो गाय, बैल, कुत्ते, बिल्ली आदि पशुओं के शरीर
में चिपटा रहता है और उनका रक्त पीता है। किल्ली।

किलविलाना—क्रि० अ० [अनुध्व० अथवा हि० कुलबुलाना] ३०
'कुलबुलाना'।

किलविप^(३)—सद्वा पु० [सं० किल्विष] २० 'किल्विष'। उ०—
काया यह तो अहे खाक की, किलविप अहे समोई। उ०—जग०
बानी० पृ० ३३।

किलम^(३)—सद्वा पु० [देश०] यवन। उ०—किलम गयद चढियों
हिलकारै। अठी जगड भड धीर उचारे।—रा० रू०
पृ० २२६।

किलमी—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] १. जहाज का पिछला खड, २ पिछले खड के मस्तूल का वादवान ।

किलमोरा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की दारूहल्दी, जिसकी भाडियाँ हिमालय पर कोसों फीनी हुई मिलती हैं । दे० 'दारूहल्दी' ।

किलवाँक—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] काबुल देश का एक प्रकार का घोडा । उ०—काबिल के किलवाँक कच्छ दच्छी दरियाई । उम्मत के हवसान जगली जाति अलाई । सूदन (शब्द०) ।

किलवाँ—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] बड़ा फाववडा या बड़ी कुदाल । (रहेलखड) ।

किलवाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक बड़ा पाँचा या लकड़ी की फर्द जिससे सूखी घास या पयाल इकट्ठा करते हैं ।

किलवाना—क्रि० सं० [हिं० किलना का प्रे० रूप] १ कील ठोकवाना । कील लगवाना या जड़वाना । २ तत्र या मंत्र द्वारा किसी भूत प्रेत के विघ्नकारी कृत्य को रोकवा देना । जादू या टोना करा देना ।

किलवारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कर्ण] पतवार । कन्ना । वह डाँडा जिससे छोटी छोटी नावों में पतवार का काम लेते हैं ।

किलविष(पुं०)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० किल्विष] दे० 'किल्विष' । उ०—दुख विनाशन अथहरन किलविष काटण हारु । सतोप सरोवर पवतं वपे अत्रित धार ।—प्राण० पृ० २६८ ।

किलविपी(पुं०)—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० किल्विष] पत्नी । अपराधी । उ०—मन मलीन कलि किलविपी होत मुनत जासु कृत काज । सो तुलसी कियो आपुनो रघुबीर गरीब निवाज । तुलसी (शब्द०) ।

किलहँटा—सञ्ज्ञा पुं० [पा० गिलाट या हिं० फलह ? या मनु०] [स्त्री० किलहँटी] एक प्रकार की चिड़िया जो आपस में बहुत लड़ती है । सिरोही ।

किलहटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० किलहँटा] दे० 'किलहँटा' ।

किला—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० किलास] १ लड़ाई के समय वचाव का एक सुदृढ़ स्थान । दुर्ग । गढ़ ।

क्रि० प्र०—टूटना ।—तोड़ना ।—बाँधना ।—ले लेना ।

यो०—किलेवार=दुर्गपति । गढ़पति । किलेदारी=दुर्ग की अध्यक्षता । किलावरी=किला बाँधने का काम ।

मुहा०—किला फतेह करना=महा कठिन काम कर लेना । अत्यंत विकट कार्य करने में सफलता प्राप्त करना । फि टूटना=किसी बड़ी भारी कठिनता या अडचन का दूर होना । किसी दुसाध्य कार्य का पूरा होना ।

२ विशाल और सुदृढ़ पक्का मकान ३ शतरंज के खेल में वह सुरक्षित स्थान जहाँ बादशाह शह से बचा रहता है ।

मुहा०—किला बाँधना=शतरंज के खेल में बादशाह को किसी घर में सुरक्षित रखना, जिससे प्रतिपक्षी जल्दी मात न कर सके ।

किलाट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] खटाई डालकर फाड़ा हुआ दूध । छेना ।

किलाटी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० किलाटिन्] वाँस । कीचक [को०] ।

किलात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बोना ।

किलाना—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'किलवाना' ।

किलावदी—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० किला+फा० वदी] १ दुर्गनिर्माण ।

१ व्यूहरचना । सेना की श्रेणियों को विशेष नियमानुसार खड़ा करना । ३ शतरंज में बादशाह को सुरक्षित घर में रखना ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

किलाया—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] हाथी की गरदन पर पर पड़ी हुई रस्मी, जिसपर महावत पाँव रखता है । किलावा । उ०—कूजर किलाए आह करि तन तमकि तरवारन लिख्यो ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १७७ ।

किलाव(पुं०)—सञ्ज्ञा पुं० [फा० कुलावा] कोढ़ा या वधन । वि० दे० 'कुलावा' । उ०—कंचन किलाव लगाय कल पट्टी बधिय चंद भट । तिहि बेर बन्ह चद्रग्रान चप रूप प्रगटि अति पिनि-वट ।—पृ० रा० ५ । ५७ ।

किलावा^१—सञ्ज्ञा पुं० [?] सोनारो का एक औजार ।

किलावा^२—सञ्ज्ञा पुं० [फा० कलावा] हाथी के गले में पड़ा हुआ रसा या वंघन जिसमें पीर फँसाकर महावत हाथी को चलने आदि का इशारा करते हैं ।

किलास^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुष्ठ रोग । चर्मरोग [को०] ।

किलास^२—वि० कुष्ठी । कुष्ठ रोग से ग्रस्त [को०] ।

किलासा—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० कलास] दे० 'कलास' ।

किलासी—वि० [सं० किलासिन्] कुष्ठ । किलान रागवाला [को०] ।

किलिच—सञ्ज्ञा पुं० [सं० किलिञ्च] १ हरी लकड़ी या पतला तख्ता । २ चटाई [को०] ।

किलिज, किलिजक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० किलिञ्ज, किलिञ्जक] दे० 'किलिच' । [को०] ।

किलिक—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] एक प्रकार का नरकट, जिसकी कलम बनती है ।

किलिन—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० कील] जहाज के पीछे का वह स्थान जहाँ बाहरी तख्ते मुड़कर मिलते हैं । जहाज के पेंडे का वह छोर जो पिछाडी की ओर होता है । केदास की मोड़ ।

किलिम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] देवदण्ड वृक्ष [को०] ।

किलेस(पुं०)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० क्लेश] दे० 'क्लेश' । उ०—माम छ सात रहे उस देस । थोरा सोदा बहुत किलेस ।—अर्थ०, पृ० ४२ ।

किलोमीटर—सञ्ज्ञा पुं० [प्र०] दूरी की एक अंतर्राष्ट्रीय माप, जो मील के प्रायः पच प्रष्टमाश के बराबर होता है ।

किलोर(पुं०)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कल्लोल] खेल । धानद । उछल कूद । उ०—मैं गुण तीन पाँच तत्व मैं ही में दण दिशि चहुँ ओर मैं निरूप घरे नाना विधि निशि दिन करत किलोर ।—कवीर सा०, पृ० ३८८ ।

किलोल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कल्लोल] दे० 'कल्लोल' 'कलोल' ।

किलोवा—सञ्ज्ञा पुं० [बरमी] एक प्रकार का लवा वाँस ।

विशेष—यह बरमा में पेगू और मन्ग्रान के जंगलों में होता है । इसकी लंबाई ६० से १२० फुट तथा घेरा ५ से ८ इंच तक

किरानो—सञ्ज्ञा पु० [हि० किराना + ई (प्रत्य०)] १ अग्रजो दफ्तर का बलार्क या लिपिक । २. युरेशियन ।

किराया—सञ्ज्ञा पु० [अ० किरा, फा० किरायह] वह दाम जो दूसरे की कोई वस्तु काम में लाने के बदले उस वस्तु के मालिक को दिया जाय । भाडा ।

कि० प्र०—उतारना । उतारना ।—करना ।—चढ़ना ।—चुनना ।—देना ।—लेना ।

यो०—किरायादार = किराये पर लेने वाले व्यक्ति ।

मुहा०—किराया उतारना = किराया वसूल होना । किराया उतारना = भाडा वसूल करना । किराए करना = भाडे पर लेना । जैसे—एक गाड़ी किराए कर लो । किराए पर देना = अपनी वस्तु को दूसरे के व्यवहार के लिये कुछ धन के बदले में देना । किराए पर लेना = दूसरे की वस्तु का कुछ दाम देकर व्यवहार करना ।

किरायेदार—सञ्ज्ञा पु० [फा० किरायहदार] वह जो किसी की कोई वस्तु भाडे पर ले । कुछ दाम देकर किसी दूसरे की वस्तु कुछ काल तक काम में लानेवाला ।

किरार—सञ्ज्ञा पु० [देश०] एक नीच जाति ।

किरार^३—सञ्ज्ञा पु० [प्रा० किराड] किनारा । तट । करार ।

किरावा—सञ्ज्ञा पु० [हि० केराव] दे० 'केराव' ।

किरावल—सञ्ज्ञा पु० [तु० करावल] १ वह सेना जो लड़ाई का मैदान ठीक करने के लिये भेजा जाय । २. बंदूक से शिकार करनेवाला आदमी ।

किरासन—सञ्ज्ञा पु० [अ० केरोसिन] करोसिन तेल । मिट्टी का तेल ।

किरि—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ सुघर । बाराह । २ वादल [को०] ।

किरिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] स्थायी या मसि रखने का पात्र । मसि-पात्र । दावत [को०] ।

किरिच—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कृति अथवा प्रा० किलिच = छकड़ी का छोटा टुकड़ा] कड़ी वस्तु का छोटा नुकीला टुकड़ा । दे० 'किरच' । उ०—चूरत महागिरि शिखर परि विद्युत किरिच रचक अली ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ११२ ।

यो०—किरिच का गोला = एक प्रकार का जहाजी गोला जिसके भीतर लोहे के टुकड़े, कीलें या छरें भरे रहते हैं । यह गोला शत्रु के जहाज का पाल फाड़ डालने या रस्सियों और मस्तूल को काट कर गिरा देने की इच्छा से फेंका जाता है ।

किरिट—सञ्ज्ञा पु० [सं०] दलदली खजूर का फल [को०] ।

किरिनि^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० किरण, हि० किरन] १० 'किरण' । उ०—जानहु सुबज किरिनि हुति काढ़ी । सुबज करा घाटि वह बाढ़ी ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १५३ ।

किरिनि^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० किरण, हि० किरन, ५^५ किरिनि] दे० 'किरण' । उ०—सुबज किरिनि जस गगन विसेखी । जमुना माँझ सुरसुती देखी ।—जायसी ग्र० (गुप्त०), पृ० १५६ ।

किरिपा^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कृपा] दे० 'कृपा' । उ०—कृ

सुदिवस्ति श्री किरिपा हिंछा पूज मोरि ।—जायसी ग्र० (गुप्त) पृ० २३२ ।

किरिम^५—सञ्ज्ञा पु० [सं० कृमि] दे० 'कृमि' ।

यो०—किरिमकुड ।

किरिमदाना—सञ्ज्ञा पु० [सं० कृमि + हि० दाना] किरमिज नामक कीडा । किरमिजी ।

विशेष—ये एक प्रकार के छोटे छोटे कीड़े होते हैं जो यूहड के पेड़ों पर फँसते हैं । ये इतने छोटे होते हैं कि लगभग ७० हजार कीड़े तोल में ग्राह सेर होते हैं । माथा कीड़े को इकट्ठा कर सड़ा लेते हैं और उन्हें पीस कर रंगने के काम में लाते हैं । इसी युक्तियों को किरमिजी या हिरमिजी कहते हैं । इसका रंग हलका और मटमिला लाल होता है ।

किरिया^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० क्रिया] १ शपथ । सौगंध । कसम । उ०—माँझी । काली किरिया, किनी से कहना मत ।—मैना०, पृ० ६६ ।

कि० प्र०—पाना ।—देना ।—विलाना ।—घराना ।—रपना ।

यो०—किरिया कसम = शपथ । सौगंध ।

२ कर्तव्य । काम । ३. मृत व्यक्ति के हेतु आद्यादि कर्म । मृतकर्म ।

यो०—किरियाकरम = (१) क्रिया कर्म । मृतकर्म । (२) दुर्दशा ।

किरिरना—कि० प्र० [हि० या० अनुध्व] दे० 'किचकिना' ।

किरिरा—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कीड़ा] दे० 'कीड़ा' । उ०—किरिरा काम केलि मनुहारी । किरिरा जेहि नहि सो न सुनारी ।—जायसी ग्र० पृ० ३३४ ।

किरिसना—कि० प्र० [सं० कृश से नामिक घातु] कृश या दुबला होना ।

किरिसित—वि० कृश] कृश या दुर्बल ।

किरिस्तान—सञ्ज्ञा पु० [अ० क्रिश्चियन] १ ईसाई । २ विघर्ष । उ०—माघे पुराने पुरानहि माने, माघे भये किरिस्तान हो दुइ-रंगी ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ५०० ।

किरिसी^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कृषि] । दे० 'कृषि' । उ०—वेदे होम जय एह भाखे और कि किरिसी घर वारा ।—स० दरिया, पृ० १२४

किरीट—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ एक प्रकार का शिरोभूषण । मुकुट । विशेष—यह माथे में बाँधा जाता था और इसका व्यवहार प्राचीन राजा पगड़ी के स्थान पर करते थे । इसके ऊपर मुकुट भी कभी कभी पहनते थे ।

यो०—किरीटधारी = राजा । किरीटमाली = प्रभु ।

२ एक वर्णवृत्त वा सर्वथा जिसमें न भगण होते हैं । जैसे,—भा वसुधा तल पाप महा नव धाय धरा दह देव समा अहं । भारत नाद पुकार करी सुनि बाणि मई नभ धीर धरो तहं । लं नर देह हवीं खल पु जन थापहुं गो नय पाय मही महं । यो कहि चारि भुजा हरि गाय किरीट धरे जनमे प्रहमी महं ।

किरीटित—वि० [सं०] किरीट नामक शिरोभूषण से सज्जित । उ०—जन्मभूमि, प्रिय मातृभूमि की शीर्षरत्न, शत स्वागत । हिम

किरीटी

चौरव किरीटित जिसका शारद मस्तक उन्नत ।—प्रतिमा, पृ० १३५ ।

किरीटी^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० किरीटिन्] १. इद्र । २. अर्जुन । ३. राजा ।

किरीटी^२—वि० कोई किरीटधारी । जो किरीट पहने हो ।

किरीटी^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० क्रीडा, हि०] दे० 'क्रीडा' उ०—हैमहि हंस घोर क्राहि किरीटी । चुगहि रतन मुकुताहल हीरा ।—जायसी (शब्द०) ।

करोड़—वि० [हि० करोड़] 'करोड़' । उ०—दिल्ली से इतारम के पने तक किरोड़ों आदमी हिंदी दोलनेवाले ह ।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ६ ।

करोड़^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० क्रीष + हि० कुरेष्, कुरोष्] दे० 'क्रीष' । उ०—तुम बारी पित कुटुं जग राजा । गरव किरोघ ओहि पं छाडा ।—जायसी (शब्द०) ।

करोड़^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि० किरोड] दे० 'करोड़' ।

किरोलना—क्रि० सं० [अनु०] करोदना । खुरचना ।

किरोना^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कीरा + मीना (प्रत्य०)] कंड़ा ।

किर्व^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० किरव] दे० 'किरव' ।

किर्वकिर्व^१—वि० [नं० कृतकृत्य] दे० 'कृतकृत्य' । उ०—चहुं जुग किर्वकिर्व कियो तुम जेहि सुकर सिर थापे हो । मीखांग०, पृ० ३२ ।

किर्वनिया—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कीर्वन + इया (प्रत्य०)] कीर्वन करने-वाला आदमी । भगवान का गुणानुवाद करनेवाला भक्त । २. प्रशंसक व्यक्ति । यग गा नेवाला पुरुष ।

किर्वम^१—वि० [सं० कृत्रिम, प्रा० कित्तिम] दे० 'कृत्रिम' । उ०—चोहहु कित्तिम प्रादि सत्य असत्य विचारहू । छाँड़ि देहु वक्तादि खोजहु भविष्य पुरुष कहें ।—कवीर सा० पृ० ३१४ ।

किर्वम^२—वि० [सं० कृत्रिम] दे० 'कृत्रिम' । हुआ करम भरम है किर्वम ज्यों दर्पन में छाहीं ।—कवीर सा०, भा० १, पृ० ५१ ।

किर्व—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] १. काम फाज । कार्य । १. घषा । पेशा ।

किर्वगार—सञ्ज्ञा पुं० [फा० कदगार] ईश्वर । उ०—ऐ साहब सत्तार ऐ किर्वगार । के ऐ खालिक चल्क परवरदिगार ।—दक्खिनी०, पृ० २३५ ।

किर्व^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० किरन] दे० 'किरण' । उ०—वसे धव माहि तन धारी । रवी किर्व मून विस्तारी ।—सत नुरसी०, पृ० ६२ ।

किर्व^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृमि] दे० 'कृमि' । उ०—तुवा ते ऊन मो किर्व ते पाठ है पाठ प्रवर सोई मन भाव ।—कवीर २०, पृ० २२ ।

किर्व^३—सञ्ज्ञा पुं० [फा० तुलनीय, सं० कृनि] कीट । कीड़ा ।

यो०—किर्वबुर्वा=कीड़ा लगा हुआ । कीड़ा खाया हुआ ।

किर्वपीला=रेशम का कीड़ा । किर्वशबताव=खद्योत । जुगुनू ।

किर्व^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. भवन । २. विरतन कला । बहुत से लोगो के बैठने के लिये बना हुआ बड़ा कमरा । ३. सोने या लोहे की मूर्ति । ४. पत्ताय वृक्ष [को०] ।

किर्व^५—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृमिज] १. एक प्रकार का रंग । किर्वम दाने का चूर्ण । बुकनी किर्व हवा डिस्मिशन । हिरमिनी । वि० दे० 'किर्वमदाना' । २. किर्वमिनी रंग का घोड़ा ।

किर्वी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'किर्वि' [को०] ।

किर्वी^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. राक्षस जिसे भीमसेन ने मारा था ।

यो०—किर्वीरचित । किर्वीरनिपूदन । किर्वीरभिद । किर्वीरसूदन = भीमसेन

२. नारंगी का पेड़ । ३. चितकवरा रंग [को०] ।

किर्वी^३—वि० [सं०] चितकवरा ।

किर्वीणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जगती शूकरी [को०] ।

किर्व^४—सञ्ज्ञा पुं० [अनु०] दो भाँसों की रगड़ से या बेलगाड़ी के चलते समय पहिए से निकलनेवाली ध्वनि । उ०—मेले का किर्व किर्व धोर कल कल ... । प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३८ ।

किर्वना^१—क्रि० सं० [अनु०] किर्व किर्व की आवाज करना जो दात के बराबर रगड़ से, भाँसों की रगड़ से, दिना तेल लगे पहियों के चलने पर घुरा आदि से होती है ।

किर्वना^२—क्रि० प्र० किर्व किर्व की आवाज होना ।

किर्वी^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कीर्व] एक प्रकार की छेनी जिससे धातु की नक्काशी में पत्तियाँ और डालियाँ बनाई जाती हैं ।

किर्वीना^४—क्रि० प्र०, क्रि० सं० [अनु०] दे० 'किर्वना' ।

किर्वि^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कृपि] दे० 'कृपि' । उ०—एक क्रिया करि किर्वि निपावत आदि व अत्र मनस्व वरों है ।—सुंदर ग्रं०, भा० ३, पृ० ६४० ।

किलगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० कलंगी] कलगी । उ०—कठो माला कड़ा किलंगी सतगुरु अरपण लाऊँ । दिखण दिशारी मंगाय फाँवरिया धपने हाय मोडाऊँ ।—राम०, धर्म०, पृ० १ ।

किलज—सञ्ज्ञा पुं० [सं० किलज] १. चटाई । २. पतला तबला । [को०] ।

किल^१—क्रि० वि० [सं०] निश्चय ही । भवश्य । उ०—(क) के ओणित कलित कपाउ यह किल कापालिक काल को ।—केशव (शब्द०) । (ख) फूटे किल कनक-भास रवि-शशि-उडगुण प्रकाश ।—भारतनामा पृ० ३६ ।

किल^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कील] सोह का काँटीनुमा चीज । किल्ली । उ०—व्यास बोति जगबोति वह सिद्ध महरत ताव । देवजोग सेसह विरह किल किलित सु थाव ।—पृ० रा०, ३ । १६ ।

किल^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] खेल । क्रीड़ा । [को०] ।

किलक^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० किलकना] १. किलकने की क्रिया । हर्षध्वनि करने की क्रिया । मानदनुवक्त शब्द । हर्ष-ध्वनि । किलकार । उ०—नां, फिर एक किलक दूरागत, गुँव उठी कुटिया सुनी ।—कामायनी, पृ० १ ।

किलक^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० किलक] एक प्रकार का नरकट जिसकी कलम बनती है ।

किलकन—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० किलक] किलकिला । किलकारी ।

किलकता—क्रि० प्र० [सं० किलकता] १. किलकित दम्य करने

कथनी कथं अपार । या बानी कथो पाइए साहिब को दीदार ।—राम० धर्म०, पृ० २७६ ।

किरच सखा जी० [प्रा० किलिच] १ एक प्रकार की सीधी तलवार जो नोक के बल सीधी धोकी जाती है । २ नुकीला टुकड़ा (जैसे काँच आदि का) । नुकीला रवा । छोटा नुकीला टुकड़ा उ०—(क) काँच किरच बदले शठ लेही । कर ते धारि परस मणि देही ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) लगे सु टोप उड्डिय किरच ।—पृ० रा० ७ । १५७ ।

किरचा—सखा जी० [हि० किरच] दे० 'किरच' । उ०—गिरिधर-धीरता के किरचा करत हैं ।—घनानन्द, पृ० २१० ।

किरचिया—सखा पु० [दिश०] एक पक्षी ।

विशेष—यह बगले से छोटा होता है । इसके पंजे की झिल्ली मुनहले रंग की होती है ।

किरची—सखा पु० [दिश०] १ एक प्रकार का मुलायम रेशम, जो बगल में होता है । १ रेशम का लच्छा ।

किरण—सखा पु० [सं०] १ ज्योति की प्रति सूक्ष्म रेखाएँ जो प्रवाह के रूप में सूर्य, चंद्र, दीपक आदि प्रज्वलित पदार्थों से निकलकर फैलती हुई दिखाई पड़ती हैं । रोशनी की लकीर । प्रकाश की रेखा या धारा । २ अनेक प्रकार की दृश्य अदृश्य तरंगों की धाराएँ जो अंतरिक्ष से आती या यंत्रों की सहायता से उत्पन्न की जाती हैं, जैसे एक्स रे, ग्लूक रे, अल्ट्रावायलेट रे, आदि ।

पर्या०—अशुकर । दीप्ति । मयूख । मरीचि । रश्मि ।

धौ०—किरणपति । किरणमाली ।

२ सूर्य (की०) । धूम्रकिरण । रज कण (की०) ।

किरणकेतु—सखा पु० [सं०] सूर्य ।

किरणपति—सखा पु० [सं०] सूर्य । रश्मिमाली ।

किरणमाली—सखा पु० [सं० किरणमालिन्] सूर्य ।

किरणा—सखा जी० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम जिसका उल्लेख स्कन्द पुराण के काशी खंड में हुआ है (की०) ।

किरतंतु—सखा पु० [सं० कृतान्त] कृतान्त । यमराज । उ०—सत्ता मत को दिखयत, रज मय के दीसत । ताम्र के पिण्डे प्रबल, क्रोध कलङ्क किरतंत ।—पृ० रा० ६ । ५२ ।

किरतम—वि० [सं० कृत्रिम] कृत्रिम । दिखाऊँ । उ०—ताका मरम भक्त नहि जाना । किरतम वर्त्ता से मन माना ।—कबीर सा० ४८२ ।

किरतव—सखा पु० [सं० कर्तव्य] काम । कर्म । कृतित्व । उ०—बाँस बढ़ा डेरा बज दिना बडेगा होय । सेपावत सिवसिध सो, किरतव बढोन होय ।—शिखर०, पृ० ५२ ।

किरतास—सखा पु० [किरतास] कागज । उ०—कलम यह हात और यह हात किरतास बैठा हैरत जवा ।—परदे के है पास ।—दक्खिनी०, पृ० २५० ।

किरतिम—वि० [सं० कृत्रिम] कृत्रिम । माया ।—नामँ चाँद सूर दिन राती । नामँ किरतिम की उतपाती ।—भीखा श०, पृ० २३ ।

किरती—सखा जी० [सं० किति] व्यास की माता का नाम । सत्यवती । उ०—किरती सुख व्यास बखानिए जी ।—कबीर दे०, पृ० ४४ ।

किरन—सखा पु० [सं० किरण] १ किरण । रोशनी की लकीर । मुहूर्त—किरन फूटना = सूर्गोदय होना । २ कलावत्तू का चारने की बनी हुई एक प्रकार की झालर जो बच्चों या स्त्रियों के कपड़ों में लगाई जाती है ।

किरनकेतु—सखा पु० [सं० किरणकेतु] सूर्य । उ०—जयति जय सत्र कटि केसरी सत्रहन सत्र तम तुहिन हर किरनकेतू ।—तुलसी (शब्द०) ।

किरना^१—क्रि० प्र० [सं० कृ = किर] विखरना । इधर उधर होना । विमुच होना । उ०—प्रग तो ऐनियँ जिय पाई प्रीतम के पन ते क्यो किरिही ।—तानानन्द, पृ० ६७४ ।

किरना^२—क्रि० सं० विखरना । फँसाना । इधर उधर करना ।

किरनाकर—सखा पु० [सं० किरण + आकर] किरणमाली । सूर्य । उ०—मकर प्रादि सक्रमन किरन बाढ़े किरनाकर । यों सोनिस फँपार जोति छिन छिन प्रति आगर ।—७० रा० ५१२ ।

किरनि—सखा जी० [सं० किरण] दे० 'किरण' । उ०—कुमुद धूरि धूरि मधि चाँदनि चंद किरनि रही छाई ।—नन्द, प्र०, पृ० ३६३ ।

किरनीला—वि० [हि० किरन + ईला (प्रत्य०)] किरणवाला । प्रकाशमान । उ०—चमकीले किरनीले शम्भो काट रहे तुम श्यामल तिलमिल ऊपा का मरघट साजोगे ? यही लिख सखे चार पहर मे ? चलो छिया छी हों रो अंतर मे ।—हिम कि० पृ० १२ ।

किरनीलापन—सखा पु० [हि० किरनीला + पन (प्रत्य०)] उज्ज्वलता । प्रकाशित होने का भाव । उ०—अंधकार है तो 'किरनीलापन' की अगवानों संभव है, अंधकार है तो कीमत का तेरे उज्ज्वल विमल विभव है ।—हिम कि० पृ० १३१ ।

किरपन—वि० [सं० कृपण] कजूस । मक्ख चूस । उ०—क्या किरपन मूँजी की माया नाव न हाव न पूँजे से ।—सुंदर प्र०, भा० १ पृ० २३ ।

किरपा—सखा जी० [सं० कृपा] दे० 'कृपा' । उ०—तुम किरपा करि करी लान मेरे को टीको ।—नन्द प्र०, पृ० १२४ ।

किरपान—सखा जी० [सं० कृपाण] दे० 'कृपाण' ।

किरपाल—वि० [सं० कृपालु] दे० 'कृपाल' ।

किरपिन—पु० [सं० कृपण] दे० 'कृता' । उ०—तनिक विसारै नहि कनक ज्यो किरपिन पाई ।—तनदू०, भा० १, पृ० ४२ ।

किरम—सखा पु० [सं० कृमि] ३ दे० 'किरिमदाना' । २ कीट । कीड़ा ।

किरमई—सखा जी० [सं० कृमि] एक प्रकार की लाख । लाख का एक भेद ।

किरमाल^१—सखा पु० [सं० करवाल] नन्वार । खज्ज ।

किरमाल^२—सखा पु० [सं० किरणमालिन्, किरणमाल] सूर्य । उ०—नाम निपाँ थो मानवाँ सरकै कलुष विमान । मह जेये भेटे तिमिर, रसम रस किरमान —पु० ६०, पृ० ३६ ।

किरमाला—सखा पु० [सं० कृतमाल] समिलताश । किरवारा ।

किरमिच—सञ्ज्ञा पुं० [ग्र० कर्मवाच, हिं० किरमिच] एक प्रकार का मोटा विलायती कपड़ा ।

विशेष—यह महीन टाट की तरह होता है और इससे परदे, जूते, बैग आदि बनते हैं ।

किरमिज—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृमि + ज] [वि० किरमिजी] १. एक प्रकार का रंग । किरिमदाने का चूर्ण । बुकनी किया हुआ किरिमदाना । हिरमिजी । दे० 'किरिमदाना' । २. किरमिजी रंग का घोड़ा । वह घोड़ा, जिसका रंग हिरमिजी के समान लाल हो ।

किरमिजी—वि० [सं० कृमिज] किरमिज के रंग का । किरिमदाने के रंग का लाल । मटमैलापन लिए हुए करौदिया रंग का । दे० 'किरिमदाना' ।

किरयात—सञ्ज्ञा पुं० [सं० किरात] चिरायता ।

किरराना^१—क्रि० प्र० [हिं० कड़िलना या ग्रनुं] तड़पना । छटपटाना । उ०—मन मृत्तक से जाणियँ घायल ज्यूँ किरराय । रामदास रहे हरि सुमिरत दिन जाय ।—राम० धर्म०, पृ० १६४ ।

किरराना^२—क्रि० प्र० [ग्रनुं] १. दाँत पीसना । २. क्रोध से दाँत पीसना । ३. किरं किरं शब्द करना ।

किरराना^३—क्रि० प्र० [हिं० कुररना = कुल्ल करना या धोलना या ग्रनुं] धोलना । उ०—पनवारो चंपति को आनो । देखि सुधा सागे किररानो ।—लाल (शब्द०) ।

किरवान^४—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृपाण प्रा० किराण] तलवार । कृपाण । उ०—किरवान चलाय समीर हरयो ।—ह० रासो, पृ० १४६ ।

किरवान^५—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृपाण, प्रा० किराण] ३. 'कृपाण' । उ०—(क) बड़ हनो किरवान जब, परेउ भूमि चहुवान ।—प० रासो, पृ० ६४ । (ख) सत्ता को सपूत राव, सगर को सिंह सोहै जैनवार जगत करेरी किरवान को ।—मति० ग्र०, पृ० ३७७ ।

किरवार^६—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करवाल] तलवार । खड्ग । उ०—रन समुद्र वोहति को कियो । करिया सो किरवारो लियो ।—केसव (शब्द०) ।

किरवार^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृतमाल] अमलताश । उ०—कमल मूल किरवार कसेल । काच नून कर मूल कसेल ।—सुदन (शब्द०) ।

किरवार^८—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृतमाल] अमलताश । किरसताना—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ग्र० फिश्चियन, हिं० फिस्तान] दे० 'फिस्तान' । उ०—ग्रब तक सारा देश मुसलमान किरसतान हो गया होता ।—रगनूमि, भा० २, पृ० ४६५ ।

किरसन^९—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृष्ण] दे० 'कृष्ण' । उ०—मस्त एकड़ को किरसन सरका मुरली बजाना हमना साजे ।—दक्खिनी०, पृ० ३८७ ।

किरसुन^{१०}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृष्ण] दे० 'कृष्ण' । उ०—उहै धनुक किरसुन पहे भहा । उहै धनुक राखी कर गड़ा ।—जायसी (शब्द०) ।

किराचो—सञ्ज्ञा स्त्री० [ग्र० केरोच] १. दा या चार पहियों की गाड़ी जो माल ऋतवाह होने के काम में माती है । वह बंजगाड़ी

जिसपर घनाज, भूसा आदि लादा जाता है । २. माचगाड़ी का उच्चा ।

किराठ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] व्यापारी । वनिया (को०) ।

किराड^{११}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० किराट] वणिक । व्यापारी । उ०—गोली से गणका जसी, सम से चोर किराड ।—बाँकी० ग्र०, भा० २, पृ० ६० ।

किराड^{१२}—सञ्ज्ञा पुं० [प्रा०] किराता । तट । उ०—घाट किराडू पारकर लोढा लो जालेर, पुगन गड़ आबू सहिन मडोवर अजमेर ।—पृ० रा०, १२ । ४२ ।

किरात^{१३}—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० किरातिनी, किरातिन, किरातो] १. एक प्राचीन जंगली जाति । उ०—मिलहि किरात, कोल वनवासी । वंषानस, बटु, गृही उदासी ।—तुलसी (शब्द०) । २. एक देश का प्राचीन नाम ।—बृहत्संहिता, पृ० ८५ ।

विशेष—यह हिमालय के पूर्वीय भाग तथा उसके ग्रामवास में माना जाता था । वर्तमान भूटान, सिक्किम, मनीपुर आदि इसी देश के अंतर्गत माने जाते थे ।

३. चिरायता । ४. साईस । ५. वामन । वीना (को०) । ६. शिव (को०) ।

किरात^{१४}—सञ्ज्ञा स्त्री० [ग्र० किरात] १. जवाइरात की एक तीन जो लगभग चार जो के बराबर होती है । २. एक आर्सेस का चौबीसवाँ भाग । ३. एक बहुत छोटा सिक्का या धातुखंड जिसका मूल्य पाई से भी कम होता था ।

किरातक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. चिरायता । २. किरात जाति का व्यक्ति (को०) ।

किरातपति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शिव ।

किराताजुनीय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] भारविकृत १८ सर्गों का एक महाकाव्य ।

किराताशी—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गहड़ ।

किराति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. गंगा । २. दुर्गा । पार्वती (को०) ।

किरातिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. चिरायता । २. किरात जाति का व्यक्ति (को०) ।

किरातिन—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० किरान का स्त्री०] ३. 'किरातिनी' । उ०—येह सुनि मन गुनि सपय बडि बिहसि उठो मतिमंद । नूपन सजति बिलोकि मृग मनहु किरातिनि फंद ।—मानस २ । २६ ।

किरातिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. किरात जाति की स्त्री । २. जटामासी ।

किराती—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] किरात जाति की स्त्री । २. दुर्गा । ३. स्वर्ग की गंगा । ४. कुट्टिनी । ५. चरैर उजानेवासी । चमरगारिणी ।

किरान^{१५}—क्रि० वि० [ग्र० किरान] पास । निकट । नजदीक । उ०—तत्तपन सुनि महेश मन नाजा । भाट किरान हूँ विनवा राजा ।—जायसी (शब्द०) ।

किराना—सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रयण] पत्तारी की दुकान पर बिकनेवाली चीजें । जैसे मिर्च, मसाला, नमक आदि ।

किराना^{१६}—क्रि० त० [सं० कीर्ण] ३. 'केराना' ।

किफायत- सद्वा जी० [अ० किफायत] १ काफी या अन्नम् होने का भाव । २. कमखर्ची । थोड़े में काम चलाने की क्रिया । जैसे- खर्च में किफायत करो । ३. वचन । जैसे—ऐसा करने से ५०) की किफायत होगी । ४. कम दाम । थोड़ा मूल्य । जैसे—अगर किफायत में मिले तो हम यही कपड़ा ले लें ।

यो०—किफायत का = थोड़े दाम का । सस्ता ।

किफायती - वि० [अ० किफायत] कम खर्च करनेवाला । समानकर खर्च करनेवाला ।

किवर०—सद्वा पुं० [अ० किन्न = बड़ाई, श्रेष्ठता] १ वड़प्पन । उच्चता । २ गर्व । उ०—न माने प्यास होर भूख नाले के सुख दुख । किवर होर कीना जर पाक इसते सीना ।—दक्खिनी०, पृ० ५२ ।

किवरिया—सद्वा पुं० [अ० किन्नियह्] १. वड़प्पन । महत्त्व । २ ईश्वर । परमात्मा । उ०—इस आदत से नफस कुशी से हुए आरी, वेप्रदगी दीदार न हो किवरिया वारी ।—कवीर मं०, पृ० २६३ ।

किवनई—सद्वा जी० [अ० किवलई] पश्चिम दिशा ।—(लग०) ।
किवलनुमा०—सद्वा पुं० [अ० किवलह् + फा० नुमा] दे० 'किबला-नुमा' । उ०—सब ही तन समुहाति छन, चलति सवन दै पीठि । वाही तन ठहराति यह किवलनुमा लौं दीठि ।—विहारी (शब्द०) ।

किवला—सद्वा पुं० [अ० किवलह्] १. जिस ओर मुख करके मुसलमान लोग नमाज पढ़ते या प्रार्थना करते हैं । पश्चिम दिशा । मक्का । उ०—मग करि मक्का किवला करि देही । बोलन हार परस गुरु एही ।—कवीर ग्रं०, पृ० ३१५ ।

यो०—किबलानुमा ।

३ पूज्य व्यक्ति । ४ पिता । बाप ।

यो०—किबलाग़ालम ।

किबलाग़ालम—सद्वा पुं० [अ० किबलाग़ालम] १ सारा ससार जिसकी प्रार्थना करे । ईश्वर । २ बादशाह । सम्राट् । राजा ।

किबलाग़ात्र, किबलाग़ाही—सद्वा पुं० [अ०] पिता । बाप ।

किवलानुमा—सद्वा पुं० [अ० किवलह् + फा० नुमा] पश्चिम दिशा को बतानेवाला एक यंत्र जिसका व्यवहार जहाजों पर मल्लाह करते थे ।

विशेष—इन्में एक मुई ऐंगी लगा देते थे जो पश्चिम ही की ओर रहती थी । आजकल के ध्रुवदर्शक यंत्रों में पश्चिम को विशेष रूप से निर्दिष्ट नहीं करते ।

किवाडि०—सद्वा जी० [सं० कपाट या कपाटी, कपाटिका प्रा० कवाड] दे० 'किवाड़' । उ०—सा घन ऊनी टेकि किवाड़ि । रतन कुडल सिर तिलक लीलाड ।—वी० र० सो, पृ० ५४ ।

किवाडी—सद्वा जी० [हि० किवाड़ का जी०] किवाड़ । किवाड़ या पल्ला । उ०—कांच की किवाड़ियों से ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १११ ।

किवार—सद्वा पुं० [सं० कपाट, प्रा० कवाल] दे० 'किवाड़' । उ०—फूलन के महल बने फूलन विताप तने, फलन छज्जे, भरोबा, फूलन किवार हैं । नद० ग्रं० पृ० ३८० ।

किवलिनुमा—सद्वा पुं० [अ० किवलह् + फा० नुमा] दे० 'किबलानुमा' । उ०—उनके नेत्र किवलिनुमा की भाँति मेरे ही ऊपर छा गए ।—श्यामा० पृ० १२३ ।

किवो०—कि० सं० [हि०] करना । रचना । उ०—तन कियो सिस्टी का करता, देपत जगत भुलाना ।—रामनद०, पृ० ३५ ।

किन्न—सद्वा पुं० [अ०] १. महत्त्व । २ वड़प्पन । उ०—सो कवीर उसे कहते हैं जिसमें किन्न (गौरव) होवे ।—कवीर मं०, पृ० ४२० । २ प्रथिमान । गर्व । उ०—होर इवादत में काहिल वधगता है होर किन्न व कीना, बुग्न व हिर्स, हवा व वखीली व तुवी व शाहवत यो तमाम फेन नफस अम्मार के हैं ।—दक्खिनी०, पृ० ३६६ ।

किन्निया—सद्वा जी० [अ० किन्नियह्] १. महत्ता । वड़प्पन । उ०—तू है करतार किन्निया वारी, तेरा है हृम सब जगह जारी ।—कवीर सा०, पृ० ६७६ । २ ईश्वर । परमात्मा ।

किवल०—कि० वि० [अ० कवल] पहने । पूर्व । उ०—मार कम से कम अब के पीछे किसी नुकसान पर इतना रज न होगा । जितना चद साल किन्न हो सकता था ।—प्रेम० गो०, पृ० ६४ ।

किवल एहाजात—सद्वा पुं० [अ० किन्ला-ए-हाजात] इच्छा पूर्ण करनेवाला । जरूरतों को पूरा करनेवाला व्यक्ति । उ०—दर उसका यकी किन्न एहाजात है । रवों क फिना रोज़ ग़ोर रात है ।—दक्खिनी०, पृ० २१३ ।

किम्—वि०, सर्व [सं०] १ क्या ? २ कौन सा ?

यो०—किमपि = कोई भी । कुछ भी । उ०—(क) ताते गुप्त रहौं जग माहीं । हरि तजि किमपि प्रयोजन नाही ।—तुलसी (शब्द०) (ख) अति दुख मन, तन पुनक, लोवन सजन कइ पुनि रमा । का देहुं तोहि त्रिलोक मंह, कपि, किमपि नहि बाणी समा ।—तुलसी (शब्द०) ।

किमखाव—सद्वा पुं० [फा० कमखाव] एक कपड़ा । उ०—सो घरमर दिया तेरे अमल कूँ । किमखाव दिया जवून कमन कूँ ।—दक्खिनी०, पृ० १७१ ।

किमरिक—सद्वा पुं० [अ० कैन्निक] एक चिकना सफेद कपड़ा जो नैनसुख की तरह होता है ।

विशेष—यह पहने सन के सूत का ही बनता था और बड़ा ही मजबूत होता था । अब कपास के सूत का भी बनने लगा है ।

किमाछी—सद्वा पुं० [सं० कपिकच्छु, हि० केवाँच] दे० 'केवाँच' ।

किमाम—सद्वा पुं० [अ० किवाम] शहद के समान गाढ़ा किया हुआ शरबत । खमीर । जैसे—सुरती का किमाम ।

किमार—सद्वा पुं० [अ० किनार] जुग्रा का खेल । धूतकीड़ा ।

किमारखाना—सद्वा पुं० [अ० किमार + फा० खानह] वह घर जहाँ लोग जुग्रा खेलते हैं । जुग्राघर ।

किमारवाज—वि० [अ० किमार + फा० वाज] जुग्राही ।

किमारवाजी—सद्वा जी० [अ० किमार + फा० वाजी] जुग्रा का खेल ।

किमाश—सञ्ज्ञा पुं० [अ० किमाश] १. तर्ज। डग। वजा। जैसे,—
वद् न जाने किस किमाश का आदमी है। २. गंजीफे का एक
रग, जिसे ताज भी कहते हैं।

किमि—क्रि० वि० [सं० किम्] कैसे? किस प्रकार? किस तरह?
उ०—किमि सहि जानि प्रबध सोहि पाहीं। प्रिया बेगि प्रगटसि
रस नाहीं।—तुलसी (शब्द०)।

किमियाकार(७)—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कीमियागर प्रपञ्च हिं० कीमिया +
सं० कार (प्रत्य०)] दे० 'कीमियागर'। उ०—देद बिबिन
बूठी वचन हरिजन किमियाकार। खरी जरी तिनके कने छोटी
गहत गेंदार।—विश्राम (शब्द०)।

किम्मत^१(७)—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० हिक्मत] १. चतुराई। होशियारी।
उ०—हारिए न हिम्मत सुकीज कोटि हिम्मत को मापति में पति
राखि धीरज को धरिए—(शब्द०)। २. कीरता। बहादुरी।

किम्मत^२(७)—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० कीमत] कीमत। मूल्य।—जिसके
वे पदे बिक, किम्मत जर भारी के।—नट०, पृ० ११२।
कियकर(७)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कियकर] कियकर। सेवक। उ०—जय ताप
संताय दुखाय दुखकर पाप कियकर तार लगा।—राम० धर्म०,
पृ० ३०२।

कियत—वि० [सं० कियत] कितना। उ०—राम से प्रीतम की प्रीति
रहित जीउ जाय जियत। जेहि सुख सुख मानि लेत सुख सो
ममुक्त कियत।—तुलसी (शब्द०)।

किपारय(७)—वि० [सं० कृताय] कृताय। उ०—श्री हरि नाम
सैमारि, काम अमिराम कियाय। अरय घरम अपवण,
दिगण जगन्धार पदारय।—गो० रू०, पृ० ३।

किपारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० केदार] १. खेतों या बगीचों में बोड़े बोड़े
अंतर पर दो पतले मेड़ों के बीच की भूमि, जिसमें बीज बोए
या बोड़े लगाए जाते हैं। बयारी। २. खेत का एक विभाग।
३. खेतों के वे विभाग जो सिंचाई के लिये बरहो या नालियों के
बीच की भूमि में फावड़े से पतले मेड़ ढालकर बनाए जाते हैं।
४. एक बड़ा कड़ाह, जिसमें समुद्र की खारा पानी नमक नीचे
बैठने के लिये भरते हैं। ५. 'सुनारों की बोली में' चारपाई।

कियावर^१(७)—वि० [सं० क्रियावर, प्रा० कियावर] कर्मकुशल।
कर्मपरायण।

कियावर^२(७)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कियावली] कर्म। कृत्यसमूह। उ०—
सार कियावर डरै सकोई। कत सम विक्रम भोजन कोई।—
रा० रू०, पृ० १५।

किगाह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] लाल रंग का घोड़ा।

किरंटी—सञ्ज्ञा पुं० [अ० क्रिश्चियन] छोटे दर्जे का किस्तान।
केरानी। (एक तुच्छताव्ययक शब्द)।

किर^१(७)—अव्य० [सं० किल] मानो। उ०—ऊँचा डूंगर विषम
धनु, लागा किर तारेहि।—दोला०, दू० ६५८।

किर^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सुग्रह। वाराह [क्रि०]।

किरकाट—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृकला] गिरगिट। छिपकली की जाति का
एक जंतु। उ०—कवहुक भरिया समुंद सा, कवहुक नाहीं
छांट। जन छरिया इतउत रता, वे कहिए किर काट।—सत
वाणी०, १।१।३२।

२-५३,

किरकां—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्कट=ककड़ी] छोटा टुकड़ा। ककड़।
किरकिरी। उ०—गर्व करत गोवर्धन गिरि की। पर्वत नाह
प्राई वह किरकी।—सूर (शब्द०)।

किरकिटी(७)—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कर्कट] धूल या तिनके आदि का कण
को घाँव में पड़कर पीड़ा उत्पन्न करना है। उ०—मैं हो जानो
लोयननि, जुरत बाढ़ि है जोति। को हो जानत दोडि, को दोडि
किरकिटी होति।—बिहारी (शब्द०)।

किरकिन—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का दानेदार चमड़ा जो
घोड़ा या गधे का होता है। एक प्रकार का कीमुक्त।

किरकिरा^१—वि० [सं० कर्कट] ककरीला। ककड़दार। जिसमें महीन
घोर कड़े रवे हो।

मुहा०—किरकिरा हो जाना=रग में भग हो जाना। आनंद में
विषम पड़ना। बात विगड जाना।

किरकिरा^२(७)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृकल] शरीर में स्थित पाँच वायुओं
में से एक, जो पाचन क्रिया में सहायिका होती है। उ०—अपान
वायु घर किरकिरा कूरम वाई जीत। नाग धनजय देवदत्त
दशवाई रणजीत।—कबीर सा०, पृ० २२०।

किरकिरा^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्कट] लोहारों का एक औजार जिससे
बड़े और मोटे लोहे में छेद किया जाता है।

किरकिराना—क्रि० अ० [हिं० किरकिरा से नामिक घातु] १.
किरकिरी पड़ने की सी पीड़ा करना। जैसे,—आज आँख
किरकिराती है। २. दे० 'किटकिटाना'।

किरकिराहट—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० किरकिरा + हट (प्रत्य०)] १.
किरकिराने की सी पीड़ा। आँख में किरकिरी पड़ जाने की सी
पीड़ा। २. दाँत के नीचे कँठरीली वस्तु के पड़ने का शब्द।
३. किटकिटापन। ककरीचापन। जैसे,—कले को और छानो,
अभी इसमें किरकिराहट है।

किरकिरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कर्कर] १. धूल या तिनके आदि का कण
जो आँख में पड़कर पीड़ा उत्पन्न करता है। जैसे,—आँख में
किरकिरी पड़ गई है। २. अपमान। हेँडा। जैसे,—आज तो
उनकी बड़ी किरकिरी हुई। उ०—भगर अहमारपो का जिह
छेडा घोर वह विगड़ गए तो बड़ी किरकिरी होगी।—
फिस्ताना०, भा० ३, पृ० १६।

किरकिल^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृकला] गिरगिट। गिरगिट।

किरकिल^२(७)—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कृकर या कृकल] शरीरस्थ दस
वायुओं में से वह वायु जिससे छोक आती है। उ०—किरकिल
छोक लगावे भाई।—विश्राम (शब्द०)।

किरकिला^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृकर] एक पक्षी जो आमाश से मछलियों
पर दूँता है। दे० 'किलकिरा'।

किरकिला^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृकला] १. कृकला। गिरगिट। २.
शरीरस्थ वायुविशेष। उ०—कुरम सेत किरकिरा धनजय
देवदत्त कहें देखो।—कबीर ग०, भा० २, पृ० ६६।

किरकी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० किरकी] एक प्रकार का गहना।

किरकी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] १. किरकी। जरा ता कण। २.
तिनका। तिनके का टुकड़ा। उ०—करनी सी किरकी नहीं

कित्तु—क्रि० वि० [हि० कित] दे० 'कित'। उ०—मुहमद चारिउ मोत मिल, अप जो एक चित्त। एहि जग साय जो निवहा, ओहि जग विछुरन कित्त।—जायसी ग्रं०, पृ० ६।

कित्ता—वि० [हि० कितना का सक्षिप्त रूप] दे० 'कितना'।

कित्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० दे० [सं० कीर्ति] 'कीर्ति'। उ०—कित्ति लख सूर सगम, धम्म पराग्रह हिप्रम, विपम काम नह दोन जपइ।—कीर्ति०, पृ० घ। (ख) सत्ता को सपूत भावसिंह भूमिपाल जाकी कित्ति जोन्ह क'त जगत चित्त चाव दे।—मति० ग्रं०, पृ० ३६६।

यो०—किर्तिपाल—यश की रक्षा करनेवाला। किर्तिवॉल—कीर्तिवल्ली। कीर्ति रूखी लता।—तिहुमन खेतहि काजि तस, कित्तिवल्ली पसरेइ।—कीर्ति० पृ० ४।

कित्तिम—वि० [सं० कृत्रिम, प्रा कित्तिम] कृत्रिम। उ०—काजरे चाद कलङ्क। लज्ज कित्तिम रुपट ताकन।—कीर्ति०, पृ० ३४।

कित्तो—वि० [हि० कितो] दे० 'कितना'। उ०—कित्तो गढ़ रण-धम राव जिस पंह गर्वाए।—हम्मी रा०, पृ० ५६।

कित्तोक—वि० [हि० कित्तो + क] दे० 'कितेक', 'किनक'। उ०—सुमुद कितो गरुमत्त अप्प भुज जोर हिलोरिय। कित्तोक मवन मेरु गिरि कमठ होइ पिठह वेलिय।—पृ० रा०, १।७८०।

कित्था—वि० [हि०] कहा। किस स्थान पर। उ०—इत्या उत्था जित्था कित्था, हूँ जीवा तो नाल वे। मीया भंडा आव भसाडे, तू लालो सिर लालवे।—दाहू०, पृ० ५१३।

कित्थ—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कीर्ति या कृत्य] कीर्ति। यश। उ०—पट्टी सहस्र अरि पवंग कवी चदह कह कित्थो।—पृ० श० ४।१८।

कित्थो—क्रि० वि० [हि० तुन० प० कित्थे] १ कंसे। क्यों। किसी प्रकार। २ कही। उ०—है अरि वारीकु पोखु नहि दरसं नदरि कित्थो।—सुदर० ग्रं०, भा० १ पृ० २७६।

किदारा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० केवारा] दे० 'केदारा'।

किधन—क्रि० वि० [देश०, तुल० हि० किधर] तरफे। उ०—हुल लाजती आई मंता किधन, कही यूँ जो ऐ तू है शीरी जवा।—दक्खिनी०, पृ० ८४।

किधर—क्रि० वि० [हि०] किस ओर। किस तरफ। जैसे,—तुम आज किधर गए थे।

मुहा०—किधर आया किधर गया—किसी के आने जाने की कुछ भी खबर नहीं। जैसे—हम तो चारपाई पर बेसुध पड़े थे, जानते ही नहीं कौन किधर आया गया। किधर का चाँव निकला?—यह कौसी अनहोनी बात हुई यह कौसी बात हुई जिसकी कोई आशा न थी।

विशेष—जब किसी से कोई ऐसी बात बन पड़ती है जिसकी उससे आशा नहीं थी, या कोई मित्र अचानक लिये जाता है, तब इस वाक्य का प्रयोग होता है।

किधर जाऊँ, क्या करूँ—कोत सा उपाय करूँ? कोई उपाय नहीं सुझता।

किधौ—अव्य० [हि०] अथवा। वा। या। सो। न जाने। उ०—अब है यह पण कुटी किधौ ओर यह लक्ष्मण होय वधौ?—केशव (शब्द०)।

किन^१—गर्ग० [हि०] 'किंग, ता बहुवचन। उ०—ग्रन्थ कहलवत कर्मति वात करत अनि साधु अति। किन नाम कीन्ह तुव दान पति हे नितही नादान पति।—गोपाल (शब्द०)।

किन^२—क्रि० वि० [सं० किम् + न] क्यों न। उ०—(क) मिनु हरि नगित मुषित नहि होई। कोहि उपाय करो किन कोई।—सूर (शब्द०)। (ख) धिगरी वात बन नही लाव करो किन कोय। रहिमन गिरे दूध को मये न माखन होय।—रहीम (शब्द०)।

किन^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० किण] किसी वस्तु के लगने चुगने वा रगड़ पहुँचने का चिह्न। दाग। घट्टाल। उ०—ध्वजकुसि प्रकुश कत्रयुत बन फिरत कटक किन लहे।—तुलसी (शब्द०)।

किनका—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कणिका] [स्त्री० धत्पा० किनकी] १ छोटा दाना। अन्न का टूटा हुआ दाना। २ चावल आदि क दान का महीन टुकड़ा जो कूटने से गलता हो जाता है। चुट्टो। उ०—जो कोई होइ सत्य का किनका सोहम को पति माई।—कवीर श०, भा० ३ पृ० २।

किननाट—सञ्ज्ञा पुं० [प्रनु०] फ़िल्माट। भावाज। उ०—वपु नपत पुगरिय किनन किन नाट कुरगिय। गगन गगनतीर रग छन छविम उठरगिय।—पृ० रा०, १०। ८३३।

किनमिन—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] १. धीमा, अथवा शब्द। प्रनुध्वनि। २. आनाकानी। ननुनच। उ०—दीवारो से लगे सड़े होंगे चुप छान और छप्पर। भरती होगी खामोशी से खोलाती भी किनमिन कर।—मिट्ठी०, पृ० ६४।

क्रि० प्र०—करना।

किनर^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० किगरी] दे० 'किगरी'। उ०—मुरली बेनु किनर एह वाजे गोपिन्ह रग मनाया।—सं० दरिया, पृ० १०३।

किनर मिनर—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] वहाना। आना कानी।

किनरिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'किनारी' उ०—ऊँची अटरिया जरद किनरिया, लगी नाम की डोरी।—कवीर श०, पृ० ५५।

किनवानी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] छोटी छोटी बूँदों की वर्षा। फुहार। झड़ी।

किनहा—वि० [सं० किर्ण (= घुन या कीड़ा), हि० किन (प्रत्य०)] (फल) जिसमें कीड़े पड़े हो।

किना^१—अव्य० [देश०] या। अथवा। उ०—कहि सुवा किम भावियउ, किहीक कारण कथ्य। तू मालवणी मेल्हियउ किना अम्हीणइ मथ्य। डोला—दू० ४०१।

किना^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कण, हि० कन] दे० 'कन', कण। उ०—यह मन चंचल चोर अन्धाई भक्ति न आवत एक किना।—गुलाल० पृ० १२६।

किनाअत—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कनाअत] सतोष। उ०—आफ किनाअत सुख घना आनद अशाधा।—चरण० बानी, पृ० ११२।

किनात—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कनाअत] सतोष। वासना का त्याग। उ०—आका बिकर किनात दे तीनी बात बखीर।—पद० पृ० १४।

किनाती—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक चिड़िया।

विशेष—गड़वाजे के किनादे बहरी है मोर इसकी चोच हरी

तना सिर और कठ सफेद होता है। यह मई और सितंबर के बीच बढ़ा देती है।

किनार^७—उच्चा पुं० [हिं० किनारा] दे० 'किनारा'।

किनारदार—वि० [फा० किनारा + दार (प्रत्यय)] (कपड़ा) जिसमें किनारा बना हो। जैसे—किनारदार धोता।

किनारपेच—संज्ञा पुं० [हिं० किनारा + पेच] डोरियाँ जो दरी के ताने के दोनों ओर लगी रहती हैं।

विशेष—ये डोरियाँ दरी के ताने बाने से कुछ अधिक मोटी होती हैं और ताने के स्वार्थ लगाई जाती हैं।

किनारा—संज्ञा पुं० [फा० किनारह] किसी अधिक लंबाई और कम चौड़ाईवाली वस्तु के वे दोनों भाग या प्रांत जहाँ से चौड़ाई समाप्त होती हो। लंबाई के बान की ओर। जैसे—(क) बान या कण्डे का किनारा। (ख) बान किनारे पर कटा है। २ नदी या जलाशय का तट। तीर।

मुहा०—किनारा दिखाना = छोर या निरा दिखाना। उ—वह रहे हैं विपन्न नहर में हम अब दया का दिखा किनारा दें।—चुभते० पृ० ४।

३. समान या कम असमान लंबाई चौड़ाईवाली वस्तु के चारों ओर का वह भाग जहाँ से उसके विस्तार का अंत होता हो। प्रांत। भाग। जैसे—खेत का किनारा चौकी का किनारा।

४. [स्त्री० किनारी] कण्डे आदि में किनारे पर का वह भाग जो निचला रंग या बुनावट का होता है। हाथिया। गोटा। वार्डर।

—किनारादार या किनारेदार।

५. किसी ऐसी वस्तु का सिंग या छोर जिसमें चौड़ाई न हो। जैसे, ताने का किनारा। पार्श्व। बगल।

मुहा०—किनारा करना = अलग होना। दूर होना। परित्याग करना। छोड़ देना। उ०—जिनके हिस्से परलोक विगारा ते सब जिनसे किहि न किनारा।—विश्राम (अवतार)। किनारा काटना = (१) अलग करना। (२) अलग होना। किनारा धींचना = किनारे होना। अलग होना। दूर होना। हटना।

किनारी—संज्ञा स्त्री० [फा० किनारा] सुनहला या चमकला पतला गोटा जो कपड़ों के किनारे पर लगाया जाता है।

किनारीवारी^७—वि० स्त्री० [हिं० किनारी + वारी] जिसमें किनारी लगी हो (साड़ी)। उ०—कूदन के आंग माँग मोलिन सवारी सारी सोहत किनारीवारी केसरि के रंग की।—मति० ग्रं०, पृ० ४१६।

किनारे—क्रि० वि० [हिं० किनारा] १ किनारे पर। तट पर। २ अलग। दूर।

मुहा०—किनारे करना = दूर करना। अलग करना। हटाना।

किनारे न जाना = दूर रहना। अलग रहना। वचना। जैसे—हम ऐसे काम के किनारे नहीं जाते। किनारे कर लेना = अलग कर लेना। उ०—यदि अपने भावों को समेटकर मनुष्य अपने हृदय को शेष सृष्टि के किनारे कर ले या स्वार्थ की पशुवृत्ति में ही निरस्त रहे तो उसकी मनुष्यता कहाँ रहेगी।—रस०, पृ० ८। किनारे किनारे जाना = (१) तीर तीर होकर जाना।

(२) अलग होकर जाना। किनारे न लगना = पान न फटकना। निरुद्ध न जाना। दूर रहना। जैसे—कभी बीमार पड़ोगे तो कोई किनारे न लगेगा। कनारे बँटना = अलग होना। छोड़कर दूर हटना। जैसे—हम अपना काम कर लेंगे, तुम किनारे बँटो। किनारे रहना = दूर रहना। वचना। जैसे—तुम ऐसी बातों से किनारे रहते हैं। किनारे लगना = (१) (नाव को) किनारे पर पहुँचाना (२) (किसी कार्य का) समाप्ति पर पहुँचाना। समाप्त होना। किनारे लगाना = (१) (नाव को) किनारे पर पहुँचाना या निडाना। (२)। किसी कार्य को) समाप्ति पर पहुँचाना। पूरा करना। निर्वह करना। जैसे—जब इस काम को हाथ में ले लिया है, तब किनारे लगाओ। किनारे होना = अलग होना। दूर हटना। सवध छोड़ना। छुट्टी पाना। मतलब न रखना। जैसे—तुम तो ने देकर किनारे हो गए हमारा चाहे जो हो।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग विमर्श का लोप करके प्रायः किया जाता है। जैसे—(क) नदी के किनारे चलो। (ख) वह किनारे किनारे जा रहा है।

यो०—किनारी बाफ = किनारी या गोटा बनानेवाला।

किर्नि^१^७—सर्व० [हिं० किर्न] सं० 'किर्न'। उ—जितहि प्ररघी ही तितहि न पागी। जमुमति तिय यो किर्नि विरमागी।—नंद० ग्रं०, पृ० २४२।

किनी^२^७—क्रि० वि० दे० 'किर्न' उ०—तुम। सब रझो री हों ही उत्तार देहों चने किर्नि जाडे डांटा वाई वावरी गाँज —रोझार यति० ग्रं०, पृ० १६०।

किन्नर^१—संज्ञा पुं० [सं० किन्नर किन्नर] [अ० किन्नरी] एक प्रकार के देवता।

विशेष—इनका मुख घोड़े के समान होता है और वे सजीव में अत्यंत कुशल होते हैं। ये लोग पुरस्त्व ऋषि के वंशज माने जाते हैं।

पर्या०—सुरगमुख।—किंपुण्य।—गीतमोदी।

किन्नर^२—संज्ञा पुं० [देश०] तक्षक। विनाद। दलीन।

किन्नर^३—^१संज्ञा पुं० [सं० किन्नर] मुक्ता। छाह। कंदरा। उ०—कपि कुन विपन रीछ गिर किन्नर, सुर गुर नरन समावें —रघु० क०, पृ० १६१।

किन्नरि^७—संज्ञा स्त्री० [सं० किन्नरी] एक वाजा। उ०—गोमुख, किन्नर, भाँक, बीच निच मधर उगगा।—नंद० ग्रं०, पृ० ३२२।

किन्नरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ किन्नर की स्त्री। २. किन्नर जानि की स्त्री।

किन्नरी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० किन्नरी = वीणा] १ एक प्रकार का तबूरा, २ किंगरी। मारगी।

किन्ना—^७संज्ञा स्त्री० [सं० कन्या] कन्या। पुत्री (डि०)। उ०—किन्ना व्याहे कोडनो, जू किन्नावन लेवें।—रघु० क०, पृ० २२२।

किष्पाट^७—संज्ञा पुं० [सं० कषाट] कषाट। दरवाजा। उ०—राम धाम रिम राह न्याम निम धाम निदयपति। पन चत्त दिा रोस फटिद किष्पाट बाट भजि।—पृ० रा० ५१२८।

चुपचाप बैठो, उठे कि मारा । (ग) तुम यहाँ से हटे कि चीज गई । ३ वा । अथवा । जैसे,— तुम ग्राम लोगे कि इमली । उ०—सुंदर बोलत आवत वैन । ना जानौं तिहि समय सबी रो, सब तन सवन कि नैन ।—सूर०, १०।१८०४ ।

किग्राह(७)—सब्बा पुं [सं० कियाह] १ ताड़ के पके फल के रंग का घोड़ा । २ लाल रंग का घोड़ा । उ०—लील समुद्र चाल जग जायँ । हासुल भवैर कियाह बखानै —जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १५० ।

किक्—सब्बा स्त्री [अ०] ठोकर । पाँव का आघात ।

किकान(७)—सब्बा पुं [सं० के कारण] घोड़ा । अथवा । उ०—जसवत साजवान । चड्डे किकान करि करि गराज ।—सूदन (शब्द०) ।

किक—सब्बा पुं [सं०] १ नीलकंठ पक्षी । २ नारियल ।

किकियान(७)—सब्बा पुं [सं० के कारण = के कारण देश का घोड़ा] घोड़ा । उ०—चलहि कलापि कमान चलत धनवान है । परत सत्रु रणभूमि फुटि किकियान है ।—प० रासो०, पृ० ८ ।

किकियाना—कि० अ० [अनु०] १ की की या कें क का शब्द करना । २ चिलाना । ३. रोना । चीखना ।

किकोरी—सब्बा पुं [देश०] एक प्रकार का पीघा ।

किकयान(७)—सब्बा पुं [सं० के कारण = के कारण देश का घोड़ा] एक प्रकार का घोड़ा । उ०—प्रदह सहस सुभग किकयान । कनक भसै नग जरे पलान ।—नंद ग्र०, पृ० २२१ ।

किचकिच—सब्बा स्त्री [अनु० मू०] १ व्यर्थ का वाद विवाद । व्यर्थ की वकवाद । २ झगड़ा । तकरार । जैसे, —दिन रात की किचकिच अच्छी नहीं ।

कि० प्र०—करना ।—मचना ।—मचाना ।—होना ।

किचकिचाना—कि० अ० [हि० किचकिच से नामिक धातु] १ (क्रोध से) दाँत पीसना । जैसे—तुम तो व्यर्थ ही किचकिचाया करते हो । २ भरपूर बल लगाने के लिये दाँत पर दाँत रखकर दबाना । जैसे—उसने किचकिचाकर पत्थर उमाड़ा तब उमड़ा । ३ दाँत पर दाँत रखकर दबाना । जैसे—उसने किचकिचाकर काट लिया ।

किचकिचाहट—सब्बा पुं [हि०] किचकिचावे का भाव ।

किचकिची—सब्बा स्त्री [हि०] किचकिचाहट । दाँत पीसने की अवस्था । मुहा०—किचकिची बाँधना = (१) क्रोध से दाँत पीसना । (२) भरपूर बल लगाने के लिये दाँत पर दाँत रखकर दबाना ।

किचपिच—वि० [हि० गिचपिच] दे० 'गिचपिच' ।

किचडाना—कि० अ० [हि० कीचड़ से नामिक नाम०] (खाँख का) कीचड़ से भरना । कीचड़ से युक्त होना । जैसे—खाँख किचडाई है ।

किचन—सब्बा पुं [अ०] रसोईघर । उ०—यही हमारा डाइंग रूम है, यही बेड रूम और किचन भी यही हैं ।—संयासी पृ० १०३ ।

किचल—सब्बा पुं [देश०] कीड़ा । उ०—नरम लकड़ी किचल पकड़ी ।—दक्खिनी०, पृ० ४६७ ।

किचर-पिचर(७)—वि० [हि० गिचपिच] दे० 'गिचपिच' ।

किछु(७)†—सब्बा वि० [हि० कुछ] दे० 'कुछ' । उ०—धनि राजा तोर राज विसेखा । जेहि कि रजाउरि सब किछु देखा ।—जायसी ग्र०, पृ० ३४५ ।

किछौ(७)—कि० वि० [हि० किछु + औ (प्रत्य०)] कुछ भी । उ०—वरनि सिगार न जानेऊँ नखसिल जैस अमीग । जग तस किछी न पावौँ उपमा देऊँ ओहि जोग ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १२६ ।

किटकिट—सब्बा पुं [अनु० मू० अथवा सं० किटकिटाय] वादविवाद । किचकिच ।

किटकिटाना—कि० अ० [हि० किटकिट] से नामिक धातु] १ क्रोध से दाँत पीसना । २ दाँत के नीचे ककड़ की तरह कड़ा लगना । जैसे,—दाल बिनी नहीं गई है, किटकिटाती है ।

किटकिना—सब्बा पुं [सं० कृतक] १ वह दस्तावेज जिसके द्वारा ठेकेदार अपने ठेके की चीज का ठीका अपनी ओर से दूसरे असाभियों को देता है २ सोनारो का ठप्पा जिसपर ठीककर चाँदी सोने के पत्रो या तारो पर कुछ चित्र या वेलवूटे उभारते हैं । ३ चाल । चालाकी ।

यो०—किटकिनेवाजी = चालवाजी ।

किटकिनावाज—सब्बा पुं [हि० किटकिना + फा० वाज] किरायत से काम करनेवाला । चालाक । अल्पव्ययी ।

किटकिनादार—सब्बा पुं [हि० किटकिना + फा० दार (प्रत्य०)] वह पुरुष जो किसी वस्तु को ठेकेदार से ठेके पर ले ।

किटकिनेदार—सब्बा पुं [हि०] दे० 'किटकिनादार' ।

किटकिरा—सब्बा पुं [हि० किटकिना] दे० 'किटकिना' ।

किटि—सब्बा पुं [सं०] वाराह । सुअर [को०] ।

किटिका—सब्बा स्त्री [सं०] चमड़े या बाँस का बना कवच ।

किटिभ—सब्बा पुं [सं०] १ केशकीट । जूँ । २ खटमल [को०] ।

किटिभकुण्ठ—सब्बा पुं [सं०] एक प्रकार का कोड़ जिसमें चमड़ा सूखे कोड़े के समान काला और कड़ा हो जाता है ।

किटिम—सब्बा पुं [सं०] एक प्रकार का कुष्ठ रोग [को०] ।

किट्ट—सब्बा पुं [सं०] १ धातु की मँल । २ तेल इत्यादि में नीचे बैठो हुई मँल । ३. जमी हुई मँल ।

किट्टक—सब्बा पुं [सं०] दे० 'किट्ट' [को०] ।

किट्टाला—सब्बा पुं [सं०] १. एक ताअपात्र । २ लोहे का मोरचा [को०] ।

किट्टिम—सब्बा पुं [सं०] पानी जो साफ न हो [को०] ।

किडकना—कि० अ० [अनु०] चुपके से चला जाना । खिसकना ।

किणकिण—सब्बा पुं [अनु०] (किकिणी की) मधुर ध्वनि । उ०—कण कण कर ककण प्रिय किण् किण् रव किकिणी ।—गीतिका, पृ० ८ ।

किण—सब्बा पुं [सं०] १ घट्टा । २ खुरद । ३. मत्सा । ४ लकड़ी का कीड़ा । घुन [को०] ।

किणयक(७)—वि० [हि० किन + एक ?] किसी । उ०—वयण सगाई वंश, मिल्या सचाँ दोषण निदं । किणयक समै कवच, थरियाँ सपाण उत्यपं ।—रघु० रू०, पृ० १३ ।

किण्व—सब्बा पुं [सं] शराव में खमीर उठाने के लिये व्यवहृत एक प्रकार का बीज [को०] ।

किण्वी सब्बा पुं [सं किण्विन्] घोडा [को०] ।

कित०—क्रि० वि० [सं कुत्र, प्रा० कृत्य] १ कहाँ । २ किस ओर । किधर ।

कितक०—क्रि० वि० [सं कियत्क] कितना । किस कदर ।

कितकु०—वि० [सं कति] कितना । उ०—कितकु होन है कटक जैसे । चरनमध्य कसकत है कैसे ।—नद ग्र०—पृ० २३३ ।

कितना—वि० [सं कियत् से हिं०] [स्त्री कितनी] १ किस परिमाण मात्रा या सख्या का ? (प्रश्नवाचक) जैसे,—(क) तुम्हारे पास कितने रुपए हैं ? (ख) यह घी तौल में कितना है ?

यो०—कितना एक (परिमाण या मात्रा) = कितना । किउ परिमाण या मात्रा का । जैसे—कितना एक तेल खचं हुआ होगा ? कितने एक = किस सख्या में । जैसे,—कितने एक आदमी तुम्हारे साथ होंगे ।

२. अधिक । बहुत ज्यादा । जैसे—यह कितना बेहया आदमी है । कितना—क्रि० वि० १. किस परिमाण या मात्रा में ? कहाँ तक ?

जैसे—तुम हमारे लिये कितना दौड़ोगे ? २ अधिक । बहुत ज्यादा । जैसे—किनना समझते हैं पर वह नहीं मानता ।

कितनी—वि० [हिं० 'कितना' का स्त्री] अनेक । उ०—यो ही कितनियो को इस दामिनी की एक चमक दमक .. । प्रेमवन, भा० २, पृ० १२२ ।

कितनीक०—वि० [कितनी + एक] कितनी एक । उ०—द्रव्य की तो कितनीक बात है ।—दो सी वावन, भा० १, पृ० १५४ ।

कितनोक०—वि० [हिं० कितना + एक, व्रज कितनो + एक] उ०—चापासाई सों पूछी जो करज कितनोक भयो है ।—दो सी वावन, भा० १, पृ० १५३ ।

कितमक०—सब्बा पुं [फ्रा० कितमत] कर्ता । भाग्य । विधि । उ०—पूरव जनम तणइ सराप, कितमक लीव्या सो भोगवी, विण भोग्या नहीं छूट सी पाप ।—बी० रासो पृ० ३१

कितव—सब्बा पुं [सं] १ जुआरी । २. धूर्त । छली । ३ उन्मत्त । पागल । ४ खन । दुष्ट । ५. घतुरा । ६ गोरोचन ।

कितहुँ—सर्व० [सं कुत्रापि प्रयत्न हिं० कित + हुँ (प्रत्यय)] कहीं भी । उ०—चल्यो गयो तहुँ विप्र विप्रगति कितहुँ न अटक्यो ।—नद० ग्र० पृ० २०४ ।

किता—सब्बा पुं [अ० किता] १. सिलाई के लिये कपड़े की काट छांट । व्योत ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

२ काट छांट । ढंग । चाल । जैसे—(क) टोपी अच्छे किते की है । (ख) यह तो अजीबो किते का आदमी है । ३ सख्या आद । जैसे—दस किता मकान, चार किता खेत । पाँच किता दस्तावेज । ४ विस्तार का एक भाग । सतह का हिस्सा । ५ प्रदेश । प्राण । भूभाग ।

किना—वि० [हिं० कितना का सक्षिप्प रूप] दे० 'किनना' । उ०—किता हुआ दिग कवी समुझणहार मशेष—रघु० ह०, पृ० ११ ।

किताब—सब्बा स्त्री [वि० किताबी] १ पुस्तक । ग्रंथ । २ रजिस्टर । वहीखाता । ३. कुरान । उ०—ज्ञानी मोर अपरवल जाना । वेद किताब भरम हम साना—कवीर सा०, पृ० ८०७ ।

यो०—किताबखाना = पुस्तकालय । लाइब्रेरी । किताबफोश = पुस्तकें बेचनेवाला । पुस्तको का द्कानदार । पुस्तकविक्तेता । किताबवाला = जो लिखी बातों को प्रमाण मानता है । अनुभव को प्रमाण माननेवाला । उ०—किताबवालो को इन्हीं दोनों में बाँध लिया—कवीर सा०, पृ० ८६४ ।

कितावत—सब्बा स्त्री [अ०] लिखापट्टी । करना । प्रतिलिपि करना (को०) ।

किता वत—वि० [अ० किताव] १ किताव के आकार का । २. किताव सज्जी ।

यो०—किताबी इल्म = पुस्तकीय ज्ञान । किताबी कीड़ा = (१) वह कीड़ा जो पुस्तको को चाट जाता है । (२) वह व्यक्ति जो सदा पुस्तक ही पढ़ना रहता है । किताबी चेहरा = वह चेहरा जिसकी आकृति लवाई लिए हो । लंबोंतरा चेहरा ।

किनिक०—वि० [हिं० चिनक] दे० 'किन्नक' 'किन्ना' । उ०—कितिक वरम द्वारावति वसे ।—नद० ग्र०, पृ० २१६ ।

किते०—वि० [हिं० किना] कितना । अनिश्चित सख्या । उ०—अबले रे मनुष मानुमन सो देव दैत्य आगे किते ।—हम्मीर रा० पृ० १०६ ।

कितेक०—वि० [सं कियदेक] १ कितना । २ जिसकी संख्या निश्चित न हो । असंख्य । बहुत । उ०—किरवान वज्र सो विपन्न करिबे को डर आनि के कितेक आए सरन की गैल हैं ।—नूपण ग्र० पृ० ४६ ।

कितेव०—सब्बा स्त्री [अ० किताव] किताव । कुरान शरीफ । उ०—वेद कितेव ते भेद न्यारा रहा, वही तो आप हैं एक सोई—कवीर रे०, पृ० १२ ।

कितेवा०—सब्बा स्त्री [हिं० कितेव] दे० 'किताव' । उ०—ना खुदा कुरान कितेवा न खुदा नमाजे ।—सतवाणी०, भा० १ पृ० १५२ ।

कितेवा०—सब्बा पुं [अ० किताव] किताव या कुरान । उ०—किता पढ़ता तुझका अनता ।—कीर्ति०, पृ० ४० ।

कितै०—क्रि० वि० [सं कुत्र, प्रा० कृत्य] कहाँ । किस जगह ।

उ०—किसी शम्भु को दे राजपुत्री कितै ।—केशव (शब्द०) ।

कितो—वि० [सं कियत्] [स्त्री किती] कितना । उ०—कितो न गो कुन कुतवधू, काहि न केहि सिख दीन ?—विहारी (शब्द०) ।

किनो—क्रि० वि० 'कितना' ।

कितो—वि० [हिं० कितना] दे० 'कितना' । उ०—एक अड की भार सु कितो । परवतु सेस धरे सिर तितो ।—नद० ग्र०, पृ० २८२ ।

किनोऊ—वि० [हिं० कितो + उर (प्रत्यय)] किन्ना हो । उ०—कहैं श्री हरिदास पित्रा के जिनवर सो, तरफडाइ रह्यो उजिय को कितोऊ करि ।—पोद्दार अभि०, ग्रं० पृ० ३६० ।

विशेष—हिंदुस्तान में यह केवल वगीचो में बोया जाता है, जगनी नहीं मिलता। अरब और रूम आदि में यह बसत ऋतु में होता है, पर भारतवर्ष में जाड़े के दिनों में होता है। यूरोप के वगीचो में एक प्रकार का काहू बोया जाता है जिसकी पत्तियाँ पातगोभी की तरह एक दूसरी से लिपटी और बँधी रहती हैं और उनके सिरो पर कुछ कुछ बँगनी रगत रहती है। पश्चिम के देशों में काहू का साग या तरकारी बहुत खाई जाती है। बहुत से स्थानों में काहू के पौधे से एक प्रकार की घसीम पोछकर निकालते हैं जो पोस्ते की तरह तेज नहीं होती। इसमें गोभी की तरह एक सीधा डठल ऊपर जाता है जिसमें फूल और बीज लगते हैं। इसमें बीज दवा के काम में आते हैं। हकीम लोग काहू को रक्तशोधक मानते हैं। मल और पेशाब खोलने के लिये भी इसे देते हैं। काहू के बीजों से तेल निकाला जाता है। जो सिर के दर्द आदि में लगाया जाता है।

काहे७—कि० वि० [हि०] क्यो। किसिनिये।

यो०—काहे को किसिनिये? क्यो?

कि०—प्रव्य० [सं० किम] दे० 'किम'।

किंकनी किंकणीका—सद्वा श्री० [सं० किङ्कणी, किङ्कणीका] १ करघनी। २ एक प्रकार का खट्टा अमूर [को०]।

किंकनी७—सद्वा श्री० [सं० किङ्कणी] दे० 'किंकणी'। उ०—काठनी किंकनी कटि पीतावर की चटक (मटक) कुडल किरन गिरि रथ की अटक।—नद० ग्र०, पृ०, ३६३।

किंकर—सद्वा पु० [सं० किङ्कर] [श्री० किङ्करी] १ दाप। सेवक। नौकर।—प्रागे बढ़ बोला मैं प्रभुवर, किंकरकर लेगा यह कार्य।—साकेत, पृ० ३६६। २ राक्षसों की एक जाति जिसको हनुमान जी ने प्रमदावन को उजाड़ने समय मारा था।

किंकरता—सद्वा श्री० [सं० किङ्करता] सेवा। दासता। उ०—किंकरता करि रह्यो प्रकृति-पंकज चरनन की।—काशमीर० पृ० ४।

किंकरी—सद्वा श्री० [सं० किङ्करी] सेविका। उ०—तटिनी, यह तुच्छ किंकरी, सुख से क्यो न, बता वहीं गरी?—साकेत, पृ० ३४६।

किंकर्तव्यविमर्द—वि० [सं०] जिसे यह न सूझ पड़े कि अब क्या करना चाहिए। हक्का बक्का। भौचक्का। घबराया हुआ।

किंकिणिका—सद्वा श्री० [सं० किंकिणिका] दे० 'किंकिणी' [को०]।

किंकिणी—सद्वा श्री० [सं० किंकिणी] १ झुड़ घटिका। करघनी। जेहर। कमरकस। २ एक प्रकार की खट्टी दाख। ३ कटाय का पेड़। विककत वृक्ष।

किंकिन्—सद्वा श्री० [सं०] दे० 'किंकिणी'। मद गयब की चाल चलै कटि किंकिन नेवर की धुनि बाजै।—मति० ग्र०। पृ० ३४६।

किंकिनि—सद्वा श्री० [सं० किंकिणी] दे० 'किंकिणी'। उ०—घट किंकिनि मुरलि बाजै सख धुनि मान मन।—चरण० बानी, भा० २, पृ० १२२।

किंकनी—सद्वा श्री० [सं० किंकणी] दे० 'किंकणी'। उ०—रमना कांची किंकनी सूत्र मेखला जान।—प्रनेकार्य०, पृ० ३३।

किंकिर—सद्वा पु० [सं० किङ्किर] १ हाथों का मस्तक। २ कोकिन। ३ भौंरा। ४ घोड़ा। ५ कामदेव। उ०—नददास प्रेमी स्थाम परमि पद पकज कही, कालिह तै जू लोमरि भरि किंकिर बुनावे।—नर० ग्र० पृ० ३६०। ६ लाल रंग।

किंकिरा—सद्वा श्री० [सं० किङ्किरा] कधिर। खून [को०]।

किंकिरात—सद्वा पु० [सं० किङ्किरान] १ अशोक का पेड़। २ कटसरैया। ३ कामदेव। ४ सुपा। तोता।

किंकिरि—सद्वा श्री० [सं० किङ्किरि] कोयल [को०]।

किंकिरि—सद्वा पु० [सं० किङ्किरिन्] विककत का वृक्ष [को०]।

किंगरई—सद्वा पु० [देश०] लाजवत की जाति का एक कैटोला पौधा।

विशेष—इसकी पत्तियों के सीके ७-८ इंच लंबे और इनमें लगी हुई पत्तियाँ १ इंच लंबी होती हैं। यह घसाड़ सावन में फूलता है। फूल पहले लाल रहते हैं, फिर सफेद हो जाते हैं। इसकी पत्तियाँ और गीन दवा के काम में आते हैं। इसकी लकड़ी का कोयला बाख़्द बनाने के काम में आता है। यह भारतवर्ष में सर्वत्र होता है।

किंगरि७—सद्वा श्री० [हि० किंगरी] दे० 'किंगरी'। उ०—किंगरिय गति दिन रँग बजैहो।—माघवानन०, पृ० २०१।

किंगी—सद्वा श्री० [हि० किंगरी] दे० 'किंगरि'। उ०—तगा राज राजा भा जोगी। और किंगी कर गहे विधोगी।—जायसी० ग्र० (गुप्त) पृ० १२६।

किंगाना७—कि० अ० [हि०] शब्द करना। बोलना। उ०—भूली सारस सड़ड़ जाग्रमु करह किगाइ। घाई घाई बन चढो, पागे दाधी माय।—ढोला० दू० ३८८।

किंगिरी—सद्वा श्री० [सं० किन्नरी] छोटा चिकारा। छोटी सारंगी जिसे बजाकर एक प्रकार के जोगी भीष मांगते हैं। उ०—किंगिरी गहे जो हुत वैरागी। मरती वार वही धुन लागी।—जायसी (शब्द०)।

किंगोरा—सद्वा पु० [देश०] दाकहल्दी की जाति की ४-५ हाथ ऊँची एक कटोली भाड़ी जो जमीन पर दूर तक नहीं फैलती, सीधी ऊपर जाती है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ ४-५ अंगुल लंबी होती हैं जिनके किनारे पर दूर दूर दाँत होते हैं। इसमें छोटे छोटे फूल और लाल या काली फलियाँ लगती हैं जो खाई जाती हैं इसमें भी वे ही गुण हैं जो दाकहल्दी में हैं। इसे कितमोरा और चित्रा भी कहते हैं।

किंचन—सद्वा पु० [सं०] १ थोड़ी वस्तु। असमग्र वस्तु। २ पलाश।

किंचन्य—सद्वा पु० [सं० किंचन्य] धन। संपत्ति [को०]।

किंचित्—वि० [सं० किंचित्] कुछ। प्रल्प। जरा सा।

यो०—किंचिन्मात्र = थोड़ा भी।

कास्टा^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० काष्ठा] दे० 'काष्ठा' । उ०—प्रास्ता कास्टा ककुम दिनि गो हरीत इहि गेर ।—ग्रनेकार्यं०, पृ० ३६ ।

कास्टिंग वोट—सञ्ज्ञा पुं० [ग्र०] किसी सभा या परिषद के अध्यक्ष या सभापति का वोट । निर्णायक वोट । जैसे,—प्रमुख प्रस्ताव के पक्ष में २० और विपक्ष में भी २० ही वोट आए । सभापति ने पक्ष में अपना कास्टिंग वोट देकर प्रस्ताव पास कर दिया ।

विशेष—इसका उपयोग किसी विषय या प्रश्न का निर्णय करने के लिये उस समय किया जाता है जब सभासद दो समान भागों में बंट जाते हैं, अर्थात् जब आधे सदस्य पक्ष में और आधे विपक्ष में होते हैं, तब सभापति किसी पक्ष में अपना 'कास्टिंग वोट' देता है । इस प्रकार एक अधिक वोट से उस पक्ष की बात मान ली जाती है । यदि सभापति उस सभा या संस्था का सदस्य हो तो वह कास्टिंग वोट दे सकता है । सदस्य रूप से वह सदस्यों के साथ पहले ही वोट दे चुकता है ।

कास्टिक—वि० [ग्र०] वह क्षार जो चमड़े पर पड़कर उसे जला दे या आबले डाल दे । क्षारक ।

काहूँ^७—प्रत्य० [हि० कहे] दे० 'कहूँ' ।

काहूँ^१—क्रि० वि० [हि०] क्या ? कौन बन्तु ? उ०—का सुनाय विधि काहूँ सुनावा । का दिखाइ वह काहूँ दिखावा ।—तुलसी (शब्द०) ।

काहूँ^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] तृण । घास । उ०—दो मुँह से चरता है दाना वह कहूँ । व लेकिन नहीं लीद करने को राह ।—दक्खिनी, पृ० ३०२ ।

काहन—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] [स्त्री० काहिना] १ मन्त्रिष्यवक्ता । २. उपदेशक । ३. मुल्ला । मौनवी । उ०—कुमारी और कबूतर के बच्चों में से बलि लावे और काहन उसको बलिस्थान में लाकर उसका गला मरोड़ डाले ।—कबीर मं०, पृ० २८७ ।

काहर^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० काहारक] दे० 'काहर' । उ०—काहर कथन कितक कितक स्वानन मुप दृष्टत । विछी सँ विपंग मन्त्रवादी मिल लुटत ।—पृ० रा०, ६।१०५ ।

काहरज^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० क्वाय, प्रा० काड] काश । क्वाय । उ०—काहरज पीवी न ऊपद खाई ।—वीसल० रास, पृ० ६४ ।

काहल^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. बड़ा ढोल । २. [स्त्री० काहली] बिल्ला । ३. [स्त्री० काहली] मुर्गा । ४. अव्यक्त शब्द । (को०) । ५. कार । ६. कौघा । काक (को०) । ६. शब्द ध्वनि (को०) । ७. एक राजा (को०) ।

काहल^२—वि० [सं०] १. कठोर । उ०—स्तब्ध कठिन, कर्कस, परप, अरु, कठोर । दृढ काहल पुनि करायु जो होति तिनं तजि सील - नद० ग्र०, पृ० ११२ । शुष्क । सूखा । मुरझाया हुआ (को०) । ३. दुष्ट । घृत (को०) । ४. अधिक । विस्मृत । विज्ञान (को०) । ५. हानिकारक (को०) ।

काहल^३—^३उ—वि० [देश०] गंदा । पक भरा ।

काहला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. वरुण की स्त्री । २. एक अप्सरा का नाम । ३. सेना सवारी एक बड़ा ढोल (को०) ।

काहलि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शिव (को०) ।

काहली—सञ्ज्ञा स्त्री० [पुं०] युवती । तरुणी (को०) ।

काहा^७—सर्व० [हि० कहा=क्या] क्या । उ०—जाइ उत्तर अब देहों कहा । उर उपजा अति दाहन दाहा ।—मानस १।१४ ।

काहारक—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] एक जाति जिसका धन्य लोगो को पालकी में डोना है । कहार (को०) ।

काहानी^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कथानक, कथानिका, हि० कहानी] कहानी । कथा । उ०—पुरिस काहानी हजो (कहणो) जमु पत्यावे पुडु ।—कीर्ति०, पृ० ८ ।

काहापण—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कार्पापण] दे० 'कार्पापण' । उ०—ग्रीव इमने वाराहिपुत्र अश्विभूति ब्राह्मण के हाथ में चार हजार काहापणों के मूल्य से खरीदा खेन दिया कि इससे मेरे लेंछ में रहनेवाले चतुर्दिश मिल्सुसव को भोजन भिनता रहेगा ।—भा० ३० ह०, पृ० ७६० ।

काहि^७—सर्व० [हि०] १. किसको । किसे । २. किससे । उ०—काहि कहों यह जान न कोऊ ।—तुलसी (शब्द०) ।

काहिला—वि० [ग्र०] जो फुर्ती न हो । आलसी । सुस्ती । उ०—मिल जाय हिंद खाक में हम काहिलो को क्या ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १ पृ० ४८० ।

काहिली—सञ्ज्ञा स्त्री० [ग्र०] सुस्ती । आलस ।

काही^७—प्रत्य० [हि० कहें] जो । के लिये ।

काही^१—वि० [फा० काह, वा हि० काई] वास के रंग का । कालापन लिए हुए हरा ।

काही^२—सञ्ज्ञा पुं० एक रंग जो कालापन लिए हुए हरा होता है तथा नील, हल्दी और फिटकरी के योग से बनता है ।

काहीदा—वि० [फा०] छटा हुआ । कटा हुआ । कुश । उ०—काहीदा ऐसा हूँ मैं भी ढूँढ़ा करे न पाएगी, मेरी खातिर पीत भी मेरी बरसो सर टकराएगी ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ८५६ ।

काहु^७—सर्व० [हि० काहूँ] दे० 'काहूँ' । उ०—(क) काहु कापल काहु धोल, काहु सबल देल योन ।—कीर्ति०, पृ० २४ । (ख) मोलिय वर इन काहुव हावा । रेडुर चडइ न मोरेह माया ।—इंद्रा०, पृ० ३६ ।

काहूँ^१—सर्व० [हि०] कोई । किसी ने । उ०—पेर सुरा सोई पै पिया । लखै न कोई कि काहूँ दिया ।—जायसी ग्र०, पृ० ३३६ ।

काहूँ^२—सर्व० [हि० का+हूँ (प्रत्य०)] किसी । उ०—(क) जो काहूँ की देखहि विपनी ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) धार लगै तरवार लगै पर काहूँ कीकाहूँ सो भाँखि लगे ना (शब्द०) ।

विशेष—व्रजभाषा के 'को' शब्द का विभक्ति लगने के पहले 'का' रूप हो जाता है । इसी 'का' में निश्चयार्थक 'हूँ' विभक्ति के पहले लग जाता है, जैसे, काहूँ ने, काहूँ को, काहूँ सो आदि ।

काहूँ^३—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] गोभी की तरह का एक पौधा जिसकी पत्तियाँ लंबी, दलदार और मुलायम होती हैं ।

खूब तरे, पर सुंदरवास सहै दुख भारी । डासन छाड़ि कौ कासन
ऊपर, आसन मारि पै आसन न मारी ।—सुंदर प्र०, भा० २,
पृ० १२३ ।

कास^१—सझा ली० [देश०] फोडी । उ०—जला इश्क की बात मे
मालो घन कू । रखी कास ना पास हरगिज कफन कू ।—
दक्खिनी०, पृ० २५७ ।

कासहृत्—वि० [स०] खांसी दूर करनेवाला ।

कासकद—सझा पु० [स० कासकन्द] कसेरू

कासकुठ^१—वि० [स० कासकुण्ठ] खांसी का रोगी [को०]

कासकुठ^२—सझा पु० यग । यमराज [को०] ।

कासघ्न^१—वि० [स०] खांसी का निवारक । खांसी दूर करनेवाला [को०]

कासघ्न^२—सझा पु० वहेडा [को०] ।

कासनी—सझा ली० [फा०] १ पीघा जो हाथ डेंड हाथ ऊँचा होता
है और देखने मे बहुत हरा भरा जान पड़ता है ।

विशेष—इसकी पत्नियाँ पानकी की छोटी पत्तियों की तरह होती
हैं, डठलो मे तीन तीन चार चार अंगुल पर गाँठ होती हैं,
जिसमे नीले फूलो के गुच्छे लगते हैं । फूलो के झड़ जाने पर
उनके नीचे मटमने रंग के छोटे छोटे बीज पड़ते हैं । इस पीघे
की जड़, डठल और बीज सब दवा के काम में आते हैं । हकीमो
के मत मे कासनी का बीज द्रावक शीतल और भेदक है तथा
उसकी जड़ गर्म, ज्वरनाशक और बलवर्धक है । डाक्टरों के
अनुसार इसका बीज रजसावक, बलकारक और शीतल तथा
इसका चूर्ण ज्वरनाशक है । कासनी यगीचो मे बोई जाती है ।
हिंदुस्तान मे अच्छी कासनी पजाब के उत्तरी भागो मे तथा
कश्मीर मे होती है । पर यूरोप और साइबेरिया आदिकी
कासनी औषध के लिये बहुत उत्तम समझी जाती है । यूरोप मे
लोग कासनी का साग खाते हैं और उसकी जड़ को कढ़वे के
साथ मिलाकर पीते हैं । जड़से कहीं कहीं एक प्रकार की तेज
शराब भी निकालते हैं ।

२ कासनी का बीज । ३. एक प्रकार का नीला रंग जो कासनी
के फूल के रंग के समान होता है ।

विशेष—यह रंग चढ़ाने के लिये कपडे को पहले शराब मे फिर
नील मे और फिर खटाई मे डुबाते हैं ।

४ नीले रंग का कंवूतर ।

कासमर्द—सझा पु० [स०] कसौदा ।

कासर^१—सझा पु० [स०] [ली० कासरी] भैंसा । महिप ।

कासर^२—सझा ली० [देश०] वह काली भेड़ जिसके पेट के रोएँ
लाल रंग के होते हो ।

कासा^१—सझा ली० [स०] १ खांसी । २ छींक [को०] ।

कासा^२—सझा पु० [फा० कासह] १ प्याला । कटोरा । उ०—हाथ
मे लिया कासा, तब भीख का क्या साँसा ?—(शब्द०) । २
आहार । भोजन । उ०—कासा दीजिए वासा न दीजिए । २.
दरियाई नारियल का वह मिठापात्र जो प्रायः मुसलमान
फकीरो के पास रहता है । कवकोल ।

यो०—कासाए गवाई = भीख मागने का पात्र । कासासर =

कपाल । घोपड़ी कासालेस = (१) प्याला चाटनेवाला ।

(२) लालची । लोनी । (३) चाटुकार । युगामदी ।

कासार—सझा पु० [सं०] १ छोटा तालाव । ताल । पोथरा । उ०—
तखि कपास को नासरी त्रिलखि न घर हरि धार । विसनी
भजहु पलाम हैं सजि सुखे कासार ।—म० सप्तक, पृ० २०६ ।
२ २० रगण का एक दंडक मूल । ३ एक प्रकार का
पकवान । ४ भीन । हृद । (को०) ।

कासालु—सझा पु० [स०] एक प्रकार का कद या गालू ।

कासिका^१—सझा ली० [सं० काशिका] ६० 'काशिका' । उ०—परम
रम्य सुधराणि कासिका पुरी सुहावनि ।—रत्नाकर भा० १
पृ० ६४ ।

कासिका^२—सझा ली० [सं०] खांसी [को०] ।

कासिद^१—सझा पु० [ग्र० कासिद] सदेमा ने जानेवाला । हरकारा ।
दूत । पथवाहक । उ०—य अशक माँछो कासिद किस तरह
यक दम नहीं यमता । दिले वेताव का शायद निते मकतूब
जाता है ।—कविता को०, भा० ४, पृ० २१ । ५

कासिद^२—वि० इच्छा या ममिलापा रखनेवाला ।

कासिपु—सझा पु० [सं० कश्यप] ६० 'कश्यप' । उ०—मन तेण
दियो मारीच मुनि उणवो कासिप ऊनो । घर नूर प्रकासी
प्रीत घर मुर तेण घर सपनो ।—रा० ६०, पृ० ७ ।

कासी^१—सझा ली० [सं० कासी] ६० 'काशी' । उ०—महामय जोइ
जपत महेशू । कासी मुक्ति हेतु उपदेशू ।—मानस १, १६ ।

कासी^२—वि० [ग्र० वास, राज० कासा, खासा] अधिक । वास ।
उ०—सीगण काइ न सिरजियाँ प्रीतम हाय करत । काठी
साहत मूठि माँ कोडी कासी सत ।—डोला०, दू० ४१६ ।

कासी^३—वि० [सं० कासिन्] कास या खांसी के रोग से पीड़ित [को०]

कासीनाथ^१—सझा पु० [सं० काशीनाथ] काशीनाथ । विष्वनाथ ।
महादेव । उ०—कासीनाथ विसेस्वर दाता, तुम सब जा के
विधाता ।—घनानंद, पृ० ५०१ ।

कासीवास—^१—सझा पु० [सं० कासीवास] काशीपुरी मे निवास ।
काशी मे रहना । उ०—ग्राराम से काशीवास करो ।—रगभूमि,
भा० २, पृ० ४६४ ।

मुहा०—कासीवास हो जाना या होना = (१) काशी मे रहने, हुए
मृत्यु प्राप्त करना । काशी मे मरना । गंगालाम होना ।
(२) मोत होना । स्वर्गवास होना ।

कासीस—सझा पु० [सं०] हीरा फसीत [को०] ।

कासुंदा^१—सझा पु० [सं० कासमर्द, प्रा कासमर्द] [ली० कासुंदो] पुं०
'कसौदा' ।

कासूति—सझा ली० [सं०] १ पगडंडी । २. पतला रास्ता (गृह्यसूत्र) ।
२. गुप्त मार्ग (को०) ।

कासेयक—वि० [सं० काशिक अथवा काशेय] काशी मे बना हुआ
(रेशमी वस्त्र) । उ०—काशी का चदन और काशी के सूक्ष्म
कासेयक वस्त्र ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २३८ ।

कास्केट—सझा पु० [ग्र० फस्केट] पेटी । सड़कड़ी । डिब्बा । जैसे,—
अग्निबनपत्र चौकी के एक सुंदर कास्केट मे रखकर उनके
अर्पण किया गया ।

८. मास [को०] ।

यौ०—काश्यपनदन = गरुड ।

काश्यपि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. अरुण, जो गरुड के बड़े भाई कहे गए हैं । २. गरुड (को०) ।

काश्यपी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथ्वी । जमीन । २. प्रजा ।

काश्यपेय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । दिवाकर । देवता । २. पक्षिराज । गरुड । ४. दासक नाम का सारथी [को०] ।

काश्यरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'काश्मरी' [को०] ।

काप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. सान का पत्थर । २. एक ऋषि । ३. कसौटी । निकप (को०) ।

कापण—वि० [सं०] कच्चा । अपरिपक्व [को०] ।

कापाय^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कापायी] १. हरे, बहेड़े, कटहल, आम आदि कसली वस्तुओं में रंगा हुआ । २. गेरुआ । उ०—चितित से कापाय वसनधारी सत्र मंत्री ।—साकेत पृ० ४१३ ।

कापाय^२—सञ्ज्ञा पुं० १. हरी, बहेड़ा, आम, कटहल आदि कसली वस्तुओं में रंगा हुआ वस्त्र । २. गेरुआ वस्त्र ।

काष्ठ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. लकड़ी । काठ । २. ईंधन । ३. छड़ी [को०] । ४. लंबाई नापने का एक साधन या औजार [को०] ।

काष्ठक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अगर । एक सुगन्धित लकड़ी (को०) ।

काष्ठकदली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कठकेला ।

काष्ठकीट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] घुन (को०) ।

काष्ठकुट्ट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कठफोड़वा नामक पक्षी ।

काष्ठकुट्टाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नाव का पानी निकालने और उनके पेंदे को साफ करने का औजार [को०] ।

काष्ठकूट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'काष्ठकुट्ट' [को०] ।

काष्ठकौशिक^१—वि० [सं०] मूर्ख [को०] ।

काष्ठकौशिक^२—सञ्ज्ञा पुं० काठ का उल्लू । उ०—यदि कोई व्यक्ति भ्रमिज्ञान याकुतल की आध्यात्मिक व्याख्या करे, मेघ की यात्रा को जीवात्मा का परमात्मा में लीन होने का साधन पथ बतावे, तो कुछ लोग तो विरक्ति से मुंह फेर लेंगे, पर बहुत से लोग आखि फाड़कर काष्ठकौशिक की तरह टाकते रह जायेंगे ।—चिन्तामणि, भा० २ पृ० ८६ ।

काष्ठततु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० काष्ठततु] काठ के भीतर रहने वाला कीड़ा ।

काष्ठतप्तक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बड़ई [को०] ।

काष्ठदारु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] देवदारु । देवदार [को०] ।

काष्ठद्रु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पलास वृक्ष [को०] ।

काष्ठपुत्तलिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. काठ की भूमि । २. कठपुतली [को०] ।

काष्ठपूलक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] छड़ियों या काठ के चुड़ों का ढेर [को०] ।

काष्ठप्रदान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चिता बनाना । चिता के लिये लकड़ी चुनना [को०] ।

कण्ठभंगी—सञ्ज्ञा पुं० [काष्ठभङ्गिन्] १. कठफोड़वा । २. घुन [को०] ।

काष्ठभार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] लकड़ियों का विशेष भार या वजन [को०]

काष्ठभारिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. लकड़ी ढोनेवाला मजदूर । २. लकड़हारा [को०] ।

काष्ठमठी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] चिता । सरा ।

काष्ठमल्ल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] भरयी । बाँस या लकड़ी का बना वह ढाँचा जिसपर शव को रखकर श्मशान पर पर ले जाते हैं [को०]

काष्ठयूप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] लकड़ी का खम्भा, जो यज्ञपशु को बाँधने के लिये गाड़ा जाता था । उ०—देखा जैसे, चौक उन्होंने प्रथम बार पृथ्वी पर, पशु बनकर नर त्रैधा हुआ है काष्ठयूप में कसकर ।—दैतकी, पृ० २ ।

काष्ठरजनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० काष्ठरजनी] दाढ़ हल्दी ।

काष्ठलेखक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] घुन ।

विशेष—घुन लकड़ियों में काट काटकर देड़ी मेड़ी लकीरे वा चिह्न डालते हैं जिन्हें घुणाक्षर कहते हैं ।

काष्ठलोही—सञ्ज्ञा पुं० [सं० काष्ठलोहिन्] लोहे से मढ़ी लाठी या गदा [को०] ।

काष्ठवाट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] लकड़ी की बनी हुई दोवार । काष्ठमिर्हि [को०] ।

काष्ठसघात—सञ्ज्ञा पुं० [सं० काष्ठसङ्घात] लकड़ियों का वेड़ा (को०) ।

काष्ठा—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] १. हृद । अवधि । उच्चनन चोटी या ऊँचाई ।

उत्कर्ष । ३. १८ पल का समय या एक कला का ३०वाँ भाग । ४. चंद्रमा की एक कर्मा । ५. घुड़दोड़ का मैदान या दौड़ लगाने की सड़क । ६. दक्ष की एक कन्या का नाम जो कश्यप को व्याही थी । ७. दिशा । अग्नि । तरफ । ८. स्थिति । ९. चरम स्थिति या अंतिम सीमा (को०) । १०. गतव्य लक्ष्य (को०) । १२. आकाश में वायु और मेघ का पथ (को०) । १२. समय का एक परिमाण । कला [को०] । १४. सूर्य (को०) । १५. पीला रंग (को०) । १६. कदव वृक्ष (को०) । १७. रूप । आकार । काठी (को०) ।

काष्ठावुवाहिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं० काष्ठावुवाहिनी] काठ का जलपात्र [को०] ।

काष्ठागार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] काठ का बना घर । कठघरा । काष्ठगृह । [को०] ।

काष्ठिक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] लकड़हारा [को०] ।

काष्ठिक^२—वि० काठ से सवध रखनेवाला । काठ का [को०]

काष्ठिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] चूनी । काष्ठखंड । काठ का छोटा टुकड़ा [को०] ।

काष्ठिय—वि० [सं०] १. काठ का बना । २. काठ से सवध रखनेवाला [को०] ।

काष्ठीला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कदली । केला [को०] ।

कास^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. खाँसी । २. सहिजन का पेड़ । ३. छींक (को०) ।

यौ०—कासणो = एक कंडेली भूँटी जो खाँसी की दवा के नाम आती है । कासनाशिनी = खाँसी रोग हरनेवाला एक पौधे का नाम ।

कास^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कास] दे० 'कास' । उ०—नूतन सई रहि

मुहा०—काशी (कासी) करवट लेना = (१) काशी करवट नामक तीर्थ में गला कटवाकर मरना। प्राणत्याग करना। उ०—सूरदास प्रभु जो न मिलेंगे लेहीं करवट कासी।—सूर० (शब्द०)। (२) कठिन दुःख सहना। काशी करवट लेना = दे० 'काशी करवट लेना'। उ०—जो कोई जावे हिमालय गले काशी करवट लेकर मरे।—दक्खिनी०, पृ० १६।

काशीखंड—सब्बा पुं० [सं० काशीखण्ड] स्कंद नामक महापुराण का एक खंड, जिसमें स्कंद द्वारा काशी का माहात्म्य वर्णित हुआ है।

काशीनाथ—सब्बा पुं० [सं०] विश्वनाथ। शिव। ईश्वर [को०]।

काशीफल—सब्बा पुं० [सं० काशफल] कुम्हड़ा।

काशीवास—सब्बा पुं० [सं०] १ काशी में निवास करना २ सन्यास लेना। ३ मृत्यु पाना। देहत्याग करना।

काशीराज—सब्बा पुं० [सं०] दे० 'काशिराज' [को०]।

काशीश—सब्बा पुं० [सं०] १ एक उपधातु का नाम। २ शिव। विश्वनाथ [को०]।

काशू—सब्बा स्त्री० [सं०] बरन्डी। माला।

काशूकार—सब्बा पुं० [सं०] सुगरी का पेड़। पूष फल का वृक्ष [को०]।

काशेय—वि० [सं०] १ काशी सबधी। २ काशी में उत्पन्न [को०]।

काश्त—सब्बा स्त्री० [फा०] १ खेती। कृषि।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२ जमींदार की कुछ वार्षिक लगान देकर उसकी जमीन पर खेती करने का स्वत्व।

मुहा०—काश्त लगना = वह अवधि पूरी होना जिसके बाद किसी काश्तकार को किसी खेत पर दखीलकारी का हक प्राप्त हो जाय।

काश्तकार—सब्बा पुं० [फा०] १ किसान। कृषक। खेतिहर। २ वह मनुष्य जिसने जमींदार को कुछ वार्षिक लगान देने की प्रतिज्ञा करके उसकी जमीन पर खेती करने का स्वत्व प्राप्त किया हो।

विशेष—साधारणतः काश्तकार पाँच प्रकार के होते हैं, शरह, मुएग्रन, दखीलकार, गैर दखीलकार, साकितुल-मालकियत और शिकमी। शरह मुएग्रन वे हैं जो दवामी बदोबस्त के समय से बराबर एक ही मुकरर लगान देते आए हो। ऐसे काश्तकारों की लगान बढ़ाई नहीं जा सकती और वे बेदखल नहीं किए जा सकते। दखीलकार वे हैं जिन्हें बारह वर्ष तक लगातार एक ही जमीन जोतने के कारण उनपर दखीलकारी का हक प्राप्त हो गया हो और जो बेदखल नहीं किए जा सकते। गैर दखीलकार वे हैं जिनकी काश्त की मुद्दत बारह वर्ष से कम हो। साकितुल मालकियत वह है जो उसी जमीन पर पहले जमींदार की हैसियत से सीर करता रहा हो। शिकमी वह है जो किसी दूसरे काश्तकार से कुछ मुद्दत तक के लिये जमीन लेकर जोते।

काश्तकारी—सब्बा स्त्री० [फा०] १ खेतीबारी। किसानी। २ काश्तकार का हक। ३ वह जमीन जिसपर किसी को काश्त करने का हक हो।

काश्मकराष्ट्रक—सब्बा पुं० [सं०] हीरों के अनेक भेद या प्रकार [को०]। काश्मरी—सब्बा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष।

विशेष—इसके पत्ते पीपल के पत्ते से चौड़े होते हैं और इसके कई अंगों का व्यवहार औषधि रूप में होता है। वि० दे० 'गमारी'।

काश्मर्य—सब्बा पुं० [सं०] दे० 'काश्मरी' (को०)।

काश्मत्य—सब्बा पुं० [सं०] निराशा। मस्तिष्क का अव्यवस्थित होना [को०]।

काश्मीर^१—सब्बा पुं० [सं०] १ एक देश का नाम। दे० 'काश्मीर'। २

काश्मीर का निवासी। २ काश्मीर में उत्पन्न वस्तु। ४ पुष्कर मूल। ५ केसर। ६ सोहागा।

काश्मीर^२—वि० काश्मीर में उत्पन्न। काश्मीर का।

काश्मीरक, काश्मीरिक—वि० [सं०] काश्मीर देश में उत्पन्न [को०]।

काश्मीरज—सब्बा पुं० [सं०] केसर [को०]।

काश्मीरजन्मा—सब्बा पुं० [सं०] काश्मीरजन्मन् [केसर] [को०]।

काश्मीर पक(पु)—सब्बा पुं० [सं०] काश्मीरपङ्क [कस्तूरी]। मृगमद [को०]।

काश्मीरा—सब्बा पुं० [सं०] काश्मीर १ एक प्रकार का मोटा ऊनी कपड़ा। २ एक प्रकार का अंगूर।

काश्मीरी^१—वि० [सं०] काश्मीर + ई १ काश्मीर देश सबधी। काश्मीर देश का। २ काश्मीर देश का निवासी।

काश्मीरी^२—सब्बा पुं० रबर का पेड़। वोर। लेसू।

काश्मीर्य—सब्बा पुं० [सं०] केसर [को०]।

काश्य—सब्बा पुं० [सं०] १ मदिरा। शराब। २ महाभारत के अनुसार एक राजा का नाम [को०]।

काश्यप^१—वि० [सं०] १ काश्यप प्रजापति के वंश या गोत्र का। काश्यप सबधी। २ जैनमतानुसार महास्वामी के गोत्र का।

काश्यप^२—सब्बा पुं० १ बौद्धमतानुसार एक बुद्ध जो गौतम बुद्ध से पहले हुए थे। २ रामचंद्र की सभा के एक सभासद। ३ कणाद मुनि (को०)। ४ एक प्रकार का मृग (को०)। ५ एक गोत्र का नाम जो काश्यप ऋषि के वंशजों में चला (को०)। ६ एक मुनि का नाम (को०)। ७ विपविद्या का एक विद्वान् जिसका उल्लेख महाभारत में विस्तार से हुआ है।

विशेष—कहा गया है कि जब शमीक के पुत्र शृगो ऋषि ने राजा परिक्षित को सातवें दिन तक्षक द्वारा बस लिए जाने का शाप दिया तब घन के लोभ से उन्हें बचाने के लिये यह ब्राह्मण हस्तिनापुर चल दिया। रास्ते में तक्षक से उसकी भेंट हो गई। तक्षक के पूछने पर इसने हस्तिनापुर जाने का प्रयोजन उसे बताया। इसकी सामर्थ्य की परीक्षा लेने के लिये उसने एक विशाल वट वृक्ष को ज़रकर बस लिया। उसमें विप के प्रभाव से ज्वालाएँ उठने लगीं। उसके जन जाने पर उसकी राख हाथ में लेकर ब्राह्मण ने मंत्र पढ़ा और वह वृक्ष फिर उसी प्रकार ज्यों का त्यों हो गया। यह देकर तक्षक ने बहुत सा धन देकर उस ब्राह्मण को वहीं से छोटा दिया।

कोई कोई इस काव्यलिङ्ग को हेतु अलंकार के अतर्गत ही मानते हैं, अलग अलंकार नहीं मानते।

काव्यवस्तु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] काव्य का विषय। काव्य में वर्णित मुख्य बात। उ०—सच्चो स्वामाविक रहस्य भावनावाले और साप्रदायिक या सिद्धांती रहस्यवादी की पहचान के लिये काव्य वस्तु का भेद आरंभ में ही हम दिखा आए हैं।—चितामणि, भा० २, पृ० १३६।

काव्यशास्त्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] काव्यलक्षण सवधी विवेचन। काव्य की समीक्षा। उ०—इस प्रकार के मिलन को काव्यशास्त्र में वियोग में संयोग कहा है।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १०३।

काव्यशिष्टता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] काव्यमर्यादा। काव्य सवधी संस्कृति। उ०—ऐसे भावोद्गार भी भद्देपन से खाली नहीं, और काव्य-शिष्टता के विरुद्ध है।—रस०, पृ० १२३।

काव्यशोभाकर—वि० [सं०] काव्य सर्वधी सौंदर्य बढ़ानेवाला। उ०—आचार्यों ने भी अलंकारों को 'काव्यशोभाकर' 'शोभातिशायी' आदि ही कहा है।—रस०, पृ० ५२।

काव्यसमीक्षक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] काव्य का आलोचक। काव्य का सम्यक् अध्ययन करके उसके गुणों और दोषों पर विचार प्रकट करनेवाला व्यक्ति। उ०—पाश्चात्य काव्यसमीक्षक किसी वर्णन के जातू पक्ष और ज्ञेय पक्ष अथवा विषय पक्ष और विषय पक्ष दो पक्ष लिया करते हैं।—रस०, पृ० १२२।

काव्यहास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्रहसन जिसका अभिनय देखने से अधिक हँसी आती है।

काव्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. पूतना। २. बुद्धि।

काव्यानुमान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] काव्य विषयक अनुमान। काव्य का ज्ञान। उ०—मेरा काव्यानुमान यदि न बढ़ा ज्ञान जहाँ का रहा।—अपरा०, पृ० १६३।

काव्याभरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] काव्यालंकार। काव्यसंवधी गुण। उ०—यह दर्शनशासित प्रेम गीति, अनुरूप कल्पना और नए काव्याभरण का योग पाकर युग की एक प्रतिनिधि कृति बन गई।—नया०, पृ० १५०।

काव्याभास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह काव्यरचना जो पाठक या श्रोता को प्रभावित न कर सके। जो काव्य सा प्रतीत हो किंतु वस्तुतः काव्य न हो।

काव्यार्थ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कविस्वयं विचार या सूक्त [को०]।

यो०—काव्यार्थचोर—किसी दूसरे की अच्छी सूक्त को अपनी कविता में जड़ देनेवाला।

काव्यालंकार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० काव्यालङ्कार] काव्यसवधी अलंकार। वे अलंकार जिनका काव्य में प्रयोग मिलता है।

काव्योपपत्ति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अर्थोपपत्ति अलंकार।

काश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार की घास। काँस। २ खाँसी। ३ एक प्रकार का चूहा। ४, एक मुनि का नाम। ६ शोभा। दीप्ति। उज्ज्वलता [को०]।

काश—अव्य० [फा०] दुःख और चाह आदि को व्यक्त करनेवाला पद। अप्रपञ्च इच्छा और प्रार्थना के स्थान पर बहु शब्द प्रयुक्त होना

है। खुदा करती। उ०—दुवदू मारे शर्म के हमारी आँखें हो न उठती थी। आह! काश मालूम हो जाता किस बेरहम ने तुझपर कात्तिन वार किया।—काया०, पृ० ३३५।

काशक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'काश' [को०]।

काशकृत्स्न—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक सकृत् वैयाकरण का नाम [को०]।

काशाना—सञ्ज्ञा पुं० [फा० काशानह] छोटा सा घर जिसे शीशे आदि से सजाया जाय। उ०—तुममें झनक गर नहीं तो किससे रोशन यह काशाना है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५६०।

काशि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ तेज। प्रकाश। २. सूर्य। ३ मुट्ठी। ४. काशी [को०]।

काशिक—वि० [सं०] १. काशी का बना हुआ। २. रेशमी [को०]। **काशिक**—सञ्ज्ञा पुं० रेशमी वस्त्र [को०]।

काशिका—वि० [सं०] १. प्रकाश करनेवाली। २. प्रकाशित। प्रदीप्त।

काशिका—सञ्ज्ञा स्त्री० २ काशीपुरी। १ जयादित्य और वामन की बनाई हुई पाणिनीयव्याकरण पर एक वृत्ति।

विशेष—राजतरंगिणी में जयापीठ नामक राजा का नाम आया है, जो ६६७ शकाब्द में कश्मीर के सिंहासन पर बैठा था और जिसके एक मन्त्री का नाम वामन था। लोग इसी जयापीठ को काशिका का कर्ता मानते हैं। पर मैक्समूलर साहब का मत है कि काशिकार जयादित्य कश्मीर के जयापीठ से पहले हुआ है, क्योंकि चीनी यात्री इत्सिंग ने ६१२ शकाब्द में अपनी पुस्तक में जयादित्य के वृत्तिसूत्र का उल्लेख किया है। इस विषय में इतना समझ रखना चाहिए कि कल्हण के दिए हुए सब्द बिल्कुल ठीक नहीं हैं। काशिका के प्रकाशक वालशास्त्री का मत है कि काशिका का कर्ता बौद्ध था, क्योंकि उसने मंगलाचरण नहीं लिखा है और पाणिनि के सूत्रों में फेरफार किया।

यो०—काशिकाप्रिय—धन्वंतरि। काशिकावृत्ति—काशिका।

काशिनाथ, काशिप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शिव। विश्वनाथ [को०]।

काशिराज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ काशी का राजा। २ दिवोदास। ३. धन्वंतरि।

काशी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तरीय भारत की एक नगरी जो वरुणा और अस्सी नदी के बीच गंगा के किनारे बसी हुई है और प्रधान तीर्थस्थान भी है। वाराणसी। बनारस।

विशेष—काशी शब्द का सबसे प्राचीन उल्लेख शुक्लयजुर्वेदीय शतपथ ब्राह्मण और ऋग्वेद के कौशीतक ब्राह्मण के उपनिषद् में पाया जाता है। रामायण के समय में भी काशी एक बड़ी समृद्ध नगरी थी। ईसा की ५वीं शताब्दी में जब फाहियान आया था, तब भी वाराणसी एक विस्तृत प्रदेश की प्रसिद्ध नगरी समझी जाती थी। यह सात प्रसिद्ध तीर्थपुरियों में गिनी गई है।

काशीकरवट—सञ्ज्ञा पुं० [सं० काशी + सं० करवट, प्रा० करवट] काशीस्थ एक तीर्थ स्थान जहाँ प्राचीन काल में लोग घारे के नीचे कटकर अपने प्राण देना बहुत प्रण्य समझते थे। दे० 'करवट'।

कावा—सङ्घा पुं० [का०] घोड़े को एक वृत्त में चक्कर देने की क्रिया ।
क्रि० प्र०—काटना ।—खाना ।—देना ।—मारना ।

मुहा०—कावा काटना = (१) एक वृत्त में दौड़ना । चक्कर खाना ।
चक्कर मारना । (२) आँख बचाकर दूसरी ओर फिर निकल
जाना । कावा देना = वृत्त में दौड़ाना । चक्कर देना ।
(घोड़े को) कावे पर लगाना = (घोड़े को) कावा या चक्कर
देना ।

कावार—सङ्घा पुं० [स०] शैवाल । सेवार [को०] ।

कावारी—सङ्घा स्त्री० [स०] बिना डंडे की छतरी या छाता [को०]

कावृक—सङ्घा पुं० [स०] १ कुक्कुट । ताम्रचूर्ण । मुरगा । २ चक्र-
वाक । चकवा पक्षी [को०] ।

कावेर—सङ्घा पुं० [स०] केसर [को०] ।

कावेरी—सङ्घा स्त्री० [स०] १ दक्षिण की एक नदी जो पश्चिमी घाट
से निकलकर बंगाल की खाड़ी में गिरती है । २. संपूर्ण जाति
की एक रागिनी । ३. वेश्या । ४. हल्दी ।

काव्य—सङ्घा पुं० [स०] १ वह वाक्य रचना जिससे चित्त किसी रस
या मनोवेग से पूर्ण हो । वह कला जिसमें चुने हुए शब्दों के
द्वारा कल्पना और मनोवेगों का प्रभाव डाला जाता है ।

विशेष—रसगगाधर ने 'रमणीय' अर्थ के प्रतिपादक शब्द को
'काव्य' कहा है । अर्थ की रमणीयता के अतिसंत शब्द की
रमणीयता (शब्दालंकार) भी समझकर लोग इस लक्षण को
स्वीकार करते हैं । पर 'अर्थ' की 'रमणीयता' कई प्रकार की
हो सकती है । इससे यह लक्षण बहुत स्पष्ट नहीं है । साहित्य
दर्पणकार विश्वनाथ का लक्षण ही सबसे ठीक जेंचता है ।
उसके अनुसार 'रसात्मक वाक्य ही काव्य है' । रस अर्थात्
मनोवेगों का सुखद संचार ही काव्य की आत्मा है । काव्य-
प्रकाश में काव्य तीन प्रकार के कहे गए हैं, ध्वनि, गुणीभूत
व्यंग्य और चित्र । ध्वनि वह है जिसमें शब्दों से निकले हुए
अर्थ (वाच्य) की अपेक्षा छिपा हुआ अमिप्राय (व्यंग्य) प्रधान
हो । गुणीभूत व्यंग्य वह है जिसमें व्यंग्य गोण हो । चित्र या
अलंकार वह है जिसमें बिना व्यंग्य के चमत्कार हो । इन
तीनों को क्रमशः उत्तम, मध्यम, और अधम भी कहते हैं ।
काव्यप्रकाशकार का जोर छिपे हुए भाव पर अधिक जान
पड़ता है, रस के उद्बेक पर नहीं । काव्य के दो और भेद किए
गए हैं, महाकाव्य और खंड काव्य । महाकाव्य संगंबद्ध और
उसका नायक कोई देवता, राजा या धीरोदात्त गुण संपन्न
क्षत्रिय होना चाहिए । उसमें शृंगार, वीर या शांत रसों में
से कोई रस प्रधान होना चाहिए । बीच बीच में करुण, हास्य
इत्यादि और और रस तथा और और लोगों के प्रसंग भी
आने चाहिए । कम से कम आठ संगे होने चाहिए । महाकाव्य
में संख्या, सूर्य, चंद्र, रात्रि, प्रभात, मृगया, पर्वत, वन, ऋतु,
सागर, सयोग, विप्रलंभ, मुनि, पुर, यज्ञ, रणप्रयाण, विवाह
आदि की यथास्थान सन्निवेश होना चाहिए । काव्य दो प्रकार
का माना गया है, दृश्य और श्रव्य । दृश्य काव्य वह है जो
अभिनय द्वारा दिखलाया जाय, जैसे, नाटक, प्रहसन, आदि जो
पढ़ने और सुनने योग्य हों, वह श्रव्य है । श्रव्य काव्य दो

प्रकार का होता है, गद्य और पद्य । पद्य काव्य के महाकाव्य
और खंडकाव्य दो भेद कहे जा चुके हैं । गद्य काव्य के भी दो
भेद किए गए हैं । कथा और आध्यात्मिका । चपू, विरह और
करमय तीन प्रकार के काव्य और माने गए हैं ।

२. वह पुस्तक जिसमें कविता हो । काव्य का ग्रंथ । ३. शुक्राचार्य ।
५. रोला छंद का एक भेद, जिसके प्रत्येक चरण की ११ वीं
मात्रा लघु पड़ती है । किसी किसी के मत से इसकी छठी,
आठवीं और दसवीं मात्रा पर यति होनी चाहिए । जैसे—
अजनि सुत मह दशा देख अतिशय रिस पायो । देगि त्राय लव
निकट गिला तर मारन लायो । खडि तिन्हें सियपुत्र तीर
कपि के तन मारे । बान सकल करि पान कीश नि फन करि
डारे ।

काव्य—वि० १. कवि की विशेषताओं से युक्त । २. प्रशसनीय ।
कथनीय (को०) ।

काव्यचौर—सङ्घा पुं० [स०] किसी के काव्य को अपना कहकर प्रकट
करने वाला व्यक्ति (को०) ।

काव्यतत्त्व—सङ्घा पुं० [स० काव्य + तत्त्व] कविता का तत्व । काव्य
का मूल प्रेरक तत्व । उ०—टालस्टाय के, मनुष्य मनुष्य में
मानु-प्रेम-संचार को ही एक मात्र काव्यतत्त्व कहने का बहुत
कुछ कारण सांप्रदायिक था ।—रस०, पृ० ६६ ।

काव्यदृष्टि—सङ्घा स्त्री० [स०] कवि की दृष्टि । रसमय साहित्यिक
दृष्टि । उ०—जब तक वे इन मूल मार्मिक ढंगों में नहीं लाए
जाते तब तक उन पर काव्य दृष्टि नहीं पड़ती ।—रस० पृ० ७ ।

काव्यप्रकाशकार—सङ्घा पुं० [स०] मम्मट भट्ट जिन्होंने काव्यकाश
नाम का काव्यशास्त्र विषयक ग्रंथ लिखा । उ०—वास्तविक
वात तो यह है कि काव्य प्रकाशकार का विचार उनके प्रभाव
से प्रभावित है ।—रस०, पृ० २३ ।

काव्यभूमि—सङ्घा स्त्री० [स०] काव्यक्षेत्र । कविता का आधारभूत
विषय । उ०—हमें उस काव्यभूमि का वर्णन करना है जिसमें
आनंद अपनी सिद्धावस्था में दिखाई पड़ता है ।—रस०,
पृ० ७३ ।

काव्यरीति—सङ्घा स्त्री० [स०] काव्य की पद्धति या शैली । काव्य
संवधी नियम । उ०—काव्यरीति का निरूपण थोड़ा
थोड़ा सब देशों के साहित्य में पाया जाता है ।—रस०, पृ० ६४ ।

काव्यलिङ्ग—सङ्घा पुं० [स० काव्यलिङ्ग] एक अर्थालंकार जिसमें किसी
कही हुई बात का कारण आने वाले वाक्य के युक्तिपूर्ण अर्थ
द्वारा या पद के अर्थ द्वारा दिखाया जाय । जैसे—(क)
(वाक्यार्थ द्वारा) कनक कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय ।
वह खाए बीरात है, यह पाए बीराय । यहाँ पहले चरण
में सोने की जो अधिक मादकता बतलाई गई, उसका
कारण दूसरे चरण के 'वह पाए बीराय', इस वाक्य द्वारा
दिया गया । (ख) (पदार्थता द्वारा) जनि उपाय और करो
यह राखु निरधार । हिय विभोग तम टारिहैं विधुवदनी
वह नार । इस दोहे में विभोगरूप तम दूर होने का
कारण 'विधुवदनी' इस एक पद के अर्थ द्वारा कहा गया ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ दो तीन इंच लंबी होती हैं और इससे फागुन चैत में छोटे छोटे फल लगते हैं जो कुछ हरापन लिए होते हैं। वैशाख जेठ में यह लता फलती है। यह समस्त उत्तरी और मध्य भारत तथा आसाम आदि देशों में बराबर होती है।

कालीमिट्टी—[हि० काली + मिट्टी] चिकनी करल मिट्टी जो लीपने पोतने या सिर मलने के काम आती है।

काली मिर्च—सब्जा बी० [हि० काली + मिर्च] गोल मिर्च। दे० 'मिर्च'।

कालीय—सब्जा पु० [सं०] काला चंदन।

कालीयक—सब्जा पु० [सं०] १ पीला चंदन। २ काला अमर। ३. काला चंदन। ४. दाढ़ हल्दी। ५. केसर (की०)।

कालीसर—सब्जा बी० [हि० काली + सर] एक प्रकार की लता।

विशेष—यह सिक्किम, आसाम, बर्मा आदि देशों में होती है। इसके पत्ते से नीला रंग निकाला जाता है।

कालीशीतला—सब्जा बी० [हि० काली + सं० शीतला] एक प्रकार की शीतला या चेचक।

विशेष—इसमें कुछ काले काले दाने निकलते हैं और रोगी को बड़ा कष्ट होता है।

काली हरें—सब्जा बी० [हि० काली + हरें] जगी हरें। छोटी हरें।

कालुष्य—सब्जा पु० [सं०] १. कलुपता। मलिनता। उ०—और निकल आती है फिर हर वार काल के मुख से, नई चारुता लिए, शीर्णता का कालुष्य बढ़ाकर, पावक में गलकर सुवर्ण ज्यों नया रूप पाता हो।—नील०, पृ० ५४। २. निष्प्रम। ३. असहमति। मतभिन्नता।

कालू—सब्जा बी० [देश०] सीप की मछली। सीप के अंदर का कीड़ा। लोना कीड़ा। सियाल पोका।

कालेजा(पु०)—सब्जा पु० [सं० कालेय, प्रा० कालिज्ज] दे० 'कलेजा'।

उ०—भेड़ा रहे बाग अली जा। काढि नित खात कालेजा।

—तुलसी० सा०, पृ० २५७।

कालेय^१—वि० [सं०] कलियुग संबंधी (की०)।

कालेय^२—सब्जा पु० १. दैत्य। कालकेय। कालकज। प्रा० भा० प०, पृ० ८६। २. यकृत (की०)। ३. काला चंदन (की०)। ४. केसर (की०)। ५. कृष्ण यजुर्वेदीय संप्रदाय का एक नाम (की०)।

कालेयक—सब्जा पु० [सं०] १. एक प्रकार की सुगंधित लकड़ी। २. काला चंदन। ३. हलदी। ४. पीलिया नामक रोग। ५. शिकारी कुत्ता (की०)।

कालेयक—सब्जा पु० [सं०] १. कुत्ता। २. एक प्रकार का चंदन (की०)।

कालेश—सब्जा पु० [सं०] १. शिव। २. सूर्य (की०)।

कालोच—सब्जा बी० [हि०] 'कलौछ'। कालापन। उ०—बाबू और धुएँ ने दाना के चेहर और हाथ काले कर दिए। नित्य ही ऐसा हो जाता था। उस दिन कालोच कुछ और अधिक बढ़ गई थी।—झासी०, पृ० ३६८।

कालोनियल—वि० [अ० कालोनियल] कालोनी या उपनिवेश संबंधी औपनिवेशिक। जैसे, कालोनियल सेक्रेटरी।

कालोनी—सब्जा बी० [अ० कालोनी] एक देश के लोगों की दूसरे देश में बस्ती या आबादी। उपनिवेश।

कालोज—सब्जा पु० [सं०] कौवा। काक (की०)।

कालौछ—सब्जा बी० [हि० काला + औछ (प्रत्य०)] १. कालापन। स्याही। कालिख। इ०—मुद्ग्य अर्थ इस शब्द का कालिमा, कालोछ वा कालिख है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३३३। २. आग के धुएँ की कालिख जो छत, दीवार इत्यादि में लग जाती है। रहूँ। ३. काला जाला जो रसोई घर में या भाड़ या मट्टी के ऊपर लगा रहता है।

कालप^१—वि० [सं०] कल्प संबंधी (की०)।

कालप^२—सब्जा पु० कचूर (की०)।

कालपक—सब्जा पु० [सं०] कचूर। कचूर (की०)।

कालपनिक^१—सब्जा पु० [सं०] कल्पना करनेवाला।

कालपनिक^२—वि० १. कल्पित। फर्जी। मनगढ़त। २. कल्पना संबंधी।

काल्य^१—सब्जा पु० [सं०] प्रभात। भोर। उ०—फोपहि काल्य सुनेंगी कसासुर, सुन हो जसोमति माय।—गोद्वार अभि० प्र०, पृ० ३०७।

काल्य^२—वि० १. शुन। कल्याणकर। २. समयानुकूल। ३.

अविरुद्ध। अनुकूल। ४. प्रभात काल का। प्रभात संबंधी (की०)।

काल्या—सब्जा बी० [सं०] १. सांड या बूपम के पास ले जाने योग्य गाय। २. पाँव के पास जाने योग्य स्त्री (की०)।

काल्याणक—सब्जा पु० [सं०] कल्याणमयता (की०)।

काल्हा—क्रि० वि० [सं० कल्प अथवा काल्य] दे० 'कल'।

कालिहा(पु०)—क्रि० वि० [सं० कल्प, अथवा काल्य] दे० 'कल'।

'कालि'। उ०—कहहि आजु कछु थोर पयाचा। कालिह पयाच दूरि हूँ जाना।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० १३३।

काल्हेडो—सब्जा पु० [हि० कालिगडा] दे० 'कालिगडा'। उ०—पदो में जो काल्हेडो रागिनी दी है यह कालगडा का विगडा नाम है।—सुंदर प्र०, भा० १, पृ० १७४।

कावंच—सब्जा बी० [देश०] केवांच। उ०—रंदास तू कावंच फनी तुफन न छीपे कोई।—रं० वाणी, पृ० १।

कावचिक^१ वि० [सं०] वि० बी० कावचिकी। १. कवच संबंधी। २. कवचयुक्त (की०)।

कावचिक^२—सब्जा पु० [सं०] कवचधारियों का समूह (की०)।

कावड़—सब्जा पु० [सं० कापटिक] दे० 'कावर'।

कावर—सब्जा पु० [देश०] एक छोटी बरछी जो जहाज की माँग या गलहा में बंधा रहती है और जिससे हवेब आदि का शिकार करत है—(लश०)।

कावरि(पु०)—सब्जा बी० [हि० कावर] दे० 'कावर'। उ०—कहि कावरि काहूँ कर सिव। सब कहि जोब शत्रुत में विष साने।—सं० दरिया, पृ० ६१।

कावरी—सब्जा पु० [देश०] रस्सी का फटा जिसमें कोई चीज बांधो जाय। मुड़ा।—(लश०)।

विशेष—यह दा रस्सियों की ढीला बटकर बनाया जाता है। और जहाज में काम आता है।

कावली—सब्जा बी० [देश०] एक प्रकार की मछली जो दक्षिण भारत की नदियों में होती है।

(को०) । १० सत्यवती या व्यास की माता (को०) । ११ रात्रि (को०) । १२ कलक । निदा (को०) १३. यम की वहन (को०) । १४ एक छोटा पोछा जो रेचक होता है (को०) । १५ एक कीटविशेष (को०) ।

काली^३—वि० स्त्री० १ काले रंग की । २ बावली ।

काली^४—संज्ञा पुं० [सं० कालिय] कालिय नाग ।

कालीअष्टी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक बड़ी भाड़ी जिसकी टहिनियों में सीधे सीधे कांटे होते हैं ।

विशेष—इसके पत्ते १२-१३ अंगुल लंबे और किनारों पर ददानेदार होते हैं । इसमें गुलाबी रंग के फूल लगते हैं । फल लाल होते हैं, जो बहुत पक्के पर काले हो जाते हैं । काली अष्टी पंजाब और गुजरात को छोड़ भारतवर्ष में सर्वत्र होती है और फूल के लिये लगाई जाती है ।

कालीक—संज्ञा पुं० [सं०] कौच नामक पक्षी (को०) ।

कालीखोह—संज्ञा स्त्री० [हिं० काली+खोह] मिर्जापुर के निकट विंध्याचल की देवी (दुर्गा) का स्थान । उ०—काली खोह निवासिनी महाकाली के भय से ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १३६ ।

कालीघटा—संज्ञा स्त्री० [हिं० काली+घटा] घने काने बादलों का समूह जो क्षितिज को घेरे हुए दिखाई पड़े । सघन कृष्ण मेघमाला ।

क्रि० प्र०—उठना ।—उमड़ना ।—घिरना ।—छाना ।

कालीचो—संज्ञा स्त्री० [सं०] यम का न्यायालय । वह विशाल भवन जिसमें बैठकर यमराज प्राणियों के शुभ प्रशुभ कर्मों का निर्णय करते हैं (को०) ।

कालीजवान—संज्ञा स्त्री० [हिं० काली+फा० जवान] वह जनान जिससे निकली हुई अशुभ बातें सत्य घटा करें ।

कालीजोरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कणजीर, हिं० काला+जोरा] एक ओपधि ।

विशेष—इसका पेड़ ४-५ हाथ ऊँचा होता है और इसकी पत्तियाँ गहरी हरी, गोल, ५-६ अंगुल चौड़ी और नुकीली होती हैं, तथा उनके किनारे ददानेदार होते हैं । पेड़ प्रायः वरसात में उगता है और क्वार कातिक में उसके छिर पर गोव गोल लोड़ियों के गुच्छे लगते हैं, जिनमें से छोटे छोटे, पन्ने पतन वाली रंग के फूल या कुसुम निकलते हैं । फूलों के भड़ जाने पर बोड़ी बरें या कुसुम की बोड़ी की तरह बढ़ती जाती है और महीने भर में पककर छितरा जाती है । उसके फटने से भूरे रंग की रोई दिखाई पड़ती है जिसमें बड़ी झाल होती है । यह रोई बोड़ी के भीतर के बीज के सिरे पर लगी रहती है और जल्दी झलक हो जाती है । काली जोरी खाने में कड़वी और चरपरी होती है । बैद्यक में इसे व्रणनाशक तथा घाव, फोड़े आदि के लिये उपकारी माना है । व्याई हुई घोड़ी के मसालों में भी यह दी जाती है ।

पर्याय—वनजोरा । अरव्यजोराक । बृहन्माली । कण ।

कालीतनय—संज्ञा पुं० [सं०] महिष । मंसा (को०) ।

कालीयाना—संज्ञा पुं० [सं० कालीस्थान] वह स्थान जहाँ काली की

मूर्ति प्रतिष्ठापित हो । कालीमंदिर । उ०—कालीयान की ओर मुह कटके मौ काली को प्रणाम कि या ।—मंला०, पृ० २१ ।

कालोदह—संज्ञा पुं० [सं० कालिका+हिं० वह] वृंदावन में जमुना का एक दह या कुंड, जिसमें काली नामक नाग रहा करता था ।

उ०—(क) गयो डूवि कालीदह माही । झरलों देखि परघो पुनि नाही ।—रघुराज (शब्द०) । (ख) पट्टे जव कालीदह तीरा । पियत भए गो बालक नीरा ।—विश्राम (शब्द०) ।

कालीधार—संज्ञा स्त्री० [सं० काली+धारा] १ भयकर नदी की धारा । २ शिप की धारा ।

मुहा०—कालीधार में डूबना=सर्वस्व नष्ट होना । उ०—गमावे डूब गियार, मानव कालीधारा मझ ।—वांकी० ग्र०, भा० २, पृ० ११२ ।

कालोन^१—वि० [मं०] कालसन्धी । जैसे, समकालीन, प्राक्कालीन, बहुकालीन । उ०—देखत बालक बहु कालीना ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—यह शब्द समस्त पद के अंत में आता है, अकेला व्यवहार में नहीं आता ।

कालीन^२—संज्ञा पुं० [अ० कालीन] ऊन या सूत के मोटे तागों का बना हुआ बिछावन, जो बहुत मोटा और भारी होता है और जिसमें रंग धिरगे बेलबूटे बने रहते हैं । गलीचा ।

विशेष—इसका ताना खड़े बल रखा जाता है अर्थात् वह छत से जमीन की ओर लटकना हुआ होता है । रंग धिरगे तागों के टुकड़े लेकर वानों के साथ गाँठे जाते हैं और उनके छोरों को काटते जाते हैं । इन्हीं निकले हुए छोरों के कारण कालीन पर रोएँ जान पड़ते हैं । कालीन का व्यवसाय भारतवर्ष में कितना पुराना है, इसका ठीक ठीक पता नहीं मिलता । संस्कृत ग्रंथों में दरी या कालीन के व्यवसाय का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता । बहुत से लोगों का मत है कि यह कला मिस्र देश से बाबिलन होती हुई और देशों में फैली । फारस में इस कला की बहुत उन्नति हुई । इसमें मुसलमानों के आने पर देश में इस कला का प्रचार बहुत बढ़ गया और फारस आदि देशों से और करीगर बुलाए गए । प्राईने प्रकवरी में लिखा है कि अकबर ने उत्तरीय भारत में इस कला का प्रचार किया, पर यह कला प्रकवर के पहले से यहाँ प्रचलित थी । कालीनों की नक्काशी अधिकांश फारसी नमूने की होती है, इससे यह कला फारस से आई बनलाई जाती है । ईरान की कालीन सार में सबसे श्रेष्ठ मानी जाती है ।

कालीनाग—संज्ञा पुं० [सं० कालियनाग] दे० 'कालिय' । उ०—काली नाग जू नाथियो, तुम सो और न कोई ।—नद० ग्र०, पृ० १६८ ।

कालीपति—संज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव । उ०—चितामणि शिव सेइयो, द्वादस वर्ष प्रमान । ह्वै प्रसन्न कालीपतिय, सीस जोर धरि ठान ।—प० रासो०, पृ० ३४ ।

कालीफुलिथा—संज्ञा स्त्री० [हिं० काली+फूल] एक प्रकार की बुलबुल

कालोबेल—संज्ञा स्त्री० [हिं० काली+बेल] एक बड़ी लता ।

कालिक^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कालिख] दे० 'कालिख' । उ०—पहिले गहि मूँड मुँडावा । पीछे मुख कालिक लावा ।—सुंदर ग्र०, भा० १, पृ० १३६ ।

कालिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. देवी की एक मूर्ति । चडिका । काली ।

विशेष—शुभ और निशुभ के अत्याचारों से पीड़ित इंद्रादिक देवताओं की प्रार्थना पर एक मातंगी प्रकट हुई, जिसके शरीर से इन देवी का आविर्भाव हुआ । पहले इनका वर्ण काला था, इसी से इनका नाम कालिका पड़ा । यह उग्र भयों से रक्षा करती है, इस कारण इनका एक नाम उग्रतारा भी है । इनके सिर पर एक जटा है, इसी से ये एकजटा भी कहलाती हैं । इनका ध्यान इस प्रकार है—कृष्णवर्णा, चतुर्भुजा, दाहिने दोनों हाथों में से ऊपर के हाथ में खंजूर और नीचे के हाथ में पद्म, बाएँ दोनों हाथों में से ऊपर के हाथों में कटारी और नीचे के हाथ में खप्पर, बड़ी ऊँची एक जटा, गले में मुँडमाला और साँप, लाल नेत्र, काले वस्त्र, कमर में बाघचर्म, बायाँ पैर भव की छाती पर और दाहिना सिंह की पीठ पर, भयंकर अट्टहास करती हुई । इनके साथ आठ योगिनियाँ भी हैं, जिनके नाम ये हैं—महाकाली, रुद्राणी, उग्रा, भीमा, घोरा, भ्रामरी, महारात्रि और भैरवी ।

२. कालापन । कलौंछ । कालिख । ३. विछुआ नामक पीछा । ४. किस्तबंदी । ५. रोमराजी । जटामासी ७. काकोली । ८. शृगाली । ९. कीचे की मादा । १०. श्यामा पक्षी । ११. मेघघटा १२ मोने का एक दोप । सूवर । १३. मट्ठे का कीड़ा । १४. स्याही । मसी । १५. सुरा । मदिरा । शराव । १६ एक प्रकार की हर । काली हर । १७ एक नदी । १८. आँख की काली पुतली । १९ दक्ष की एक कन्या । २०. कान की मुख्य नस । २१. हलकी झडी । भीसी । २२ विच्छू । २३ काली मिट्टी जिससे सिर मलते हैं । २४. चार वर्ष की कन्या । २५ रणचडी । २६. चौथे अर्हत की एक दासी (जैन) ।

कालिकाक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. जिसकी आँख स्वभावतः काली हो । २ एक राक्षस ।

कालिकापुराण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक उपपुराण का नाम जिसमें कालिका देवी के माहात्म्य आदि का वर्णन है ।

कालिकावन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत ।

कालिकाला^७—क्रि० वि० [हि० कालि + काल] कदाचित् । कभी । किसी समय । उ०—एतेह पर कोऊ जो रावरो ह्वे जोर करे, ताको जोर देव दीन द्वारे गुदरत हौं । पाइ कै ओराहने घोरा-ठनो न दीजे मोहि कालिकाला काशीनाथ कहे निवरत हो ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—यह शब्द सदिय जान पड़ता है, वंजनाय कुम्भी ने अपनी टीका में यही अर्थ दिया है ।

कालिकावृद्धि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह व्याज जो महीने महीने लिया जाय । मासिक व्याज ।

कालिकेय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दक्ष की कन्या कालिका से उत्पन्न असुरों की एक जाति ।

२-५१

कालिख—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कालिका] वह काली महीन बुकनी जो आग या दीपक के धुँए के जमने से वस्तुओं में लग जाती है । कलौंछ । स्याही ।

क्रि० प्र०—लगना ।—जमना ।

मुहा०—मुँह में कालिख लगना=वदनामी और कलक के कारण मुँह दिखलाने लायक न रहना । कलंक लगना । मुँह में कालिख लगना=(१) कलंक लगने का कारण होना । वदनामी का कारण होना । जैसे,—उसने ऐसा करके हमारे मुँह में कालिख लगाई । (२) कलक लगाना । दोषी ठहराना ।

कालिज^१—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कालिज] वह विद्यालय जहाँ ऊँचे दर्जे को पढ़ाई होती हो ।

कालिज^२—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का चकोर जो जो शिमले में मिलता है ।

कालित—वि० [सं०] मृत [क्रि०] ।

कालिदास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सस्कृत के एक श्रेष्ठ कवि का नाम, जिन्होंने अमित्रान शाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय, और मालविकाग्निमित्र नाटक तथा रघुवंश, कुमारचंमव, मेघदूत और ऋतुमहार नामक काव्यों की रचना की थी ।

कालिव—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] १ टीन या लकड़ी का एक गोल ढाँचा जिस पर चढ़ाकर टोपियाँ दुरुस्त की जाती हैं । २ शरीर । देह । उ०—गुरु पारस पत्र में पर्में सिप कचन कर लीन । सो रज्जव महेंगे सदा कुलि कालिवा सु छीनि ।—रज्जव०, पृ० ८ ।

कालिमा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कालिमन्] १. कालापन । २. कलौंछ । कालिख । ३. अंधेरा । ४. कलंक । दोष । लाछन । उ०—तात मरन गिय हरन गीध वध भुज दाहिनी गंवाई । तुलसी में सब भाँति आपने कुलहि कालिमा लाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

कालिप्र^१—वि० [सं०] १. कान या समय सबधी । २. सामयिक [क्रि०] ।

कालिप्र^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कलिपुग [क्रि०] ।

कालिप्र^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक सर्प जिसे कृष्ण ने वश में किया था ।

यो०—कालियजित्, कालियवनन, कालियमर्दन=कृष्ण । कालियहृद्=कालियदह । कालियवह=वह दह जिसमें कालिय नाग रहता था ।

कालियादह^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कालिय + दह, प्रा० दह=वह] यमुना नदी का वह खड जिसमें कालिय नाम का सर्प रहता था ।

काली^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. चंडी । कालिका । दुर्गा । २. पार्वती । गिरिजा । ३. हिमालय पर्वत से निकली हुई एक नदी । ४. दस महाविद्याओं में पहली महाविद्या । ५. अग्नि की सात जिह्वाओं में पहली ।

विशेष—अग्नि की सात जिह्वाओं के नाम ये हैं—काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुर्लिगिनी और विश्वरूची ।

६ [कृष्णता] श्यामता । कालापन (क्रि०) । ७ काले रंग की स्याही (क्रि०) । ८. काले रंग की घटा (क्रि०) । ९. काले रंग की स्त्री

मुहा०—काला बाल जानना या समझना=किसी को अत्यन्त तुच्छ समझना। उ०—चोर कब उसका जोर माने है। काला बाल उसको अपना जाने है।—सोदा (शब्द०)।

कालाभुजंग^१—वि० [हि० काला+सं० भुजङ्ग] बहुत काला। अत्यन्त काला। घोर कृष्ण वर्ण का।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार प्राणियों के ही लिये होता है। भुजंग शब्द से या तो सर्प का अभिप्राय है या भुजगे पक्षी का जो बहुत काला होता है।

कालाभुजंग^२—सङ्घा पुं० १. काला साँप। २. भुजंग पक्षी जो काले रंग का होता है।

कालामोहरा—सङ्घा पुं० [हि० काला+मोहरा] सीगिया की जानि का एक पौधा, जिसकी जड़ में विष होता है।

कालायनी—सङ्घा स्त्री० [सं०] शिवा। दुर्गा। च्छाणी [को०]।

कालावधि—सङ्घा स्त्री० [सं०] किसी कार्य के पूर्ण होने की निश्चित तिथि। नियत काल [को०]।

कालाशुद्धि—सङ्घा स्त्री० [सं०] ज्योतिष में वह समय जो शुभ कार्यों के लिये निषिद्ध है।

कालाशौच—सङ्घा पुं० [सं०] वह अशौच जो पिता माता आदि गुरुजनों के मरने के उपरान्त एक वर्ष तक रहता है।

कालासुखदास—सङ्घा पुं० [हि० काला+सुखदास] एक प्रकार का धान जो अग्रहन में तैयार होता है।

कालास्त्र—सङ्घा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाण जिसके प्रहार से शत्रु का निधन निश्चय सम्भवा जाता था। संघातक बाण।

कालिंग^१—वि० [सं० कालिङ्ग] कालिङ्ग देश का। कालिङ्ग देश में उत्पन्न।

कालिंग^२—सङ्घा पुं० [सं०] १. कालिङ्ग देश का निवासी। २. कालिङ्ग देश का राजा। ३. हाथी। ४. साँप। ५. कालिदा। तरबूज। हिंदुवाना। ६. भूमिकर्षि। कुटज। विलायती कुम्हड़ा। ७. लोहा।

कालिङ्गिका—सङ्घा स्त्री० [सं० कालिङ्गिका] निसोय। त्रिवृत्। निधारा।
कालिङ्गी—सङ्घा स्त्री० [सं० कालिङ्गर] १. एक पर्वत जो बाँदा से ३० मील पूर्व की ओर है।

विशेष—यह पर्वत सत्तार के नौ ऊँखलों में से एक ऊँखल माना जाता है। इसका माहात्म्य पुराणों में वर्णित है और यह एक तीर्थ माना जाता है। इस पहाड़ पर एक बड़ा पुराना किला है। कालिङ्गर नाम का कसबा पहाड़ के नीचे है। रामायण (उत्तर कांड) महाभारत और हरिवंश के अतिरिक्त गरुड़, मत्स्य आदि पुराणों में इस स्थान का उल्लेख मिलता है। यहाँ पर नीलकंठ महादेव का एक मंदिर है। प्रसिद्ध इतिहास-लेखक फरिश्ता लिखता है कि कालिङ्गर का गढ़ केदारनाथ नामक एक व्यक्ति ने ईसा की पहली शताब्दी में बनवाया था। महम्मद गजनवी ने सन् १०२२ में इस गढ़ को घेरा था। उस समय यहाँ का राजा नंद या जिसने एक वर्ष पहले कन्नौज पर चढ़ाई की थी।

२. एक नगर का नाम [को०]।

यौ०—कालिङ्गर गढ़।

कालिङ्गी^३—सङ्घा स्त्री० [सं० कालिङ्गी] दे० 'कालिङ्गी'। उ०—वसी सहस्र सह मिल्लियो कालिङ्गी के तीर।—पृ० रातो, पृ० १२३।

कालिदा^१—वि० [सं० कालिन्द] १. कालिंद पर्वत से संबद्ध। २. कालिंद पहाड़ से आता हुआ। ३. यमुना नदी से आता हुआ [को०]।
कालिदा^२—सङ्घा पुं० तरबूज।

कालिदी—सङ्घा स्त्री० [सं० कालिन्दी] १. कालिंद पर्वत से निकली हुई, यमुना नदी। २. अयोध्या के राजा असित की स्त्री जो मगर की माता थी। ३. कृष्ण की एक स्त्री। ५. लान निसोय। ५. एक असुर कन्या का नाम। ६. उड़ीसा का एक वैष्णव संप्रदाय जिसके अनुयायी प्रायः छोटी जाति के लोग हैं। ८. थोड़ा जाति की एक रागिनी।

कालिदीकपर्ण—सङ्घा पुं० [सं० कालिन्दीकपर्ण] दे० 'कालिदी' भेदन [को०]।

कालिदीभेदन—सङ्घा पुं० [सं० कालिन्दीभेदन] कृष्ण के जेठे भाई बलराम जो हल से यमुना नदी को बृंदावन खींच लाए थे।

विशेष—कालिदीकपर्ण की कन्या हरिवंश में दी हुई है।

कालिदीसू^१—सङ्घा स्त्री० [सं० कालिन्दीसू] सूर्य की पत्नी [को०]।

कालिदीसू^२—सङ्घा पुं० [सं० कालिन्दीसू] सूर्य। वह जिसकी पुत्री कालिदी है [को०]।

कालिदीसोदर—सङ्घा पुं० [कालिन्दीसोदर] यमुना नदी का भाई, यमराज [को०]।

कालिद्रु^३—सङ्घा स्त्री० [सं० कालिन्द्र] दे० 'कालिन्द्र'। उ०—के कालिन्द्र दह सु अति गहर वारि। पावन परम सीतल सु वारि—पृ० रा०, १।५५८।

कालिंद्री^३—सङ्घा स्त्री० [सं० कालिन्दी] दे० 'कालिंदी'। उ०—कै उलटी कालिंद्री बहती। गिरि गंगा परसन को चहती।—माधवानल०, पृ० १६१।

कालि^३—क्रि० वि० [सं० कल्य] १. गत दिवस। 'आज से पहले का दिन'। उ०—जनक को सीय को हमारे तेरो तुलसी को सबको भावत हूँ है मैं जो कह्यो कालि री।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—कालि को = काल का। 'थोड़े दिनों का'। उ०—दूषण विराघ खर त्रिशिर कबध बधे, तातजु तिसान वेधे कीतुक हैं कालि को।—तुलसी (शब्द०)।

२. आगामी दिवस। आनेवाला दिन। उ०—जैहों कालि नेवतवा भव दुब्र दून। गाँव करसि रखवरिया सब घर सून।—रहीम (शब्द०)। ३. आगामी थोड़े दिनों में। शीघ्र ही।

कालिक^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कालिकी] १. समय संबंधी। समयोचित।

विशेष—इसका प्रयोग प्रायः समस्त पदों के मत में मिलता है। जैसे, नियतकालिक, पूर्वकालिक।

२. जिसका कोई समय नियत हो। ३. मौसमी। सामयिक [को०]।

कालिक^२—सङ्घा पुं० १. नाक्षत्र मास। १. काला चंदन। २. श्रौत्री पक्षी। ४. घेर। शम्भुता [को०]। ५. बगुला चिड़िया [को०]।

काला तिल—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० काला + तिल] काले रंग का तिल ।
मुहा०—(किसी का) काले तिल चवाना = (किसी का) दबल होना । अधीन या वशवर्ती होना । गुलाम होना । जैसे—
वया तुम्हारे काले तिल चवाए हूँ जो न बोलें ।

कालातीत^१—वि० [सं०] जिसका समय बीत गया हो ।

कालातीत^२—सञ्ज्ञा पुं० १ न्याय के पाँच प्रकार के हेत्वाभासों में से एक जिसमें अर्थ एक देश काल के ध्वंस से युक्त हो और इस कारण हेतु असत् ठहरता हो ।

विशेष—जैसे किसी ने कहा कि शब्द नित्य हैं । संयोग द्वारा व्यक्त होने से, जैसे अँधेरे में रखे हुए घट के रूप की अभिव्यक्ति दीपक लाने से होती है, ऐसे ही उनके शब्द की अभिव्यक्ति भी उसपर लकड़ी का संयोग होने से होती है, और जैसे संयोग के पहले घट का रूप विद्यमान था वैसे ही लकड़ी के संयोग के पहले शब्द विद्यमान था । इसपर प्रतिपत्ति कहता है कि तुम्हारा यह हेतु असत् है क्योंकि दीपक का संयोग जबतक रहता है तभी तक घट के रूपा का ज्ञान होता है संयोग के उपरांत नहीं । पर संयोग निवृत्त होने पर संयोग काल के अतिक्रमण में भी शब्द का दूरस्थित मनुष्य को ज्ञान होना है अतः संयोग द्वारा अभिव्यक्ति को नित्यता का हेतु कहना हेतु नहीं है हेत्वाभास है ।

२ आधुनिक न्याय में एक प्रकार का बाध, जिसमें साध्य के आधार अर्थात् पक्ष में साध्य का अभाव निश्चित रहता है ।

कालात्मा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कालात्मन्] परमात्मा । ईश्वर [को०] ।

कालात्यय—सञ्ज्ञा पुं० [सं० काल + अत्यय] १० 'कालक्षेप' [को०] ।

कालादाना—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कालादाना] १ एक प्रकार की लता जो देखने में बहुत सुंदर होती है ।

विशेष—इसके फूल नीले रंग के होते हैं । फूल झड़ जाने पर बोंड़ी लगती है, जिसमें काले काले दाने निकलते हैं । इसका गोंद भी औषधि के काम में आता है । दाना आधे ड्राम से लेकर एक ड्राम तक और गोद दो से आठ ग्रैन तक खाया जा सकता है ।

२ इस लता का बीज जो अत्यंत रेचक होता है ।

कालादेव—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० काला + फा० देव] १ एक कल्पित देव या विशालकाय व्यक्ति जिसका रंग बिलकुल काला माना गया है । २ वह व्यक्ति जिसका सरीर हृष्ट पुष्ट और रंग बहुत काला हो ।

कालाधतूरा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कालधतूर] एक प्रकार का बहुत विषैला धतूरा ।

विशेष—इसके पत्ते हरे पर फल और बीज काले होते हैं । लोग प्रायः बहुत अधिक नशे या स्तनन के लिये इसका व्यवहार करते हैं ।

कालाव्यक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य । २ परमात्मा । ब्रह्म [को०] ।

कालानमक—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० काला + नमक] एक प्रकार का वनावटी नमक जिसका रंग काला होता है और जो साधारण नमक

तथा हड, वहेडे और सज्जी के संयोग से बनाया जाता है । सोचर नमक ।

विशेष—बैद्यक में यह हजका, उष्णवीर्य, रेचक, भेदन दीपन, पाचक वातनाशक अत्यंत पित्तजनक और निवृत्त, शूल, गुल्म और आनाद का नाशक माना गया है ।

कालानल—सञ्ज्ञा पुं० [न०] १. प्रलय काल की अग्नि । कालाग्नि । उ०—कालानल मय क्रोध कराला । क्षमा क्षमा सप जासु विशाला ।—रघुराज (शब्द०) । २ वह खड़ाव जो पंचमुखी होता है [को०] । ३. रुद्र [को०] ।

कालनाग—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० काला + नाग] १ काला साँप । विषघर सर्प । १ अत्यंत कुत्तिल या खोता आदमी ।

कालानुक्रम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] समय का अनुक्रम । काल की स्थिति के अनुसार क्रम या व्यवस्था ।

कालानुनादी—सञ्ज्ञा पुं० [म० कालानुनादिन्] १ मधुमक्खी । २ गौरैया । चटक पक्षी । ३ पपीहा । चानक [को०] ।

कालाप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ सिर के बाल या केस । २ सर्प का फण । ३ दैत्य । दानव । ४. कनाप व्याकरण का वेत्ता । ५. कलाप व्याकरण का विद्यार्थी [को०] ।

कालापक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कला के अध्ययनों का समूह । २ कलाप के नियम या सिद्धान्त । ३ काव्य व्याकरण [को०] ।

कालापहाड—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० काला + पहाड] १ बहुत भारी और भयानक वस्तु । दुस्तर वस्तु । जैसे—दुख की रफ्त नहीं कटती, काला पहाड हो जाती है । २ बहलोल लोदी का एक भाजा जो सिकंदर लोदी से रंटा था । ३ मुग़लशाह के नवाब दाऊद का एक सेनापति ।

विशेष—यह बड़ा क्रूर और कट्टर मुसलमान था । इसने बंग देश के बहुत से देवमंदिर तोड़े थे, यहाँ तक कि एक बार जगन्नाथ की मूर्ति को समुद्र में फेंक दिया था । वह पहले ब्राह्मण था । किसी नवाब कन्या के प्रेम में पागल हुआ था ।

कालापान—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० काला + पान] ताश में 'डुकुम' का रंग ।

कालापानी—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० काला + पानी] १. देशनिकाले का दंड । जलावतनी की सजा । २ अडमान और निकोबार आदि द्वीप ।

क्रि० प्र०—जाना ।—भेजना ।

विशेष—अडमान, निकोबार आदि द्वीपों के आसपास समुद्र का पानी काला दिखाई पड़ता है, इसी से उन द्वीपों का यह नाम पड़ा । भारत में जिनको देशनिकाले का दंड मिलता था, वे इन्हीं द्वीपों को भेज दिए जाते थे । इसी कारण उस दंड को भी इसी नाम से पुकारने लगे ।

३ शराब । मदिरा ।

कालावाजार—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० काला + बाजार] वह बाजार या व्यापार जिसमें अनुचित लाभ के लिये क्रय विक्रय होता हो ।

क्रि० प्र०—करना ।—चलना ।—होना ।

यौ०—कालावाजारिया = काग बाजार करनेवाला व्यापारी । नफाखोर । मुनाफाखोर ।

कालावाल—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० काला + बाल] साँट । पशम ।

विशेष—कोटिल्य ने लिखा है कि ऐसे माल का दाम बनने के समय को उसकी लागत का विचार करके निश्चित किया जाता था।

काला^१—वि० [सं० काल] [स्त्री० काली] १ कागज या कोयने के रंग का कृष्ण। स्याह।

यो०—काला कलूटा।—काला भुजगा काला चोर। काला पानो। काला जोरा।

मुहा०—काला काला होना = शका या सदेह होना। उ०—यह बनावट की बात है, इसमें कुछ काना काला जरूर है।—
फिसाना० भा० ३, पृ० ४०८। (प्रपना) मुह काला करना = (१) कुकर्मा करना। पाप करना। (२) व्यभिचार करना। अनुचित महगमन करना। (३) किसी, ऐसे मनुष्य का हटना या चला जाना जिसका हटना या चला जाना इष्ट हो। किसी बुरे आदमी का दूर होना। जैसे—जाम्रो, यहाँ से मुह काला करो। (दूसरे का) मुह काला करना = (१) किसी व्यक्ति पर या बुरी वस्तु या व्यवृत्ति को दूर करना। व्यर्थ वस्तु को हटाना। व्यर्थ की श्रम दूर हटाना। जैसे—(क) तुम्हें इन भगवों से क्या काम, जाने दो, मुह काला करो। (ख) इन मवों को जो कुछ देना लेना हो, दे लेकर मुह काला करो, जायें। (२) कलक का कारण होना। बदनामी का सबब होना। ऐसा कार्य करना जिससे दूसरे की बदनामी हो। जैसे—तुम आपके आप गए, हमारा भी मुह काला किया। काला मुह होना या मुह काला होना = कलकित होना। बदनाम होना। काली हाँड़ी सिरपर रखना = (१) सिर पर बदनामी लेना। (२) कलक का टीका लगाना। काले कोवे खाना = बहुत दिनों तक जीवित रहना।

विशेष—बहुत जीने वालों को लोग हँसी से ऐसा कहते हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि कोवा बहुत दिनों तक जीता है।

२ कलुपित। बुरा। जैसे—उसका हृदय बहुत काला है। ३ भारी। प्रचंड। बड़ा। जैसे—काली माँघी। काला कोस। काला चोर।

मुहा०—काले कोसों = बहुत दूर। उ०—ताते मव मरियत मपसोसन। मयुरा हूते गए सखी रो अक हरि काले कोसन—मूर (मन्द)।

काला^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० काल] काला साँप। जैसे—जा, तुम्हें काला डसे।

क्रि० प्र०—काले का काटना, खाना या उसना।

काला^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० काल] समय। प्रवसर। काल। उ०—चक्रिय रगोले हिछोर कहा कहों तिहि काला।—नद० ग्र०, पृ० ३७५।

काला^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कला] कला। माया। उ०—भीखा हरि नटवर बहुरूपी जानहि आपु आपनी काला।—भीखा ग्र०, पृ० ३१।

काला^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १, कई पीछों के नाम। २ दक्ष प्रजापति की एक कन्या का नाम। ३, दुर्गा [स्त्री०]।

कालाक द—सञ्ज्ञा पुं० [हि० काला + कण] एक प्रकार का धान जो प्रगवून में तैयार होता है और जिसका चावल सैकड़ों वर्षों तक रखा जा सकता है।

कालाकलूटा—वि० [हि० काला + कलूटा] बहुत काला। अत्यंत श्याम।

विशेष—इसका प्रयोग मनुष्यों ही के लिये होता है, जड़ पदार्थों के लिये नहीं।

कालाकाँकर—सञ्ज्ञा पुं० [हि० काला + काँकर] एक कस्बा जो प्रतापगढ़ जिले में गगातट पर बसा है।—उ० काला काकर का राजमवन सोया जल में निश्चित प्रमन। गुजन, पृ० ६४।

काला कानून—सञ्ज्ञा पुं० [हि० काला + कानून] १, वह कानून या अध्यादेश जो लोकजीवन के विरुद्ध हो। २ अंगरेजी शासन में गवर्नर या वाइसराय द्वारा बनाए गए अध्यादेश या आर्डिनेस जो जनता के विरुद्ध पड़ते थे।

कालाक्षरिक—वि० [सं०] २० 'कालाक्षरी'।

कालाक्षरी—वि० [सं०] काले अक्षर मात्र का अर्थ बना देने वाला। अत्यंत विद्वान्। सब विद्याओं और भाषाओं का विद्वान्। जैसे—वह तो कालाक्षरी पंडित है।

कालागरू—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] काना अगर।

काला गाँडा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० काला + गन्ना] एक प्रकार की ईख जो बहुत मोटी और रंग में काली होती है।

कालागुरु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] २० 'कालागुरु'।

काला गेंडा—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० काला गैंडा] २० 'काला गैंडा'।

कालाग्नि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ प्रलय काल की अग्नि। २ प्रलयाग्नि के अधिष्ठाता रुद्र। ३ पंचमुखी रुद्राक्ष।

काला चोर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ बड़ा चोर। बहुत भारी चोर। वह चोर जो जल्दी पकड़ा न जा सके। २, बुरे से बुरा आदमी। तुच्छ मनुष्य। जैसे,—हमारी चीज है, हम काले चोर को देंगे, किसी का क्या?

कालाजिर्न—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ काले हरिण का चर्म या छाल। काला मूंगछाला। २, एक देश का नाम। बृहत्० पृ० ८४।

कालाजीरा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० काला + फा० जीरा] एक प्रकार का जीरा जो रंग में काला होता है। स्याह जीरा। मीठा जीरा। पर्वत जीरा।

विशेष—यह मसाले और दवा में अधिक काम आता है और सफेद जीरे से अधिक सुगंधित और महंगा होता है।

२, एक प्रकार का धान।

विशेष—इसका चावल बहुत दिनों तक रह सकते हैं। यह धान अगहन में होता है।

कालाढोकरा, काला धोकरा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष। धवा। धव।

विशेष—इसकी डालियाँ नीचे की ओर झुकी होती हैं और जाड़े में पतियाँ ठीक रंग की हो जाती हैं। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है। उसका रंग कालापन लिए लाल होता है।

यह वृक्ष मालवा, मध्य प्रदेश और राजपूताने में बहुत होता है।

कालातिपात—सञ्ज्ञा पुं० [सं० काल + तिपात] २० 'कालक्षेप' [स्त्री०]।

कालातिरेक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० काल + तिरेक] २० 'कालक्षेप' [स्त्री०]।

के ४ दंड, शुक्रवार को तीसरा भाग अर्थात् ८ दंड के बाद के ४ दंड और शनिवार को पहला और आठवां भाग अर्थात् पहले ४ दंड और अंतिम ४ दंड। यह हिसाब ३२ दंड की रात के लिये है। यदि रात्रि इससे कम या अधिक हो तो उन दंडों के प्राठ सम, भाग करके उसी क्रम से हिसाब बंठा लेना चाहिए।

५ दीवाली की अमावस्या। ६ दुर्गा की एक मूर्ति। ७. यमराज की वहन जो सब प्राणियों का नाश करती है। ८ मनुष्य की आयु में वह रात जो सतहत्तरवें वर्ष के सातवें महीने के सातवें दिन पड़ती है और जिसके बाद वह नित्य कर्म आदि से मुक्त समझा जाता है।

कालरात्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कालरात्रि'।

कालघट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] रुद्र देव, जिनसे उत्पन्न अग्नि सृष्टि का संहार कर देती है (को०)।

काललोह, काललोह—संज्ञा पुं० [सं०] इस्पात नाम का लोहा (को०)।

कालवलन—संज्ञा पुं० [सं०] कवच। तनुत्राण। वारवाण। जिरह वस्त्र (को०)।

कालवाचक—वि० [सं०] काल या समय का प्रबोधक। समय का ज्ञान करानेवाला।

कालावाची—वि० [सं० कालवाचिन्] समय का ज्ञान करानेवाला। जिसके द्वारा समय का ज्ञान हो।

कालवादी—वि० [सं० कालवादिन्] काल (समय) को माननेवाला। उ०—वैशेषिक शास्त्र पुनि कालवादी है प्रसिद्ध पतञ्जलिराम्य माहि योगवाद लक्ष्यो है। सुंदर ०, भा० २, पृ० ११६।

कालविपाक—संज्ञा पुं० [सं०] समय का पूरा होना। किसी काम के पूर्ण हो जाने की अवधि। उ०—डर न टरे नौद न परे हरे न काल विपाक। छिन छाने उछकन फिरि खरो विषम छवि छाक।—विहारी (शब्द०)।

कालविप्रकर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] कालक्षेप। कालयापन (को०)।

कालविभक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] समय का विभाग या अंश (को०)।

कालवृत्त—संज्ञा पुं० [सं० कालवृत्त] कुल्या (को०)।

कालवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह व्याज जो बढ़ते बढ़ते देने से अधिक हो जाय। यह स्मृति में निर्दिष्ट कहा गया है।

कालवेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष में वह योग या समय जिसमें किसी कार्य का करना निश्चित हो।

विशेष—इसमें दिन और रात के दंडों के प्राठ प्राठ सम विभाग किए जाते हैं और फिर एक एक वार के लिये कुछ विशेष विशेष विभाग प्रथम ठहराए जाते हैं, जैसे—

रविवार को—	दिन का पाँचवाँ और रात का छठा भाग
सोमवार को—	,, , दूसरा ,, ,, चौथा भाग
मंगल ,,—	,, ,, छठा ,, ,, दूसरा ,,
बुध ,,—	,, ,, तीसरा ,, ,, सातवाँ
गुरुपति ,,—	,, ,, सातवाँ ,, ,, पाँचवाँ ,,
शुक्रवार ,,—	,, ,, चौथा ,, ,, तीसरा ,,
शनिवार ,,—	,, ,, पहला, आठवाँ, पहला, आठवाँ भाग

कालशाक—संज्ञा पुं० [सं०] १ पटुया नाग। २. करेसू।

कालसकर्पा—संज्ञा स्त्री० [सं० कालसकर्पा] नौ वर्ष की बालिका जो धार्मिक उत्सव में दुर्गा बनाई जाती है (को०)।

कालसकर्पा—वि० [सं० कालसकर्पिन्] काल को सजिप्त करने वाला (जैसे मन्त्र) (को०)।

कालसग—वि० [सं० कालसग] विलंब (को०)।

कालसंपन्न—वि० [सं० कालसम्पन्न] तिथि या दिनांक सहित (को०)।

कालसरोव—संज्ञा पुं० [सं०] १ दीर्घकाल तक रोक रचना। २ दीर्घकाल बीतना (को०)।

कालसदृश—वि० [सं०] समानुकूल (को०)।

कालसमन्वित, कालसमायुक्त—वि० [सं०] मृत (को०)।

कालसर—संज्ञा पुं० [हि० कालसर] दे० 'कालसिर'।

कालसर्प—संज्ञा पुं० [सं०] काला और अत्यंत विषला साँप (को०)।

कालसार^१—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्णसार नाम का मृग। २ पीतवर्ण का चंदन (को०)।

कालसार^२—वि० काली कनीनिका या पुतलीवाला (को०)।

कालसिर—संज्ञा पुं० [हि० काल + सिर] जहाज के मस्तूल का सिरा।

कालसूक्त—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक सूक्त का नाम जिसमें काल का वर्णन है।

कालसूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ २८ मुख्य नरकों में से एक नरक।

२ काल (यम या समय) का सूत्र (को०)।

कालसूत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक नरक। २ काल का सूत्र (को०)।

कालसूर्य—संज्ञा पुं० [सं०] कल्पात के समय का सूर्य।

कालसेन—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार उस डोम का नाम जिसने राजा हरिश्चंद्र को मोल लिया था।

कालस्कंद—संज्ञा पुं० [सं० कालस्कन्द] तमाल वृक्ष (को०)।

कालहर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महेश (को०)।

कालहरण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कालक्षेप' (को०)।

कालहानि—संज्ञा स्त्री० [सं०] विलंब। देर (को०)।

कालाग—वि० [सं० कालाङ्ग] काले अंगवाला (खड्ग आदि) (को०)।

कालाजन्त—संज्ञा पुं० [सं० कालाञ्जन्त] काला सुरमा। अंजन-विशेष (को०)।

कालाजनी^१—संज्ञा पुं० [हि० काल + अजनी] नरमा। बनकपास।

कालाजनी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० कालाञ्जनी] ओषधि क काम माने वाली एक छोटी झाड़ी (को०)।

कालांतर—संज्ञा पुं० [सं० कालान्तर] अन्य समय। बाद का काल। समय का अंतराल। उ०—महाकाय ही नहीं दुर्गों में देय रहा हूँ कालांतर भी, तब नयनों की गहराई में है युग युग के महदं तर भी।—द्रपदक, पृ० ७६।

कालांतर विषय—संज्ञा पुं० [सं० कालान्तर विषय] ऐस जंतु जिनके काटन का विष तत्काल नहीं चढ़ता, कुछ समय क उपरांत मालूम होता है। जैसे, चूहा आदि।

कालांतरित पण्य—संज्ञा पुं० [सं० कालान्तरित पण्य] बढ़त काव पहले का बना माल।

कालवृत्त—सञ्ज्ञा पुं० [फा० कालवृद्ध] वह कच्चा भराव जिसपर मेहराव बनाई जाती है। ठेना। उ०—कालवृत्त दूती बिना जुरै न और उपाय। फिर ताके टारे वनै पाके प्रेम लदाय।—विहारी (शब्द०)। २ चमारो का वह काठ का साँचा जिसपर चढ़ाकर वे जूता, सीते हैं। ३ रस्सी बटने का एक औजार।

विशेष—यह औजार काठ का एक कुंदा होता है जिसमें रस्सी की लड़ जाने के लिये कई छेद या दरार बने रहते हैं। इन्हीं दरारों में लड़ों को डालकर बटते हैं जिससे कोई लड़ मोटी या पतली न होने पाए, बल्कि दरार के अंदाज से एक सी रहे।

कालवेल—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० काल वेल] वह घटी जिसे नौकर को बुलाने के लिये अधिकारी अपनी मेज पर रखते हैं और उसके बजते ही नौकर दरवाजे के बाहर से सामने आ उपस्थित होता है। आवाहनघटिका। उ०—दूसरी पर पानदान, इत्रदान, कालवेल (आवाहकघटिका)।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ७२।

कालभुजगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० कालभुजगी] समय की सँझणी। उ०—परतु भटार्क। जिसे तुम खेन समझकर हाथ में ले रहे हो, उस कालभुजगी राष्ट्रनीति की प्राण देकर भी रक्षा करना।—स्कन्द०, पृ० ३४।

कालभैरव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] काशीस्थ शिव के मुख्य गणों में से एक गण। भैरव का रूप।

कालम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पुस्तक या सवाद पत्र के पृष्ठ की चौड़ाई में किए हुए विभागों में से एक।

विशेष—इन विभागों के बीच या तो कुछ जगह छोड़ दी जाती है या खड़ी लकीर बना दी जाती है। पृष्ठ का इस प्रकार विभाग करने से पत्तियाँ बहुत बड़ी नहीं होने पाती, इससे आँख को एक-पक्षि से दूसरी पक्षि पर आने में उतना कष्ट नहीं होता।

कालमल्लिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] तुलसी [को०]।

कालमान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ तुलसी का पौधा। २ समय का परिमाण [को०]।

कालमाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ तुलसी। २ समय की माप [को०]।

कालमुख—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ शैव मत का एक प्रकार।

विशेष—इसमें शैव भक्त भगवान् शिव के कृष्ण वर्ण और नुमड माली रूप का ध्यान और उपासना करते हैं।

२ एक प्रकार का वदर जिसका मुँह काला होता है [को०]।

कालमेघ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ एक पौधा जो ओषध के काम में आता है। २ ऐसे घोर वादल जो वर्षा से चारों ओर प्रलय का दृश्य उपस्थित कर दें [को०]।

कालमेशिका, कालमेपिका, कालमेपी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] मजिष्ठा। मजीठ। (को०)।

कालयवन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार यवनो का एक राजा।

विशेष—इसे मार्ग्य ऋषि ने मथुरावालों पर क्रुद्ध होकर उनसे बदला लेने के लिये गोपाली नाम की अश्वरा के गर्भ से उत्पन्न किया था। जरासंध के साथ इसने भी मथुरा पर चढ़ाई की

थी। श्रीकृष्ण ने यह जानकर कि मथुरावालों के हाथ से यह नदी मारा जायगा, एक चान की कि उसके सामने से भागकर वे एक गुफा में जाकर छिपे रहे जिसमें मुचकुद नामक राजा बहुत दिनों से सो रहे थे। जब कालयवन ने गुफा के भीतर जा मुचकुद को लात से जगाया, तब उन्हीं की कोवदृष्टि से वह भस्म हो गया।

कालयात्रा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जीवन का सफर। समय या आयु का व्यतीत होना। उ०—जो हो हमें तो ऐसा दिखाई पड़ता है कि हमारी यह कालयात्रा, जिसे जीवन कहते हैं, जिन-जिन रूपों के बीच से होती चली आती है, हमारा हृदय उन सबको पास समेटकर अपनी रागात्मक सत्ता के अतभूत करने का प्रयत्न करता है।—आचार्य०, पृ० १०२।

कालयाप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ विलव। २. समय बिताना [को०]।

कालयापन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कालक्षेप। दिन काटना। गुजारा करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२ विलव करना (को०)।

कालयुक्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्रभव आदि साठ संवत्सरों में से वावनवाँ संवत्सर।—वृहत्०, पृ० ५३।

कालयोग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] भाग्य। निवृत्ति। प्रारब्ध (को०)।

कालयोगत—क्रि० वि० [सं०] काल की प्राश्यकता के अनुसार [को०]।

कालयोगी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कालयोगिन्] शिव। परमेश (को०)।

कालर^१—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कालर] १ गले में बाँधने का पट्टा। २ कोट, कमीज या कुरते में वह उठी हुई पट्टी जो गन के चारों ओर रहती है।

कालर^२—वि० [हि० कल्लर] कल्लर। ऊसर। उ०—सहजो गुरु पूरा मिले सिस मँला घर चित्त। मेह बरसे कालर जिमी खेत न उपजै छित।—सहजो०, पृ० १३।

कालरा—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कालरा] हैजा या विषुविका नामक रोग।

कालराति^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कालरात्रि] ३० 'कालरात्रि'। उ०—कालराति निसिचर कुल केरी। तेहि सीता पर प्रीति धनेरी।—मानस, ५।४०।

कालरात्रि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. अंधेरी और भयावनी रात। २ नक्षत्र की रात्रि जिसमें सारी सृष्टि प्रलय को प्राप्त रहती है, कवल नारायण हो रहते हैं। प्रलय की रात। ३. मृत्यु की रात्रि। ४. ज्योतिष में रात्रि का वह भाग जिसमें किसी कार्य का आरंभ करना निषिद्ध समझा जाता है।

विशेष—इसके लिये रात के दहों के आठ सम भाग करते हैं।

फिर चारों के हिसाब से एक एक दिन के लिये एक एक भाग वंजित हैं। जैसे, रविवार को रात का छठा भाग अर्थात् २० दंड के बाद के ४ दंड, सोमवार को चौथा भाग अर्थात् १२ दंड के बाद के ४ दंड, मंगलवार को दूसरा भाग अर्थात् ४ दंड के बाद के ४ दंड, बुधवार को सातवाँ भाग अर्थात् २४ दंड के बाद के ४ दंड, वृहस्पतिवार को पाँचवाँ भाग अर्थात् १६ दंड के बाद

कालज्ञान—सज्ञा पुं० [सं०] १ समय की पहचान। स्थिति और प्रवस्था की जानकारी। २. मृत्यु का समय जान लेना।

कालज्येष्ठ—वि० [सं०] उम्र में बड़ा। जिसकी आयु अधिक हो [को०]

कालतुष्टि—सज्ञा स्त्री० [सं०] सांध्य में एक प्रकार की तुष्टि।

विशेष—यह विचारकर सतुष्ट रहना कि जब समय आ जायगा, तब यह बात स्वयं हो जायगी।

कालत्रय—सज्ञा पुं० [सं०] तीन काल—भूत, वर्तमान और भविष्य।

कालदंड—सज्ञा पुं० [सं० कालदण्ड] १ यमराज का दंड। उ०—वज्र ते कठोर है कैलाश ते विशाल, कालदंड ते कराल सब कान गावई।—केशव (शब्द०)। २ मृत्यु (को०)।

कालदत्त—वि० [सं०] समय की दी हुई। परिस्थितवश प्राप्त। उ०—उमरी इसकी कठिन त्वचा पर कालदत्त कर्कशता, नहीं लूट पाई है उमा इसकी हार्द सरसता।—दैनिकी, पृ० ३७।

कालदमनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

कालदष्ट—वि० [सं०] काल द्वारा डसा हुआ या काटा हुआ [को०]।

कालधर्म—सज्ञा पुं० [सं०] १ मृत्यु। विनाश। अवसान। उ०—सगर भूप जत्र गयो देवपुर कालधर्म कहैं पाई। अशुमान को भूप कियो तब प्रकृत प्रजा समुदाई।—रघुराज (शब्द०)। २. वह व्यापार जिसका होना किसी विशेष समय पर स्वाभाविक हो। समयानुसार धर्म। जैसे वसंत में मोर लगाना, ग्रीष्म ऋतु में गरमी पहना। ३. समयानुकूल प्रभाव [को०]। ४. प्रवसर या समय के अनुकूल आचरण [को०]।

कालधारणा—सज्ञा स्त्री० [सं०] समय का विस्तार [को०]।

कालघोत—वि० [सं०] सोने या चांदी का [को०]।

कालनर—सज्ञा पुं० [सं०] (व्योतिष शास्त्र के अनुसार) मानव शरीर का आकार। मनुष्य के शरीर की प्रतिमा [को०]।

कालनाथ—सज्ञा पुं० [सं०] १. महादेव। शिव। २. कालभैरव। काशीस्थ भैरवविशेष। उ०—लोक वेदहु विदित वाराणसी की बडाई वासी नर, नारि ईश अविका सरूप हैं। कालनाथ कोतवाल दडकारि दडपानि सभासद गणप से अमित अनुप हैं।—तुलसी (शब्द०)।

कालनाभ—सज्ञा पुं० [सं०] हिरण्याक्ष दैत्य के तीनों पुत्रों में से एक।

कालनिधि—सज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव। काशीश [को०]।

कालनियोग—सज्ञा पुं० [सं०] भाग्यफल। नियति [को०]।

कालनिर्यास—सज्ञा पुं० [सं०] गुग्गुलु।

कालनिशा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ दीवाली की रात। २. अत्यंत काली रात। मोघेरी भयावनी रात।

कालनेमि—सज्ञा पुं० [सं० कालनेमि] दे० 'कालनेमि'। उ०—पहिले कालनेमि हो हुतो। विष्णु सदा कौं वरी सु तो।—नंद प्र०, पृ० १२३।

कालनेमि—संज्ञा पुं० [सं०] १ रावण का मामा एक राक्षस जो हनुमान जो उस समय छलना चाहता था, जब वे संजीवनी माने जा रहे थे। २. एक दानव का नाम।

विशेष—इसने देवताओं को पराजित करके स्वयं पर अधिकार

कर लिया था और अपने शरीर को चार भागों में बांटकर सब कार्य करता था। अंत में यह विष्णु के हाथ से मारा गया और दूसरे जन्म में कंस हुआ।

कालपक्व—वि० [सं०] समय पर स्वभावतः या अपने आप पक्व [को०]

कालपट्टी—सज्ञा स्त्री० [पुं० कोलाफटी] जहाज की सीवन या बरार में सन आदि ठूंसने का कार्य।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

कालपर्णी—सज्ञा पुं० [सं०] एक फूलवाला पौधा। तगर [को०]।

कालपर्णी—सज्ञा स्त्री० [सं०] काली तुलसी।

कालपर्यय—सज्ञा पुं० [सं०] काल का अतिक्रमण। निश्चित समय का उल्लंघन [को०]।

कालपर्याय—सज्ञा पुं० [सं०] समय की गति। कालचक्र [को०]।

कालपाश—सज्ञा पुं० [सं०] १. समय का बंधन। समय का वह नियम जिसके कारण मृत प्रेत कुछ समय तक के लिये कुछ अनिष्ट नहीं कर सकते। २. यमपाश। यमराज का बधन।

कालपाशिक—सज्ञा पुं० [सं०] वधिक। जल्लाद [को०]।

कालपुरुष—सज्ञा पुं० [सं०] १ ईश्वर का विराट् रूप। विराट् रूप भगवान्। २. काल। ३. यम के दूत। उ०—प्रभर के देखते ही वह अड़ा फूट गया और उसमें से कालपुरुष उत्पन्न हुआ।—कबीर म०, पृ० ७।

कालपुरुष—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कालपुरुष' [को०]।

कालपृष्ठ—सज्ञा पुं० [सं०] १ मृग या हरिण का एक प्रकार। २. क्रींच पक्षी। ३. वगुला। ४. कंक पक्षी [को०]।

कालपृष्ठक—सज्ञा पुं० [सं०] १ कण के घनुष का नाम। २. घनुष। कमान [को०]।

कालप्रभात—सज्ञा पुं० [सं०] धरत [को०]।

विशेष—वर्षा के बाद आनेवाले आश्विन और कार्तिक दो महीने वर्ष में श्रेष्ठ समय के रूप में माने जाते हैं।

कालप्रमेह—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्रमेह रोग।

विशेष—इसमें काला पेशाब आता है। च्युत ने इसे मलप्रमेह लिखा है।

कालफांस—सज्ञा पुं० [सं० कालपाश] काल का पाश। काल की फांसी। उ०—बूझो काल फांस नर नारी, पूर्व जन्म तोहि लीन्ह उवारी।—कबीर सा०, पृ० ७२।

कालवजर—संज्ञा पुं० [सं० काल + हि० वजर] वह भूमि जो बहुत दिनों से जोती बोई न गई हो। बहुत पुरानी परती।

कालवादी—वि० [सं० कालवादिन्] काल (समय) की भावने वाला। उ०—वैसेषिक शास्त्र पुनि कालवादी है प्रसिद्ध पातंजलि शास्त्र मर्हि योगवाद लक्ष्यो दे।—सुदर् प्र०, भा० २, पृ० ६२१।

कालवियत—संज्ञा पुं० [क० कालिब] शरीर धारण करना।

उ०—बीज मोर भाङ्ग दोनों मिलकर कालवियत कूँ अपड़े।

—रसिकता०, पृ० ३१५।

६ यकृत । ७ एक राक्षस का नाम जो कालक नामक स्त्री से उत्पन्न कश्यप का पुत्र था । ८ एक प्रकार का अन्न (को०) ।

कालकटक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कालकटकुट] शिव (को०) ।

कालकरज—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कालकरज्ज] एक प्रकार का कजा जिसकी ऊपरी छाल साधारण कजे की छाल से कुछ अधिक नीली होती है । काला कजा ।

कालकरिका, कालकर्णी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्भाग्य । भाग्यहीनता (को०) ।

कालकर्मि—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कालकर्मन्] १ मृत्यु । नाश (को०) ।

कालकलाय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] काली मटर या दाल (को०) ।

कालकलक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पानी में रहनेवाला साँप । डेडहा (को०) ।

कालकवि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अग्नि ।

कालका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दक्ष प्रजापति की एक कन्या ।

विशेष—यह कश्यप की ब्याही थी और इससे नरक और कालक नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे ।

काशकामुक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वाल्मीकि के अनुसार खरदूषण की सेना का एक सेनापति जिसे रामचन्द्र ने मारा था ।

कालकाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ ईश्वर । २ शिव (को०) ।

कालकील—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ध्वनि । कोताहन (को०) ।

कालकुज—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कालकुज्ज] विष्णु (को०) ।

कालकुठ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कालकुठ] यमराज । यम (को०) ।

कालकूट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का अत्यंत भयंकर विष ।

विशेष—इसे काला वच्छनाग भी कहते हैं । भावप्रकाश के अनुसार यह एक पौधे का गोद है जो शृगवेर, कोकण और मलय पर्वत पर होता है । शुद्ध करने के लिये इसे तीन दिन गोमूत्र में रखकर सरसो के तेल से भीगे कपड़े में बाँधकर कुछ दिन तक रखना चाहिए । शुद्ध रूप में कभी कभी सन्निपात, श्लेष्मा आदि दूर करने के लिये इसका प्रयोग होता है ।

२ सिकिम और भूटान में होनेवाले सींगिया की जाति के एक पौधे की जड़ जिसमें छोटी छोटी गोल चित्तियाँ होती हैं ।

३ समुद्रमयन के बाद निकला हुआ विष जिसे शिव ने पान किया । हलाहल (को०) ।

कालकूटक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] विष । गरल । जहर (को०) ।

कालकृत्—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ परमात्मा । ईश्वर । २ मोर पक्षी । ३ सूर्य (को०) ।

कालकृत^१—वि० [सं०] १ काल या ऋतु से उत्पन्न । २ निश्चित ।

नियत । ३ न्यस्त । न्यास के रूप में रखा हुआ । उधार दिया हुआ । ४ बहुत पहले का कृत या किया हुआ (को०) ।

कालकृत^२—सञ्ज्ञा पुं० सूर्य (को०) ।

कालकेतु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम । उ०—कालकेतु निःसिंहर तर्ह आवा । जेहि सूकर ह्वै नृपहि मुलावा ।—मानस, १।१७० ।

कालकेय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] राक्षस । दैत्य । उ०—दैत्य कालेय, कालकेय तथा कालकंज कहे गए हैं ।—प्रा० भा० पं०, पृ० ८६ ।

कालकोठरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० काल + कोठरी] १ जेलघराने की एक बहत तग और अँधेरी कोठरी जिसमें कैद तनहाईवाले कैदी रखे जाते हैं । २ कलकत्ते के फोर्ट विलियम नामक किले की एक तग कोठरी जिसमें सिगाजुहीला ने अँगरेजों को कैद किया था ।

कालक्रम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] काल की गति । समय का अतिक्रमण (को०) ।

कालक्रिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ समय का विषय । २ मृत्यु (को०) ।

कालक्षेप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ दिन काटना । समय बिताना । बरत गुजारना । जैसे—वह हीन ग्राहमण किसी प्रकार अपना कालक्षेप करता है । २ बिलव देर (को०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

कालखज, कालखजन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कालखज्ज कालखजन] १ यकृत । २ वरपट (को०) ।

कालखड—सं० पुं० [सं० कालखण्ड] १ परमेश्वर । उ०—मानो कीन्ही काल ही की कानखड खडन ।—केशव (शब्द०) । २ यकृत (को०) । ३ वरपट (को०) ।

कालगगा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कालगङ्गा] १ वह गंगा जिसका रंग काला हो, अर्थात् यमुना नदी । २ लंका द्वीप की एक नदी ।

कालगडैत—सञ्ज्ञा पुं० [हि० काला + गडा + ऐत (प्रत्य०)] वह विषघर साँप जिसके ऊपर काले गडे वा चित्तियाँ होती हैं ।

कालगीतम—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक ऋषि का नाम ।

कालग्रथि—सञ्ज्ञा [सं० कालग्रथि] वर्ष । बत्सर । साल (को०) ।

कालचक्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] समय का चक्र । समय का हेरफेर । जमाते की गदिश । उ०—कालचक्र में हो धवे, आज तुम राजकुंवर ।—अपरा, पृ० ११ ।

विशेष—दिन रात आदि के बराबर आते जाते रहने से काल की उपमा चक्र से देते आए हैं । मत्स्यपुराण में पूर्वाह्न, मध्याह्न, अपराह्न को कालचक्र की नाभि, सवत्सर, परिवत्सर आदि को आरे और छह ऋतुओं को नेमि लिखा है । जैन लोग भी उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में छह छह आरे मानते हैं ।

२ उतना काल जितना एक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी में लगता है । ३ एक अस्त्र का नाम । ४ काल का पहिया (को०) । ५ भाग्यचक्र । भाग्य का हेरफेर (को०) । ६ सूर्य (को०) ।

कालचित्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] काल या मृत्यु होने के लक्षण (को०) ।

कालजा(उ)—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कलेजा] ३० 'कलेजा' । उ०—काट नाहर कालजा, छक या अचरज छक ।—वाँकीप्र०, भा० १, पृ० २४ ।

कालजुवारी—सञ्ज्ञा पुं० [हि० काल + जुवारी] बड़ा जुवारी । गजब का जुवारी ।

कालजोपक—वि० [सं०] समय पर जो कुछ मिल जाय वही खा पीकर सतुष्ट रहनेवाला (को०) ।

कालज्ञ^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ समय के हेरफेर को जाननेवाला व्यक्ति । २ ज्योतिषी । ३ मुर्गा ।

कालज्ञ^२—वि० १ अवसर को पहचानकर काम करने वाला । २ मृत्यु को जाननेवाला (को०) ।

कार्पिक—सञ्ज्ञा पुं० १ कार्पाण २ कृपि कर्म [को०] ।
 कार्पिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १० 'कार्पाण' [को०] ।
 कार्पाण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चरवाहा [को०] ।
 कार्पाण—वि० [सं०] [वि०] १. कृष्ण सवधी । २. कृष्ण द्वैपायन सवधी । ३. कृष्ण मृग सवधी ।
 कार्पाणिन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. व्यासवशीय ब्राह्मण । २. वसिष्ठ गोत्र का ब्राह्मण ।
 कार्पाण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कृष्ण के पुत्र, प्रद्युम्न । २. कामदेव । ३. कृष्ण द्वैपायन व्यास के पुत्र, शुकदेव । ४. एक गधर्व का नाम ।
 कार्पाण—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सतावर ।
 कार्पाण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कृष्णता । कालापन ।
 कालंकत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कालज्वर । १. क. समर्द्ध । वहेडा का पेड़ जिसकी छाल के सेवन से खांसी का रोग दूर हो जाता है । २. खांसी की एक तरल दवा [को०] ।
 कालकनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कालकर्णी प्रलक्ष्मी पराजय । हार । अभ्रमय । उ०—अवतार लियो प्रियराज पट्ट ता दिन दात अनत दिय । कनवज्जदेस गज्जन पटन । किलकिलत कालंकनिय ।—पृ० रा०, १।६८८ ।
 कालजर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कालज्वर । १. १० 'कालिजर' । २. एक पहाड़ जिसकी स्थिति कालिजर के पास है [को०] । ३. धार्मिक भिक्षुको का समूह या सभा (को०) । ४. शिव (को०) ।
 कालजरा, कालजरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कालज्वरा, कालज्वरी दुर्गा । पार्वती [को०] ।
 काल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ समय । वक्त । वह संबंधमत्ता जिसके द्वारा भूत, भविष्य, वर्तमान आदि की प्रतीति होती है और एक घटना दूसरी से आगे, पीछे आदि समझी जाती है ।
 विशेष—वैज्ञानिक में काल एक नित्य द्रव्य माना गया है और 'आगे', 'पीछे', 'साथ', 'धीरे', 'जल्दी' आदी उसके लिंग बतलाए गए हैं । सन्ध्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग और विभाग उसके गुण कहे गए हैं । 'पर', 'अपर' आदि प्रत्ययों का भान सर्वत्र सब प्राणियों में समान होता है, और इस परत्व, अपरत्व की उत्पत्ति में असमवायि कारण से काल का संयोग होता है । इससे काल सबका कारण तथा व्यापक और एक माना गया है । उसकी अनेकता की प्रतीति केवल उपाधि से होती है । कोई कोई नैयायिक काल के 'खंडकाल' और 'महाकाल' दो भेद करते हैं । पदार्थों (ग्रहों आदि) की गति आदि से क्षण दंड, मास, वर्ष आदि का जिसमें व्यवहार होता है, वह खंडकाल है । और उसी का दूसरा नाम कालोपाधि है । जैन शास्त्रकार काल को एक अरूपी द्रव्य मानते हैं और उसकी उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी दो गतियाँ कहते हैं । पाश्चात्य दार्शनिकों में लेवनीज काल को संबंधों की अव्यक्त भावना कहता है । काट का मत है कि काल कोई स्वतंत्र वास्तव पदार्थ नहीं है, वह चित्ताप्रयुक्त अवस्था है जो चित्त के अधीन है, वस्तु के अधीन नहीं । देश और काल वास्तव में मानसिक अवस्थाएँ हैं जिनसे सबद सब कुछ देख पड़ता है ।

मुहा०—काल काटना = नमय विताना । कालक्षेप करना = समय काटना । दिन विताना । काल पाकर = (१) कुछ दिनों के पीछे । कुछ काल बीतने पर । जैसे,—काल पाकर उसका रंग बदल जायगा । (२) मरकर । मरने के बाद । उ०—काल पाइ मुनि सुनु सोइराजा । भएउ निसाचर सहित समाजा ।—मानस, १।१७६ ।

३ अतिम काल । नाश का समय । अत । मृत्यु ।

क्रि० प्र०—घाना ।

३ यमराज । यमदूत । उ०—प्र० प्रताप ते कानहि खाई ।—तुलसी (शब्द०) । ४ नियत ऋतु । नियत समय । जैसे,—ये पेड़ अपने काल पर फूलेंगे । ४ उपयुक्त समय । अवसर । मौका । ६ अकाल । महीना । दुर्भिक्ष । कहत ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

७ ज्योतिष के अनुसार एक योग जो दिन के अनुसार घूमता है और यात्रा में अशुभ माना जाता है । ८ कर्मोत्था । ९. काला साँप । १०. लोहा । ११. शनि । १२. [स्त्री०] काली शिव का नाम । महाकाल । १३. काला या गहरा नीला रंग (को०) । १४. प्रारब्ध (को०) । १५. आँख का काला हिस्सा (को०) । १६. कोयल (को०) । १७. एक संग्रहयुक्त पदार्थ । अमृग (को०) । १८. कनवार । मद्यविक्रेता (को०) । १९. मौसम । ऋतु (को०) । २०. भाग्य । नियति (को०) । २१. भाग । विभाग (को०) । २२. शिव का एक शब्द (को०) । २३. 'म' अक्षर की गुह्य सञ्ज्ञा (को०) ।

काल—वि० काला । काले रंग का ।

यी०—कालकोठरी ।

काल—क्रि० वि० [हि० काल] १० 'कल' ।

कालकज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कालकज्ज १ दैत्य । उ०—दैत्य कानेय कालकेय तथा कालकज्ज कहे गए हैं ।—प्रा० भा० प०—पृ० ८६ । २. नील कमल (को०) ।

कालकंडक—सञ्ज्ञा [सं०] कालकण्डक शिव । महादेव ।

कालकठ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कालकण्ड १ शिव । महादेव । २. मोर । मयूर । नीलकण्ठ पक्षी । ४. गौरा पक्षी । ५. खजन । खिड़रिव ।

कालकण्ठक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कालकण्डक १ वनकीया । २. गीघ । ३. चील । ४. सुग्गा [को०] ।

कालकठी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कालकण्ठी पार्वती । उमा [को०] ।

कालकंडक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कालकण्डक पानी का साँप । डेडहा [को०] ।

कालकदक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कालकण्डक पानी का साँप । डेडहा ।

कालकथ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कालकण्ठ तमाल वृक्ष ।

कालक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. तैंतीस प्रकार के केतुओं में से एक केतु का नाम । २. आँख की पुतली । ३. बीजगणित में द्वितीय अव्यक्त राशि । ४. अलगद नामक पानी का साँप । ५. एक देशविशेष ।

विशेष—यह महाभाष्यकार पतंजलि के समय में आर्यावर्तकी पूर्वो सोमा माना जाता था ।

कार्यगौरव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ काम का महत्त्व या वैशिष्ट्य । २. कार्य की पूर्ति के प्रति आदर [को०] ।

कार्यचित्तक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कार्यचित्तक] १ शासक । २ स्थानीय प्रबंधकर्ता (स्मृति०) ।

कार्यचित्तक^२—वि० सावधान । अवहितचित्त । विचारकर काम करनेवाला [को०] ।

कार्यच्युत—वि० [सं०] १ कार्य में चूका हुआ । २. काम से निकला हुआ [को०] ।

कार्यजात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] । दे० 'कार्यदर्शन' [को०] ।

कार्यदर्शन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ किसी के किए हुए काम को आलोचनायें देखना । काम की देखभाल । २ अपने काम की फिर से जाँच । ३ सार्वजनिक कार्य की जाँच [को०] ।

कार्यदर्शी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कार्यदर्शिन] काम को देखने भालनेवाला । निरीक्षक ।

कार्यपत्रक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कार्यपत्रक] ईश्वर के पाँच विशेष काम, अर्थात् अनुग्रह, तिरोभाव, आदान, स्थित और उद्भव ।

कार्यपदवी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] काम का ढर्रा । कार्य की पद्धति [को०] ।

कार्यपद्धति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] काम करने का ढग ।

कार्यपुट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अड़वड़ काम करनेवाला । उन्मत्त । २ क्षणिक । बौद्ध शिष्य । ३ काहिल । आलसी [को०] ।

कार्यप्रद्वेष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कार्य से अस्विकृति । २ आलस्य । शिथिलता [को०] ।

कार्यभ्रंशकारी—वि० [सं० कार्यभ्रंशकारिन] काम बिगाड़नेवाला । उ०—अतः अर्थगम से हृष्ट 'स्वकार्यं साधयेत्' के अनुवादी काशी के ज्योतिषी और कर्मकांडी, कानपुर के वनिये और दलाल, कचहरियों के अमले और मुख्तार, ऐमों को कार्यभ्रंशकारी मूर्ख, निरे निठल्ले या खल्ले उल्लास समझ सकते हैं । —रस० पृ० २२ ।

कार्यवस्तु—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ उद्देश्य । २ विषय [को०] ।

कार्यवाही^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० कार्यवाही] काररवाई ।

कार्यवाही^२—वि० [सं० कार्यवाहिन] काम करनेवाला ।

कार्यशेष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] काम का वह भाग जो काम करने से बाकी रह गया हो । बचा हुआ काम ।

कार्यसम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] न्याय में २४ जातियों में से एक ।

विशेष—इसमें प्रतिवादी वादी के इस कथन पर कि प्रयत्न से उत्पन्न कार्य अनित्य हैं, प्रयत्न द्वारा उत्पन्न कार्यों की अनेकरूपता की दलील देता है जो वादी का पक्ष खंडन करने में असमर्थ होती है । जैसे नैयायिक कहता है कि प्रयत्न से उत्पन्न कार्य होने के कारण शब्द अनित्य है । इसपर प्रतिवादी या भीमासक कहता है कि प्रयत्न से उत्पन्न कार्य अनेक प्रकार के होते हैं, जैसे कुम्हा खोदने से जल निकलता है, तो क्या जल कुम्हा खोदने के पहले नहीं था ? इसी को कार्यसम या कार्यविशेष कहते हैं । इसपर वादी कहता है कि व्यवधान के हटने से अभिव्यक्ति होती है, उत्पत्ति नहीं होती, शब्द की उत्पत्ति होती है, अभिव्यक्ति नहीं । अनुपलब्धि-

कारण या व्यवधान के दूर करने के प्रयत्न को कारणत्व नहीं होता ।

कार्यकार्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] करने योग्य और न करने योग्य काम । सत् और असत् कर्म ।

कार्याधिकारी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कार्याधिकारिन] वह जिसके सुपुर्दे किसी कार्य का प्रबंध आदि हो । अफसर ।

कार्याध्यक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अफसर । मुख्य कार्यकर्ता ।

कार्यान्वय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कार्य रूप में परिवर्तन ।

कार्यान्वित—वि० [सं०] लागू । कार्य रूप में परिणत । प्रयुक्त । उ०—इसलिये हमारा पहला लक्ष्य रचनात्मक जनतंत्र को अपने देश में ही कार्यान्वित करना है । —नया०, पृ० २६ ।

कार्याभिमुख—वि० [सं०] काम की ओर मुड़ने वाला । काम का आरंभ करने जानेवाला [को०] ।

कार्याभिमुखत्व—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कार्य की ओर उन्मुख होने का भाव ।

कार्याधि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ किसी कार्य का लक्ष्य या उद्देश्य । २ काम पाने का आवेदनपत्र । ३ उद्देश्य । अभिप्राय [को०] ।

कार्यार्थी^१—वि० [सं० कार्यार्थिन] १ कार्य की सिद्धि चाहनेवाला । कोई गरज रखने वाला । २ काम चाहने वाला व्यक्ति [को०] ।

कार्यार्थी^२—सञ्ज्ञा पुं० किसी मुकदमे की पैरवी करने वाला ।

कार्यालय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ कोई कार्य होता हो । दफ्तर । कारखाना ।

कार्यी—वि० [सं० कार्यिन्] १ परिश्रमी । कार्यशील । २ कार्य चाहनेवाला । ३ सोद्देश्य । ४ मुकदमेवाज [को०] ।

कार्यक्षण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] । काम की देखभाल । दूसरों के द्वारा किए हुए काम का निरीक्षण [को०] ।

काररवाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० काररवाई] दे० 'काररवाई' ।

कार्ल मार्क्स—सञ्ज्ञा पुं० [जर्मन] १९ वीं शती के महान् राजनीति शास्त्रप्रणेतों का नाम जिसने साम्यवाद के सिद्धांत को जन्म दिया ।

कार्यानिव—वि० [सं०] अग्निमय । उज्ज्वल [को०] ।

कार्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कृशता । दुबलापन । दुर्बलता । २ साल का पेड़ । बड़हर का पेड़ । ४ कचूर ।

कार्य, कार्यक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कृषिकर्म करनेवाला । खेतिहर कृषक । किसान [को०] ।

कार्यापण, कार्यापणक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन सिक्का ।

विशेष—यह यदि तांबे का होता था तो अस्सी रस्ती का, यदि सोने का होता था तो १६ मासे का और यदि चांदी का होता था तो १६ पण या १५० कोडियों का (किसी किसी के कथनानुसार एक पण का या अस्सी कोडियों का) होता था ।

कार्यापणक—वि० सं० [वि० स्त्री० कार्यापणकी] एक कार्यापण मूल्य का [को०] ।

कार्षि^१—वि० [सं०] १ अकरण करनेवाला । २ कृषि करनेवाला [को०] ।

कर्मणः^१—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] [ली० कर्मणो] मूल कर्म जिनमे मंत्र और ओषध आदि से मारण, मोड़न, वशीकरण आदि क्रिया जाता है। मंत्र तंत्र आदि का प्रयोग।

यो०—कर्मण कर्म = (१) जादू। इद्रजाल। (२) वशीकरण।

कर्मणः^२—वि० [वि० ली० कर्मणो] १ कर्म में दक्ष। कर्मकुशल। २. कर्म पूर्य करनेवाला (को०)।

कर्मणत्व—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] जादू। वशीकरण मंत्र [को०]।

कर्मण्यक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक देश का नाम।—वृहत्०, पृ० ८५।

कर्मणोन्माद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० कर्मणोन्मादी, कर्मणोन्मादिनी] एक प्रकार का उन्माद।

विशेष—इसमें कंधा घोर मस्तक भारी रहता है, नाक आँख, हाथ, पाँव में पीड़ा होती है, वीर्य न्यून हो जाता है, रोगी दुबला होता जाता है और उसके शरीर में सुई चुम्बने की सी पीड़ा होती है। लोगों का विश्वास है कि यह उन्माद जादू, टोना, प्रयोग आदि से होता है।

कर्मना^④—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्मण] १ मंत्र तंत्र का प्रयोग। कृत्या। २ मंत्र। तंत्र। उ०—जैति परमंत्र यन्मित्रात्क प्रमन कर्मना कूट कृत्याहिता। डाकिनो माकिनो पूतना प्रेत वनाल भूत प्रथम ज्ञय जता।—तुलसी (शब्द०)।

कामांतिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कामान्तिक] १ शिल्पशाला। २. शिल्प कर्म का निरीक्षक। उ०—पुरोहित के अलावा मुख्य मंत्री, सेनापति, कामांतिक इत्यादि।—हिंदु० सम्प्रदाय, पृ० ३२६।

कामारि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कलाकार। २ शिल्पी। ३ लुहार। ४ कर्मकार (को०)।

कामारिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ शिल्प कर्म। २ लुहारों का काम (को०)।

कामारिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शूल। माला (को०)।

कामिक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वह वस्त्र जिसमें बुनावट में ही शख, चक्र, स्वस्तिक आदि के चिह्न बने हो। २. रंगीन सूत मिला गोटे का काम (को०)।

कामिक^२—वि० [वि० ली० कामिको] १ कर्मशील। काम करनेवाला। २. निर्मित। कृत। बनाया या तैयार किया हुआ (को०)। ३. बीच बीच में रंगीन सूत मिला गोटेदार (काड़ा) (को०)। ४. अनेक रंगों या डिजाइन के योग में बना हुआ (को०)।

कामिक्य—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] क्रियाशीलता। कर्मशीलता। परिश्रम (को०)।

कामुक^१—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ धनुष।

यो०—कामुकोपनिषद = धनुर्विद्या। कामुकभृत् = (१) धनुराशि। (२) धनुर्धर।

२ परिधि का एक भाग। चाप। ३ इन्द्रधनुष। ४ वाँस। ५. सफेद खर। ६ वकायन। ७ एक प्रकार का शहद। ८. धनुराशि। नवौ राशि। ९ दई धुने की धुनकी। १० योग में एक आसन।

विशेष—इसमें पदमासन से बैठकर दाहिने हाथ से बाएँ पैर की दो उँगलियाँ और बाएँ हाथ से दाहिने पैर की दो उँगलियाँ पकड़ते हैं।

११. एक प्रकार का यंत्र या साधन जो धनुष के आकार का होता है (को०)। १२. समुद्र या नदी तट पर स्थित एक प्रकार का गाँव (को०)।

कामुक^२—वि० [वि० ली० कामुकी] कर्मकुशल। कर्मदक्ष (को०)।

कार्य^१—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ काम। व्यापार। धंधा। २ वह जो कारण से उत्पन्न हो। वह जो कारण का विकार हो अथवा जिसे लक्ष्य करके कर्ता क्रिया करे। जो कारण के बिना न हो। ३ फल। परिणाम। प्रयोजन। ४. ऋण आदि सर्वघी विवाद। रुपए पैसे का झगडा। ५ ज्योतिष में जन्मलग्न से दसवाँ स्थान। ६ आरोग्यता। ७ धार्मिक कृत्य या कर्म (को०)। ८ अभाव। आवश्यकता। अवसर। १. नाटक का अंतिम फल (को०)। १० करने योग्य या करणीय कर्म (को०)। ११. आचरण (को०)। १२. किसी कारण का अनिवार्य फल या निष्पत्ति (विलोम कारण) (को०)। १३ मूल उद्गम (को०)। १४ शरीर। देह (को०)।

कार्य^२—वि० १ करने योग्य। २ बनाने योग्य (को०)।

कार्यकर—वि० [सं०] १ उपयोगी। उपादेय। लाभप्रद। २ काम करनेवाला (को०)।

कार्यकरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कार्या य। दफ्तर। (को०)।

कार्यकर्ता—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कार्यकर्तृ] १ काम करनेवाला कर्मचारी। २ मित्र। हितकारी (को०)।

कार्य-कारण-भाव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कार्य और कारण का संबंध। २ किसी कार्य का विशेष कारण (को०)।

कार्य-कारण-संबंध—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कार्य कारण-सम्बन्ध] कार्य और कारण का पारस्परिक योग।

विशेष—मीमांसा में इसका प्रतिपादन अन्वयव्यतिरेक सिद्धांत द्वारा किया गया है, जिसका सूत्र है—तद्भावे भाव तद्भावे अभाव। इसकी प्रथम अविव्यक्ति शास्त्र भाष्य में हुई है। जिसके होने पर जो होता है और न होने पर नहीं होता है, वही कार्य-कारण-संबंध की स्थिति होती है। यह उन नैयायिक कार्य-कारण संबंध सेभिन्न है जिसका प्रयोग वे व्याप्ति की सिद्धि के लिये करते हैं।

कार्यकाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ काम करने का समय। २. सुप्रवसर। ३. किसी पद या स्थान पर रहने का समय या काल (को०)।

कार्यक्रम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कार्य की सूची। किए जानेवाले या होनेवाले कामों का क्रम या व्यवस्था। प्रोग्राम। उ०—निश्चित सा करते हुए विधीपण कार्यक्रम।—अपरा ०, पृ० ५५।

कार्यक्षेत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सञ्ज्ञा] कर्मभूमि। वह भूभाग जिनके भीतर रहकर कोई व्यक्ति उसके हित के लिये काम करता है। उ०—किंतु राज को विशेष रूप से अपना कार्यक्षेत्र बनाया।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६३।

मे बहुतायत से पैदा होता है। इसका पेड़ ४० फुट तक ऊँचा होता है। छाल दो इंच तक मोटी होती है। एक बार छील लेने पर यह छाल चार या छह वर्ष में फिर पैदा हो जाती है। इसका वृक्ष १५० वर्ष तक रहता है।

कार्कण—वि० [सं०] किसान से सबंध रखनेवाला (को०)।

कार्कलास्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गिरगिट होने की स्थिति या दशा [को०]

कार्कवाकव—वि० [सं०] कृकवाकु या कुक्कुट से संबंध रखनेवाला (को०)।

कार्कश्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कर्कशता। कठोरपन। २ दृढ़ता। ३ ठोस होना। ठोस दशा। ४ कठोरहृदयता। निष्ठुरता। ५ मोटा या मेहनत का काम (को०)।

कार्कीक—वि० [सं०] सफेद छोड़े जैसा (को०)।

काज(७)—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कार्य [दे० 'कार्य']। उ०—पै जो मन चाहि है सो तेरो काज होइगो।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४८४।

काडं—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] १ मोटा कागज। मोटे कागज का तख्ता। २ छोटे तथा मोटे कागज पर निखा हुआ खुला पत्र। ३ पत्ते का कागज।

यौ०—पोस्ट काडं। विजिटिंग काडं। प्लेइंग काडं। वेजेज काडं।

'कार्ण'—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कान का भूपण। कनकूल। २ कान का मूल। ३ वृषकेतु का नाम (को०)।

कार्ण^२—वि० १ कान संबंधी। २ कर्ण संबंधी (को०)।

कार्णछिद्रक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कुआँ [को०]।

कार्णट भाषा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कर्नाट या कन्नड़ देश की भाषा। कन्नड़ भाषा (को०)।

कार्तियुग—वि० [सं०] कृतयुग या सत्ययुग संबंधी। सत्ययुग से संबंध रखनेवाला [को०]।

कार्तवीर्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कृतवीर्य का पुत्र सहस्राजुन जिसकी राजधानी माहिमती नगरी थी।

विशेष—यह राजा तथसायक का आचार्य माना जाता है। कहते

हैं कि इसे परशुराम जी ने मारा था। इसके हजार हाथ थे।

कार्तस्वर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ स्वर्ण। सोना। २ धतूरा (को०)।

कार्तांतिक—वि० [सं०] कार्तान्तिक। भविष्यवृत्ता। ज्योतिषी (को०)।

कार्तिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ एक चांद्र मास जो क्वार और अग्रहन के बीच में पड़ता है।

विशेष—जिस दिन इस मास की पूर्णिमा पड़ती है, उस दिन चंद्रमा कृत्तिका नक्षत्र में रहता है, इसी से इसका यह नाम पड़ा है।

२. वह सवत्सर जिसमें वृहस्पति कृत्तिका या रोहणी नक्षत्र में हो। बार्हस्पत्य वर्ष। ३ कुमार स्कंद का एक विशेषण।

कार्तिको—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिक मास की पूर्णिमा तिथि [को०]।

कार्तिकेय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कृत्तिका नक्षत्रमें उत्पन्न होनेवाले स्कंदजी।

पद्मानन। उ०—आजनय को अधिक कृती उन कार्तिकेय से भी सेखो, माताएँ ही माताएँ हैं जिसके लिए जहाँ देखो।—साकेत पृ० ३८३।

यौ०—कार्तिकेयप्रसू = कार्तिकेय की माता, पार्वती।

कार्निस्—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] दे० 'कारनिस्'। उ०—प्रातिशदान के कार्निस् पर धरे हुए शीशे का वस्त्र और बोटल चमक उठे।

पर उस क्रोध आया बिजली बुझा दी।—प्राकाश०, पृ० ५०।

कार्दम—वि० [सं०] वि० स्त्री० कार्दमी। कीचड़ से भरा हुआ या सना हुआ। २ कदम नामक प्रजापति सबंधी। कदम से उत्पन्न। ३ कदम का किया या बनाया हुआ।

कार्दमक, कार्दमिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कार्दमकी, कार्दमिकी] दे० 'कार्दम' (को०)।

कार्पट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वादी। व्यापारी। २ अभ्यर्थी। उम्मीदवार। ३ चियड़ा। ४ लाख (को०)।

कार्पटिक—सञ्ज्ञा पुं० (सं०) १ तीर्थयात्री २ पवित्र तीर्थंजन ले जाकर जीविका प्राप्त करनेवाला व्यक्ति। ३ तीर्थयात्रियों का सारथ या कारवां। ४ अनुभवी व्यक्ति। ५ परपिंडोपजीवी। ६ धूत। वचक। ७ विषवासपाय। अनुगामी (को०)।

कार्पण्य—सञ्ज्ञा स्त्री० (सं०) प्रसन्नता (को०)।

कार्पण्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कृपण होने का भाव। कृपणता। कजूसा। बखाली। २ दया। सहानुभूति (को०)। ३ गरीबी घनहीनता (को०)।

कार्पाण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कृपाणयुद्ध। युद्ध। संग्राम [को०]।

कार्पास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कार्पासी] १ कपास का बना कपड़ा। २ कपास। उ०—ध्यापो है जिसमें विमा वलय सो नीलाम श्वत प्रभा। हाते हैं सित मधखड जिसमें कार्पास के पुज से। सर्पाकार नितात दिव्य जिसमें नीहारकाएँ मिली। फला है यह क्या पयोधि पय सा सवत्र आकाश म।—पारिजात, पृ० ३०। ३ कागज (को०)।

यौ०—कार्पासास्थि = कपास का बाज।

कार्पास^२—वि० कपास का। कपास का बना। कपास संबंधी (को०)।

कर्पासतातव—सञ्ज्ञा पुं० (सं० कर्पासतातव) कपास के सूत का बुना हुआ कपड़ा [को०]।

कार्पासनालिका, कार्पासनासिका—सञ्ज्ञा स्त्री० (सं०) तनुमा [को०]।

कार्पाससोत्रिक—वि० [सं०] कपास के सूत का बुना हुआ (को०)।

कार्पासिक—वि० [सं०] वि० स्त्री० कार्पासिकी। कपास से या कपास का बना हुआ (को०)।

कार्पासिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कपास का पौधा [को०]।

कार्पेट—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] कार्पीन। गलीचा। उ०—घर का माबिक उसी घर में तसवीरें टाँगकर कार्पेट बिछाकर उसपर सदा के लिये अपनी छाप लगा देना चाहता है।—रस, पृ० ८२।

कार्वन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कारवन'।

कार्वोन—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] दे० 'कारवन'। उ०—हीरा और कोयला दोनों कार्वोन हैं, उनका बन्ने का रसायनिक क्रिया भी एक सी

है।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ११५।

कार्वोनिक—वि० [अ०] दे० 'कार्वोनिक'।

कार्वोलिक—वि० [अ०] दे० 'कार्वोलिक'।

कार्य—वि० [सं०] परिश्रमी। मेहनती। कमशील [को०]।

कारोगरी

कारोगरी—संज्ञा स्त्री [फा०] १ अच्ये अच्ये कान उताने की कला । निर्माणकला । २. सुंदर बना हुआ काम । मनोहर रचना ।
 कारीबरी—संज्ञा स्त्री [हि० काली बीरी] दे० 'काली बीरी' ।
 कारीर—वि० [सं०] करीर या बांस के कल्ले से निर्मित [को०] ।
 कारीप—संज्ञा पुं० [सं०] सूखे गोबर की ढरी । करीप का समूह [को०] ।
 कारीप—वि० १. कारीप या सूखे गोबर संबंधी । २ सूखे गोबर से उद्गन्न [को०] ।
 कारुडिका, कारु डी—संज्ञा स्त्री [सं० कारुडिका, कारुण्डो] जोक [को०] ।
 कारु—वि० [सं०] १ करनेवाला । बनानेवाला । २ कलावस्तु बनानेवाला । कला का रचयिता । ३ मंत्र बनाने वाला । ४, भीषण । भयंकर [को०] । २ विश्वकर्मा [को०] । शिल्प [को०] ।
 कारु—संज्ञा पुं० १. गिल्पी । कारीगर । दस्तकार ।
 कारु—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कारुका] १. शिल्पी । कारीगर । २ कलाकार [को०] ।
 कारुचौर—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो चोरी करता हो । २ धूर्त । चंचक [को०] ।
 कारुज—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिल्पी की बनाई वस्तु । २. शरीर पर का तिल आदि । ३ हाथी का वच्चा । करम । ४ गेहू । ५. बल्मीक । बमोट [को०] ।
 कारुणिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० करुणिकी] कारुणायुक्त । कृपालु । दयालु ।
 कारुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] करुणा का भाव । दया । मेहरबानी ।
 कारुणीक—वि० दे० [हि०] 'कारुणिक' । उ०—कारुणीक दिनकर कुल केतू । दून पठायउ तब हित हेतू ।—मानस, ६।३६ ।
 कारुपय—संज्ञा पुं० [सं० कारापय] दे० 'कारापय' ।
 कारुशासित—संज्ञा पुं० [सं० कारुशासितृ] शिल्पियों या कारीगरों का निरीक्षक या उन्हें काम में लगानेवाला [को०] ।
 कारुशिल्पिगण—संज्ञा पुं० [सं०] शिल्पियों और कलाकारों का सभ [को०] ।
 कारु—संज्ञा पुं० [सं० कारु] हजरत मूसा का चचेरा भाई जो बड़ा धनी था, पर खेरात नहीं करता था । कहा जाता है ४० खच्चरों पर उसके खजानों की कुजियाँ चलती थी । कजूसी के कारण अब उसके नाम का अर्थ ही कजूस पड़ गया है । उ०—दो चार टके ही पं कभी रात गवाई हूँ । कारु का खजाना कभी इनग्राम है मेरा ।—भारतेंदु, प्र०, भा० २, पृ० ७६० ।
 यो—कारु का खजाना = असौम धन । अनंत संपत्ति । कुदेर की सी संपत्ति ।
 कारु—वि० कजूस । बखील । मक्खीचूस । कृपण ।
 कारु—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कारुका] १. शिल्पकार । २. कलाकार [को०] ।
 कारुनी—संज्ञा स्त्री [देश०] घोड़ी की एक जाति । उ०—कारुनी सदवी स्याहू कनेता हनी । नुकरा और दुबाव बोरता है छवि हनी ।—सूदन (चन्द्र०) ।

कारु—संज्ञा पुं० [प्र० कारुह] १ कुँकनी गीती, जिसमें रोगी का मूत्र वंच को दिखाने के लिये रखा जाता है । २. मूत्र । पेशाब ।
 क्रि० प्र०—दिलाना । देवना ।
 मुहा०—कारु मिला = अत्यंत घनिष्ठता होना । अत्यंत हेल-मेल होना ।
 ३. वाह्य की कुप्पी जिसमें प्राग लगाकर शत्रु की ओर फेंकते हैं ।
 कारु—वि० [सं०] करुण देश संबंधी । करुण देश का ।
 कारु—संज्ञा पुं० १. करुण देश का निवासी । २. भूच । लुधा [को०] ।
 ३ एक वर्णसंकर जाति जिसका पिता ब्राह्मण वंश और माता वंश हो [को०] ।
 कारुखैर—संज्ञा पुं० [फा० कार + खैर] शुभ कार्य । उ०—चुड़ा तुरत पंदा किया कर ना देर किया लाख खुशियाँ सेती कारुखैर ।—दक्खिनी, पृ० ७८ ।
 कारुणव—वि० [सं०] हृदयना संबंधी । करुण संबंधी [को०] ।
 कारुस्पॉडेंट—संज्ञा पुं० [प्र० करेस्पॉडेंट] वह जो किसी समाचारपत्र में अपने स्थान की घटनाएँ आदि लिखकर भेजता हो । समाचार पत्रों में सवाद आदि भेजने वाला । सवाददाता ।
 कारुस्पॉडेंस—संज्ञा पुं० [प्र० करेस्पॉडेंस] पत्र आदि का भेजा जाना और आना । पत्रव्यवहार ।
 कारुछ—संज्ञा स्त्री [हि० कारुछ] दे० 'कारुछ' ।
 कारु—वि० [हि० काला] दे० 'काला' । उ०—दूँ सिध ग्रानन पर जमे कारो पीरो गात । बल अमृत सब पानही अमृत देख डरात ।—नद ग्रं०, पृ० १८४ ।
 कारोनर—संज्ञा पुं० [प्र०] वह मफसर जिसका काम जूरी की सहायता से आकस्मिक या सदिय मृत्यु, आत्महत्या तथा उन लोगों की मृत्यु की जाँच करना है जो दण फसाद में या किसी दुर्घटना के कारण मरे हो ।
 विशेष—हिंदुस्तान में प्रेसिडेंसी नगरों अर्थात् कलकत्ते, बंबई और मद्रास में कारोनर होते हैं । ये प्रायः छोटी अदालत के जज या मैजिस्ट्रेट होते हैं । इनके साथ जूरी बैठते हैं । ऐसी मौत के मामले इस अदालत में आते हैं जो गिरन, पड़ने, जलने अथवा अन्य कारणों से लगन या आत्महत्या से हुई हो । उदाहरणार्थ किसी युवती की मृत्यु जलन से हुई है । उसने स्वयं आत्महत्या की या जलाकर मार डाली गई, साक्षी मार प्रमाणों पर यही निर्णय करना इस अदालत का काम है । और किसी प्रकार की कानूनी काररवाई करने या दंड का इसे अधिकार नहीं है । इसका निर्णय हो जाने पर साधारण अदालत में किसी पर मामला चलता ।
 कारुवार—संज्ञा पुं० [फा० कारवार] दे० 'कारवार' ।
 कारु—वि० [हि० काला] काला । उ०—चमक चमक को काज बहि मुख कारु कानो ।—नद ग्रं०, पृ० २११ ।
 कारु—संज्ञा पुं० [प्र०] एक प्रकार की बहुत हा हलका लकड़ी की छाल जिससे बोटल में लगाने की डाट बनती है । काग ।
 विशेष—यह एक प्रकार का शाद्वल है जो स्पेन और पुर्तगाल

कारस्तानी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] १ कारसाजी । काररवाई । २. चाल-वाजी । छिपी काररवाई ।

कारा^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ वधन । कैद । उ०—है अपनी को छोड़ मृति भी अपनी कारा ।—साकेत, पृ० ४१६ ।

यो०—कारागार ।

२ पीडा । बलेश । ३ दूती । ४ सोनाग्नि ।

कारा^२—[वि० [हि० काला] [वि० स्त्री० कारी] दे० 'काला' । उ०—पाँच तत्त रग भिन्न भिन्न देखा । कारा पीरा सुरख सपेदा ।—तुरसी० श०, पृ० २३८ ।

कारागार--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वदीगृह । कैदखाना ।

कारागारिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कारागार का रक्षक अधिकारी । जेलर । कारागुप्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वदी । कैदी ।

कारागृह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कैदखाना । वदीगृह ।

काराघुनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] शख जैसा एक वाद्य [को०] ।

कारापक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह आदमी जो भवन या मन्दिरनिर्माण की देखरेख करने के लिये नियुक्त किया गया हो [को०] ।

कारापथ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक देश जो लक्ष्मण के पुत्र अगद और चित्रकेतु के शासन में था ।

कारापाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कारागारिक । वदीगृह का रक्षक व्यक्ति या अधिकारी । जेलर [को०] ।

कारामद—वि० [फा०] उपयोग । काम में आने लायक ।

कारायिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] मादा सारस । सारसी [को०] ।

कारारुद्ध—वि० [सं०] कैद में डाला गया [को०] ।

कारावर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का वणसंकर जिसका पिता निपाद और माता वंदेही हो । २ वह वणसंकर जिसका पिता चर्मकार और माता निपादी हो । मोची [को०] ।

कारावास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कैद ।

कारावासी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कारावासिन्] कैदी । वदी [को०] ।

कारावंश—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कारावंशम्] कारागृह [को०] ।

कारिदा—सञ्ज्ञा पुं० [फा० कारिदह] [सञ्ज्ञा कारिदारी] दूसरे की ओर से काम करने वाला । कर्मचारी । गुमास्ता ।

कारि^१—[वि० [हि० कारी] दे० 'कारी^३'] । उ० सत्ति कारि घटा में करि उदोत ।—हम्मीर० रा०, पृ० ७० ।

कारि^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कार्य । क्रिया । कर्म [को०] ।

कारि^३—सञ्ज्ञा पुं० १ कलाकार । २ यशवेत्ता [को०] ।

कारिक^१—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] करघे में वह चिकनी लकड़ी जो ताने की संभालती है और जिसे जुलाहे 'खरकूत' भी कहते हैं ।

कारिक^२—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कारिक] कुर्की करने वाला । जो पुरुष कुर्की करे ।

कारिक—वि० [सं०] कार्य करनेवाला ।

कारिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ किसी सूत्र की श्लोकवद्ध व्याख्या । किसी सूत्र का श्लोको में विवरण । २. नाटक करनेवाले नट की स्त्री । नटी । ३. सक्कीय राग का एक भेद ।—(संगीत) ।

४. पीडा देना । उत्पीडन [को०] । ५ व्याज । सूद [को०] । व्यापार । वाणिज्य [को०] ।

कारिख—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० वलुष] १. कलीछ । स्याही । कालिमा । २. काजल । ३. कलक । दोष । उ०—देवि विनु करतुति कहिवो जानि हैं लघु लोइ । कहौ गो मुख की समरसरि कालि कारिख दोइ ।—तुलसी (शब्द०) । वि० दे० 'कालिख' ।

कारिखी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० वलुष या कल्मष] १. स्याही । कालिमा । उ०—भले भूप कहत भले गदप भूपनि सो लोक लखि वोलिए पुनीत रीति मारिखी । जगदवा जानकी जगत पितु रामभद्र जानि जिय जीवो ज्यो न लागे मुँह कारिखी—तुलसी (शब्द०) । २. काजल । ३. कलक । दोष ।

कारिज—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कार्य] दे० 'कार्य' । उ०—सबही सौ हित अरु गुन सहित ऐसी कारिज मन धरत । ताको जु अर्थ अमृत लहत कोऊ दुख को नहि करत ।—ब्रज० ग्र०, पृ० ८० ।

कारिणी—वि० स्त्री० [सं०] करनेवाली [को०] ।

विशेष—समास के अंत में ही व्यवहार मिलता है । जैसे—हितकारिणी ।

कारित^१—वि० (सं०) कराया हुआ ।

कारित^२—सञ्ज्ञा पुं० (देश०) काठबेल ।

कारिता—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह व्याज जो दस्तूर में अधिक हो और जिसे धनी या महाजन ने जबर्दस्ती ऋणी से देना स्वीकार कराया हो ।

कारितावृद्धि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह सूद जो ऋण लिया हुआ धन दूसरे को देकर लिया जाय ।

विशेष—आधुनिक बैंक इसी नियम पर चलते हैं ।

कारिम^१—वि० [अ० करीम] १. कृपालु । २. दाता । दानशील ।

कारिम^२—सञ्ज्ञा पुं० ईश्वर । सब जीवों पर कृपा करनेवाला ।

उ०—कारिम करम वरवसी करे । दिल के रहम रहवर मिले ।—तुरसी० श०, पृ० २८ ।

कारियगर—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कारीगर] दे० 'कारीगर' । उ०—कारियगर मन्थिन बुलवाये ।—प० रासो, पृ० २२ ।

कारी^१—वि० [सं० कारिन्] [वि० स्त्री० कारिणी] करनेवाला । बनाने वाला । जैसे,—न्यायकारी ।

विशेष—इसका प्रयोग योगिक शब्दों ही के अंत में होता है ।

कारी^२—सञ्ज्ञा पुं० १ कलाकार । २ यशविद् । ३ निर्माता या तैयार करने का काम करने वाला व्यक्ति [को०] ।

कारी^३—वि० [फा०] गहरा । घातक । मर्मभेदी ।

कारी^४—वि० स्त्री० [हि० काली] दे० 'काली' या 'काला' । उ०—सखि कारी घटा बरस बरसाने पै गोरी घटा नदगाँव पै री । इतिहास, पृ० ३८४ ।

कारीगर^१—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] [सञ्ज्ञा कारीगरी] हाथ से अच्छे अच्छे काम बनाने वाला आदमी । धातु, लकड़ी, पत्थर इत्यादि से विशाल और सुंदर वस्तुओं की रचना करनेवाला पुरुष । शिल्पकार ।

कारीगर^२—वि० हाथ से काम बनाने में कुशल । निपुण । हुनरमंद ।

कारन^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कारण] दे० 'कारण' ।

कारन^२—सञ्ज्ञा पुं० [न० कारण्य या कारणा] १ रोने का आतं स्वर ।

कूक । कण्ठ स्वर । २ वय्या । दुख । पीडा । उ०—नागमती कारन कां रोई ।—जायसी ग्र०, पृ० १५६ ।

क्रि० प्र०—करना । करके रोना ।

कारनिस—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र०] दीवार की कँगनी । कगर ।

कारनी^१—वि० [सं० कारण या करण = कान] प्रेरक । करनेवाला ।

उ०—जो पं चैराई राम की करतो न लजातो । तो तूँ दाम कुदाम ज्यों कर कर न विकातो ।—राम सोहातो तोहि जो तू सबहि सोहातो । काल कम कुल कारनी कोक न कोहातो ।—तुलसी (शब्द०) ।

कारनी^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कारोनि] भेद करानेवाला । भेदक । जैसे, उसके साथ यही से कारनी लगे और राह में कान भरकर उन्होंने उसकी मति पलट दी ।

कारपण्य^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कार्पण्य] दे० 'कार्पण्य' । उ०—द्रोह कोतवाल त्यो अशान तहसीलवाल गर्व गढ़वाल रोग सेवक अपार हैं । मन रघुराज कारपण्य पण्य चौधरी है जग के विकार जेत सब सरदार हैं ।—रघुराज (शब्द०) ।

कारपरदाज—वि० [फा० कारपर्दाज] [सञ्ज्ञा कारपर्दाजी] १ काम करने वाला । कारकुन । २ प्रवधकर्ता । कारिदा ।

कारपरदाजी—वि० [फा० कारपर्दाजी] १ दूसरे का काम करने की वृत्ति । दूसरे की ओर से किसी कार्य का प्रवध करने का काम ।

२ दूसरे का काम करने की उत्प्रेरता । कार्यपटुता ।

कारपोरल—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] पलटन का छोटा अफसर । जमादार । जैसे—कारपोरल मिल्टन ।

कारवंकल—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] शरीर के किसी भाग में विशेषतः पीठ पर होने वाला जहरीला फोड़ा ।

कारवन—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कार्वन] भौतिक सृष्टि के मूलभूत तत्वों में से एक । यह कार्बोनिक एसिड (गैस), कोयला, हीरा आदि में होता है ।

कारवन पेपर—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] वह गहरे काले या नीले रंग का कागज जिसे उस कागज के नीचे लगा देते हैं, जिसपर लिखते या टाइप करते हैं । इस प्रकार उस कागज के माध्यम से लेख की प्रतिलिपि भी साथ साथ तैयार होती जाती है । उ०—ढोल सघर ओ हघर फीलादी युय के दानव, प्रेम नया क्या होगा रे यह वही कारवन कापी ।—बदन०, पृ० ४४ ।

कारवार—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] [वि० कारवारी] कामकाज । व्यापार । पेशा । व्यवसाय ।

कारवारी^१—वि० [फा०] कामकाजी ।

कारवारी^२—सञ्ज्ञा पुं० दूसरे की ओर से काम करने वाला आदमी । कारकुन । कारिदा ।

कारबोन—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] [वि० कारबोनिक] रसायन शास्त्र के अनुसार एक तत्व जो सृष्टि के बीच दो रूपों में मिलता है, एक हीरे के रूप में, दूसरा पत्थर के कोयले के रूप में ।

कारबोनिक—वि० [अ० कारबोनिक] कारवन या कोयला संबंधी । कारबन मिश्रित । कारवन से बना हुआ ।

पौ०—कारबोनिक एसिड गैस ।

कारबोलिक^१—वि० [अ० कारबोलिक] अलकतरा संबंधी । अलकतरा मिश्रित या उससे बना हुआ ।

कारबोलिक^२—सञ्ज्ञा पुं० एक सार पदार्थ जो (पत्थर के) कोयले के तेल या अलकतरे से निकाला जाता है ।

विशेष—घाव या फोड़े को सियों पर कारबोलिक का तेल कीड़ों को मारने या दूर रखने के लिये लगाया जाता है । १ से ३ ग्रैन तक की मात्रा में कारबोलिक खिलाया जाता है । इसका तेल और साबुन भी बनता है ।

कारभ—वि० [सं०] करम या ऊँट संबंधी । ऊँट का [को०] ।

कारमन^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कार्मण] दे० 'कार्मण' ।

कारमवि^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कार्मणी] जादूगरनी ।

कारमिहिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कपूर । घनसार [को०] ।

कारय—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कार्य] दे० 'कार्य' । उ०—कारण कार्य भेद नहीं कछु आपु में आपुहि आपु तहाँ है ।—सु दर ग्रं०, भा० २, पृ० ६१६ ।

कारयिता—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कारयितृ] १. सृष्टि करनेवाला । २. (कार्य) करानेवाला [को०] ।

कारयित्री^१—वि० [सं०] १. करानेवाली । सृष्टि या रचना कराने वाली [को०] ।

कारयित्री^२—सञ्ज्ञा स्त्री० १. रचना करानेवाली स्त्री । २. प्रेरक शक्ति । वह आंतरिक शक्ति जो रचना के लिये प्रेरित करे [को०] ।

यी०—कारयित्री प्रतिभा ।

काररवाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] १. काम । कृत्य । जैसे—(क) यह बड़ी बेजा काररवाई है । (ख) तुम्हारी दरखास्त पर कुछ काररवाई हुई या नहीं ?

क्रि० प्र०—करना । दिखाना ।—होना ।

२. कार्यतत्परता । कर्मण्यता ।

क्रि० प्र०—दिखाना ।

३. गुप्त प्रयत्न । चान । जैसे—इसमें जरूर कुछ काररवाई की गई है ।

क्रि० प्र०—करना । लगना । होना ।

कारव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कौश्रा । वायस । काग [को०] ।

कारवाँ—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] यात्रियों का झुंड जो एक देश से दूसरे देश की यात्रा करता है ।

यी०—कारवाँ सराय = कारवाँ के ठहरने की सराय ।

कारवी—वि० [सं० कृत्रिम] कृत्रिम । कच्चा । नकली । उ०—दादू काया कारवी देखत ही चलि जाइ ।—दादू०, पृ० ३६० ।

कारवेल्ल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] करेला ।

कारवेल्लक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कारवेल्ल' [को०] ।

कारसाज—वि० [फा० कारसाज] [सञ्ज्ञा कारसाजी] काम बनाने वाला । बिगड़े काम को संभालने वाला । काम पूरा करने की युक्ति निष्काखने वाला । जैसे—ईश्वर बड़ा कारसाज है ।

कारसाजी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० कारसाजी] १. काम पूरा उतारन की युक्ति । २. गुप्त कारवाई । चालबाजी । कपट प्रयत्न । जैसे—तुम्हारा कुछ दोष नहीं, यह सब उसी की कारसाजी है ।

कारस्कर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुचला । कपास वृक्ष [को०] ।

कारस्कराटिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोजर । शतपदी । २. जौड़ ।

ज्योष्ठा ३. बिच्छू । मृषिक [को०] ।

कारखानेदार - सञ्ज्ञा पुं० [हि० कारखाना + दार (प्रत्यय)] कारखाने का मालिक ।

कारगर—वि० [फा०] १ प्रभावोत्पादक । प्रभावजनक । असर करनेवाला ।

क्रि० प्र०—होना ।

२. उपयोगी । लाभकारक । जैसे—कोई दवा कारगर नहीं होती ।

क्रि० प्र०—होना ।

कारगाह—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] १ वह स्थान जहाँ बहुत से मजदूर आदि काम करते हों । कारखाना । २ जुलाहों के कपड़ा बुनने का स्थान । करगह ।

कारगुजार—वि० [फा० कारगुजार] [सञ्ज्ञा कारगुजारी] काम को अच्छी तरह करनेवाला । अपना कर्तव्य अच्छी तरह पूरा करनेवाला । खूब अच्छी तरह और आज्ञा पर ध्यान देकर काम करनेवाला ।

कारगुजारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० कारगुजारी] १ पूरी तरह और आज्ञा पर ध्यान देकर काम करना । कर्तव्यपालन । २ कार्य-पटुता । होशियारी । ३ कर्मण्यता ।

कारचोव—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] [वि० सञ्ज्ञा कारचोवी] १ लकड़ी का एक चौकड़ा जिसपर कपड़ा तानकर जरदोजी या कसीदे का काम बनाया जाता है । झड्डा । २ जरदोजी या कसीदे का काम करनेवाला । जरदोज । ३ कसीदे या गुलकारी का काम जो जरी के तारों को लेकर लकड़ी के चौकड़े पर लगाया जाता है ।

कारचोवी—वि० [फा०] जरदोजी का ।

कारचोवी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० जरदोजी । गुलकारी । कसीदा ।

कारज^१ (क़ु)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कार्य] दे० कार्य ।

कारज^२—वि० [सं०] करज अर्थात् उँगली सवधी (को०) ।

कारटा (क़ु)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० फ़र्ट] कोआ । काग । उ०—काज कनागत कारटा आन देव को खाय । कहै कबीर समझै नहीं बाँधा यमपुर जाय ।—कबीर (शब्द०) ।

कारटून—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कार्टून] वह उपहासपूर्ण कल्पित चित्र जिससे किसी घटना या व्यक्ति के सवध में किसी गूढ़ रहस्य का ज्ञान होता है । व्यंगचित्र ।

क्रि० प्र०—निकलना ।—निकालना ।

कारटूनिस्ट—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कार्टूनिस्ट] व्यंग्यचित्रकार ।

कारटूनज—सञ्ज्ञा पुं० [अ] दफती, टीन, तंबे प्रादि का बना हुआ वह आवरण जिसके अंदर बटूक में भरकर चलाई जानेवाली गोली या स्रर्पा आदि रहता है । कारतूस ।

कारडॉ—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कार्ड या पोस्टकार्ड] दे० 'कार्ड' ।

कारण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ हेतु । वजह । सबब । जैसे, तुम किस कारण वहाँ गए थे ।

विशेष—इस शब्द के साथ विभक्ति से प्रायः नहीं लगाई जाती ।

२ वह जिसके बिना कार्य न हो । वह जिसका किसी वस्तु या क्रिया के पूर्व सबब रूप होना आवश्यक हो । वह जिससे दूसरे पदार्थ की संप्राप्ति हो । हेतु । निमित्त । प्रत्यय ।

विशेष—न्याय के मत से कारण तीन प्रकार के होते हैं—समवायि (जैसे तत्व वस्त्र का), असमवायि (तत्वों का योग वस्त्र का) और निमित्त (जैसे जुलाहा, ढरकी आदि वस्त्र के) । योगदर्शन में

कारण नौ प्रकार के हैं—उत्पत्ति, स्थिति, अभिव्यक्ति, विकार, ज्ञान, द्राप्ति, विच्छेद, अन्यत्व और धृति । यह विभिन्नता केवल कार्यभेद से जान पड़ती है । उत्पत्ति ज्ञान का कारण मन, शरीरस्थिति का कारण आहार, रूप की अभिव्यक्ति का कारण प्रकाश पचनीय वस्तुओं के विचार का कारण अग्नि अग्नि के कारणत्व का धूमज्ञान विवेकप्राप्ति और अशुद्धिविच्छेद का कारण योगागो का अनुष्ठान, स्वर्णकार कुडन में सोने के रूपान्तर का कारण, इस जगत और इन्द्रियों का अधिष्ठान ईश्वर वेदात्त उपादान कारण मानता है । कोई कोई कारण तीन प्रकार का मानते हैं, उपादान (समवायि), निमित्त और साधारण । चार्वाक कारण को कोई पदार्थ नहीं मानता । सांख्य त्रयोगुणात्मिका प्रकृति को मूल कारण कहता है । वेदात्त का कहना है कि अचेतन प्रकृति में कार्य को उत्पत्ति नहीं हो सकती । कणाद ने परमाणु को सावयव जगत् का उपादान कारण माना है ।

३ आदि । मूल । ४ साधना । ५ कर्म । ६ प्रमाण । ७ एक बाजा । ८ तांत्रिकों की परिभाषा में पूजन के उपरांत का मद्यपान । ९ एक प्रकार का गाना । १० विष्णु । ११ शिव ।

कारणक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हेतु । निमित्त (को०)

विशेष—यह समस्त पद के अंत में प्रयुक्त होता है ।

कारणता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ कारण की स्थिति (को०) ।

कारणमाला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] हेतुओं की श्रेणी । २ काव्य में एक अर्थानकार जिसमें किसी कारण से उत्पन्न कार्य पुनः किसी अन्यकार्य का कारण होता हुआ वर्णन किया जाय । जैसे—दल ते वल, वल ते विजय, ताते राज हुलास । कृत ते सुत, सुत ते सुयश, यश ते दिवि महँ वास ।

कारणवादी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कारणवादिन्] जावा या करियाद करते वाला व्यक्ति । वादी (को०) ।

कारणवारि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सृष्टि के आरम्भकाल में उत्पन्न प्रारंभिक जल, जिसे इसका क्रमशः विस्तार या विकास हुआ (को०) ।

कारणशीर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वेदात्त में अनुवाद के अनुसार सुषुप्त अवस्था का कल्पित शरीर ।

विशेष—इसमें इन्द्रियों के विषयव्यापार का अभाव रहता है पर अहंकार आदि का संस्कार मात्र रह जाता है, जिससे जीवात्मा केवल सुख ही मुख का अनुभव करता है । यह शरीर वास्तव में अविद्या ही है । इसे आनन्दमय कोश भी कहते हैं ।

कारणा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ अर्थ । कष्ट । तकलीफ । २ यम की यातना । ३ प्रेरणा । प्रोत्साहन (को०) ।

कारणिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कारणिकी] १ मुकदमे सबधी कागज लिखनेवाला । मुद्दरि अर्जीवाँस । २ लिपिक लिखक । क्लर्क । ३ परीक्षक (को०) । ४ न्यायाधीश । निणयिक (को०) । ५ अध्यापक (को०) ।

कारणोपाधि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर ।—(वेदान्त) ।

कारतूस—सञ्ज्ञा पुं० [पुर्त० कारटूस] एक लकीर नौ जिसमें गोली छरी और बारूद बरी रहता है और जिसके एक छिर पर दोपी लगी रहती है । इसे टोटवाली बटूक या रिवालवर, राइफल आदि में भरकर चलाते हैं ।

कारन^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कारण] दे० 'कारण' ।

कारन^२—सञ्ज्ञा पुं० [न० कारण्य या कारणा] १ रोने का आर्त स्वर ।

'कूक । कण्ठ स्वर । २ व्या । दुःख । पीड़ा । उ०—नागमती कारन के रोई ।—जायसी ग्र०, पृ० १५६ ।

क्रि० प्र०—करना । करके रोना ।

कारनिस—सञ्ज्ञा स्त्री० [प०] दीवार की कँगनी । कंगर ।

कारनी^१—वि० [सं० कारण या करण = कान] प्रेरक । करनेवाला ।

उ०—जो पंचेराई राम की करतो न लजातो । तो तू दाम कुदाम जो कर कर न विकातो । —राम सोहातो तोहि जो तू सबहि सोहातो । काल कर्म कुल कारनी कोक न कोहातो ।—तुलसी (शब्द०) ।

कारनी^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कारोनि] भेद करानेवाला । भेदक । जैसे, उसके साथ यहाँ से कारनी लगे और राह में कान भरकर उन्हें उसकी मति पलट दो ।

कारपण्य^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कार्पण्य] दे० 'कार्पण्य' । उ०—द्रोह कोतवाल ल्यों अमान तहसीलवाल गवं गडवाल रोग सेवक अपार हैं । मन रघुराज कारपण्य पण्य चौधरी है जग के विकार जेते सब सरदार हैं ।—रघुराज (शब्द) ।

कारपरदाज—वि० [फा० कारपर्दाज] [सञ्ज्ञा कारपर्दाजी] १ काम करने वाला । कारकुन । २ प्रबंधकर्ता । कारिदा ।

कारपरदाजी—वि० [फा० कारपर्दाजी] १ दूसरे का काम करने की वृत्ति । दूसरे की ओर से किसी कार्य का प्रबंध करने का काम ।

२ दूसरे का काम करने की तत्परता । कार्यपटुता ।

कारपोरल—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] पलटन का छोटा अफसर । जमादार । जैसे—कारपोरल मिल्टन ।

कारवंकल—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] शरीर के किसी भाग में विशेषतः पीठ पर होने वाला जहरीला फोड़ा ।

कारवन—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कार्वन] भौतिक सृष्टि के मूलभूत तत्वों में से एक ।

यह कार्बोनिक एसिड (गैस), कोयला, हीरा आदि में होता है ।

कारवन पेपर—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] वह गहरे काले या नीले रंग का कागज जिसे उस कागज के नीचे लगा देते हैं, जिसपर लिखते या टाइप करते हैं । इस प्रकार उस कागज के माध्यम से लेख की प्रतिलिपि भी साथ साथ तैयार होती जाती है । उ०—डोल उधर औ इधर फौनादी युप के दानव, प्रेम नया क्या होगा र यह वही कारवन कापी ।—वदन०, पृ० ४४ ।

कारवार—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] [वि० कारवारी] कामकाज । व्यापार । पेशा । व्यवसाय ।

कारवारी^१—वि० [फा०] कामकाजी ।

कारवारी^२—सञ्ज्ञा पुं० दूसरे की ओर से काम करने वाला आदमी । कारकुन । कारिदा ।

कारबोन—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] [वि० कार्बोनिक] रसायन शास्त्र के अनुसार एक तत्व जो सृष्टि के बीड़ दो रूपों में मिलता है, एक हीरे के रूप में, दूसरा पत्थर के कोयले के रूप में ।

कार्बोनिक—वि० [अ० कार्बनिक] कारवन या कोयला संबंधी । कारबन मिश्रित । कारबन से बना हुआ ।

बी०—कार्बोनिक एसिड गैस ।

कारबोलिक^१—वि० [अ० कार्बोलिक] अलकतरा संबंधी । अलकतरा मिश्रित या उससे बना हुआ ।

कारबोलिक^२—सञ्ज्ञा पुं० एक सार पदार्थ जो (पत्थर के) कोयले के तेल या अलकतरे से निकाला जाता है ।

विशेष—घाव या फोड़े फु सियों पर कारबोलिक का तेल कीड़ों को मारने या दूर रखने के लिये लगाया जाता है । १ से ३ ग्रेन तक की मात्रा में कारबोलिक खिलाया जाता है । इसका तेल और साबुन भी बनता है ।

कारभ—वि० [सं०] करम या कंठ संबंधी । कंठ का [को०] ।

कारमन^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कार्मण] दे० 'कार्मण' ।

कारमवि^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कार्मणी] जादूगरनी ।

कारमिहिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कपूर । घनसार [को०] ।

कारय—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कार्य] दे० 'कार्य' । उ०—कारण कार्य भेद नहीं कछु आपु में आपुहि आपु तहाँ है ।—सु दर ग्रं०, मा० २, पृ० ६१६ ।

कारयिता—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कारयितृ] १. सृष्टि करनेवाला । २ (कार्य) करानेवाला [को०] ।

कारयित्री^१—वि० [सं०] १. करानेवाली । सृष्टि या रचना कराने वाली [को०] ।

कारयित्री^२—सञ्ज्ञा स्त्री० १. रचना करानेवाली स्त्री । २ प्रेरक शक्ति । वह आंतरिक शक्ति जो रचना के लिये प्रेरित करे [को०] । यो०—कारयित्री प्रतिभा ।

काररवाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] १ काम । कृत्य । जैसे—(क) यह बड़ी बेजा काररवाई है । (ख) तुम्हारी दरखास्त पर कुछ काररवाई हुई या नहीं ?

कि० प्र०—करना । दिखाना ।—होना ।

२ कार्यतत्परता । कर्मण्यता ।

कि० प्र०—दिखाना ।

३ गुप्त प्रयत्न । चान । जैसे—इसमें छुकर कुछ काररवाई की गई है ।

क्रि० प्र०—करना । लगना । होना ।

कारव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कोप्रा । वायस । काग [को०] ।

कारवाँ—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] यात्रियों का झुंड जो एक देश से दूसरे देश की यात्रा करता है ।

यो०—कारवाँ सराय = कारवाँ के ठहरने की सराय ।

कारवी—वि० [सं० कृत्रिम] कृत्रिम । कच्चा । नकली । उ०—दादू काया कारवी. देखत ही चलि जाइ ।—दादू०, पृ० ३२० ।

कारवेल्ल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] करेला ।

कारवेल्लक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कारवेल्ल' [को०] ।

कारसाज—वि० [फा० कारसाज] [सञ्ज्ञा कारसाजी] काम बनाने वाला । बिगड़े काम को संभालने वाला । काम पूरा करने की युक्ति निकालने वाला । जैसे—ईश्वर बड़ा कारसाज है ।

कारसाजी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० कारसाजी] १ काम पूरा उत्तारन की युक्ति । २, गुप्त कारवाई । चालवाजी । कपट प्रयत्न । जैसे—तुम्हारा कुछ दोष नहीं, यह सब उसी की कारसाजी है ।

कारस्कर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुचला । कपास वृक्ष [को०] ।

कारस्कराटिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोजर । शतपदी । २. जींझ ।

ब्रसीका ३, बिच्छू । श्मिक्क [को०] ।

यो०—कायक्रिया । कायलेश । कायचिकित्सा । निकाय ।
दीर्घकाय । महाकाय ।

२ प्रजापति तीर्थ । कनिष्ठा उँगली के नीचे का भाग ।

विशेष—मनु ने तर्पण, आचमन सकल्प आदि की पवित्रता के
विचार से अग्रे के तीर्थ नाम से विभाग किए हैं ।

३ प्रजापति का हवि । वह हवि जो प्रजापति के निमित्त हो ।

४ प्राजापत्य विवाह । ५ मूल घन । असल । ६ वस्तु
स्वभाव । लक्षण । ७ लक्ष्य । ८ समुदाय । सघ । ९ वीर्य-
मिक्षुओं का सघ । १० पेड़ का तना या काण्ड (को०) । ११
तारों के मलावा वीण का रूप या ठाँचा (को०) । १२ निवास-
स्थान (को०) ।

काय^१ (५१)—अव्य० [हि० काह] दे० 'काहे' । उ०—आग लगी क्या
देखत अघे काय के खातर सोया जू ।—दक्खिनी, ० पृ० १६ ।

कायक—वि० [सं०] शरीर संबंधी । दैहिक (को०) ।

कायका—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्याज । सूद (को०) ।

कायक (५०)—वि० [सं०] कायक या कायिक । दे० 'कायिक' ।

कायचिकित्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुश्रुत के किए हुए चिकित्सा के आठ
विभागों या अंगों में से एक ।

विशेष—इसमें ज्वर, कुष्ठ, उन्माद, अपस्मार आदि सर्वा गम्भीरी
रोगों के उपशमन का विधान है ।

कायजा—संज्ञा पुं० [अ० कायजह्] घोड़े की लगाम की डोरी, जिसे
पूँछ तक ले जाकर बाँधते हैं ।

क्रि० प्र०—चढ़ाना ।—बाँधना ।—लगाना ।

मुहा०—कायजा करना = घोड़े की लगाम की डोरी को पूँछ में
फँसाना ।

विशेष—घोड़े को चुपचाप खड़ा करने के लिये खरहरा करते
समय प्रायः ऐसा करते हैं ।

कायस्थ—संज्ञा पुं० [अ० कायस्थ] [स्त्री० कायस्थिनी, कंथिनी] दे० 'कायस्थ' ।

कायदा—संज्ञा पुं० [अ० कायवद्] १ नियम । २ चाल । दस्तूर ।
रीति । ढंग । ३ विधि । विधान । ४ क्रम । व्यवस्था ।
करीना । ५ व्याकरण । ६ प्रारम्भिक पुस्तक जिसके द्वारा
अक्षरज्ञान कराया जाय, जैसे उर्दू का कायदा ।

कायफर—संज्ञा पुं० [सं० कायफल] दे० 'कायफल' ।

कायफल—संज्ञा पुं० [सं० कटफल] एकवृक्ष जिसकी छाल दवा के
काम में आती है ।

विशेष—गढ़ वृक्ष हिमालय के कुछ गरम स्थानों में पैदा होता है ।
आसाम के खासिया नामक पहाड़ पर और वरमा में भी यह
वृक्ष होता है ।

कायवधन—संज्ञा पुं० [सं० कायवधन] १ शूक्र और रक्त का
समिश्रण । २ करघनी । कमरबंद (को०) ।

कायव्यूह (५०)—संज्ञा पुं० [अ० कायव्यूह] १ शरीर का बनाया हुआ
मोर्चा या व्यूह । ई०—प्रतिविवित जयसाहि दुति दीपति
दरपन धाम । सवु जगु जीतनु कौं करषी कायव्यूह मनु काम ।
—विहारी (शब्द०) । २ दे० 'कायव्यूह' ।

कायम—वि० [अ० कायम] १ ठहरा हुआ । स्थिर । २ स्थापित ।
जैसे, स्कूल कायम करना । शतरंग में मोहरा कायम करना ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

३ निर्धारित । निश्चित । मुकर्रर । जैसे, हद कायम करना ।

यो०—कायममुकाम ।

४ जो बाजी बर पड़े, जिसमें किसी पक्ष की हार जीत न हो ।

मुहा०—कायम उठाना = शतरंज की बाजी का इस प्रकार समाप्त
होना जिसमें किसी पक्ष की हार जीत न हो ।

कायमभिजाज वि० [अ० कायम + भिजाज] मुस्थिरचित्त । आत्मस्थ ।

कायममुकाम—वि० [अ० कायममुकाम] स्थानापन्न । एवजी ।

कायमा—संज्ञा पुं० [अ० कायमह] (ज्यामिति में) समकोण । नव्वे
अंश का कोण ।

यो०—जावियाकायमा = समकोण ।

कायर—वि० [सं० कातर, प्रा० कादर] डरपोक । मीढ़ । असाहसी ।
कमहिम्मत । उ०—(क) कपटी कायर कुमति कुजाती ।

लोक वेद निदित बहु भीती ।—तुलसी (शब्द०) । (ख)

बड़ो कूर कायर करूत कोडी घाघ को ।—तुलसी (शब्द०) ।

कायरता—संज्ञा स्त्री० [सं० कायरता या हि० कायर + ता (प्रत्य०)]
डरपोकपन । भीरुता ।

कायल—वि० [अ० कायल] जो दूसरे की बात की प्रवार्थता को
स्वीकार कर ले । जो तर्त वितर्क से सिद्ध बात को मान ले ।
जो ग्रन्थ या प्रभावित होने पर अपना पक्ष छोड़ दे । कबूल
करनेवाला ।

मुहा०—कायल करना = समझा बुझाकर कोई बात मनवाना ।
स्वीकार कराना । निरुत्तर करना । जैसे,—जब उसको दस

आदमी कायल करेंगे, तब वह भूख मारकर ऐसा करेगा ।

कायल माकूल करना = दे० 'कायल करना' । कायल होना =

(१) दूसरे की बात की प्रवार्थता को मान लेना । (२) स्वीकार

करना । मानना । जैसे,—हम उनकी चालाकी के कायल हैं ।

कायली^१—संज्ञा स्त्री० [हि० कायर] ग्लानि । लज्जा ।

कायली^२ (५०)—संज्ञा स्त्री० [सं० स्वेडिका, स्वेलिका, पा० स्वेलिका]
मथानी । खंजर । (हि०) ।

कायली^३ (५०)—वि० [हि० काहिल] काहिल ।

कायवलन—संज्ञा पुं० [सं०] कवच । जिरह वस्त्र (को०) ।

कायव्य—संज्ञा पुं० [सं०] महानगर में वर्णित एक दस्यु सरदार का
नाम ।

विशेष—यह बड़ा धर्मपरायण था और संधुओं तथा त्रास्थियों
की सेवा करता था ।

कायव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] १ शरीर में वात, पित्त, कफ तथा रक्त
रक्त मांस, स्नायु अस्थि, मज्जा और शुक्र के स्थान और
विभाग आदि का क्रम (बंधक) । २ योगियों की अपने कर्मों
के भोग के लिये चित्त में एक एक इन्द्रिय और अंग की कलना
की क्रिया ।

कायस्थ^१—इस वि० [सं०] काय में स्थित । शरीर में रहनेवाला ।

कायस्थ^२—संज्ञा पुं० [सं०] १ जीवात्मा । १. परमात्मा । ३ एक
जाति का नाम । कायथ ।

विशेष—इस जाति के लोग प्रायः लिखने पढ़ने का काम करते
हैं और पंजाब को छोड़ प्रायः सारे उत्तर भारत में पाए जाते
हैं । यह लोग अपने को चित्रगुप्त का वंशज मानते हैं ।

कामोदी

कामोदी—संज्ञा स्त्री० [अ० कामोडो] वह नाटक जिसका अंत प्रानद या सुखमय हो। सुखात नाटक। सयोगात नाटक। मिलनात नाटक।
कामेश्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तन के अनुसार एक औरवी। २. कामाख्या की पाँच मूर्तियों में से एक।

कामैत^७—संज्ञा पुं० [हिं० कुम्भैत] कुम्भैत में से एक।
कामैती^७—संज्ञा पुं० [हिं० काम] मजदूर। काम करनेवाला श्रमिक।
उ०—नूवादार कामैतगं समैति बाधिलीनां। वेड़ी घालि दिल्ली को मतायी भेज दीनां।—शिखर०, पृ० २५।

कामोत्याप्य—वि० [सं०] वह नौकर जिसकी नौकरी स्याई न हो।
अस्यायी मृत्यु। उ०—शुद्र को कहा है कामोत्याप्य अर्थात् जब चाहे निकाल दिया जानेवाला।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २५।
कामोद—संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग जो मालकोस का पुत्र माना जाता है।

विशेष—इसमें ध्रुव वादी और पंचम सवादी है। इसके गाने का समय रात का पहला प्राधा पहर है। कदला और हाथ में इसका उपयोग होता है। कोई कोई इसे विलावली और गौड के सयोग से बना संकर राग मानते हैं। कई रागों के मेल से कई प्रकार के संकरकामोद बनते हैं। यह चोताल पर बजाया जाता है। इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—घ नि सा रे ग म प।

कामोदक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जलाजलि जो इच्छानुसार उस मृत प्राणी को दी जाती है जो च्छाकर्म के चहले मरा हो और जिसके निधे उदकक्रिया की विधि न हो।

कामोदकल्याण—संज्ञा पुं० [सं० कामोद + कल्याण] एक संकर राग जो कामोद और कल्याण के योग से बनता है।

विशेष—यह संपूर्ण जाति का है। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। इसका सरगम इस प्रकार है।—ग म प घ नि सा रे।

कामोदतिलक—संज्ञा पुं० [सं०] एक संकर राग जो कामोद और तिलक के योग से बनता है और वाडव जाति का है।

विशेष—इसमें ध्रुवत वर्जित है। यह रात के पहले पहर में गाया जाता है। इसका सरगम इस प्रकार है।—प नि सा रे म प।

कामोदनट—संज्ञा पुं० [सं०] एक संकर राग जो कामोद और नट के मिलाने से बनता है।

विशेष—यह संपूर्ण जाति का है और इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। इसे कुछ लोग नटनारायण का पुत्र भी मानते हैं। इसके गाने का समय रात का पहला पहर है। कोई कोई इसे दिन के दूसरे पहर में भी गाते हैं। इसका सरगम यह है—घ नि सा रे ग म प प घ नि सा।

कामोदसामंत—संज्ञा पुं० [सं०] एक संकर राग जो कामोद और सामंत के योग से बनता है।

विशेष—यह वाडव जाति का है। इसमें ध्रुवत वर्जित है। इसके गाने का समय रात का तीसरा पहर है। इसका सरगम इस प्रकार है—ग म प नि सा रे ग।

कामोदा—संज्ञा स्त्री० [म०] १ ६० 'कामोदी'। २ एक पोषे का नाम (श्लो०)।

कामोदी—संज्ञा स्त्री० [सं० कामोदा] एक रागिनी जो मालकोस के पुत्र कामोद की स्त्री है। कोई कोई इसे दीपक की चौथी रागिनी भी मानते हैं।

विशेष—यह संपूर्ण जाति की रागिनी है और रात के दूसरे पहर की दूसरी घड़ी में गाई जाती है। कोई कोई इसे संकर रागिनी कहते हैं और सुघराई और सोरठ के योग से उसकी उत्पत्ति मानते हैं। इसका सरगम यह है—घ नि सा रे ग म प घ।

कामोदीपक—वि० [सं०] काम को उद्दीपन करनेवाला। जिससे मनुष्य को सहवास की इच्छा अधिक हो।

कामोदीपन—संज्ञा पुं० [म०] सहवास की इच्छा का उत्तेजन।

कामोन्माद—संज्ञा पुं० [सं०] १ काम का वेग। वासना की प्रवृत्ति। २ वह उन्माद जो काम के वेग से होता है (श्लो०)।

काम्य^१—वि० [सं०] १ जिसकी इच्छा हो। २ जिससे कामना की सिद्धि हो। जैसे,—काम्य कर्म।

काम्य^२—संज्ञा पुं० [म०] वह यज्ञ या कर्म जो किसी कामना की सिद्धि के लिये किया जाय। जैसे—पुत्रेष्टि, कारीरी।

विशेष—यह अथं कर्म के तीन भेदों में से है। काम्य कर्म भी तीन प्रकार का कहा गया है—ऐहिक वह है जिसका फल इस लोक में मिले, जैसे—पुत्रेष्टि और कारीरी। आमुष्मिक—वह है जिसका फल परलोक में मिले, जैसे अग्निहोत्र। ऐहिकामुष्मिक का फल कुछ इस लोक में और कुछ परलोक में मिलता है।

काम्यक—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक वन का नाम। २ एक सरोवर का नाम (श्लो०)।

काम्यकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] वह कर्म जो किसी फल या कामना की प्राप्ति के लिये किया जाय।

काम्यदान—संज्ञा पुं० [म०] १ रत्न आदि अर्छा वस्तुओं का दान। २. वह दान जो पुत्र या ऐश्वर्य आदि कं कामना से किया जाय।

काम्यमरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ इच्छानुसार मृत्यु। २ मुक्ति।

काम्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ इच्छा। अलिपा। कामना। २ प्रार्थना। ३. गाय। गौ (श्लो०)।

काम्येष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह यज्ञ जो कामना की सिद्धि के लिये किया जाय। जैसे,—पुत्रेष्टि।

काम्रेड संज्ञा पुं० [अ०] सहयोगी। साथी।

विशेष—कम्युनिस्ट या साम्यवादी अपने दगावालों और अपने से सहानुभूति रखनेवालों को 'काम्रेड' शब्द में संबोधित करते हैं। जैसे,—काम्रेड सखलातवाला।

काय^१ काय^२—संज्ञा पुं० [अनु०] १ कौवे की बोली। २ स्यार की बोली। उ०—मियागे की भाँति काय^१ काय^२ कर खोपड़ी खाली कर डालेंगे।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०२।

काय^१—वि० [सं०] प्रजापति सवर्धी, जैसे, कायतीर्थ, कायहवि इत्यादि।

काय^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० कायिक] १ शरीर। देह। बदन। जिसमें। उ०—कछु हवै न आड गयो जन्म जाय। अति दुर्लभ तन पाइ कपट तजि भजे न राम मन वचन काय।—तुलसी (शब्द०)।

कामाव^१—वि० [सं० कामान्व] काम की अतिशयता से जिसका विवेक नष्ट हो गया हो ।

कामाव^२—सञ्ज्ञा पुं० कोयल । कंकिल पक्षी [को०] ।

कामावा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कामान्वा] १. कस्तूरी । २. गंधधूलि । योजनगंधा [को०] ।

कामा^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० काम] १. कामिनी स्त्री । उ०—आधिक कामदग्ध सो कामा । हरि के सुवा गयो पिय नामा ।—जायसी (शब्द०) । २. एक वृत्ति जिसमें दो गुरु होते हैं । जैसे—आना । जाना । रोना । घोना ।

कामा^२—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कामा] एक विराम जो दो वाक्यों या शब्दों के बीच होता है । इसका चिह्न इस प्रकार है । (,) ।

कामाक्षी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा देवी या एक अभिग्रह । २. तंत्र के अनुसार देवी की एक मूर्ति ।

कामाख्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. देवी का एक अभिग्रह । २. सती या देवी का योनिपीठ । कामरूप ।

कामाग्नि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. उत्कट प्रेम । प्रबल अनुराग । २. काम की उत्तेजना । काम का वेग [को०] ।

कामातुर—वि० [सं०] काम के वेग से व्याकुल । समागम की इच्छा से उद्विग्न ।

कामात्मज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] काम या प्रद्युम्न का आत्मज । अनिरुद्ध [को०] ।

कामात्मा—वि० [सं० कामात्मन्] कामी । कामासक्त [को०] ।

कामाद्रि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आसाम का पर्वतविशेष [को०] ।

कामानुज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] क्रोध । गुस्सा । तामस । लोम । उ०—शात रह्यो कामानुज मुनि को । सेवन कीन्ह्यो गुनि मुनि धनि को ।—रघुराज (शब्द०) ।

कामायुध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. आम । २. कामबाण (को०) । ३. पुरुषचिह्न । शिश्न (को०) ।

कामार्थी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कामार्थी] दे० 'कामार्थी' ।

कामारि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शिवजी का एक नाम ।

कामार्त—वि० [सं०] १. काम से पीड़ित । २. विद्योगी । विरह पीड़ित [को०] ।

कामार्थी—वि० [सं० कामार्थिन] १. कामुक । कामी । २. रतिकर्म में आसक्त [को०] ।

कामावशायिता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. सत्य सकल्पता जो योगियों की आठ सिद्धियों या ऐश्वर्यों में से है । २. आत्मनिग्रह (को०) ।

कामावसाय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] इद्रियनिग्रह (को०) ।

कामावसायिता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कामावशायिता' ।

कामि^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कामुक [को०] ।

कामि^२—सञ्ज्ञा स्त्री० काम की स्त्री । रति (को०)

कामिक^१—वि० [सं०] इच्छित । चाहा हुआ । जिसकी कामना की जाय (को०) ।

कामिक^२—सञ्ज्ञा पुं० वनहंस । कारह्व पक्षी [को०] ।

कामिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] खावण कृष्णा पञ्चदशी ।

कामित^१—वि० [सं०] चाहा हुआ । चाँछिन (को०) ।

कामित^२—सञ्ज्ञा पुं० कामना । वासना । प्रेम [को०]

कामितियाँ—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक छोटा पेड़ जो सुमाया, जावा आदि टापूओं में होता है और जिसकी गल से एक प्रकार का लोवान बनता है ।

कामिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. कामवती स्त्री । २. स्त्री । सुंदरी ३. भोर स्त्री (को०) । ४. दाह हल्दी । ५. मदिरा । ६. पेड़ों परका बाँदा । परगाछा । ७. मानकोस राग की एक रागिनी ।

८. एक पेड़ जिसकी लकड़ी से भेज कुर्सी आदि सजावट के सामान बनते हैं ।

विशेष—इसकी लकड़ी पर तबकाशी का काम अच्छा होता है । यो०—कामिनिकांचन = स्त्री और सपदा ।

कामिनीकाच—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कामिनीकाच] एक वर्णवृत्त । दे० 'अभिवर्णी' (को०) ।

कामिनीमोहन—[सं०] अभिवर्णी छंद का एक नाम ।

कामिनोश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सहजन का पेड़ । शोभाजन वृक्ष (को०) ।

कामिल—वि० [अ०] १. पूरा । पूर्ण । सब । कुल । समूचा । २. योग्य । ३. व्युत्पन्न ।

कामो^१—वि० [सं० कामिन्] [स्त्री० कामिनी] १. कामना रखनेवाला । इच्छुक । २. विषयी । कामुक । लपट ।

कामो^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. चक्रवा २. कवूतर । ३. चिड़ा । गौरा । ४. सारस । ५. चद्रमा । ६. काकड़ासीगी । ७. विष्णु का एक नाम । ८. शिव का एक विशेषण (को०) । ९. लपट व्यक्ति (को०) । १०. विलासी पति (को०) ।

कामो^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कम्प = हिलना] १. काँसे का ढाला हुआ छड़ जिससे मुठिया बनाते हैं । २. कमानी । तीली ।

कामु^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० काम] दे० 'काम' । उ०—पठवहु कामु जाइ शिव पाही । करं छोभु सकर मन माही ।—मानस, १।८३ ।

कामुक^१—वि० [सं०] १. [स्त्री० कामुकी] इच्छा करने वाला । चाहने वाला । २. [स्त्री० कामुका] कामी । विषयी ।

कामुक^२—सञ्ज्ञा पुं० १. अशक्त । २. माधवी लता । ३. चिड़ा । गौरा ।

कामुका^१—वि० स्त्री० [सं०] इच्छा करने वाली ।

कामुका^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार का मातृका दोष ।

विशेष—बंदक के अनुसार यह रोग बालको को जन्म के बारहवें दिन या बारहवें महीने या बारहवें वर्ष होता है । इसमें रोगी ज्वरग्रस्त होकर हँसता है, वस्त्रादि उतारकर फेंक देता है, अधिक साँस लेता है और अश्वत्थ वकता है ।

२. धन की कामना रखनेवाली स्त्री (को०) ।

कामुकि^१—वि० [सं० कामुक, कामुकी] दे० 'कामुक' । उ०—जिनके विलोकित ही विलात, भसेस कामुकि काम के ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४५७ ।

कामुकी—वि० स्त्री० [सं०] प्रत्यत रति की इच्छा रखनेवाली । पुरुषवती । व्यभिचारिणी (को०) ।

कामेडियन—संज्ञा पुं० [अ० कामेडियन] १. आदि रस या हास्य रस का अभिनेता । २. सुखात नाटक लिखनेवाला ।

समाज सोह वर नारी ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) उ०—शशि
किरणों से उत्तर उत्तरकर भू पर कामरूप नभचर । चूम चपल
कलियों का मृदु मुख सिखा रहे थे मुसकाना ।—वीणा, पृ० ५८ ।
कामरूपत्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जैन मत के अनुसार एक प्रकार की सिद्धि
जो कर्मादि से निरपेक्ष होनेपर प्राप्त होती है । इससे साधक को
यथेच्छ अनेक प्रकार के रूप धारण करने की शक्ति होती है ।
कामरूपिणी—वि० [सं०] इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली ।
मायाविनी । उ०—यम की सभा कामरूपिणी है, विश्ववर्मा ने
बनाई है ।—प्रा० भा० पं०, पृ० ३२५ ।
कामरूपी—वि० [सं० कामरूपिन्] [वि० स्त्री० कामरूपिणी] इच्छा-
नुसार रूप धारण करनेवाला । मायावी ।
कामरेखा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या । वारागना [को०] ।
कामरेड—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] दे० 'काम्रेड' ।
कामर्स—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कामर्स] व्यापार । वाणिज्य । कारोबार ।
लेनदेन । जैसे,—चेंबर आफ कामर्स । कामर्स डिपार्टमेंट ।
कामल^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. एक रोग ।
विशेष—इसमें पित्त की प्रवृत्ति से रोगी के शरीर का रंग
पीला पड़ जाता है, आँखें और नख विशेष पीले जान पड़ते
हैं, शरीर अशक्त रहता है और भोजन में प्रवृत्ति रहती है ।
२. वसत कान । ३. रेगिस्तान [को०] ।
कामल^२—वि० कामी ।
कामलड़ी (पुं०)—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कम्बल, हिं० कामल + डी (प्रत्य०)]
दे० 'कामरी' । उ०—फाड़ि पटोली धुज करो कामलडी
फहराय । जेहि जेहि भेजे पिय मिलै, सोइ सोइ भेज कराय ।
—कवीर सा० सं०, पृ० ४२ ।
कामला—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कामल] दे० 'कामल' ।
कामलिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] मदिरा [को०] ।
कामली (पुं०)—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कम्बल] कमली । छोटा कवल । उ०—
साधु हजारी कापड़ा ता मे मल न समाय । साकट काली
कामली भावै तहाँ बिछाय ।—कवीर (शब्द०) ।
कामली—वि० [सं० कामलिन्] [वि० स्त्री० कामलिनी] पीलिया ।
रोग से पीड़ित [को०] ।
कामलेखा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या । वारागना [को०] ।
कामलोक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध दर्शन के अनुसार एक परोक्ष लोक ।
विशेष—यह ग्यारह प्रकार का है—मनुष्यलोक, तिर्यक्लोक,
नरक, प्रेतलोक, असुरलोक, चातुर्माहाराजिक, त्रयस्त्रिंश, याम्य,
तुषित, निर्माणरति और परनिर्मित नाशवर्ती ।
कामलोल—वि० [सं०] कामातुर [को०] ।
कामवती^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दाव हल्दी ।
कामवती^२—वि० स्त्री० काम की वासना रखनेवाली । समागम की
इच्छा रखनेवाली ।
कामवन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वह वन जहाँ बंठाकर महादेव जी ने
कामदेव का दहन किया था । २. मयुरा के पास का एक प्रसिद्ध
वन जो तीर्थ माना जाता है ।

कामवर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] इच्छित भेंट या उपहार [को०] ।
कामवल्लभ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. आम । आम का पेड़ । २. वसंत
[को०] । ३. चंद्रमा [को०] ।
कामवल्लभा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] चाँदनी । चंद्रिका ।
कामवश^१—वि० [सं०] काम के अधीन । कामयुक्त [को०] ।
कामवश^२—सञ्ज्ञा पुं० काम का आवेश या अधीनता [को०] ।
कामवाद^१—सं० पुं० [सं०] इच्छानुसार कहने का सिद्धांत ।
कामवाद^२—वि० १. इच्छानुसार कहने या बोलनेवाला ।
२. इच्छानुसार कहने के सिद्धांत को माननेवाला ।
कामवादी—वि० [सं० कामवादिन्] दे० 'कामवाद' ।
कामवान्—वि० [सं० कामवत्] [वि० स्त्री० कामवती] काम की इच्छा
करनेवाला । समागम का अभिलाषी ।
कामविहंता—वि० [सं० कामविहन्तृ] काम या वासना का हनन
करनेवाला [को०] ।
कामवीर्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गड़ [को०] ।
कामवृत्त—वि० [सं०] कामुक । लपट । स्वेच्छाचारी [को०] ।
कामवृत्ति^१—वि० १. स्वेच्छाचारी । २. स्वतंत्र [को०] ।
कामवृत्ति^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. स्वतंत्र या अनियंत्रित कार्य । २. काम
की प्रवृत्ति या भाव [को०] ।
कामवृद्धि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] काम का आवेश या वेग [को०] ।
कामवेग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कामोत्तेजना । काम की तीव्रता । उ०—
'भाव' मन की वेगयुक्त अवस्थाविशेष है, वह क्षुत्पिपासा, काम-
वेग आदि शरीरवेगों से भिन्न है ।—रस०, पृ० १६४ ।
कामशर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कामवाण । २. आम । ३. आम का
पेड़ [को०] ।
कामशास्त्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह विद्या या ग्रंथ जिसमें स्त्री पुरुषों के
परस्पर समागम आदि के व्यवहारों का वर्णन हो ।
विशेष—इसके प्रधान आचार्य नंदीश्वर माने जाते हैं और अतिम
आचार्य वात्स्यायन इनका ग्रंथ काम सूत्र है ।
कामसख—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वसत । २. चंद्र का आरम । चंद्रमुख ।
३. आम का वृक्ष [को०] ।
कामसखा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कामसखिन्] १. वसंत । २. चंद्रमास [को०] ।
कामसुख—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] काम का आनंद । विषयानंद । उ०—
समुक्ति कामसुख सोचहि भोगी । भए अकंटक साधक जोगी ।
—मानस, १।८७ ।
यौ०—कामसुखेच्छा = विषय-सुख की लालसा । कामसुखेच्छु = काम-
सुख का इच्छुक ।
कामसुत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अनिरुद्ध जो कामदेव के अवतार, प्रद्युम्न
के पुत्र थे ।
कामसूत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वात्स्यायन द्वारा रचित कामशास्त्र । २.
प्रेमसूत्र । कामकथा [को०] ।
कामहा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कामहन्] १. शिव । २. विष्णु [को०] ।
कामाकुश—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कामडकुश] १. नख । नाखून । २. लिंग ।
शियन [को०] ।
कामाग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कामाङ्ग] आम ।

कामध्वज—सखा पुं [सं] वह जो कामदेव की पताका पर हो, मछली ।

कामन—वि० [सं] १ कामुक । २ लपट । [को०] ।

कामन्वेत्थ—सखा पुं [अ०] राष्ट्रमंडल । राष्ट्रकुल ।

कामन सभा—सखा स्त्री [अ० हाउस आफ कामन्स] ब्रिटिश पार्लैमेंट की वह शाखा या सभा जिसमें जनसाधारण के निर्वाचित प्रतिनिधि होते हैं । आजकल इनकी संख्या ७०७ होती है । हाउस आफ कामन्स ।

कामना—सखा स्त्री [सं] १ इच्छा । मनोरथ । २ वासना (को०) ।

कामनीय, कामनीयक—सखा पुं [सं] सौंदर्य । आकर्षण । रमणीयता (को०) ।

कामपरता—सखा स्त्री [सं] विषय, भोग और इच्छाओं के वशीभूत रहने की स्थिति । कामुकता ।

कामपाल—सखा पुं [सं] १ श्रीकृष्ण । २. वलराम । ३. महादेव । ४ विष्णु (को०) ।

कामप्रद—वि० [सं] कामना की पूर्ति करनेवाला । अभीष्टदायक । उ०—ससार में जितने कामप्रद सुख हैं, जितने दिव्य और महान सुख हैं, वे तृष्णाक्षय सुख के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं हैं ।—रस० क०, पृ० ४४ ।

कामप्रद—सखा पुं परमात्मा (को०) ।

कामप्रवेदन—सखा पुं [सं] काम को प्रकट करना या जताना (को०) ।

कामप्रश्न—सखा पुं [सं] स्वतंत्र या इच्छित प्रश्न (को०) ।

कामफल—सखा पुं [सं] एक प्रकार का आम (को०) ।

कामबाण—सखा पुं [सं] कामदेव के बाण, जो पाँच हैं—मोहन, उन्मादन, सतपन, शोषण, और निश्चेष्टकरण ।

विशेष—बाणों को फूलों का मानने पर वे पाँच बाण ये हैं—लालकमल, अशोक, आम, चमेली और नील कमल ।

कामभूरुह—सखा पुं [सं] काम + भूरुह । वत्पवृक्ष उ०—राम भलाई आपनी भल कियो न काको ।—राम नाम महिमा करे कामभूरुह आको । साखी वेद पुरान है तुलसी तन ताको ।—तुलसी (शब्द०) ।

काममह—सखा पुं [सं] काममहस्य चंद्र पूर्णिमा को मनाया जाने वाला कामदेव का एक उत्सव (को०) ।

काममुद्रा—सखा स्त्री [सं] तंत्र की एक मुद्रा ।

काममूढ—वि० [सं] काममूढ़ । कामातुर । काम के वशीभूत (को०) ।

काममोहित—वि० [सं] कामातुर । काम के वशीभूत (को०) ।

कामयमान, कामयान—वि० [सं] कामी । कामसुखेच्छु । कामुक । कामातुर (को०) ।

कामयाव—वि० [फा०] जिसका प्रयोजन सिद्ध हो गया हो । सफल । कृतकार्य ।

कामयादी—सखा स्त्री [फा०] [वि० कामयाव] सफलता । कृतकार्यता ।

कामयिता—वि० [सं] कामयितृ । [वि० स्त्री कामयित्री] कामातुर (को०) ।

कामरत—सखा पुं [सं] कामलिप्त । वासनालिप्त । उ०—कहुँ भूल्यो कामरत कहुँ भूल्यो साधजत कहुँ भूल्यो हमध्य कहुँ वनबासी है ।—सुंदर प्र० भा० २, पृ० ५८४ ।

कामरस—सखा पुं [सं] १ वीर्य । २ काम सबवी रस या आनंद (को०) ।

कामरसिक—वि० [सं] [वि० स्त्री कामरसिका] कामी । कामुक (को०) ।

कामरिपु—सखा स्त्री [हि० कामरी] कमली । कवल । उ०—सूरदास

खल कारी कामरि चढत न दूजो रंग ।—सूर (शब्द०) ।

कामरिपु—सखा पुं [सं] शिव का एक नाम ।

कामरिया—सखा स्त्री [हि० कामरी] दे० 'कामरी' ।

कामरी—सखा स्त्री [सं] कम्बल । कमली । कवन । उ०—कागरी मो जिय मारो हुतो वहि कामरीवारो विचारो बचायो ।—देव (शब्द०) ।

कामरुचि—सखा स्त्री [सं] एक ग्रन्थ जो रामायण के अनुसार विश्वामित्र ने रामचंद्र जी को दिया था । इसमें वे ग्रन्थ ग्रन्थों को व्यर्थ करते थे । उ०—तिमि विभूति ग्रह प्रनर कह्यो युग तसहि वनकर बीरा । कामरूप मोहन आवरणहुँ लहु कामरुचि बीरा ।—रघुराज (शब्द०) ।

कामरु—सखा पुं [कामरूप, प्रा० कामरूप] दे० 'कामरूप' । उ०—कामरु देस कमच्छा देवी । जहाँ वसै इसमाइन जोगी ।—(शब्द०) ।

कामरु—सखा पुं [सं] कामरूप, प्रा० कामरूप] दे० 'कामरूप' ।

कामरूप—सखा पुं [सं] १. आसाम का एक जिला जहाँ कामाक्षी देवी का स्थान है । इसका प्रधान नगर गोहाटी है ।

विशेष—कालिका पुराण में कामाक्ष्या देवी और कामरूप तीर्थ का माहात्म्य बड़े विस्तार के साथ लिखा है । यह देवी के ५२ पीठों में से है । यहाँ का जादू टोना प्रसिद्ध है । प्राचीनकाल में यह म्लेच्छ देश माना जाता था और इसकी राजधानी प्रागज्योतिषपुर (आधुनिक गोहाटी) थी । रामायण के समय में इसका राजा नरकासुर था । सीता की खोज के लिये बदरों को भेजते समय सुग्रीव ने इस देश का वणन किया है । महाभारत के समय में प्रागज्योतिषपुर का राजा भगदत्त था । जब अर्जुन दिग्विजय के लिये निकले थे, तब यह उनसे चीनियों और किरातों की सेना लेकर लड़ा था । कुक्षेत्र के युद्ध में भी भगदत्त चीनियों और विराटों की म्लेच्छ सेना लेकर कौरवों की ओर से लड़ने गया था । महाभारत में कहीं कहीं भगदत्त को 'म्लेच्छानामधिप' भी कहा है । पीछे स जब शाक्तों और तान्त्रिकों का प्रभाव बढ़ा, तब यह स्थान पवित्र मान लिया गया ।

२. एक ग्रन्थ जिससे प्राचीन काल में शत्रु के फेंके हुए ग्रन्थ व्यर्थ किए जाते थे । ३. वरगद की जाति का एकबड़ा सदावहार पेड़ ।

विशेष—इसकी लकड़ी चिकनी, मजबूत और ललाई लिए हुए सफेद रंग की होती है जिसपर बड़ी सुंदर लहरदार धारियाँ पड़ी होती हैं । इसकी तेल प्रति घनफुट २० सेर के लगभग होती है । यह लकड़ी किवाड़, कुरसी, मेज आदि बनाने के काम में आती है । कामरूप की पत्तियाँ टसर रेशम के कीड़े भी खाते हैं ।

४. २६ मायाओं का एक छंद, जिसमें ६७ और १० के अंतर पर विराम होता है । अंत में गुरु लघु होते हैं । जैसे,—सित पछ सुदसभी, विजय तियि सुर, वंद्य नखत प्रकाश । कपि भालु दन युत, चले रघुपति, निरखि समय सुभास । ५. देवता ।

कामरूप—वि० यथेच्छ रूप धारण करनेवाला । मनमाना रूप धारण करनेवाला । उ०—(क) कामरूप सुंदर तनु धारी । सहित

कामदगिरि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चित्रकूट का एक पर्वत जो सभी कामनाएं पूरी करनेवाला माना जाता है।

कामदमणि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चितामणि।

कामदमनि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कामदमणि दे० 'कामदमणि'। उ०—
गय चित चेति चित्रकूट चलि । करिहैं राम भावतो मन को
सुख साधन अनयास महा फलु । कामदमनि कामदा कल्पतव
सो जुग जुा जागत जगतीतनु । तुलसी तोहि विसेखि वृक्षिए
एक प्रतीति प्रीति एकै बलु ।—तुलसी शब्द०।

कामदर्शन—वि० [सं०] देखने में जो सुंदर लगे [को०]।

कामदेव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कामाग्नि। कामज्वाला [को०]।

कामदहन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] काम + दहन। कामदेव को जलानेवाले, शिव।
उ०—घर ही बैठे दोऊ दास। रिवि सिधि भक्ति अमय पद
दायक आग मिले प्रभु हरि अनयास ।—जाको ध्यान घरत
मुनि शकर शीश जटा दिग अंबर तास। कामदहन गिरि
कदर आसन या मूर्ति की तऊ पियास।—सूर (शब्द०)।

कामदा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. कामधेनु। २. एक देवी जिसकी
अहिरावण पूजा करता था। उ०—देही बलि कामद कहुं
सोई। जानेहु नभ प्रकाश जब होई।—विश्राम (शब्द०)।
३. चंद्र शुक्ल पक्ष की एकादशी का नाम। ४. दस भस्मरो
का एक वर्णवृत्त जिसमें क्रम से, रगण, यगण, और जगण तथा
एक गुरु होता है। जैसे,—रायजू गयो मो लला कहाँ ? रोय
यो कहै नद जू तहाँ। हाय देवकी दीन भापदा। नैन ओठ के
मूर्ति कामदा।

विशेष—इस वृत्त के आदि में गुरु के स्थान में दो लघु रखने से
'शुद्ध कामदा' वृत्त होगा है। इसमें ५, ५ पर यति होती है।

कामदान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ऐसा नाच रंग या गाना बजाना जिसमें
भोग अपना कामधधा छोड़कर लीन रहे। [को०]।

विशेष—कोटिल्य के समय में राज्य की मुख्य आमदनी अनाज की
उपज का भाग ही था। अतः कृषकों के दुर्गमसन, मालस्य
आदि के कारण जो पैदावार की कमी होती थी, उससे राज्य
को हानि पहुँचती थी। इसी से कामदान' अपराधों में गिना
गया था और इसके लिये १२ पण जुर्माना होता था।

कामदानी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० काम + दानी (प्रत्य०)] १. बेलबूटा
जो बादले के तार या सलमे सितारे से बनाया जाय। २. वह
कपड़ा जिस पर सलमे सितारे के बेलबूटे बने हों।

कामदार—सञ्ज्ञा पुं० [हि० काम + दार (प्रत्य०)] राजपुताने की
रियासतों में एक कर्मचारी जो प्रबंध का काम करता है।
कारिदा। अमला। उ०—पाँचो पकड़े कामदार जो पकड़ी
ममता माई।—कबीर शं० पृ० १३३।

कामदार—वि० कारचोबी जिसपर जरदोजी या तार के कसीरे का
काम हो। जिसपर कलावत्तु आदि के बेलबूटे बने हों।
जैसे—कामदार टोपी, कामदार जूता।

कामदुष्ट—वि० [सं०] हर प्रकार की इच्छा पूरी करने वाला। अभीष्ट
दायक [को०]।

कामदुष्टा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कामधेनु कातद्वहा [को०]।

कामदुह—वि० [सं०] कामदुह] अभीष्टदायक [को०]।

कामदुहा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कामधेनु।

कामदूतिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नागदती। हाथीसूँड नाम की घास।

कामदूती—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. परवल की वेल। २. कोल [को०]।

कामदेव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. स्त्री पुरुष के संयोग की प्रेरणा करने
वाला एक पौराणिक देवता जिसकी स्त्री रति, साथी वसंत,
वाहन कोकिल, अस्त्र फूँको का धनुष बाण है। उसकी ध्वजा
पर मीन और मकर का चिह्न है।

विशेष—कहते हैं जब सती का परलोकवास हो गया, तब शिवजी
ने यह विचार कर कि अब विवाह न करेंगे, समाधि लगाई।
इसी बीच तारकासुर ने घोर तप कर यह वर माँगा कि मेरी
मृत्यु शिव के पुत्र से हो और देवताओं को सताना प्रारंभ
किया। इस दुख से दुखित हो देवताओं ने कामदेव से शिव
की समाधि भग करने के लिये कहा। उसने शिवजी को समाधि
भग करने के लिये उनपर अपने बाण चलाए। इसपर शिवजी
ने कोप कर उसे भस्म कर डाला। इसपर उसकी स्त्री रति
रौने और विलाप करने लगी। शिवजी ने प्रसन्न होकर कहा
कि कामदेव अब से बिना शरीर के रहेगा और द्वारका में कृष्ण
के घर प्रद्युम्न के रूप में उसका जन्म होगा। प्रद्युम्न कामदेव
के अवतार कहे गए हैं।

पर्याय—काम। मदन। मन्मथ। मार। प्रद्युम्न। मीनकेतन।
कदर्प। दर्पक। अनग। पंचशर। स्मर। शंबरारि। मन्तत्रि।
कुसुमेव। प्रनन्यज। पुष्पधन्वा। रतिपति। मकरध्वज।
आत्मभू। ब्रह्मसू। अश्वकेतु।

२. वीर्य। ३. संयोग की इच्छा। ४. शिव। ५. विष्णु [को०]।

कामधाम—सञ्ज्ञा पुं० [हि० काम + धाम] (अनु०) कामकाज।

धधा। उ०—त्रज घर गई गोपकुमारि। नेकहू कहुं मन न
लागत कामधाम विधारि।—सूर (शब्द०)।

कामधुक—वि० [सं०] अभीष्टदायक [को०]।

कामधुक—सञ्ज्ञा स्त्री० कामधेनु [को०]।

कामधुक—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कामधेनु। कामधेनु। उ०—नाम काम-
धुक रामलला।—तुलसी (शब्द०)।

कामधेनु—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक गाय जो पुराणानुसार समुद्र
के मयने से निकली थी। सुरभी।

विशेष—यह चौदह रत्नों में से एक है। कहते हैं इससे जो माँगा
जाय वही मिलता है।

२. वशिष्ठ की शवला या नबिनी नाम की गाय।

विशेष—इसके कारण वशिष्ठ का विश्वामित्र से युद्ध हुआ था।
विश्वामित्र एक बार वशिष्ठ के यहाँ गए। वशिष्ठ ने अपनी
गाय के प्रभाव से उनका बड़े वैभव के साथ आतिथ्य किया।

विश्वामित्र लोभ करके वह गाय माँगने लगे। वशिष्ठ ने
अस्वीकार किया, इसी पर दोनों में घोर युद्ध हुआ।

३. दान के लिये सोने की बनाई हुई गाय।

कामधेन्वा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कामधेनु दे० 'कामधेनु'। उ०—यह मुट्ठी
भर की कामधेन्वा इसनी उदार होगी यह मुझे विश्वास
नहीं था।—किशनरव, पृ० ५७।

कामकृत्—सञ्ज्ञा पुं० लीलापुरुष । परमात्मा इच्छा मात्र से सृष्टि करने वाला [को०] ।

कामकृत्—वि० [सं०] काम या कामदेव द्वारा किया हुआ । उ०—
हुई दड भरि ब्रह्माड भीतर कामकृत कौतुक अथ ।—मानस,
१। ८५ ।

कामकृतश्रृणु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह श्रृणु जो विषय भोग में लिप्त होने की दशा में लिया गया हो ।—(स्मृति)।

कामकेलि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] रतिक्रिया । कामक्रीड़ा [को०] ।

कामत्रिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] रतिक्रिया । समोग [को०] ।

कामक्रीडा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कामक्रीडा] कामकेलि । समोग ।
रतिक्रिया [को०] ।

कामग—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कामगा] १. स्वेच्छाचारी । अपनी इच्छा पर चलनेवाला । उ०—गगवान जब दशरत्य नृप रानीन के गर्भहि गये । तबही विरचि सुदेवतन मी वात यह बोलत भये । तुम हरि सहायहि के लिए उत्पत्ति कपि मन की करो । अब अति बली अति काय कामग कामरूपी विस्तरो । —
पद्माकर (शब्द०) । २. परस्त्री या वेश्यागामी । लपट । ३. कामदेव ।

कामगति—वि० [सं०] मनोकूल स्थान पर जाने में समर्थ । जहाँ मन चाहे वहाँ में जाने में समर्थ ।

कामगार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्म + कार, प्रा० कम्म + गार (प्रत्य०)]
१ दे० 'कामदार' । २ मजदूरी । मजदूरी करके रोजी कमाने-
वाला व्यक्ति ।

कामगिरि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चित्रकूट कामदगिरि [को०] ।

कामचर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अपनी इच्छा के अनुसार सब जगह जानेवाला । स्वेच्छापूर्वक विचरनेवाला ।

कामचलाऊ—वि० [हि० काम + चलाना] जिससे किसी प्रकार काम निकल सक । जो पूरा पूरा या पूरे समय तक काम न दे सके पर भी बहुत से अर्थों में काम दे जाय ।

कामचार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० कामचारी] १ इच्छानुसार भ्रमण ।
२ स्वेच्छाचार (को०) । ३ कामुकता (को०) । ४ स्वार्थ-
परता (को०) ।

कामचारी^१—वि० [सं० कामचारिन्] १ मनमाना धूमनेवाला ।
जहाँ चाहे वहाँ विचरनेवाला । २ मनमाना काम करनेवाला ।
स्वेच्छाचारी । ३ कामुक । लपट ।

कामचारी^२—सञ्ज्ञा पुं० १ गरुड़ । २ गोरैया [को०] ।

कामचोर—वि० [हि० काम + चोर] काम से जो चुरानेवाला । काम से
भागनेवाला । अकर्मण्य । आलसी । जागरचोर । जागरचोट्टा ।

कामज^१—वि० [सं०] यासना से उत्पन्न ।

कामज^२—सञ्ज्ञा पुं० १ व्यसन ।

विशेष—मनुसंहिता के अनुसार ये व्यसन दस प्रकार के होते हैं
और इनमें आसक्त होने से अर्थ और धर्म की हानि होती है ।
दस कामज व्यसन ये हैं—मृगया, जुमा, दिन को सोना पराई
निंदा, स्त्रीसभोग मद्यपान नृत्य, गीत, वाद्य और व्यर्थ इधर
उधर घूमना ।

२ श्लोष । आवेश (को०) ।

कामजननी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नागरेल [को०] ।

कामजान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कोयल [को०] ।

कामजानि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कोयल [को०] ।

कामजित्—वि० [सं०] काम ही जीतनेवाला ।

कामजित्—सञ्ज्ञा पुं० १ महादेव । शिव । २ कार्तिकेय । ३ जिा देव ।

कामज्वर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का ज्वर जो
स्त्रियों और पुरुषों को अथवा ब्रह्मचर्य पालन करने से हो
जाता है ।

विशेष—इसमें नोजन से अर्धचंद्र और हृदय में दाह होता है नींद,
लज्जा, बुद्धि और धैर्य का नाश हो जाता है, गुत्था के हृदय
में पीडा होती है और स्त्रियों का अंग टूटता है, नेत्र चंचल
हो जाते हैं, मन में समोग की इच्छा होती है । क्राध उत्पन्न
कर देने से इसका वेग प्राप्त हो जाता है ।

कामठक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के वंश का एक नाग जो जनमेजय
राजा के सर्वयज्ञ में मारा गया था ।

कामणगारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कर्मण + कार, पुत्र० कामण + गार + ई
(प्रत्य०)] जादूगरनी । उ०—प्रीतम कामणग रिवाँ, वन वन
वादलियाँह । घण वरसतइ सूकियाँ, लहूँ जागुरियाँह ।—
ढोना०, दू० २। ८ ।

कामडिया—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कम्बन] रामदेव के मत के अनुयायी
चमार माधु ।

विशेष—ये राजपूताने में होते हैं और रामदेव के गन्द या उनकी
वानी गाते और भीख मांगते हैं ।

कामत—क्रि० वि० [सं०] १ इच्छानुसार । स्वेच्छया । २ वासना से ।

कामत—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कामत] शरीर । जिम्मा । डीन डीन । कद ।
उ०—सर्व कामत गजव की चाल से तुम नगो कयामत चले
वषा करके ।—भारतेंदु श०, भा० २, पृ० २२० ।

कामतरु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ बाँदा जो पेड़ों पर होता है । २
कल्पवृक्ष ।

कामता—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कामद] चित्रकूट के पान का एक गाँव ।
चित्रकूट । उ०—पवन तनय यह तलिपुग माही । अस दरगन
होवै कहुँ नही । तुलसिदास कह कृपा निहारी मोहि न अचरज
परत निहारी । कह कपीश कामता सिधारी । बैठहु काल्हि
राम उरधारी ।—विश्राम (शब्द०)

यौ०—कामणगिरि = कामदगिरि ।

कामताप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कामज्वर । उ०—पानदा रस-रग-भक्त
काम-ताप हरन ।—घनानन्द, पृ० ४१५ ।

कामताल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कोयल [को०] ।

कामतिथि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] त्रयोदशी ।

विशेष—इस तिथि को कामदेव की पूजा होती है ।

कामद^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कामदा] मनोरंजनापूरा करनेवाला ।
इच्छानुसार फन देनेवाला ।

यौ०—कामदगिरि = चित्रकूट ।

कामद^२—सञ्ज्ञा पुं० १ स्वामीकार्तिक । २ ईश्वर । ३ शिव (को०) ।

४ सूर्य (को०) ।

प्रयोजन निकलना। मतलब गटना। उद्देश्य सिद्ध होना। मामला ठीक होना। बात बनना। जैसे,—बड़-इस समय यही आ जाय तो हमारा काम बन जाय। काम बनाना= किसी अर्थ का साधन करना। किसी का-मतलब निकालना। काम सगना=काम पडना। आवश्यकता होना। दरकार होना। जैसे, जब रुपए का काम लगे, तब ले लेना। काम संवारना=काम बनाना। किसी का अर्थ-साधन करना। काम सघना=काम सिद्ध होना। प्रयोजन-सिद्ध होना। काम सरना=काम निकलना। काम पूरा होना। उ०—इससे आपकी हयाति होगी वा आपके राज्य का काम सरेगा।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४२। काम साधना=काम पूरा करना। प्रयोजन सिद्ध करना। काम साध देना=सफल करना। सिद्ध करना। पूरा कर देना। उ०—वेसधा काम साध देती है। बात सीधी हुई सादी।—चोखे०, पृ० ३१। काम होना=प्रयोजन सिद्ध होना। अर्थ निकलना। आवश्यकता पूरी होनी।

४. गरज। वास्ता। सरोकार। लगाव। जैसे—(क) हमें अपने काम से काम। (ख) तुम्हें इन भगडों से क्या काम? मुहा०—किसी से कान डालना=(काम 'पड़ना' का प्र० रूप) पाना डालना। जैसे, ईश्वर ऐसों से काम न डाले। किसी-से काम पडना। किसी से पाला पडना। किसी से वास्ता पडना। किसी प्रकार का व्यवहार या संबंध होना। उ०—चंदन पड़ा चमार घर नित उठि कुट्ट चाम। चंदन वपुरा का करै, पडा नीच मे काम।—(शब्द०)। काम रखना=वास्ता रखना। सरोकार रखना। लगाव रखना। जैसे—बाकी और किसी बात से उन्हें काम नहीं, खाने पीने से मतलब रखते हैं। काम से काम रखना=अपने कार्य से प्रयोजन रखना। अपने प्रयोजन ही की ओर ध्यान रखना, व्यर्थ की बातों में न पडना।

५ उपयोग। व्यवहार। इस्तेमाल।

मुहा०—काम आना=(१) काम में आना। व्यवहार में आना। उपयोगी होना। जैसे—(क) यह पत्ती दवा के काम आती है। (ख) इसे फेंको मत, रहने दो, किसी के काम आ जायगा। २. साध देना। सहारा देना। सहायक होना। आड़े आना। जैसे—विपत्ति में मित्र ही काम आते हैं। काम का=काम में आने लायक। व्यवहार योग्य। उपयोगी (वस्तु)। काम देना=व्यवहार में आना। उपयोगी होना। जैसे—यह चीज वस्तु पर काम देगी, रख छोड़ो। (किसी वस्तु से) काम लेना=व्यवहार में लाना। उपयोग करना। बर्तना। इस्तेमाल करना। जैसे—बाह। आप हमारी टोपी से अच्छा काम ले रहे हैं। काम में आना=व्यवहार में आना। व्यवहृत होना। बर्तना जाना। जैसे,—इस रख छोड़ो, किसी के काम में आ जायगी। काम में लाना=बर्तना। व्यवहार करना। उपयोग करना।

६ कारवार। व्यवसाय। रोजगार। जैसे—उन्हें कोई काम मिल जाता तो अच्छा था।

कि०प्र०—करना।

२-४५

मुहा०—कामखुलना=कारवार चलना। नया कारखाना जारी होना। नया कारवार प्रारंभ होना। काम चमकना=बहुत अच्छी तरह कारवार चलना। व्यवसाय में वृद्धि होना। रोजगार में फायदा होना। जैसे,—थोड़े ही दिनों में उसका काम खूब चमक गया और वह लाखों रुपए का आदमी हो गया। काम पर जाना=कार्यालय में जाना। अपने रोजगार की जगह जाना। जहाँपर कोई काम हो रहा हो, वहाँ जाना। काम बढ़ाना=काम बढ़ करना। नियम के नियमित समय पर कोई कामकाज बढ़ करना। जैसे,—संघा को कारीगर काम बढ़ाकर अपने अपने घर जाते हैं। काम बिगडना=कारवार बिगडना। व्यवसाय नष्ट होना। व्यापार में घाटा आना। काम सीखना=कार्यक्रम की शिक्षा होना। व्यवसाय या धंधा सीखना। कला सीखना। जैसे,—वह तारकशी का काम सीख रहा है।

७ कारीगरी। बनावट। रचना। दस्तकारी। ८ वेनबूटा या नक्काशी जो कारीगरी से तैयार हो। जैसे—(क) इस टोपी पर बहुत घना काम है। (ख) दीवार पर का काम उखड़ रहा है।

यो०—कामदानी। कामदार।

मुहा०—काम उतारना—किसी दस्तकारी के काम को पूरा करना। कोई कारीगरी की चीज तैयार करना। काम चढ़ना=तैयारी के लिये किसी चीज का खराद करघे, कालिव, कल आदि पर रखा जाना। काम चढ़ाना=किसी चीज की तैयारी के लिये खराद, करघे, कालिव कल आदि पर रखना या लगाना। जैसे,—कई दिनों से काम चढ़ाया हूँ पर, अभी तक नहीं उतरा। काम बनना=किसी वस्तु का तैयार होना। रचना या निर्माण होना।

कामअर्थ०—वि० [सं० कामान्व] दे० 'कामाध'। उ०—कामअर्थ जब भयो तब तिय ही तिय सब ठोर। अब विवेक अजत कियो लख्यो अलख सिरमोर।—ब्रज ग्रं०, पृ० १२१।

कामकला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मंथन। रति। २ कामदेव की स्त्री। रति। ३. एक तथोक्त विद्या।

विशेष—इसमें शिव और शक्ति की दो सफेद और लाल विदियों मानी गई हैं, जिनके संयोग को कामकला कहते हैं। इसी संयोग से सृष्टि की उत्पत्ति मानी जाती है।

४ कामदेव का कौशल। उ०—कामकला कछु मुनिहि न व्यापी।—मानस, १। १२६।

कामकाज—संज्ञा पुं० [हि० काम+काज] कारवार। कामधंधा। कामकाजी—वि० [हि० काम+काज] काम करनेवाला। उद्योग-धंधे में रहनेवाला।

कामकूट—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेश्यागामी। लंपट। २. वेश्याओं का छल छद्म। ३. कामराज नामक श्रीविद्या का मंत्र जो तीन प्रकार का है—कामकृत, कामकेलि और कामक्रीडा।

कामकृत—वि० [सं०] १. इच्छानुसार करनेवाला। स्वेच्छाकारी। २. काम या इच्छा पूर्ण करनेवाला [स्व०]।

क्रि० प्र०—करना ।—चलना ।—होना ।—मे आना ।

मुहा०—काबू मे करना या काबू करना=बश मे करना । काबू चढ़ना या काबू पर चढ़ना=अधिकार मे आना । दाँव पर चढ़ना । काबू पाना=अधिकार पाना । दाँव पाना ।

कामर्त—सञ्ज्ञा पु० [सं० कामर्त] बुरा पति । बुरा स्वामी(को०) ।
कामध^१ (उ) —वि० [सं० कामान्व] ३० 'कामाध, । उ०—नर नारि भए कामध अघ ।—हमोर रा०, पृ० १६ ।

कामध^२ (उ) —सञ्ज्ञा पु० [सं० कवन्ध] दे० 'कवध' । उ०—घरी एक रविमडल छिद्रकारी । तुटे कध कामध भी जुद्ध गारी ।—तृ० रा०, १२ । १४१ ।

काम^१—सञ्ज्ञा पु० [सं०] [कामुक, कामी] १ इच्छा । मनोरथ । यौ०—कामव । कामप्रव ।

२ महादेव । ३ कामदेव । ४. इन्द्रियो की अपने अपने विषयो की ओर प्रवृत्ति (कामशास्त्र) । ५ सहवाम या मंथुन की इच्छा । ६ चतुर्वर्ग या चार पदार्थों मे से एक । ७ प्रद्युम्न (को०) । ८ वनराम (को०) । ९ ईश्वर (को०) । १० प्रेम (को०) । ११ वीर्य (को०) । शुक्र (को०) । १२ एक प्रकार का आम (को०) ।

काम^२—सञ्ज्ञा पु० [सं० कर्म, प्रा० कम्म] १ वह जो किया जाय । गति या क्रिया जो किसी प्रयत्न से उत्पन्न हो । व्यापार । कार्य । जैसे,—सब लोग अपना अपना काम कर रहे हैं ।

क्रि० प्र०—करना ।—विगडना ।—होना ।

यौ०—कामकाज । कामधवा । कामधाम । कामधोर ।

मुहा०—काम अटकना=काम रुकना । हर्ज होना । जैसे—उनके बिना तुम्हारा कौन सा काम अटका है । काम आना=मारा जाना । लडाई मे मारा जाना । जैसे,—उस लडाई मे हजारों सिपाही काम आए । काम कर दिखाना=महत्वपूर्ण काम करना । उ०—जम गए काम कर दिखाएंगे । कौन से काम हैं नहीं कस के ।—चुप्ते, पृ० २६ । काम करना=(१) प्रभाव डालना । प्रसर करना । जैसे—यह दवा ऐसी बीमारी मे कुछ काम न करेगी । (२) प्रयत्न मे कृतकार्य होना । जैसे—यहाँ पर बुद्धि कुछ काम नहीं करती । (३) सभोग करना । मंथुन करना—(वाजारी) । काम के सिर होना या काम सिर होना=काम मे लगना । जैसे—महीनो से बेकार बैठे थे, काम के सिर हो गए अच्छा हुआ । काम चलना=(१) काम जारी रहना । क्रिया सफादन होना । जैसे—सिचाई का काम चल रहा है । काम चलाना=काम जारी रखना । धधा चलता रखना । काम छेड़ना=काय आरंभ करना । उ०—काम छेड़ा छूटता छोड़े नहीं । टूटता है दम रहे तो टूटता ।—चुप्ते०, पृ० १३ । काम तमाम या काम आखिर करना=(१) काम पूरा करना । (२) मार डालना । जान लेना । घात करना । कामतमाम या आखिर होना=(१) काम पूरा होना । काम समाप्त होना । (२) मरना । जान से जाना । जैसे—एक डके मे साँप का काम तमाम हो गया । काम देखना=(१) किसी

चलते हुए कार्य की देखभाल करना । काम की जाँच करना । (२) अपने कार्य या मतलब की ओर ध्यान रखना । जैसे—तुम अपना काम देखो, तुम्हें इन ऋग्दो से क्या मतलब । काम बँटाया=किसी काम मे शरीक होना । किसी काम मे सहायता करना । सहायक होना । काम बनना=मानस बनना । यात बनना । काम विगडना=बान विगडना । मामला विगडना । काम भुगतना=काम निपटना । काम पूरा होना । काम भुगताना=कार्य समाप्त करना । काम पूरा करना । काम लगाना=काम जारी होना । कार्य का विधान होना । किसी वस्तु के निमित्त करने का अनुष्ठान होना । जैसे—(क) महीनो से काम लगा है, पर मंदिर अभी नहीं तैयार हुआ । (ख) जहाँ पर काम लगा है, वहाँ जाकर देखभाल करो । काम लगा रहना=व्यापार जारी रहना । जैसे—कोई आता है, कोई जाता है, यही काम दिन रात लगा रहता है । (किसी व्यक्ति से) काम लेना=कार्य मे नियुक्त करना । कार्य कराना । काम सीनना=काम सिद्ध या पूरा होना । उ०—प्रसन होइ शिव शिवा काम मीसे सुईद जग—पृ० रा० २५ । ३४ । काम होना=(१) मरना प्राण जाना । जैसे—गिरते ही उनका काम हो गया । (२) अत्यंत कष्ट पहुँचना । जैसे—तुम्हारा गया उठाने वाले का काम होना था ।

२ कठिन काम । मुश्किल बात । शक्ति या वीर्य का कार्य । जैसे—वह नाटक लिखकर उन्होंने काम किया ।

मुहा०—काम रखता है । बड़ा कठिन कार्य है । मुश्किल बात है । जैसे—इस भीड़ मे से होकर जाना काम रखता है ।

३ प्रयोजन । अर्थ । मतलब । उद्देश्य । जैसे—हमारा काम हो जाय तो तुम्हें प्रसन्न कर देगे ।

मुहा०—काम करना=अर्थ साधना । मतलब निकालना । जैसे—वह अपना काम कर गया तुम नाकते ही रह गए । काम का=जिससे कोई प्रयोजन निकले । जिनसे कोई उद्देश्य सिद्ध हो । जो मतलब का हो । जैसे—काम का आदमी । काम चलना=प्रयोजन निकलना । अर्थ सिद्ध होना । अभिप्राय साधन होना । कार्यनिर्वाह होना । जैसे इतने से तुम्हारा काम नहीं चलेगा काम चलाना=प्रयोजन निकलना । अर्थ सिद्ध करना । कार्यनिर्वाह करना । आवश्यकता पूरी करना । जैसे—इस वर्ष इसी से काम चलाओ । काम निकलना=(१) प्रयोजन सिद्ध होना । उद्देश्य पूरा होना । मतलब मँठना । जैसे—काम निकल गया, अब क्यों हमारे यहाँ आवेंगे ? उ०—मुफ्त निकले काम तो क्यों खर्चें दाम ? । (२) कार्य निर्वाह होना । आवश्यकता पूरी होना । जैसे इतने से कुछ काम निकले तो ले जाओ । काम निकालना=(१) प्रयोजन साधना । मतलब मँठना । जैसे—वह चालाक आदमी है, अपना काम निकाल लेता है । (२) कार्यनिर्वाह करना । आवश्यकता पूरी करना । जैसे—तब तक इसी से काम निकालो फिर देखा जायगा । काम पडना=आवश्यकता होना । प्रयोजन पडना । दरकार होना । जैसे—जब काम पडेगा, तुमसे माँग लेगे । काम बनाना=अर्थ साधना ।

विशेष—यह रंग केमर फिटकरी और हस्तिगार से बनता है ।

२ कपूरी पान ।

काव्य^१—सञ्ज्ञा पुं० [तु० काव्य] बड़ी रिकारी ।

काव्य^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० काव्य, प्रा० कव्य] दे० 'काव्य' । उ०—दुष्ट
लागा असरार जुध, सुकवि चंद करि काव्य ।—पृ० रा०,
७१३८ ।

कावर^१—वि० [सं० कवर, प्रा० कवर] कई रंगों का । चितकवरा ।

कावर^२—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० खाबर] १ एक प्रकार की भूमि जिनमें कुछ
कुछ रेत मिली रहती है । दोमट । खाबर । उ०—कावा सुदर
रूप, छवि गेहूँवा जहँ ऊपज । बाला लगै अनूप हेत नैनन लह-
लही ।—रत्नहजारा (शब्द०) । २. एक प्रकार की जंगली मैना
कावला—सञ्ज्ञा पुं० [प्रं० केविल = रस्ता] एक बड़ा पेंच जिसमें डेवरी
कसी जाती है बालू ।—(लश०) ।

कावा—सञ्ज्ञा पुं० [प्रं० कावह] १ अरब के मक्का शहर का एक
स्थान जहाँ मुसलमान लोग हज करने जाते हैं । उ०—कावा
फिर काशी भया राम जो मया रहीम । मोटे चूने मैदा भया
बैठि कबीरा जीम ।—कबीर (शब्द०) ।

विशेष—यह मुसलमानों का तीर्थ इस कारण है कि यहाँ मुहम्मद
साहब रहते थे ।

२ चौकोर इमारत । ३ पाँसा

कावाडी^१—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कवार, कवाड़] १ लकड़हारा । लकड़ी
काटनेवाला । उ०—कावाड़ी नित काटता भीक कुहाडा भाड ।
—वांकी० शं०, भा० १, पृ० ३२ । २ गुदडी के सामान
जुटाने और बेचने वाला ।

काविज—वि० [प्रं० काविज] १ जिसका किसी वस्तु पर अधिकार
या कब्जा हो । अधिकार रखनेवाला । अधिकारकृत ।
अधिकारी । २ ऐसी वस्तु जिससे कब्ज हो ।

काविल^१—वि० [प्रं० काविल] [सञ्ज्ञा काविलीयत] १ योग्य ।
लायक । उ०—अर काविल खुरसान, कोपि पतिसाह बुलाये ।
—हमीर रा०, पृ० ६६ । १ विद्वान् । पंडित ।

यो०—काविलजिह्वा । काविलदीद । काविलतारीफ ।

काविज^२—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'काबुल' । उ०—कवन कज्ज
काविल गयव, कियव कवन सह दद ।—पृ० रासो, पृ० १०२ ।

काविदीद^१—वि० [हिं०] दे० 'काविलदीद' । उ०—जो कुछ पहले
दिलो को काविलदीद व दरकार है ।—प्रेमघन०, भा० २,
पृ० १३४ ।

काविलितकं^१—वि० [प्रं० काविल + हिं० तर्क] तर्क करने योग्य ।
बहस करने योग्य । जिसपर बहस या विवाद किया जाय । उ०
—हम कुछ हँवान और जगली नहीं कि हमारी मय चाल और
तर्क काविलितकं हों ।—प्रेमघन० भा० २, पृ० ६१ ।

काविलीयत—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्रं० काविलीयत] १ योग्यता । न्यायकत ।
२ पांडित्य । विद्वत्ता ।

काविलतारीफ—वि० [प्रं० काविल + तारीफ] प्रशस्तीय । प्रशंसा के
योग्य । रलाध्य ।

काविलेदाद—वि० [प्रं० काविल + दाद] प्रशस्तीय प्रशंसा

करने योग्य । दाद देने योग्य । उ०—मौलाना अरशद और
हजरत नयाज दोनों साहबों के मजामीन काविलेदाद हैं ।—
प्रेम० और गोर्खी पृ० ५२ ।

काविलेदीद—वि० [प्रं० काविल + दाद] देखने योग्य । दर्शनीय
[को०] ।

काविस—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कपिश] १ एक रंग जिससे मिट्टी के कच्चे
वर्तन रंगकर पकाए जाते हैं ।

विशेष—यह मोंड, मिट्टी, बबूल की पत्ती, वाँस की पत्ती, आम
की छाल और रेह को एक में घोलने से बनता है । इसने रंग
कर पकाने से वर्तन लाल हो जाते हैं और उनपर चमक आ
जाती है ।

२ एक प्रकार की मिट्टी जो लाल रंग की होती है और पानी
डालने में बड़ी लसदार हो जाती है ।

विशेष—यह मिट्टी काविस बनाने में काम आती है ।

कावी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० कावा] कुश्ती का एक पेंच ।

विशेष—इसमें खेलाडी विपक्षी के पीछे जाकर एक हाथ से उसके
जाँघिए का पिछोटा पकड़कर दूसरे हाथ से उसके एक पैर
की नली पकड़कर खींच लेता है ।

कावुक—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] १ कवूतरों का दरवा । २ काढे की गद्दी
जिसपर गेटी रखकर तट्टर में लगाते हैं ।

काबुल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुभा] [वि० काबुली] १ एक नदी जो
अफगानिस्तान से आकर अटक के पास सिंधु नदी में गिरती
है । २ अफगानिस्तान का एक नगर जो वहाँ की राजधानी
है । यह काबुल नदी पर है । ३ अफगानिस्तान का पुराना
नाम ।

मुहा०—काबुल में भी गधे होते हैं = अच्छी जगह में भी बुरे या
अयोग्य व्यक्ति होते हैं ।

काबुली—वि० [हिं० काबुल] काबुल का । काबुल में उत्पन्न ।

यो०—काबुली प्रनार । काबुली मेवा । काबुली पट्ट । काबुली
घोड़ा ।

काबुली चना—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० काबुली + चना] एक प्रकार का चना
जिसके दाने बड़े बड़े और रंग साफ होता है ।

काबुली बबूल—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० काबुली + बबूल] एक प्रकार का
बबूल जो सरो की तरह सीधा जाता है ।

विशेष—यह भारत के प्राय सभी स्थानों में पाया जाता है ।
बबई की ओर इसे राम बबूल कहते हैं । इसकी लकड़ी

साधारण बबूल की लकड़ी से कम मजबूत होती है ।
काबुली मटर—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० काबुली + मटर] एक प्रकार की
मटर जिसके दाने बड़े बड़े होते हैं ।

काबुली मस्तगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] एक बृक्ष का गोद जो लम्बी
मस्तगी के समान होता है और मस्तगी की जगह काम
आता है ।

विशेष—इसका पेड़ बबई प्रांत तथा उत्तरी भारत में भी होता
है । उसे बबई की मस्तगी भी कहते हैं ।

काबू—सञ्ज्ञा पुं० [तु० काबू] वग । अधिकार । इत्तिवार । जोर ।
बन । कस ।

कापुरुष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कायर । डरपोक । उ०—वर न सका कापुरुष जिसे तू, उसे व्यर्थ ही हर लाया ।—साकेत पृ० ३८६ ।

कापेय^१—वि० [सं०] [सं० बी० कापेया] कपि सवधी । वदर का । कापेय^२—सञ्ज्ञा पुं० १ शौनक ऋषि जो कपि ऋषि के पुत्र थे । २ कपिसमूह (को०) । ३ वदरघुङ्की । वदरभमकी (को०) ।

कापोत^१—वि० [सं०] १ भूरे मटमैले रंग का । कपोत वर्ण का । २ थोड़े घनवाला । बहुत कम आयवाला (को०) ।

कापोत^२—सञ्ज्ञा पुं० १ कवूतरो का झुंड । २ सुरमा । ३ सोडा । ४. क्षार । ५ वह जो रुखियों और परपराओं के अनुसार आचरण रखता हो (को०) ।

काप्य^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्राचीनकालिक गोत्र जिसके प्रवर्तक कपि नामक ऋषि थे । २ आगिरस । ३ पाप (को०) ।

काप्य^२—वि० कपि के गोत्र में उत्पन्न । काप्य गोत्र का ।

काप्यकर—वि० [सं०] अपने पापों पर प्रायश्चित्त करनेवाला (को०) ।

काप्यकार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अपने पापों को स्वीकार करना । २ अपने पापों पर प्रायश्चित्त करनेवाला व्यक्ति (को०) ।

काफ^१—सञ्ज्ञा पुं० [अ० काफ] अरबी और फारसी वर्णमाला का एक एक अक्षर ।

काफ^२—सञ्ज्ञा पुं० [अ० काफ] अरबी फारसी वर्णमाला का एक अक्षर ।

काफ^३—सञ्ज्ञा पुं० [काफ] १ अरबी वर्णमाला का एक अक्षर । अबजद में १०० की सूचक सख्या । २ कोहकाफ जो काला-सागर और कास्पियन सागर के मध्य में है । काकेशस पहाड़ । ३. एक कल्पित पहाड़ जिसके विषय में धारणा है कि वह दुनिया को क्षितिजविस्तार तक घेरे है ।

यौ०—काफ ता काफ या काफ से काफ तक = एक छोर से दूसरे छोर तक । भूमंडल भर में । सारी पृथ्वी में । काफ से दाल = (सम्भवत 'कोल ओ दलील' का संक्षेप) (१) वातचीत और तर्क । (२) सजावट । तडक भटक । (३) मूर्ख । बेवकूफ ।

काफ^४—सञ्ज्ञा पुं० [अ० काफ] असत्य । झूठ । उ०—सो काफिर जे बोले काफ ।—दादू, पृ० ३५४ ।

काफर—वि० [अ० काफिर] सं० 'काफिर' । उ०—सो काफर सो ही आपण बूझे अल्ला दुनिया भर ।—दक्खिनी०, पृ० १०८ ।

काफरो—वि० [हि० काफूरी] दे० 'काफूरी' । उ०—काफरी कपूर चरबी अरबी हैं अंगरेज आदि काठ तृन तुल प्रूस भूस है ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ८६५ ।

काफरो मिर्च—सञ्ज्ञा बी० [हि० काफिरी + मिर्च] एक प्रकार का मिर्चा जो चपटे सिर का गोल गोल और पीला होता है ।

काफल^१—पुं० [सं०] कायफल ।

काफल^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कटफल] छोटा लाल फल । उ०—काफल थे रंग रहे, फूल में थीं फल लिए खुदानों ।—अन्तिमा, पृ० १५ ।

काफा—सञ्ज्ञा पुं० [अ० काफह] संसार । प्रपंच । उ०—दरस बिषय कसब कय काफ ।—दरिया बा०, पृ० ४० ।

काफिया—सञ्ज्ञा पुं० [अ० काफिया] अत्यानुप्रास । तुक । सज ।

क्रि० प्र०—जोडना ।—मिलना ।—मिलाना ।—बँटना ।—बँटाना ।

यौ०—काफियावदी = तुकवदी । सज मिलाना । तुक जोडना ।

मुहा०—काफिया तग करना = बहुत हैरान करना । नाकों दम करना । दिक करना । काफिया तग रहना या होना = किसी काम से तग रहना या होना । नाको दम रहना या होना । उ०—तुम दिलगी करती हो और यहाँ काफिया तग हो रहा है ।—मान०, भा० ५, पृ० ५, काफिया मिलाना = (१) तुक मिलाना । (२) अपना साथी बनाना । किसी काम में शरीक करना ।

काफिर^१—वि० [अ० काफिर] १ मुसलमानों के अनुसार उनसे भिन्न धर्म को माननेवाला । मूर्तिपूजक । उ०—मूरख कारो क फिर आधी सिच्छित सबहि भयो री ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ४०५ । २ ईश्वर को न माननेवाला । निर्दय । निष्ठुर । वेददं । ४ दुष्ट । बुरा । ५ काफिर देश का रहनेवाला ।

काफिर^२—सञ्ज्ञा पुं० १ एक देश का नाम जो अफ्रीका में है और उस देश का निवासी । २ दरिया । नदी । ३ किसान । ४ प्रेमपात्र । मायूक । ५ अफ्रीका की एक हथेली जाति । ६ एक जाति जो अफगानिस्तान की सरहद पर रहती है ।

काफिरिस्तान—सञ्ज्ञा पुं० [अ० काफिर + फा० स्तान] अफगानिस्तान का वह प्रदेश जहाँ काफिर जाति रहती है ।

काफिरी^१—वि० [अ० काफिरी] १ काफिर संबंधी । २ काफिरी जैसा (को०) ।

काफिरी^२—सञ्ज्ञा बी० १. काफिरी की भापा । २ काफिरपन । काफिना—सञ्ज्ञा पुं० [अ० काफिलह] यात्रियों का झुंड जो तीर्थ, व्यापार आदि के लिये एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता है ।

यौ०—काफिला सालार = यात्रियों का नेता । काफिले का सरदार । साथपति ।

काफी^१—वि० [अ० काफी] किसी कार्य के लिये जितना आवश्यक हो उतना । मतलब भर के लिये । पर्याप्त । पुरा ।

क्रि० प्र०—होना ।

काफी^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] सपूर्ण जाति का एक राग जिसमें गांधार कोमल लगता है ।

विशेष—इसके गाने का समय १० दंड से १६ दंड तक है । काफी कान्हडा, काफी टोरी, काफी होली आदि इसके कई सयुक्त रूप हैं ।

काफी^३—सञ्ज्ञा बी० [अ० काफी] दे० 'कहवा' ।

काफूर—सञ्ज्ञा पुं० [फा० काफूर, तुलनीय सं० कपूर, हि० कपूर] [वि० काफूरी] कपूर ।

मुहा०—काफूर होना = चपत होना । रफूवकर होना । गायब होना । उड़ जाना । लुप्त होना । जैसे,—वह देखते ही देखते काफूर हो गया ।

काफूरी^१—वि० [हि० काफूर] १ काफूर का । १. काफूर के रंग का । काफूरी^२—सञ्ज्ञा पुं० १ एक प्रकार का बहुत हलका रंग जिसमें कुछ कुछ दूरेपत की झलक रहती है ।

कापना^७—कि० सं० [सं० कल्प, प्रा० कप्प] काटना । छेदना ।
उ०—ऊन वन सोनो कापियो, विणही लुका वक ।—वांकी०
भा० १, पृ० ५४ ।

कापर^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्पट = वृक्ष, प्रा० कप्पड़] कपड़ा । वस्त्र ।
उ०—(क) हस्ति घोर औ कापर, सब दीन्ह बड साज । भये
गृहस्थ सब लखपती, घर घर मानहु राज ।—जायसी(शब्द०) ।
(ख) काढहु कोरे कापर हो अरु काढौ घी की मौन ।
जाति पाँति पहिराइ के सब समदि छतीसौ पौन ।—सूर
(शब्द०) ।

कापर प्लेट—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] छापेखाने में काम आनेवाला तबे की
चदर का एक टुकड़ा जिसपर अक्षर खुदे होते हैं ।

विशेष—इसपर एक बार स्याही फेरी जाती है और फिर पोछ
ली जाती है जिससे खुदे अक्षरों में स्याही मरी रह जाती है
और शेष भाग साफ हो जाता है । फिर इसको प्रेस में रखकर
इसके ऊपर से कागज छापते हैं । जहाँ चित्र आदि बनाने होते
हैं वहाँ तेजाब आदि रासायनिक द्रव्यों से काम लिया जाता है ।

कापर प्लेट प्रेस—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का प्रेस या छापने की
कल जिसमें प्रायः दो रोलन होते हैं और जिसमें कापर प्लेट की
छपाई होती है ।

कापाल^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राचीन अस्त्र । उ०—वाकनास्त्र
औंचास्त्र हयग्रीवास्त्र सुहाये । ककालहु कापाल मुसल ये दोऊ
आये ।—पद्माकर (शब्द०) । २. बायविडग । ३. एक प्रकार
की सधि जिसे करनेवाले पक्ष एक दूसरे के समान स्वत्व
को स्वीकार करते हैं । ४. कापालिक (को०) । ५. एक प्रकार
का कोड़ (को०) ।

कापाल^२—वि० १. कपालसंबन्धी । २. मिश्रक का सा । मिश्रक-
संबन्धी (को०) ।

कापालिक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. शैव मत का तांत्रिक साधु । उ०—कहने
की आवश्यकता नहीं कि कोल, कापालिक आदि इन्हीं वज्रया-
नियों से निकले ।—इतिहास, पृ० १३ ।

विशेष—ये मनुष्य की खोपड़ी लिए रहते हैं, और मद्य मांसादि
खाते हैं । ये लोग शैव या शक्ति को बलि चढ़ाते हैं ।

२. तत्रसार के अनुसार वग देश की एक वर्णसरिता जाति । ३. एक
प्रकार का कोढ़ ।

विशेष—इसमें शरीर की त्वचा रुखी, कठोर, काली या लाल
होकर फट जाती है और दर्द करती है । यह कोढ़ विषम होता
है और बड़ी कठिनाई से अच्छा होता है ।

कापालिक^२—वि० १. कपालसंबन्धी, २. मिश्रकारी या मगन जैसा ।
मिश्रकारी या मगन संबन्धी (को०) ।

कापालिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल का एक वाजा जो मुँह
से बजाया जाता था ।

कापाली^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कापालिन] [स्त्री० कापालिनी] १. शिव ।
२. एक प्रकार का वर्णसरिता । ३. कपालों की माला । मुडमाल
(को०) । बायविडग (को०) ।

कापाली^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. मुडमाला । कपालों की माला । २.
चतुर स्त्री (को०) ।

कापिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कापिकी] बदर की शलवाला या
बदर के जैसा व्यवहार करनेवाला (को०) ।

कापिल^१—वि० [सं०] १. कपिल संबन्धी । कपिल का । २. भूरा ।

कापिल^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वह दार्शनिक सिद्धांत जिसे प्रवर्तक
कपिलाचार्य थे । साध्य दर्शन । २. कपिल के दर्शन का
अनुयायी । ३. भूरा रंग ।

कापिश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मद्य जो माधवी के फूलों से
बनता था ।

कापिशायन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. मदिरा । २. एक देवी का नाम (को०) ।

कापिशी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक देश जिसका नाम पाणिनि की
अष्टाध्यायी में आया है । यहाँ का मद्य प्रच्छा होता था ।

कापिशेय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] भूत प्रेत । पिशाच (को०) ।

कापिशेयी^१—वि० [सं०] काबुल की । अगूरी । उ०—कापिशेयी सुरा
को हमारे पाणिनि बाबा ने अपने सूत्रों में स्थान दिया
है ।—किन्नर०, पृ० ७२ ।

कापिशेयी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कपिश की बनी मदिरा (को०) ।

कापिसा^७—वि० [सं० कपिश अथवा कापिश] २०. 'कपिश' । उ०—
हरि मन कुमुद प्रमोदकर ब्रज प्रकासिनी वाम । जयति कापिसा ।
चंद्रिका, राधा जी की नाम ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ५ ।

कापी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० कापी] १. नकल । प्रतिरूप ।

क्रि० प्र०—उतारना ।—करना ।—होना ।

यी०—कापीराइट ।

२. लिखने की सादी पुस्तिका । ३. वह लिखा या छपा हुआ
मैटर जो छापेखाने में कपीज करने के लिये दिया जाय ।
जैसे,—कपीज के लिये कापी दीजिए, कपीजीटर वैसे हुए हैं ।
४. लीथो की छपाई में पीले कागज पर तैयार की हुई प्रतिलिपि
जो छापने के लिये पत्थर या जिंक प्लेट पर लगाई जाती है ।

कापी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० कॅप] घिर्नी । गडारी ।—(लश०) ।

मुहा०—कापी गोला या कापी का गोला = वह ढाँचा जिसमें
जहाज की चरखी की गडारी बँधाई जाती है ।

कापीनवीस—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कापी + फा० नवीस = लिखनेवाला] १.
वह जो किसी प्रकार की प्रतिलिपि प्रस्तुत करता हो ।
लेखक । २. लीथो के छापेखाने का वह कर्मचारी जो छापने
के लिये बहुत सुंदर अक्षरों में पीले कागज पर लेख आदि
प्रस्तुत करता है । कापी लिखनेवाला । (इसी को लिखी
हुई कापी पत्थर पर जमाकर छापी जाती है ।)

कापीराइट—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] कानून के अनुसार वह स्वत्व जो
ग्रंथकार या प्रकाशक को प्राप्त होता है ।

विशेष—इस नियम के अनुसार कोई दूसरा आदमी किसी ग्रंथ
को ग्रंथकर्ता या प्रकाशक की आज्ञा बिना नहीं छाप सकता ।

कापुरस^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कापुरस] २०. 'कापुरस' । उ०—कापुरसाँ
फिर कायगाँ, जावण लालच जयाँह ।—वांकी० ग्र०, भा० १,
पृ० १ ।

कानेजर—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० कानेजर] सोने की खान ।

कानो०—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कने० = समीप, पार्श्व] किनारा । उ०—
लूवां भडनह मागीयां, लुवां न कानों लेह । वांकी० ग्र०
भा० १, पृ० ३४ ।

कानों—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कदम, हि० कांवे] दे० 'कांदो' ।

यो०—पानीकानो ।

कान्यकुब्ज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ प्राचीन समय का एक प्रांत जो
वर्तमान समय के कन्नौज के आसपास था ।

विशेष—इस प्रदेश के सवध में रामायण में लिखा है कि राजर्षि
कुशनाभ को धृताची नाम की अम्बरा से १०० कन्याएँ हुई ।
उन कन्याओं के रूप को देख बायु उन पर मोहित हो
गया । कन्याओं ने जब बायु की बात अस्वीकार की, और
कहा कि पिता की आज्ञा के बिना हम लोग किसी को स्वीकार
नहीं कर सकती, तब बायु देवता ने कुपित होकर उन्हें कुवडी
कर दिया । पिता कन्याओं पर बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें
कापिल नगर के राजा ब्रह्मदत्ता (चुलीय ऋषि के पुत्र)
को व्याह दिया, जिनके स्पर्श से उनका कुवड़ापन जाता रहा ।
हैनसांग ने अपने विवरण में यह कहा और ही प्रकार से
लिखी है । उसने सो कन्याओं को कुसुमपुर के राजा ब्रह्मदत्ता
की कन्याएँ माना है और लिखा है कि महावृक्ष ऋषि ने
मोहित होकर उन कन्याओं में से एक को ब्रह्मदत्ता से माँगा ।
राजा सबसे छोटी कन्या को लेकर ऋषि के आश्रम पर गए ।
ऋषि ने कुपित होकर कहा—सबसे छोटी कन्या क्यों ? राजा
ने डरते डरते कहा कि और कोई कन्या राजी नहीं हुई ।
ऋषि ने शाप दिया कि तुम्हारी और सब कन्याएँ कुवडी हो
जायें । इन्हीं कुवडी कन्याओं के आख्यान से इस प्रदेश का
नाम कान्यकुब्ज पड़ा ।

२ कान्यकुब्ज देश का निवासी । ३ कान्यकुब्ज देश का ब्राह्मण
कनौजिया ।

कान्सल—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] दे० 'कासल' ।

कान्सोलेट—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] दे० 'दूतावास' ।

कान्स्टिट्यूशन—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] दे० 'कांस्टिट्यूशन' ।

कान्स्टेबल—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कान्स्टेबल] दे० 'कांस्टेबल' । उ०—
एकाएक कान्स्टेबल ने कोचमैन को पुकारकर बगी खड़ी
कराई । —श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३८८ ।

कान्स्पिरेसी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'कांस्पिरेसी' ।

कान्यजा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक सुगंधित पदार्थ [को०] ।

कान्हू—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृष्ण प्रा० कण्ह] श्रीकृष्ण । उ०—पूरी
घावो ऊपडे, जुध निरदार जन्म । कान्हू हरी साको कियो,
उजवालियो उत्तम ।—रा० छ०, पृ० १६८ ।

कान्हडा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कणाट] एक राग जो मेघ राग का पुत्र
समझा जाता है ।

विशेष—इसमें साठो स्वर लगते हैं । इसके गाने का समय रात
११ बजे से १५ बजे तक है ।

यो०—कान्हडा नट = एक सकर राग जो कान्हड़े और नट के

मिलाने से बनता है । यह रात के दूसरे पहर में गाया
जाता है ।

कान्हडी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कणाटो] एक रागिनी जो दीपक राग की
पत्नी समझी जाती है ।

कान्हम—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृष्ण + मृत् (= मृत्तिका, मिट्टी) प्रा० कण्ह
काला] मटो च प्रात की वह काली मटियार जमीन जो कपास
की पैदावार के लिये प्रसिद्ध है ।

कान्हमी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कान्हम] मटो च प्रात की कान्हम भूमि
में उत्पन्न कपास ।

कान्हरी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्ण] कोल्हू के कानर के छोर पर लगी
हुई बेड़ी और टेड़ी लकड़ी ।

विशेष—यह दोनों और निकली होती है और कोल्हू की कमर से
लगकर चारों ओर घूमती है ।

कान्हरी०^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृष्ण, प्रा० कण्ह] श्रीकृष्ण जी । उ०—देखी
कान्हरी की निठुराई । कवहू पाती हू न पठाई ।—(शब्द०) ।

कान्हरा०—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कान्हडा] दे० 'कान्हडा' । उ०—मुरली तान
कान्हरी गवत, सुनलें गी दै कान ।—नद० ग्र०, पृ० ३२७ ।

कान्हडा०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृष्ण प्रा० कण्ह] श्री कृष्ण ।

कान्हड्ड०—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कान्ह + ड (प्रत्यय०)] दे० 'कान्ह' उ०—
कान्हड्डे के रंग में सूरदास की चोच ।—पोद्दार ग्रंथि
पृ० १६७ ।

काप०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृप, प्रा० कप्प] काट । कटाव । उ०—
कालेजा विचि वाप परहर तू फाटइ नहीं ।—दोला०,
पृ० १८० ।

कापट—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कापटकी] धोखेबाज । धूर्त ।
कपटी [स्त्री०] ।

कापटक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ चापलूस । खुतामदी । २ विद्यार्थी [को०] ।

कापटिक^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कापटिकी] १ कपट करनेवाला ।
वेईमान । २ दुष्ट [को०] ।

कापाटिक^२—सञ्ज्ञा पुं० १. चापलूस २ विद्यार्थी । अध्ययनार्थी [को०] ।

कापट्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ छल । २ दुष्टता [को०] ।

कापड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कपट, प्रा० कप्पड] कपडा ।

यो०—कुल कापड = वेश और कपडा ।

कापडा०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कपटक प्रा० कप्पडम] दे० 'कपडा' ।

कापडी^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कापटिक, प्रा० कप्पडि] [स्त्री० कापडिन] १
एक जाति का नाम २ वजाज । वस्त्रविक्रेता । उ०—
और नागजी आपु कापडी को भेख करि वह लाठी हाथ में लै
के श्री गुसाईं जी के पास श्री गोकुल को गोधरा सो श्री गुसाईं
जी, के दर्शनार्थ चले ।—दो सो बावन, भा० १, पृ० ७ ।

कापडी०^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कांवर] एक तरह के धार्मिक यात्री
जो गगोत्तरी से कांवर पर जन लेकर चलते हैं और उस जल
को सब तीर्थों में चढ़ाते हैं । उ०—कान्डी सन्यासी तीर्थ
भ्रमाया । न पाया नृवाण पद का भँव ।—गोरख०, पृ० ३३ ।

कापथ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुमार्ग । बुरा रास्ता । १. उशीर ।
खस [को०] ।

काना^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्ण] 'ग्रा' की मात्रा जो किसी अक्षर के आगे लगाई जाती है और जिसका रूप (१) है जैसे,—वाला मे का (१), ।

काना^४—वि० [सं० कर्ण] जिसका कोई कोना या भाग निकला हो । तिरछा । टेढ़ा । जैसे,—कान्डे मे से टुकड़ा काटकर तुमने उसे काना कर दिया ।

काना^५—सञ्ज्ञा पुं० [हि० काना] पासे मे की विदी पो । जैसे,—तीन काने ।

कानाकानी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कर्णाकर्णिक] कानाफूसी । चर्चा । उ०—जब जाना कि लोगो मे यही बात कानाकानी हो रही है ।—सदल मित्र (शब्द०) ।

कानाकुतरा—[वि० हि० काना + कुतरना] कुतरा हुआ । काटा हुआ । खदित ।

कानागोसी(०)—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० काना + फा० गोश (कान) हि० ई (प्रत्य०)] कान मे बात कहना । कानाफूसी ।

कानाटीटो—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घाम ।

कानाफूसकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कानाफूसी] दे० 'कानाफूसी' ।

कानाफूसी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० काना + अनु० 'फुस' 'फुस'] । वह बात जो कान के पास जाकर धीरे से कही जाय । चुपके चुपके की बातचीत ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

कानावाती—सञ्ज्ञा पुं० हि० [कान + वात] १. चुपके चुपके कान मे बात कहना । कानाफूसी ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

२ वच्चा की हँसाने का एक ढंग, जिसमे उनके कान मे 'काना-वाती कानावाती कू' कहकर 'कू' शब्द पर जोर देते हैं । जिसपर वच्चा हँस पड़ता है ।

कानवेज—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कैनवस] गवरुन या सीकिया की तरह का एक कपड़ा ।

कानि—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] १. लोकलज्जा । मर्यादा का ध्यान । उ०—(क) तेरे सुभाव सुशील अलौकुलनारिन को कुनकानि सिखाई ।—मतिराम (शब्द०) । (ख) मैं मरजीवा समुंद का पैठा सप्त पताल । लाज कानि कुल मेटिके गहि लै निकला लाल ।—कबीर (शब्द०) । २. लिहाज । दबाव । सकोच । उ०—(क) घोरि पनच मृकुटी घनुप, सुरकि भाल भरि तानि ।—विहारी (शब्द०) । (ख) अब काहू की कानि न करिहौं । आज प्राण कपटी के हरिहौं ।—लल्लू (शब्द०) ।

कानिद—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] वाँस की कमची जिससे खराद पर चढ़ते समय हारे पन्ने आदि रत्नों को दबाते हैं ।

कानिष्ठक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सबसे छोटी उँगली । छिगुनी [क्ति०] ।

कानिष्ठक^२—वि० उन्न मे सबसे छोटा [क्ति०] ।

कानी^१—वि० स्त्री० [हि० काना] एक माँबखाली । जिस (स्त्री) की एक माँब फूट गई हो ।

यौ०—कानी कोड़ी = फूटी कोड़ी । छेदवाली कोड़ी । भंभी कोड़ी ।

मुहा०—कानी कोड़ी न होना = बिलकुल निर्धन या फटेहाल होना ।

कानी^२—वि० स्त्री० [सं० कनीनी] सबसे छोटी उँगली । जैसे,—कानी उँगली ।

यौ०—कानी उँगली = सबसे छोटी उँगली । छिगुनी ।

कानीन^१—वि० [सं०] वरारो कन्या से उत्पन्न । कन्याजात ।

कानीन^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह पुत्र जो किसी कन्या को कुमारी अवस्था मे पैदा हुआ हो ।

विशेष—ऐसा पुत्र उस पुरुष का कानीन पुत्र कहलाता है, जिसको वह कन्या व्याही जाय । व्यास और कर्ण ऐसे ही पुत्र थे ।

कानीहाउस—सञ्ज्ञा पुं० [अंग० काइन वा कनिन + हाउस] वह स्थान जहाँ इधर उधर घूमनेवाले चौपाए पकड़कर बंद कर दिए जाते हैं । कोजी हाउस ।

कानीहीद—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कानिहाउस] दे० 'कानीहाउस' ।

कानूगोय(०)—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कानून + फा० गो] दे० 'कानूनगो' ।

उ०—कानूगोय लोभ के खोटे छल बल पाही झूठे ।—चरण० बानी, भा० २, पृ० १२४ ।

कानून—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कानून] [वि० कानूनी] १. राज्य में शांति रखने का नियम । राजनियम । आईन । विधि ।

यौ०—कानूनवाँ ।—कानूनगो ।

मुहा०—कानून छाँटना = कानूनी बहस करना । कुतर्क करना । हुज्जत करना ।

२. एक रूमी बाजा ज़ा पटरियों पर तार लगाकर बनाया जाता है कानूनगो—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कानून + फा० गो] माल का एक कर्मचारी जो पटवारियों के उन कागजों की जाँच करता है जिनमे खेतों और उनक लगान आदि का हिसाब किताब रहता है ।

विशेष—कानूनगो दो प्रकार के होते हैं, गिरदावर और रजिस्ट्रार । गिरदावर कानूनगो का काम है घूमघूमकर पटवारियों के कागजों की जाँच करना, और रजिस्ट्रार कानूनगो क दफ्तर मे पटवारियों के एक साल से अधिक पुरान कागज दाखिल होते और रखे जाते हैं ।

कानूगो(०)—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कानूनगोय] दे० 'कानूनगो' । उ०—राजरूप कानूगो लारा । रसमयी मिलिया राजा रा ।—रा० ह०, पृ० ३२५ ।

कानूनदा—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कानून + फा० दा] १. कानून जानने-वाला । विद्वान् । २. कानून छाँटनेवाला । हुज्जत करनेवाला । कुतर्की ।

कानूनन्—क्रि० वि० [अ० कानूनन्] कानून को रू उ । कानून के अनुसार । जैसे,—कानूनन् तुम्हारा उस मकान पर कोई हक नहीं है ।

कानूनिया—वि० [अ० कानून + हि० इया (प्रत्य०)] १. कानून जाननेवाला । २. तर्कार करनेवाला । हुज्जती ।

कानूनी—वि० [अ० कानून + हि० ई (प्रत्य०)] १ जो कानून जाने । २. कानून संबंधी । बदालती । ३. जो कानून के मुताबिक है । नियमानुसृत । ४. तर्कार करनेवाला । हुज्जती तर्कार ।

जाना । (किसी का किसी के) कान लगना = चुपके चुपके बात कहना । गुप्त रीति से मंत्रणा देना । जैसे—जब से बुरे लोग कान लगने लगे, तभी से उनकी यह दशा हुई है । उ०—आजहि कालि सुनी हम तो, वह कूबरिया अब कान लगी है । —नट०, पृ० ४१ । कान लगाना = ध्यान देना । कान न हिलाना = बिना विरोध किए कोई बात मान लेना । चूँ न करना । दम न मारना । कान होना = चेत होना । खबर होना । ख्याल होना । जैसे,—जबतक उन्होंने हानि न उठाई तबतक उन्हें कान न हुए । कानाफूसी करना = (१) चुपके चुपके कान में बात कहना । कानावाती करना = चुपके चुपके कान में बात कहना । (२) वच्चों को हँसाने का एक ढंग, जिसमें वच्चे के कान में 'कानावाती कानावाती कू' कहकर 'कू' शब्द को अधिक जोर से कहते हैं जिससे वच्चा हँस देता है । कानो पर हाथ धरना या रखना = (१) विलकुल इन्कार करना । किसी बात से अपनी अनभिज्ञता प्रकट करना । किसी बात से अपना लगाव अस्वीकार करना । जैसे,—उनसे इस विषय में कई बार पूछा गया, पर वे कानो पर हाथ रखते हैं । (२) किसी बात के करने से एकवारगी इन्कार करना । जैसे,—हमने उनसे कई बार ऐसा करने को कहा, पर वे कानो पर हाथ रखते हैं । कानो में उंगली देना = किसी बात से विरक्त या उदासीन होकर उसकी चर्चा बचाना । किसी बात को न सुनने का प्रयत्न करना । उ०—कुल कानि जो अपनी राखी चही दै रहीं अँगुरी दोउ कानन मे ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३६७ । कानों में ठेंठियाँ पड़ी होना = कान बंद होना । न सुनना । उ०—लाडो, ए लाडो, बी मुँह से जरी आवाज दो । सुनती हो और बोलती नहीं । जैसे, कानों में ठेंठियाँ पड़ी हैं ।—सर०, पृ० ३१ । कानों सुनना न आँखों देखना = पूर्णतः अज्ञात । जिसके विषय में लेशमात्र जानकारी न हो । उ०—कानो सुनी न आँखों देखी ।—कबीर सा०, पृ० ५४५ । कानोंकान खबर न होना = जरा भी खबर न होना । कुछ भी सुनने में न आना । जैसे,—देखो, इस काम को ऐसे ढंग से करना कि किसी को कानोकान खबर न होने पावे । उ०—मज्जू को कानोकान खबर न थी ।—गोदान, पृ० २७४ । विशेष—जब 'कान' शब्द से योगिक शब्द बनाए जाते हैं, तब इसका रूप 'कन' हो जाता है । जैसे,—कनखचूरा, कनखोदनी, कनखेदन, कनमैलिया, कनसलाई । २ सुनने की शक्ति । श्रवणशक्ति । ३ लकड़ी का वह टुकड़ा जो हल के अगले भाग में बाँध दिया जाता है और जिससे जोती हुई कूँड़ कुछ अधिक चौड़ी होती है । विशेष—गेहूँ या चना बोते समय यह टुकड़ा बाँधा जाता है । इसे क ना भा कहते हैं । ४ सोने का एक गहना जो कान में पहना जाता है । ५ चारपाई का टेढ़ापन । कनेव । ६ किसी वस्तु का ऐसा निकषा हुआ कोना जो चूँ जान पड़े । ७ तराजू का पसगा । ८ तोप या बंदूक का वह स्थान जहाँ रजक रखी जाती है और वत्ती दी जाती है । पिघाली । रजकदानी । उ०—जोगी एक मढ़ी में

सोवै । दारु पियँ मस्त नहि होवै । जवै बालका कान में लागै । जोगी छोड़ मढ़ी को भागै ।—(पहेली) । कान^२—सच्चा स्त्री० [हि० कानि] १ लोकरज्जा । २ मर्यादा । इज्जत । ३ 'कानि' । उ०—भीख के दिन दूने दान, कमल जल कुल की कान के ।—वेला, पृ० १८ । कान^३—सच्चा पुं० [सं० कर्ण] नाव की पतवार जिसका आकार प्रायः कान सा होता है । उ०—कान समुद्र घँसि लोन्हँसि भा पाछे सब कोई ।—जायसी (शब्द०) । कान^४—सच्चा पुं० [सं० कृष्ण, प्रा० कण्ह (५) कान्ह] कान्ह । कृष्ण । उ०—तुम कहा करो कान, काम तैं अटक रहे, तुमको न दोष सो तो आपनोई भाग है ।—मति० प्र०, पृ० २८० । कान^५—सच्चा स्त्री० [फा० तुलनीय सं० खनि] खान । खनि । कानक^१—वि० [सं०] कनक सवधी । सोने का । सोने में सवधित(को०) । कानक^२—सच्चा पुं० जमालगोटा । कानकी—सच्चा पुं० [देश०] कोरुण देश का एक बड़ा पेड़ । विशेष—इसकी लकड़ी मकानों में लगती है । इसके बीजों से एक प्रकार का पीला तेन निकाला जाता है जो दवा तथा जानने के काम में आता है । इसके फल जायफल के समान होते हैं । कानकुब्ज(५)—सच्चा पुं० [सं० कान्यकुब्ज] दे० 'कान्यकुब्ज' । कानडा—वि० [सं० काण] १. एक आँख का काना । २ सात समुद्र के खेल का वह घर जो चम्पों रानी के बाद आता है । कानन—सच्चा पुं० [सं०] १ जंगल । वन । २. घर । ३ वाटिका । वाग (को०) । ४ ब्रह्मा का मुख (को०) । यौ०—काननाग्नि = दावानल । जगली आग जो डालो आदि की रगड़ से लग जाती है । काननौका = (१) जंगलवासी । (२) बंदर । काननारि—सच्चा पुं० [सं०] शमी वृक्ष (को०) । कानफरेंस—सच्चा स्त्री० [अ० कानफरेंस] १ सभा । समिति । २. जन-समूह जो किसी बड़ी आवश्यक बात के निश्चय के लिये एकत्र हो । कानवेंट—सच्चा पुं० [अ०] १ ईसाई सन्यासियों का सभ । २ ईसाइयों का मठ या धर्मशाला । ३ ईसाइयो अथवा पादरियों द्वारा संचालित शिक्षासंस्था । ४ ईसाइयो द्वारा संचालित ऐसी बाल पाठशाला जहाँ अग्रजी भाषा पढ़ने बोलने आदि पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाता है । कानस्टेबिल—सच्चा पुं० [अ० कास्टेबल] पुलिस का सिपाही । काना^१—वि० [सं० काण] [खं० कानी] जिसकी एक आँख फूट गई हो । जिमें एक आँख न हो । एकाक्ष । एक आँख का । उ०—काने खोरे कुवरे कुटिन कुचाही जानि ।—मानस, २।१४ । मुहा—काने का यागे पड़ना या काने का मिलना = किसी के रास्ते में काने आदमी का दिख जाना या दिखाई पड़ना । विशेष—यह अपशकुन माना जाता है । काने को काना कहना = बुरे को बुरा कहना । उ०—बात सब है, जल मरेगा वह मगर, लोग काना को अगर काना कह ।—चोखे०, पृ० २७ । काना^२—वि० [सं० कर्णह] (फन आदि) चिनहा कुछ भाग कीड़ों ने खा लिया हो । कन्ना । जैसे,—काना मटा ।

हर तरह की बात को मान लेनेवाला । झूठी या निराधार बात को मान लेनेवाला । उ०—जो करे डाह दे विपत हम पर । पत उतारें न कान के पतले ।—चुमते०, पृ० १० । कान की ठंडी या मेल निकलवाना = (१) कान साफ कराना । (२) सुनने के योग्य होना । सुनने में समर्थ होना । (अपने) कान खड़े करना = (१) (आप) चौकन्ना होना । सचेत होना । जैसे,—वह कुद खो चुके, अब तो कान खड़े करो । (दुसरे के) कान खड़े करना = सचेत करना । होशियार कर देना । चेताना । सजग कर देना । भूल बता देना । कान गरम करना या कर देना = कान उमड़ना । कान झनाना = अधिक शब्द सुनने से कान का सुन्न हो जाना । जैसे,—इस भाँझ की आवाज से तो कान भन्ना गए । कान पूँछ दबाकर चला जाना = चुपचाप चला जाना । बिना ची चपड़ किए खिसक जाना । बिना विरोध किए टल जाना । कान छेदना = वाली पहनने के लिये कान की लो में छेद करना । (यह वच्चों का एक मन्कार है ।) कान दवाना = विरोध न करना । दवाना । सहमत । जैसे,—उनसे लोग कान दवाते हैं । उ०—दो चार आदमियों ने पकानों और छतों से ढेले फेंके मगर यह कान दबाए चले ही गए ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ८६ । (किसी बात पर) कान देना = ध्यान देना । ध्यान से सुनना । जैसे,—हम ऐसी बातों पर कान नहीं देते । उ०—कहा दीजिए कान ध्यान प्यारी की बातन । कहा लीजिए स्वाद अघर के अमृत अघातन ।—प्रज्ञ० ग्र०, पृ० ५६५ । (किसी बात पर) कान धरना = ध्यान से सुनना । (किसी बात से) कान धरना = (किसी बात को) फिर न करने की प्रतिज्ञा करना । वाज आना । कान धरना = दे० 'कान उमड़ना' । कान न दिया जाना = कर्कश या कष्टपूर्ण शब्द सुनने की क्षमता न रहना । न सुना जाना । सुनने में कष्ट होना । जैसे,—(क) ठठेरों के बाजार में कान नहीं दिया जाता । (ख) अपनी माता के लिये वच्चा ऐसा रोता है कि कान नहीं दिया जाता । कान पक जाना = ऊब जाना । अनिच्छा होना । उ०—सुनते सुनते मेरा कान पक गया ।—किन्नर०, पृ० ७६ । कान पकड़ना = (१) कान मलकर दड देना । कान उमड़ना । (२) अपनी भूल या छोट्टाई स्वीकार करना । किसी को अपना गुरु मान लेना । (३) किसी बात को न करने की प्रतिज्ञा करना । तोबा करना । जैसे,—आज से कान पकड़ते हैं, ऐसा काम कभी न करेंगे । (किसी बात से) कान पकड़ना = पछतावे के साथ किसी बात के फिर न करने की प्रतिज्ञा करना । जैसे,—अब हम किसी की जमानत करने से कान पकड़ते हैं । कान पकड़ी लौंडी = अत्यन्त आज्ञाकारिणी दासी । कान पकड़कर उठना बैठना = एक प्रकार का दड जो प्रायः लड़कों को दिया जाता है । कान पकड़कर निकाल देना = मनादर के साथ किसी स्थान से बाहर कर देना । बेइज्जती से हटा देना । कान पड़ना, कान में पड़ना = सुनने में आना । सुनाई पड़ना । कान पर जूँ न रेंगना = कुछ भी परवा न होना । कुछ भी ध्यान न होना । कुछ भी चेत न होना ।

वेखवर रहना । जैसे,—इतना नव हो गया पर तुम्हारे कान पर जूँ न रेंगी । कान पर हाथ धरकर सुनना = ध्यान से सुनना । उ०—अगर इजाजत हो तो अर्ज हाल कहें मगर कान पर हाथ धरकर सुनिए ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १२१ । कान पार कर सुनना = ध्यान से या एकाग्र होकर सुनना । उ०—भौर तू कहीं न मानी बात । 'कानन पारि न सुनत याहि ते तेको वेन हमारो ।—ठेठ०, पृ० १५ । कान पूँछ फटकारना = सजग होना । सावधान होना । चेतन्य होना । तुरंत के आघात से स्वयं या तत्ता से चेतन्य होना । जैसे—इतना सुनते ही वे कान पूँछ फटकार कर खड़े हुए । कान फटफटाना = कुनो का कान हिलाना जिससे फट फट का शब्द होता है । (यात्रा आदि में यह अशुभ समझा जाता है ।) कान फूँकवाना = गुस्मन लेना । दीक्षा लेना । कान फुकाना = दे० 'कान फुकवाना' । उ०—जिहा एक नगर में आया, तासो राजा कान फुकाया ।—करीर सा०, पृ० ५२६ । कान फूँकना = (१) दीक्षा देना । चेता बनाना । गुस्मन देना । (२) दे० कान भरना । कान फटना या कान का परदा फटना = कड़े शब्द सुनने सुनने कान में पीड़ा होना या जी ऊबना । जैसे,—ताशो को आवाज से तो कान फट गए हैं । कान फूटना = दे० 'कान फटना या कान का परदा फटना' । उ०—गरजनि तरजनि अनु अनु माँती । फुटे कान अरु फाटे छाती ।—नंद० ग्र०, पृ० १६१ । कान फोड़ना = शोर गुल करके कानों को कष्ट पहुँचाना । कान बजना = कान में वायु के कारण सय सय शब्द होना । कान बहना = कान से पौत्र निकलना । कान बौंनना = कान छेदना । कान चपडियाना या चुचियाना = कानों को पीछे की ओर दबाकर काटने या चोट करने की तैयारी करना । (यह मुझ बदरों और घोड़ों में बहुधा देखने में आती है ।) कान भर जाना = सुनते सुनते जी ऊब जाना । जैसे,—उसकी तारीफ सुनते सुनते तो कान भर गए । कान भरना = किसी के विरुद्ध किसी के मन में कोई बात बठा देना । पहले से किसी के विषय में किसी का खयाल खराब करना । जैसे,—लोगों ने पहले ही मेरे उनके कान भर दिए थे, इसलिये हमारा सब कहना सुनना व्यर्थ हुआ । उ०—क्यों मला आप भर गए साहब, कान ही तो भरे किसी ने थे,—बोखे०, पृ० ५३ । कान मलना = दे० 'कान उमड़ना' । कान में काँड़ी डालना = दास या गुलाम बनाना । कान में तेल डालना = बहुरा बन जाना । वेखवर हो जाना । ध्यान न देना । उ०—कान में तेल डाल लेने से, कान का खोल डालना अच्छा ।—बोखे०, पृ० २८ । कान में तेल डाल बैठना = बहुरा बन जाना । बात सुनकर भी उस ओर कुछ ध्यान न देना । वेखवर रहना । जैसे,—लोग चारों ओर हथिया माँग रहे ह और वह कान में तेल डाले बैठा है । (कोई बात) कान में डाल देना = सुना देना । कान में पारा भरना = कान में पारा भरने का दड देना । (प्राचीन काँच में अपराधियों के कान में सीसा या पारा भरा जाता था । (किसी को) कान लगना = कान के पीछे धाव हो

कादवरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कादम्बरी] १ कोकिल । कोयल । २ सरस्वती । बाणी ३. मदिरा । शराव । उ०—मधुर केलि कादवरी छके सौवरे छैन ।—घनानन्द, पृ० २७३ । ४ मँना । ५ बाणभट्ट की लिखी एक आख्यायिका जिसकी नायिका का यही नाम है । ६ गड्ढो में एकत्र बरसात का पानी (को०) । कादविनि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कादम्बिनी] दे० 'कादविनी' । उ०—निरवधि रस की रासि रसीली । हित कादविनि नित बरसीली ।—घनानन्द, पृ० १८५ । कादविनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कादम्बिनी] १. मेघमाला । घटा । २ मेघ राग की एक रागिनी । कादम०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कदम, प्रा० कदम] दे० 'कदम' । उ०—वसु मास कादम मचो प्रसन्न परवत वणें, रुधिर मिल सरतपत हुमो रातो ।—रघु०, पृ० २० । कादर—वि० [सं० कातर] १ डरपोक । भीरु । वुजदिल । २ व्याकुल । अधीर । उ०—(क) लाल विनु कैसे लाज चादर रहैगी आज कादर करत मोहि वादर नए नए ।—श्रीपति (शब्द०) । (ख) क्षण इक मन में शूरि कहोई । क्षण इक में कादर हो सोई ।—वनुराग, पृ० ४१ । कादरियत०—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० कदरत] कुदरत करने वाला । उ०—कादरियत के आलम में किये च कुदरत नई, जो खुदा कहवाय ।—दक्खिनी, पृ० ४११ । कादवां—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कदम, प्रा० कदम, (उ०) कादो] दे० 'कादो' । उ०—मानि कादव लपटाय रे, लें कि तनिक गुन जाए रे ।—विद्याति, पृ० ४६५ । कादा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० क = जल + आद्रा = भीगी हुई] लकड़ी की पटरी जो जहाज की शहतीरो और कडियों के नीचे उन्हीं जकडे रहने के लिए जड़ी रहती है । कादिम०—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कादम] दे० 'कदम' । उ०—नदियां नाला नीभरण, पावस चढ़िया पूर । करहुउ कादिम तिलकस्यई पथी पूगल दूर ।—ढोला०, पृ० २५६ । कादिर—वि० [अ० कादिर] १ ताकतवर । शक्तिशाली । २ सामर्थ्यवान । काबूदार । उ०—वीर रघुवीर पैगवर खोदा मेरे, कादिर करीम काजी माया मत खोई है ।—मल्लक०, पृ० २८ । कादिरकार—वि० [अ० कादिर + का० कार (प्रत्य०)] शक्तिशाली बनानेवाला । सामर्थ्य प्रदान करनेवाला । उ०—जिदगानी मुरद वाशद, कुजे कादिरकार ।—दादू०, पृ० ५०७ । कादिरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० कादिर] एक प्रकार की चोली जिसे वेगमें पहनती हैं । सीनाबंद । उ०—नीमा जामा तिलक लवादा कुस्ती दगला दुनही, नीमस्तीन कादिरी चोला भगला ।—सूदन (शब्द०) । कादी०—सञ्ज्ञा पुं० [अ० काजी] दे० 'काजी' । उ०—सुहान के फरमाने सगो राह सम सम सेल पलु, कादी पोजा मपदूम लर ।—कीर्ति०, पृ० ८० । कादो०—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कादम, कावव] दे० 'कादो' । उ०—परवत बूडे भूमि नहि नीजे कादो वकुलहि खाई ।—म० दरिया, पृ० ११२ ।

काद्रव—वि० [सं०] गहरे पीले रंग का (को०) ।

काद्रवेय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शेष, अनन, वामुकी, तक्ष आदि सर्प जो कद्रु से उत्पन्न माने जाते हैं ।

कान^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्ण, प्रा० कण्ण] वह इंद्रिय जिससे शब्द का ज्ञान होता है । सुनने की इंद्रिय । श्रवण । श्रुति । श्रोत्र ।

विशेष—मनुष्य तथा और दूसरे माता का दूध पीनेवाले जीवों के कान के तीन विभाग होते हैं । (क) बाहरी, अर्थात् सूप की तरह निकला हुआ भाग और बाहरी छेद । (ख) बीच का भाग जो बाहरी छेद के आगे पडनेवाली झिल्ली या परदे के भीतर होता है और जिसमें छोटी छोटी बहुत सी हड्डियाँ फँसी होती हैं और जिसमें एक नन्ही नाक के छेदों या तालू के ऊपर-वाली थैली तक गई होती है । (ग) भीतरी या भूलभुलैया जो श्रवण शक्ति का प्रधान साधक है और जिसमें शब्दवाहक तनुओं के छोर रहते हैं । इनमें एक थैली होती है जो चक्करदार हड्डियों के बीच में जमी रहती है । इन चक्करदार थैलियों के भीतर तथा बाहर एक प्रकार का चप या रस रहता है । शब्दों की जो लहरें मध्यम भाग के परदे की झिल्ली से टकराती हैं, वे अस्थितनुओं द्वारा भूलभुलैया में पहुँचती हैं । दूध पीनेवालों से निम्न श्रेणी के रोदवाले जीवों में कान की बनावट कुछ सादी हो जाती है, उसके ऊपर का निकला हुआ भाग नहीं रहता, अस्थितनु भी कम रहते हैं । बिना रोदवाले कीटों को भी एक प्रकार का कान होता है ।

मुहा०—कान उठाना = (१) सुनने के लिये तैयार होना । आहट देना । अकनना । (२) चौकन्ना होना । सचेत या सजग होना । होशियार होना । कान उड जाना = (१) लगातार देर तक गभीर या बड़ा शब्द सुनते सुनते कान में पीड़ा और चित्त में घबराहट होना । (२) कान का कट जाना । कान उडा देना = (१) हल्ला गुल्ला करके कान को पीडा पहुँचाना और व्याकुल करना । (२) कान काट लेना । कान उड़ाना = ध्यान न देना । इस कान से सुनना उस कान से उडा देना । उ०—अर्थ सुनी सब कान उडाई ।—कबीर सा०, पृ० ५८२ । कान उमेठना = (१) दंड देने के हेतु किसी का कान मरोड़ देना । जैसे,—इस लडके का कान तो उमेठो । (२) दंड आदि द्वारा गहरी चेतावनी देना । (३) कोई काम न करने की कड़ी प्रतिज्ञा करना । जैसे,—लो भाई, कान उमेठता हूँ, अब ऐसा कभी न करूँगा । कान ऊँचे करना = दे० 'कान उठाना' । कान ऐँठना = दे० कान उमेठना । कान फतरना = दे० 'कान काटना' । कान करना = सुनना । ध्यान देना । उ०—बालक वचन करिय नहि काना ।—तुलसी (शब्द०) । कान काटना = मात करना । बढकर होना । उ०—बादशाह अकबर उस वक्त कुल तेरह बरस चार महीने का लडका था, लेकिन होशियारी और जबर्दमी में बडे बडे जवानों के कान काटता था ।—शिवप्रसाद (शब्द०) । कान का कच्चा = शीघ्रविश्वासी । जो किसी के कहे पर बिना सोचे समझे विश्वास कर ले । जो दूसरों के बहवने में आ जाय । उ०—क्यों भला हम बात कच्ची सुनें । हैं न वच्चे न कान के कच्चे ।—चुभते ०, पृ० १७ । कान का पतला =

कातरि^१—सञ्ज्ञा स्त्री [हि० कानर] दे० 'कतरी' । उ०—कातरि
केतर गिरत बेल चौकत उछरत दोउ ।—प्रेमघन०, भा० १,
पृ० ४४ ।

कातरौक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] दुःख या संकट में कही जानेवाली
दीनता भरी बातें ।

कातर्य—सञ्ज्ञा पुं [सं०] कातरता ।

कातल—सञ्ज्ञा पुं [सं०] एक बड़ी मछली [को०] ।

काता—सञ्ज्ञा पुं [हि० कातना] काता हुआ सूत । ताना । डोरा ।
यौ—बुढ़िया का काता=एक प्रकार की मिटाई जो बहुत महीन
सूत की तरह होती है ।

काता^२—सञ्ज्ञा पुं [सं० कर्तृ, कर्ता, प्रा० कत्ता] बाँस काटने या
छीलने की छुरी ।

कातावारी—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० वत (काटना, बीच से दो भागों में
बाँटना) + हि० वारी (वाली)] वह पतली काँडी जो जहाज
पर बेंड़ी धरनों के बीच लगी रहती है और जिसके ऊपर
तल्ला जड़ा जाता है ।

काति—वि० [सं०] इच्छुक [को०] ।

कातिक^१—सञ्ज्ञा पुं [सं० कातिक] वह महीना जो शरद ऋतु में बवार
के बाद पड़ता है । कार्तिक ।

कातिक^२—सञ्ज्ञा पुं [हि०] हरे रंग का एक प्रकार का बहुत
बड़ा तोता ।

कातिगा—सञ्ज्ञा पुं [सं० कातिक] दे० 'कातिक' । उ०—सबत
अठारह इयावन वरख मास, कातिग उन्गारी तिनि पचमी
सुहाई है ।—ब्रज ग्र०, पृ० १३७ ।

कातिकी^१—वि० [सं० कातिकी] दे० 'कातिकी' ।

कातिकी^२—सञ्ज्ञा पुं [सं० कातिक] दे० 'कातिक' । उ०—मैं
कातिकी सरद ससि उवा । बहुरि गंगन रवि चाहै छुवा ।—
जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३४६ ।

कातिकक^१—सञ्ज्ञा पुं [सं० कातिक] दे० 'कातिक' । उ०—कातिकक
माह जसो न्हाउ । तजि अन्न फन भख पाउ ।—प०
रा०, पृ० ११ ।

कातिव—सञ्ज्ञा पुं [सं०] निखनेवाला । लेखक ।

कातिल^१—वि० अ० [कातिल] १ प्राण लेनेवाला । घातक ।

कातिल^२—सञ्ज्ञा पुं कत्ल या वध करनेवाला मनुष्य । हत्यारा ।

काती—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० कर्त्री प्रा० कर्त्री] १ कैंची । २ मुनारी की
कतरनी । ३ चाकू । छुरी । ४ छोटी तलवार । कत्ती ।
उ०—यह पाती न छाती में काती घरी, हमारी मुनि बुद्धि गरी
सो गरी ।—नट०, पृ० २६ ।

कातीय^१—वि० [सं०] कन ऋषि संबंधी । कात्यायन संबंधी ।

कातीय^२—सञ्ज्ञा पुं कात्यायन का छात्र ।

कातु—सञ्ज्ञा पुं [सं०] कुआ [को०] ।

कात्य^१—वि० [सं०] कत ऋषि संबंधी ।

कात्य^२—सञ्ज्ञा पुं १ कन ऋषि के गोत्रज ऋषि २. कात्यायन ।

कात्याइनी^१—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० 'कात्यायनी'] दे० कात्यायनी^२ ।

उ०—मवा भवाना, मूडा, मूडानी । काली कात्याइनी, हिमानी ।
—नंद० ग्र०, पृ० २२४ ।

कात्यायन—सञ्ज्ञा पुं [सं०] [स्त्री० कात्यायनी] १ कत ऋषि के
गोत्र में उत्पन्न ऋषि जिसमें तीन प्रसिद्ध हैं—एक विश्वामित्र के
वंशज, दूसरे गोमिल के पुत्र और तीसरे सोमदत्त के पुत्र
वरहचि कात्यायन ।

विशेष—विश्वामित्र वंशीय प्राचीन कात्यायन के बनाए हुए
'श्रौतसूत्र' और 'प्रतिहारसूत्र' हैं । दूसरे गोमिलपुत्र कात्यायन
हैं जिनके बनाए 'गृह्यसूत्र' और 'छंदोपरिगिष्ट' या 'मर्मप्रदीप'
हैं । तीसरे वरहचि कात्यायन हैं जो पाणिनि सूत्रों के वार्तिक-
ककार प्रसिद्ध हैं ।

२ एक बौद्ध आचार्य ।

विशेष—इन्होंने 'अभिधर्म-ज्ञान-ग्रन्थान' नामक ग्रंथ की रचना की
है । नेपाली बौद्ध ग्रंथों में पना लगता है कि ये बुद्ध से ४५ वर्ष
पछे उत्पन्न हुए थे ।

३ पानी बगाकरण के कर्ता एक बौद्ध आचार्य जिन्हें पानी ग्रंथों
में 'अच्छायन' कहते हैं ।

कात्यायनी—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] १ कत गोत्र में उत्पन्न स्त्री । २.
कात्यायन ऋषि की पत्नी । ३. कपाय वस्त्र धारण करनेवाली
छत्रेड विधवा स्त्री । ४. कल्पमेव से कन गोत्र में उत्पन्न एक
दुर्गा । ५. याज्ञवल्क्य ऋषि की पत्नी । ६. पार्वती [को०] ।

यौ०—कात्यायनीपुत्र कात्यायनीसुत = कातिकेय ।

कात्यायनीय—वि० [सं०] कात्यायन ऋषि द्वारा रचित ग्रंथ ।

काया^१—सञ्ज्ञा पुं [हि० कया (सं० कदिर)] दे० 'कया' । ई०—जहै
बीग तह चून है, पान सुपारी काय ।—जायसी (शब्द०) ।

काय^२—सञ्ज्ञा पुं [हि० कया] एक प्रकार का खैरा रंग । उ०—
केचित रंगहि काय महि कपरा । करि प्रपच बैठहि अति
लपरा ।—सुंदर ग्र०, भा० १ पृ० ६२ ।

काय^३—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० कया] दे० 'कया' । उ०—रक्त पीत
स्वेतावरी काय रँखै पुनि जैन ।—सुंदर ग्र०, भा० २,
पृ० ७३५ ।

काथरी^१—सञ्ज्ञा स्त्री [हि० कथरी] दे० 'कथरी' ।

काथा^१—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० कथा, हि० काय] दे० 'कथा' । उ०—
माला पहिरै तिलक बनावे काथा गूदर नाव ।—गुलशन०,
पृ० २२ ।

काथिक—सञ्ज्ञा पुं [सं०] १ कहानियाँ कहनेवाला । २ कहानियाँ
लिखनेवाला [को०] ।

कादंब^१—वि० [सं० कादम्ब] १ कदंब संबंधी । २ समूह संबंधी ।

कादंब^२—सञ्ज्ञा पुं १. कदंब का पेड़ या फल फूल । २ एक प्रकार का
हंस । कलहंस । ३ ईख । ४ बाण । ५ दक्षिण का एक
प्राचीन राजवंश । ६. शराव । मदिरा । कदंब की बनी शराव ।
कादंबक—सञ्ज्ञा पुं [सं० कादम्बक] बाण [को०] ।

कादंबर—सञ्ज्ञा पुं [सं० कादम्बर] १ दही की मलाई । २ ईख का
गुड़ । ३ कदम के फूलों की शराव । ४ मदिरा । शराव ।
५ हाथी का मद ।

कादंबरि^१—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० कादम्बरी] सं० कादंबरी । उ०—
कांच मास कबहु कर भोगण, कदंबरि से लोहित लोघन ।—
कीर्ति०, पृ० ६० ।

काठी^५—वि० [सं० कष्ट, कृष्ट, प्रा० कट्ठ] (राज०) काठी । खूब मजबूती से । उ०—सींगण काइ न सिर जिपौ, प्रातम हाव करत । काठी साहेत मूठि मौ, कोडी कासी सत ।—ढोल०, दू० ४१६ ।

काठू—सञ्ज्ञा पुं० [हि० काठ] कूटू की तरह का एक पीया जिनगी खेती हिमालय के कम ठंडे स्थानों में होती है ।

विशेष—इसका पेड़ कूटू से कुछ बड़ा होता है । और दाने कूटू की तरह पहलदार होते हैं, पर कोने नुकीले नहीं होते । इसकी तरकारी भी लोग खाते हैं ।

काठो—सञ्ज्ञा पुं० [हि० काठ] एक प्रकार का मोटा धान जो पंजाब में होता है ।

काड—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० कांड] एक प्रकार की मछली जो उत्तर की ओर ठंडे समुद्रों में पाई जाती है ।

विशेष—यह तीन वर्ष में पूरी वाढ़ को पहुँचती है । उस समय यह तीन फुट लंबी और तेल में १२ पाउंड से २० पाउंड तक होती है । इसका मांस बहुत पुष्टिकर होता है । इसमें एक प्रकार का तेल बनाया जाता है जिसे 'काड लिवर ऑयल' कहते हैं । यह तेल क्षय रोग की अच्छी दवा मानी जाती है । इसमें विटामिन बी पर्याप्त मात्रा में होता है ।

यो०—काड लिवर आयल=काड नाम की मछली के कलेजे से निकाला हुआ तेल ।

काडो—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० काण्ड] अरहर का सूखा और कटा पेड़ । कड़िया । रहट ।

काढना—क्रि० सं० [सं० कर्षण, प्रा० कड्ढण] १. किसी वस्तु के भीतर से कोई वस्तु बाहर करना । निकालना । उ०—(क) खनि पताल पानी तहें काड़ा । छीर समुद्र निकसा हुत वाड़ा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) भीन दीन जनु जल ते काड़े ।—तुलसी (शब्द०) । २. किसी आवरण को हटाकर कोई वस्तु प्रत्यक्ष करना । खोलकर दिखाना । जैसे,—दाँत काढ़ना । ३. किसी वस्तु को किसी वस्तु से अलग करना । उ०—तब मथि काढ़ि लिए नवनीता ।—तुलसी (शब्द०) । ४. लकड़ी, पत्थर, कपड़े आदि पर बेल बूटे बनाना । उरेहना । चित्रित करना । जैसे—बेल बूटा काढ़ना, कसोदा काढ़ना । उ०—(क) पँवरिहि पँवरि सिह गढ़ि काड़े । डरपहि लोग देखि तहें ठाढ़े ।—जायसी (शब्द०) । (ख) राम वदन विलोकि मुनि ठाढ़ा । मानहुँ चित्र भाभि लिखि काढ़ा ।—तुलसी (शब्द०) । ५. उधार लेना । ऋण लेना । जैसे, उनक पास रुपया तो था नहीं, कहीं से काढ़कर लाए हैं । उ०—(ग) मातहि पितहि उच्छ्रण एए नीके । गुह ऋण रहा सांच बड़ जी के । सो जनु हमरे माये काड़ा । दिन चलि गए व्याज बहु वाड़ा ।—तुलसी (शब्द०) । ६. कड़ाहे में से पकाकर निकालना । पकाना । छानना । जैसे,—पूरी काढ़ना, जलेबी काढ़ना । ७. दूध दुहना । जैसे,—गेया का दूध अभी काड़ा गया है ।

काड़ा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० क्वाय, प्रा० काड] ओषधियों को पानी में उबाल या झोडाकर बनाया हुआ शरबत । स्वाथ । खोशाद ।

काण^१—वि० [सं०] १. काना । २. छेद किया हुआ (को०) ।

काण^२—सञ्ज्ञा पुं० कोषा ।

काण^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कानि] मर्यादा । लोक यज्ञ । उ०—लोपी छाका लेण नूँ, काका वाली लागु ।—शंकी० प्र०, भा० २, पृ० ३ ।

काणू^४—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कोषा । २. मुर्गा । ३. एक प्रकार का हथ । ४. यथा नामक चिड़िया (को०) ।

काण्येय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कानी स्त्री का लड़का (को०) ।

काण्यर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ३० 'काण्येय' (को०) ।

काण्येली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. व्यक्तिचारिणी स्त्री । २. प्रविवाहित स्त्री (को०) ।

यो०—काण्येलीमाता=(१) प्रविवाहित स्त्री का पुत्र । (२) वह माता जिनको प्रविवाहित प्रवस्था में यत्न हो ।

काण्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कण का वनज । २. कण का अनुभाषी । कातत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कातत्र] कलाप व्याकरण जिसे कुमार या कातिकेय की कृपा से सर्ववर्धन ने बनाया था ।

कात—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्त्तन, प्रा० कत्तन] १. एक प्रकार की कैंची जिसने ग्देरिये भेड़ों के बाल कतरते हैं । २. मुर्गे के पैर का काँटा ।

कातयक^५—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] ३० 'कातिक' । उ०—कातयक करत पट्टपर सनान । गोधन महातम सुनत कान ।—पृ० रा०, १ । ३८० ।

कातना—क्रि० सं० [सं० कत्तन, प्रा० कत्तन] १. रुई से नूत बनाना । रुई का ऐठ या बटकर तागा बनाना । उ०—बहू सास को कहि समुझावैं तूँ मेरे दिग बँधी काति ।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ५४५ । २. डेरा से चन या मूँज प्रादि को रस्ती बनाना । मुहा०—महोन कातना=बहुत कुशलता से गड़ गड़कर बातें करना ।

कातर^१—वि० [सं०] [सञ्ज्ञा कातरता] १. अधीर । व्याकुल । चंचल । २. उरा हुआ । भयभीत । ३. डरपोक । बुजदिल । उ०—कोउ कातर युद्ध परात सभय (शब्द०) । ४. अत । दुवित । उ०—कातर वियोगिन दुषद रन कीभूमि पावत नम नई । भारतेदु प्र०, भा० १, पृ० ११० ।

यो०—कातरोक्ति^५ (१, दुःख से भरा वचन । (२) निवृत्ति । प्रार्थनाविषय ।

५. विवश । लाचार (को०) ।

कातर^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. घडनेल । २. एक प्रकार की मछली ।

कातर^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कतरी] जवड़ा । चोभर ।—(कलदर) ।

कातर^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कतृ = कातनेवाला] कोल्हू में लकड़ी का वह तबला जिसपर हाँकनवाजा बँधता है और जो कोल्हू का कमर से लगा हुआ उसक चारों मार घूमता है । इसी में बँन जाते जाते हैं ।

कातरता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० कातर] १. अधीरता । चरानता । २. दुःख की व्याकुलता । ३. डरपोकपन ।

कातराचार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नृत्य में एक प्रकार का दृष्टक ।

काठी

यो०—काठ कठगर=निस्सार वस्तु। निस्तत्व पदार्थ। उ०—ससय काठ कठगरा तासो काटत लगे न वार।—भीखा श०, पृ० ८८। काठ कवाड़=लकड़ी का बना सामान जो टूट फूटकर बेकाम हो गया हो। काठ का उल्लू=जड़। वज्र मूर्ख। घोर गजानी। काठ की घोड़ी=अस्तित्वहीनता का आधार। मूल्याधार। उ०—चारगजी चरगजी मंगाया, चढ़ा काठ की घोड़ी।—कवीर श०, पृ० ६। काठ की हांडी=घोखे की चीज। ऐसी दिखाऊ वस्तु जिसका घोखा एक बार से अधिक न चल सके। उ०—जैसे,—हांडी काठ की चढ़े न दूजी बार। काठ का घोड़ा=बैसाखी। काठ कटौग्रल पांशुरी=आँखनिवोली की तरह का एक खेल जिसमें लडके किसी काठ को छू छूकर आते हैं।

काठ होना=(१) सजाहीन होना। चेतनारहित होना। जड़त्व होना। स्तब्ध होना। जैसे—सिपाही को सामने देखते ही वह काठ हो गया। (२) सुखकर कड़ा हो जाना (वस्तु के लिये)। काठ कोड़ा चलना=(१) काठ में पर देने और कोड़ा मारने का अधिकार होना। दंड देने का अधिकार होना।

विशेष—योगिक शब्द बनाने में 'काठ' को 'कठ' कर देते हैं। जैसे—कठफोड़वा, कठपुतली, कठघोड़ा, कठकूआ, कठमलिया। ऐसे पेड़ों के नामों में भी 'कठ' लगाते हैं जिनके फल नीरस और बिना गूदे के होते हैं, जैसे,—कठजामुन, कठगूलर, कठवैर। २. ईधन। जलाने की लकड़ी। ३. शहतीर। लकड़। लकड़ी का बड़ा तखता। लकड़ी की बनी हुई बेड़ी। कलदरा। उ०—कोतवाल काठी करि बाँधो छूट नहीं सांभ ग्रंथ भोर।—सुंदर ग्रं, भा० २, पृ० ५५७।

विशेष—यह बेड़ी वास्तव में दो बराबर तराशे हुए लकड़ों से बनती है। दोनों के बीच में छेद होता है। इसी छेद में अपराधी का पैर डाल देते हैं और दोनों लकड़ों को पंच से कस देव है। मुहा०—काठ पहनाना, काठ मारना=अपराधी को काठ की बेड़ी पहनाना। काठ में पाँव देना=(१) अपराधी को काठ की बेड़ी पहनाना। कलदरे में पाँव डालना। (२) जान बूझकर स्वयं वध में पड़ना। उ०—फूले फूले फिरत हूँ, होत हमारी व्याव। तुलसी गाय बजाय के देत काठ में पाँव।—तुलसी (शब्द०)।

५. अचेत दशा। सजाहीन की स्थिति। ६. कामसवधों के विषय में देखवरी। जैसे—काठ औरत, काठ मर्द। काठ(७)—सब्जा पुं० [हि० काठ की पुतली का सक्षिप्त रूप] दे० 'कठपुतली'। उ०—कतहुँ चिरहुँटा पंखा लावा। कतहुँ पखड़ी काठ नचावा।—जायसी (शब्द०)।

काठक—सब्जा पुं० [सं०] कृष्ण यजुर्वेद का एक शाखा। उ०—तैत्तिरीय संहिता और काठक संहिता से भी प्रगट होता है कि शूद्रों की गणना भी समाज के अंगों में होती थी।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ८८।

यो०—काठकगृह्यसूत्र=एक सूत्र ग्रंथ का नाम। काठक संहिता=कृष्णयजुर्वेद का एक भाग या शाखा। काठकापनिषद्=कठोपनिषद्।

काठकबाड़—सब्जा पुं० [हि० काठ+कबाड़ (अनु०)] लकड़ियों आदि के दूरे फूटे और निकम्मे टुकड़े। अण्ड खण्ड।

काठडा—सब्जा पुं० [हि० काठ+डा (प्रत्य०)] [खी० काठड़ी] काठ का बना हुआ वरतन। कठीना।

काठनीम—सब्जा पुं० [हि० काठ+नीम] एक प्रकार का वृक्ष जिसे गधेल भी कहते हैं। वि० 'गधेल'।

काठवेर—सब्जा पुं० [हि० काठ+वेर] दे० 'घूँट' (वृक्ष)।

काठवेल—सब्जा खी० [हि० काठ+वेल] इद्रायन की तरह की एक वेल जो हिंदुस्तान के कुछ हिस्सों में तथा अफगानिस्तान और फारस में होती है।

विशेष—इसके फल इद्रायन के फल के समान ही कड़ुए होते हैं। इनके बीज से तेल निकलता है जो जलाने के काम में आता है। कोई कोई इसका व्यवहार दवा में इद्रायन के स्थान पर करते हैं। इसे कारित भी कहते हैं।

काठमांडू—सब्जा पुं० [सं० काष्ठ, प्रा० कट्ठ+मडप, प्रा० मडव] नेपाली की राजधानी।

विशेष—इस नगर में काठ के मकान अधिक होते हैं, इसी से इसका यह नाम पड़ा।

काठमारी—वि० [हि० काठ+मारना] जिसे काठ मार गया हो। अवसन्न। सजाहीन।

काठिन—सब्जा पुं० [सं०] १. कठोरता। कड़ापन। २. खजूर का फल [को०]।

काठिन्य—सब्जा पुं० [सं०] कड़ापन। कठोरता। सख्ती।

काठियावाड़—सब्जा पुं० [हि० कांठ=समुद्रतट+वाड=द्वार] भारतवर्ष का एक प्रांत जो अब गुजरात देश का पश्चिम भाग है।

विशेष—यह कच्छ की खाड़ी और खमात की खाड़ी के बीच में है। इस प्रांत के घोड़े प्रसिद्ध होते हैं जिन्हें लोग काठी कहते हैं। यह प्राचीन काल में सोराष्ट्र मंडल के अंतर्गत था।

काठियावाडी^१—वि० [हि० काठियावाड़] काठियावाड़ से संबंधित। काठियावाड़ का।

काठियावाडी^२—सब्जा पुं० काठियावाड़ की बोली।

काठी^१—सब्जा खी० [हि० काठ] १. घोड़ों की पीठ पर कसने की जीन जिसमें नीचे काठ लगा रहता है। यह आगे और पीछे की ओर कुछ उठी होती है। उ०—कोड़े पर अच्छी चमड़े की कठी लगी हुई थी।—किन्नर, पृ० ३८।

क्रि० प्र०—कसना।—घरना।

२. ऊँट की पीठ पर रखने की गद्दी जिसके नीचे और ऊपर के उठे हुए भागों में काठ रहता है। ३. तलवार या कटार का काठ का म्यान जिसपर चमड़ा या कपड़ा चढ़ा रहता है।

काठी^२—सब्जा खी० [सं० कायस्थिति, प्रा० कायस्थिद्वि अथवा सं० कायस्थि, प्रा० का आदि] शरीर की गठन। अंगलेट। जैसे,—उसकी काठी बहुत अच्छी है। उ०—तेरी पूजी सेवा ये रे प्रोजी पराई काठी दे रे।—दक्खिनी० पृ० ३६।

काठी^३—वि० [काठियावाड़] काठियावाड़ का (घोड़ा)। उ०—दल सुघ दान दियाह, काठी घाटी कवियणी।—दोकी० प्र०, भा० १, पृ० १५।

मुहा०—काटो तो खून या लहू नहीं = किसी दुःखदायी, भयानक या अपना रहस्य खोलने वाली बात को सुनकर एकवारगी सन्न हो जाना। स्तब्ध हो जाना। जैसे,—ज्यो ही उसने यह बात कही, काटो तो खून नहीं। उ०—काने को देखते ही दरोगा साहब के हवास पैतरा हुए। काटो तो लहू नहीं वदन मे।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ५४। २ पीसना। महीन चूर जैसे, करना। भांग काटना। मसाला काटना।

विशेष—इस अर्थ में 'कर्ता' प्रायः वस्तु होती है, व्यक्ति नहीं। जैसे,—यह बड़ा खूब मसाला काटता है।

३. धाव करना। जहम करना। जैसे,—जूते का काटना। ४ किसी वस्तु का कोई अंश अलग करना। जैसे,—(क) इस वर्ष नदी उधर की बहुत सी जमीन काट ले गई। (ख) उनकी तनख्वाह मे से २५) काट लो। ५ युद्ध मे मारना। वध करना जैसे,—उस लड़ाई मे सैकड़ों सिपाही काटे गए। ६ कतरना। धोतना। जैसे,—तुमने अभी हमारा कोट नहीं काटा। ७ छाटना। नष्ट करना। दूर करना। मिटाना। जैसे,—पाप काटना, रग काटना, मैल काटना, भगडा काटना। ८ समय विताना। वक्त गुजारना। जैसे,—रात काटना, दिन काटना, महीना काटना, जाड़ा काटना, गरमी काटना, वरसात काटना। ९ रास्ता खतम करना। दूरी तै करना। जैसे,—रेल हफ्तों का रास्ता घंटों मे काटती है। १० अनुचित प्राप्ति करना। चुरे ढग से आय करना। जैसे, माल काटना। उ०—उसने उस मामले मे खूब रुपए काटे। ११ कलम की लकीर से लिखावट को रद करना। छेकना। मिटाना। खारिज करना। जैसे,—(क) उसने तुम्हारा लिखा सब काट दिया। (ख) उसका नाम स्कूल से काट दिया गया। १२ ऐसे कामों को तैयार करना जो लकीर के रूप मे कुछ दूर तक चले गए हो। जैसे, सबक काटना, नहर काटना। १३ एक नहर या नाली के पानी का किनारा काटकर दूसरी नहर या नाली मे ले जाना। जैसे,—इस खेत का पानी उसमे काट दो। १४ ऐसे कामों को तैयार करना जिनमे लकीरों द्वारा कद विभाग किए गए हो। जैसे,—खाना काटना, बयारी काटना। १५ एक सख्या के साथ दूसरी सख्या का ऐसा भाग लगाना कि शेष न बचे। जैसे,—इस सख्या को सात से काटो। १६ वांटने वाले के हाथ पर रखी हुई ताश की गड्डी मे से कुछ पत्तों को इसलिए उठाना जिसमे हाथ मे आई हुई गड्डी के अंतिम पत्ते से वांट आरंभ हो। १७ ताश की गड्डी का इस प्रकार फेंटना कि उसका पहले से लगा हुआ क्रम न बिगड़े।—(जादू)। १८ जेलखाने मे दिन विताना। कैद भोगना। जैसे,—जेल काटना। १९ किसी विपक्षे जतु का डक मारना या दाँत घसाना। डसना। जैसे—साँप ने काटा, भिड़ ने काटा, कुत्ते ने काटा।

सयो० क्रि०—खाना।

मुहा०—काटने दोड़ना = चिढ़चिढ़ाना। खी भना। जैसे—उससे रुपया माँगने जाते हैं तो वह काटने दोड़ता है।

२० किसी तीक्ष्ण वस्तु का शरीर के किसी भाग मे लगकर खुजली पैदा हुए जलन और छरछराहट पैदा करना। जैसे—(क) पान मे चूना अधिक था, उसने सारा मुँह काट लिया।

(ख) सूरन मे यदि खटाई न दी जाय तो वह गन्ना काटता है। २१ एक रेखा का दूसरी रेखा के ऊपर से चार कोण बनाते हुए निकल जाना। २२ किसी जीव का सामने से निकल जाना। जैसे,—विल्ली का रास्ता काटना बुरा समझा जाता है। २३ घस्से से डोरी आदि तोड़ना। जैसे, पतंग काटना। २४ (किसी मत का) खडन करना। अप्रमाणित करना। जैसे,—उसने तुम्हारे सब सिद्धांत काट दिए। २५ चतुर्था गाड़ी से मान का गायब करना। २६ किसी श्रृंखला मे से कोई भाग जुदा करना। जैसे,—तीन गाड़ियाँ इसी स्टेशन पर काट दी जायेंगी। २७ शरीर पर कट पड़ना। दुःखदायी लगना। बुरा लगना। नागवार मालूम होना। जैसे,—(क) जाड़े मे पानी काटता है। (ख) पड़ने जाना तो इन् ढङ्के को काटता है।

मुहा०—काटे खाना या काटने दोड़ना = (१) बुरा मानूम होना। चित्त को व्यथित करना। (२) जी को उच्चाट करना। सूना और उजाड लगना। जैसे,—उनके बिना यह मकान काटे खाता है। उ०—वेगम, अब पहले तो हम इस मकान को बदलेंगे, काटे खाता है।—फिसाना० भा० ३, पृ० २३८। काटे का मंत्र न होना = वाधा का प्रतिकार न होना। विरोध को सामर्थ्य न होना। उ०—यह बड़े जात शरीफ हैं, उनके काटे का मंत्र नहीं।—फिसाना० भा० ३, पृ०, १३६। २८ पाखाना कमाना। मैला उठाना।—(लश०)।

काटर(७)—वि० [हि० कट्टर] ३० 'कट्टर' उ०—त्राना कट्टर एक तुखारू। कहा सो फेरी न असवारू।—जायसी (शब्द०)।

काटल(७)—वि० [सं० कट्ट, हि० काट] मोरचावाना। जग लगा। उ०—काटल आवध भूँभ कर मन मदाइए ब्रन्न।—बारी० ग्र०, भा० ३ पृ० २८।

काटुक—सज्ञा पु० [सं०] अम्लता। खटास [को०]।

काटू^१—सज्ञा पु० [हि० काटना + ऊ (प्रत्य०)] १. काटनेवाला। २ कटाऊ। डरावना। भयानक।

काटू^२—सज्ञा पु० [अ० कैथूनट] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जो दक्षिण अमेरिका से लाकर भारत के दक्षिणी समुद्रतटों पर रेतीली भूमि मे लगाया गया है। हिजली वृक्ष।

विशेष—इसके तने पर एक प्रकार का गोद होता है जिससे कीड़े नष्ट होते या भाग जाते हैं। इसकी छाल मे से एक प्रकार का रस निकलता है जिससे कपड़ों पर निशान लगाया जाता है। इसकी छाल मे से एक प्रकार का तेल भी निकलता है जो मछलियों पकड़ने के जालों पर लगाया जाता है। इसके बीजों से भी तेल निकलता है जो बहुत अशो मे वादाम के समान होते हैं भूनकर खाए जाते हैं और उनका मुरब्बा भी पड़ता है। इसकी लकड़ी से सड़क, नावें और कायला बनाया जाता है।

काठ^१—सज्ञा पु० [सं० काष्ठ, प्रा० कट्ट] १ पेड का कोई स्थूल अंग (डाल तना आदि) जो आधार से अलग हुआ गया हो। लकड़ी।

काजरी

काजर—सञ्ज्ञा पु० [सं० कज्जल [हि० काजन] दे० 'कजल'

मुहा०—काजर केरी कोठरी = दे० 'काजर की कोठरी' । उ०—

काजर केरी कोठरी काजर ही का काट । वलिहारी वा दास
की, रहे नाम की ओट ।—बकीर सा० सं०, भा० १ पृ० २२ ।काजर(उ०)—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कज्जल हि० काजरी] काले रंग की
गाय । उ०—टेर सुनहि तब जब होहि तियरी । दूर गई वे
काजरि पियरी । नद० ग्र०, पृ० २८७ ।काजरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कज्जली] वह गाय जिमकी आँखों
किनारे काना घेरा हो । उ०—वाँह उचाइ काजरी धोरी
गँपन टेरि बुनावन ।—सूर (शब्द०) ।काजर(उ०)—सञ्ज्ञा पु० [हि० काजर] दे० 'काजल', । उ०—कजरारी
अलिपान मे भूली काजर एक ।—मति० ग्र०, पृ० ३३३ ।काजल—सञ्ज्ञा पु० [सं० कज्जल] वह कालिख जो दीपक के घुँए के
जमने से किसी ठीकरे आदि पर लग जाती है और आँखों में
लगाई जाती है ।

क्रि० प्र०—देना ।—पारना ।—लगाना ।

मुहा०—काजन घुलाना, डालना, देना, सारना = (आँखों में)
काजल लगाना । काजल पारना = दीपक के घुँए की कालिख
को किसी वस्तु में जमाना । काजल की ओवरी या कोठरी =
ऐसा स्थान जहाँ जाने से मनुष्य दोष या कलक से उसी प्रकार
नहीं बच सकता जैसे काजल की कोठरी में जाकर काजल
लगने से । दोष या कलक का स्थान । उ०—(क) यह मयूरा
काजल की ओवरी जे आवहि ते कारे ।—सूर (शब्द०) ।
(ख) काजल की कोठरी में कैसहू सयानो जाय एक लोक
काजल की लागै पै लागै री (शब्द०) ।यी०—काजल का तिल = काजल की छोटी विदी जो स्त्रियाँ
शोभा के लिये गालों पर लगाती हैं ।काजलिया(उ०)—वि० [सं० कज्जल, हि० काजल + इया (प्रत्य०)] दे०
'कजनीवाली' । कजली शी । उ०—जइ तूँ डोला नावियउ,
काजलियारी तीज । चमक मरेसी माखी, दख खिचती बीज ।
डोला०, दू० १५० ।काजली(उ०)—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कजली] दे० 'कजली'—६ । उ०—
रमइ सहेली काजली, धरि धरि कामिनी मड़ई छइ खेल ।—
वी० रासो, पृ० ४८ ।काजि(उ०)—क्रि० वि० [सं० किम्] क्यों । उ०—कोकिल काजि
सतावह कान्ह ।—विद्यापति, पृ० ४१५ ।काजिव—सञ्ज्ञा पु० [अ० काजिव] झूठ बोलने वाला । झूठा ।
उ०—झूठ की किशती चढे झूठ को काजिव तार ।—कवीर
म०, पृ० ३७५ ।काजी—सञ्ज्ञा पु० [अ० काजी] मुसलमानों के धर्म और रीतिनिति
के अनुसार न्याय की व्यवस्था करने वाला । मुसलमानी समय
का न्यायाध्यक्ष । उ०—(क) काजी जो दुबले क्यों, शहर के
अ देश से । (ख) रोशन जमीर बेचू सीना साफ काजी कादिय ।
—पलटू०, पृ० ८३ ।काजू—सञ्ज्ञा पु० [को० काजू] १. एक पेड़ जो मद्रास, केरल,
चण्डीप्र और उनावरिम आदि स्थानों में होता है ।विशेष—इसकी छाल बहुत खुरदरी और लकड़ी सूख होती है
जिससे चट्टक और सजावट के सामान तैयार होने हैं । इसके
फलों की गिरी को मूँक लोग खाते हैं । मींगी निकाली हुई
गुठलियों के छिलकों से लोग एक प्रकार का तेल भी निकालते
हैं जो तेजाब की तरह तेज होता है । इसके शरीर में लगते
ही छाले पड़ जाते हैं । यह तेल पुस्तकों की जिल्दों में लगा
देने से दीमकों का डर नहीं रहता ।२. इस वृक्ष का फल । ३. इस वृक्ष के फल की गुठली के भीतर
की मींगी या गिरी ।काजूभोजू—वि० [हि० काज + भोग] ऐसी दिखाऊ वस्तु जो अधिक
काम न आ सके, कमजोर या मामूली चीज ।काट—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कर्त, प्रा० कट्] १. काटने की क्रिया । काटने
का काम । जैसे—यह तलवार अच्छी काट करती है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

यी०—काट छांट = (१) मारकाट । लड़ाई । (२) काटने से बचा
खुचा टुकड़ा । कतरन । (३) किसी वस्तु में कमी वेशी ।
घटाव बढ़ाव । जैसे—इस लेख में बहुत कांट छांट की
आवश्यकता है । काट कूट = २० 'कांट छांट' । मारकाट =
तलवार आदि की लड़ाई ।२. काटने का ढग । कटाव । तराश । कतरव्योत । जैसे,—इस
अंगरखे की काट अच्छी नहीं है ।

यी०—कांट छांट = रचना का ढग । तर्ज । किता ।

३. कटा हुआ स्थान । घाव । जखम ।

क्रि० प्र०—करना ।

४. छरछराहट जो घाव पर कोई चीज लगने से होती है । ५.
ढंग । कपट । चालवाजी । विश्वासघात । जैसे,—वह समय
पर काट कर जाता है ।

क्रि० प्र०—करना ।

यी०—काट कपट = चोरी छिपे किसी चीज को कम कर देना ।
काट छांट = ढग । जोड़ तोड़ । छवका पजा । जैसे,—वह बड़ी
काट छांट का आदमी है । काट फाँस = (१) जोड़ तोड़ ।
फँसाने का ढग । (२) झूठ की उधर लगाना । लगाव बन्नाव ।
६. कुश्ती में पेंच का जोड़ । ७. चिकनाई और गर्द मिली मेल ।
तेल, घी आदि का तलछट ।काट^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कट् = मेल] वह मेल या तलछट जो तेल के
पात्र में नीचे जम जाती है ।

क्रि० प्र०—बैठना ।

काटकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० काट + की] लकड़ी या छड़ी जिसे हाथ
में लेकर कलदर बंदर या मालू नचाते हैं ।काटन^१—सञ्ज्ञा पु० [हि० काटना] किसी काटी हुई वस्तु के छोटे
छोटे टुकड़े जिन्हें बेकाम समझकर लोग फेंक देते हैं । कतरन
काटन^२—सञ्ज्ञा पु० [अ० काटन] १. कास । रुई । २. रुई का
कपड़ा । जैसे,—काटन मिर्च ।काटना—क्रि० सं० [सं० कर्तन प्रा० कट्] १. किसी धारदार
चीज की दाव या रगड़ से दो टुकड़े करना । शस्त्र आदि की
धार घनाकर किसी वस्तु के दो टुकड़े करना । तैना,—तेड़
काटना, घिर काटना ।

में ते आधा आधा पाव काँचे बना मनुष्य पाछे साँभ को मिलते हैं ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १२६ । २ अनित्य । असार । मिथ्या । उ०—समझ्यों में निरधार, यह जग काचो काँच सो । एकै रूप अपार, प्रतिविवित लखियत जहाँ ।—विहारी (शब्द०) ।

काची^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कच्चा] दूध रखने की हूँडी ।

काची^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कच्चा] तीखुर, सिघाड़े या कुम्हड़े आदि का हलुवा ।

काच्या^३—वि० [हि० काँचा] दे० 'कच्चा' । उ०—कुम्भ काच्या नीर भरिया विनसत नहिं वार रे ।—दक्खिनी०, पृ० ३१ ।

काछ^४—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कक्ष प्रा० कच्छ] १ पेड़ और जाँघ के जोड़ पर का तथा उसके कुछ नीचे तक का स्थान । २ घोंटी का वह भाग जो इस स्थान पर से होकर पीछे खोसा जाता है । लौंग । उ०—(क) कसि काछ दिए घँघरी की कसे कटि सो उपरोनिय भाँति मली ।—रघुनाथ (शब्द०) । (ख) चतुर काछ काछे जब जँसा । तब उन्हें नाच दिखावै तैसा ।—विश्राम (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—कसना । —काछना । —खोलना । —देना । —बाँधना । —भारना । —लगाना ।

३ अग्निनय के नये नटों का वेश या वनाव ।

काछना^१—क्रि० सं० [सं० कक्षा, प्रा० कच्छ] १ कमर में लपेटे हुए वस्त्र के लटकते भाग को जाँघों पर से ले जाकर पीछे कसकर बाँधना । २ बनाना । सँवारना । पहनना । उ०—(क) गौर किशोर वेप वर काछे । कर शर वाम राम के पाछे ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) ए ई राम लखन जे मुनि सँग आए हैं । चौतनी चोलना काछे सखि सोहैं आगे पाछे ।—तुलसी (शब्द०) ।

काछना^२—क्रि० सं० [सं० कषण = घिसना, चलाना] हथेली या चम्मच आदि से किसी तरल पदार्थ को किनारे की ओर खींचकर उठाना या इकट्ठा करना । जैसे, पोस्त से अफीम काछना, हारसे पर मे चदन का काछना ।

काछनि^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० काछनी] दे० 'काछनी' । उ०—कमल दलनि की काछनि काछे, धातु विचित्र चित्र तन आछे ।—नद० प्र०, पृ० २६३ ।

काछनी^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० काछना] कसकर और कुछ ऊपर चढ़ाकर पहनी हुई घोंटी जिसकी दोनों लॉगें पीछे खोसी जाती हैं । कछनी । उ०—(क) काछनी कटि पीत पट दुति कमल केसर खड ।—सूर (शब्द०) । (ख) भीम मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल ।—विहारी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—कसना । —काछना । —भारना ।

२. घाँघरे की तरह का एक चुनावदार पहनावा जो आधे जघे तक होता है और प्रायः जाँघिए के ऊपर पहना जाता है । आजकल मूर्तिधो के श्रृंगार और रामलीला आदि में इस पहनावे का व्यवहार होता है ।

काछा^५—सञ्ज्ञा पुं० [हि० काछना] कसकर और कुछ ऊपर चढ़ाकर

पहनी हुई घोंटी जिसकी दोनों लॉगें पीछे खोसी जाती हैं । कछनी ।

क्रि० प्र०—कसना । —काछना । —बाँधना । —भारना । —लगाना ।

काछी^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कच्छ = जलप्राय देश] १. तरकारी बोने और बेचनेवाला । २. उक्त कार्य करनेवाली एक जाति ।

काछी^२—वि० [सं० कच्छ] कच्छ देश का । कच्छी । उ०—काछी करह विष्णुमियाँ, घडियउ जोड़ण जाइ । हरणाछो जउ हँसि कहइ, आणिसि एयि विमाई ।—ढोला०, द० २२२ ।

काछी^३—सञ्ज्ञा पुं० कच्छ देश का घोड़ा । उ०—पेच सुरगी धाधरा, ढाके मत घर ढान काछी चढ़ आछी फूँ हजा भीजण हाल ।—वाँकी० प्र०, भा० २, पृ० ८ ।

काछुई^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कच्छपो, प्रा० कच्छवी] दे० 'कछुपा' । उ०—ग्रभा पालै काछुई, विन यन राखे पोका । यों करता सबकी करै, पालै तेनउ लोक ।—कबीर सा०, पृ० ८१ ।

काछू^५—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कच्छप, कच्छर] दे० 'कछुवा' । उ०—चेला पटै न छाँडहि पाछू । चेला मच्छ गुरु जिमि काछू ।—जायसी (शब्द०) ।

काछे^६—क्रि० वि० [सं० कक्ष, प्रा० कच्छ] निवट । पास । नजदीक । उ०—नाहि कह्यो सुत्र दे चरि हरि को मैं गावनि हों पाछे । बँसहि फिरी सूर के प्रभु पं जहाँ कुन गृह काछे ।—सूर (शब्द०) ।

काज^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कार्य प्रा० कज्ज] १. प्रयत्न जो किसी उद्देश्य की निद्रिके लिये किया जाय । कार्य । काम । कृत्य । उ०—(क) जानी लोभ करत नहिं कह्यो लोभ विगारत काज ।—सूर (शब्द०) । (ख) घाम, धूम, नीर और समीर मिले पाई देह ऐसी धन कैसे दूत काज भुगतारंगो ।—नवराज (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना । —कराना । —चलना । —चलाना । —निकलना । —निकालना । —भुगतना । —भुगताना । —सँवारना । —सरना । —सारना ।

मुहा०—के काज = के हेतु । निमित्त । लिये । उ०—पर स्वारथ के काज नीस आने धरि दोज ।—गिरधर (शब्द०) ।

२. व्यवसाय । घधा । पेशा । रोजगार । जैसे, (क) इन लड़के को अब किसी काम काज में लगाओ । (ख) अपने घर का काज देखो । ३. प्रयोजन । मतलब । उद्देश्य । अर्थ । उ०—(क) रोए कन न वहरें तो रोए का काज ?—जायसी (शब्द०) । (ख) दिन काज आज महाराज काज गइ मेरी ।—(गीत), (शब्द०) । ४. विवाह सवध । उ०—यह शशमल राजकुमार सखी, दर जानकी जोगहि जन्म लयो । रघुराज तथा मिथिलापुर राज मकाज यही जो न काज भयो ।—रघुराज (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना । —होना ।

५. बालक अवस्था से बड़े या किसी बूढ़े आदमी के मर जाने का भोज । काम ।

क्रि० प्र०—करना । —पड़ना । —होना ।

काज^२—सञ्ज्ञा पुं० [पुर्त० काजा, फोंरणी काज] छेद जिससे बटन ढालकर फँसाया जाता है । बटन का घर ।

क्रि० प्र०—बनाना ।

कागज^७—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कागज, हि० कागद] दे० 'कागज' । उ०—
ऐनो सग्रम होत भैं कवहूँ देख्यो नरी, दुति को दुति लेखन
कागज ।—पोद्दार ग्रं०, पृ० ३६० ।

कागदी^७—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कागज] १. कागज । उ०—सत्य कहीं लिखि
कागद कोरे ।—तुलसी (शब्द०) । २. किसी कार्यालय का
विशेष रजिस्टर । खाता । वही । उ०—साथी हमरे चल
गए, हम नी चालनहार । कागद मे बाकी रही तानें लागी बार ।
—कबीर सा० सं०, पृ० ७६ ।

क्रि० प्र०—प्राता ।—काटना ।—खोना ।—हिराना ।

यो०—कागदपत्तर, कागदपत्र = दे० 'कागजपत्र' ।

मु०—कागड फटना = (१) किसी की मृत्यु होना । (२) मरने
का लक्षण प्रकट होना । कागद खोना = दीर्घजीवी व्यक्ति का
कष्टमय जीवन लंबा होते जाना ।

कागदगर^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कागद + गा० गर (प्रत्य०)] कागज
लिखनेवाला । उ०—ततकरा अपवित्र कर मानिए जैसे कागद-
गर करत विचार ।—रं० वाणी०, पृ० ३७ ।

कागदी^७—वि० [हि० कागद + ई (प्रत्य०)] केवल कागज पर लिखने
वाला, व्यवहार न करनेवाला । उ०—कागद लिखे सो कागदी
को व्योहारी जीव । आतम दृष्टि कहाँ लिखै, जित देखै तित
पीव ।—कबीर सा०, पृ० ८५ ।

कागभूसुडि^७, कागभुसुडि^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० काकभुशुण्डि]
दे० 'काकभुशुण्डि' ।

कागमारी^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की नाव जिसके आगे पीछे
के निचके लंबे होते हैं ।

कागर^७—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कागज] १. कागज । उ०—(क) तुम्हरे
देश कागर मसि छूटी । प्यास अरु नींद गई सब हरि के बिना
विरह तन टूटी ।—सूर (शब्द०) । (ख) कवित विवेक एक
नहि मोरें । सत्य कहीं लिखि कागर कोरे ।—मानस, १।६ ।
२ पत्र । पर । उ०—(क) कीर के कागर ज्यो नृपचौर विभूषन
उपम अगनि पाई ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) कागर कीर
ज्यो भूपन चीर सरीर लख्यो तज्यो नीर ज्यो काई ।—तुलसी
(शब्द०) ।

कागरी^७—वि० [हि० कागर = कागज] तुच्छ । हीन । उ०—नट
नागर गुनन के आगर मे प्रीति बाड़ी गाडी नइ प्रतीति जगी
रोति मई कागरी ।—रघुगज (शब्द०) ।

कागल^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कागर] दे० 'कागर' । उ०—कागल
नही कमन नहीं, नहीं कलेखणहार ।—डोला०, दू० १४० ।

कागली^७—वि० [हि० कागरी] दे० 'कागरी' । उ०—जीवन घडीय
ते नवि रहई । जीणसू कागली हुआ बँहार ।—वी० रासा,
पृ० ३३ ।

कागा^७—सञ्ज्ञा पुं० [मं० काक, काग] दे० 'काग' ।

कागावासी^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं० काक + वासी] (बोली या बोलने का
समय अथवा हि० काग/वासी) भाग जो नवरे कोआ बोलते
नमय छाती जाय । सवरे के समय की भाग । उ०—प्राय माल
कचरे छ नैं उडि ओरहि कागावासी ।—हरिश्चंद्र (शब्द०) ।

२-४६

कागावासी^७—सञ्ज्ञा पुं० [मं० काक + वासी] एक प्रकार का मोती जो
कुछ काला होता है ।

कागारोल^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि० काग = कोआ + रोल = शोर] हन्ता ।
टूलड । शोरगुल ।

कागिया^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] तिब्बत देश की एक प्रकार की भेड़ ।
विशेष—इसका सिर बहुत भारी और टांगें छोटी होती हैं ।
इसका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है । लोग इसे ऊन के लिये
नहीं, मांस के लिये ही पालते हैं ।

कागिया^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि० काग + इया (प्रत्य०)] काले रंग का एक
कोडा जो बाजरे की फसल को हानि पहुँचाता है ।

कागिल^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि० काग] काग । कोआ । उ०—कागिल
गर फाँदियाँ, बटेरें बाज जीता ।—कबीर ग्रं०, पृ० १४१ ।

कागौर^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० काकवलि] पितृकर्म मे कव्य का वह भाग जो
कोए के लिये निकाला जाता है । काकवलि ।

काच^७—वि० [हि० कच्चा या काँचा] १ कच्चा । उ०—प्रागें
पीछें जो करै सोई वचन है काच ।—सं० दरिया, पृ० ३ ।
२ जी का कच्चा । कायर । डरपोक ।

काच^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ शीशा । काँच । २ आँच का एक रोग
जिसमे दृष्टि मंद हो जाती है । ३ खारी मिट्टी । ४. काला
नमक । ५. मोम । ६. जुए के भार को सँभालनेवाली रस्सी ।
७ तराजू की डोरी [को०] ।

काचक^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ शीशा । काँच । २. पत्थर । ३ खारी
मिट्टी [को०] ।

काचडगारा^७—वि० [सं० कच्चर + कार] बुराई करनेवाला । उ०—
काचडगारा ऊपरा रामतणी है रीस । काचडगारा कूचडा वगडें
विसवा वीम ।—वांकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ७५ ।

काचडा^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कच्चर = बुरा, नीच] चुगली । उ०—
मुख थोड़ी रे माँहिले, पर काचडा पुरीप ।—वांकी० ग्रं०,
भा० २, पृ० ५७ ।

काचन, काचनक^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सामान, कागज के बडल अथवा
हस्तलेख के पन्नों को बाँधने की डोरी [को०] ।

काचमणि^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] स्फटिक ।

काचर^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कचरी] दे० 'कचरी' । उ०—कोण केर
काचर फली, पापड गेधर पात ।—वांकी० ग्रं०, भा० २,
पृ० ६७ ।

काचमल^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] काचलवण ।

काचलवण^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] काचिया नोन । काला नोन । सोचर
नोन ।

काचरी^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० काँचली] दे० 'काँचरी' ।

काचली^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० काँचली] दे० 'काँचली' । उ०—साप
काचली छाँडे वीस ही न छाँडे । उदक मे बक ध्यान माँडे ।
—दस्त्रिनी०, पृ० ३५ ।

काचा^७—वि० [हि० काँचा] १. दे० 'कच्चा' । उ०—इन्को राजद्वार

विशेष—इसका चमड़ा बहुत सफेद, मुलायम और गरम होता है।

अमीर लोग इस चमड़े की पोस्तीन बनवाकर पहनते हैं।

काकुल—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] कनपणी पर लटकते हुए लंबे बाल। कुल्ले। जुल्फें। उ०—दामे काकुल का तेरे कोई गिरपतार नहीं, पेंच हम पर ए पड़ा।—श्यामा० पृ० १०२।

मुहा—काकुल छोड़ना = बालों की लट गिराना या बिखराना। काकुल झाड़ना = बालों में कधी करना।

काकेची—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मछली [को०]।

काकोचिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली [को०]।

काकोदर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० काकोदरी] १ साँप। उ०—दादुर काकोदर दसन परै मसन मति ध्याउ।—दीन० ग्र०, पृ० २०६। २ अघामुर नाम का राक्षस जिसका वध कृष्ण ने किया था। उ०—हरि तन चितय कहत काकोदर। याके उदर दोउ मेरे सोदर।—नद ग्र०, पृ० २६०।

काकोल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ एक विष का नाम। २ काला कीआ (को०)। ३ मर्ग (को०)। ३ शूकर (को०)। ४ कुम्हार (को०)। ६ एक नरक (को०)। ७ एक बहुमूल्य वस्तु या पदार्थ (को०)।

काकोली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक ओपधि।

विशेष—यह एक प्रकार की जड़ या कंद है जो सतावर की तरह होती है, पर आजकल मिलती नहीं। इसका एक भेद क्षीरका कोली भी है। वैद्यक में यह वीर्यवर्धक और क्षीरवर्धक मानी गई है।

पर्या०—शीतपाकी। पस्प्या। क्षीरा। वीरा। धीरा। शुल्का। मेदुरा। जीवती। पयस्विनी।

काकोलूकिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कीआ और उल्लू के जैसी सहज शत्रुता [को०]।

काकोलूकीय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ काक और उल्लू का सहज वैर। २ पचतत्र का तीसरा तत्र [को०]।

यो०—काकोलूकीय तत्र = पच तत्र का तीसरा तत्र। काकलूकीय न्याय = वह न्याय जहाँ कीआ और उल्लू की सहज शत्रुता की स्थिति हो।

काक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ तिरछी नजर। कटाक्ष। २. कोप दृष्टि। ३. कुदृष्टि [को०]।

काक्षी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक प्रकार का सुगंधित पदार्थ। २ एक प्रकार की सुगंधित मिट्टी [को०]।

काख(७)—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० काँख] दे० 'काँख'। उ०—पट अर जठर बीच तो वेनु। काख वेत, कच लपटे रेनु।—नंद० ग्र०, पृ० २६४।

काग^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० काक] कीआ। वायस।

मुहा०—काग उड़ाना = किसी के आने का शकुन विचारना। उ०—वारुडियाँ वे थक्कियाँ, काग उड़ाइ उड़ाइ।—ढोला०, दू० १६७।

यो०—कागभुसुडि, कागभुसुडी।

काग^२—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कार्क] १. बलूत की जाति का एक बड़ा पेड़।

विशेष—यह स्पेन, पुर्तगाल तथा अफ्रीका के उत्तरी भागों में होता है। यह ३०-४० फुट तक ऊँचा होता है। इसकी छाल दो इंच तक मोटी और बहुत हलकी तथा लचीली (अर्थात् दाव पड़ने से दब जानेवाली) होती है। बोटल, शीशी आदि की डाट इसी छाल की बनती है।

२. बोटल या शीशी की डाट जो काग नामक पेड़ की छाल से बनती है।

कागज—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कागज] [वि० कागजी] १. सन, रुई, पट्टा, वॉम, लकड़ी आदि को पीसकर या सड़ाकर बनाया हुआ पत्र जिसपर अक्षर लिखे या छापे जाते हैं।

यो०—कागजपत्र = (१) लिखे हुए कागज। (२) प्रामाणिक लेख 'दस्तावेज'।

मुहा०—कागज फाला करना—व्यर्थ कुछ लिखना। कागज रँगना = कागज पर कुछ लिखना। कागज की नाव = अणु-भगुर वस्तु। न टिकनेवाली चीज। कागज की लेखी = ग्रंथों में लिखी बातें जो आँखों से देखी बातों की अपेक्षा कम प्रामाणिक होती हैं। उ०—मैं कहता हूँ अखिर देखो, तू कहता कागज की लेखी।—करीम श०, भा० १, पृ० ३५। कागज दोड़ाना, कागजी घोड़े दोड़ाना = खूब लिखापढ़ी करना। खूब चिट्ठीपत्री भेजना। परस्पर खूब पत्र-व्यवहार करना। कागज पर चढ़ाना = कही लिख लेना। टाँकना। टीपना।

२ लिखा हुआ कागज। लेख। प्रामाणिक लेख। प्रमाणपत्र। दस्तावेज। जैसे,—जबतक कोई कागज न लाओगे, तुम्हारा दावा ठीक नहीं माना जाएगा।

क्रि० प्र०—लिखना।—लिखवाना।

३ सवादपत्र। समाचारपत्र। ख़बर का कागज। अख़बार। जैसे—आजकल हम कोई कागज नहीं देखते। ४ नोट। प्रामिसरी नोट।—जैसे,—३००००) का तो उनके पास खाली कागज है।

कागजात—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कागज का बहु०] कागजपत्र।

कागजी^१—वि० [अ० कागज + फा० ई (प्रत्य०)] १. कागज का। कागज का बना हुआ। २ जिसका छिलका कागज की तरह पतला हो। जैसे,—कागजी नीबू, कागजी बादाम।

यो०—कागजी जोक = बहुत पतली और छोटी जोक।

विशेष—जोड़ तीन प्रकार की होती हैं।—(१) भेंसिया।

(२) मझोली और (३) कागजी।

कागजी^२—सञ्ज्ञा पुं० १ कागज बेचनेवाला। २ वह कवूतर जो बिलकुल सफेद हो।

कागजी काररवाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० कागजी + फा० काररवाई] लिखापढ़ी।

कागजी बादाम—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कागजी + फा० बादाम] एक प्रकार का बड़िया बादाम जिसका ऊपरी छिलका अपेक्षाकृत पतला होता है।

कागजी सवृत—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कागज + अ० सवृत] कागज पर लिखा हुआ सवृत। लिखित प्रमाण।

संगीत में वह स्थान जहाँ मूकम और स्फुट स्वर लगते हैं ५.
घुँघची । गुंजा । ३ कौंची (कौं) । ७ हलकी ध्वनि का वाद्य
जिसको चोरी करते समय चोर यह जानने के लिये बजाते हैं
कि लोग सोए हैं या नहीं (कौं) ।

यो०—काकलीद्राक्षा ।

काकली^२—वि० [सं० काकलिन्] जिसे काकली या घंटी हो ।

काकलीक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मद मधुर स्वर (कौं) ।

काकलीद्राक्षा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटा अग्र ।

विशेष—इसमें बीज नहीं होते और इसे मुखाकर किशमिश
बनाते हैं ।

२ किशमिश ।

काकली निपाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक विकृत स्वर ।

विशेष—यह कुमुद्वती नामक श्रुति से आरम्भ होता है और इसमें
चार श्रुतियाँ होती हैं ।

काकलीरव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० काकलीरवा] कोयल ।

काकशीर्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अगस्त का पेड़ या फूल । वक्रपुष्प ।
हविया ।

काकसेन—सञ्ज्ञा पुं० [अ० काकसेन] वह पुरुष जो किसी अफमर
की मातृहत्या में रहकर जहाज और मजदूरी की निगरानी करता
हो । —(लश०) ।

काकागा, काकागो—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० काकाङ्गा, काकाङ्गी] काकजवा ।
मनी (कौं) ।

काकाची—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० काकाञ्ची] काकजवा (कौं) ।

काका^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ काकजवा । मसी । २. काकोली ।
३ घुँघची । ४ कठूमर । कठगूलर । ५ मकोय ।

काका^१—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] [स्त्री० काकी] १. बाप का भाई ।
चाचा । २. चमारों के नाच में करिगे का वह साथी
जिससे वह व्यंग्य और हास्यपूर्ण सवाल जवाब करता
है । इस काका को फोकनी काका भी कहते हैं । उ०—काका
उसका है साथी नट, गदके उसपर जमा पटापट, उसे टोकता
गोली खाकर, आँख जायगी क्या वे नटखट ? भुन न जायगा
भुनगे सा भट ? ।—ग्राम्या, पृ० ४५ ।

काकाकौआ—सञ्ज्ञा पुं० [हि० काका + कौआ] दे० 'काकातुआ' ।

काकाक्षिगोलक न्याय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक शब्द या वाक्य को उलट
फेरकर दो निम्न निम्न अर्थों में लगाना ।

विशेष—भोगों का विश्वास है कि कोए को एक ही आँख होनी
है जिसे वह इच्छानुसार दाहिने या बाएँ गोलक में लाकर अपना
काम चलाता है । इसीलिये संस्कृत में कोए को एकाक्ष भी
कहते हैं । जिस तरह एक आँख को कोआ कभी दाहिनी और
कभी बाईं ओर ले जाता है, उसी तरह किसी शब्द या वाक्य
का यथेच्छ सीधा उलटा अर्थ करने को काकाक्षिगोलक न्याय
कहते हैं ।

काकातुआ—सञ्ज्ञा पुं० [मला०] एक प्रकार का बड़ा तोना जो प्रायः
सफेद रंग का होता है ।

विशेष—इसके सिर पर टेढ़ी चोटी होती है । इस चोटी को यह
ऊपर नीचे हिला सकता है । इसका शब्द बड़ा कर्कश होता है
और सुनने में 'क क तु अ' की तरह मालूम होता है । यह पत्ती
जावा, बोनियो आदि पूर्वी द्वीपमूल के टापुओं में होता है ।

काकातूआ—सञ्ज्ञा पुं० [हि० काकातुआ] दे० 'काकातुआ' । उ०—
काकतूआ महर गृह के द्वार का भी दुखी था । भूला जाता
सकल स्वर या उन्मत्ता हो रहा था ।—प्रिय०, पृ० ५१ ।

काकादनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ कौआठोड़ी । २ सफेद घुँघची ।

काकायु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] स्वर्णवल्गु (कौं) ।

काकार—वि० [सं०] जन ठिठकने या फैलनेवाला (कौं) ।

काकारि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] उल्लू (कौं) ।

काकाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'काकन (कौं) ।

काकाण्ट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पर्यंक । खाट (कौं) ।

काकिणि, काकिणिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'काकिणी' (कौं) ।

काकिणिक—वि० [सं०] दे० 'काकिणीक' (कौं) ।

काकिणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ घुँघची । गुंजा । २ पण का चतुर्थ
भाग जो पाँच गड्ढे कीड़ों का होता है । ३. मासे का चौथाई
भाग । ४. कौड़ी ।

काकाणीक—वि० [सं०] काकिणीवाला । प्रत्यक्ष धनवाना (कौं) ।

काकिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'काकिणी' । उ०—साधन फल स्रुति
सार नाम तत्र भवसरिता कहें बेरो । मोड़ पर कर काकिनी
लाग सठ बेचि होत हठ बेरो ।—तुलसी (शब्द०) ।

काकिल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कंउहार । कठमणि । २ गरदन का
ऊपरी भाग (कौं) ।

काकी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कोए की मादा ।

काकी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० काका] चाची । चची ।

काकु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ छिपी हुई चुटीनी बात । व्यंग । तनज ।
ताना । उ०—(क) राम विरह दशरथ दुखित कहत केकयी
काकु । कुसमय जाय उपाय तब केवल कर्मविपाकु ।—
तुलसी (शब्द०) । (ख)—विनु समझे निज अघपरिपाकु ।
जारिउ जाय जननि कहि काकु ।—तुलसी (शब्द०) । २.
अलकार में वक्रोक्ति के दो भेदों में से एक जिसमें शब्दों के
अन्यार्थ या अनेकार्थ में नहीं बल्कि ध्वनि ही से दूसरा
अभिप्राय ग्रहण किया जाय । जैसे,—क्या वह इतने पर भी न
आवेगा ? अर्थात् आवेगा । उ०—मालकुल कोकिल कतिन
यह ललित वसत बहार । कहु सखि । नहि ऐ हैं कहा प्यारे
अबहुँ अगार (शब्द०) । ३. मलाष्ट कयन (कौं) । ४. जिह्वा
(कौं) । ५. जोर देना । बल देना (कौं) ।

काकुत्स्थ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ ककुत्स्थ राजा के वंश में उत्पन्न पुरुष ।
२ रामचन्द्र ।

काकुद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तालु (कौं) ।

काकुनी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ककुनी] दे० 'कङ्गनी' ।

काकुम—सञ्ज्ञा पुं० [तु० काकुम] तानार देश के ठंडे भागों में होने-
वाला एक प्रकार का नम्रला ।

यो०—काकतालीय न्याय ।

काकतालीय न्याय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'काकतालीय' ।

काकतिक्ता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] काकजघा । घुँघची [को०] ।

काकतुङ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० काकतुण्ड] काला अगर ।

काकतुङी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० काकतुण्ड] कौप्राठीठी ।

काकदत्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं० काकदन्त] काई असमव वात ।

विशेष—कोए को दाँत नहीं होते, इससे शशशृंग, वध्यापुत्र आदि शब्दों की तरह काकदत्त भी असमववाचक है ।

यो०—काकदत्तगवेषण = (१) असमव का खोज । (२) व्यर्थ चेष्टा या श्रम ।

काकध्वज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बड़वानल । वाडवाग्न ।

काकपक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वालों के पट्टे जो दानों और कानों और कनपटियों के ऊपर रहते हैं । कुल्ला । जुल्फ ।

विशेष—इस प्रकार के बान रखनेवाले माथे के ऊपर के बाल मुँड़ा डालते हैं और दोनों ओर बड़े बड़े पट्टे छोड़ देते हैं जो कोए के पंख के समान लगते हैं ।

काकपक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं० काकपक्ष] ३० 'काकपक्ष' । काकपक्ष सिर सोहत नीके । गुच्छा विच विच कुमुम कली के । —तुलसी (शब्द०) ।

काकपद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वह चिह्न जो छूटे हुए शब्द के स्थान को जताने के लिये पंक्ति के नीचे बनाया जाता है और वह छूटा हुआ शब्द ऊपर लिख दिया जाता है । २. हीरे का एक दोष । छपहलू या अठपहलू हीरे में यदि यह दोष हो तो पहननेवाले के लिये हानिकारक समझा जाता है । ३. कोए के पैर का परिमाण । स्मृति में यह एक शिखा का परिमाण माना गया है । ४. चर्मच्छेदन । ५. रतिविषयक एक आसन या वध (को०) ।

काकपाली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कोयल । उ०—लगे सोम कर तोम सर भई हिए वर घाइ । कूक काकपाली दई आली लाइ लगाइ । —राम० धर्म०, पृ० २७३ ।

काकपीलु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुचला ।

काकपुच्छ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कोयल ।

काकपुष्ट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कोयल ।

काकपेय—वि० [सं०] छिछला [को०] ।

यो०—काकपेया नदी = छिछली नदी ।

काकफल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. नीम का पेड़ । २. नीम का फल ।

काकफला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का जामुन । बनजामुन ।

काकवध्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० काकवध्या] वह स्त्री जिसे एक सतति के उपरांत दूसरी सतति न हुई हो । एक वांछ ।

काकवलि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] आद के समय भोजन का वह भाग जो कौश्यों को दिया जाता है । कागौर ।

काकभीरु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] उल्लूक । उल्लू ।

काकभुशुंडि—सञ्ज्ञा पुं० [सं० काकभुशुण्डि] एक ब्राह्मण जो लोमश के शाप से कौश्या हो गए थे और राम के बड़े भक्त थे । कहते हैं कि इनकी बनाई भुशुंडि रामायण भी है ।

काकमद्गु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दात्यूह नामक पक्षी [को०] ।

काकमर्द, काकमर्दक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] लौकी [को०] ।

काकमाचिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] मकोय [को०] ।

काकमाची, काकमाता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] मकोय ।

काकमारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ककमारी' ।

काकयव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] छूछा पोधा । ऐसा पोधा जिसकी बाल में दाना न हो [को०] ।

काकरव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] डरपोक व्यक्त । असाहसी मनुष्य । वह व्यक्त जो जरा सी बात से डर जाय और कोए की तरह काँव काँव मचाने लगे ।

काकरासगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० काकडासगी] ३० 'काकडासीगी' ।

काकरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ककरी, हि० ककड़ी] ककड़ी । उ०—काकरी के चोर को कटारी मागियतु है—पद्माकर (शब्द०) ।

काकरक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. उल्लू । २. जोरू का गुलाम । म्थीमक्क । ३. घोड़ा । वचना [को०] ।

काकरक—वि० १. कायर । डरपोक । २. निर्धन । ३. नग्न [को०] ।

काकरकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] उल्लू की मादा [को०] ।

काकरूक—सञ्ज्ञा पुं०, वि० [सं०] दे० 'काकरक' [को०] ।

काकरूकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] 'काकरकी' [को०] ।

काकरूत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कोए की कर्कश बोली [को०] ।

काकरूहा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पोधा जो पेड़ों के सहारे जीता है [को०] ।

काकरेज—सञ्ज्ञा पुं० [फा० काकरेज] बँगनी रग । काने और लाल रग के मेल से बनाया हुआ रग । जड़ा रग ।

काकरेजा—सञ्ज्ञा पुं० [फा० काकरेज + हि० आ (प्रत्यय)] १. काकरेजी रग का कपड़ा । २. काकरेजी रग ।

काकरेजी—सञ्ज्ञा पुं० [फा० काकरेजी] एक रग जो लाल और काले के मेल से बनता है । कौकची ।

विशेष—कपड़े को आल के रग में रँगकर फिर लोहार की स्याही में रँगते हैं ।

काकरेजी—वि० काकरेजी रग का ।

काकलव—वि० [सं० काक + लम्प] कोए का प्राप्य या ग्राह्य (ग्राह्य) । उ०—मप जोइ सिध जबक हरै । काकलव पपील गहि ।—पृ० रा०, २६ । १० ।

काकल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० काकली] १. गले में सामने की ओर निकन हुई हड्डी । कोआ । घटी । टेंदुवा । १. काला कौआ । ३. कठ की मण्डि । गले की मण्डि [को०] ।

काकलक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. स्वरनलिका या स्वरयंत्र का सिरा । २. गले की मण्डि । ३. एक धान का नाम [को०] ।

काकलि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'काकली' [को०] ।

काकली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. मधुर ध्वनि । कलनाद । उ०—पिय विनु कौकिल काकली भली अली दुख देत ।—शु० सत० (शब्द०) । २. सँघ लगाने की सबरी । ३. साठी धान । ४,

काउर^७—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० काँवर] दे० 'काँवर'—२। उ०—
काउर का पाणी पुनिर गिर पईसँ।—गोरख०, पृ० १३५।

काऊ^१—किं० वि० [सं० कुह, या *कुव अथवा म० कदापि, प्रा० कदापि कदापि > कझाड, काऊ] कभी। उ०—हिय तेहि निकट जाय नहि काऊ।—तुलसी (शब्द०)।

काऊ^२—सर्व० [सं० किमपि या कोपि] १ कोई। २ कुछ।—उ०
(क) पय श्रम लेश कलेश न काऊ।—तुलसी (शब्द०)।

(ख) गुन ग्रवगुन प्रभु मान न काऊ।—तुलसी (शब्द०)।

काऊ^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] वह छोटी खूँटी जो वरही के सिरे पर जोते हुए खेत को बराबर करनेवाले पाटे या हेम में लगी रहती है। कानी।

काए^७—वि० [हिं० का] दे० 'किस'। उ०—कँ दुखु री तोइ मात पिता की, कँ तेरे मा जाए बीर, काए दुख डूबि जैए।—
पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ६१६।

काएथ्य^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कायस्थ] दे० 'कायस्थ'। उ०—तबहु न चुबिक्य एकग्रो शिरि केशव काएथ्य।—कीर्ति०, पृ० ७०।

काएनात—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० काइनात] मृष्टि। ससार। दुनिया। उ०—
जिससे है कायम यह कुल काएनात।—कवीर मं०, पृ० ४६।

काकदि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० काकदि] एक देश का प्राचीन नाम। आजकल इसे कोकद कहते हैं। तुर्किस्तान में कोकंद नाम का नगर जो समरकंद से पूरव है।

काक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [सं० काकी] १. कोआ। २. लेंगडा व्यक्ति (को०)। ३. एक प्रकार का तिलक (को०)। ४. एक माप (को०)। ५. एक द्वीप (को०)। ६. कोआ की भाँति पानी में केवल सिर डुबाकर स्नान करना (को०)। ७. घूर्त व्यक्ति (को०)। ८. ढोठ या घृष्ट व्यक्ति (को०)।

काक^२—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कार्क] एक प्रकार की नर्म लकड़ी जिसकी डाट बोटलो में लगाई जाती है। काग।

काक^७—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० काका] दे० 'काक'। उ०—पुनि कन्ह काक गोइद राइ। परिपुनं क्रोध जे लगत लाइ।—पृ० रा०, १४४०।

काककगु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० काककङ्गु] चेना। कँगनी। काकुन।

'काककला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. चतुर्दश ताल का एक भेद। २. काकजंघा नाम की ओपधि।

काकगोलक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कोए की आँख की पुतली। उ०—
उनको हितु उनही वन कोऊ करी अनेकु। फिरतु काकुगोलक भयो दुहूँ देह ज्यों एकु।—विहारी (शब्द)।

विशेष—प्रसिद्ध है कि कोए की आँखें तो दो होती हैं, पर पुतली एक ही होती है और वह जब जिस आँख से देखना चाहता है तब वह पुतली उसी आँख में चली जाती है।

काकचचकु^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० काकचिञ्चा] दे० 'काकचिञ्चा' उ०—
काकचचकु कृत्नला गुजा करत प्रनाम।—अनेकार्य०, पृ० २८।

काकचिञ्चा^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० काकचिञ्चा] गुजा। घुँघची (को०)।

काकचेष्टा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कोए के समान सावधान या चौकन्ना रहना (को०)।

काकच्छद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. काकपत्र। २. खजन (को०)।

काकजंघा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० काकजङ्घा] १. चकसेनी। मर्ती।

विशेष—इसका पौधा तीन चार हाथ तक ऊँचा जाता है। इसके डंठल में चार-पाँच अंगुल पर फूली हुई गाँठें होती हैं। गाँठों पर डठल कुछ टेढ़ा रहता है जिससे वह चिड़िया की टाँग की तरह दिखाई देता है। प्रत्येक पुरानी मोटी गाँठ के भीतर एक छोटा कीड़ा होता है जो बच्चों की पसली फड़कने में दवा की तरह दिया जाता है। इसकी पत्तियाँ इंच डेढ़ इंच लंबी होती हैं। बँधक में कार्बजवा कफ, पित्ता, खुजली, रुमि और फोड़े फुसी को दूर करनेवाली मानी जाती है। २. गुजा। घुँघची। ३. मुगौन या भुगवन नाम की लता।

काकजवु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० काकजम्बु] दे० 'काकाफला' (को०)।

काकजात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कोकिल। कोयल (को०)।

काकडा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्कट, प्रा० कवकड] एक बड़ा पेड़ जो सुलेमान पहाड़ तथा हिमालय पर कुमाऊँ आदि स्थानों में होता है।

विशेष—जाड़े में इसके पत्ते झड़ जाते हैं। इसकी कड़ी लकड़ी पीलापन लिए हुए भूरे रंग की होती है और कुरसी, मेज, पलंग आदि बनाने के काम में आती है। इसपर खुदाई का काम भी अच्छा होता है। पत्ते चौपायों को खिलाए जाते हैं। इसमें सींग के आकार के पोले बाँदे लगते हैं जिन्हें 'काकडासींगी' कहते हैं।

काकडा^२—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का हिरन जिसे साँबर या सावर भी कहते हैं।

काकडासींगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कर्कटशृङ्गी] हिमालय के उत्तर पश्चिम भाग में काकडा नामक पेड़ में लगा हुआ एक प्रकार का टेढ़ा पोला बाँदा जिसका प्रयोग औषधों में होता है।

विशेष—यह रंगने और चमड़ा सिमाने के काम में भी आता है। लाहे के चूर के साथ मिलकर यह काला नीला रंग पकड़ता है। बँधक में इसे गरम और भारी मानत हैं। खाने में इसका स्वाद कर्बला होता है। वात, कफ, श्वास, खाँसी, ज्वर, अतिसार और अरुचि आदि रोगों में इसे देते हैं। अरकोल या लाखर नामक वृक्ष का बाँदा भी काकडासींगी नाम से विकता है।

काकण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कोड़।

विशेष—इस रोग में त्रिदोष के कारण रोगी के शरीर में गुजा के समान लाल रंग के चकत्ते पड़ जाते हैं जिनमें बीच-बीच में काले बिंदु भी होते हैं। ये चकत्ते पकत तो नहीं, पर इनमें पीड़ा और खुजली बहुत अधिक होती है।

काकणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] घुँघची।

काकतालीय—वि० [सं०] सयोगवश होनेवाला। इत्ताफकिया।

विशेष—यह वाक्य इस घटना के अनुसार है कि किसी ताड़ के पेड़ पर एक कोआ ज्यों ही आकर बँठा त्यों ही उसका एक पका फल लड़ से नीचे टपक पड़ा। यद्यपि कोए ने फल को नहीं गिराया, तथापि देखनेवालों को यह धारणा होना सभ्य है कि कोए ने ही फल गिराया।

के अत मे फूलता है। फूल जीरे मे सफेद रूई की तरह लगते हैं। काँस रस्सियाँ बटने और टोकरे आदि बनाने के काम मे आता है। इसकी एक पहाड़ी जाति वनकस या बगई कहलाती है जिसकी रस्सियाँ ज्यादा मजबूत होती हैं और जिससे कागज भी बनता है।

विशेष—कोई कोई इस शब्द को स्त्रीलिंग मे भी बोलते हैं।

मुहा०—काँस मे तैरना = असमजस मे पडना। दुविधा मे पडना। काँस मे फँसना = सकट मे पडना।

काँसा^१—सञ्ज्ञ पुं० [सं० कास्य] [वि० काँसो] एक मिश्रित धातु जो ताँबे और जस्ते के संयोग से बनती है। कसकुट। भरत।—
उ०—कसि ऊपर बीजुरी, परं अचानक आय। ताँबे निर्भय ठीकरा, सतगुरु दिया बताय।—कबीर (शब्द०)।

विशेष—इसके बरतन और गहने आदि बनते हैं।

यो०—कँसभरा = काँसे का गहना बनाने और बेचनेवाला।

काँसा^२—सञ्ज्ञ पुं० [फा० कासा] १ भीख माँगने का ठीकरा या खप्पर। २ प्याला।

काँसागर—सञ्ज्ञ पुं० [हि० काँसा + फा० गर (प्रत्य०)] काँसे का काम करनेवाला।

काँसार—सञ्ज्ञ पुं० [सं० कास्यकार] काँसे का बरतन बनानेवाला। कसेरा।

काँसी^१—सञ्ज्ञ स्त्री० [सं० काश] धान के पौधे का एक रोग।

क्रि० प्र०—लगना।

काँसी^२—सञ्ज्ञ स्त्री० [सं० कास्य] काँसा।

काँसी^३—सञ्ज्ञ स्त्री० [सं० कनिष्ठा या कनीयसी] सबसे छोटी स्त्री। कनिष्ठा।

काँसुला—सञ्ज्ञ पुं० [हि० काँसा] काँसे का चौकोर टुकड़ा जिसमे चारो ओर गोल गोल खड्डे या गड्ढे बने होते हैं। कँसुला।

विशेष—इसपर सुनार चाँदी सोने आदि के पत्तार रखकर गोल करते हैं और कठा, घुडी आदि बनाते हैं।

का^१—प्रत्य० [सं० क, जैसे—वासुदेवक, स्थानिक अथवा सं० कृते, प्रा० केर, केरक, अप० (पुं०) अप० कर, भोज० क, कर आदि अथवा सं० कक्षे या कक्ष, प्रा० कच्छ, कवख, अप० कट्ट, कह आदि] सबध था षष्ठी का चिह्न, जैसे,—राम का घोड़ा। उसका घर।

विशेष—इस प्रत्यय का प्रयोग दो शब्दों के बीच अधिकारी अधिकृत (जैसे,—राम की पुस्तक), आधार आधेय (जैसे,—ईश का रस, घर की कोठरी), अगागी (जैसे,—हाथ की उँगली), कार्य कारण (जैसे,—मिट्टी का घड़ा), कर्तृ कर्म (जैसे,—विहारी की सतसई) आदि अनेक भावों को प्रकट करने के लिये होता है। इसके अतिरिक्त सादृश्य (जैसे,—कमल के समान), योग्यता (जैसे,—यह भी किसी से कहने की बात है?), समस्तता (जैसे,—गाँव के गाँव वह गए) आदि दिखाने के लिये भी इसका व्यवहार होता है। तद्धित प्रत्यय 'वाला' के अर्थ मे भी षष्ठी विभक्ति आती है, जैसे, वह नहीं आने का। षष्ठी विभक्ति का प्रयोग द्वितीया (कर्म) और तृतीया (करण) के स्थान पर भी कही कही होता है, जैसे, रोटी का खाना, बटुक की लड़ाई। विभक्तियुक्त शब्द के साथ

जिस दूसरे शब्द का सबध होता है, यदि वह स्त्रीलिंग होता है तो 'का' के स्थान पर 'की' प्रत्यय आता है।

का^२—सर्व० [सं० क, या किम् या किमिति] १. क्या। उ०—का क्षति लाभ जीर्ण धनु तोरे।—तुलसी (शब्द०)। २. ब्रत भापा मे कौन का वह रूप जो उसे विभक्ति लगने के पढ़ने प्राप्त होता है, जैसे,—काको, कासो। उ०—कहो कोशिक, छोटी सो दोटी है काको?—तुलसी (शब्द०)।

का^३—सञ्ज्ञ पुं० [हि० काका का ससिप्त रूप] दे० 'काका'। उ०—पच राट पचाल,, लित्र बैराट बद्धार। जैतसिंह मोहा मुआल का कन्ह नाह नर।—पृ० रा०, २१। ५५।

काअय^१—सञ्ज्ञ पुं० [सं० कायस्य] 'कायय'। उ०—बहुल ब्रह्मण बहुल काअय राजपुत्र कुल बहुल बहुल।—कीर्ति०, पृ० ३२।

काअर^१—वि० [सं० कातर] दे० 'कातर'। उ०—सग्य पड़ठे जीअना तीनू काअर काज।—कीर्ति०, पृ० २०।

काइ^१—सञ्ज्ञ स्त्री० [सं० काया] दे० 'काया'। उ०—सप्त तितस्ति काइ कौं करचो। रहत वदुरि कहाँ धौं परचो।—भद श० पृ० २७०।

काइ^२—क्रि० वि० [सं० क इति या किमिति, हि०] 'क्यों'। उ०—दादू मझि कलूय मेला, तोडे बीयान काइ डे—दादू०, पृ० ५४४।

काइय^१—सञ्ज्ञ पुं० [सं० कायस्य] दे० 'कायय'। उ०—बुल्लि सुजान करेय दिवानह। काइय सब लायक बुधवानह।—पृ० रासो, पृ० २०।

काइम^१—वि० [अ० कायम] दे० 'कायम'। उ०—(क) दिखाइ दीदार मौज वदे की काइम करो मिहाल।—दादू०, पृ० ५६७। (ख) मरदूद तुझे मरना सही। काइम अकल करके कही।—सत नुरसी०, पृ० ४१।

काइर^१—वि० [सं० कातर, प्रा० कायर] दे० 'कायर'। उ०—इसो आगम भी सुवावन्न वीर। कपे काइर धीर रप्यो सुधीर।—पृ० रा०, ६। १५२।

काइयाँ—वि० [हि० काँइयाँ] दे० 'काइया'।

काई—सञ्ज्ञ स्त्री० [सं० कावार] १ जल या सीड मे होनेवाली एक प्रकार की महीन घास या सूक्ष्म वनस्पतिजान।

विशेष—काई भिन्न भिन्न आकारो और भिन्न भिन्न रंगो की होती है। चट्टान या मिट्टी पर जो काई जमती है, वह महीन सूत के रूप मे और गहरे या हल्के रंग की होती है। पानी के ऊपर जो काई फैलती है, वह हल्के रंग की होती है और उसमे गोल गोल वारीक पत्तियाँ होती हैं तथा फूल भी लगते हैं। एक काई लबी जठा के रूप मे होती है, जिसे सेवार कहते हैं।

क्रि० प्र०—जमना।—लगना।

मुहा०—काई छड़ाना = (१) मैल दूर करना। (२) दुख दारिद्र्य दूर करना। काई सा फट जाना = वितर वितर हो जाना। छँट जाना। जैसे,—बादलो का, भीड का इत्यादि।

२ एक प्रकार का हरा मुर्चा जो ताँबे, पीतल इत्यादि के बरतनों पर जम जाता है। ३. मैल। मैल। उ०—जब दर्पन लागी काई। तब दरस कहाँ ते पाई।—(शब्द०)।

काँधा^१—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण, प्रा० कृष्ण, (कृ) कान्ह] २० 'कान्हा'।

काँधी—संज्ञा श्री० [हिं० काँधा] कंधा।

मुहा०—काँधी देना = उधर उधर करके बात टालना। टाल मटन करना। काँधी मारना = घोड़े का मपनी गर्दन को किसी घोर झोके के साथ फेरना जिससे सवार का प्राणन हिल जाय।

काँन^२—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण, प्रा० कण्ह, (कृ) कान्ह] २० 'कान्ह'।

उ०—मलक लोक वज्रजत विषम गन गध्रव्य विमान। सुराति मति भूल्यो रहसि रास रचित व्रज कान।—पृ० रा०, २।३४१।

काँन^३—संज्ञा पुं० [सं० कर्ण, प्रा० कण्ह] २० 'कान'। उ०—'बैजू' बनवारी बत्ती यधर धरि वृदावन चंद, बस किए सुनहि कानन।—पोद्दार ग्रंथि० प्र०, पृ० १५१।

काँनू^४—संज्ञा पुं० [सं० कर्ण, प्रा० कण्ह, हिं० कान] २० 'कान'। उ०—पहिलो वस्त्र जावर सार काँनूँ कुँडल घाठोया।—वी० राय०, पृ० २२।

काँप—संज्ञा श्री० [सं० कम्पा] १. नीच या किसी घोर चीज की पतली लचीली तोली जो झुकाने से झुक जाय। २. पतल या कमकीच की वह पतली तोली जो धनुष की तरह झुकाकर लगाई जाती है। ३. सुमर का छाय। ४. हाथी की दाँत। ५. कान में पहनने का सोने का गहना।

विशेष—यह पत्ते के आकार का होता घोर पहनने पर हिला करता है। 'मिथवा' इसे पाँच पाँच या नास नास करके कान की बानी में पहनती है। यह जटाज नी होता है।

६. करनफूल। ७. कलई का चूना।

काँपना—क्रि० सं० [सं० कम्पन] १. हिलना। यरघराना। उ०—यन यन जोहि चीर सिर गहा। काँपत बीजु दुई दिवि रहा।—जायसी (गबद०)। २. डर से काँपना। यरना। उ०—डोन्ड गगन ईदर उरि काँपा। बानुकि जाइ पतारहि पाँपा।—जायसी (गबद०)। ३. डरना। भयभीत होना। मंयो० क्रि०—उठना।—जाना।

काँपा^५—संज्ञा पुं० [हिं० कपा या काँप] लागत जिससे चिड़िया फँसती है। उ०—राम कोष को काँपा भायो नवो मधीन उषस को।—नरसिं० बानी, पृ० ११८।

काँपा^६—संज्ञा पुं० [सं० कम्प] कप। कपन। उ०—गन्दर गरन रहति नई एखे। काँपा जुठ मुर पिऊनन खँखे।—नंद० प्र०, पृ० ३२०।

काँमनी^७—संज्ञा श्री० [सं० कामिनी] २० 'कामिनी'। उ०—बाण्ड उरद बेर पुगण नंगल गारद काँमनी।—वी० राय०, पृ० १३।

काँमनारी^८—संज्ञा पुं० [सं० कामण (पत्नीकरण) + कार, पुं० कामण + प्रा० पार (प्रत्यय)] आहुत।—काँमनारी ईद से रो प्यारी मयुरी बँन बनारि छे।—दशरथ, पृ० ४४३।

काँमण—संज्ञा श्री० [सं० कामिनी] २० 'कामिनी'। उ०—ईद मुहामण यन सजल मोटा योरा जोइ। मान काँमण मुई दखिण, बइ हरि दिवइ न होइ।—डोला०, पृ० ६८६।

काँमरि^९—संज्ञा श्री० [हिं० कामरी] २० 'कामरी'। उ०—मेरा मेरी काँमरि नीरि लई।—पोद्दार ग्रंथि० प्र०, पृ० ११२।

काँय काँय—संज्ञा पुं० [धनु०] कोय का कः।

काँव काँव—संज्ञा पुं० [धनु०] कोर का कः।

काँवर—संज्ञा श्री० [हिं० काँध + पावर (प्रत्यय)] प्रत्यय श्री० कम्पनार] १. बाग का एक मोटा छटा जिसके दोनों छोरों पर धनु बांधने के लिये छीके लगे रहते हैं और जिसमें कंधे पर रखकर कहार प्रादि चढ़ते हैं। पहंगी।

मुहा०—काँवर चढ़ना = (१) मार या उतरासविल का निराह करना। (२) बोझ डोना।

२. एक छडे के छोर पर बंधी हुई गाँव की टोकरियाँ जिसमें घासी गंगाजल ले जाते हैं।

काँवरयो—संज्ञा पुं० [हिं० काँवारयो] २० 'काँवारयो'।

काँवरा—वि० [प० कमला = पाणल] आकुल। घबराया हुआ। नीचरहा। हाका बसका। रँवे—उन लोगों ने सारा धोर ले घेरकर मुझे काँवरा कर दिया।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

काँवरि^{१०}—संज्ञा श्री० [हिं० काँवर] २० 'काँवर'। उ०—(१) यवन यवन करि ररि मुई माता काँवरि लागि। पुन भिडु पानि न पावइ दसरप सारि प्राणि।—रायसी (गबद०)। (२) नहस बहट नरि कमल बनाए। प्रपनी प्रपारि मोर गोप न विनकी साथ पठाए। धोर बहुत काँवरि मायन ररि महिरन काँधे जोरो। चतुव दिनकी मोरो कहिने मोर पर जलजामन ठोरो।—गुरु (गबद०)। (३) काँवरि ररिदि चले कहारा। पिपिध पस्तु को बरनद वारा।—गुनया (गबद०)।

काँवरिया—संज्ञा पुं० [हिं० काँवरि] काँवरि लेकर चलनवाला मनुष्य। काँवारयो।

काँवरी^{११}—संज्ञा श्री० [हिं० काँवर] २० 'काँवरि'।

काँवरु^{१२}—संज्ञा पुं० [सं० कामरुप, प्रा० कामरुप] आहुत। उ०—यू काँवरु परा वन सोता। नूना कम उरु रनु राना। बावरी प्र० (गुन), पृ० ३३०।

काँवरु^{१३}—संज्ञा पुं० [सं० कामरु] कामरु रोग।

काँवारयो^{१४}—संज्ञा पुं० [सं० कामावयो] यह बी बिजो जाय न किसी कामता से काँवर लेकर जान।

काँत^{१५}—संज्ञा पुं० [प० काय] एक प्रकार का रस या तत्व जो प्रपरा जैसा धोर बहुत बसो ब होता है। उ०—यू काँत नरुन मदि जाइ। अनु यरी छटु बगट हुआई।—गुरु ररि (गबद०)। (२) प्राण कन मड मूर राति। काँतन नई नो नो राँधे (गबद०)।

विशेष—इसकी पगियाँ दो दो दाँत दाँत हान लंबी धोर पर उ मोर नी दिव। काँत दुला कर एक बहुत है जोर रा

२ जहाज के लगर की डाड़ी, अर्थात् वह सीधा भाग जो मुड़े हुए अंकुशों और ऊपरी सिरे के बीच में होता है। ३. बाँस या लकड़ी का कुछ पतला सीधा लट्ठा जो घर की छाजन में लगता तथा और और कामों में भी आता है।

यो०—कांडी कफन = मुरदे की रथी का सामान।

४ छड़। लट्ठा। उ०—और सुआ सोने के डांडो। सारदूल रूपे की काँड़ी।—जायसी (शब्द०)। ५ भरहर का सूया डडल। रहठा।

काँडी—सखा श्री० [सं० काण्ड = समूह, मु०] मछलियों का समूह या झुंड। डाँवर।

काँती—सखा श्री० [हि० कत्ती] १ कैंची। २ छुरी। ३ विच्छेद का डक। ४ अत्यधिक व्यथा।

काँथरा—सखा पुं० [पुं० कन्था, हि० कथरी का पुं०] ३० 'काँथरि'। उ०—दे मदिरा भर प्याला पीवों। होइ मतवार काँथरा सीवों।—इंद्रा०, पृ० २०।

काँथरि—सखा श्री० [सं० कन्था] कथरी। गुदडी। उ०—कैसे ओढव काँथरि कया। कैसे पाँय चलव भुई पंथा।—जायसी (शब्द०)।

काँथरी—सखा श्री० [हि० कथरी] कथरी। गुदडी।

काँद—सखा पुं० [सं० स्कन्ध, प्रा० कम्प [पुं०] काँध] ३० 'कधा'। उ०—न देखे कोई त्यों आहिस्ता बग डग। हलूँ इस कदि ते उस काँद कूल ग।—दखिनी०, पृ० २८२।

काँदना—क्रि० प्र० [सं० कन्दन = चित्तलाना। वंग०] रोना। चित्तलाना। उ०—उसी समय एक श्रृंग जो ईधन के लिये वहाँ जा निकले, दूर ही से उसका रोना सुनके अति व्याकुल हो लगे सोच करने कि यह तो अनाथ स्त्री कोई काँदती है।—सदल मिश्र (शब्द०)।

काँदर—सखा पुं० [सं० कादर] ३० 'कादर'। उ०—भलमल तीर तरवारि वरछी देपि काँदर काचा।—सुदर प्र०, भा० २, पृ० ८८५।

काँदरना—क्रि० प्र० [सं० कन्दन, हि० काँदना] चित्तलाना। कन्दन करना। उ०—बीजल ज्यों चमकै बाढाली, काँदर काँदरि भाजै।—सुदर प्र० भा० २, पृ० ८८५।

काँदवा—सखा पुं० [सं० कदम, प्रा० कदम, पुं० कदो, काँवो] ३० 'काँदो'। उ०—विन काँदव जिमि कमल सुखाई।—माधवा नल०, पृ० २०२।

काँदा—सखा पुं० [सं० कन्द] एक गुल्म जिसमें प्याज की तरह गाँठ पड़ती है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ प्याज से कुछ चौड़ी होती हैं। यह तालों के किनारे होता है। वर्षा का जन पड़ने पर इसमें पत्ते निकलते और सफेद रंग के फूल (घतूरे के फूल के ऐसे) लगते हैं जिनके दलों पर पाँच छह खड़ी लाल धारियाँ होती हैं। इन धारियों के सिरो पर अर्धचंद्राकार पीले चिह्न होते हैं। इसकी गाँठ माडी देने के काम में आती है। इसे कंदली या कदली भी कहते हैं। इनका संस्कृत नाम भी कदली ही है।

२ प्याज। उ०—ज्याँ मझ काँदा छोट जिम।—याँकी० प्र०, भा० २, पृ० ६७।

काँदू—सखा पुं० [सं० कान्दिक] १ वनियों की एक जाति। २ वह जाति जो नडभूजे का व्यवसाय करती है।

काँदो—सखा पुं० [सं० कदम, प्रा० कदम] कीचड़। कीचड़। पक। उ०—घगिन्हि कहँ पानी घर पाँटा। पछिन्हि काहु न काँदो पाँटा।—जायसी (शब्द०)।

काँध—सखा पुं० [सं० कन्ध, प्रा० कंध] कंधा। उ०—(क) मत्त मत्तें सय गजरहि बाँधे। निधि दिन रदहि महाउत बाँधे।—जायसी (शब्द०)। (घ) मस्तक टीका काँध जनेऊ। कवि विद्यास पंडित सहदेऊ।—जायसी (शब्द०)।

मुहा०—काँध देना = (१) सहारा देना। उठाने में सहायता करना। किसी भारी चीज को कंधे पर उठा कर ले जाने में सहायता देना। (२) अमीकार करना। ऊपर लेना। मानना। उ०—यह सो कृष्ण बलराम जन कीन चढ़ै छर बाँध। हम विचार यस प्रावहि मेरहि दीज न काँध।—जायसी (शब्द०)। काँध मारना = न टिकना। छोड़ा देना। काम न माना। उ०—सजग जो नाहि मारवल काँधा। बुध कहिये हस्ती काँ बाँधा।—जायसी (शब्द०)। काँध लगना = भारी या दूर तक बोझ ले जाने से कंधा दुखना या कल्लाना (फहारो की बोली)। काँध लेना = उठाना। ऊपर लेना। संभालना। उ०—काँध समुद घस नीन्हेंहि मा पादे सब कोइ। कोइ काहु न सँभारै मापन घापन होइ।—जायसी (शब्द०)।

२ कोल्हू की जाठ में मुंडी के ऊपर का पतला भाग।

काँधना—क्रि० प्र० [हि० काँध से नाम०] १ उठाना। सिर पर लेना। संभालना। उ०—(क) श्रीनि पहाड नार जो काँधा। कित तेहि छूट लाइ जिम बाँधा।—जायसी (शब्द०)। (घ) उठा बाँध जस सब गड बाँधा। कीजें वेगि भार जस काँधा।—जायसी (शब्द०)। १ ठानना। मचाना। उ०—(क) सुभुज मारीच छर त्रिसिर दूगन वाति दलत जेहि दूसरो सर न साँधो। आनि पर वाम, विप्रि वाम तेहि राम सो सकत सग्राम दसकंध काँधो।—तुलसी (शब्द०)। (घ) भूपन भनत सिवराज तव किति सम और की न किति कहिये को काँधियतु है।—भूपण (शब्द०)। ३ स्वीकार करना। अमीकार करना। उ०—(क) जो पहिले मन मान न काँधे। परछे रतन गाँठि तब बाँधे।—जायसी (शब्द०)। (घ) तिनहि जोति रन मानेसु बाँधो। उठि सुन विनु मनु सासन काँधो।—तुलसी (शब्द०)। ४ भार सहना। अंग्रेजना। सहना। उ०—विरह पीर को नैन ये सकें नहीं पल काँध। मीत प्राइकै तू इन्हें रूप पीठि दै बाँध।—रतनहारा (शब्द०)।

काँधर—सखा पुं० [सं० कृष्ण प्रा० कण्ठ] कान्हा। कृष्ण। उ०—कहि सुदर भीतर जाइ जो देखो तो खोज नही कहूँ काँधर को।—सुदरीमवंसव (शब्द०)।

काँधा—सखा पुं० [सं० स्कन्ध, प्रा० कंध] ३० 'कधा'।

१२ नाक में पहनने का एक आभूषण । कील । लोह । १३. पजे के आकार का धातु का बना हुआ एक औजार जिससे अश्वेज लोग खाना खाते हैं । १४ लकड़ी का एक ठोचा जिसमें किसान धान भूसा उठाते हैं । वैशाखी । अखानी । १५ सूत्रा । मूजा । १६. घड़ी की मूई । १६. गणित में गुणन के फल के गुद्भाग्य की जाँच की एक क्रिया जिसमें एक दूसरे को काटती हुई दो लकीरें बनाई जाती हैं ।

विशेष—गुण्य के अंको को जोड़कर ६ में भाग देते हैं अथवा एक एक अंक लेकर जोड़ते और उसमें से ६ घटाते जाते हैं । फिर जो बचता है, उसे काटनेवाली लकीरों के एक सिरे पर रखते हैं । फिर इसी प्रकार गुणक के अंको को लेकर करते हैं, जो फल होता है, उसे लकीर के दूसरे सिरे पर रखते हैं, फिर इन दोनों आगने सामने के सिरों के अंको को गुणते हैं और इसी प्रकार ६ से भाग देकर शेष को दूसरी लकीर के एक सिरे पर रखते हैं । अब यदि गुणन फल के अंको को लेकर यही क्रिया करने से दूसरी लकीर के दूसरे सिरे पर रखने के लिये वही अंक आ जाय, तो गुणनफल ठीक समझना चाहिए । जैसे,—

$$\begin{array}{r} 5 \\ 6 \text{ --- } | \text{ --- } 6 \\ 3. \end{array}$$

२८४ × १२ = ३४०८ परीक्ष्य ।
२ + ८ + ४ = १४ ÷ ६ = शेष
१ + २ = ३ (६ का भाग नहीं लगता) दूसरे सिरे पर ।
५ × ३ = १५ ÷ ६ शेष ६, दूसरी लकीर के एक सिरे पर ।

$$३ + ६ + ८ = १५ ÷ ६ शेष ३ दूसरे सिरे पर ।$$

१८ वह क्रिया जो किसी गणित की शुद्धि की परीक्षा के लिये की जाय । १९ वह कुत्ता जिसमें दोनों पल मिलकर न लड़ें, बल्कि प्रनिवृद्धिता के भाव से लड़ें । २०. दरी की बिनाबट में उसके बेल बूटे का एक भेद जिसमें नोक निकली होती है । २१. एक प्रकार की आतशवाजी । २२. भाड़ या फानूस टाँगने या लटकाने की उसी की तरह बड़ी काँटिया । २३ मछली की हड्डी ।

काँटा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कण्ठ, या उपकण्ठ हिं० काँटा] जमुना के किनारे की वह निकम्मी भूमि जिसमें कुछ उपजता नहीं ।

काँटावाँस—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० काँटा + वाँस] एक प्रकार का काँटीला वाँस । मगरवास । नालवाँस । कटवाँसी ।

विशेष—यह मध्य प्रदेश, पूर्वी बंगाल और मासाम को छोड़कर प्रायः शेष मारे भारत में जगली रूप में पाया जाता है और उगाया भी जाता है । तवाशीर प्रायः इसी की गाँठों से निकलता है ।

काँटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० काँटा का मत्प्रा०] १ छोटा काँटा । कील । उ०—दरिया काँटी लोह की, पारस परस सोय ।—दरिया० वानी, पृ० ३३ ।

३-४५

क्रि० प्र०—गाडना ।—लपाना ।—डोंकना ।—ब्रदना ।

२ वह छोटी तराजू जिसकी डाँडी पर काँटा लगा हो । ऐसी तराजू मुनार लुहार आदि रखते हैं । ३ मूकी हुई छोटी कील । अँकुडी । ४ साँप पकड़ने की एक लकड़ी जिसके सिरे पर लोहे का अँकुड़ा लगा रहता है । ५. वेडी ।

मुहा०—काँटी खाना = कंद काटना । जेल काटना । कंद होना । (जुआरियों की बोली) ।

३. वह रुई जो धुनने के बाद बिनीना के साथ रह जाती है । ७ लडको का खेल जिसमें वे डोरे में ककड़ बाँधकर लड़ाते हैं । लगर ।

मुहा०—काँटी लड़ाना = लगर लड़ाना ।

काँठा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कण्ठ] १ गला । उ०—बाँधा कठ परा जरि काँठा । विरह क जरा जाइ कहें नाँठा ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २७० । २ वह लाल नीली रेखा जो ठोते के गले के किनारे मडनाकार निकलती है । उ०—हीरामन हों तेहि के परेवा । काँठा फूट करत तेहि सेवा ।—जायसी (शब्द०) । ३ किनारा । तट । उ०—(क) भाइ विभीषन जाइ मिल्यो प्रभु भाइ परेनुनि सायर काँठे ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) दरिया का काँठा ।—(लरा०), ४ पार्श्व । बगल ।

काँठा^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० काष्ठ] जुलाहों का लकड़ी का एक बालिश लवा पतला छड ।

विशेष—इसमें जुलाहे वाना बुनने के लिये रेशम लपेटते हैं । यदि ताना वादले का होता है तो काँठे ही ही बुनते भी हैं ।

काँठी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० काठी] ३० 'काठी' ।

काँडना^१—क्रि० सं० [सं० कण्डन (< √ कडि = रौंदना, नूसी अलग करना)] १. रौंदना । कुचलना । २. धान को कूट कर चावल और भूसी अलग करना । कूटना । उ०—उदधि अपार उत्तरवह न लागी वार केसरी सो मडड ऐसी डाँडिगो । वाटिका उजारि अक्ष रक्षकनि मारि नट भारी भारी रावरे के बाउर से काँडिगो ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १८८ । ३. लात उगाना । खूब पीटना । मारना ।

काँडली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० काण्ड] लोनी । कुलफा ।

काँडा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्णाक] १ पेड़ों का एक रोग जिसमें उनकी लकड़ी में कीड़े पड़ जाते हैं । २ लकड़ी का कीड़ा । ३. दाँत का कीड़ा ।

काँडा^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० काण्ड] काना ।

काँडी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० काण्डनी अथवा हिं० काँडना] १ ओखली का वह गड्ढा जिसमें धान आदि डालकर मूसल से कूटते हैं । २ भूमि में गड्ढा हुआ लकड़ी या पत्थर का टुकड़ा जिसमें धान कटने के लिये गड्ढा बना रहता है । ३ हाथी का एक रोग जिसमें उसके पैर के तनवे में गहरा घाव हो जाता है और उसको चलने फिरने में बड़ा कष्ट होता है । घाव में छोटे छोटे कीड़े भी रहते हैं ।

काँडी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० काण्ड] १. लकड़ी का डंडा जिससे भारी चीजों को धकेलते, ऊपर चढ़ाते तथा और प्रकार से हटाते हैं ।

काँगनी—संज्ञा स्त्री० [हि० काँगनी] दे० 'काँगनी' ।

काँगरी—संज्ञा पुं० [फा० कंगूरह] दे० 'कंगूरा' । उ०—जैसी विधि काँगरेऊ कोट पर जैसी विधि देपियत बुदबुदान नीर मैं ।—सुंदर ग्र०, भा० २, पृ० ६५० ।

काँगरू—संज्ञा पुं० [अ० कंगू] दे० 'कंगारू' ।

काँगारोल—संज्ञा स्त्री० [हि० कागारोल] दे० 'कागारोल' उ०—माया है कालू का दौर घरो घर काँगारोल, पोर पोर ठोर ठोर पाप बेलि जागी है ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ४३३ ।

काँगुनी—संज्ञा स्त्री० [हि० काँगनी] दे० 'काँगनी' । उ०—निपजे छेव काँगुनी धान । तिनहि निरखि हरखे जु किसान ।—नद० ग्र०, पृ० २८२ ।

काँग्रेस—संज्ञा स्त्री० [अ० काँग्रेस] दे० 'काँग्रेस' ।

काँच—संज्ञा स्त्री० [सं० कच, प्रा० कच्छ] १. धोती का वह छोर जिसे दोनों बाँधों के बीच से ले जाकर पीछे खोसते हैं । लाँग । क्रि० प्र०—बाँधना ।—खोलना ।

मुहा०—काँच खोलना = (१) प्रसंग करना । उ०—कामी से कुता भला रितु सर खोले काँच । राम नाम जाना नहीं भावी जाय न बाँच ।—कवीर (शब्द०) । (२) हिम्मत छोड़ना । साहस छोड़ना । विरोध करने में असमर्थ होना । ३. गुदेंद्रिय के भीतर का भाग । गुदाचक्र । गुदावर्त ।

क्रि० प्र०—निकलना = काँच का बाहर आना ।

विशेष—एक रोग जिसमें कमजोरी आदि के कारण पाखाना फिरते समय काँच बाहर निकल आती है । यह रोग प्रायः दस्त की बीमारीवाले को हो जाता है ।

मुहा०—काँच निकलना = (१) किसी श्रम या चोट के सहने में असमर्थ होना । किसी आघात या परिश्रम से बुरी दशा होना । जैसे—(क) मारेंगे काँच निकल आवेगी । (ख) इस पत्थर को उठाओ तो काँच निकल आवे । काँच निकलना = (१) अत्यंत चोट या कष्ट पहुँचाना । वेदम करना । (२) बहुत अधिक परिश्रम लेना ।

काँच—संज्ञा पुं० [सं० काच] एक मिश्र पदार्थ जो बालू और रेह या खारी मिट्टी को आग में गलाने से बनती है और पारदर्शक होती है । उ०—काँच किरच बदले सठ लेहो । कर तें डारि परसमणि देहीं ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—इसकी चूड़ी, बोटल, दर्पण आदि बहुत सी चीजें बनती हैं । यह कड़ा और बहुत कड़कोना होता है, इससे थोड़ी चोट से भी टूट जाता है । इसे बोलचाल में शीशा भी कहते हैं ।

काँचरि—संज्ञा स्त्री० [हि० काँचरी] दे० 'कचारी' । उ०—तजो देह जिमि काँचरि साँपा ।—कवीर सा०, पृ० ८५ ।

काँचरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुलिका, हि० काँचली] दे० 'काँचली' । उ०—जो लागि पौन चले जग मे सिय जीवित है विनु राम संघातो । तो लागि देह को यो तजु रे जैसे पन्नगी काँचरी को तजि जाती ।—हनुमान (शब्द०) ।

काँचली—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुलिका = आवरण] १. साँप की कंचुली । उ०—बल, वक्र, हीरा, केवरा, कौडा करका, काँस ।

उरग काँचली, कमल, हिम, सिकना, भस्म, कपास ।—के शव (शब्द०) । २. कंचुकी । चोली । उ०—रतन जडित की काँचली श्री कसी कंचूवउ परउ हो सुमीड़ ।—वी० रासो, पृ० ६६ ।

काँचा—वि० [सं० कषण या कषण अथवा कुपवव, *प्रा० कुपच्च* कुपच्च, कच्च, कच्चा] [स्त्री० काँची] १. कच्चा । अपक्व । २. अदृढ़ । दुर्बल । अस्थिर ।

मुहा०—काँचा मन = जो शुद्धता और भक्ति में ढढ़ न हो । उ०—जप माला, छापा तिलक सरें न एको काम । मन काँचि नाचे ब्या सचि रचि राम ।—विहारी (शब्द०) मन काँचा होना = जी छोटा होना । उत्साह और दृढ़ता न रहना । उ०—समय सुभाय नारि कर साँचा । मगल महुँ भय मन अति काँचा ।—तुलसी (शब्द०) काँची मति या बुद्धि = अपरिपक्व बुद्धि । खोटी समझ । उ०—ठकुराइत गिरिवर जू की साँची । हरि चरणारविद तजि लागत अनंत कहूँ तिनकी मति काँची । सूरदास भगवत भजत जे तिनकी लोक चहूँ युग खाँची ।—सूर (शब्द०) ।

काँची—वि० [हि० काँचा] दे० 'कच्चा' । उ०—काया काँची काँच सी, कचन होत न बार ।—दरिया० बानी, पृ० ६ ।

काँचु—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुक, प्रा० कचुप्र, कंचु] दे० 'कचुकी' । उ०—गलि पइहरयो टंकाउलि हारि पहिरि, पदारथ काँचु बड ।—वी० रासो, पृ० ११३ ।

काँचुरी—संज्ञा स्त्री० [हि० काँचरी] दे० 'काँचरी' । उ०—जैसे सपें काँचुरी जानै काया को ऐसे करि मानें ।—कवीर सा०, पृ० ६५७ ।

काँचूँ—संज्ञा पुं० [सं० कञ्चुल] कंचुल ।

काँचूँ—वि० [हि० काँच] जिसे काँच का रोग हो ।

काँछ—संज्ञा स्त्री० [हि० काँच] दे० 'काँच' ।

काँछना—क्रि० सं० [हि० काछना] दे० 'काछना' ।

काँछा—संज्ञा स्त्री० [सं० काङ्क्षा] अभिलाषा ।

काँज—संज्ञा पुं० [सं० कार्य, प्रा० कञ्ज, प्रप०, कज] दे० 'कार्य' । उ०—बडि साति छोटाहु काँज, कटक लटक परम बाज ।—कीर्ति० पृ० ६८ ।

काँजी—संज्ञा स्त्री० [सं० काञ्जिक] एक प्रकार का खट्टा रस जो कई प्रकार से बनाया जाता है और जिसमें अचार और बड़े आदि भी पड़ते हैं ।

विशेष—यह पाचक होता है और अपच में दिया जाता है । इसके बनाने की प्रधान रीतियाँ ये हैं,—(क) चावल के मूँड को मिट्टी के बर्तन में तीन दिन तक राई में मिलाकर रखते हैं और उसमें नमक आदि डालते हैं । (ख) राई को पीसकर पानी में धोले हैं और फिर उसमें नमक, जीरा, सोंठ आदि मिलाकर मिट्टी के बर्तन में रखते हैं । उठने या खट्टा होने के पहले बड़े और अचार उसमें डालते हैं । (ग) दही के पानी में राई नमक मिलाकर रख देते हैं और उठने पर काम में लाते हैं । (घ) चीनी और नीबू का रस अथवा सिरका मिलाकर पकाते और किमाव बनाते हैं ।

कास्टेबल—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कास्टेबल] पुलिस का सिपाही ।

यो०—हेड कास्टेबल = पुलिस के सिपाहियों का जमादार ।

कास्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. काँसा । कसकुट ।

यो०—कास्यकार । काँस्यदोहनी ।

२. धातु का बना हुआ पानपात्र (को०) ।

कास्यक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पीतल (को०) ।

कास्यकार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कसेरा । भरतवाला । ठठेरा ।

कास्यताल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मंजीरा । ताल ।

कास्यदोहनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] काँसे का बर्तन जिसमें दूध दुहा जाता है । कमोरी ।

विशेष—यह गोदान के साथ दी जाती है ।

कास्यभोजन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] काँसे का बरतन (को०) ।

कास्यमल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ताँवा पीतल आदि धातुओं में लगनेवाला मोर्चा (को०) ।

कास्ययुग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] इतिहास का वह युग जब अस्त्र शस्त्र और बर्तन आदि काँसे के बने थे ।

का^१०—प्रत्य० [हिं०] दे० 'को' । उ०—साईं नावों तोहि का माय ।
—जग० वानी, पृ० ३३ ।

का^२०—क्रि० वि० [हिं०] कहां का सक्षिप्त रूप दे० 'कहाँ' । उ०—
गया था काँ तेरा तब होश दाई, जो ऐसे मस्त दीवाने को
लाई ।—दखिनी०, पृ० २५१ ।

काँइ०—सर्व० [अप०] कोई । कुछ । उ०—मैं अकेला ए दोइ जणाँ
छेती नाहीं काँई ।—कवीर ग्रं०, पृ० ७२ ।

काँइया—वि० [अनु०] काँव काँव = (कोए का शब्द) चाँका, धूर्त ।
काँई^१—अव्य० [सं० किम्] क्यों । उ०—माईं म्हाको स्वप्न मे
वरनी गोपाल । राती पीती चूनरि पहिरी मेहँदी पाणि रसाल ।
काँई और की भरो भावरें म्हाको जग जजाल । मीरा प्रभु
गिरधरन लला सों करी सगाईं हाल ।—मीरा (शब्द०) ।

काँई^२—सर्व० [हिं०] काहि किते । किसको ।

काँका—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कङ्कु] कंगनी नाम का अनाज ।

काक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कङ्क] १. सफेद चील । कक । २. गीघ ।

काँकड^१०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कंकर, हिं० ककड़] दे० 'ककड' । उ०—
कासली पडेलो भूमि काँकड़ पैगाम ।—शिखर०, पृ० ३३ ।

काँकड़^२—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० ककड़] कपास का बीज । विनीला ।

काँकड़^३०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कङ्कु] युद्ध । उ०—काकण समै कुवेलिया
सरकण तणो सुभाव ।—बाँकी०, ग्रं०, भा० ३, पृ० २४ ।

काँकर०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कंकर] [स्त्री० अल्प० काँकरी] ककड ।
उ०—(क) काँकर पाथर 'जोरिके मसजिद लई चुनाय । ता
चढ़ि मुल्ला बाँग दे क्या बहिरा हुआ खुदाय ?—कवीर (शब्द०)
(ख) कुस कंटक मग काँकर नाना । चल पियादे विनु पद-
प्राना ।—तुलसी (शब्द०) ।

काँकरी०—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० काँकर का अल्पा०] छोटा कंकड़ ।—
(क) कुस कटक काँकरी कुराई । कटुक कठोर कुवस्तु दुराई ।
तुलसी (शब्द०) । (ख) गली साँकरी देवि गी बई काँकरी

मारि नहि विसरै विसरायहुं हरे हाँकरी नारि ।—श्रु० सत
(शब्द०) ।

मुहा०—काँकरी चुनना = चुपचाप मन मारकर बैठना । चिता
या वियोग के दुःख से किसी काम में मन न लगना ।

काँकर०—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० काँकर] दे० 'काँकर' । उ०—घर बँडे
भ्रानि उख नीद करत 'काँकर' चलावत निबर पाहि किन सोख
दीनी ग्रहो ले ।—घनानंद पृ० ४६२ ।

काँकल०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कङ्कु] युद्ध । उ०—मचियँ काँकल मदत
री, वीर न देखे वाट ।—बाँकी ग्रं०, भा० १, पृ० ५ ।

काँकां—सञ्ज्ञा पुं० [अनु०] कोए की बोली । उ०—घरी एक सज्जन
कुटुंब मनि बँडे रुदन कराहीं । जैसे काग काग के मूए काँ काँ
करि उडि जाही ।—सूर (शब्द०) ।

काँकुन०—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कङ्कु] दे० 'कंगनी' ।

काँकुनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० काँकुन] दे० 'कंगनी' ।

काँख—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कक्ष] बाहुमूल के नीचे की ओर का गड्ढा ।
वगल । उ०—अगदादि कपि मुछित करि समेत सुयोव ।
काँख दावि कपिराज कहें चला अमित बल सीव ।—तुलसी
(शब्द०) ।

काँखना—क्रि० अ० [अनु०] १. किसी अम या पीडा से उँह आदि
आदि शब्द मुँह से निकालना । २. मल या मूत्र को निकालने
के लिये पेट की वायु को दवाना ।

काँखासोती—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० काँख + सं० ओत्र, प्रा० सोत] दुपट्टा
ढालने का एक ढग । जनेउ की तरह दुपट्टा ढालने का ढग ।

उ०—पियर उपरना काँखासोती । दुहुँ आचरन्हि लगे मनि
मोती ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—इसमें दुपट्टे को बाँए कंधे और पीठ पर से ले जाकर
दाहिनी वगल के नीचे से निकालते हैं और फिर बाँए कंधे पर
ढाल लेते हैं ।

काँखी०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० काङ्क्षिन्] दे० 'काँखी' । उ०—शुक्र भागवत
प्रकट करि गायो कछु न दुविधा राखी । सूरदास ब्रजनारि सग
हरि माँगी करहि नही कोउ काँखी ।—सूर (शब्द०) ।

काँगडा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कङ्क] खाकी रंग का एक पदो ।

विशेष—इसकी छाती सफेद, कनपटी लाल और चोटी काली
होती है । यह डोलडोल में बुलबुल से बड़ा और गिलगिलिया
से छोटा होता है ।

काँगडा^२—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] पंजाब प्रांत का एक छोटा पहाड़ी प्रदेश ।
उ०—मयूरा को छोड़कर कोट कागड़ा मे गई ।—कवीर ग्रं०,
पृ० ४० ।

विशेष—इसमें एक छोटा ज्वालामुखी पर्वत है जो ज्वालामुखी
देवी के नाम से प्रसिद्ध है । प्राचीन काल में यह कुलूत और
कुलिंग प्रदेश के अंतर्गत था ।

काँगडी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० काँगड़ा] एक छोटी झंगोटी जिसे कश्मीरी
लोग गले में लटकाए रहते हैं ।

विशेष—यह भंगूर के बेल की बनती है इसके भीतर मिट्टी लपेटी
रहती है । पुरुष इसे गले से छाती के पास धोर स्निग्धा नाभि
के पास बद्धावी है ।

हैं तथा फूल का रंग भी कुछ ललाई लिए होता है। कसौजे का पौधा चकवड के पौधे से बहुत कुछ मिलता जुलता है। भेद केवल यही है कि इसके पत्ते नुकीले होते हैं और चकवड के गोल। इसकी फली चौड़ी और बीज नुकीले और कुछ चिपटे होते हैं, पर चकवड की पतली फली और गोल होती है जिसके भीतर उदं की तरह दाने होते हैं। यह कठुवा, गरम, कफ-वात-नाशक और खाँसी दूर करनेवाला होता है। कोई कोई इसका साग भी खाते हैं। लाल कसौजे की पत्ती और बीज बवासीर की दवा से काम आते हैं।

पर्या०—कासमर्द। शरिमर्द। कासारि। कर्कश। कालकत। काल। कनक।

कसौजी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कसौजा] दे० 'कसौजा'।

कसौदा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कासमर्द, प्रा० कासमर्द] दे० 'कसौजा'।

उ०—कोई हरफा रेडरी कसौदा।—जायसी ग्रं०, पृ० २७७।

कसौदी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कसौदा] दे० 'कसौजा'।

कसौटा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कसपट्ट, प्रा० कसवट्ट] दे० 'कसौटी'।

उ०—कसल कसौटा न भेल मलान। विनु हुत वहे भेल बाहर वान।—विद्यापति, पृ० ३०६।

कसौटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कसपट्टी, प्रा० कसवट्टी] १. एक प्रकार का काला पत्थर जिसपर रंगडकर सोने की परख की जाती है। शालिग्राम इसी पत्थर के होते हैं। कसौटी के खरल भी बनते हैं। उ०—कसिअ कसौटी चिन्हिअ हेम, प्रकृत परेखिअ सुपुष्प पेम।—विद्यापति, पृ० ३८१।

क्रि० प्र०—पर कसना।—चढ़ाना।—रखना।—लगाना।

मुहा०—कसौटी पर कसना—(१) जाँचना। (२) खरा सिद्ध होना। उ०—निज विचारो की कसौटी पर कस चले है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३७३।

२. परीक्षा। जाँच। परख। जैसे,—विपत्ति ही धैर्य की कसौटी है। ३. जाँच या परीक्षा का आधार।

कसौली—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] शिमले के पास ६००० फुट की ऊँचाई पर पहाड़ में एक स्थान जहाँ कुत्ते, स्वार आदि के विप की दवा की जाती है।

कस्टम कस्टम्स—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] दे० 'कस्टम ड्यूटी'।

कस्टम ड्यूटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] वह कर या महसूल जो विदेश से आने जानेवाले माल पर लगता है। कर। महसूल। चुगी। परमत।

कस्टमहाउस—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] वह स्थान या मकान जहाँ विदेश से आने जानेवाले माल पर महसूल देना पड़ता है। परमत हाउस।

कस्त—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कस्द] दृढ़ निश्चय। उ०—यह कस्त करि आए यहाँ रन हृथारन की मेटवी।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १४।

कस्तूरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० कासा] मिट्टी का चौड़े मुँह का एक बर्तन जिसमें दूध पकाया या रखा जाता है।

कस्तूर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] टान [की०]।

कस्तूर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कस्तूरी] १. कस्तूरी मृग। वह मृग जिसकी

नाभि से कस्तूरी निकलती है। २. एक सुगंधित पदार्थ जो बीवर नामक जंतु की नाभि से निकलता है।

कस्तूरा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कस्तूरी] कस्तूरी मृग।

कस्तूरा^२—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] १. जहाज के तख्तों की सधि या जोड़। २. वह सीप जिससे मोती निकलता है। ३. एक चिड़िया जिसका रंग भूरा पेट कुछ सफेदी लिए तथा पंर और चोंच पीले होते हैं।

विशेष—यह पक्षी भुइयों में रहना पसंद करता है। यह पहाड़ी देशों में कश्मीर के आसाम तक पाया जाता है और अच्छा बोलता है।

४. एक ओपघि जो पोर्ट ब्लेयर के पहाड़ों की चट्टानों से खुरचकर निकाली जाती है।

विशेष—यह दवा बहुत बलकारक होती है। दूध के साथ दो रत्ती भर खाई जाती है। लोग ऐसा मानते हैं कि यह अवावील चिड़िया के मुँह का फेन है।

५. लोमड़ी के आकार का एक प्रकार का जानवर जिसकी दुम लोमड़ी की दुम से लंबी और झुरी होती है।

विशेष—कुछ लोगों का विश्वास है कि इसकी नाभि में से भी कस्तूरी निकलती है, पर वह बात ठीक नहीं है।

कस्तूरिका^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कस्तूरी।

कस्तूरिया^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कस्तूरी] कस्तूरी मृग।

कस्तूरिया^३—वि० १. कस्तूरीवाला। कस्तूरीमयित। २. कस्तूरी के रंग का। मुश्की।

कस्तूरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक सुगंधित द्रव्य।

विशेष—यह एक प्रकार के मृग से निकलता है जो हिमालय पर गिलगित से आसाम तक ८००० से १२००० फुट की ऊँचाई तक के स्थानों तथा तिब्बत और मध्य एशिया में साइबेरिया तक अर्थात् बहुत ठंडे स्थानों में पाया जाता है। यह मृग बहुत चंचल और छलाँग मारनेवाला होता है। डील डोल में यह साधारण कुत्ते के बराबर होता है और रात को चरता है। नर मृग की नाभि के पास एक गाँठ होती है, जिसमें भूरे रंग का चिकना सुगंधित द्रव्य संचित रहता है। यह मृग जनवरी में जोड़ा खाता है और इसी समय इसकी नाभि में अधिक मात्रा से सुगंधित द्रव्य मिलता है। शिकारी लोग इस मृग का शिकार कस्तूरी के लिये करते हैं। शिकार लेते पर इसकी नाभि काट ली जाती है, फिर शिकारी लोग इसमें रक्त आदि मिलाकर उसे सुखाते हैं। अच्छी से अच्छी कस्तूरी में भी मिलावट पाई जाती है। कस्तूरी का नाफा मुर्गी के अंडे के बराबर होता है। एक नाफे में लगभग आधो छटाँक कस्तूरी निकलती है। कस्तूरी के समान सुगंधित पदार्थ कई एक अन्य जंतुओं की नाभियों से भी निकलता है। बंधक में तीन प्रकार की कस्तूरी मानी गई है, कपिल (सफेद), पिगल और कृष्ण। नेपाल की कस्तूरी कपिल, कश्मीर की पिगल और कामरूप (सिकिम, भूटान आदि) की कृष्ण होती है। कस्तूरी स्वाद में कड़वी और बहुत गरम होती है। यह वात, पित्त, शीत,

कसीदागो—वि० [ग्र० कसी+हृ+क० गो] कसीदा लिखनेवाला ।
कसीर—वि० [अ०] अधिक । बहुत । ज्यादा । उ०—आतिथ की
एक चिगारी रुई के अवारे कसीर को खाकर डानती है ।
—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ११७ ।

कसीस^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कसीस] लोहे का एक प्रकार का विकार
जो खानो में मिलता है ।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है । एक हरा जिसे धातु
कसीस' अथवा हरा या हीरा कसीस कहते हैं, दूसरा पीला
जिसे पाशु या 'पुष्प कसीस' कहते हैं । कसीली वस्तु के
साथ मिलने से कसीस काला रंग उत्पन्न करता है अतः
यह रंगाई के काम में बहुत आता है । तेजाब में घुने हुए
सोने को अलग करने के लिये हरा कसीस बड़े काम का है ।
वैद्यक के अनुसार कसीस शीतल, कसीरा, नेत्रों को हितकारी
तथा विष, कोढ़, कृमि और खुजली को दूर करनेवाला है ।

कसीस^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा कसीस] दे० 'कसीस' । उ०—मारपी
पैचि कसीस करि वचन लगाया वान ।—सुंदर ग्र०, भा० १
पृ० २४७ ।

कसीसना^३—क्रि० प्र० [हि० कसीस+ना (प्रत्य०)] १ आकषित
करना । खींचना । उ०—वाम हाथ लीध बाहू जीमणे कसीस
जाह ।—र० रू०, पृ० ७६ । २ तानना ।

कसूँव^४—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुसुम्भ या कुसुम] दे० 'कुसुम' । उ०—
जंसा रंग कसूँव का तंसा यह ससार ।—सत र०, पृ० १२६ ।

कसूँभ^५—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुसुम्भ] दे० 'कुसुम' । उ०—तूँ वै एकह
पन रहे रंग कसूँभ प्रमान ।—पृ० रा०, २५ । ७३२ ।

कसूँभी—वि० [सं० कुसुम्भ, हि० कसूँभ+ई (प्रत्य०)] कुसुम के
रंग का अथवा कुसुम के फूलों के रंग से रंगा हुआ । उ०—
सोनजुही सी बगमगति अंग जोवन जोति । सुरंग कसूँभी
कचुकी दुरंग देह दुति होति ।—विहारी (शब्द०) ।

कसूत^६—सञ्ज्ञा पुं० [हि० क (=कु)+सूत] बुरा सूत । उलझनदार
सूत । उ०—पूजै नवग्रह देवता पितर सतो प्रकृत । सहजो कैसे
सुलझिहै होइ रह्यो सूत कसूत ।—सहजो, पृ० ४८ ।

कसून—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] कजी आख का घोड़ा । सुलेमानी घोड़ा ।
कसूम^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुसुम] दे० 'कुसुम' । उ०—हरि को
हित ऐसी जैसी रंग मजोठ ससार को हित जैसी कसूम दिन
हुँती की । पोद्दार अभि०, ग्र० पृ० १६५ ।

कसूमर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुसुम] दे० 'कुसुम' ।

कसूमी^८—वि० [हि० कसूम+ई (प्रत्य०)] कुसुम रंग की ।
उ०—पहिरै कसूमी मारी, अंग अंग छवि मारी, गोरी गोरी
बाहुन में मोती के गजरा ।—नंद ग्र०, पृ० ३५३ ।

कसूर—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कसूर] अपराध । दोष । खता । उ०—
(क) मेरा लगाड़े पालड़ा, तोलों मोहि कसूर ।—वांकी० ग्र०,
भा० २, पृ० ६६ । (ख) मैंने छोटी बड़ी भेड का खयाल नहीं
किया, मेरा कुछ कसूर नहीं—भारतेंदु ग्र०, भा० १,
पृ० ६६६ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

यी०—कसूरमद । कसूरवार । वैकसूर ।

कसूरमद—वि० [अ० कसूर+मद] दोष । अपराधी ।

कसूरवार—वि० [अ० कसूर+हि० वार (प्रत्य०)] दोषी । अपराधी ।

कसेडी^९—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कसहेड़ी, ने० कसेंदि] जनपात्र ।
व०—तब वंष्णवन कमेंडो, डोरी काडिके जन कूपी में तें
काढ्यो ।—दो सी वावन०, भा० १, पृ० ७२ ।

कसेरहट्टा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कमेरा+हाट] दे० 'कसरहट्टा' ।

कसेरा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कांसा+एरा (प्रत्य०)] [[जी० कसेरिन]
कांसे, फूल आदि के बरतन ढालने और वेचनवाला ।

यी०—कसेरहट्टा या कसरहट्टा ।

कसेरु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कशेरु' ।

कसेरुका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कशेरुका' ।

कसेरु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कशेरु] एक प्रकार के मोथे की उड़ जो तालों
और झीलों के किनारे मिलती है ।

विशेष—यह जब गोन गौड की तरह होनी है और इसके काले
छिनके पर काले रोएँ या वाँ होते हैं । कसेरु खाने में मोठा
और ठंडा होता है । फागुन में यह तैयार हो जाता और मसाड़
तक मिलता है । सिगापुर का कसेरु अच्छा होता है । कसेरु के
पोथे को कही कही गोदला भी कहते हैं ।

कसया—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कसना] १ कसनेवाला । जकड़कर बाँधने-
वाला । उ०—मतिराम कहे करवार के कसया केते, गाड़र
से मूँडे जग हाँमी को प्रसंग भी ।—मति० ग्र०, पृ० ३६५ ।
२. परखनेवाला । जाँचनेवाला । पारधी ।

कसैला—वि० [हि० कमाव+ऐला (प्रत्य०)] [[स्त्री० कसैली]
कपाय स्वादवाला । जिसमें कसाव हो । जिसके पाने से जीम
में एक प्रकार की ऐंठन या संकोच मालूम हो । जैसे—
आँवला, हड बहेडा, सुपारी आदि ।

विशेष—कसैला छह रसों में से एक है । कसैली वस्तुओं के उखा-
लने से प्रायः काला रंग निकलता है ।

कसैलापन—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कसैला+पन (प्रत्य०)] कसैला होने
का भाव ।

कसैली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कसैला] सुपारी ।

कसोदरी^{१०}—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कसौवा+ई (प्रत्य०)] 'कसौंजा' ।

उ०—कनैर कसोदिय कँवर कोह । करोदिन कान्ह कड़ा कहु मोह ।
—पृ० रा० २, ३५५ ।

कसोरा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कांसा+सोरा (प्रत्य०)] १. कटोरा । २.
मिट्टी का प्याला ।

कसौंजा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कासमद, प्रा० कासमद्] एक पोधा जो
बरसात में उगता है और बहुत बढ़ने पर आदमी के बराबर
ऊँचा होता है ।

विशेष—पत्तियाँ इसकी एक सीके में आमने सामने लगती हैं और
चौड़ी तथा नुकीली होती हैं । जाड़े के दिनों में इसमें चक्कड़
की तरह के फूल लगते हैं । छह सात अंगुल लंबी, चिपटी
फलियाँ लगती हैं । फलियों के भीतर बीज भरे रहते हैं, जो
एक ओर कुछ नुकीले होते हैं । लाल कसौंजा सदाबहार होता
है और इसकी पत्तियाँ गहरे हरे रंग की कुछ लताई लिए, दो

काँसे के योग से खट्टी चीज का बिगड़ जाना । जैसे,—इस वरतन में दही कसा गया है ।

विशेष—जब खट्टी चीज काँसे के वरतन में देर तक रखी जाती है तब उसका स्वाद बिगड़कर कसला हो जाता है । ऐसी बिगड़ी हुई चीज के खाने से वमन होता या जी मचलाता है ।

२ स्वाद में कसला लगना । जैसे,—कच्चा अमरुद कसाता है ।

कसाना^३—क्रि० सं० [हि० कसना का प्रे० रूप] दे० 'कसवाना' ।

कसाना^३—क्रि० अ० [हि० कसना या कसापित] कष्टयुक्त होना । पीड़ित होना । उ०—अपडिया प्रेम कसाइयाँ, लोग जाँगे दुखडियाँ । —कवीर ग्र० पृ० ६ ।

कसाफत—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० कसाफत] १. मलापन । गंदगी ।

२. गाढापन । ३. मोटाई । स्थूलता ।

कसाव^४—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कसाव] दे० 'कसाई' । उ०—इरिया छुरी कसाव की, पारस परस आप ।—सतवाणी०, पृ० १२६ ।

कसार^५—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कसर] चीनी मिला हुआ नुना आटा तथा सूजी । पंजीरी ।

कसार^५—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कसार] दे० 'कासार' । उ०—निरखि मलिन मुख नलिन कहूँ, फूले कमल कसार ।—नद०ग्र०, पृ० १३४ ।

कसालत—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] १. आलस्य । शैथिल्य । २. थकावट । ३. काहिली ।

कसाला^६—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कष = पीडा, दुःख अथवा अ० कसालत] १. कष्ट । तकलीफ । उ०—कहै ठाकुर कासो कहा कहिये हमें प्रीति करे के कसाले परे ।—ठाकुर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—करना ।—खींचना ।—मेलना ।—पड़ना ।—सहना ।

२ कठिन परिश्रम । श्रम । मेहनत उ०—करत सुतप वीते बहु काला । पुत्र होन हित कियो कसाला ।—रघुराज (शब्द०) ।

कसाला^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कसाव] खटाई जिसमें सोनार गहना साफ करते हैं ।

कसाव^८—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कषाय] कसलापन । जैसे,—कढ़ी में कसाव आ गया है ॥

क्रि० प्र०—आना ।—पड़ना ।—होना ।

कसाव^९—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कसना] कसने का भाव । खिचाव । तनाव ।

कसावट—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कसना] १. कसने का भाव । तनाव । खिचावट । उ०—इसकी कसावट से कितनी ही भेमे दम घुट घुटकर मर गई । प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६२ । २. अच्छी गठन, विशेषतः शरीर की ।

कसावड़ा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कसाई] कसाई ।

कसावर—सञ्ज्ञा पुं० [हि० काँसा] काँसे का घाली की तरह का बाजा जिसे लकड़ी से बजाते हैं । काँसे का घटा । उ०—ठनक कसावर रहा ठनाठन, यिरक बमारिन रही छनाछन । —घास्या, पृ० ४४ ।

कसिपा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० हिरण्यकशिपु] दे० 'हिरण्यकशिपु' । उ०—कसिया कहै पहलाद को मार डाले ।—कबीर सा०, पृ० १० ।

कसिपु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. भोजन । २. पका चावल । मात [क्रि०] ।

कसिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] भूरे रंग की एक चिड़िया जो राजपूताने और पंजाब को छोड़ सारे भारतवर्ष में पाई जाती है ।

विशेष—यह पेड़ों की डालियों में बहुत ऊँचाई पर घोंसला बनाती है और पीले रंग के अंडे देती है ।

कसियाना^{१०}—क्रि० अ० [हि० कस = कसाव] कसाव से युक्त होना । तबिये या पीतल के वरतन में रहने के कारण कसला होना । कसाना ।

कसी^{११}—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कशा = रस्सी] १. पृथ्वी नापने की एक रस्सी जो दो कदम या ४६ इंच की होती है ।

कसी^{१२}—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कषण = खरोचना, खोदना] हल की कुसी । लागूल । फाल ।

कसी^{१३}—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कशुक] एक पौधा जिसे संस्कृत में गवेधुक और कशुक कहते हैं ।

विशेष—वैदिक काल में यज्ञों में इसके चर का प्रयोग होता था ।

उस समय इसकी खेती भी होती थी । यद्यपि आजकल मध्य प्रदेश, सिक्किम, आसाम और वरमा की जंगली जातियों के अतिरिक्त इसकी खेती कोई नहीं करता, फिर भी यह समस्त भारत, चीन, जापान, वरमा, मलाया आदि देशों में वन्य अवस्था में मिलती है । इसकी कई जातियाँ हैं, पर रंग के विचार से इसके प्रायः दो भेद होते हैं । एक सफेद रंग की, दूसरी मटमैली या स्याही लिए हुए होती है । यह वर्षा ऋतु में उगती है । इसकी जड़ में दो तीन बार डालियाँ निकलती हैं । इसके फल गोल, लवोतरे और एक ओर मुकीले होते हैं । इनके बीच सुगमता से छेद हो सकता है । छिलका इनका कड़ा और चिकना होता है । छिलके के भीतर सफेद रंग की गिरा होती है जिसके आटे को रोटी गरीब लोग खाते हैं । इसे भूनकर सत्तू भी बनाते हैं । छिलका उतर जाने पर इसकी गिरा के टुकड़ों को चावल के साथ मिलाकर भात की तरह उवालकर खाते हैं । यह खाने में स्वादिष्ट और स्वास्थ्यवर्धक होती है । जापान आदि में इसके भावे से एक प्रकार का मद्य भी बनाया जाता है । इसका बीज औषध के काम आता है । इसके दानों को गूँथकर माला बनाई जाती है । नेपाल के थारू इसके बीज को गूँथकर दोन्नों की भालर बनाते हैं ।

पर्या०—कोडिल्ला । केस्सी । कसेई ।

कसीदा^{१४}—सञ्ज्ञा पुं० [फ़ा कशीदह] दे० 'कशीदा' ।

कसीदा^{१५}—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कशीदह] उर्दू या फारसी भाषा की एक प्रकार की कविता, जिसमें प्रायः किसी की स्तुति या निंदा की जाती है । इस कविता में १७ पंक्ति से कम न हो, अधिक का कोई नियम नहीं है ।

कसमिया—क्रि० वि० [हि० कसम] कसम खाकर । शपथपूर्वक ।

कसमीर(७)—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कसमीर] केशर । उ०—गोर शरीर
अधीर से लोचन मस्तक मे कसमीर लगाए ।—पोद्दार अभि०,
पृ० ४६० ।

कसर^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] १ कमी । न्यूनता । त्रुटि । उ०—कसर न
मुझमे कुछ रही असर न अब तक तोहि । आइ भावते दीजिए
वेगि सुदरमन मोहि ।—रसनिधि (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—आना ।—करना ।—पडना ।—रखना ।—रहना ।
—होना ।

मुहा०—कसर करना, छोड़ना, रखना = त्रुटि करना । कुछ बाकी
छोड़ना । जैसे,—उन्होंने मेरी बुराई करने मे कोई कसर न
की । कसर निकलना = कमी पूरी होना । कसर निकालना =
कमी पूरी करना ।

२. द्वेष । बर । अकम । मनमुटाव । जैसे,—वे हमसे मन मे कुछ
कसर रखते हैं ।

क्रि० प्र०—रखना ।

मुहा०—कसर निकालना या काढ़ना = बदला लेना । (दो
आदमियों के बीच) कसर पड़ना = (दो आदमियों के बीच)
मनमुटाव होना ।

३. टोटा । घाटा । हानि । जैसे,—इस माल के बेचने मे हमे दो
सौ की कसर पडती है ।

क्रि० प्र०—पडना ।—होना ।

मुहा०—कसर खाना या सहना = हानि उठाना । घाटा सहना ।
कसर देना या भरना = घाटा पूरा करना ।

४. नुस्त । दोष । विकार । जैसे,—उनके पेट मे कुछ कसर है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

५. किसी वस्तु के सूखने या उसमे से कूड़ा करकट निकलने से
जो कमी हो । जैसे,—१० सेर गेहूँ में से १ सेर तो कसर गई ।

क्रि० प्र०—जाना ।

कसर^२—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] कुसुम या वरें का पौधा ।

कसरकोर—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कसर + कोर] दे० 'कोरकसर' । उ०—
यद्यपि कसरकोर किसी मे नहीं है ।—प्रेमघन०, भा० २,
पृ० २१२ ।

कसरत^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० कसरत] [वि० कसरती] १ शरीर को पुष्ट
और बलवान् बनाने के लिये दब, बैठक आदि परिश्रम का
का काम । व्यायाम । मेहनत ।

क्रि० प्र०—करना ।

कसरत^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] अधिकता । बहुतायत । ज्यादाती ।

यो०—कसरतराय = बहुमत ।

कसरती—[अ० कसरत + हि० ई (प्रत्य०)] १ कसरत करनेवाला ।
जैसे—कसरती जवान । २ कसरत से पुष्ट और बलवान्
बनाया हुआ । जैसे—कसरती वदन ।

कसरवा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] सालपान नाम का क्षुप । वि० दे० 'सालपान' ।
कसरवानी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० काश्यपणिक, हि० केसरवानी] वनियों की
एक जाति ।

कसरहट्टा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कसेरा + हट्ट या हाट] कसेरो का बाजार
जहाँ बरतन बनते और बिकते हैं ।

कसरि(७)—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० कसर] 'दे० 'कसर' । उ०—करनी करत
कसरि होय आई, तमहीं कानपर बाजु बँधाई—कबीर सा०,
पृ० ६०७ ।

कसली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कृप या कर्ष = खोचना + हि० लो (प्रत्य०)]
छोटा फावड़ा जिसकी धार पतली होती है ।

कसवटी(७)—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कपपट्टिका, प्रा० कसवट्टी] दे० 'कसोटी' ।

कसवाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कसवाना] १ कसवाने की प्रिया । २.
कसने की मजदूरी ।

कसवाना—क्रि० सं० [हि० कसना का प्रे० रूप] कसने मे प्रवृत्त
करना । कसने का काम करना । जैसे—बोड़ा कसवा लाघो ।

कसवार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कोशकार अथवा देश०] एक प्रकार की
ईख जो उड़ ईंच मोटी होती है और जिसका छिलका वादामी
और कटा होता है ।

विशेष—इसके भीतर के गूदे मे रस अधिक और रेशे कम होते
हैं । यह अधिकतर चूसने के काम मे आती है । इसे कुनियार
भी कहते हैं ।

कसहंड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० काश्यभाण्ड अथवा हि० कांसा + हंडा]
टूटे फूटे कांसे के बरतनों के टुकड़े ।

कसहंडा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० काश्यभाण्ड] दे० 'कमहंडी' ।

कसहंडी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० काश्यभाण्ड अथवा हि० कांसा + हांडी]
कांसे या पीतल का एक बरतन जिसका मुँह चौड़ा होता है ।

विशेष—यह पाना पकाने या पानी रखने के काम मे आता है ।

कसाइन^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कसाई का स्त्री] कसाई की स्त्री ।

कसाइन^२—वि० स्त्री० क्रूरतावाली । निष्ठुर । उ०—नदकुमारहि देख
दुखी छतिया कसकी न कसाइन तेरी ।—पद्माकर (शब्द०) ।

कसाई^१—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कस्ताव] [स्त्री० कसाइन] १ अधिक ।
घातक । २ गोघातक । वृचड ।

मुहा०—कसाई के खूँटे बंधना = निष्ठुर के पाले पडना । कसाई
का काठ = क्रूरता । कुत्सापूर्ण निर्दयता । उ०—कई बार
उसने निश्चय किया कि अपने आप को कमाई के इस काठ
से हटाकर ससार के भँवर मे डाल दे । अभिशप्त, पृ० ६५ ।

यो०—कसाईवाडा ।

कसाई^२—वि० निर्दय । बेरहम । निष्ठुर ।

कसाई^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कसाना + घाई (प्रत्य०)] दे० 'कसवाई' ।

कसाईखाना—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कसना = फा० खानह] वह स्थान
जहाँ पशुओं का वध किया जाता है । जानवरों के काटने
का स्थान ।

कसाकस—क्रि० वि० [हि० कसना] अच्छी तरह कसकर । ठसाठस ।

कसाकसी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कसना] मनमुटाव । बर । विरोध ।
तनातनी ।

कसाना^१—क्रि० अ० [हि० कांसा या कसाव] १ कसला हो जाना ।

ततकार ।—कवीर (शब्द०) । ५. परीक्षा । परख । जाँच ।
उ०—(क) या मे कमनी भक्तन केरी । लेहु न नाथ अरज यह
मेरी ।—विश्राम (शब्द०) । (क) साहू विकंदर कसनी लोन्हा
वरत अगिन मे डारी । मस्ता हाथी आनि भुकाए कठिन
कला मइ भारी ।—कवीर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—लेना ।—देना ।

कसनी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कर्षणी] एक प्रकार की हथौड़ी जिससे
कसेरे वर्तनों का गला बनाते हैं । हथौड़ी ।

कसनी^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कसाना] कसाव का पुट । कसैली वस्तु
मे डुबाने की क्रिया ।

कसपत—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] १. काले रंग का कूटू । काला फाफर ।
२ कूटू का पौधा ।

कसव—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कसव] १. परिश्रम । मेहनत । पेशा ।—
उ०—जाति भी ओछी करम भी ओछा ओछा कसव
हमारा ।—रे०वानी, पृ० ७२ ।

क्रि० प्र०—उठाना ।

२ छिनाला । व्यभिचार । उ०—बहुर कुमार अवस्था आई ।
कसव करन लाग्यो हरखाई ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—कराना ।—कमाना ।—कमवाना ।

कसवल—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कस + वल] १. शक्ति । सामर्थ्य । बल ।
जोर । ताकत । २. साहस । हिम्मत ।

कसवा—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कस्वह] [वि० कसवाती] बड़ा गाँव ।
साधारण गाँव से बड़ी और शहर से छोटी वस्ती ।

कसवाती—वि० [अ० कस्वह] [वि० स्त्री० कसवातिन] १. कसवे का ।
जो कसवे मे हो । जैसे—कसवाती मदरसा । २. कसवे का
रहनेवाला ।

कसविन—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० कसव हिं० इन (प्रत्य०)] दे०
'कसवी' ।

कसवी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० कसव हिं० ई (प्रत्य०)] १. वेश्या ।
रडी । पतुरिया । १. व्यभिचारिणी स्त्री । छिनान औरत ।

यो०—कसवीवाना ।

कसवीखाना—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कसवी + फा० खानह (प्रत्य०)]
वेश्यालय ।

कसम—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० कसम] शपथ । सौगंध । उ०—वल्लाह मेरे
सिर की कसम जो न पी जाओ ।—भारतेंदु ग्र०, भाग १
पृ० ५४५ ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—खाना ।—खिलाना ।

मुहा०—कसम उतारना—(१) शपथ का प्रभाव दूर करना ।
खाई या दिवाई हुई शपथ के अनुसार न चलने पर उसके दोष
का परिहार करना ।

विशेष—जेन मे किसी लडके पर जब दूसरा लडका शपथ या
कसम रख देता है तब वह कुछ वाक्य कहता है जिससे यह
समझता है कि शपथ का प्रभाव दूर हो जायगा ।

(२) किसी काम को नाममात्र के लिये करना । जैसे,—कसम

उतारने को वे हमारे यहाँ भी होते गए । कसम देना,
दिलना, रखाना—किसी को शपथ द्वारा बाध्य करना ।
जैसे—हमारे सिर की कसम, तुम हमारे यहाँ आज आओ ।
(इस उदाहरण मे कसम दी गई है ।) कसम लेना=कसम
खिलाना । शपथ उठाने के लिये बाध्य करना । प्रतिज्ञा
कराना । जैसे,—तुम अपने सिर की कसम खाओ कि वहाँ न
जायेंगे । (इस उदाहरण मे कसम ली गई है ।) किसी बात
को कसम खाना—(१) किसी बात के करने की प्रतिज्ञा
करना । (२) किसी बात के न करने की प्रतिज्ञा करना ।
जैसे,—मैंने आज से वहाँ जाने की तो कसम खाई है । कसम
तोड़ना=शपथ खाकर किसी कार्य को पूरा न करना । प्रतिज्ञा
भंग करना । कसम खाने को=नाममात्र को । जैसे,—(क)
हमारे पास कसम खाने को एक पैसा नहीं है । (क, कसम
खाने को तुम भी पुस्तक हाथ मे ले लो । कसम खाने के
लिये=दे० 'कसम खाने को' । उ०—तो कसम खाने के लिये
वेशक एक जगह है ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४३६ ।

यो०—कसमाकसमी=परस्पर प्रतिज्ञा ।

कसमर(उ)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कश्मल] दे० 'कश्मल' । उ०—नीमी
रिपि निमी जिन्हि भखेव । कसेव काम कसमर दुरि भगेव ।—
सं० दरिया, पृ० ८६ ।

कसमस^१—वि० [हिं० कम + मस (अनुध्व०)] कसा हुआ । कठोर ।
उ०—बीचती उवहनी वह, वरवस चोली से उमर उमर
कसमस बिचते संग युग रसभरे कलश ।—ग्राम्या, पृ० १८ ।

कसमस^२—सञ्ज्ञा पुं० स्त्री० दे० 'कसमसाहट' ।

कसमसक(उ)—क्रि० वि० [हिं० कसमसाना] कसमसाते हुए । उ०—
भुजन सो ५४ बँधे अग प्रति अग सघे कसमसक कुम्हिलात
सेज कुसुमन कली ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ४७२ ।

कसमसाना(उ)—क्रि० अ० [हिं० कसमसाना] दे० 'कसमसाना' ।
उ०—गए कुद्वयुद्ध विरुद्ध रघुपति त्रोग शायक कसमसे ।
—तुलसी (शब्द०) ।

कसमसाना—क्रि० अ० [अनु०] १. एक ही स्थान पर बहुत सी
वस्तुओं या व्यक्तियों का एक दूसरे से रगड़ खाते हुए हिलना
डोलना । खलबलाना । कुलबुलाना । जैसे,—भीड़ के मारे लोग
कसमसा रहे हैं । उ०—यहि के बीच निसाचर अनी ।
कसमसाति आई अति घनी ।—तुलसी (शब्द०) । २. उकता-
कर हिलना डोलना । ऊब ऊबकर इधर से उधर होना ।
जैसे,—ये बड़ी देर से यहाँ बँठे हैं, इसी से अब चलने के लिये
कसमसा रहे हैं । ३. विचलित होना । धवराना । वैचैन होना ।
४. आगा पीछा करना । हिचकना ।

कसमसाहट—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० कसमसाना + आहट (प्रत्य०)] १.
कुलबुलाहट । जुविश । डोलाव । हिलाव । २. वैचैनी ।
व्याकुलता । धवराहट ।

कसमसी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० कसमस + ई (प्रत्य०)] दे० 'कसमसाहट' ।

कसमाकसमी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० कसम] दोनों पक्षों का परस्पर
कसम खाना ।

ज्यो हिये पीर तीर सम सालत कसक कसक कसकानि ।—
घट०, पृ० २०० ।

कसकुट—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कास + कुट = टुकड़ा] एक मिश्रित धातु जो ताँवे और जस्ते को बराबर भाग से मिलाकर बनाई जाती है । भरत । काँसा ।

विशेष—इस धातु से बटलोई, लोटे, कटोरे इदि बनते हैं । इसके वर्तनों में खट्टे पदार्थ बिगड़कर जहरीले हो जाते हैं ।

कसगर—सञ्ज्ञा पुं० [फा० कासागर] मुसलमानों की एक जाति जो मिट्टी छोटे छोटे वर्तन बनाती है ।

कसट्टा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कष्ट] दे० 'कष्ट' । उ०—मिट्टे सकट बाट घाट विघट्ट । रट्टे नाम तो कोटि काटै कसट्ट ।—पू० रा०, १।३६३ ।

कसतुरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [कस्तूरिका या कस्तूरी] दे० 'कस्तूरी', उ०—कीन्हेंसि अगर कसतुरी बेना । कीन्हेंसि भीमसेन ओ चीना ।—जायसी ग्र०, पृ० २ ।

कसतूर—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कस्तूरी] कस्तूरी । उ०—चदन सुलेप कसतूर चित्र । नभ कमल प्रगटि जनु किरन मित्र ।—
पू० रा०, ६।३६ ।

कसदार—वि० [हि० कस + फा० दार (प्रत्य०)] १. ताकतवर । बलवान् । उ०—इनपर लक्ष्मीवाई के उन कसदार दो सो घोडो का सपाटा पडा ।—भाँसी०, पृ० ४०० । २. जो अच्छी तरह कसा या जाँचा गया हो ।

कसन^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कसना] १ कसने की क्रिया । २. कसने की दिशा । कसने का ठग । जैसे,—इस बोरे की कसन ढीली पड गई है । ३. वह रस्ती जिससे किसी वस्तु को बाँधकर कसते हैं । ४. घोड़े की तग ।

कसन^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कषण] दुःख । क्लेश । तप ।

कसनई—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कृष्ण] एक चिड़िया जिसके डँने काले, छाती और पीठ गुलाबी और चोच लाल रंग की होती है ।

कसना^१—क्रि० सं० [सं० कषण, प्रा० कस्सण] १. किसी वधन को दृढ़ करने के लिये उसकी डोरी आदि को खीचना । जकड़ने के लिये तानना । जैसे—(क) फीते को कसकर बाँध दो । (ख) पलंग की डोरी कस दो । २. वधन को खींचकर बँधी हुई वस्तु को अधिक दबाना । जैसे,—बोझ को थोड़ा और कस दो

मुहा०—कसकर = (१) खींचकर । जोर से । बलपूर्वक । जैसे, कसकर चार तमाचे लगाओ, सीधा हो जाय । उ०—दहे निगोडे नैन ये गहँ न चेत अचेत । हौं कसि कसिकै रिस करौ ये निरखे हँसि देत —(शब्द०) । (२) पूरा पूरा । बहुत अधिक । जैसे,—(क) कसकर तीन कोस चलना । (ख) कसकर दाम लेना । कसा = पूरा पूरा । बहुत अधिक । जैसे,—कसा कोस, कसा दाम । कसा तौलना = कम तौलना । तौल में कम देना

३. जकड़कर बाँधना । जकड़ना । बाँधना । जैसे,—पैटी कसना । उ०—कटि पटपीत कसे वर भाया । रुचिर चाप सायक दुहु हाथा ।—तुलसी (शब्द) ४. पुरजों को दृढ़ करके बाँधना ।

जैसे,—पेंच कसना । ५. साज रखकर सवारी तैयार करना । जैसे,—घोडा कसना, हाथी कमना, गाडी कसना ।

मुहा०—कसा कसाया = चलने के लिये विलकुल तैयार । जैसे,—हम तो तुम्हारे आसरे मे कसे कसाए बैठे हैं ।

६. ठूस ठूसकर भरना । बहुत अधिक भरना । जैसे,—(क) सँदूक को कपडों से कस दो । (ख) सँदूक में सब कपड़े कस दो । (ग) बटूक कसना = बटूक भरना ।

कसना^२—क्रि० अ० १. वधन का खिचना जिससे वह अधिक जकड़ जाय । जकड़ जाना । जैसे,—कुत्ते का पट्टा कसा है, थोडा ढीला कर दो । २. किसी लपेटने या पहनने की वस्तु का तंग होना । जैसे,—कुरता कसता है । ३. वधन के तनने या जकड़ने से बँधी हुई वस्तु का अधिक दब जाना । जैसे,—कुत्ते का गला कसता है, पट्टा ढीला कर दो । ४. बँधना । जैसे,—विस्तर इत्यादि सब कस गया, चलिए । ५. साज रखकर सवारी का तैयार होना । जैसे—गाडी कसी है, चलिए । ६. खूब भर जाना । जैसे—क) सँदूक कपडों से कसा है । (ख) पेट खूब कसा है, कुछ न खाएँगे ।

कसना^३—क्रि० सं० [सं० कषण] १. परखने के लिये सोने यदि धातुओं को कसोटी पर घिसना । कसोटी पर चढ़ाना उ०—कचन रेख कसोटी कसी । जनु घन महँ दामिनी परगसी ।—जायसी (शब्द) २. खरे छोटे की पहचान करना । परखना । जाँचना । आजमाना । उ०—सूर प्रभु हँसत, अति प्रीति उर में बसत, इद्र को कसत हरि जगत-धाता ।—सूर (शब्द०) । ३. तलवार को लचाकर उसके लोहे की परीक्षा करना । ४. दूध की परीक्षा के लिये उसे आँच पर गाढ़ा करना । ५. दूध को गाढ़ा करके सोया बनाना । जैसे—कुदा कसना । ६. घी में भूनना । तलना ।

कसना^४—क्रि० सं० [सं० कषण = कष्ट देना] क्लेश देना । कष्ट पहुँचाना । उ०—(क) अग्नि आदि मुनिवर बहु वसहीं करहि जोग, जप तप तन कसही ।—तुलसी (शब्द०) ।

कसना^५—सञ्ज्ञा पुं० [स्त्री० कसनी] १. जिससे कोई वस्तु कसी जाय । बँधना । जैसे,—विस्तर का कसना । पलग का कसना । २. पिटारी, तकिए आदि का गिलाफ । वेठन । ३. एक प्रकार का जहरीला मकड़ा ।

कसनि^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कषण अथवा हि० कसना] दे० 'कसन' । उ०—महा तपन से जेहि कारन मुनि साधत तन मन कसनि ।—काण्ठ जिह्वा (शब्द०) ।

कसनिय^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कसना] एक प्रकार की अँगिया । कसनी । उ०—कुँदिया और कसनिया राती । छायल बँद लाए गुजराती ।—जायसी ग्र०, पृ० १४५ ।

कसनी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कसना] १. रस्ती जिससे कोई वस्तु बाँधी जाय । २. वह कपडा जिसमें किसी चीज को कसकर बाँधते हैं । वेठन । गिलाफ । ३. कचुकी । अँगिया । उ०—हुलसे कुच कसनी बँद टूटी । हुलसे भुज बलियाँ कर फटी ।—जायसी (शब्द०) । ४. कसोटी । उ०—सतगुरु तो ऐसा भिला ताते लोह लोहार । कससी दै कचन किया ताय लिया

कष्टकल्पना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] बहुत खीचखाँच की ओर कठिनता से ठीक घटनेवाली युक्ति। विचारों का घुमाव फिराव।

कष्टकारक^१—वि० [सं०] दुःखदायी। तकलीफदेह [को०]।

कष्टकारक^२—सञ्ज्ञा पुं० ससार [को०]।

कष्टभागिनेय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पत्नी की वहुन का लडका [को०]।

कष्टमातुल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सीतेली माँ का भाई [को०]।

कष्टमोचन—वि० [सं०] कष्ट से उबारनेवाला।

कष्टलभ्य—वि० [सं०] कष्ट से प्राप्त। कठिनाई से प्राप्त होनेवाला।

कष्टसाध्य—वि० [सं०] जिसका साधन या करना कठिन हो। मुश्किल से होनेवाला। जैसे,—कष्टसाध्य कार्य।

कष्टस्थान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अव्यक्त स्थान [को०]।

कष्टार्जित—वि० [सं०] कष्ट से कमाया हुआ। अत्यंत परिश्रम से प्राप्त किया हुआ [को०]।

कष्टार्तव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] स्त्री को कष्ट से रजोधर्म का होना [को०]।

कष्टार्थ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] खींचतान कर लगाया हुआ अर्थ [को०]।

कष्टि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ परीक्षा। २ कष्ट। ३ आघात [को०]।

कष्टित—वि० [सं०] [स्त्री० कष्टिता] दुःखित। दुःखी। उ०—मैं ऐसी हूँ न निज दुःख से कष्टिता शोकमग्ना।—प्रिय०, पृ० २५६।

कष्टी—वि० स्त्री० [सं० कष्ट] १. प्रसववेदना से पीड़ित (स्त्री)। २. जिसे कष्ट हो। दुःखी। पीड़ित। दरशनारत दास त्रसित माया पास त्राहि त्राहि दास कष्टी।—तुलसी (शब्द०)।

कस^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कष] १. परीक्षा। कसौटी। जाँच। उ०—जो मन लागे रामचरन अस। देह, गेह, सुत, वित, कलत्र महें मगन होत विनु जतन किए जस। द्वंद-रहित, गतमान, ज्ञान रत, विषय-विरत खटाइ नाना कस।—तुलसी प्र०, पृ० ५६१।

क्रि० प्र०—पर खोजना या रखना।

२ तलवार की लचक जिससे उसकी उत्तमता की परख होती है।

कस^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कसना] १. वह रस्सी जिनसे कोई वस्तु कसकर बाँधी जाय, जैसे,—गाड़ी की कस। मोट या पुगट की कस। २. बध। बंद। उ०—खेल त्रिधौ सतभाव लाडिले कंचुकि के कस खोलौ।—घनानंद, पृ० ५६६।

कस^३—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कसना] १. बल। जोर। उ०—रहि न-सक्यो कस करि रह्यो बस करि लीनी मार। भेद दुसार कियो हियो तन दुति भेदी सार।—विहारी (शब्द०)।

यो०—कसवल।

२ दबाव। बल। काबू। इच्छित्यार। जैसे,—(क) वह आदमी हमारे कस का नहीं है। (ख) यह बात हमारे कस की होती तब तो?

मुहा०—कस का=बल का। अधीन। जिसपर अपना इच्छित्यार हो। कस में करना या रखना=बल में रखना। अधीन रखना। कस की गोदी=कुशती का पेंच।

विशेष—जब विपक्षी पेट में घुस आता है, तब खिलाड़ी अपना एक हाथ उसकी बगल के नीचे से ले जाकर उसकी

गर्दन पर इस प्रकार चढ़ाता है कि दोनों की काँखें मिल जाती हैं। फिर वह दूसरे हाथ से विपक्षी का आगे बढ़ा हुआ पैर और (उसी ओर का) हाथ छींचकर गर्दन की ओर ले जाता है और भोका देकर चिंत करता है।

३ रोक। अवरोध।

मुहा०—कस में कर रखना=रोक रखना। दवाना। उ०—पर-तिय दोष पुराण सुनि हंसि मुलकी सुखदानि। कस करि राखी मिश्रहूँ मुख आई मुसकानि।—विहारी (शब्द०)।

कस^४—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कषीय, हि० कसाव] १. 'कसाव' का सक्षिप्त रूप। २. निकाला हुआ अर्क। ३. सार। तत्व।

कस^५—क्रि० वि० १. कैसे। क्योंकर। २. क्यों। उ०—सो काशी सेइय कस न।—तुलसी (शब्द०)।

कसई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कसी' या 'कसई'।

कसऊटी(पु)—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कसौटी] दे० 'कसौटी'। उ०—तब की बात रहित भई, अब कसऊटी अदल चलाई।—कवीर सा०, पृ० ६२८।

कसक—सञ्ज्ञा स्त्री० [न० कप्=आघात, चोट] १. वह बीड़ा जो किसी चोट के कारण उसके अस्थि हो जाने पर भी रह रहकर उठे। मीठा मीठा दर्द। साल। टीस। उ०—कसक बनी तब तें रहे बंधत न ऊपर खोट। दुर्ग अनियारन की लगी जब ते हिय में चोट।—रसनिधि (शब्द०)।

क्रि० प्र०—आना। होना।

२ बहुत दिन का मन में हुआ द्वेष। पुराना वैर।

मुहा०—कसक निकालना या फाटना=पुराने वैर का बदला लेना।

३ हीसला। अरमान। अभिलाषा।

मुहा०—कसक मिटाना या निकालना=हीसला पूरा करना।

४. हमदर्दी। सहानुभूति। परपीडा का दुःख। उ०—तिन सौं चाहत दादिते मन पशु कौन हिसाव। छुरी चलावत हैं गरे जे वेकसक कसाव।—रसनिधि (शब्द०)।

विशेष—इस अर्थ में यह संवधकारक के साथ आता है।

कसकन—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कसकना] कसक। टीस। पीडा। उ०—कुछ कसकन और कराह लिए। कुछ दर्द लिए कुछ दाह लिए। हिल्लोल, पृ० १७।

कसकना—क्रि० अ० [हि० कसक] दर्द करना। सालना। टीसना।

उ०—(क) कमठ कठिन पीठ घट्टा परो मंदर को आयो सोई काम पै करेजो कसकनु है।—तुलसी (शब्द०)। (ख) काहे को कलह नाथ्यो, दाहण दाँवर बाँध्यो, कठिन लकुट लै त्रास्यो मेरो भैया। नही कसकत मन निरखि कोमल तन तनिक दधि काज भली रीत भैया।—सूर (शब्द०)। (ग) नासा मोरि नचाड दग करी बका की सोह। कटि लौं कसकत हिए गडी कटीली भौह।—विहारी (शब्द०)। (घ) नदकुमारहि देखि दुखी छतिया कसकी न कसाइन तेरी।—पद्माकर (शब्द०)।

कसकानि(पु)—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कसकना] दे० 'कसक'। उ०—

कश्मल^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ मोह । मूर्च्छा । वेहोशी । २ पाप । अघ । ३ अवरवारी ।

कश्मल^२—वि० [सं०] [खी० कश्मला] पापयुक्त । मैला । गंदा ।

कश्मीर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पंजाब के उत्तर में हिमालय से घिरा हुआ एक पहाड़ी प्रदेश जो प्राकृतिक सौंदर्य और उर्वरता के लिये ससार में प्रसिद्ध है ।

विशेष—यहाँ अगूर, सेव, नाशपाती, अनार, बादाम आदि फल बहुतायत से होते हैं । यहाँ बहुत से भोलें हैं जिनमें डल प्रसिद्ध है । यहाँ के निवासी भी बहुत भोले और सुंदर होते हैं । केसर इसी देश में होता है । यहाँ के शाल, दुशाले और लोइयाँ बहुत काल से प्रसिद्ध हैं । प्राचीन काल में यह संस्कृत विद्यापीठ था । भेलम कश्मीर से होकर ही पंजाब की ओर बढ़ी है । ऐसा प्रसिद्ध है कि यहाँ पहले जल ही जल था, कश्यप ऋषि ने वारामूला के मार्ग से सारा जल भेलम में निकाल दिया और यह अनूठा प्रदेश निकल आया । इसकी राजधानी श्रीनगर है जो समतल भूमि पर बसा हुआ है ।

कश्मीरज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] केसर ।

कश्मीरी^१—वि० [हिं० कश्मीर + ई (प्रत्यय)] कश्मीर का । कश्मीर देश में उत्पन्न ।

कश्मीरी^२—सञ्ज्ञा खी० १ कश्मीर देश की भाषा । २ एक प्रकार की चटनी ।

विशेष—इसके बनाने की विधियाँ हैं—अदरक को छीलकर छोटे छोटे टुकड़े कर लेते हैं । तदनंतर शक्कर, मिर्च, शीतल-चीनी, केसर, इलायची, जावित्री, सोंफ और जीरा आदि मिला देते हैं । फिर अंदाज से नमक और सिरका डालकर रख देते हैं ।

कश्मीरी^३—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कश्मीर] [खी० कश्मीरिन] १ कश्मीर देश का निवासी । २ कश्मीर देश का घोड़ा ।

कश्य^१—सञ्ज्ञा खी० [सं०] १ शराव । मदिरा । २ घोड़े का पुट्टा (की०) ।

कश्य^२—पुं० चाबुक मारने के योग्य (की०) ।

कश्यप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ एक वैदिककालीन ऋषि का नाम । २

विशेष—ऋग्वेद में इनके बनाए हुए अनेक मंत्र हैं ।

२ एक प्रजापति का नाम । ३ कछुआ । कच्छप । ४ एक प्रकार की मछली । ५ एक प्रकार का मृग । ६ सप्तपिंडल के एक तारे का नाम ।

कश्यप—वि० [सं०] १ काले दाँतवाला । २ मद्यप । शरावी ।

कश्यपनन्दन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कश्यपनन्दन] गुरुड (की०) ।

कष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. सान । २ कसौटी (पत्थर) ।

यो०—कषपट्टिका ।

३ परीक्षा । जाँच । ४ रगड़ने की क्रिया (की०) ।

कषण^१—वि० [सं०] बिना पका हुआ । कच्चा (की०) ।

कषण^२—सञ्ज्ञा पुं० १ रगड़ना । २. चिह्न बनाना । ३. खरोंचना । ४.

कसौटी पर सोने को कसना (की०) ।

कषट^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कषट] दे० 'कष्ट' । उ०—मन वचन क्रम अम कषट सहत तन ।—सूदर घं०, भा० २, पृ० ४५६ ।

कषट^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कषट] दे० 'कष्ट' । उ०—जग जतु जनम अनत कषट्ट महा दुषट्ट ह्याल हुया ।—राम० धर्म०, पृ० ३०० ।

कषपट्टिका—सञ्ज्ञा खी० [सं०] कसौटी (की०) ।

कषा—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कषा' ।

कषाड^१—सञ्ज्ञा खी० [सं० कषाय] दे० 'कषाय' । उ०—जाके रचक सुनत सब, कर्म कषाड नसाइ ।—नंद० घं०, पृ० २२३ ।

कषाकु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अग्नि । २ सूर्य (की०) ।

कषाय^१—वि० [सं०] १ कर्सला । वाकठ ।

विशेष—यह छह रसों में है ।

२ सुगन्धित । खुशबूदार । ३ रंगा हुआ । ४ गेरू के रंग का । गेरिक ।

यो०—कषायवस्त्र ।

५ मधुर स्वरवाला (की०) । ६. अनुपयुक्त । अनुचित (की०) । ७ गदा (की०) ।

कषाय^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कर्सली वस्तु । २. गोद । वृक्ष का नियसि । ३. क्वाथ । गाढ़ा रस । ४. सोनापाठा का पेड़ । श्योनाक वृक्ष । ५. क्रोध लोभादि विचार (जैन), जैसे,—कषाय दोष । ६. कलियुग । ७. अग्रागलेपन (की०) । ८. ११. उत्तेजना । भावावेश (की०) । १२. मदता । मूर्खता (की०) । १३. सासारिक पदार्थों के प्रति अनुरक्ति (की०) ।

धूल (की०) । ६. गंदगी (की०) । १०. विनाश । ध्वंस (की०) ।

कषायित—वि० [सं०] १ गेरू के रंग का । २. प्रभावित (की०) ।

कषायी^१—[सं० कषायिन्] १ जिस से गोद जंसा पदार्थ निकले । २. कर्सला । ३. गेरू रंग का । ४. भौतिकतावादी । दुनियादार (की०) ।

कषायी^२—सञ्ज्ञा पुं० खजूर, शाल आदि वृक्ष (की०) ।

कषा—वि० [सं०] हानिकारक । नुकसानदेह (की०) ।

कषका—सञ्ज्ञा खी० [सं०] पक्षी (की०) ।

कषित—वि० [सं०] १ रगड़ा हुआ । कसौटी पर कसा हुआ । २. जिसे आघात लगा हो (की०) ।

कषीका—सञ्ज्ञा खी० [सं०] एक प्रकार का पक्षी (की०) ।

कषेरका—सञ्ज्ञा खी० [सं०] रोड़ (की०) ।

कषकष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का जहरीला कीड़ा (की०) ।

कषट^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. क्लेश । पीड़ा । वेदना । तकलीफ । व्यथा । दुःख ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—करना ।—क्षेलना । देना । भोगना ।—सहना ।

२ सकट । आपत्ति । मुसीबत । ३. पाप । दोष (की०) । ४.

दुष्टता । शैतानी (की०) । ५. प्रयत्न । उद्योग (की०) । ६.

परिश्रम । श्रम (की०) ।

कषट^२—वि० १. बुरा । सदाप । २. हानिकारक । ३. जो क्रमशः बुरी हालत को पहुँचा हो । ४. बदतर । कष्टकर । दुःखायक । ५. चिंतापूर्ण । ६. कठिन । दुस्साध्य । ७. घातक (की०) ।

कषटकर—वि० [सं०] कष्ट देनेवाला । तकलीफदेह ।

कविता^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] मनोविकारो पर प्रभाव डालनेवाला रमणीय पद्यमय वर्णन । काव्य ।

क्रि० प्र०—करना ।—जोड़ना ।—पढ़ना ।—रचना ।

कविता^२—सञ्ज्ञा पुं०, वि० [सं० कवित्] दे० 'कवि' । उ०—(क) वरने नप की उपमा कविता । सु जरे मनु कूदन मुत्तियता । —पृ० रा०, २१ । ८६ । (ख) दिन फेर पिता वर दे सविता कर दे कविता कवि शकर को ।—कविता कौ०, भा० २, पृ० ६३ ।

कविताई^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कविता] दे० 'कविता' ।

कविताना—क्रि० स० [सं० कविता से नाम०] पद्यबद्ध करना । छंद की जोड़जाड़ करना ।

कविताव्रत—वि० [सं०] काव्यरचना का व्रत लेनेवाला । उ०—दुए कृती कविताव्रत राजकवि समूह ।—अनामिका, पृ० १४२ ।

कवित्—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कवित्व] १ कविता । काव्य । उ०—निज कवित् केहि लाग न नीका ।—तुलसी (शब्द०) । २ दडक के अंतर्गत ३१ अक्षरों का एक वृत्त ।

विशेष—इसमें प्रत्येक चरण में ८, २, ८, ७ के विराम से ३१ अक्षर होते हैं । केवल अत् में गुरु होना चाहिए, शेष वर्णों के लिये लघु गुरु का कोई नियम नहीं है । जहाँ तक हो, सम वर्ण के शब्दों का प्रयोग करें तो पाठ मधुर होता है । यदि विपम वर्ण के शब्द आएँ तो दो एक साथ हो । इसे मनहरन और घनाक्षरी भी कहते हैं । जैसे,—कूलन में, केलि में, कछारन में, कुजन में, क्यारिन में कलिन कलीन किलकत है । कहै पद्याकर परागन में, पौनहू में, पातन में, पिक में, पलासन पगत है । द्वारे में, दिसान में दुनी में, देस देसन में, देखो दीप दीपन में, दीपत दिगत है । वीधिन में, ब्रज में, नवेलिन में, वेलिन में, वनन में, वागन में, वगर्थो वसत है ।—पद्याकर ग्रं०, पृ० १६१ ।

३. छप्पय छंद का एक नाम ।

कवित्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ काव्य-रचना-शक्ति । २ काव्य का गुण । यौ०—कवित्वशक्ति ।

कविनाथ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कविश्रेष्ठ । कवियों का स्वामी । श्रेष्ठ कवि । उ०—अक्रमातिशय उक्ति सो कहि भूपन कविनाथ ।—भूपण ग्रं०, पृ० ८२ ।

कविपरंपरा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कविपरम्परा] कवियों की परंपरा । पूरा कविसमूह या संप्रदाय । उ०—जिसका विधान कविपरंपरा बराबर करती चली आ रही है उसके प्रति सपेक्षा प्रकट करने का जो नया फैशन टाल्सटाय के समय से चला है वह एकदेशीय है ।—रस०, पृ० ६४ ।

कविपु गव—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कविपुङ्गव] श्रेष्ठ कवि । बड़ा कवि ।

उ०—इस प्रत्यक्षवादिता के लिये सांप्रतिक राजनीति सुवलित कविपुगवों और साहित्यिकों से अधिक प्रशंसा के भाजन अवश्य हैं ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ८६ ।

कविपुत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ भृगु के एक पुत्र का नाम । २. शुभाचार्य ।

कविप्रसिद्धि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] काव्य में प्रचलित रूढ़ियाँ जो सत्य न होने पर भी सत्य की भाँति ही काव्य में वर्णित हुई हैं । कविसमय । कविरूढ़ि । जैसे, केले से कपूर निकलना या चकवा चकई का दिन में साथ साथ रहना और रात में अलग हो जाना, आदि ।

कविमंजीषी—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] श्रेष्ठ कवि । महान् कवि । चित्तक कवि ।—अपरा, पृ० २०० ।

कविराज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ श्रेष्ठ कवि । उ०—इतमें हम महाराज हैं उत आप कविराज ।—अकवरी०, पृ० १२६ । २ भाट । ३. बंगाली वैद्यों की उपाधि ।

कविरामायण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वाल्मीकि (की०) ।

कविराय^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कवि + हि० राय] दे० 'कविराज' । उ०—अकवर ने इन्हें कविराय की उपाधि दी थी ।—अकवरी०, पृ० ८४ ।

कविलास^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कंलास, प्रा० कइलास, कविलास] १ कंलास । २. स्वर्ग । उ०—सात सहस्र हस्ती सिद्धली । जनु कविलास इरावत वली ।—जायसी (शब्द०) ।

कविलासिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की बीणा ।

कविली^३—वि० [हि० कावुली] दे० 'कावुली' । उ०—बत्तीस सहस्र कविली कछुर । जम जोर जोध नज्जरि मकर ।—पृ० रा०, १३ । १३ ।

कविवाणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कवि की वाणी । कविता । काव्य । उ०—कविवाणी के प्रसाद से हम ससार से सुख दुःख, आनंद वलेश का शुद्ध स्वार्थमुक्त रूप में अनुभव करते हैं ।—रस०, पृ० २४ ।

कविशेखर^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ संगीत में ताल के ६० मुख्य भेदों में से एक । २. उत्तम कवियों को प्रदत्त एक उपाधि (की०) ।

कविशेखर^२—वि० श्रेष्ठ कवि (की०) ।

कविसमय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] काव्य में प्रचलित रूढ़ियाँ । कविप्रसिद्धि ।

कविसम्राट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कवियों की श्रेष्ठतासूचक एक उपाधि । २. महान् कवि । श्रेष्ठ कवि ।

कविसम्राट्—वि० कवियों में श्रेष्ठ । अच्छे कवियों में अछछाया उत्तम । उ०—आप उच्चकोटि के कविसम्राट् भी हैं और प्रशस्त काव्याचार्य भी ।—रस क०, पृ० ३ ।

कवीन्द्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कवीन्द्र] श्रेष्ठ कवि । बड़ा कवि ।

कविय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] 'कविक' (की०) ।

कवी^१—वि० [अ० कवी] बलवान् । शक्तिशाली । मजबूत । दृढ़ । उ०—दलालत यो सही कुरान सू है । कवी इसलाम के ईमान सू है ।—दक्खिनी०, पृ० १९३ ।

कवी^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कवि] दे० 'कवि' । उ०—कविलो पिच्छू कहै लहू लघु अक लहावें । गिएँ बंद वस गुरु कवी लघु चार कहावें ।—रघु० रू०, पृ० ५ ।

कवीठ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कवीष्ठ, प्रा० कविठ] कंथा । कंय ।

कल्ला^३—संज्ञा पुं० [फा०] १. गाल के नीचे का अंग। जबड़ा।
उ०—र्यों बोले उमराउनि हल्ला। जम के भये कटीले कल्ला।
—नाला (शब्द०)।

यौ०—कल्लातोड़। कल्लादराज।

मुहा०—कल्ला चलाना = मुँह चलाना। खाना। जैसे,—कल्ला चने बला टले। कल्ला दवाना = (१) गला दवाना। बोलने से रोकना। मुँह पकड़ना। (२) अपने सामने दूसरे को न बोलने देना। कल्ला फुलाना = (१) गाल फुलाना। खफगी या रज से मुँह फुलाना या किसी से बोलचाल बंद कर देना। रिसाना। लूटना। (२) धमंड से मुँह फुलाना या बनाना। धमंड करना।

३. जबड़े के नीचे गले तक का स्थान; जैसे, खसी का कल्ला। कल्ले का मांस।

मुहा०—कल्ले पाए = सिर और पैर का मांस। कल्ला मारना = गाल बजाना या मारना। डींग हाँकना। शेखी बघारना।

कल्ला^४—संज्ञा पुं० [हि० कलह] कगड़ा। तकरार। वादविवाद।

यौ०—झगड़ा कल्ला = वादविवाद।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।

कल्ला^५—संज्ञा पुं० [हि० कल्ला] लप का वह ऊपरी भाग जिसमें बत्ती जलती है। बर्नर।

कल्ला^६—संज्ञा पुं० [सं० कलाचि, हि० कलाई] कलाई।

कल्लाठल्ला—संज्ञा पुं० [हि० कल्ला + अनु० ठल्ला] मजबूत कलाई।
उ०—ऐसा पहलवान या कि बस में क्या कहूँ। इधर देखो, यह छपचे (हाथ से दिखाकर) यह कल्ला ठल्ला।—फिजाना०, भा० ३, पृ० १७१।

कल्लातोड़—वि० [हि० कल्ला + तोड़] १. मुँहतोड़। प्रबल। २. जोड़ तोड़ का। बराबरी का।

कल्लादराज—वि० [फा०] [संज्ञा कल्लादराजी, कल्लेदराजी] बड़ बड़ कर बात बोलनेवाला। दुर्वचन कहनेवाला। जिसकी जवान में लगाम न हो। मुँहजोर। जैसे,—वह बड़ी कल्लेदराज औरत है।

कल्लादराजी—संज्ञा स्त्री [फा०] बड़ बड़ कर बातें करना। मुँहजोरी।
कल्लाना^१—क्रि० प्र० [सं० कड़ या कल् = प्रसन्न होना] १. शरीर में चमड़े के ऊपर ही ऊपर कुछ जलन लिए हुए एक प्रकार की पीड़ा होना, जैसे यन्त्र लगने से। २. असह्य होना। दुःख-दायी होना।

मुहा०—जी कल्लाना = चित्त को दुःख पहुँचना। उ०—भाज वे विना खाए गए हैं वह भला काहे को खाने पीने को पूछेगी। जैसा हमारा जी कल्लाता है, वैसा ही उसका भी थोड़े कल्लायागा—सी अज्ञान० (शब्द०)।

कल्लाना^२—क्रि० प्र० [हि० कल्ला] १. कल्ले निकलना। पल्लवित होना। २. विकसित होना। समृद्ध होना। उ०—वे पुराने परिवार वृक्ष की कलमों के रूप में नई भूमि पर, नए परिवार की लहनहावी शाखा के रूप में कल्ला उठे।—भस्मावृत०, पृ० ६।

२-६२

कल्लाश—संज्ञा पुं० [अ० कल्लास] बड़ी हुई नदी। वह नदी जिसमें बाढ़ आई हो। उ०—कल्लाश जो शाहो गदा अलहाम वही कलमः निदा।—कबीर मं०, पृ० ३७१।

कल्लि—क्रि० वि० [सं०] कल। आनेवाला दिन। अगला दिन [वि०]।

कल्लूँ—वि० [हि० काला] काला कलूटा।

कल्लेदराज—वि० [फा० कल्लादराज] दे० 'कल्लादराज'।

कल्लेदराजी—संज्ञा [फा० कल्लादराजी] स्त्री दे० 'कल्लादराजी'।

कल्लोल—संज्ञा पुं० [सं०] १. पानी की लहर। तरंग। २. मोज। उमग। ग्रामोद प्रमोद। झोडा। ३. शत्रु। दुश्मन (को०)।

कल्लोलना(उ)—क्रि० प्र० [सं० कल्लोल] कलोलना।

कल्लोलित—वि० [सं०] लहराता हुआ। तरंगित।

कल्लोलिनी^१—संज्ञा स्त्री [सं०] कल्लोल करनेवाली नदी। लहराती हुई नदी।

कल्लोलिनी^२—वि० कल्लोल करनेवाली। कल कल करनेवाली।

कल्व—संज्ञा पुं० [सं०] वास्तु या भवननिर्माण शिल्प में द्वार के वे किनारे जो नुकीले बनाए जाते हैं।

कल्लह^१—क्रि० वि० [सं० कल्य, कल्लि] दे० 'कल'। उ०—कल्लह संध्य को ऐसी बदली छाई कि मेरे सिर में पीडा आई।—श्यामा०, पृ० ६।

कल्लहक—संज्ञा स्त्री [देश०] एक चिड़िया जो कवूतर के बराबर होती है।

विशेष—इसका रंग ईंट का सा लाल होता है, केवल कंठ काला होता है, आँखें मोतीचूर होती हैं और पैर लाल होते हैं।

कल्लहण—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत के एक प्रसिद्ध पंडित और इतिहासकार।

विशेष—ये कश्मीर के राजमश्री चंपक प्रतु के पुत्र और राज-तरंगिणी के कर्ता थे। इनका समय ईसवी १२वीं शताब्दी का मध्य है।

कल्लहर(उ)—संज्ञा पुं० [हि० कल्लर] दे० 'कल्लर'।

कल्लहरना^१—क्रि० प्र० [हि० कड़ाह + ना (प्रत्य०)] नुनना। कड़ाही में उला जाना।

कल्लहरना^२—क्रि० प्र० [प्रा० कल्लहार] पुष्पित होना। पल्लवित होना। विकसित होना। उ०—कामलता कल्लहरी पेम मास्त भक्तभोरी।—पृ० रा०, २५। ३८१।

कल्लहरा^१—संज्ञा पुं० [देश०] करवे की वह लकड़ी जिसे चक कहते हैं। विशेष दे० 'चक'।

कल्लहाना(उ)—क्रि० प्र० [हि० कहलाना] दे० 'कहलाना'। उ०—खबर सुन सानमीन ने मिलके सारे कल्ला भेजे हैं उग्रकूँ।—दक्खिनी०, पृ० १६०।

कल्लहरा^२—संज्ञा पुं० [हि० कल्लहारना] कल्लहारने की क्रिया या भाव।

कल्लहरा^३—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद कोई। श्वेत कमलिनी। उ०—मुक्ताफल कल्लहार कमल तहाँ कुदन से मणिन सों जरी पाल चहूँ और साँकरी।—राम० धर्म०, पृ० ६७।

कल्माषकंठ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कल्माषकंठ] शिव ।

कल्माषपाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक राजा का नाम ।

कल्मापी—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] यमुना नदी का नाम [को०] ।

कल्पा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ सवेरा । भोर । प्रातःकाल । २ आनेवाला कल । उ०—आएँगे फिर ये इसी विध कल्प ।—साकेत, पृ० १६६ । ३ मधु । शराव । ४. वधाई । शुभकामना (को०) । ५ शुभ समाचार । सुसंवाद (को०) । ६. स्वास्थ्य (को०) । ७ वीता हुआ कल [को०] । ८ प्रशंसा (को०) । ९. उपाय । साधन (को०) । १० क्षेपण (को०) ।

कल्प^२—वि० १. स्वस्थ । निरोग । २ तैयार । प्रस्तुत । ३. चतुर । ४ शुभ । मंगलकारक । ५. बहुरा और गुँगा । ६ उपदेशात्मक । शंक्षिक । ७ कुशल । दक्ष [को०] ।

कल्पता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] स्वास्थ्य [को०] ।

कल्पपाल, कल्पपालक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कल्पपाली] कलवार ।

कल्पव्रत—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] सवेरे का भोजन । कलेवा [को०] ।

कल्पानु^३—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कल्याण' । उ०—कुम्भैत कुमद कल्याण । मोनी सु मगसी आन ।—हम्मीर रा०, पृ० १२५ ।

कल्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह वछिया जो वरदान के योग्य हो गई हो । कलोर । २ मदिरा । शराव । ३ हरीतकी । ४ वधाई । शुभकामना [को०] ।

कल्याण^१—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १. मंगल । शुभ । भलाई ।

यौ०—कल्याणकारी ।

२ सोना । ३ मपूर्ण जाति का एक शुद्ध राग ।

विशेष—यह धीराग का सातवाँ पुत्र माना जाता है । इसके गाने का समय रात का पहला पहर है । कोई कोई इसे मेघ राग का पुत्र मानते हैं । इसके मिश्र और शुद्ध मिलकर यमन कल्याण, शुद्ध कल्याण, जयत कल्याण, श्रावणी कल्याण, पूरिया कल्याण, कल्याण वराली, कल्याण कामोद, नट कल्याण, श्याम कल्याण, हेम कल्याण, क्षेम कल्याण, भूपाली कल्याण ये बारह भेद हैं । इसका सरगम यह है—'ग, म, ध, रि, स, नि, ध, प, म, स, रि, ग' ।

४ एक प्रकार का घृत (वेद्यक) । ५ सौभाग्य (को०) । ६. प्रसन्नता । सुख (को०) । ७. सपन्नता (को०) । ८. त्योहार (को०) । ९ स्वर्ग (को०) ।

कल्याण^२—वि० [स्त्री० कल्याणी] १. शुभ । अच्छा । भला । मंगलप्रद ।

यौ०—कल्याणभार्य ।

२ सुंदर (को०) । ३. प्रामाणिक । यथार्थ (को०) ।

कल्याणक, कल्याणकर—वि० [सं०] शुभ या कल्याण करनेवाला । कल्याणकारक [को०] ।

कल्याणकारी—वि० [सं० कल्याणकारिन्] [वि० स्त्री० कल्याणकारिणी] 'दे० कल्याणकर' [को०] ।

कल्याणकामोद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सपूर्ण जाति का एक सकर राग जो रात के पहले पहर में गाया जाता है ।

कल्याणकृत्—वि० [सं०] १ कल्याणपूर्ण या मंगलमय कार्य करने वाला । २. भाग्यशाली [को०] ।

कल्याणधार^३—वि० [मं० कल्याणधार] कल्याणकर । उ०—उस कल्याणधार एकमात्र छप्पर को जिसके नीचे असंख्य आर्य सतानो को सुख छाया की आशा है ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६० ।

कल्याणनट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक सकर राग जो कल्याण और नट के संयोग से बनता है ।

कल्याणबीज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मसूर [को०] ।

कल्याणभार्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जो बार बार विवाह करे, पर जिसकी स्त्री मर जाय ।

कल्याणिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] मैनसिल [को०] ।

कल्याणी^१—वि० स्त्री० [सं०] १ कल्याण करनेवाली । सुंदरी । २ कल्याणकर । मंगलकारक । उ०—विद्याता की कल्याणी सृष्टि, सफल हो इस भूतल पर पूर्ण ।—कामायनी, पृ० ५८ ।

कल्याणी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० १ मापपणी । जगली उडद । २ गाय । ३ प्रयाग तीर्थ की एक प्रसिद्ध देवी । ४ पवित्र गाय । (को०) । ५ वछिया (को०) । ६ एक रागिनी (को०) ।

कल्याणीय—वि० [मं० कल्याणी] कल्याणकारी । उ०—हे, परम कल्याणमय, तेरी कल्याणीय लीला को मैं नहीं जानता हूँ ।—त्याग०, पृ० ४५ ।

कल्पानु^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कल्याण] दे० 'कल्याण' ।

कल्याणकर^३—वि० [सं० कल्याणकर] दे० 'कल्याणकर' । उ०—'हारचंद' सीस राजत सदा कलिमलहर कल्याणकर ।—भागवतदु० ग्र०, भा० ३, पृ० ६६० ।

कल्याणश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सवेरे का भोजन । कलेवा [को०] ।

कल्पोना^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कल्प] कलेवा ।

कल्ल—वि० [सं०] बहुरा [को०] ।

कल्लता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] बहुरापन [को०] ।

कल्लर^१—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] १ नोनी मिट्टी ।

क्रि० प्र०—लगना ।

२. रेह । ऊसर । बंदर । उ०—सैंकडो क्लेशो के साथ एक एक पैसा झकटटा करना और फिर विवाह के समय अर्घ्य होकर कल्लर में बखेर देना ।—भाग्यवती (शब्द०) ।

कल्लर^२—वि० नमकीन । उ०—के हल्लर फल्लर करै, पावै कल्लर राव ।—बाँकी ग्र०, भा० ३ पृ० ८१ ।

कल्लचि—वि० [तु० कल्लचि] १ लुच्चा । शोहदा । गुडा । चाँदी ।

२. दरिद्र । कगाल । अनाथ ।

कल्ला^१—सञ्ज्ञा पुं० [मं० करीर=वाँस का करैल] १ अकुर । ककफा । किल्ला । गोफा ।

क्रि० प्र०—उठना ।—निकलना ।—फूटना ।

यौ०—करमकल्ला ।

कल्ला^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुल्या] वह गड्ढा या कूड़ा जिसे पान के भीदे पर पान सींचने के लिये खोदते हैं ।

कल्पवर्ष

कल्पवर्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] उग्रसेन के भाई जो देवक के पुत्र थे ।
कल्पवास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० कल्पवासी, वि० स्त्री० कल्पवासिनी]
माघ के महीने में महीना भर गंगा तट पर सयम के साथ
रहना ।

कल्पविटप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कल्पवृक्ष ।

कल्पविद्—वि० [सं०] कल्पसूत्रों का ज्ञाता [को०] ।

कल्पवृक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. पुराणानुसार देवलोक का एक वृक्ष
जो समुद्र मंथन के समय समुद्र से निकला हुआ और १४
रत्नों में माना जाता है । यह इंद्र को दिया गया था ।

विशेष—हिंदुओं का विश्वास है कि इससे जिस वस्तु की प्रार्थना
की जाय, वही यह देता है । इसका नाश कल्पांत तक नहीं
होता । इसी प्रकार का एक पेड़ मुसलमानों के स्वर्ग में भी
है जिसे वे तूबा कहते हैं ।

पर्याय—कल्पद्रुम । कल्पतरु । सुरतरु । कल्पलता । देवतरु ।

२ एक वृक्ष जो संसार में सब पेड़ों से ऊँचा, घेरदार और
दीर्घजीवी होता है ।

विशेष—अफ्रीका के सेनीगल नामक प्रदेश में इसका एक पेड़
है जिसके विषय में विद्वानों का अनुमान है कि वह ५२००
वर्ष का है । यह पेड़ ४० में लेकर ७० फुट तक ऊँचा होता
है । सावन भादों में यह पत्तों और फूलों से लदा हुआ
दिखाई पड़ता है । फूल प्रायः सफेद रंग के होते हैं और चार
छट इंच तक चौड़े होते हैं । इनसे पके सतरों की मटक आती
है । फूलों के भड़ जाने पर कद्दू के आकार के फल लगते हैं,
जो एक फुट लंबे होते हैं । फल पकने पर खटमिट्टे होते हैं,
जिन्हें बंदर बहुत खाते हैं । मिस्र देश के लोग फल का रस
निकालकर और उसमें शक्कर मिलाकर पीते हैं । इसका गुदा
पेचिश में देते हैं, इसके बीज दवा के काम में आते हैं । कहीं
कहीं इसकी पत्तियों की बुकनी भोजन में मिलाकर खाते हैं ।
इसकी लकड़ी बहुत मजबूत नहीं होती, इसी से इसमें बड़े बड़े
खोदरे पड़ जाते हैं । इसकी छाल के रेशे की रस्सी बनती है
और एक प्रकार का कपड़ा भी बुना जाता है । यह वृक्ष भारत
वर्ष में मद्रास, बंबई और मध्यप्रदेश में बहुत मिलता है ।
बरसात में बीज बोने से यह लगता है और बहुत जल्दी बढ़ता
है । इसे गोरख इमली भी कहते हैं ।

कल्पशाखी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कल्पशाखिन्] कल्पवृक्ष । उ०—जयति
सग्राम जय राम सदेशहर कौशल कुशल कल्याण भाखी । राम
विरहाई सतप्त भरतादि नर नारि शीतल करण कल्पशाखी ।—
तुलसी (शब्द०) ।

कल्पसाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कल्पवृक्ष । उ०—आक कल्पसाल को
निसाक कहै कहा माल मोहि लै पिनाकपानि सीस श्री बढाई
है ।—दीन० ग्रं०, पृ० १३० ।

कल्पसूत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह सूत्रग्रन्थ जिसमें यज्ञादि कर्मों या गृह्य
कर्मों का विधान लिखा हो ।

विशेष—ऐसे ग्रन्थ वेदों की प्रत्येक शाखा के लिये पृथक् पृथक्
ऋषियों के बनाए हुए हैं और विषयभेद से इनके दो भेद हैं—
श्रौत और गृह्य । वे सूत्रग्रन्थ जिनमें दशंपौर्णमास से लेकर

अश्वमेधादि यज्ञों तक की विधि का विधान है, श्रौतसूत्र
कहलाते हैं, तथा जिनमें गृहस्थों के पंचमहायज्ञादि कृत्यों
और गर्भाधानादि समकारों की विधि लिखी है, वे गृह्यसूत्र
कहलाते हैं ।

कल्पहिंसा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जैन शास्त्रों के अनुसार वह हिंसा जो
पकाने, पीसने आदि में होती है । हिंदू इसे 'पचसूना' कहते हैं ।

कल्पांत—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कल्पान्त] प्रलय ।

कल्पातीत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के शास्त्रों के अनुसार देवताओं
का एक गण ।

विशेष—यह वैमानिक देवताओं के अंतर्गत है । इसके देवता दो
प्रकार के हैं और इनकी संख्या १४ है—नौ ग्रंथेयक और
पाँच अनुत्तर ।

कल्पानीत—वि० जिसका अर्थ कल्प में भी न हो । नित्य ।

कल्पारभी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कल्पारम्भिन्] प्रगसा कराने के लालच
से काम करनेवाला । बाहवाही के लिये कुछ करनेवाला ।

कल्पिक—वि० [म०] योग्य । उपयुक्त [को०] ।

कल्पिन—वि० [सं०] १ जिसकी कल्पना की गई हो । २ मनमाना ।
मनगढ़ित । फर्जी ।

यो० कपोलकल्पित ।

३ बनावटी । नकली ।

कल्पिनोपमा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का उपमालकार जिसमें
कवि उपमेय के लिये कोई एक स्वाभाविक उपयुक्त उपमान न
मिलने से मनमाना उपमान कल्पित कर लेता है । इसे
अभूतोपमा भी कहते हैं । जैसे,—(क) ककनहार विविध
भूषण विधि रचे निज कर मन लाई ।—गजमणि माल बीच
भ्राजत कहि जात न पदिक निकाई । जनु उडगन मडल वरिद
पर नवग्रह रची अथाई ।—तुलसी (शब्द०) । इसमें
गजमुक्ता के हार के बीच में पदिक की शोभा के हेतु उपयुक्त
उपमान न पाकर कवि कल्पना करता है कि माली मेघों के
ऊपर बैठकर नवग्रह ने अथाई रची है । (ख) राघे मुख ते
छुटि अलक लगी पयोधर आय । शशि मडन ते मेरु सिर लटकी
भागिनी भाय (शब्द०) ।

कल्प—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कल्प] १ हृदय । दिल । उ०—खोलकर बदे
कवा सा मुलके दिल गारत किया । क्या हिसारे कल्प दिलवर
ने खुले बदी लिया ।—कविता को०, भा० ४ पृ० ७७ । २.
मन । ३ मध्यभाग, विशेषतः सेना का मध्य भाग । ४. १७वीं
नक्षत्र । ५ छोटी चाँदी या सोना ।

कल्पपत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ पाप । अघ । २ मेल । मल । ३ पीव ।
मवाद । ४ एक नरक का नाम । ५ कलाई का निचला
भाग (को०) ।

कल्पपत्र—वि० १ पापी । २ गदा । मलिन । ३ दुष्ट । बदमाश [को०] ।
कल्पपत्र—वि० [सं०] १ चित्तवरा । चित्तवर्ण । २ काला ।

यो०—कल्पापवाद । कल्पापकृत ।

कल्पपत्र—सञ्ज्ञा पुं० १ चित्तवरा रंग । २ काला रंग । ३ राक्षस ।
४ आन का एक रूप । ५ एक प्रकार का सुगंधित
चावल [को०] ।

३ प्रातःकाल । ४ वैद्यक के अनुसार रोग निवृत्ति का एक उपाय या युक्ति । जैसे,—केसकल्प । कायाकल्प । ५ प्रकरण । एक विभाग । जैसे,—ओषधकल्प । श्राद्धकल्प इत्यादि । ६ एक प्रकार का नृत्य । ७ काल का एक विभाग जिसे ब्रह्मा का एक दिन कहते हैं और जिसमें १४ मन्वन्तर या ४३२००००००० वर्ष होते हैं ।

विशेष—पुराणानुसार ब्रह्मा के तीस दिनों के नाम ये हैं—(१) श्वेत (वाराह), (२) नीललोहित, (३) वामदेव, (४) रथतर, (५) रौरव, (६) प्राण, (७) वृहत्कल्प, (८) कदर्प, (९) सत्य या सद्य, (१३) ईशान, (११) व्यान (१२) सारस्वत, (१३) उदान, (१४) गारुड, (१५) कौम (ब्रह्मा की पूर्णमासी), (१६) नारसिंह, (१७) समान (१८) आग्नेय, (१९) सौम, (२०) मानव, (२१) पुमान्, (२२) वक्रुठ, (२३) लक्ष्मी, (२४) सावित्री, (२५) घोर, (२६) वाराह, (२७) वैराज, (२८) गोरी, (२९) महेश्वर, (३०) पितृ (ब्रह्मा की अमावस्या) ।

८ प्रलय (को०) । ९ मदिरा । शराव (को०) । १० देह को नवीन और नीरोग करने की क्रिया या उपाय (को०) । ११. स्वर्ग का वृक्षविशेष (को०) ।

यौ०—कल्पवृक्ष । कल्पतृक्ष । कल्पलता ।

कल्प^२—वि० २ तुल्य । समान । जैसे—ऋषिकल्प । देवकला ।

विशेष—इस अर्थ में यह शब्द समास के अंत में आता है । पाणिनि ने इसे प्रत्यय माना है ।

२ योग्य (को०) । ३ उचित (को०) । ४ शक्तिमान (को०) । ५ समव (को०) । ६ व्याहारिक (को०) ।

कल्पक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ नाई । नापित । २ कचूर । क्लायुक्त बाल काटनेवाला ।

कल्पक^२—वि० १ कल्पना करनेवाला । रचनेवाला । २ काटनेवाला ।

कल्पकार^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कल्पशास्त्र का रचनेवाला व्यक्ति । गृह्य या श्रौत सूत्र का रचयिता । २ नाई (को०) । ३ शराव बनानेवाला (को०) ।

कल्पकार^२—वि० १. कल्पशास्त्र रचनेवाला जिसने गृह्य या श्रौत सूत्र रचे हो । जैसे—कल्पकार ऋषियो ने कहा है । २ सजाने सेवारनेवाला (को०) ।

कल्पक्षय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कल्पाज (को०) ।

कल्पतृक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कल्पवृक्ष ।

कल्पद्रुम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कल्पवृक्ष ।

कल्पन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ निमोण । रचना । २ सजाना । साज । ३ सज्जा के लिये एक वस्तु का दूसरी वस्तु पर रखना । ४ घोड़ा । जालसाजी । ५ कल्पना करना । ६ काटना । कतरना (को०) ।

कल्पना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ रचना । वनावट । सजावट ।

यौ०—प्रबधकल्पना ।

२. वह शक्ति जो अतःकरण में ऐसी वस्तुओं के स्वरूप उपस्थित करती है जो उस समय इन्द्रियों के समुच्च उपस्थित नहीं होती । उद्भावना । अनुमान । सकल्पनशीलता की शक्ति ।

विशेष—काव्य, उपन्यास, चित्र आदि इसी शक्ति के द्वारा बनते हैं ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

यौ०—कल्पनाप्रसूत । कल्पनाशक्ति ।

३. किसी एक वस्तु में अन्य वस्तु का आरोप । ग्रह्यारोप । जैसे, रस्ती में साँप की भावना । ४ भावना । मान लेना । फर्ज । जैसे—कल्पना करो कि अब एक सगल रेखा है । ५. मनगढ़त बात । जैसे—यह सब तुम्हारी कल्पना है ।

क्रि० प्र०—करना ।

६ पाश्चात्य साहित्यालोचन और सौंदर्यशास्त्र के अनुसार कलात्मक सज्जना की शक्ति । ७ सज्जारी के लिए हाथी की सजावट ।

कल्पना—क्रि० अ० [हि० कल्पना] दे० 'कल्पना' ।

कल्पनाचित्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कल्पना + चित्र] कल्पना से निर्मित चित्र । ऐसा चित्र जिसकी रचयिता ने स्वयं उद्भावना की हो जिसके निर्माण में बाह्य जगत् का आधार न लिया हो ।

कल्पनातीत—वि० [सं०] १ कल्पना से भरे । जो कल्पना में भी न आ सके । उ०—कल्पनातीत काल की घटना । हृदय को लगी अचानक रटना ।—भूना, पृ० १ ।

कल्पनाप्रसूत—वि० [सं०] १ कल्पना से उत्पन्न । १ मनगढ़त ।

कल्पनावाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कल्पना + वाद] १. कल्पना पर बल देनेवाला सिद्धांत । यह सिद्धांत कि कला अनुभव की कल्पना है ।

कल्पनाशक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कल्पना + शक्ति] कल्पना करने की क्षमता । उद्भावना शक्ति ।

कल्पनासृष्टि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ कल्पनाप्रसूत रचना । २ कल्पना का राज्य ।

कल्पनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कर्तनी । कतरनी । कैंची ।

कल्पनीय—वि० [सं०] जिसकी कल्पना की जा सके ।

कल्पपादप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कलावृक्ष ।

यौ०—कल्पपावप दान = एक महादान जिसमें सोने के पेड़, फूल आदि बनाकर दान किए जाते हैं ।

कल्पपाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शराव बेचनेवाला (को०) ।

कल्पभव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार एक प्रकार के देवगण ।

विशेष—ये वैमानिक के अतर्गत माने जाते हैं और संख्या में १२ हैं, अर्थात् सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेंद्र, ब्रह्मा, कालातक, शुक्र, सहस्रार, आनत, प्रणत, आरण और अच्युत । जैनियों का विश्वास है कि ये लोग तीर्थंकरों के जन्मादि संस्कारों में आते हैं ।

कल्पलता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कल्पवृक्ष ।

यौ०—कल्पलता दान = जिसमें सोने की दल ली जाएं तथा विद्धि, मुनि, पक्षी आदि बनाकर दान किए जाते हैं ।

कल्पवयन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सोचविचार । उद्येड्युन । उ०—मुझे पलक जब निशा शमन में लगे प्रबल मन कल्पवयन में ।—गीतिका, पृ० १८ ।

उ०—छगन मगन प्यारे लाल कीजिए कलेवा ।—सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना । होना ।

मुहा०—कलेवा करना = निगल जाना । खा जाना । उ०—
जिन भूपन जग जीति बाँधि जम अपनी बाँह बनायो । तेऊ
काल कलेवा कीन्हो तू गिनती कब आयो ?—तुलसी (शब्द०) ।

२. वह भोजन जो यात्री घर से चलते समय बाँध लेते हैं ।
पाथ्र्य । संवत् । ३. विवाह के अनंतर एक रीति जिनमें वर
अपने सखाओं के साथ समुराल में भोजन करने जाता है ।
खिचड़ी । वासी ।

विशेष—यह रीति प्रायः विवाह के दूसरे दिन होती है ।

कलेवार०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कलेवर] कलेवर । शरीर । उ०—
कलेवार पेट ढरं दूखचैव । उमै सूर भुभभै उमै साहि हेत
पृ० रा०, ६ । १५२ ।

कलेस०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कलेश] दे० 'कलेश' । उ०—कत हम धरज
बाँधव सजनि तनि विनु सहव कलेस ।—विद्यापति, पृ० ५०८ ।

कलेसुरा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कलसिरा] दे० 'कलसिरा' ।

कलेया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कला] सिर नीचे और पर ऊपर कर
उलट जाने की क्रिया । कलावाजी ।

क्रि० प्र०—खाना ।—मारना ।

कलाई वोडा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा साँप या
अजगर जो बगल में होता है ।

कलोपनता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] मध्यम ग्राम की सात मूछनाओं में से
दूसरी मूछना ।

कलोर^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कल्या या हिं० कलोल = कलोल करनेवाली
बिना बरदाई गाय] वह जवान गाय जो बरदाई या व्याई
न हो ।

कलोर^२—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कलोल] किलोल । चहचहाना । बिड़ियो
का स्वर । उ०—परिमल वास उड़े चहुँ ओरा, वह विधि पक्षी
करै कलोरा ।—कवीर सा०, पृ० ४६३ ।

कलोल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कल्लोल] आमोद प्रमोद । क्रीडा । केलि ।
उ०—(क) विचित्र विहंग अलि जलज ज्यों सुखमा सर करत
कलोल ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) मिलि नाचत करत कलोल
छिरकत हरद दही । मानो वर्षत भादो मास नदी घुन दूध
वही ।—सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—मचाना ।

कलोलना०—क्रि० अ० [सं० कल्लोल, हिं० कलोल] क्रीडा करना ।
आमोद प्रमोद करना ।

कलोलह०—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कलोल] दे० 'कलोल' । उ०—सत्र घर
काल कलोलहू खेले विनु पगु जग में डोले ।—सं० दरिया,
पृ० ११२ ।

कलौछ^१—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० काला + ओछ (प्रत्य०)] दे० 'कलौस' ।

कलौछ^२—वि० दे० 'कलौस' ।

कलौजी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कालाजाजी] एक पौधा जो दक्षिण भारत
और नेपाल की तराई में होता है । मँगरला ।

विशेष—इसकी खेती नदियों के किनारे होती है । दोमट या
बलुई जमीन में इसे अगहन पूस में बोते हैं । इसका पौधा डेढ़
दो हाथ ऊँचा होता है । फूल भड़ जाने पर कलियाँ लगती हैं
जो ढाई तीन अंगुल लंबी होती हैं और तिनमें काले काले
दाने भरे रहते हैं । दानों से एक तेज गंध आती है और इसी
से वे मसाले के काम में आते हैं । इन बीजों से तेल भी
निकाला जाता है, जो दवा के काम में आता है । तेल के
विचार से यह दो प्रकार का होता है । एक का तेल काला
और सुगंधित होता है, दूसरे का तेल साफ रेंडी के तेल का सा
होता है । यह सुगंधित, वातघ्न तथा पेट के लिये उपकारी
और पाचक होता है । बमाल में इसी को काला जीरा भी
कहते हैं ।

३. एक प्रकार की तरकारों । मरगल ।

विशेष—इसके बनाने की विधि यह है कि करँले, परवर, मिंडी,
बेंगन आदि का पेटा चारकर उनमें घनियाँ, मिर्च, आदि ममालें
खटाई नमक के साथ भरते हैं, और उमें तेल या घी में तल
लेते हैं ।

कलौस^१—वि० [हिं० काला + ओस (प्रत्य०)] कालापन लिए ।
सियाही मायल ।

कलौस^२—सञ्ज्ञा स्त्री० १. कालापन । स्याही । कानिख । २. कलक ।

कलौथी०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुलथ्य] मुँगरा चावल ।

कलोल०—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कलोल] दे० 'कलोल' । उ०—इनमें करै
कलील सदाई करै भोग जीवन भरमाई ।—कवीर सा०, पृ०
८४० ।

कलक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. चूर्ण । बुकनी । २. पीठी । ३. गूदा । ४.
दम । पाखड़ । ५. शठता । ६. मल । मैल । कोट । ७. कान
की मैल । खूँट । ८. बिण्ठा । ९. पाप । १०. गीली या मिमोई
हुई ओपधियों को बारीक पीसकर बनाई हुई चटनी । अवलेह ।
११. बहेडा । १२. तुलक नाम का गधद्रव्य । १३. शत्रुता (को०) ।

कलक^२—वि० १. पापी । २. दुष्ट (को०) ।

कलकफल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अनार ।

कलिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] विष्णु के दसवें अवतार का नाम जो समल
मुरादाबाद में एक कुमारी कन्या के गर्भ से होगा ।

कलिकपुराण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक उपपुराण जिसमें कलिक अवतार की
कथा का वर्णन है (को०) ।

कलकी^१—वि० [सं० कलिकृत्] १. गदा । २. सदोप । ३. दुष्ट (को०) ।

कलकी^२—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'कलिक' (को०) ।

कल्प^१—सञ्ज्ञा पुं० [नं०] १. विधान । विधि । कृत्य ।

यौ०—प्रथम कल्प = पहला कृत्य ।

२. वेद के प्रधान छह अंगों में से एक । एक प्रकार के वैदिक
सूत्र ग्रंथ ।

विशेष—इसमें यज्ञादि करने का विधान है । श्रौत, गृह्य आदि
सूत्रग्रंथ इसी के सतर्ग हैं ।

कलेजा मलना = दिल दुखाना । कष्ट पहुँचाना । कलेजा मसोस कर रह जाना = कलेजा थामकर रह जाना । दुख के वेग को रोककर रह जाना । कलेजा मुँह को या मुँह तक आना = (१) जी घबराना । जी उकताना । व्याकुलता होना । उ०—क्षुधा के सताप से कलेजा मुँह को आता है ।—अयोध्या (शब्द०) । (२) सताप होना । दुख से व्याकुल होना । उ०—इस दुनिया की इन बातों से बटोही का कलेजा मुँह को आ रहा था ।—अयोध्या (शब्द०) । कलेजा सुलगना = दिल जलना । अत्यंत दुख पहुँचाना । सताप होना । उ०—कवि सिवा कौन लग सका उसके है । कलेजा सुलग रहा जिसका ।—चोखे०, पृ० ११ । कलेजा सुलगना = बहुत सताना । अत्यंत कष्ट देना । दिल जलाना । कलेजा हिलना = कलेजा काँपना । अत्यंत भय होना । कलेजे का टुकड़ा = (१) लडका । बेटा । सतान । (२) अत्यंत प्रिय व्यक्ति । कलेजे की कोर = (१) सतान । लडका । लडकी । (२) अत्यंत प्रिय व्यक्ति । कलेजे खाई = डाइन । वक्चो पर टोना करनेवाली । कलेजे पर चोट खाना = दुख होना । कलेश होना । उ०—अब तो जान पर वन गई । कलेजे पर चोट खाई है तबीब बेचारा नब्ब क्या देखेगा ?—फिसाना०, भा० १, पृ० ११ । कलेजे पर चोट लगना = सदमा पहुँचाना । अत्यंत कलेश होना । कलेजे पर छुरी चल जाना = दिल पर चोट पहुँचाना । अत्यंत कलेश पहुँचाना । कलेजे पर साँप लोटना = चित्त में किसी बात का स्मरण आ जाने से एक बारगी शोक छा जाना । जैसे,—जब वह अपने मरे लडके की कोई चीज देखता है, तब उसके कलेजे पर साँप लोट जाता है । (ख) जब वह अपने पुराने मकान को दूसरो के अधिकार में देखता है, तब उसके कलेजे पर साँप लोट जाता है । कलेजे पर हाथ धरना या रखना = अपने दिल से पूछना । अपनी आत्मा से पूछना । चित्त में जैसा विश्वास हो, ठीक वसा ही कहना । जैसे,—तुम कहते हो कि तुमने रुपया नहीं लिया, जरा कलेजे पर तो हाथ रखो । विशेष—यदि कोई मनुष्य कोई दोष या अपराध करता है तो उसकी छाती धक धक करती है । इसी से जब कोई मनुष्य झूठ बोलता है या अपना अपराध स्वीकार करता है, तब वह गुहाबरा बोला जाता है । कलेजे पर हाथ धरकर या रखकर देखना = अपनी आत्मा से पूछ कर देखना । अपने चित्त का जो यथार्थ विश्वास हो, उसपर ध्यान देना । उ०—देखना हो अगर दहल दिल की । देखिए हाथ रख कलेजे पर ।—चोखे०, पृ० ६१ । कलेजे में आग लगना = (१) अत्यंत दुख या शोक होना । (२) डाह होना । द्वेष की जलन होना । (३) बहुत प्यास लगना । कलेजे में गाँठ पड़ना = मन में भेद पैदा होना । उ०—तब सके गाँठ हम कहाँ मतलब । पड गई गाँठ जब कलेजे में ।—चोखे०, पृ० ३६ । कलेजे में छेद करना = अत्यधिक कलेश पहुँचाना । मारिक पीडा देना । उ०—बात से छेद छेद करके बयो । छेद करदे किसी कलेजे में ।—चोखे०, पृ० २२ । कलेजे में डालना = प्यार से सदा अपने बहुत पास रखना ।

हृदय से लगाकर रखना । जैसे,—जी चाहता है कि उसे कलेजे में डाल लूँ । कलेजे में डाल लेना = दे० 'कलेजे में डालना' उ०—मनचले नौनिहाल हैं जितने । हम उन्हें डाल लें कलेजे में ।—चोखे०, पृ० १३ । कलेजे में पँठना या घुसना = किसी का भेद लेने या किसी से अपना कोई मतलब निकालने के लिये उससे खूब उपरी हेल मेल बढ़ाना । जैसे—वह इस ढब से कलेजे में पँठकर बातें करता है कि सारी भेद ले लेता है । कलेजे में लगना = कलेजे में अटकना । कलेजे पर भारी मालूम होना । कलेजे या पेट में विकार उत्पन्न करना । जैसे,—(क) पानी धीरे धीरे पीओ नहीं तो कलेजे में लगेगा (ख) देखना यह कई दिनों का भूखा है, बहुत सा दवा जायगा तो अन्न कलेजे में लगेगा । कलेजे में लगाकर रखना = (१) किसी प्रिय वस्तु को अपने अत्यंत निकट रखना या पास से जुदा न होने देना । बहुत प्रिय करके रखना । (२) बहुत यत्न से रखना ।

२ छाती । वक्षस्थल ।

मुहा०—कलेजे से लगाना = छाती से लगाना । आलिंगन करना । प्यार करना । गले लगाना । उ०—डुख कलेजा गया जिन्हें देखे । क्यों लगाएँ उन्हें कलेजे से ।—चोखे०, पृ० ६२ ।

२. जीवट । साहस । हिम्मत ।

कि० प्र०—करना ।—बढ़ना ।

कलेजी—सच्चा स्त्री [हि० कलेजा] कलेजे का मांस ।

कलेटा—सच्चा पुं [विज्ञ०] एक प्रकार की बकरी जिसके ऊन में कवल आदि बुने जाते हैं ।

कलेव—सच्चा पुं [सं० कलेवर] कलेवर । शरीर । उ०—तब कामना सु कलेव सुर करे सेव मुचि सच ।—पृ० रा०, २५ । १७६ ।

कलेवर—सच्चा पुं [सं०] शरीर । देह । चोला ।

मुहा०—कलेवर चढ़ाना = महावीर, मौरव, गणेश आदि देवताओं की मूर्ति पर घी या तेल में मिले सेंदुर का लेप करना । कलेवर बदलना = (१) एक शरीर त्यागकर दूसरा शरीर धारण करना । चोला बदलना । (२) एक रूप से दूसरे रूप में जाना । (३) जगन्नाथ जी की पुरानी मूर्ति के स्थान पर नई मूर्ति स्थापित होना ।

विशेष—यह एक प्रधान उत्सव है, जो जगन्नाथ पुरी में जब मलमास असाढ़ में पड़ता है, तब होता है । इसमें लकड़ी की नई मूर्ति मंदिर में स्थापित की जाती है और पुरानी फेंक दी जाती है ।

(४) कायाकल्प होना । रोग के पीछे शरीर पर नई रगत चढ़ना । (५) पुराना कपड़ा उतारकर नया और साफ कपड़ा पहनना ।

२ डाँचा । आकार । ढील ढील ।

कलेवा—सच्चा पुं [सं० कल्पवर्त, प्रा० कल्लवट्ट] १ वह हलका भोजन जो सवेरे वांसी मुँह किया जाता है । नहारी । जलपान ।

वाक्यों की वर्णिकरना। लगती बात कहना। ताने मेहने मारना। कलेजा छलनी होना = ३० 'कलेजा छिदना या विघटना'। कलेजा जलना = (१) अत्यंत दुःख पहुँचना। कष्ट पहुँचना। (२) बुरा लगना। अरुचिकर होना। कलेजा जलाना = दुःख देना। दुःख पहुँचाना। कलेजा जला देना = ३० 'कलेजा जलाना'। उ०—वया अजव, कवि जला भुना बोई। है कलेजा जला जला देता। —चोखे०, पृ० १०। कलेजा जली = दुःखिया। जिसके दिल पर बहुत चोट पहुँची हो। कलेजा जली तुक्कल = वह तुक्कल जिसके बीच का भाग काला हो। कलेजा टूटना या टुकड़े टुकड़े होना = जी टूटना। उत्साह भग होना। हीसला न रहना। कलेजा टूक टूक होना = शोक से हृदय विदीर्ण होना। दिल पर कड़ी चोट पहुँचना। कलेजा ठाढ़ करना = सतोप देना। तुष्ट करना। चित्त को अभिलाषा पूरी करना। जैसे,—उसे देख मैंने अपना कलेजा ठाढ़ किया। कलेजा ठाढ़ होना = तृप्ति होना। सतोप होना। अभिलाषा पूरी होना। शांति मिलना। चैन पडना। कलेजा तर होना = (१) कलेजे में ठंडक पहुँचना। (२) घन से भरे पूरे रहने के कारण निर्द्वंद्व रहना। कलेजा यामना = दुःख सहने के लिये जी कड़ा करना। शोक के वेग को दवाना। कलेजा यामकर बैठ जाना या रह जाना = (१) शोक के वेग को दबाकर रह जाना। मन मसंसकर रह जाना। जैसे,—जिस समय यह शोकसमाचार मिला, वे कलेजा यामकर रह गए। उ०—(क) उस समय रवाना अशरते काशाना की तरफ नजर डाली तो महतावी पर उदासी छाई हुई। कलेजा याम के बैठ गए।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३२४। (ख) याम कर रह गए कलेजा हम। कर गया काम आँख का टोना।—चोखे०, पृ० ४२। (२) सतोष करना। कलेजा याम यामकर रोना = (१) मसोस मसोस कर रोना। शोक के वेग को दवाते दवाते रोना। (२) रह रहकर रोना। कलेजा वहलना = भय से जी कांपना। कलेजा धक धक करना = भय से व्याकुल होना। आशका से चित्त विचलित होना। कलेजा धक्क धक्क करना = ३० 'कलेजा धक धक करना'। उ०—आप जावें, मैं आपको रोक नहीं सकती, पर मैं बड़ी अभागिनी हूँ, इसी से मेरा कलेजा धक्क धक्क कर रहा है।—ठेड०, पृ० ५२। कलेजा धक से हो जाना = (१) भय से सहसा स्तब्ध होना। एक-बारगी डर छा जाना। उ०—हरिमोहन का कलेजा धक से हो गया और उन्होंने लडखड़ाती जीभ से कहा।—प्रयोध्या (शब्द०)। (२) चकित होना। विस्मित होना। भौचक्का रहना। उ०—उसकी बुराई सुनते ही उसका कलेजा धक से हो गया।—प्रयोध्या (शब्द०)। कलेजा घडकना = (१) डर से जी कांपना। भय से व्याकुलता होना। (२) चित्त में चिंता होना। जी में घटका होना। कलेजा घड़ घड़ करना = ३० 'कलेजा घडकना'। उ०—दूसरा अफसर—कलेजा उड़ घड़ कर रहा है।—फिसाना०, भाग ३, पृ० १०५। कलेजा पड़कना = (१) डरा देना। भयभीत कर देना। (२)

में डाल देना। कलेजा घुंरुड घुंरुड होना = ३० 'कलेजा घडकना'। कलेजा निकलना (१) अत्यंत कष्ट होना। असह्य क्लेश होना। छलना। (२) सार वस्तु का निकल जाना। हीर निकल जाना। कलेजा निकालकर दिखाना = हृदय की बात प्रकट करना। उ०—कम नहीं है कमान कवियों का। हैं कलेजा निकाल दिखलाते —चोखे०, पृ० ८। कलेजा निकाल घर देना = ३० 'कलेजा निकालकर रखना'। उ०—वेघने के लिये कलेजो को। हैं कलेजा निकाल घर देते।—चोखे०, पृ० ७। कलेजा निकालना = ३० 'कलेजा काड़ना'। कलेजा निकालकर रखना = अत्यंत प्रिय वस्तु समर्पण करना। सर्वस्व दे देना। जैसे,—यदि हम कलेजा निकालकर रख दें तो भी तुम्हें विश्वास न होगा। कलेजा पक जाना = कष्ट से जी ऊब जाना। दुःख सहते सहते तग आ जाना। जैसे,—नित्य के लड़ाई भगडे से तो कलेजा पक गया। कलेजा पकड़ना = ३० 'कलेजा यामना'। कलेजा पकड़ लेना (१) किसी कष्ट को सहने के लिये जी कड़ा कर लेना (२) कलेजे पर भारी बोझ मालूम होना। जैसे—(क) बलगम ने कलेजा पकड़ लिया। (ख) मेरे की पूरियो ने तो कलेजा पकड़ लिया। कलेजा पकाना = इतना दुःख देना कि जी जन जाय। नाक में दम करना। हैरान करना। पत्थर का कलेजा = (१) कड़ा जी। दुःख सहने में समर्थ हृदय। (२) कठोर चित्त। कलेजा पत्थर का करना = (१) भारी दुःख भेजने के लिये चित्त को दवाना। जैसे—जो होना था सो हो गया अब कलेजा पत्थर का करके घर चनो। (२) किसी निष्ठुर कार्य के लिये चित्त को कठोर करना। जैसे,—पत्थर का कलेजा करके मुझे उम निरपराध को मारना पडा। कलेजा पत्थर का = होना (१) जी कड़ा होना। जैसे,—उसका दुःख सुनकर पत्थर का कलेजा भी पानी होता था। कलेजा फटना = (१) किनी के दुःख को देखकर मन में अत्यंत कष्ट होना। जैसे,—(क) दुःखिया माँ का रोना सुनकर कलेजा फटता था। (ख) किनी को चार पैसे पाते दुःख तुम्हारा कलेजा क्यों फटता है। कलेजा फूलना = आनंदित होना। फूँ मुँह से भड़े किसी कवि के, है कलेजा न फूलता किसका।—चोखे०, पृ० ८। कलेजा बड़ जाना = (१) दिला बड़ना। उत्साह और आनंद होना। हीसला होना। उ०—चढ़ गए चाव चित्त गया चढ़ बड़। बड़ गए बड़ गया कलेजा है।—चोखे०, पृ० २२। कलेजा बाँसों, बलियो या हाथो उछलना = (१) आनंद से चित्त प्रफुल्लित होना। आनंद की उमंग में फूलना। उ०—मेरा कलेजा बलियो उछलता है। मरी बरसात के दिन हैं। कहीं फिसल न पड़े तो कहकहा उड़े।—फिसाना०, भा१, पृ० १। (२) भय या आशका से जी धक धक करना। कलेजा बँठा जाना = भय या शिथिलता से चित्त का सशक्त और व्याकुल होना। क्षीणता के कारण शरीर और मन की शक्ति का मंद पड़ना। कलेजा भरना = तुष्ट होना। मधा जाना। उ०—धार से किसका कलेजा है नरा।—चोखे०, पृ० १०—।

कलुषचेता—वि० [सं० कलुषचेतस्] १ जिसके मन में कलुष हो ।

२ जो कलुषित कार्य करने में प्रवृत्त हो (को०) ।

कलुषता—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] कल्मष । पाप । उ०—प्रेम भक्ति यद्द मे कही जाने विरला कोइ । हृदय कलुषता क्यों रहै, जा घट जैसी होइ ।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० २७ ।

कलुषमानस—वि० [सं०] कलुषित मनवाला । दुष्ट । पापी (को०) ।

कलुषयोनि—सञ्ज्ञा पुं [सं०] वर्णसरर । दोगला ।

यौ०—कलुषयोनिज = वर्णसरर । दोगला ।

कलुपाई—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० कलुष + हि० प्राई (प्रत्य०)] १ बुद्धि की मलिनता । चित्ता का विकार या दोष । उ०—मए सव साधु किरात किरातिनि रामदरस मिटिग कलुपाई ।—तुलसी (शब्द०) । २ अपवित्रता । मलिनता । उ०—तीय सिरोमणि सीय तजी जिन पावक की कलुपाई दही है ।—तुलसी (शब्द०) ।

कलुपित—वि० [सं०] १ दूषित । उ०—कलुपित कैसे शुद्ध सलिल को आज कल में ।—साकेत, पृ० ४०२ । २ मलिन । मैरा । ३ पापी । ४ दुःखित । ५ क्षुब्ध । ६ असमर्थ । ७ काला । ८. रुष्ट (को०) । ९ दुष्ट (को०) ।

कलुपी^१—वि० स्त्री [सं०] १ पापिनी । दोषी । २ मलिन । गदी । ३ कुड़ा (को०) । ४ दुष्टा (को०) ।

कलुपी^२—वि० पुं [सं० कलुपिन] १ मलिन । मैरा । गदा । २ पापी । दोषी । ३ कुड़ा (को०) । ४ दुष्ट (को०) ।

कलू^३—सञ्ज्ञा पुं [सं० कलियुग, पुं० कलऊ] दे० 'कलियुग' । उ०—आया है कलू का दौर घरो घर कागारोल ।—पादर मन० ग्रं०, पृ० ४३३ ।

कलूटा—वि० [हि० काला + टा (प्रत्य०)] [स्त्री० कलूटी] काले रंग का । काला ।

यौ०—काला । कलूटा ।

कलूना—सञ्ज्ञा पुं [देश०] एक प्रकार का मोटा धान जो पंजाब में उत्पन्न होता है ।

कलूव^४—सञ्ज्ञा पुं [प्र० कल्व] हृदय । अंतःकरण । उ०—दाहू पसु पिरनि के, पेही मझि कलूव ।—दाहू, पृ० ६० ।

कलेंडर—सञ्ज्ञा पुं [अ०] तिथिपत्र । पंचांग । ईसवी सन का तिथिपत्र ।

कलेऊ^५—सञ्ज्ञा पुं [हि० कलेवा] प्रातःकाल का लघु भोजन । जलपान । कलेवा । उ०—प्रातःकाल उठ देहू कलेऊ वदन चुपरि अरु चोटी । को ठाकुर ठाढो हाथ लकुट लिए छोटी ।—सूर (शब्द०) ।

कलेक्टर—सञ्ज्ञा पुं [अ०] दे० 'कलेक्टर' ।

कलेजई^६—सञ्ज्ञा पुं [हि० कलेजा] एक रंग का नाम ।

विशेष—यह छिबुला, हरे, कमीस और मजीठ या पतंग के मेल से बनता है । इसे चुनोटिया रंग भी कहते हैं ।

कलेजई^७—वि० कलेजई रंग का । चुनोटिया ।

कलेजा—सञ्ज्ञा पुं [सं० यकृत, (विषय) कृत्य, कृज] १. प्राणियों का एक भीतरी अवयव ।

विशेष—यह छाती के भीतर बाईं ओर की फंसा हुआ होता है और हमारे नाड़ियों के सहार शरीर में रक्त का संचार होता है । यह पान के आकार की मांस की रंगी की तरह होता है जिसमें भीतर रुधिर बनकर जाता है और फिर उसके ऊपरी परदे की गति या घड़कन से दबकर नाड़ियों में पड़ता और गारे शरीर में फैलता है ।

मुद्रा०—कलेजा उछलना = (१) दिल घउकना । घउडाहट होना ।

(२) हृदय प्रकुलित होना । कलेजा उछल उछल पड़ना = घानद

विभोर होना । उ०—हैं उममें छलांग सी भरनी, है कलेजा

उछल उछल पड़ता ।—चोमे, पृ० ८ । कलेजा उड़ना =

होग जाता रहना । घबड़ाहट होना । कलेजा उलटना =

(१) कै करते करने भीनों में बल पड़ना । बमन

करते करते जो घबराना । (२) होश का जाना रहना ।

कलेजा कटना = (१) हीरे की कनी या घोर किसी विष के

छाने से अंतर्दियों में छेदन होना । (२) मन के साथ रक्त

गिरना । घुनी दस्त घाना । (३) दिल पर चोट पड़ना ।

अत्यंत हादिक कष्ट पड़ना, जैसे—उपकी दशा देख किवका

कलेजा नहीं कटता । (४) घुरा लगना । नागवार लगना । जख

मालूम होना, जैसे—पैना घर्च करते उमका कलेजा कटता

है । (५) दिल जलना । डाह होना । हमद होना । जैसे—उसे

चार पंसा पात देख तुम्हारा कलेजा तपो कटता है । कलेजा

कांपना = जी दहना । डर लगना, जैसे—नाव पर चढ़ते

हमारा कलेजा कांपता है । कलेजा काढ़कर रखना = दे० 'कलेजा

निकालकर रखना' । कलेजा काड़ना = (१) दिल निकालना ।

अत्यंत वेदना पड़ना । उ०—मौख तो प्राप काइते ही

ये । अब लगे काड़ने कलेजा त्यों ।—चोमे, पृ० ९२ ।

(२) किसी की अत्यंत प्रिय वस्तु ले लेना । किसी का

सर्वस्व हरण करना । कलेजा काड़ लेना = (१) हृदय में

वेदना पड़ना । अत्यंत कष्ट देना । (२) मोहित करना ।

रिझाना । (३) चोटी की चीज निकाल लेना । सबसे

अच्छी वस्तु को छोट लेना । सार वस्तु ले लेना । (४) किसी

का सर्वस्व हरण कर लेना । कलेजा काड़ के देना = (१) अपनी

अत्यंत प्यारी वस्तु देना । (२) सुन का किसी को अपनी वस्तु

देना (जिससे उसे बहुत कष्ट हो) । कलेजा खाना = (१) बहुत

तग करना । दिक करना । (२) बार बार तकाजा करना ।

जैसे—बहु चार दिन से कलेजा खा रहा है, उसका रूप

भ्राज दे देंगे । कलेजा खिलना = किसी को अत्यंत प्रिय वस्तु

देना । किसी का पोषण या सत्कार करने में कोई बात उठा

न रखना, जैसे—उसने कलेजा खिला खिलाकर उसे पाला

है । कलेजा खुरचना = (१) बहुत भूख लगना, जैसे—मारे

भूख के कलेजा खुरच रहा है । (२) किसी प्रिय के जाने पर

उमके लिये चितित और व्याकुल होना, जैसे—जब से वह

गया है, तब से उसके लिये कलेजा खुरच रहा है । कलेजा

गोदना = दे० 'कलेजा छेदना या बीघना' । कलेजा छिदना या

बिघना = कड़ी बातों से जो दुखना । ताने में देने से हृदय

अव्यथित होना, जैसे—अब तो सुनते, सुनते कलेजा छिद

गया, कहाँ तक सुनें । कलेजा छेदना या बीघना = कट

कलिल^१—वि० [सं०] १. मिला जुना । श्रुतप्रोत । मिश्रित । २. गहन । घना । दुर्गम । उ०—मोह कलिल व्यापित मति भोरी ।—तुलसी (शब्द०) ।

कलिल^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. समूह । टेर । राशि ।

कलिवल्लभ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक चालुक्य राजा का नाम जिसे ध्रुव भी कहते थे ।

कलिकर्ज्य—वि० [सं०] जिनका करना कलयुग में निषिद्ध है ।

विशेष—धर्मशास्त्रों में उम कर्म को कलिकर्ज्य कहते हैं जिसका करना अन्य युगों में विहित था, पर कलियुग में निषिद्ध या वर्जित है, जैसे अश्वमेध, गोमेध, देवरादि से नियोग, संन्यास, मत्स्य का पिडदान ।

कलिविक्रम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण देश का एक चालुक्यवंशी राजा जिसे त्रिभुवन मल्ल वा चतुर्थ विक्रमादित्य भी कहते हैं । इसके बाप का नाम आहववल्ल था । इसने सवत् ६६१ से १०४८ तक राज्य किया था ।

कलिवृक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बहेडा [को०] ।

कलिहारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कलियारी । करियारी ।

कलादा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कालिग] तरवूज । हिनवाना ।

कली^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. बिना बिना फूल । मुहब्बत फूल । बौडी । कलिका । उ०—कली लगावै कपट की, नाम धरावै हेम ।—दरिया० बानी, पृ० ३४ ।

क्रि० प्र०—ग्राना ।—खिलना ।—निकलना ।—फटना ।—लगना ।

मुहा०—दिल की कली खिलना=मानदित होना । चित्त प्रसन्न होना ।

२. ऐसी कन्या जिसका पुरुष से समागम न हुआ हो ।

मुहा०—कच्ची कली=अप्राप्त्योजना ।

३. चिड़ियों का नया निकला हुआ पर । ४. वह तिकोना कटा हुआ कपड़ा जो कुर्ते, अंगरखे और पायजामे आदि में लगाया जाता है । ५. हुक्के का वह भाग जिसमें गडगडा लगाया जाता है और जिसमें पानी रहता है । जैसे, नारियल की कली । ६. बंणवों के तिलक का एक भेद जो फूल की कली की तरह होता है ।

कली^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० कलई] पत्थर या सीप आदि का फुँका हुआ टुकड़ा जिसे चूना बनाया जाता है । जैसे—कली का चूना ।

कली^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कालिय] दे० 'कालिय' ।

उ०—मुषे काल व्यान । सिमू बछ्छ पाल । कली उत्तामगं । किय तित्त रगं ।—पृ० रा०, २।५० ।

कलीग्रा^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कलिका, प्रा० कलिग्रा] दे० 'कली' ।

उ०—विगसि रहिया मँवर ज्यों कलिग्रा ।—प्राण०, पृ० ३६ ।

कलीटा^५—वि० [हि० काला+ईट (प्रत्य०)] काला कलूटा । उ०—मुरली के सँगे भिजे मुरारी । ये कलटा कलीट वे दोज । इक ते एक नहि घाटे कोज ।—नूर (शब्द०) ।

कलीमा^६—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कलीम] वाक्य । बात । उ०—अवे वे

भणता सरावा पिवता, कलीमा कहंता कनामे जीप्रता ।
—कीर्ति०, पृ० ४० ।

कलोरा—सञ्ज्ञा पुं० [न० कली+रा (प्रत्य०)] कीड़ियों और छुहारों आदि को परोकर बनाई हुई एक प्रकार की माला ।

विशेष—प्रायः विवाह आदि के समय कन्या अथवा दीवाली आदि अवसरों पर यो ही वस्त्रों को उपहार में दी जाती है ।

कलील—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] १. थोड़ा । कम । २. छोटा ।

कलीसा—सञ्ज्ञा पुं० [यू० इकलीसिया] मसीही लोगों का मंदिर । गिरजा । उ०—अगर मस्जिद में अजान होती है तो कलीसा में घटा क्यों न बजे ?—मान०, भा० १, पृ० १६८ ।

कलीसाई^१—वि० [हि० कलीसा] १. कलीसा से संबंधित । २. मसीही ।

कलीसाई^२—सञ्ज्ञा पुं० ईसा मसीह के मत को माननेवाला । ईसाई । मसीही ।

कलीसिया—सञ्ज्ञा पुं० [यू० इकलीसिया] १. इसाईया या यहूदियों की धर्ममंडली ।

कलु—सञ्ज्ञा पुं० [न० कलियुग, (७) कलऊ] दे० 'कलियुग' । उ०—इह ससार असार सार कित्ती कलु माँही ।—पृ० रा०, ७।१५० ।

कलुआवीर—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कलुवावीर' ।

कलुवक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाजा । भाँक (को०) ।

कलुक्का—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. सराय । २. उत्का [को०] ।

कलुख^(७)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कलुप] दे० 'कलुप' ।

उ०—काम कलुख कुजर कदन समरथ जो सब भाँति, गदा चिह्न यहि हेतु हरि घरत चरन जुत काति ।—भारतेंदु प्र० भा० २, पृ० १३ ।

कलुखाई^(७)—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कलुख+आई (प्रत्य०)] दे० 'कलुपाई' ।

कलुखी—वि० [हि० कलुख+ई (प्रत्य०)] दोषी । कलाफी । बदनाम । उ०—बैरी यह बंधु, देव, दीनबधु जानि हम बधन में डारे तुम न्यारे कलुखी भये ।—देव (शब्द०) ।

कलुवा^(७)—वि०, संज्ञा पुं० [हि० काला] काला कुत्ता । काले रंग का कुत्ता । उ०—कलुवा कबरा मोतिया नहरा बुचवा मोहि डेरवावे ।—मल्लक०, पृ० २५ ।

विशेष—कुत्तों के इस प्रकार के विशेषणमूलक नाम प्रचलित हैं ।

कलुवावीर—सञ्ज्ञा पुं० [हि० काला+वीर] टोना टामर या सावरी मंत्रों का एक देवता ।

विशेष—इसकी दुहाई मंत्रों में दी जाती है ।

कलुप^१—सञ्ज्ञा पुं० [न०] [वि० कलुपिन, कलुपी] १. मलिनता । मैल । २. पाप । दोष । ३. कलक ।

यौ०—कलुपचेता । कलुपमति । कलुपात्मा । ४. श्लोघ । ५. भैमा ।

कलुप^२—वि० [वि० स्त्री० कलुपा, वि० कलुपी] १. मलिन । मैला । गदा । २. निन्दित । ३. दोषी । पापी ।

कलिग्रल(५)—सज्ञा पुं० [सं० कलकल] दे० 'कलकल' । उ०—कुम्हडियाँ
कलिग्रल कियउ, सुणी उ पेखइ वाइ । ज्यों की जोड़ी वीछडी,
त्यों निसि नीद न आइ ।—ढोला०, दू० ५८ ।

कलिक—सज्ञा पुं० [सं०] कौंच पक्षी (को०) ।

कलिकर्म—सज्ञा पुं० [सं०] युद्ध । सग्राम । उ०—करहि आय कलिकर्म
धर्म जो क्षत्रिण को है ।—विश्राम (शब्द०) ।

कलिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ विना खिला फूल । कली । २ बीणा
का मूल । ३ प्राचीन काल का एक राजा जिसपर चमड़ा
मड़ा जाता था । ४ एक संस्कृत छंद का भेद । ५ कवीजी ।
मंगरैला । ६ कना । मूहर्त । ७ अश । भाग । ८ संस्कृत
की पदरचना का एक भेद जिसमें ताल नियत हो ।

कलिकान्त—वि० [देश०] परेशान । हैरान । (बोल०) ।

कलिकापूर्व—सज्ञा पुं० [सं०] वह वस्तु जिसका कारण मशत मज्ञात-
पूर्व हो (जैसे जन्म, आग्नेयादि यज्ञ) और जिसका फल (जैसे
स्वर्ग आदि) नितान्त अपूर्व या मज्ञातपूर्व हो ।

कलिकार, कलिकारण—सज्ञा पुं० [सं०] १ नारद । २ पूति-
करज (को०) ।

कलिकारक^१—वि० [न०] १ भगडा करनेवाला । २ भगडा लाने-
वाला ।

कलिकारक^२—सज्ञा पुं० १ पूतिकरज । २ नारद ऋषि ।

कलिकारी—सज्ञा स्त्री० [सं०] कलियारी विप ।

कलिकाल—सज्ञा पुं० [सं०] कलियुग ।

कलिकालीन—वि० [सं०] कलियुगी । कलियुग का । उ०—कलि-
काल न मलीते दीन जन पावन करन परम गभीर ।—घनानन्द,
पृ० ४४६ ।

कलिकालु(५)—सज्ञा पुं० [सं० कलिकाल] दे० 'कलिकाल' । उ०—
राम नाम नर केमरी कनक कसिपु कलिकालु ।—मानस१७७ ।

कलिजुग(५)—सज्ञा पुं० [सं० कलियुग] दे० 'कलियुग' । उ०—कलि
जुग में काशी चला आए । जब हमरे तम दरसन पाए ।—
कवीर सा०, पृ० ८२५ ।

कलित—वि० [सं०] १ विदित । स्थात । उक्त । २ प्राप्त । गृहीत ।
३ सजाया हुआ । सुमज्जित । शोभित । युक्त । रचित उ०—
(क) कुलिश कठोर, तन जोर परे शेर रन, कक्षना कलित मन
धारमिक धीर को ।—तुलासी (शब्द०) । (ख) आलास
बलित, कोरे काजर कलित, मतिराम वै ललित प्रति पानिप
धरत हैं ।—मतिराम (शब्द०) । ४ सुंदर । मधुर । उ०—
कलित कलिकलिया, मिलित मोद उर, भाव उदोतनि (शब्द०) ।
कलितरु—सज्ञा पुं० [सं०] १ पापवृक्ष । २ बहेडा । उ०—प्रेम
कामतरु परिहरत, सेवत कलितरु ठूठ ।—तुलासी ग०
पृ० १०६ ।

कलितर(५)—सज्ञा पुं० [सं० कलत्र] दे० 'कलत्र' । उ०—पुत्र कलितर
भाई बहु सब ही ठोक जलाही ।—चरण वाणी०, पृ० १०८ ।

कद्रिमम—सज्ञा पुं० [मं०] बहेडे का पेड़ ।

कलिनाथ—सज्ञा पुं० [सं०] सुगीत के चार आचार्यों में से एक ।

कलिपुर—सज्ञा पुं० [मं०] १ पञ्चराग मणि या मानिक की एक
प्राचीन गान का नाम । २ पञ्चराग मणि का एक भेद जो
मध्यम माना जाता था ।

कलिप्रद—सज्ञा पुं० [मं०] शराय की द्रव्य (को०) ।

कलिप्रिय^१—दे० [मं०] भगडालू । दुष्ट ।

कलिप्रिय^२—सज्ञा पुं० [सं०] १ नारद मुनि । २ बदर । ३ बहेडे
का पेड़ ।

कलिमल(५)—सज्ञा पुं० [सं०] पाप । कलुष । उ०—ननात दुपय वेद
मग छाडे । कपट कायर कलिमल नांझे ।—नानन, १११२ ।

यो०—कलिनल सरि = कर्मनाम नदी ।

कलियल(५)—सज्ञा पुं० [हिं० कलियल] जलज प । कलियल
चीत्कार । उ०—जिहि दीहे पानाउ पडइ मानइ, मायउ भिड़इ
तिलाह । तिहि दिन जाए प्रादुणउ कलिमल कुम्हडियाह ।
—ढोला० दू० २८३ ।

कलिया—सज्ञा पुं० [मं०] पकाया हुआ मांस । धी में भूनकर रेश्वर
पकाया हुआ मांस । उ०—कलिया नानपुत्राव पट भरि छाद
कै ।—पनाटू०, भा० २, पृ० ८५ ।

कलियाना—कि० प्र० [हिं० कलि] १ कली केना । कलियों से युक्त
होना । उ०—त्रासक जय चरणों पर छाई । पनाक पनात डान
कलियाई ।—माराधना, पृ० ४० । २ बिडियों का नया पत्र
निकालना ।

कलियारी—सज्ञा स्त्री० [सं० कलियारी] एक विपला बोधा जिसकी
पतिव्रता पतली और मुर्झती होती है और जिसकी तब म गाँठें
पड़ती हैं ।

विशेष—इसका फूला नारंगी रंग का सर्वत सुंदर होता है ।
फूला भड़ जाने पर मिर्चों के प्रकार का फल लगता है, जिसमें
तीन धारियाँ होती हैं। पत्ते फल के नीचे लाल छिलके में लिपटे
हुए श्लायकी के दाने के प्रकार के होते हैं । इसकी बड़
या गाँठ में विप होता है । यह कड़ुई, चरपरी, तोखी, कर्तली
और गरम होती है तथा कफ, वात, शूल, बवासीर, युजनी, बण,
यूनन और शोथ के लिये उपकारी है । इसमें गर्मपान हो जाता
है । इसके पत्ते, फूल और फल से तीव्र गंध आती है ।

पर्या०—कलिकारी । लागलिकी । दोघना । गर्मपानिना । प्रनि
जिह्वा । वह्निशिला । लागुली । हनी । नक्का । इद्रुषिका ।
मिद्युज्जवाला । कलिहारी ।

कलियुग—सज्ञा पुं० [सं०] १ चार युगों में से चौथा युग ।
२ पापयुग । कलहयुग ।

कलियुगाद्या—सज्ञा पुं० [सं०] म ध की पूर्णिमा जिससे कलियुग
का आरंभ हुआ था ।

कलियुगी—वि० [सं०] १ कलियुग का । २ बुरे युग का । कुप-
वृत्तिवाला । जैसे,—कलियुगी लड़के ।

कलियुग(५)—सज्ञा पुं० [सं० कलियुग] दे० 'कलियुग' । उ०—प्रति
सुयुग कलियुग धन्य सवत् समस्त मति ।—प्रकवरी०, पृ० ७ ।

कलिख(५)—सज्ञा पुं० [हिं० कलिख] दे० 'कलख' । उ०—एक
भरई बीजी कलिख करई बीजा धरी पीवने ठडा नीर ।—
बी० रासो, पृ० २८ ।

कलावादी दृष्टिकोण से तो इतिहास नहीं लिखे गए लेकिन न्यूनाधिक मात्रा में एकांगी समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण आचार्य जुक्न जी से लेकर आज तक अपनाए जाते रहे हैं।—आचार्य० पृ० २। २. 'कला कला के लिये' सिद्धांत को माननेवाला। उ०—इसी प्रकार कलावादियों का केवल कोमल और मधुर की नीक पकड़ना मनोरंजन मात्र की हवि और दृष्टि की परिस्थिति के कारण समझना चाहिए।—रस०, पृ० ५६।
कलावान—वि० [सं० कलावान्] [स्त्री० कलावती] कलाकुशल। गुरी।

कलाविक—संज्ञा पुं० [सं०] कुक्कुट। मुर्गा।
कलास^१—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत प्राचीन समय का एक बाजा जिसपर चमड़ा चढ़ा रहता है।

कलास^२—संज्ञा पुं० [ग्र० कलास] दर्जा। कक्षा। श्रेणी।
कलासी—संज्ञा पुं० [देश०] दो तन्तुओं के जोड़ की लकीर —(तश०)।
कलाहक—संज्ञा पुं० [सं०] काहल नाम का बाजा।
कलिग^१—संज्ञा पुं० [सं० कलिङ्ग] १ मटमेल रंग की एक चिड़िया जिसकी गरदन लकी और लाल तथा सिर भी लाल होता है। कुलग। २ कुटज। कुरैया। ३ इद्रजो। ४ सिरिस का पेड़। ५ पंकर का पेड़। ६ तरवूज। ७. कलिगडा राग। ८ प्राचीन कात का एक राजा जो बलि की रानी सुदेष्णा और दीर्घवत् ऋषि के निधोग से उत्पन्न हुआ था। ९ एक प्राचीन समुद्र तटस्थ देश जिसके राज्य का विस्तार गोदावरी और वेंतूरणी नदी के बीच में था। वहाँ के लोग जहाज चलाने में प्रसिद्ध थे। यह राज्य आधुनिक आंध्र का वह भाग था जो कटक से मद्रास तक फैला है। १०. कलिग देश का निवासी।

कलिग^२—वि० १ कलिग देश का। २ कुशल। चतुर (को०)। ३ धूर्त (को०)।
कलिगक—संज्ञा पुं० [सं० कलिङ्गक] १ इन्द्रयव। इद्रजो। २. तरवूज।

कलिगडा—संज्ञा पुं० [सं० कलिङ्ग] एक राग जो दीपक राग का परिवर्तित पुत्र माना जाता है। उ०—जीवन में आग लगा डालूँ? हँसकर कलिगडा गाऊँ? मेरा अंतर्यामी कहता है, मैं मलार बरसाऊँ।—हिम०, पृ० ४५।

विशेष—यह सपूर्ण जाति का राग है और रात के चौथे पहर में गाया जाना है। इसमें साजो स्वर लागते हैं इनका स्वरपाठ इस प्रकार है : म ग रे ना सा रे ग म प ध नी ना।

कलिगा—संज्ञा पुं० [देश०] तेवरी नाम का पेड़ जिसकी छाला रेचक होती है।

कलिज—संज्ञा पुं० [सं० कलिञ्ज] तरकट नाम की घास। २ चटाई (को०)। ३ परदा (को०)।

कलिजर—संज्ञा पुं० [सं० कलिञ्जर] २० 'कालिजर'।
कलिद—संज्ञा पुं० [सं० कलिनद] १ बहेड़ा। सूर्य। ३ पर्वत जिससे यमुना नदी निकलती है।

यो०—कलिदकन्या, कलिवतनया, कलिदनदिनी कलिदमुता = दे० 'कलिदजा'।

कलिदजा—संज्ञा स्त्री० [सं० कलिन्द + जा] यमुना नदी जो कलिद नामक पर्वत से निकली है। उ०—कूला कलिदजा के सुखमूला लतान के वृद्ध वितान तने हैं।—भिखारीदास (शब्द०)।

कलिदी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कालिन्दी] ३० 'कालिदी'। उ०—तब कदर कदव के मूलानि। दुग्ध हैं जाइ कनिदी कलानि।—नद० ग्र०, पृ० २६०।

कलिद्र—संज्ञा पुं० [सं० कलिनद] दे० 'कलिद ३'। उ०—जनु कलिद्र गिर सूर सुह्रवई।—प० रा०, पृ० ११२।

कलि—संज्ञा पुं० [सं०] १ बहेड़े का फल या बीज।

विशेष—वामन पुराण में ऐसी कथा है कि जब दमयंती ने नल के गले में जयमाला डाली, तब कलि चिढ़कर नल से बदला लेने के लिये बहेड़े के पेड़ों में चला गया, इससे बहेड़े का नाम 'कलि' पड़ा।

२ पामे का बेल में वह गोटी जो उठी न हो। उ०—कलि [नामक पामा] सो गया है, द्वापर स्थान छोड़ चुका है, अंता श्री खड़ा है, कृत चल रहा है [तेरी सफलाता की समावना है] परित्यक्त करता जा।—भा० प्रा० लि०, पृ० ११।

विशेष—ऐतरेय ब्राह्मण से पता चलता है कि पहले आर्य लोग बहेड़े के फलों से पामा खेलते थे।

३ पामे का वह पार्श्व जिसमें एक ही विदी हो। ४. कलाह। विवाद। भगडा। ५. पाप। ६ चार गुणों में से चौथा गुण जिसमें देवताओं के १२०० वर्ष या मनुष्यों के ४३२००० वर्ष होते हैं।

विशेष—पुराणों के मत से इसका प्रारंभ ईसा से ३१०२ वर्ष से पूर्व माना जाता है। इसमें दुर्गावार और अर्धम की अधिकता कही गई।

७ छंद में टंगण का एक भेद जिसमें क्रम से दो गुरु और दो लाघु होते हैं (JJA)। ८ पुराण के अनुसार क्रोध का एक पुत्र जो हिमा से उत्पन्न हुआ था। इसकी बहन दुर्लकि और दो पुत्र, भय और मृत्यु हैं। ९ एक प्रकार के देव गधर्व जो कश्यप और दक्ष की कन्या से उत्पन्न हैं। १० शिव का एक नाम। ११ सूरमा। वीर। जर्वामर्द।

१२ तरकग। १३. क्लेश। दुःख। १४ संग्राम। युद्ध। उ०—कलि क्लेश कलि शूरमा कलि निपुण संग्राम। कलि कलियुग यह और नहीं केवल केशव नाम।—नददाम (शब्द०)।

यो०—कलिकर्म = संग्राम। युद्ध।

कलि^२—वि० श्याम। काला। उ०—श्वेत लाल पीरे युग युग में। भे कलि आदि कृष्ण कलियुग में।—गोपाल (शब्द०)।

कलि^३—क्रि० वि० [सं० कल्प] ३० 'कला'। उ०—तब कहें कुंभर सामंत सम, कलि आपेटक रंग। भयो सुरसमें एक भला, आनास ही में गग।—पृ० रा०, ६।१४१।

कलि^४—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कली। उ०—जैसे नव श्रुत नव कलि आकुल नव नव अजलि।—ग्रचंता, पृ० २५। २. वीणा का मूला (को०)।

कलावाजी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कला + फा० वाजी] १. सिर नीचे करके उलट जाना। डेकली। २. लोटनिया।

क्रि० प्र०—करना।—खाना।

मुहा०—कलावाजी खाना = लोटनिया लेना। उबते उबते सिर नीचे करके पलटा खाना (गिरहवाज कवूतर का)।

२. नाचकूद।

कलावीन—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक वृक्ष।

विशेष—यह सिन्धु, चटगांव और वर्षा में होता है। वह ४०-५० फुट ऊँचा होता है। इसके फल के बीज को मूँगरा चावल या कलौथी कहते हैं, जिसका तेल चर्मरोगों पर लगाया जाता है।

कलाभूत्—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चद्रमा।

कलाम—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] १. वाक्य। वचन। उक्ति। २. वातचीत। कथन। वात। ३. वादा। प्रतिज्ञा। उ०—पुनि नैन लगाइ बढ़ाई के प्रीति निवाहन को बयो कलाम कियो है।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।

२. उज्ज। वक्तव्य। एतराज। उ०—दहन पर हैं उनके गुमाँ कैसे कैसे। कलाम आते हैं दर्मियाँ कैसे कैसे।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०७।

मुहा०—कलाम होना = सदेह होना। शका होना। जैसे,—तुम्हारी सचाई में कोई कलाम नहीं है।

कलामक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जाड़े में पकनेवाला एक धान [फ़े०]।

कलामपाक—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कलाम + फा० पाक] कुरान शरीफ।

कलाममजीद—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कलाम + मजीद] कुरान शरीफ।

कलामल—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कलमल] दे० 'कलमल'। उ०—काया धरि हम घर घर आए, काया नाम कलामल पाए।—कवीर सा०, पृ० २५३।

कलामुल्लाह—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] कुरानशरीफ। उ०—मगर जब उसको किसी की तरफ से एतकाद आ जाता है तो वो उसके कलाम को कलामुल्लाह समझता है।—अनीनवास० ग्र०, पृ० १२४।

कलामेमजीद—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कलाममजीद] दे० 'कलाममजीद'। उ०—बवाजा-कलामेमजीद की कसम, जब तक अहल्या का पता न लगा लूँगा, मुझे दाना पानी हराम है।—काया०, पृ० ३३५।

कलामोचा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो बगाल में होता है।

कलाय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मटर।

कलायखज—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कलामखज] एक रोग जिसमें रोगी के जोड़ों की नसें ढीली पड़ जाती हैं। और उसके अंगों में कोंकण होती है। वह चलने में लँगड़ाता है।

कलायन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नर्वक [फ़े०]।

कलायाँ—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कलाई] दे० 'कलाई'। उ०—बादोला बनराव रै, जिते कलायाँ जोर।—वांकी० ग्र०, भा० १, पृ० २०।

कलार—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कलवार] दे० 'कलवार'। उ०—चलो कलार की हाट में मदिरा को प्रथम प्रीति का साक्षी बनावें।—शकतला, पृ० १०४।

कलारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कलवार] १. कनवार जाति की स्त्री। कनवारिन। उ०—सुरत कलारी भइ मतवारी मदवा पी गई बिन तोले।—संत वाणी०, भा० २, पृ० १७। २. शराब बेचने या बनाने का स्थान। कलवाग्या।

कलाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कलपाल] [स्त्री० कलाली] कलवार। मद्य बेचनेवाला। उ०—मूरख लोक नू जाणही चोर जुवारि अनइ कलाल।—वी० रासो, पृ० ५३।

यो०—कलालखाना = शराबखाना। मद्य विकने का स्थान।

कलाली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कलारी] दे० 'कलारी'। उ०—आगे कलाली की हाट हैं रे चोरना फूल चूनत।—कवीर म० पृ० १७५।

कलावत—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कलावान्] १. संगीत कला में निपुण व्यक्ति। वह पुरुष जिसे गाने बजाने की पूरी शिक्षा मिली हो। गवैया। उ०—बिनकुँ राग सुनवे को वसन बढ़त हुनो सो गान सुनायवे के लिये देश देश के कलावत गवैया उहाँ आवते होते।—अकवरी०, पृ० ३६। २. कलावाजी करनेवाला। नट। ३. वाजीगर। जादूगर। उ०—कथनी क्या तो क्या हुषा करनी ना ठहराय। कलावत का कोट ज्यो देखत ही ढहि जाय।—कवीर सा० स०, पृ० ८८।

कलावत—वि० कलाओं का जाननेवाला।

कलावत—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कलावत] दे० 'कलावत'। उ०—जहाँई कलावत अलावे मधुर स्वर।—भूपण ग्रं०, पृ० ५४।

कलाव—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कलावा] दे० 'कलावा'।

कलावत—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कलावत] दे० 'कलावत'। उ०—भाट कलावत वसै सुजाना। जिन्ह पिगल संगीत बखाना।—चित्रा०, पृ० ११।

कलावती—वि० स्त्री० [सं०] १. जिसमें कला हो। २. शोभावाली। छविवाली।

कलावती—सञ्ज्ञा स्त्री० १. तुवुरु नामक गधर्व की वीणा। २. द्रुमिल राजा की पत्नी। ३. एक अप्सरा का नाम। ४. गंगा (काशी खंड)। ५. तंत्र की एक प्रकार की दीक्षा।

कलावली—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कलवल] दे० 'कलवल'। उ०—मदला कहत भला कड़ो मरा कैसे यह याकी कलावली वीर विपुल विनासे हैं।—दीन० ग्रं०, पृ० १३६।

कलावा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कलापक, प्रा० कलावप्र, तुलनीय फा० कलावह] [स्त्री० अल्पा कलाई] १. सूत का लच्छा जो टेकुए पर लिपटा रहता है। २. लाल पीले सूत के तागों का लच्छा जिसे विवाह आदि शुभ अवसरों पर हाथ, घड़ी तथा और और वस्तुओं पर भी बाँधते हैं। ३. हाथों के गले में पड़ी हुई कई लड़ों की रस्सों जिन्हें पर फँसाकर महावत हाथी हाँकते हैं। ४. हाथों की गरदन।

कलावादी—वि०—[सं० कला + वाव + हि० ई (प्रत्यय)] १. कला के दृष्टिकोण से संबंधित। कला के विचार से युक्त। उ०—शुद्ध

कलाधर सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ चंद्रमा । उ०—यह समता क्यों करि वनत मो कर मुख मृदु गात । कमल कलाधर कनक लखि कवि कुल कहत लजात ।—सं० सप्तक, पृ० ३८४ । २ दडक छद का एक भेद जिनके प्रत्येक चरण में एक गुरु, एक लघु, इस क्रम से १५ गुरु और १५ लघु होकर अंत में गुरु होता है । जैसे,—जाय के भरत चित्रकूट राम पाम बेगि, हाथ जोरि दीन हूँ सुप्रेम तैं विनै करी । सीय तात मात कौशिला वशिष्ठ आदि पूज्य लोक वेद प्रीति नीति की सुरीति ही धरी । जान भूप वैन धर्म पाल राम हूँ सकोच धीर दे गंभीर वधु की गलानि को हरी । पादुका दई पठाय औघ को समाज साज देख नेह राम सीय के हिये कृपा मरी (शब्द०) । ३ शिव । ४. कलाश्रो को जाननेवाला । वह जो कलाश्रो का ज्ञाता हो । उ०—कविकुल विद्याधर सकल कलाधर राज राज वर वेश वने ।—केशव (शब्द०) ।

कलानक—सञ्ज्ञा पु० [सं०] शिव के गए का नाम ।

कलाना (क०)।—कि० अ० [प्रा० कल=आवाज करना] बोलना । चिल्लाना । उ०—माह माह कलाइयाँ उज्ज्वल दती नारि । हसनइ दे हूँकारडउ, हिवडउ फूटण हारि।—ढोला दू० ६११ ।

कलानाय—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १. चंद्रमा । उ०—यह लघु लहरो का विकास है कलानाय जिसमें बिच आता ।—रस० पृ० ३४१ ।

२ एक गधर्व का नाम जिसने सगीताचार्य सोमेश्वर से सगीत सीखा था ।

कलानिवि—सञ्ज्ञा पु० [सं०] चंद्रमा ।

कलानिपुण—वि० [सं०] कलाकुशल । कलाप्रवीण । कला का ज्ञाता । उ०—कवि को कलानिपुण और सहृदय दोनों होना चाहिए ।—रस०, पृ० ६६ ।

कलान्यास—सञ्ज्ञा पु० [सं०] तंत्र का एक न्यास जो शिष्य के शरीर पर किया जाता है ।

विशेष—इसमें शिष्य के पंर से घुटने तट 'ॐ निवृत्य नमः', घुटने से नाभि तक 'ॐ प्रतिष्ठाय नमः', नाभि से कूट तक 'ॐ विद्याय नमः', कूट से ललाट तक 'ॐ शास्त्र्य नमः' और ललाट से ब्रह्मरन्ध्र तक 'ॐ शास्त्र्यतीतार्यनमः' कहकर न्यास करते हैं और फिर इसी क्रिया को सिर से पंर तक उल्टा दोहराते हैं ।

कलाप—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ समूह । झुंड । जैसे,—क्रियाकलाप ।

उ०—को कवि को छवि को वरन रचि राखनि अग सिंगार कलापन ।—धनानंद, पृ० ३६ । २. मोर की पूँछ । ३. पूला । मुट्ठा । ४. बाण । ५. तूण । तरकश । ६. कमरबंद । पेठा । ७. करघनी । ८. चंद्रमा । ९. कलावा । १०. कातव्य व्याकरण, जिसके विषय में कहा जाता है कि इसे कार्तिकेय ने शर्वभूमन को पढ़ाया था । ११. व्यापार । १२. वह ऋण जो मयूर के नाचने पर अर्थात् वर्षा में चुकाया जाय । १३. एक प्राचीन गाँव जहाँ भागवत के अनुसार देवपि और सुदर्शन तप करते हैं । इन्हीं दोनों राजपियों से युगांतर में सोमवशी और सूर्यवशी क्षत्रियों की उत्पत्ति होगी । १४. वेद की एक शाखा । १५. एक घर्षचंद्राकार अस्त्र का नाम । १६. एक सकर रागिनी जो बिलावल, मल्लार, कान्हड़ा और नठ रागाँ को मिलाकर

बनाई जाती है । १७. आभरण । जेवर । भूषण । १८. अर्धचंद्राकार गहना । चंदन ।

कलाप^३ (क०)।—सञ्ज्ञा पु० [हि० कलपना] व्यवसाय । दुख । क्लेश ।

उ०—अवही भेनी हेकनी करही करइ कलाप । कहियउ लोपाँ सोमिकउ, सुदरि लहाँ सराप ।—ढोला०, दू० ३२३ ।

कलापक—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ समूह । २. पूला । गट्ठा । ३. हाथी के गले का रस्सा । ४. चार श्लोकों का समूह जिनका अन्वय एक में होता है । ५. वह ऋण जो मयूरों के नाचने पर अर्थात् वर्षा ऋतु में चुकाया जाय । ६. मोतियों की लड़ी (कौ०) । ७. मेखला । करघनी (कौ०) । ललाट पर अंकित सांप्रदायिक चिह्न या लक्षणविशेष (कौ०) ।

कलापट्टी—सञ्ज्ञा स्त्री० [पूर्त० कलफेटर] जहाजों की पटरियों की दर्ज में सन आदि ठूसने का काम ।—(लश०) ।

क्रि० प्र०—करना ।

कलापति—सञ्ज्ञा पु० [सं०] चंद्रमा । उ०—हम प्रणय की सदय मुखरवि देख लें, लोल लहरो पर कलापति से लिखी ।—ग्रथि, पृ० ६५ ।

कलापद्दीप—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ कलाप ग्राम ।

विशेष—भागवत के अनुसार यहाँ सोमवशी देवपि और सूर्यवशी सुदर्शन नाम के दो राजपि तप कर रहे हैं । कलियुग के अंत में फिर इन्हीं दोनों राजपियों से चंद्र और सूर्य वंश चलेगा ।

२. कातव्य व्याकरण पर एक भाष्य का नाम ।

कलापशिरा—संज्ञा पु० [सं० कलापशिरस्] एक मुनि का नाम ।

कलापा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अगहार (नृत्य) में वह स्त्रिय जहाँ तीन करण हो ।

कलापिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] २ राशि । २. नारमोया । ३. मयूरी । मोरनी ।

कलापी—सञ्ज्ञा पु० [सं० कलापिन्] [स्त्री० कलापिनी] २. मोर । उ०—पेंडे परे पापी ये कलापी निस बोल ज्योंही, चातक । चातक रंगी ही तू हूँ कान फोरि लै ।—धनानंद, पृ० ८७ । २. कोकिल । ३. वरगद का पेड़ । ४. वंशपायन का एक शिष्य । ५. मयूर के नृत्य का समय (जब मयूर अपनी पूँछ के पंखों को फैलाता है) (कौ०) ।

कलापी^३—वि० १ तूणीर बांधे हुए । तरकशबंद । २. कलाप व्याकरण पढ़ा हुआ । ३. झुंड में रहनेवाला । ४. पूँछ या दूम फैलानेवाला (मोर) (कौ०) ।

कलावतून—सञ्ज्ञा वि० [हि० कलावतू] दे० 'कलावतू' ।

कलावतूनी—वि० [तु० कलावतून] कलावतू का बना हुआ ।

कलावतू—सञ्ज्ञा पु० [तु० कलावतून] [वि० कलावतूनी] २. सोने चांदी आदि का तार जो रेशम पर चढ़ाकर बटा जाय । २. सोने चांदी के कलावतू का बना हुआ पतला फीता जो लचके से पतला होता है और कपड़ों के किनारों पर टाँका जाता है । ३. सोने चांदी का तार ।

कलावा—सञ्ज्ञा पु० [ग्र०] दे० 'कलावा' ।

कलावाज—वि० [हि० कला+फा० वाज] कलावाजी करनेवाला । नटक्रिया करनेवाला । कर्त्तव्य करनेवाला ।

३२ यज्ञ के तीन अंगों में से कोई अंग। मन्त्र, द्रव्य और श्रद्धा ये तीन यज्ञ के अंग या उसकी कला हैं। ३३. यत्र। पंच। जैसे,—पथरकला। दमकला। ३४ मरीचि ऋषि की स्त्री का नाम। ३५ विभीषण की बड़ी कन्या का नाम। ३६. जानकी की एक सखी का नाम। ३७ एक वर्णवृत्त का नाम।

विशेष—इसके प्रत्येक चरण में एक भरण और एक गुह (stas) होता है। जैसे—भाग भरे ग्वाल खरे। पूर्ण कला। नंद लला।

३८ जैन दर्शन के अनुसार वह अचेतन द्रव्य जो चेतन के अधीन रहता है। पुद्गल। प्रकृति। यह दो प्रकार का है—कार्य और कारण।

कला^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कला] १ नकलवाजी। २ वहानेवाजी। उ०—पुनि सिंगार कर कला नेवारी। कदम सेवती बँटु पियारी।—जायसी ग्र०, पृ० १४४।

कलाई^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कलाची] १ हाथ के पट्टे का वह भाग जहाँ हथेली का जोड़ रहता है। इसी स्थान पर स्त्रियाँ चूड़ी पहनती और पुरुष रक्षा बाँधते हैं। उ०—कहा परेखें करि रही इत देखे चित हाल। गई ललाई दृगनि तें छुवत कलाई लाल।—राम० धर्म०, पृ० २४८।

पर्या०—मणिवध। गट्टा। प्रकोष्ठ।

२ एक प्रकार की कसरत जिसमें दो आदमी एक दूसरे की कलाई पकड़ते हैं और प्रत्येक अपनी कलाई को छुड़ाकर दूसरे की कलाई पकड़ने की चेष्टा करता है।

क्रि० प्र०—करना।

कलाई^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कलापी] १ पूजा। गट्टा। २ पहाड़ी प्रदेशों में एक प्रकार की पूजा जो फसल के तैयार होने पर होती है।

विशेष—इसमें फसल के कटने से पहले दस बारह वालों को इकट्ठा बाँधकर कुलदेवता को चढ़ाते हैं।

कलाई^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कलापी = समूह] १ सूत का लच्छा। करछा। कुकरी। २ हाथी के गले में बाँधने का कलावा जिसमें पैर फँसाकर पीलवान हाथी हँकाते हैं। ३ अँडुवा। अलान।

कलाई^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुलत्य] उरद।

कलाउत^५—वि० [हि० कलावत] दे० 'कलावत'। उ०—काउत काज भजन बारहमासी सखि लीनै आप मुख गावै राग रागिनी न राचवो।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० २७।

कलाकद—सञ्ज्ञा पुं० [फा० कलाकद] एक प्रकार की वरफो जो खोए और मिट्टी की बनती है। उ०—कलाकद तजि बनजो खारी।

अइया मनुषहु वृत्ति तुम्हारी।—सुंदर ग्र०, भा० १, पृ० ३२८।

कलाकर^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अशोक की तरह का एक पेड़।

विशेष—यह बगाल और मद्रास में होता है। इसे कहीं कहीं देवदारी भी कहते हैं।

कलाकर^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कलाओं का आकर, चद्रमा। कलाधर। उ०—कुंभरूपन प्रथिराज तपे तेजह सु महावर। सुकज बीजु दिन हुवे कला दिन चढ़त कलाकर।—पृ० रा०, २। २।

कलाकार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. किसी कला का ज्ञाता और उस कला में कार्य करनेवाला। कलावत। २. कार्यकुशल। नित कला का करने या बनानेवाला।

कलाकारिता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कला + कारिता] कलाकुशलता। कुशलतापूर्वक कार्य करने की योग्यता।

कलाकारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कला + कारी] दे० 'कलाकारिता'।

कलाकाव्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह काव्य जिसमें कला का अधिक समावेश हो। उ०—पर उटन ने शक्तिकाव्य में भिन्न को जो कलाकाव्य (पोएट्री इज ऐन आर्ट) कहा है वह कला का उद्देश्य केवल मनोरंजन मानकर।—रम०, पृ० १७।

कलाकुल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हलाहल विष।

कलाकुशल—वि० [सं०] किसी कला को कुशलतापूर्वक संपन्न करनेवाला। चतुर। होगियार।

कलाकृति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कलापूर्ण रचना। श्रेष्ठ कृति।

कलाकेलि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

कलाकौशल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. किसी कला की निपुणता। दृनर। दस्तकारी। कारीगरी। २. शिल्प।

कलाक्षय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चद्रमा की कलाओं का क्रमशः घटना [क्रि०]।

कलाक्षेत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कामरूप देश के अंतर्गत एक प्राचीन तीर्थ।

कलाचिक, कलाची—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ कलाई। २ कलछी [क्रि०]।

कलाजग—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कला + जग] कुशती का एक पेंच।

विशेष—इसमें विपक्षी के दाहिने पैरों पर खड़े होने पर अपने बाएँ हाथ से नीचे से उसका दाहिना हाथ पकड़कर अपना बाया घुटना जमीन पर टेकते हुए दाहिने हाथ से उसकी दाहिनी रान अंदर से पकड़ते हैं, और अपना मिर उसकी दाहिनी गल में से निकालकर बाएँ हाथ से उसका हाथ खींचते हुए दाहिने हाथ से उसकी रान उठाकर अपनी बाईं तरफ गिराकर उसे चित कर देते हैं।

कलाजीजा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कलौजी। मंगरैना।

कलाटीन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] खजन की एक जाति का एक पक्षी [क्रि०]।

कलातीत—वि० [सं०] सभी प्रकार की कलाओं से परे। उ०—कलातीत कल्याण कल्पातकारी। सदा सज्जनानंद दाता पुरारी।—मानस, ७। १०८।

कलात्मक—वि० [सं०] कलापूर्ण। कलामय।

कलाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सोनार। उ०—जा दिन से तजी तुम ता दिन तें प्यारी पै कलाद कैसे पेसो लियो अघम अगह (शब्द०)।

कलादक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कलाद'।

कलादा^५—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कलाप, हि० कलाग] हाथी की गर्दन पर वह स्थान जहाँ महावत बँधता है। कलावा। किरावा। उ०—चारिहु वधु कवहु सीखन हित सबन सहित भूलादे। सज्जन सिधुर सकल भाँति सो बँठहि आपु कनादे।—रघुराज (शब्द०)।

कला

के लिये कणफूल आदि आभूषण बनाना), (१९) गवयुक्त पदाय जैसे गुलाब, केवडा, इत्र, फुलैल आदि बनाना, (२०) भूषणभोजन, (२१) इद्रजाल, (२२) कोचुमारयोग (कुल्ह को सुंदर करना या मुँह में और शरीर में मलने आदि के लिये ऐसे उबटन आदि बनाना जिनसे कुल्ह भी सुंदर हो जाय), (२३) हस्तलाघव (हाथ की सफाई, फुर्ती या लाग), (२४) चित्रशाकापूपमण्डप-विकार-क्रिया (अनेक प्रकार की तरकारियाँ, पूष और खाने के पकवान बनाना, सूपकर्म), (२५) पानकरसरागासन भोजन (पीने के लिये अनेक प्रकार के शर्बत, अर्क और शराब आदि बनाना), (२६) सूचीकर्म (सीना, पिरोंना), (२७) सूत्रकर्म (रफगूरी और कसीदा काढना तथा तागे से तरह तरह के बेल बूटे बनाना), (२८) प्रहेल्कि (पहेली या बुझोवल कहना और बुझना), (२९) प्रतिमाला (अत्याक्षरी अर्थात् श्लोक का अंतिम अक्षर लेकर उसी अक्षर से आरम्भ होनेवाला दूसरा श्लोक कहना, वंतवाजी), (३०) दुर्वाचकयोग (कठिन पदो या शब्दों का तात्पर्य निकालना), (३१) पुस्तकवाचन (उपयुक्त रीति से पुस्तक पढ़ना), (३२) नाटिकाख्यायिकादर्शन (नाटक देखना या दिखलाना), (३३) काव्यसमस्या-पूर्ति, (३४) पट्टिका-वेत्र-वाण, वकल्प, (नेवाड, बाघ या वेंत से चारपाई आदि बुनना), (३५) तर्ककर्म (दलील करना या हेतुवाद), (३६) तक्षण (बढ़ई, सगतराश आदि का काम करना), (३७) वास्तुविद्या (घर बनाना, इजीनियरी), (३८) ह्यरत्नपरीक्षा (सोने, चाँदी आदि धातुओं और रत्नों को परखना), (३९) धातुवाद (कच्ची धातुओं का साफ करना या मिली धातुओं को अलग अलग करना), (४०) माणिराग-ज्ञान (रत्नों के रंगों को जानना), (४१) आकरज्ञान (खानों की विद्या), (४२) वृक्षायुर्वेदयोग (वृक्षों का ज्ञान, चिकित्सा और उन्हें रोगों आदि को विधि) (४३) मेप-कुक्कुट-लावक-युद्ध-विधि, (भेड़े, मुर्गे, बटर, बुलबुल आदि को लड़ाने की विधि), (४४) शुक्र-सारका-प्रापन (तोता, मैना पढ़ाना), (४५) उत्सादन (उबटन लगाना और हाथ, पैर, सिर आदि दवाना), (४६) कंश-माजन-कीचल (वालों का मलना और तेल लगाना), (४७) अक्षरमुष्टिका कथन (करपलई), (४८) म्लेच्छितकला विकल्प (मनूच या विदया भाषाओं का जानना), (४९) देशभाषाज्ञान (प्राकृतिक बोलियों को जानना), (५०) पुष्पगकटिकानिमित्तज्ञान (देवी लक्षण जैसे बादल की गरज, पिंजली की चमक इत्यादि देखकर आगामो घटना के लिये भविष्यद्वाणी करना), (५१) यत्रमातृका (यत्रनिर्माण), (५२) धारण मातृका (स्मरण बढ़ाना), (५३) सपाठ्य (दूसर को कुछ पढ़ते हुए सुनकर उसे उसी प्रकार पढ़ देना), (५४) मानसीकाव्य क्रिया (दूसरे का अभिप्राय समझकर उसके अनुसार तुरंत कविता करना या मन में काव्य करके शीघ्र कहते जाना), (५५) क्रियाविकल्प (क्रिया के प्रभाव को पढ़ना), (५६) छलितकयोग (छन या ऐयारी करना), (५७) अभिधानकोष-संदोधान, (५८), वस्त्रगोपना (वस्त्रों की रखा करना), (५९)

यूतविशेष (जुआ खेलना), (६०) अंकर्षण क्रीडा (पासा आदि फेंकना), (६१) बालक्रीडाकर्म (लडका खेलाना), (६२) वन्यायिकी विद्या-ज्ञान (विनय और शिष्टाचार, इल्मे इखलाक वी आदाब), (६३) वैजयिकी विद्याज्ञान, (६४) वंतालिकी विद्याज्ञान ।

यौ०—कलाकुशल । कलाकौशल । कलावत ।

१३. मनुष्य के शरीर के आध्यात्मिक विभाग । उ०—सजम साधि कला बस कीन्ही मन पवन घर आयो ।—चरण० वानी, पृ० १६७ ।

विशेष—ये सख्या में १६ हैं । पाँच ज्ञानेंद्रिया, पाँच कर्मेंद्रियाँ, पाँच प्राण और मन या बुद्धि ।

१४. वृद्धि । सुद । १५. नृत्य का एक भेद । १६. नौका । १७. जिह्वा । १८. शिव । १९. लेश । लगाव । २०. वर्ण । अक्षर । (तत्र) । (२१) मात्रा (छंद) । (२२) स्त्री का रज । (२३) पाशुपत दर्शन के अनुसार शरीर के अंग या अवयव ।

विशेष—इनमें कला दो प्रकार की मानी गई हैं ।—एक कार्याख्या, दूसरी कारणाख्या । कार्याख्या कलाएँ दस हैं, पृथिव्यादि पाँच तत्त्व, और गवादि उनके पाँच गुण । कारणाख्या १३ हैं—पाँच ज्ञानेंद्रियाँ, पाँच कर्मेंद्रियाँ तथा अध्यवसाय, अभिमान और सकल्प ।

२४. विभूति । तेज । जैसे, ईश्वर की अद्भुत कला है । उ०—(क) कासिहु से कला जाती, मयुरा मसीद होती, सिवाजी न होते तो सुनति होती सबकी ।—भूषण (शब्द०) । (ख) रामजानकी लपन म ज्यो ज्यो करिहो भाव । त्यो त्यो दरसैंहै कला दिन दिन दून दुराव ।—रघुराज (शब्द०) । २५. शोभा । छटा । प्रभा । उ०—लखन बत्तीसी कुल निरमला । बरनि न जाय रूप की कला ।—जायसी (शब्द०) । २६. ज्योति । तेज । उ०—अब दस मास पूरि भई घरी । पचावति कथा अवतरी । जानो सुख किरिन हुत गड़ी । सूरज कला घाट, वह बढी ।—जायसी (शब्द०) । २७. कौतुक । खेल । लीला । उ०—यहि विधि करत कला विविध बसत अवधपुर माहि । अवध प्रजानि उठाह नित, राम बाँह की छाहि ।—रामस्वरूप (शब्द०) ।

मुहा०—कला बजाना = बदरो का मजीरा बजाना (मदारी) । २८. छल । कपट । धोखा । बहाना । उ०—यो ही रच्यो करेहैं कला कामिनी धनी ।—प्रताप (शब्द०) । यौ०—कलाकार = छली । कपटी । फसादी ।

२९. बहाना । मिस । होला । ३०. ढग । युक्ति । करतब । जैसे—तुम्हारी कोई कला यहाँ नहीं लगेगी । उ०—बिरहा कठिन काल कै कला ।—जायसी ग्र०, पृ० १०३ । ३१. नशे की एक कसरत जिसमें खिलाड़ी सिर नीचे करके उलटता है । डेकला । उ०—(क) नाचो धूँधत खोलि ज्ञान का डोल बजाओ । देखैं सब संसार कलाएँ उलटी बाओ ।—पद्म०, पृ० ५८ । (ख) छतहूँ नाद शब्द ही मला कजहूँ नाटक चेटक कला ।—जायसी (शब्द०) ।

यौ०—कलाबाजी । कलाजग ।

क्रि० प्र०—छाना ।—मारना ।

कलहासिनी—वि० श्री० [सं०] मधुर हास्यवाली । सुंदर हँसीवाली ।
उ०—कुमुदकला वन कलाहासिनी अमृत प्रकाशिनी, नमवासिनी
तेरी आभा को पाकर मैं । जग का तिमिर नास हर दूँ ।—
वीणा, पृ० २ ।

कलाहिनी^१—वि० श्री० [सं०] लडाकी । भगडालू ।

कलाहिनी^२—सञ्ज्ञा श्री० अग्नि की स्त्री का नाम ।

कलाही^१—वि० [सं० कलहिन्] [वि० श्री० कलहिनी] भगडालू ।
लडाका ।

कलाही^२—वि० श्री० दे० 'कलहिनी' ।

कलाकुर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कलाङ्कुर] १ कराकुल पक्षी । २ कसासुर ।
३ चौरशास्त्र के प्रवर्तक कर्णसुत ।

कलातर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कलान्तर] १ सूद । व्याज । २ दूसरी या
अन्य कला (की०) । ३ लाभ (की०) ।

कलावि, कलाविका—सञ्ज्ञा श्री० [सं० कलाम्बि, कलाम्बिका] १ ऋण
देना । २ सूदखोरी (की०) ।

कलाँ—वि० [फा०] बड़ा । दीर्घाकार ।

यो०—कलौराशि का घोड़ा = बड़ी जाति का घोड़ा ।

कलावत(उ)—वि० [हि० कलावत] दे० 'कलावत' । उ०—ढाडी
कलावत नट नरतक अरु पातुर ।—प्रेमघन, भा० १, पृ० ३० ।

कला^१—सञ्ज्ञा श्री० [म०] १ अश । भाग । २ चंद्रमा का सोलहवाँ
भाग । इन सोलहों कलाओं के नाम ये हैं ।—१ अमृता, २
मानदा, ३ पूषा, ४ प्रष्टि, ५ तुष्टि, ६ रति, ७ धृति, ८ शशनी,
९ चद्रिका, १० काति, ११ ज्योत्स्ना, १२ श्री, १३ प्रीति,
१४ अगदा, १५ पूर्णा और १६ पूर्णामृता ।

विशेष—पुराणों में लिखा है कि चंद्रमा में अमृत रहता है, जिसे
देवता लोग पीते हैं । चंद्रमा शुक्ल पक्ष में कला कला करके
बढ़ता है और पूर्णिमा के दिन उसकी सोलहवीं कला पूर्ण हो
जाती है । कृष्णपक्ष में उसके संचित अमृत को कला कला
करके देवतागण इस भाँति पी जाते हैं—पहली कला को
अग्नि, दूसरी कला को सूर्य, तीसरी कला को विश्वदेवा, चौथी
को वरुण, पाँचवीं को वपुष्कार, छठी को इंद्र, सातवीं को
देवर्षि, आठवीं को अजएकपात्, नवीं को यम, दसवीं को वायु,
ग्यारहवीं को उमा, बारहवीं को पितृगण, तेरहवीं को कुवेर,
चौदहवीं को पशुपति, पंद्रहवीं को प्रजापति और सोलहवीं कला
अमावस्या के दिन जल और ओषधियों में प्रवेश कर जाती है
जिनके खाने पीने से पशुओं में दूध होता है । दूध से घी होता
है । यह घी आहुति द्वारा पुनः चंद्रमा तक पहुँचता है ।

यो०—कलाघर । कलानाथ । कलानिधि । कलापति ।

३. सूर्य का बारहवाँ भाग ।

विशेष—वर्ष की बारह सञ्ज्ञातियों के विचार से सूर्य के बारह
नाम हैं, अर्थात्—१ विवस्वान, २ अर्यमा, ३ तूपा, ४ त्वष्ठा,
५ सवितर, ६ भग, ७ धाता, ८ विधाता, ९ वरुण, १०
मित्र, ११ शुक्र और १२. उरुक्रम । इनके तेज को कला कहते
हैं । बारह कलाओं के नाम ये हैं—१ तपिनी, २ तापिनी, ३.
धूम्रा, ४. मरीचि, ५. ज्वालिनी, ६. रुचि, ७. सुपुष्पा, ८.

भोगदा, ९. विश्वा, १०. बोधिनी, ११ धारिणी और
१२ क्षमा ।

४ अग्निमंडन के दस भागों में से एक ।

विशेष—उसके दस भागों के नाम ये हैं—१. धूम्रा, २ अर्चि,
३ उष्मा, ४ ज्वलिनी, ५ ज्वालिनी, ६ विस्फुल्लिगिनी, ७.
८ सुरुषा, ९ कपिना और १० हव्यकथ्यवदा ।

५ समय का एक विभाग जो तीस कांठा का होता है ।

विशेष—किसी के मत से दिन का ६० वाँ भाग और किसी के
मत से १८० वाँ भाग होता है ।

६ राशि के ३०वें अंश का ६०वाँ भाग । ७ वृत्त का १८०वाँ
भाग । ८ राशिचक्र के एक अंश का ६०वाँ भाग ।

९ उपनिषदों के अनुसार पुरुष की देह के १६ अंश या
उपाधि ।

विशेष—इनके नाम इस प्रकार हैं—१ प्राण २ श्वादा ३.
व्योम, ४ वायु ५ तेज, ६ जल, ७ पृथ्वी, ८ इन्द्रिय, ९ मन
१० अन्न, ११ वीर्य, १२. तप, १३. मत्र, १४ कर्म, १५
लोक और १६ नाम ।

१० छदशास्त्र या पिंगल में 'मात्रा' या 'कना' ।

यो०—द्विकल । त्रिकल ।

११ विक्रिशा शास्त्र के अनुसार शरीर की सान विशेष भिन्नियों
के नाम जो मांस, रक्त, मेद, कफ, मूत्र, पित्त और वीर्य को
अलग अलग रखती हैं । १२ किसी कार्य को भली भाँति
करने का कोश । किसी काम को नियम और व्यवस्था के
अनुसार करने की विद्या । फन । हुनर ।

विशेष—कामशास्त्र के अनुसार ६४ कलाएँ ये हैं ।—(१) गीत
(गाना), (२) वाद्य (वाजा बजाना), (३) नृत्य (नाचना), (४)
(४) नाट्य (नाटक करना, अभिनय करना), (५) शालेय
(चित्रकारी करना), (६) विशेषकच्छेद्य (तिलक के संचि
वनाना), (७) तंडुल-कुमुमावलि-विकार (चावलों और फूलों
का चौक पूरना), (८) पुष्पास्तरण (फूलों की सेज रचना या
विछाना), (९) दशन-वसनाग राग (दातों, कपड़ों और अंगों
को रँगना या दातों के लिये मजन, मिस्सी आदि, वस्त्रों के लिये
रग और रँगने की सामग्री तथा अंगों में लगाने के लिये चदन,
केसर, मेहंदी, महावर आदि बनाना और उनके बनाने की
विधि का ज्ञान), (१०) मणिभूमिकाकर्म (ऋतु के अनुकूल
घर सजाना), (११) शयनरचना (विछाना या पलंग
विछाना), (१२) उदकवाद्य (जलतरंग बजाना), १३
उदकधात (पानी के छीटे आदि मारने या पिचकारी चलाने
और गुलाबपास से काम लेने की विद्या), (१४) चित्रयोग
(अवस्थापरिवर्तन करना अर्थात् नपुंसक करना, जवान को
बुढ़ा और बुढ़े को जवान करना इत्यादि), (१५) माल्य-
ग्रथविकल्प (देवपूजन के लिये या पहनने के लिये माला
गूँथना), (१६) केश-शेखरापीड-योजन (सिर पर फूलों से
अनेक प्रकार की रचना करना या सिर के बालों में फूल
लगाकर गूँथना), (१७) नेपथ्ययोग (देश काल के अनुसार
वस्त्र, आभूषण आदि पहनना, (१८) कर्णपत्रभंग (कानों

कलशी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. गगरी । छोटा कलसा । २. मंदिर का छोटा कंगूरा । ३. पृष्ठपार्श्व । पिठवन । ४. एक प्रकार का वाद्य, जिसे कन्यामुख भी कहते थे ।

कलशीसुत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कलशी से उत्पन्न अगस्त्य ऋषि ।

कलस—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कलश' । उ०—कीरति कुल कलस अलस तजि तेज सुनाम असेस सिबिल गति है ।—धनानन्द, पृ० ६०६ ।

कलसजोनि—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कलस + जोनि] दे० 'कलशजोनि' ।

उ०—कलसजोनि जिय जानिउ नाम प्रतापु ।—तुलसी ग्र०, पृ० २४ ।

कलसभव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कलशभव' । उ०—अकनि कटु वानी कुटिल की शोध दिध्य वड़ोइ । सकुचि सम भयो ईस आयनु कलसनव जिय जोइ ।—तुलसी (शब्द०) ।

कलसरी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० कलाई + सर] कुशती का एक पेंच ।

विशेष—इसमें विपनी को नीचे लाकर उसके मुँह की तरफ बँटकर अपना दाहिना हाथ सामने से उसकी बांह में डालकर पीठ पर ले जाते हैं और दूसरे हाथ की कलाई पकड़ कर बाईं ओर जोर करके चित्त कर देते हैं ।

कलसरी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० कलसरी] दे० 'कलसिरी' । उ०—सीकरा सो काल है कलसरी सी लपेट ले है ।—मल्लक०, पृ० ३१ ।

कलसर्वदाना—क्रि० अ० [सं० कलाश + वन्दन] विवाह में एक रीति जिसमें श्रियो पानी भरे घड़े सिर पर रखकर शुभार्थ ले जाती हैं । उ०—परगुवा चाल्यो वीसलराव । पच सखी मिनि कलस वदावि ।—वी० रासो, पृ० १२ ।

कलसा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कलसक] [स्त्री० अलसा० कलसी] १ पानी रखने का बरतन । गगरा । घड़ा । उ०—जस पनिहारी कलस भरे मारग में आर्द्र । कर छोडे मुख वचन चित्त कलसा में लावै ।—पलटू०, पृ० ४२ । २. मंदिर का शिखर ।

कलसार^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कलाशा, हिं० कलाता] अघीन । उ०—सागर कोट जाके कलसार । छपन कोट जाके पनिहार ।—दरिया० वानी०, पृ० ४३ ।

कलसि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कनसी' [स्त्री०] ।

कलसिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० कलसी + इय (प्रत्य०)] दे० 'कलसी' । उ०—तशरी, प्याले, कलसिया, सिंगारदानी, डिविया ।—हिंदु० सम्प्रदाय, पृ० २० ।

कलसिरी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० काला + सिर] एक बिडिया जिसका फिर काला होता है ।

कलसिरी^२—वि० स्त्री० [हिं० कलह + सिर] लडाकी (स्त्री) । भगड़ा (स्त्री) ।

कलसी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटा गगरा । २. छोटे छोटे कंगूरे । मंदिर का छोटा शिखर या कंगूरा ।

कलसीसुत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ऋषि से उत्पन्न, अगस्त्य ऋषि ।

कलहातरिता^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कलाहान्तरिता] दे० 'कलहातरिता' । ३-६०

उ०—प्रोषितातिका अरु खडिता । कलहंतरिता उत्कठिता ।—नंद० ग्र०, पृ० १४६ ।

कलहस—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. हस । २. राजहस । उ०—कूजत कहूँ कलहस कहूँ मज्जत पारावत ।—भारतेन्दु ग्र०, भा० २, पृ० ४५६ । ३. थोड़ा राजा । ४. परमात्मा । ब्रह्म । ५. एक वर्णवृत्त का नाम ।

विशेष—इसमें प्रत्येक चरण में १३ अक्षर अर्थात् एक सगण, एक जगण, फिर दो सगण और अंत में एक गुरु होता है ।—सज सी सिंगार कलहंस गति सी । अलि आई राम छवि मडप दीसी ।

६. सकर जाति की एक रागिनी जो मधु, शकरविजय और यात्रीरी के योग से बनती है । ७. राजपूतों की एक जाति ।

उ०—गहवार परिहार जो कुरे । श्री कलहंस जो ठाकुर कुरे ।—जायसी (शब्द०) ।

कलाह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. विवाद । झगड़ा । उ०—कलह कलपना दुख घना रहे मन भग ।—सहजो०, पृ० १२ ।

यौ०—कलाहप्रिय ।

२. लड़ाई । युद्ध । ३. तलवार की म्यान । ४. पथ । रास्ता ।

कलाहकार—वि० [सं०] झगड़ालू । झगड़ा करनेवाला ।

कलाहकारी—वि० [सं० कलाहकारिन्] [वि० स्त्री० कलहकारिणी] झगड़ा करनेवाला । झगड़ालू ।

कलाहनी—वि० स्त्री० [सं० कलाहिनी] दे० 'कलहिनी' ।

कलाहप्रिय^१—सञ्ज्ञा पुं० [न०] नारद ।

कलाहप्रिय^२—वि० [वि० स्त्री० कलहप्रिया] जिसे लड़ाई भली लगे । लडाका । झगड़ालू ।

कलाहप्रिया^३—वि० स्त्री० [सं०] झगड़ालू ।

कलाहप्रिया^४—सञ्ज्ञा स्त्री० मैना ।

कलहर—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] बनियों की एक जाति जो मध्य प्रदेश में पाई जाती है ।

कलहरी^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० कलार > कलारी] दे० 'कलवारिन्' । उ०—उब सुखसागर के बीच, कलहरी ह्वे रहूँ री ।—चरण० वानी, पृ० १३७ ।

कलहलाना^६—क्रि० अ० [सं० कलकलाय, प्रा० कलकल] या सं० कोलाहल अथवा अनुध्वं कोलाहन या शोरगुल करना । उ०—एही भली न, करहना, कलहलिया कइकाण ।—डोला० पृ० ६२७ ।

कलाहान्तरिता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कलाहान्तरिता] अथव्यानुसार नायिका के दस भेदों में से एक । वह नायिका जो नायक या पति का अपमान कर पीछे पड़ताती है ।

कलाहारी—वि० स्त्री० [सं० कलाहकार, हिं० कलाहार + ई (प्रत्य०)] कलह करनेवाली । लडाकी । झगड़ालू । कर्कशा ।

कलाहास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] केशवदास के अनुसार हास के चार भेदों में से एक जिसमें थोड़ी थोड़ी कोमल और मधुर ध्वनि निकलती है जैसे,—जहि सुनिअ कलधुनि कछू कोमल विमल विलास । केशव उन मन नोहिए वरनव कवि कलहास (शब्द०) ।

कलमास(७)—वि० [सं० कलमास] चितकवरा ।

कलमी^१—वि० [सं० कलम+फा० ई (प्रत्य०)] १ लिखा हुआ ।
लिखित । हाथ का लिखा हुआ । हस्तलिखित । २ जो कलम
लगाने से उत्पन्न हुआ हो । जैसे,—कलमी नीवू कलमी आम ।
३ जिसमें कलम या रवा हो । जैसे,—कलमी शोरा ।

कलमी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कलमी] करेफू । कलमी साग ।

कलमीशोरा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कलमी+शोरा] साफ किया हुआ
शोरा ।

विशेष—इसमें कलमे होती हैं । शोरे को पानी में साफ करके
ब्रसकी मेल को छाँटकर कलम जमाते हैं । यह शोरा साधारण
शोरे से अधिक साफ और तेज होता है । इसकी कलमे भी बड़ी
बड़ी होती हैं ।

कलमुहूँ—वि० [हिं० काला+मुहूँ] १ काले मुँह का । जिसका मुँह
काला हो । २ कलकित । लाछित ।

कलयुग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कलियुग] दे० कलियुग । उ०—प्रसाधारणों
की लोलुपता ने जो कलयुग में बढ़ गई है ।—प्रेमधन०, भा०
२, पृ० २६६ ।

कलरव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ मधुर शब्द । कोमल या मद मधुर ध्वनि ।
उ०—रजनी की लाज समेटो तो कलरव से उठकर भेटो तो ।—
लहर, पृ० २२ । २ कोकिल । ३ कवूर । ४ चिड़ियों के
चहकने की आवाज (को०) ।

कलरासि(७)—वि० [सं० कला+रासि] कलाविद् । कलाओं में कुशल ।
कलाओं में जानकर । उ०—चतुर्ई रासि छल रासि, कल-
रासि, हरि भजे जिहि हेत विहि देन हारी ।—सूर०, १०,
१८०३ ।

कलरिन—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] जोंक लगानेवाली स्त्री । कीड़ी लगाने-
वाली स्त्री ।

कलल^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ गर्भाशय में रज और वीर्य की वह अवस्था
जिसमें एक पत्थली झिल्ली सी बन जाती है और जो कलन के
उपरात होती है ।

विशेष—संयुक्त के अनुसार जब श्रुतमती स्त्री का स्वप्न मयून
द्वारा रज उसके गर्भाशय में प्रवेश करता है, तब भी उससे
बूँदी आदि से रहित एक बुलबुला सा बनकर रह जाता है
और कलल कहलाता है ।
२ गर्भाशय (को०) ।

यौ०—कललज = (१) गर्भ । (२) कलल ।

कलल^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० कलकल] कलकल ।

कललिपि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्णाक्षरों में लिखावट । सोने के पानी
को लिखावट (को०) ।

कलवारिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० कलवार+रिया (प्रत्य०)] कलवार
का दुकान । शराब की दुकान ।

कलवार—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कल्यपाल, प्रा० कल्लवाल] [स्त्री० कलवारी,
कलवारिन] जाति जो किसी समय शराब बनाती
और देवती । शराब बनाने और देवनेवाला ।

उ०—सुनि कल कहा हो जोगी । महा रूप के महउ
वियोमी ।—द्वाद० ७६ ।

कलवारि(७)—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० कलवार] कलवार जाति की स्त्री ।
कलवारिन । उ०—चली सुनारि मुहाग सुनाती । श्री कलवारि
प्रेम मधुमाती ।—जायसी (शब्द०) ।

कलवारिन—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० कलवार का स्त्री०] १ कलवार जाति
की स्त्री । २ कलवार की स्त्री ।

कलवारिनी(७)—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० कलवारिन] दे० कलवारिन ।
उ०—माया कलवारिनी देत विप धोरिकै, पिए विप सुवै ना
कोउ भागै ।—पलटू०, भा० २, पृ० ३८ ।

कलविक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कलविङ्क] १ चटक । गोरैया । २.
कालीदा । तरवूज । ३ सफेद चेंबर । ४ त्वष्टा के पुत्र विवरूप
के तीन मस्तको में से वह मस्तक जिसके मुँह से वह शराब
पीता था । ५ एक तीर्थ का नाम । ६ धव्वा । दाग (को०) ।
७ कोयल (को०) ।

कलविकविनोद—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कलविङ्कविनोद] नृत्य के ५१
मुख्य चालको में से एक ।

विशेष—इसमें माथे के ऊपर दोनों हाथों को ले जाकर आकाश में
घुमाते हैं और फिर पसली पर लाकर नीचे ऊपर घुमाते हैं ।

कलविकस्वर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कलविङ्कस्वर] एक प्रकार की समाधि
(को०) ।

कलविग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कलविङ्क] १ गोरैया । चटक । २ दाग ।
धव्वा (को०) ।

कलश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० प्रत्या० कलशी] १ घड़ा । गगरा ।
२ तत्र के अनुसार वह घड़ा या गगरा जो व्यास में कम से
कम ५० अंगुल और चौड़ाई में १३ अंगुल हो और जिसका मुँह
८ अंगुल से कम न हो । ३ मंदिर, चैत्य आदि का शिखर । ४
मंदिरों के शिखर पर लगा हुआ पीपल, पत्थर आदि का
कंगूरा । ५ खपड़ल के कानों पर हुआ मिट्टी का कंगूरा ।
६ एक प्रकार का मान जो द्रोण या घाठ सेर के बराबर
होता था । ७ चोटी । सिरा । ८ प्रधान अंग । श्रेष्ठ व्यक्ति ।
जैसे,—रघुकुलकलश । ९ काश्मीर का एक राजा जिसका
नाम रणादित्य भी था ।

विशेष—यह ६५७ शकाब्द में हुआ था और बड़ा कुमारी तथा
अन्यायी था । इसने अपने पिता पर बहुत से अत्याचार किए
थे और अपनी भगिनी तक का सतीत्व नष्ट किया था । मंत्रियों
ने इसे सिंहासन से उतारकर इसके पिता की गद्दी पर
बैठाया था ।

१० कोहल मुनि के मत से नृत्य की एक वर्तना । ११ समुद्र
(को०) ।

यौ०—कलशभोधि, कलशाण्व, कलशोवधि = (१) समुद्र । (२)
शोरसागर ।

कलशक्षेत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कर्णाटक देश के अंतर्गत एक तीर्थ ।

कलशज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कलश से उत्पन्न अगस्त्य ऋषि (को०) ।

कलशभव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य ऋषि जिनकी उत्पत्ति घट से कही
गई है ।

कलशयोनि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य ऋषि (को०) ।

कलशि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कलशी' (को०) ।

कलम कराना = कटवाना । उ०—कलम रुक तो कर कलम कराइये ।—(शब्द०) । कलम घिसना = कलम चलाना ।

उ०—ग्राहिर कलम घिसने से पहिले ही जीम चलाने की विद्या सीखी थी ।—किन्नर०, पृ० २१ ।

३ वह पीछा जो कलम लगाकर तैयार किया गया हो ।
४ वे छोटे बाल जो हजामत बनवाने में कनपटियों के पास छोड़ दिए जाते हैं ।

क्रि० प्र०—काटना ।—छाटना ।—बनाना ।—रखना ।

५. एक प्रकार की वशी जिसमें सात छेद होते हैं । ६ बालों की कूची जिससे चित्रकार चित्र बनाते या रंग भरते हैं ।

यो०—कलमकार ।

७. शीशे का काटा हुआ लंबा टुकड़ा जो भाब में लटकाया जाता है । ८ शोरे, नौसादर आदि का जमा हुआ छोटा लंबा टुकड़ा । रवा । ९ छछुंदर । फुलझडी (घातशवाजी) ।

१० सोनारों या संगतराशों का एक औजार जिससे वे वारीक नक्काशी का काम करते हैं । ११. मुहर बनाने वालों का वह औजार जिससे वे अक्षर खोदते हैं । १२ किसी पेशेवाले का वह औजार जिससे कुछ काटा, खोसा या नकाशा जाय । १३ शीशी । पद्धति । जैसे, राजपूती कलम । १४ लेखनकौशल ।

कलम^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वह धान जो एक जगह बोया जाय और उखाड़कर दूसरी जगह लगाया जाय । जड़हन ।

यो०—कलमोत्तम = बहुत अच्छा महीन धान । कलमगोपबधू कलमगोपी = धान के खेतों की रखवाली करनेवाली स्त्री ।

२ लेखनी (की०) । ३ चोर (की०) । ४. दुष्ट । वदमाश (की०) ।

कलमक, कलमक—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का अंगूर जो बलूचिस्तान में बहुतायत से होता है ।

कलमकसाई—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कलम + प्र० कसाई] कठोर लिखनेवाला । शूरतापूर्वक लिखनेवाला ।

कलमकार—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] १ चित्रकार । चित्रों में रंग भरनेवाला । ३. एक प्रकार का बाफता (कपड़ा) जिसमें कई प्रकार के बेलबूट होते हैं ।

कलमकारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] १. कलम से किया हुआ काम । जैसे, नक्काशी, बेलबूटा आदि ।

कलमकीली—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० कलम + हि० कीली] कुश्ती का एक पंच ।

विशेष—इसमें विपक्षी के सामने खड़े होने पर अपने दाहिने हाथ की उँगलियों से उसके बाएँ हाथ की उँगलियों में पंजा गठकर अपने दाहिने हाथ को उसके पंजे के सहित अपनी गरदन पर लाते हैं और अपनी दाहिनी कोहनी उसकी बाईं कलाई से ऊपर लाकर नीचे की ओर दबाकर उसे चित कर देते हैं ।

कलमख^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कलमख] १ पाप । दोष । २. कलंक । लालन । दाग । धब्बा । उ०—विमल ज्ञान प्रगटै तहाँ कलमख शोरे खोप ।—दरिया० बानी०, पृ० १३ ।

कलमजद—वि० [प्र० कलम + फा० जब] कलम किया हुआ । कटा हुआ ।

कलमताराश—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० कलम + फा० तराश]

छुरी । चाकू । २. (कहारो और हाथीबानों की बोली में) अरहर की खूँटी ।

कलमदान—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० कलम + फा० बान] काठ का एक पतला लंबा सटूक जिसमें कमल, दावात, पेंसिल चाकू आदि रखने के खाने बने रहते हैं । उ०—मपनी लेखनी को भानंद के कलमदान विश्रामालय में स्थान दिया ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४५८ ।

मुहा०—कलमदान देना = किसी को लिखने पढ़ने की कोई नोकरी देना ।

कलमना^३—क्रि० सं० [हि० कलम] काटना । दो टुकड़े करना ।

उ०—तब तमचरपति तमकि कट्यो धरि धरि हरि खाहु । मिलि मारी दोउ बंधु बंक कपि कलमत जाहु ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

विशेष—यह प्रयोग अनुचित और भददा है ।

कलमवद^४—वि० [प्र० कलम + फा० बव] लिखित । लिपिवद्ध ।

कलमवद^५—सञ्ज्ञा पुं० चित्रकार की कूची बनानेवाला कारीगर ।

कलमारिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [पुर्त०] हवा का बंद हो जाना ।—(लश०)

कलमल^६—सञ्ज्ञा पुं० [प्रनु०] कुलबुलाहट । कसमसाहट ।

मुहा०—कलमल कलमल करना = व्याकुल होना । व्यथित होना ।

उ०—पिय मूरति जु भानि सर भरै । कामिनि कलमल कलमल करै ।—नद प्र०, पृ० १३२ ।

कलमल^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कलमल] कलमप । पाप । उ०—मए कलमल दूर तन के, गई तपन नसाय हो ।—घरनी० पृ० ३ ।

कलमलना^८—क्रि० प्र० [प्रनु०] दाव या अंडस से पड़ने के कारण अंगों का इधर उधर हिलना डोलना । कुलबुलाना ।

उ०—(क) चिक्करहि दिग्गज डोल महि ग्रहि कोल कूरम कलमले ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) चौंके विरंचि शकर सहित, कोल कमठ ग्रहि कलमल्यो ।—तुलसी (शब्द०) ।

कलमलाना—क्रि० प्र० [प्रनु०] दाव या अंडस में पकड़ने के कारण अंगों का इधर उधर हिलना डोलना । कुलबुलाना ।

उ०—भूमी अय कलमलात डगमग अकुलाई ।—संत तुलसी०, पृ० १५३ ।

कलमस^९—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कलमस] दे० 'कलमप' । उ०—जइ उत्तमत समान होइ विचरत गत कलमस ।—भारतेंदु प्र०, भा० ३, पृ० ४२५ ।

कलमा—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० कलमह] १ वाक्य । वात । २ वह वाक्य जो मुसलमान धर्म का मूल मंत्र है—'ला इलाह इल्लिल्लाह, मुहम्मद उर रसूलिल्लाह' । उ०—चारो वर्ण धर्म छोड़ि कलमा निवाज पढ़ि, शिवाजी न होते तो सुनति होति सब की ।—भूपाल (शब्द०) ।

मुहा०—कलमा पढ़ना = मुसलमान होना । किसी के नाम का

कलमा पढ़ना = किसी व्यक्तिविशेष पर अत्यंत श्रद्धा या प्रेम

रखना । कलमा पढ़ाना = मुसलमान करना । कलमा भराना =

इस्लाम धर्म के प्रति प्रेरित करना । उ०—दिल्ली वादिसाह

दीन आपाँ के मिलाया । कलमा भी खड़ाया मारा लीला की

कलपवेलि^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कल्प + हि० वेलि] कल्पवृक्षात् ।
उ०—(क) कलपवेलि त्रिमि बहु विधि लाली । सीचि सनेह
सलिल प्रतिपाली ।—मानस, २ । ५६ । (ख) सत्ता के संपूत
तैं जगई 'मतिराम' कहैं, लहलही कीरति कलपवेलि वाग है ।
—मति० ग्र०, पृ० ३८६ ।

कलपात^५—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कल्पात्] दे० 'कल्पात' । उ०—लघु
जीवन सवत पचदसा । कलपात न नास गुमानु भसा ।—
मानस, ७ । १०२ ।

कलपाना—क्रि० सं० [हि० कलपना] दुःखी करना । जी दुखाना ।
तरसाना । हलाना ।

कलपून—सञ्ज्ञा पुं० [वेश०] एक सदाबहार पेड़ जो उत्तरीय और
पूर्वीय वगाल में होता है ।

विशेष—इसकी लकड़ी लाल रंग की और मजबूत होती है । यह
घर बनाने में काम आती है और बड़ी कीमती ससभी
जाती है ।

कलपोटिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० काला + पोटा] एक चिड़िया जिसका
पोटा काला होता है ।

कलाप^५—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कल्पन, प्रा० कप्पण] काटना । काटने का
कार्य । खडन । उ०—साधन सिद्धि न पाइय जो लहि
साधन तप्प । सोई जानहि बापुरे जो सिर करहि कल्प ।
—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २०३ ।

कलाप्पा—सञ्ज्ञा पुं० [मल० कलपा = नारियल] नीनापन लिए हुए सफेद
रंग की कड़ी वस्तु । नारियल का मोती ।

विशेष—यह कभी कभी नारियल के भीतर मिलती है । चीन के
लोग इसे बड़े मूल्य की समझते हैं ।

कलाफ^५—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कल्प] एक भावल या आरारोट आदि की
पतली लेई जिसे कपड़ों पर उनकी तरह कढ़ी और बराबर
करने के लिये लगाते हैं । माँड़ी ।

क्रि० प्र०—करना ।—बेना ।—लगाना ।

कलाफ^५—सञ्ज्ञा पुं० [वेश०] चेहरे पर का काला घव्वा । भाई ।

कलाफदार—वि० [हि० कलफ + फा० दार (प्रत्यय)] कलफ या
माँड़ी लगा हुआ ।

कलाफा^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [वेश०] देशी दारचीनी की छाल ।

विशेष—यह मलाबार से आती है और चीन की दारचीनी में,
उसे सस्ता करने के लिये, मिलाई जाती है ।

कलफा^५—सञ्ज्ञा पुं० [वेश०] कल्ला । कोपल । नया अंकुर ।

कलव—सञ्ज्ञा पुं० [वेश०] टेसू के फूलों को उबालकर निकाला हुआ
रंग ।

विशेष—इसमें कत्था, लोह और चूना मिलाकर अगर ई रंग
बनाते हैं ।

कलबल^५—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कला + बल] उपाय । दाँत पेंच । जुगुत ।

कलबल^५—सञ्ज्ञा पुं० [अनु०] हल्ला गुल्ला । शोर गुल । उ०—
सखिन सहित सो नित प्रति भावै । कलबल मुनि के निकट
मभावै ।—विश्राम (शब्द०) ।

कलवल^५—वि० [अनु०] अस्पष्ट (स्वर) । (शब्द०) जो
अलग अलग न मालूम हो । गिलबिल । उ०—कलवल बचन
अधर अरुनारे । दुइ दुइ दसन विसद वर वारे ।—तुलसी
(शब्द०) ।

कलावोर—सञ्ज्ञा पुं० [हि० अकलबीर] दे० 'अकलबीर' ।

कलाबुद्ध^५—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कलबूत] दे० 'कलबूत' । उ०—हाइ
मास अधिर की मोटरी एह कलबुद्ध बनायो ।—सं० दरिया,
पृ० १०० ।

कलबूत—सञ्ज्ञा पुं० [फा० कालबुद] १. ढाँचा । साँचा । उ०—पूत
कलबूत से रहेंगे सब ठाड़े तब कछून चलेंगी जत्र दूत धरि
पावंगो ।—दीन० ग्रं०, पृ० २४१ । २. लकड़ी का ढाँचा
जिसपर चढ़ाकर जूना सिया जाता है । फरमा । ३. मिट्टी,
लकड़ी या टीन का गुबदनुमा टुकड़ा जिसपर रखकर चौगोशिया
या अठगोशिया टोपी या पगड़ी आदि बनाई जाती है ।
गोलवर । कालिव ।

कलबूद^५—सञ्ज्ञा पुं० [फा०, कालबुद या हि० कलबूत] दे० 'कलबूत' ।
उ०—पाँच ओ तत्तु पचीस प्रकृति है तीनि गुन बाँधि कलबूद
दीन्हा ।—सं० दरिया, पृ० ८३ ।

कलम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कलमी] १. हाथी का वच्चा । उ०—
उर मनि माल कवु कलमीवा । काम कलम कर भुज बल
सीवा ।—तुलसी (शब्द०) । २. हाथी । ३. ऊँट का वच्चा ।
४. धतूरा ।

कलमक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हाथी का वच्चा [स्त्री०] ।

कलमवल्लभ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पीलू का पेड़ ।

कलमी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. हाथी या ऊँट का वच्चा (मादा) ।
२. चेंच का पीछा । चन्चु ।

कमला^५—सञ्ज्ञा पुं० सं० स्त्री० [अ० कलम, तुलसीय] १. सरकड़े की
कटी हुई छोटी छड़ या लोहे की जीम लगी हुई लकड़ी का
टुकड़ा जिसे स्याही में डुबाकर कागज पर लिखते हैं । लेखनी ।
उ०—लिए हाथ में कलम कलम सिर करत अनेकान ।—
प्रेमघन०, भा० १, पृ० १५ ।

क्रि० प्र०—चलना ।—चलाना ।—बनना ।—बनाना ।

मुहा०—कलम खींचना, फेरना या मारना = लिखे हुए को काटना
कलम चलना = (१) लिखाई होना । (२) कलम का कागज
पर अच्छी तरह खिसकना । जैसे,—यह कलम अच्छी नहीं
चलती, दूसरी लाओ । कलम चलाना = लिखना । कलम
तोड़ना = लिखने की हद कर देना । अनूठी उक्ति कहना ।
कलमबंद करना = लेखबंद करना । कलमबंद = पूरा पूरा ।
ठीक ठीक । जैसे,—कलमबंद सौ जूते लगेंगे ।

यो०—कलम कसाई । कलमतराश । कलमबान ।

२. किसी पेड़ की टहन्यो जो दूसरी जगह बैठाने या दूसरे पेड़ में
पेवद लगाने के लिये काटी जाय ।

क्रि० प्र०—करना ।—कराना ।—काटना ।—लगाना ।

मुहा०—कलम करना = काटना । उ०—लिए हाथ में कलम
कलम सिध करव अनेकान ।—प्रेमघन०, १, पृ० १५ ।

कलठोरा

कलठोरा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० काला + ठोर] कलचोंचा कवूतर ।

कलत—वि० [सं०] गंजा । खलवाट [को०] ।

कलतूलिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कुलटा । पुंश्चली [को०] ।

कलत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कलत्रवान्, कलत्री] १ स्त्री । पत्नी ।

उ०—किसके माँ बाप और उसके पुत्र कलत्र, कोई किसी का नहीं ।—श्यामा०, पृ० १२२ । २. नितव । ३. दुर्ग । किला ।

४. सात की संख्या का सूचक शब्द ।

कलत्रगहि सैन्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] परिवार के वशीभूत सेना । वह सेना जो परिवार (पुत्र कलत्र) की चिन्ता में डूबी रहे ।

विशेष—कोटिल्य ने यद्यपि ऐसी सेना को ठीक नहीं कहा है, तथापि अत शल्य (शत्रु से भीतर भीतर मिली हुई) सेना से अच्छी कहा है ।

कलत्यना—वि० [सं० कलह] छटपटाना । दुखी होना ।

उ०—उलटके पलटके कलत्ये कराहें ।—पद्माकर प्र०, पृ० ११ ।

कलथरा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] करघे की चक नामक लकड़ी ।

कलथरा—वि० दे० 'चक' ।

कलदार—वि० [हि० कल + फा० दार (प्रत्य०)] जिसमें कल लगी हो । पेंचदार ।

कलदार—सञ्ज्ञा पुं० वह रूपा जो टकसाल की कल में बना हो । सरकारी रूपा । राजकीय रूपा ।

कलदुमा—वि० [हि० काला + फा० दुम + हि० धा (प्रत्य०)] काली दुम का । काली पूँछ का ।

कलदुमा—सञ्ज्ञा पुं० काली दुम का कवूतर ।

कलघूत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चाँदी ।

कलघूत—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कलघोत] दे० 'कलघोत' । उ०—कलघूत कलस दस गडित हथ्य । उच कुडि जन न्हान सथ्य ।—पृ० रा०, १४ । १२३ ।

कलघोत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ सोना । उ०—केतिक ये कलघोत के धाम करील के कुजन ऊपर वारों ।—रसखान (शब्द०) । २ चाँदी । ३ सुंदर ध्वनि ।

कलध्वनि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] मधुर ध्वनि । कोमल आवाज । मुरीली आवाज ।

कलध्वनि—सञ्ज्ञा पुं० १ कवूतर । २. मार [को०] ।

कलध्वनि—सञ्ज्ञा स्त्री० कोयल [को०] ।

कलन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० कलित] १. उत्पन्न करना । बनाना । लगाना । सजाना । २. धारण करना । होना । ३. आचरण ।

४. लगाव । संबध । ५. गणित की क्रिया । हिसाब । जैसे,—सकलन, ध्यवकलन । ६. ग्रास । कोर । ७. ग्रहण । ८. शुक्र और शोणित के संयोग का वह विकार जो गर्भ की प्रथम रात्रि में होता है और जिससे कवल बनता है । ९. वेंट । १०. धब्बा [को०] । ११. दोष । अपराध [को०] ।

कलना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. गणना । हिसाब । उ०—देव सृष्टि की मुख विभावरी, ताराओं की कलना यो ।—कामायनी, पृ० ८ । २. धादान । ग्रहण [को०] । ३. रचना । जपन्य करना [को०] ।

४. अधीनता । वश्यता [को०] । ५. बोध । प्रत्यय । श्रुत [को०] । ६. धारण करना [को०] । ७. प्रतिभाग । मोचन [को०] ।

कलना—वि० [सं०] [हि० करना] करना । किसी कार्य को करना । उ०—करि कक संक आसुरि उर कहर वत्त ता दिन कलिय ।—पृ० रा०, २ । २५५ ।

कलनाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. मधुर ध्वनि । २. हस [को०] ।

कलनाद—वि० मधुर ध्वनिवाला । जिसकी आवाज मीठी हो [को०] ।

कलनादी—वि० [सं० कलनादिन्] कलकल ध्वनि करनेवाला ।

उ०—मीना और गुल को द्दके ब्रते हुए सत्र, उसी कलनादी श्रोत्र मे कूद पडे ।—आकाश, दी० पृ० २७ ।

कलप—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कल्पना] व्याकुलता । छटपटाहट ।

उ०—तन बिहवल दुख तलफ, कलप उपजे निज काया ।—

रा० रा०, पृ० ३३७ ।

कलप—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कल्प = रचना] १. कलप । उ०—छटमल दाग नाम का कलप लगाव ।—पलटू०, भा० १, पृ० ४ ।

२. धिजाव ।

कलप—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कल्प] दे० 'कल्प' । उ०—कोटि कलप लागि तुम प्रति प्रति उपकार करी जो । हे मत्तहरनी तबनी उच्छन न होउं तबो तो ।—नद० ग्र०, पृ० २१ ।

कलपतरु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कल्पतरु] दे० 'कल्पतरु' । उ०—चाह आलवाल और अज्ञाह के कलपतरु, कीरति मयक प्रेमसागर अपार है ।—घनानंद०, पृ० १३१ ।

कलपतरु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कल्पतरु] एक पेड़ जो शिमले और जौनसार की पहाडियों में अधिक होता है ।

विशेष—इसकी लकड़ी सुफेद और मजबूत होती है जो मकानों में लगती है, तथा खेती के सामान बनाने के काम में आती है ।

कल्पद्रुम—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कल्पद्रुम] दे० 'कल्पद्रुम' । उ०—एक कहें कल्पद्रुम है इमि पूरत है सबकी चित चाहै ।—भूपण ग्र०, पृ० ५० ।

कल्पना—वि० [सं० कल्पना = उद्भावना करना (बुझा फी)] १. विलाप करना । विलखना । दुःख की बात सोच सोच या कह कहकर रोना । जैसे,—अब रोने, कल्पने से क्या होगा ।

उ०—नेकु तिहारे निहारे बिना कल्प जिय क्यों पल धीरज लेखों । नीरजननी के नीर भरे कित नीरद से दुग नीरज देखों ।—पद्माकर (शब्द०) । ७ । २. कल्पना करना ।

कल्पना—वि० [सं० कल्पना] दे० 'कल्पना' । उ०—माया मोह भ्रम की मोटरी, यह सब काल कल्पना ।—धरनी०, पृ० २५ ।

कल्पना—वि० [सं० कल्पना] दे० 'कल्पना' । उ०—माया मोह भ्रम की मोटरी, यह सब काल कल्पना ।—धरनी०, पृ० २५ ।

कल्पनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कल्पनी] कटरनी । कैंची ।—(हि०) ।

कल्पवृक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कल्पवृक्ष] दे० 'कल्पवृक्ष' । उ०—कल्पवृक्ष जह सुनिय सकल चितनि फलदायक ।—नंद ग्र०, पृ० ११ ।

कलकान—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कलकानि] दे० 'कलकालि' । उ०—घर की त्रिया विमुख हो बैठी, पुत्र कियो कलकान ।—कवीर श०, भा० १, पृ० ७ ।

कलकानि—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० कलक=रज] दिवकत । डेरानी । दुख । उ०—(क) नारी विनु नहि बोले पूत करै कलकानी । घर मे भावर कावर कोसो सीभत रैन विहानी ।—सूर (शब्द०) । (ख) भूपाल पालन भूमिपति वदनेस नद सुजान है । जानै दिली दल दखिनी कीन्हें महा कलकानि है ।—सूदन (शब्द०) ।

कलकी०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कल्कि] दे० 'कल्कि' । उ०—अग्निक्कूड सों बुध भये जिन मुख निंदा कीन । कलकी अस्ति सो जानिये म्लेच्छ हरन परवीन ।—भारतेन्दु श्र०, भा० २, पृ० २३ ।

कलकीट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ एक कीड़ा । २. संगीत मे एक ग्राम ।

कलकूजिका—वि०, स्त्री० [सं०] १ मधुर ध्वनि करनेवाली । २ कुलटा । पुश्चली [को०] ।

कलकूजिका—वि० स्त्री० [सं०] १ मधुर बोलनेवाली । २ पुश्चली [को०] ।

कलक्खि, लक्खी०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कलक्खि] मुर्गा । उ०—कुजन अलि गुजन लगे किय कलक्खिन सोर । सजनी गत रजनी भई नीरजनी छवि और ।—स० सप्तक, पृ० ३८८ ।

कलक्टर^१—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० कलेक्टर] माल का बड़ा हाकिम जिसके अधिकार में जिले का प्रवध होता है । यह सरकारी मालगुजारी वसूल करता है और माल के मुकदमों का फैसला करता है । यो०—डिप्टी कलक्टर ।

कलक्टर^२—वि० वसूल करनेवाला । जैसे—टिकट कलक्टर, विल कलक्टर ।

कलक्टरी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कलक्टर] १ जिले मे माल के मुकदमों की कचहरी । २ कलक्टर का पद ।

कलक्टरी^२—वि० कलक्टर से संबंध रखनेवाला ।

कलख—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० कलुपे] कलुपता । कालापन । उ०—मानो कुछ भीतर कलख हो रहा है ।—सुनीता, पृ० १८५ ।

कलगट—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] कुल्हाड़ी ।

कलगा—सञ्ज्ञा पुं० [तु० कलगी] मरसे की तरह का एक पौधा । मुर्गकेश । जटाधारी ।

विशेष—यह बरसात मे उगता है और क्वार कातिक में इसके सिरे पर कलगी की तरह गुच्छेदार लाल, लाल-फूल निकलते हैं । फूल चौड़ा चपटा होता है, जिसपर लाल लाल रोएँ होते हैं, जो ऊपर की जाते हैं, अधिक लाल होते हैं । यह देवने में मुर्गके

कलगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] लकी या ताज पर लगाते हैं और जिसमे जिन्हें राजा लोग भी परोए जाते हैं । २. मोती या कमी कमी छोटे-छोटे का एक गहना । ३. चिड़ियों के सिर सोने का बना हुआ चिड़िया या मुर्ग के सिर पर होती है । ४. पर की चोटी, जैसी मोर, तोपी या पगड़ी में लगाया जाता है । इमारत का शिखर । ५. यो०—कलगीवाज ।

कलघोष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कीर्ण [को०] ।

कलचाला०—वि० [सं० कलह+हि० चाल] युद्ध मे छेड़छाड़ करनेवाला । उ०—हरियंद तथा दल हाताली, कर्मों दल आगल कलचाला ।—रा० क०, पृ० १४१ ।

कलचिडी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० काला=सुन्दर+चिड़िया] [पुं० कलचिड़ी] एक चिड़िया जिसका पेट काला, पीठ मटमेली और चोंच लाल होती है । इसकी बोली सुरीली होती है ।

कलची^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कंजा] कंजा नाम की कंटीली भाड़ी ।

कलची^२—वि० दे० 'कजा' ।

कलचुरि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण का एक प्राचीन राजवंश जिसके अधिकार मे कर्णाट, चेदि, दाहल, मंडल मादि देश थे ।

कलचोचा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० काला+चोंच] एक प्रकार का कवूतर जिसका सारा शरीर सफेद और चोंच काली होती है ।

कलछा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर+रखा, हि० करछा] [स्त्री० कलछी] बड़ी डाँडी का चम्मच या बड़ी कुलछी ।

कलछी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कर+रखा] चम्मच के आकार का लंबी डाँडी का एक प्रकार का पात्र जिसका अगला भाग गोल कटोरी के आकार का होता है और जिससे पकते समय चावल, दाल, तरकारी आदि चलाते या परोसते हैं ।

कलछुली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कलछी] दे० 'कलछी' ।

कलछुला—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कलछा] लोहे का लंबा छड़ जिसके सिरे पर एक कटोरा सा लगा रहता है ।

विशेष—इससे भाठ में से गरम दाल निकालकर भट्ट में चढ़ाया जाता है ।

कलछुली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कलछुल] दे० 'कलछी' ।

कलजिम्मा—वि० [हि० काला+जिम्मा या जीम] [स्त्री० कलजिम्मी] १ जिसकी जीम काली हो । २. जिसके मुँह से निकली हुई अशुभ बातें प्रायः ठीक पड़ें ।

कलजिमी—वि० स्त्री० [हि० काला+जीम+जिन्+ई(प्रत्य०)] दे० 'कलजिम्मा' । उ०—मन्वासी महरी ने सुन लिया तो आहिस्ते से मुँह पर एक चप्पड़ दिया क्यों की कलजिमी ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ४२७ ।

कलजीहा^१—वि० [हि० काला+प्रा० जीह] दे० 'कलजिम्मा' ।

कलजीहा^२—सञ्ज्ञा पुं० काली जीम का हाँवो जो दूषित समझा जाता है ।

कलजुग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कलियुग] दे० 'कलियुग' । उ०—दिवस न भूख रैन नहीं सुख है जैसे कलजुग जाम ।—कवीर श्र०, भा० १, पृ० ७४ ।

कलजोवा—वि० [हि० काला+माँई] काले मुँह का । साँवला । जैसे—इस कलजोवे मुँह पर यह लसदार टोपी ।

कलट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मकान की छाजन [को०] ।

कलटोरा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० काल=काला+हि० डोर=चोख] कवूतर जिसका सारा शरीर सफेद हो, पर चोंच काली हो ।

कलट्टर०—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० कलेक्टर] दे० 'कलक्टर' ।

जैसे,—तुमने तो ऐसी कल ऐंठ दी है कि अब वह किसी की सुनता ही नहीं। कल का पुतला = दूसरे के कहने पर चलने वाला। दूसरे के अधीन कामकरनेवाला। कल बेकल होना = (१) पुरजा ढीला होना। जोड़ मादि का सरकना। (२) प्रव्यवस्थित होना। क्रम बिगड़ना। किसी की कल हाथ में होना = किसी की मति गति पर अधिकार होना। किसी का ऐसा वश में होना कि जिधर चलावे, उधर वह चले।

४. बटुक का घोड़ा या चाप।

यो०—कलवार बटुक = तोड़ेदार बटुक।

कल^१—संज्ञा पु० [सं० कलइ] युद्ध। संग्राम। उ०—भुज दुहुवाँ बल, बीस भुज कल दस माया काट।—वाकी० प्र०, भा० १, पृ० ६०।

कल^२—वि० [हि० काला शब्द का सन्निपत या समासगत रूप] काला। जैसे,—कलमुहाँ। कलसिरा। कलजिबमा। कलपोटिया। कलदुमा।

कलइया^१—संज्ञा स्त्री [हि० कलैया] दे० 'कलैया'।

कलइया^२—संज्ञा स्त्री [हि० कलाई] दे० 'कलाई'।

कलई—संज्ञा स्त्री [अ० कलई] १. रंग।

यो०—कलई का कुश्ता = रंग का भस्म। वंग। कलई का चूना = सफेदी के काम में प्रानेवाला पत्थर का चूना।

२. रंग का पतला लेप जो वस्त्रत इत्यादि पर छाद्य पदार्थों को कसाव से बचाने के लिये लगाते हैं। मुल्म्मा। उ०—कलई के काम सब मिटि जावै।—हरिया० वानी, पृ० ३०।

यो०—कलईगर।

कि० प्र०—उड़ना।—उतरना।—करना।—होना।

१. वह लेप जो रंग चढ़ाने या चमकाने के लिये किसी वस्तु पर लगाया जाता है। जैसे,—(क) दीवार पर चूने की कलई करना। (ख) दर्पण के पीछे की कलई। ४. बाहरी चमक दमक। दिखाव। भावरण। तड़क भड़क। ऊपरी बनावट। उ०—साहित सत्य गुरीति गई घटि बड़ी कुरीति कपट कलई है।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—कलई खुलना = प्रसन्नचित्त जाहिर होना। प्रसली भेद खुलना। वास्तविक रूप का प्रगट होना। उ०—माई उधरि प्रीति कलई सी जंसी छाटी मामी,—सूर (शब्द०)। कलई न खगना = युक्ति न चलना। जैसे,—यहाँ तुम्हारी कलई न लगेगी।

२. चूना। कली।

कि० प्र०—करना।—पोतना।

कलईगर—संज्ञा पु० [प्र० कलई + का० गर] कलई करनेवाला।

कलईदार—वि० [प्र० कलई + का० दार] जिस पर कलई की हो। जिसपर रंग का लेप चढ़ा हो। जैसे,—कलईदार वस्त्रत।

कलक^१—वि० [सं० कल्लिपुग] दे० 'कल्लिपुगी'। उ०—कहे कबीर पुकारि के ये कलक बेहवार।—कबीर सा०, पृ० ७१।

कलक^२—संज्ञा पु० दे० 'कल्लिपुग'। उ०—तीनों युग जब जाव कोराहै। तेहि राखे कलक बलि माई।—२० सागर, पृ० १३।

कलकठ^१—संज्ञा पु० [सं० कलकठ] [क्षी० कलकठो] १. कोकिल। कोयल। उ०—फाक कहहि कलकठ कठोरा।—तुलसी (शब्द०)। २. पारावत। परेवा। कबूतर। पिटुक। ३. हंस। ४. सुंदर कंठ। सोमायुक्त कंठ। उ०—कनकंठ वनी जलजावलि द्वै।—धनानंद, पृ० ५२५।

कलकंठ^२—वि० मोठी ध्वनि करनेवाला। सुंदर बोलनेवाला।

कलकंठिनि—संज्ञा स्त्री [सं० कलकठो] कोयल। उ०—कनकंठिनि। निज कलरव में भर, अपने कवि के गीत मनोहर, फँना घाघो वन वन घर घर।—वीणा, पृ० ५२।

कलकठी—संज्ञा स्त्री [सं० कलकठो] कोयल।

कलक^३—संज्ञा पु० [अ० कलक] १. बेकरी। बेचैनी। पवराहट।

कि० प्र०—गुजरना।—होना।—रहना।—निटना।

२. रज। दुःख। खेद। सोच। चिंता। उ०—पर एक कलक होत बड़ ताता। कुसमय मये राम बिनु त्राता।—(शब्द०)।

कलक^४—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार की मछली। २. एक प्रकार का गद्य [क्षी०]।

कलक^५—संज्ञा पु० [सं० कलक] दे० 'कलक'।

कलकतिया—वि० [हि० कलकत्ता + इया (प्रत्यय)] कलकत्तेवाला। कलकत्ते से संबंधित। उ०—कमल। कलकतिये समाचारपत्र भी होली मनाने लगे।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २५१।

कलकत्ता—संज्ञा पु० [अं० कलकटा] भारत का एक प्रमुख शहर जो बंगाल की राजधानी है।

कलकना^१—कि० प्र० [हि० कलकल = शब्द] चिल्लाना। शोर करना। चीत्कार करना। चिंगाड़ मारना। उ०—प्रगति उतग जंग जेतवार जोर जिन्हें चिक्करत दिक्करि हिलति कलकत है।—मति० प्र०, पृ० ३८७।

कलकज^१—संज्ञा पु० [सं०] १. भरने यादि के जल के गिरने का शब्द। उ०—कलकल छलछल सरिता का जन बहुता छिन छिन।—मधुज्वाल, पृ० ४१। २. कोलाहल। हल्ला। शोर। ३. शिव [क्षी०]।

कलकल^२—संज्ञा स्त्री झगडा। वाद विवाद। दाँता किटकिट।

कलकल^३—संज्ञा पु० [सं०] साल वृक्ष की मोद। राल।

कलकल^४—संज्ञा स्त्री [हि० कल्लाना] चुन्नी। मुरमुरी। चुन-चुनाहट।

कलकलती^१—वि० [हि० कलकलाना प्रपञ्च कल्लुपुत्तो] पर्यंत तेज। उ०—कलकलती किरणें, बाँका भटकें लोभ वन।—बाँकी प्र०, भा० ३, पृ० ५४।

कलकलाना^१—कि० प्र० [प्रनु०] कलकल को मायाज होना।

कलकलाना^२—कि० प्र० [देश० प्रपञ्च हि० कल्लुपुत्ताना] १. तरीद में गरमी या चुनचुनाहट की प्रवृत्ति होना। २. झुलझुलाना। उ०—कूर्म कलकलाइ गड।—धर्म०, पृ० ३१। ३. किसी घोर प्रवृत्ति होना। जैसे,—नार धाने से लिये पीठ का

इस देश में ये लोग प्रायः मुसलमान होते हैं। उ०—आसा की डोरी गरी बांधि देत दुख छोम। चित पितु को बदर कियो अहो कलंदर लोम।—दीन० प्र०, पृ० २५३। ३. दे० 'कलंदरा'।

कलंदर^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कलन्वर] १ एक वर्षासकर जाति का नाम। २ उस जाति का व्यक्ति [को०]।

कलंदरा^१—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] १ एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो सूत, रेशम और टसर से बुना जाता है। गुद्द। २ खेने का अकुंडा जिसपर कपड़ा या रेशम लिपटा रहता है। इसमें लोग कपड़े या और और वस्तु लटका देते हैं। उ०—तबू, पाल, कनात, साएवान, सिरायचे। रावटि हू बहू भाति, पुनि कुदरा कलदरा।—सूदन (शब्द०)।

कलंदरा^२—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कलेंडर] १. वह जंत्री या पत्रा जिसका साल पहली जनवरी से प्रारंभ होता है। २. जुर्म या जुर्मों की वह सूची या दायत जो मजिस्ट्रेट को ऐसे मुकद्दमों में तैयार करनी पड़ती है जिन्हें वह दौरा सुपुर्द करता है।

कलदरी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कलदरा + ई (प्रत्य०)] १ वह छोलदारी जिसमें कलदर लगे हों। २ एक प्रकार का रेशमी कपड़ा।

कलदरी^२—वि० कलंदर से संबंधित। कलंदरी का।

कलदरी^३—सञ्ज्ञा स्त्री० कलदर का पेशा या धंधा।

कलदिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कलन्विका] ज्ञान। बुद्धि [को०]।

कलघर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कलन्वर] चंद्रमा।

कलब—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कलम्ब] १. शर। बाण। २. शाक का डठल। ३. कदब।

कलंबक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कलम्बक] एक प्रकार का कदब [को०]।

कलंबिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कलम्बिका] १ गले के पीछे की नाड़ी। मन्या। २ एक साग [को०]।

कलंबियन—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] प्रेस या छापे की कल का एक भेद।

विशेष—इसमें दो लगर होते हैं। एक चिड़िया के आकार का ऊपर रहता है, दूसरा पीछे की ओर। इन्हीं लगरों से इसकी दाव उठती है। कमानी नहीं होती। इसका चलन भव कम है। इसे चिड़िया प्रेस भी कहते हैं।

कलंगडा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कलङ्ग] कलीदा। तरबूज।

कलंगा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कलंगो] १ लोहे की एक छेनी जिससे ठोरे थाली में नक्काशी करते हैं। २ छीपियो का एक ठप्पा जिसमें पन फूल होते हैं। ३ दे० 'कलगा'।

कलंगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० कलगी] ३० 'कलगी'। उ०—कलंगी सडक सेत गज गाहें। मालनि जटित मजु मुकता है।—हम्मीर०, पृ० ३।

कल^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अव्यक्त मधुर ध्वनि। जैसे—कोयल की कूक, भौरी की गुजार।

यो०—कलकठ।

२. वीर्य। ३. साल का पेड़। ४. गिरों का एक वर्ग [को०]। ५. शकर। शिव [को०]। ६. तार मात्राओं का काल [को०]। ७. मात्रा [को०]।

कल^२—वि० १ मनोहर। सुंदर। उ०—सोमेश सूर प्रविराज कल तिम समुह चर वर कही।—पृ० रा०, ८। २. कोमल। ३. मधुर। ४. कमजोर। दुर्बल [को०]। ५. कच्चा। अपक्व [को०]। ६. मधुर स्वर करनेवाला [को०]। ७. मस्पष्ट और मधुर। मद मधुर [ध्वनि] [को०]।

कल^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कल्य, प्रा० कल्ल] २ नरोग्य। आरोग्य। सेहत तदुपस्थिती। २ आराम। चैन। सुख। उ०—कल नहि लेत पहरा, कवन विधि जाइव हो।—घरम०, पृ० ६४।

क्रि० प्र०—आना।—पड़ना।—पाना।—होना।

मुहा०—कल से = चैन से। उ०—सुबं तहाँ बिन दस कल काटी। आयउ व्याघ्र दूका लै टाटी।—जायसी (शब्द०)। कल से = आराम से। धीरे धीरे। आहिस्ता आहिस्ता।

३ सतोष। तुष्टि।

क्रि० प्र०—आना।—पड़ना।—पाना।—होना।

कल^४—क्रि० वि० [सं० कल्य = प्रत्युष, प्रभात] १. दूसरे दिन का सवेरा। आनेवाला दिन। जैसे,—में कल आज्ञा।

मुहा०—कल कल करना या आज कल करना = किसी बात के लिये सदा दूसरे दिन का वादा करना। टाल मट्ट करना। हीला हवाला करना।

२ भविष्य में। पर काल में। किसी दूसरे समय। जैसे,—जो आज देगा, सो कल पावेगा। ३ गया दिन। बीता हुआ दिन। जैसे,—वह कल घर गया था।

मुहा०—कल का = थोड़े दिन का। हाल का। जैसे,—कल का लड़का हमसे बातें करने आया है। कल की बात = थोड़े दिनों की बात। ऐसी घटना जिसे हुए बहुत दिन न हुए हो। हाल का मामला। कल की रात = वह रात जो आज से पहले बीत गई। कल की घर पर है = आगे की बात आगे देखी जाएगी। कल की = भविष्य में।

कल^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कला = अंग, भाग] १ ओर। बल। पहलू। जैसे,—(क) देखें ऊँट किस कन बैठता है (ख) कभी वे इस कल बैठते हैं, कभी उस कल। २. अंग। अवयव। पुरजा।

कल^६—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कला = विद्या] १ युक्ति। ढग। उ०—मुझ में तीनों कल बल छल। किसी की कुछ नहिं सकती चल।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। २ कई पेंचों और पुरजों के जोड़ से बनी हुई वस्तु जिससे कोई काम लिया जाय। यंत्र। जैसे—छापे की कल। कपड़ा बुनने की कल। सीने की कल। पानी की कल।

यो०—कलवार = यंत्र से बना हुआ चक्का। रुपया। पानी की कल = वह नल जिसकी मूँठ एँठने या दबाने से पानी आता है।

क्रि० प्र०—खोलना।—चलना।—चलाना।—लगाना।

३ पेंच पुरजा।

क्रि० प्र०—उभेठना।—एँठना।—घुमाना।—फेरना।—मोड़ना।

मुहा०—कल एँठना = किसी के चित्त को किसी ओर फेरना।

कप—संज्ञा पुं० [सं० कप] तब। जोश। बढ़ावा। दे० 'करप'।
 कपक—संज्ञा पुं० [सं०] १. खींचनेवाला। २. हल जोतनेवाला।
 किसान। खेतिहर। उ०—हम राज्य लिए मरते हैं। सच्चा
 राज्य परतु हमारे कपक ही करते हैं।—साकेत, पृ० २८५।
 कपक—वि० खींचनेवाला [को०]।
 कपण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० कपित, कपों, कपंक, कपणीय, कप्य]
 १. खींचना। २. खरोचकर लकीर डालना। ३. जोतना।
 ४. कृषि कर्म। खेती का काम। ५. आकर्षण। बिचाव।
 उ०—किंतु तो भी कपण चलवत है जब तक मिले हैं वे
 आपस में।—अपरा, पृ० ६८।
 कपणविकपण—संज्ञा पुं० [सं०] १. खींचवान। २. आसक्ति और
 अनासक्ति। उ०—कपण विकपण भाव जारी रहेगा यदि इसी
 तरह आपस में।—अपरा, पृ० ६७।
 कपण—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यभिचारिणी स्त्री। कुलटा [को०]।
 कपना—क्रि० सं० [कप + हि० ना (प्रत्यय)] खींचना।
 उ०—कोउ आजु राज समाज मे बल शम्भु को धनु कपिहे।
 —केशव (शब्द०)।
 कपफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. वहेड़ा। विभीतक। २. आंवला।
 कपफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] आमलकी [को०]।
 कपिणी—संज्ञा वि० [सं०] १. खिरनी का पेड़। क्षीरिणी वृक्ष। २.
 घोड़े की लगाम।
 कपित—वि० [सं०] १. खींचा हुआ। आकृष्ट किया हुआ। उ०—बार
 बार देखती चगल चित स्पर्श चकित कपित हो हर्षित।—
 गोविता, पृ० १५। २. सताया हुआ। पीड़ित [को०]। ३.
 क्षीण किया हुआ [को०]। ४. जोता हुआ [को०]।
 कपिताभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जिसको शत्रु ने पूर्ण रूप
 से निचोड़ लिया हो।
 कपि—वि० [सं० कपित] आकर्षक। खींचनेवाला [को०]।
 कपी—संज्ञा पुं० किसान। हल चलातेवाला [को०]।
 कपू—संज्ञा पुं० [सं०] १. कंडे की आग। २. खेती। ३. जीविका।
 कपू—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटा ताल। २. नदी। नहर। ४.
 छोटा कुंड जिसमें यज्ञ की अग्नि रखी जाती है। ५. कुंड।
 जुताई [को०]।
 कहि—क्रि० वि० [सं०] कब? किस समय?
 कहिचित्—क्रि० वि० [सं०] १. कभी। किसी समय। २. कदाचित्।
 कलक—संज्ञा पुं० [सं० कलङ्क] [वि० कलकित, कलंकी] १. दाग।
 धब्बा। २. चंद्रमा पर काला दाग।
 यो०—कलकाक।
 ३. लाठन। बदनामी। ४. ऐव। दोष।
 क्रि० प्र०—छटना।—देना।—लगना।—लगाना।
 मुहा०—कलक चढ़ाना=कलक या दोष लगाना। कलक का
 टीका लगाना=दोष या धब्बा लगाना। लाठन लगाना।
 अपयश होना। उ०—बूढ़ा आदमी हूँ, इस बुढ़ीती मे कलक
 १२३६।

का टीका लगे तो कही का न रहे। फिसाना०, भा० ३,
 पृ० ११६।
 ५. वह वजली जो पारा सिद्ध हो जाने पर बँठ जाती है। उ०—
 करत न समुक्त भूठ गुन सुनत होत मतिरक। पारद प्रगट
 प्रपच मय सिद्धि नै नाउ कलंक।—तुलसी (शब्द०)। ६. पारे
 और गंधक की कजली। उ०—जो लहि घरी कलंक न परा।
 कांच होहि नहि कंचन करा।—जायसी (शब्द०)। ७. लोहे
 का मुरचा।
 कलंक—क्रि० सं० [सं० कलिक, कलंकी] दे० 'कलिक'।
 यो०—कलंक सख्य=कलिक रूप या अवतार। उ०—कलि
 कलिमल, सौ हरन हरि कियो कलक सख्य।—पृ० २०, २।
 ५७१।
 कलकप—संज्ञा पुं० [सं० कलङ्क] १. सिंह। शेर। २. एक प्रकार का,
 बाजा [को०]।
 कलंकपी—संज्ञा स्त्री० [सं० कलङ्कपी] सिंहनी [को०]।
 कलकांक—संज्ञा पुं० [सं० कलङ्काङ्क] चंद्रमा का काला दाग।
 कलकित—वि० [सं० कलङ्कित] १. जिसे कलंक लगा हो। लाठित।
 दोषयुक्त। २. जिसमें मुरचा लगा हो।
 कलंकी—वि० [सं० कलङ्किन्] [स्त्री० कलकिनी] जिसे कलक
 लगा हो। दोषी। अपराधी। उ०—वे करता नहि भए कलकी,
 नहीं कलिगै मारा।—घट०, पृ० २६४।
 कलकी—संज्ञा पुं० चंद्रमा। उ०—मैलो मृग धारे जगत नाम कलकी
 जाग। तऊ कियो न मयक तुम सरनागत को त्याग।—
 दीन० प्र०, पृ० १६८।
 कलंकी—क्रि० सं० [सं० कलिक] दे० 'कलिक'।
 यो०—कलकी सख्य=कलिक अवतार। उ०—कलकी सख्य
 धरंत अनूप।—पृ० २०, २। ५८४।
 कलकुर—संज्ञा पुं० [सं० कलङ्कुर] पानी का भँवर।
 कलकूट—संज्ञा पुं० [सं० कालकूट] दे० 'कालकूट'। उ०—तुटै दत
 जारी। करै गै विहारी। परे भूमि थान। कलंकूट जान।—
 पृ० २०, १। ६४३।
 कलंगी—संज्ञा स्त्री० [हि० कलगी] दे० 'कलगी'। उ०—वहै लाल
 लोहू लसै वारिधारा। मनी कील फूले कलंगी अपारा।
 —हम्मीर०, पृ० ५६।
 कलंगी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० पहाड़ों में होनेवाली जंगली भांग का
 वह पौधा जिसमें बीज लगते हैं। फुलगों का उलटा।
 कलज—संज्ञा पुं० [मं०] १. तवाकू का पौधा। २. मृग। ३. पक्षी।
 ४. पक्षी का मांस। ५. १० पल की तोल। ६. विप्लव अस्त्र से
 मारा हुआ मृग या पक्षी [को०]।
 कलंडर—संज्ञा पुं० [अ० कलंडर] वह अंगरेजी यंत्री या तियिपत्र
 जिसका प्रारंभ पहली जनवरी से होता है।
 कलंदक—संज्ञा पुं० [अ० कलन्दक] एक ऋषि का नाम।
 कलंदर—संज्ञा पुं० [अ० कलंदर] १. एक प्रकार का मुसलमान साधु,
 जो ससार से विरक्त होता है। २. रीठ और बदर नचानेवाला।

के प्रधान रूप को प्रकाश में लाने के लिये उत्सुक थे ।—आचार्य०
पृ० १६२ ।

कर्मस्थान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ काम करने की जगह । २ फलित
ज्योतिष में लग्न से दसवाँ स्थान जिसके अनुसार मनुष्य के
पिता पद, राजसम्मान आदि के सबध में विचार होता है । ३.
वह स्थान जहाँ कारीगर काम करते हो । कारखाना [को०] ।
कर्महीन—वि० [सं०] १ जिससे शुभ कर्म न बन पड़े । अकर्मनिष्ठ । २
अभागा । भाग्यहीन ।

कर्महीनी०—वि० स्त्री० [सं० कर्महीन + ई] भाग्यहीन । अभागी ।
उ०—मदमति हम कर्महीनी दोष काहि लगाइए । प्राणपति
सो नेह बाँध्यो कर्म लिख्यो सो पाइए ।—सूर (शब्द०) ।

कर्मात्—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्मन्ति] १. काम का अत । काम की
समाप्ति । २ जोती हुई धरती । ३ अन्नभांडार (को०) । ४
कार्यालय । कारखाना (को०) ।

कर्मातिक—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कर्मान्तिक] कर्मचारी । मजदूर [को०] ।
कर्मा—० वि० [हि० कर्म + प्रा० (प्रत्य०)] दे० कर्मपरायण उ०—
कर्मा धर्मा स्नावग जैनी । ये उत्तरे भोजल की सैनी—घट०, पृ०,
२६३ ।

कर्माकारी०—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कर्मा + कारी] कर्म करनेवाला ।
कर्मकांडी । उ०—गुन हो पड़ित कर्माकारी । ज्ञान पदार्थ तत्तु
वोचारी ।—प्राण०, पृ० २६४ ।

कर्माजीव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] किसी पेशे में जीवननिर्वाह करनेवाला
व्यक्ति [को०] ।

कर्मादान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह व्यापार जिसका श्रावको के लिये
निषेध है ।

विशेष—ये १५ हैं—१ इगना कर्म । २ वन कर्म । ३. साकट
कर्म या साडी कर्म । ४. भाडी कर्म । ५ स्फोटिक कर्म—कोडी
कर्म । ६ दत्तकुवाणिज्य । ७. लाक्षा-कुवाणिज्य । ८. रस-
कुवाणिज्य । ९ केशकुवाणिज्य । १०. विपकुवाणिज्य ।
११ यत्रपीडन । १२. निलाछन । १३ दावाग्नि-दान-कर्म ।
१४ शोषण कर्म । १५ असतीषोषण ।

कर्मापरोध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चिकित्सा में असावधानी । बीमार का
इलाज ठीक ढंग पर न करना ।

कर्मारि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कारीगर (मुनार, लोहार इत्यादि) ।
२ कर्मकार । लोहार । ३. कमरख । ४ एक प्रकार का
वाँस ।

कर्माश्रयाभूति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] काम के अच्छे या बुरे अथवा कम
या अधिक होने के अनुसार मजदूरी । कार्य के अनुसार वेतन ।
कर्मिष्ठ—वि० [सं०] १ कर्म करनेवाला । काम में चतुर । २. विधि-
पूर्वक शास्त्रविहित संध्या, अग्निहोत्र आदि कर्म करनेवाला ।
क्रियावान् ।

कर्मी—वि० [सं० कर्मिन्] [स्त्री० कर्मिणी] १ कर्म करनेवाला ।
२ फल की आकांक्षा से यत्नादि कर्म करनेवाला ।

कर्मीर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ नारंगी रंग । किमीर । २ चितकवरा रंग ।

कर्मेन्द्रिय—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कर्मेन्द्रिय] काम करनेवाली इन्द्रिय । वह
इन्द्रिय जिसे हिला डुलाकर कोई किया उत्पन्न की जाती है ।
विशेष—कर्मेन्द्रियाँ पाँच हैं—हाथ, पैर, बाणी, गुदा और उपस्थ ।
साध्य में ग्यारह इन्द्रियाँ मानी गई हैं । पाँच ज्ञानेन्द्रिय पाँच
कर्मेन्द्रिय और एक उभयात्मक मन ।

कर्मापघातो—वि० [सं० कर्मापघातिन्] काम बिगाड़नेवाला (को०) ।
कर्मी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कराल] [स्त्री० करी] जुलाहों का सूत फँलाकर
तानने का काम ।

क्रि० प्र०—करना ।

कर्मी—वि० [हि० कड़ा या करड़ा या कररा] १ कड़ा । सन्न । २
कठिन । मुश्किल । जैसे,—कर्मी काम, कर्मी मेहनत ।

कर्मीना०—क्रि० अ० [हि० कर्मी] कड़ा होना । कठोर होना ।
सख्त होना ।

कर्मी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो देहरादून और
अवध के जंगलों तथा दक्षिण में पाया जाता है ।

विशेष—इसके पत्ते बहुत बड़े होते हैं और मार्च में भड़ जाते
हैं । पत्ते चारे के काम में आते हैं । इन वृक्ष में फल भी लगते
हैं जो जून में पकते हैं ।

कर्मी—वि० [हि० कर्मी का स्त्री०] कड़ी । कठोर ।

कर्मीफर—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कर्म उ-फर] गर्व । वैभव । उ०—गर न
होता पास मेरे यह कंकर । काँसू होता मुज को इतना कर्मीफर ।
—दक्खिनी०, पृ० १८४ ।

कर्वट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दो सी गाँवों के बीच का कोई सुंदर स्थान
जहाँ आसपास के लोग इकट्ठे होकर लेनदेन और व्यापार
करते हो । मंडी । २. नगर । ३ वह गाँव जो काँटेदार झाड़ियों
से घिरा हो ।

कर्वर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ पाप । २ चीता । ३ राक्षस [को०] ।

कर्वर—वि० चितकवरा [को०] ।

कर्वरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ दुर्गा । २ रात्रि । ३ राक्षसी । ४ मादा
चीता । व्याघ्री [को०] ।

कर्शन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अग्नि । आग [को०] ।

कर्शन—वि० १ दुर्बल करनेवाला । क्षीण करनेवाला । २ कष्ट
देनेवाला । कष्ट दायक [को०] ।

कर्शित—वि० [सं०] क्षीण । दुर्बल । कमजोर [को०] ।

कर्श्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कचूर । नरकचूर । जरबाद ।

कर्प—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. सो गह माशे का एक मान ।

विशेष—प्राचीन काल में माशा पाँच रत्ती का होता था । इसमें
आजकल के अनुसार कर्प दस ही माशे का ठहरेगा । बंदक
में कहीं कहीं कर्प दो तोले का भी माना गया है ।

२ खिंचाव । घसीटना । ३ जोताई । ४ (लकीर आदि)
खींचना । खरोचना । ५ बहेड़ा । ६ प्राचीन काल का एक
प्रकार का सिक्का ।

विशेष—यह सिक्का आजकल के हिसाब से लगभग ४॥
मूल्य का होता था । यह चाँदी के १६ कार्षाण के बराबर
था । इसे 'हूण' भी कहते थे ।

कर्मवध, कर्मवधन

कर्मवध, कर्मवधन—सज्ञा पुं० [सं० कर्मवन्ध, कर्मवन्धन] अच्छे कुरे कर्मों के अनुसार जन्म और मृत्यु का वधन या चक्र ।

कर्मभू—सज्ञा स्त्री० [सं०] आर्षवर्त देश । भारतवर्ष । दे० 'कर्मभू' ।

कर्मभूमि—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कर्मभू' ।

कर्मभोग—सज्ञा पुं० [सं०] १ कर्मफल । करनी का फल । २ पूर्व-जन्म के कर्मों का परिणाम ।

कर्ममार्ग—सज्ञा पुं० [सं०] विहित कर्मों द्वारा मोक्षप्राप्ति का मार्ग [को०] ।

कर्ममास—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का महीना जो ३० सावन दिनों का होता है । सावन मास [को०] ।

कर्ममूत्र—सज्ञा पुं० [सं०] कुश । कुशा [को०] ।

कर्मयुग—सज्ञा पुं० [सं०] कर्मयुग ।

कर्मयोग—सज्ञा पुं० [सं०] १ वित्त शुद्ध करनेवाला शास्त्रविहित कर्म । उ०—कर्म योग पुनि ज्ञान उपासन सबही भ्रम नरमायो । श्री बल्लभ गुप्त तत्त्व सुनायो लीला भेद बतायो ।—सूर (शब्द०) । २ उस शुभ और कर्तव्य कर्म का साधन जो सिद्धि और असिद्धि में नमान भाव रखकर निःलिप्त हृत् से किया जाय । इसका उपदेश श्रीकृष्ण ने गीता में विस्तार के साथ किया है ।

कर्मयोगी—सज्ञा पुं० [सं० कर्मयोगिन्] कर्ममार्ग का अनुयायी । दृढ़तापूर्वक कार्य करनेवाला व्यक्ति ।

कर्मरग—सज्ञा पुं० [सं० कर्मरङ्ग] १ कर्मरथ का वृक्ष । २ कर्मरथ का फल ।

कर्मरत—वि० [सं०] काम में लगा हुआ । काम में लीन । उ०—श्याम तन, भर बँधा यौवन, नत नयन, प्रिय कर्मरत मन ।—अनामिका, पृ० ७२ ।

कर्मरेख—सज्ञा स्त्री० [सं० कर्मरेखा] कर्म की रेखा । भाग्य की लिखन । तकदीर । उ०—कर्मरेख नहि मिटै करै कोई लाखन चतुराई (शब्द०) ।

कर्मरेखा—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कर्मरेख' ।

कर्मलीन—वि० वि० [सं०] कर्म में डूबी हुई । कर्ममग्न कर्मयुक्त । उ०—द्वाराएँ ज्योति सूरभि उर भर, वह चली चतुर्दिक् कर्मलीन ।—प्रपरा, पृ० ३६ ।

कर्मवत①—वि० [सं० कर्मवत] कर्मशील । कर्मठ । काम करनेवाला । उ०—जब कर्मवत पवित्र मनुष्य श्चतु योनि ने इस और भूत आत्मग्न को धारण किया ।—कवीर० म०, पृ० ३६७ ।

कर्मवध—सज्ञा पुं० [सं०] चिकित्सा में असावधानी जिससे रोगी को हानि पहुँच जाय [को०] ।

कर्मवध वेगुण्यकरण—सज्ञा पुं० [सं०] चिकित्सा में असावधानी के कारण बीमारी का बढ जाना [को०] ।

कर्मवाच्य क्रिया—सज्ञा स्त्री० [सं०] वह क्रिया जिससे कर्म मुख्य होकर कर्ता के रूप से घाया हो और जिसका लिंग, वचन उनी कर्म के अनुसार हो । जैसे,—पुस्तक पढ़ी जाती है ।

कर्मवाद—सज्ञा पुं० [सं०] १ मीमांसा, जिसमें कर्म प्रधान माना गया है । २. कर्मयोग । उ०—कर्मवाद व्यापन को प्रगटे पृथिव्यर्ध ।

प्रवतार । सुधापान दीन्हो सुरगण को भयो जग जस विस्तार ।—सूर (शब्द०) ।

कर्मवाद—सज्ञा पुं० [सं० कर्मवाद] कर्मकांड या कर्म को प्रधान माननेवाला । मीमांसक ।

कर्मवान्—वि० [सं०] वेदविहित नित्य कर्म को विधिपूर्वक करनेवाला । कर्म करनेवाला । क्रियावान् ।

कर्मविपाक—सज्ञा पुं० [सं०] पूर्वजन्म के किए हुए शुभ और अशुभ कर्मों का भला और बुरा फल । उ०—राम विरह दशरथ दुखिन कहति कैकई काकु । कुममय जाय उपाय सब केवल कर्मविपाकु ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—पुराण के मत से प्राणी अपने कर्मों के अनुसार भला या बुरा जन्म धारण करता है, और पृथ्वी पर घन, ऐश्वर्य इत्यादि का सुख या रोग इत्यादि का कष्ट भोगता है । किन्तु पापों ने कौन कौन इतने भोगने पड़ते हैं, इनका विवरण गरुड पुराण आदि ग्रंथों में है ।

कर्मवीर—वि० [सं०] प्रशंसनीय ढंग से कार्य करनेवाला । दृढ़तापूर्वक कार्य करनेवाला । विघ्न बाधाओं में अविवल भाव से कार्य करनेवाला । पुरुषार्थी ।

कर्मशाला—सज्ञा स्त्री० [सं०] जहाँ कार्य किया जाता है । कारखाना आदि । उ०—अपने इन विहारों के दौरान में कर्मशाला, नाना, कूग, विपणि निर्माणशाला... हिंदु सभ्यता, पृ० २२५ ।

कर्मशील—सज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो फल की प्रतिष्ठापा छोड़कर स्वभावतः काम करे । कर्मवान् । २. यत्नवान् । उद्योगी ।

कर्मशूर—सज्ञा पुं० [सं०] वह जो साहम और दृढ़ता के साथ कर्म करने में प्रवृत्त हो । उद्योगी । कर्मवीर ।

कर्मशौच—सज्ञा पुं० [सं०] विनय । नम्रता [को०] ।

कर्मसग—सज्ञा पुं० [सं० कर्मसङ्ग] सात्त्विक कार्यों और उनके फलों के प्रति आसक्ति [को०] ।

कर्मसधि—सज्ञा पुं० [सं० कर्मसन्धि] दुर्ग पनाने के समय में दो राज्यों के बीच सधि [को०] ।

कर्मसन्धास—सज्ञा पुं० [सं० कर्मसन्धास] १. कर्म का त्याग । २. कर्म के फल का त्याग ।

कर्मसन्धासी—सज्ञा पुं० [सं० कर्मसन्धासिन्] कर्मत्यागी । यत्नी ।

कर्मसाक्षी^१—वि० [सं० कर्मसाक्षिन्] जो कर्मों का देखनेवाला हो । जिसने सामने कोई काम हुआ हो ।

कर्मसाक्षी^२—सज्ञा पुं० वे देवता जो प्राणिमों के कर्मों को देखने रहते हैं और उनके साक्षी रहते हैं ।

विशेष—ये नौ हैं—सूर्य, चंद्र, यम, काल, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ।

कर्मसिद्धांत—सज्ञा पुं० [सं० कर्मसिद्धान्त] कर्मवाद । उ०—इस जटिल प्रश्न के उत्तर में उपनिषद् कर्मसिद्धांत का प्रतिपादन करते हैं ।—हिंदु सभ्यता, पृ० १२८ ।

कर्मसौदर्य—सज्ञा पुं० [सं० कर्म + सौदर्य] कर्म में निहित सौंदर्य । कर्म की महानता उ०—वे प्रेम के नित्य जीवनव्यापी कर्मसौदर्य

कर्मगृहीत—वि० [सं०] जो चोरी आदि अनुचित और दंडनीय कार्य करते हुए पकड़ा जाय [को०] ।

कर्मघात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कर्मक्षय । कायस्थगन [को०] ।

कर्मचाडाल सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्मचाण्डाल] नीच कार्य करनेवाला-व्यक्ति । नीच कार्य करने के कारण चाडाल माना जानेवाला व्यक्ति ।

विशेष—वशिष्ठ के अनुसार कर्मचाडाल ये हैं—असूयक, पिशुन, कृतघ्न और दीर्घरोपक (बहुत समय तक रोष माननेवाला) ।

कर्मचारी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्मचारिन्] १. काम करनेवाला । कार्यकर्ता २. वह जिसके अधीन राज्यप्रवध या और किसी कार्यालय से संबंध रखनेवाला कोई कार्य करता हो ।

कर्मचारीसघ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कर्मचारियों का ऐसा सघटन जो उनके हितों की रक्षा के लिये कार्य करता है ।

कर्मचेष्टा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कार्य । कर्म [को०] ।

कर्मचोदना—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कर्म की प्रेरणा करनेवाला हेतु । कर्म की प्रेरणा ।

कर्मज^१—वि० [सं०] कर्म से उत्पन्न । २. जन्मांतर में किए हुए पुण्यपाप से उत्पन्न ।

कर्मज^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कलयुग । २. वट वृक्ष । ३. वह रोग जो जन्मांतर के कर्मों का फल हो । जैसे,—अयी ।

कर्मजित्—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. मगध का जरासधवशी एक राजा । २. उड़ीसा का एक राजा ।

कर्मजीवन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कर्ममय जीवन । वह जीवन जो कर्म से परिपूर्ण या सकुल हो । उ०—मेदकर कर्मजीवन के दुस्तर वनेश सुपम आई ऊपर ।—अनामिका, पृ० ८७ ।

कर्मठ^१—वि० [सं०] १. काम में चतुर । २. धर्मसंबंधी कृत्य करनेवाला । कर्मनिष्ठ ।

कर्मठ^२—सञ्ज्ञा पुं० १. शास्त्रविहित अग्निहोत्र, सध्या आदि नित्य कर्मों को विधिपूर्वक करनेवाला व्यक्ति । २. कर्मकांडी । उ०—कर्मठ कठमलिया कहै, जानी ज्ञानविहीन ।—तुलसी(शब्द०) ।

कर्मणा—क्रि० वि० [सं० कर्मन् का तृतीया एक०] कर्म से । कर्म द्वारा । जैसे,—मनसा, वाचा, कर्मणा मैं तुम्हारी सेवा करूँगा । उ०—जब मनसा होगा तब न कर्मणा होगा? —साकेत, पृ० २१६ ।

कर्मण्य^१—वि० [सं०] काम करनेवाला । कार्य में कुशल । उद्योगी । प्रयत्नशील ।

कर्मण्य^२—सञ्ज्ञा पुं० कर्मण्यता । कार्यनिष्ठा । सक्रियता [को०] ।

कर्मण्यता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कार्यकुशलता । तत्परता ।

कर्मण्या सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] पारिश्रमिक । मजदूरी [को०] ।

कर्मत्—क्रि० वि० [सं०] कर्म से । कर्म द्वारा [को०] ।

कर्मदेव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. ऐतरेय और बृहदारण्यक उपनिषदों के अनुसार देवताओं का एक भेद ।

विशेष—इसमें तैत्तिरीय देवता हैं—अष्टावसु, एकादश रुद्र, द्वादश सूर्य, तथा इन्द्र और प्रजापति इनका राजा इन्द्र और आचार्य बृहस्पति हैं । ये लोग अग्निहोत्र आदि वैदिक कर्म करके देवता हुए थे । २. पुण्य कर्मों से देवपद प्राप्ति ।

कर्मधारय समास—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह समास जिसमें विशेषण और विशेष्य का समान अधिकरण हो, जैसे, कचलहू, नवठ, नवयुवक, नवाकुर चिरायु ।

विशेष—हिंदी में कर्मधारय समास बहुत कम होता है क्योंकि इसमें विशेष्य के साथ विशेषण में भी विभक्ति लगाने का साधारणतः नियम नहीं है ।

कर्मना^१—क्रि० वि० [सं० कर्मणा] दे० 'कर्मणा' ।

कर्मना^२—क्रि० सं० [सं० कर्म + हि० ना (प्रत्यय)] कर्म करना । क्रिया करना । उ०—जुग जुग भूमिया कर्म बहु कर्मिया ।—कबीर रे०, पृ० १८ ।

कर्मनाशा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी जो शाहाबाद जिले के कंमोर पहाड़ से निकलकर चौसा के पास गंगा में मिलती है ।

विशेष—लोगों का विश्वास है कि इसके जल के स्पर्श से पुण्य का क्षय होता है । कोई इसका कारण यह बतलाते हैं कि यह नदी त्रिशकु राजा की लार से उत्पन्न हुई है, कोई कहते हैं कि रावण के मूत्र से निकली है । पर कुछ लोगों का यह मत है कि प्राचीन काल में कर्मनिष्ठ आर्य ब्राह्मण इस नदी को पार करके कीकट (मगध) और वंग देश में भी नहीं जाते थे । इसी से यह अपवित्र मानी गई है ।

कर्मनिष्ठ—वि० [सं०] शास्त्रविहित कर्मों में निष्ठा रखनेवाला । सध्या, अग्निहोत्र आदि कर्तव्य करनेवाला । क्रियवान् ।

कर्मनिष्पत्तिवेतन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. काम की अच्छाई बुराई के अनुसार वेतन । २. वह वेतन जो काम पूरा होने पर दिया जाय [को०] ।

कर्मनिष्पाक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मेहनती मजदूरी से काम को अंत तक पूरा करवाना ।

कर्मनी^१—वि० [सं० कर्मण्य] कर्मवाली । कर्म से सबद्ध उ०—कर्मनी नदी पै भर्मनी ताल है, ताल के बीच में रहत अरना ।—पलटू, भा० २, पृ० ३१ ।

कर्मन्यास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] धर्मकृत्यों के फल का परित्याग [को०] ।

कर्मपंचमी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कर्मपञ्चमी] ललित, वसंत, हिंडोन और देशकार के संयोग से बनी हुई एक रागिनी ।

कर्मपाक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. पूर्वजन्म में किए गए कर्मों का फल । २. कर्मों की पूर्णता [को०] ।

कर्मप्रधान—वि० [सं०] १. जिसमें कर्म की प्रधानता हो । २. वहिर्दृष्टि रखनेवाला [को०] ।

कर्मप्रधान क्रिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] व्याकरण में वह क्रिया जिसमें कम ही मुख्य होकर कर्ता के समान आता है और जिसका लिङ्ग-वचन उसी कर्म के अनुसार होता है । जैसे, वह पुस्तक पढ़ी गई ।

कर्मप्रधान वाक्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह वाक्य जिसमें कर्म मुख्य रूप से कर्ता की तरह आया हो । जैसे,—पुस्तक पढ़ी जाती है ।

कर्मफल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पूर्वजन्म में किए हुए कर्मों का फल, दुःख सुख आदि [को०] ।

यौ०—कर्मकार । कर्मक्षेत्र । कर्मचारी । कर्मफल । कर्मभोग । कर्मकेंद्र । कर्मत्रिप ।

२. व्याकरण में वह शब्द जिसके वाच्य पर कर्ता की क्रिया का प्रभाव पड़े । कर्ता की क्रिया या व्यापार द्वारा साध्य जो यन्त्रो-
पिततम कार्य हो जैसे, राम ने रावण को मारा । यहाँ राम के मारने का प्रभाव रावण में पाया गया, इससे वह कर्म हुआ । यह द्वितीय कारक माना जाता है जिसका विभक्तिविहिन 'को' है । कभी कभी अधिकरण अर्थ में भी द्वितीया रूप का प्रयोग होता है । जैसे,—वह घर को गया था । पर ऐसा प्रयोग अकर्मक क्रियाओं में विशेषकर आना, जाना, फिरना, लौटना, फेंकना, आदि गत्यर्थक क्रियाओं के ही साथ होता है, जिनका सर्वध देश स्थान और काल से होता है । सप्रदान कारक में भी कर्मकारक का चिह्न 'को' लगाया जाता है । जैसे,—'उसको रुपया दो' (व्याकरण में कर्म दो प्रकार के होते हैं—मुख्य कर्म और गौण कर्म ।) ३. वैशेषिक के अनुसार छह पदार्थों में से एक जिसका लक्षण इस प्रकार निम्न है—जो एक द्रव्य में हो, गुण न हो और संयोग और विभाग में अनपेक्ष कारण हो । (कर्म यहाँ क्रिया का लगभग पर्याय शब्द है । 'व्यापार' भी उसे ही व्याकरण कहते हैं ।) कर्म पाँच हैं—उत्क्षेपण (ऊपर फेंकना), अवक्षेपण (नीचे फेंकना), आकुचन (सिकोडना), प्रसारण (फैलाना), और गमन (जाना, चलना) । गमन के पाँच भेद किए गए हैं—भ्रमण (घूमना), रेचन (खाली होना), स्थंदन (बहना या सरकना), उर्ध्वज्वलन (ऊपर की ओर जलना), तिर्यग्गमन (तिरछा चलना) । ४. मीमांसा के अनुसार कर्म के दो प्रकार जो ये हैं—गुण या गौण कर्म और प्रधान या अर्थ कर्म । गुण (गौण) कर्म वह है जिससे द्रव्य (सामग्री) की उत्पत्ति या संस्कार हो, जैसे,—धान कूटना, गूथ बनाना, धी तपाना आदि । गुण कर्म का फल दृष्ट है, जैसे, धान कूटने से चावल निकलता है, लकड़ी गड़ने से गूथ बनता है । गुण कर्म के भी चार भेद किए गए हैं—(क) उत्पत्ति (जैसे, लकड़ी के गड़ने से गूथ का तैयार होना । (ख) आप्ति (जैसे, गाय के दुहने से दूध की प्राप्ति), (ग) विकृति (धान कूटना, सोम का रस निचोडना, धी तपाना), (घ) संस्कृति (चावल पछाड़ना, सोम का रस छानना) । प्रधान या अर्थकर्म वह है जिससे द्रव्य की उत्पत्ति या शुद्धि न हो, बल्कि उसका प्रयोग हो, जैसे, यज्ञ आदि । उसका फल अष्ट है, जैसे स्वर्ग की प्राप्ति इत्यादि । प्रधान या अर्थकर्म के तीन भेद हैं—नित्य, नैमित्तिक और काम्य । नित्य वह है जिससे न करने से पाप हो अर्थात् जिसका करना परम कर्तव्य है, जैसे, सध्या अग्निहोत्र आदि । नैमित्तिक वह है जो किसी निमित्त से किसी अवसर पर किया जाय, जैसे, पौर्णमासपिंड, पितृयज्ञ आदि । जो कर्म किसी विशेष फल की कामना से किया जाय, वह वाच्य है, जैसे, पुत्रेष्टि, कारीरि आदि । मीमांसक लोग कर्म को प्रधान मानते हैं और वेदाती लोग ज्ञान को प्रधान मानकर उससे मुक्ति मानते हैं ।

यौ०—कर्मकांड ।

५. योगनूत्र की वृत्ति में कर्म के तीन भेद । भोज ने ये भेद किए हैं—(क) विहित, जिनके करने की शास्त्रों में आज्ञा है, (ख) निषिद्ध, जिनके करने का निषेध है और (ग) मिथ्य अवृत्ति मिले जुले । जाति, आयु और भोग कर्म के विपाक या फल कहे जाते हैं । ६ जन्मभेद से कर्म के चार विभाग—सचित, प्रारब्ध, क्रियमाण और भावी । ७. जैन दर्शन के अनुसार कर्म पुद्गल और जीव के अनादि सर्वध से उत्पन्न होता है, इसी से जैन लोग इसे पौद्गलिक भी कहते हैं । इसके दो भेद हैं । (क) घाति जो मुक्ति का बाधक होता है और (ख) अघाति जो मुक्ति का बाधक नहीं होता । ८. वह कार्य या क्रिया जिसका करना कर्तव्य हो । जैसे,—ब्राह्मणों के पदकर्म—यजन, याजन, अघ्ययन, अघ्यापन, दान, प्रतिग्रह । ९. कर्म का फल । भाग्य । प्रारब्ध । किस्मत । इसके भी दो भेद हैं—(क) प्रारब्ध कर्म जिसका फल मनुष्य भोग रहा है और (२) सचित कर्म जिसका फल भविष्यत् में मिलनेवाला है । जैसे,—(क) अपना कर्म भोग रहे हैं । (ख) कर्म में जो लिखा होगा, सो होगा । उ०—कर्म हरयो सीता कहें आई, दुख सुख कर्म ताहि भुगताई ।—कवीर सा०, पृ० ९६० । वि० दे० कर्म ।

१०. मृतकसंस्कार । क्रिया कर्म । उ०—जब तनु तज्यो गीध रघुपति तब बहुत कर्म विधि कीनी । जान्यो सखा राय दशरथ को तुरतहि निज गति दीनी ।—सूर (शब्द०) ।

कर्मकर—संज्ञा पु० [सं०] १. श्रमी । मजदूर । २. प्राचीन काल की एक जाति जो सेवा कर्म करती थी । आजकल इसे कमकर कहते हैं । ३. गम [क्रि०] ।

कर्मकांड—संज्ञा पु० [सं० कर्मकाण्ड] १. धर्मसंबन्धी कृत्य । यज्ञादि कर्म । २. वह शास्त्र जिसमें यज्ञादि कर्मों का विधान हो ।

कर्मकांडी—संज्ञा पु० [सं० कर्मकाण्डिन] यज्ञादि कर्म करानेवाला । धर्मसंबन्धी कृत्य करानेवाला ।

कर्मकार—संज्ञा पु० [सं०] १. एक वर्णसंस्कार जाति जो शूद्रा और विषयकर्मा से उत्पन्न हुई है । २. लोहे या सोने का काम बनानेवाला । लुहार । सुनार । ३. बैल । ४. नौकर । सेवक । मजदूर । ५. बिना बतन या मजदूरी के काम करनेवाला । बेकार ।

कर्मकारक—संज्ञा पु० [सं०] व्याकरण में कर्म । दे० 'कर्म' २ ।

कर्मकाण्ड—संज्ञा पु० [सं०] मजदूर धनुष [क्रि०] ।

कर्मकीलक—संज्ञा पु० [सं०] घोड़ी [क्रि०] ।

कर्मक्षेत्र—वि० [सं०] जो काम करने में समर्थ हो ।

कर्मक्षय—संज्ञा पु० [सं०] कर्मों का विनाश ।

विशेष—भूतकाल में किए हुए पापकर्मों का विनाश उनके विपरीत पुण्यकर्म करने से हाजा है ।

कर्मक्षेत्र—संज्ञा [सं०] १. कार्य करने का स्थान । २. भारतवर्ष ।

विशेष—भागवत में लिखा है कि नौ वर्षों (प्रदेशों) में से भारतवर्ष कर्म करने के लिये है, शेष आठ वर्ष कर्मों के अवशिष्ट भोग के लिये हैं ।

कर्मगुण—संज्ञा पु० [सं०] कीटिल्य मत से काम की अच्छाई बुराई । कार्यक्षमता ।

कर्मगुणाधिकर्ष—संज्ञा पु० [सं०] काम अच्छा न होना । श्रमियों की कार्यक्षमता का घटना ।

कतृत्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कर्ता का भाव । कर्ता का धर्म ।

यो—कतृत्वशक्ति = करने का सामर्थ्य । कार्य करने की शक्ति ।
कतृप्रधान क्रिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह क्रिया जिसमें कर्ता प्रधान हो, जैसे,—खाना, पीना, करना आदि ।

विशेष—खाया जाना, पीया जाना, किया जाना आदि कर्मप्रधान क्रियाएँ हैं ।

कतृप्रधान वाक्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह वाक्य जिसमें कर्ता प्रधान रूप से आया हो, जैसे,—यज्ञदत्त रोटी खाता है ।

कतृवाचक—वि० [सं०] कर्ता का बोध करानेवाला ।

कतृवाची—वि० [सं०] जिससे कर्ता का बोध हो ।

कतृवाच्य क्रिया—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह क्रिया जिसमें कर्ता का बोध प्रधान रूप से हो, जैसे, खाना, पीना, मारना ।

विशेष—खाया जाना, पीया जाना, मारा जाना आदि कर्मप्रधान क्रियाएँ हैं ।

कर्त्रिका, कर्त्री—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ चाकू । २ कैंची [को०] ।

कर्द—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कर्दम । कीचड़ । २. मिट्टी [को०] । ३ कमल की जड़ [को०] । ४ जल की लताविशेष [को०] ।

कर्दट^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कलम की जड़ । पद्मकंद । २. कीचड़ । कर्दम [को०] । ३ मिट्टी [को०] । ४ जल में होनेवाली लता-विशेष [को०] ।

कर्दट^२—वि० कीचड़ में चलनेवाला ।

कर्दन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पेट का शब्द । पेट की गुड़गुड़ाहट ।

कर्दम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कीचड़ । कीच । चहला । २ मास । ३ पाप । ४ छाया । ५. स्वायम्भुव मन्वन्तर के एक प्रजापति ।

विशेष—इनकी पत्नी का नाम देवहूति और पुत्र का नाम कपिलदेव था । ये छाया से उत्पन्न, सूर्य के पुत्र थे, इसी से इनका नाम कर्दम पड़ा था ।

कर्दमक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का चावल । २ साँप का एक भेद [को०] ।

कर्दमाटक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मल फेंकने का स्थान [को०] ।

कर्दमित—वि० [सं०] कीचड़युक्त । कीचड़ से लयपय [को०] ।

कर्दमिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कीचड़वाली धरती । दलदली जमीन ।

कर्दमी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] चंद्र मास की पूर्णिमा तिथि [को०] ।

कर्न^(५)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्ण] दे० कर्ण । उ०—केहरि कल्याण कर्न कुंदन कविद से ।—सुजान०, पृ० १ ।

कर्नफूली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कर्ण + हि० फूल] पूर्वी वगाल की एक नदी ।

विशेष—यह आसाम के पहाड़ों से निकलकर वगाल की खाड़ी में गिरती है । चटगाँव नगर इसी के किनारे बसा है ।

कर्नल—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] एक फौजी अफसर ।

कर्नेता (करनेता)—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] रंग के अनुसार घोड़े का एक भेद । उ०—कारुमीसदली स्याह करनेता रूना ।—सूदन (शब्द०) ।

कर्पट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ पुराना चियड़ा । गूदड़ । लत्ता । २. कालिकापुराण के अनुसार नाभिसडल के पूर्व और भस्मकूट के

दक्षिण का एक पर्वत । ३ कपड़े का टुकड़ा या पट्टी [को०] ।

४ मटोला या लाल रंग का परिधान [को०] । ५ कपड़ा [को०] ।

कर्पटिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कर्पटिका] चियड़े गुदड़ेवाला-मिखारी । मिखमगा ।

कर्पटी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्पटिन्] [स्त्री० कर्पटिनी] चियड़े गुदड़े पहननेवाला, मिखारी ।

कर्पण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शस्त्र ।

कर्पर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कपाल । खोपड़ी । २. खप्पर । ३. कठुए । की खोपड़ी । ४ एक शस्त्र । ५ कडाह । ६ गूनर ।

कर्पराल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पीलू का पेड़ ।

कर्परी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दाहलदी के त्वाय से निकला दुग्रा तृतिया । खपरिया ।

कर्पास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कपास ।

कर्पासी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कपास का पौध ।

कर्पूर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कपूर ।

कर्पूरक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कचूरक । कपूर कचरी ।

कर्पूरगौर—वि० [सं०] कपूर की तरह सफेद ।

कर्पूरगौरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सकर जाति की एक रागिनी जो ज्योति, खवावती, जयतत्री, टक और वराटी के योग से बनी है ।

कर्पूरनालिका—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक पकवान ।

विशेष—यह मोयनदार मैदे की लबी नली के आकार की लोई में लोंग, मिर्च, कपूर, चीनी आदि भरकर उसे घी में तलने से बनता है ।

कर्पूरमणि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का पत्थर जो दवा के काम आता है । यह वातनाशक है । २. एक रत्न [को०] ।

कर्पूरवर्ति, कर्पूरवर्तिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन समय में घी और कपूर का चूर्ण मिलाकर कपड़े में रखकर और लपेटकर बनाई हुई वस्ती जिसे जलाने पर कपूर की सुगंध निकला करती थी । कपूर की वस्ती । उ०—बैद्यकर धूलना अथवा, जल पल दीप दान कर खुलना, तुम्हको सभी सहज है मुझको कर्पूरवर्ति, वध धूलना ।—साकेत, पृ० ३१६ ।

कर्पूरश्चेत—वि० [सं०] कपूर की भाँति सफेद । अत्यंत उज्ज्वल । उ०—कर्पूरश्चेत मधु की किन्नर देश में बड़ी महिमा है ।—किन्नर, पृ० ७८ ।

कर्पर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दर्पण । आरसी । शीशा । आईना ।

कर्पयू—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कर्पयू] दे० 'करपयू' ।

कर्बुदार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ लिसोडा । २ सफेद कचनार । ३ तेंदू का पेड़ जिससे आवनूस निकलता है ।

कर्बुर^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ सोना । स्वर्ण । २. घतूरा । ३ जल । ४ पाप । ५ राक्षस । ६ जड़हन घान । ७ कचूर ।

कर्बुर^२—वि० नाना वर्णों का । रंगबिरंगा । चितकबरा ।

कर्बुरा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. वनतुलसी । बबरी । २ कृष्णतुलसी ।

कर्बुरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा ।

कर्मद—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्मन्व] भिक्षु सुत्रकार एक श्रुति ।

कर्म—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्मन् का प्रथमा रूप] १ वह जो किया जाय । क्रिया । कार्य । काम । करनी । करतूत ।

पेड़ । ८. मेढासीगी । ९. कलम । लेखनी । १०. डठल जिसमें फल लगा रहता है ।

कर्णिकाचल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सुमेरु पर्वत [को०] ।

कर्णिकार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कनियार या कनकवपा का पेड़ ।

उ०—सहज मातृगुण गद्य या कर्णिकार का भाग । विगुण रूप दृष्टात के अर्थ न हो यह त्याग ।—साकेत, पृ० २६१ । २. एक प्रकार का अमलतास जिसका पेड़ बड़ा होता है । इसमें भी अमलतास ही की तरह की लवी लवी फलियाँ लगती हैं जिनके गूदे का जुलाव दिया जाता है । बँधक में यह सारक और गरम तथा कफ, शूल, उदररोग, प्रमेह, ब्रण और गुल्म को दूर करनेवाला माना जाता है ।

कर्णिकारप्रिय—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] शिव [को०] ।

कर्णी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार का वाण । २. चौर्य शास्त्र के कर्ता की माता [को०] । ३. कस की माता का नाम [को०] ।

कर्णी^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्णिन्] १. वाण । तीर । २. सप्तवर्ष पर्वतो में से एक । सप्तवर्ष पर्वत ये कहलाते हैं—हिमवान, हेमकूट, निपद, मेरु, चैत्र, कर्णी, शृंगी । ३. गद्या [को०] । ४. गर्माशय का एक रोग [को०] । ५. कर्णधार [को०] ।

कर्णी^३—वि० १. कानवाला । २. बड़े बड़े कानवाला । ३. जिसमें पतवार लगी हो ।

कर्णीरथ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियो की सवारी में काम आनेवाली डोली । पालकी [को०] ।

कर्णीसुत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चौर्य शास्त्र के प्रवर्तक मूलदेव [को०] ।

कर्णोजप^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पीठ पीछे लोगों की निंदा करनेवाला व्यक्ति । धीरे धीरे कान में लोगों की चुगली खानेवाला व्यक्ति । चुगलखोर । पिशुन ।

कर्णोजप^२—वि० निंदक । चुगलखोर । पिशुन [को०] ।

कर्णोपकर्णिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक कान से दूसरे कान में वात का जाना । कर्णपरपरा । अफवाह । जनश्रुति [को०] ।

कर्ण्यगण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कानों के लिये हितकारी ओषधियों का समूह, जिसके अंतर्गत तिलपर्णी, समुद्रफेन, कई समुद्री कीड़ों की हड्डियाँ आदि हैं ।

कर्तन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] काटना । कतरना । जैसे, केशकर्तन । २. (सुत इत्यादि) काटना ।

कर्तनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कतरनी । कैंची ।

कर्तव्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्तव्य] दे० 'करतव्य' । उ०—जिस समय वह अपने 'पवनदेव' घोड़े को किले के मैदान में फेरकर अपना कर्तव्य दिखाता है, उस समय और राजकुमार चकित हो, चित्र बन जाते हैं ।—श्रीनिवास प्र०, पृ० ७ ।

कर्तरि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कर्तरी' ।

कर्तरिअचित—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्तरिअचित] नृत्य में उत्प्लुतकरण के १६ भेदों में से एक जिसमें चरण स्वस्तिक रचकर उछलते हैं ।

कर्तरिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कर्तरी' ।

कर्तरिप्रयोग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण में कर्ता के पुरुष, लिंग और वचन के अनुसार क्रिया का प्रयोग [को०] ।

कर्तरिबोद्धो—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] उत्प्लुतकरण के ३६ भेदों में से

एक । इसमें करण स्वस्तिक रचकर फिर उसे खोलते हुए उछलकर तिरछे गिरते हैं ।

कर्तरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. कैंची । कतरनी । २. (सुनारों की) वाती । ३. छोटी तलवार । छुरी । कटारी । ४. तान देने का एक वाजा । ५. फलित ज्योतिष का एक योग । जब दो क्रूर ग्रहों के बीच में चंद्रमा या कोई लग्न हो, तब कर्तरी योग होता है । इससे कन्या की मृत्यु और अपना वधन होता है । ६. वाण का वह भाग जहाँ पंख लगाया जाता है [को०] ।

कर्तरीफल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कैंची या छुरी का फल [को०] ।

कर्तव्य^१—वि० [मं०] करने के योग्य । करणीय ।

कर्तव्य^२—सञ्ज्ञा पुं० करने योग्य कार्य । करणीय कर्म । उचित कर्म । धर्म । फज् । जैसे,—बड़ों की सेवा करना छोटी का कर्तव्य है ।

क्रि० प्र०—करना ।—पालन करना ।—पालना ।

यो०—कर्तव्याकर्तव्य = करने और न करने योग्य कर्म । उचित कर्म ।

और अनुचित कर्म । योग्य अयोग्य कार्य । जैसे,—बहुत से अधिकारियों को अपने कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान नहीं होता ।

कर्तव्यता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. कर्तव्य का भाव ।

यो०—इतिकर्तव्यता = उद्योग या प्रयत्न की पराकाष्ठा । कोशिश या कार्रवाई की हृद । दौड़ । जैसे,—उनकी इतिकर्तव्यता यही तक थी ।

२. कर्तव्य कराने की दक्षिणा । कर्मकांड की दक्षिणा ।

कर्तव्यमूढ, कर्तव्यविमूढ—वि० [सं० कर्तव्यमूढ़, कर्तव्यविमूढ़] [सञ्ज्ञा कर्तव्यमूढ़ता, कर्तव्यविमूढ़ता] १. जिस यह न सुझाई दे कि क्या करना चाहिए । जो कर्तव्य स्थिर न कर सके । २. ध्वराहट के कारण जिससे कुछ करते धरते न बने । भौचक्का ।

कर्ता^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० 'कर्तृ'] की प्रथमा का एक० [स्त्री० कर्त्री] १. करनेवाला । काम करनेवाला । २. रचनेवाला । बनानेवाला । ३. विधाता । ईश्वर । उ०—मेरे मन कछु और है कर्ता के कछु और (शब्द०) । ४. परिवार का, विशेषतः सयुक्त परिवार का वह व्यक्ति जो घर का सब उत्तरदायित्व वहन करता है और परिवार को और से वैधानिक रूप से भी कार्य कर सकता है । परिवार का प्रवक्ता व्यक्ति । ५. व्याकरण के छह कारकों में पहला जिससे क्रिया के करनेवाले का ग्रहण होता है । जैसे—यज्ञदा मारना है । यहाँ मारने की क्रिया को करनेवाला यज्ञदा कर्ता हुआ ।

कर्ता^२—वि० करनेवाला । क्रिया का करनेवाला । जिससे क्रिया का संबंध हो ।

कर्ताचर्ता—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. सब कुछ करने धरनेवाला व्यक्ति । वह व्यक्ति जिससे सब कुछ करने धरने का अधिकार हो [को०] ।

कर्तार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० 'कर्तृ'] का प्रथमा का बहु० १. करनेवाला । बनानेवाला । २. विधाता । ईश्वर ।

कर्तृ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कर्त्री] १. करनेवाला । २. बनानेवाला । कर्ता ।

कर्तृक—वि० [सं०] १. किया हुआ । संपादित । बनाया हुआ । जैसे—हर्षकर्तृक या माधवकर्तृक । २. किसी की ओर से कुछ करने वाला [को०] ।

कर्णभूषण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कान का एक आभूषण [को०] ।

कर्णभूसा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कान का एक आभूषण [को०] ।

कर्णमल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कान का मेल । कान का खूँट [को०] ।

कर्णमूल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें कान की जड़ के पास सूजन होती है कनपेड़ा ।

कर्णमृदग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्णमृदङ्ग] कान के भीतर की चमड़े की वह झिल्ली जो मृदग के चमड़े की तरह हड्डियों पर फसी रहती है । इनपर शब्द द्वारा कपित वायु के आघात से शब्द का ज्ञान होता है ।

कर्णमोटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा देवी का एक रूप [को०] ।

कर्णयुग्म प्रकीर्ण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नृत्य के ५१ प्रकार के चालको में से एक जिसमें दोनों हाथों को घुमाते हुए वगल से सामने ले आते हैं ।

कर्णयोनि—वि० [सं०] कान से जन्म लेनेवाला [को०] ।

कर्णरन्ध्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्णरन्ध्र] कान का छेद ।

कर्णलग्न स्कन्ध—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्णलग्नस्कन्ध] नृत्य में कंधे के पाँच भेदों में से एक जिससे कंधे को सीधा ऊँचा करके कान की ओर ले जाते हैं ।

कर्णवश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बाँस का मच [को०] ।

कर्णवर्जित—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] साँप ।

विशेष—प्राचीनों का विश्वास था कि साँप के कान नहीं होते, पर वास्तव में साँप की आँखों के पास कान के छेद प्रत्यक्ष दिखाई पड़ते हैं ।

कर्णविद्रधि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कान के अंदर की फुसी । कान के भीतर की फुडिया या घाव ।

कर्णवेध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बालकों के कान छेदने का संस्कार । कनछेदन । करनवेध ।

कर्णवेधनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कान छेदने का औजार ।

कर्णवेष्ट, कर्णवेष्टन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कान का वाला । कुडल । २. कान की वाली [को०] ।

कर्णशङ्कुली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कान का बाहरी भाग [को०] ।

कर्णशूल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कान की पीड़ा ।

कर्णशोभन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कान का एक आभूषण । कान का एक गहना । उ०—तीसरा आभूषण कर्णशोभन था ।—संपूर्ण अभि० पृ० ६६ ।

कर्णश्रव—वि० [सं०] जो कान के द्वारा सुना जाय [को०] ।

कर्णसू—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कुत्ती [को०] ।

कर्णसूची—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक छोटा कीड़ा [को०] ।

कर्णस्फोटा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की वेद । चित्रपर्णी [को०] ।

कर्णस्त्राव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] फुसी, फोड़ा आदि के कारण कान के भीतर से पीव या मवाद बहने का रोग ।

कर्णहलिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कान का एक रोग [को०] ।

कर्णहीन^१—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] सर्प । साँप ।

कर्णहीन^२—वि० जो सुन न सकता हो । बहरा [को०] ।

कर्णा दु, कर्णा दू—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्णान्दु, कर्णान्दू] कान का गहना । वाली [को०] ।

कर्णाकर्णि—वि० [सं०] कान से कान तक । कानोंकान [को०] ।

कर्णाट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण का एक देश ।

विशेष—इसके अतर्गत प्राचीन काल में वर्तमान मैसूर के उत्तरीय भाग से लेकर बीजापुर तक का प्रदेश था । पर इधर तयवाले आजकल के कर्नाटक के अनुसार रामेश्वर से लेकर कावेरी तक के प्रदेश को कर्णाट मानते हैं ।

२ सपूर्ण जाति का एक राग जो मेघ राग का दूसरा पुत्र माना जाता है ।

विशेष—इसके गाने का समय रात का पहला पहर है । इसका स्वर पाठ इस प्रकार है—प घ नि सा रे ग म प । इसे हिंदी में कान्हा भी कहते हैं ।

कर्णाटक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कर्णाट' ।

कर्णाटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] १ सपूर्ण जाति का एक शुद्ध रागिनी जो मालवा या किसी मत से दीपक राग की पत्नी है ।

विशेष—यह रात के दूसरे पहर की दूसरी घड़ी में गाई जाती है । स्वरपाठ इस प्रकार है—नि सा रे ग म प घ नी । संगीतदर्पण के अनुसार इसका ग्रहाशन्यास या ग्राम निपाद है, पर किसी किसी के मत से पडज भी कहते हैं । इसे कान्हा भी कहते हैं ।

२. कर्णाट देश की स्त्री । ३. कर्णाट देश की भाषा । ४. हंसपदी लता । ५. शब्दालंकार अनुपास की एक वृत्ति जिसमें केवल कवर्ग के ही अक्षर होते हैं ।

कर्णादर्श—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कान में पहनने का गहना । करन फूल [को०] ।

कर्णाधार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्णधार] सं० 'कर्णधार' । उ०—विसर्जन ही है कर्णाधार वही पट्टेचा देगा उस पार ।—यामा, पृ० १६ ।

कर्णानुज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] युधिष्ठिर ।

कर्णाभरणक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अमलतास ।

कर्णारि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन जिसने कर्ण को मारा था ।

कर्णिक^१—वि० [सं०] १ कानवाला । जिसे कान हो । २ जिसके हाथ में पतवार हो [को०] ।

कर्णिक^२—सञ्ज्ञा १ लिखनेवाला । लिपिक । क्लर्क । उ०—सीढियों के निकट बृद्ध कर्णिक गण सन्निपात की तमाम कार्यवाही लिखने को तैयार बैठे थे ।—वैशाली०, न० पृ० १४ । २ माँझी । कर्णधार [को०] ।

कर्णिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ कान का एक गहना । करनफन । २ हाथ की विचली उँगली । ३ हाथी के सूँठ की नोक । ४ कमल का छत्ता जिसमें से कँवलगट्टे निकलते हैं । ५ सेवती । सफेद गुनाव । ६ एक योनिरोग जिसमें योनि के कमल के चारों ओर कंगनी के अंकुर से निकल आते हैं । ७, खरनी का

विशेष—यह कन्याकाल में सूर्य से उत्पन्न हुआ था, इसी से कानीन भी कहलाता था ।

पर्या०—राधेय । वसुप्रेण अर्कनदन । घटोत्कचात्तक । चापेश । सूतपुत्र ।

३ सुवर्णालि वृक्ष । ४. नाव की पतवार । ५. समकोण त्रिभुज में समकोण के सामने के कोणों को मिलानेवाली रेखा । ६ किसी चतुर्भुज में आमने सामने के कोणों को मिलानेवाली रेखा । ७ पिगल में ढगण अर्थात् चार मात्रावाले गणों की सञ्ज्ञा । जैसे,—ऽऽ—माघो । ८. छप्पय के चौथे भेद का नाम । इसमें ६७ गुरु, १८ लघु, ८५ वर्ण और १५२ मात्राएँ होती हैं । परंतु जिसमें उल्टाला २६ मात्राओं का होता है, उस छप्पय में ६७ गुरु, १४ लघु, ८१ वर्ण और १४८ मात्राएँ होती हैं । ९. दो की सञ्ज्ञा (काव्य०) । १० उपदिग्भाग । दो दिशाओं का मध्यवर्ती कोण या भाग (को०) । ११. किसी पात्र या वर्तन का हत्या या कुंडा (को०) ।

कर्णक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वर्तन इत्यादि को पकड़ने का कुड़ा । २. पेड़ के पत्ते और शाखाएँ । ३. एक वेल । ४. एक प्रकार का ज्वर (को०) ।

कर्णकटु—वि० [न०] कान को अप्रिय । जो सुनने में कर्कश लगे । कर्णकसन्निपात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मन्निपात ।

विशेष—इसमें रोगी कान से बहुरा हो जाता है, उसके शरीर में ज्वर रहता है, कान के नीचे सूजन होती है वह अडबड बकता है, उसे पत्तीना होता है, प्यास लगती है, बेहोशी आती है और डर लगता है ।

कर्णकीटा, कर्णकीटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कनखजूरा । गोजर ।

कर्णकुहर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कान का विल । कान का छेद । उ०—कुहरित भी पचम स्वर, रहे वद कर्णकुहर ।—अनामिका, पृ० १३ ।

कर्णक्ष्वेड—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कान का एक रोग ।

विशेष—इसमें पित्त और कफयुक्त वायु कान में घुस जाने से बाँसुरी का सा शब्द सुन पड़ता है ।

कर्णग्रूथ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कान का खूँट । कान की मँल ।

कर्णग्रूथक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कान के खूँट का कड़ा होना (को०) ।

कर्णगोचर—वि० [सं०] कान को सुनाई देनेवाला (को०) ।

कर्णघट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शिव जी के उपासकों का एक वर्ग जो, कानों में इसलिये घटा या घंटी बाँधे रहता था, जिससे उसके स्वर में विष्णु का स्वर दब जाय (को०) ।

कर्णज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कान का खूँट (को०) ।

कर्णजप^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चुगलखोरी (को०) ।

कर्णजप^२—वि० चुगलखोर (को०) ।

कर्णजाप^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चुगलखोरी (को०) ।

कर्णजाप^२—वि० चुगलखोर (को०) ।

कर्णजलूका, कर्णजलूका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कनखजूरा (को०) ।

कर्णजाह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कान की जड़ (को०) ।

कर्णजित्—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] भर्जुन (को०) ।

कर्णताल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. हाथी का कान हिलाना । २ हाथी के कानों के हिलने की ध्वनि (को०) ।

कर्णदेवता—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कान के देवता, वायु ।

कर्णधार^१—पुं० [सं०] १. नाविक । माँझी । मल्लाह । केवट । २. पतवार बामनेवाला माँझी । ३. पतवार । कलवारी ।

कर्णधार^२—वि० बहुत बड़े कार्य को करनेवाला । दूसरों का दुःखादि दूर करनेवाला ।

कर्णनाद—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. कान में सुनाई पड़ती हुई गूँज । धनधनाहट जो कान में सुन पड़ती है । २ एक रोग जिसमें वायु के कारण कान में एक प्रकार की गूँज सी सुनाई पड़ती है ।

कर्णपथ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] श्रवण का क्षेत्र । वह दूरी जहाँ तक की आवाज सुनाई दे (को०) ।

कर्णपर परा—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्णपरम्परा] एक के कान से दूसरे के कान में बात जाने का क्रम । सुनी सुनाई व्यवस्था । (किसी बात को) बहुत दिनों से लगातार सुनते सुनते चले आने का क्रम । श्रुतिपरंपरा ।

कर्णपाक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कान पकने की स्थिति या दशा (को०) ।

कर्णपाली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ कान की ली । कान की लोलक । कान की लोविया । कान की लहर । २ कान की बाली । मुरकी । ३ एक रोग जो कान की लोलक में होता है ।

कर्णपिशाची—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक तांत्रिक देवी ।

विशेष—इसके सिद्ध होने पर, कहा जाता है, मनुष्य जो चाहे सो जान सकता है ।

कर्णपुर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कान का घेरा । २ चपा नगरी जो अग देश की राजधानी थी ।

कर्णपूर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. सिरिस का पेड़ । २ अशोक का पेड़ । ३. नील कमल । ४. करनफूल ।

कर्णपूरक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कदव का पेड़ । २. कर्णफूल (को०) । ३ अशोक का वृक्ष (को०) । ४. नील कमल (को०) ।

कर्णप्रणाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कर्णप्रतिनाह' ।

कर्णप्रतिनाह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बंधक के अनुसार कान का एक रोग ।

विशेष—इसमें खूँट फूलकर अर्थात् पतली होकर नाक और मुँह में पहुँच जाती है इस रोग के होने से आधीसीसी उत्पन्न हो जाती है ।

कर्णप्रयाग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गडवाल का एक गाँव ।

विशेष—यह अलकनंदा और पिंडार नदी के संगम पर है तथा बदरिकाश्रम के मार्ग में पड़ता है । हिंदुओं के मत से यहाँ स्नान करने का माहात्म्य है ।

कर्णफल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली (को०) ।

कर्णफूल—संज्ञा पुं० [सं० कर्ण + फूल] कान का एक ग्रानूपण । करन-फूल (को०) ।

ककंटा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता जिसमें करंले की तरह के छोटे छोटे फल लगते हैं, जिनकी तरकारी बनती है। ककोडा। खेखसा।

ककटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ कछुई। २ ककडी। ३. सेमल का फल ४ साँप। ५ घडा। ६ बेंदाल की लता। ७. तरौई। ८. काकड़ासीगी।

ककंदु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सारस [को०]।

कर्कर^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ ककड। २ कुरज पत्थर जिसके चूर्ण की सान बनती है। ३ दण्ड। ४ नीलम का एक भेद। ५. हथौडा (को०)। ६ खोपड़ी का टुकड़ा (को०)। ७ चमड़े की पट्टी (को०)।

कर्कर^२—वि० १ कडा। करारा। २ खुरखुरा।

कर्कराग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्कराङ्ग] खजनपक्षी [को०]।

कर्कराधुक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्कराधुक] अधकूप। अधा कुआँ। सूखा हुआ कुआँ [को०]।

कर्करादु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] निरखी चितवन। कडाक्ष [को०]।

कर्कराल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बाग का जूडा [को०]।

कर्करो—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ पानी का एक घडा, जिसके पेंदे में छेद हो। २ एक प्रकार की वाँसुरी। ३. एक प्रकार का पौधा [को०]।

कर्करेदु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सारस। करकरा। ककटिया।

कर्कश^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कमीले का पेड़। २. ऊख। ईख। ३ खग। तलवार।

कर्कश^२—वि० [सञ्ज्ञा कर्कशता, कर्कशत्व, कर्कश्य] १. कठोर। कडा। यो०—ककश स्वर = कड़ी आवाज। कानो को अच्छा न लगने-वाला शब्द।

२ खुरखुरा। काँटेदार। ३ तेज। तीव्र। प्रकड। ४. अधिक। ५ कठोरहृदय। क्रूर। ६. दुराचारी (को०)। ७. वलिष्ठ। हट्टा कट्टा (को०)। ८ दुश्चरित्र (को०)।

कर्कशता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. कठोरता। कडापन। २ खुरखुरापन।

कर्कशत्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कडापन। २ खुरखुरापन।

कर्कशा^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वृश्चिकाली का पौधा।

कर्कशा^२—वि० स्त्री० भगडालू। भगटी। भगडा करनेवाली। लडाकी। कटुभाषिणी।

कर्कशिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जगली वेर [को०]।

कर्कशी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कर्कशिका'।

कर्कस(७)—वि० [सं० कर्कश] कठोर। असह्य। उ०—कर्कश पवन गुहा तें ऐसो। आवत अजगर मुख ते जँसो।—नद० प्र०, पृ० २६१।

कर्काटकशृंगी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्काटकशृङ्गिन्] वह असह्य ब्यूह जिसमें तीन भाग अर्धचंद्राकार असह्य हो।

कर्काट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] भूरा कुम्हड़ा। रक्तवा कुम्हड़ा। पेठा।

कर्काटक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तरवूज। हिनुवाना।

कर्कि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कर्क राशि।

कर्कतन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक रत्न या बहुमूल्य पत्थर। जमुरंद।

विशेष—कर्कतन या जमुरंद हरे या नीले रंग का होता है। अच्छा जमुरंद दूध के रंग का और विना सूत का स्वच्छ होता है। जमुरंद से विल्वोर कट जाता है। जमुरंद को काटने के लिये नीलम और मानिक की आवश्यकता होती है। इसको घिसने से इसमें से एक प्रकार की चमक निकलती है। दक्षिण भारत में कोयमवटूर के पास इसकी खान है। यह और जगह नीलम और पन्ने के साथ मिलता है। भारतवर्ष के अतिरिक्त सिहल, उत्तर अमेरिका, मिस्र, रूम (यूरान पर्वत), ब्राजिल आदि स्थानों में भी यह होता है। जिस कर्कतन में सूत होता है अर्थात् जो बहुत स्वच्छ नहीं होता और मटमैले रंग का होता है, उसे लसुनिधा कहते हैं।

कर्कतर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कर्कतन या रत्न। जमुरंद।

कर्कोट, कर्कोटक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वेल का पेड़। २ खेखसा। ककोडा। ३ एक राजा का नाम। ४ काशमीर का एक राजवंश। ५. पुराण के अनुसार आठ नागों में से एक नाग का नाम। ६ ईख।

कर्कोटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ वनतोरई। २. खेखसी। ककोडा। ३ देवदाली। बदाल।

कर्चरिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कचोड़ी। वेढई। वेढवी।

कर्ची—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

कर्चूर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ सोना। सुवर्ण। २. कवूर। नर्कचूर।

कर्चूरक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हल्दी [को०]।

कर्ज—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कर्ज] ऋण। उधार।

क्रि० प्र०—अर्वा करना।—करना।—काढ़ना।—खाना।—चुकना।—चुकाना।—देना।—पटना।—पटाना।—लेना।—होना।

मुहा०—कर्ज उतारना=कर्ज देना या चुकाना। उधार देना करना। कर्ज उठाना=ऋण लेना। ऋण का बोझ ऊपर लेना। कर्ज खाना=(१) कर्ज लेना। (२) उपकृत होना। दबायल होना। वश में होना। जैसे,—क्या हमने तुम्हारा कर्ज खाया है, जो आँख दिखाते हो? कर्ज खाए बैठना=दे० 'उधार खाए बैठना'।

यो०—कर्जवार।

कर्जवाह—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कर्ज + फा० स्वाह=चाहनेवाला] वह जो किसी से कर्ज लेना चाहता हो। ऋण लेने की इच्छा रखनेवाला।

कर्जदार—वि० [अ० कर्ज + फा० दार] उधार लेनेवाला। ऋणी।

कर्जी—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कर्ज] दे० 'कर्ज'।

कर्जी—वि० [अ० कर्ज + हि० ई (प्रत्य०)] ऋणी। कर्जदार। ऋणग्रस्त।

कर्ज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कान। श्रवणेंद्रिय। २. कुत्ती का सब से बड़ा पुत्र।

सफेद और कुछ हलका और गहरा गुलाबी होता है। ये फल खट्टे होते हैं तथा अचार और चटनी के काम में आते हैं। पंजाब में करोँदे के पेड़ से लाह भी निकलती है फल रंगों में भी पड़ता है। डालियों को छीलने से एक प्रकार का लासा निकलता है। कच्चा फल मलरोप्रक होता है। इसकी जड़ को कपूर और नीबू में फेंटकर खाज पर लगाते हैं जिससे खुजली कम होती है और मक्खियाँ नहीं बैठती। इसकी लकड़ी ईंधन के काम में आती है, पर दक्षिण में इसके कड़े और कलछूले भी बनते हैं। करोँदे की झाड़ी टट्टी के लिये भी लगाई जाती है। करोँदा प्रायः सब जगह होता है।

पर्याय—करमद्^१। कराम्ल। करावुक। बोल। जातिपुष्प। २ एक छोटी कंटीली झाड़ी।

विशेष—यह जंगलों में होती है जिसमें मटर के बराबर छोटे फल लगने हैं, जो जाड़े के दिनों में पककर खूब काले हो जाते हैं। पकने पर इन फलों का स्वाद मीठा होता है।

३ कान के पास की गिल्टी।

करोँदिया^१—वि० [हि० करोँदा + ड्या(प्रत्य०)] १ करोँदे से सब्ज। २ करोँदे के रंग का। करोँदे के समान हल्की स्याही लिए हुए खुलते लाल रंग का। उ०—करोँदिया और सुभापखी धानी रंग के वस्त्रो। प्रेमघन०, भा० २, पृ० १०।

करोँदिया^२—सञ्ज्ञा पुं० एक रंग जो हल्की स्याही के लिए लाल होता है। विशेष—गुलाबी से इसमें थोड़ा ही अंतर जान पड़ता है। रंगरेज लोग जिन वस्तुओं से अव्वसी रंग बनाते हैं, उन्हीं में इसे भी बनाते हैं, अर्थात् छटाँक गहाव के फूल, ३ छटाँक आम की छटाई और ८-९ मांशे नील।

करोँदी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० करोँदा का स्त्री०] दे० 'करोँदिया'। उ०—उत्फुल्ल करोँदी कुज वायु रह रहकर, करती थी सबको पुलक-पूर्ण मह मह कर।—साकेत, पृ० २२७।

करोँती^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करपत्र] [स्त्री० करोती] लकड़ी चीरने का औजार। आरा।

करोँती^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० करना] रखेली।

करोँता^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० करोत] दे० 'करोत'।

करोँता^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कारा, काला] करल मिट्टी।

करोँता^३—सञ्ज्ञा पुं० [हि० करवा] काँच का बड़ा वस्तु। करावा। बड़ी शीशी।

करोँती^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० करोता] लकड़ी चीरने का औजार। आरी।

करोँती^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० करवा] १ शीशे का छोटा वस्तु। करावा। उ०—(क) जाही सो लगत नैन, ताही खगत बँन, नख सिख लों सब गात प्रसति। ज'के रंग राचे हरि सोइ है अंतर सग, काँच की करोँती की जल ज्यों लसति।—सूर (शब्द०)। (ख) वे अति चतुर प्रवीन कहा कहीं जिन पठई ली को बहुरावन। सूरदास प्रभु जिय की होनी की जानति काँच करोँती में जल जैसे तू लागी प्रगटावन।—सूर (शब्द०)। २, काँच की भट्टी।

करोँता^३—सञ्ज्ञा पुं० [हि० करोना = खुरचना] कसेरों की वह कलम जिससे वे वस्तुओं पर नक्काशी करते हैं। नक्काशी खोदने की कलम या छेनी।

करोँता^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० करमदं, उ० करवंद] दे० 'करोँदा'।

करोँला^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० रौला + शोर] हँकवा करनेवाला। शिकारी। उ०—एक समे सजिकै मव सैन शिकार को आलमगीर सिधाए। 'आवत है सरजा सँभरी' एक और तें लोगन बोलि जनाए। भूपन भो भ्रम औरंग को सिव भोंसला भूप की धाक धकाए। धाय कै सिह' कहाँ समुझाय करोँलिन आय अचेत उठाए।—भूषण पृ० ५० पृ० ६५।

करोँली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० राजस्थान का एक नगर] १. राजस्थान का एक शहर। २. एक प्रकार की सीधी छुरी जो भोकने के काम में आती है। इसमें मूँठ लगी रहती है। यह कंगली शहर में अच्छी बनने से उसी के नाम से ख्यात है।

कर्कंघु - सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्कंघु] दे० 'कर्कंघू'।

कर्कंघू—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्कंघू] १ वेर का पेड़ या फल। २ अघा कुआँ। सूखा कुपाँ (को०)।

कर्क^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ केकड़ा। २ वारह राशियों में से चौथी राशि। उ०—अब मैं कहौ चंद्र की धारा। कर्क सकाति छेमास विचारा।—श्रीविर सा०, पृ० ८७६।

विशेष—इसमें पुनर्वसु का अमि चरण तथा पुष्य और अश्लेषा नक्षत्र हैं। ३६० अंश के १२ विभाग करने से एक एक राशि मोटे हिसाब से ३०° की मानी जाती है। कर्क पृष्ठोदय राशि है।

३ काकड़ासींगी। ४ अग्नि। ५ दर्पण। ६ घड़ा। ७ कार्या-यन और सूत्र के एक भाष्यकार। ८ पफेद घोड़ा (को०)। ९ एक प्रकार का रत्न (को०)।

कर्कं^२—वि० १ सफेद। सुंदर। अच्छा (को०)।

कर्कं^३—वि० [प्रा० कक्कर] कठोर। कठिन। पथ्य। उ०—फटें वीर वीर सुवीर सुघट्ट। मनो कर्कं करवत्ता विहरंत कढठ।—पृ० रा०, २५।४४६।

कर्कंचिभंटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की ककड़ी (को०)।

कर्कट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कर्कटी, कर्कटी] १ कर्कट राशि। २. एक प्रकार का सारस। करकरा। करकरिया। ४. लोकी। घीघ्रा। ५ कमल की मोटी जड़। भसीड। तराजू की डंडी का मुड़ा हुआ सिरा जिसमें पलड़े की रस्सी बंधी रहती है। ७ सड़सा। ८ वृत्त की त्रिज्या। ९ नृत्य में तेरह प्रकार के हस्तकों में से एक।

विशेष—दोनों हाथ की उंगलियाँ बाहर भीतर मिलाकर कबकाते हैं। यह क्रिया आलस्य या शयन वजाने का भाव दिखाने के लिये की जाती है।

कर्कटक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. केकड़ा। २. कर्क राशि। ३. वृत्त। ४. एक प्रकार की ईज। ५ अंगुली। ६ हूक (को०)।

कर्कटकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] मादा केकड़ा (को०)।

कर्कटशृंगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कर्कटशृंगी] काकड़ासींगी।

करैयाँ—वि० [हि० करना + ऐया (प्रत्य०)] कर्ना। करनेवाला।
कार्य करनेवाला। उ०—वह कोई लाखों, करैया कोई एक है।
—कवीर श०, भा० १, पृ० १०।

करैल^१—सब्बा औ० [हि० कारा, काला] १ एक प्रकार की काली मिट्टी जो प्राय तालों के किनारे मिलती है।

विशेष—यह बहुत कड़ी होती है, पर पानी पड़ने पर गलकर लसीली हो जाती है। इससे स्थिराँ सिर साफ करती हैं।

कुम्हार भी इसे काम में लाते हैं।

२ वह भूमि जहाँ की मिट्टी करैल या काली हो।

करैल^२—सब्बा पुं० [सं० करीर] १ बाँस का नरम कल्ला या अँबुआ।

२ रोम।

करैला—सब्बा पुं० [हि० करेला] दे० 'करेला'।

करैली—सब्बा औ० [हि० करेली] दे० 'करेली'।

करैली मिट्टी—सब्बा औ० [हि० करैल + मिट्टी] दे० 'करैल'।

करोटी^१—सब्बा औ० [हि० करवट] दे० 'करवट'।

करो^२—प्रत्य० [सं० कृत(पुं०)कर] का। उ०—तान्हि करो पुत्र युवराजन्हि भाँषि पवित्र।—कीर्ति०, पृ० १२।

करोट^१—सब्बा पुं० [सं०] [औ० करोटी] खोपड़े की हड्डी। खोपड़ा।

करोट^२—सब्बा पुं० [हि० करवट] दे० 'करवट'। उ०—जागत जाति राति सब काटी। लेत करोट सेज की पाटी।—शकुंतला पृ० १०८।

करोटन—सब्बा पुं० [अ० फ़ोटन] १ वनस्पति की एक जाति जिसके अतगंत अनेक पेड़ और पौधे होते हैं।

विशेष—इस जाति के सब पौधों में मजरी लगती है और फलों में तीन या छह बीज निकलते हैं। इस जाति के कई पेड़ दवा के काम में भी आते हैं और दस्सावर होते हैं। रेंडी और जमालगोटा इसी जाति के पेड़ हैं।

२ एक प्रकार के पौधे जो अपने रंग विरंगे और विलक्षण आकार के पत्तों के लिये लगाए जाते हैं।

करोटी^१—सब्बा औ० [सं०] खोपड़ी।

करोटी^२—सब्बा औ० [हि० करवट] दे० 'करवट'। उ०—एक दिना हरि लई करोटी सुनि हरपी नंदरानी। विप्र बुनाइ स्वस्तिवाचन करि रोहिणि नैन सिरानी।—सूर (शब्द०)।

करोडी—वि० [सं० कोटि] सो लाख की संख्या जो अरबों में इस प्रकार लिखी जाती है—१०००००००००।

मुहा०—करोड़ की एक = बहुत सी बाँजों का तत्व। यथार्थ तत्व।
बड़े अनुभव की बात। जैसे,—इस समय तुमने करोड़ की एक कही।

करोड़खुल—वि० [हि० करोड़ + खुल] भूठमूठ लाखों करोड़ों की बात हाँकनेवाला। भूठा। गप्पी।

करोड़पति—वि० [हि० करोड़ + सं० पति] करोड़ों रुपए का स्वामी। वह जिसके पास करोड़ों रुपए हों। बहुत बड़ा धनी।

करोड़ी—सब्बा पुं० [हि० करोड़ + ई (प्रत्य०)] १. रोकड़िया। तहवीलदार। २. मुसलमानी राज्य का एक अफसर जिसके जिम्मे कुछ तहसील रहती थी। ३. करोड़पति। अत्यंत धनी।

करोत—सब्बा पुं० [सं० करपत्र, प्रा० *करवन] लकड़ी चीरने का औजार।—भारा। उ०—जात न उठि लपटात सुठि, कठिन प्रेम की बात। सूर उदोत करोत सम, चौरि कियो विवि गान। नद० प्र०, पृ० १४३।

करोदना^१—कि० सं० [सं० कर्त्तन, हि० कुरेवना] धरोचना। पुरचना। करोना। उ०—मिहिर नजर सो भावते राघु याद भरि माद। अनखन खनि अनखन ग्ररे मत मो मनहि करोद।—रसनिधि (शब्द०)।

करोध^१—सब्बा पुं० [सं० श्लोघ] दे० 'कोध'। उ०—जीतै पहिन अहार की दूजे और करोध। बहु मनुष्यों का संग तजि छाँड़े प्रीति विरोध।—तेज०, पृ० १५५।

करोना^१—कि० सं० [सं० क्षुरण = खरौचना] १ खुरचना। खसोटना। उ०—ताल निठुर ह्वै बँठि रहै। प्यारी हाहा करति न मानत पुनि पुनि चरन गहै। नहि बोलत नहि चितवत मुख तन धरनी नखन करोवत।—सूर (शब्द०)।

२ पके हुए दूध या दही का अण जो पेंदी में जमा रहता है और जिसे खुरचकर निकालते हैं। ३ लोहे या पीतल का बना खुरी के आकार का औजार जिससे खुरचते हैं।

करोनी—सब्बा औ० [हि० करोना] १ पके हुए दूध या दही का वह अण जो बरतन में चिपका रह जाता है और खुरचने से निकलता है। २. खुरचन नाम की मिठाई। ३ लोहे या पीतल का बना हुआ खुरी के आकार का एक औजार जिससे दूध-वसोंधी आदि कड़ाही में से खुरची जाती है।

करोर^१—वि० [हि० करोड़] दे० 'करोड़'। उ०—कहना कोर किसोर की रोर हरन वजोर। अष्ट सिद्धि नव निद्धि जुव करत समूह करोर।—सं० सप्तक, पृ० ३४४।

करोला^१—सब्बा पुं० [हि० करवा] करवा। गड़गा। उ०—(क) लसत अमोले कनक करोले। भरे सुरभि जल घरे अमोले। रघुराज (शब्द०)। (ख) थार कटोरे कनक करोले। चिमचा प्याले परम अमोले।—रघुराज (शब्द०)।

करोला^२—सब्बा पुं० [वैश०] मालू। रीछ।—(हि०)।

करोँछा^१—वि० [हि० कारा, काला + ओँछा (प्रत्य०)] [औ० करोँछी] काला। श्याम। उ०—केसर सो उवटी अन्हवाइ चुनी चुनरी चूडकीन सो कोछी। वेनी जु माँग भरे मुकता बडी वेनी सुगध फुलेल तिलोछी। ओचक माए वे रोम उठे लखि मूरति नदलला की करोछी। ओछिल है कल्लो आली री तें हहा देह गुलाल की पोती सो पोछी।—वेनी (शब्द०)।

करोँजी^१—सब्बा औ० [सं० कालाजाजी] कलोजी। मंगरेला। उ०—काय करोँजी कारी जीरी। काइफरो कुचिला कनकीरी।—सूदन (शब्द०)।

करोँट^१—सब्बा औ० [हि० करवट] दे० 'करवट'।

करोँदा—सब्बा पुं० [सं० करमदं, प्रा० करमद, पुं० करवद] १ एक कटीला भांड।

विशेष—इसकी पत्तियाँ नीबू की तरह की, पर छोटी छोटी होती हैं। इसमें जूही की तरह के सफेद फूल लगते हैं—जिनमें भीनी भीनी गंध होती है। यह बरसात में फलता है। इसके फूल छोटे बर के बराबर बहुत सूदर होते हैं जिसका कुछ भाग खूब

करेजवा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० करेजा] कलेजा । उ०—कवन रोग दुहुँ छतियाँ उपजेउ भाय । दुखि दुखि उठै करेजवा लागि जनु जाय ।—रहीम (शब्द०) ।

विशेष—पूर्वी क्षेत्रों में 'या', 'वा' प्रत्यय लगाकार विशिष्ट निर्देशार्थ व्यवहृत किया जाता है ।

करेजा(उ०)—सञ्ज्ञा पुं० [स० यकृत अथवा हि० कलेजा] कलेजा । हृदय । उ०—(क) कीजो पार हरतार करेजे । गंधक देख श्रामहि जिउ दीजे ।—जायसी (शब्द०) । (ख) मानो गिन्यो हेमगिरि शृंग पँ सुकेलि करि कढ़ि कै कलक कलानिधि के करेजे तै ।—पद्माकर (शब्द०) ।

करेजी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० करेजा] पशुधों के कलेजे का मांस जो खाने में अच्छा समझा जाता है ।

यी०—पत्थर की करेजी = पत्थर की खानों में चट्टानों की वह में से निकली हुई पपड़ों की सी वस्तु जो खाने में सौधी लगती है ।

करेणु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ हाथी । २ कर्णिकार वृक्ष । कनेर ।

करेणुक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] करेणु नामक पौधे का विपला फल [स्त्री०] ।

करेणुका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] हथिनी । मादा । हाथी ।

करेणुभू—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हस्तिशास्त्र के प्रवर्तक पालकाय मुनि [स्त्री०] ।

करेणुवती—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] चेदिराज की कन्या का नाम जो नकुल को व्याही गई थी ।

करेणुसुत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'करेणुभू' [स्त्री०] ।

करेणु—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] हथिनी [स्त्री०] ।

करेता—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] बरियारा । बला । खिरैटी ।

करेतर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] घूप । लोहवान । [स्त्री०] ।

करेनुका(उ०)—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० करेणुका] दे० 'करेणुका' । उ०—केसोदास । प्रवल करेनुका गमन हर मुकुत सुहसक सबद सुखदाई है । —केशव० ग्र०, भा० १, पृ० १३७ ।

करेप—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० करेब] दे० 'करेब' । उ०—वे करेप की बनी नीकरें, जूतो पर अजगर की खाल । कमरो में शेरों की खालें थी अरना सिर सजी दिवाल ।—चंदन, पृ० १४४ ।

करेव—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० क्रेप] एक करारा भीना रेशमी कपड़ा । उ०—पचरग उपट्यो दुपटो करेक को त्यों इत, बेल कारचोवी जामे सोहति मोहति चित ।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ६ ।

करेमुआ—सञ्ज्ञा पुं० [हि० करेमू] दे० 'करेमू' । उ०—तालों में से भी करेमुआ और । प्रेमघन, भा० २, पृ० १८ ।

करेमु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कलम्बु] एक घास जो पानी में होती है ।

विशेष—यह पानी के ऊपर दूर तक फैलती है । इसके डठल पतले और पोले होते हैं, जिनकी गाँठों पर से दो लंबी लंबी पत्तियाँ निकलती हैं । लडके डठलों को लेकर बाजा बजाते हैं । इस घास का लोग साग बनाकर खाते हैं । करेमू अफीम का विष उतारने की दवा है । जितनी अफीम खाई गई हो, उतना करेमू का रस पिला देने से विष घाव हो जाता है ।

करेर(उ०)—वि० [हि० कड़ा, (उ०) करा + एर (प्रत्य०)] कड़ा । कठिन । कठोर । उ०—काया नगर सोहावन जहँ वसैं प्रातम राम । मन पवन तहँ छाइव कठिन बरेरो काम ।—गुलाल०, पृ० १३४ ।

करेरा(उ०)—[हि०] दे० 'करेर' ।

करेखा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक कंटोली बेल ।

विशेष—इसके पत्ते नींद के आकार के होते हैं । चैत बंषाच में इसमें हलके करीदिया रंग के फूल लगते हैं जिनकी कसर बहुत लंबी होती है फूलों के झड़ने पर इसमें परचल की तरह फल लगते हैं जिनमें बीज ही बीज भरे रहते हैं । यह खाने में बहुत कड़ुआ होता है, यही तक कि इसके पत्ते से भी बड़ी कड़ुई गंध निकलती है । फल की तरकारी बनाई जाती है । लोगों का विश्वास है कि आर्द्रा नक्षत्र के पहले दिन इसे खा लेने से साल भर फोडा फुसी होने का डर नहीं रहता । करेखा के पत्ते पीसकर घाव पर भी रखते हैं ।

करेल—सञ्ज्ञा पुं० [हि० करेला] १ एक प्रकार का बड़ा मुगदर जो दोनों हाथों से धुमाया जाता है । इसका वजन दो मुगदरों के बराबर होता है । इसका सिरा गोलाई लिये टूट होता है, इससे यह जमीन पर नहीं खड़ा रह सकता, दीवार इत्यादि से अड़ा कर रखा जाता है । २. करेल धुमाने की कसरत ।

क्रि० प्र०—करना ।

करेलनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] लकड़ी की वह फरई जिससे घास का अटाला लगाते हैं ।

करेला—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कारवेल्ल] १ एक छोटी बेल । उ०—भाव की भाजी सील की सेमा बने कराल करेला जी ।—कवीर श०, पृ० ११ ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ पाँच नुकीली फाँकों में कटी होती हैं । इसमें लंबे लंबे गुल्ली के आकार के फल लगते हैं जिनके छिलके पर उमड़े हुए लंबे लंबे और छोटे बड़े दाने होते हैं । इन फलों की तरकारी बनती है । करेला दो प्रकार का होता है । एक बंसाखी जो फागुन में क्यारियो में बोया जाता है, जमीन पर फैलता है और तीन चार महीने रहता है । इसका फल कुछ पीला होता है, इसी से कौजी बनाने के काम में भी आता है । दूसरा बरसाती जो बरसात में बोया जाता है, भाङपर बढ़ता है और सालों फूलता फलता है । इसका फल कुछ कुछ पतला और ठोस होता है । कहीं कहीं जंगली करेला भी मिलता है जिसके फल बहुत छोटे और कड़ुए होते हैं । इसे करेलो कहते हैं ।

२. मालाया द्वीप की लंबी गुरिया जो बड़े दानों या कोंड़ेदार रूपों के बीच में लगाई जाती है । हरें । ३. एक प्रकार की आतशबाजी ।

करेली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० करेला] जंगली करेला जिसके फल बहुत छोटे छोटे और कड़ुए होते हैं ।

करेवर(उ०)—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'करेवर' ।

करैत—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कराइत] दे० 'कराइत' ।

करुणागार--वि० [सं०] करुणा से श्रोतप्रोत । करुणामय । उ०—
कहाँ वह करुणा करुणागार, विषयरस मे रत मेरे प्राण । पीठ
पर लदा मोह का भार, कहाँ वह दया, करे जो प्राण ।—
मधुज्वाल, पृ० ५५ ।

करुणादृष्टि--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ दयादृष्टि । कृपा । २ नृत्य की
छत्तीस दृष्टियों में से एक जिसमें ऊपर की पलक दबाकर
अश्रुपात सहित नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि लाते हैं ।

करुणाद्रु--वि० [सं० करुणाद्रु] करुणा से मार्द्र या द्रवित होनेवाला ।

करुणानिधान--वि० [सं०] जिसका हृदय करुणा से भरा हो ।
दयालु ।

करुणानिधि--वि० [सं०] जिसका हृदय करुणा से भरा हो । दयालु ।

करुणापर--वि० [सं०] करुणाकर । दयालु ।

करुणामय--वि० [सं०] जिसमें बहुत करुणा हो । दयावान । उ०—
वह शुभ मन सा कर करुणामय अरु शुभ तरंगिनी शोभ
सनी ।—केशव (शब्द०) ।

करुणाद्रं--वि० [सं०] करुणा से पीडित । दुखी । द्रवित । उ०—
राजा हरिश्चन्द्र को शमशान मे रानी शैव्या से कफन मांगते
हुए, राम जानकी को वनगमन के लिये निकालते हुए पढ़कर
ही लोग क्या करुणाद्रं नहीं हो जाते ?—चित्तमणि, भा० ३,
पृ० ४४ ।

करुणावान--वि० [सं० करुणावान्] करुणामय । दयालु । उ०—जब
तुम मुझे गभीर गोद मे लेते हो, हे करुणावान । मेरी छाया
भी तब मेरा पा सकती है नहीं प्रमाण ।—वीणा, पृ० २५ ।

करुणासिक्त--वि० [सं०] करुणा से द्रवित । करुणापूर्ण । उ०—
नरेंद्र की 'युवक कर्क' पर कविता भी करुणासिक्त है ।—
हिं० आ० प्र०, पृ० २३३ ।

करुणी--वि० [सं० करुणिन्] १ दयनीय । दया का पात्र । २ दुखी ।
पीडित (की०) ।

करुणा--सञ्ज्ञा पुं० [सं० करुणा] दे० 'करुणा' ।

करुणाकार--वि० [सं० करुणाकर] दे० 'करुणाकर' । उ०—काकुत्स्थ
करुणाकार । गुन निद्रि सुम्भट भार ।—पृ० २१०, २५ ।
३६५ ।

करुणानिधि--वि० [सं० करुणानिधि] दे० 'करुणानिधि' । उ०—
देखि प्रीति सुनि वचन अमोले । एवमस्तु करुणानिधि बोले ।—
मानस०, १११५० ।

करुणामय--वि० [सं० करुणामय] दे० 'करुणामय' । उ०—ऐसेहि
मोहि करी करुणामय, सुरस्याम ज्यो सुत हित माई ।—पोद्दार
अभि० प्र०, पृ० २४९ ।

कररु--[सं० कटु] कटु । तीखा ।

करल--सञ्ज्ञा पुं० [दे० गं०] एक प्रकार की बड़ी चिड़िया ।

विशेष—यह जल के किनारे रहती है और घोड़े आदि फोड़कर
खाया करती है । इसके डंने काले और छाती सफेद होती है ।

इसकी चोच बहुत लची और नुकीली होती है । लोग इनका
शिकार भी करते हैं ।

करवा^१--सञ्ज्ञा पुं० [हिं० करवा] दे० 'करवा' ।

करवा^२--सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कडवा] दे० 'कडुआ' । उ०—सुंदर सुगंधमय
मंजरी मधुर तजि कखे कुसुम कहो वाके मन भावें क्यों ।
—मोहन०, पृ० ४१ ।

करवारी--सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कलवारी] नाव खेने का एक प्रकार
का डांड ।

विशेष—इस डांड के पत्ते मे धामने का बाँस और डाड़ों से लवा
होता है । छोटी नावों में, जिनमें पतवार नहीं होती, वह माँझी
इसे लेकर पीछे की तरफ बँडता है जो मच्छा खेना जानता हो,
वो कि नाव का सीधा ले जाना और घुमाना सब कुछ उसी
के हाथ मे रहता है ।

करवार^२--सञ्ज्ञा पुं० [देश०] लोहे का बंद जिसके दोनों नुकीले छोर
मुड़े होते हैं और जो दो लकड़ियों या पत्थरों के जोड़ को दृढ़
रखने के लिये जडा जाता है ।

करु^१--वि० [हिं० कडू या कडुआ] दे० 'कडुआ' ।

करुवेल^१--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कारुवेल] इद्रायण की वेल या लता । उ०—
कीन्हेसि ऊख मीठ रस भरी । कीन्हेसि करुवेल बहु फरी ।—
जायसी ग्र०, पृ० २ ।

करर^१--वि० [हिं० कडुआ] दे० 'कडुआ' ।

करर^२^१--वि० [सं० करर] १. कठोर । कडा । उ०—चंदेल बनाफर
मुख्य सो सूर । वधेल सुगोहिल लोह करर ।—पृ० २१०,
पृ० ४१ । २. कर । निर्दय । उ०—शवास शवास छीजत शवश्य
दुष्कर काल करर । रामा यातें ऊरें समरव साधु हजूर ।—
राम० धर्म०, पृ० २३८ ।

करुला^१--सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कड़ा + ऊला (प्रत्यय०)] १ हाथ मे पहनने का
कड़ा । २. एक प्रकार का मध्यम सोना जिसकी कड़े के आकार
की कामी होती है । इसमें तोला पीछे चार रस्ती चाँदी होती
है, इसी से यह कुछ सस्ता विकता है । ३. मुँह मे भरे हुए
पानी या और किसी पनीली वस्तु को जार से मुँह से
निकालना । कुल्ला ।

करुष--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन देश का नाम । उ०—पूरव मंत्र्य
करुष देश द्वै देव किए निरमाना । पूरन रहे धान्य धन जन ते
सरित तड़ागहु नाना ।—रघुराज (शब्द०) ।

विशेष—रामायण के अनुसार यह गंगा के किनारे गया था और
राम के समय मे घोर वन था और ताडका नाम की राक्षसी
रहती थी । महाभारत के समय मे यह देश वस गया था और
इसका राजा दत्तवक्र था । वायुपुराण और मत्स्यपुराण में
करुष को विंध्य पर्वत पर बतलाया गया है । इससे विदित होता
है कि वर्तमान शाहाबाद का जिला ही प्राचीन करुष देश है ।
करेंसी--वि० [अ०] हाथो हाथ चलनेवाला । खेतदेन के व्यवहार मे
धन की तरह काम आनेवाला । जैसे,—करेंसी नोट ।

करेजा--सञ्ज्ञा पुं० [हिं० करेजा] दे० 'करेजा' । उ०—प्रोटि करेज
पानि भा लोह ।—चित्रा० पृ०, ३६ ।

करीरा

करीरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भींगुर या पतंगा । २. हाथी की सूँड का प्रारम्भिक भाग । शृङ्गमूल [को०] ।

करीरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथी की सूँड का प्रारम्भिक भाग । शृङ्गमूल [को०] ।

करीरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'करीरिका' ।

करीर, करीरु—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भींगुर या पतंगा । २. हाथी का शृङ्गमूल [को०] ।

करील—संज्ञा पुं० [सं० करीर] ऊसर और कँवरली भूमि में होनेवाली एक कंटीली झाड़ी । उ०—(क) केतिक ये कलघोत के घाम करील के कुजन ऊपर वारो ।—रसखान (शब्द०) । (ख) दोप वसंत को दीर्घ कहा उलही न करील की डारन पाती ।—पद्माकर (शब्द०) ।

विशेष—इस झाड़ी में पत्तियाँ नहीं होतीं, केवल गहरे हरे रंग की पतली पतली बहुत सी डंठलें फूटती हैं । गजप्रताने और ब्रज में करील बहुत होते हैं । फागुन चैत में इसमें गुलाबी रंग के फूल लगते हैं । फूलों के मूड जाने पर गोल गोल फल लगते हैं जिन्हें हेटी या कचड़ा कहते हैं । ये स्वाद में कसैले होते हैं और इनका अचार पड़ता है । करील के हीर की लकड़ी बहुत मजबूत होती है और इससे कई तरह के हलके असबाब बनते हैं । रेशे से रस्सियाँ बटी जाती हैं और जाल बुने जाते हैं । वैद्यक में कचड़ा गर्म, रूखा, पसीना लानेवाला, कफ, श्वास, वात, शूल, सूजन, खुजली और आँव को दूर करनेवाला माना गया है ।

करीश, करीश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] हाथियों में श्रेष्ठ । गजराज ।

करीपंकपा—संज्ञा स्त्री० [करीपञ्ज्वा] आँधी [को०] ।

करीप—संज्ञा पुं० [सं०] सूखा गोबर जो जंगलों में मिलता है और जलाने के काम आता है । वनकंडा । अरना कड़ा । जंगली कड़ा । वन उपला । उ०—कछु है अब तो कह लाज हिये । कहि कौन विचार हय्यार लिये । अब जाइ करीप की आगि जरो । गर बाँधि की सागर बुढ़ि मरो ।—केशव (शब्द०) ।

करीपिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी [को०] ।

करीस④—संज्ञा पुं० [सं० करीश] दे० 'करीश' ।

करीसा④—वि० [देश०] चूण करनेवाला । कुचलनेवाला । उ०—सुकज दुरग भगवान सरीसा, रिणमल जोधा दुपण करीसा ।—रा० ह०, पृ० ३२९ ।

करुमा^१—संज्ञा पुं० [देश०] दारचीनी की तरह का एक पेड़ जो दक्षिण के उत्तरी कनाड़ा नामक स्थान में होता है ।

विशेष—इसकी सुगंधित छाल और पत्तियों से एक प्रकार का तेल निकाला जाता है जो सिर के दर्द आदि में लगाया जाता है । इसका फल दारचीनी के फल से बड़ा होता है और काली नागकेसर के नाम से विकता है ।

करुमा^२④—वि० [सं० कटुक] [स्त्री० करुई] १. कटु ।

उ०—सुनतहि लागत हमें और इमि ज्यो करुई —सूर (शब्द०) । २. अप्रिय । उ०—करुई

फुर बात बनाई । ते प्रिय तुमहि करुई मैं माई ।—तुलसी (शब्द०) ।

करुमा^३—वि० [हि० काला] काला । श्यामवर्ण का ।

करुमाइ④—वि० [हि० करुमा] दे० 'करुमा' । उ०—विनु वूमैं करुमाइ अस लगिहै वचन हमार । जब वूमैं तव मीठे हो कहैं कवीर पुकार ।—कवीर सा०, पृ० ३९५ ।

करुमाई④—संज्ञा स्त्री० [हि० करुमा + ई (प्रत्य०)] कड़ुआपन । उ०—(क) सूर, सृजान, सपूत सुलक्षण गनियत गुन गरुमाई । विनु हरिभजन इनावन के फल तजत नहीं करुमाई ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५४६ । (ख) धूमउ तजें सहज करुमाई । अगव प्रसंग सुगध वसाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

करुमाना④—क्रि० प्र० [हि० करुमा से नाम०] १ कड़ुआ लगना । २ अप्रिय लगना । ३ गड़ना । दुखना ।

करुई④—वि० [सं० कटुक, प्रा० कडुमा] कड़वी । कण्ठ । उ०—पहिले करुई सोइ अब मीठी ।—जायसी ग्रं०, पृ० ११७ ।

करुखी—क्रि० वि० [हि० कनखी] कनखी । तिरछी नजर । उ०—सूरदास प्रभु त्रिय मिली, नैन प्राण सुख भयो चितए कखियनि अनकनि दिए —सूर (शब्द०) ।

करुण^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह मनोविकार या दुःख जो दूसरों के दुःख के ज्ञान से उत्पन्न होता है और दूसरे के दुःख को दूर करने की प्रेरणा करता है । दया । २. वह दुःख जो अपने प्रिय वधु या इष्ट मित्र आदि के वियोग से उत्पन्न होता है । शोक ।

विशेष—यह काव्य के नव रसों में से है । इसका आलंबन वधु या इष्ट मित्र का वियोग, उद्दीपन मृतक का दाह या वियुक्त पुरुष की किसी वस्तु का दर्शन या उसका दर्शन, श्रवण आदि तथा अनुभाव भाग्य की निंदा, ठंडी साँस निकलना, रोना पीटना आदि है । करुण रस के अधिष्ठाता वरुण माने गए हैं ।

३ एक बुद्ध का नाम । ४. परमेश्वर । ५ कालिका पुराण के अनुसार एक तीर्थ का नाम । ६. करना नीवू का पेड़ ।

करुण^२—वि० करुणायुक्त । दयाद्रं ।

करुणामल्लो—संज्ञा स्त्री० [सं०] मल्लिका [को०] ।

करुणविप्रलभ—संज्ञा पुं० [सं० करुणविप्रलम्भ] वियोग शृ गार [को०] ।

करुणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह मनोविकार या दुःख जो दूसरों के दुःख के ज्ञान से उत्पन्न होता है और जो दूसरों के दुःख को

करही । खग, कमान, वान, करियाँरी मय पूजि सुख भरही ।—
रघुराज (शब्द०) ।

करिरत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मैथुन की एक स्थिति [को०] ।

करिल^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कौपल] कोपल । नया कल्ला । उ०—
ओहि भाँति पलुही सुखदारी । उठी करिन नइ कौप सँवारी ।—
जायसी (शब्द०) ।

करिल^२—वि० [हि० काला] दे० 'काला' । उ०—करिल केस
विसहर विस भरे । लहरें लेहि कँवल मुख धरे ।—जायसी
(शब्द०) ।

करिवदन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जिनका मुँह हाथी के ऐसा हो ।—गणेश ।

करिवर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] श्रेष्ठ हाथी । उ०—जो सुमिरत सिधि होइ
गननायक करिवर वदन । करो अनुग्रह सोइ बुद्धिरासि सुम गुन
सदन ।—मानस, १ ।

करिवाँण^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कृपाण] कृपाण । छोटी तलवार ।
तलवार । उ०—सीगण जोडलीयाँ करिवाँण ।—वी० रासो०,
पृ० ५८ ।

करिवैजयती—सञ्ज्ञा पुं० [करिवैजयन्ती] हाथी पर स्थापित झंडा या
निशान [को०] ।

करिशाव करिशावक—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] हाथी का वच्चा [को०] ।

करिश्मा—सञ्ज्ञा पुं० [फा० करिश्मह] दे० 'करिश्मा' । उ०—इस
चमत्कार से दुनिया को चौकाया । कुछ शक्ति करिश्मा आज
हम दिखलायो ।—सूत०, पृ० ६४ ।

करिस्कंध—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करिस्कंध] हस्तिसेना । गजसेना [को०] ।

करिहस्ताचार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नृत्य में देशी भूमिचार के ३५ भेदों में
एक जिसमें हस्त स्थानक रचकर दोनों पैर तिरछे करके जमीन
पर रगड़ते हैं ।

करिहाँ—सञ्ज्ञा स्त्री० [पुं० कटिभाग] कमर । कटि । उ०—यो
मिचकी मचकी न हहा लचकै करिहाँ मचकै मिचकी के ।—
पद्माकर ग्रं०, पृ० १३० ।

करिहाँवा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कटिभाग] १. कमर । कटि । २. कोल्हू
का वह गढ़ारीदार मध्य भाग जिसमें कनेठा और भुजेल
धूमता है ।

करिहा^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कटि, प्रा० कटि] दे० 'करिहाँ' । उ०—
कीरडा सजि, सग चलै बलकै ।—हम्मीर रा०, पृ० १२८ ।

करिहायै^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० करिहा] कमर । कटि । उ०—कर
जमाय करिहायै नैन नभ ओर लगाए ।—रत्नाकर, भा० १,
पृ० २०५ ।

करीद्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करीद्र] १ ऐरावत हाथी । २. बहुत बड़ा या
विशाल हाथी ।

करी^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करि] [स्त्री० करिणी] १. हाथी । उ०—
दीरघ दरीन वसं केपे दास केसरी ज्यों केसरी को देखे बन करी
ज्यो कौपत है ।—केशव (शब्द०) ।

करी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० करी] [का० करिणी] छत पाटने का
शहतीर । धरन । कड़ी ।

करी^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कली] कली । मनखिला फूल । उ०—
कहुँ सुगंध फनि कसि निरमरी । भा अलि सग कि प्रबही
करी ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ६४ । २. १५ मात्राओं
का एक छंद जिसको चौपाई या चौपया भी कहते हैं । उ०—
चलत कहौ मधुकर भूपाल । दहिनी पावत तुम पै हाल ।—
सूदन (शब्द०) ।

करी^४—वि० [सं० कर प्रत्य० का स्त्री०] १. करने या करानेवाली । जैसे,
प्रलयकरी । २. प्राप्त करानेवाली । उत्पन्न करानेवाली । जैसे,
ग्रथकरी ।

करीन—वि० [अ० करीन] १. साथ रहने या बैठनेवाला । २.
सदृश । समान । ३. मिला हुआ ।

करीना^१—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] पत्थर गढ़ने की छेनी । टाँकी ।

करीना^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि० केराना] केराना । मसाला । उ०—
इन पर घर, उत है घरा, वनित्र न भ्राए हाट । कम करीना
वैचिकै, उठि करि चालो वाट ।—कवीर (शब्द०) ।

करीना^३—सञ्ज्ञा पुं० [अ० करीन] १. ढग । तज । तरीका । मद्राज ।
चाल । २. क्रम । तरबीज । जैसे,—इन सब चीजों को करीने
से रख दो । ३. रीति । व्यवहार । षऊर । नलीका । जैसे,—
दस भले आदमियों के सामने करीन से बँठा करो । ४. दूध के
नीचे का कपड़े से लपेटा हुआ वह भाग जो फर्श के मुँहड़े पर
ठीक बैठ जाता है ।

करीव—क्रि० वि० [अ० करीव] समीप । पास । नजदीक । निकटका ।
२. लगभग । जैसे—५००) के करीव तो चंदा घा गया है ।

यो०—करीव करीव = प्रायः । लगभग । करीबतर निकटतम ।
पास का । करीबतरीन = सबसे निकटतम । बिलकुल पास का ।

करीवन—क्रि० वि० [अ० करीवन्] लगभग । प्रायः ।

करीवी—वि० [अ० करीव + फा० ई (प्रत्य०)] नजदीकी या निकट
संबंधी ।

करीबुलमगं—वि० [अ० करीबुलमगं] मरणासन्न ।

करीम^१—वि० [अ०] १. कृपालु । दयालु । २. क्षमाशील । ३. उदार ।

करीम^२—सञ्ज्ञा पुं० ईश्वर । उ०—कर्म करीमा लिखि रहा होवहार
समरतय ।—कवीर (शब्द०) ।

मुहा०—करीम लेना = मालू के नापून काटना ।—(कलंदर) ।

करीमभार—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की जंगली घास जो
चोपायों को हरी और सूखी बिलाई जाती है ।

करीमुख^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० करी + मुख] हाथी के मुँहवाले, गणेश
जी । उ०—साधुन को सुवसी करतार करीमुख के कर सीकर
सोहै ।—मति० ग्रं०, पृ० ३६२ ।

करीमुननफस—वि० [अ० करीमुननफस] पुण्यात्मा । सदावारी ।
नेकदिल । भला । उ०—जो पद्वान कोई करीमुननफस । न
हो कंद सो अनसरी के कफस ।—कवीर मं०, पृ० ३८६ ।

करीर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वाँस का अँखुआ । वाँस का नया कल्ला ।
२. करील का पेड़ । उ०—धारधो दलन करीर तुम बहु
रितुराजन पाय ।—दीन० ग्रं०, पृ० २१६ । ३. घड़ा ।

करीरक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] युद्ध । लड़ाई [को०] ।

तेल चोर कहें तेल कराही, घूत चोरहि घूत माँझ गिराही ।—
कवीर सा०, पृ० ४६७ ।

करिगा०—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] चमारो के नाच का विद्वपक । उ०—
भूम भूम बौसुरी करिगा बजा रहा, वेसुध सब हरिजन ।—
ग्राम्या, पृ० ४४ ।

करिद०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करीन्द्र] १. हाथियो में श्रेष्ठ । उत्तम
हाथी । बड़ा हाथी । २. ऐरावत हाथी ।

करिदा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० करिदा] दे० 'कारिदा' । उ०—साँच करिदा
ओ पटवारी घोरज नेम विचारै ।—चरण० वानी, भा० २,
पृ० १२४ ।

करि^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करिन] [खी० करिणी] सूँड वाला अर्थात् हाथी ।
करि^२—प्रत्यय [हिं०] १. से । २. लिये । ३. द्वारा । उ०—तुम
करि तोषित पोषित गात । तुम ही मानत ह्वै तात ।—
'नद० ग्र०' पृ० २३६ ।

करि^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर] दे० 'कर' । उ०—नरपति व्यास कहइ
करि जोड तो तूठा तौतिसो कोडि—बी० रासो, पृ० ३० ।
करिकट—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] किलकिला नाम का पक्षी जो मछलियाँ
पकड़कर खाता है [को०] ।

करिप्रा०—सञ्ज्ञा खी० [हिं० काला] दे० 'काला' । उ०—बदन मे
कुडिता खुलि बनी, करिआ गाई में समाई मनोहर समरे ।
—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६२६ ।

करिका—सञ्ज्ञा खी० [सं०] वह घाव जो नाखून की खरोच से हो
जाता है [को०] ।

करिकुंभ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करिकुम्भ] हाथी का माया या मस्तक [को०] ।
करिकुसुभ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करिकुसुम्भ] नागकेशर का सुगन्धित
चूर्ण [को०] ।

करिखई०—सञ्ज्ञा खी० [हिं० कारिख + ई (प्रत्य०)] श्यामता ।
कालापन ।

करिखा०—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कालिख] दे० 'कालिख' ।

करिगह—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० करगह] दे० 'करगह' ।

करिणी—सञ्ज्ञा खी० [सं०] १. हस्तिनी । हथिनी । २. वह कन्या जो
वंश्य पिता और शूद्र माता से उत्पन्न हुई हो । ३. हस्ति-
पिप्पली । गजपिप्पली [को०] ।

करित—सञ्ज्ञा पुं० [दे० या सं० कारित] वह पदार्थ जो आर्द्धर या आञ्जा
देकर बनवाया गया हो [को०] ।

करिदारक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सिंह । शेर [को०] ।

करिनासिका—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वाजा या वाद्य [को०] ।

करिनिका०—सञ्ज्ञा खी० [सं० कर्णिका] दे० 'कर्णिका' । उ०—प्रधि
कमनीय करिनिका सब सुख सुदर कंदर ।—नद० ग्रं०, पृ० ६ ।

करिनी०—सञ्ज्ञा खी० [सं० करिणी] दे० 'करिणी' । उ०—सग लाइ
करिनी करि लेही । मानहु मोहि सिखावन देही ।—मानस,
३/३१ ।

२-३७

करिप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] महावत [को०] ।

करिपा—सञ्ज्ञा खी० [सं० कृपा] दे० 'कृपा' । उ०—करि करिपा अब
हेरिए दीन भक्त जोरे करन ।—श्यामा०, पृ० १५८ ।

करिपोत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हाथी का वच्चा [को०] ।

करिवध—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करिवन्ध] हाथी के बाँधने का छूटा [को०] ।

करिवदन०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करिवदन] दे० 'करिवदन' ।

करिबू—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] अमेरिका के उत्तर ध्रुवीय प्रदेश का एक
बारहसिंगा ।

विशेष—इससे वहाँ के निवासियों का बहुत सा काम चलता है ।
वे इसका मांस खाते हैं, इसकी खाल ओढ़ते हैं, खाल से तबू
या बरफ पर चलने का जूता बनाते हैं और हड्डी की छुरी
बनाते हैं ।

करिमाचल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सिंह । शेर [को०] ।

करिमुक्ता—सञ्ज्ञा खी० [सं०] गजमुक्ता [को०] ।

कारिमुख—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गणेश [को०] ।

करिया^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्ण] १. पतवार । कनवारी । उ०—
सारंग स्यामहि सुरति कराइ । पेढ़े होहि जहाँ नैनदन ऊँचे
टेर सुनाइ । गए ग्रीष्म पावस ऋतु आई सब काहू चित चाइ ।
तुम विनु ब्रजवासी यों जीवै ज्यों करिया विनु नाइ । तुम्हरे
कह्यो मानिहैं मोहन चरत पकरि लै आइ । अबकी बेर सूर के
प्रभु को नैननि आइ दिखाइ ।—सूर (शब्द०) । २. कर्णधार ।
माँझी । केवट । मल्लाह । ३. पतवार थामनेवाला माँझी ।
किलवारी घरनेवाला मल्लाह । उ०—(क) सुआँ न रहइ
खुरकि जिव, अबहि काल सो आउ । सत्तुर अहइ जो करिया,
कवहुँ सो बोरइ नाउ ।—जायसी (शब्द०) । (ख) सेतु मूल शिव
शोभिजै केशव परम प्रकास । सागर जगत जहाज को करिया
केशवदास ।—केशव (शब्द०) । (ग) जल बूडत नाव राखिहै
सोई जोई करिया पूरो । करो सलाह देव जों माँग में कहा
तुम तै दूरो ।—सूदन (शब्द०) ।

करिया^२—सि० [हिं० काला] काला । श्याम । उ०—(क) ताके
वचन वान सम लागे । करिया मुख करि जाहि अभागे ।—
तुलसी (शब्द०) । (ख) तुलसी दुख दूनो दसा दुहु देखि कियो
मुख दारिद को करिया ।—तुलसी (शब्द०) ।

करिया^३—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] ईख का एक रोग जो रस सुखा देता है
और पीधे को काला कर देता है ।

करिया^४—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० काला] काला साँप । काला नाग ।
उ०—करिया काटे जिये रे भाई । गुरु काटे मरि जाई ।—
कवीर सा०, भा० ३, पृ० १६ ।

करियाई०—सञ्ज्ञा खी० [हिं० करिया + ई (प्रत्य०)] १. काला-
पन । श्याही । कालिमा । श्यामता । २. कजली । कालिख ।

करीयाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करियावत्] जलहस्ती [को०] ।

करियारी—सञ्ज्ञा खी० [सं० कलिकारी] १. कलियारी विप । २.
लगाम । उ०—छठी भवन भूपति रानिन युत छठी कृत्य सब

क्रि० प्र०—पाना = निश्चित होना । ठहरना । तै पाना । जैसे,—
उन दोनों के बीच यह बात करार पाई है ।

करार^३—वि० [सं० कराल] दे० 'कराल' । उ०—भिरै दूऊ
भार तुटै वगत्तार, अकथ्य करार कहै देव पार ।—पृ० रा०,
२४। १७१ ।

करार^४—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० करारा = कौआ] दे० 'करारा' । उ०—
प्रातः समय बोल्ले करार सुभ कहिय पुर्व गनि । अग्नि
कोन रिपु मरन पथिक आवइ दहिन मनि ।—अकवरी०
पृ० ३२६ ।

करारना^५—क्रि० अ० [अनु० । सं० करट] काँ काँ शब्द करना ।
कौवे का बोलना । कर्कश स्वर निकालना । उ०—राधे भूलि
रही अनुराग । तब तब रुदन करत मुरझानी दूँढ़ि फिरी वन
वाग । कुँवरि अस्मित श्रीखण्ड अहि भ्रम चरण शिरीमुख
लाग । बाणी मधुर जानि पिक बोलत कदम करारत काग ।—
सूर (शब्द०) ।

करारा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कराल = उँचा या हिं० कट = काटना + सं०
आर = किनारा] १ नदी का वह ऊँचा किनारा जो जल के
काटने से बने । उ०—जघन सघन जु मयानक भारे । महानदी
के जनु कि करारे ।—नद ग्र०, पृ० २३६ । २ ऊँचा किनारा ।
३ टीला । बूह ।

करारा^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करट, प्रा० करह] कौआ । उ०—असगुन
होहि नगर पैठारा । रटहि कुमाति कुखेत क'ारा ।—
तुलसी (शब्द०) ।

करारा^३—वि० [हिं० कड़ा, करी] १. छूने में कठोर । कडा । २. दृढ़चित्त
जैसे,—जरा करारे हो जाओ, रुपया निकल आवे । ३. खूब सँका
हुआ । आँच पर इतना तला या सँका हुआ कि तोहने से कुर
कुर शब्द करे । जैसे,—करारा सेव, करारा पापड़ । ४. उग्र ।
तेज । तीक्ष्ण ।

मुहा०—करारा दम = जो थका माँदा न हो । जो शिथिल न
हो । तेज ।

५. चोखा । खरा । जैसे,—करारा रुपया । ६. अधिक गहरा ।
घोर । जैसे,—उसपर बड़ी करारी मार पड़ी । ७ जिसका
बदन कडा हो । हट्टा कट्टा । बलवान । जैसे,—करारा जवान ।

करारा^४—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] एक प्रकार की मिठाई ।
करारापन—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० करारा + पन (प्रत्यय)] कड़ाई ।
कडापन ।

करारी^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० करार] करार । समझौता । उ०—
हाथ पाँव कटि जाय करै ना सत करारी ।—पलटू०,
भा० १, पृ० ३२ ।

कराल^१—वि० [सं०] १ जिसके बड़े दाँत हो । २. डरावनी आकृति
का । डरावना । भयानक । भीषण । ३ ऊँचा ।

कराल^२—सञ्ज्ञा पुं० १ राल मिला हुआ तेल । गर्जन तेल । २ दाँत का
एक रोग जिसमें दाँतों में बड़ी पीडा होती है और वे ऊँचे नीचे
और वेडोल हो जाते हैं ।

करालमच—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करालमञ्च] सगीत में एक ताल का नाम ।

विशेष—इसमें तीन आघात और दो खाली होते हैं । इसके पञ्चा-
वज के बोल ये हैं—+ १०२० + घा केटे खुता केटेतागु
गदि धेने नागदेत । घा ।

कराला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अनंतमूल । सारिवा । भीषण या भयकर
रूपवाली । २ दुर्गा । चंडी (कौ०) ।

करालिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वृक्ष । २. तलवार (कौ०) ।

करालिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा । चंडी ।

कराली^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक ।

कराली^२—वि० डरावनी । भयावनी । उ०—परम कराली दूसरी
लबवान जिन केश । सहसन महा पिशाचिका देखि परी तेहि
देश ।—रघुराज (शब्द०) ।

कराव—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० करका] १ एक प्रकार का विवाह या
सगाई । वैठावा । २ विधवा स्त्री से किया जानेवाला विवाह ।

करावना—क्रि० सं० [हिं० कराना] दे० 'करवाना' । उ०—अब ही
तो तोसो प्रागे सेवा करावनी है ।—दो सौ बावन०, भाग० १,
पृ० २२७ ।

करावन—वि० [हिं० कराना] करानेवाला । करवानेवाला ।
उ०—जग जीवन घट घट वर्स करन करावन सोय ।—केशव०
अमी०, पृ० १३ ।

करावल—सञ्ज्ञा पुं० [त०] १ वे सैनिक या सैनिकों का दस्ता जिसका
काम आगे जाकर शत्रुपक्ष के विषय में सूचना लाना है । २
घुड़सवार । पहरेदार । ३ शिकारी ।

करावा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कराव] दे० 'कराव' ।

कराह^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० करना + आह] वह शब्द जो व्यथा के समय
प्राणी के मुँह से निकलता है । पीड़ा का शब्द । जैसे,—आह!
ऊह ! इत्यादि । उ०—या रोगी की तरह कराह कराहकर
दिन बिताते हैं ।—मारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ५५४ ।

मुहा०—कराह उठना = दुःख या पीड़ा की गहरी अनुभूति प्रकट
करना । अत्यधिक व्यवस्थित होना । उ०—मरी वासना सरिता
का वह, कैसा था मदमत्त प्रवाह, प्रलय जलधि में सगम जिसका
देख हृदय था उठा कराह ।—कामायनी, पृ० १० ।

कराह^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कडाह, प्रा० कडाह] दे० 'कडाह' ।

कराहट—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० कराहना] कराहने का भाव या क्रिया ।
कराह । उ०—इसी कराहट को कला में लपेटकर दर्द भरे
सगीत का रूप देना चाहते हैं ।—बो दुनिया, प्रा०,

कराहत—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] नफरत । घृणा ।

कराहना—क्रि० अ० [हिं० कराह' से नामिक घा०] व्यथा सूचक शब्द मुँह
से निकालना । क्लेश या पीडा का शब्द मुँह से निकालना । आह
आह करना । उ०—मरी डरी कि टरी व्यथा कहा खरी चलि
चाहि । रही कराहि कराहि अति अब मुख आहि न आहि ।—
विहारी (शब्द०) ।

कराहा^५—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कराह] दे० 'कडाहा' ।

कराही^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० कराह का स्त्री०] दे० 'कडाही' । उ०—

कराँ

हुए भूरा होता है और इसकी गरदन के नीचे का भाग सफेद होता है। यद्यपि संस्कृत कोषों में 'कराँकुल' और 'कराँच' दोनों एक नहीं माने गए हैं तथापि अधिकांश लोग 'कराँकुल' को ही 'कराँच' पक्षी मानते हैं।

कराँत—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करपत्र, प्रा० करक्त] लकड़ी चीरने का आरा।
कराँती—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कराँत] कराँत या आरा चलानेवाला।

कराँ^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कला] दे० कला'। उ०—(क) कीन्हेसि पुरुष एक निरमरा। नाम मुहम्मद पूनो करा।—जायसी (शब्द०)। (ख) तुम हूत मयो पतंग की करा। सिंहल दीप आग्र उडि पग।—जायसी (शब्द०)।

करा^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [?] सौरी या सवरी नाम की मछली जिसका मांस खाया जाता है।

करा^३—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] १ सन या मूँज का रेशा। २ दूब दल।
कराईत—सञ्ज्ञा पुं० [सं० किरात हिं० कारा, काला] एक प्रकार का काला साँप जो बहुत विषैला होता है।

कराईना—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० खर + सं० अयन = घर] छपर के ऊपर का फूस।

कराई^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० केराना] दाल का छिलका। उदं, अरहर आदि के उपर की भूसी।

कराई^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० कारा, काला] कालापन। श्यामता। उ०—मुख मुरली सिर मोर पखोआ वन वन धेनु चराई। जे जमुना जल रंग रंगे हैं ते अजहूँ नहि तजत कराई।—सूर (शब्द०)।

कराई^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० करना] १ कराने या करने का भाव। २ करने या कराने की मजदूरी।

कराकुज—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कलाङ्कुर] दे० 'कराँकुल'। उ०—कोउ तलही मुर्गवी, कोऊ कराकुल मारे।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २६।

कराग^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कराग्र] कराग्र। हाथ। उ०—वधिया कराग खग बाहते, रुक जाग चतुरगिणी।—रा० रू०, पृ० ८५।

कराघात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हाथ का आघात। हाथ का प्रहार। उ०—एक लहर आ मेरे उर मे मधुर कराघातो से देगी खोल हृदय का तेरा चिर परिचित वह द्वार।—अनामिका, पृ० ३५।

कराड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करार = खरीदनेवाला अथवा सं० किराट] १ महाजन।—(हिं०)। २ बनियो की एक जाति जो पंजाब के उत्तरपश्चिम भाग में मिलती है। ये लोग महाजनों का व्यवसाय करते हैं।

कराडना^१—क्रि० अ० [सं० कराल] जैची आवाज में बोलना। जोर से बोलना। उ०—करहा लव कराडया वे वे प्रगुल पन्न। राति ज चीन्हो बेलडी, तिण लाखोणा पन्न।—डोला०, पृ० ४१३।

करात^१—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कीरात] एक तेल जो चार जो की होती है। विशेष—यह प्रायः सोना, चाँदी या दवा तेलने के काम में आती है। इसका वजन लगभग साठे तीन ग्रैन होता है।

करात^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० करंट] दे० 'करंट'।

कराना—क्रि० सं० [हिं० करना का प्र० रूप] करने में लगाना। कुछ करने के लिये उत्प्रेरित करना।

करावत—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० करावत] १ नजदीकी। समीपता। २ नाता। रिश्ता। रिश्तेदारी। संबंध।

करावतदार—वि० [प्र० करावत + फा० दार] रिश्तेदार। संबंधी।

करावतदारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० कराव + फा० वार + ई (प्रत्य०)] रिश्तेदारी। नातेदारी। अपनायत। संबंध।

करावा—सञ्ज्ञा पुं० [अ० करावा, न० करका, हिं० करवा] जीशे का बड़ा वरन जिसमें अरुं इत्यादि रखते हैं। काँच का छोटे मुँह का पात्र। शीशे की सुगही।

कराम^१—सञ्ज्ञा पुं० [न० कर्म] दे० 'कर्म'। उ०—नामु दाम इस्मानु अरु काम। तिस मिले पदारथ जिस लिखिया कराम।—प्राण०, पृ० १५३।

करामन—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] १ प्रतिष्ठा। २ कृपा। ३ चमत्कार। ४ बुजुर्गी। ५ बड़ाई।

करामन कातवीन—सञ्ज्ञा पुं० [अ० किरामा कातवीन] इस्लामी धर्म के अनुसार वे दैवी व्यक्ति जो लोगों के पुण्य या पाप कर्मों का लेखा जोखा तैयार करते हैं। उ०—करामन कातवीन की पुस्तक में लिखा है कि इसराकोल सदैव दुखी रहता है।—कबीर म०, पृ० २२०।

करामात—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० करामत' का बहु०] चमत्कार। अद्भुत व्यापार। करश्मा। जैसे,—बाबा जी, कुछ करामात दिखाओ।

करामाति^१—वि० [हिं० करामाती] दे० 'करामाती'। उ०—दुहं करा-माति सम गनो, आप और हम्मोर।—हम्मर रा०, पृ० ६५।

करामाती—वि० [हिं० करामात + ई (प्रत्य०)] १ करामात दिखानेवाला। करश्मा दिखानेवाला। सिद्ध। २ करामत से संबंधित। उ०—कई योगियों के साथ ख्वाजा मुद्दनुद्दीन का भी ऐसा ही करामाती दगल कहा जाता है।—इतिहास, पृ० १५।

करायजा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुटज] १ कोरैया। २ इद्रजवा।

करायल^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० काला] कर्बोजी। मंगरेला।

करायल^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कराल] तेल मिली हुई राल।

करायिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक पक्षी। सारस का एक छोटा प्रकार [स्त्री०]।

करार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कराल = ऊँचा। हिं० = कट = कटना + न० आर = किनारा] नदी का ऊँचा किनारा जो जल के काटने से बनता है।

करार^२—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० करार] १ स्थिरता। ठहराव।

क्रि० प्र०—पाना।—देना।—होना।

२ धैर्य। धीरज। श्रमवी। संतोष। उ०—प्रथम दिन को करार

३ प्राराम। चैन।

४ दिन को नहीं करार। जन्मी मेरे सन्त

नारनेदु प्र०, भा० २ पृ० ७-

५।

करसमा^७—सज्ञा पुं० [फा० किरिमह] दे० 'करसमा' । उ०—
मुकामी सैन समभावें । करसमा देख दरसावें ।—सत तुरसी०,
पृ० ३६ ।

करसाइन^७—सज्ञा पुं० [हिं० करसायल] दे० 'करसायल' 'करसायर' ।
करसाद—सज्ञा पुं० [सं०] १ हाथ की दुबलता । २ किरणों का मद
पड़ना [को०] ।

करसान^७—सज्ञा पुं० [सं० कृपाण] किसान । खेतिहर । उ०—
कुरुक्षेत्र सब मेदिनी खेत करं करसान । मोह मृगा सब चरि
गया आस न रहि खलिहान ।—कवीर (शब्द०) ।

करसायर, करसायल—सज्ञा पुं० [सं० कृष्णसार] काला मृग ।
काला हिरण । उ०—घायल हूँ करसायल ज्यो मृग ज्यों उतही
उतरायल धूम ।—(शब्द०) ।

करसी—सज्ञा स्त्री० [सं० करीष] १ उपले या कड़े का टुकड़ा ।
उपलो का चूर । कड़ों की भूसी या कुनाई । कड़े की कोर ।
२ कड़ा । उपला । उ०—सोइ सुकृती सुचि सांचो जाहि राम
तुम रीकें । गनिका गीध बधिक हरिपुर गए लैं करसी प्रयाग
कम सोकें ।—तुलसी (शब्द०) ।

मुहा०—करसी लेना=उपले या कड़े की आग में शरीर को
सिमाने का तप करना । उ०—सिर करवत तन करसी लैं लैं
बढ़ सीकें तेहि आस । बहुत धूम घूँटत मैं देखे उत्तर न देख
निरास ।—जायसी ग्र० (गुप्त), १९६ ।

करसूत्र—सज्ञा पुं० [सं०] विवाह का कगन [को०] ।

कररपर्शन—सज्ञा पुं० [सं०] नृत्य में उन्मुक्त करण के ३६ भेदों में से
एक जिसमें गर्दन नीची करके उछलते तथा घरती पर गिर और
कुम्कुट आसन रच दोनों हाथों को उगट देते हैं ।

करस्थाली—सज्ञा पुं० [सं० करस्थालिन्] शिव [को०] ।

करस्वन—सज्ञा पुं० [सं०] करताली । हाथ की ताली [को०] ।

करहच^७—सज्ञा पुं० [हिं० करहस] दे० 'करहस' ।

करहत^७—सज्ञा पुं० [हिं० करहस] दे० 'करहस' ।

करहज—सज्ञा पुं० [सं०] एक वणवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक पद
में नगण, सगण और एक लघु (न स ल अर्थात् 11+115+1)
होता है । इसी को करहज वीरवर या करहज भी कहते हैं ।
उ०—निसि लघु गुपाल । ससिहि मम बाल । लखत अरि
कस । नपत कहम ।

करहज—सज्ञा पुं० [सं० कर+खज] खेत में अनाज (पलसी, चना,
मूँग, उरद आदि) का वह पीछा जो अधिक जोरदार जमीन
में पड़ने के कारण बड़ों बहुत जाता है, पर जिसमें दाना
बहुत कम पड़ता है ।

करह^७—सज्ञा पुं० [सं० करभ] ऊँट । उ०—दादू करह पलाणि
हरि को चेतन चड़ि जाइ । मिनि साहिब दिन देवताँ सौं
पड़ें निनि प्राइ ।—दादू (शब्द०) । (ख) वन ते भगि विहड़ें
परा हरहा मपनी बानि । वेदन करह फासो कहे को करहा
को जानि ।—कवीर (शब्द०) । (ग) ऊमर मुणि मुक
पीनवी, दउरि म मार नुरंग । करहउ लेंचियउ, कूटियउ,
प्राडापन बड़वग ।—योगा०, दू० ६४७ ।

करह^३—सज्ञा पुं० [कलि] फूल की कली । उ०—वाल विभूषन
लसत पाइ मुहु मजुल अग विभाग । दसरथ सुकृत मनोहर
निरवनि रूप करह जनु लाग ।—तुलसी (शब्द०) ।

करह कटग—सज्ञा पुं० [सं० देश०] गड़ करग । यह अकबर के समय
में सूबा मालवा के १२ सरकारों में से एक था ।

करहनी^७—सज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार
होता है और जिसका चावल बहुत दिनों तक रहता है ।

करहल^७—सज्ञा पुं० [हिं० करह] ऊँट । उ०—आँव कै वोरे चरहल
करहल नित्रिया छोलि छोलि खाई ।—कवीर ग्र०, पृ० १४८ ।

करहा^३—सज्ञा पुं० [देश०] सफेद सिरिस का वृक्ष ।

करहा^३—सज्ञा पुं० [सं० करभ] दे० 'करह' । उ०—दूँ घर चड़ि गयो
राँड को करहा ।—कवीर ग्र०, पृ० ११२ ।

करहाई—सज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की वेल ।

करहाट—सज्ञा पुं० [सं०] १ कमल की जड़ । भसीड । मुरार । २
कमल का छत्ता । कमल की छतरी । उ०—अगद कूदि गए
जहँ आसनगन ल केश । मनु हाटक करहाट पर शाभिज श्यामल
वेश ।—केशव (शब्द०) । ३. मैनफल ।

करहाटक—सज्ञा पुं० [सं०] १ कमल की मोटी जड़ । भसंड ।
मुरार । २ कमल का छत्ता । कमल के फूल के भीतर की छतरी
जो पहले पीली होती है, फिर बढ़ने पर हरी हो जाती है ।
उ०—(क) सुंदर मंदिर में मन मोहति । स्वर्ण सिंहासन ऊपर
सोहति । पकज के करहाटक मानहु । है कमला विमला यह
जानहु ।—केशव (शब्द०) । (ख) सुंदर सेत सरोरुह में
करहाटक हाटक की दुति को है ।—केशव (शब्द०) ।
३. मैनफल ।

करही^३—सज्ञा स्त्री० [देश०] वह दाना जो पीटने के बाद बाल में
लगा रह जाता है । उ०—कहुँ करही उबलत, सूखत, महनुम
वनत कहँ पर ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ३४ । २ शीशम
की तरह का एक प्रकार का वृक्ष जिसके पत्ते शीशम के पत्तों
से दूने बड़े होते हैं । इसकी लकड़ी बहुत भारी होती और
प्रायः इमारत के काम में आती है ।

करागण—सज्ञा पुं० [सं० कराङ्गण] १ बाजार । मेला । २ कर या
चुगी इकट्ठी करने का स्थान [को०] ।

करा^७—सज्ञा पुं० [सं० कला] दे० 'कला' । उ०—कुँवर बतीसी
लखना सहस करी जस मान ।—जायसी ग्र० (गुप्त),
पृ० ३०६ ।

कराकुल—सज्ञा पुं० [सं० कलाङ्कुर] पानी के किनारे की एक बड़ी
चिड़िया । कूँज । पनकुडो । कौच । उ०—(क) तहँ तमसा
के विपुल पुलिन में लख्यो कराकुल जोरा । विहरा मियुन
भाव में अति रत करत मनोहर शोरा ।—रघुराज (शब्द०) ।
(ख) तहँ विचरत वन में मुनिराई । युगल कराकुल परे
दिखाई ।—रघुराज (शब्द०) ।

विशेष—इस चिड़िया के झुंड ठंडे पहाड़ों देशों से जाड़े के दिनों
में आते हैं । यह 'करं करं' शब्द करती हुई पत्तों बाँधकर
आकाश में उड़ती है । इसका रंग स्याही और कुछ सुर्खी लिए

करवानक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कलविद्ध] चटक पक्षी। गोरैया। उ०—
सारस से सुवा, करवानक से साठजादे, मोर से मुगुल मोर घोर
ही घबै नहीं।—भूषण (शब्द०)।

करवाना—क्रि० सं० [हिं० करना का प्रे० रूप] करने में लगाना।
दूसरे को करने में प्रवृत्त करना।

करवार^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० करवाल] तलवार। उ०—फूले फदकत
लै फरी पल कटाछ करवार। करत वचावत विय नयन पायक
घाय हजार।—विहारी (शब्द०)।

करवाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करवाल] १ नख। नाखून। २ तलवार।

करवालिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा डंडा। यष्टि। लगुड। दंड [स्त्री०]।

करवाली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० करवाल] छोटी तलवार। कराली। उ०—
कर करवाली सोह जया काली विकराली।—गोपाल (शब्द०)।

करवावना—क्रि० सं० [हिं० करवाना] दे० 'करवाना'। उ०—श्री
ठाकुर जी को अपने कार्यायें श्रम नहीं करवावनी।—दो सौ
बावन०, भा० १, पृ० ३३१।

करवीर^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] पशुओं का चारा। उ०—सारंग गांव
सोता या पर सुजान करवी काट रहे थे।—मान०, भा० ५,
पृ० १८५।

विशेष—यह प्रायः ज्वार बाजरे के हरे या सूखे पौधों की
होती है।

करवीर, करवीरक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कनेर का पेड़। २ तलवार।
वग। ३ श्मशान। ४ ब्रह्मावर्त देश में दृशद्वी के किनारे
की एक प्राचीन राजधानी। ५ चेदि देश का एक नगर जहाँ
के राजा शृगाल ने कृष्ण और बलराम को उस समय रोका
था, जब वे जरासव के भागने पर करवीर की ओर ससैन्य जा
रहे थे।

करवीराक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] खर राक्षस का एक सेनापति जिसे
रामचंद्र ने मारा था।

करवीली—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करीर] करील। टेंटी का पेड़। कचड़ा।

करवेया^७—वि० [हिं० करना + वेया (प्रत्य०)] करनेवाला।

करवोटी—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक चिड़िया का नाम। उ०—करवोटी
बागवगी नाक वासा वेसर दै श्यामा वया कूर ना गहर
गहियतु है (चिड़िमारिन)।—रघुनाथ (शब्द०)।

करशाखा—सञ्ज्ञा स्त्री० [न०] उँगली।

करशू—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] हिमालय पर होनेवाला एक बड़ा सदाबहार
पेड़।

विशेष—यह अफगानिस्तान से लेकर मूटान तक होता है। इसकी
लकड़ी बहुत दिनों तक रहती है और बड़ी मजबूत होती है।
इसका कोयला भी बहुत अच्छा होता है। इसकी पत्तियाँ चारे
के काम में आती हैं। इसपर चीनी रेशम के कीड़े भी पाले
जाते हैं।

करशूक—सञ्ज्ञा पुं० [न०] नख। नाखून [स्त्री०]।

करश्मा—सञ्ज्ञा पुं० [फा० किरिश्मह] चमत्कार। अद्भुत व्यापार।
करामात।

करप^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्प] १. खिचाव। मनमोटाव। अकस।
तनाजा। तनाव। द्रोह। उ०—कत करप हरि सन परि
हरहू। मोर कहा अति हित हिय घरहू।—तुलसी (शब्द०)।
२ क्रोध। अमर्ष। ताव। लड़ाई का जोश। उ०—वार्ताहि
वात करक बडि आई। जुगुज अतुल बल पुनि तरनाई।—
तुलसी (शब्द०)।

करप^२^७—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कलक] दुख। व्यथा। उ०—सुण वाणी
तन करप मिटे सह छक बंदे मन हरप छया।—रघु०, पृ० ६८।

करपक^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्पक] खेती से जीविका करनेवाला।
किसान। खेतिहर। उ०—गई वरपा करपक विकन सूखत
सालि सुनाज।—तुलसी ग्र०, पृ०, ६७१।

करपना—क्रि० सं० [सं० कर्पण] १ खींचना। तानना। घसीटना।
उ०—(क) वारहि वार अमरपत करपत करकें परी सरीर।—
तुलसी (शब्द०)। (ख) सुर तर सुमन माल सुर वरपहि।—
मनहुँ बलाक अवलि मनु करपहि।—तुलसी (शब्द०)। (ग)
पद नख निरधि देवसरि हरपी। सुनि प्रभु वचन मोह मति
करपी।—तुलसी (शब्द०)। २ सोख लेना। सुखाना।
जब्व करना। उ०—कोइ सिरजै पालै सहारै। कोइ बरपै
करपै कोइ जारै।—रघुनाथ (शब्द०)। ३ बुलाना। निम-
त्रित करना। आकर्षण करना। समेटना। इकट्ठा करना।
वटोरना। उ०—सुनि वसुदेव देवकी हरपे। गोद लगाइ सकल
सुख करपे।—(शब्द०)।

करपा^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्प] १ उत्तेजना। बढ़ावा। उ०—
(क) एकहि एक बढ़ावहि करपा।—मानस, २। १९१।
(ख) करपा तजिकै परपा वरपा हित मास्त घाम सदा
सहिकै।—(शब्द०)। २ क्रोध। अमर्ष। ताव। लड़ाई
का जोश।

करपेव^७—वि० [सं० कृश + इव] कृश। दुर्बल। कमजोर।

करसंपुट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ हाथों की अंजलि। २ हाथ जोड़कर
विनय करने की मुद्रा। उ०—निर नाइ देव मनाय सब सन
कहत करसंपुट किए।—मानस, २। ३२६।

करसण^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्षण] कृषि। खेती। उ०—झाठी एक
सदेशइउ डोलइ लगि लइ जाइ। कण पाकउ करसण हुवउ
भोग लियउ घरि आई।—ढोला०, पृ० १२१।

करसण^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृष्ण] दे० 'कृष्ण'।

करसना^७—क्रि० सं० [सं० कर्षण] दे० 'करसना'। उ०—या पर
कृष्ण चरन परसिहैं। इत तें अडि दुष्टहि करसिहैं।—नद०
ग्र०, पृ० २०६।

करसनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की लता।

विशेष—यह समस्त उत्तर भारत में होती है। इसकी पत्तियाँ
२-३ इंच लंबी होती हैं जिनपर भूरे रंग के रोएँ होते हैं।
यह फरवरी और मार्च में फूलती है। इसके पके फलों के रंग
से एक प्रकार की बेंगनी स्याही बनती है। इसकी जड़ और
पत्तियाँ दवा के काम आती हैं। इसको हीर भी कहते हैं।

कटि कटि मेखला समरपित क्रिसा अग मापित करल ।—
वेलि०, दू० ६६ ।

करलव(५)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कलरव] दे० 'कलरव' । उ०—कूँभडियाँ
करलव कियउ, धरि पाछिले वणोहि । सूती साजण सभरचा,
ब्रह्म भरिया नयणोहि ।—ढोला०, दू० ५४ ।

करला(५)—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कल्ला] दे० 'कल्ला' ।

करली(५)—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० करील] कल्ला । कोमल पत्ता । कनखा ।
उ०—वही भाँति पलही सुख बारी । उठी करलि नइ कोप
सँवारी ।—जायसी (शब्द०) ।

करलुरा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की काँटेदार लता जिसमें
सफेद और गुलाबी फूल लगते हैं ।

विशेष—यह समस्त भारत में पाई जाती है और फरवरी से
मई तक फूलती तथा अगस्त सितंबर में फलती है । इसका
फूल सुर्खी लिए भूरे रंग का होता है और उसका अचार पड़ता
है । हाथी इसकी पत्तियाँ और टहनियाँ बड़ी रुचि से खाते हैं ।

करवैँटा—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की लता जो अवध, बगाल,
दक्षिण और लका में पाई जाती है ।

विशेष—इसमें ४-५ इंच लंबी पत्तियाँ लगती हैं और पीले फूल
होते हैं । इसकी डाल छाजन या दोरियाँ बनाने के काम में
आती है ।

करवैँटा(५)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करमव] दे० 'करोदा' । उ०—वैँर करवैँदे
हैंस सिहोर अनास ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ७५ ।

करवट^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० करवट, प्रा० करवट्ट] हाथ के बल लेटने की
मुद्रा । वह स्थिति जो पाश्वर्क के बल लेटने से हो । उ०—गढ़
भुरछा रामहि सुभिरि, नृप फिरि करवट लीन्ह । सचिव राम
आगमन कहि विनय समय सम कीन्ह ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—फिरना ।—फेरना ।—बदलना ।—लेना ।

मुहा०—करवट बदलना=(१) दूसरी ओर घूमकर लेटना । (२)
पलटा खाना । और का और कर बँटना । (३) एक ओर से
दूसरी ओर जाना । एक पक्ष छोड़कर दूसरे पक्ष में हो जाना ।
करवट लेना=(१) दूसरी ओर फिर कर लेटना । मुँह फेरना ।
पीठ फेरना । (२) और का और हो जाना । पलट जाना ।
(३) बेरुख होना । फिर जाना । विमुख होना । करवट खाना
या होना=(१) उलट जाना । फिर जाना । (२) जहाज का
किनारे लग जाना । (३) जहाज का टेढ़ा होना वा झुक
जाना ।—(लश०) । करवट न लेना=किसी कर्तव्य का ध्यान
न रखना । दम न लेना । साँस न लेना । सन्नाटा खीचना ।
जैसे,—इतने दिन रुपए लिए हो गए, अवतक करवट न ली ।
करवटें बदलना=बार बार पहलू बदलना । विस्तर पर बैचन
रहना । तडपना । विफल रहना । करवटो में काटना=सोने
का समय व्याकुलता में बिताना ।

करवट^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करपत्र, प्रा० करवत्त] १ एक दाँतेदार औजार
जिससे बड़ई बड़ी बड़ी लकड़ियाँ चीरते हैं । करवट । आरा ।
२ पहले प्रयाग, काशी आदि स्थानों में आरे वा चक्र रहते
थे जिनके नीचे लोग फल की आशा से, प्राण देते थे, ऐसे आरे
वा चक्र को 'करवट' कहते थे, जैसे, 'काशीकरवट' ।

मुहा०—करवट लेना=करवट के नीचे सिर कटाना । 'उ०—
तिल भर मछली खाइ जो कोटि गऊ दे दान । काशी करवट
ले मरै तो हूँ नरक निदान ।—(शब्द०) ।

करवट^३—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष । जसूँद । नताउल ।
विशेष—इसका गोद जहरीला होता है और जिसमें तीर जहरीले
करने के लिये बुझाए जाते हैं ।

करवट्ट(५)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करपत्र, प्रा० करवत्त अथवा हिं० करवट]
दे० 'करवट' । उ०—गारी मति दीजो मो गरीबिनी को जायो
है । काशी करवट्ट लीनो द्रव्य हूँ लुटायो है ।—(शब्द०) ।

करवत्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करपत्र, प्रा० करवत्त] एक दाँतेदार औजार
जिससे लकड़ी काटी जाती है । आरा । उ०—दाढ़ू सिरि
करवत्त वहै, विसरै आतम राम ।—दाढ़ू, पृ० ५२ ।

करवर(५)—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] अलप । घात । विपत्ति । श्रोवट ।
आफत । सकट । आपत्ति । कठिनाई । मुसीबत । जानजोखिम ।
उ०—(क) ईश अनेक करवरैं टारी ।—तुलसी (शब्द०) ।
(ख) क्यों मारीच सुबाहु महाबल प्रबल ताडका मारी । मुनि
प्रसाद मेरे राम लखन की विधि बड़ि करवरैं टारी ।—तुलसी
(शब्द०) । (ग) कुँवरि सों कहति वृषभानु घरनी । बड़ी
करवर टरी साँप सो ऊवरी, वात के कहत तोहि लगति
जरनी ।—सूर (शब्द०) । (घ) वृक्षहु जाय तात सों वात ।
जब ते जनम भयो हरि तेरो कितने करवर टरे कन्हाई । सूर
स्याम कुल देवनि तोको जहाँ तहाँ करि लिए सहार्ई ।
—सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—टलना ।—पड़ना ।

करवरना(५)—क्रि० अ० [सं० कलरव, हिं० करवर, कलवल] कलरव
या शोर करना । चहकार करना । चहकना । उ०—सारी
सुआ जो रहचह करही । कुरहि परेवा ओ करवरही ।—
जायसी (शब्द०) ।

करवल—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] जस्ता मिली हुई चाँदी । वह चाँदी
जिसमें रुपए में दो आने भर जस्ता मिला हो ।

करवा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करक] १ घातु या मिट्टी का टोटीदार लोटा ।
वघना । उ०—इक हाथ करवा दुसर हाथ रसरी त्रिकुटी
महल की डगरी पकरी ।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ४० ।
२ जहाज में लगाने की लोहे की कोनिया या घोड़िया ।
—(लश०) ।

करवा^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करक=केकड़ा] एक प्रकार की मछली जो
पंजाब, बगाल तथा दक्खिन की नदियों में पाई जाती है ।

करवा^३(५)—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कारा+वा (प्रत्य०)] श्याम रंगवाना
अर्थात् कृष्ण । उ०—मन लगाई प्रीति कीजै कर कारवा सो
ब्रज वीथिन दीजै सोहनी ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० १९६ ।
करवागौर—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० करवा+गौर] दे० 'करवा चौथ' ।

करवाचौथ—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० करका चतुर्थी] कार्तिक कृष्ण चतुर्थी ।
विशेष—इस दिन स्त्रियाँ सीमाग्न आदि के लिये गौरी का व्रत
करती हैं और सायकाल मिट्टी के करवे से चंद्रमा को ग्रहण
देती हैं तथा पकवान के साथ करवे का दान करती हैं ।

करमाला—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] अमलताम ।

करमाली—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करमालिन्] सूर्य । उ०—दीनदयाल दया कर देवा । करे मुनि मनुज सुरासुर सेवा । हिम तम करिकेहरि करमाली । दलन दोष दुख दुरित रजाली ।—तुलसी (शब्द०) ।

करमियाँ—वि० [सं० कर्म + हि० इया (प्रत्य०)] १ कर्मों । २ कर्मण्य ।

करमी—वि० [हि० कर्मों] १ कर्म करनेवाला । २ कर्मठ । कर्मरत । उ०—महा कुटिल बड करमी गूहिया, ताते नरक अधोर बडपरिया ।—कवीर सा०, पृ० ४६६ ।

करमुँहा—वि० [हि० काला + मुँहा] १ काले मुँहावाला । उ०—जरी लगूर सु राती उहाँ । निकसि जो भाग गए करमुँहा ।—जायसी (शब्द०) । २ कलकी ।

करमुक्त—वि० [सं०] कर से विमुक्त । जिसे या जिसपर कर न चुकाना पड [क्रि०] ।

करमुक्त—सञ्ज्ञा पुं० फँक कर प्रहार के काम आनेवाला हथियार [क्रि०] ।

करमुखा—वि० [हि० काला + मुख] [स्त्री० करमुखी] काले मुँहावाला । कलकी । उ०—(क) सुज के दुख जो ससि होइ दुखी । सो कित दुख माने करमुखी ।—जायसी (शब्द०) । (ख) कित करमुखे नयन भँ हरा जीव जेहि वाट । सरवर नीर बिछोह ज्यों, तडक तडक हिय फाट ।—जायसी (शब्द०) ।

करमूल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर + मूल] कलाई [क्रि०] ।

करमूली—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक पहाड़ी पठ ।

विशेष—यह गढवाल और कुमाऊँ में अधिक होता है । इसकी लकड़ी कड़ी और ललाई लिए हुए भूरे रंग की तथा वजन में प्रति घनफुट २२ सेर के लगभग होती है । यह इमारतों में लगती है और खेती के औजार बनाने के भी काम आती है । पहाड़ी लोग इस लकड़ी के कटोरे भी बनाते हैं ।

करमैस—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] करगह की एक लकड़ी । कुलवाँसा । कुलर । अमैर । सुत्तुर ।

विशेष—यह ऊपर की ओर बँधी रहती है । इसी में दो नवनियाँ लटकती हैं जो कंधियों की कांडी से बँधी रहती हैं । इन नवनियों को पैर से ट्वाकर जुलाहे ताने का सूत ऊपर का नीचे और नीचे का ऊपर किया करते हैं ।

करमैत—वि० [हि० करम + ऐत (प्रत्य०)] उत्कृष्ट कर्म करनेवाला । उ०—हरनाय जसो करमैत कुल, वयण लखे वध वविकयो ।—रा० ह०, पृ० १५७ ।

करमैती—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० करम + ऐत (प्रत्य०)] कृष्ण की एक उपासिका भक्ति जो शेपावती नगरी के राजा के पुरोहित परशुराम की कन्या थी ।

करमैली—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का तोता ।

विशेष—यह साधारण तोते से कुछ बड़ा होता है । इसके परों पर लाल दाग होते हैं ।

करमोद—सञ्ज्ञा पुं० [सं० मोद + कर ?] एक प्रकार का धान जो अगहन के महीने में तैयार होता है ।

करर—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] १ एक, जहरीला कीड़ा जिसके शरीर में बहुत सी गठि होती हैं । २ रंग के अनुसार घोड़े का एक भेद । ३ एक प्रकार का जंगली कुसुम वा बरें का पौधा ।

विशेष—यह उत्तरपश्चिम में पंजाब, पेशावर, आदि सूखे स्थानों में बहुत होता है । जहाँ यह अधिक होता है वहाँ इसके बीज का तेल निकाला जाता है जो पोली का तेल कहलाता है । अफरीदियों का मोमजामा इसी तेल से बनाया जाता है । इसमें फूल बहुत अधिकता से लगते हैं । इसकी लकड़ी बहुत मुलायम होती है । इसकी टहनियाँ और पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं ।

कररना, करराना—क्रि० अ० [अनु०] १. चरमराकर टूटना । मरमराकर टूटना । २ कर्कट शब्द करना । कर्कश शब्द बोलना । उ०—मधुर वचन कट्ट बोलियो विनु थम भाग ।—अभाग । कुट्ट कुट्ट कलकठ रव का का कररत काग ।—तुलसी (शब्द०) ।

कररा—सञ्ज्ञा पुं० [फा० गर्रा] गिराव । छर्रा । उ०—छोट छिरकत अग रग के उठत भभूके । मनमयगोलदाज मनो सो कररा फूके ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० २० ।

कररान—सञ्ज्ञा स्त्री० [अनु०] धनुष चलाने, का शब्द । धनुष की टंकार । उ०—कररान धनुष सुन्नी । मरमरान वीर दुन्नी ।—सूदन (शब्द०) ।

कररी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्बुर] वनतुलसी । बवरी । ममरी । उ०—ऊधो तनिक सुयश श्रीनन सुन । कंचन कांच, कपूर कररि रस, सम दुख सुख, गुन औगुन ।—सूर (शब्द०) ।

कररी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुररी] बटेर की जाति की एक प्रकार की चिड़िया ।

विशेष—यह साधारण बटेर से कुछ बड़ी और बहुत सुंदर होती है । यह हिमालय में प्रायः इसी जगह पाई जाती है । इसकी खाल का बहुत बड़ा व्यापार होता है ।

करसह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नख । नाखून ।

कररेचकरतन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नृत्य में ५१ प्रकार के चालको या हाथ धमाने फिराने की मुद्राओं में से एक जो बहुत कठिन समझी जाती है ।

विशेष—इसमें दोनों हाथों को कमर पर रख स्वस्तिक कर माथे पर से जाते हैं तथा हाथों को मडलाकर करते हुए ऊपर लाते हैं । फिर एक हाथ नितंब पर रखकर दूसरे हाथ को पहिए की तरह घुमाते हुए दोनों हाथों को झुलाते हैं और सिध सरल उतारी करके सीधा फैलाते हैं । फिर उद्वेष्टित, प्रसारित आदि कई प्रकार के कंबो के पास दोनों हाथ घुमाते हैं । इसी प्रकार की और बहुत सी क्रियाएँ करते हैं ।

करल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कडाह] कडाह । कडाही । उ०—करल चढ़े तेहि पाकहि पूरी । सूठी माँझ रहैं सो जूरी ।—जायसी (शब्द०) ।

करल—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० करल] मुष्टि । उ०—(क) तीखा लोयण, कटि करल, उर रत्तड़ा त्रिवीह । ढोला बाँकी माव्ह जाँणि बिलूछ सीह ।—डोला०, दू० ४५६ । (ख) स्यामा

करभोर^२—वि० जिसकी जाँघ हाथी की सूँड की सी मोटी हो।
जिसकी जाँघ सुंदर हो। सुंदर जाँघवाली।

करम^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्म] १ कर्म। काम। करनी।

यो०—करमभोग = अपने कर्मों का फल। वह दुःख जो अपने किए हुए कर्मों के कारण हो। करम धरम = आचार व्यवहार।
उ०—जिसे अपने करम धरम की धातें कम मालूम थी।—
किन्नर०, पृ० १८।

मुहा०—करम भोगना = अपने किए का फल पाना।

२ कर्म का फल। भाग्य। किस्मत।

मुहा०—करम फूटना = भाग्य मद होना। भाग्य बुरा होना।
किस्मत खोटी होना। करम टेढ़ा या तिरछा होना = ३० 'करम फूटना'। उ०—पालागों छाडी अब अचल वार वार अचल करौं तेरी। तिरछे करम भयो पूरव को प्रीतम भयो पाँय की वेरी।—सूर (शब्द०)।

यो०—करम का घनी या वली = (१) जिसका भाग्य प्रबल हो।
भाग्यवान। (२) प्रभागा। बदकिस्मत—(व्यग)। करमरेख =
भाग्य का लिखा। वह बात जो किस्मत में लिखी हो।

करम^३—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] १ महिषासुर। क्रपा। उ०—करम उनका मदद जब तें न होवे। वली हरगिज विलायत कूँ न पावे।—
दक्खिनी०, पृ० ११४। २ मुर नाम का गौंद या पश्चिमी गुग्गुल जो भरव और अफ्रीका से आता है। इसे 'बदा करम' भी कहते हैं।

करम^३—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक बहुत ऊँचा पेड़ जो तर जगहों में,
विशेषकर जमुना के पूर्व की ओर, हिमालय पर ३००० फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है।

विशेष—इसकी सफेद और खुरदरी छाल आघ इच के लगभग मोटी होती है, जिसके भीतर से पीले रंग की मजबूत लकड़ी निकलती है। इस लकड़ी का वजन प्रति घनफुट १८ से २५ सेर तक होता है। यह लकड़ी इमारतों में लगती है और मेज, अलमारी आदि असबाब बनाने के काम में आती है। इस पेड़ को हलदू वा हरदू भी कहते हैं।

करमई—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश] कचनार की जाति का एक झाड़ी-दार पेड़।

विशेष—यह दक्षिण मलाबार आदि प्रांतों में होता है। हिमालय की तराई में गंगा से लेकर आसाम तथा बंगाल और बरमा में भी यह पाया जाता है। ववई में इसकी चरपरी पत्तियाँ खाई जाती हैं। अन्य जगह भी इसकी कोमलों का साग बनता है।

करमकल्ला—सञ्ज्ञा पुं० [अ० करम + हि० कल्ला] एक प्रकार की गोभी जिसमें केवल कोमल कोमल पत्तों का बंधा हुआ संपुष्ट होता है। इन पत्तों की तरकारी होती है। बंशी गोभी। पातगोभी। बदगोभी।

विशेष—यह जाड़े में फूलगोभी के थोड़ा पीछे माघ-फागुन में होता है। चूँत में पत्ते खुल जाते हैं और उनके बीच से एक डठल निकलता है जिसमें सरसों की तरह के फूल और पत्तियाँ लगती हैं। फलियों के भीतर राई के से दाने या बीज निकलते हैं।

करमचद^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्म + हि० चद] कर्म। उ०—बास पुरान साज सब अटखट सरन तिकोन खटोला रे। हमहि दिहल करि कुटिल करमचद मद मोल विनु डोला रे।—
तुलसी (शब्द०)।

करमज^१—वि० [सं० कर्मज अथवा हि० करम + क = (का)] दे० 'कर्मज'। उ०—संत चरण कर अस परतापा। मेटें दोष दुख करमज दापा।—कवीर सा०, पृ० ४१०।

करमट्टा—वि० [पुं० कर + हि० मट्टा सुस्त या आलसी] कृपण। सुम। कजूस।

करमठ^१—वि० [कर्मठ] १ कर्मनिष्ठ। २ कर्मकांडी। उ०—
करमठ कठमलिया कहै, जानी ज्ञान विहीन। तुलसी त्रिपय विहाइ गो, राम दुआरे दीन।—तुलसी (शब्द०)।

करमता^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कर्म + ता (प्रत्य०)] दे० 'कर्म'। उ०—
सकल करमता लाभ यह जीव जडयता माँहि।—रज्जव०, पृ० ६।

करमफरमा—वि० [अ० करम + फा० फर्मा] दयालु। मेहरवान।
करमरत^१—वि० [मं० कर्म + रत] कर्मठ। कर्मलीन। उ०—विरत, करमरत, भगत, मुनि, सिद्ध ऊँच अह नीचु।—तुलसी प्र०, पृ० १०२।

करमरिया—वि० [पुं० कलमरिया] समुद्र में हवा के गिर जाने से लहरो का शांत हो जाना।

करमरी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करमरिन्] आजीवन कारावस के लिये दंडित बंदी (क्रो)।

करमरेख—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कर्म + लेख] दे० 'कर्मरेख'। उ०—है करमरेख मूठियों में ही। वेहतरी बाँह के सहारे है।—चुमते०, पृ० १०१।

करमर्द, करमर्दक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कराम्त। आवला। २ करौंदा।
करमसैक—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कर्म + सैकना] १ पंचों का हुक्का। विरादरी का हुक्का। २. कम घी में पके हुए कड़े पराठे जो कठिनता से खाए जायें।

करमहीन—वि० [सं० कर्म + हीन] दे० 'कर्महीन'। उ०—सकल पदारथ हैं जग माही। करमहीन नर पावत नाहीं।—
तुलसी (शब्द०)।

करमा^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कर्मा] एक भक्ति का नाम।

विशेष—इसका मंदिर जगन्नाथ जी में बना है। इसकी खिचड़ी जगन्नाथ जी को भोग लगती है।

करमा^३—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कैमा] दे० 'कैमा'।

करमा^३—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] कोन-भीलो के नृत्य एवं गान की एक शैली।

करमात^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्म] कर्म। भाग्य। किस्मत। नसीब।
उ०—सुनु सजनी मेरी एक बात। तुम तो अति ही करति बड़ाई मन मेरी सरमात। मोसो हँसति स्याम तुम एकै यह सुनि कै भरमात। एक अंग को पारन पावति चकित होइ भरमात। वह मूरति द्वै नैन हमारे लिखा नही करमात।—सूर (शब्द०)।

करमाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] धन्य (क्रो)।

करमाला^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] उँगलियों के पीर जिनपर उँगली रख कर माला के अभाव में जप की गिनती करते हैं।

करपा

करपा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] अनाज के तैयार पीछे जिनमे बाल लगी हो। लेहना। डाँठ।

करपात्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वस्तुग्रहण के लिये गहरी की हुई दोनों हाथों की संयुक्त हथेली [को०]।

करपात्री—वि० [सं० करपात्रिन्] अन्न जल आदि के ग्रहण के लिये अङ्गुलि ही जिसका वर्तन हो। विरक्त साधु [को०]।

करपान—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक चर्मरोग जिसमें बच्चों के शरीर पर लाल नान दाने निकल आते हैं।

करपाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ खग। २ तलवार। ३. लाठी। ४ गदा [को०]।

करपालिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ लाठी। सोटा। २ तलवार [को०]।

करपिचकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कर = हाथ + हि० पिचकी (पिचकारी)] दोनों हाथों के योग से बनाई हुई पिचकारी। उ०—छिड़के नाह नबोड दग, करपिचकी जल जोर। रोचक रंग तानी भई विय सिय लोचन कोर।—विहारी (शब्द०)।

विशेष—प्रायः लोग दोनों हाथों के बीच में, कई प्रकार से जल भरकर इस प्रकार और ऐसे दवाते हैं कि उसमें से पिचकारी

सी छूटती है इसी को करपिचकी कहते हैं।

करपीडन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करपीडन] पाणिग्रहण। विवाह। उ०—करपीडन-प्रेम याम था। कह, स्वीकार कहूँ कि त्याग था?—साकेत, पृ० ३५८।

करपुट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ समानार्थ हाथ जोड़ना। २ अजलि। दोनों हथेली मिलकर किसी वस्तु के ग्रहणार्थ बनाया गड़्हा [को०]।

करपूर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्पूर] दे० 'कर्पूर'। उ०—उत्तिर, गुनाव नीर, करपूर परसत, विरङ्ग-अनल-ज्वाल-जालन जगतु है।—

नद० ग्रं०, पृ० २६५।

करपृष्ठ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हथेली के पीछे का भाग।

करफूल—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कर + फूल] दे० 'दौना'।

करपयू—सञ्ज्ञा पुं० [ग्रं० कर्पयू] १ घटा वजना जो निश्चित समय पर सायकाल सकेत के लिये बजता था, जिसके कारण रौशननी बुझा दी जाती थी और आग को डक दिया जाता था। रौशननी बुझा देना। रौशननी की ऐसी व्यवस्था जिससे बाहर या ऊपर से प्रकाश का पता न चले।

विशेष—द्वितीय विश्वयुद्ध के समय हवाई हमले की आशका के कारण इस प्रकार की व्यवस्था की गई थी और साइरन बजाकर इसकी सूचना दी जाती थी।

२ विशेष प्रकार की राजकीय निषेधाज्ञा जिसके द्वारा घर से बाहर निकलना या किसी विशेष मार्ग या स्थान पर जाना आदि निषिद्ध होता है। करपयू आडर।

यो०—करपयू आर्डर = प्रकाश हीनता का आदेश या करपयू की व्यवस्था।

करकच्चा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] दैलो पर लादने का दोहरा। यँला। खुरजी। गौन।

करवर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्वर] चीता। उ०—ठारी सारी नील की ओट अचूक, चुकी न। मो मन मूग करवर गहँ अहे अहेरी नन।—विहारी र०, दो० ५०।

३-३६

करवरना—सञ्ज्ञा पुं०—कि० अ० [सं० कलवर] पक्षियों आदि का कलवर करना। उ०—सारी सुआ जो रहचह करहीं। कुरहि परेवा ओ करवरही।—जायसी (शब्द)।

करवराना—कि० अ० [हि० कलवल से नाम०] हलचल करना। खडवडाना। चंचल हो उठना।

करवलो—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] १ अरब का वह उजाड़ मैदान जहाँ दुर्जन मारे गए थे। २ वह स्थान जहाँ ताजिए दफन किए जायें। ३. वह स्थान जहाँ पानी न मिले।

करवस—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] दरियाई घोड़े के चमड़े का बना हुआ एक प्रकार का चाबुक।

विशेष—यह अफ्रिका के सिनार नगर में बनता है और मिस्र में बहुत काम में लाया जाता है।

करवाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० १ 'करवाल'। २ हाथ की उँगलियों का नख [को०]।

करवी—सञ्ज्ञा स्त्री० [न० खर्व] ज्वार के पेड़ जो काटकर चौपायों को खिलाए जाते हैं। कांटा। उ०—तहाँ कटौ मगरवी अरिगन चरवी चापट करवी सी काटें।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १६२।

करव्वी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० करवी] दे० 'मरवी'। उ०—कडे सैन चहुवान मानहु करव्वी।—प० रासो, पृ० ८४।

करवुर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्वुर या कर्वुर] दे० 'कर्वुर'।

करवूम—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] घोड़े की जीन या चारजामे में टँकी हुई रस्सी या तसमा जिसमें हथियार या और कोई चीज लटकाते हैं।

करभ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० करभी] १ हथेली के पीछे का भाग। करपृष्ठ। २ ऊँट का वच्चा। ३ हाथी का वच्चा। ४ ऊँट। उ०—पच सहस सादी परे, करभ कटि सत पेट। डेठ ग्रहन रण भूम मह, वही श्रोण मिलि रेत।—प० रासो, पृ० १५४। ५ नख नाम की सुगन्धित वस्तु। ६. कटि। कमर। ७. दोहे के सातवें भेद का नाम जिसमें १६ गुरु और १० लघु होते हैं। जैसे,—नए पशू तारे पगु सुनी पशुन की वात। मेरी पशुमति देखि कै काहे मोहि विनात। ८ कनिष्ठा (छिपुनी) अंगुली से लगाकर उसके नीचे तक हथेली का उभरा भाग [को०]।

करभा^१—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जंगली गाना जो प्रायः कोल, भील आदि गाते हैं।

करभा^२—सञ्ज्ञा पुं० [न० करभा] दे० 'करम'। उ०—जानु जंघ, सुघटनि करभा, नही रभा तूल। पीत पट काछनी मानहु, जलज केसर भूल।—सूर०, १०। १७५५।

करभार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर + भार] कर का बोझ। भारी कर।

करभीर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सिंह।

करभूपण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हाथ में पहनने का आभूषण। कडा या कण जैसा गहना [को०]।

करभोर^१—सञ्ज्ञा पुं० [न०] हाथी की सूँड जैसा सुडौल जघा। उ०—पृथु नितव करभोर कमल पद नख मणि चंद्र अनूप। मानहु लव्य भयो वारिज दल इहु किए दश रूप—सूर (शब्द०)।

विशेष—सञ्ज्ञा शब्दों के साथ 'करना' लगाने से बहुत सी क्रियाएँ बनती हैं। जैसे,—प्रशंसा करना, सुस्ती करना, अच्छा करना, बुरा करना, ढीला करना। सब भाववाचक और गुणवाचक सञ्ज्ञाओं में इसका प्रयोग हो सकता है। पर वस्तु या व्यक्ति-वाचक सञ्ज्ञाओं के साथ यह केवल कही कही लगता है और भिन्न भिन्न अर्थों में। जैसे,—गड़ढा करना, छेद करना, घास करना, दाना पानी करना, लकीर करना।

करनाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० करनाय] तुरही।

करनाट—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्णाट] दे० 'कर्णाट'। उ०—करनाट हवस फिरगहू विलायती बलख रूम अरि तिय छतियाँ दलति हैं।—भूपण ग्रं०, पृ० ८६।

करनाटक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्णाटक] कर्णाटक नामक देश का एक भाग।

विशेष—यह पूर्वी और पश्चिमी घाटों के बीच, दक्षिण में पालघाट से लगाकर उत्तर में बीदर तक फैला हुआ है। यहाँ प्रायः कन्नड भाषा बोली जाती है। आजकल इस प्रदेश का नाम मैसूर राज्य है।

करनाटकी^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्णाटकी] १. करनाटक प्रदेश का निवासी। २. कलावाज। कसरत दिखानेवाला मनुष्य। ३. जादूगर। इद्रजानी। उ०—करनाटकी हाटकी सुदर समा तुरत बनाई। डो न बजाय बखानि भूप कह दिय आवतें लगाई।—(शब्द०)।

करनाटकी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कर्णाटकी] करनाटक प्रदेश की भाषा। कन्नड भाषा।

करनाटी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्णाटी] दे० 'कर्णाटी'। उ०—करनाटी, हसावती, पदमावती, ससिवृता, इच्छिन पवारी, ये पंच पटरानी बुलवाय हजूर लई।—प० रासो पृ० ५५।

करनाल—सञ्ज्ञा पुं० [अ० करनाय] १. सिंघा। नरसिंहा। भोंपा। धूतु। उ०—कहूँ भरे करनाल बीना मुरारी।—प० रासो, पृ० १७६। २. एक बड़ा डोल जो गाड़ी पर लदकर चलता है। ३. एक प्रकार की तोप। उ०—(क) भेजना है भेजो सो रिसालें सिवराज जू को बाजी करनालें परनालें पर आय-कै।—भूपण (शब्द०)। (ख) तिमि घरनाल और करनालें सुतरनाल जजालें। गुरगुराव रहँकले तहँ लाये विपुल बयालें।—रघुराज (शब्द०)। ४. पजाब का एक नगर।

करनासी—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] दे० 'कटनास'। नीलकण्ठ पक्षी। उ०—बहु करनास रहहि तेहि पासा। देखि सो सग भाग जेहि वासा।—चित्रा०, पृ० ६३।

करनि^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० करिणी] दे० 'करिनी'। उ०—बाखनी बस धूर्न लोचन विहरत वन सचुपाए। मनहुँ महा गजराज विराजत, करनि जूय सँग लाए।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २५७।

करनिका^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कर्णिका] दे० 'कर्णिका'। उ०—सोहत सब नै सम्मुख ऐसैं। कमल के बीच करनिका जैसे,—नद० ग्रं०, पृ० २६४।

करनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० करना से व्यु०] १. कार्य। कर्म। करवृत्त। करतव। उ०—(क) करनी बधारी बोय कर, रहनी कर रच-वार।—कगीर श०, पृ० २१। (ख) देखो करनी कमल की, कीनों जल सो हेत। प्राण तज्यो प्रेम न तज्यो, मूख्यों सरहि समेत।—सूर(शब्द०)। (ग) अपने मुख तुम आपनि करनी। वार घनेक भौति बहु बरनी।—तुलसी (शब्द०)। २. मृतक क्रिया। अत्येष्टि कर्म। मृतक सम्कार। उ०—पितु हित भरत कीन्ह जस करनी। सो मुप लाघ जाइ नहि बरनी।—तुलसी (शब्द०)। ३. पेसरानों या कारीगरों का लोहे का एक मोतार जिससे वे दीवार पर पन्ना या गारा लगाते हैं। कन्नी। ४. विवाह में कन्या के निमित्त दी हुई संपत्ति।

करनैल—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कर्नैल] सेना का एक उच्च कर्मचारी। फौज का एक बड़ा अधिकारी।

करन^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्ण, प्रा० कर्ण, उ० करन] दे० 'कर्ण'। उ०—द्रोण सो भाऊ, करन करन सो, और नवें दल सो दल भार्यो।—भूपण ग्रं०, पृ० ६।

करनफूल^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० करनफूल] दे० 'करनफूल'। उ०—करनफूल राज्य, उने कि भौत साज्य।—हम्मीर रा०, पृ० २४।

करनी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० करनी] दे० 'करनी'। उ०—हैंसं सकर भैरव की करनी।—हम्मीर रा० पृ० ८५।

करन्यास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मंत्रों को पढ़ते हुए दोनों हाथों द्वारा विशेष प्रकार की मुद्रा रचना। उ०—नहि सध्या सूत्र न करन्यास। नहि होम न यज्ञ न व्रत उमास।—सुदर ग्रं०, भा० १, पृ० ७८।

करपकज, करपद्म—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करपकज, करपद्म] दे० 'कर-कमल' [स्त्री०]।

करपत्र, करपत्रक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] थारा [स्त्री०]।

करपना—कि० अ० [देश०] पल्लवित होना। बढ़ाना। बृद्धिमान।

करपर^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कर्पर] चोपड़ी।

करपर^२—वि० [सं० कृपण] कजूस।

करपरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] पीठी की पकोड़ी। बरी। उ०—भई मुगोछें मिरचहि परी। कीन्ह मुँगोरा ओ करपरी।—जायसी (शब्द०)।

करपलई^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० करपल्लवी] दे० 'करपल्लवी'।

करपल्लव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] उँगली।

करपल्लवी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] उँगलियों के संकेत से शब्दों को प्रकट करने की विद्या।

विशेष—इस विद्या का सूत्र यह है—ग्रहिकन, कमल, चक्र, टकार तरु, पर्वत, यौवन, शृ गार। अंगुरिन अच्छर, चुटकिन, मंत्र। कहैं राम बूझें हनुमत। जैसे,—कमल का आकार दिखाने से कवर्ग का ग्रहण होता है। उसके बाद एक उँगली दिखाने से 'क', दो से 'ख', इसी प्रकार और अक्षर समझ लिए जाते हैं।

करपल्लौ^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करपल्लव] दे० 'करपल्लव'। उ०—दीन्हैसि कठ बोल जेहि माहीं। दीन्हैसि करपल्लौ, बर बाहीं।—जायसी ग्रं०, पृ० ४।

करघनी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [न० कटि + आघानी, अथवा म० किङ्किणी] १. सोने या चाँदी का कमर में पहनने का एक गहना जो या तो सिकड़ी के रूप में होता है या घुँघरुदार होता है। अब घुँघरुवाली करघनी केवल बच्चों को पहनाई जाती है। तागड़ी। २. कई लड़कों का सुत जो कमर में पहना जाता है।

मुहा०—करघन टूटना = (१) सामर्थ्य न रहना। सहास छूटना। हिम्मत न रहना। (२) धन का बल न रहना। दरिद्र होना। करघन में बूता होना = कमर में ताकत होना। शरीर में बल होना। पोख होना।

करघनी^२—सञ्ज्ञा पुं० [स० कला + घान्य, हि० कल + घनी > करघनी] एक प्रकार का मोटा घान जिसके ऊपर का छिलका काला और चावल का रंग कुछ लाल होता है।

करघर^१—सञ्ज्ञा पुं० [स० कर = वर्षोपल + घर = धारण करनेवाला] वादल। मेघ। उ०—करघर, की घरमैर सखी री, की मुक सीपज की वगवगति की मयूर की पीठ पखी री।—सूर (शब्द०)।

करघर^२—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] महुवे के फल की रोटी। महुघरी।

करन^१—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक ओषधि। जरिष्क।

विशेष—यह स्वाद में कुछ खटमिट्ठी होती है और प्रायः चटनी आदि में डाली जाती है। यह दस्तावर भी है। यह रेचन के औषधों में भी दी जाती है।

करन^२—सञ्ज्ञा पुं० [स० कर्ण] १ कान। उ०—करन कट्क वटु वचन विसिप सम हिय हुए।—तुलसी ग्र०, पृ० ३४। २ राजा कर्ण। उ०—करन पास लीन्हें कैं छट्ट। विप्र रूप धरि भिलमिल इह।—जायसी (शब्द०)।

यौ०—करन का पहरा = प्रभात या प्रातःकाल का समय, जो राजा कर्ण के पहरा देने का समय माना जाता है।

३ नाव का पतवार।

करन^३—वि० [स० करण] करनेवाला। उ०—मजौ श्री वल्लभ-सुत के चरन। नदकुमार भजन मुखदाइक, पतितन पावन करन।—नद० ग्र०, पृ० ३२६।

करनधार^१—सञ्ज्ञा पुं० [स० कर्णधार] दे० 'कर्णधार'।

करनफूल—सञ्ज्ञा पुं० [स० कर्ण + हि० फूल] स्त्रियों के कान में पहनने का सोने चाँदी का एक गहना। तरौना। काँप।

विशेष—यह फूल के आकार का बनाया जाता है और कान की लो में बड़ा सा छेद करके पहना जाता है। करनफूल सादा भी होता है और जडाऊ भी।

करनवेध—सञ्ज्ञा पुं० [स० कर्णवेध] बच्चों के कान छेदने का संस्कार अथवा रीति। उ०—करनवेध उपवीत विवाहा। सग सग सब भयउ उछाहा।

करना^१—सञ्ज्ञा पुं० [स० कर्ण] एक पीघा। सुदर्शन। उ०—(क)मोल-सिरी वेइलि ओ करना। सर्व फूल फूले बहुवरना।—जायसी ग्र०, पृ० १३। (क) करना के करनफूल करन बीच धारे।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ४४०।

विशेष—इसके पत्ते केवड़े के पत्ते की तरह लंबे लंबे पर बिना काँटे के होते हैं। इसमें सफेद सफेद फूल लगते हैं जिनमें हलकी मोठी महक होती है।

करना^२—सञ्ज्ञा पुं० [न० कण] विनोद की तरह का एक बड़ा नीवू। विशेष—यह कुछ लंबोतरा होता है। इसे पहाड़ी नीवू भी कहते हैं। बंधक में इसको कफ, वायुनाशक और पित्तवर्धक बताया है।

करना^३—सञ्ज्ञा पुं० [स० करण] किया हुआ काम। करनी। करतूत। उ०—अति अपार करता कर करना। वरन न कोई पावें वरना।—जायसी (शब्द०)।

करना^४—क्रि० स० [स० करण] १ किसी काम को चलाना। किसी क्रिया को समाप्ति की ओर ले जाना। निवटाना। भुगताना। सपराना। अमल में जाना। अजाम देना। संपादित करना। जैसे—यह काम चटपट कर डालो।

सयो० क्रि०—घाना।—छोड़ना।—जाना।—डालना।—देखना।—दिखाना।—देना।—घरना।—पाना।—बँठना।—रखना।—लाना।—लेना।

२ पकाकर तैयार करना। राँघना। जैसे, रसोई करना, दाल करना, रोटी करना।

विशेष—इसका प्रयोग ऐसी सजाओ के साथ ही होता है जो तैयार की हुई वस्तुओं के नाम हैं, प्राकृत पदार्थों के नामों के साथ नहीं जैसे, दूध करना, पानी करना कोई नहीं कहता।

३ ले जाना। पढ़वाना। रखना। जैसे,—(क) इस किताब को जरा पीछे कर दो। (ख) इनको इनके बाप के यहाँ कर आओ। ४ धारण करना। उ०—कंडु कठ कौस्तुभ मनि धरे। सब चक्र आयुध कर करे—नद० ग्र०, पृ० २६७।

मुहा०—किसी वस्तु में करना = किसी वस्तु में घुसाना। डालना। जैसे,—तलवार म्यान में कर लो। कर गुजरना = विलक्षण या साहसिक कार्य कर डालना।

५ पति या पत्नी रूप से ग्रहण करना। खसम या जोरू बनाना। जैसे,—उस स्त्री ने दूसरा कर लिया। ६ रोजगार खोलना। व्यवसाय खोलना। जैसे,—दलाली करना, दूकान करना, प्रेस करना।

विशेष—वस्तुवाचक सञ्ज्ञा के साथ इसका प्रयोग इस अर्थ में दो चार इने गिने शब्दों के साथ ही होता है।

७ सवारी ठहराना। भाड़े पर सवारी लेना। जैसे, गाड़ी करना, नाव करना, पालकी करना। उ०—दिल मत जाना, रास्ते में एक गाड़ी कर लेना। ८ रोगनी बुझाना। प्रकाश बुझाना। जैसे,—सवेरा हुआ चाहता है, अब दिया कर दो। ९ कोई रूप देना। किसी रूप में लाना। एक रूप से दूसरे रूप में जाना। बनाना। जैसे,—(क) उन्होंने उस चाँदी के कटोरे को सोना कर दिया। (ख) गधे को मार पीटकर घोड़ा नहीं कर सकते। १० कोई पद देना। बनाना। जैसे,—कलक्टर ने उनपर प्रसन्न होकर उन्हें तहसीलदार कर दिया। ११ किसी वस्तु को पोतना। जैसे,—स्याही करना, रंग करना, चूना करना। १२ पशुओं का बध या जवह करना। जैसे—उसने आज १५ बकरियाँ की हैं। १३ समोग करना। प्रसंग करना।

करतारी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० करतारी] दे० 'करताली' ।

करताल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. दोनो हथेलियों के परस्पर आघात का शब्द । २. लकड़ी, काँसे आदि का एक वाजा जिसका एक एक जोड़ा हाथ में लेकर बजाते हैं । लकड़ी के करताल में झाँक या घुघरू बँधे रहते हैं । उ०—मनहद वाजे बजे मधुर धुन विन करताल तँवूरा ।—कबीर श०, पृ० ८५ । ३. झाँक । मँजोरा ।

करतालिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] हथोड़ी । थपोड़ी । ताली [को०] ।

करताली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. दोनो हथेलियों के परस्पर आघात का शब्द । ताली । हथोड़ी २. करताल नाम का वाजा ।

करती—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कृति] गाय के मरे बछड़े का, भूमा भरा हुआ चमड़ा जो विनकुल बछड़े के आकार का होता है । इसे गाय के पास ले जाकर अहीर दूध दुहते हैं ।

करतूँ—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] खेत सीचने की दौरी की रस्सियों के सिर पर लगी हुई लकड़ी जो हाथ में रहती है ।

करतूत—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० करना + कृत (प्रत्य०)] [सं० कर्तृत्व] १. कर्म । करनी । काम । जैसे,—यह सब तुम्हारी ही करतूत है । २. कला । गुण । हुनर । उ०—हमारी करतूत तो कुछ भी नहीं, पर तुम्हारी तो बहुत कुछ है ।—भारतेंदु श०, भा० १, पृ० ३५८ ।

करतूति^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० करना + कृत, आवत (प्रत्य०)] १. कर्म । करनी । काम । करतव । उ०—सोई करतूति विभीषण केरी । सपनेहु सो न राम हिय हेरी ।—मानस, १ । २६ ।

क्रि० प्र०—करना ।

२. कला । हुनर । गुण । उ०—कहि न जाइ कछु नगर विभूती । जनु इतनिय विरचि करतूती ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—बिलाना ।

करतोया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी ।

विशेष—यह जलपाईगोडी के जंगलों से निकलकर रागपुर होती हुई, बोगड़ा जिले के दक्षिण हलहलिया नदी में मिलती है । यहाँ से इसकी कई शाखाएँ हो जाती हैं । फूलभर नाम से एक शाखा अत्राई नदी में मिलती है । कोई इसी फूलभर को करतोया की धारा मानते हैं । यह नदी बहुत पवित्र मानी गई है । वर्षा में सब नदियों का अशुचि होना कहा गया है पर यह वर्षा काल में भी पवित्र मानी गई है । इसी से इसका नाम 'सदानीरा' या 'सदानीरवहा' भी है । इसके विषय में यह कहा है कि पार्वती के पाणिग्रहण के समय शिवजी के हाथ से गिरे हुए जल से इसकी उत्पत्ति हुई, इसी से इसका नाम 'करतोया' पड़ा ।

करथरा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] हाला पहाड़ का सिलसिला जो सिंधु नदी के पार सिंध और बलूचिस्तान के बीच में है ।

करद^२—वि० [सं०] १. कर देनेवाला । मालगुजार । अधीन । जैसे,—करद राज्य । २. सहारा देनेवाला । उ०—राक सिरामनि काकिनी भाव विलोकत, लोकप को करदा है ।—तुलसी (शब्द०) ।

करद^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० कारद] छुरा । चाकू । बड़ा छुरा । उ०—

(क) करद मरद को चाहिए जैसी तँसी होय ।—(शब्द०) ।

(ख) गरद भई है वह, दरद बतावै कौन, सरद मयक मारी करद करेजे मे ।—वेनी प्रवीन (शब्द०) ।

करद^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. मालगुजारी देनेवाला किसान ।

विशेष—चाणक्य ने लिखा है कि जो किसान मालगुजारी देते हो, उनको हलके सुघरे हुए खेत खेती करने के लिये दिए जायें बिना सुघरे खेत उनको न दिए जायें । जो खेती न करें, उनके खेत छीन लिए जायें । गाँव के नौकर या बनिए उसपर खेती करें । खेती न करनेवाला सरकारी नुकसान दें । जो लोग सुगमता से कर दे दें, राजा उनको धान्य, पशु, हल आदि की सहायता दे ।

२. कर देनेवाला राजा या राज्य । ३. वह घर जिसका राज्य को कर मिले ।—(को०) ।

करदम^४—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्दम] दे० 'कर्दम' ।

करदल, करदला—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा वृक्ष ।

विशेष—इसकी छाल चिकनी और कुछ पीलीपन लिए हुए होती है । इसकी टहनियों के सिरे पर छोटी छोटी पत्तियों के गुच्छे होते हैं । पतझड़ के बाद नई पत्तियाँ निकलने से पहले इसमें पीले रंग के फूल लगते हैं जिनके बीच में दो दो बीज होते हैं । हिमालय में यह वृक्ष पाँच हजार फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है । यह मार्च अप्रैल में फूलता है और इसके बीज खाए जाते हैं ।

करदा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० गर्द] १. विक्री की वस्तु में मिला हुआ कूड़ा करकट या खूदखाद । जैसे, अनाज में धूल, वरतन में लगी हुई लाख । जैसे,—अनाज में से इतना तो करदा गया ।

क्रि० प्र०—जाना ।—निकलना ।

२. किसी वस्तु के विकने के समय उसमें मिले हुए कूड़े करकट का कुछ दाम कम करके या माल अधिक देकर पूरी करना ।

क्रि० प्र०—काटना ।—देना ।

३. दाम में वह कमी जो किसी वस्तु विकने के समय उसमें मिले कूड़े करकट आदि का वजन निकाल देने के कारण की जा । घड़ा । कटौती ।

क्रि० प्र०—काटना ।—काटना ।—देना ।

४. पुरानी वस्तुओं को नई वस्तुओं से बदलने में जो और धन ऊपर से दिया जाय । बदलाई । चट्टा । फेरवट । बाघ ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः वरतनों को बदलने में होता है ।

करदाता—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करदातृ] कर देनेवाला [को०] ।

करदोना—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर + हि० दोना] दोना नामक पोधा जिसकी पत्तियाँ तक सुगंधित होती हैं ।

करधई—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] भाड़ीदार वृक्षविशेष । उ०—पहाड़ी के ऊपर करधई की घनी हलकी कट्यई रंग की भाँसी थी ।—मृग०, पृ० ५० ।

करधनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० करधनी] दे० 'करधनी' ।

विशेष—इसके चार भेद हैं—आवेष्टित, उद्वेष्टित, व्यावर्तित और परिवर्तित । जिसमें तिरछे फँले हुए हाथ की उँगलियाँ तर्जनी से आरंभ कर एक एक करके हथेली में लगाते हुए हाथ को छाती की ओर लाएँ, उसे आवेष्टित कहते हैं । जिसमें इसी प्रकार एक एक उँगली उठाते हुए हाथ को लाएँ उसे उद्वेष्टित कहते हैं । जिसमें तिरछे फँले हाथ की उँगलियाँ कनिष्ठिका से आरंभ कर एक एक करके हथेली में मिलाते हुए छाती की ओर लाएँ, उसे व्यावर्तित कहते हैं और जिसमें इसी प्रकार उँगलियाँ उठाते हुए हाथ को लाएँ उसे परिवर्तित कहते हैं ।

११. गणित (ज्योतिष) की एक क्रिया । १२. एक जाति ।

विशेष—ब्रह्मवैवर्तपुराण के अनुसार करण वैश्य और शूद्रा से उत्पन्न हैं और लिखने का काम करते थे । तिरहुत में अब भी करण पाए जाते हैं ।

१३. कायस्थों का एक अवतार भेद । १४. आसाम, वरमा और स्याम की एक जंगली जाति । १५. वह सख्या जिसका पूरा पूरा वर्गमूल निकल सके । करणीगत संख्या । १६. देह (को०) । १७. क्षेत्र (को०) । १८. निश्चित या लेख प्रमाण (को०) । १९. परमात्मा (को०) । २०. एक रतिवध (को०) । २१. धार्मिक कृत्य (को०) । २२. कारण । उद्देश्य (को०) । २३. उच्चारण (को०) । २४. करणी का कार्य या प्रयोग (को०) । २५. बराह मिहिर की एक कृति जिसमें ग्रहों की गति का विवेचन है (को०) ।

यो०—करणग्राम = इन्द्रियसमूह । करणत्राण = सिर । करण विभक्ति = करण कारक का सूचक पद । करणविन्यय = उच्चारण की पद्धति ।

करणी^१—वि० [सं०] करनेवाला । उ०—दाहू दुख हरि करण, हुआ नहि कोइ ।—दाहू०, पृ० ५३ ।

करणी^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्ण] १ कान । उ०—शमू शाजसन गुण करों करणालवित आज ।—केशव (शब्द०) । २ कौरव पक्ष के एक महारथी जो कृती की कुमारी अवस्था में उत्पन्न माने जाते हैं । कर्ण । उ०—मारधो करण गगसुत द्रोना । सबको मारि कियो दल सुना ।—कवीर सा०, पृ० ५० ।

करणाविष—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ करण अर्थात् इंद्रियों का स्वामी । मन । आत्मा । २ कार्याधिकारी (को०) ।

करणाणां—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'करनाल' । उ०—वीद चढ़े जी मे वलाँ, वज करणाल सुवेस ।—रघु० ६०, पृ० ६४ ।

करणि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कार्य । कर्तृत्व । करनी । करतूत (को०) ।

करणी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ गणित में वह संख्या जिसका पूरा पूरा वर्गमूल न निकल सके । बाह्यगत संख्या । २. मिश्रित अर्थात् दोगली जाति की स्त्री (को०) ।

यो०—करणीसुता = गोद ली हुई लड़की ।

करणी^२—वि० [सं० करणिन्] करणवाला । करण सहित ।

करणीगर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करणि + फा० गर] कार्यकर्ता । कर्ता । उ०—करणीगर तें क्या किया, अँसा तेरा नाम ।—दाहू प्र०, पृ० ११७ ।

करणीय—वि० [सं०] करने योग्य । करने के लायक । कर्तव्य ।

करतव—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्तव्य] [वि० करतवी] १. कार्य । काम । करनी । करतूत । कर्म । उ०—(क) वचन विकार करतवज खुआर मन विगत विचार कलिमल को निधान है ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) जे जनमे कलिकाल कराला । करतव वायस, वेप मराला ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।

२. कला । हुनर । गुण ।

क्रि० प्र०—दिखाना । उ०—देखिए, अब क्या तमाशा होगा, कौन सा करतव दिखाया जाएगा ।—फिसाना०, भी० ३, पृ० ६ । ३. कर्मागत । जादू ।

करतविया—वि० [हिं० करतव + इया (प्रत्यय)] दे० 'करतवी' ।

करतवी—वि० [हिं० करतव + ई (प्रत्यय)] १. काम करने वाला । पुरुषार्थी । २. निपुण । गुणी । ३. कर्मागत दिखावेवाला । बाजीगर ।

करतरी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कर्तरी] दे० 'कर्तरी' ।

करतल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० करतली] १. हाथ की गदोरी । हथेली । उ०—घटवहन से स्कध नत थे और करतल लाल । उठ रहा था श्वासगति से वक्षदेश विशाल ।—शकुं०, पृ० ७ ।

यो०—करतलगत ।

२ मात्रिक गणों में चार मात्राओं के गण (इगण) का एक रूप जिसमें प्रथम दो मात्राएँ लघु और अत में एक गुरु होती है । जैसे, हरि जू । ३ छप्पय के एक भेद का नाम ।

करतलध्वनि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० करतल + ध्वनि] थपोड़ी । ताली (को०) । करतली^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ हथेली । २. हथेली का शब्द । ताली । करतली^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] बेलगाड़ी में हाँकनेवाले के बैठने की जगह ।

करतव्य^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्तव्य] दे० 'कर्तव्य' ।

करता^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्ता] दे० 'कर्ता' । उ०—वा करता को सेइए, जिन सृष्टि उपाई ।—धरम०, पृ० १० ।

यो०—करतास्नानदान = परिवार का प्रधान प्रवक्षक पुरुष । करता धरता = सस्था या कुटुंब का प्रधान प्रवक्षसचालक ।

करता^२—सञ्ज्ञा पुं० १ एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक नगण और एक लघु गुरु होता है । उ०—न लग मना । अधम जना । सिय भरता । जग करता । २. उतनी दूरी जहाँतक वक्र से छुटी हुई गोली जा सकती है । गोची का टप्पा या पल्ला ।

करतार^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्तार] सृष्टि करनेवाला । ईश्वर । उ०—जह चेतन गुन दोष मय विस्व कीन्ह करतार । सत हस गुन गहहि पय परिहरि बारि विकार ।—तुलसी (शब्द०) ।

करतार^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करताल] दे० 'करताल' ।

करतारी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० करतार] ईश्वर की लीला । उ०—केशव और की और भई गति, जानि न जाय कछू करतारी ।—केशव (शब्द०) ।

करग्राह—संज्ञा पुं० [सं०] १ पति । २ कर वसूल करनेवाला [को०] ।
करघा—संज्ञा पुं० [फा० कारगाह] दे० 'करगह' ।

करचग—संज्ञा पुं० [हि० कर + चग] ताल देने का एक वाजा । एक प्रकार का डफ या बड़ी खंजरी जिसपर लावनीवाज प्रायः ठेका देते हैं ।

करच^७—क्रि० वि० [फा० किच] टुकड़े टुकड़े । खड़ खड़ । उ०—(क) करच करच टुटि फुटि गयो ऐसैं । हर सर हत्यो त्रिपुर रिपु जैंसैं ।—नंद० ग्र०, पृ० २४२ । (ख) करच करच ह्वै गयो लिलार । मुखतें चली रघिर की धार ।—नंद० ग्र०, पृ० २६८ ।
करछा^१—संज्ञा पुं० [सं० कर + रक्षा] [को० करछी] बड़ी करछी ।
करछा^२—संज्ञा पुं० [हि० करौछा = काला] एक प्रकार की चिड़िया । दे० 'करछिया' ।

करछाल—संज्ञा स्त्री० [हि० कर + उछाल] उछाल । छलांग । कुलांग । चौकड़ी । कुदान । कुलांच । फलांग ।

करछिया—संज्ञा स्त्री० [हि० करौछा + काला] पानी के किनारे रहनेवाली एक पहाड़ी चिड़िया ।

विशेष—यह हिमालय पर काश्मीर, नेपाल आदि प्रदेशों में होती हैं । जाड़े के दिनों में यह मैदानों में भी उतर आती है और पानी के किनारे दिखाई पड़ती है । यह पानी में तैरती और गोता लगाती है । इसके पंजों में आधी ही दूर तक फिल्ली रहती है जिससे वस्तुओं को पकड़ भी सकती है । इसका शिकार किया जाता है, पर इसका मांस अच्छा नहीं होता ।

करछी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कलछी' ।

करछल—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कलछी' ।

करछला^१—संज्ञा पुं० १. दे० 'कलछी' । २ भड़भूजों की बड़ी कलछी जिसमें हाथ डेढ़ हाथ लंबा लकड़ी का बेंट लगा रहता है और जिसमें चरबन भूतने समय उसमें गरम बालू डालते हैं ।

करछुली—संज्ञा स्त्री० [हि० करछल] दे० 'कलछी' ।

करछैया^७—वि० [हि० काली + छाया] श्यामवर्णा । काले रंग की आभा लिए हुए ।

करछौहा^७—वि० [हि० करछा + औहा (प्रत्य०)] दे० 'कलछौवा' । श्यामाम । काली आभावाला । थोड़ा सांवले रंगवाला । उ०—दमक रही उजियारी छाती, करछौहे पर । श्याम घनो से झलक रही विजली क्षण क्षण पर ।—ग्राम्या, पृ० ७४ ।

करज^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ नख । नाखून । २ उँगली । उ०—(१) सिय अदेश जानि सूरज प्रभु लियो करज की कोर । टूटत धनु नृप लुके जहाँ तहें ज्यो तारागन भोर ।—सूर (शब्द०) । (२) करज मुद्रिका, कर ककन छवि, कटि किंकन, नूपुर पग भ्राजत । नख सिख काति विलोकि सखी री शशि अच भानु मगन तनु लाजत ।—सूर (शब्द०) । ३ नख नामक सुगन्धित द्रव्य । ४. करज । कजा ।

करज^२—संज्ञा पुं० [ग्र० कर्ज] दे० 'कर्ज' । उ०—लेन न देन दुकान न जागा । दोश करज ताहि कस, लागा ।—घट०, पृ० २७५ ।

करजद^१—वि० [ग्र० कर्ज + दाः दार (प्रत्य०)] दे० 'कर्जदार' ।

उ०—ससार में किसी करजदार को करज उतारने की सामर्थ्य नहीं होती तो वो सहकार की दृष्टि बचाकर परदेश जाने का विचार करता है ।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १४३ ।

करजोड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० करज्योडि] एक प्रकार की ओपधि जो पारा बांधने के काम में आती है । हस्तजोड़ी । हत्याजोड़ी । वि० दे० 'हत्या जोड़ी' ।

करज्योडि—संज्ञा पुं० [सं०] एक वृक्ष का नाम । करजोड़ी [को०] ।

करट—संज्ञा पुं० [सं०] १. कौआ । उ०—कटु कुठाव करटा रटहि फेंकरहि फेंर कुभांति । नीच निसाचर मीचु बस, अनी मोह मदमांति ।—तुलसी (शब्द०) । २. हाथी की कनपटी । हाथी का गंडस्थल । ३. कुसुम का पौधा । ४. एकादशाहादि श्राद्ध । ५. दुर्दुर्लभ । नास्तिक । ६. क्षुद्र या तुच्छ मनुष्य [को०] । ७. एक प्रकार का वाजा [को०] । ८. अघम ब्राह्मण [को०] ।

करटक—संज्ञा पुं० [सं०] १. कौआ । २. कर्णारिथ जिन्होंने, चोरी की कला और उसके शास्त्र का प्रवर्तन किया ।

करटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कठिनाई से दुही जानेवाली गाय । २. हाथी का गंडस्थल [को०] ।

करटी—संज्ञा पुं० [सं० करटिन्] हाथी । उ०—मधुकर कुल करटीनि के कपोलनि तें उडि उडि पियत ममूत उडपति में ।—मतिराम (शब्द०) ।

करट्टु—संज्ञा पुं० [सं०] सारस पक्षी । करकटिया [को०] ।

करड करड—संज्ञा पुं० [अनु०] १ किसी वस्तु के बार बार टूटने या चिटकने का शब्द । २. दाँतों के नीचे पड़कर बार बार टूटने का शब्द । जैसे,—कुत्ता करड करड करके हड्डी चबा रहा है ।

करडा^१—वि० [हि० करा, ७ कड्डा] दे० 'कडा' । उ०—(क) दूजी दिस ताकें नही, पडै जो करडा काम ।—दरिया० बानी, पृ० १२ ।

करण^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ व्याकरण में वह कारक जिसके द्वारा कर्ता क्रिया को सिद्ध करता है । जैसे—छडी से साँप मारो । इस उदाहरण में 'छडी' 'मारने' का साधक है, अतः उसमें करण का चिह्न 'से' लगाया गया है । २. हवियार । ओजार । ३. इन्द्रिय । उ०—विषय करन सुर जीव समेता । सकल एक से एक सचेता ।—तुलसी (शब्द०) । ४. देह । ५. क्रिया । कार्य । उ०—कारण करण दयालु दयानिधि निज भय दीन डरे ।—सूर (शब्द०) । ६. स्थान । ७. हेतु । ८. असाधारण कारण । ९. ज्योतिष में तिथियों का एक विभाग ।

विशेष—एक एक तिथि में दो दो करण होते हैं । करण ग्यारह हैं जिनके नाम ये हैं—बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वण्णज, विष्टि, शकुनि, चतुष्पद, कितुष्पद और नाग । इनके देवता यथाक्रम ये हैं—इंद्र, कमलज, मित्र, अश्वि, भू, श्री, यम, कलि, वृष, फणी, मातृ । शुक्ल प्रतिप्रदा के शेषार्ध से कृष्ण चतुर्दशी के प्रथमार्ध तक बव आदि प्रथम सात करणों की आठ आवृत्तियाँ होती हैं । फिर कृष्ण चतुर्दशी के शेषार्ध से शुक्ल प्रतिप्रदा के प्रथमार्ध तक शेष चार करण होते हैं ।

१० नृत्य में हाथ हिलाकर भाग बताने की क्रिया ।

करकर^२—वि० [हि० करकरा] १ दे० 'करकरा' । २ दे० 'करकट' ।
उ०—उसमें दुर्गंध से भरा हुआ कूड़ा करकर देखा ।—कवीर
म०, पृ० २५६ ।

करकरा^१—सञ्ज्ञा पु० [सं० कर्क रेटु] एक प्रकार का सारस जिसका
पेट तथा नीचे का भाग काला होता है और जिसके सिर पर
एक चोटी होती है । करकटिया ।

विशेष—इसका कंठ काला होता है और बाकी शरीर करज के
रंग का छाकी होता है । इसकी पूंछ एक वित्ते की तथा टेढ़ी
होती है ।

करकरा —वि० [सं० कर्कर] [अ० करकरी] छूने में जिसके रवे या
कण उँगलियों में गड़ें । खुरखुरा । उ०—वालू जैसी करकरी
उज्जल जैसी धूप । ऐसी मीठी कछु नहीं जैसी मीठी चूप ।—
कवीर (शब्द०) ।

करकराता—वि० [हि० कड़कड़ाना] खुरखुरा । माडी इत्यादि से जिसमें
करकराहट आ गई हो । उ०—आप लोगों के समान परम
प्रियतम सफेद करकराता डुपट्टा ओढ़नेवाली अनाथ बाला ने
ही सिखलाए होंगे ।—भारतदु प्र०, भा० १, पृ० ३५४ ।

करकराना^१—क्रि० प्र० [हि० कडकट] कटकटाना । उ०—डावउ
करेवउ करकरइ ।—वी० रासो, पृ० ५६ ।

करकराना^२—क्रि० प्र० [हि० कडकड़ाना=अत्यंत कड़ा या कठोर
होना] प्रचंड होना । कठोर होना । उ०—पास जाकर
उत्तसे कहा अब रियासत नहीं है । अग्रजी करकरा उठी है ।
ठिकाने से काम करो, नहीं तो खाल टूटती फिरगी ।—भासी०,
पृ० १८० ।

करकराहट—सञ्ज्ञा पु० [हि० करकरा + आहट (प्रत्यय)] १. कड़ापन ।
खुरखुराहट । २. आँख में किरकिरी पड़ने की सी पीड़ा ।

करकल^१—सञ्ज्ञा पु० [हि० करकट] १. कूड़ा । कतवार । २.
किरकिरी । कन ।

करकलश—सञ्ज्ञा पु० [सं० अजलि (श्लो०)] ।

करकस^१—वि० [सं० कर्कश] दे० 'कर्कश' ।

करका—सञ्ज्ञा पु० [सं०] ओला । वर्षा का पत्थर ।

करकाघन—सञ्ज्ञा पु० [सं० करका + घन] ओले वरसानेवाले बादल ।
उ०—'आह । घिरेगी हृदय लहलहे खेतों पर करकाघन सी ।
छिपी रहेगी अंतरतम में, सबके तु निगूढ़ घन सी ।—कामायनी
पृ० ६ ।

करकायु—सञ्ज्ञा पु० [सं०] धृतराष्ट्र के पुत्र का नाम ।

करकोटकी—सञ्ज्ञा पु० [सं० कर्कोटक] दे० 'कर्कोटक' ।—प्रा० भा०
प०, पृ० १६५ ।

करकोप—सञ्ज्ञा पु० [सं० कर + कोप] यंजनि । चूल्हा (श्लो०) ।

करकना^१—क्रि० प्र० [हि० करकना] दे० 'कड़कना' । उ०—
घरकैं घरनी करकैं सुसोय ।—प० रा०, पृ० ८५ ।

करकना^२—क्रि० प्र० [हि० करकना] दे० 'करकना' । उ०—
भोरा भ्रमग लग्यो रहसि । काम करकैं प्रानिया ।—पृ०
रा०, १।१२० ।

करखना^१—क्रि० प्र० [सं० कर्षण] धावेन या जोर से घाना । उ०—

ता दिन अखिल खलमलें खन खलक में, जा दिन सिवा जी
गाजी नेक करखत हैं ।—भूपण प्र०, पृ० ४२ ।

करखना^२—क्रि० प्र० [सं० कर्षण] खींचना । आकर्षण करना ।
उ०—चढ़रि निरखि रघुवरहि प्रेम मन करखइ ।—तुलसी प्र०,
पृ० ५२ ।

करखा^१—सञ्ज्ञा पु० [सं० कड़खा] १ दे० 'कड़खा' । २ एक छद
जिसके प्रत्येक पद में ८, १२, ८ और ६ के विराम से ३७
मात्राएँ होती हैं और अंत में यगण होता है । उ०—नमो
नरसिंह बलवत प्रभु, संत हित काज, भवतार धारो । बंम तें
निकासि, भू हिरनकश्यप पटक, भटक दें नखन सो, उर
विदारो ।

करखा^२—सञ्ज्ञा पु० [सं० कर्ष] १ उत्तेजना । बढ़ावा । २ रणगीत ।
उ०—जहँ आंगरे करखा कहँ । अति उमंगि मानेंद को लहँ ।—
पद्माकर प्र०, पृ० ८ । ३. लागडाँट । ताव । उ०—नैननि
होड वदी बरखा सों । राति दिवस बरसत भर लाये दिन दूना
करखा सो - सूर (शब्द०) । (ख) भलेहि नाथ सब कहहि
सहरपा । एकहि एक बढ़ावहि करपा ।—तुलसी (शब्द०) ।

करखा^३—सञ्ज्ञा पु० [हि० कालिख] दे० 'कालिख' ।

करगत—वि० [सं० कर + गत] हाथ में रखा हुआ । हुम्तगत ।
प्राप्त । प्रस्तुत । उ०—करगत वेदतत्त्व सब तोरे ।—
मानस, १। ४५ ।

करगता—सञ्ज्ञा पु० [सं० कटि + गता] १ सोने वा चाँदी की करघनी ।
२. सूत की करघनी । कटिसूत्र (श्लो०) ।

करगस^१—सञ्ज्ञा पु० [फा०] गिद्ध ।

करगस^२—सञ्ज्ञा पु० [देश०] गीर । उ०—करगस सम दुर्जन वचन,
रहै सन जन टारि ।—कवीर सा०, पृ० ५० ।

करगह^१—सञ्ज्ञा पु० [फा० कारगाह] १ जुलाहों के कारखाने की
वह नीची जगह जिसमें जुलाहे पैर लटकाकर बैठते हैं और
कपड़ा बुनते हैं । २ जुलाहों का कपड़ा बुनने का यंत्र । ३.
जुलाहों का कारखाना । उ०—करगह छोड़ तमाशे जाय ।
नाहक चोट जुलाहे छाया ।—(शब्द०) ।

करगहना—सञ्ज्ञा पु० [सं० कर + हि० गहना] पत्थर या लकड़ी जिसे
खिड़की या दरवाजा बनाने में चौपटे के ऊपर रखकर आगे
जोड़ाई करते हैं । भरेठा ।

करगही—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कारा, काला + घग] एक मोटा जड़हन
घान जो घगहन में तैयार होता है ।

करगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कर + गहना] १. चीनी के कारखाने में
साफ की हुई चीनी बटोरने की चूरचनी । २ वाड ।
बूढ़ा । उ०—राही ने पिपराही बही । करगी आवत फाड़ न
कही ।—जायसी (शब्द०) ।

करग^१—सञ्ज्ञा पु० [सं० करार] हथेली । हाथ । उ०—करे वग
तुरंग री, तोले वग करग ।—रा० रा०, पृ० ३२ ।

करग्रह—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ पाणिग्रहण । ब्याह । २ कर बनूल करना
या लगाना (श्लो०) ।

करग्रहण—सञ्ज्ञा पु० [सं०] दे० 'करग्रह' (श्लो०) ।

भूसी अलग करके भूनकर पीसते थे और उसको सत्तू एव दही में मिलाकर नमक भोज्य पदार्थ बनाते थे।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ८०।

करभक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करम्भक] १ दलिया। २. दही में सना हुआ सत्तू [को०]।

करभका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० करभका] १ सत्तू। २ दही में सना सत्तू। ३ अनेक उपमापात्रों में लिखित प्रलेख [को०]।

करभा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० करम्भा] १ शतावरी। २ दही मथने का पात्र [को०]।

करही—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कर + हिं० गहना] मोचियो या चमारो का एक हाथ लंबा, ६ अंगुल चौड़ा और ३ अंगुल मोटा एक औजार जिसपर जूता सिया जाता है।

कर^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ हाथ।

मुहा०—कर गहना = (१) हाथ पकड़ना। (२) पाणिग्रहण या विवाह करना। कर मलना = हाथ मलना। पश्चानाप करना उ०—ननद देखि कै रहहि रिसाइ। तब चलिहहु कर मलि पछिताय।—जग० श०, पृ० ७०। २ हाथों की सूँड। ३ सूर्य या चंद्रमा की किरण। ४ ओला। पत्थर। ५ प्रजा के उपाजित धन में से राजा का भाग। मालगुजारी। महसूल। टैक्स।

क्रि० प्र०—चुकना।—चुकाना।—देना।—बाँधना।—लगना।—लगाना।—लेना।

६ करनेवाला। उत्पन्न करनेवाला।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग केवल यौगिक शब्दों में होता है, जैसे—कल्याणकर, सुखकर, स्वास्थ्यकर इत्यादि।

७ छल। युक्ति। पाखंड। जैसे,—कर, बल, छन। उ०—कीरतन करत कर सपनेहु मयुरादास न मडियो।—नाभा (शब्द०)।

कर^२—प्रत्यय [सं० कृत] का। उ०—(क) राम ते अधिक राम कर दासा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) वैं सब कीन्ह जहाँ लगी कोई। वह नहि कीन्ह काहु कर होई।—जायसी ग्रं०, पृ० ३।

करइत^१—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक तरह का कीड़ा जो अनुमानतः छह अंगुल लंबा होता है और हवा में उड़ता है।

करइत^२—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० करंत] दे० 'करंत'।

करइला^१—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० करेला] दे० 'करेला'। उ०—दूरे पटाइअ, सीचीअ नीत। सहज न तेज करइला तीत।—विद्यापति, पृ० ४२३।

करई^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० करवा + ई (प्रत्यय)] पानी रखने का एक प्रकार का टोटीदार बरतन। छोटा करवा।

करई^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० करक] एक छोटी चिड़िया जो गेहूँ के छोटे छोटे पौधों को काट काटकर गिराया करती है।

करकटक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करकटक] नख। नाखून।

करक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कर्मंडलु। करवा। उ०—कहु मृगचर्म कतहु कोपीना। कहु कथा कहु करक नवीना।—श० दि० (शब्द०)। २ दांडिम। अनार। उ०—सहज रूप की राशि नागरी भूपण अधिक विराजै। नासा नथ मुक्ता विवाधर

प्रतिविवित असमूच। वीध्यो कनकपाश शुक्र सुंदर करक बीज गहि चूँच।—सूर (शब्द०)। ३ कचनार। ४ पलास। ५ वकुल। मौलसिरी। ६ करील का पेड़। ७ नारियल की खोपड़ी। ८ ठठरी। ९ हस्त। हाथ (को०)। १० कर। महसूल (को०)। ११ उपल। करका। घोना (को०)। १२ एक पक्षी का नाम (को०)। १३ उच्चधोव। ऊँची ध्वनि (को०)।

करक^२—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कलक] १ एक एककर होनेवाली पीड़ा। पीडा। व्याकुल। वेचनी। २ कसक। चिनक। उ०—बावल बंद बुलाइया रे, पकड दिखाई म्हारी बाँह। मूरख बंद मरम नहि जाने, करक कलेजे माँह।—सतवाणी०, भा० २, पृ० ७१।

करक^३—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कडक] १ एक एककर और जलन के साथ पेशाब होने का रोग।

क्रि० प्र०—थामना।—पकड़ना।

२ वह चिह्न जो शरीर पर किसी वस्तु की दाव, रगड़ या आघात से पड़ जाता है। साँट। उ०—दिगज कमठ कोल सहस्रानन धरत धरनि धर धीर। वारहि बार अमरखत करखत करक परी शरीर।—तुलसी (शब्द०)।

करक^४—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्क] दे० 'कर्क'। उ०—दोष सक्तात का भेद बताई। एक मकर दूजा करक कहाई।—कवीर सा०, पृ० ५५६।

करकच^१—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] १ एक प्रकार का नमक जो समुद्र के पानी से निकाला जाता है। २ टुकड़ा। खंड। उ०—जगमग जगमग करै नग, जौ जराय सग होइ। काच करकचन विच खचे, मलो कहै नहि कोई।—नद ग्र०, पृ० ११७। ३ गिद्ध। चील।—तिनके तन को करकच छेदै, बहुत भाँति चोबन सो भेदै।—कवीर सा०, पृ० ४६४।

करकच^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष का एक योग (को०)।

करकचहा^१—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमलतास'।

करकट^१—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० खर + सं० कट] कूड़ा। भाड़ा। बहारन। घास पात। घास फूस। कतवार।

यो०—कूड़ा करकट।

करकटिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कर्करेट] एक चिड़िया। दे० 'करकर'।

करकना^१—क्रि० अ० [हिं० कड़क वा करक] किसी कड़ी वस्तु का कर कर शब्द के साथ टूटना। तडकना। फटना। फूटना। चिटकना। उ०—फरकि फरकि उठें बाँहें अस्त्र बाहिने को करकि करकि उठें करी बदन की।—ट्रिकेस (शब्द०)।

करकना^२—क्रि० अ० [अ० कलक > हिं० करक से नाम०] रह रहकर दर्द करना। कसकना। सालना। खटकना। उ०—बचन विनीत मधुर रघुवर के। सर सम लगे मातु उर करके।—तुलसी (शब्द०)।

करकनाथ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्करेट] एक काला पक्षी जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि उसकी हड्डियाँ तक काली होती हैं।

करकमल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कमल जैसे, सुंदर एवं कोमल हाथ (को०)।

करकर^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्कर] एक प्रकार का नमक जो समुद्र के पानी से निकाला जाता है।

क्रि० प्र०—आना ।

२. प्रलय । ३. आफत । विपत्ति । हलचल । खलवली । उपद्रव ।

क्रि० प्र०—आना ।—उठना ।—उठाना ।—डूटना ।—ढाना ।

—वरपा करना ।—मचना ।—मचाना ।—लाना ।—होना ।

मुहा०—क्यामत का=(१) गजब का । हद दरजे का । (२) अत्यंत

अधिक प्रभाव डालनेवाला । क्यामत का सामना होना=भारी

संकट आ जाना । उ०—और मैं तो थर थर कांपती थी कि

जो कहीं उनको खबर हो गई तो क्यामत ही का सामना

होगा ।—सं० कु०, पृ० १६ । क्यामत वरपा करना=क्यामत

ढाना । प्रलय मचना । आफत लाना । उ०—सर्व कामत

गजब की चाल से तुम । क्यों क्यामत चले वषा करके ।—

भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० २२० ।

क्यारी—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कोयर] सूखी घास । सूखा चारा ।

क्यास—सञ्ज्ञा पुं० [अ० क्यास] [वि० क्यासी] । अनुमान । अट-

कल । सोच विचार । ध्यान ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—क्यास लगाना, लड़ाना वा बौड़ाना=अनुमान बांधना ।

अटकलपच्ची विचार करना । खयाल दोड़ाना । क्यास मे

आना=समझ मे आना । मन मे बैठना ।

क्यासी—वि० [अ० क्यास+फा० ई (प्रत्य०)] काल्पनिक ।

अनुमित । अनुमान के आधार पर माना हुआ या माननेवाला ।

क्योरी—क्रि० सं० [हिं० कहना का भूत कृ०, कह्यो] दे० 'कहा' ।

उ०—मुनसी क्यो नवाव सूँ, जीव रहै सुजवाव ।—रा०

रू०, पृ० ३३८ ।

करक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करङ्क] १ मस्तक । २. करवा । कर्मंडलु ।

३. नरियरी । नारियल की खोपड़ी । ४ पंजर । ठठरी ।

उ०—(क) चारों ओर दोरे नर आए ढिग टरि जानी कैंट

के करक मध्य देह जा दुराई है । जग दुर्गंध कोक ऐसी बुरी

लागी जामें बहु दुर्गंध सो सुगंध लौं सराही है ।—प्रिया

(शब्द०) । (ख) कागा रे करक परि बोलइ । खाइ मास

अरु लगही डोलइ ।—दादू (शब्द०) ।

करक^२—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] भोज मे अनाहृत रूप मे डटने और

भोजन किए बिना न हटनेवाला व्यक्ति । कंगला ।

करगण—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करङ्गण] १ हाट । बाजार । २. मेला[को०] ।

करंगा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० काला या कारा+अंग] एक प्रकार का

मोटा धान ।

विशेष—इसकी भूसी कुछ कालापन लिए होती है । यह क्वार

महीने मे पकता है ।

करंगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० करंगा] दे० 'करंगा' ।

विशेष—करंगी का दाना आकार मे कुछ छोटा होता है ।

करंज—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० करञ्ज] १. कजा । २. एक छोटा जंगली

पेड़ जिसकी पत्तियाँ सीसम की सी पर कुछ बड़ी होती हैं ।

इसकी डाल बहुत लचीली होती है । इसकी टहनियों की लोग

दातुन करते हैं । ३. एक प्रकार की आतिशबाजी ।

२-३५

करज^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कलिङ्ग, फा० कुलंग] मुरगा ।

यौ०—करजखाना ।

करजखाना—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० करज+फा० खानह् (घर)] वह स्थान

जहाँ बहुत से मुरगे पले हो । पालतू मुरगों के रहने का स्थान ।

उ०—हिरन हरमखाने, स्याही हैं सुतुरखाने, पाढे पीलाखाने

और करजखाने कीस हैं ।—भूपण (शब्द०) ।

करंजा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करञ्ज] दे० 'कजा' ।

करजा^२—वि० [स्त्री० करंजी] करज या कजे के रंग की सी आँखवाला ।

भूरी आँखवाला ।

करंजुवा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करञ्ज] दे० 'करज' या 'कजा' ।

करंजुवा^२—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार के अकुर जो वाँस, ईख

या उसी जाति के और पौधों मे होते हैं और उनको हानि

पहुँचाते हैं । घमोई । २. जो के पोषे का एक रोग जो खेती

को हानिकारक है ।

करंजुवा^३—वि० [सं० करञ्ज] करंज के रंग का । खाकी ।

करजुवा^४—सञ्ज्ञा पुं० खाकी रंग । करंज का सा रंग ।

विशेष—यह रंग माजू, कसीस, फिटकरी और नासपाल के योग

से बनता है ।

करंड^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करण्ड] १. मधुकोश । शहद का छत्ता । २.

तलवार । ३. कारडव नाम का हंस । ४. वाँस की बनी हुई

टोकरी या पिटारी । डला । डली उ०—मन भुजग गुरु गारडी

राखे कील करड ।—रज्जव०, पृ० २० । ५. एक प्रकार

की चमेली । हजारा चमेली ।

करड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुरविन्द] कुशल पत्थर जिसपर रखकर छुरी

और हथियार आदि तेज किए जाते हैं ।

करंडक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करण्डक] वाँस का बना छोटा पिटारा या

बक्स [को०] ।

करंडिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० करण्डिका] वाँस की बनी छोटी पिटारी

या पेटी [को०] ।

करंडी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० अंडी] कच्चे रेशम की बनी हुई चादर ।

करंडी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० करण्ड] वाँस की बनी छोटी पेटी या

पिटारी [को०] ।

करंडी^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करण्डिन्] मछली [को०] ।

करंतीना—सञ्ज्ञा पुं० [अ० क्वारंटाइन] दे० 'क्वारंटाइन' ।

करंदी—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] विना भोजन किए न टलनेवाला व्यक्ति ।

कंगला ।

करघय—वि० [सं० करन्धय] हाथ का चुवन करनेवाला । हाथ

चूमनेवाला [को०] ।

करव—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करम्ब] [वि० करन्वित] मिश्रण । मिलावट ।

करवित—वि० [सं० करम्बित] १. मिश्रित । मिलावा । मिला हुआ ।

२. खचित । बना हुआ । गढ़ा हुआ ।

करभ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करम्भ] १. दही मे सना सत्तू । २. दलिया ।

३. मिली जुली गध । ४. पक । उ०—जो को कूटकर

कमोदिन^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुमुदिनी] दे० 'कुमुदिनी'। उ०—चद वेदरदी तें हुग्रा, दरदी कमोदिन क्या किया।—घट०, पृ० ११२।

कमोदिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुमुदिनी] दे० 'कुमुदिनी'। जल मे वसै कमोदिनी, चदा वसै अकास—कवीर सा० सं०, पृ० ५३।

कमोरा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुम्भ + हि० शोरा (प्रत्य०)] [स्त्री० कमोरी, कमोरिया] १ मिट्टी का एक बरतन जिसका मुँह चौड़ा होता है और जिममे दूध दुहा और रखा जाता है तथा दही जमाया जाता है। २ घड़ा। कछरा। ३ मटका।

कमोरिया^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्मार] छोटा, पतला और हलका बांस।

विशेष—यह मसहरी लगाने या ढावे की पाटन आदि के काम आता है।

कमोरिया^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कमोरा] छोटा कमोरा या मटकी।

कमोरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कमोरा] चौड़े मुँह का छोटा मिट्टी का बरतन जिममे दूध नहीं रखा जाता है। मटकी। गगरी। उ०—मली करी हरि माखन खायो। इतो मानि लीनी अपने सिर उररो सो डरकायो। राखी रही दुराइ कमोरी सो लै प्रगट दिखायो।—सूर (शब्द०)।

कमोला—वि० [सं० कम्प] कमनीय। सुंदर। उ०—कहाँ अघर रंग सुरग अमोला। कहाँ मदन वह सिहर कमोला।—हिंदी प्रभा०, पृ० २७६।

कमोवेश—वि० [फा०] थोड़ा बहुत। न्यूनाधिक। उ०—अपनी थका देनेवाली गरीबी की जिदगी की जिसे वे सुदूरपूर्व के रेगिस्तानों में, जंगलों में, कमोवेश बमर करते रहे।—प्रेम और गोर्की, पृ० ३७७।

कमौरी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कमोरी] दे० 'कमोरी'। उ०—ऊपर तें कृष्णागव भरि भरि डारति कनक कमौरी।—छीत०, पृ० २२।

कम्म^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कम्म, प्रा० कम्म] दे० 'कम्म'। उ०—कवहु एहु नहि कम्म करिअई।—कीर्ति०, पृ० १८।

कम्मखत^१—वि० [फा० कम्मखत] दे० 'कवखत'। उ०—भइभा भैखत फिरत कम्मखत रोय कै जनम गंवावें।—पलटू० पृ० ७१।

कम्मर^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कमर] दे० 'कमर'। उ०—कम्मर को न कटारी दई।—सूपण ग्र०, पृ० ४६।

कम्मर^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कम्मल] दे० 'कम्मल'। उ०—चिता बाई रोग लगा, छिन छिन तन छीजै। कम्मर गरुआ होय, ज्यो ज्यो पानी से भीजै।—पलटू०, पृ० ६६।

कम्मल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कम्मल] दे० 'कवल'। उ०—तरतु इस कम्मल को लाल टोपी का सत्यानाश हो।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २५८।

कम्मा^१—सञ्ज्ञा पुं० [वैश०] ताड़पत्र पर लिखा हुआ लेख।

कम्मा^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कम्म, प्रा० कम्म] काम।

यौ०—दोहरकम्मा=वही काम फिर उसी प्रकार करना।

कम्मान^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० कमान] दे० 'कमान'। उ०—गहे वान कम्मान समसेर नेजे। सुनी वात काने लिखी आँख दीखे।—हम्मीर०, पृ० ५।

कम्प्युनिक—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रा०] सरकारी विज्ञप्ति या सूचना। वह सरकारी वक्तव्य जो समाचारपत्रों को छापने के लिये दिया जाता है। जैसे,—सरकार ने एक कम्प्युनिक निकालकर इस समाचार का खडन किया।

कम्प्युनिज्म—सञ्ज्ञा पुं० [अंग०] वह मतवाद या सिद्धांत जिसमें संपत्ति का अधिकार समष्टि या समाज का माना जाता है। व्यक्ति विशेष या व्यक्ति का स्वत्व नहीं माना जाता। समष्टिवाद।

कम्प्युनिस्ट—सञ्ज्ञा पुं० [अंग०] वह जो कम्प्युनिज्म या समष्टिवाद के सिद्धांत को मानता हो। कम्प्युनिज्म के सिद्धांत को माननेवाला।

कम्प—वि० [सं०] १ कामी। कामुक। २ सुंदर। उ०—तब ये लोचन मीन कम्प थे।—साकेत, पृ० ३४५।

कययिनि^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कायय का स्त्री०] दे० 'कयिन'। उ०—वानिन चली सेंदुर दिए मांगा। कययिनि चली समाइ न आगा।—जायसी ग्र०, पृ० ८१।

कययथ^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कपित्थ, प्रा० कइयथ] दे० 'कपित्थ' उ०—सुन् करि कदम कययथ करील। कमोदिनि कुदह केतकि वील।—पृ० २१०, पृ० २१३५५।

कयपूती—सञ्ज्ञा स्त्री० [मला० कयु + पेड + पूती = सफेद] एक सदा-बहार पेड़ जो सुमाना, जावा, फिलिपाइन आदि पूर्वीय द्वीप-समूह में होता है।

विशेष—जावा और मैनिला आदि स्थानों में इसकी पत्तियों का तेल निकाला जाता है जिसकी महक बहुत कड़ी होती है और जो बहुत साफ, कपूर की तरह उबनेवाला और स्वाद में चरपरा होता है। यह तेल दर्द के लिये बहुत बहुत उपकारी है। गठिया के दर्द में यह और दवाओं के साथ मला जाता है।

कयर^१—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] दे० १ 'कैर' या 'करील'। उ०—जिए मुइ पन्नग पीयणा, कयर-कैटाला खूँख। आके फोगे छौहडी, छूछा भांजइ भूख।—ढोला०, दू० ६६१।

कया^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० काया] दे० 'काया'। उ०—रानी उतर दीन्ह कै मया। जो जिउ जाइ रहै किमि कया।—जायसी ग्र० (गुप्त) पृ० १५७।

कयाधू—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] हिरण्यकशिपु की पत्नी और प्रह्लाद की माता का नाम [स्त्री०]।

कयाम—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कयाम] १ ठहराव। ठिकाना। विश्राम। क्रि० प्र०—करना।—फरमाना।—होना।

२ ठिकने की जगह। ठहरने की जगह। विश्राम स्थान। ठिकाना। ३ ठौर ठिकाना। निश्चय। स्थिरता। जैसे—उनकी बात का कुछ कयाम नहीं।

कयामत—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कयामत] १ मुमलमानों, ईसाइयों और यहूदियों के अनुसार सृष्टि का वह अंतिम दिन जब सब मूर्दे उठकर खड़े होंगे और ईश्वर के सामने उनके कर्मों का लेखा रखा जायगा। अंतिम।

मे वह कर जो जमींदार गांव मे उन बसनेवालों से बसूल करता है जो खेती नहीं करते ।

कमीला—सञ्ज्ञा पु० [सं० कम्पिल्ल] एक छोटा पेड़ जिसके पत्ते अमरुद की तरह के होते हैं और जिसमें बेर की तरह के फल गुच्छों में लगते हैं ।

विशेष—यह पेड़ हिमालय के किनारे काश्मीर से लेकर नेपाल तक होता है, तथा बंगाल (पुरी, सिंहभूमि), युक्तप्रदेश (गडवाल, कमाऊ, नेपाल की तराई), पंजाब (कमिडा), मध्यप्रदेश और दक्षिण में बराबर मिलता है । इसके फलों पर एक प्रकार की लाल लाल धूल जमी होती है जिसे भाड़कर मलग कर लेते हैं । यह धूल भी कमीला के नाम से प्रसिद्ध है । यह रेशम रंगने के काम में आती है । इसकी रंगाई इस प्रकार होती है—सेर भर रेशम को अर्ध सेर सोडा के साथ थोड़ी देर तक पानी में उवालेते हैं । जब रेशम कुछ मुलायम हो जाता है, तब उसे निकाल लेते हैं और उसी पानी में २० तोले कमीला (बुकनी) और ढाई तोले तिल का तेल, पाव पर फिटकरी और सोडा मिलाते हैं । फिर सब चीजों के साथ पानी को पाव घंटे तक उवालेते हैं । इसके अनंतर उसमें फिर रेशम डाल देते हैं और १५ मिनट पर उवा कर निकाल लेते हैं । निकालने पर रेशम का रंग नारंगी निकल आता है । कमीला फोड़े फुसी की मरहमों में भी पड़ता है । यह खाने में गरम और दस्तावर होता है । यह विषय होता है । इससे रस्ती से अधिक नहीं दिया जाता ।

कमीवेशी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] न्यूनता अधिकता । स्वल्पता या बाहुल्य ।

कमीशन—सञ्ज्ञा पु० [अ० कमिशन] १ चुने हुए कुछ विद्वानों की वह समिति जो कुछ समय के लिये किसी गूढ़ विषय पर विचार करने के लिये नियत की जाती है । आयोग । २ कोई ऐसी सभा जो किसी कार्य की जांच या खोज के लिये नियत की जाय । आयोग ।

क्रि० प्र०—बंठना ।—बंठाना ।

३ किसी दूर रहनेवाले व्यक्ति की गवाही लेने के लिये एक या अधिक वकीलों का नियत होना ।

क्रि० प्र०—जाना ।—निकलना ।

४. दलानी । दस्तूरी । ५ एजेंट की हैसियत से काम करने का अधिकार ।

कमीस—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कमीज] दे० 'कमीज' ।

कमु जा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कमुञ्जा] १ चोटी । बेणी । २ केशों का गुच्छा [को०] ।

कमुग्रा—सञ्ज्ञा पु० [हि० काम] नाव खेने की डोड का दस्ता ।

कमुकंदर—सञ्ज्ञा पु० [सं० कामुकं + दर] धनुष तोड़नेवाले रामचंद्र ।
उ०—व्याकुल लखि बंदर, हसि कमुकंदर सब दसकंधर नाश क्रिय ।—विश्राम (शब्द०) ।

कमुजा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ चोटी । बेणी । २ केशों का गुच्छा [को०] ।

कमुदिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुमुदिनी] दे० 'कुमुदिनी' । उ०—

उत्तम रंग सुमाल जनु फुलि कमुदिनी ताल ।—पृ० ११०, १४११८८ ।

कमून—सञ्ज्ञा पु० [अ०] जीरा । जीरक । अनाजी ।

कमूनी—वि० [फा० कमून=जीरा] जीरा सबधी । जीरे का । जिसमें जीरा मिला हो ।

यो०—जवारिका कमूनी = जीरे का अबलेह वा चटनी ।

कमूनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] एक यूनानी दवा जिसका प्रधान भाग जीरा है ।

कमूल—सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'कमलाई' ।

कमेटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० कमिटी] सभा । समिति । उ०—बुगी की कमेटी सफाई करके मेरा निवारण करना चाहती है ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ४७८ ।

कमेडी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० कॉमेडी] दे० 'कामेडी' । उ०—जिस नाटक के अंत में सब वस्त्र मिटकर आनंद हो जाय उसे अंग्रेजी में कमेडी कहते हैं ।—श्री वास ग्र०, पृ० ७ ।

कमेडी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० कुनरी] पड़क जानि की एक चिड़िया । उ०—और घणा ही आवसी चिड़ी कमेडी काग । हसा फेर न आवसी सुण समदर मंदभाग ।—राम० धर्म०, पृ० ६६ ।

विशेष—यह सफेद कबूतर और पड़क से उत्पन्न होती है । रंग सफेद और गने में केठीया हंसुली होती है । पैर लाल होते हैं और बोली मनोहर एवं गंभीर होती है जिसमें 'केशव तू, केशव तू' भी ध्वनि निकलती है । यह प्रायः उजड़ स्थानों में रहती है और इसका पालन अशुभ माना गया है ।

कमेरा—सञ्ज्ञा पु० [हि० काम + एरा (प्रत्य०)] १ काम करनेवाला । मजदूर । नौकर । २. मातहत नौकर ।

कमेला—सञ्ज्ञा पु० [हि० काम + एला (प्रत्य०)] वह जगह जहाँ पशु मारे जाते हैं । वधस्थान । कसाईखाना । बूबडखाना [को०] ।

मुहा०—कमेला करना = मारना । हनना ।

कमेला—सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'कमीला' ।

कमेहरा—सञ्ज्ञा पु० [हि० काम या देश] कच्ची मिट्टी का साँचा जिसमें मडिया वा कसकुट की चूड़ियाँ ढाली जाती हैं ।

कमोड—सञ्ज्ञा पु० [अ०] लोहे या चीनी मिट्टी आदि का बना हुआ, कड़ाही के आकार का एक प्रकार का अंगरेजी ढग का पात्र जिसमें पाख ना फिरते हैं । गमना ।

कमोद—सञ्ज्ञा पु० [सं० कुमुद] दे० 'कुमुद' । उ०—कोई कमोद परसहि कर पाया । कोई मतयागिरि धिरकहि काया ।—पदमावत, पृ० ८७ ।

कमोदन—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुमुदिनी] दे० 'कुमुदिनी' ।

कमोदिक—सञ्ज्ञा सं० [सं० कामोद = एक राग + क] १. कामोद राग गानेवाला पुरुष । २. गर्वरा । उ०—वेणि चरो बलि कुँवरि सयानी । ममय वसत विपिन रथ हय गय मदन सुभट नृप फोज पनानी । बोलत हंसत चपन वदीजन मनहुँ प्रशसित पिक वर वानी । धीर समीर रटत वर अलिगन मनहुँ कमोदिक मुरलि सुठानी ।—सूर (शब्द०) ।

यो०—बालकमानी—घड़ी का एक बहुत पतली कमानी जिसके सहारे कौमा या चक्कर घूमता है।

२ भुकाई हुई लोहे की लचीली तीली। जैसे, छाते की कमानी, चश्मे की कमानी। ३. एक प्रकार की चमड़े की पेट्टी जिसके भीतर लोहे की लचीली पट्टी होती है और सिरों पर गद्दियाँ होती हैं।

विशेष—उसे आत उतरनेवाले रोगी कमर में इसलिये लगाते हैं जिसमें आत उतरने का मार्ग बंद रहे।

४ कमान के आकार की कोई भुकी हुई लकड़ी जिसमें दोनों सिरों के बीच में रस्सी, तार या बाल बँधा हो जैसे, सारंगी की कमानी, (बढई के) बरमे की कमानी, हक्काकों की कमानी (जिससे नग या पत्थर काटने की सान घुमाई जाती है)। ५. बाँव की एक पतली फट्टी जो दरी बुनने के करघे में काम आती है।

कमानीदार—वि० [फा०] जिसमें कमानी लगी हो। कमानीवाला। जैसे, कमानीदार एक्का।

कमायच—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कमायज] दे० 'कमायज'। उ०—सितार कमायच अब मुहचगा। ताल मूदग न फेरी सगा।—कवीर सा०, पृ० २४६।

कमायज—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० कमानचा] सारंगी आदि बजाने की कमानी।

कमाल^१—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] परिपूर्णता। पूरापन।

मुहा०—कमाल को पहुँचाना=पूरा उतारना।

२. निपुणता। कुशलता। ३. अद्भुत कर्म। अनोखा कार्य।

उ०—वेगम साहब कमाल है। अल्ला जानता है कमाल है।

—फिसाना०, ३, पृ० २।

क्रि० प्र०—करना।—बिखाना।

४ कारीगरी। सनभत। ५ कबीर के बेटे का नाम, जो कबीरदास ही की तरह फक्कड़ साधु था। कहते हैं, जो बात कबीर कहते थे, उसका उलटा ये कहते थे। जैसे, कबीर ने कहा—मन का कहना मानिए, मन है पक्का मीत। परब्रह्म पहिचानिए, मन ही की परतीत। कमाल ने कहा—मन का कहा न मानिए, मन है पक्का जोर। लै ओरें मजभार मे, देय हाथ से छोड़। इसी बात को लेकर किसी ने कहा है कि 'बूढ़ा बस कबीर का उपजा पूत कमाल'।

कमाल^२—वि० १ पूरा। सपूर्ण। सब। २ सर्वोत्तम। पहुँचा हुआ। ३ अत्यंत। बहुत। ज्यादा। उ०—विचारे तमाल कमाल सोच में पड़ काले पड़ गए—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १६।

कमाला—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कमाल] पहलवानों की आपसी कुश्ती।

विशेष—यह केवल अभ्यास बढ़ाने या हुनर दिखाने के लिये होती है और इसमें हार जीत का ध्यान नहीं रखा जाता।

कमालियत—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] १. परिपूर्णता। पूरापन। २. निपुणता। कुशलता।

कमाली^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कपाली] दे० 'कपाली'। उ०—जुटे जद्दराण, उर्म-अप्रमाण। हुई वीर हुक्क, कमाली किलक्क।—रा० क०, पृ० १६१।

कमासुत—वि० [हि० कमाना+सुत] १. कमानेवाला। कमाई करनेवाला। पैदा करनेवाला। २. उद्यमी।

कमाहक्कहू—वि० [अ० कमाहक्कहू] बखूबी। उचित रूप में। ठीक ठीक। उ०—आज जमाने की रफतार और चबन है, उसी पर कमाहक्कहू अमल करते।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५६।

कमिक्षा^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कामाक्षी] दे० 'कामाक्षी'। उ०—कमरु माह कमिक्षा देवी। नीमखार मिसरख जम लेवी।—कवीर सा०, पृ० ८०४।

कमिटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] सभा। समिति।

कमिता—वि० [सं० कमितृ] [स्त्री० कमित्रि] १ कामुक। कामी। २ कामना रखनेवाला। चाहनेवाला।

कमिया—सञ्ज्ञा पुं० [हि० काम > कम + इया (प्रत्य०)] दे० 'कमकर'। उ०—अधिकाश जनता दास और कमिया थी।—मान०, पृ० १०५।

कमिश्नर—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] १. माल का वह बड़ा अधिकारी जिसके अधिकार में कई जिले हों। २. वह अधिकारी जिसको किसी कार्य के करने का अधिकारपत्र मिला हो। ३. आयुक्त।

कमिश्नरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० कमिश्नर] १. वह भूभाग जो किसी कमिश्नर के प्रबंधाधीन हो। २. डिवीजन। प्रमंडल। जैसे,—बनारस एक कमिश्नरी है। ३. कमिश्नर की कचहरी। जैसे,—कमिश्नरी में मामला चल रहा है। ३. कमिश्नरी का काम या पद। जैसे—उन्होंने कई वर्ष तक कमिश्नरी की थी।

कमीण^१—वि० [फा० कमीन] दे० 'कमीना'। उ०—कौन आपनी कमीण विचारा, किसकूँ पूज गरीब पियारा।—शङ्कर, पृ० ६२८।

कमी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] १ न्यूनता। कोताही। घटाव। अल्पता। जैसे,—अमी पचास में दस की कमी है।

क्रि० प्र०—करना।

२. हानि। नुकसान। टोटा। घाटा। जैसे,—उन्हें इस साल ५) सैकड़ की कमी आई।

क्रि० प्र०—घाना।—पड़ना—होना।

कमीज—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० कमीस, फा० शेमीज] एक प्रकार का कुता।

विशेष—इसमें कली और चौबगले नहीं होते। पीठ पर चुनन, हाथों में कफ और गले में कालर होता है। यह पहिनावा अंगरेजों से लिया गया है।

कमीन^१—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] घात, शिकार या वार के लिये ओट।

कमीन^२—वि० [फा०] नीच। अधम। खल। धूर्त। अकुलीन।

कमीनगाह—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कमीन + फा० गाह] वह स्थान जहाँ से ओट में खड़े होकर तीर या बंदूक चलाई जाती है।

कमीना—वि० [फा० कमीनहू] [स्त्री० कमीनी] ओछा। नीच। क्षुद्र।

कमीनापन—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कमीना + पन (प्रत्य०)] नीचता। ओछापन। क्षुद्रता।

कमीनीवाद्य—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० कमीना + हि० बाद्य = उगाही] देहाव

देना । कमान खींचना = कमान पर लीर बहुत कर उनके रोते
के नन्ही मोर खींचना । कमान बंधना = खींचदोर होना ।
बैठे — यह इन दोनों की कमान बंधी हुई है । २. ऊँचेरी
बहुत । ओर से होता । कमान बंधना = कमान का बिना
बंदना । कमान बनना = दे० 'कमान खींचना' ।

२. ईदनुष ।

क्रि० प्र०—निकलना ।

३. मेहराबदार बग़ाइत । मेहराब । ४. लोन । व०—हमारे की
छोटी केनोदास काटना नै, कमान कैसे गेला हनुमान चल्तो
लंक में ।—रामच०, पृ० ३२ । ५. ईदुका । उ०—परमल बांध
कमाने बरों । बज जगिन मुख बाहु भरि ।—जानकी(सम्प०) ।

क्रि० प्र०—बहुना ।—बना ।

१. कमान की एक कसरत ।

विशेष—इसमें मालखंभ के गले की खाँच या मुँहरे की संधि पर एक
और रीर और दूसरी ओर हाथ रखकर पेट को ऊपर उठाते हैं ।
यो०—कमान की लोडन = कमान करते समय मुँहरे पर एक
हान के मुँहवा लपेटना और पाँव उड़ाकर मालखंभ से कमान
पेट के कमान नीचे आते हुए लिपट जाना ।

६ कानीन बुननेवालों का औजार । ७ एक वन जिससे दो तारों
या वन्नुओं के बीच के कोणाल की दूरी अथवा क्षितिज से
किसी तारे की ऊँचाई मापी जाती है ।

विशेष—इसमें एक शीशा लगा रहता है जिसपर दोनों तारों की
छाया ठीक नीचे ऊपर आ जाती है । इस शीशे के सामने एक
दूरबीन लगी रहती है ।

कमान^३—सज्ञा स्त्री० [अ० कमाड] १. आज्ञा । हुक्म । फौजी काम
की आज्ञा ।

यो०—कमान । अफसर ।

२ नौकरी । ड्यूटी । फौजी काम ।

मुहा०—कमान पर जाना = नौकरी पर जाना । लड़ाई पर जाना ।
कमान पर होना = काम पर जाना । लड़ाई पर होना । कमान
बोलना = (१) नौकरी पर जाने की आज्ञा देना । (२) लड़ाई
पर जाने की आज्ञा देना । कमान बोली जाना = काम या
लड़ाई पर जाने की आज्ञा मिलना ।

कमान अफसर—सज्ञा पुं० [अ० कमांडिंग ऑफिसर] फौज का वह
अफसर जो कप्तान के मातहत, पर लेफ्टिनेंट से ऊपर होता
है । कमानियर ।

कमानग्रन्थ—वि० [फ़ा० कमाग्रन्थ] जिसकी भीड़ धनुष की तरह
टेढ़ी और सुंदर हो ।

कमानगर—सज्ञा पुं० [फ़ा०] दे० 'कमगर' ।

कमानगरी—सज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दे० 'कमगरी' ।

कमानचा—सज्ञा पुं० [फ़ा०] १ छोटी कमान । २ सारंगी बजाने
की कमान । ३ मिहराब । डाट । धुनकी ।

क्रि० प्र०—डालना ।—पड़ना ।

कमानदार^१—सज्ञा पुं० [अ० कमांडर] फौजी अफसर ।

कमानदार^२—वि० [फ़ा०] १. मेहराबदार । २. धनुष्य ।

कमानदुरस्त—वि० [फ़ा० कमानदुरस्त] कुंआ । कुंआ ।

कमाना^१—क्रि० प्र० [हि० कमान से बना] १. बंधना । २. बंधना
से एक दरजिन करना । कमानदार करके कमान देना करना ।

मुहा०—कमान धरना = उदर भर भर करना । २. बंधना
करके रसम देना करना ।

संयो० हि०—रखना । लेना ।

२. उदर या परिधन से किसी वस्तु को पल्लि दुक करना ।

कुधारना या कान के मोर रवाना । जैसे, रीत कमान, बमझा
कमाना, लोहा कमाना ।

यो०—कमाने हुई हुई या रेह = कसरत से बनेष्ट किया हुआ
शरीर । कमाना लीप = वह लीप जिसके निहिते रीत कमान
लिए गए हों (मयारी) ।

३. सेवा सरोरी छोटे मोटे काम करना । जैसे, पा माय सभावा
(उठाना), पर कमाना, दाड़ी कमाना (तुँहना) । ४. हर्म
सचम करना । कर्म करना । जैसे, पाप कमाना, पुसा कमाना ।
उ०—जो तु मग मेरे हरे राग कमानो । सीतापति
संमुख सुधी सब औन समानो ।—गुलारी (सम्प०) ।

कमाना^२—क्रि० प्र० १. तुल्य अवस्थाय करना । मेहनत मजदूरी
करना । जैसे,—वह कमाने गया है । २. कसरत करना । धौं
कमाना । जैसे,—अब तो वह इधर उधर कमाती फिरती है ।
कमाना^३—क्रि० प्र० [हि० कम से नाम०] कम करना । घटाना ।
(बाजार) । जैसे,—इस सोने में ५) और कमानो तो तुम
इसे ले लें ।

कमानिया^१—सज्ञा पुं० [फ़ा० कमान + हि० इया (प्रत्यय)] कमान
चलायेवाला । धनुष चलायेवाला । तीरदाज । उ०—धनुष
पूर्ण कमान को अरु भूक सव कोइ । बरकदाज कमानिया पूर
उतहु से होइ ।—गिरिधर (शब्द०) ।

कमानिया^२—वि० [हि० कमानो + इया (प्रत्यय)] १ जिसमें किसी
प्रकार की कमान लगी हो । २. जिसमें किसी प्रकार की
मेहराब या गर्धपूर हो । मेहराबदार ।

कमानो—सज्ञा स्त्री० [फ़ा० कमान] [वि० कमानोदार] १. लोहे की
तीली, तार अथवा इसी प्रकार की और कोई वस्तु में वह
जो इस प्रकार बँटाई हो कि तब पड़ने से जब जाम और
हटने पर फिर अपनी जगह पर आ जाय । उ०—कमान
कमानो बार तार सो सुंदर ताहि लगायो है ।—नारतुंगरा०,
भा० १, पृ० ३५५ ।

विशेष—कई फंदों में कोई लोहे का तार, लोहे की मृदा का
बँटाई हुई पट्टियाँ आदि कमानो का काम देती हैं । कमानो
कई कामों के लिये बँटाई जाती है । मति के मिय, नैक,
...

कमलाक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कमल का बीज । कमलगट्टा । २. दे० 'कमलनयन' ।

कमलाग्रजा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी की बड़ी वहन दरिद्रता ।

कमलानिवास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ लक्ष्मी के रहने का स्थान । २. कमल का फूल । कमल ।

कमलापति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] लक्ष्मी के पति विष्णु ।

कमलालया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह जिसका निवास कमल में हो । २ लक्ष्मी ।

कमलावती—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] पद्मावती छंद का एक दूसरा नाम ।

कमलासन—सञ्ज्ञा पुं० [नं०] १ ब्रह्मा । २ योग का एक आसन जिसे पद्मासन कहते हैं । दे० 'पद्मासन' ।

कमलिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कमल । २ छोटा कमल । ३. वह तालाव जिसमें बहुत कमल हो ।

कमलिनीकांत—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कमलिनीकांत] सूर्य [को०] ।

कमलिनीवधु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कमलिनीवधु] सूर्य [को०] ।

कमली^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कमलिन्] ब्रह्मा ।

कमली^२—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कमरा] छोटा कबल । उ०—शिशिरकणो से लदी हुई, कमली के भीगे हैं सब तार ।—भरना, पृ० ५ ।

कमलेक्षण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह जिसके नेत्र कमल जैसे हो । विष्णु [को०] ।

कमलेच्छन^(१)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कमलेक्षण] कमलनयन । विष्णु । उ०—चारि वरदानि तजि पाइ कमलेच्छन के, पाइक मलेच्छन के काहे को कहाइयै ।—कवित्त०, पृ० १०० ।

कमलेश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] लक्ष्मी के पति विष्णु ।

कमलो^(१)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कमल, यू० कमल] ऊँट । सांडिया । उष्ट्र ।—डि० ।

कमवाना—क्रि० सं० [हिं० कमाना का प्र० रूप] १. (धन) उपार्जन कराना । (स्वया) पैदा कराना । २ निकृष्ट सेवा कराना । जैसे,—माखाना कमवाना (उठवाना) । दाढी कमवाना 'मुढाना' । ३. किसी वस्तु पर मिहनत कराके उसे सुधरवाना या कार्य के योग्य बनवाना । जैसे, चमड़ा कमवाना, खेत कमवाना ।

कमसखुन—वि० [फा० कम + सखुन] मितभावी । अल्पभापी । कम बोलनेवाला [को०] ।

कमसमझी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० कम + हिं० समझ] अल्पज्ञता । मूर्खता । नादानी । उ०—मेरी कमसमझी घर खीरकर रानी ने कहा ।—ज्ञानदान, पृ० ३५ ।

कमसरियट—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] सेना का वह विभाग जो सेना के रसद पानी का प्रबंध करता है । फौज के मोदीखाने का मुहकमा ।

कमसिन—वि० [फा०] [सञ्ज्ञा स्त्री० कमसिनी] कम उम्र का । छोटी अवस्था का । अल्पवयस्क ।

कमसिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] लड़कपन । बचपन । कमउमरी । अल्पवयस्कता ।

कमहा^१—वि० [हिं० काम + हा (प्रत्यय)] १ काम करनेवाला । २ मजदूर ।

कमहिम्मत—वि० [फा० कम + अ० हिम्मत] जिसमें साहस कम हो । डरपोक ।

कमहैसियत—वि० अ० [फा० कम + अ० हैसियत] १ अप्रतिष्ठित । २ हीन आर्थिक स्थितिवाला । ३. अकुलीन ।

कमाडर—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] फौज का वह अफसर जो लेफ्टिनेंट के ऊपर और कप्तान के मातहत होता है । कमान । कमान अफसर ।

यो०—कमाडर इन चीफ ।

कमाडर-इन चीफ—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कमाडर इन चीफ] फौज का सबसे बड़ा अफसर । प्रधान सेनापति । सेनाध्यक्ष ।

कर्माण^(१)—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० कमान] धनुष । उ०—सतगुरुनई कर्माण करि, बाँहण लागा तीर । एक जु बाह्या प्रीति सूँ, भीतरि रह्या सरीर ।—कवीर ग्रं०, पृ० १ ।

कर्माँचा^१—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० कमाच^१ । उ०—का भापा का संस्कृत, प्रेम चाहिए साँच । काम जो आवै कामरी, का लँ करै कर्माँच ।—सतवाणी०, पृ० ७५ ।

कमा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सौंदर्य । लावण्य । छवि [को०] ।

कमाइचा^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० कमान] १ छोटी कमान । कमानचा । २ सारजी बजाने की कमान । उ०—वीना वेनु कमाइच गहे । बाजे तहँ अमृत गहगहे ।—जायसी (शब्द०) ।

कमाई^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० कमाना] १. कमाया हुआ धन । अर्जित द्रव्य । उ०—गहा बाँह उवाहूँ तोहि राई । यहि हसन की अहे कमाई ।—कवीर सा०, भा० ४, पृ० ५५७ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

१. कमाने का काम । व्यवसाय । उद्यम । धंधा । जैसे,—दिन भर किस कमाई में रहते हो ।

कमाऊ^१—वि० [हिं० कमाना] उद्यम व्यापार में लगा रहनेवाला । धनोपार्जन करनेवाला । कमानेवाला । कमासुत । जैसे,—कमाऊ पूत ।

कमागरी^१—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कमगर] दे० 'कमगर' १. उ०—जनहरिया सतगुर इसा जिता कमागर होय । शब्द मशकला फेर करि दाग न राखै कोय ।—राम० धर्म०, पृ० ५४ ।

कमाच^१—सञ्ज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा । उ०—काम जो आवै कामरी का लँ करै कर्माँच ।—तुलसी (शब्द०) ।

कमाची^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० कमची] दे० 'कमची' ।

कमाची^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० कमानचा] कमान की तरह भुकाई हुई तीली ।

कमाचीदार^१—वि० [फा०] कमानोदार । घुमावदार । कमचीदार । उ०—अपने कमाचीदार गोन को, जो किसी बड़े छाते से कम नहीं होते ।—प्रेमधन०, भा० २, पृ० २६१ ।

कमान^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] १ धनुष । कमाठा ।

यो०—कमानगर ।

मुहा०—कमान उतारना = कमान का चिल्ला या रोवा उतार

लघु और गुरु, यथाक्रम होते हैं। यथा—‘घिधिरुट घाकिट विनि-
घरि, यरकु, गिडि गिडि, दिदिगन यो। ११ दीपक राग का
दूसरा पुत्र। इसकी भार्या का नाम जयजयवंती है। १२.
मायिक छंदो में छह मात्राओं का एक छंद जिसमें प्रत्येक चरण
में गुरु लघु गुरु लघु (G L) होता है। जैसे, दीनवधु। शील
सिधु। १३. छप्पय के ७१ भेदों में से एक। इसमें ६३ गुरु,
६६ लघु, १०६ वर्ण और १५२ मात्राएँ होती हैं। १४
एक प्रकार का वर्णवृत्त जिसका प्रत्येक चरण एक नगण का
होता है। जैसे,—न वन, मजन, कमल, नयन। १५ काँच का
एक प्रकार का गिलास जिसमें मोमवत्ता जलाई जाती है। १६
एक प्रकार का पित्त रोग जिसमें शीर्ष पीली पड़ जाती है
और पेशाब भी पीला आता है। पीलू। कमला। काँवर। १७.
मूत्राशय। मसाना। नुतवर।

कमल०^१—सज्ञा पुं० [सं० कपाल या देश०] शिर। मस्तक। उ०—
(क) कर बापट फूटे कमल, नाखें नयणा नीर।—बाकी ५०,
भा० २, पृ० २०। (ख) गोवदराज गहिलौत आइ। त्रैंछो
सु कुंशर कमल नवाइ।—पृ० १०, ६। १३४। (ग) वेड कमल
लीघी खग वाहे।—रा० ६०, पृ० २६०।

कमलग्रंथ। सज्ञा पुं० [सं० कमल = हि० ग्रंथ] कमलगट्टा।

कमलकंद। सज्ञा पुं० [सं० कमलकन्द] कमल की जड़। मिस्सा।
भसीड। मुरार।

कमलक—सज्ञा पुं० [सं०] लघु आकार का कमल। छोटा कमल [को०]।

कमलगट्टा—सज्ञा पुं० [सं० कमल + ग्रन्थिक, > प्रा० *कमल + गट्टम्]
कमल का बीज। पद्मबीज। कमलाक्ष।

विशेष—कमल के बीज छत्ते में से निकलते हैं। इनका छिनका
कड़ा होता है। छिनके के भीतर सफेद रंग की गिरी निकलती
है जिसे वैद्य लोग ठंडी और मूत्रकारक मानते हैं। तथा वमन,
इकार आदि कई रोगों में देते हैं। कमलगट्टा पुष्टि में भी
पड़ता है।

कमलगर्भ—सज्ञा पुं० [सं०] कमल का छत्ता।

कमलज—सज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

कमलजात—सज्ञा पुं० [मं०] ब्रह्मा। उ०—दिखि महिमा अनुमति तात
की। सुधि बुधि गई कमलजात की।—नंद० ग्रं०, पृ० २६२।

कमलनयन^१—वि० [सं०] [श्री० कमलनयनी] जिसकी आँखें कमल की
पंखड़ी की तरह बड़ी और सुंदर हों। सुंदर नेत्रवाला।

कमलनयन^२—सज्ञा पुं० १. विष्णु। २. राम। ३. कृष्ण।

कमलनाभ—सज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

कमलनाल—सज्ञा श्री० [सं०] कमल की डंडी जिसके ऊपर फूल रहता
है। मृणाल।

कमलपाणि—वि० [मं०] जिसके हाथ कमल के समान हों। उ०—
विनायक एक हूँ मैं भावें ना पिनाक ताहि, सोमल कमलपाणि
राम कैसे ल्यावई।—केसव (शब्द०)।

कमलवर्ध—सज्ञा पुं० [सं० कमलवर्ध] एक प्रकार का चित्रकाव्य जिसके
प्रक्षरों को एक विशेष क्रम से लिखने पर कमल के आकार का
चित्र बन जाता है।

कमलवंधु—सज्ञा पुं० [सं० कमलवन्धु] सुयं।

कमलवाई—सज्ञा श्री० [हि० कमल + वाई] एक रोग। जिम जगैर,
विशेषकर शीर्ष पीली पड़ जाती है।

कमलभव—सज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

कमलभू—सज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

कमलमूर०^१—सज्ञा पुं० [सं० कमल + मूल] दे० 'कमलमूल'। उ०—
तिरपुटिय भाल शिल कमलमूर। इह भीति ताव नप तपनि
जूर।—पृ० १०, १। ४=६।

कमलमूल—सज्ञा पुं० [मं०] १. बड़ोड। मुन्ग। २. मस्तकस्थित
सहस्रदल कमल का मूल भाग।

कमलशोनि—सज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

कमलवन—सज्ञा पुं० [सं०] कमलों का पुज या समूह [को०]।

कमलवायु—सज्ञा श्री० [सं०] एक व्याधि जिनमें शरीर, विशेषकर
शीर्ष पीली पीली पड़ जाती है। पीनिश। पाडुगोग। दे०
कमलवाई।

कमलप्रभव—सज्ञा पुं० [सं० कमलप्रभव] ब्रह्मा [को०]।

कमल^१—सज्ञा श्री० [मं०] १. लक्ष्मी। उ०—होती है ज्यों चाह
दीनजन को कपना की। यो चितागनीर चिन्ता में भकुनला
की।—शकुं०, पृ० १०। २. घन। ऐश्वर्य। ३. एक प्रकार
की बड़ी नारंगी। मंतरा। ४. एक नदी का नाम जो तिरहुत
में है। दरभंगा नगर इसी के किनारे पर है। ५. एक वर्णवृत्त
का नाम। दे० 'रतिपद'।

कमला^२—सज्ञा पुं० [सं० कमल] १. एक कीड़ा जिसके ऊपर रोएँ
होते हैं। मनुष्यों के शरीर में इसके छू जाने से घुजलाहट
होती है। भौंभा। सूँडी। २. अनाज या सबे कन आदि में
पड़नेवाला लड़ा सफेद रंग का कीड़ा। डोभा। डोपट।

कमलाई—सज्ञा पुं० [मं० कमल = कमल के समान लाल] एक पेड़ का
नाम जो राजपूताने की पहाड़ियों और मध्य प्रांत में होता है।

विशेष—यह पेड़ मियाने हद का होता है और जाड़े में इसके पत्ते
भड़ जाते हैं। इसके हीर की लकड़ी चीरने पर नाल और
फिर सूखने पर कुछ भूरी हो जाती है। यह बहुत चिकनी
और मजबूत होती है तथा गाड़ी और कोल्ह बनाने के काम
में आती है। अलमारियाँ और आराखों समान भी इसके
अच्छे बनते हैं। पत्तियाँ चारे के काम आती हैं। हाथी इसे
बड़े चाव से खाते हैं। शाल चमड़ा रँगने के लिये तथा गोद
कागज बनाने और कपड़ा रँगने के काम आती है। इसे कमल
भी कहते हैं।

कमलाकर—सज्ञा पुं० [सं०] नरोत्तर। तानाव। पुष्कर।

कमलाकात—सज्ञा पुं० [सं० कमलाकान्त] विष्णु। लक्ष्मीपति।

विशेष—यह शब्द राम, कृष्ण आदि त्रिपुण के प्रवक्तारों के लिये
भी आता है।

कमलाकार^१—सज्ञा पुं० [सं०] छाया का एक भेद। इनमें २३ गुण,
६८ लघु, १२५ वर्ण और १५२ मात्राएँ होती हैं।

कमलाकार^२—वि० [सं०] [श्री० कमलाकार] कमल के आकार का।

कमरिया^{३५}—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कमरा] दे० 'कमली' या 'कमरी' ।

कमरिया^{३५}—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कमर] दे० 'कमर' ।

कमरी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कमरा] दे० 'कमली' ।

कमरी^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] एक रोग जिसके कारण घोड़े सवार या बोझ को देर तक पीठ पर लेकर नहीं चल सकते, उनकी पीठ दबने या काँपने लगती है ।

कमरी^३—वि० [हि० कमर] चलने में पीठ मारनेवाला (घोड़ा) । कमजोर या कच्ची पीठ का (घोड़ा) । कुबड़ा ।

विशेष—कमरी घोड़े की पीठ कमजोर होती है, इसी से यह बोझ या सवारी लेकर दूर तक नहीं चल सकता, थोड़ी ही देर में उसकी पीठ काँप जाती है और बार बार पीठ काँपाता है । ऐसा घोड़ा ऐसी समझा जाता है ।

कमरी^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] १ चरखी की मूँड़ी में लगी हुई डेढ़ वालिशत की लवी लकड़ी । २ छोटी फतुई । सलूका ।

कमरी^५—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] जहाज जिसकी कमर टूट गई हो । टूटा जहाज ।

कमरू^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कामरूप] दे० 'कामरू' । उ०—कमरू माह कमिक्षा देवी । नीमखार मिसरख जम लेवी ।—कबीर सा०, पृ० ८०४ ।

कमरंगा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] वगाल की एक प्रकार की मिठाई ।

कमराल—वि० [अ०] व्यापार सबधी । व्यापारिक ।

कमल^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पानी में होनेवाला एक पौधा ।

विशेष—यह प्रायः ससार के सभी भागों में पाया जाता है । यह झीलो, तालाबों और गडहों तक में होता है । यह पेड़ बीज से जमता है । रंग और आकारभेद से इसकी बहुत सी जातियाँ होती हैं, पर अधिकतर लाल, सफेद और नीले रंग के कमल देखे गए हैं । कहीं कहीं पीला कमल भी मिलता है । कमल की पेड़ी पानी में जड़ से पाँच छ अँगुल के ऊपर नहीं आती । इसकी पत्तियाँ गोल गोल बड़ी थाली के आकार की होती हैं और बीच के पतले डठल में जड़ी रहती हैं । इन पत्तियों को पुरइन कहते हैं । इनके नीचे का भाग जो पानी की तरफ रहता है, बहुत नरम और हलके रंग का होता है । कमल चैत वसंत में फूलने लगता है और सावन भादों तक फूलता है । फूल लंबे डठल के सिरे पर होता है तथा डठल या नाल में बहुत से महीन महीन छेद होते हैं । डठल का नाल तोड़ने से महीन सूत निकलता है जिसे बटकर मदिरा में जलाने की वस्तियाँ बनाई जाती हैं । प्राचीन काल में इसके कपड़े भी बनते थे । बौद्ध में लिखा है कि इस सूत के कपड़े से ज्वर दूर हो जाता है । कमल की कली प्रातः काल खिलती है । सब फूलों की पखड़ियों या दलों का संख्या समान नहीं होती । पखड़ियों के बीच में केसर से घिरा हुआ एक छत्ता होता है । कमल की गंध भीरों को बड़ी प्यारी लगती है । मधुमक्खियाँ कमल के रस को लेकर मधु बनाती हैं जो आँख के रोग के लिये उपकारी होता है । मिस्र भिन्न जाति के कमल के फूलों की आकृतियाँ भिन्न भिन्न होती हैं । जमरा (अमेरिका) टापू

में एक प्रकार का कमल होता है जिसके फल का व्यास १५ इंच और पत्तों का व्यास साढ़े छह फुट होता है । पखड़ियों के झड़ जाने पर छत्ता बढ़ने लगता है और थोड़े दिनों में उसमें बीज पड़ जाते हैं । बीज गोल गोल लंबोत्तरे होते हैं तथा पकने और सूखने पर काले हो जाते हैं और कमलगट्टा कहलाते हैं । कच्चे कमलगट्टे को लोग खाते हैं और उसकी तरकारी बनाते हैं, सूखे दवा के काम आते हैं । कमल की जड़ मोटी और सूराखदार होती है और मसौड़, मिस्सा या मुरार कहलाती है । इसमें से भी तोड़ने पर सूत निकलता है । सूखे दिनों में पानी कम होने पर जड़ अधिक मोटी और बहुतायत से होती है । लोग इसकी तरकारी बनाकर खाते हैं । अकाल के दिनों में गरीब लोग इसे सुखाकर आटा पीसते हैं और अपना पेट पालते हैं । इसके फूलों के अक्रूर या उसके पूर्वरूप प्रारंभिक दशा में पानी से बाहर आने से पत्तों नरम और सफेद रंग के होते हैं और पौनार कहलाते हैं । पौनार खाने में मोटा होता है । एक प्रकार का लाल कमल होता है जिसमें गंध नहीं होती और जिसके बीज से तेल निकलता है । रक्त क ल भारत के प्रायः सभी प्रांतों में मिलता है । इससे संस्कृत में कोनद, रक्तोत्पल, हल्लक इत्यादि कहते हैं । श्वेत कमल काशी के आसपास और अन्य स्थानों में होता है । इसे शतपत्र, महापत्र, नल, सीतावुज इत्यादि कहते हैं । नील कमल विशेषतः कश्मीर के उत्तर और कहीं कहीं चीन में होता है । चीन कमल अमेरिका, साइबेरिया, उत्तर जर्मनी इत्यादि देशों में मिलता है ।

यो०—कमलगट्टा । कमलज । कमलनाल । कमलनयन ।

पर्या०—अरविद । उत्पल । सहस्रपत्र । शतपत्र । कुशेशय । पक्क पकेशह । तामरस । सरस । सरसीरह । विपप्रसून । राजीव । पुष्कर । पकज । अमोहह । अमोज । अमुज । सरसिज । श्रीवास । श्रीपूर्ण । इंदिराला । जलजात । कोकनद । बनज इत्यादि ।

विशेष—जलनाचक सत्र शब्दों में 'ज', 'ज' त' आदि लगने से कमलनाची शब्द बनने हैं, जैसे, वरिज, नीरज, कज आदि ।

२ कमल के आकार का एक पासपिंड जो पेट में दाहिनी ओर होता है । बलोमा ।

मुहा०—कमल खिलना = चित्त आनंदित होना । जैसे,—आज तुम्हारा कमल खिला है ।

३ जल । पानी । उ०—हृदयकमल नैनकमल, देखिकै कमलनैन, होहुँगी कमलनैनी और हों कहा कहीं ।—केशव (शब्द०) ।

४. ताँवा । ५ [स्त्री० कमली] एक प्रकार का मृग । ६ सारस । ७ आँख का कोया । डेला । ८ कमल के आकर का पहल काटकर बना हुआ रत्नचड । ९ योनि के भीतर कमलाकार अंगुष्ठ के अगले भाग के द्वारा एक गाँठ जिसके ऊपर एक छेद होता है । यह गर्भाशय का मुख या मग्नमाग है । फूल । धरन । टण्डा ।

मुहा०—कमल उलट जाना = वच्चेद नी या गर्भाशय के मुँह का अपवर्तित हो जाना जिससे स्त्रियाँ वध्या हो जाती हैं ।

१० ध्रुवताल का दूसरा भेद जिसमें गुक, लघु, द्रुत, द्रुतविराम,

कमरख—संज्ञा पुं० [सं० कमरङ्ग, प्रा० कम्मरग] १. मध्यम आकार के एक पेड़ का नाम जो हिंदुस्तान के प्राय सभी प्रांतों में मिलता है। कमरग। कमरग।

विशेष—इसकी पत्तियाँ अंगुल डेढ़ अंगुल चौड़ी, दो अंगुल लंबी और कुछ नुकीली होती हैं तथा सीको में लगती हैं। यह जेठ असाढ़ में फूलता है। फूल भड़ जाने पर लंबे लंबे पांच फाँकोंवाले फल लगते हैं, जो पूस माघ में पकते और पककर खूब पीले होते हैं। कच्चे फल खट्टे और पक्के खटमिठे होते हैं। इनमें बनाव बहुत होता है, इसीलिये पक्के फलों में चना लगाकर खाते हैं। फल अधिकतर अचार चटनी आदि के काम में आता है। कच्चे फल रंगाई के काम में भी आते हैं। इससे लोहे के मुर्चे का रंग दूर हो जाता है। बँध लोग इसके फल, जड़ और पत्तियों को औषध के काम लाते हैं। खाज के लिये यह अत्यंत उपयोगी माना जाता है।

२. उमर पेड़ के फल का नाम।

कमरखी^१—वि० [हि० कमरख] कमरख के जैसा। कमरख के समान फाँकदार। जिसमें कमरख के ऐसी उमड़ी हुई फाँकें हों। जैसे, कमरखी गिलास। कमरखी चित्रम्।

कमरखी^२—संज्ञा स्त्री० किसी गोज चीज के किनारे पर कटी हुई कंगुरेदार फाँकें।

क्रि० प्र०—काटना।—काढ़ना।—बनाना।

कमरखंडी^७—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० कमर + सं० चण्डी] तलवार।—डि०।

कमरटूटा—वि० [फ्रा० कमर + हि० टूटना] १. कुञ्ज। कुवडा। २. नामदं। सुस्त।

कमरतेगा—संज्ञा पुं० [फ्रा० कमर + हि० तेग] कुश्ती का एक पेंच। कमरदोग्राल—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० कमर + दोग्राल] चमड़े का वह तसमा जिससे घोड़े की पीठ पर जीन आदि कसी जाती है।

कमरपट्टी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० कमर + हि० पट्टी] एक पतली पट्टी जो अंगरखे, सलूके आदि के घेरे में छाती के नीचे और कमर के ऊपर चारों ओर लगाई जाती है।

कमरपेटा—संज्ञा पुं० [फ्रा० कमर + हि० पेटा] १. मालखम की एक कसरत।

विशेष—यह दो प्रकार की होती है। एक में तो बेंत कमर में लपेटते और उसके छोर को दोनों अंगुठों को तानकर ऐसा खींचते हैं कि एंडी चूतड़ के पास लग जाती है और कसरत करनेवाला अपनी घड़ नीचे झुकाकर हाथ छोड़ता हुआ भोका खाता है। दूसरी में पहले मालखम पर सीधी पकड़ से चढ़ते हैं। फिर जब पूर्वकाय नीचा होता है, तब कसरत करनेवाला एक तरफ की टाँग से मालखम को लपेटता और खूब दबाता है तथा रियारी की पकड़ करता हुआ बराबर रद्दे देता है।

यो०—कमर लपेटे की उलटी = मालखम की एक कसरत।

विशेष—इसमें पहले कमरलपेटा बाँधकर अगला घड़ हाथ समेत पीठ पर उलटा लटकाता और दूसरी ओर निकालकर बाँधें २-३४

पैर की जाँघ और पिडली के बीच फँसाता है फिर बाँधें हाथ के पजे को विपक्षी के बाँधें हाथ के घूटने के पास भीतर से अड़ाता और दाहिने हाथ से उसकी दाहिनी भुजा निकालकर या आगे बढ़ाकर हफ्ते के पेंच से उसे चित्त करता है।

कमरवद^१—संज्ञा पुं० [फ्रा०] [भाव० संज्ञा कमरवदी] १. लंबा कपडा जिससे कमर बाँधते हैं। पटुका। २. पेटो। ३. इजार-वद। नाडा। ४. वह रस्सी या डोरी जो किसी पदार्थ के मध्य भाग के चारों ओर लपेटो जाय।

क्रि० प्र०—बाँधना।—लगाना।

५. लडासी जिसमें एक जहाज को दूसरे जहाज से बाँधते हैं या जिसमें लगर बाँधते हैं। ६. जहाज के किनारे अँवठ से नीचे बाहर की तरफ चारों ओर कँगनी की तरह निकले हुए तख्ते जिनमें कुलावे लगे रहते हैं। ये तख्ते बाहर से जहाज की मजबूती के लिये लगाए जाते हैं। ७. जहाज के किनारे बाहरी तरफ की रगीन लकीरें या धारियाँ।

कमरवद^२—वि० कमर कसे हुए। तैयार। मुस्तैद। कटिवद।

कमरवदी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] लडाई की तैयारी। मुस्तैदी। सनद्धता।

कमरबंध—संज्ञा पुं० [फ्रा० कमर + सं० बन्ध] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—जब दोनों पहलवानों की कमर परस्पर बँधी रहती है।

और दोनों ओर से पूरा जोर लगता रहता है, तब खिलाडी विपक्षी को छाती के बल से अपनी ओर खींचकर दसाता है।

और बाहरी टाँग मारकर चित्त करता है।

कमरवल्ला—संज्ञा पुं० [फ्रा० कमर + वल्ला] खपड़े की छाजन में वह लकड़ी का पटुका जो तडक के ऊपर और कोरो के नीचे लगाई जाती है। कमरवस्ता।

कमरवस्ता—वि० [फ्रा० कमरवस्तह] १. तैयार। प्रस्तुत। कटिवद। सनद्ध। २. हथियारवद। ३. दे० 'कमरकल्ला'। उ०—कमरवस्ता हिम्मत का भारी किया। अटल कस्द की हत मतारी किया।—दक्खिनी०, पृ० १४७।

कमरा^१—संज्ञा पुं० [लै० कैमेरा] १. कोठरी। २. फोटोग्राफी का एक औजार जो संदूक के ऐसा होता है और मुँह पर लेंस या प्रतिबिंब उतारने का गोल शीशा लगा रहता है।

विशेष—इस संदूक को आवश्यकतानुसार फैला या मिक्कोड करने

द्वै ।—पद्माकर (शब्द०) । (ख) नई कमनैत नई ये कमान नए नए वान नई नई चोटै ।—(शब्द०) ।

कमनैती—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० कमान + हि० ऐती (प्रत्यय)] तीर चलाने की विद्या । तीरदारजी । धनुर्विद्या । उ०—(क) तिय कत कमनैती पढी, विन जिह भौह कमान । चित चल वेभे चुकति नहि, बक विलोकनि वान ।—विहारो (शब्द०) । (ख) निरखत वन घनश्याम कहि, गेटन उठति जु वाम । विकल बीच ही करत जनु, करि कमनैती काम ।—पद्माकर (शब्द०) ।

कमवस्त्र—वि० [फा० कमवस्त्र] भाग्यहीन । अभाग्य । वदनसीव । उ०—किसी तरह यह कमवस्त्र हाथ आता तो और राजपूत खुद वखुद पस्त हो जाते ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५२१ ।

कमवस्ती—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० कमवस्ती] वदनसीवी । दुर्भाग्य । अभाग्य ।

क्रि० प्र०—आना ।

मुहा०—कमवस्ती का मारा = दुर्भाग्यग्रस्त [को०] ।

कमयाव—वि० [फा०] जो कम मिने । दुष्प्राप्य । दुर्लभ ।

कमरग—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कमरख] दे० 'कमरख' ।

कमरद—वि० [फा० कम + हि० रिध या रव] कम उवाला । कच्चा । जो ठीक से सीमा न हो । खूबा । मोटा । उ०—सहज सून्य, चिंता नाम आवरण, वरण, त्रिकुटी, वासा विवेक घर, अजपा द्वार, निहकाम पैसार, सतोप निसार, कमरद अहार, अगम व्योहार । इन चित मारग जीव अनुसरै तो स्वरूप युक्त भोगवै ।—गोरख०, पृ० २३४ ।

कमर^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] १ शरीर का मध्य भाग जो पेट और पीठ के नीचे पेड़ू और चूतर के ऊपर होता है । शरीर के बीच का घेरा जो पेट और पीठ के नीचे पड़ता है । कटि ।

यो०—कमरकस । कमरदोआल । कमरवद । कमरवस्ता ।

मुहा०—कमर करना = (१) घोड़ों का इस प्रकार कमर उछालना कि सवार का आसन उछड़ जाय । (२) कवूतर का कलावाजी करना । कमर कसना = (१) किसी काम को करने के लिये तैयार होना । उद्यत होना । उत्तारु होना । तत्पर होना । कटिवद्ध होना । (२) चलने को तैयारी करना । गमनोद्यत होना । (३) किसी काम को करने की दृढ़ प्रतिज्ञा करना । सकल्प करना । इरादा करना । उ०—दुसरा उसी को अश्लील मानकर वाद करने के लिये कमर कस लेता है ।—रस क० (विशेष), पृ० ४ । कमर खोलना = (१) कमरवद उतारना । पटका खोलना । (२) विश्राम करना । दम लेना । सुस्ताना । ठहरना । (३) किसी काम को करने का इरादा छोड़ देना । सकल्प छोड़ना । (४) किसी उद्यम से मन हटाना । किसी उद्योग का ध्यान छोड़ देना । निश्चित बैठना । (५) हिम्मत हारना । हतोत्साह होना । कमर टूटना = आशा टूटना । निराश होना । उत्साह का न रहना । जैसे,—जब से उनका लडका मरा है, तब से उसकी कमर टूट गई । कमर तोड़ना = हताश करना । निराश करना । कमर बाँधना = (१) कमर में पट्टा या दुपट्टा बाँधना । कमरवद बाँधना । पेटी लगाना ।

(२) दे० 'कमर कसना' । उ०—खैरखवाही कर उसकी खजारी पर कमर बाँधी है ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३५१ । कमर बँध जाना = दे० 'कमर टूटना' । कमर सीधो करना = ओठेंगकर विश्राम करना । लेटकर यकावट मिटाना ।

२ कुशती का एक पेंच जो कमर या कूल्हे से किया जाता है ।

क्रि० प्र०—करना ।

मुहा०—कमर की टेंगडी = कुशती का एक पेंच ।

विशेष—जब शत्रु पीठ पर रहता है और उसका बायाँ हाथ कमर पर होता है, तब खिलाडी अपना भी बायाँ हाथ उसकी वगल में से ऊपर चढ़ाकर कमर पर ले जाता है और बाईं टेंगडी मारते हुए चूतड़ से उठाकर उसे सामने गिराता है ।

३ किसी लंबी वस्तु के बीच का वह भाग जो पतला या घंसा हुआ हो । जैसे—फोल्हू की कमर = कोल्हू का गडारीदार मध्य भाग जिसपर कनेठ और भूजेला घूमते हैं । ४ अंगरखे या सलूके आदि का वह भाग जो कमर पर पड़ता है । लपेट ।

यो०—कमरपट्टी ।

कमर^२—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कमर] चाँद । चद्र । चद्रमा । उ०—बैठे जो शाम से तेरे दर पर सहर हुई । अफसोस भ्रम कमर कि न मुतलक पवर हुई ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८५५ ।

कमरकश—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] बहादुर । वीर पुरुष ।

कमरकस^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कमर + फा० कश] पलास का गोद । डाक का गोद । चुनिया गोद ।

विशेष—यह गोद पलास के पेड़ से आपसे आप भी निकलता है और छीलकर भी निकाला जाता है । इसके लाल लाल चमकीले टुकड़े बाजारों में विकते हैं जो स्वाद में कसले होते हैं । यह गोद पुष्टई की दवाओं में पड़ता है । वैद्यक में इसे मलरोधक तथा सग्रहणी और खाँपी को दूर करनेवाला माना जाता है ।

कमरकस^२—सञ्ज्ञा पुं० [फा० कमर + हि० कसना] १ करघनी । २ पेटी । कमरवद । ३ फेंटा ।

कमरकसाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० कमर + हि० कसना] वह स्त्रियाँ पैसा जो सिपाही लोग अगले समय में अपने असाभियों को पेशाब पाखाने की छुट्टी देने के बदले में वसूल करते थे ।

कमरकोज—वि० [फा० कमर + अ० कौज = उकना] कुबड़ा । कमर-टूटा । कुब्ज ।

कमरकोट—सञ्ज्ञा पुं० [फा० कमर + हि० कोट] १ कमर भर या और ऊँची दीवार जो प्रायः किसी और नगरी की चारदीवारियों (परकोटे या शहरपनाह) के ऊपर होती है और जिसमें कंगूरे और छेद होते हैं । २ रक्षा के लिये घेरी हुई दीवार ।

कमरकोटा—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कमरकोट' ।

कमरकोठा—सञ्ज्ञा पुं० [फा० कमर + हि० कोठा] कोठे की वह कड़ी या धरन जो दीवार के बाहर निकली हो ।

की पत्नी लचीली धम्जी । नीली । २. पत्नी लचदार छड़ी ।
३. पत्नी लडाने में हाथ का झटका जिससे उँगलियाँ टूट
जायी हैं ।

क्रि० प्र०—लगाता ।

३. लक्ष्मी प्रादि की पत्नी छड़ी ।

कमच्छा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० क्षात्ता] घातान्न प्राप्त न रामरूप की
एक देवी । उ०—कौटो देम कमच्छा देवी तही सब दामाज
जोगी ।—(जब्द०) ।

कमजर्फ—वि० [फा० कम + जर्फ] प्रयोग्य । दुपात्र । थोड़ा ।
नीच (शे०) ।

कमजात—वि० [फ० कमजात] तुच्छ पत्र का । नीच जाति का ।
उ०—कोत्त करेजत कजाकी कमजात काम कानन बमान
तान मानन दिवावतो ।—श्यामा०, पृ० १३४ ।

कमजोर—वि० [फा० कमजोर] दुर्बल । निर्बल । प्रयत्न ।

कमजोरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० कमजोरी] निर्बलता । दुर्बलता ।
नाताकनी । अशक्तता ।

कमठा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक छोटा कटिहार पौधा ।

कमठी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [तु० कमची] पेड़ की पत्तली लचीली टहनियाँ ।

कमठी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [उ० कमठी = चाँस] जौन या लकड़ी की लचीली
धम्जी । छड़ी ।

कमठ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कमठी] १ कछुआ । कच्छप । उ०—
दिनि कुजरु कमठ ग्रहि कोला । धरदु धरति धरि धीर न
जोना ।—मानस, १।२६० । २ साधुओं का तुड़ा । ३ पत्ति ।
४. नन्दाई का पेड़ । ५. एक देव का नाम । ६. एक पुराना
राजा जिसपर चमड़ा मड़ा रहता था ।

कमठा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कमठ = चाँस] १ धनुष । कमान । उ०—
बैठी छात्रो की हृदयी श्रव, झुकी रीड़ कमठा सी टेंग्री ।—
मान्य, पृ० २६ । २ जैनियों के एक महात्मा का नाम जिसने
लपोवन से महात्म निर्जरा प्राण को ली ।

कमठान—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कम + त्मान] बघार । झोडार । गली ।
उ०—साफो धन एकन किया जा रहा है धीर मोघ ही किले
के कमठाने में जमा कर लिया जायगा ।—झाँसी०, पृ० ३१ ।

कमठी^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कछुई । उ०—कहा नवो रूपट जुषा की
ही हारी । लघुभि गात गोवत कमठी ज्यो रहति हृदय
विकन भद्र भारी ।—लुचयो (जब्द०) ।

कमठी^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कमठ = चाँस] बीज की पत्तरी लचीली
धम्जी । छड़ी ।

कमतर—वि० [फा०] गुना कम । न्यूनतम । नपुंर ।

कमतरोन—वि० [फा०] बहुत ही कम । लघुतम । बहुत छोटा ।

विशेष—इन शब्दों का प्रयोग पञ्चा अक्षरा दिखाने के लिए भी
करता है ।

कमतपज्जहो—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० कम + पज्जहो] नागपत्नी ।
न्यायन (शे०) ।

कमती^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० कम + ती (प्रत्यय)] कमी । कमी ।

जंग—(क) दाम में कुछ कमती पड़ती नहीं रहने । (घ) उनके
यहाँ कुछ कमती है ।

कमती^२—वि० कम । थोड़ा । जंगे—वह मोटा कमती देता है ।

कमतोला—वि० [फा० कम + ला० तोला] कम लीजने या डींगी
मारनेवाला ।

कमदण्डी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कुमुदिनी] १ 'कुमुदिनी' । उ०—
धेणु कमदण्डी कमदण्डी, विमर्द जगद प्राद ।—शोभा०,
पृ० १२६ ।

कमदिला—वि० [फा० कम + दिल] महीलुं तबीरताया । छोटे
दिनवाला । तगदिल । उ०—उ गुहगार गरीब पाकि रम-
दिला दिलजार ।—रं० बाबो, पृ० २८ ।

कमध—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कवन्ध] १ 'कवध' । उ०—पच पचिउ विपु
रीन करि निर्दले सोल नुद मेलिह तो कमध धेने ।—पद
प्र० (मू०), भा० १, पृ० १०३ ।

कमधज्ज(छाँ)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कवन्ध + ज] फिर बट जान पर की
लड़ने रहनेवाला व्यक्ति धीरे उमड़ी जगपरपरा के तन ।
राठोर । उ०—दिल्ली के मानन राज राजग पभन । ता
उपर कमधज्ज तेन पञ्ची चतुरग ।—पृ० २।०, १।३२१ ।

कमन^१—वि० [सं०] १ कामुक । कामी । २ लक्ष्मी । नृद (शे०) ।

कमन^२—सञ्ज्ञा पुं० १ कामदेव । २ प्रयोक वृक्ष । ३ प्रज्ञा (शे०) ।

कमन^३—सर्व [हि० कोन] ३० 'कोन' । उ०—पति पुरव पदादि
पवभर कमन सहि मो रे ।—विद्यापति, पृ० ६ ।

कमनचा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कमचा] २० 'कमचा' ।

कमनजर—वि० [फा० कम + जर] महीलुं दृष्टिमाना ।
प्रदूरदर्शी ।

कमनसीव—वि० [फा० कम + प्र० नसीव] हतनागर । नरनाग ।
प्रभागा ।

कमनसीवी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० कम + प्र० नसीवी] भाग्यहीनता ।
वशतिमती ।

कमना—क्रि० प्र० [फा०] कम होना । न्यून होना । पटना ।
उ०—दोउ श्रमन नहि पद कमन नहि उर कमन कोष न
धीर । वरु विप्रि प्रपञ्चन कहर मठन तनु पगार धीर ।
—सुप्रभास (जब्द०) । (घ) कनिह नहि सह प्रप
मुहारी । लचन मानि मन प्रप धर नहि ।—रघुनाथ
(जब्द०) ।

विशेष—यह प्रयोग पञ्चविंश धीरे व्याख्यानित है ।

कमनी—वि० [सं० कमनीय] २० 'कमनीय' । उ०—कमनी
कमनी न्यून विपु नर कीक ।—श्यामा०, पृ० १२५ ।

कमनीय—वि० [सं०] १ कामना करो वाला । २. मवाहुर । सुन्दर ।
उ०—"कमनीय अधिकमें कोदक, कादक-कवा कोदक
धीरे विद विदना की पावकका है ।—पृ० २० (नृ०)
पृ० २ ।

कमनेत—वि० [फा० कमन + हि० ऐत (प्रत्यय)] [सञ्ज्ञा कमनेत]
कमान पमानवाला । मोहक । उ०—(क) मानो प्रयतिर
न पद को पदम दीनी मान कमनेत विन रोता रा कनाहे

कर्मगरी—सज्ञा पुं० [फा० कमानगर] १ कमान बनाने का पेशा या हुनर । २ हड्डी बँटाने का काम । ३ गुमोवरी । ४ कार्यकुशलता [को०] ।

कर्मचा—सज्ञा पुं० [फा० कमानचह] बड़ई का कमान की तरह का एक टेढ़ा भोजार जिसमें बँधी रस्सी को परमे में लपेटकर उभे घुमाते हैं ।

कर्मडल—सज्ञा पुं० [सं० कर्मण्डलु] दे० 'कर्मडलु' । उ०—ब्रह्म कर्मडल मडन, भव खडन सुर सरवस ।—मारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० २२२ ।

कर्मडली^१—वि० [हि० कर्मडल + ई (प्रत्य०)] १ कर्मडलु रखने वाला । साधु । वैरागी । २ पाखंडी । माडवरी ।

कर्मडली^२—सज्ञा पुं० ब्रह्मा । उ०—मुष्ट तेज सहस्र दस मडली बुधि दस सहस्र कर्मडनी । नृप चहूँ और सोहित भली मडनीक की मडली ।—गोपाल (शब्द०) ।

कर्मडलु—सज्ञा पुं० [सं०] १ सन्यासियों का जलपात्र जो घातु, मिट्टी, तुमड़ी, दरियाई नारियल आदि का होता है । २. पाकर या पक्कड़ का पेड़ । उ०—कर्मडलु घाटी चामर तारा अर्धा पूला तिलपक्षी आ जम घाटहन ।—रघु०, पृ० १२ ।

कर्मडलुतरु—सज्ञा पुं० [सं० कर्मण्डलुतरु] पाकर या पक्कड़ का वृक्ष । वह वृक्ष जिसकी लकड़ी से कर्मडलु बनाया जाता है [को०] ।

कर्मडलुघर—सज्ञा पुं० [सं० कर्मण्डलुघर] शिव । महादेव । शकर [को०] ।

कर्मद^१—सज्ञा पुं० [सं० कर्मद] विना सिर का घड़ । कर्मद । उ०—(क) शीश सिखे साईं लखे, भल बाँका असवार । कर्मद कपीरा किलकिया, केता किया शुमार ।—कवीर (शब्द०) । (ख) जब लग घर पर सीस है, सूर कहाँ कोय । माया टूट घर लरै, कर्मद कहाँ सोय ।—कवीर (शब्द०) ।

कर्मद^२—सज्ञा स्त्री० [फा०] १ रेशम, सूत या चमड़े की फदेदार रस्सी जिसे फँककर जंगली पशु आदि फँसाए जाते हैं । लडाईं में इससे शत्रु भी बाँधे और खींचे जाते थे । फदा । पाश । २ फदेदार रस्सी जिसे फँककर चोर, डाकू आदि ऊँचे मकानों पर चढ़ते हैं । फदा ।

क्रि० प्र०—डालना ।—पड़ना ।—फँकना ।—लगाना ।

कर्मघ—सज्ञा पुं० १. दे० 'कर्मघ' । २ कलह । लडाईं । झगडा । ३. ७१ ठोठ । उ०—कुल महिमा करण कपण बुध बल पीढ़ी वध । सारा सूर जवाँसियाँ कुल रखवाल कर्मघ ।—रा० ६०, पृ० १०१ ।

क्रि० प्र०—मचना ।—मचाना ।

कर्म^१—वि० [फा०] १. थोडा । न्यून । तनिक । अल्प । उ०—वया कज अदाइयाँ हैं क्या कम निगाहियाँ हैं ।—कविता को०, भा० ४, पृ० ४३ ।

यो०—कर्मप्रवल = अल्पबुद्धि का । कर्मजोर । कर्मजात । कर्मसिन = थोड़ी अवस्था का ।

मुहा०—कर्म से कम = अधिक नहीं तो इतना अवश्य । जैसे,—

कर्म से कम एक बार बहो हो तो माइए । (इस मुहावर का नाव तो' प्रायः आता है ।)

२ युग । जैसे,—कर्मप्रवृत्त । कर्मप्रसन्न ।

कर्म^२—क्रि० वि० प्राय नहीं । बहुत नहीं । जैसे—(क) व प्र कर्म आते हैं । (ख) वे यत्र कर्म मितते हैं ।

कर्म^३—क्रि० वि० [हि० कर्मि] दसे । प्योकर । उ०—जाना रो कम छउइ ठामि ?—बी० रानो, पृ० ६० ।

कर्मप्रकन—वि० [प्र०] बेकदूर । नागमक । कन मुदिराना [को०] ।

कर्मप्रमल वि० [फा० कर्म + प्र० प्रमल] वगलहर । योगना ।

कर्मउग्र—वि० [फा० कर्म + प्र० उग्र] प्रत्यक्ष । कर्मप्रसन्न का । छोटी उग्र का ।

कर्मकर—सज्ञा पुं० [सं० कर्मकार] १. कार्यकर्ता । २ अधिक । काम करनेवाला व्यक्ति । उ०—यहाँ कर्मकर और कामचोर ऐलियाँ न थी ।—मान०, पृ० २७ । ३ इन्तकार ।

कर्मकस—वि० [सं० कर्म + कसना] काम से जो चुरानेवाला । काहिल । सुस्त । कामचोर । उ०—जिन देश के बहुत मनुष्य सावधान और उपयोगी होते हैं, उनकी उन्नति होती जाती है, और जिन देश में प्रसावधान और कामरुम विनिय होता है, उसकी प्रगति होती जाती है ।—परीक्षागुण (शब्द०) ।

कर्मकीमत—वि० [फा० कर्म + प्र० कीमत] कम दाम का । थोड़े मूल्य का । गस्ता [को०] ।

कर्मकर्च—वि० [फा० कर्म + कर्च] क्लृप्तायत्तसार । प्रत्यक्ष [को०] । मुहा०—रमलचं वाला नहीं = सस्ती और उड़िया ।

कर्मस्वाय—सज्ञा पुं० [फा० कर्मस्वाय] एक प्रकार का मोटा और गफ रेशमी कपड़ा ।

विशेष—इसपर कलायत्तु के रेश बूटे बने होते हैं । यह एकलया और दोलया दोनों तरह का होता है । इसका चान चार सारे चार गज का होता है और बड़े दामों पर बिकता है । यह कानों में चुना जाता है ।

कर्मसुराक—वि० [फा० कर्म + सुराक] स्वल्पाहारी । मिताहारी । कम पानेवाला ।

कर्मखोरा—सज्ञा पुं० [फा० कर्मखोर] चोपायो के मुँह का एक रोग जिसमें वे पाना नहीं पा सकते ।

कर्मस्वाद^१—सज्ञा पुं० [फा० कर्मस्वाद] दे० 'कर्मचा' । उ०—(क) हीरा मोती घँसते धंगते, जरी और कर्मस्वाद ।—हिम०, पृ० ५४ । (ख) बनारस के कर्मस्वाद वर्गरे अब तक सब देशों में प्रसिद्ध हैं—श्रीनिवास प्र० (निवे०) पृ० १२ ।

कर्मस्वाद^२—वि० [फा०] कम सोनेवाला । थोडा सोनेवाला [को०] ।

कर्मगो—वि० [फा० कर्म + गो] मितमापी । कम बोलनेवाला ।

कर्मचा^१—सज्ञा पुं० [तु० कर्मचो] दे० 'कर्मचो' ।

कर्मचा^२—सज्ञा पुं० [फा० कमानचह] दे० 'कर्मचा' ।

कर्मचो—सज्ञा स्त्री० [तु०, सं० कर्मचका] १ वाँस, भाऊ आदि की पतली लचीली टहुनी जिससे टोकरी बनाई जाती है । वाँस

मुहा०—रुह कञ्ज होना = होत गुम होना ।

२ दस्त का साफ न होना । मनावरोध । ३ मुसलमान राज्य के समय का एक नियम जिसके अनुसार कोई फौजी अफसर फौज की तनखाह के लिये किसी जमींदार से सरकारी लगान वसूल करना था ।

विशेष— वह दो प्रकार का होता था (१) लाकलामी और (२) अमानी या वसूनी । कञ्ज लाकलामी वह कहलाता था जिसके अनुसार फौजी अफसर को तनखाह का नियमित रकबा पहले ही देना पड़ता था, चाहे उसे उस जमींदार से उतना वसूल हो या न हो । कञ्ज अमानी या वसूनी वह कहलाता था जिसके अनुसार वह फौजी अफसर उतना रकबा वसूल करता या जितना वह कर सके । इसके लिये उस फौजी अफसर को (१) सैन्डा कमीशन भी मिलता था । इस दस्तूर को अकबर ने बदल दिया था, परंतु अबध के नवाबों ने इसे फिर जारी किया था ।

६. वह शाही हुक्मनामा जिसके अनुसार वह फौजी अफसर उक्त रकबा वसूल करता था ।

यो०—कञ्जदार ।

कञ्जकुशा—वि० [ग्र० कञ्ज + फा कुशा] रेचक । कञ्जनिवारक ।

कञ्जा—संज्ञा पु० [सं० कञ्जह] १ मूँठ । दस्ता । जैसे—तलवार का कञ्जा । दर्राज का कञ्जा ।

मुहा०—कञ्जे पर हाथ डालना = (१) तलवार खींचने के लिये मूँठ पर हाथ न जाना । (२) दूसरे की तलवार की मूँठ को पकड़ लेना और उसे तलवार न निकालने देना । दूसरे की तलवार को नाहस से पकड़ना । कञ्जे पर हाथ रखना = किसी के मारने के लिये तलवार की मूँठ पकड़ना । तलवार खींचने पर उनाल होना ।

२ लोहे या पीतल की चद्दर के बने हुए दो चौखूँटे टुकड़े जो पकड़ में जुड़े रहते हैं और सलाई पर घूम सकते हैं । इनसे दो पल्ले या टुकड़े इस प्रकार जोड़े जाते हैं जिसमें वे घूम सकें । क्रिवाडों और सड़कों आदि में ये जड़े जाते हैं । नर-मादगी । पकड़ । ३ दखल । अधिकार । वश । इत्तियार ।

यो०—कञ्जादार ।

क्रि० प्र०—करना ।—जमाना ।—पाना ।—मिलना ।—होना ।

मुहा०—कञ्जा उठना = अधिकार का जाता रहना ।

८ दड़ । गुजदड़ । डांड । बाजू । मुश्क । ५ कुश्ती का एक पेंच ।

विशेष—यदि विपक्षी कनाट पकड़ता है तो खिलाड़ी दूसरे हाथ से उसपर चोट करता है अथवा अपने खाली हाथ से उसकी कनाई पर झटका देता है और अपना हाथ खींच लेता है । इसे 'गट्टा' या 'पट्टा' भी कहते हैं ।

कञ्जादार^१—संज्ञा पु० [ग्र० कञ्जह + फा० दार (प्रत्यय)] [नाव० संज्ञा कञ्जादारी] १. वह अधिकारी जिसका कञ्जा हो । २. दखोनकार असामी (अबध) ।

कञ्जादार^२—वि० जिसमें कञ्जा लगा हो ।

कञ्जित—संज्ञा ली० [ग्र० कञ्जित] पायवाने का साफ न आना । मलावरोध ।

कञ्जुलवसूल—संज्ञा पु० [ग्र०] वह कागज जिसपर तनखाह पानेवाले की भरपाई लिखी हुई हो ।

कन्न—संज्ञा ली० [ग्र० कन्न] १ वह गड्ढा जिनमें मुसलमान, ईसाई, यहुदी आदि अपने मुर्दे गाढ़ते हैं । २ वह चबूतरा जो ऐसे गड्ढे के ऊपर बनाया जाता है ।

यो०—कन्नित्तान ।

मुहा०—अपनी कन्न खोदना = अपने विनाश का कार्य करना । कन्न का मुँह झांकना या झांक आना = मरते मरते बचना । उ०—वह कई बार कन्न का मुँह झाँक चुका है । कन्न में पैर या पाँव लटकाना = मरने को होना । मरने के करीब होना । बहुत बुढ़ा होना । कन्न में तीन दिन भारी = मुसलमानों का खयाल है कि कन्न में मुर्दे का तीन दिन तक हिसाब किताब होता है । कन्न में साय ले जाना = मरते दम तक या मरकर भी न भूलना । कन्न से उठकर आना = मरते मरते बचना । पुनर्जीवन या नवजीवन ।

कन्नित्तान—संज्ञा पु० [ग्र० कन्न + फा० त्तान] वह स्थान जहाँ बहुत सी कन्न हो । वह स्थान जहाँ मुर्दे गाड़े जाते हैं ।

कन्नल—अव्य० [ग्र० कन्नल] पूर्वं । पहले । पेशतर ।

यो०—कन्नल अज वक्त = समय से पूर्व ।

कभी—क्रि० वि० [हि० कब + हो] १ किसी समय । किसी घड़ी । किसी अवसर पर । जैसे,—(क) तुम वहाँ कभी गए हो ? (ख) हम वहाँ कभी नहीं गए हैं ।

विशेष—'कब' का प्रयोग उस स्थान पर होता है जहाँ क्रिया निश्चित होती है । जैसे,—तुम वहाँ कब गए थे ? 'कभी' का प्रयोग उस स्थान पर होता है जहाँ क्रिया और समय दोनों अनिश्चित हों । जैसे तुम वहाँ कभी गए हो ?

मुहा०—कभी का = बहुत देर से । कभी कभी = कुछ काल के अंतर पर बहुत कम । कभी कमार = कभी कभी । कभी न कभी = किसी न किसी समय । आगे चलकर अवश्य किसी अवसर पर । जैसे,—कभी न कभी तुम अवश्य हमसे माँगने आओगे । कभी कुछ कभी कुछ = एक ढग पर नहीं । (इस वाक्य का व्याकरण सबध दूसरे वाक्य के साथ नहीं रहता, जैसे, उनका कुछ ठीक नहीं, कभी कुछ कभी कुछ) ।

कभुवक^१—क्रि० वि० [हि० कबहुँक] दे० 'कबहुँक' । उ०—कभुवक तेरा बाप है कभुवक तेरा पूत ।—सहजो०, पृ० २३ ।

कभू^२—क्रि० वि० [हि० कभी] दे० 'कभी' । उ०—करतु सरस जलकेनि कभू मीनहि गहि लावतु ।—मुजान०, पृ० ७ ।

कर्मगरी^१—संज्ञा पु० [फा० कमानगर] १ कमान बनानेवाला । कमान-साज । २ हड्डियों को बँटानेवाला । हाथ, पाँव या किसी जोड़ की उखड़ी हुई हड्डी को मरकर या दवा से असली जगह पर ले जानेवाला । ३. चितेरा । मुसीवर । चित्रकार ।

कर्मगरी^२—वि० किसी फन का उत्पाद । दस्त । कुशन । निपुण । कारीगर ।

कविताई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कविता + ई (प्रत्यय०)] दे० 'कविताई' ।
उ०—पढ़े पुरान गरंथ रात दिन, करे कविताई सोई ।—जग०
वानी०, पृ० ३३ ।

कवित्थ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कपित्थ' ।

कविनाह^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कविनाय] कविश्रेष्ठ । उ०—प्रेम कथन
ते जानिए, वरनत सब कविनाह ।—मति० प्र०, पृ० ३५४ ।

कविराई—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कविराज] दे० 'कविराय' ।

कविरावाँ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कवि + हि० राव] दे० 'कविराज' । उ०—
उपजत जाहि बिलोक कै चित्त बीच रस भाव । ताहि बखानत
नायका, जे प्रवीन कविराव ।—मति० प्र०, पृ० २७३ ।

कविल^१—वि० [सं०] भूरापन लिए पीला [श्लो०] ।

कविल^२—सञ्ज्ञा पुं० भूरापन लिए पीला रंग [श्लो०] ।

कविली—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] मटर का एक प्रकार ।

कवीर^१—सञ्ज्ञा पुं० [अ० अवीर = वडा, श्रेष्ठ] १ एक प्रसिद्ध वैष्णव
भक्त का नाम ।

यो०—कवीरपथी ।

२ एक प्रकार का गीत या पद जो होली में गाया जाता है और
प्रायः अश्लील होता है । उ०—सरसर कवीर । तब के बामन
वे रहे पढते वेद पुरान । अब के बामन अस मथे जो लेत
घाट पर दान । भला हम सचि कहै मे ना डरवै ।

कवीर^२—वि० [अ०] श्रेष्ठ । बड़ा । जैसे अमीर कवीर । उ०—मल्ला
है वह कवीर उल् अकबर । याने बुजुर्ग है वह वरतर ।—
दक्खिनी०, पृ० ३०३ ।

कवीरपथ—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कवीर + पथ] कवीर का चलाया संप्रदाय ।
कवीरपथी—वि० [हि० कवीर + पथी] कवीर का मतानुयायी । कवीर
संप्रदाय का । जैसे,—कवीरपथी साधु ।

कवीरवड—सञ्ज्ञा पुं० [अ० अवीर = वडा + सं० वट = वड] नर्मदा के
किनारे भडौंच के पास का एक वड का पेड़ जिसका फेंकाव
या घेरा १४००० हाथ है और जिसके नीचे ७००० आदमी
बड़े आराम से टिक सकते हैं ।

कवील—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कवील] १ मनुष्य । आदमी । २ समूह ।
समुदाय ।

कवीला^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० कवीलह] १ स्त्री । जोरू । २ जाति ।
३ परिवार । ४ घर । ५ स्वजन । ६ परपरा ७
वर्ग । श्रेणी ।

कवीला^२—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कवीलह] १ कुल या वंश । २ जाति ।
३ घर । ४ स्वजन । परिवार । ५ वर्गश्रेणी । ६ जगली
या असम्भ जनजातियों का छोटा वडा समूह जिसका कोई
एक नायक या सरदार होता है ।

कवीला^३—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कमीला' ।

कबुरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० कब्र] दे० 'कब्र' ।

कबुलवाना—क्रि० सं० [अ० कबूल से नाम०] कबूल करवाना ।

स्वीकार करवाना ।

कबुलाना—क्रि० सं० [अ० कबूल से नाम०] कबूल कराना । उ०—

भगवत भक्ति करन कबुनाई । तुरत प्रापन सदन सिवाई ।—
रघुराज (शब्द०) ।

कबुलि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] किसी जानवर का पित्रुता भाग या
द्विरता [श्लो०] ।

कबु—क्रि० णि० [हि० कबू > कभी] दे० 'कभी' । उ०—ऐसा भगत मैं
कबु न पाया । नामदेव ने देव हुआया ।—दक्खिनी०, पृ० १६ ।

कबूतर—सञ्ज्ञा पुं० [फा०, तुलनीय शब्द० कपोत] [श्लो० कबूतरो]
एक पक्षी ।

विशेष—यह कई रंगों का होता है और इसके आकार भी कुछ
भिन्न भिन्न होते हैं । पैर में तीन उँगलियाँ प्रायेण और एक
पीछे होती है । यह अपने स्थान से प्रच्छी नरक पहुंचानता
है और कभी मूलता नहीं । यह भू में चमत्ता है । माया
दो प्रदे देती है । केवल हृषं के समय यह पुटपुट का
प्रस्पष्ट स्वर निकलता है । पीछा क तथा और दूसरे पक्षियों
पर नहीं चोलता । इसे मार भी डालें तो यह मुह नहीं
चोलता । गिरहवाज, गोला, लोटन, लाका, घोराजी, बुधारी
इत्यादि इसकी चट्ट सी जातिवाँ होती हैं । निगावाले कबूतर
भी होते हैं । गिरहवाज कबूतरों से लोग कभी कभी चिट्ठी
भेजने का भी काम लेते हैं ।

क्रि० प्र०—उड़ाना = कबूतरवाजी करना ।

कबूतरसाना—सञ्ज्ञा पुं० [फा० कबूतरसानह] वह स्थान जहाँ पक्षि
इष्ट वस्तु से कबूतर रखे जाते हैं । कबूतरो का बड़ा दरवा ।
कबूतरसाड़—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कबूतर + साड़] पिसावापड़े की तरह की
एक काड़ी ।

कबूतरवाज—सञ्ज्ञा पुं० [फा० कबूतरवाज] कबूतर पालने का शौकीन ।
कबूतरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० कबूतर] १ कबूतर की मादा । २ नाचन-
वाली । ३ नुदर स्त्री ।—(वाज्जाल) ।

कबूद^१—वि० [फा०] नीला । आसमानी । आसनी ।

कबूद^२—सञ्ज्ञा पुं० १ नीला या आसमानी रंग । २ उसनीयन का
एक भेद जिसे 'नीलकंठी' भी कहते हैं ।

कबूदी—वि० [फा०] नीला । आसमानी ।

कबूल^१—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कबूल] [अ० कबूलियत, कबूली] स्वीकार ।
अंगीकार । मंजूर ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

यो०—कबूलखल । कबूलसूरत = सुंदर । रूपवान ।

कबूल^२—सञ्ज्ञा पुं० [?] ताजक ज्योतिष के १६ योगों में से एक ।

कबूलना—क्रि० सं० [अ० कबूल से नाम०] स्वीकार करना ।
सकारना । मंजूर करना ।

कबूलियत—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कबूलियत] वह दस्तावेज जो पट्टा लेने-
वाला पट्टे की स्वीकृति में ठेका या पट्टा देनेवाले को लिख
दे । स्वीकारपत्र ।

कबूली—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० कबूली] चने की दाल की बिच्छड़ी
अथवा पुलाव ।

कब्ज—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कब्ज] १ ग्रहण । पकड़ । अवरोध ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

कवाइद—सञ्ज्ञा पु० [अ० कवायद] दे० 'कवायद' । उ०—काहि कवाइद कहत है वांघत किमि जल सोत ।—भारतेन्दु ग्रं०, भा० २, पृ० ७३५ ।

कवाड—सञ्ज्ञा पु० [न० कपट प्रा० कपट = चिड़ड़ा] [सञ्ज्ञा कवाड़ो] १ रद्दी चीज । काम में न आनेवाली वस्तु । अगड खगड । यौ०—काठ कवाड़ । कूड़ा कवाड़ = अगड खगड चीज । टूटी फूटी वस्तु । तुच्छ वस्तु ।

२ अड वड काम । व्यर्थ का व्यापार । तुच्छ व्यवसाय ।

कवाडखाना—सञ्ज्ञा पु० [हि० कवाड़ + फा० खानह] वह स्थान जहाँ बहुत सी टूटी फूटी या अव्यवस्थित रूप में वस्तुएँ रखी गई हो [को०] ।

कवाडा—सञ्ज्ञा पु० [हि० कवाड़] व्यर्थ की बात । भ्रष्ट । बखेडा । कवाडिया^१—सञ्ज्ञा पु० [हि० कवाड़] १ टूटी फूटी, सड़ी गली चीजें बेचनेवाला आदमी । अगड खगड बेचनेवाला मनुष्य । तुच्छ व्यवसाय करनेवाला पुरुष ।

कवाडिशा^२—वि० क्षुद्र । नीच ।

कवाड़ो—सञ्ज्ञा पु०, वि० [हि० कवाड़] [खी० कवाड़िन] दे० 'कवाडिया' ।

कवाव—सञ्ज्ञा पु० [अ०] सीखों पर भूना हुआ मास ।

विशेष—खूब वारीक कटे या कूटे हुए मास को वेमन में मिलाकर नमक और मसाले देकर गोलियाँ बनाते हैं । इन गोलियों को लोहे की सोख में गोदकर धी का पुट देकर कोयले की आँच पर भूतते हैं ।

क्रि० प्र०—करना ।—भूना ।—लगना ।—लगाना ।—होना ।

मुहा०—कवाव करना = जलाना । दुःख देना । कष्ट पहुँचाना ।

कवाव लगना = कवाव पकना । कवाव होना = (१) भूना । जलना । (२) क्रोध से जलना । जैसे,—तुम्हारी बात सुनकर तो देह कवाव हो जाती है ।

कवावचीनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० कवावा + हि० चीनी] १. मिर्च की जाति की एक लिपटनेवाली झाड़ी जो सुमात्रा, जावा आदि टापुओं तथा भारतवर्ष में भी कहीं कहीं होती है ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ कुछ कुछ बेर की सी पर नुकीली होती हैं और उनकी खड़ी नसें उमड़ी हुई मालूम होती हैं । इसमें मिर्च के से गोल गोल फल गुच्छों में लगते हैं । ये फल मिर्च से कुछ मूलायम और खाने में कड़ेएँ और चरपरे होते हैं । इनके खाने के पीछे जीभ बहुत ठंडी मालूम होती है । बँचक में इसे दीपन, पाचक और रेचक कहा है ।

२ कवावचीनी का फल ।

कवावी—वि० [अ० कवाव + फा० ई (प्रत्यय)] १ कवाव बेचनेवाला । १. कवाव खानेवाला । मासभक्षी ।

यौ०—शराबी कवावी = मद्य-मास-भोजी ।

कवाय^३—सञ्ज्ञा पु० [अ० कवा] एक डोला पहनावा । उ०—एक दोस्त हमहूँ किया, जेहि गल लाल कवाय । सब जग घोड़ी घोड़े मरे, तो भी रग न जाय ।—कवीर (शब्द०) ।

कवायली—सञ्ज्ञा पु० [अ० कवाइली] १. कवीली या फिरकी में रहनेवाले लोग । किसी कवीले का व्यक्ति ।

कवार^१—सञ्ज्ञा पु० [हि० कारोवार या कवाड़] १. व्यापार । रोज-गार । उद्यम । व्यवसाय । लेनदेन । उ०—(क) एहि परिपालउँ सब परिवार । नहि जानउँ कछु अउर कवार ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) रातिन दिए बसन मनि भूषण राजा सहन भडार । मागध सूत भाट नट याचक जहँ तँह करहि कवार ।—तुलसी (शब्द०) । २ दे० 'कवाड़' ।

कवार^२—सञ्ज्ञा पु० [देश०] एक छोटा पेड़ या झाड़ी ।

कवारना^३—क्रि० सं० [देश०] उखाड़ना । उत्पाटन करना ।

कवाल—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] खजूर का रेशा जिसे बटकर रस्सा बनाते हैं ।

कवाला—सञ्ज्ञा पु० [अ० कवालह] वह दस्तावेज जिसके द्वारा कोई जायदाद एक के अधिकार से दूसरे के अधिकार में चली जाय, बयनामा, दानपत्र इत्यादि ।

यौ०—कवालानवीस । कवाला नीलाम । काठ कवाला = वैनामा मियादी । कवाला लिखना = अधिकार दे देना । कवालेदार = जायदाद का अधिकारपत्रधारी ।

मुहा०—कवाला लिखाना या कवाला लेना = किसी जायदाद पर कब्जा करना । अधिकार में लाना । मालिक बनना । जैसे,—क्या तुमने उस घर का कवाला लिखा लिया है ?

कवालानवीस—सञ्ज्ञा पु० [अ० कवालह + फा० नवीस] कवाला लिखने का काम करनेवाला मुहरिर ।

कवालानीलाम—सञ्ज्ञा पु० [फा० कवाला + पूर्व० नीलाम] नीलाम में बिकी हुई जायदाद की वह सनद जो नीलाम करनेवाला अपनी ओर से उसके खरीदनेवाले को दे । नीलाम का सर्टिफिकेट ।

कवाहट^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० कवाहतु] दे० 'कवाहत' ।

कवाहत—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] १ बुराई । खराबी । २. मुश्किल । दिक्कत । तरद्दुद । अडचन । भ्रष्ट । बखेडा । उ०—हमारे वसूल तो शाह साहब यह हैं कि निकाह में कोई कवाहत नहीं ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ६१ ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—मे डालना ।—मे पड़ना ।

कवि^१—सञ्ज्ञा पु० [सं० कवि] दे० 'कवि' । उ०—सो को कवि जो छवि कहि सकै ता छन जमुना नीर की ।—भारतेन्दु ग्रं०, भा० २, पृ० ५४४ ।

कवि^२—क्रि० वि० [हि० कभी] दे० कभी उ०—कवि उत्तरि कवि पच्छिम धावै, सिलमल दीप मनु जाय समावै ।—प्राण०, पृ० ४५ ।

कविका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] लगाम [को०] ।

कवित^३—सञ्ज्ञा पु० [हि० कवित्त] दे० 'कवित्त' ।

कवित^४—सञ्ज्ञा पु० [सं० कवित्व] कवित्व । कविकर्म । काव्य ।

कविता^५—सञ्ज्ञा पु० [सं० कवयितृ, कवयिता] कविता करनेवाला । कवि । उ०—ज्ञानी गुनी चतुर और कविता, राजा रक नरेश ।—कवीर श०, भा० १, पृ० ६ ।

कविता^६—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कविता] दे० 'कविता' ।

मुहा०—कव का कव के, कव से=देर से। विलव से। जैसे,—
हम यहाँ कव के बैठे हैं, पर तम्हारा पता नहीं। (जब क्रिया
एकवचन हो तो 'कव का' और जब बहुवचन हो तो 'कव के'
का प्रयोग होता है)। कव कव=कभी कभी। बहुत कम।
उ०—कव कव मँगरू बोवै धान। सूखा डाला हे भगवान।
—(शब्द०)। कव ऐसा हो, कव ऐसा करे=ज्योही ऐसा हो
त्योही ऐसा करे। जैसे,—वह तो इसी ताक मे हैं कि कव वाप
मरे, कम मालिक हो। कव नहीं=बराबर। सदा। जैसे,—
हमने तम्हारी बात कव नहीं मानी।

२ कदापि नहीं। नहीं। जैसे,—वह हमारी बात कव मानेंगे ?
(अर्थात् नहीं मानेंगे)।

मुहा०—कव का=कभी नहीं। नहीं। जैसे,—वह कव का देने-
वाला है ? (अर्थात् नहीं देनेवाला है।)

कव^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कवि] दे० 'कवि'। उ०—गुण गज बंध
तणा कव गावै।—रा० रू०, पृ० १६।

कवक—सञ्ज्ञा [फा०] चकोर।

कवज^४—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कवज] दे० 'कवजा'। उ०—काया कवज
कमान करि, सार सबद करि सीर।—दादू०, पृ० ३८०।
(ख) जालिम मिलै इजरयाल कवज करै जो जाना।—कबीर
सा०, पृ० ८८८।

कवड्डी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] १ लडको के एक खेल का नाम।

विशेष—इसमे लडके दो दलो मे होकर मैदान मे मिट्टी का एक
ढह बनाते हैं जिसे पाला या डाँटेमेड कहते हैं। फिर एक दल
पाले के एक ओर और दूसरा दूसरी ओर हो जाता है। एक
लडका एक ओर से दूसरी ओर 'कवड्डी कवड्डी' कहता हुआ
जाता है और दूसरे दल के लडको को छूने की चेष्टा करता है।
यदि वह लडका किसी दूसरे दल के लडके को छूकर पाले के
इस पार विना साँस तोडे चला आता है, तो दूसरे पक्ष के वे
लडके जिन जिनको इसने छुआ था, मर जाते हैं। अर्थात्
खेल से अलग हो जाते हैं। यदि इसे दूसरे दल के लडके पकड़
लें और उसकी साँस उनके हृद् मे ही टूट जाय तो उलटा वह
मर जाता है। फिर दूसरे दल से एक लडका पहले दल की ओर
'कवड्डी कवड्डी' करता जाता है। यह तब तक होता रहता है
जबतक किसी दल के सब खिलाडी शेष नहीं हो जाते। मरे
हुए लडके तबतक खेल से अलग रहते हैं जबतक उनके दल
का कोई लडका विपक्षी के दल के लडको मे से किसी को न
मार डाले। इसे वे जीना कहते हैं। यह जीना भी उसी क्रम
से होता है जिस क्रम से वे मरे थे।

क्रि० प्र०—खेलना।

मुहा०—कवड्डी खेलना=कूदना। फाँदना। कवड्डी खेलते
फिरना=वेकाम फिरना। इधर उधर घूमना।

२ काँपा। कपा।

कवडियाँ—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कवाड] [कवडिन] अवध की एक
मुसलमान जाति का नाम जो तरकारी बेची और बेचती है।

कवर^१—वि० [सं० कवुर] मिश्रित रंगोंवाला। चितकवरा।

कवर^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कवर] १. व्याख्याता। २. चोटी। ३. मल्ल।
४. नमक।

कवर^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० कव] दे० 'कव'।

कवर^४—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कव] कव तक। किस समय।

कवरस्तान—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कव+फा० स्तान] दे० 'कव्रिस्तान'।

कवरा^१—वि० [सं० कवर, प्रा० कवर] [स्त्री० कवरी] १. सफेद रंग
पर काले, लाल, पीले आदि दागवाला। जिसके शरीर का रंग
दोरगा हो। चितला। उ०—कलुषा कवरा मोतिया भवरा
बुचवा मोहि देपावै।—मल्लू०, पृ० २५। २. कल्पाप।
शब्दला। अमनक।

विशेष—इस रंग के लिये यह आवश्यक है कि या तो सफेद रंग
पर काले, पीले, लाल आदि दाग हो या काले पीले, लाल आदि
रंगों पर सफेद दाग हों।

यो०—चितकवरा।

कवरा^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कौर] करील की जाति की एक प्रकार
की फलनेवाली झाड़ी जो उत्तरी भारत मे अधिकता से पाई
जाती है कौर।

विशेष—इसके फल खाए जाते हैं और उनसे एक प्रकार का
तेल निकाला जाता है। इसका व्यवहार औषधि के रूप
मे भी होता है।

कवरिस्तान—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कव+फा० स्तान] दे० 'कव्रिस्तान'।

कवरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] चोटी। जूड़ा। उ०—हाँ वृक्षों कवरीन
सो क्यों कारी दरसाइ। कही जु रति सनमुख रहै, सो कारो
ह्वै जाय।—स० सप्तक, पृ० २८३।

कवरीमणि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ सिर का आभूषण। चूड़ामणि।
२ सर्वश्रेष्ठ। उ०—प्रेम पगे चखि चार फल, कोशल्या के
लाल। भक्तन की कवरीमणि शबरी करी कृपाल।—राम०
धर्म०, पृ० २६१।

कवल—क्रि० वि० [अ० कवल] पहले। पूर्व मे। पेशवर। जैसे,—
मैं आपके पहुँचने के कवल ही वहाँ से चला जाऊँगा।

कवली—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कमल] दे० 'कमल'। उ०—उलटे कवली
पवाले काया।—प्राण०, पृ० ७८।

कवहुँ^१—क्रि० वि० [हि० कव+हुँ] कभी। किसी समय। उ०—कवहुँ
नयन मय सीतल ताता। होइहि निरखि स्याम मृदुगाता।
—मानस, ५।

कवहुँका^१—क्रि० वि० [हि० कवहुँ+क (प्रत्यय)] कभी। किसी
समय। उ०—सहज वानि सेवक मुखदायक। कवहुँक सुरति
करत रघुनाथ।—मानस।

कवाँण—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० कमान] दे० 'कमान'। उ०—सज्जन
चाल्या हे सखी, दिस पोगल दोडेह। सासघण लाल कवाँण
ज्यैउ, ऊमी कड मोडेह।—ढोला०, दू० ८३।

कवा—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कवा] एक प्रकार का पहनावा जो घुटनों के
नीचे तक लंबा और कुछ कुछ ढीला होता है। यह आगे से
खुला होता है और इसकी आस्तीन ढीली होती है। उ०—
खोलकर बदेकवा का मुल्के दिल गारत किया।—कविता
कौ०, भा० ४, पृ० ८७।

कफनचोर

कफनचोर—सञ्ज्ञ पुं [अ० कफन + हि० चोर] १. कत्र खोदकर कफन चुरानेवाला । २. भारी चोर । गहरा चोर । ३. दुष्ट । बदमाश ।

कफन दफन—सञ्ज्ञ पुं [अ० कफन + दफन] अत्येष्टि । अंतिम संस्कार [को०] ।

कफनाना—क्रि० सं० [अ० कफन से नाम०] गाड़ने या जलाने के लिये मुर्दे को कफन में लपेटना ।

कफनी^१—सञ्ज्ञा स्त्री [अ० कफन] वह कपड़ा जिसे मुर्दे के गले में डालते हैं ।

कफनी^२—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० कर्पट] साधुओं के पहनने का एक कपड़ा जो बिना सिला होता है और उसके बीच में सिर जाने के लिये छेद रहता है । मेखला ।

कफपा—सञ्ज्ञा पुं [फा० कफपा] पैर का तलवा ।

कफन—वि० [सं०] श्लेष्मायुक्त । कफग्रस्त । कफवाला ।

कफनी—सञ्ज्ञा पुं [हि० खपेली] एक प्रकार का गेहूँ जिसे खपली भी कहते हैं । वि० दे० 'खपली' ।

कफविरोधी—सञ्ज्ञा पुं [सं० कफविरोधिन्] काली मिर्च [को०] ।

कफश—सञ्ज्ञा पुं [फा० कफश] १ जूता । नालदार जूता ।

कफशवरदार—सञ्ज्ञा पुं [फा० कफशवरदार] तुच्छ सेवक । जूता सवाहक ।

कफस—सञ्ज्ञा पुं [अ० कफस] १ पिजरा । २ कावुक । दरवा । ३ वदीगृह । कंदखाना । उ०—रिहा करता कहीं सँयाद हमको भौसिमे गुन मे । कफस मे दम जो घवराता है सर दे दे पटकते हैं ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८४७ । ४ बहुत तंग और सकुचित जगह जहाँ वायु और प्रकाश न पहुँचता हो । ५ शरीर या कायपिजर (ला०) ।

कफा—सञ्ज्ञा पुं [फा० कफा] रज । पीड़ा । क्लेश ।

कफातिसार—सञ्ज्ञा पुं [सं०] एक प्रकार का अतिसार ।

विशेष—इसमें रोगी का मल सफेद, गाढ़ा, चिकना कफमिश्रित एवं दुर्गन्धयुक्त होता है ।

कफावद—सञ्ज्ञा पुं [फा० कफा = गर्दन का पिछला भाग + हि० वद] कुश्ती का एक पेंच ।

विशेष—इसमें विपक्षी के नीचे आने पर पहलवान दाहिनी तरफ बैठकर अपना बायाँ हाथ विपक्षी की कमर में डालकर अपने दाहिने हाथ और दाहिनी टाँग से विपक्षी की गर्दन दबाता है और बाएँ हाथ से उसका जाधियाँ पकड़कर उसे उलटकर चित कर देता है ।

कफारि—सञ्ज्ञा पुं [सं०] सोठ [को०] ।

कफालत—सञ्ज्ञा पुं [अ० कफालत] जिम्मेदारी । जमानत ।

यी०—कफालतनामा = जमानतनामा ।

कफाशय—सञ्ज्ञा पुं [सं०] वह स्थान जहाँ पर कफ रहता है ।

विशेष—वैद्यकशास्त्रानुसार ये स्थान पाँच हैं—आमाशय, हृदय, कंठ, शिर और सधियाँ ।

२-३३

कफिना—सञ्ज्ञा पुं [अ० कफ] लकड़ी या लोहे की कोनिया जो जहाजों में बाड़े और वेड़े शहतीरो को जोड़ने के लिये लगाई जाती है ।

कफी^१—वि० [सं० कफिन्] कफ की अधिकता से पीड़ित । कफी । कफप्रदान । श्लेष्मिक ।

कफी^२—सञ्ज्ञा पुं हाथी [को०] ।

कफील—सञ्ज्ञा पुं [अ० कफील] जामिन । जिम्मेवार ।

क्रि० प्र०—होना ।

कफेदस्त—सञ्ज्ञा पुं [फा० कफदस्त] हथेली [को०] ।

कफेलु—वि० [सं०] कफप्रधान । कफी । श्लेष्मिक ।

कफोणि—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] कपोणी । कोहनी । टिड्नी ।

कफोदर—सञ्ज्ञा पुं [सं०] कफ से उत्पन्न पेट का एक रोग ।

विशेष—इस रोग में शरीर में सुस्ती, भारीपन और सूजन हो जाती है, भोजन में अरुचि रहती है, खामी आती है और पेट भारी रहता है, मतली मालूम होती है और पेट में गुड़गुड़ाहट रहती है तथा शरीर ठंडा रहता है ।

कफफ—सञ्ज्ञा पुं [सं० कफ] दे० 'कफ' उ०—कवीर वंद बुलाइया, पकड़ि दिखाई वाहि । वंद न वेदन जानही, कफफ करेजे माहि ।—क० सा० सं०, पृ० ७६ ।

कवंध—सञ्ज्ञा पुं [सं० कवन्ध] १ पीपा । कडाल । २. वादल । मेघ । ३. पेट । उदर । ४. जल । ५. बिना सिर का घड़ । रुड । उ०—(क) कूदत कवंध के कदव वव सी करत घावत देखावत हैं लाघो राम वान के । तुलसी महेश विधि लोकपाल देवगण देखत विमान चढे कौतुक मसान से ।—तुलसी (शब्द०) । (अ) अपनो हित रावरे से जो पं सूझै । तो जनु तनु पर अछत सीस सुधि क्यों कवंध ज्यो जूझै ।—तुलसी (शब्द०) । ६. एक दानव जो देवी का पुत्र था । उ०—आवत पथ कवंध निपाता । तेहि सव कहीं सीय की बाता ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—इसका मुँह इसके पेट में था । कहते हैं, इन्होंने एक बार उसे वज्र से मारा था और इसके सिर और पैर इसके पेट में घुस गए थे । इसे पूर्वजन्म का नाम विश्वावसु गंधर्व लिखा है । रामचंद्र जी से और इससे दंडकारण्य में युद्ध हुआ था । रामचंद्र जी ने इसके हाथ काटकर इसे जीता ही जमीन में गाड़ दिया था ।

७. राहु । ८. एक प्रकार के केतु ।

विशेष—ये सख्या में ९६ हैं और आकृति में कवंध से बतलाए गए हैं । ये काल के पुत्र माने गए हैं और इनके उदय का फल दारुण बतलाया गया है ।

९ एक गंधर्व का नाम । १० एक मुनि का नाम ।

कवधी^१—वि० [सं० कवधिन्] जलवाला (वादल) [को०] ।

कवधी^२—सञ्ज्ञा पुं १ मरत । २ कात्यायन ऋषि [को०] ।

कव^३—क्रि० वि० [सं० कदा, हि० कव] १ किस समय ? किस वक्त ? जैसे, तूम कव घर जाओगे ?

विशेष—इस क्रि० वि० का प्रयोग प्रश्न में होता है ।

कपोलकल्पना—संज्ञा स्त्री० [सं०] मनगढ़त । वनावटी बात । गप्प ।
क्रि० प्र०—करना—होना ।

कपोलकल्पित—वि० [सं०] वनावटी । मनगढ़त । झूठ ।

कपोलपालि, कपोलपाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] कपोलदेश । कपोल-
स्थान । कपोलमिति । गडस्थल । उ०—कोमल कपोलपाली
‘में सीधी सादी स्मितरेखा, जानेगा वही कुटिलता जिसने भी
मे बल देखा ।—ग्राम्, पृ० २२ ।

कपोलराग—संज्ञा पुं० [सं०] गालो पर की लाली [को०] ।

कपोला—संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यो की एक जाति ।

कप्तान—संज्ञा पुं० [अ० कॅप्टेन] १ जहाज या सेना का एक
अफसर । २ दल का नायक । अधिपति । जैसे,—क्रिकेट का
कप्तान ।

कप्पु—संज्ञा पुं० [सं० कपि] दे० ‘कपि’ ।

कप्पड (उ०)—संज्ञा पुं० [सं० कर्पट] दे० ‘कर्पर’ । उ०—चोच वरन्ते
‘कप्पडे सावर घण आणोह ।—ढोला०, दू० १३३ ।

कप्पना (उ०)—क्रि० सं० [सं० कल्पन] प्रा० कप्पण दे० ‘काटना’ ।
उ०—कहि मुदर अपना बधनु कर्प सोई बधनु खोलै ।—सुदर
‘ग्र०, भा० १, पृ० २७५ ।

कप्पर (उ०)—संज्ञा पुं० [सं० कर्पट] कपडा । वस्त्र । उ०—कर सग
‘खप्पर विगत’ कप्पर । पुहुमि उपर नचत हैं । बंताल भूत
‘पिशाच बेती कना गहि महि रचत हैं ।—रघुराज (शब्द०) ।

कप्परिय (उ०)—संज्ञा पुं० [सं० कपटिक] खप्परधारी । मिश्रक । उ०—
‘सहसु सत्त कप्परिय भेप कौनो तिन वार ।—पृ० २१०,
२५१, ३५५ ।

कप्पा—संज्ञा पुं० [फा० कफ = भाग, गाज] १ अफीम का पसेव
जिसमें कपडा डुबोकर मदक बनाने के लिये सुखाते हैं । २
वह वस्त्र जिसे किसी वस्त्र के मुँह पर बांधकर उसके ऊपर
अफीम सुखाई जाती है । साफी । छनना ।

कप्पाख्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक गृध्रद्रव्य । घूप [को०] ।

कप्पास—संज्ञा पुं० [सं०] बदर का चूतड़ ।

कप्पास—वि० [सं०] लाल । रक्त ।

कफ—संज्ञा पुं० [सं०] १ वह गाढ़ी लसीली और अठेदार वस्तु जो
खांसने या थुकने से मुँह से बाहर आती है तथा नाक से भी
निकलती है । श्लेष्मा । वलगम । २. वैद्यक के अनुसार शरीर
के भीतर की एक धातु जिसके रहने का स्थान आमाशय,
हृदय, कंठ, शिर और संधि हैं ।

विशेष—इन स्थानों में रहनेवाले कफ का स्थान क्रमशः क्लेदन,
अवलवन, रसन, स्नेहन और श्लेष्मा है । आधुनिक पार्श्वचात्य
मत से इसका स्थान सॉस लेने की नलियाँ और आमाशय है ।

कफ कुपित होने से दोषो मे गिना जाता है ।
‘यो—कफकारको—कफकृत । कफक्षय ।

कफ—संज्ञा पुं० [अ० कफ] कमीज या कुर्ते की आस्तीन के आगे
‘की वह दोहरी पट्टी जिसमें बटन लगते हैं ।

‘यो—कफदार । जैसे—कफदार कुर्ती ।

कफ—संज्ञा पुं० [अ० कफ फा० कफ] लोहे का वह, अर्धचंद्राकार

‘टुकड़ा जिससे ठोककर चक्रमक से आग फाड़ते या निगलते हैं ।
नाल । उ०—काया कफ, चक्रमक भारी बारबार । तीन बार
धूम्र भया, चौथे परा अंगार ।—कवीर (शब्द०) । २ भाग ।
फेन ।

कफ—संज्ञा स्त्री० [सं०] हथेली । पजा ।

कफकर—वि० [सं०] कफ उत्पन्न करनेवाला [को०] ।

कफकारक—वि० [सं०] दे० ‘कफकर’ [को०] ।

कफकूचिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] यूक । लार [को०] ।

कफक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] यक्ष्मा । तपेदिक [को०] ।

कफगड—संज्ञा पुं० [सं० कफगण्ड] गले का एक रोग [को०] ।

कफगीर—संज्ञा पुं० [फा० कफगीर] हथेली की तरह की लची डाँडी
की कड़की जिससे दाल, घी आदि का भाग निकालते हैं ।

कफगुल्म—संज्ञा पुं० [सं०] पेट का एक रोग जिसमें उदर में गाँठ पड़
जाती है [को०] ।

कफघ्न—वि० [सं०] कफविनाशक [को०] ।

कफचा—संज्ञा पुं० [फा० कफचह] छोटा कफगीर । चमचा ।

कफज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] कफ की वृद्धि या संचय से उत्पन्न
होनेवाला ज्वर [को०] ।

कफणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुन्नी [को०] ।

कफदार—संज्ञा पुं० [अ० कफ + फा० वार] कड़ाहट के लिये काड़े में
जहाँ भी कफ डाला जाय ।

कफन—संज्ञा पुं० [अ० कफन] वह वपडा जिसमें मुर्दा लपेटकर गाड़ा
या फूँका जाता है ।

यो—कफनखसोट । कफनचोर । कफनकाठी ।

मुहा०—कफन को कौड़ी न होना या रहना = अत्यंत दरिद्र होना ।

कफन को कौड़ी न रखना = (१) जो कमाना वह या लेना ।

घन संचित न करना । (२) अत्यंत दयागी होना । (साधु के

लिये) । कफन फाड़कर उठना = (१) मुर्दे का उठना । मुर्दे

का जो उठना । (२) सहसा उठ पडना । कफन फाड़कर

चिलना या चिल्लाना = सहसा जोर से चिल्लाना । कफन

तिर से बांधना = मरने पर तैयार होना । जान जोखिम में

डालना ।

कफनकाठी—संज्ञा पुं० [अ० कफन + हि० काठी] अत्येष्टि कर्म की
व्यवस्था [को०] ।

कफनखसोट—वि० [अ० कफन + हि० खसोट] [संज्ञा कफन-
खसोटो] १. कजूम । मक्खीचूस । प्रत्यंत लोनी । सूमडा ।

विशेष—पूर्व काल में डोम श्मशान में मुर्दों का कफन फाड़कर
कर की तरह लेते थे, इसीलिये उन्हें कफनखसोट कहते थे ।

२. दूसरे के माल को जबरदस्ती छीनकर हड़प जानेवाला ।

कफनखसोटो—संज्ञा स्त्री० [अ० कफन + हि० खसोटना] १ डोमो का
कर जो श्मशान पर मुर्दों का कफन फाड़कर लेते थे । उ०—

जाति दास चढाल की, घर घनघोर मसान । कफनखसोटो की

करम, सब ही एक समान ।—हरिश्चंद्र (शब्द०) । २. इधर

उधर से भले या बुरे ढंग से घन एकत्र करने की वृत्ति । ३.

कंजूसी । सूमडापन ।

मे कोकन से दक्खिन पश्चिमी घाट तक और लंका, टनामरम, वर्मा आदि स्थानों में होता है। इसका पत्ता तेजपात और छाल दारचीनी है। इससे भी कपूर निकलता है।
 वरास—यह बोनियो और सुमात्रा में होता है और इसका पेड़ बहुत ऊँचा होता है। इसके सी वर्ष से अधिक पुराने पेड़ के बीच से तथा गाँठों में से कपूर का जमा हुआ डाला निकलता है और छिलकों के नीचे से भी कपूर निकलता है। इस कपूर को वरास, भीमसेनी आदि कहते हैं और प्राचीनों ने इसी को अपक्व कहा है। पेड़ में कभी कभी छेद लगाकर दूध निकालते हैं जो जमकर कपूर हो जाता है। कभी पुराने पेड़ की छाल फट जाती है और उससे आप से आप दूध निकलने लगता है जो जमकर कपूर हो जाता है। यह कपूर बाजारों में कम मिलता है और महंगा विकता है। इसके अतिरिक्त रासायनिक योग से कितने ही प्रकार के नकली कपूर बनते हैं। जापान में दारनी कपुरी के तेल से (जो लडकियों को पानी में रखकर खींचकर निकाला जाता है) एक प्रकार कपूर का बनाया जाता है। तेल भूरे रंग का होता है और वाणिज्य के काम आता है।
 कपूर स्वाद में कड़वा, सुगंध में तीक्ष्ण और गुण में शीतल होता है। यह कृमिघ्न और वायुशोषक होता है और अग्नि माया में खने से विष का काम करता है।

पर्या०—घनसार। चद्र। सिताम।

महा०—कपूर खाना = विष खाना। उ०—बूढ़े जलजात कर कदली कपूर खात दाडिम दरिद्र अंग उपमा न तोलें री। तेरे स्वास सोरम को त्रिविध समीर धीर विविध लतान तीर वन वन डोलें री।—वेनी प्रवीन (शब्द०)।

कपूरकचरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कपूर + कचरी] एक वेल जिसकी जड़ सुगंधित होती है और दवा के काम में आती है। आसाम के पहाड़ी लोग इसकी पत्तियों की चटाई बनाते हैं। इसकी जड़ खाने में कड़ई, चरपरी और तीक्ष्ण होती है तथा ज्वर हिवकी और मुँह की विरसता को दूर करती है।

पर्या०—गंधपलाशी। गंधमूली। गंधौली। सितस्ती।

कपूरकाट—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कपूर + काट] एक प्रकार का महीन जड़हन धान जिसका चावल सुगंधित और स्वादिष्ट होता है।

कपूरमणि—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कपूरमणि] १ एक प्रकार का रत्न। २ एक प्रकार का श्वेत पाषाण जो औषध के काम आता है [को०]।

कपूरा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कपूर = कपूर के ऐसा सफेद] भेड़, बकरी आदि चौपायों का अङ्कश।

कपूरी^१—वि० [हि० कपूर] १ कपूर का बना हुआ। २ हल्के पीले रंग का।

कपूरी^२—सञ्ज्ञा पुं० १ एक रंग जो कुछ हलका पीला होता है और केसरी फिटकरी और हरसिंगार के फूल से बनता है। २ एक प्रकार का पान जो बहुत लवा और चौड़ा होता है। इसके किनारे कुछ लहरदार होते हैं।

कपूरी^३—सञ्ज्ञा स्त्री० एक प्रकार की बूटी जो पहाड़ों पर होती है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ लंबी लंबी होती हैं जिनके बीच में सफेद लकीर होती है। इसकी जड़ में से कपूर की सी सुगंध निकलती है।

कपोत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कपोतिका, कपोती] १. कवूर। २. परेवा।

यौ०—धूम्रकपोत। चित्रकपोत। हरितकपोत। कपोतमुद्रा।

३. पक्षी मात्र। चिड़िया।

यौ०—कपोतपालिका। कपोतारि।

४ भूरे रंग का कच्चा सुरमा।

कपोतक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ छोटा कवूर। २ हाथ जोड़ने का एक ढग। ३ सुरमा धातु [को०]।

कपोतकीया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि या स्थान जहाँ कवूरों की बहुतायत हो [को०]।

कपोतपालिका, कपोतपाली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. कानुक। कवूरों का दर्बा। २. कवूरों के बैठने की छतरी। चिड़ियाखाना।

कपोतवका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कपोतबद्धा] ब्राह्मी बूटी।

कपोतवर्णी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी इलायची।

कपोतवृत्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सच्यहीन वृत्ति। रोज कमाना रोज खाना।

कपोतव्रत—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] चुपचाप दूसरे के अत्याचारों को सहना। दूसरे के पड़ोचाए हुए अत्याचार या कष्ट पर चुन करना। उ०—हे इत लाल कपोतव्रत कठिन प्रीति की चाल। मुख सो आह न भाखिहीं निज सुख करो हला (शब्द०)।

विशेष—कवूर कष्ट के समय नहीं बोलता, केवल हर्ष के समय गुटर गुँ की तरह का अस्फुट स्वर निकालता है।

कपोतसार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सुरमा (धातु)।

कपोताघ्रि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कपोताङ्घ्रि] १. गधद्रव्य। २. प्रवाल विद्रुम। मूँगा। उ०—सुपिरा नटी नली घमनि कपोताघ्रि परवाल।—अनेकार्यं, पृ० ६४।

कपोताज्जन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कपोताञ्जन] सुरमा (धातु)।

कपोतारि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बाज पक्षी।

कपोती^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. कवूर। २. पेड़की। ३. कुमरी।

कपोती^२—वि० [सं०] कपोत के रंग का। खाकी। धूमले रंग का। फाखतई रंग का। नीले रंग का।

कपोल^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गाल। उ०—तोहि कपोल बाएँ तिल परा। जेई तिल देख सो तिल तिल जरा।—जायसी ग्रं०, पृ० १६२।

यौ०—कपोलकल्पना। कपोलकल्पित।

कपोल^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नृत्य या नाट्य में कपोल की चेष्टाएँ।

विशेष—ये सान प्रकार की होती हैं—(१) कूचित (लज्जा के समय)। (२) रोमाचित (भय के समय)। (३) कपित (क्रोध के समय)। (४) फुल्ल (हर्ष के समय)। (५) सम (स्वाभाविक)। (६) साम (कष्ट के समय)। (७) पूर्ण (गर्व या उत्साह के समय)।

एक कन्या । ६ रेणुका नाम की सुगन्धित ओषधि । ७ मध्य प्रदेश की एक नदी ।

कपिलाक्षा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार की मृत्ती । २. एक प्रकार का शिशपा वृक्ष [को०] ।

कपिलागम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] साव्यशास्त्र ।

कपिलाचार्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. आचार्य कपिल । २. विष्णु [को०] ।

कपिलाश्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] इंद्र जिन का घोड़ा सफेद है ।

कपिलोमफला—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] केवाँच । कपिकच्छु [को०] ।

कपिलोह—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] पीतल [को०] ।

कपिवक्त्र—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नारद [को०] ।

कपिश^१—वि० [सं०] १. काला और पीला रंग मिलाने से जो भूरा रंग बने उस रंग का । मटमैला । उ०—पुरइन् कपिश निबोल विविध रंग विहँसत सचु उपजावे । सूर स्याम भानद कद की शोभा कहत न आवै ।—सूर (शब्द०) । २. पीला भूरा । लाल भूरा । वादामी । उ०—कपिश केश कर्कश लगूर खल दल दल भानन ।—तुलसी (शब्द०) ।

कपिश^२—सञ्ज्ञा पुं० १. भूरा या वादामी रंग । २. लाल और काले रंग का मिश्रित रंग । ३. घूप द्रव्य । ४. एक प्रकार का वाण । ५. एक प्रकार का पद्य ।

कपिशोजन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कपिशोजन] एक प्रकार की मदिरा [को०] ।

कपिशा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार का मद्य । २. एक नदी का नाम जिसे आजकल कसाई कहते हैं और जो मेदिनीपुर के दक्षिण में पड़ती है । रघुवश में लिखा है कि रघु इसी नदी को पार करके उक्त देश में गए थे । ३. कथप की एक स्त्री जिससे पिशाच उत्पन्न हुए थे । ४. माघवी लता [को०] ।

कपिशाक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] करमकलना ।

कपिशायत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कपिश की बनी मदिरा । २. एक देव [को०] ।

कपिशित—वि० [सं०] भूरा या कपिश किया हुआ [को०] ।

कपिशी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मदिरा [को०] ।

कपिशीका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का मद्य [को०] ।

कपिशोर्ष^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दीवार का सबसे ऊपरी भाग जो कपि के शीर्ष या सिर जैसा हो । कोसीस [को०] ।

कपिशोर्ष^२—वि० कपि के शीर्ष तुल्य प्रमाण से युक्त [को०] ।

कपिशोर्षक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हिगुल [को०] ।

कपिशोर्षणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वाद्ययंत्र [को०] ।

कपिष्ठल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक श्रृष्टि का नाम और उनके गोत्र के लोग [को०] ।

कपिष्ठल संहिता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कृष्ण यजुर्वेद की एक संहिता [को०] ।

कपिस^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कपिश] १. पीले भूरे रंग का । २. रेशमी । उ०—कनक कपिश अंबर, संवर करत मान भग ।—छीत०, पृ० ५३ ।

कपीद्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कपीद्र] १. हनुमान । २. सुग्रीव । ३. जानवान् ।

कपी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० कपिना] घिन्नी । तिरनी ।

कपी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वानरी । मकंदी [को०] ।

कपी^३—सञ्ज्ञा पुं० [फा०, मि० सं० कपि] बदर । शाव्यामृग । वानर ।

कपीज्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. राम । २. सुग्रीव । ३. क्षीरिका नामक वृक्ष ।

कपीतन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अनेक वृक्षों के नाम । जैसे—अश्वत्थ, अमड़ा, शिरीष, बिल्व आदि ।

कपीश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वानरों का राजा । जैसे—हनुमान, सुग्रीव, बालि इत्यादि ।

कपीष्ठ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कपिस्थ । कैय ।

कपुच्छल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. मूँढन के बाद गिद्या रखने का संस्कार । चूडाकर्म । २. काकपक्ष [को०] ।

कपुष्टिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कपुच्छल' [को०] ।

कपूत—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कपुत्र] वह पुत्र जो अपने कुलधर्म के विरुद्ध आचरण करे । बुरी चाल चलन का पुत्र । बुरा लड़का । उ०—राम नाम ललित ललाम कियो लाइन को बड़ो कूर कायर कपूत कीड़ी भाव को ।—तुलसी (शब्द०) ।

कपूती—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० कपूत] पुत्र के अयोग्य आचरण । नालायकी ।

कपूर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कपूर, पा० कपूर, जावा कपूर] एक सफेद रंग का जमा हुआ सुगन्धित द्रव्य जो वायु में उड़ जाता है और जलाने से जलता है ।

विशेष—प्राचीनों के अनुसार कपूर दो प्रकार का होता है । एक पक्व दूसरा अपक्व । राजनिघटु और निघटुरनाकर में पोतास, भीमसेन, हिम इत्यादि इसके बहुत भेद माने गए हैं और इनके गुण भी अलग अलग लिखे हैं । कविधों और साधारण गंवारों का विश्वास है कि केले में स्वाती की बूँद पड़ने से कपूर उत्पन्न होता है । जायसी ने पद्यावत में लिखा है—'पडे घरनि पर होय कचूर । पडे कदलि मेंह होय कपूर' । आजकल कपूर कई वृक्षों से निकाला जाता है । ये सबके सब वृक्ष प्रायः दारचीनी की जाति के हैं । इनमें प्रधान पेड़ दारचीनी कपूरी मिथाने कद का सदावहार पेड़ है जो चीन, जापान, कोचीन और फारमूसा (ताइवान) में होता है । अब इसके पेड़ हिंदुस्तान में भी देहरादून और नीलगिरि पर लगाए गए हैं और कलकत्ते तथा सहारनपुर के कपरी बागों में भी इनके पेड़ हैं । इससे कपूर निकालने की विधि यह है—इसकी पतलीपतलीचैलियों और डालियों तथा जड़ों के टुकड़ों को बर्तन में जिसमें कुछ दूर तक पानी भरा रहता है, इस ढग से रखे जाते हैं कि उनका लगाव पानी से न रहे । बर्तन के नीचे भाग जलाई जाती है । आँच लगने से लकड़ियों में से कपूर उड़कर ऊपर के ढक्कन में जम जाता है । इसी लकड़ी भी सड़क आदि बनाने के काम में आती है ।

बालचीनी, जीलानी—इसका पेड़ ऊँचा होता है । यह दमिखन

विशेष—यह रंग हल्दी, टेम्बू और अमहर के संयोग से बनता है। हरसिंगार से भी यह रंग बनाया जाता है।

कपासी^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] १ भोटिया वादाम।

विशेष—इसका पेड़ मझोले डोल का होता है। इसकी लकड़ी गुलाबी रंग की होती है जिससे कुरसी, मेज आदि बनते हैं। इसका फल खाया जाता है और भोटिया वादाम के नाम से प्रसिद्ध है।

२ एक प्रकार का भाड़ या छोटा वृक्ष।

विशेष—यह प्रायः सारे भारत, मलयद्वीप, जावा और आस्ट्रेलिया में पाया जाता है। यह गरमी और बरसात में फूलता और जाड़े में फलता है। इसी का फल मरोड़फली कहलाता है जो पेट के मरोड़ दूर करने के लिये बहुत उपयोगी माना जाता है।

कपाहण—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्पाहण] सोने, चाँदी या तंबू का सिक्का।
उ०—दम या कपाहण पास हों तो निकालो।—वै० न०, पृ० १।

कर्पिजल^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्पिजल] १ चातक। पपीहा। २. गौरा पत्नी। ३. भरदूल। मरही। ४ तीतर। ५ एक मुनि का नाम।

कर्पिजल^२—वि० पीला। पीले रंग का। हरताली रंग का।

कर्पिद^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्पीन्द्र] दे० 'कर्पीन्द्र'। उ०—रामकृपा बलु पाइ कर्पिदा। भए पच्छजुत मनहु गिदिदा—मानस, ५।३५।

कर्पि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वदर। २ हाथी। गज। ३. करंज। कजा। ४ शिलारस नाम की सुगन्धित ओषधि। ५ सूर्य।
६. एक प्रकार का घूप (को०)। ७. एक ऋषि का नाम (को०)।

कर्पिकन्दुक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्पिकन्दुक] खोपड़ा। कपाल।

कर्पिकच्छु—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] केवाँच। करँच। मकंटी। वानरी। कौछ।

कर्पिकच्छुरा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'कर्पिकच्छु'।

कर्पिकेतन, कर्पिकेतु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन जिनकी ध्वजा पर हनुमान जी थे।

कर्पिकेश—वि० [सं०] भूरे बालोंवाला (को०)।

कर्पिचूड़ा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्पिचूड़ा] [को० कर्पिचूड़ा] ग्रामड़ा (को०)।

कर्पिजघिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं० कर्पिजघिका] चींटी की एक जाति। तैलपिपीलिका (को०)।

कर्पितैल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तुलूक नामक गन्धद्रव्य। लोवान। शिलारस (को०)।

कर्पित्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कंथे का पेड़ २. कंथे का फल। उ०—नाय, बली हो कोई कितना, यदि उसके भीतर है पाप। तो गजमुक्त कर्पित्य तुल्य वह निष्फल होगा अपने आप।—साकेत, पृ० ३८०। ३ नृत्य में एक प्रकार का हस्तक जिसमें अंगूठे की छोर को तर्जनी की छोर से मिलाते हैं।

कर्पिध्वज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन। उ०—जयति कर्पिध्वज के कृपालु कवि, वेद पुराण विधाता व्यास।—साकेत, पृ० ३६६।

कर्पिनाशन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक मादक पेय (को०)।

कर्पिपति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ सुग्रीव। २. हनुमान। उ०—कर्पिपति रीछ निसाचर राजा। अगदादि जे कीस समाजा।—मानस।

कर्पिप्रभा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] केवाँच। कौछ।

कर्पिप्रभु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ राम। २ सुग्रीव (को०)।

कर्पिप्रिय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कैव।

कर्पिरथ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. श्रीरामचन्द्र जी। २. अर्जुन।

कर्पिल^१—वि० [सं०] भूरा। मटमैला। तामड़ा, रंग का। २. सफेद। जैसे,—कर्पिला गाय।

कर्पिल^२—सञ्ज्ञा पुं० १, अग्नि। २ कुत्ता। ३ चूहा। ४. शिलाजतु। शिलाजोत। ५ महादेव। ६ सूर्य। ७ विष्णु। ८. एक प्रकार का सीसम। वरना। ९ एक मुनि जो साध्यशास्त्र के आदिप्रवर्तक माने जाते हैं। इनका उल्लेख ऋग्वेद में है। उ०—प्रादिदेव—प्रभु दीनदयाला। जठर घरेज जेहि कर्पिल कृपाला।—मानस, १०० पुराण के अनुसार एक मुनि जिन्होंने सगर के पुत्रों को भस्म किया था। ११. कुशद्वीप के एक वर्ष का नाम। कर्पिल देश।—बृहत्सं पृ० ८५।

कर्पिलता^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कर्पि + लता] १ केवाँच। कौछ। २ गजपिप्पली।

कर्पिलता^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ भूरापन। मटमैलापन। २ ललाई ३ पीलापन। ४ सफेदी।

कर्पिलत्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ ललाई। उ०—कर्पिलत्व या तीक्ष्ण के होने पर यह उपचार होता है कि प्रणि मण्डक है।
—संपूर्ण अग्नि० ग्र०, पृ० ३३६। २ दे० 'कर्पिलता'।

कर्पिलद्रुम—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] काशी नामक एक वृक्ष जिसकी लकड़ी सुगन्धित होती है (को०)।

कर्पिलधारा—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ काशी का एक तीर्थ स्थान। २ गया का एक तीर्थस्थान।

कर्पिलवस्तु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गौतमबुद्ध का जन्मस्थान। यह स्थान नेपाल की तराई में वस्ती जिले में था।

कर्पिलस्मृति—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] साँध्यसूत्र (को०)।

कर्पिलाजन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्पिलाञ्जन] शिव (को०)।

कर्पिला^१—वि० स्त्री० [सं०] १ कर्पिला रंग की। भूरे रंग की। मटमैले रंग की। २ सफेद रंग की। जैसे,—कर्पिता गाय। ३. जिसके शरीर में सफेद दाग हो। जिसके शरीर में सफेद फूल पड़े हो। जैसे, कर्पिला कन्या (मनु)। ४ सीधी मादी। नोली भानी।

कर्पिला^२—सञ्ज्ञा स्त्री० १ सफेद रंग की गाय। उ०—जिम्बि कर्पिलहि धाने हरहाई।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इस रंग की गाय बहुत अच्छी और सीधी समझी जाती है।

२. एक प्रकार की जोक। ३ एक प्रकार की चींटी। माटा। ४. पुडरीक नामक दिग्गज की पत्नी। ५. दश प्रजापति की

कपाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० कपाली, कपालिक] १ खोपड़ा।
खोपड़ी।

यौ०—कपालक्रिया। कपालसाला। कपालमोचन।

२ ललाट। मस्तक। ३ अदृश्य। भाग्य।

मुहा०—कपाल खुलना = (१) भाग्य उदय होना। (२) सिर खुलना। सिर से लोह निकलना।

४ घड़े आदि के नीचे या ऊपर का भाग। खपड़ा। खपर।

५ मिट्टी का एक पात्र जिसमें पहले भिक्षुक लोग भिक्षा लेते थे। खप्पर। ६ वह वतन जिसमें यज्ञों में देवताओं के लिये पुरोडाश पकाया जाता था।

यौ०—पचकपाल। अष्टकपाल। एकादशकपाल। कपालसम्भारत्न = (१) गजमुक्ता। (२) नागमणि। उ०—कपालसम्भारत्न हाथी के सिर से निकली मणि या नाग के सिर से निकली मणि०।—वृहत्, पृ० १६५।

७ वह वर्तन जिसमें भट्ठमूखे दाना भूनते हैं। खपड़ी। ८ अड़े के छिनके का आधा भाग। ९ कछुए का खोपड़ा। १० ढक्कन। ११ कोढ़ का एक भेद।

कपाल अस्त्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कपालास्त्र'।

कपालक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कपालिक] दे० 'कपालिक'।

कपालक^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्याला। [को०]।

कपालक^३—वि० प्याले के आकार का [को०]।

कपालकेतु—[सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक केतु।

विशेष—इसकी पूँछ घुएदार प्रकाशरश्मि तुल्य होती है। यह आकाश के पूर्वार्ध में अमावस्या के दिन उदय होता है। इस तारे के उदय से भारी अनावृष्टि होती है और अकाल पड़ता है।

कपालक्रिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] मृतस्कार के अनन्त एक कृत्य जिसमें जलते हुए शव की खोपड़ी को बाँस या किसी और से फोड़ देते हैं।

कपालचूर्ण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नृत्य में एक प्रकार की क्रिया जिसमें सिर को नीचे जमीन पर टेककर और पैर ऊपर करके चलते हैं।

कपालनलिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. तकली। २. घिरनी जिसमें सूत लपेटा या भरा जाय [को०]।

कपालभाती—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] हठयोग की एक क्रिया। इसमें वेगपूर्वक पूरक और रेचक नलिका द्वारा श्वास खींचा और छोड़ा जाता है [को०]।

कपालभाथी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कपालभाती] दे० 'कपालभाती'। उ०—आटक, निरपे नौली फेरें। कपालभाथी नीके हेरें।

—सुंदर प्र०, भा० १, पृ० १०३।

कपालमालिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] काली। दुर्गा [को०]।

कपालमाली—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

कपालमोचन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] काशी का एक तालाब जहाँ लोग स्नान करते हैं।

कपालसधि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कपालसन्धि] ऐसी सधि जिसमें किसी

पक्ष को दबना न पड़े। समान सधि। समान शर्तों पर हुई सधि [को०]।

कपालसश्रय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह राष्ट्र या राज्य जो दो शक्तिशाली राष्ट्रों के बीच में न हो और दोनों का मित्र बना रहे।

कपालसोधनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कपाल + हि० सोधनी] हठयोग की एक क्रिया। उ०—बाये सेती रेचिये हीरे हीरे जान। कपाल-सोधनी जानिये चरणदास पहिचान।—अष्टांग०, पृ० ७७।

कपालास्त्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का अस्त्र। २ ढाल [को०]।

कपालि—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कपालिन्] शिव [को०]।

कपालिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कपालिक] दे० 'कपालिक'।

कपालिका^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ खोपड़ी। २ घड़े के नीचे या ऊपर का भाग। ३ दाँतो का एक रोग जिसमें दाँत टूटने लगते हैं। दंतशर्करा। ४. काली। रणचड़ी। ५. दुर्गा [को०]।

कपालिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा। शिवा।

कपाली—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कपालिन्] [स्त्री० कपालिनी] १ शिव। महादेव। २. भैरव। उ०—करें केलि कान्ति कपाली समेतें।—हम्मीर०, पृ० ५६। ३ ठीकरा लेकर भीख माँगनेवाला भिक्षुक। ४ एक वर्णसंकर जाति जो ब्राह्मणी माता और घीवर बाप से उत्पन्न मानी जाती है। कपरिया।

कपास—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कर्पात] [वि० कपासी] एक पौधा जिसके डेढ़ से रुई निकलती है।

विशेष—इसके कई भेद हैं। किसी किसी के पेड़ ऊँचे और बड़े होते हैं, किसी का झाड़ होता है, किसी का पौधा छोटा होता है, कोई सदावहार होता है, और कितने की काष्ठ प्रतिवृष्टि की जाती है। इसके पत्ते भी भिन्न भिन्न आकार के होते हैं और फूल भी किसी का लाल, किसी का पीला तथा किसी का सफेद होता है। फूलों के गिरने पर उनमें डेढ़ लगते हैं, जिनमें रुई होती है। डेढ़ों के आकार और रंग भिन्न भिन्न होते हैं। भीतर की रुई अधिकतर सफेद होती है, पर किसी किसी के भीतर की रुई कुछ लाल और मटमैली भी होती है और किसी की सफेद होती है। किसी कपास की रुई चिकनी और मुलायम और किसी की खुरखुरी होती है। रुई के बीच में जो बीज निकलते हैं वे विनोले कहलाते हैं। कपास की बहुत सी जातियाँ हैं, जैसे, नरमा, नदन, हिरगुनी, कोल, वरदी, कटेली, नदम, रोजी, कुपटा, तेलपट्टी, खानपुरी इत्यादि।

क्रि० प्र०—ओटना = चरबी में रुई डालकर विनोले को अलग करना। उ०—आए थे हरिभजन को ओटन लगे कपास।—(शब्द०)।

मुहा०—वही के बोखे कपास खाना = और को और समझना। एक ही प्रकार की वस्तुओं के बीच घोखा खाना।

कपासी^१—वि० [हि० कपास] कपास के फूल के रंग के समान बहुत हलके पीले रंग का।

कपासी^२—सञ्ज्ञा पुं० एक रंग जो कपास के फूल के रंग जैसा बहुत हलका पीला होता है। उ०—बसबसी, कपासी, गुलबारी।—प्रेमघन०, भा० २ पृ० ११८।

करनेवाला एक कीड़ा। दे० 'कपटा'। २ तमाखू के पीघो में लगनेवाला एक रोग जिसे 'कोड़ी' भी कहते हैं।

कपडकौट—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कपडा + कौट] डेरा। खीमा। तबू।

कपडखसोट—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कपडा + खसोट] दूसरो का वस्त्र तक छीन लेनेवाला व्यक्ति। बहुत धूर्त या लोभी व्यक्ति।

कपडगघ—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कपडा + गघ] कपड़े के जलने की दुर्गंध।

कपडछन, कपडछान^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कपडा + छानना] किसी पिसी हुई वुकनी को कपड़े में छानने का कार्य। मैदे की तरह महीन करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

कपडछन, कपडछान^२—वि० कपड़े से छाना हुआ। मैदे की तरह महीन।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

कपडद्वार—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कपडा + द्वार] कपड़ों का भंडार। वस्त्रागार। तोषाखाना।

कपडधूलि—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कपडा + धूलि] एक प्रकार का वारीक रेशमी कपडा। करेव।

कपडमिट्टी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कपडा + मिट्टी] धातु या घोषधि फूँकने के सुपुट पर गीली मिट्टी के लेव के साथ कपड़ा या रुई पीसकर या सानकर लपेटने की क्रिया। कपडौटी। गिल हिकमत।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

कपडविदार—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कपडा + विदारण] १ कपड़ा धोतनेवाला दरजी। २. रफूगर।—(डि०)।

कपडा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कपट, प्रा० कप्पट, कप्पड] १ रुई, रेशम, ऊन या सन के तागों से बुना हुआ आच्छादन। वस्त्र। पट।

यो०—कपड़ा लत्ता=व्यवहार के सब कपड़े।

मुहा०—कपड़ों से होना=मासिक धर्म से होना। रजस्वला होना। एकवस्त्रा होना। उ०—उसका नाम पवनरेखा सो अति सुंदरी और पतिव्रता थी। आठो पहर स्वामी की आज्ञा ही में रहे। एक दिन कपड़ों से भई तो पति की आज्ञा लेकर रथ में चढ़कर वन में खेलने को गई।—तल्लू (शब्द०)।
कपड़े आना=मासिक धर्म से होना। जँने,—आज तो उसे कपड़े आए हैं।

२. पहनावा। पोशाक।

क्रि० प्र०—उतारना।—पहनना।

यो०—कपड़ा लत्ता=पहनने का सामान। जैसे,—जो आदमी आए थे, सब कपड़े लत्ते से थे।

मुहा०—कपड़ों में न समाना=फूले अंग न समाना। आनंद से फूलना। कपड़े उतार लेना=वस्त्र मोचन करना। खूब लूटना।
कपड़े छानना=पल्ला छुड़ाना। पिंड छुड़ाना। पीछा छुड़ाना।
कपड़े रेंगना=नेहरू वस्त्र पहनना। योगी होना। विरक्त होना।

कपडौटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कपडा + ढौटी (प्रत्य०)] दे० 'कपड मिट्टी'।

कपनी^१—वि० [सं० कप्पन] कप पैदा करनेवाली। जैसे,—कपनी बाई।

कपनी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० कपकंपी। कपन। उ०—भूप को सुघ नहीं अपनी। गगन चढ़ते लगी कपनी।—सत तुरसी०, पृ० ६४।

कपरिया—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कपाली] एक नीच जाति। उ०—ताल पखावज वो मंगाने। गाइन गुनी कपरिया आने।—हिंदी प्रेम०, पृ० २१०।

कपरोटी^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कपडौटी] दे० 'कपडौटी'।

कपर्द—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. शिव की जटा। जटाजूट। २. कोडी।

कपर्दक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कपर्दिका] १ (शिव का) जटा-जूट। २. कोडी।

कपर्दिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा। शिवा। भवानी। उ०—हमारे मामा के एक पंडे साहूकार की जीविका थी पर उससे उनकी जन्म भर में एक कपर्दिका भी नहीं मिली।—श्रीनिवास ग्र० पृ० ४४।

कर्पदिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा। शिवा। भवानी। उ०—जै जयति जै आदि सकति जै कालि कर्पदिनि। जै मधुकैटभ छलनि देवि जै महिष विमदिनि।—भूपण (शब्द०)।

कर्पदी^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्पद्दिन्] [सं० कर्पदिनी] १. जटा-जूटधारी शिव। २. ११ खों में से एक का नाम।

कर्पदी^२—वि० [सं० कर्पद + ई (प्रत्य०)] जटाजूटधारी। उ०—वह कर्पदी और जटाधारी है।—प्रा० भा० प०, पृ० १४६।

कपसा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कपिषा] १. एक प्रकार की चिकनी मिट्टी जिससे कुम्हार वर्तन पर रंग चढ़ाते हैं। काविस। २. गारा। लेई।

कपसेठा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कपास + एठा] [स्त्री० अल्पा० कपसेठी] कपास के सुखे हुए पेड जो ईंधन के काम में लाए जाते हैं।

कपसेठी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कपसेठा] सं० 'कपसेठा'।

कपाट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अल्पा० कपाटी] किवाड़। पाट। उ०—नाम पाहुरु राति दिनु ध्यान तुम्हार कपाट। लाचन निज पद जत्रित जाहि प्रान केहि बाट —मानस, ५।३०।

यो०—कपाटबद्ध। कपाटमगल।

कपाटवद्ध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चित्रकाव्य जिसके अक्षरों की विशेष रूप से निखने से किवाड़ों का चित्र बन जाता है।

कपाटमंगल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कपाटमङ्गल] द्वार वद करना। (वल्लभकुल)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

कपाटवक्षा—वि० [सं० कपाटवक्षस्] जिसकी छाती किवाड़ की तरह हो। चौड़ी छातीवाला।

कपाटसधि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कपाटसन्धि] दरवाजे के पल्ले का जोड़ [को०]।

कपाटसधिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कपाटसन्धिक] सञ्ज्ञुत के अनुसार कान के १५ प्रकार के रोगों में से एक।

कपार^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कपाल] दे० 'कपाल'। उ०—सेस डार टूटि पलल कपार।—विद्यापति, पृ० ४४०।

मुहा०—कपार मारना=दे० 'मूँड़ मारना'। उ०—पुरुष आज्ञा अस भयउ अपारा। मारहु धर्म के माँक कपारा।—कवीर सा०, पृ० ६।

कन्याशुल्क—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कन्याघन ।

कन्याहरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कन्या को (विवाह के निमित्त) पकड़ ले जाना या उड़ा ले जाना [क्रि०] ।

कन्यिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या । कुमारी ।

कन्युप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हाथ की कलाई के नीचे का भाग [क्रि०] ।

कन्वास—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कनवास] सूत, सन, पट्ट, आदि का वस्त्र जो तबू, पाल या चित्र बनाने के काम में लिया जाता है ।
उ०—अपने चित्र के लिये बड़े कन्वास की जरूरत मुझे नहीं लगी ।—सुनीता (प्र०), पृ० ८ ।

कन्सरर्वेसी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] सरकारी निरीक्षण या देखरेख । जैसे,—कन्सरर्वेसी इस्पेक्टर ।

कन्सरवेटर—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कन्सरवेटर] देखरेख करनेवाला । निरीक्षक । जैसे,—जंगल विभाग का कन्सरवेटर ।

कन्सरवेटिव—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कन्सरवेटिव] १ वह जो राज्य या शासनप्रणाली में क्रांतिकारी या चरम प्रकार के परिवर्तन का विरोधी हो । वह जो प्रजासत्तात्मक शासनप्रणाली का विरोधी हो । टोरी । २ वह जो प्राचीनता का, पुरानी बातों का, पक्षपाती और नवीनता का, नई बातों का, किसी प्रकार के सुधार या परिवर्तन का विरोधी हो । वह जो परंपरा से चली आई हुई धार्मिक और सामाजिक संस्थाओं और रीति रिवाज का समर्थक और पक्षपाती हो । वह जो कुसंस्कार या अदूरदर्शिता से सच्ची उन्नति का विरोधी हो ।

कन्सरवेटिव—वि० जो देश की नागरिकता और धार्मिक संस्थाओं में क्रांतिकारी परिवर्तन या प्रजासत्ता के प्रवर्तन का विरोधी हो । जो परंपरा से चली आई हुई सामाजिक या धार्मिक संस्थाओं या रीति रिवाज का समर्थक और पक्षपाती हो । परिवर्तनविमुख । समाजविरोधी । सनातनी । पुराणप्रिय । लकीर का फकीर । जैसे,—वालविवाह जैसी नाशकारी प्रथा का समर्थन उन्होंने लोगों ने किया जो कन्सरवेटिव थे ।—लकीर के फकीर थे ।

कन्ह^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृष्ण] १ श्रीकृष्ण । उ०—ध्यान सुप्रति प्रति कन्ह देव देवघिदेव वर ।—पृ० रा०, २ । ३४० । २ पृथ्वीराज का एक सामंत ।

कन्हड़ी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कर्णाटी] दे० 'कर्णाटी' ।

कन्हड़ी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कृष्ण, प्रा० कन्ह] श्रीकृष्ण जी ।

कन्हार^३—सञ्ज्ञा पुं० [स्कन्ध + आवर] (आवरण = बुपट्टा) हि० कंधावर] दे० 'कंधावर' ।

कन्है—अव्य० [हि० कने] दे० 'कने' ।

कन्हैया—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कृष्ण, प्रा० कन्ह] १. श्रीकृष्ण । २. अत्यंत प्यारा आदमी । प्रिय व्यक्ति । उ०—आखे रहो राजराज राजन के महाराज, कच्छ कुल कलश हमारे तो कन्हैया हो ।—पद्माकर (शब्द०) । ३. बहुत सुंदर लड़का । बाला आदमी । ४. एक पहाड़ी पेड़ जो पूर्वी हिमालय पर आठ हजार फुट की ऊँचाई पर होता है ।

विशेष—इसकी लकड़ी मजबूत होती है और उसमें हरी या लाल धारियाँ पड़ी रहती हैं । आसाम में इसकी लकड़ी की

किश्तियाँ बनाई जाती हैं । इसके चाय के सड़कचे भी बनते हैं । कोई कोई इसे इमारत के काम में भी लाते हैं ।

कन्हैया^४—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्कन्ध ७ कथ] दे० 'कंधा' । उ०—तर्ह हम कन्हैया कूदिकै गज की कन्हैया पर परघी ।—हिम्मत०, पृ० ३५ ।

कन्हैरा—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कनेर' । उ०—चपक चमेली और केतकी कन्हैर वुहो, तामे वान साजिक उमग सरसायो है ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ४९३ ।

कप^१—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] प्याला ।

कप^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वस्त्र । २. दंत्यो की एक जाति [क्रि०] ।

कप^३^५—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कपि] दे० 'कपि' । उ०—हेर कप माप अणलार हरषे ।—रघु०, पृ० २९ ।

कपट—सञ्ज्ञा पुं० [सं० वि० कपटी] १ अभिप्राय साधन के लिये हृदय की बात को छिपाने की वृत्ति । छल । दम । धोखा । उ०—(क) जो जिय होत न काट कुचाली । केहि सुहाव रय, वाजि, गजाली ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) सती कपट जानेउ सुरस्वामी । सवदरसी सव अतरजामी ।—मानस, १।५३ ।

क्रि० प्र०—करना ।—रखना ।

यो०—कपटचक = चिड़िया फँसाने के लिये बिखेरा दाना । फँसान की युक्ति । कपटतापस = वनावटी या वना द्वारा साधु । कपटनाटक = ठगना । धोखेबाजी । कपट व्यवहार करना । कपटप्रबंध = धोखा देने की योजना । कपटवेश = वनावटी भेष । कपटलेख्य = द्विधर्थक या जाली दस्तावेज ।

२. दुराव । छिपाव ।

क्रि० प्र०—करना ।—रखना ।

कपटना—क्रि० सं० [सं० कल्पन, क्लृप्त अथवा हि० कपट से नामिक घातु] १ काटकर अलग करना । काटना । छाटना । छोटना । उ०—(क) कपट कपट डारयो निपट कै औरन सो भेटी पहचान मन मैं हूँ पहिचान्यो है । जीत्यो रति रण, मय्यो मनमय हूँ को मन केशोराइ कौन हूँ पै रोप उर आन्यो है ।—केशव (शब्द०) । (ख) पापी मुख पीरो करै, दासन की पीर हरै, दुख भव हेत कोटि भानु सी दपड है । कपट कपट डार रे मन गँवार भट, देखु नव नट कृष्ण प्यारे को सुपद है ।—गोपाल (शब्द०) । २. काटकर अलग निकालना । धीरे से निकाल लेना । किसीवस्तु का कुछ भाग निकालकर उसे कम करना । जैसे,—जो रुपए मुझे मिले थे, तुमने तो उनमें से ५) कपट लिए ।

कपटा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कपटना] [स्त्री० कपटी] एक प्रकार का कीड़ा जो घान के पौधे में लगता है और उसे काट डालता है ।

कपटिक—वि० [सं०] कपटी । धोखेबाज । बदमाश । दुष्ट [क्रि०] ।

कपटी—वि० [सं० कपटिन्] कपट करनेवाला । छनी । धोखेबाज ।

धूर्त । दगाबाज । उ०—(क) कपटी कुटिल नाथ मोहि चिन्हा ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) सेवक शठ नृप कृपिन कुनारी । कपटी मित्र शूल सम चारी ।—तुलसी (शब्द०) ।

कपटी^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कपटना] १. घान की फसल को नष्ट

कन्या—वि० [स्त्री० कन्या] (लकड़ी या फल) जिसमें कन्ना लगा हो।

काना। जैसे,—कन्ना भटा, कन्नी ईख।

कन्यासी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'कन्यासी'।

कन्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कन्या] १. पतंग या कनकौए के दोनों ओर के किनारे।

१. मुहा०—कन्या खाना या मारना = पतंग का उड़ते समय किसी ओर झुका रहना। पतंग का एक ओर झुककर उड़ना।

विशेष—इस प्रकार उड़ने से पतंग बढ नहीं सकती।

२ वह ध्वज जो पतंग की कन्नी में इसलिये बाँधी जाती है

कि उसका वजन बराबर हो जाय और वह सीसी उड़े।

३ क्रि० प्र०—बाँधना।—लगाना।

३ किनारा। हाशिया। कोर।

४ मुहा०—किसी की कन्या दवाना = (१) किसी के अधीन या

वशीभूत होना। किसी के ताबे में होना। (२) दवाना।

सहमना। धीमा पडना। (३) झेंपना। लजाना।

५ धोती चदर आदि का किनारा। हाशिया। जैसे, लाल कन्नी की धोती।

यौ०—कन्यादार = किनारेदार।

कन्या—सञ्ज्ञा पुं० [सं० करण] राजगीरी का एक औजार जिससे वे दीवार पर गारा पन्ना लगाते हैं। करनी।

कन्या—सञ्ज्ञा पुं० [म० स्कन्ध] १. पेड़ों का नया कल्ला। कोपन।

२ तमाकू के वे छोटे छोटे पत्ते या कल्ले जो पत्तों के काट लेने पर फिर से निकलते हैं। ये अच्छे नहीं होते। ३. हेंगे

या पटल के खींचने के लिये रस्सियों की मुद्धी में लगी हुई खूटी जिसे हेंगे के सुराख में फँसते हैं।

कन्या—वि० [हि० कन्या + ई (प्रत्यय)] कान की। उ०—सुरति सिमृति दुइ कननी मुदा।—कवीर प्र०, पृ० २२८।

कन्या—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कान्यकुब्ज, प्रा० कण्णउज्ज] फर्रुखाबाद जिले का एक नगर या कसबा जो किसी समय विस्तृत साम्राज्य की राजधानी था। आजकल यहाँ का इन प्रसिद्ध है।

कन्या—वि० [हि० कन्या + ई (प्रत्यय)] कन्याज सवधी। कन्याज की।

कन्याजी—सञ्ज्ञा स्त्री० कन्याज की भाषा का नाम।

कन्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. बारी लडकी। अनव्याही लडकी। २. पुत्री। बेटी।

कन्या—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सबसे छोटा भाई [क्रि०]।

कन्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सबसे छोटी उँगली। कानी उँगली [क्रि०]।

कन्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सबसे छोटी बहन।

कन्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. अविवाहित लडकी। बारी लडकी।

विशेष—पराशर के अनुसार १० वर्ष की लडकी का नाम कन्या है।

यौ०—पचकन्या = पुराण के अनुसार वे पाँच स्त्रियाँ जो बहुत पवित्र मानी गई हैं—प्रहल्या, द्रौपदी, कुत्ती, तारा, मदोदरी।

नवकन्या = तत्र के अनुसार वे नौ जातियों की स्त्रियाँ जो २-३२

चक्रपूजा के लिये बहुत पवित्र मानी गई हैं—नटी, कापालकी (कपडिया), वेश्या, धोविन, नाइन, ब्राह्मणी, यूदा, म्वालिन और मालिन।

२. पुत्री। बेटी।

यौ०—कन्यादान। कन्यारासी। कन्यावेदी।

३. १२ राशियों में से छठी राशि जिसकी स्थिति उत्तर फाल्गुनी के दूसरे पाद के आरम्भ से चित्रा के दूसरे पाद तक है। ४. धीववार। ५. बड़ी इलायची। ६. वाँक ककौली।

७. बाराही कद। गेठी। ८. एक वंशवृत्त का नाम जिसमें चार गुरु होते हैं। ९. एक तीर्थ या पवित्र क्षेत्र का नाम।

१०. 'कन्याकुमारी'।

कन्याकुमारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कन्या + कुमारी] भारत के दक्षिण में रामेश्वर के निकट का अतरीप। रासकुमारी। केपकुमारी।

कन्यागत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] 'कन्यागत'।

कन्याग्रहण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] विवाह द्वारा विधिपूर्वक कन्या का ग्रहण [क्रि०]।

कन्याजात—वि० [सं०] बारी कन्या से उत्पन्न। कानीन।

कन्याट—वि० [सं०] कन्या का पीछा करनेवाला।

कन्याट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. अतपुर। २. वह व्यक्ति जो कन्या का पीछा करता हो [क्रि०]।

कन्यादान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] विवाह में वर को कन्या देने की रीति।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—लेना।

कन्याधन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह धन जो स्त्री को अविवाहिता या कन्या अवस्था में मिला हो। एक प्रकार का स्त्रीधन।

विशेष—अधिकारिणी के अविवाहिता मरने पर इस धन का अधिकारी भाई होता है।

कन्यापाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कुमारी लडकियों को रोजगार करनेवाला पुरुष। २. बगल की एक कुरसी जो अब पाल कहलाती है।

कन्यापुर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अतपुर। जनानखाना।

कन्याभर्ता—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कन्याभर्ता] १. दामाद। २. कार्तिकेय [क्रि०]।

कन्यारासी—वि० [सं० कन्याराशि] १. जिसके दस राशियाँ कन्या राशि में हो। २. चौपट। सत्याग्रह के समय कमजोर। कायर।

कन्यालोक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जैन मत के भूत जो कन्या के विवाह के समय

कन्यावानी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कन्या + वानी] समय बरसता है जब सूर्य कन्या

समझी जाती है।

कन्यावेदी—सञ्ज्ञा

जमाई

कन्याव्रतस्था

गीतिका मे सब स्वरो का समारोह है।—गीतिका (सम्मति)
कनेव—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कोर + एव] चारपाई का टेढ़ापन।

विशेष—यह टेढ़ापन दो कारणों से होता है। एक तो पायों के छेद
टेढ़े होने से चारपाई सालने में कन्नी हो जाती है। दूसरे बुनते
समय ताने के छोटे रखने से चार पाई में कनेव पड़ जाता है।

क्रि० प्र०—निकलना।—पड़ना।

मुहा०—कनेव छेदना = पाए के छेदों को टेढ़ा छेदना जिससे चारपाई
कन्नी हो जाय। जैसे—वह ई ने पायो को कनेव छेदा है।

कनै०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कनक, प्रा० कण्य] दे० 'कनक'। उ०—वै जो
मेघ गढ़ लाग अकासा। विजरी कनै कोटि चहुँ पासा।—
जायसी ग्र०, पृ० २२६।

कनैल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्णकार] दे० 'कनेर'।

कनोई—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] कान का मेल। खूँट।

कनोखा^१—वि० [हि० कनखा] दे० 'कनखा' २।

कनोखा^२—वि० [हि० काना > कन + आँख > आँखा] १ वक्र दृष्टि
वाला। २ कटाक्षयुक्त।

कनोतर—वि० [हि० कोन = नौ + सं० उत्तर] दलालों की बोली में
'उन्नीस'।

कनोज^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कान्यकुब्ज, प्रा० ७ कनउज्ज] दे० 'कनौज'।

कनोजिया^१—वि० [हि० कनौज + इया (प्रत्य०)] १ कनौज
निवासी। २ जिसके पूर्वज कनौज के रहनेवाले रहे हो या
कनौज से आए हो। जैसे, कनोजिया ब्राह्मण, कनोजिया
नाऊ, कनोजिया भडभूँजा।

कनोजिया^२—सञ्ज्ञा पुं० कनौजिया ब्राह्मण।

कनोठा^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कोन + ओठा (प्रत्य०)] १. कोना। २.
बगल। किनारा।

कनोठा^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कनिष्ठ] १ भाई बंधु। २ पट्टीदार।

कनोड, कनोडा—वि० [हि० काना + ओडा (प्रत्य०)] १. काना।

२ जिसका कोई अंग खड़ित हो। अपग। खोड़ा। जैसे,—

हाथ पाँव से कनोडा कर दिया। ३ कलकित।

निदित। बदनाम। उ०—जेहि सुख हित हम भई कनोडी।

सो सुख अब लूटत है लौडी।—विश्राम (शब्द०) ४ क्षुद्र।

तुच्छ। दीन हीन। नीच हेठा। उ०—प्रीति पहीहा पयद को

प्रगट नई पहिचानि। जाचक जगत कनावडो कियो कनोडी

दानि।—तुलसी (शब्द०)। ५ लज्जित। सकुचित।

शमिदा। उ०—तुरत सुरत कैसे दुरत? मुरत नैन चुरि

नीठ। डोड़ी दै गुन रावरे, कहत कनोडी डीठ।—विहारी

(शब्द०)। ६ दर्द। एहसानमद। उपकृत। उ०—कपि

सेवा बस भए कनोडे, कह्यो पवनसुत आउ। देव को न कछू

रिनियाँ हौं, धनिक तु पत्र लिखाउ।—तुलसी, ग्र०, पृ० ५०६।

कनोती^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कान + ओती (प्रत्य०)] दे० 'कनोती'।

उ०—अजौं करति उरझनि मनो, लेगो कनोती कान।—

घनानंद पृ० २७०।

कनोती^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कान + ओती (प्रत्य०)] १ पशुओं के कान

या उनके कानों की नोक। उ०—(क) उम दिन जो मैं
हरियाली देखने को गया था, वहाँ जो मेरे सामने एक हिरनी
कनोतियाँ उठाए हुए हो गई थी, उसके पीछे मैंने घोड़ा
धगछुट फेंका था।—इशाभरला खाँ (शब्द०)। (ख) चलत
कनोती लई दवाई।—शकुंतला, पृ० ८०।

क्रि० प्र०—उठाना।

मुहा०—कनोतियाँ उठाना या खड़ा करना = कान खड़ा करना।

चौकन्ना होना। उ०—कनोती खड़ी कर हमारी नाई

तकै—भस्मावृत०, पृ० २६।

२ कानों के उठाने या उठाए रखने का ढग। जैसे,—इस घोड़े
की कनोती बहुत अच्छी है।

मुहा०—कनोतियाँ बदलना = (१) कानों को खड़ा करना। (२)

चौकन्ना होना। चौककर सावधान होना।

३ कान में पहनने की वाली। मुरकी।

कन्न^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ पाप। २ मूर्ख। बेहोशी [कौ०]।

कन्न^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्ण, प्रा० कण्य] दे० 'कान'। उ०—कन्न
पडाय न मूढ मुडाय।—प्राण०, पृ० १११।

कन्नड—सञ्ज्ञा पुं० [प्रा० कण्णाड] १ दक्षिण भारत का एक प्रदेश।

२ एक भाषा का नाम जो कन्नड प्रदेश में बोली जाती है।

३ कन्नडवासी व्यक्ति।

कन्नडश्याम—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कन्नड + श्याम] दे० 'कनरश्याम'।

कन्ना^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्ण, प्रा० कण्ड] [स्त्री० कन्नी] १ पतंग
का वह डोरा जिसका एक छोर काँप और ठंडे के मेल पर
और दूसरा पुछले के कुछ ऊपर बाँधा जाता है। इस तागे
के ठीक बीच में उड़ानेवाली छोर बाँधी जाती है।

क्रि० प्र०—बाँधना।—लगाना।—साधना।

मुहा०—कन्ने ठीले होना या पड़ना = (१) थक जाना। शिथिल
होना। ढीला पड़ना। (२) जोर का टूटना। शक्ति और
गर्व में रहना। मानमर्दन होना। कन्ने से कटना = (१)
पतंग का कन्ने के स्थान से कट जाना। (२) मूल से ही
विच्छिन्न हो जाना।

२. पतंग का छेद जिसमें कन्ना बाँधा जाता है।

क्रि० प्र०—छेदना।

३. किनारा। कोर। ओठ। ४ जूते के पजे का किनारा।

जैसे,—मेरे जूते का कन्ना निकल गया। ५ कोल्ह

की कातर के एक छोर के दोनों ओर गी हुई लकड़ियाँ जो

कोल्ह से मिडी रहती हैं और उससे रगड़ खाती हुई घूमती हैं।

इन लकड़ियों में एक छोटी और दूसरी बड़ी होती है।

कन्ना^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कण] १ चावल का कन। २ चावल की धल
जो चावल के घिसने या छोटे छोटे कणों के चूर्ण हो जाने पर
झावल में मिली रह जाती है।

कन्ना^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कणक = वनस्पति का एक रोग, प्रा० कण्णस]

३ वनस्पति का एक रोग जिससे उसकी लकड़ी तथा फल मादि

में कीड़े पड़ जाते हैं, और लकड़ी या फल खोखले होकर तथा

सड़कर बेकाम हो जाते हैं।

भूमि विरोज रघुपति अतुलवल कोसलघनी । अमविदु मुख
राजीवलोचन अरुण तन सोरिणत कनी ।—तुलसी (शब्द०) ।

कनी^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या । बालिका [को०] ।

कनीचि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ शकट । २. गुजा [को०] ।

कनीज—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० कनीज, मि० सं० कनी, कन्या कन्यका]
दासी । सेविका । लोदी । बादी । उ०—दाढ़ी के वालों में
से उसने देखा तो होगा कि कंसी है मेरी कनीज, वह मेरी
अवाधील ।—वदन०, पृ० ५१ ।

कनीन—वि० [सं०] युवक । तरुण [को०] ।

कनीनक—संज्ञा पु० [सं०] १ लडका । युवक । २ आँखों का तारा
या पुतली [को०] ।

कनीनका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कुमारी । कन्या । २. आँखों की
पुतली [को०] ।

कनीनिका—संज्ञा स्त्री० [न०] १ आँख की पुतली या तारा । उ०—
और श्रेष्ठ कनीनिकनु गनी घनी सिरताज । मनी घनी के नेह
की बनी छनी पट लाज ।—विहारी २० दो० ४ । २. कन्या ।
३ कानी उगली [को०] ।

कनीनी—संज्ञा स्त्री० [न०] दे० 'कनीनिका' [को०] ।

कनीयस^१—वि० [सं० कनीयस्] [वि० स्त्री० कनीयसी] लघुतर ।
अपतर । [को०] ।

कनीयस^२—संज्ञा पु० १ ताँवा । २ छोटा भाई । ३ कामातुर प्रेमी [को०] ।

कनीर—संज्ञा पु० [हि० कनेर] कनेर का वृक्ष या फूल । उ०—कविरा
तहाँ न जाइए जहाँ कपट का हैन । जालू कली कनीर की
तन रात्री मन सेत ।—कवीर ग्र०, पृ० ६६ ।

कनु^७—संज्ञा पु० [सं० कण, ७ कन] दे० 'कण' ।

कनूका^७—संज्ञा पु० [हि० कनिका] कण । दाना उ०—यो
कवि 'ब्रह्म' बनी उपमा जल के कनूका चूर्ण बार के छोरनि ।
मानदु चदहि चूसन नाग अमी निकस्यो वहि पूँछ की मौरनि ।
—अकबरी, पृ० ३४६ ।

कनुग्रा^७—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'कान' । उ०—क्या होषा जु कनूग्रा
फूटा । क्या हो या जु ग्रहीते छूटा ।—प्राण०, पृ० २७४ ।

कनूका^७—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'कनुका' ।

कनी^१—क्रि० वि० [सं० कोण] १ पास । ढिग । निपट । समीप ।
उ०—(क) मीत तुम्हारा तुम्ह कने तुमहीं लेट्ट पिछानि ।
दादू दूर न देखिये प्रतीविव ज्यो जानि ।—दादू (शब्द०) ।
(ख) जब आके बुड़ापे ने किया हाय य कुछ कहन । अब
जिसके कने जाते हैं लगते हैं उसे जहन ।—नजीर (शब्द०) ।
(ग) वेद विपिन बूटी बचन हरिजन किमियाकार । खरी
जरा तिनके कने छोटी गहत गंवार ।—विश्राम (शब्द०) ।
२. ओर । तरफ । जैसे,—आज किस कने जाओगे ?

विशेष—यद्यपि यह क्रि० वि० है, यद्यपि 'यहाँ वहाँ' आदि के समान
यह संबंधकारक के साथ भी आता है । जैसे,—उनके कने ।

कनेखी^७—संज्ञा स्त्री० [हि० कनखी] दे० 'कनखी' ।

कनेठा^१—संज्ञा पु० [हि० कान + एठा (प्रत्य०)] कातर में लगी हुई
वह लकड़ी जो कोलू से रगड़कर धाती हुई उसके चारों ओर
धूमती है । कान ।

कनेठा^१—वि० [हि० काना + एठा (प्रत्य०)] १. काना । २. भंगा ।
ऐंचा ताना ।

विशेष—यह शब्द काना शब्द के साथ प्रायः आता है । जैसे,—
काना कनेठा ।

कनेठी—संज्ञा स्त्री० [हि० कान + ऐठना] कान मरोढने की सजा ।
गोगमाली । कान उभेठना ।

क्रि० प्र०—खाना ।—देना ।—लगना ।—लगाना ।

कनेनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दलालों को बोली में 'रपया' ।

कनेर—संज्ञा पु० [म० कनेर] एक पेड़ ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ एक वित्ता लंबी और आध अंगुल से
एक अंगुल तक चौड़ी और मुकीली होती हैं । ये कड़ी, चिकनी
और गहरे हरे रंग की होती हैं तथा दो दो पत्तियाँ एक साथ
आमने सामने निकलती हैं । डाल में से मफेद दूध निकलता है ।
फूलों के विचार से यह दो प्रकार का है, सफेद फूल का कनेर
और लाल फूल का कनेर । दोनों प्रकार के कनेर सदा
फूलते रहते हैं और बड़े विपले होते हैं । सफेद फूल का
कनेर अधिक विपला माना जाता है । फूलों के भड़ जाने पर
आठ दम अंगुल लंबी पतली पतली फलियाँ लगनी हैं । फलियों
के पकने पर उनके भीतर से बहुत छोटे छोटे बीज मदार की
तरह हड्डियों में निकलते हैं । कनेर छोड़े के लिये बड़ा भयंकर
विष है, इसी लिये सम्स्कृत दोषों में इसके अशयधन, हयमार,
तुरगारि आदि नाम मिलते हैं । एक और पेड़ होता है जिनकी
पत्तियाँ और फल कनेर ही के ऐसे होते हैं । उसे भी कनेर
कहते हैं, पर उसकी पत्तियाँ पतली छोटी और अधिक
चमकीली होती हैं । फूल भी बड़ा और पीले रंग का होता
है तथा हलकी लाजिमा से युक्त पीले रंग का भी होता है ।
फूलों के गिर जाने पर उसमें गोल गोल फल लगते हैं जिनके
भीतर गोल गोल चिपटे बीज निकलते हैं ।

वैद्यक में दो प्रकार के और कनेर लिखे हैं—एक गुलाबी फूल
का, दूसरा काले रंग का । गुलाबी फूलवाने कनेर को लाल
कनेर ही के अतर्गत समझना चाहिए, पर काले रंग का कनेर
सिवाय निघट्ट रत्नाकर ग्रंथ के और कहीं देखने या सुनने में
नहीं आया है । वैद्यक में कनेर गरम, कृमिनाशक तथा घाव,
कोढ़ और फोड़े फूसी आदि को दूर करनेवाला माना
गया है ।

पर्याय—करवीर । शतकुम । अश्वमारक । शतकुद । स्वत-
कुमुद । शकुद । चडात । लगुद । भूतद्रावी ।

कनेरा—संज्ञा स्त्री० [म०] १ हस्तिनी । हथिनी । कणूरा । २.
वेष्या [को०] ।

कनेरिया—वि० [हि० कनेर] कनेर के फूल के रंग का । कुछ श्यामता
लिए लाल रंग का ।

कनेरी—संज्ञा स्त्री० [अ० कनेरी (टापू)] प्रायः तोते के आकार की
एक प्रकार की बहुत सुंदर चिड़िया जिसका स्वर कोमल
और मधुर होता है और जो इसीलिए पाली जाती है । इसकी
कई जातियाँ और रंग हैं, पर प्रायः पीले रंग की कनेरी बहुत
सुंदर होती है । उ०—उनमें केवल पिरु की पंचम प्रकार की
नहीं, कनेरी की भी एक ही मोठी जान नहीं, मयिनु उन्नकी

मे जाते हैं। इसी से 'कन्यागत' नाम पड़ा। इस समय श्राद्धादि पितृकर्म करना अच्छा समझा जाता है।

२ श्राद्ध।

क्रि० प्र०—करना।

कनात—सञ्ज्ञा स्त्री० [तु० कनात] मोटे कपड़े की वह दीवार जिससे किसी स्थान को घेरकर आढ़ करते हैं। उ०—(क) तुम मेह मंदर सम सुंदर भूपति शिविर सोहाये। विमल विद्युत् सोहाव कनातन बड़ वितान छवि छाये।—रघुराज (शब्द०)।

विशेष—इसे खड़ा करने के लिये इसमें तीन तीन, चार चार हाथ पर वाँस की फट्टियाँ सिली रहती हैं जिनके सिरो पर से रस्सियाँ खींचकर यह खड़ी की जाती है।

क्रि० प्र०—खड़ी करना।—खोचना।—घेरना।—लगना।—लगाना।

कनाना—क्रि० अ० [हि० किनाना या कियाना] ऊप की फसल में कना नामक रोग लगना।

कनार—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] घोड़े का जुकाम (सर्दी)।

कनारा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कनार की अ० वर्तनी] मंदरास प्रात का एक भाग।

कनारी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० किनारा का स्त्री०] दे० 'किनारी'।

कनारी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कनारा + ई (प्रत्य०)] मंदरास प्रात के कनारा नामक प्रदेश की भाषा। कन्नड। २. कनारा का निवासी। कन्नडी।

कनारी^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] कांटा।

विशेष—यह पालकीवाले कहारी की बोली का शब्द है।

कनाल^१—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] पंजाब में जमीन की एक नाप जो घुमाव के आठवें भाग वा चौथे की चौथाई के बराबर होती है।

कनाल^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] नहर।

कनावडा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कनोड़ा] दे० 'कनोडा'। उ०—वानर विभीषण की ओर को कनावडो है सो प्रसंग सुने भंग जर्र अनुचर को।—तुलसी (शब्द०)।

कनासी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] लद्दाख और काँग्रेस के बीच की काँग्रेसी वगैरह की एक बोली।

कनासी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कण + आसी] १. रेती जिससे ढक्के-वाले नारियल के ढक्के वा मुँह चौड़ा करते हैं। २. बड़ई की रेती जिससे आरे की दाँती निकाली या तेज़ की जाती है।

कनिआरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कणिकार, प्रा० कणिकार] कनकचपा का पेड़। उ०—अति व्याकुल भई गोपिका ढूँढति गिरधारी। वृक्षति है वन वेलि सो देखे वनवारी। जाही जूही सेवती करना कनिआरी। वेलि चमेली मालती वृक्षति द्रुम डारी।—सूर (शब्द०)।

कनिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कणिक] १. गेहूँ। २. गेहूँ का आटा। उ०—बहुल कौडि कनिक थोड़, धविक पेचि दीप घोड़।—कीर्ति०, पृ० ६८।

कनिका—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कणिका] किसी वस्तु का बहुत छोटा

टुकड़ा। उ०—मुद्य ग्राम माधन के कनिका निरखि नैन सुख देत। मनु शशि श्रवत सुधा निधि मोती उडुगण अवलि समेत।—सूर (शब्द०)।

कनिगर—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कानि + फा० गर] अपनी मर्यादा का ध्यान रखनेवाला। अपनी कीर्तिरक्षा का ध्यान रखनेवाला। अपने सुयश को रक्षित रखनेवाला। नाम की लाज रखनेवाला। उ०—तुलसी के माथे पर हाथ फेरो बीमनाय, देखिए न दास दुप्री तो से कनिगर के।—तुलसी ग्र०, पृ० २५६।

कनियाँ—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कवि या कना] गाढ़। कोरा। उछल। उ०—(क) सादर सुमुखि विनोकि राम सिमु रूप मनूप रूप लिये कनियाँ।—तुलसी (शब्द०)।

कनियाँ—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कनियाँ'। उ०—कनिका नगाई धूरि ऐसे सुवनन की।—शकुंतला, पृ० १४०।

कनियाना^१—क्रि० अ० [हि० कोना, पू० हि० कोनियाना] मोघ बचाकर निकल जाना। कतराकर चला जाना। कतराना।

कनियाना^२—क्रि० अ० [हि० कनी, कना] पतन का किसी मोर झुक जाना। कभी जाना।

कनियाना^३—क्रि० अ० [हि० कनिका से नाम] गोद लेना। गोद में उठाना।

कनियार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कणिकार] कनकचपा।

कनिष्ठ^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० कनिष्ठा] १. बहुत छोटा। अत्यंत लघु। सबसे छोटा। जैसे,—कनिष्ठ भाई। २. पीछे का। जो पीछे उत्पन्न हुआ हो। ३. उमर में छोटा। ४. हीन। निकृष्ट।

कनिष्ठ^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कनिष्ठ। सबसे छोटा [स्त्री०]।

कनिष्ठक^१—वि० [सं०] कनिष्ठ। सबसे छोटा [स्त्री०]।

कनिष्ठक^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक तृण। तिनका [स्त्री०]।

कनिष्ठा^१—वि० [सं०] १. बहुत छोटी। सबसे छोटी। जैसे, कनिष्ठा भगिनी। २. हीन। निकृष्ट। नीच।

कनिष्ठा^२—सञ्ज्ञा स्त्री० १. दो या कई स्त्रियों में सबसे छोटी या पीछे की विवाहिता स्त्री। २. नायिकाभेद के अनुसार दो या अधिक स्त्रियों में वह स्त्री जिसपर पति का प्रेम कम हो। ३. छोटी उँगली। छिगुनी। कनगुरी। ४. कनिष्ठ या छोटे भाई की स्त्री [स्त्री०]।

कनिष्ठिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] पाँचों उँगलियों में से सबसे छोटी उँगली। कानी उँगली। छिगुनी।

कनी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कणिका] १. छोटा टुकड़ा। किरिच। २. हीरे का बहुत छोटा टुकड़ा। जैसे,—यह कनी उसने पचास रुपए की खरीदी है।

मुहा०—कनी खाना या चाटना = हीरे की कनी निगलकर प्राण देना। हीरे की किरिच खाकर आत्मघात करना। जैसे—अनी के वस कनी खाना।

३. चावल के छोटे छोटे टुकड़े। कनकी। जैसे,—इस चावल में बहुत कनी है। ४. चावल का मध्य भाग जो कभी कभी नहीं ही गलता या पकाने पर गलने से रह जाता है। जैसे—चावल की कनी, बछी की मनी। ५. बूँद। छोटी बूँद। उ०—सप्राम

‘आर्डर’ प्राप्त करने का उद्योग करना। जैसे,—मिस्टर शर्मा गंगा आयर्न फैक्टरी के लिये बाहर कनवासिंग कर रहे हैं, पिछले महीने उन्होंने बीस हजार रुपये के आर्डर भेजे हैं।

कनवी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कण, हि० कन] एक प्रकार की कपास जिसके बिनोले बहुत छोटे होते हैं। यह गुजरात में होती है।

कनवेनसन—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कनवेंशन] सम्मेलन। प्रसभा।

कनवेसर—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] दे० ‘कनवासर’।

कनवेसिंग—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] दे० ‘कनवासिंग’।

कनवोकेशन—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० कन्वोकेशन] यूनीवर्सिटी का वह सालाना जलसा जिसमें बी० ए० आदि की उपाधि परीक्षा में उत्तीर्ण प्रार्थुओं को डिपलोमा आदि दिए जाते हैं। विश्वविद्यालय के पदवीदान का महोत्सव। दीक्षात-समारोह।

कनव्रत—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कण + व्रत] उछमोजी। कण बटोरने का व्रती। उ०—मुप करत सोभित जोस, जनु चुनत कनव्रत जोस।—पृ० रा०, १४।१४७।

कनसट—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कन्स्टट] वृद्धवाद्य। सामुदायिक वादन। उ०—कनसट का कमाल आप लोगों ने देखा होगा।—रस० क०, पृ० ६।

कनसलाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कान + हि० सलाई] १ कनखजूरे की तरह एक छोटा कीड़ा। छोटा कनखजूरा। २. कुश्ती का एक पंच।

विशेष—जब विपक्षी के दोनों हाथ खिलाड़ी की कमर पर होते हैं और वह पेट के नीचे घुसा होता है, तब खिलाड़ी अपना एक हाथ उसकी बगल में ले जाकर उसकी गर्दन पर चढ़ाता है और अपने घब को मरोड़ता हुआ उसे टाँग मारकर चित्त कर देता है।

कनसार—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कांसा + सार (प्रत्य०)] ताम्रपत्र पर लेख खोदनेवाला।

कनसाल—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कोन + सालना] चारपाई के पायों के वे छेद जो छेदते समय कुछ तिरछे हो जाँय और जिनके तिरछेपन के कारण चारपाई में कनेव आ जाय।

कनसीरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] हावर नामक पेड़। वि० ‘हावर’।

कनसुझा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्ण + श्रव, या हि०] दे० ‘कनसुई’। उ०—माजि इकोसी हूँ रहीं कनसुवौ लग ऊँ।—धनानंद, पृ० ३१४।

कनसुई—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कर्ण + श्रव या हि० कान + सुना] आहट। टोह।

मुहा०—कनसुई या कनसुईया लेना = (१) छिपकर किसी की बात सुनना। अकनना। (२) भेद लेना। टोह लेना। आहट लेना। (३) सगुन विचारना।—श्वेत फिरत कनसुई सगुन सुभ वृक्षत गनक बुलाइ के। मुनि अनुकूल मुदित मन मानहुँ धरत धीरजहिं घाड़ के—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—स्त्रियाँ चलनी में गोबर की गौर रखकर पृथिवी पर फेंकती हैं। यदि वह गौर सीधी गिरती है तो सगुन मनाता है और यदि उलटी या बेंड़ी गिरती है तो असगुन।

कनस्टर—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कनिस्टर] दे० ‘कनस्तर’। उ०—टीन के कनस्टरों पर चढ़े।—प्रेमधन०, पृ० ७१।

कनस्तर—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कनिस्टर] टीन का चौखूँटा पीपा जिसमें घी तेल आदि रखा जाता है।

कनहरि—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कणधार, प्रा० कणधार] दे० ‘कणधार’। उ०—(क) नौवें नाम-निरजन नौका कनहरि गुनहि चलावे।—गुलाल०, पृ० १२८। (ख) गुरु सतगुरु कनहरि।—वरिया०, पृ० ६३। (ग) जेहि चाहो भव तें काढ़न हूँ कनहरिया गुह खेवक।—भीखा श०, पृ० ८६।

कनहा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कन = अनाज + हा (प्रत्य०)] फसल कूतनेवाला कमचारी।

कनहार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कणधार, प्रा० कणधार] पतवार पकड़नेवाला मल्लाह केवट। उ०—राम बाहुवल सिंधु अपारु। चहत पार, नहिं कोउ कनहार।—तुलसी (शब्द०)।

कना^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या। सबसे छोटी लड़की [को]।

कना^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कण] दे० ‘कन’।

कना^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० काण्ड] सरकड़ा। सरपत।

कना^४—क्रि० वि० [सं० कोण] समीप। जैसे,—मेरे कने आओ। उ०—चाहि विना चितामणि क्या दें। ल्यूँ सेवक स्वामी कना क्या ले।—रज्जव० पृ० १२।

कना^५—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कौना, कौया = कीड़ा] ईख में होनेवाला एक रोग जिससे ईख पर पतलोई के अदर कीड़े लग जाते हैं और उसकी बाढ मारी जाती है।

कनाअत—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कनाअत] संतोष। सन्न। उ०—नमक रोटी पर कनाअत कर बंदो की खिदमत कबूल कीजिये।—प्रेमधन०, पृ० १३४।

कनाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० काण्ड] १. वृक्ष या पीधे की पतली डाल या शाखा। २. कल्ला। टहनी।

क्रि० प्र०—निकलना।—फूटना।

मुहा०—कनाई काटना = (१) रास्ता काटकर दूसरे रास्ते निकल जाना। सामना बचाकर दूसरा रास्ता पकड़ना। (२) किसी काम के लिये कहकर मौके पर निकल जाना। चालवाजी करना।

३ पगहे के गेराव के वे दोनों भाग जिन्हें मिलाकर जानवर बाँधे जाते हैं। ४. आल्हा की किसी एक घटना का वर्णन।

कनाउडा—वि० [हि० कनोड़ा] दे० ‘कनोडा’। उ०—प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचान। जाचक जगत कनाउड़ो कियो कनोड़ो दानि।—तुलसी (शब्द०)।

कनाखी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कनखी] दे० ‘कनखी’ सञ्ज्ञा। उ०—(क) पुनि तिनमें नख रेखें देखें। साँसन भरें कनाखिन देखें।—नंद० ग्र०, पृ० १५१। (ख) सखि तन कुँवरि कनाखि चहै।—नंद० ग्र०, पृ० १३७।

कनागत—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कन्यागत] १. क्वार के महीने का अंधेरा पाख। पितृपक्ष। उ०—प्राय कनागत फूने कांस। बाह्यन कूदें सौ सौ वांस। (शब्द०)।

विशेष—प्राय. यह पक्ष उस समय पड़ता है जब सूर्य कन्या राशि

कनफुंका^१—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] १ कान फूंकनेवाला गुच्छ । २ कान फूंकाने वाला चेला । उ०—कनफूँका चिढाकसी लूटे जोगेसर लूटे करत विचार ।—कवीर (शब्द०) ।

कनफुसका—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कान + फुसकना] [खी० कनफुसकी]

१. फुस फुस करनेवाला । कान में धीरे से वात कहनेवाला । २. चुगुलखोर । पीठ पीछे धीरे धीरे लोगो की बुराई करनेवाला ।

कनफुसकी—सञ्ज्ञा खी० [हिं० कान + फुसकी] दे० 'कानाफूसी' ।

कनफूला—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कन + फूल] फूल के आकार का कान का गहना । तरवन । उ०—कनवेसर कनफूल वन्यो है छवि कापै कहि आवाँजू ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ४४६ ।

कनफेडा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कनपेडा] दे० 'कनपेडा' ।

कनफेशन—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कनफेशन] पाप, अपराध, गनती, बुराई आदि कबूल करना । उ०—मुझे कमी ईसाइयो की तरह कनफेशन करना हो तो गिरजे में जाकर नहीं रेलगाडी में ही करूँ ।—नदी० पृ० ३६ ।

कनफोडा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्णस्फोटक] एक लता जो दवा के काम में आती है । यह खाने में कड़वी और गुण में ठंडी और विषघ्न होती है ।

पर्या०—त्रिपुटा । चित्रफणी । कोपलता । चक्रिका ।

कनवतियाँ—सञ्ज्ञा खी० [हिं० कन + वतियाँ] कानाफूसी । निंदा जो खुलकर न की जाय । उ०—इधर नोहरी के विषय में कनवतियाँ होती रहीं ।—गोदान, पृ० २५२ ।

कनवाती—सञ्ज्ञा खी० [हिं० कन + वात] कान में मुह लगाकर वात कहना । उ०—कछुक अनूठी मिस बनाय ढिग आया करत कनवाती ।—घनानंद०, पृ० ५६६ ।

कनविघा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कन + वेघना] १ कान छेदनेवाला । २ जिसका कान छेदा हुआ हो ।

कनभेडी—सञ्ज्ञा खी० [देश०] एक प्रकार का सन का पौधा जो अमेरिका से भारत में लाया गया है ।

विशेष—बवाई प्रात में इसकी खेती बहुत होती है । इसको 'वनभेड़ी' भी कहते हैं । यह अब प्रायः हर जगह होता है । इसके रेशे आठ नौ फुट लंबे और पटसन से कुछ घटिया होते हैं । इसके पत्ते, फल और फूल मिडी की तरह होते हैं ।

कनमनाना—किं० अ० [अनु०] १ सोने की अवस्था में व्याकुलता के कारण कुछ हिलना डुलना । २ किसी प्रकार की गति करना । विशेषतः कोई काम होता देखकर उसके विरुद्ध बहुत ही साधारण या थोड़ी चेष्टा करना । जैसे,—तुम्हारे सामने इतना बड़ा अनर्थ हो गया और तुम कनमाए तक नहीं ।

कनमेलिया—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कान + मेल + इया (प्रत्य०)] । वह जो लोगो के कान का मेल निकालता हो ।

कनय^(५)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कनक] सोना । स्वर्ण । उ०—वह जो मेघ, गढ़ लाग अकासा । विजुरी कनय कोट चढ़ पासा ।—जायसी (शब्द०) ।

कनयर^(५)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्णिकार, प्रा० कर्णिकार] दे० 'कर्नेर' ।

कनयून—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कण + ऊन] एक प्रकार का सफेद काश्मीरी चावल जो उत्तम समझा जाता है ।

कनरई—सञ्ज्ञा खी० [देश०] गुलू नाम का पेड़ जिससे कतीरा निकलता है । दे० 'गुलू' ।

कनरश्याम—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कान्हड़ा + श्याम] सपूर्ण जाति का एक शकर राग जिससे सब शुद्ध स्वर लगते हैं ।

कनरस—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कान + रस] १ सगीत का स्वाद । गाना बजाना सुनने का आनंद । २ गाना बजाना या वात सुनने का व्यसन । सगीत की रचि । उ०—कनरस वतरस और सबै रस भूँठहि डोलै हो ।—रं० बानी, पृ० ७० ।

कनरसिया—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कान + हिं० रसिया] गाना बजाना । सुनने का शौकीन । सगीतप्रिय । नादप्रिय ।

कनराना—किं० अ० [हिं०] अलग बिलग होना । उ०—हिंदू तुरक दोउ रह तूरी, फूटी अरु कनरई —कवीर ग्र०, पृ० १०६ ।

कनवई—सञ्ज्ञा खी० [सं० कण] सेर का सोलहवाँ भाग । छटाक । कनवज^(५), कनवज्ज—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कान्यकुब्ज] दे० 'कन्नौज' ।

उ०—(क) या सम दो सावैत बली, कनवज गये रिसाय ।—प० रा०, पृ० ७६ । (ख) रिधू गोद कनवज्ज रहायो । अय चमू सग दरसण आयो ।—रा० रू०, पृ० १२ ।

कनवाँ—खी० [हिं० काना] १ काना । २ एक आँख से देखनेवाला ।

यो०—कनवाँ घूँघटा—घूँघटा का वह वनाव जिसमें स्त्रियाँ पूरा मुँह छिपाए हुए हाथ की उँगलियों के प्रयोग द्वारा केवल एक आँख से देखने का काम लेती हैं ।

कनवाँसा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कन्या + वस, प्रा० नवासा] [खी० कनवाँसी] दौहित्र का पुत्र । नाती वा नवासे का पुत्र ।

कनवाँ—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० कनवाई] दे० 'कनवाई' ।

कनवारा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] पालना । उ०—पीछे तख्त पर लिया जच्चा कूँ विठाय वच्चे कूँ कनवारे में ल्याकर सुलाया ।—दक्खिनी०, पृ० ३४४ ।

कनवास—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कैनवस] एक मोटा कपड़ा जिससे नावों के पाल और जूते आदि बनते हैं । यह सन या पटसन से बनता है ।

कनवासर—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कैनवसर] प्रचारक । वह जो लोगो को पक्ष में करने के समझाने बुझाने का काम करे । वह जो 'वोट', 'गार्डर' आदि माँगने या सग्रह करने का काम करे । कैनवासिंग करनेवाला ।

कनवासिंग—सञ्ज्ञा खी० [अ० कैनवासिंग] १ वोटरी या मतदाताओं से वोट माँगना । वोट पाने के लिये उद्योग करना । लोगो को पक्ष में करने के लिये समझाना बुझाना । लोकमत को पक्ष में करने का उद्योग करना । जैसे,—(क) उनके आदमी जिले भर में उनके लिये बड़े जोरो से कनवासिंग कर रहे हैं, उन्हीं को अधिक 'वोट' मिलने की पूरी सम्भावना है । (ख) उन्हें सम्भाषित पद पर बँठाने के लिये खूब कनवासिंग हो रही है । २. किसी कपनी या फर्म के लिये माल आदि का

पतंग की डोरी को फँसाना जिसमें रगड़कर खाकर दोनों में से कोई पतंग कट जाय। कनकोवा बड़ाना = कनकोवे की डोर डीली करना जिससे वह हवा में और ऊपर या आगे जा सके। कनकोवे से दुमछल्ला बड़ा = मुख्य वस्तु की अपेक्षा उसके उपसर्ग या पुच्छले का बड़ा होना।

यौ०—कनकोवावाज = पतंग उड़ानेवाला। कनकोवेवाजी।

कनजुरा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कान + खजूँर = एक कीड़ा] लगभग एक बालिशत का एक जहरीला कीड़ा।

विशेष—इसके बहुत से पैर होते हैं। इसकी पीठ पर बहुत से गड़े पड़े रहते हैं। यह कई रंगों का होता है। लाल मुँहवाले बड़े और जहरीले होते हैं। कनखजुरा काटता भी है और शरीर में पैर गड़ाकर चिपट भी जाता है। इसे गोजर भी कहते हैं।

कनखा^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] १. कोपल। २. शाखा। डाल।

कनखा^२—वि० [हि० कानो, > कन + खंखा > खा] दे० 'कनखी'।

पेंचा ताना देखनेवाला। वरुदृष्टिवाला।

कनखियाँ—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कनखी] दे० 'कनखी'।

कनखियाना—क्रि० सं० [हि० कनखी] १. कनखी से देखना। तिरछी नजर से देखना। २. आँख से इशारा करना। कनखी मारना।

कनखी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कोन + खंख] १. पुतली को आँख के कोने पर ले जाकर ताकने की मुद्रा। इस प्रकार ताकने की क्रिया कि आँखों को मालूम न हो। दूसरों की दृष्टि बचाकर देखने का ढंग। उ०—(क) देह लग्यो ढिग गेहपति ठरु नेह निरवाहि। डीली अखियन ही इतँ कनखियन चाहि।—विहारी (शब्द०)। (ख) ललचौहँ, लजौहँ, हँसौहँ चित्त हित सौं चित चाय बढाय रही। कनखी करिके पग सो परिकँ फिर सुने निकेत मे जाय रही।—भिखारीदास (शब्द०)। २. आँख का इशारा।

क्रि० प्र०—देखना।—मारना।

मुहा०—कनखी मारना = (१) आँख से इशारा करना। (२)

आँख के इशारे से किसी को कोई काम करने से रोकना।

कनखियों लगना = छिपकर देखना। ताकना। भाँपना।

कनखुरा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] रीहा नाम की घास जो आसाम देश में बहुत होती है। बगाल में इसे 'करकुड़' भी कहते हैं।

कनखैया(कु)†—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कनखी] तिरछी नजर।

क्रि० प्र०—देखना।—लगना।—निहारना।—हेरना।

मुहा०—कनखियन लगना = छिपकर देखना। ताकना। भाँपना।

उ०—धुनि किकिन होति जगंगी सब सुक सारिका चोकि चित्तँ पारहँ। कनखियन लागि रही हैं परोसिन सो सिसकी सुनिकँ डरिहँ।—लाल (शब्द०)।

कनखोदनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कन (कान से बना) + खोदनी = खोदनेवाली] लोहे, ताँबे आदि के कड़े तार का बना हुआ एक उपकरण।

विशेष—इसका एक सिरा कुछ चिपटा करके मोड़ा हुआ होता है जिससे कान में की मेल निकाली जाती है। प्रायः हज्जाम लोग अपनी नहरनी का दूसरा सिरा भी इसी प्रकार का रखते हैं।

नगुज्झा†—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] चपेटा। थप्पड़।

कनगुरिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कानी + गुरी या गुरिया] कनिष्ठिका उँगली। सबसे छोटी उँगली। छिगुनिया। छिगुली।

उ०—अब जीवन के हे कपि आस न कोइ। कनगुरिया कै मुँदरी ककन होइ।—तुनसी (शब्द०)।

क. छेदन—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कान + छेदना] हिंदुओं का एक संस्कार जो प्रायः मूडन के साथ होता है और जिसके बच्चों का कान छेदा जाता है। कर्णवेध।

कनटका—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कन + टकटक] कृपण। कजूस। उ०—वाप कनटक, पूत हातिम।—कहावत।

कनटोप—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कन + टोप या तोपना] कानों को ढँकने वाली टोपी। उ०—उस टोपी के जिसके तीन भाग में उठे कनपटे जाडों में नीचे गिरकर कनटोप का काम देते हैं।—किन्नर०, पृ० ३६।

कनतूतुर—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा मेड़क जो बहुत जहरीला होता है और बहुत ऊँचा उछलता है।

कनधार(कु)†—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्णधार, प्रा० कर्णधार] मल्लाह। केवट। खेनेवाला। उ०—जकि होय ऐस कनधारा। तुरत वगि सो पावै पारा।—जायसी (शब्द०)।

कनन—वि० [सं०] एकाक्ष। काना। एक आँखवाला [की०]।

कनपटा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्ण + पट] १. दे० 'कनपटी'। २. कर्णपट। कर्णच्छद। उ०—उठे कनपटे जाडों में नीचे गिरकर कनटोप का काम देते हैं।—किन्नर, पृ० ३६।

कनपटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कर्ण + पट] कान और आँख के बीच का स्थान। उ०—विजय की कनपटी लाल हो गई।—ककाल, पृ० ७०।

कनपेडा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कान + पेड़ा—जड़ + आ (प्रत्यय)] कान का एक रोग जिसमें कान की जड़ के पास चिपटी गिल्टी निकल आती है। यह गिल्टी पक भी जाती है।

कनफटा^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कान + फटना] गोरखनाथ के अनुयायी योगी जो कानों को फटवाकर उनमें बिल्लोर, मिट्टी, लकड़ी आदि की मुद्राएँ पहनते हैं। उ०—(क) पंडित ज्ञानी चतुर जरै कनफटा उदासी।—पलटू०, भा० १, पृ० १०४। (ख) गोरखपथी कनफटे भी कहलाते हैं।—गोरख०, पृ० २४०।

कनफटा^२—वि० जिसका कान फटा हो।

कनफूँकवा†—वि० [हि० कन + फूँकवा] दे० 'कनफूँका'। उ०—और यही दशा केवल विशुद्ध दीक्षागुरु या कनफूँकवा ब्राह्मणों की है।—प्रेमधन०, भा० २, पृ० २२३।

कनफूँका^१—वि० [हि० कान + फूँकना] [स्त्री० कनफूँकी] १. कान फूँकनेवाला। दीक्षा देनेवाला। उ०—(क) कनफूँका गुरु जगत का राम मिलावन और।—चरण० वाणी, पृ० ११। (क) कनफूँकवा गुरु हृद् का वेहृद् का गुरु और। वेहृद् का गुरु हृद् मिले, लहे ठिकाना ठीर।—कवोर (शब्द०)। २. जिसका कान फूँका गया हो। जिसने दीक्षा ली हो। जैसे, कनफूँका चेला।

कनकटा—वि० [हि० कन + कटा] १. जिसका कान कटा हो।
बूचा।—वर्ण०, पृ० १। २. कान काट लेनेवाला।
जैसे,—वह कनकटा आया, नटखटी मत करो। (लडको को
डराने के लिये कहते हैं।)

कनकटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कन + कटी] कान के पीछे का
एक रोग।

विशेष—इसमें कान का पिछला भाग जड़ के निकट लाल होकर
कट जाता है और उसमें जलन और खुजली होती है।

कनकदंड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कनकदण्ड] राजच्छत्र [को०]।

कनकनदी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कनकनन्दिन्] एक प्रकार के
शिवगण।

कनकना^१—वि० [हि० कन + क-ना (प्रत्य०)] जरा से आघात
से टूट जानेवाला। 'चीमड़' का उल्टा। उ०—नेहिन के मन
। काँचसे अधिक कनकने आई। दृग ठोकर के लगत ही टूक टूक
हूँ जाँई —रसनिधि (शब्द०)।

कनकना^२—वि० [हि० कनकनाना] [वि० स्त्री० कनकनी] १ जिससे
कनकनाहट उत्पन्न हो। २ चुनचुनानेवाला। ३ अशुचिकर।
नागवार। ४ चिड़चिड़ा। थोड़ी बात पर चिढ़नेवाला।

कनकनाना^१—किं० अ० [हि० काँद, पुं० हि० फान] [सञ्ज्ञा कनक-
नाहट] १ सूरन, अरवी आदि वस्तुओं के स्पर्श से मुँह हाथ
आदि अंगों में एक प्रकार की वेदना या चुनचुनाहट प्रतीत
होना। चुनचुनाना। जैसे,—सूरन खाने से गला कनकनाना
है। २ चुनचुनाहट या कनकनाहट उत्पन्न करना। गला
काटना। जैसे,—वासुकी सूरन बहुत कनकनाना है। ३
अशुचिकर लगना। नागवार मालूम होना। जैसे,—हमारी
बातें तुम्हें बहुत कनकनानाती हैं।

कनकनाना^२—किं० अ० [हि० कान > कन] कान खड़ा करना।
चौकला होना। जैसे,—पंर की आहट पाते ही हिरन कनक-
नाकर खड़ा हुआ।

कनकनाना^३—किं० अ० [हि० गनगनाना] गनगनाना। रोमांचित
होना।

कनकनाहट—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कनकना + आहट (प्रत्य०)] कनकनाने
का भाव। कनकनी।

कनकनिकष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कसौटी [को०]।

कनकनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कनकना] कनकनाहट।

कनकपत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कान का एक आभूषण। झुमका।

कनकपीठ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सोने का पीड़ा। स्वर्णमय आसन [को०]।

कनकपुरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कनक + पुरी] रावण की लका जो सोने
की मानी गई है।

कनकप्रभ—वि० [सं०] सोने जैसी कातिवाला। सोने जैसी चमक दमक
से युक्त [को०]।

कनकप्रभा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] महाज्योतिष्मती लता।

कनकप्रसवा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्णकेतकी [को०]।

कनकफल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ धतूरे का फल। २. जमालगोटा।

कनकभग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कनकभङ्ग] स्वर्णखंड। सोने का टुकड़ा
या डला [को०]।

कनकरंभा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कनकरम्भा] स्वर्णकदली [को०]।

कनकरस—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ हरताल। २ तरल स्वर्ण [को०]।

कनकशक्ति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कानिकेय [को०]।

कनकसूत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सोने का हार। सोने का तार [को०]।

कनकसेन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक राजा जिन्होंने सन् २०० ई० में
वल्लभी सवत् चलाया था और जो मेवाड़ वंश के प्रतिष्ठाता
माने जाते हैं।

कनकस्थली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सोने की खान [को०]।

कनका—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कणिका] कण। कनिका। कनकी।

कनकाचल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. सोने का पर्वत। २. सुमेरुपर्वत।

कनकाध्यक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कोपाध्यक्ष। खजाची [को०]।

कनकनी—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] थोड़े की एक जाति। उ०—बले सहस्र
वैसक सुलतानी। तीख तुरग वाँक कनकानी।—जायसी
(शब्द०)।

विशेष—इस जाति के घोड़े डील डील में गधे से कुछ ही बड़े
पर बहुत कदमवाज और तेज होते हैं।

कनकाभ—वि० [सं०] सोने जैसी काति। उ०—कनकाभ धूल
भर जाएगी, ये रंग कभी उड़ जाएंगे।—नील०, पृ० ६०।

कनकालुका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्णघट। सोने का घड़ा [को०]।

कनकाह्वय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] धतूरा या धतूरे का पेड़ [को०]।

कनकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कणिक] १ चावनों के टूटे हुए छोटे छोटे
टुकड़े। २ छोटा कण।

कनकूटकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कुटकी] रेवद चीनी जाति का एक
एक प्रकार का वृक्ष।

विशेष—यह खसिया को पहाड़ी, पूर्वी बंगाल और लका आदि में
होता है। इसमें से एक प्रकार की राल निकलती है जो दवा
और रंगाई के काम में आती है।

कनकूट—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० कुरकुट।

कनकूत—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कण + हि० कूत] बेंटाई का एक ढग।

विशेष—इसमें खेत में खड़ी फसल की उपज का अनुमान किया
जाता है और किसान को उस अटकल के अनुसार उपज का
भाग या उसका मूल्य जमींदार को देना पड़ता है। यह कनकूत
या तो जमींदार स्वयं या उसका नौकर अथवा कोई तीसरा
करता है।

कनकौवा—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कनकौवा] दे० 'कनकौवा'।

कनकौवा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कन्ना + कौवा] १ कागज की बड़ी
पतंग। गुडड़ी। २ एक प्रकार की घास जो प्रायः मध्यभारत
और बुंदेलखंड में होती है।

किं० प्र०—उड़ाना।—काटना।—बढ़ाना।—लड़ाना।

मुहा०—कनकौवा काटना = किसी बड़ी हुई पतंग की डोरी को
अपनी बड़ी हुई पतंग की डोरी से रगड़कर काटना। कनकौवा
सजाना = किसी बड़ी हुई पतंग की डोरी में अपनी बड़ी हुई

कद्रू—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. पुराणानुसार कश्यप की एक स्त्री जिससे सर्प पंदा हुए थे। उ०—कद्रू विनतहि दीन्ह दुख तुम्हहि कोसिला देव।—मानस, २। १६२. सोमपात्र।—प्रा० भा० पृ०, पृ० १४१।

कद्रूक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वेल की पीठ पर उठा हुआ मासल भाग। डिल्ला [को०]।

कद्रव—वि [सं०]। बुराई करनेवाला। २. भ्रष्टवृत्ता। अस्पृश्यवृत्ता [को०]।

कद्रर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] छाछ। मठा [को०]।

कवीर—क्रि० वि० [हि० कव + ही (प्रत्य०)] कमी। किसी समय। उ०—(ख) नी के माहि कवी नहि परिहै।—घट०, पृ० २३६। (ख) नही इपक जिस वह बडा कूड है। कधी उससे मिल वसिया जाये ना।—दक्खिनी०, पृ० ७६।

यो०—कधी कवार = कभी कभी। भूले भटके।

कन^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कण + कन] १. किसी वस्तु का बहुत छोटा टुकड़ा। जरा। उ०—विधि केहि भति धरौ उर धीरा। सिरिस सुमन कन वेधिप्र हीरा।—मानस, १। २५८। अन्न का एक दाना। उ०—जैसे कन बिहीन लै धान। धमकि धमकि कूटत प्रायान।—नद० प्र०, पृ० २६६। ३. अन्न की किनकी। अनाज के दाने का टुकड़ा। ४. प्रसाद। जूठन। ५. भीख। मिशान्न। उ०—कन दैव्यो सौप्यो ससुर बहू योरहयी जान। रूप रहचटे लगि लग्यो मांगन सब जग आन।—विहारी (शब्द०)। ६. बूँद। कनरा। उ०—निज पद जलज विलोकि संक रत नयननि वारि रहत न एक छन। मनहु नील नीरज ससि समव रवि वियोग दोउ अवत सुधा कन।—तुलसी (शब्द०)। ७. चावलो की धूल। कना। जैसे,—इन चावलो में बहुत कन है। ८. बालू या रेत के कण। उ०—अब कन के माला कर अपने कोने गूँथ बनाई।—सूर (शब्द०)। ९. कनखे या कली का महीन अक्षर जो पहले रवे जैसा दिखाई पड़ता है। १०. शारीरिक शक्ति। हीर। सत। जैसे,—चार महीने की बीमारी से उनके शरीर में कन नहीं रहा।

कन^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कर्ण + हि० कान का समासगत रूप] कान। जैसे,—कनपेडा, कनपटी, कनछेदन, कनटोप।

कनखिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कनखियाँ] दे० 'कनखिया'। उ०—कन खिया से बड़े की तरह देखकर मुस्कराता था।—श्री निवासे प्र०, पृ० २६०।

कनखुरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कङ्गुल = हाथ + हि० ई (प्रत्य०)] दे० 'कनखुरी'। उ०—कन खुरी ऊपर तिन लागे।—कवीर सा०, पृ० १५६८।

कनई^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कण्ड या कन्दल] कनधा। नई शाखा। कल्ला। कोपल।

कनई^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कंदम, प्रा० इडम, कंदो(५), कांदो(५), कांदव(५), कंदई(५)] गीली मिट्टी। गिनावा। हीला। कोचड।

कनउंगली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कनीयान, हि० कानी + हि० उंगली] कानी उंगली। सबसे छोटी उंगली। कनिष्ठिका।

२-३१

कनउड़(५)—वि० [हि० कनीडा] दे० 'कनीडा'। उ०—हमें प्राजु लग कनउड काहु न कीन्हें। पारवती उप प्रेम मोन मोहि लीन्हें।—तुलसी (शब्द०)।

कनक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. सोना। सुवर्ण। स्वर्ण। उ०—अन्न कनक भाजन भरि जाना। दाइज दीन्ह न जाइ बखाना।—मानस १। १०१।

यो०—कनककदली। कनककार। कनकक्षार। कनकाचल। कनकवल्ली = स्वर्णलता या सोने की वेल। उ०—मानहु सूर कनकवल्ली जुरि, अमृत बूँद पवन मिस भारति।—सूर०, १०। १७५३। कनरेखा = मूर्त्य की आभा से प्रभाव या सायकाल आकाश में पड़नेवाली सुनहली रेखा। उ०—प्रथम कनकरेखा प्राची के माल पर।—अनामिका, पृ० ७७।

२. धतूरा। उ०—कनक कनक ते सो गुनी मादकता अधिकाय।—विहारी (शब्द०)। ३. पलास। टेसू। डाक। ४. नागकेसर। ५. खजूर। ६. छापय। छंद का एक भेद। ७. चाा(को०)। ८. कालीय नाम का वृक्ष (को०)।

कनक^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कणिक = गेहूँ का आटा] १. गेहूँ का आटा। कनिक। २. गेहूँ।

कनक^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० खुनुकी] नमी। आर्द्रता। शीतलता। उ०—रात भीज जाने से हवा में कनक ग्रा गई थी।—प्रमिश्रित, पृ० १२६।

कनककदली—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का केला।

कनककली—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कनक + हि० कली] कान में पहनने का एक गहना। लॉग। उ०—चीतनी सिरन, कनककली कानन कटि पट, पति सोहाए।—तुलसी (शब्द०)।

कनककशिपु(५), कनककसिपु(५)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कनक = हिरण्य + कशिपु] दे० 'हिरण्यकशिपु'। उ०—कनककसिपु अब हाटक लोचन। जगत विदित सुरपति-मद-मोचन।—मानस, १। १२२।

कनककूट—सञ्ज्ञा पुं० [म० कनक + कूट] सुमेरु पर्वत।

कनकक्षार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सोहागा।

कनकगिरि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सुमेरु पर्वत।

कनकशैल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कनकगिरि'।

कनकचपा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कनक + हि० चपा] मध्यम आकार का एक पेड़।

विशेष—इसकी छाल खाकी रंग की होती है। इसकी टहनियों और फल के दलों के नीचे की हरी कटोरी रोएदार होती है। इसके पत्ते बड़े और कुम्हड़े, नेनुए आदि की तरह होते हैं। फल इसके खूब सफेद और मीठी सुगंध के होते हैं। यह दलदलों में प्रायः होता है। वसंत और ग्रीष्म में फूलता है। इसकी लकड़ी के लिये मजबूत और अच्छे होते हैं। इसे कनियारी भी कहते हैं।

कनकजीरा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कनक + हि० जीरा] एक प्रकार का महीन धान जो अगहन में तैयार होता है। इसका चावल बहुत दिनों तक रह सकता है।

विशेष—यह वरमा और आसाम में बहुत होता है। इसकी लकड़ी जहाज बनाने में बहुत काम आती है। इसके पेड़ सड़को के किनारे लगाए जाते हैं।

३ काले और लाल रंग का एक हिरन जिसका स्थान महामारत आदि में कवोज देश लिखा गया है।

यी०—कदलीपत्र = केले का पत्ता।—वृ०, पृ० ३१।

कदली^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कदलिन्] हिरन का एक भेद [को०]।

कदलीक्षता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ परवन। पटोल। २ सुदर स्त्री। सुदरी [को०]।

कदा—क्रि० वि० [सं०] कब। किस समय।

मुहा०—यदा कदा = कभी कभी। अनिश्चित समय पर।

कदाकार—वि० [सं०] बुरे आकार का। बदसूरत।

कदाख्य—वि० [सं०] बदनाम।

कदाच०—क्रि० वि० [सं० कदाचन] शायद। कदाचित्। उ०—
कोन समी इन वातन को रण राम दहै घर में पटरानी। राम
के हाथ मरे दणकधर ते यह वात सु काहे ते जानी। और
कदाच वने यह भूति तो आज वने कहु कोन सी हानी। देह
छटे हू न सीय छठी चलिहै जग में युग चार कहानी।—
हनुमान (शब्द०)।

कदाचन—क्रि० वि० [सं०] १ किसी समय। कभी। २ शायद।

कदाचार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० कदाचारो] बुरी चाल। बुरा
आचरण। बदचलनी।

कदाचारी—वि० [सं० कदाचारिन्] बुरे आचरणवाला। कुचाली [को०]।

कदाचित्०—क्रि० वि० [सं० कदाचित्] १ 'कदाचित्'। उ०—जो
कदाचि भोहि मारहि तो पुनि होउ सनाय।—मानस, ४।७।

कदाचित्—क्रि० वि० [सं०] कभी। शायद कभी।

कदाचित्०—क्रि० वि० [सं० कदाचित्] कभी। शायद कभी। उ०—
अस संयोग ईस जब करई, तबहु कदाचित सो निर-
अरई।—मानस, ७।११७।

कदापि—क्रि० वि० [सं०] कभी भी। किसी समय। हर्गिज।

विशेष—इसका प्रयोग निषेधार्थक शब्द 'न' या 'नहीं' के साथ ही
होता है। जैसे,—ऐसा कदापि नहीं हो सकता।

कदामत—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० कदामत] १ प्राचीनता। पुरानापन।
३ प्राचीन काल। सनातन।

कदाहार^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दूषित या निष्कृष्ट भोजन [को०]।

कदाहार^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कदा + आहार] अनियमित समय का
भोजन। जब तब भोजन करना [को०]।

कदियक०—क्रि० वि० [हि०] 'दे' 'कमी'। उ०—कदियक आवैं कोटडी
छिपतो छिपतो छैल।—वाकीदास ग्र०, भा०, २, पृ० १३।

कदी^१—वि० [अ० कद = दृढ] हठी। जिद्दी।

कदी^२—क्रि० वि० [सं० कदा] कभी। उ०—करै कमाई जो कछू,
कदी न निष्फल जाय।—कवीर सा०, पृ० ४६६।

कदीम^१—वि० [अ० कदीम] पुराना। प्राचीन। पुरातन। उ०—
यकीन जय में वई वन्दा हूँ कदीम।—दक्खिनी०, पृ० २१।
कदीम^२—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] लोहे के छड़ जो जहाजों में बोझ इत्यादि
उठाने के काम में आते हैं।

कदीमी—वि० [अ० कदीम + फा० ई (प्रत्य०)] प्राचीन काल
का। पुराने समय का। पुरातन। उ०—खानेजाद कदीमी
कहियो तुहीं आसरो मेरो।—चरण० बानी०, पृ० ६१।

कदुष्ण—वि० [सं०] इतना गर्म कि जिसके छूने से त्वचा न जले।
थोड़ा गर्म। शीरगर्म। सीतगरम। कोसा।

कदूरत—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कुदूरत] रजिश। मनमोटाव। हीना।

क्रि० प्र०—आना।—रखना।—होना।

कदे०—अ० [हि०] कब। कभी। किस समय। उ०—
(क) जब मिलों राव हम्मीर तुम, बहुरि मैं हूँ है कदे।
—हम्मीर रा०, पृ० १३६। (ख) सेवक भाव कदे नहि चोरै।
—सुंदर ग्र०, भा० १, पृ० ६६।

कद्^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० कद्] वैनस्प। द्वेप। हठ। [को०]।

कद्^२—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कद] ३०, 'कद' ४। उ०—कारे कद् भारे
भीम दीरघ दतारे जौन, जलधर धारै ज्यो फुहारै फुफकारै ते।
—हम्मीर रा०, पृ० २३।

कद्दार—वि० [हि० कद + फा० आवर (प्रत्य०)] बड़े डोल डोल
का। लवा चौड़ा।

कद्दी०—वि० [हि० कदी] सं० 'कदी'-१।

कद्दी०—क्रि० वि० [हि० कदी] ३० 'कदी'-२।

कद्^३—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] १ लोकी। लोवा। घिया। गड़ेरू। उ०—
आजकल कद् (कण्ठीफन) के स्वर्णिम पुष्प भी चिले ये।—
किन्नर०, पृ० ७२। '२' लिग।—(वाजाल)।

कद्कश—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] लोहे पीतल आदि की छोटी चौकी
जिसमें ऐसे लवे छेद होते हैं, जिनका एक किनारा उठा और
दूसरा दबा होता है। इस पर कद् को रगड़कर रायते आदि के
लिये उसके महीन टुकड़े करते हैं।

कद् दाना—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] पेट के भीतर के छोटे छोटे सफेद कीड़े
जो मल के साथ गिरते हैं।

कद्द्र—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कद्द्र] १ गुण की परख। २ कीमत। ३
सत्कार। आदर।

कद्द्रदान—वि० [अ० कद्द्र + फा० दान (प्रत्य०)] गुणग्राहक।
गुण पहचाननेवाला।

कद्द्रदानी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० कद्द्र + फा० दानी (प्रत्य०)] गुण की
परख। गुणज्ञता। गुणग्राहकता। उ०—मोटे मक्षरो में
राजासाहब की कद्द्रदानी और उदारता की प्रशंसा के साथ
खिलाडी को विजयपात्र देने का समाचारपत्र था।—
अभिषेक, पृ० ६८।

कद्द्रु^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षपुत्री और कश्यप की पत्नी जो नागों की
माता थी [को०]।

कद्द्रु^२—वि० [पुं०] १ पीतवर्ण। २ बहुरंगी। ३ धब्बेदार [को०]।

कद्द्रुज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सर्प। नाग। साँप।

मुहा०—कदम पर कदम रखना=(१) ठीक पीछे चलना। पीछे लगना। (२) अनुकरण करना। नकल करना। पैरवी करना।

४. चलने में एक पैर से दूसरे पैर तक का अंतर। पैद। पग। फाव। जैसे,—वह जगह यहाँ से १०० कदम होगी। ५. छोड़े की एक चाल जिसमें केवल पैरों में गति होती है और पैर बिलकुल नपे हुए और थोड़ी थोड़ी दूर पर पड़ते हैं।

विशेष—इनमें सवार के बदन पर कुछ भी झटका नहीं पड़ता। कदम चलाते के लिये बाग खूब कड़ी रखनी पड़ती है।

क्रि० प्र०—निकलना=कदम की चाल सिखाना।

६ क्रम। उपक्रम। ७ किसी कार्य के निमित्त किया जानेवाला प्रयत्न। कार्यानाघन की चेष्टा। ८ काम। कार्य।

कदमचा—सज्ञा पुं० [प्र० कदम + चा० चा] १ पैर रखने का स्थान। २ पाखाने की वे खुदियाँ जिनपर पैर रखकर बैठते हैं। चुड़डी।

कदमवाज—वि० [प्र०] १ कदम की चाल चलनेवाला (घोड़ा)। २ बदचलन।

कदमबोमी—सज्ञा स्त्री० [प्र० कदम + फा० बोमी] कदम चूमना। चरण चूमना। समान का प्रदर्शन करना। समान या आदर करना।

कदमा—सज्ञा स्त्री० [हि० कदम] एक प्रकार की मिठाई जो कदव के फूल के आकार की बनती है।

कदर^१—सज्ञा पुं० [म०] १ लकड़ी चीरने का आरा। २ अंकुश। ३. वह गाँठ जो हाथ या पैर में काँटा या ककड़ी चुमने या अधिक रगड़ से पड़ जाती है और कड़ी होकर बढ़ती है। चाँई। टीकी। गोखरू। ४ सफेद खैर। ५ छेना (स्त्री०)। ६ एक पेड़ का नाम जो कभी कभी खदिर के स्थान पर यज्ञपूष के नाम माता या (स्त्री०)।

कदर^२—सज्ञा स्त्री० [प्र० कदर] १. मान। माया। मिकदार। जैसे,—तुम्हारे पास इस कदर रुपया है कि तुम एक अच्छा रोजगार पाया कर सकते हो। २. मान। प्रतिष्ठा। बढ़ाई। आदर उत्कार जैसे,—(क) उस दरबार में उनकी बड़ी कदर है। (ख) तुम्हारे यहाँ चीजों की कदर नहीं है।

यो०—कदरदान। बेकदर।

कदरई—सज्ञा स्त्री० [हि० कादर] कायरपन।

कदरज^१—सज्ञा पुं० [सं० कदर्य] एक प्रसिद्ध पापी। उ०—गणिका मर कदरज ते जा मँह प्रप न करन उबग्यो। तिनकी चरित पत्रिज जानि हरि निज हर भवन धज्यो।—तुलसी (गद०)।

कदरज^२—वि० दे० 'कदर्य'।

कदरदान—वि० [प्र० कदर + फा० दान] कदर करनेवाला। गुण-ब्राह्म। उ०—बराह्न की भीमाकाली वो द्वापरात से उमकी कदरदान है।—किन्नर०, पृ० ५४।

कदरदानो—सज्ञा स्त्री० [प्र० कदर + फा० दानो] गुणब्राह्मिका।

कदरमत्त—सज्ञा स्त्री० [सं० कदम + हि० मत (प्रत्यय)] मारपीट। लड़ाई। उ०—पापहु करहु कदरमत्त राजू। पड़हि बजान नहीं तह राजू।—जायसी (गद०)

कदराई—सज्ञा स्त्री० [हि० कादर + ई० (प्रत्यय)] कायरपन। मोहता। कायरता। उ०—मृगुपति केरि गयं गरगारै। सुर मुनि बरन केरि कदराई।—तुलसी (गद०)।

कदराना—वि० प्र० [हि० कादर ने नाम०] कायर होना। डरना। भयभीत होना। कवियाना। उ०—(क) समस्त प्रसिद्ध राम प्रभुताई। करत कथा मन प्रति कदराई।—तुलसी (गद०)। (ख) तात प्रेमवन जनि कदराइ। समुझि हृदय परिगुमान उठाहू।—तुलसी (गद०)।

कदरो—सज्ञा स्त्री० [म० कद = घुरा + घ = शब्द] एक पत्नी जो डीलचौन में मैना के बगल होता है। उ०—(घ) घनी परेशा पाइडक हेरी। कोहू कदरो उतर बगेरी।—जायसी (गद०)। (ख) सब छोड़ो पात नूनी ओ कदरो न जान की। पारो कुछ मपनी फिक करो घाट दाल की।—नबीर (गद०)।

कदर्य^१—सज्ञा पुं० [सं०] निकम्मा वस्तु। कूड़ा कचरा।

कदर्य^२—वि० १ कुत्सित। बुरा। २ निष्प्रयोजन (स्त्री०)।

कदर्यन—सज्ञा पुं० [म०] १. कष्ट या पीडा देना। सताना। २. तिरस्कार। अपमान। ३. दुर्गति। दुर्दशा (स्त्री०)।

कदर्यना—सज्ञा स्त्री० [म०] [वि० कदर्यत] १ दुर्गति। दुर्दशा। बुरी दशा। उ०—(क) हा हा करे तुलसी दया निजान राम ऐसी काशी की कदर्यना कथा वलिकाल की।—तुलसी (गद०)। (ख) नरपिशाचों का नाग, दमन और उत्पीड़न देखकर समाज हर्षविह्वल हो जाता है और वही महात्माओं की कदर्यना देखकर कनेजा याम नेता है —रस क०, पृ० २६। २ कष्ट देना। सताना (स्त्री०)। ३ अपमान। तिरस्कार। अवहेलना। (स्त्री०)।

कदर्यत—वि० [म०] १. जिसकी बुरी दशा की गई हो। दुर्गतिप्राप्त। २ जिसकी विडवता की गई हो। जिसकी खूब गति बनाई गई हो। जैसे—वे उस ममा में खूब कदर्यत किए गए। ३ पीड़ित। संतप्त (स्त्री०)।

कदर्य^३—वि० [सज्ञा कदर्यना] जो स्वयं कष्ट उठाकर और अपने परिवार को कष्ट देकर धन दकृष्टा करे। कतून। मयचोचूस।

कदर्य^४—सज्ञा पुं० [म०] वह कंजूस राजा जो कोत दकृष्टा करने के पीछे प्रजा पर अत्याचार करे और राज्य की आमदनी राज्य की सलाई में न खर्च करे। (स्त्री०)।

कदर्यता—सज्ञा स्त्री० [म०] कंजूसी। नृपपन।

कदल—सज्ञा पुं० [म०] कदली वृक्ष। केना (स्त्री०)।

कदलक—सज्ञा पुं० [म०] २० कदर (स्त्री०)।

कदला—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ पृथिवी। २. शिविका। ३. गान्धर्वि (स्त्री०)।

कदलिका—सज्ञा स्त्री० [म०] १. ऋद्धा। धरती। पताका। २. कदव एक वृक्ष (स्त्री०)।

कदली^१—सज्ञा स्त्री० [म०] १ केना। उ०—उन पनेउ कदली खिनि कापी। सुबरी दशन जौन उब बानी।—मानव ३। २०। २. एक पेड़।

विशेष—यह घनाश्री, कनाड़ा, टोल, अभीरी, मधुमाघ और केदार को मिलाकर बनता है। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

कदवद—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कदम्बद] सरसो के बीज का पौधा [को०]।

कदवपुष्पी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कदम्बपुष्पी] गोरखमुड़ी [को०]।

कदवब्रह्ममण्डल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कदम्बब्रह्ममण्डल] ग्रहण का मण्डल [को०]।

कदवयुद्ध—सञ्ज्ञा पुं० [कदम्बयुद्ध] एक प्रकार की रतिक्रीड़ा [को०]।

कदवरि(७), कदवरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कदवरी'। उ०—विना कदवरि के लिए, आस न मन सो जात।—इन्द्रा०, पृ० ३४।

कदववायु—सञ्ज्ञा पुं० [कदम्बवायु] सुगन्धित पवन [को०]।

कदश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बुरा या निकृष्ट अश।

कद^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० कद्] [वि० कद्दी] १ इर्ष्या। द्वेष। शत्रुता। जैसे,—वह न जाने क्यों, हमसे कद रखता है। २. हठ। जिद। जैसे,—उनको इस बात की कद हो गई है।

कद^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० क=जल + द=व्याप्ति] बादल। मेघ।

कद^३—वि० [सं०] १ जल देनेवाला। २ आनन्द या हर्ष देनेवाला [को०]।

कद^४—अव्य० [सं० कदा] क। किस दिन। किस समय। उ०—पुरुष जनम तू कद पामेला, गुण कद हरि रा जासी।—रघु० ६०, पृ० १६।

कद^५—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कद] डील। ऊँचाई। उ०—वामन वामन मृदु कुमुद गनै अजन से जैतकर अजन के कद हैं।—मतिराम अ० पृ० ३५४।

यो०—कद्देआदम=मानव शरीर के बराबर ऊँचा।

विशेष—इसका प्रयोग साधारणतः प्राणियों और पौधों के लिये ही होता है।

कदक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ डेरा। २ चंदवा। चाँदनी।

कदक्षर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कद + क्षर] १ कुत्सित वर्ण। २. बुरा लिखावट या लिपि [को०]।

कदधव(७)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कदध्वन्] छोटा मार्ग। कुश। बुरा रास्ता।

कदध्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कदध्वन्] खराब मार्ग या पथ [को०]।

कदन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ मरण। विनाश। २. युद्ध। संग्राम। जैसे, कदनप्रिय। ३. हिंसा। पाप। ४। दुःख। उ०—कदन विदन अकदन तुदा गहन वृजन क्लेश आहि। दुख जनि दे अब जान दे बैठी कत अनखाहि।—नददास (शब्द०)। ५. मारनेवाला। घातक।

विशेष—इस अर्थ में यह योगिक या समस्त पद के अंत में आता है। जैसे, मदनकदन कमकदन।

६ छुरिका। छुरी [को०]।

कदन्न—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह अन्न जिसका खाना शास्त्रों में वर्जित या निषिद्ध है अथवा जिसका खाना वैदिक में अप्रथ्य या स्वास्थ्य के लिये हानिकारक माना गया है। कुत्सित अन्न। बुरा अन्न। कुअन्न। मोटा अन्न। जैसे,—कोदो, केसारी, मसूर।

यो०—कदन्नभुक्। कदन्नभोजी।

कदपत्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कद + पत्य] कुपुत्र। कपूत [को०]।

कदवाँ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कदम्ब] दे० 'कदव'।

कदम^१—सञ्ज्ञा पुं० [कदम्ब] १ एक सदावहार पेड़।

विशेष—इसके पत्ते महुए के से पर उससे छोटे और चमकीले होते हैं। इसमें बरसात में गोल गोल लड्डू के से पीले फूल लगते हैं। पीले पीले किरनों के झुंड जाने पर गोल गोल हरे फल रह जाते हैं जो पकने पर कुछ कुछ लाल हो जाते हैं। ये फल स्वाद में खटमीठे होते हैं और चटनी अथवा बनाने के काम में आते हैं। इसकी लकड़ी की नाव तथा और बहुत सी चीजें बनती हैं। प्राचीन काल में इसके फलों से एक प्रकार की मदिरा बनती थी, जिसे कदवरी कहते थे। श्रीकृष्ण को यह पेड़ बहुत प्रिय था। वैद्यक में कदम को शीतल, भारी, विरेचक, सूखा, तथा कफ और वायु को बढ़ानेवाला कहा है। प०—नीप। प्रियक। हरीप्रिय। पावृषेय्य। वृत्तपुष्प। सुरभि। ललना। प्रिया। कणपूरक। महाद्वय।

यो०—कदमखडिका=कदम वाटिका। वह स्थान जहाँ कदम के वृक्ष अधिक हो। उ०—(क) कहूँ कुटी कहुँ सघन कुटी कहुँ कदम खडिका छाई।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ४०८। (ख) सो सेवा सो पदोचि गोविन्द स्वामी की कदम खडी में जाते।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ६०।

२ एक घास का नाम।

कदम^२—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कदम] १ पैर। पाँव। पग।

मुहा०—कदम उलड़ना=भाग जाना। हट जाना। कदम उलड़ना=(१) तेज चलना। जैसे,—कदम उठाओ, दूर चचना है। (२) उन्नति करना। कदम उठाकर तेज चलना=तेज या शीघ्र चलना। कदम चूमना=अत्यंत आदर करना। जैसे,—अगर तुम यह काम कर दो तो तुम्हारे कदम चूम लूँ। उ०—सब वजादार तेरे आके कदम चूमते हैं।—श्यामा०, पृ० १०२। कदम छूना=(१) पैर पकड़ना। दबवत करना। प्रणाम करना। (२) शपथ खाना। जैसे,—आप के कदम छू कर कहता हूँ, मेरा इससे कोई सबंध नहीं है। (३) विनती करना। खुशामद करना। जैसे,—वह बार बार कदम छूने लगा, तब मैंने उसे छोड़ दिया। (४) बढ़ा या गुरु मानना। गुरु बनाना। कदम डगमगाना या लड्डूखडाना=ढावाँडोल होना। ढीला पडना। शिथिल होना। मगर यहाँ पर हमारा भी कदम डगमगाने लगा।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ६०। कदम पकड़ना या लेना=(१) पैर पकड़ना। प्रणाम करना। आदर से पैर लगाना। (२) बढ़ा या गुरु मानना। आदर करना। (३) विनती करना। खुशामद करना। कदम बढ़ाना या कदम आगे बढ़ाना=(१) तेज चलना। (२) उन्नति करना। कदम भारना=(१) दौड़ धूप करना। (२) यत्न या उपाय करना। कदम रखना=प्रवेश करना। दाखिल होना। पैर रखना।

२ पदचिह्न। चरणचिह्न।

मुहा०—कदम ब कदम चलना=(१) साथ साथ चलना। (२) अनुकरण करना। कदम भरना=चलना। डग बढ़ावा। ३. धूल वा कीचड़ में बना हुआ पैर का चिह्न।

(१) कथा होना । (२) कथा प्रारंभ होना । कथा वंछना = कथा कहने के लिये किसी व्यास को नियुक्त करना ।

यौ०—कथामुख । कथारंभ । कथोदय । कथोद्घात = कथा का प्रारंभिक भाग । कथापीठ = कथा का मुख्य भाग ।

३ उपन्यास का एक भेद ।

विशेष—इसमें पूर्वपीठिका और उत्तरपीठिका होती है । पूर्वपीठिका में एक वक्ता और एक या अनेक श्रोता बनाए जाते हैं । श्रोता की ओर से ऐसा उत्साह दिखनाया जाता है कि पढ़नेवालों को भी उत्साह होता है । वक्ता के मुँह से सारी कहानी कहलाई जाती है । कथा की समाप्ति में उत्तरपीठिका होती है । इसमें वक्ता और श्रोता का उठ जाना आदि उत्तरदशा दिखाई जाती है ।

४. वात । चर्चा । जिज्ञासा ।

क्रि० प्र०—उठना ।—चलना ।—चलाना ।

५. समाचार । हाल । ६. वादविवाद । कहासुनी । झगडा ।

मुहा०—कथा चुकाना = (१) झगडा मिटाना । मामला खतम करना । (२) काम तमाम करना । मार डालना । उ०—मेघनाद रिस आई, मंत्र पढ़ि कै चलाइयो वारु ही में नाग फाँस बड़ी दुख दाइनी । काहे की लराई, उन कथा की चुकाई जैसे पारा मारि डारत है पल में रसाइनी ।—हनुमान (शब्द०) ।

कथाकार—संज्ञा पु० [सं०] कथावाचक । उ०—अज मे अब भी जो कथाकार अर्थात् श्रीमद्भागवत आदि की कथा बाँचने आते हैं ।—पोद्दार अभि० ७०, ४८१ ।

कथाकोविद—वि० [सं०] कथा कहने में कुशल । उ०—कथाकोविद ग्रामवृद्धों में उसी प्रकार के माधुर्य का अनुभव किया था ।—रत्न०, पृ० १३ ।

कथाकोशल—संज्ञा पु० [सं०] १ कथा कहने की प्रवीणता । चौसठ कलाओं में एक कला । उ०—कथाकोशल, सूचीकर्म, शास्त्र-विद्या, एवविध चतुःपट्टि कला कलाकुशल नायक देपु ।—वरुण०, पृ० २१ । २ कहानी रचना का कोशल ।

कथानक—संज्ञा पु० [सं०] १. कथा । २. छोटी कथा । बड़ी कथा का सारांश । कहानी । किस्सा ।

कथानिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपन्यास का एक भेद ।

विशेष—इसमें सब लक्षण कथोपन्यास ही के होते हैं, पर अनेक पात्रों की बातचीत से प्रधान कहानी कहलाई जाती है ।

कथापीठ—संज्ञा पु० [सं०] कथा की प्रस्तावना ।

कथाप्रवच—संज्ञा पु० [सं० कथाप्रवच] कथा की गठन या वद्विष । उ०—सो सब हेतु कहव मैं गई । कथाप्रबंध विचित्र बनाई ।—मानस, १, ३३ ।

कथाप्रसंग—संज्ञा पु० [सं० कथाप्रसङ्ग] १ अनेक प्रकार की बातचीत । उ०—तब नारद मवही समुझावा । पूरव कथा प्रसंग सुनावा ।—मानस, १, १६८ । २ बातचीत का क्रम । ३ विपबंध । विपचिकित्सक । संपेरा । मदारी ।

कथामुल—संज्ञा पु० [सं०] आचरण या कथाप्रवच की प्रस्तावना ।

कथावस्तु—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाटक या आख्यान आदि का कथन या कहानी । वि० दे० 'वस्तु'—५ ।

कथावार्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनेक प्रकार की बातचीत ।

कथिक^१—संज्ञा पु० [हि० कथक] दे० 'कथक' ।

कथिक^२—वि० [सं०] १. कथन या वर्णन करनेवाला । २ कहानी कहनेवाला [को०] ।

कथित^१—वि० [सं०] १ कहा हुआ । २. अपुष्ट कथन ।

कथित^२—संज्ञा पु० [सं०] मृदग के वारह प्रबंधों में एक प्रबंध ।

कथी^७—संज्ञा स्त्री० [सं० कथित] कथनी ।

कथीर—संज्ञा पु० [सं० कस्तूर, पा० कथीर] रांफा । हिरनखुरी रांफा । उ०—(क) कचन केवल हरिमजन दूजो कथा कथीर ।—कवीर (शब्द०) । (ख) अब तो मैं ऐसा भया निरमोलिक निज नाम । पहले काच कथीर था फिरता ठामहि ठाम ।—कवीर (शब्द०) । (ग) जहँ वह वीरज परयो सुनीजै । रेम भई तह की सब चीजें । ता आगे की चीजें रूपो । होत भई पुनि लोह अनूपो । जहँ वह वीरज कोमल छायो । तहँ कवीर भो रांग सोहायो ।—पद्माकर (शब्द०) ।

कथील—संज्ञा पु० [हि० कथीर] दे० 'कथीर' ।

कथीला—संज्ञा पु० [हि० कथीर] दे० 'कथील' ।

कथोद्घात—संज्ञा पु० [मं०] १. प्रस्तावना । कथाप्रारंभ । २ (नाटक में) सूत्रधार की वात, अथवा उसके मर्म को लेकर पहले पात्र का रंगभूमि में प्रवेश और अभिनय का आरंभ । जैसे,—रत्नावली में सूत्रधार की वात को दोहराते हुए योगधरायण का प्रवेश । सत्य हरिश्चंद्र में सूत्रधार के 'जो गुन नृप हरिचंद्र में' इस वाक्य को सुनकर और उसके अर्थ को ग्रहण करके इंद्र का 'यहाँ सत्य भय एक के' इत्यादि कहते हुए रंगभूमि में प्रवेश ।

कथोपकथन—संज्ञा पु० [सं०] १. बातचीत । गुप्तगू । २. वाद-विवाद ।

कथा^७—संज्ञा स्त्री० [सं० कथा] कथा । वार्ता । कहानी । उ०—प्रादि अत जिस कथा अहै । लिखि मापा चौपाई कहै ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २४ ।

कथ्य—वि० [सं०] कहने योग्य । कथनीय । जो कहना उचित हो ।

कदंब—संज्ञा पु० [सं० कदम्ब] १. एक प्रसिद्ध वृक्ष । कदम । २. समूह । ढेर । झुंड । उ०—(क) यहि विधि करहु उपाय कदंबा । फिरहि तो होय प्राण अवलया ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) सोहत हार हिये हीरन को हिमकर सरिस विशाला । अंबरेख कोन्तुम कदंब छवि पद प्रलंब वनमाला ।—रघुराज (शब्द०) । ३. एक प्रकार का वृक्ष । देवताडक (को०) । ४. सरसों का पौधा (को०) । ५. घूलि (को०) । ६. सुगंध (को०) ।

कदंबक—संज्ञा पु० [सं० कदम्बक] दे० 'कदंब' ।

कदंबकोरक न्याय—संज्ञा पु० [सं० कदम्बकोरक न्याय] दे० 'न्याय' [को०] ।

कदंबनट—संज्ञा पु० [सं० कदम्बनट] एक राग ।

कथ^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कथा] कथा । वात । चर्चा । उ०—तब बोल्यो
दुजराज विचार । सुनि ससिवृत कथ इच्छ सार ।—पृ०
रा०, २५ । ७६ ।

कथई—वि० [हि० कथा + ई (प्रत्य०)] खर के रंग का ।
खरा (रंग) ।

विशेष—यह रंग हरें, कसीस, गेरू, कथे और चूने से बनता है ।
इसमें खटाई या फिटकरी का घोर नहीं दिया जाता ।

कथक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कथक] १. जाति जिसका काम गाना, बजाना
और नाचना है । २. नृत्य की एक शैली । उ०—कथक हो
या कथकली या बालडास ।—कुरुर०, पृ० १० ।

कथन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] डींग मारना [को०] ।

कथना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] डींग [को०] ।

कथा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कथा] १. खर के पेड़ की लकड़ियों को
उबालकर निकाला हुआ रस जिसे जमाकर कतरे काटते हैं ।
ये कतरे पान में खाए जाते हैं । वि० दे० खर । २. खर का
पेड़ । कथकीकर ।

कथित—वि० [सं०] डींग में कथित [को०] ।

कथितव्य—वि० [सं०] अभिमान के साथ कथन योग्य [को०] ।

कथल—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कथल] दे० 'कतल' ।

कथल-ग्राम—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कथल ग्राम] सब लोगों की वह हत्या जो
बिना किसी छोटे वड़े या अपराधी का विचार किए की जाय ।

कथवर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कथा [को०] ।

कथ—अव्य० [सं० कथम्] १. किस रूप में । कैसे । किस प्रकार ।
कहाँ से । २. साश्चर्य प्रश्न में प्रयुक्त [को०] ।

कथकथित—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कथकथित] प्रश्नकर्ता । अन्वेषक व्यक्ति ।
कथचित्—क्रि० वि० [सं० कथञ्चित्] शायद ।

कथभूत—वि० [सं० कथम्भूत] कैसा । किस प्रकार का [को०] ।

कथभूती—वि० [सं० कथम्भूत + ई (प्रत्य०)] कथभूत से संबन्ध
रखनेवाला । उ०—यह, किसी संस्कृत में लेख का कथभूती
अनुवाद न हो ।—इतिहास०, पृ० ४०४ ।

कथ^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कथा] कथा । खर ।

कथ^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कथा] दे० 'कथा' । उ०—एक दिवस
कवि चंद कथ, कही अप्पनै भोन ।—पृ० रा०, १ । ७६२ ।

कथक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कथा कहनेवाला । किस्सा कहनेवाला ।
२. पुराण बान्छनेवाला । पौराणिक । ३. नाटक की कथा का
वर्णन करनेवाला । एक पात्र या नट । ५. दे० 'कथक' ।
उ०—चैरगिया नाला जुलुम जोर । नौ कथक नचावत तीन
चोर ।—हिंदी प्र०, पृ० ५ प्रतिवादी (को०) । ६. मुख्य
अभिनेता । सूत्रधार (को०) ।

कथकली—सञ्ज्ञा पुं० [मन्०] दक्षिण भारत की एक भावनृत्य शैली ।
विशेष—इसमें पार्श्व में कथा गाई जाती है जिसे नर्तक मुद्राओं
द्वारा अभिव्यक्त करता है ।

कथकीकर—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कथा + कीकर] कीकर की जाति का वह
वृक्ष जिसकी छाल से कथा या खर निकलता है । खर का पेड़ ।

कथकड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कथा + कड (प्रत्य०)] बहुत कथा कहनेवाला ।

कथडी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कथरी] दे० 'कथरी' । उ०—खिसक गई कथों
की कथडी, ठिठुर रहा अब सर्दी से तन ।—ग्राम्या, पृ० ६६ ।

कथन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कहना । बखाना । वात । उक्ति ।

यौ०—कथनानुसार ।

२. उपन्यास का एक भेद ।

विशेष—इसमें पूर्वपीठिका और उत्तरपीठिका नहीं होती, पर
कहनेवाले के नाम आदि का पता प्रसंग से चल जाता है ।
कहनेवाला अचानक कथा प्रारंभ करता है और कहनेवाले की
वक्तृता की समाप्ति के साथ ग्रंथ समाप्त हो जाता है ।

कथना—क्रि० सं० [सं० कथन] १. रचकर वात करना । उ०—
जिमि जिमी तापस कथइ उदासा । तिमि तिमि नृपहि उपज
विस्वासा ।—तुलसी (शब्द०) । २. कहना । बोलना ।
उ०—(क) वेणु बजाय रास वन कीन्हो अति आनंद दगसायो ।
लीला कथत सहसमुख तोऊ अजहूँ पार न पायो ।—भूर
(शब्द०) । (ख) उ० कथा, कवि चंद सु उष्म थोर ।
विराजत पतिय कतिय चोर ।—पृ० रा०, २१ । ३६ ।
३. निंदा करना । बुराई करना ।

कथनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कथन + ई (प्रत्य०)] १. वात । कथन ।
कहना । उ०—(क) कथनी थोथी जगत में करनी उत्तम
सार । कहै कवीर करनी मली उतरै भव जग पार ।—कवीर
(शब्द०) । (ख) करनी है पातर कथनी है दोना ।—धरम०,
पृ० ६५ । २. हुज्जत । वकवाद ।

क्रि० प्र०—कथना ।—करना ।

कथनीय—वि० [सं०] १. कहने योग्य । वर्णनीय । उ०—रामहि
चितव भाव जेहि सीया । सो सनेह सुख नहि कथनीया ।—
तुलसी (शब्द०) । २. निंदनीय । बुरा ।

कथमपि—क्रि० वि० [सं० कथम् + अपि] किसी प्रकार । जैसे तैसे ।
बहुत कठिनता से । उ०—वैष्णव ग्रंथों में उपलब्ध
उल्लेख, उनके जीवनकृत विषयक हमारी जिज्ञासा को
कथमपि शांत नहीं करते ।—पोद्दार अभि० प्र०, पृ० १९७ ।

कथरी—सञ्ज्ञा पुं० [पुं० कथा + री (प्रत्य०)] वह विछावन या
ओढ़ना जो पुराने चिथड़ों को जोड़ जोड़कर सीने से बनता है ।
गुदडी । उ०—पातक पीन कुदारिद दीन मलीन घरे कथरी
करवा है ।—तुलसी (शब्द०) ।

कथातर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कथान्तर] दूसरी कथा । किसी कथा के
अंतर्गत अन्य गौण कथा ।

कथा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह जो कही जाय । वात ।

विशेष—न्याय में यथार्थ निश्चय या दिपक्षी के पराजय के लिये
जो वात कही जाय । इसके तीन भेद हैं—वाद, जल्प, वितंडा ।
यौ०—कथोपकथन = परस्पर बातचीत ।

२. धर्मविषयक व्याख्यान या आख्यान । उ०—हरि हर कथा
विराजति वेनी ।—मानस, १ । २ ।

क्रि० प्र०—करना ।—कहना ।—बांधना ।—सुनना ।—सुनाना ।
—होना । उ०—पहिले ताकर नावें ली कथा करौ आगाहि ।
जायसी प्र०, पृ० १ ।

मुहा०—कथा उठना = कथा बढ़ या समाप्त होना । कथा बंधना =

परमाने हैं। ब्रह्मनन्दमय ते अनामय अमय अव तेरे पद मेरे
अवलंब ठहराने हैं।—चरण (शब्द०)।

कतिक(५)।—क्रि० [सं० कति + एक अयवा सं० कति + क] (प्रत्य०)।
१ कितना। कितेक। किस कदर। दे० 'कितक'। २. थोड़ा।
३ बहुत। ज्यादा। अनेक।

कतिधा^२—क्रि० वि० [सं०] अनेक प्रकार का। बहुत भाँति का। कई
किस्म का।

कतिधा^३—क्रि० वि० कई तरह से। अनेक प्रकार से। बहुत भाँति से।
कतिपय—वि० [सं०] १ कितने ही। कई एक। २. कुछ थोड़े से।
विशेष—संस्कृत में यह सर्वनाम माना गया है। हिंदी में यह
सद्व्यासूचक विशेषण है।

कतिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] १ कैंची। दे० 'काती'। २ छोटी
तलवार। कत्ती। उ०—(क) वे पतियाँ लिखि भेजति याँ, मन
की छतिया कतिया सी खमी है।—नट०, पृ० ४१। (ख) मैं
सुणी सजन की वतियाँ। मेरे चनी कलेजे कतियाँ।—राम०
धर्म०, पृ० ३१।

कती(५)।—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० काती] दे० 'कतिया'। उ०—स्वर्ण के
खड्ग, पडे, हत्य पग। कती धार कैंसी, जरी दत जैंसी।
—रा० ह०, पृ० १६१।

कतीव(५)।—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कतेव'। उ०—बहुतक देखा पीर
ओलिया पडे कतीव पुराना।—कवीर ग्र०, पृ० ३३८।

कतीरा—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] गुलू नामक वृक्ष का गोंद।
विशेष—यह खूब सफेद होता है और पानी में घुलता नहीं और
भोसो की तरह इसमें लसीलापन नहीं होता। यह बहुत ठंडा
समझा जाता है और रक्तविकार तथा घातुविकार के रोगों में
दिया जाता है। बोटल में बंद करके रखने से इसमें सिरके की
सी गंध आ जाती है।

कतील—वि० [अ० कतील] कत्ल किया गया। निहत्त। उ०—अब
सुन हाल असह्यवे फील। किस तरह किया हक उनको
कतील।—दक्खिनी०, पृ० २२०।

कतूहल(५)।—सञ्ज्ञा पुं० [म० कुतूहल] दे० 'कुतूहल'। उ०—डोल उ
मारु एकठा करइ कतूहल केल।—डोला०, दू० ५५५।

कतेक(५)।—वि० [सं० कति + एक] १ कितने। कुछ। २ अनेक।
थोड़े से।

कतेव(५)।—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० कतिव] १ पुस्तक। किताब। २ धर्म
ग्रंथ। उ०—वेद कतेव पार नहि पावत, कहन सुनन सो
न्यारा।—कवीर वा०, पृ० ४७। (ख) कुरान कतेवा इलस
सब पढ़ि करि पूरा होइ। दादू०, पृ० ४७।

कतोहर(५)।—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कुतूहल या कौतूहल] दे० 'कुतूहल'। उ०—
चल्यो घरम तब मानसरोवर। बहुत हरप चित करत कतोहर।
—कवीर सा०, पृ० १२४।

कतीनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कतावनी] १. कातने की क्रिया या भाव।
२. कातने की मजदूरी। ३. किसी काम में अनावश्यक रूप से
बहुत अधिक मिलव करना। ४. निरर्थक और तुच्छ काम।

कतई—वि० [अ० कतई] १. दे० 'कतई'। २. बदमाश।

कत्तर—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] त्रिघो की चोटी बांधने की डोरी।

कत्तरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कर्तरी] कैंची।—देशी०, पृ० ३०।
कत्तल—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कतरा] १ कटा हुआ टुकड़ा। २. पत्थर का
छोटा टुकड़ा जो गढ़ाई में निकलता है।

यो०—कत्तल का बघार = किसी तरह पदार्थ को पत्थर-या ईंट के
तपाए हुए टुकड़े से छोकना।

कत्ता—सञ्ज्ञा पुं० [सं०, या कर्तु का बृहदायक रूप] १ वेंसफोरो का
एक औजार जिससे वे लोग बाँस बगैरह काटते या चीरते हैं।
बाँका। बाँक। २. छोटी टेढ़ी तलवार उ०—चौकत चकत्ता
जाके कत्ता के कराकनि सो सेल की सराकनि न कोऊ जुरे
जंग है।—सूदन (शब्द०)। ३. (चोपड़ का) पासा। कावर्तन।

कत्तार(५)।—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० कत्तार] दे० 'कत्तार'। उ०—संपच
दिन्न अति उंट अच्छ। कत्तार भार फवकार कच्छ।—पृ०
२०, ३। ११।

कत्तारी—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] मझोले आकार का एक प्रकार का सदा-
बहार वृक्ष। कत्तावा।

विशेष—यह हिमालय में हजारों से कुमाऊँ तक, ५००० फुट की
ऊँचाई तक, और कहीं कहीं छोटा नागपुर और आसाम में
भी पाया जाता है। इसकी टहनियाँ बहुत लची और कोमल
होती हैं और इसके पत्ते प्रायः एक बालिशत लंबे होते हैं। इसके
फल, जो जाड़े में फूलते हैं, मधुमक्खियों के लिये बहुत
आकर्षक होते हैं।

कत्ताल—वि० [अ० कत्ताल] १ बहुत अधिक कत्तल करनेवाला।
जल्दाद। उ०—रही ताबो ताकत न कत्ताल को। चला भाग
तब काल पत्ताल को।—कवीर मं०, पृ० ६८। २ माथूक।
प्रेमपात्र [क्रि०]।

कत्तावा(५)।—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कत्तारी'।

कत्तिन—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कातना] कातने का काम करनेवाली।
उ०—चाची जैसी कत्तिनो के सूत को कभी तो एक सी दस
नवर का करार देते हैं।—रति०, पृ० ६६।

कत्ती—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कर्तरी] १. चाकू। छुरी। २ छोटी
तलवार। ३ कटारी। पेशक। ४. सोनारों की कतरनी।
५. वह पगड़ी जो कपड़े की बत्ती के हमान बटकर बाँधी जाती
है। उ०—कत्ती बटि कसी पाग कत्ती सिर टेढ़ी लस बड़ी
मुख रत्ती ऐसे पत्ती जदुपति के।—गोपाल (शब्द०)।

कतेव(५)।—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कतेव] दे० 'कतेव'। उ०—कोइ वेद
मस्त कतेव मस्त कोइ मक्के में कोइ काशी में।—राम०
धर्म०, पृ० ६५।

कत्य—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कत्या] कसेरे की स्याही। लोहे की स्याही।
—(रंगरेज)।

विशेष—१५ सेर पानी में भाँघ सेर गुड़ या शक्कर मिलाकर
घड़े में रख देते हैं। फिर उस घड़े में कुछ लोहचूर्ण छोड़कर
उसे घूप में उठने के लिये रख देते हैं। थोड़े दिनों में यह उठने
लगता है और मुँह पर गाज जमा हो जाता है। जब यह
स्याही मायल भूरे रंग का हो जाता है, तब यह पक्का हो जाता
है और रंगाई के काम के योग्य हो जाता है। इसे लोहे की
स्याही कहते हैं।

कतरी^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] वह यंत्र जिसकी सहायता से जंहाज पर नावें रखी जाती हैं। (लश०) ।

कतल—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० कत्ल] वध। हत्या ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

कतलवाज—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० कत्ल + फा० बाज] वधिका। जल्लाद ।

सहारक । मारनेवाला । उ०—आई तजिहों तो ताहि तरनि-
तनूजा तीर, ताकि ताकि तारापति तरफति ताती सी । कहै
पदमाकर धरोक ही में घनश्याम काम को कतलवाज कुज ह्वै है
काती सी ।—पद्माकर (शब्द०) ।

कतला—सञ्ज्ञा पुं० [देश० या प्र० कातिला] एक प्रकार की मछली
जो बड़ी नदियों में पाई जाती है ।

विशेष—इसकी लंबाई छह फुट तक की होती है । यह मछली बड़ी
बलवती होती है और पकड़ते समय कभी कभी मछुओं पर
आक्रमण करके उन्हें गिरा देती और काट लेती है ।

कतलाम—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० कतले + प्राम] सर्वसाधारण का वध ।
सबका वध । बिना विचारे अपराधी; निपराध, छोटे बड़े
सबका सहार । सर्वसंहार । उ०—जहा पर कतलाम करै सब
नित नव जोवनवारी ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४१४ ।

कतलो—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कतरना] १ मिठाई पकवान आदि के
चोकोर काटे हुए छोटे टुकड़े । २ चीनी की चाशनी में पागे
हुए खरबूजे या पोस्त आदि के बीज ।

कतवाना—क्रि० स० [हि० कातना का प्रे० रूप] किसी दूसरे से
कातने का काम लेना । कातने में लगाना ।

कतवार^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० पतवार = पताई] १ कूड़ा करकट । उ०—
मेली गली भरी कतवारन ।—भारतेंदु ग्रं० भा० २, पृ० ३३३ ।
२ धेकाम की वस्तु । काम में न आने लायक वस्तु ।

कतवार^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कातना] [स्त्री० कतवारी] कातने-
वाला । उ०—मन के मते न चालिए छोड़ि जीव की वानि ।
कतवारी के सूत ज्यों उलटि अपूठा आनि ।—कवीर
(शब्द०) ।

कतवारखाना—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कतवार + फा० खानह] वह स्थान
जहाँ कूड़ा करकट फेंका जाता हो । कूड़ाखाना ।

कतहु^१—अव्य० [हि० कत + हु] कहीं । किसी स्थान पर । किसी
जगह । उ०—मूँदहु आखि कतहु कोउ नाही ।—तुलसी
(शब्द०) । (ख) सखि हे कतहु न देखि मघाई ।—विद्यापति,
पृ० १६४ ।

कतहु^२—अव्य० [हि० कतहु] दे० 'कतहु' ।

कता—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र० कतम्] १ वनावट । आकार । उ०—छपन
छपा के रवि इव भा के दंड उत्तंग उढ़ाके । विधि कता के
वंधे पताके छुवें जे रवि रथ चाके ।—रघुराज (शब्द०) । २
दंग । वजा । जैसे,—तुम किस कता के आदमी हो । ३
कपड़े की काट छांट । जैसे,—तुम्हारे कोट की कता अच्छी
नहीं है । ४ काट । उ०—उलही प्रीति लतासु, इशक फूल सो
बहइही ।—देखन प्रान कता सु, देखत ही जिय रह सही ।—
ब्रज० ग्रं०, पृ० १ ।

मुहा०—कता करना = कपड़े को किसी नाप के अनुसार काटना ।
कपड़े को व्योतना । जैसे,—दर्जी ने तुम्हारा अंगा कता किया
या नहीं ।

यो०—कताकलाम = वात काटना । वात के बीच में बोल बँटना ।

कता तम्रलुक = सवधविच्छेद । विलगाव । कता नजर =
सवध तोड़ लेना । दृष्टि हटा लेना ।

कताई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कातना] १ कातने की क्रिया ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

२ कातने की मजदूरी । कतोनी ।

कतान—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कत = कतना] १ प्राचीन काल का एक प्रकार
का बहुत बढ़िया कपड़ा जो अलसी की छाल से बनता था ।

विशेष—यह कपड़ा इतना कोमल होता था कि चंद्रमा की चांदनी
पड़ने से फट जाता था ।

२ एक प्रकार का बढ़िया रेशमी कपड़ा जो प्रायः बनारसी
साड़ियों और दुपट्टों में होता है । ३ एक प्रकार का बढ़िया
रेशम जिससे काशी शिल्प के कपड़े या बनारसी साड़ियाँ तैयार
होती हैं ।

कताना—क्रि० स० [हि० कातना का प्रे० रूप] किसी अन्य से कातने
का काम कराना । कतवाना ।

कतार—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्र०] १ पक्ति । पंक्ति । श्रेणी । लेंना । उ०—
कंधो विराट स्वरूप सुवक्ष पै, मुक्ति मरालनि केरि कतार
है ।—भक्तमाल (श्री०), पृ० ५७६ । २ यूथ । सप्ह । झुंड ।
उ०—सुजन सुखारे करे पुण्य उजियारे अति पतित कतारे
भवसिंधु ते उतारे हैं ।—पद्माकर (शब्द०) ।

कतारा^१—सञ्ज्ञा पुं० [प्र० कान्तार, प्रा० कतार] [स्त्री० अल्पा० कतारी]
एक प्रकार की लाल रंग की ऊख जो बहुत लंबी होती है । इसका
छिलका मोटा और गूदा नर्म होता है । इसका गुड़ बनता है । उ०—
ऊख कतारे और पौढ़े बहुत हुए ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १७ ।

कतारा^२—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कटार] इमली का फूल ।

कतारी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० दे० 'कतार' । [हि० कतार + ई (प्रत्यय)]
उ०—तैंसी भूमि सब हूरियारी । तैंसी सोतल बहुत वयारी ।
डोलत कीर कतारी । तैंसी दादुर की धुनि न्यारी ।—भारतेंदु
ग्रं०, भा० २, पृ० १२४ ।

कतारी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कतारा] कतारे की जाति की ईख जो
उससे छोटी और पतली होती है ।

कति^१—वि० [सं०] १. (गिनती में) कितने । उ०—(क) मीत रही
तुम्हरे नहि दारा । अब दिखाहि पोइसहि हजारा । कहहु मीत
कुल की कुशलाई । सुता सुवन कति में सुखताई ।—रघुराज
(शब्द०) । (ख) आचर चीर घरइ हँसि हेरी । नहि नहि
वचन भनव कति वेरी ।—विद्यापति०, पृ० ७५ । २ किस
कदर (तोल या माप में) । ३ कौन उ०—मरत कीन नूत
पद पालन पै राम राय को थतिक । राम देव राजा नहि दूसर
इंद्र एक सुर कतिक ।—देवस्वामी (शब्द०) । ४ बहुत से ।
अग्रणी । उ०—जाहि के उदोत लहि जगमग होत जग जीव
के उमग जामे अनु अनुमाने हैं । चेत के निचय जाते चेतन
अचेत चय, लय के निलय जामे सकल समाने हैं । विश्वाधार
कति जामें स्थिति है चराचर की, ईति की न गति जामे श्रुति

कतनी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कतरनी] १. दे० 'कतरनी' । २. दे० 'चरवी' ।

कतफल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कत' [को०] ।

कतमाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अग्नि [को०] ।

कतरछाँट—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कतरना + छाँटना] कतरव्योत । कमी वेशी । काटछाँट ।

कतरन—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कतरना] कपड़े, कागज या धातु की चद्दर आदि के वे छोटे छोटे रद्दी टुकड़े जो काटछाँट के पीछे बच रहते हैं । जैसे, पान की कतरन । कपड़े की कतरन ।

कतरना^१—क्रि० सं० [सं० कर्तन] [सञ्ज्ञा कतरन, कतरनी] १ किसी वस्तु को कैंची से काटना । २ (किसी औजार से) काटना ।

कतरना^२—सञ्ज्ञा पुं० १. बड़ी कतरनी । बड़ी कैंची । २. बात काटने वाला व्यक्ति । वक्तव्य आदमी ।

कतरनाल—सञ्ज्ञा स्त्री० [विश०] एक प्रकार की घिन्नी जिसपर दोहरी गडारी होती है ।—(लश०) ।

कतरनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कतरना] १. बाल, कपड़े आदि काटने का एक औजार । कैंची । मिकराज । उ०—(क) कपट कतरनी पेट में, मुख बचन उचारी ।—घरम०, पृ० ७२ ।

मुहा०—कतरनी की जवान चलना = वक्तवाद करना । दूसरे की बात काटने को बहुत वक्तवाद करना ।

१ लोहारो और सोनारो का एक औजार जिससे वे धातुओं की चद्दर, तार, पत्तार आदि काटते हैं । यह सँदसी के आधार की होती है, केवल मुँह की ओर इसमें कतरनी रहती है । काती । ३ तंबोलियों का एक औजार जिससे वे पान कतरते हैं ।

विशेष—इसमें लोहे की चद्दर के दो बराबर लंबे टुकड़े या बाँस या सरकड़े के सोलह सत्रह अंगुल के फाल होते हैं जिन्हें दाहिने हाथ में लेकर पान कतरते हैं ।

४ जुलाहो का एक औजार जिससे वे सूत काटते हैं । ५ मोचियों और जीनगरों की एक चौड़ी तुकीली सुतारी जिससे वे कड़े स्थान में छोटी सुतारी जाने के लिये छेद करते हैं । ६ सादे कागज या मोमजामे का वह टुकड़ा जिसे छीपी वेल छापते समय कोना बनाने के लिये काम में लाते हैं । जहाँ कोने पर पूरा छाप नहीं लगाना होता, वहाँ इसे रख लेते हैं । चंबी । पत्ती । ७ एक मछली जो मलावार देश की नदियों में होती है ।

कतरव्योत—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कतरना + व्योत] १. काटछाँट । २. उलटफेर । हेरफेर । इधर का उधर करना ।

क्रि० प्र०—करना ।—मे रहना ।—होना ।

३ उबेडबुन । सोचविचार ।

क्रि० प्र०—करना ।—मे रहना ।—होना ।

४ दूसरे के सौदे सुलुफ में से कुछ रकम अपने लिये निकाल लेना । जैसे,—बाजार से सौदा लाने में नौकर कुछ न कुछ कतरव्योत करते हैं । ५ हिसाब किताब बँटाना । युक्ति । जोड़तोड़ । जैसे,—ऐसी कतरव्योत करो कि इतने ही में काम बन जाय ।

२-३०

मुहा०—कतरव्योत से = हिसाब से । समझ बूझकर । सावधानी से । जैसे,—वे ऐसी कतरव्योत से चलते हैं कि थोड़ी ग्रामदनी में अपनी प्रतिष्ठा बनाए हुए हैं ।

कतरवाँ—वि० [हि० कतरना + वाँ (प्रत्य०)] घुमावदार । मोरेवदार । टेढ़ा । तिरछा ।

यो०—कतरवाँ चाल = (१) टेढ़ी चाल । वक्र गति । (२) अटपटी चाल ।

कतरवाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कतरवाना + वाई (प्रत्य०)] कतरवाने की क्रिया । २. कतरवाने की मजदूरी ।

कतरवाना—क्रि० सं० [हि० कतरना] कतरने का काम दूसरे से कराना । दूसरे को कतरने में प्रवृत्त करना ।

कतरा^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कतरना] १ कटा हुआ टुकड़ा । खड । जैसे,—तीन चार कतरे सोहन हलुआ खाकर वह चला गया ।

२. पत्थर का छोटा टुकड़ा जो गढ़ाई में निकलता है ।

कतरा^२—सञ्ज्ञा पुं० [विश०] एक प्रकार की बड़ी नाव जिसमें माँझी खड़े होकर डाँड़ चलाते हैं । यह पटोले के बराबर लंबी पर उससे कम चौड़ी होती है । इसपर पत्थर आदि लादते हैं ।

कतरा^३—सञ्ज्ञा पुं० [अ० कतरह] वृद्ध । विदु । उ०—गुज से कुल कतरे से दरिया बन जाव । अपने को छोए तब अपने को पाव ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५६८ ।

कतराई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कतराना] १. कतरने का काम । २. कतरने की मजदूरी ।

कतराना^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कतरना] १. किसी वस्तु या व्यक्ति को बचाकर किनारे से निकल जाना । जैसे,—वह मुझे देखते ही कतरा जाता है । उ०—अवासी इस मकान पर कतरा के एक गली में जाने लगी ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २६ । २. नाक भों सिकोडना । आपत्ति करना । उ०—कमी इन सादे भावों को भोड़े और ग्राम्य कह कतराएँ ।—प्रेमचन०, पृ० ३३६ ।

सयो० क्रि०—जाना ।

कतराना^२—क्रि० सं० [हि० कतरना का प्रे० रूप] कटाना । कटवाना । छँटवाना ।

सयो० क्रि०—डालना ।

कतरारसाज—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कतरना + रसा?] खँडरा नाम का पकवान जो बेसन से बनता है ।

कतरी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कत्तरी = चक्र] १. कोलू का पाट जिसपर आदमी बैठकर चैलो को हाँकता है । कातर । २. पीतल का बना हुआ एक ढलवाँ जेवर जिसे नीच जाति की स्त्रियाँ हाथों में पहनती हैं । ३. लकड़ी का बना हुआ एक औजार जिससे राज कारनिस जमाते हैं । यह औजार एक फुट लंबा, तीन इंच चौड़ा और चौथाई इंच मोटा होता है ।

कतरी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कतरना] १. जमी हुई मिठाई का कटा हुआ टुकड़ा । उ०—बादशाह ने कहा कि डर नहीं है, हर एक एक एक लड्डू और एक एक कतरी माजून की खावे और वहाँ से बाहर आवे ।—हुमायूँ०, पृ० ५४ । २. कतरने या छाँटने का औजार । कैंची ।—(लश०) ।

कणजा—सज्ञा पुं० [हि० कजा] 'कजा' या कजा की गूदी जो ज्वर और चर्मरोग में उपयोगी है। उ०—कौसी कणजा काचलग बँधत ताई माँहि । जन रज्जव शीतल समे अस्तक छाई नाहि ।—रज्जव०, पृ० १६ ।

कणजीरक—सज्ञा पुं० [स०] सफेद जीरा ।

कणजीरा—सज्ञा पुं० [स० कणजीरक] दे० 'कणजीरक' ।

कणप—सज्ञा पुं० [स०] वरछा । भाला [को०] ।

कणप्रिय—सज्ञा पुं० [स०] गौरेया चिडिया । बाहान चिरैया ।

कणभक्ष—सज्ञा पुं० [स०] वैशेषिक दर्शनकार कणाद मुनि [को०] ।

कणभक्षक—सज्ञा पुं० [स०] १ कणाद मुनि । २ एक पक्षी [को०] ।

कणभुक्—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'कणभक्ष' ।

कणभुज—सज्ञा पुं० [स० कणभुक्] दे० 'कणभक्ष' ।

कणमणना—कि० अ० [हि० कनमनाना] दे० 'कनमनाना' । उ०—
मारु तोड़ण कणमणइ, सालहुकुमर बहु साद ।—ढोला०
दू० ६०५ ।

कणा—सज्ञा स्त्री० [स०] पीपल । पिप्पली ।

कणाचि—सज्ञा पुं० [देश०] केवाँच । करैच । कौछ ।

कणाटीन—सज्ञा पुं० [म०] खजन पक्षी [को०] ।

कणाटीर—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'कणाटीन' [को०] ।

कणाटीरक—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'कणाटीन' [को०] ।

कणाद—सज्ञा पुं० [स०] १ वैशेषिक शास्त्र के रचयिता एक मुनि ।
उलूक मुनि । २ सुनार ।

कणामूल—सज्ञा पुं० [स०] पिपरामूल ।

कणासुफल—सज्ञा पुं० [स०] अकोल ।

कणिक—सज्ञा पुं० [स०] १ कण । उ०—गुरु मुख कणिक प्रीति से
पावै । ऊँच नीच के भरम मिटावै ।—कवीर सा०, भा० ४,
पृ० ४१० । २ अनाज की वाली । ३ गेहूँ का आटा । ४
शत्रु । ५ अग्निमय वृक्ष [को०] ।

कणिका—सज्ञा स्त्री० [स०] किनका । टुकड़ा । जर्जा । उ०—जिसकी
कृपाकणिका के प्रसाद से यह शुभ अवसर । प्रेमघन०,
पृ० ४६६ ।

कणियरं—सज्ञा पुं० [स० कणिकार] दे० 'कनेर' ।

कणिश—सज्ञा पुं० [स०] अनाज की बाल । जी, गेहूँ आदि की बाल ।

कणिष्ठ—वि० [स०] सबसे छोटा । अति सूक्ष्म [को०] ।

कणी—सज्ञा स्त्री० [स०] १ कणिका । कनी । २ एक अन्न [को०] ।

कणीक—वि० [स०] बहुत छोटा । अत्यल्प ।

कणीची—सज्ञा स्त्री० [स०] १ शब्द । ध्वनि । २ एक वृक्ष । ३
शकट । ४ पुष्पित लता [को०] ।

कणीसक—सज्ञा पुं० [स० कणिश] अनाज की बाल । जी, गेहूँ
इत्यादि की बाल ।—(हि०) ।

कणेर—सज्ञा पुं० [स०] कनियार या कणिकार का पेड़ [को०] ।

कणैरा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ हस्तिनी । २. वेश्या [को०] ।

कणेरु—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'कणेर' ।

कणैठी—सज्ञा पुं० [स० कनिष्ठ] छोटा भाई । २० 'कनिष्ठ' । उ०—
राजा कै कणैठी वीर ऊँदै पेट छोड़या ।—शिखर० पृ० ४६ ।

कण्ण—सज्ञा पुं० [स० कणं, प्रा० कण्ण] कणं । कान । उ०—कण्ण
समादम अमिय तुज्झु कहन्ते कन्त ।—कीर्ति०, पृ० ५६ ।

कण्व—सज्ञा पुं० [स०] १ एक मन्त्रकार ऋषि जिनके बहुत से मन्त्र
ऋग्वेद में हैं । २ शुक्ल यजुर्वेद के एक शाखाकार ऋषि ।
इनकी संहिता भी है और ब्राह्मण भी । सायणाचार्य ने इन्हीं
की संहिता पर भाष्य किया है । ३ कश्यप गोत्र में उत्पन्न एक
ऋषि जिन्होंने शकुंतला को पाला था ।

कत^१—सज्ञा [स०] १. निर्मली । २. रीठा ।

कत^२—सज्ञा पुं० [अ० कत] देशी कलम की नोक की आड़ी काट ।

क्रि० प्र०—काटना ।—देना ।—मारना ।—रखना । लगान ।

यी०—कतगौर ।—कतजन ।

कत^३—अव्य० [स० कुत, पा० कुतो] कथो । किसलिये । काहे को ।
उ०—कत सिख देइ हमहि कोउ माई । गाल करव केहि कर
बल आई ।—तुलसी (शब्द०) ।

कत^४—वि० [स० कियत्] १ कितना । कितना । २ अधिक ।

कतअन्—अव्य० [अ० कतअन्] सर्वथा । विलकुल । हर्गिज [को०] ।

कतई^१—क्रि० वि० [अ० कतई] नितात । निपट । विलकुल । जैसे,—
मैं उनसे कतई कोई तअल्लुक नहीं रखना चाहता । उ०—
वादलो में सूरज का कही कही कतई कोई आभास ।—ठंडा०
पृ० ३४ ।

कतई^२—वि० [अ०] १. अतिम । २. पूर्ण । ३. पक्का ।

यी०—कतई इनकार = सर्वथा इनकार । कतई फंसला = अतिम
निर्णय । कतई ह्वम = पक्का आदेश ।

कतक^१—सज्ञा पुं० [स०] १ निर्मली । २. रीठा ।

कतक^२—वि० [हि०] दे० 'कतिक' ।

कतकर—सज्ञा पुं० [हि० कातना + कर] कताई का काम करनेवाला ।
उ०—हिंदुस्तानी कतकरो और जुलाहो का सफाया कर
दिया ।—मान०, पृ० ३२५ ।

कतकी^१—वि० [स० कार्तिकी] कार्तिका सबधी । उ०—कतकी में गंगा
नहान की बढी उमर्गे ।—प्रपरा, पृ० १९६ ।

कतगौर—सज्ञा पुं० [अ० कत + पा० गौर] दे० 'कतजन' ।

कतजन—सज्ञा पुं० [अ० कतजन] लकड़ी या हाथीदाँत का बना
हुआ एक छोटा सा दस्ता जिसपर कलम की नोक रखकर
उसपर कत रखते हैं ।

कतना^१—क्रि० अ० [हि० कातना] काता जाना ।

कतना^२—क्रि० वि० [हि०] दे० 'कितना' । उ०—कतने जतने घर
अए लाहु, केकर दधि दुध काजे ।—विद्यापति, पृ० १६४ ।

कतनी^१—सज्ञा स्त्री० [हि० कातना] १ सूत कातने की टेकुरी । ढेरिया ।

२ वह टोकरी जिसमें सूत काटने के सामान रखे जाते हैं ।

कतना^२—सज्ञा पुं० [हि० कतरना] दे० 'कतरना' ।

कडलाना

कडलाना(७) — क्रि० म० [स० काटना + लाना] घसीटना । घनीटकर बाहर करना । उ०—नाहिन कांचो कृपानिधि, करी कहा रिसाइ । सूर तवहु न द्वार चाडै डागिहू कडराइ ।—सूर (शब्द०) ।

कडवाना—क्रि० म० [हि० काटना का प्रे० रूप] दे० 'कडाना' ।

कडाई^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कडाही] दे० 'कडाही' ।

कडाई^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० काटना] १ निकालने की क्रिया । २ निकालने की मजदूरी । निकलवाई । ३ बूटा कसीदा निकालने का काम । ४ बूटा कसीदा बनाने की मजदूरी ।

कडाना—क्रि० म० [हि० काटना का प्रे० रूप] निकलवाना । बाहर कराना । बिचवाना । उ०—सन इव खन पर वधन करई । खाल कडाई विपति महि मई ।—तुलसी (शब्द०) ।

कडाव^१—सञ्ज्ञा पु० [हि० काटना] १ बूटे कसीदे का काम । २ देल बूटे का उभार ।

कडाव^२—सञ्ज्ञा पु० [म० कडाह, प्रा० कडाह] १ दे० 'कडाह' । २ सिखो का कडा प्रसाद अर्थात् हलुना जो कडाह में बनता है । उ०—याही गुरु ने कडाव बखानी ।—घट०, पृ० ३२२ ।

कडावना(७) — क्रि० म० [हि० काटना का प्रे० रूप] निकलवाना । बाहर करना । बिचवाना । उ०—पुनि अस कवड कहसि घरफोरी । नौ धरि जीम कडावउ तोरी ।—तुलसी (शब्द०) ।
कडाह प्रसाद—सञ्ज्ञा पु० [हि० कडाह + सं० प्रसाद] दे० 'कडा प्रसाद' । उ०—धी निचुडते कडाह प्रसाद (हलवे) की अपेक्षा चापनी में तैरते रसगुल्ले उसे अधिक लुभाने लगे ।—भस्मावृत०, पृ० ६२ ।

कडिराना(७) — क्रि० म० [हि० कडलाना] दे० 'कडलाना' ।

कडिलना—क्रि० म० [स० कल्ल] रोग या दुख से कराहना । पड़े रहकर छटपटाना । लेटे हुए घुसना या रिघुरना ।

मुहा०—कडिल कडिलकर मरना = धुल धुलकर मरना । उ०—कडिल कडिलकर मोन पा चुके ।—वगाल०, पृ० ६२ ।

कडिहार—वि० [हि० काटना + हार (प्रत्य०)] १. उद्धारक । निकालनेवाला । उ०—अस अवसर नहि पाइहौ, धरो नाम कडिहार ।—कवीर सा०, पृ० ५ ।

कडी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कड़ना = गाढ़ा होना] एक प्रकार का सालन ।

उ०—दाल भात घृत कडी सलोनी अरु नाना पकवान । शारोगत नृप चारि पुत्र मिलि अति आनंद निधान ।—सूर (शब्द०) ।
विशेष—इसके बनाने की रीति यो है—आग पर चढ़ी हुई कडाही में घी, हींग, राई और हलदी की चुकनी डाल दे । जब सुगंध उठने लगे तब उसमें नमक, मिर्च समेत मठे में घोड़ा हुआ बेसन छोड़ दे और मदी आंच से पकावे । कोई कोई इसमें बेसन की पकोड़ी भी छोड़ देते हैं । यह सालन पाचक दीपक, हल्का और सक्कर है । कफ वायु और बद्धकोष्ठ का नाश करता है ।

मुहा०—कडी का सा उवाल = शीघ्र ही घट जानेवाला जोश । (कटी में एक ही बार उवाल आता है और शीघ्र ही दब जाना है) । कडी में कोयला = (१) अच्छी वस्तु में कुछ छोटा सा

दोष । (२) दाल में काला । कुछ मर्म की बात । कोई भेद । वासी कडी में उवाल आना = (१) बुढ़ापे में पुन युवावस्था की सी उमग आना । (२) छोड़े हुए कार्य को पुन करने के हेतु तत्पर होना ।

कड आ^१—वि० [हि०] दे० 'कडवा' ।

कडुपा^२—सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'कडुपा' ।

कडुवा^१—वि० [हि० काटना] निकाला हुआ ।

कडुवा^२—सञ्ज्ञा पु० १ रात का वचा हुआ गोजन जो वचो के वास्ते सवेरे के लिये रख छोड़ते हैं । २ कर्जा । ऋण ।

क्रि० प्र०—काड़ना ।— देना ।—लेना ।

३ मटके में से पानी निकालने का छोटा बरतन । बोरना । बोरका । पुरवा ।

कड ई^१—वि० [हि० काटना] कही से निकालकर या उड़ कर लाई स्त्री ।

कड ई^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० काटना] वह लघु पात्र जिससे सामान निकालने का काम लिया जाय ।

कडेरना—सञ्ज्ञा पु० [हि० काटना] सोने चाँदी वा पीत । ताम्र इत्यादि में वर्तनो पर नक्काशी करनेवालो या एक औजार जिससे वे लोग गोत्र गोत्र लकीरें डालते हैं ।

कडैया^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कडाही] दे० 'कडाही' ।

कडैया^२—सञ्ज्ञा पु० [हि० काटना] १ निगालनेवाला । २ उद्धार करनेवाला । उबारनेवाला । बचानेवाला ।

कडैल^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कडैया-१' ।

कडैल^२—सञ्ज्ञा पु० दे० 'कडैया-२' ।

कडोरना(७) — क्रि० म० [स० कर्पण, प्रा० कड्ड] कडलाना । घसीटना । उ०—(क) तोरि यमकातरि मंदोदरी कडोरि आनी रावन की रानी मेघनाथ महतारी है । भीर बाहु पीर की निपट राखी महावीर कौन के सँकोच तुलसी के सोच भारी है ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) करपि कडोरि दूर लँ गए । बहुत काठ दँ दाहत भए ।—नद० ग्र०, पृ० २३६ ।

सयो० क्रि०—डालना ।—लाना ।

मुहा०—कलेजा कडोरना = हृदय कुरेदना । जो कडोरना = मन को बेचैन करना

कडोलना क्रि० म० [हि०] दे० 'कडोरना' ।

कण—सञ्ज्ञा पु० [स०] १ किनका । रवा । जर्ज । अत्यंत छोटा टुकड़ा । २ चावल की बारीक टुकड़ा । कना । ३. अन्न के कुछ दाने । दो चार दाने । ४ भिक्षा । दे० 'कन' । उ०—कण दैवो सोप्यो समुर बहु थोरह्यो जानि ।—विहारी (शब्द०) ।

कणकच^१—सञ्ज्ञा पु० [देश०] १ केवाँच । कौछ । कपिकच्छु । २ करंज । कजा ।

कण्णज—सञ्ज्ञा पु० [हि० कण्णक] दे० 'कणकच' ।

कण्णज—सञ्ज्ञा पु० [हि० कण्णक] दे० 'कणकच' ।

विपत्ति और कठिनाई में धीरवृत्ति । जैसे,—यह कड़ुए जी के मादमी का काम है ।

२ तीक्ष्ण । भालदार । जैसे, कड़ुआ तमाकू, कड़ुआ तैल । ३ तीक्ष्ण प्रकृति का । गुस्सैल । तुदमिजाज । भल्ला । अक्खड । जैसे,—कड़ुआ मादमी । उ०—कड़ुए से मिलिए, मीठे से डरिए ।

मुहा०—कड़ुआ होना = नाराज होना । विगडना । जैसे,—इनकी ही बात पर वे मुझे कड़ुए हो गए ।

४ क्रोध से मरा । जैसे कड़ुआ मिजाज, कड़ुई निगाह ।

क्रि० प्र०—होना = नाराज होना । विगडना ।

५ अप्रिय । जो मला न मालूम हो । जो न भावे । जैसे,—कड़ई बात ।

मुहा०—कड़ुआ करना = (१) धन बिगाडना । रुपए लगाना ।

जैसे,—जहाँ इतना खर्च किया वहाँ दो रुपए और कड़ुए करोगे,

(२) कुछ दाम खड़ा करना । अपने पौने करना । जैसे,—

माल बहुत दिनों से पड़ा था, ५) कड़ुए किए । कड़ुवा मुँह =

वह मुँह जिसमें कटु शब्द निकले । कटुभाषी मुख । उ०—

खीरा को मुँह काटि कै मलियत लोन लगाय । रहिमन कड़ुए

मुखन को चहिए यही उपाय ।—रहीम (शब्द०) । कड़ुआ

होना = बुरा बनना । जैसे,—तुम क्यों सबसे कड़ुए होते हो ?

६. विकट । टेढ़ा । कठिन । जैसे,—उस पार जाना जरा कड़ुआ काम है ।

मुहा०—कड़ुए बसले दिन = (१) बुरे दिन । कष्ट के दिन ।

(२) दोरसे दिन जिनमें रोग फैलता है ।—जैसे,—बवार,

कातिक या फागुन, चैत । (३) गर्म का आठवाँ महीना जिसमें

गर्भ गिरने का भय रहता है । कड़ुआ घूँट = कठिन काम ।

कड़ुआ तैल—सज्ञा पु० [हि० कड़ुआ + तैल] सरसों का तेल जिसमें बहुत भाल होती है ।

कड़ुआना—क्रि० अ० [हि० कड़ुआ से नाम०] १. कड़ुआ लगना ।

जैसे,—तरकारी में मेथी अधिक हो गई, इससे कड़ुआती है ।

२ विगडना । रिसाना । खीझना । ३ नींद रोकने के कारण

आँख में किरकिरी पड़ने का सा दर्द होना ।

कड़ुआहट—सज्ञा स्त्री० [हि० कड़ुआ + हट (प्रत्य०)] कड़ुआपन ।

कड़ुई रोटी या खिचड़ी—सज्ञा स्त्री० [हि०] वह भोजन जो मृतक के घर

के प्राणियों के पास उसके सबंधी दो तीन दिनों तक भेजते हैं ।

कड़वाई—सज्ञा स्त्री० [हि० कड़ुआ + ई (प्रत्य०)] १ कटुता । २

बुराई । उ०—जगन्नाथ के दरसन करके अजडुन गई कड़ुवाई ।

—कवीर सा०, पृ० ४६ ।

कड़ुगा—वि० [हि० कड़ा + ग्रग] मोटा । तगड़ा । अक्खड ।

कड़ू—वि० पु० [स० कटु या कटुक] दे० 'कड़ुआ' ।

कड़ुला—सज्ञा पु० [हि० कड़ + उला (प्रत्य०)] हाथ या पैर में पहनने का बच्चों का, छोटा कड़ा ।

कड़ुदम—सज्ञा पु० [हि० कड़ा + दम] दृढ़ । अविचल । उ०—

मादमी कड़ुदम चाहिए, जिसका अन्याय देखे उसे डौट दे ।—

फाया०, पृ० १२५ ।

कड़रा—सज्ञा पु० [हि० कंडा] खरादनेवाला । जो किसी वस्तु को खरादकर ठीक करे । उ०—ग्रीव मयूर केर जस ठाढी । कोढे फेर कड़रै काढी ।—जायसी (शब्द०) ।

कड़ेलोट—सज्ञा पु० [हि० कड़ा + लोटना] मालखम की कसरत ।

विशेष—इसमें ऊधतरी करके हाथ को मोगरे पर लाते और उसी पर बदल तौलकर ऐसे उड़ते हैं कि सिर मोगरे के पास कंधे के आसरे रहता है और पाँव पीठ पर से उलटे उड़कर नीचे आता है ।

कड़ेलोटन—सज्ञा पु० [हि० कड़ेलोट] 'दे० कड़ेलोट' ।

कड़ोडा—सज्ञा पु० [हि० करोडा] बहुत बड़ा अधिकारी जिसके अधीन बहुत से लोग हों । बहुत बड़ा अफसर ।

कड़ोरा—सज्ञा पु० [हि० करोड] १. कोटि । करोड । २. बहुसंख्यक ।

उ०—पाँच भाइ रस भग करतु हैं, इन बस परिय कड़ोरी ।—जग० श०, पृ० ८० ।

कड़ना—क्रि० स० [हि०] दे० 'काढ़ना' । निकालना । उ०—कड़नी हुसैन जो जीव आस । पृ० २१०, २६ ।

कड़ना(७)—वि० [हि० काढ़ना] ऋण लेनेवाला । कर्ज काढनेवाला ।

कड़नी—वि० [हि०] दे० 'कड़ना' ।

कड़नेरना—क्रि० स० [हि० काढ़ना] काढ़ना । निकालना ।

कड़त—सज्ञा स्त्री० [हि० 'कड़ना'] १. निकासी । खपत । २. कड़ने या काढ़ने की क्रिया या भाव । बाहर निकलने या निकालने की क्रिया या भाव ।

कड़ना—क्रि० अ० [स० कषण, प्रा० कड़न] १. निकलना । बाहर आना । खिचना । २. उदय होना । ३. बढ़ जाना । किसी बात में किसी से बढ़कर प्रमाणित होना । ४. (प्रतिद्वंद्विता में) निकल जाना (आगे) । बढ़ जाना (आगे) ।

मुहा०—कड़ जाना = किसी के साथ चले जाना । यार के साथ चले जाना । कुटुंब छोड़कर उपपत्ति करना । उ०—गोकुल के कुल को तजिके भजिके वन वीथिन में वडि जइए । ज्यों पदमाकर कुज कछार विहार पहारन में चडि जइए । हैं नंद-नंद गोविंद जहाँ तहाँ नंद में मंदिर में मडि जइए । यों चित चाहत एरी भटू मनमोहन लेके कहुँ कड़ि जइए ।—पद्माकर (शब्द०) ।

कड़ना^१—क्रि० अ० [हि० गाढ़ा] दूध का ओटाया जाकर गाढ़ा होना ।

कड़नी^१—सज्ञा स्त्री० [स० कषणी, प्रा० कड़नी] मयानी को घुमाने की रस्सी । नेती ।

कड़नी^२—सज्ञा स्त्री० [हि० काढ़ना = निकलना] वरसात में जमीन की वह अंतिम जुताई जिसके बाद अनाज बोया जाता है ।

क्रि० प्र०—काढ़ना (जोतना) ।

कड़नी^३—वि० स्त्री० [हि० काढ़ना = निकालना] निकालने वाली ।

यह प्रयोग समस्त पद के अंत में आता है । जैसे,—कमीदा-

कड़नी, खूँटकड़नी ।

कड़राना—क्रि० स० [हि० कड़लाना] दे० 'कड़लाना' ।

क्रि० प्र०—चढ़ना = मोच पर रखा जाना ।—चढ़ाना = मोच पर रखना ।

कड़ाही—संज्ञा स्त्री० [हि० कड़ाह] ठोठा कड़ाहा, जो लोहे पीतल, चांदी आदि का बनता है ।

क्रि० प्र०—चढ़ना = मोच पर रखा जाना ।—चढ़ाना = मोच पर रखना ।

मुहा०—कड़ाही करना = कड़ाही चढ़ाना । मनोती पूरी होने पर किसी देवी देवता की पूजा के लिये हलवा पूरी करना । कड़ाही में हाथ डालना = अग्निपरीक्षा देना ।

यो०—कड़ाही पूजन = किसी शुभ कार्य के निमित्त पकवान बनाने के लिये कड़ाही चढ़ाने के पहले उसकी पूजा करना ।

कड़ि^१—संज्ञा स्त्री० [हि० कली] १ कली । उ०—कसतूरी कड़ि केवड़ी मसकत जाय महकक ।—टोला०, दू० ११३ । २ २० 'कड़ी' ।

कड़ि^२—संज्ञा स्त्री० [सं० कटि, प्रा० कडि] कमर । उ०—अरि चौड़ी कड़ि पातलो ।—वी०, रासो० पृ० ७७ ।

कड़ि^३—संज्ञा स्त्री० [हि० कडा] ककण । उ०—घोडा वैसे ज्यो हांसला । कड़ि सोनहरी, हाथे जोड़ी ।—वी० रासो, पृ० ११ ।

कड़िचाल^४—संज्ञा पुं० [सं० कटि + चालन] 'कटिचालन' । कमर लचकाना । कमर नचाना । उ०—कड़िचालउ गौरी करइ ।—वी० रासो०, पृ० १०१ ।

कड़ितम्—संज्ञा पुं० [कन्नड] दक्षिण भारतीय व्यापारियों के हिसाब की वही ।—मा० प्रा० लि०, पृ० १४६ ।

कड़ितुल—संज्ञा पुं० [सं० कड़ितुल] १ खज्ज । तलवार । २ बनि का चाकू या छुरी स्त्री० ।

कड़ियल^१—संज्ञा पुं० [सं० काण्ड] ऊपर से फूटा हुआ मटके वा घड़े आदि का टुकड़ा जिसमें आग रखकर दवाई जाती है ।

कड़ियल^२—वि० [हि० कडा] कडा । हट्टा । कट्टा ।

यो०—कड़ियल जवान = हट्टा-कट्टा जवान ।

कड़िया^१—संज्ञा स्त्री० [सं० काण्ड, हि० कांडी] घरहर का सूखा पेड़ । जो फमल झाड़ लेने के बाद बच रहता है । कांडी । रहटा ।

कड़िया^२—संज्ञा स्त्री० [हि० कर्णधार] १ करिया । केवट । २. पनवार ।—उ०—राम राम डगमगी छोड़ाई, निर्भय कड़िया लैया ।—मल्लक०, पृ० ३ ।

कड़ियाली^३—संज्ञा स्त्री० [हि० करियारी] करियारी । लगाम । उ०—करीर माया पापणी हरि सू करै हराम । मुख कड़ियाली कुमति की, कहण न देखै राम ।—कवीर प्र०, पृ० ३३ ।

कड़िहरा^४—संज्ञा स्त्री० [प्रा० कडि + हर] कमर ।

कड़िहार^१—संज्ञा पुं० [सं० कर्णधार] २ २० 'कर्णधार' । २ निकालने वाला । उद्धारक । उ०—चत्रमूज बके जी सहते जी और चौके तुम मही चार ही कड़िहार जग में बचन यह निश्चय कही ।—कवीर सा०, पृ० १६६ ।

कड़िहार^२—संज्ञा पुं० [सं० कर्णधार, प्रा० कणधार] कर्णधार ।

केवट । पार लगानेवाला । उ०—(क) कोन नाम है मन कहुँ, कोन देखै कड़िहार । कोन नाम नारिन कहै, जाते होइ उवार ।—कवीर सा०, पृ० ४५४ ।

कड़ी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० कटकी, प्रा० कडई कडी] १ जरीर या सिकडी की बड़ी का एक छल्ला । २ छोटा छल्ला जो किसी वस्तु को अटकाने वा लटकाने के लिये लगाया जाय । जैसे, पखा कड़ियों में लटक रखा है । ३. लगाम । उ०—हरि घोडा ब्रह्मा कड़ी वासुकि पीठि पलान । चांद सुहज दोउ पायडा, चढसी सत सुजान ।—कवीर सा० सं०, भा० १, पृ० २४ । ४ भीत का एक पद । ५ चंड । विभाग । उ०—यही सोच मे तो चौकडी की बडी बीत गई ।—श्यामा०, पृ० १०६ ।

कड़ी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० काण्ड] १ छोटी धरन । उ०—पर को कड़ी और किवाड तक बँच दी गई ।—ठेठ०, पृ० ४३ ।

मुहा०—कड़ीबोलना = धरन से चिटकने की सी आवाज निकलना जो रहनेवाने के लिये अशकुन समझा जाता है ।

२ भेद बकरी आदि चौपायों की छाती की हड्डी ।

कड़ी^३—संज्ञा स्त्री० [हि० कडा = कठिन] कठिनाई । दिक्कत । सफट । दुख । मुसीबत ।

क्रि० प्र०—उठाना । मेलना ।—सहना ।

कड़ी^४—वि० स्त्री० [हि० कडा = कठिन] कठिन । कठोर । सख्त ।

मुहा०—कड़ी धरती = (१) वह प्रदेश जहाँ के लोग हट्टे कट्टे हो ।

(२) भूत प्रेत के रहने की जगह । कड़ी दृष्टि वा आँख रखना = पूरी निगरानी रखना । ताक मे रहना । जैसे,—देखना उस लडके पर कड़ी आँख रखना, कही जाने न पावे ।

कड़ी दृष्टि वा आँख का होना = (१) पूरी निगरानी होना ।

(२) कोप का भाव रहना । जैसे,—उन दिनों समाचारपत्रों पर सरकार की कड़ी आँख थी । कड़ी सुनाना = छोटी खरी सुनाना ।

यो०—कड़ी कंद = सपरिश्रम कारागार ।

कड़ीदार^१—वि० [हि० कड़ी + दार (प्रत्यय)] जिसमें कड़ी हो । छल्लेदार ।

कड़ीदार^२—संज्ञा पुं० एक प्रकार का कसीदा जो कड़ियों की लड़ी की तरह का होता है ।

विशेष—कपड़े के नीचे से सुई ऊपर निकालकर घागे के पिछले भाग में फंदा इस प्रकार बनावें कि तागा घूमकर अर्थात् फंदा बनाता हुआ घागे के पिछले भाग के नीचे से जाय । फिर सुई को नोक के नीचे से तागे का दूसरा फंदा देकर सुई को बाहर निकालें ।

कड़ुआ—वि० [सं० कटुक, प्रा० कडुम] [जो० कडुई] १ कटु । स्वाद में उग्र और अप्रिय । जिसका तीव्र स्वाद जीम को अम्ल हो । जैसे, नीम, इत्रायन, चिरायता आदि का ।

क्रि० प्र०—लगना ।

यो०—कड़ुआ कर्षला = प्रवचिकर । कटु । बुरा । कड़ुआ जहर = (१) जहर सा कड़ुआ । बहुत कड़ुआ । (२) प्रत्यत अवचिकर । बहुत बुरा लगनेवाला । कड़ुआ जो = कडा जो ।

टेकी यूनी है कहि घास कडव की फूली है ।—राम० धर्म०,
पृ० ६२ ।

कडला^१—सज्ञा पुं० [हिं०] १ 'कठुला' । २ वच्चों के हाथ या
पाँव में पहनाया जानेवाला छोटा कडा ।

कडवा^१—वि० पुं० [सं० कटुक, प्रा० कडुप्र] १ कडवा । कटु । २
तीता । ३ अप्रिय ।

कडवा^२—सज्ञा पुं० [प्रा० कडवक] गीत की टेक या कडी जिसे सब
मिलकर गाते हैं । उ०—यह कडवा सपूरन गोपालदास ने
श्री गुसाईं जी के आगे गाइ सुनायो ।—दो सौ बावन०, भा०
१, पृ० १५६ ।

कडवाना—कि० अ० [हिं० कडवा से नाम०] दे० 'कडवाना' । स्वाद
में कडवा लगना ।

कडवी^१—वि० [हिं० कडवा का स्त्री०] दे० 'कडुई' ।

यौ०—कडवी खिचडी, कडवी रोटी=मृत व्यक्ति के सवधियों
द्वारा उसके कुटुंबियों को भेजा जानेवाला खाना ।

कडवी^२—सज्ञा स्त्री० [देश०] ज्वार का पेड़ जिसके भुट्टे काट लिए
गए हो और जो चारे के लिये छोड़ दिया गया हो । उ०—
श्याम और एशिया के पूर्वी देशों में छोड़े शाम और सुबह कडवी
और जो खाते हैं और बीच में कुछ नहीं ।—शिवप्रसाद
(शब्द०) ।

कडहन—सज्ञा पुं० [हिं० कठधान] एक प्रकार का धान । एक प्रकार
का मोटा चावल ।

कडा^१—सज्ञा पुं० [सं० कटक] [स्त्री० कडी] १ हाथ या पाँव में पहनने
का चूड़ा । उ०—दुसेन्या दरस्सी कडे काठली सी ।—रा० ६०,
पृ० ३२ । २ लोहे और किसी धातु का चुल्ला या कुड़ा ।
जैसे, कडाल का कडा । ३. एक प्रकार का कवच ।

कडा^२—वि० [सं० कडु] [स्त्री० कडी] १ कठोर । कठिन । सख्त ।
ठोस । जिसकी सतह दवाने से न दवे या मुश्किल से दवे ।
जो दवाने से जल्दी न दवे । जिसमें कोई वस्तु जल्दी गड न
सके अथवा जिसे सहज में तोड़ वा काट न सकें । जो कोमल
या मुलायम न हो ।

मुहा०—कडा लगाना=लदाव की छत बनाना । कडी छत या
पाटन=लदाव की छत । वह छत जो केवल चूने चोर ईंटों से
पीटी गई हो, कडी वा शहतीर के आधार पर न हो, जैसे,
शिवाले का गुबद ।

२ जिसकी प्रकृति कोमल न हो । रुखा । ३ जो नियम में किसी
प्रकार का शील सकोच न करे । उग्र । दृढ़ । जैसे, कडा
हाकिम । जैसे,—जरा कडे हो जाओ, रुपया मिल जाय ।

मुहा०—कडा पडना=दृढ़ता दिखाना । दबगी से काम लेना ।
न दबना । जैसे,—कडा पडने से काम कही बनता भी है और
कहीं विगडता भी है ।

४ कसा हुआ । चुस्त । जैसे, कडा जूता, कडा वधन, कडी
कमान । ५ जो गीला न हो । कम गीला । जैसे, कडा आटा ।
६ हृष्ट पुष्ट । तगडा । दृढ़ । जैसे,—उनकी अवस्था तो अधिक
है, पर वे अभी कडे हैं । ७ साधारण से अधिक । जोर का ।

प्रचंड । तेज । अधिक । जैसे, कडा भोका, कडी धूप, कडी
भूख, कडी प्यास, कडी मार, कडा दाम, कडी यावाज, कडी
चोट । ८. सहनेवाला । भेलनेवाला । धीर । विचलित न
होनेवाला । जैसे, कडा जी, कडा कलेजा । जैसे—(क) जो कडा
करके सब सहो । (ख) जी कडा करके दवा पी जाओ । ९
जिसका करना सहज न हो । दुष्कर । दुसाध्य । मुश्किल ।
जैसे, कडा काम, कडा सवाल, कडा परचा, कडा परिश्रम,
कडा कोस, कडी मजिल । १० तीव्र प्रभाव डालनेवाला । तेज ।
जैसे, कडी दवा, कडी महक, कडी शराब । ११ असह्य । बुरा
लगनेवाला । जैसे, कडी बात, कडा बरताव । १२ कठोर ।
कर्कश । जैसे, कडा स्वर । कडी बोली ।

कडाई—सज्ञा स्त्री० [हिं० कडा + आई (प्रत्यय)] कडा होने का भाव ।
कठोरता । कडापन । सख्ती ।

कडाकड—कि० वि० [हिं० कडकड] कडकड की लगातार ध्वनि करते
हुए । उ०—धक्को की घड़ाघड अड ग की अडाअड में, ह्वे
रहे कडाकड सुदतो की कडाकडी ।—पद्याकर ग्र०, पृ०
३०७ ।

कडाकडी—वि० [हिं० कडा + कडी] घोर । तुमुल । उ०—सुदर वाढ़ाली
बहे, होइ कडाकड मार ।—सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ७४० ।

कडाका—सज्ञा पुं० [हिं० कडकड] १ किसी कडी वस्तु के टूटने या
टकराने का शब्द । उ०—(क) रेवडी कडाका पापड
पडाका ।—हरिश्चंद्र (शब्द०) । (ख) कुडन के ऊपर कडाके
उठे ठोर ठोर ।—भूपण ग्र०, पृ० ३३० ।

मुहा०—कडाके का=जोर का । तेज । प्रचंड । जैसे, कडाके का
जाड़ा, कडाके की गर्मी, कडाके की भूख ।

२ उपवास । लघन । फाका । जैसे,—कई कडाके के बाद भोजन
खाने को मिला है ।

कडाकुल—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कराकुल' । उ०—पर वे तो नौकरी
कर कडाकुल पक्षियों की भाँति ।—प्रेमघन०, भा० २,
पृ० २६८ ।

कडा प्रसाद—सज्ञा पुं० [हिं० कडाह + सं० प्रसाद] प्रसाद रूप में सिंघो
द्वारा वाँटने के लिये कडाह में बनेवाला हलुआ ।

कडावीन—सज्ञा स्त्री० [तु० करावीन] १ चौड़े मुँह की बटूक जिसमें
बहुत सी गोलियाँ भरकर छोड़ते हैं । २ छोटी बटूक जिसे
कमर में बाँधते हैं । इसे भोका भी कहते हैं । उ०—(क)
कडावीन कर मन को बस कर मारो मोह निदाना ।—कबीर
श०, पृ० ३८ । (ख) अष्टमुजा पर छोड़े कडाविनिया रे
हरी ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४२ ।

कडार^१—वि० [सं०] १ घमडी । २ दबी । ३ घृष्ट [क्रो०] ।

कडार^२—सज्ञा पुं० [सं० कटाह, प्रा० कडाह] दे० 'कडाहा' ।

कडाही—सज्ञा पुं० [सं० कटाह, प्रा० कडाह] दे० 'कडाहा' ।

कडाहा—सज्ञा पुं० [सं० कटाह, प्रा० कडाह] [स्त्री० अल्पा० कडाही]
आँच पर चढ़ाने का लोहे का बहुत बड़ा गोल बरतन जिसके
दो ओर पकड़ने के लिये कुंडे लगे रहते हैं । इसमें पूरी, हलवा
इत्यादि बनाते हैं ।

कठिठियाँ—सज्ञा स्त्री [सं० कण्ठा] १. सीमा । २. घेरा ।

कड़कर—सज्ञा पुं [सं० कडङ्कर] तृण । भूँग आदि द्विदल धान्यों का डल [को०] ।

कड़ग—सज्ञा पुं [सं० कडङ्ग] एक तरह की शराव ।

कड़ंगर—सज्ञा पुं [सं० कडङ्गर] दे० 'कडंकर' [को०] ।

कड़गा—सज्ञा पुं [हिं० कड़ा + अंग + आ (प्रत्य०)] मोटा । तगड़ा । मक्खड़ ।

कड़—वि० [सं०] १. वाणीविहीन । भूंगा । २. कर्कश । ३. श्रुतिकटु । ४. अवीच । मूर्ख [को०] ।

कड़—सज्ञा पुं [देश०] १. कुसुम । वरें । २. कुसुम का बीज ।

कड़^१—सज्ञा स्त्री [सं० कटि, प्रा० कडि] कटि । कमर । उ०—
पाछे अवरंग हल्लियौ कड बांधे नमशेर ।—रा० लं०, पृ० ४१ ।

कड़क^१—सज्ञा पुं [सं०] समुद्री नमक [को०] ।

कड़क^२—सज्ञा स्त्री [हिं० कड़कड़] १. कड़कड़ाहट का शब्द । कठोर शब्द । जैसे,—विजली की कड़क । २. तड़प । दपेट । जैसे,—
वीरों की कड़क । ३. गाज । वज्र । ४. घोड़े की सरपट चाल ।
क्रि० प्र०—जाना ।—दौड़ना ।

५. पटेवाजी का वह हाथ जो विपक्षी के दाहिने पैर को बाँधे और मारा जाय ।

क्रि० प्र०—मारना ।

६. कसक । दर्द जो एक एककर हो । ७. एक एककर और जलन के साथ पेशाब उतरने का रोग ।

क्रि० प्र०—यामना ।—पकड़ना ।

कड़कड़—सज्ञा पुं [अनु०] १. दो वस्तुओं के आघात का कठोर शब्द । घोर शब्द । जैसे,—ताशे या बादल की गरज का । २. कड़ी वस्तु के टूटने या फूटने का शब्द । जैसे,—वह हड्डी को कड़कड़ चबा गया ।

कड़कड़ाता—वि० [हिं० कड़कड़] [स्त्री० कड़कड़ाती] १. कड़कड़ शब्द करता हुआ । २. कड़ाके का । बहुत तेज । घोर । प्रचंड ।
जैसे,—कड़कड़ाता जाड़ा, कड़कड़ाती धूप ।

कड़कड़ाना^१—क्रि० प्र० [सं० कड़] १. कड़कड़ शब्द करना । घोर नाद करना । २. तोड़ना । चूर चूर करना । जैसे,—छाती पर चढ़कर तुम्हारी हड्डियाँ कड़कड़ा देंगे । उ०—जहाँ कड़कड़, बीर-
गजराज हय हड़हड़, घड़हड़ धरनि ब्रह्माड गाज ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ८८६ ।

कड़कड़ाना^२—क्रि० सं० [अनु०] घी को साफ और सोया करने के लिये थोड़ी देर तक हलकी आँच पर तपाना ।

कड़कड़ाहट—सज्ञा स्त्री [हिं० कड़कड़] १. कड़कड़ शब्द गाज । घोर नाद ।

कड़कना—क्रि० प्र० [हिं० कड़कड़] १. कड़कड़ शब्द करना । गड़गड़ाना । जैसे,—बादल कड़कना । २. चिटकने का शब्द होना । ३. जोर से शब्द करना । दपेटना । जैसे,—इतना सुनते ही वे कड़ककर बोले । ४. चिटकना । फटना । दरकना । ५. आवाज के साथ टूटना । ६. कड़े रेशमी कपड़े का तह पर से कट जाना ।

कड़कनाल—सज्ञा पुं [हिं० कड़क + नाल] वह चौड़े मुहड़े की तोप जिससे बड़ा भयकर शब्द होता है और जा शत्रुसेना को डराने और भडकाने के लिये छोड़ी जाती है ।

कड़कवाँका—सज्ञा पुं [हिं० कड़क + बाँका] १. वह जवान जिसकी दपट से लोग हिल जायें । २. नोक भोक का जवान । बाँका तिरछा जवान । छेला ।

कड़कविजली—सज्ञा स्त्री [हिं० कड़क + विजली] १. एक गहना जिसे स्त्रियाँ कान में पहनती हैं । इसकी बनावट चंद्राकार होने से इसे 'चाँदवाली' भी कहते हैं । २. तोड़ेदार विजली जिसकी आवाज बड़ी कड़ी हो । ३. एक यंत्र जिसके द्वारा विजली उत्पन्न करके वात, लकवा आदि के रोगियों के शरीर में दोड़ाई जाती है ।

कड़कस^१—वि० [सं० कर्कश अथवा कड़ा + कस] दे० 'कर्कश' । उ०—उठ कड़कस शत्रवण । उप आए । आतुर उमै अयोध्या आए ।—रघु०, लं० पृ० ११२ ।

कड़का—सज्ञा पुं [हिं० कड़क] कड़ाके की आवाज । उ०—विजुली चमक भई लजियारी । कड़वा घोर सोर अतिभारी ।—घट०, पृ० ३७८ ।

कड़का—सज्ञा पुं [हिं० कड़क] वीरो की प्रशंसा से भरे लड़ाई के गीत जिनको सुनकर वीरो को लड़ने की उत्तेजना होती है । उ०—(क) मिरदग और मुहवग चग सुदग सग वजावही । करताल दै दै ताल मारु क्याल कड़खा गावही ।—गोपाल (शब्द०) । (ख) मोरा बैरी कड़खा गावै मनमय विरद बखानि ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५०२ ।

कड़च्छ^१—सज्ञा पुं [हिं०] दे० 'कलछी' ।—देशी०, पृ० ८२ ।

कड़छा—सज्ञा पुं [हिं०] [स्त्री० कड़छी] लोहे की बड़ी कलछल या कलछी ।

कड़खैत—सज्ञा पुं [हिं० कड़खा + ऐत (प्रत्य०)] १. कड़खा गाने-वाला पुष्प । भाट । चारण । उ०—कोकिला कड़कि उधरत । कड़खैत ही बंदत बदी विरद भवैर आगे वडे ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४७० ।

कड़भ—सज्ञा पुं [सं०] कलत्र । पत्नी । २. नितव । ३. एक प्रकार का पात्र [को०] ।

कड़वध^१—सज्ञा पुं [हिं० कटिबन्ध] किकिणी । करघनी । उ०—छक कड़वध सुचगा छाज । पट अग राजै पुण पीत ।—रघु० लं०, पृ० २५३ ।

कड़वडा^१—वि० [सं० कब्र = कबरा] जिसका कुछ भाग सफेद और कुछ दूसरे रंग का हो । कबरा । चितकबरा । जैसे,—कड़वडी दाढी ।

कड़वडा^२—सज्ञा पुं वह मनुष्य जिसकी दाढी के कुछ बाल काले और कुछ सफेद होते हो ।

कड़वा—सज्ञा पुं [हिं० कड़ा] कोई गोल वस्तु, जैसे पुराना तवा । कड़ाही आदि जो हल के फाल के ऊपर इसलिये बाँध दी जाती है कि वह बहुत गहरा न धसे ।

कड़वी—सज्ञा स्त्री [हिं० कड़वा] दे० 'कड़वी' । उ०—कही वल्लो

कठिना^२—वि० भोजन पकाने के मिट्टी के बर्तन सबधी [को०] ।

कठिनाई(७)—सज्ञा स्त्री० [सं० कठिन+हि० आई (प्रत्य०)] १ कठोरता । सख्ती । २. मुश्किल । क्लिष्टता । ३. असाध्यता । दुःसाध्यता ।

कठिनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कानी उंगली । छिगुनी । कनिष्ठिका । २ खडिया मिट्टी [को०] ।

कठिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० कठिनिका ।

कठियला—संज्ञा स्त्री० [हि० काठ+यल (प्रत्य०)] खडाऊँ । उ०—कठियल दिय सिर धरिय, प्रणाम कर, झिल गय बल तिन नगर मजार ।—रघु० रू०, पृ० १२० ।

कठिया^१—वि० [हि० काठ] जिसका छिलका मोटा और कड़ा हो । जैसे,—कठिया बादाम, कठिया गेहूँ, कठिया कसेरू ।

यौ०—कठिया गेहूँ = एक गेहूँ जिसका छिलका लाल और मोटा होता है । इसे 'ललिया' भी कहते हैं । इसके आँटे में चोकर बहुत निकलता है ।

कठिया^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की भाँग जो झेलम नदी के किनारे बहुत होती है ।

कठियाना—क्रि० अ० [हि० काठ से नाम०] काठ की तरह कड़ा हो जाना । सूखकर कड़ा हो जाना ।

कठी—संज्ञा स्त्री० [हि० काठ] मशाल । मशाल की लकड़ी । उ०—खेतो में पानी लगाने के लिये जो लोग कठी लिए रात रात मर भूतों की भाँति घूमते दिखाई पड़ते हैं ।—किन्नर०, पृ० ६६ ।

कठोर(७)—संज्ञा पुं० [सं० कठोरव] सिंह ।—(हि०) ।

कठुग्राना—क्रि० अ० [हि० काठ से नाम०] काठ सा कठोर या कड़ा हो जाना ।

कठुर—वि० [सं०] कूर । कठोर [को०] ।

कठुला—संज्ञा पुं० [हि० कठ=ला० (प्रत्य०)] १. गले की माला जो बच्चों को पहनाई जाती है । दे० 'कठला' । उ०—कठुला कंठ ब्रज केहरि नख राजै लसि बिदुका मृगमद भाल । देखत देत असीस ब्रज जन नर नारी चिरजीवो जसोदा तेरो बाल ।—सूर (शब्द०) । २. माला । हार । उ०—(क) भलं भूँजि कै नेक सु खाक सी कै दुख दीरघ देवन के हरिहौ । सितकठ के कठन को कठुला दसकठ के कंठन को करिहौ ।—केशव (शब्द०) । (ख) मधि हीरा दुहँ दिशि मुकुतावलि कठुला कठ विराजा । वधु कबु कहँ भुज पसारि जनु मिलन चहुत द्विज राजा ।—रघुराज (शब्द०) ।

कठुवाना—क्रि० अ० [हि० काठ से नाम०] १. काठ की तरह कड़ा हो जाना । सूखकर कड़ा हो जाना । २. ठंडक से हाथ पैर आदि का ठिठुरना ।

कठूमर—संज्ञा पुं० [सं० काष्ठ/उडुम्बर, हि० कठ+ऊसर] जंगली गूलर जिसके फल बहुत छोटे छोटे और फीके होते हैं ।

कठेठ, कठेठा(७)—वि०, पुं० [हि० काठ+एठ(प्रत्य०), हि० काठ+ऐठा (प्रत्य०)] [स्त्री० कठेठी] १ कड़ा । कठोर । कठिन । दृढ़ । सख्त । उ०—वैर कियो शिव चाहत हौं तव लौं भरि बाह्यो

कटार कठेठो ।—भूपण (शब्द०) । २ अधिक बलवाला । दृढ़ांग । तगड़ा ।

कठेठी—वि०, स्त्री० [हि० कठेठा] कठोर । कड़ी । उ०—(क) माखन सो मेरे मोहन को मन काठ सी तेरी कठेठी ये बात ।—केशव (शब्द०) । (ख) माखन सी जीभ मुख कज सो कुँवरि, कहु काठ सी कठेठी बात कसे निकरति है ।—केशव (शब्द०) । (ग) जी की कठेठी अमेठी गँवरिन नेकु नहीं हँसि कै हिय हेरी ।—ठाकुर (शब्द०) ।

कठेर^१—वि० [सं०] कष्टग्रस्त । पीडित [को०] ।

कठेर^२—संज्ञा पुं० निर्धन । रक [को०] ।

कठेल—संज्ञा पुं० [हि० काठ+एल (प्रत्य०)] १ धुनियों की कमान जिसमें ऊँ या रूई धुनते समय धुनकी को बाँधकर लटकाते हैं । २. कसेरो का काठ का एक औजार जिसमें एक गड्ढा होता है । इस गड्ढे में धातु का पात्र रखकर उसे गोत्र करते हैं ।

कठैला—संज्ञा पुं० [हि० काठ+ऐला (प्रत्य०)] [स्त्री० कठैली] कठीता । काठ का वरतन ।

'कठैली'—संज्ञा स्त्री० [हि० कठैला] बाठ का एक छोटा बतन । कठैला की तरह छोटा बर्तन ।

कठोदर—संज्ञा पुं० [हि० काठ+उदर] पेट का एक रोग जिसमें पेट बढ़ता और कड़ा रहता है ।

कठोर—वि० [सं०] १ कठिन । सख्त । कड़ा । २ निर्दय । निष्ठुर । बरहम ।

यौ०—कठोरगर्भा = वह स्त्री जिसका गर्भ पूर्ण विकसित हो । कठोरहृदय ।

कठोरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कड़ाई । सख्ती । २ निर्दयता । निष्ठुरता । बरहमी ।

कठोरताई(७)—संज्ञा स्त्री० [हि० कठोरता+ई (प्रत्य०)] (कठोरता का विगड़ा हुआ रूप) १ कठोरता । कठिनता । २ निर्दयता ।

कठोरपन—संज्ञा स्त्री० [हि० कठोर+पन (प्रत्य०)] १ कठोरता । कड़ापन । सख्ती । २ निर्दयता । निष्ठुरता । उ०—अन कठोरपन धरे शरीर । सिखइ धनुष विद्या वर वीर ।—तुलसी (शब्द०) ।

कठोरत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कठोरपन' । उ०—तब उनका वास्तविक, स्थूल, अप्रसाध्य, अव्याकृत कठोरत्व प्रकट हो जाता है ।—विश्वप्रिया पृ० ६० ।

कठोल—वि० [सं०] कठोर [को०] ।

कठीत—संज्ञा स्त्री० [सं० काष्ठ+पात्र, हि० कठ+औत (प्रत्य०)] छोटा कठीता ।

कठीता—संज्ञा पुं० [सं० काष्ठ+पात्र, हि० कठ+औता (प्रत्य०)] काठ का एक बड़ा वरतन जिसकी दारी बहुत ऊँची और ढालुमाँ होती है । उ०—केवट राम रजयसु पावा । पानि कठीता भरि लै आवा ।—तुलसी (शब्द०) ।

कठीती—संज्ञा स्त्री० [हि० कठीता] छोटा कठीता ।

कठुना(७)—क्रि० अ० [हि०] दे० 'कठना' ।

कठमुल्लापन—सज्ञा पुं० [हि० कठमुल्ला + पन (प्रत्य०)] कट्टरता ।
दुराग्रह । उ०—याद रखिए कठमुल्लापन जिस तरह धर्म में
घातक सिद्ध हुआ है उसी तरह साहित्य में भी सिद्ध
होगा ।—कृकुम्भ (भू०), पृ० ८ ।

कठमूरति०—सज्ञा स्त्री० [हि० काष्ठ + मूर्ति] १. काठ की मूर्ति ।
२. जगन्नाथ जी की मूर्ति । उ०—गयो जहाँ कठमूरति आहीं ।
कवीर का रूप भयो तेहि पाही ।—कवीर सा०, पृ० ७० ।

कठर—वि० [सं०] सख्त । कड़ा [को०] ।

कठरा^१—सज्ञा पुं० [सं० काष्ठगृह, हि० कटहरा] दे० 'कटहरा' वा
'कटघरा' ।

कठरा^२—सं० पुं० [हि० कठ + रा (प्रत्य०)] १ काठ का सँदूक ।
२ काठ का वरतन । कठोता ।

कठरी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कठली] दे० 'कठली' ।

कठरेती—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कठ + रेती] काठ या लकड़ी रेतने का
औजार ।

कठला^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कंठ + ला (प्रत्य०)] एक प्रकार की माला
या कंठा जैसी चीज ।

विशेष—यह वच्चो को पहनाया जाता है और इसमें चाँदी या सोने
की चौकियाँ तागे में गुथी होती हैं । बीच बीच में बाघ के नख,
नजरबटून, तावीज आदि नजर से वचाने के लिये गुथे रहते हैं ।
कठलोनी०—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कठ + लवनी] (पुं० कठलोना)
कठोती । कठडी । उ०—कठलोनि बीस सोवन मटाइ । पल्लान
ऊच दावन चढाइ ।—पृ० २१०, १४ । १२३ ।

कठवत—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कठोता' ।

कठवल्ली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कृष्ण यजुर्वेद की कठ शाखा की एक
उपनिषद् ।

विशेष—इसमें दो अध्याय हैं । पहले अध्याय में नचिकेता की
गाथा है । नचिकेता के पिता 'विश्वजित्' यज्ञ करके सर्वस्वदान
देते समय बूढ़ी गाय देने लगे । पुत्र ने पूछा—पिता ! मुझे
किसको दोगे ? तीन बार पूछने पर पिता ने चिढ़कर कहा—
'तुम्हें यमराज को दोगे' । इतना सुनते ही लड़का यमलोक
पहुँचा । वहाँ यमराज ने उसे ब्रह्म विद्या का उपदेश दिया,
उसी का वर्णन पहले अध्याय में है । दूसरे अध्याय में ब्रह्म का
लक्षण बतलाया गया है ।

कठवा^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० कठ + वा (प्रत्य०)] १ काठ । २ तुलसी-
दास (जा० तुलसी शब्द के कारण) । उ०—सार
सार मव अँधरा कहि गा कठवौ कहिस अनूठी । वची खुची
सब जोलहा कहि गा अवर कहै सब भूठी (लोक०) ।

कठसरैया^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कटसारिका] दे० 'कटसरैया' ।

कठसेमल—सञ्ज्ञा पुं० [हि० काठ + सेमल] सेमल की जाति का एक
प्रकार का वृक्ष ।

कठसोला—सञ्ज्ञा पुं० [हि० काठ = सोला] सोला की जाति की एक प्रकार
की भाड़ी या छोटा पीघा ।

विशेष—यह प्रायः सारे भारत, स्पाम और जापान में होता है ।
वर्षा ऋतु में इसमें सुंदर फल लगते हैं ।

२-२६

कठहंडी०^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० काष्ठ + हण्डी] काठ की हंडी जो अचार
आदि रखने के काम आती है । उ०—खँहरा खठि खँडोई खंडी ।
परी एकोतर सँ कठहंडी ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३१३ ।

कठहँसी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० काठ + हँसी] जवरदस्ती की हँसी ।
वनावटी हँसी । कठोर हँसी । व्यग हँसी । उ०—बावन कठ-
हँसी हँसते हुए कहता —मैला०, पृ० २६८ ।

कठहुज्जत—सञ्ज्ञा पुं० [हि० काठ + अ० हुज्जत] व्यर्थ का झगड़ा या
वादविवाद । वर्तगड़ ।

कठा^१०—कि० वि० [सं० कथम्] दे० 'कहा' । उ०—(क) कठा तक
जीव हिज जाणै । रघु० रू० पृ० २४३ ।—(ख) कोटडियो बाघो
कठै, आसो डामो आज ।—वांकी० ग्र०, भा० १, पृ० ५८ ।

कठा^२०—वि० [सं० कठ + प्रा० कट्ठ, हि० कठ + आ (प्रत्य०)]
कष्टयुक्त । दुखी । उ०—अस परजरा विरह कर कठा ।
मेघ स्याम भै धुआँ जो उठा—जायसी ग्र० (गुप्त), १—
पृ० ३७० ।

कठारा०^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कण्ठ + किनारा + हि० आरा (प्रत्य०)]
नदी या ताल का किनारा ।

कठारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कठ + आरी (प्रत्य०)] १ काठ का
वरतन । २ कमडल । उ०—उमके ऊपर सब साधुओ ने अपनी
गुदडी तथा कठारी इत्यादि लाद ली ।—कवीर मं०, पृ० १५४ ।

कठिजर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कठिञ्जर] तुलसी वृक्ष [को०] ।

कठिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] सेतखरी । खरिया [को०] ।

कठिन^१—दे० [सं०] १ कडा । सख्त । कठोर । २. मुश्किल । दुष्कर ।
दुःसाध्य । ३. क्रूर । निर्दय (को०) । ४. तीक्ष्ण । उग्र (को०) ।
५. कष्ट देनेवाला । कष्टकारक (को०) ।

कठिन^२०—सज्ञा स्त्री० [सं० कठिन] १ कठिनता । २ कष्ट । सकट ।
उ०—महा कष्ट दस मास गर्भ वसि अघोमुख सीस रहाई ।
इतनी कठिन सही तब निकस्यो अजहूँ न तू समुझाई ।—सूर
(शब्द०) ।

कठिन^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] भाड़ी [को०] ।

कठिनई०—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० कठिन] १ कड़ाई । २ कठोरता ।
उ०—(क) ऊधो जो तुम हमहि बतायो । सो हम निपट
कठिनई करि करि या मन को समुझायो ।—सूर (राधा०),
पृ० ५५३ । (ख) पाई तुम मृदुताई भई कठिनई द्वरि ।—
दीन० ग्रं०, पृ० ६२ । ३ सकट ।

कठिनता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० कठिन] १ कठोरता । कडापन । सखती ।
२. मुश्किल । असाध्यता । ३ निर्दयता । वेरहमी । ४.
मजबूती । दृढता ।

कठिनताई०—सज्ञा स्त्री० [सं० कठिन + हि० ताई (प्रत्य०)] दे०
'कठिनाई' या 'कठिनता' ।

कठिनत्व—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कठिनता' ।

कठिनपृष्ठ—सज्ञा पुं० [सं०] दे० कच्छप । कछुआ [को०] ।

कठिना^१—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ चीनी की बनी मिठाई । २ भोजन
पकाने का मिट्टी का बरतन [को०] ।

कठघरा—सज्ञा पुं० [हिं० काठ + घर] १ काठ का जंगलदार घर । २ बड़ा पित्रडा जिसमें जग १ जानवर रखा जा सके । दे० 'कठघरा' । उ०—जब जिम कठघरे से नीचे उतरे तो मूखी जो आँखों में आँसू भरे उनके पास आए ।—काया०, पृ० २१५ ।
कठघोडा—सज्ञा पुं० [हिं० काठ + घोडा] १ काठ का बना घोडा । खेत्तभागे के लिये बना काठ का घोडा । १ लिल्ली घोडी [को०] ।

कठजामुन—सज्ञा पुं० [हिं० कठ + जामुन] छोटी और कसैली जामुन जो गला पकड़ती है । प्रटिया जामुन ।

कठना(ठु)†—क्रि० प्र० [सं० कर्ण, पा० कडन] दे० 'कटना' । निकटना । आगे बढ़ना । उ०—कठनी धे घटा करे कानाढण्टि समुहे आयहो समुहे ।—वेनि०, दू० १८२ ।

कठडा—सज्ञा पुं० [हिं० कठघरा] १ कठघरा । कठहरा । २ काठ का बड़ा सट्टा । ३ काठ का बड़ा बरतन । कठौता ।

कठतार(ठु)—सज्ञा पुं० [हिं० काठ + तार] दे० 'करताल' । उ०—तंसिय मृदु पद पटरनि चटकनि कठतारन की । नद प्र०, पृ० २२ ।

कठताल—सज्ञा पुं० [हिं० काठ + ताल] दे० 'करताल' । उ०—बजत चटक कठताल, तार अस मृदुल मृजर डकार ।—नद० प्र०, पृ० २३३ ।

कठपुतला—सज्ञा पुं० [हिं० काठ + पुतला] १ काठ का पुतला । २ वह व्यक्ति जो दूसरों के निर्देश या संकेत पर किसी महत्वपूर्ण पद पर रहकर कार्य करे (ना०) ।

कठपुतली—सज्ञा पुं० [हिं० काठ + पुतली] १ काठ की बनी हुई पुतली । काठ की गुड़िया या मूर्ति जिसको तार द्वारा नचाते हैं ।

यौ०—कठपुतली का नाच = एक खेल जिसमें काठ की पुतलियाँ तार या थोड़े के बाल के सहारे नचाई जाती हैं । २ वह व्यक्ति जो दूसरे के कहे पर काम करे, अपनी बुद्धि से कुछ न करे । जैसे,—वे तो उन लोगों के हाथ की कठपुतली हो रहे ।

यौ०—कठपुतली सरकार = वह सरकार जो किसी बाह्य शक्ति द्वारा प्रेरित हो ।

कठप्रेम—सज्ञा पुं० [हिं० कठ + प्रेम] वह प्रेम जो प्रिय के उदासीन होने पर भी किया जाय । उ०—नेह कथें सठ नीर मथें, हठ कै कठप्रेम को नेम निवाहैं ।—घनानंद, पृ० ११८ ।

कठफुला—सज्ञा पुं० [हिं० काठ + फूल] कुकुरमुत्ता । खूमी ।

कठफोडवा—सज्ञा पुं० [हिं० काठ + फोडना] खाकी रंग की एक चिड़िया ।

विशेष—यह अपनी चोंच से पेड़ों की छान को छेदती रहती है और छाल के नीचे रहनेवाले कीड़ों को खाती है । इसके पजे में दो [उंगलियाँ] आगे और दो पीछे होती हैं । जीम इसकी लंबी कीड़े की तरह की होती है । यह कई रंग का होता है । यह मोटी झाड़ों पर पंजों के बल चिपक जाता है और चक्कर लगाता हुआ चढ़ता है । जमीन पर भी कूँ कूदकर कीड़े चुगता है । इसकी बहुत छोटी होती है ।

कठफोडा—सज्ञा पुं० [हिं० काठ + फोडना] दे० 'कठफोडवा' ।

कठफोरी—सज्ञा पुं० [हिं० काठ + फोड़] दे० 'कठफोडवा' ।

कठवदा—सज्ञा पुं० [हिं० काठ + सं० वन्ध] काठ का ढाँचा या ठाठ ।

कठवधन—सज्ञा पुं० [हिं० काठ + सं० वन्धन] काठ की वह वेडी जो हाथी के पैर में डाली जाती है । अँदुत्रा ।

कठवनिया—सज्ञा पुं० [हिं० काठ + वनिया] लोभी वनिया । हीन वनिया ।

कठवाँस—सज्ञा पुं० [हिं० काठ + वाँस] पास पास गाँवोंवाला वाँस ।

कठवाँसी—सज्ञा स्त्री० [हिं० काठ + वाँस + ई (प्रत्य०)] दे० 'कठवाँसी' ।

कठवाप—सज्ञा पुं० [हिं० काठ + वाप] सोतेला वाप ।

विशेष—यदि कोई पुरुष किसी ऐसी विधवा से विवाह करे जिसके पहले पति से कोई संतति हो तो वह पुरुष (विधवाविवाह-कर्ता) विधवा की उस संतति का कठवाप कहलाएगा ।

कठवेर—सज्ञा पुं० [हिं० काठ + वेर] बूँट नाम का पेड़ या झाड़ जिसकी छाल चमड़ा रँगने के काम में आती है । वि० दे० 'बूँट' ।

कठवेल—सज्ञा पुं० [हिं० काठ + वेल] कैय का पेड़ ।

कठवैठी—सज्ञा पुं० [हिं० कठ + वैठी] पहली । बुझीवल ।

क्रि० प्र०—करना ।—बुझाना ।—कहना ।

कठवैद—सज्ञा पुं० [हिं० काठ + सं० वैद्य] ग्रनाही वैद्य । ग्रताई वैद्य ।

कठवैस—सज्ञा पुं० [हिं० काठ + वैस] वैसवाड़े के बाहर का वैस क्षत्रिय । वे क्षत्रिय जो अपने को वैस कहते हैं पर वैसवाड़े में रहते नहीं । हीन क्षत्रिय ।

कठभगत—सज्ञा पुं० [हिं० काठ + सं० भक्त] ढोंगी भक्त । बचक भगत । भक्तों के लक्षण मात्र धारण करनेवाला व्यक्ति ।

कठभेमल—सज्ञा पुं० [हिं० काठ + भेमल] एक प्रकार का छोटा वृक्ष । कक्की । फिरसन ।

विशेष—प्रायः सारे उत्तरी भारत और बरमा में यह पाया जाता है । यह वर्षा ऋतु में फलता और जाड़े में फलता है । इसकी पत्तियाँ प्रायः चारों के काम में आती हैं ।

कठमर्द—सज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०] ।

कठमलिया—सज्ञा पुं० [हिं० काठ + माला + इया (प्रत्य०)] १ काठ की माला या कांड़ी पहननेवाला वैष्णव । २ भूतमूठ की पहननेवाला । बनावटी साधु । भूठा सत । उ०—कर्मठ कठमलिया कहे, ज्ञानी ज्ञानविहीन । तुलसी त्रिपथ विहाय गो रामदुवारे दीन ।—तुलसी (शब्द०) ।

कठमस्त, कठमस्ता—वि० [हिं० कठ + फा० मस्त] १ सडमुसड । मस्त । २ व्यभिचारी ।

कठमस्ती—सज्ञा स्त्री० [हिं० कठमस्त] मुसडापन । मस्ती ।

कठमाटी—सज्ञा स्त्री० [हिं० काठ + माटी] कीचड़ की मिट्टी जो बहुत जल्दी सूखकर कड़ी हो जाती है ।

कठमुल्ला—सज्ञा पुं० [हिं० काठ + प्र० मुल्ला] १. कटुरपथी मौनवी । २ अपने मत या सिद्धांत के प्रति अत्यंत आग्रहशील या दुराग्रही व्यक्ति ।

कटोरी—संज्ञा स्त्री [हि० कटोरा का श्रृंखला] १ छोटा कटोरा । प्याली । बेलिया । उ०—कटोरी सा मुँह वाकर कहने लगे कि भाई । प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०२ । २ अंगिया का वह जुड़ा हुआ भाग जो स्तन के नाप का होता है और जिसके भीतर स्तन रहते हैं । ३ कटोरी के आकार की वस्तु । ४ तनवार की मूठ के ऊपर का गोल भाग । ५ फूल में बाहर की ओर हरी पत्तियों का कटोरी के आकार का वह अंश जिसके अंदर पुष्पदल रहते हैं ।

कटोल^१—वि० [सं०] कड़वा । बटु [को०] ।

कटोल^२—संज्ञा पुं० १ बड़वापन । बटुता । २ चाडाल । निम्न वर्ग का एक व्यक्ति [को०] ।

यौ०—कटोलवीणा = एक प्रकार की वीणा जिसे चाडाल बनाते थे ।

कटौती—संज्ञा स्त्री [हि० काटना] १. किसी रकम को देते हुए उसमें से कुछ वैधा हक या धर्मार्थ द्रव्य निकाल लेना । जैसे—पल्लेदार या ठेकेदार का हक, डंडावन, मंदिर, गोशाला आदि । २ काटना या कमी करना ।

यौ०—कटौती का प्रस्ताव = किसी विभाग के कार्य आदि के विषय में अवलोक्य व्यक्त करने के अभिप्राय से उनकी माँग से घटाकर छोटी रकम देने का प्रस्ताव ।

कटौती—संज्ञा पुं० [हि० कटवाँसी] दे० 'कटवाँसी' ।

कट्टर^१—वि० [हि० काटना] १ काट खानेवाला । कटहा । उ०—मरन जानि भूतगर कट्टर चढे तुपार ।—पृ० रा०, २५ । ५७८ । २ अपने विश्वास के प्रतिकूल बात को न सहनेवाला । अंधविश्वासी । ३ हठी । दुराग्रही ।

कट्टहा—संज्ञा पुं० [सं० कट = शब्द + हि० हा (प्रत्यय)] महाब्राह्मण । कट्टिया महापात्र । उ०—कट्टहो (महाब्राह्मणों) को दान देने से इन तीनों बातों में से एक का भी साधन नहीं होता ।—श्यामविहारी (शब्द०) ।

कट्टा^१—वि० [हि० काठ] १ मोटा ताजा । हट्टाकट्टा । २ बलवान । बली ।

कट्टा^२—संज्ञा पुं० [देश०] सिर का कीड़ा । जूँ । डील ।

कट्टा^३—संज्ञा पुं० [देश०] कच्चा । जवड़ा ।

मुहा०—कट्टे लगना = (१) किसी दूसरे के कारण अपनी वस्तु का नष्ट होना या उसका दूसरे के हाथ लगना । स्वामी की इच्छा के विरुद्ध किसी वस्तु का दूसरे के हाथ आना । जैसे,—इतने दिनों की रखी चीज आज तेरे कट्टे लगी । (२) किसी ऐसी वस्तु का नष्ट होना या हाथ से निकल जाना जो दूसरे की नजर में खटकती हो । जैसे,—मेरे पास एक मकान बचा था, वह भी तेरे कट्टे लगा ।

कट्टा^४—वि० [हि० 'कटना का भूतकालीन रूप'] (१) काटा हुआ । कटा हुआ । जैसे,—मुड़कट्टा वीर ।

कट्टारी—संज्ञा स्त्री [देश०] कटारी । छुरी ।—देशी०, पृ० ८१ ।

कट्टार—संज्ञा पुं० [सं०] कटार [को०] ।

कट्टारिका—संज्ञा स्त्री [सं०] कसाई की छुरी [को०] ।

कट्ठा—संज्ञा पुं० [हि० काठ] १ जमीन की एक नाप जो पाँच हाथ चार अंगुल की होती है ।

विशेष—इससे खेत नापे जाते हैं । यह जरीब का बीसवाँ भाग है । कहीं कहीं विस्वासी को भी कट्टा कहते हैं ।

२ वातु गलाने की भट्ठी । दक्का । ३ अन्न कूटने का एक वस्तु जिसमें पाँच सेर अन्न आता है । ४ एक पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत कड़ी होती है । ५ लाल गेहूँ जो प्रायः मध्यम श्रेणी का होता है ।

कट्ठीर^१—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठीरव] दे० 'कठीर' । उ०—लोहानों कट्ठीर सेन वधे भुग्न लुक्की ।—पृ० रा०, १२।७७

कट्फन—संज्ञा पुं० [सं०] कायफन [को०] ।

कट्या^१—संज्ञा पुं० [हि०] महाब्राह्मण । कट्टहा । उ०—कट्या को खाय उकट्या को न खाय (लोको०) ।

कट्याना^१—क्रि० अ० [हि० कटियाना] [स्त्री० कठयानी] कटियाना । कंटकित होना । रोमांचित होना । उ०—पूछे कथी रुखी परति सगवग रही सनेह । मन मोहन छवि पर कटी कहै कटयानी देह ।—विहारी (शब्द०) ।

कट्टर^१—वि० [सं०] बलवान् हेय [को०] ।

कट्टर^२—संज्ञा पुं० [सं०] १ टाढ़ । २ चटनी । ३ अचा । [को०] ।

कठगर—वि० [हि० काठ + अग] मोटा और कड़ा ।

यौ०—काठकंठगर = कड़ी और कार्य में न आने योग्य वस्तु ।

कठजर^१—संज्ञा पुं० [सं० काष्ठ + पिञ्जर] काठ का पिञ्जरा । उ०—अठारह भार कोट कठजरा ।—गोख० पृ० १२१ ।

कठ^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक ऋषि । २ एक यजुर्वेदीय उपनिषद् जिसमें यम और नचिकेता का संवाद है । ३ कृष्ण यजुर्वेद की एक शाखा । ४ कठ का अनुगामी और शिष्य वर्ग [को०] ।

कठ^२—संज्ञा पुं० [सं० काष्ठ हि० काठ का समस्त रूप] १ काठ । लकड़ी । जैसे, कठपुतली, कठकीली (केवल समस्त पदों में) । २. एक पुराना वाजा जो काठ का बनता था और चमड़े से मड़ा जाता था । ३ (केवल समस्त पदों में फल आदि के लिये) जगती । निकृष्ट जाति का । जैसे, कठकेला, कठजामुन, कठमूर ।

कठकरेजी^१—वि० [हि० काठ + कलेजा] दे० 'कठकरेजी' । उ०—वह तो बहुत दिनों से जानता था इस बात को कि कचहरीवाने काम पढ़ने पर कैसे कठरेज बन जाते हैं ।—गरावी, पृ० ६० ।

कठकरेजी^२ कठकलेजी—वि० [हि० काठ + करेजी] १ कड़े दिल-वाला । हिम्मती । साहसी । उ०—सच कहूँ, तम बड़े कठ कलेजी हो । नान०, भा० १, पृ० १८ । २ निर्मम । क्रूर । हृदयहीन ।

कठकीली—संज्ञा स्त्री [हि० काठ + कीली] पच्चड ।

कठकेला—संज्ञा पुं० [हि० काठ + केला] एक प्रकार का केला जिसका फल रुखा और फीका होता है ।

कठकोला—संज्ञा पुं० [हि० काठ + कोलना = खोदना] कठफोड़वा ।

कठगुलाव—संज्ञा पुं० [हि० कठ + गुलाव] एक प्रकार का जंगली गुलाव जिसके फूल छोटे छोटे होते हैं ।

विशेष—इसका प्रयोग पूर्य में होता है जहाँ दही को स्त्रीतिग बोधते है।

कटुकद—सज्ञा पुं० [सं० कटुकद] १ अदरक। प्राची। २ लहसुन। लशुन। ३ मूली।

कटुक—वि० [सं०] १ कटुप्रा। कटु। २ जो चित्त को न माने। जो बुरा लगे। उ०—अरी मधुर अधरान ते कटुक वचन जनि बोल। तनक छटाई ते पटै लखि मुपरन को मोल।—रसनिधि (शब्द०)।

कटुकता—सज्ञा स्त्री० [सं०] कर्कशता। उजड़पन [को०]।

कटुकत्रय—सज्ञा पुं० [सं०] मिर्च, मोठ और पीपल, इन तीन वस्तुओं का त्रय।

कटुकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटकी।

कटुकीट—सज्ञा पुं० [सं०] मच्छर। डाँस। मगा।

कटुप्रवाण—सज्ञा पुं० [सं०] टिट्टिम [को०]।

कटुप्रयि—सज्ञा स्त्री० [सं० कटुप्रयि] १. सोंठ। २ पिपरा मूल।

कटु चातुर्जातिक—सज्ञा पुं० [सं०] चार कड़वी वस्तुओं का समूह, अर्थात् इलायची, नज, तजपात और मिर्च।

कटुच्छद—सज्ञा पुं० [सं०] तगर वृक्ष [को०]।

कटुच्छदक—सज्ञा पुं० [सं० कटुच्छदक] उत्कट या तीक्ष्ण गंध अथवा स्वादवाला कद। जैसे,—अदरक, मूली, लहसुन, प्याज आदि [को०]।

कटुता—सज्ञा स्त्री० [सं०] कड़वापन। कड़वाई।

कटुतिक्कन—सज्ञा पुं० [सं०] १ भूनित्र। चिरायता। २ शण का पीटा। मन्ई [को०]।

कटुतिक्ता—सज्ञा स्त्री० [सं०] नितनीकी [को०]।

कटुतुटी—संज्ञा स्त्री० [सं० कटुतुटी] कटु नरोई [को०]।

कटुतुवीटी—संज्ञा स्त्री० [सं० कटुतुवीटी] तितलीकी [को०]।

कटुत्व—संज्ञा पुं० [सं०] कड़वापन।

कटुदला—संज्ञा स्त्री० [सं०] कर्कटी नाम का पीछा [को०]।

कटुपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मड माँड। सत्यानाशी [को०]।

कटुफन—संज्ञा पुं० [सं०] कायफल।

कटुवीजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी पीपल [को०]।

कटुभग—संज्ञा पुं० [सं० कटुभग] मोठ [को०]।

कटुभगा—संज्ञा स्त्री० [सं० कटुभगा] एक प्रकार की जंगली गाँव जिसकी पत्तियाँ खाने में प्रयुक्त कड़वी होती हैं [को०]।

कटुमद्र—संज्ञा पुं० [सं०] अदरक। प्राची।

कटुभापी—वि० [सं० कटुभापिन्] कड़वी बात प्रोत्तेवाता [को०]।

कटुमज्जरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कटुमज्जरिका] अणामार्ग। चिचिडा [को०]।

कटुर—संज्ञा पुं० [सं०] छाछ। मट्ठा [को०]।

कटुर^२—वि० घुगिन। हेय [को०]।

कटुरस—संज्ञा पुं० [सं० कटु + रस] छह प्रकार के रसों में से एक। कड़वा रस [को०]।

कटुरस^२—वि० जिसका रस या स्वाद कड़वा हो [को०]।

कटुरव—संज्ञा पुं० [सं०] मंडक। दादुर।

कटुवचन—संज्ञा पुं० [सं० कटु + वचन] कड़वी बात। उ०—अति कटुवचन कहति कँकेयी।—मानस, २.०।

कटुविपाक—वि० [सं०] पाचन में अम्लरसवर्धक [को०]।

कटुस्नेह—सज्ञा पुं० [सं०] मफेद सरसो [को०]।

कटुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] कड़वी बात। अप्रिय बात।

कटूमर—सज्ञा स्त्री० [सं० कटु + उदुम्बर अथवा हिं० कट या कठ + ऊमर] जंगली गुनर का वृक्ष। कटगुनर।

कटूरना—क्रि० अ० [हिं० कटु + घूरना] किसी को घुरे भाव में देखना। तीक्ष्ण दृष्टि से देखना।

कटेरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काँटा] भटकटैया।

कटेनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कपास जो बग़ात प्रात में बहुतायत में होती है।

कटेहर—संज्ञा पुं० [हिं० काठ + घर] हल के नीचे की वह लकड़ी जिसमें फाल रेंदाया रहता है। खोंपा।

कटेया^१—वि० [हिं० काठ × ऐया (प्रत्य०) काटना] १ काटनेवाला। जो काट डाले। उ०—एक कृपाल तहाँ तुलसी दनरत्य के नदन बदि कटैया।—तुलसी (शब्द०)। २ फसल काटनेवाला।

कटेया^२—संज्ञा पुं० १ काटनेवाला व्यक्ति। २. फसल काटनेवाला आदमी।

कटेया^३—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्टक] भटकटैया। उ०—दूध आक को पात कटैया, काल अग्निनी की जान।—चरण० बानी, पृ० २६।

कटेया^४—संज्ञा स्त्री० [हिं० कटिया] लवनी। फसल की कटाई।

कटैला—संज्ञा पुं० [देश०] एक कीमती पत्थर। उ०—‘नोहे और फिटकरी की वहाँ खानें हैं, और माणक, लहमनिया, नीम, कटैला, गोमेदक, मिल्होर नदियों के बानू में मिलता है।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

कटोर—संज्ञा पुं० [सं०] मिट्टी का एक छोटा छिछला पात्र या बरतन। कभोगा [को०]।

कटोरदान—संज्ञा पुं० [हिं० कटोरा + दान (प्रत्य०)] वीनल का एक ढक्कनदार बरतन जिसमें तैयार भोजन आदि रखते हैं।

कटोरा—संज्ञा पुं० [हिं० काँसा + ओरा (प्रत्य०)] कंसोरा या म० कटोरा] एक खुले मुँह, नीची दीवार और चौड़ी पेंदी का छोटा बरतन। साधु का प्याला। पता।

मुहा०—कटोरा चलाना = मन्थन में चोर या माल का पता लगाने के लिये कटोरा खसकाना।

विशेष—इसमें एक आदमी मन्थ पड़ता हुआ पीनी सरसो डालता जाता है और ओरों से कटोरे को खूब दबाने का लिये कहता जाता है। कटोरा अधिक दाब पड़ने में किसी न किसी ओर खसकता जाता है। लोगों का विश्वास है कि कटोरा वहीं रुकता है जहाँ चोर या माल रहता है। कटोरा ती आँख = बड़ी बड़ी और गोल आँख।

कटोरिया^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० कटोरा + इया (प्रत्य०)] १० ‘कटोरी’।

कटाह—संज्ञा पुं० [सं०] १ कड़ाह। बड़ी कड़ाही। २ कछए का खपडा। ३. कुआँ। ४. नरक। ५. भोपडी। ६. बेंस का पेंडवा जिसके नीचे निकल रहे हो। ७. दूह। ऊँचा गीला। ८. कुआँ। कूप (को०)। ९. शूर्प। सूप (को०)। १०. टूटे घड़े का टुकड़ा या खंड (को०)। ११. पुंज। समूह। ढेर राशि (को०)। १२. नरक (को०)।

कटाहक—संज्ञा पुं० [सं०] कड़ाह। कड़ाहा।

कटिग—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. कतरन। २. किसी विवरण का काटकर सकलित अंश। उ०—लेखक कुछ अवधारों की कटिग की बात करेगा। ३. काट छाँट।

कटिजरा—संज्ञा स्त्री० [सं० कटिजरा] संगीत में एक ताल का नाम।

कटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शरीर का मध्य भाग जो पेट और पीठ के नीचे पड़ता है। कमर। लक।

यो०—कटिचालन। कटिजेव। कटितट। कटिदेश। कटिवव। कटिवद्ध। कटिशूल। कटिसूत्र।

२. देवालय का द्वार। ३. हाथी का गंडस्थल। ४. पीपल। पिप्पली। ५. नितंब। चूतड़।

कटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नितंब (को०)।

कटिचालन—संज्ञा पुं० [सं० कटि + चालन] कमर लचकाना। कमर नचाना। कमर की गति व्यंजित करना।

कटिजेव—संज्ञा स्त्री० [सं० कटि + जा० जेव] किकिणी। करघनी। उ०—पजर की खंजरीट नैनन को किधौ मीन मानस को केशोदास जलु है कि जार है। अंग को कि अगराग गेडुआ कि गलसुई किधौ कटिजेव ही को उर को कि हार है।—केशव (शब्द०)।

कटितट—संज्ञा पुं० [सं०] कमर। कटिभाग (को०)।

कटित्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. करघनी। मेखला। २. धोती (को०)।

कटिदेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. कटि। कमर। २. नितंब (को०)।

कटिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हथिनी (को०)।

कटिप्रोथ—संज्ञा पुं० [सं०] नितंब (को०)।

कटिवंध—संज्ञा पुं० [सं० कटिवन्ध] १. कमरबंद। २. गरमी सरदी के विचार से किए हुए पृथ्वी के पाँच भागों में से कोई एक। जैसे,—उष्ण कटिवंध।

कटिवद्ध—वि० [सं०] १. कमर बाँधे हुए। २. तैयार। तत्पर। उद्यत।

कटिया^१—संज्ञा स्त्री० [हि० काटना] १. नगो वा जवाहिरात को काट-छाँटकर सुडोल करनेवाला। हक्काक। २. छोटे छोटे टुकड़ों में कटा हुआ चोपायो का चारा।

कटिया^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कटिया'।

कटियाना(७)—क्रि० अ० [हि० कांटा] हर्ष. प्रेम आदि में मग्न होने के कारण रोशनी का कटि के समान खड़ा हो जाना। कटकित होना। प्रलकित होना।

कटियाली^१—संज्ञा स्त्री० [म० कण्टकारि] भटकटैया।

कटिरोहक—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी के कटि भाग की ओर आसीन व्यक्ति जो फीलवान न हो (को०)।

कटिल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] लौकी का एक भेद (को०)।

कटिसूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] करगता। कमर में पहनने का डोरा। मेखला। सूत की करघनी। उ०—कन किकिणी कटिसूत्र मनोहर। बाहु विनाल विभूषण सुंदर।—तुलसी (शब्द०)।

कटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कटि। कमर। २. पिप्पली (को०)।

कटोनख—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की टेढ़ी तलवार (को०)।

कटोर—संज्ञा पुं० [सं०] १. गड्ढा। २. नितंब में पड़नेवाला गड्ढा (को०)।

कटोरक—संज्ञा पुं० [सं०] नितंब (को०)।

कटीरा—संज्ञा पुं० [हि० कतीरा] दे० 'कतीरा'।

कटील—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कपास जिसे बरदी, निमरी और बंगई भी कहते हैं।

कटीला^१—वि० [हि० कांटा या काट + ईला] [स्त्री० कोटली (प्रत्य०)]

१. काट करनेवाला। ठीकण। चोखा। २. बहुत तीव्र प्रभाव डालनेवाला। गहरा असर करनेवाला। जैसे,—कटीली बात। उ०—अँखिया तोरि कटीली देखि के फाटे अतिया।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४२। ३. मोहित करनेवाला। उ०—नासा मोरि नचाय दृग करी कका की सौह। कांटे लौं कसकति हिये वहे कटीली भौह।—विहारी (शब्द०)। ४. नोकभोक का। आनवानवाला। जैसे—कटीला जवान।

कटीला^२—वि० [हि० कांटा] १. कांटेदार। कांटे से भरा हुआ। २. नुकीला। तेज।

कटीला^३—संज्ञा पुं० [हि० कांटा] एक नुकीली लकड़ी जो दूध देनेवाले पशुओं के बच्चों की नाक पर इसलिये बाँध दी जाती है जिसमें वे अपनी 'माता का दूध न पी सकें'।

कटीला^४—संज्ञा पुं० [हि० कतीरा] दे० 'कतीरा'।

कटु^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. छह रसों में एक जिसका अनुभव जीभ से होता है। चरपरा। कड़ुआ।

विशेष—इंद्रायन, चिरायता, मिर्च, पीपल, मूली, लहसुन, कपूर आदि का स्वाद कटु कहलाता है।

२. कड़वाहट। कड़वाहन (को०)। ३. काव्य में रस के विरुद्ध वर्णों की योजना। जैसे,—शृंगार में ट, ठ, ड आदि वर्ण।

कटु^२—वि० १. कड़वा। २. जो मन को न भावे। बुरा लगनेवाला। अनिष्ट। जैसे,—कटु वचन। उ०—देखहि रात भयानक सपना। जागि करहि कटु कोटि कल्पना।—तुलसी (शब्द०)। ३. बुरा या उद्वेगजनक।

कटुप्रा—संज्ञा पुं० [हि० काटना] १. काले रंग का एक कीड़ा जो धान की फसल को जमते ही काट डालता है। वाँका। २. नहर की बड़ी शाखाओं अर्थात् राजबहा में से काटकर लिए हुए पानी की सिंचाई। ३. गले का एक गहना जिसके किनारे कटे हुए होते हैं। दे० 'कटवा'। ४. मुसलमान।

कटुप्रा^२—वि० [हि० कटना] कई खंडों में कटा हुआ। टुकड़े टुकड़े। उ०—बटुप्रा कटुप्रा मिला सुवासु। सीमा अनवन भाँति गरामु।—जायसी (शब्द०)।

कटुई दही^१—संज्ञा स्त्री० [हि० काटना + दही] वह दही जिसके ऊपर की साड़ी काट या उतार ली गई हो। छिनुई दही। छिन्का।

कटहा^१—सज्ञा पुं० [स० कट + हा] महापात्र । महाब्राह्मण । प्रत्येष्टि-
क्रिया के समय का दान लेनेवाला व्यक्ति ।

कटहा^२—वि० [हि० काटना + हा (प्रत्य०)] [स्त्री० कटही] १ जिसका
स्वभाव दाँतो से काट खाने का हो । काट खानेवाला (पशु) ।
२ बात बात पर विगडनेवाला (ला०) ।

कटा^१—सज्ञा पुं० [हि० काटना] मार काट । वध । हत्या । कत्ल-
श्राम । उ०—(क) चोरे चख चोरन चलाक चित चोरी भयो,
लूटि गई लाज कुलकानि को कटा भयो ।—पद्माकर (शब्द०) ।
(ख) घनघोर घटा की छटा लपिवे मिस, ठाढ़ी अटा पं कटा
करती हो ।—ठाकुर (शब्द०) ।

कटा^२—वि० [हि० 'कटना' का भूतकालिक रूप] कटा हुआ ।
जैसे,—कटा फल । दे० 'कटना' ।

कटाइक^१—वि० [हि० 'कटना'] काटनेवाला । उ०—साँकरे मे
सेइवे सराहिबे सुमिरवे को, राम सो न साहिब न कुमति
कटाइको ।—तुलसी (शब्द०) ।

कटाई^१—सज्ञा स्त्री० [हि० काटना] १ काटने का काम । जैसे—
सिक्के के किनारे की कटाई रोकने के लिये उसे ग्रय फिटफिटो-
दार बनाया गया है । २ फसल काटने का काम । ३ फसल
काटने की मजदूरी ।

कटाई^२—सज्ञा स्त्री० [स० कण्टकी] मटकटैया । कंटेरी ।

कटाऊ^१—सज्ञा पुं० [हि० कट + आऊ (प्रत्य०)] ३० 'काट' । उ०—
रचे हथोड़ा रूपई डारी । चित्र कटाउ अनेग सँवारी ।—जायसी
ग्र० (गुप्त), पृ० ३७ ।

कटाकट—सज्ञा पुं० [हि० कटा + कट] १ कटकट शब्द । २ लड़ाई ।

कटाकटी—सज्ञा स्त्री० [हि० कटा + कटी] १ मार काट । २ लड़ाई ।
झगडा । वाद विवाद ।

कटाकु—सज्ञा पुं० [स०] एक पक्षी (को०) ।

कटाक्ष—सज्ञा पुं० [स०] १ तिरछी चितवन । तिरछी नजर । उ०—
कोए न लाँघि कटाक्ष सकै, मुसकयानि न हूँ सकै छोटनि
वाहिर । २ व्यंग्य । आक्षेप । ताना । तज । जैसे,—इस लेख
मे कई लोगो पर अनुचित कटाक्ष किए गए हैं ।

क्रि० प्र०—करना ।

३ (रामलीला) काले रंग की छोटी छोटी पतली रेखाएँ जो
आँख की दोनों बाहरी कोरों पर खींची जाती हैं । ऐसे कटाक्ष
रामलीला मे राम, लक्ष्मण आदि की आँखों के किनारे बनते हैं ।
हाथियों के गृ गार मे भी कटाक्ष बनाए जाते हैं ।

कटाख^१—सज्ञा पुं० [स० कटाक्ष] दे० 'कटाक्ष' । उ०—अग्नि वान
तिल जानहु सूझा । एक कटाख लाख दुइ जूझा ।—जायसी
ग्र० (गुप्त), पृ० १६२ ।

कटाग्नि—सज्ञा स्त्री० [स०] कट या घास फूस की आग ।

विशेष—प्राचीन काल मे राजपत्नी वा ब्राह्मणी के गमन आदि के
प्रायश्चित्त या दंड के लिये लोग कटाग्नि मे जलते या जलाए
जाते थे । कहते हैं, कुमारिल मट्ट गुरुसिद्धांत का खंडन
करने के प्रायश्चित्त के लिये कटाग्नि मे जल मरे थे ।

कटाच्छ^१—सज्ञा पुं० [स० कटाक्ष, प्रा० कटाच्छ] दे० 'कटाक्ष' ।

उ०—टपाटाक्ष कमल कर फेरत सूर जननि मुग देत ।—
सूर०, पृ० १०१५८ ।

कटाछ^१—सज्ञा पुं० [स० कटाक्ष, प्रा० कटाच्छ] दे० 'कटाक्ष' ।

उ०—ग्रह ग्रह विमल रंगीने गमान विनोचन मे न कटाछ
कगी ।—घनानंद०, पृ० ११६ ।

कटाछनी—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'मार काट' ।

कटाटक—सज्ञा पुं० [स० कटाट + टु] जिम [बो०] ।

कटान—सज्ञा स्त्री० [हि० कट + घान (प्रत्य०)] कटने की श्रिया
या भाव । कटाई ।

कटाना—क्रि० सं० [हि० काटना का प्रे० रूप] १ काटने के लिये
नियुक्त करना । काटने मे लगाना । २ डसमाना । दाँतों से
नोचवाना । ३ थोडा घुनकर प्रागे निकल जाना । बगन देकर
प्रागे निकल जाना ।—(गाधीयान) ।

कटार—सज्ञा पुं० [सं० कटार] [स्त्री० प्रत्य० कटारी] १ एक
वालिशत का छोटा निकोना घोर दुधारा हथियार जो पेट मे
हूला जाता है । उ०—प्राची रात सुरति जब आवति हूँ
विरह कटार ।—श्यामा०, पृ० ८५ । २. एक प्रकार का
वनविलाव । कटाछ । खीचर ।

कटारा^१—सज्ञा पुं० [हि० कटार] १ बड़ा कटार । २ इमली ।
इमली का फल ।

कटारा^२—सज्ञा पुं० [हि० कांटा] जंढकटारा ।

कटारिया—सज्ञा पुं० [हि० कटार] एक रेशमी कपड़ा जिसमे कटार
की तरह की धारियाँ बनी रहती हैं ।

कटारी—सज्ञा स्त्री० [हि० कटार] १ छोटा कटार । २ नारियल के
द्वक्के पनानेवालों का वह औजार जिससे वे नारियल को
घरचकर चिकना करते हैं । ३ (पालकी उटानेवाले कहारों
की बोली मे) रास्ते मे पड़ी हुई नोकदार चूड़ी ।

कटाली—सज्ञा स्त्री० [स० कण्टकारी] मटकटैया ।

कटाव—सज्ञा पुं० [हि० काटना] १ काट । काट छोट । कटर बगैत ।
२ काटकर बनाए हुए वेल बूटे ।

यो०—कटाव का काम = (१) पत्थर या लकड़ी पर खोदकर
बनाए हुए वेल बूटे । २ कपड़े के कटे हुए वेल बूटे जो दूसरे
कपड़े पर लगाए जाते हैं ।

कटावदार—वि० [हि० कटाव + फा० वार (प्रत्य०)] जिस पर
छोद वा काट कर चित्र और वेल बूटे बनाए गये हों ।

कटावन—सज्ञा पुं० [हि० कटना] १ कटाई करने का काम ।

मुहा०—कटावन पडना या लगना = (१) किसी दूसरे के कारण
अपनी वस्तु का नष्ट होना या उसका दूसरे के हाथ लगना ।
(२) किसी ऐसी वस्तु का नष्ट होना या हाथ से निकल जाना
जो दूसरे की नजर मे खटकती हो । दे० 'कट्टे लगना' ।

२ किसी वस्तु का कटा हुआ टुकड़ा । कतरन ।

कटास—सज्ञा पुं० [हि० कटाना] एक प्रकार का वनविलाव । कटार ।
खीचर ।

कटासी—सज्ञा स्त्री० [स०] मुर्दों के गावनें की जगह । कब्रिस्तान ।

सचपं । उ०—राजकुमार जेरनिह उमका वेठा प्रतापमिह
ग्रादि बी अनसमझी मे आपस मे वह कटमकटा हुई कि पाँच
बरस के भीतर भीतर उमके वंश मे सिवाय दिलीपसिंह नामी
वालक के कोई न रहा—दीनिवानी प्र० पृ० २३४ ।

कटमालिनी—सज्ञा स्त्री० [म०] अगूरी शराव [को०] ।

कटर^१—सज्ञा स्त्री० [स० कट = नरकट वा घास फूस] एक प्रकार की
घास जिसे पत्तवान भी कहते हैं ।

कटर^२—वि० [अ०] काटनेवाला । जैम, नेलकटर = नाबून कटने
का एक औजार ।

कटर^३—सज्ञा पु० १ एक प्रकार की बड़ी नाव जिसमें डाँडा नहीं
लगता, और जो तलवीदार चरखियों के सहारे चलती है ।
२ पनसुइया । छोटी नाव ।

कटरना—सज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार की मछली ।

कटरा^१—सज्ञा पु० [हि० कटहरा] छोटा चाकोर दाजार ।

कटरा^२—सज्ञा पु० [न० कटाह] जैम का नर वच्चा ।

कटरा^३—सज्ञा पु० [स० कर्तन्] छोटे छोटे टुकड़ों में कटा हुआ चौपायो
का चारा । उ०—अचरा न चरै येन कटरा न पाई ।—
गोरख०, पृ० १६८ ।

कटरिया—सज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का धान जो आसाम में
वहुतायत से होता है ।

कटरी^१—सज्ञा स्त्री० [देश०] धान की फसल का एक रोग ।

कटरी^२—सज्ञा स्त्री० [स० कट = नरकट] किमी नदी के किनारे की
नीची और दलदली जमीन जिसके किनारे नरकट आदि
होता है ।

कटरेती—सज्ञा स्त्री० [हि० काटना + रेतना] लफड़ी रेतने का औजार ।

कटलेट—सज्ञा पु० [अ०] मांस की सैंकी या तनी टिकिया । उ०—
(क) बहुत में ह, कहकर उसने काटे में कटनेट का
एक टुकड़ा मुँह में डाला ।—सत्यामी, पृ० २४२ । (ख)
जमीन पर पड़े कटलेट के एक टुकड़े को उठाकर मुँह में डालने
के लिये छटपटा रहा था ।—जिप्सी पृ० १८६ ।

कटलू—सज्ञा पु० [देश०] १ खंड । कमाई । २ मुसलमान के
लिये एक घृणामुचक शब्द ।

कटवाँ—वि० [हि० कटना + वाँ (पत्य०)] जो काटकर बना हो ।
जिसमें कटार का काम हो । कटा हुआ ।

मुहा०—कटवाँ न्याज = वह न्याज जो मूलधन का कुछ अंश
चुकता होने पर शेष अंश पर पड़े ।

कटवाँसी—सज्ञा पु० [हि० काठ + वाँस या कोट + वाँस] एक प्रकार
का प्रायः ठोस और कंटीला वाँस जिसकी गाँठें बहुत निकट
निकट होती हैं ।

विशेष—यह सीधा बहुत कम जाता है और बहुत घना होता है
तथा गाँव और कोट आदि के किनारे लगाया जाता है ।

कटवा^१—सज्ञा पु० [हि० काँटा] एक प्रकार की छोटी मछली जिसके
गलफड़ों के पास काँटे होते हैं । इन काँटों से वह चोट
करती है ।

कटवा^२—सज्ञा पु० [स० कण्ठक, हि० कठुआ] गले का एक गहना
जिसके किनारे कटे हुए होते हैं । उ०—गा में कटवा, कठा,
हँसली । उर में हमेल, कल चपकली ।—ग्राम्या, पृ० ४० ।

कटसरैया—सज्ञा स्त्री० [स० कटसारिका] अड्डे की तरह का एक
काँटेदार पीछा ।

विशेष—इसमें पीले, लाल, नीले और नफेद कई रंग के फूल
लगते हैं । लाल फूलवाली कटसरैया को मस्कटा में 'कुर्वक'
पीले फूलवाली को 'कुरटक', नीले फूलवाली को 'आरंगल' और
सफेद फूलवाली को 'सरेयक' कहते हैं । कटसरैया जातिक में
फूलती है ।

कटहरा^१—सज्ञा पु० [हि० कण्ठफल, कण्ठकफल] दे० 'कटहल' ।

कटहरा^२—सज्ञा पु० [हि० कटघरा] पटघरा । उ०—तमाशा
करनेवालों में न एक शब्द न, जिसमें यह शेर हिने हुए थे, एक
कटहरे का दरवाजा खोला ।—फिसाना०, पृ० १० ।

कटहरा^३—सज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी मछली जो
उत्तरी भारत और आसाम की नदियों में पाई जाती है ।

कटहरी^१—सज्ञा स्त्री० [हि० कटहल] छोटा कटहल ।

यी०—कटहरी चपा ।

कटहरी—वि० [हि० कटहल] १. कटहल सघनी । २. कटहल की
गंधवाला ।

कटहरी चपा—सज्ञा पु० [हि०] मधुर और तीव्र गंधवाला एक
पुष्प जो हलके पीलेपन के साथ हरे रंग का होता है ।

कटहल—सज्ञा पु० [स० कण्ठफल या कण्ठकफल] १ एक नदी प्रहार
घना पेड़ जो भारतवर्ष के मध्य गरम भागों में लगाया जाता
है तथा पूर्वी और पश्चिमी घाटों की पहाड़ियों पर आपने आप
होता है ।

विशेष—इसकी अंडाकार पत्तियाँ ४-५ अंगुल लंबी, कड़ी मोटी
और ऊपर की ओर श्यामता लिए हुए हरे रंग की होती हैं ।
इसमें बड़े बड़े फल लगते हैं जिनकी लम्बाई हाथ उड़ हाथ तक
की और घेरा भी प्रायः इतना ही होता है । ऊपर का छिन्का
बहुत मोटा होता है जिसपर बहुत से मुकिले कंगूरे होते हैं ।
फल के भीतर बीच में गुठली होती है जिसके चारों ओर मोटे
मोटे रेशों की कवरियों में गूदेदार कोए रहते हैं । कोए पकने
पर बड़े मोठे होते हैं । कोषों के भीतर बहुत पतली झिल्लियों
में लपटे हुए बीज होते हैं । फल माघ-फागुन में लगने और
जुलै असाढ़ में पकते हैं । कच्चे फल की तरकारी और अचार
होते हैं और पके फल को कोए खाए जाते हैं । कटहल नीचे से
ऊपर तक फलता है, जब और तने में भी फल लगते हैं । इसकी
छाल से बड़ा लसीला दूध निकलता है जिसमें खर खन सकता
है । इसकी लकड़ी नाव और चौखट आदि बनाने के काम में
आती है । इसकी छाल और बुरादे को उमालने से पीला रंग
निकलता है जिससे वरमा के माधु अपना रंग रंगते हैं ।
२ इस पेड़ का फल ।

कटहला—सज्ञा पु० [हि० कटहल] कटहल के ऊपर के दानों जैसी
कानेवाले माधुपण ।

कटना—क्रि० अ० [स० कर्त्तृन्, प्रा० कटृन्] १ किसी धारदार चीज की दाव से दो टुकड़े होना । शस्त्र आदि की धार के घँसने से किसी वस्तु के दो खड़े होना । जैसे,—पेड़ कटना, सिर कटना ।

मुहा०—कटती कहना = लगती हुई बात कहना । मर्मभेदी बात कहना ।

२ पिमना । महीन चूर होना । जैसे,—भाँग कटना, ममाना कटना । ३ किसी धारदार चीज का घँसना । शस्त्र आदि की धार का घुसना । जैसे,—उसका श्रोत कट गया है । ४ किसी वस्तु का कोई अंश निकल जाना । किसी भाग का अलग हो जाना । जैसे,—(क) बाढ़ के समय नदी का बहुत सा किनारा कट गया । (ख) उनकी तनखाह से २५) कट गए । ५ युद्ध में घाव खाकर मरना । लड़ाई में मरना । जैसे,—उस लड़ाई में लाखों सिपाही कट गए ।

सयो० क्रि०—जाना ।—मरना ।

६ कतरा जाना । व्योता जाना । जैसे,—मेरा कपड़ा कटा न हो तो वापस दो । ७ छीजना । छटना । नष्ट होना । दूर होना । जैसे,—पाप कटना, ललाई कटना, मैल कटना, रग कटना । ८ समय का बीतना । वक्त गुजरना । जैसे,—रात कटना, दिन कटना, ज़िंदगी कटना । जैसे,—किसी प्रकार रात तो कटी । ९ खतम होना । जैसे,—बातचीत करते चलेंगे, रास्ता कट जायगा । १० घोखा देकर साथ छोड़ देना । चुपके से अलग हो जाना । खिसक जाना । जैसे,—थोड़ी दूर तक तो उसने मेरा साथ दिया, पीछे कट गया । उ०—लोभ मोह दोऊ कट भागे सुन सुन नाम अजीत ।—कवीर श० पृ०, ८४ ।

क्रि० प्र०—जाना ।—रहना ।

११ शरमाना । लज्जित होना । भँपना । जैसे,—मेरी बात पर वे ऐसे कटे कि फिर न बोले । उ०—मैं तो कट गई । मेरा दिल ही जानता है कि किस कदर रज हुआ ।—फिमाना० पृ० ३५८ । १२ जलना । डाह से दुखी होना । ईर्ष्या में पीड़ित होना । जैसे,—उसको रूपा पाते देख ये लोग मन ही मन कट गए । १३ मोहित होना । आसक्त होना । जैसे,—वे उसकी चितवन से कट गए । उ०—पूछो क्यों रूखों परति सगवग रही सनेह । मनमोहन छवि पर कटी कहै कट्यानी देह ।—विहारी (शब्द०) । १४ व्यर्थ व्यय होना । फजूल निकल जाना । जैसे,—तुम्हारे कारण हमारे १०) यो ही कट गए । १५ विकना । खपना । १६ प्राप्त होना । आय होना । जैसे,—आजकल खूब माल कट रहा है । १७ कलम की लकीर से किसी लिखावट का रद होना । मिटना । खारिज होना । जैसे,—उसका नाम स्कूल से कट गया है । १८ ऐसे कामों में तैयार होना जो बहुत दूर तक लकीर के रूप में चले गए हों । जैसे,—नहर कटना । १९ ऐसी चीजों का तैयार होना जिसमें लकीर के द्वारा कई विभाग हुए हों । जैसे,—बयारी काटना । २० वाँटनेवाले के हाथ पर रखी हुई ताश की गड्ढी में से कुछ पत्तों को इसलिये उठाया जाना जिसमें हाथ में बची हुई गड्ढी के अंतिम पत्ते से वाँट आरंभ हो । २१. ताश की गड्ढी का पहले या इस

प्रकार फँटा जाना कि उसका पहले से लगा हुआ क्रम न बिगड़े ।—(जादू) । २२ एक सख्या के साथ दूसरी सख्या का ऐसा भाग लगना कि शेष न रहे । जैसे,—यह सख्या सात से कट जाती है । २३ चलती गाड़ी में से माल चोरी होना या लुटना । जैसे,—कल रात यो उस सुनसान रास्ते में कई गाड़ियाँ कट गई । २४ श्रम करना । उ०—तुम दिन भर कम घिसते हो क्या कि और कटने की सोचते हो ।—सुगदा०, पृ० ७७ ।

कटनास—सज्ञा पुं० [देश० या सं० कीट + नाश या काष्ठ + नारी] नीलकण्ठ । उ०—बहु कटनास रहैं तेहि वासा । देखि सो पाव भाग जेहि वासा ।—उसमान (शब्द०) ।

कटनि०—सज्ञा स्त्री० [हि० कटना] १ काट । उ०—करत जात जेती कटनि बड़ि रम सरिता मोत । आलवाल उर प्रेम तर तितो तितो दूढ़ होत ।—विहारी (शब्द०) । २ प्रीति । आसक्ति । रीझन । उ०—फिरत जो अटकट कटनि विन रसिक सुरम न खियाल । अनत अनत नित नित हितनि कत सकुचावत नाल ।—विहारी (शब्द०) ।

कटनी—सज्ञा स्त्री० [हि० कटना] १ काटने का औजार । २ काटने का काम । फसल की कटाई का काम । उ०—कटनी के घूँघुर खनभुन ।—बीणा०, पृ० १६ ।

क्रि० प्र०—करना ।—पडना । होना ।

मुहा०—कटनी मारना = वंशाख ज्येष्ठ में अर्थात् जोतने के पहले कुदाल से खेतों की घास खोदना ।

३ एक ओर से भागकर दूसरी ओर और फिर उधर से मुड़कर किसी और ओर, इसी प्रकार भाँडे तिरछे भागना । कटनी ।

क्रि० प्र०—काटना ।—मारना ।

मुहा०—कटनी काटना = उधर से उधर और इधर से इधर भागना । दाहिनी से बाईं ओर बाईं से दाहिनी ओर भागना ।

कटपटना—क्रि० अ० [हि० कटना + पटना] वन जाना । उ०—पुनि पुनि उठि चरनन लटपटे । क्रीटन के जुकोट कटपटे नद अ०, पृ० २२५ ।

कटपीस—सज्ञा पुं० [अ०] नए कपड़ों का वह टुकड़ा जो थान बड़ा होने के कारण उसमें से काट लिया जाता है ।

कटपूतन—सज्ञा पुं० [म०] एक प्रकार का प्रेत ।

कटफरेस—सज्ञा पुं० [अ० कट + फ्रेस] वह नया ताजा माल जिसमें समुद्र में गिरने के कारण दाग पड़ जायें प्रयवा जो गाँठ वा बकस खोलते समय कहीं से कट जाय । ऐसे माल का दाग कुछ घट जाता है ।

कटमी—सज्ञा पुं० [देश०] मझोले आकार का एक प्रकार का वृक्ष ।

विशेष—इसके पत्ते कुछ गोलाई लिए लंबे होते हैं और फल अर्ध खरबूजे के समान छोटे होते हैं । इसका व्यवहार औषध में होता है । वैद्यक में यह प्रमेह, बवासीर, नाडोब्रण, विष, कृमि, कुष्ठ और कफ का नाशक कहा गया है । करमी । हरिसल ।

कटमकटा—सज्ञा स्त्री० [हि० कटना] मारकाट । कठोर युद्ध या

कटकई(७)—सज्ञा स्त्री० [सं० कटक + ई (प्रत्य०)] १. कटक । सेना । फौज । लश्कर । उ०—मुख सुखहि लोचन अर्वाहि शोक न हृदय समाइ । मनहु कवण रस कटकई उतरी अवध बजाइ । —तुलसी (शब्द०) । २. चढाई । सेना का साज । दे० 'बटकाई' । उ०—मइ कटकई सरद ससि आवा ।—जायसी ग्रं०, पृ० १४७ ।

कटककारी—सज्ञा पुं० [सं० कटक + कारिन्] सेना सघटित या सज्जित करनेवाला व्यक्ति । सेनापति । उ०—विविध को सोध अति रुचिर मंदिर निकर सत्व गुन प्रमुख त्रय कटककारी ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४८८ ।

कटकट—सज्ञा पुं० [अनु०] १. दाँतों के बजने का शब्द । उ०—तब लै खम में मारो मयो शब्द अति भारी । प्रगट भए नरहरि वपु धरि हरि कटकट करि उच्चारि ।—गोपाल (शब्द०) । लड़ाई भाड़ा । वाद विवाद ।

कटकटाना(७) क्रि० प्र० [अनु०] दे० 'बटकटाना' ।

कटकटाना—क्रि० प्र० [हिं० कटकट] दाँत पीसना । उ०—कटकटान कपि कुजर भारी । दोउ मुजदंड तमकि महि मारी । —तुलसी (शब्द०) ।

कटकटिका—सज्ञा स्त्री० [हिं० कटकट] एक प्रकार की बुलबुल । विशेष—बाड़े में यह पहाड़ से उतरकर मैदान में आ जाती है और पेड़ पर या दीवार के छोडरे में घोंमला बनाती है ।

कटकटिया—वि० [हिं० कटकट] १. कटकट ध्वनि करनेवाला । २. झगड़ालू ।

कटकना—सज्ञा पुं० [हिं०] १. अधिकार । इजारा । २. दे० 'कटखना' । ३. चालावाजी । मक्कारी ।

कटकनेदार—सज्ञा पुं० [हिं० कटकना + दा० दार (प्रत्य०)] सिकमी काश्तकार ।

कटकवाला—सज्ञा पुं० [हिं० कटना + अ० कवाला] मियादी वं ।

कटकरंज—सज्ञा पुं० [सं० कटकरञ्ज] कजा नाम का पौधा । वि० दे० 'कजा' ।

कटकाई(७)—सज्ञा स्त्री० [हिं० कटक + आई (प्रत्य०)] १. सेना । फौज । २. दलबल के साथ चलने की तैयारी । उ०—चहुँ दिसि सान साँटिया फेरी । भै कटकाई राजा केरी ।—जायसी ग्रं०, पृ० ५४ ।

कटकाना—क्रि० सं० [हिं० कटकटाना] फोड़ना । कटकडाना । उ०—आँगलिया कटका कल । पाई तला सुमाफिर रात । वी० रा०, पृ० ६६ ।

कटकार—वि० [सं०] वंश्य द्वारा शूद्रा में उत्पन्न संतति ।—प्रा० भा० प०, पृ० ४०४ ।

कटकी—सज्ञा पुं० [सं० कटकिन्] पहाड़ [को०] ।

कटकीना—सज्ञा पुं० [हिं० कटकना] दे० 'कटखना' ।

कटकुट—वि० [हिं० कटना + कूटना] कटाकुटा । काटी गई (लिखावट, जो अधिक कटने के कारण अस्पष्ट हो गई हो) । उ०—उन २-२८

मंत्रों में किसी प्रकार का प्रभाव नहीं रहा । सब ग्रंथ कटकुट हो गए ।—कवीर म०, पृ० ४५६ ।

कटकुटी—सज्ञा स्त्री० [सं०] तृणशाला । पर्णशाला । फूस की भोपड़ी । कटकोल—सज्ञा पुं० [सं०] पीकदान ।

कटक्कट(७)—सज्ञा पुं० [हिं० कटकट] कटकट की ध्वनि । उ०—मिलेवर हिंदु तुरक्क सुतार, कटक्कट वज्जिय लोह करार ।—पृ० रा० २४।२३३ ।

कटखना—वि० [हिं० काटना + खाना] १. काट खानेवाला । दाँत से काटनेवाला । २. (ला०) हथकड़ेवाज । चालवाज । मक्कार । कटखना—सज्ञा पुं० कतर व्योत । युक्ति । चाल । हथकड़ा । जैसे,—(क) वह वैद्यक के अच्छे कटखने जानता है । (ख) तुम कटखने में मत आना ।

यो०—कटखनेवाजी ।

कटखन्ना—सज्ञा पुं० [हिं० कटखना] १. काटने के लिये बनाया या छाया गया खाका । २. छात्रों के अभ्यासार्थ हलके विद्युओं से अंकित अक्षर ।

कटखादक—वि० [सं०] मक्ष्याक्षय का विचार न करनेवाला । अशुद्ध वस्तु को भी खा लेनेवाला । सर्वभक्षी ।

कट रत्नास—सज्ञा पुं० [अ०] मजबूत काँच जिसपर नक्काशी कड़ी हो ।

कटघरा—सज्ञा पुं० [हिं० काठ + घरा] १. काठ का घर जिसमें जंगला हो । काठ का घेरा जिसमें लोहे वा लकड़ी के छड़ लगे हो । २. बड़ा भारी पिजड़ा । ३. अदालत में वह स्थान जहाँ विचार के समय अभियुक्त और अपराधी खड़े किए जाते हैं ।

कटजीरा—सज्ञा पुं० [सं० कणजीरक] काला जीरा । स्याह जीरा । उ०—कूट कायफर सोठि चिरंता कटजीरा कहुँ देखत । आल मजीठ लाख सेंदुर कहुँ ऐसेहि बुधि अवरेखत ।—सूर (शब्द०) ।

कटडा—सज्ञा पुं० [सं० कटार] भैंस का पेंडवा ।

कटत—सज्ञा स्त्री० [हिं० कटती] दे० 'कटती' । १. कटने की क्रिया या भाव । २. बाजार में किसी चीज की होती खपत ।

कटताल—सज्ञा पुं० [हिं० काठ + ताल] काठ का बना हुआ एक वाजा जिसे 'करताल' भी कहते हैं । उ०—(क) कसताल कटताल बजावत शृंग मधुर मुहचंग । मधुर खजरी, पटह, पणव, मिलि सुख पावत रत भग ।—सूर (शब्द०) । (ख) वचे सिर के करिकें कटताल । रचे जिनि तडद नाच कराल ।—सुजान०, पृ० ३४ ।

कटयला—सज्ञा पुं० [हिं० कटताल] दे० 'कटताल' वा 'करताल' ।

कटती—सज्ञा स्त्री० [हिं० कटना] विक्री । फरोख्त । जैसे, इस बाजार में माल की कटती अच्छी नहीं ।

कटनसा—सज्ञा पुं० [हिं० काटना + नाश अथवा सं० काष्ठ + नाश] १. काटने और नष्ट करने की क्रिया । उ०—पेड़ तिलोरी और जल हसा । हिरदय पैठि विरह कटनसा ।—जायसी (शब्द०) । २. दे० 'कटनास' ।

कटन^१—सज्ञा पुं० [सं०] मकान की छाजन या छत [को०] ।

कटन^२—सज्ञा पुं० [हिं० काटना] दे० 'कतरन' ।

विशेष—कजावा वह जालीदार घेरा है जिसे स्त्रियों के लिये बनाया जाता है।

कजिया—सज्ञा पुं० [अं० कजिया] भगडा। लडाई। टंटा। वखेड़ा। दगा। उ०—(क) कजिया मे नित नवो कलेस।—वांकी० ग्र०, भा० ३, पृ० ११०। (घ) फारविसगजवालो का कजिया फंसला होनेवाला है।—मेला० पृ० ३४४।

कजी—सज्ञा पुं० [फा०] १ टेढापन। टेढ़ाई। २ दोप। ऐन। नुक्स। कमर। उ०—यद्दु विचारि सिव पूजा तजी। लयी प्रगट सेवा मे कजी।—ग्रंथ०, पृ० २५।

कज्ज(उ)—अव्य० [सं० कार्य, प्रा० कज्ज] लिये। वास्ते। निमित्त। उ०—(क) विप से विगयन को तजिये तो डूबन ही के कज्ज।—मारतेंडु ग० भा० २, पृ० ५५१। (घ) जत्र चालय प्रिय-जरा नृप, महुवे कज्ज रिसाय।—प० रा०, पृ० ५०।

कज्जर(उ)—सज्ञा पुं० [सं० कज्जल] दे० 'कज्जल'। उ०—जनु सिखर कज्जर सग।—प० रा०, पृ० ५८।

कज्जल—सज्ञा पुं० [सं०][वि० कज्जलित] १. अजन। काजल। २. सुरमा। उ०—यत्र गयलोकनि को वात औरई विधान, कज्जन कलित जामे जहर समान है।—मिचारी ग्र०, भा० १, पृ० १०१। ३. कालिच। स्याही।

यौ०—कज्जलध्वज = दीपक। कज्जलगिरि। उ०—सोनित सवत सोह तन कारे। जनु कज्जनगिरि नेर पनारे।—मानस, ६।३८।

४ वादल। ५ एक छद जिसके प्रत्येक चरण में १४ मात्राएँ होती हैं। अतः मे एक गुरु और एक लघु होता है। उ०—प्रभु मम श्रीरी देख जेव। तुम मम नाही श्रीर देव (शब्द०)।

कज्जलध्वज—सज्ञा पुं० [सं०] दीपक [को०]।

कज्जलरोचक—सज्ञा पुं० [सं०] दीपक। दीपाधार [को०]।

कज्जलवन(उ)—सज्ञा पुं० [सज्ञा कदली + वन] दे० 'कजनी वन'। उ०—मारु चाली मदिरा, चदड वादल माहि। जाणुं गुपेंड उलट्टियड, कज्जलवन मँह जाहि।—डोला०, दू० ५३८।

कज्जलित—वि० [सं०] १ काजल लगा हुआ। आजा हुआ। अजन युक्त। २ काला। स्याह।

कज्जली—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ गधक और पारे के योग से बना द्रव्य। २ मछली। ३ स्याही [को०]।

कज्जाक—सज्ञा पुं० [तु० कज्जाक] १ डाकू। लुटेरा। उ०—कज्जाक अजल का लूटे है दिन रात वजाकर नक्कारा।—राम० धर्म०, पृ० ८६। २ चालाक।

कज्जाकी—सज्ञा स्त्री० [तु० कज्जाक + फा० ई (प्रत्यय)] १. कज्जाक की वृत्ति। लूटमार। मारकाट। २ चालाकी।

कज्जुसिस(उ)—सज्ञा पुं० [सं० कसोस] दे० 'कसोस'।—वर्ण० पृ० ६।

कजोण(उ)—सर्व० [हि०] दे० 'कोन'। उ०—फरमान भेल कजोण चाहि, तिरहुति लेलि जनिह साहि।—कीर्ति०, पृ० ५८।

कजोन—सर्व० [हि०] दे० 'कोन'। उ०—हरि हरि कजोने एकन हमे पाप। जेसये सुखद ताहि तह ताप।—विद्यापति, पृ० ३४२।

कटक—सज्ञा स्त्री० [सं० कटकुट] १ प्राग। अग्नि। २. गाना। सुवर्ण। ३. चित्रक वृक्ष। ४. गणेश। ५ जित [को०]।

कटकटेरी—सज्ञा स्त्री० [सं० कटकुटेरी] राक्षसी [को०]।

कटव—सज्ञा पुं० [सं० कटम्ब] १ नर्मोत्त का एक वाद्य वा वाजा। २ बाण। तीर [को०]।

कटभर—सज्ञा स्त्री० [सं० कटम्भर] कटभी वृक्ष [को०]।

कटभरा—सज्ञा स्त्री० [सं० कटम्भरा] १ नागवना, राहिली, भूरा, कलविका आदि अनेक पोषों के नाम। २ हृषिकी। हयिनी [को०]।

कट^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ हाथी का गटम्बल। २ गटम्बल। ३ नर-कट या नर नाम की घास। ४. नरकट की चटाई। दरमा। उ०—प्राय गए शरीरी की गुटी प्रभु नृत्य नटी नो करे नई प्रीती। टटी फटी कट दीनी बिछाई घिरा करे दर्द मनो मित्र की भीनी।—रघुराज(शब्द०)। ५. टट्टी। ६. चम, नरकट आदि घास।

यौ०—कटाग्नि।

७ शव। लाश। ८ शव उठाने की टिकटी। घरथी। ९ शमशा। १०. पाँच की एक चान। ११ लकड़ी का नन्ना। १२ समव। घवगर। १३ नित्य। श्रोणि [को०]। १४ कटि [को०]। १५ प्राधाय [को०]। १६ प्रया। रीति [को०]। १७ शर नामा पोषा [को०]। १८ घास [को०]। १९. पुष्परस। पराग [को०]।

कट^२—संज्ञा पुं० [हि० कटना] ३ एक प्रकार का गाना रंग जा दीन के टपटो लोहचून, हर, चढ़ने, धावले और कभीस धादि से तैयार किया जाता है। २ काट का संक्षिप्त रूप किताब व्यवहार यौनिक शब्दों में होता है, जैसे,—कटपना कुता।

कट^३—संज्ञा पुं० [सं०] काट। तराय। व्योम। कता। जंवे,—कोट का कट प्रच्छा नहीं। उ०—प्राज प्रदुत दिनों वाद उन्हें देखा या, वह भी स्वदेशी कट पोशाक मे।—नव्यासी०, पृ० ३२१।

कट^४—वि० [सं०] १ प्रतिशय। चहुत। २ उग्र। उत्कट।

कटक—सज्ञा पुं० [सं०] १ सेना। दल। फौज। २ राजशिविर।

३ चूडा। ककड। कडा। उ०—(क) देव मादि मध्यात भगवत त्वम् सर्वगतमीश पश्यत जे प्रह्लादादी। यथा पटवतु घट मृत्तिका सर्प सगदाह करि कनक कटकागदादी।—तुलसी (शब्द०)। (घ) विन अगद विन हार कटक के लपिन परे नर कोई।—रघुराज (शब्द०)। ४. पंर का कडा।—डि०।

५ पर्वत का मध्य भाग। ६. नित्य। चतुर्द। ७ सामुद्रिक नमक। ८ घास फूस की चटाई। गोदरी। सवरी। ९ जजीर की एक कडी। १० हाथी के दाँतो पर चढ़े हुए पीतल के बंद या साम। ११ चक्र। १२. उडीवा प्रात का एक प्रसिद्ध नगर। १३ पहिया। १४ समूह। उ०—सदाचार, जप, जोग, विरागा। समय विवेक कठक सबु भागा।—मानस १।८४। १५ स्वर्ण [को०]। १६. राजधानी [को०]।

१७. समुद्र [को०]।

कजरी^१—सज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'कजली-१' उ०—औरत कजरी तन लपटानी मन जानी हम धोवत ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५४२ ।

कजरी^२—सज्ञा पुं [सं० कज्जल] एक धान जो काले रंग का होता है । उ०—कपूर काट कजरी रतनारी । मधुकर, डेला, जीरा सारी ।—जायसी (शब्द०) ।

कजरीआरन(उ)—सज्ञा पुं [हि० कजरी + आरन] दे० 'कजली वन' । उ०—वै पिगला गए कजरी आरन ।—जायसी ग्रं० (गुप्त०), पृ० २५१ ।

कजरी वन^१—सज्ञा पुं [हि० कजरी + वन] दे० 'कजली वन' ।

कजरी वाज—सज्ञा पुं [हि० कजरी + फा० वाज] कजरी गाने या रचनेवाला । कजली प्रेमी ।

कजरीटा^१—सज्ञा पुं [हि० काजर + श्रोटा (प्रत्य०)] दे० 'कजरीटा' । कजरीटा^२—वि० [हि० कजलीटा] काला । श्यामल । कजगारा । उ०—सो बाही समे वा बँप्याव के लरिका ने देखयो तो प्रथम अनेक सोने रूपे की सिंगवारी और वडे वडे कजरीटे नेत्रवारी गायें दीखी ।—दो सो वावन०, भा० १, पृ० ३२५ ।

कजरीटी^१—सज्ञा स्त्री [हि० कजरीटा का स्त्री] दे० 'कजलीटी' । उ०—मावने के रस रूपहि सोधि लै नीकें भरघो उर के कजरीटी ।—वनानन्द, पृ० ५५ ।

कजलवाश—सज्ञा पुं [तु०] मुगलो की एक जाति जो बड़ी लडाकी होती है ।

कजला^१—सज्ञा पुं [हि० काजल] १ दे० 'कजरा' । २ एक काला पक्षी । मटिया ।

कजला^२—वि० दे० 'कजरा' ।

कजलाना^१—क्रि० अ० [हि० काजल] १ काला पड़ना । साँवला होना । २ आग का भँवना । आग का बुझना ।

कजलाना^२—क्रि० सं० काजल लगाना । आँजना ।

कजलित(उ)—वि० [सं० कज्जलित या हि० कजलाना] दे० 'कज्जलित' । उ०—युवति वृद्ध कजलित नैनन सिद्धर दिये सिर ।—प्रेमघन०, पृ० ३२ ।

कजली^१—सज्ञा स्त्री [हि० काजल] १. कालिख । २ एक साय पिसे हुए पारे और गधक की बुकनी । ३. गन्ने की एक जाति जो वर्दवान में होती है । ४. काली आँखवाली गाय । ५. वह सफेद भेड़ जिसकी आँखों के किनारे काले बाल होते हैं । ६ पोस्ते की फमल का एक रोग जिसमें फूलते समय फूलों पर काली काली धूल सी जम जाती है और फसल को हानि पहुँचाती है । ७ एक प्रकार की मछली ।

कजली^२—सज्ञा स्त्री [सं० कज्जली] १ एक त्योहार ।

विशेष—यह बुदेलखंड में सावन की पूर्णिमा को और मिर्जापुर, बनारस आदि में भादो वदी तीज को मनाया जाता है । इसमें कच्ची मिट्टी के पिंडों में गोदे हुए जो के अंकुर किसी ताल या पोखरे में डाले जाते हैं । इस दिन से कजली गाना बंद हो जाता है ।

२ मिट्टी के पिंडों में गोदे हुए जो से निकले हुए हरे हरे अंकुर या पोद्य जिन्हें कजली के दिन स्त्रियाँ ताल या पोखरे में डालती

हैं और अपने सबधियों को वाँटती हैं । ३ एक प्रकार का गीत जो बरसात में सावन वदी तीज तक गाया जाता है ।

मुहा०—कजली खेलना = स्त्रियों का झूठ या घेरा बनाकर घूम घूमकर झूलते हुए कजली गाना ।

कजली तीज—सज्ञा पुं [हि० कजली + तीज] भादो वदी तीज ।

कजली वन—सज्ञा पुं [सं० कदलीवन] १ केले का जंगल । २

आसाम का एक जंगल जहाँ हाथी बहुत होते थे ।

कजलीवाज—सज्ञा पुं [हि० कजली + फा० वाज] कजली गाने या रचनेवाला । कजली प्रेमी । उ०—कजलीवाज लोग अपनी बनाई कजलियों को ।—प्रेमघन०, पृ० ३५४ ।

कजलीटा—सज्ञा पुं [हि० काजल + श्रोटा (प्रत्य०)] [स्त्री० कजलीटी] १ काजल रखने की रोहे की छिछली डिविया जिसमें पतली डंडी लगी रहती है । २ डिविया जिसमें गोदना गोदने की स्याही रखी जाती है ।

कजलीटी—सज्ञा स्त्री [हि० कजलीटा] छोटा कजलीटा ।

कजही^१—सज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'कायजा' ।

कजा^१(उ)^१—सज्ञा स्त्री [सं० काज्जो] काजी । माँड ।

कजा^२—सज्ञा स्त्री [अ० कजा] मीत । मृत्यु । उ०—कजा से बच गया मरना नहीं तो ठाना था ।—कविता को०, भा० ४, पृ० २२ ।

मुहा०—कजा करना = मर जाना ।

यो०—कजा ए इलाही = ईश्वरीय इच्छा । ईश्वरेच्छा ।

कजाक^१—सज्ञा पुं [तु० कजाक] १. लुटेरा । डाकू । बटमार ।

उ०—(क) प्रीतम रूप कजाक से समसर कोई नाहि । छवि फाँसी दे दूग गरे मन धन को लै जाहि ।—रसनिधि (शब्द०) ।

(ख) मन धन तो राख्यो हतो में दीवे को तोहि । नैन कजाकन पै अरे क्यों लुटवायो मोहि ।—रसनिधि (शब्द०) ।

२. कजाकिस्तान नामक प्रदेश का निवासी ।

कजाक^२—वि० १ धूर्त । छल कपट करनेवाला । २. चालाक । चालबाज ।

कजाकार—क्रि० वि० [अ० कजा + फा० 'एकार'] संयोगवश । अचानक । उ०—फकीरा गरीबों विचारे तुम्हें । कजाकार अए हैं नाहक तुम्हें ।—दक्खिनी०, पृ० २०६ ।

कजाकी—सज्ञा स्त्री [तु० कजाक + फा० ई (प्रत्य०)] १ लुटेरापन । लूटमार । उ०—फिरि फिरि दोरत देखियत निचले नेकु रहैं न । ये कजरारे कौन पै करत कजाकी नैन ।—विहारी (शब्द०) । २ छल कपट । धोखेबाजी । धूर्तता । उ०—सहित भला कहि चित अली लिये कजाकी माहि । कला लला की ना लगी चली चनाकी नाहि । शृ०—सत० (शब्द०) ।

कजात^१(उ)—क्रि० वि० [सं० कजाचित्] दे० 'कदाच' । उ०—जो हारो तो देस दिय, अनुचर होई अपार । जो कजात जीतहि नृपति, तो तुम हूँ पार ।—प० रा०, पृ० १०५ ।

कजावा—सज्ञा पुं [फा० कजावह] ऊँट की वह काठी जिसके दोनों ओर एक एक आदमी के बैठने की जगह और असबाब रखने के लिये जाली रहती है ।

रहते हो। काष्ठियों की वस्ती। २ वह स्थान जहाँ काठी लोग साग भाजी आदि बोते हो।

कछु०—वि० [हि० कछ] दे० 'कुछ'। उ०—(क) तदपि कही गुर वारहि वारा। समुक्ति परत कछु मति अनुमारा।—मानस, १।३१। (ख) ता समे परमेसुरी कछु कार्यार्थ वहाँ आई।—दो सी वावन०, पृ० १।

मुहा०—कछु और०=कुछ दूसरा ही। उ०—तब तो सनेह कछु और ही, अब तो कछु औरे भई।—पृ० रा०, ७।६५।

कछुप्रा—संज्ञा पुं० [सं० कच्छप] [खी० कछई] एक जलजंतु जिसके ऊपर बड़ी कड़ी ढाल की तरह खोपड़ी होती है। कच्छप।

विशेष—इस खोपड़ी के नीचे वह अपना पिर और हाथ पैर सिकोड़ लेता है। इसकी गर्दन लंबी और दुम बहुत छोटी होती है। यह जमीन पर भी चल सकता है। इसकी खोपड़ी की ढाल खिलोने आदि बनते हैं।

कछुइक०—वि० [हि० कछु+एक] थोड़ा सा। किंचित्। कुछ कुछ। कुछ एक। उ०—(क) सुमना जाती मल्लिका, उत्तम गद्या आस। कछु इक तुव तन वास सों मिलति जासु की वास।—नंद० प्र०, पृ० १०५। (ख) दत्तात्रय सुकदेव जी कहे कछु इक वैन।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ७८७।

कछुक०—वि० [हि० कछु+एक] कुछ थोड़ा। उ०—(क) कछुक दिवस जननी घर धीरा।—मानस, ५।१६। (ख) नाहिन कछुक दरिदता जाके।—नंद प्र०, पृ० २१२।

कछुक०—किं० वि० थोड़ा सा। कुछ कुछ। जरा सा। उ०—मौलल ऐँचि रहँ प्रिया हों कछुक छुटाऊँ।—घनानंद०, पृ० ३४३।

कछुवा—संज्ञा पुं० [सं० कच्छप] दे० 'कछुप्रा'। उ०—कमठ ध्यान कछुवा मत ताकी। ऐसी सुरत नाम से राखी।—घट०, पृ० २१७।

कछोटो—संज्ञा पुं० [हि० काष्ठ+ओटा (प्रत्य०)] [खी० अल्पा० कछोटो] कछनी। काछनी।

क्रि० प्र०—वाँधना।—मारना। उ०—अचल पट कटि मे खोस कछोटो मारे। सीता माता थी आज नई छवि धारे।—साकेत, पृ० २०३।

कछोहा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कछार'।

कज०—अव्य० [सं० कार्य प्रा० कज्ज] दे० 'काज'। उ०—हमहि बहुत अमिलाप देव वीरानि दरस कज।—पृ० रा० ६।१४८।

कज०—संज्ञा पुं० [फा०] १. टेढ़ापन। जैसे,—उनके पैर में कुछ कज है।

क्रि० प्र०—झाना।—पड़ना।

मुहा०—कज निकालना=टेढ़ापन दूर करना। सीधा करना। २ कसर। दोप। दूषण। ऐव।

क्रि० प्र०—झाना।—पड़ना।—होना।

मुहा०—कज निकालना=(१) दोप दूर करना। (२) दोष बतलाना। दूषण दिखाना।

यो०—कजमम=कुटिल। झूठाला। धनुषाकार भौंहवाला।

कजफहम=उलटी सीधी समझना। नासमझ। कजरदार=देढ़ी चालवाला। वक्रगामी।

कजप्रदा—वि० [फा०] १ कुटिल हावभाववाला। वेमुरीवत। २. दुशील।

कजप्रदाई—संज्ञा स्त्री० [फा०] हावभाव का व्यंजन। दुशीलता। वेमुरीवती। उ०—जुल्फों का पल बनाना, आँखें चुरा के चलना। क्या कजप्रदाइयाँ हैं क्या कमनिगाहियाँ हैं।—कविता को०, भा० ४, पृ० ४३।

कजक—संज्ञा पुं० [फा०] हाथों का अकुश।

कजकोल—संज्ञा पुं० [फा०] मिल्कियों का कपान या खप्पर।

कजनी—संज्ञा स्त्री० [हि० काष्ठना, कछनी] वह योजन जिससे तथि या पीतल के वस्तुओं को घुंरकर माफ करते हैं। खरदनी।

कजपूनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'कयपूनी'।

कजफहम—वि० [फा० कज+म० फहम] उलटी समझवाला। वक्र बुद्धि। नासमझ। मूर्ख [को०]।

कजफहमी—संज्ञा स्त्री० [फा० कज+म० फहम+फा० ई (प्रत्य०)] दे० 'कजफहम'। उलटी समझ। मूर्खता। उ०—गीसता है माहुरो को सदा, कैसी कजफहमी पैं चर्खें मीर है।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ८६३।

कजरा—संज्ञा पुं० [हि० काजर] १ दे० 'काजल'। २ काली घावों-वाला बेल।

कजरा—वि० [हि० काजल] [खी० कजरी] काली आँखोंवाला। जिसकी आँखों में काजल लगा हो या ऐसा मालूम हो कि काजल लगा है जैसे,—कजरा बेल।

कजराई०—संज्ञा स्त्री० [हि० काजल+आई (प्रत्य०)] कालापन। उ०—(क) गई ललाई आधर ते कजराई अँखियान। चदन पक न कुचन मे आवति वात तियान।—शृ० सत०, (ख) सितारो की जलन से वादलों को आँच कव आई। न चदा को कभी व्यापी अमा की घोर कजराई।—ठंडा०, पृ० ७६।

कजरारा—वि० [हि० काजर+आरा (प्रत्य०)] [खी० कजरारी] १ काजलवाला। जिसमें काजल लगा हो। मजनयुक्त। उ०—(क) फिर फिर दौरत देखियत निचले नँकु रहै न। ये कजरारे कौन पैं करत कजाकी नैन।—विहारो (शब्द०)। (ख) कजरारे दुग की घटा जब उनवें जेहि ओर। वरसि सिरावें पुढ़ि उर रूप झलान भकोर।—रसनिधि (शब्द०)। २ काजल के समान काला। काला। स्याह। उ०—(क) वह सुधि नेकु करो पिय प्यारे। कमल पात में तुम जल लीनो जा दिन नदी किनारे। तहँ मेरो आया गयो मृगछीना जाके नैन सहज कजरारे।—प्रताप (शब्द०)। (ख) गरजें गरारे कजरारे अति दीह देह जिनहि निहारे फिरें वीर करि धीर भग।—गोपाल (शब्द०)।

कजरियाना—क्रि० सं० [हि० काजर से नाम०] दे० 'काजर'। १ वच्चों को नजर लगना वचाने के लिये माथे पर काजल की विंदी लगाना। २ रात या अँधेरा दिखलाने के लिये चित्र में काला रंग भरना।

से एक निधि । ४. एक रोग जिसमें तालु में बतौड़ी निकल आती है । ५. एक यंत्र जिससे मद्य खींचा जाता है । ६. कुशती का एक पेंच । ७. एक नाग । ८. विश्वामित्र का एक पुत्र । ९. तुलसी का पेड़ । १०. दोहे का एक भेद जिसमें ८ गुरु और ३२ लघु होते हैं । जैसे—एक छत्र एक मुकुट मणि, सब वरनन पर जोड़ । तुलसी रघुवर नाम के वरन विराजत दोड़ ।—तुलसी (शब्द०) ।

कच्छपिका—सज्ञा स्त्री [सं०] १. एक प्रकार का क्षुद्र रोग जिसमें पाँच छह फोड़े निकलते हैं जो कछुए की पीठ ऐसे होते हैं और कफ और वात से उत्पन्न होते हैं ।—माधव०, पृ० १८७ । २. प्रमेह के कारण उत्पन्न होनेवाली फुडियो का एक भेद । ये फुडियाँ छोटी छोटी शरीर के कठिन भाग में कछुए की पीठ के आकार की होती हैं । इनमें जलन होती है । कच्छपी ।

कच्छपी—सज्ञा स्त्री [सं०] १. कच्छप की स्त्री । कछई । २. सरस्वती की वीणा का नाम । ३. एक प्रकार की छोटी वीणा । ४. दे० 'कच्छपिका-२' ।

कच्छशेष—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के दिगवर जैन ।

कच्छा^१—सज्ञा पुं० [सं० कच्छ= नाव का एक भाग] १. एक प्रकार की बड़ी नाव जिसके छोर चिपटे और बड़े होते हैं । इसमें दो पतवारें लगती हैं । २. कई बड़ी बड़ी नावों, विशेषतः पटेलों को एक में मिलाकर तैयार किया हुआ बड़ा वेडा या नाव ।

मुहा०—कच्छा पाटना=कई कच्छों या पटेलों को एक साथ बाँधकर पाटना ।

कच्छा^२—सज्ञा पुं० [सं० कच्छ] दे० 'कच्छ ६' ।

कच्छार—सज्ञा पुं० [सं०] एक देश जो बृहत्संहिता के अनुसार शतभिष, पूर्वभाद्रपद और उत्तरा भाद्रपद के अधिकृत देशों में है । कच्छ ।

कच्छिला—सज्ञा पुं० [सं० कच्छ+हि० इला (प्रत्य०)] कच्छ देश निवासी एक जाति । उ०—चारण कच्छ देसी जाति कच्छिला कहाया ।—शिखर०, पृ० १०५ ।

कच्छी^१—वि० [हि० कच्छ] १. कच्छ देश का । कच्छ देश संबंधी । २. कच्छ देश में उत्पन्न ।

कच्छी^२—सज्ञा पुं० [हि० कच्छ] घोड़े की एक प्रसिद्ध जाति जो कच्छ देश में होती है । इस जाति के घोड़ों की पीठ गहरी होती है । उ०—तरवकत घाय परे पाइ कच्छी । मनो नीर मुक्के तरफत मच्छी ।—पृ० १०, १२।१०५ ।

कच्छी^३—सज्ञा पुं० [सं० कच्छप] कछुआ ।

कच्छी^४—वि० [हि० कच्छ] दे० 'कच्छ' । उ०—कहत रविदास तोहि सुकृत न कछ काम, धाम, धन, धरा धाम, धनि मैन दुख दंद मे ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४३२ ।

कच्छी^५—सज्ञा पुं० [सं० कक्ष] दे० 'कक्ष' । उ०—नासिका कछ इंद्री के मूत्रा ।—प्राण०, पृ० २३ ।

कछनी^१—सज्ञा पुं० [हि० काछना] घुटने के ऊपर चढ़ाकर पहनी हुई धोती ।

क्रि० प्र०—काछना ।

कछनी^२—क्रि० सं० [हि० काछना] धोती को घुटने के ऊपर चढ़ाकर

पहनना । उ०—स्याम रंग फुलही सिर दीन्हें श्याम रंग कछनी कछ लीन्हें ।—लाल (शब्द०) ।

कछनी^३—संज्ञा स्त्री [हि० कछनी] दे० 'कछनी'—१ । उ०—लाल की लाल कछनी छवि ऐसी ।—नद० ग्रं०, पृ० १२६ ।

कछनी—संज्ञा स्त्री [हि० काछना] १. घुटने के ऊपर चढ़ाकर पहनी हुई धोती । उ०—पीतावर की कछनी काछे मोर मुकुट सिर दीन्हें ।—गीत (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—काछना । --बाँधना । --मारना ।

२. छोटी धोती । उ०—स्याम रंग कुलही सिर दीन्हें । स्याम रंग कछनी कछ लीन्हें ।—लाल (शब्द०) । ३. रासलीला आदि में पहनने का घाघरे की तरह का एक वस्त्र जो घुटने तक आता है । ४. वह वस्तु जिससे कोई चीज काछी जाय ।

कछमछाना—क्रि० प्र० [हि० कसमसाना] दे० 'कसमसाना' । उ०—फिर भी जाने क्या बात थी कि दूल्हा रह रहकर कछमछा उठता था ।—नई०, पृ० ४३ ।

कछरा—संज्ञा पुं० [सं० क=जल+क्षरण=गिरना] [स्त्री० अल्प० कछरी] चौड़े मुँह का घड़ा या बरतन जिसमें पानी, दूध या अन्य रखा जाता है । इसकी अँवठ ऊँची और दृढ़ होती है । उ०—बाँधे न मैं बछरा लँ गरैयन छोर भरयो कछरा सिर फटिहै ।—वेनि (शब्द०) ।

कछराली—संज्ञा स्त्री [देश०] दे० 'ककराली' ।

कछरी—संज्ञा स्त्री [हि० कछरा का अल्पा०] छोटा कछरा ।

कछवारा—संज्ञा पुं० [हि० काछी+वाड़ा] १. काछियों की बस्ती या टोला । २. काछी का क्षेत्र जिसमें तरकारियाँ बोई जाती हैं ।

कछवाह—संज्ञा पुं० [सं० कच्छ+हि० वाह (प्रत्य०)] दे० 'कछवाहा' । उ०—जानत जहान ऐंड करि मुलताननि सों, कीनी कछवाह कामधुन को बचाव है ।—मति० ग्रं०, पृ० ४३५ ।

कछवाहा—संज्ञा पुं० [सं० कच्छ+हि० वाहा (प्रत्य०)] राजपूतों की एक जाति ।

कछवी केवल—संज्ञा स्त्री [देश०] एक प्रकार की काली मिट्टी जो बिखुरने से सफेद हो जाती है । भटकी ।

कछान—संज्ञा पुं० [हि० काछना] घुटने के ऊपर चढ़ाकर धोती पहनना । कछार—संज्ञा पुं० [सं० कच्छ+हि० आर (प्रत्य०)] १. समुद्र या नदी के किनारे की भूमि जो तर या नीची होती है । नदियों की मिट्टी से पटक निकली हुई जमीन जो बहुत हरी भरी रहती है । खादर । दियारा । उ०—एरे दगावाज मेरे पातक अपार तोहि गंगा के कछार में पछारि छार करिहों ।—पद्माकर (शब्द०) । २. आसाम प्रांत का एक भाग ।

कछारना—संज्ञा पुं० [हि० कचारना] दे० 'कचारना' । फीचना । प्रक्षालन करना । उ०—नल से पानी भरने, उनकी धोती कछार देने या रसोई के बरतन मल देने के सम काम छोटे जमादार लोग कर देते हैं ।—फूल०, पृ० २४ ।

कछावतार—संज्ञा पुं० [सं० कच्छ+अवतार] कच्छपावतार । उ०—कछावतार किंदय । लछम्म जीत लिंदय ।—पृ० १०।१२०

कछियानी—संज्ञा पुं० [हि० काछी] १. वह स्थान जहाँ काछी लोग

कच्ची चांदी—सज्ञा स्त्री० [हि० कच्ची + चांदी] चोखी चांदी । बिना मेल की चांदी । खरी चांदी ।

कच्ची चीनी—सज्ञा स्त्री० [हि०] वह चीनी जो गलाकर खूब साफ न की गई हो ।

कच्ची जवान—सज्ञा स्त्री० [हि० कच्ची + फा० जवान] दुर्वचन । गाली । अपशब्द ।

कच्ची जाकड—सज्ञा स्त्री० [हि० कच्ची + जाकड] वह वही जिसमें उस माल के लेनदेन का व्योरा हो जो निश्चित रूप से न विक गया हो ।

कच्ची नकल—सज्ञा स्त्री० [हि० कच्ची + अ० नकल] वह नकल जो सरकारी नियम के विरुद्ध किसी सरकारी कागज या मिसिल से खानगी तौर पर सादे कागज पर उतरवाई जाय ।

विशेष—यह नकल निज के काम में आ सकती है, पर किसी हाकिम के सामने या अदालत में पेश नहीं हो सकती ।

कच्ची निकासी—सज्ञा स्त्री० [हि० कच्ची + निकासी] बंसी कुल ग्रामदनी जिसमें खर्च का अंश पृथक् न किया गया हो ।

कच्ची नीद—सज्ञा स्त्री० [हि० कच्ची + नींद] वह नींद जो पूरी न हो सके । झपकी । आरम्भिक नींद ।

कच्ची पेशी—सज्ञा स्त्री० [हि० कच्ची = फा० पेशी] मुकद्दमे की पहली पेशी जिसमें कुछ फैसला नहीं होता ।

कच्ची वही—सज्ञा स्त्री० [हि० कच्ची + वही] वह वही जिसमें किसी दुकान या कारखाने का ऐसा हिसाब लिया हो जो पूर्ण रूप से निश्चित न हो ।

कच्ची मित्ती—सज्ञा स्त्री० [हि० कच्ची + मित्ती] १ वह मित्ती जो पक्की मित्ती के पहले आवे ।

विशेष—लेनदेन में जिस दिन ढ़ डी का दिन पूजता है, उसे मित्ती कहते हैं । उसका दूसरा नाम पक्की मित्ती भी है । उसके पूर्व के दिनों को कच्ची मित्ती कहते हैं ।

२ रुपए के लेनदेन में रुपए लेने की मित्ती और रुपए चुकाने की मित्ती ।

विशेष—इन दोनों मित्तियों का सुद प्राय नहीं जोड़ा जाता ।

कच्ची रसोई—सज्ञा स्त्री० [हि० कच्ची = रसोई] केवल पानी में पकाया हुआ अन्न । अन्न जो दूध या घी में न पकाया गया हो ।

कच्ची रोकड—सज्ञा स्त्री० [हि० कच्ची + रोकड] वह वही जिसमें प्रति दिन के माय व्यय का कच्चा हिसाब दर्ज रहता है ।

कच्ची शक्कर—सज्ञा स्त्री० [हि० कच्ची = शक्कर] वह शक्कर जो केवल राव की जूसी निकालकर सुखाने से बनती है । खांड ।

कच्ची सडक—सज्ञा स्त्री० [हि० कच्ची = सडक] वह सडक जिसमें कंकड़ आदि न पिटा हो ।

कच्ची सिलाई—सज्ञा स्त्री० [हि० कच्ची + सिलाई] १ वह दूर दूर पड़ा हुआ डोम या टाँका जो बखिया करने के पहले जोड़ो को मिलाए रहता है । यह पीछे खोल दिया जाता है । लगर । फोका । २ किताबों की वह सिलाई जिसमें सब फरमे एक

साथ हाथिए पर से सी दिए जाते हैं । इस सिलाई की पुस्तक के पन्ने पूरे नहीं खुलते । जितदरदी में इस प्रकार की सिलाई नहीं की जाती ।

क्रि० प्र०—करना । —होना ।

कच्चा—सज्ञा स्त्री० [म० कच्चा] १ अर्द्ध । दुर्दया । बड़ा ।

कच्चे पक्के दिन—सज्ञा पुं० [हि०] १. चार पाँच महीने का गर्मकाल । २ दो ऋतुओं की सधि के दिन ।

कच्चे बच्चे—सज्ञा पुं० [हि० कच्चा बच्चा का बहुवचन] बहुत छोटे-छोटे बच्चे । बहुत से लडके वाले । जैसे,—इतने कच्चे बच्चे लिए हुए तुम कहीं फिरोगे । २ गतति । उ०—कना कल्पना की नूतन सृष्टि में है, प्रकृति के ज्यों के त्यों चित्रण में नहीं । काव्य कल्पना का लोक है । ये सब उक्त बल बूटेवाली इनकी धारणा के कच्चे बच्चे हैं ।—चिन्तामणि, भा० २, पृ० १६२ ।

विशेष—यह शब्द बहुवचन के रूप में ही प्रचलित है ।

कच्छ—सज्ञा पुं० [सं०] १ जलप्राय देश । अरूप देश । २ नदी आदि के किनार की भूमि । कछार । उ०—सीतल मृदुन वारुका स्वच्छ । इत ये हरे हरे नून कच्छ ।—नर ग०, पृ० २६४ । (घ) ग्रावण बठु नोजन करें । इन में बच्छ कच्छ में चरें ।—नंद ग०, पृ० ३०४ । (ग) गिरि कदर सरसरह सरित कच्छह घन गुच्छह ।—पृ० रा० ६।१०२ । ३ [वि० कच्छी] गुजरात के समीप एक अतरीप । कच्छमुज । उ०—(क) कुकन कच्छ परोट बट्ट सिधू सरभगा ।—पृ० रा० १२।१२०, (घ) चारण कच्छ देसा जाति कच्छिला कहाया ।—विष्णु०, पृ० १०५ । ४. कच्छ देश का घोडा । ५ घोटी का वह छोर जिसे दोनों टाँगों के बीच से निकालकर पीछे पोस लेते हैं । लांग । ६ सिक्खों का जाघियाँ जो पच नकार (कधी, वेग, कच्छ, कडा और कुपाण) में गिना जाता है ।

मुहा०—कच्छ की उखेड = कुश्ती का एक पेंच जिममें पेट पड़े हुए को उलटते हैं । इसमें आने वाले हाथ को विपक्षी के बाएँ बगल से ले जाकर उसकी गदन पर चढ़ाते हैं और दाहिने हाथ को दोनों जाँघों में से ले जाकर उसके पेट के पास लँगोट को पकड़ते हैं और उखेड देते हुए गिरा देते हैं । इसका तोड़ यह है—अपनी जो टाँग प्रतिद्वंद्वी की ओर हो, उसे उसकी दूसरी टाँग में फँसाना अथवा भट घूमकर अपने घुले हाथ से खिलाड़ी की गर्दन दबाते हुए छाती मारकर गिराना ।

७ छप्पय का एक भेद जिसमें ५२ गुण, ४६ लघु, कुल ९८ वर्ण और १४२ मात्राएँ होती हैं । ८ तुन का पेड । उ०—(क) राम प्रताप हुतासन कच्छ विपच्छ समीर समीर दुलारी ।—तुलसी (शब्द०) । (घ) हरी के अतिरिक्त बबून, कच्छ की छाल, घातडा के पत्ते आदि उपयोगी चीजें यहाँ काफ़ी पाई जाती हैं ।—शुक्ल० अग्नि० प्र० (विधि), पृ० १४ ।

कच्छ^३—सज्ञा पुं० [सं० कच्छप] कछुआ । उ०—नहिं तब मच्छ कच्छ वाराहा ।—कवीर ग०, पृ० १४६ ।

कच्छप—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० कच्छपी] १. कछुआ । २. विष्णु । के २४ अवतारों में से एक । उ०—परम रूपमय कच्छप सोई ।—मानस, १।२४७ । ३. कुबेर की नव निधियों में

कच्चा जोड़—संज्ञा पुं० [हि० कच्चा + जोड़] बर्तन बनानेवालों की बोली में वह जोड़ जो रंग से जड़ा गया हो। कच्चा टांका।

विशेष—यह जोड़ उखड़ जाता है और बहुत दिनों तक रहता नहीं।

कच्चा टांका—संज्ञा पुं० [हि० कच्चा + टांका] दे० 'कच्चा' जोड़।

कच्चा तागा—संज्ञा पुं० [हि० कच्चा + तागा] १ कता हुआ तागा जो बटा न गया हो। २ कमजोर चीज। नाजुक चीज।

कच्चा धागा—संज्ञा पुं० [हि० कच्चा + धागा] दे० 'कच्चा तागा'।

कच्चा नील—संज्ञा पुं० [हि० कच्चा + नील] एक प्रकार का नील। नीलवरी।

विशेष—कारखाने में मथाई के बाद हीज में परास का गोंद मिला कर नील छोड़ दिया जाता है। जब वह नीचे जम जाता है, तब ऊपर का पानी हीज के किनारे के छेद से निकाल दिया जाता है। पानी के निकल जाने पर नीचे के गड्ढे में नील के जमे हुए माँठ या कीचड़ को कपड़े में बाँधकर रात भर लटकाते हैं। सुबह उसे खोलकर राख पर धूप में फैला देते हैं। सूखने पर इसी कच्चा नील या नीलवरी कहते हैं। इसमें पक्के नील से कम मेहनत लगती है, इसी से यह सस्ता विकता है।

कच्चापन—संज्ञा पुं० [हि० कच्चा + पन (प्रत्य०)] कच्चे होने की स्थिति या भाव। कचाई। अपरिपक्वता। उ०—मुख के उस कच्चेपन से, मैं नहीं समझता वह पाउडर होगा, कौमार्य की पुष्टि हो रही थी।—पिजरे०, पृ० ४७।

कच्चा पैसा—संज्ञा पुं० [हि० कच्चा + पैसा] वह छोटा तंबाका सिक्का या पैसा जिसका प्रचार सब जगह न हो और जो राज्यानुमोदित न हो। जैसे, गोरखपुरी, वालासाही, मधुसूदाही नानकसाही।

कच्चा वाना—संज्ञा पुं० [हि० कच्चा + वाना] १. रेशम का वह डोरा जो बटा न हो। २ वह रेशमी कपड़ा जिसपर कलफ न किया गया हो।

कच्चा माल—संज्ञा पुं० [हि० कच्चा + माल] १ वह रेशमी कपड़ा जिसपर कलफ न किया गया हो। २ झूठा गोटा पट्टा। ३. वे मूल द्रव्य जिनका उपयोग विविध शिल्पों में उत्पादन कार्य के लिये होता है। जैसे चीनी मिल के लिये गन्ना, वस्त्र मिल के लिये रुई, कागज मिल के लिये बांस, ईख की छोई, सन और लोह के कारखानों के लिये कच्चा लोहा आदि 'कच्चा माल' हैं।

कच्चा मोतियाविद—संज्ञा पुं० [हि० कच्चा + मोतियाविद] वह मोतियाविद जिसमें आँख की ज्योति बिल्कुल नहीं मारी जाती, केवल धुँधला दिखाई देता है। ऐसे मोतियाविद में नश्वर नहीं लगता।

कच्चा रेजा—संज्ञा पुं० [हि० कच्चा + रेजा] दे० 'कच्चा माल-१'।

कच्चा शोरा—संज्ञा पुं० [हि० कच्चा + शोरा] वह शोरा जो उवाली हुई नोनी मिट्टी के खारे पानी में जम जाता है। इसी को फिर साफ करके कलमी शोरा बचाते हैं।

कच्चा हाथ—संज्ञा पुं० [हि० कच्चा + हाथ] वह हाथ जो किसी काम में बँटा न हो। बिना मँजा हुआ हाथ। अनभ्यस्त हाथ।

कच्चा हाल—संज्ञा पुं० [हि० कच्चा + हाल] सच्ची कथा। पूरा और ठीक ब्योरा।

कच्ची^१—वि० [हि० कच्चा का स्त्री०] कच्चा। अपरिपुष्ट। उ०—इस लोड़े की उम्र अभी कच्ची है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८७।

कच्ची^२—संज्ञा स्त्री० कच्ची रसोई। केवल पानी में पकाया हुआ अन्न। अन्न जो दूध या घी में न पकाया गया हो। 'पक्की' का प्रतिजोम शब्द। सखरी। जैसे,—हमारा उनका कच्ची का व्यवहार है।

विशेष—द्विजातियों में लोग अपने ही सबध या विरादरी के लोगों के हाथ की कच्ची रसोई खा सकते हैं।

कच्ची असामी—संज्ञा स्त्री० [हि० कच्ची + असामी] वह काम या जगह जो थोड़े दिनों के लिये हो। चंदरोजा जगह।

कच्ची कली—संज्ञा स्त्री० [हि० कच्ची = कली] १. वह कली जिसके खिलने में देर हो। मुँहवंधी कली। २ स्त्री जो पुरुष समागम के योग्य न हो। अप्राप्त्योवना। ३ जिस स्त्री से पुरुष समागम न हुआ हो। अछूती।

मुहा०—कच्ची कली टूटना = १ थोड़ी अवस्थावाले का मरना। २ बहुत छोटी अवस्थावाली या कुमारी का पुरुष से संभोग होना।

कच्ची कुर्की—संज्ञा स्त्री० [हि० कच्ची + कुर्की] वह कुर्की जो प्रायः महाजन लोग अपने मुकदमे का फैसला होने से पहले ही इस आशका से जारी करते हैं जिसमें मुकदमे का फैसला होने तक मुद्दालेह अपना माल असवाब इधर उधर न कर दे। वि० दे० 'कुर्की'।

कच्ची गोटी—संज्ञा स्त्री० [हि० कच्ची + गोटी] चौसर के खेल में वह गोटी जो सठी तो हो पर पक्की न हो। चौसर में वह गोटी जो अपने स्थान से चल चुकी हो, पर जिसने आधा रास्ता पर न किया हो। उ०—कच्ची बारहि बार फिरासी। पक्की तो फिर यिर न रहासी।—जायसी (शब्द०)।

विशेष—चौसर में गोटियों के चार भेद हैं।

मुहा०—कच्ची गोटी खेलना = नातजुर्वेकार रहना। अशिक्षित बने रहना। अनाड़ीपन करना। जैसे,—उसने ऐसी कच्ची गोटियाँ नहीं खेली हैं जो तुम्हारी बातों में आ जाय।

कच्ची गोली—संज्ञा स्त्री० [हि० कच्ची + गोली] मिट्टी की गोली जो पकाई न गई हो। ऐसी गोली खेलने में जल्दी टूट जाती है।

मुहा०—कच्ची गोली खेलना = नातजुर्वेकार रहना। नातजुर्वेकार होना। अनाड़ीपन करना। उ०—यहाँ किसी ने कच्ची गोलियाँ नहीं खेली हैं। क्या मुफ्त की अशफियाँ हैं।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ५५३। दे० 'कच्ची गोटी खेलना'।

कच्ची घड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० कच्ची + घड़ी] काल का एक माप जो दिन रात के साठवें अंश के बराबर होता है। २४ मिनट का माल। दक्क।

हृदय जिसमें कष्ट, पीडा आदि सहने का साहस न हो। 'कड़ा जी' का उलटा। जैसे,—(क) उसका बड़ा कच्चा जी है, चीर फाड़ नहीं देख सकता। (ख) लड़ाई पर जाना कच्चे जी के लोगों का काम नहीं है। कच्चा करना = (१) डराना। भयभीत करना। हिम्मत छुड़ा देना। (२) कच्ची सिलाई करना। लगर डालना। सलगा भरना। कच्चा होना = (१) अधीर होना। हतोत्साह होना। हिम्मत हारना। (२) लगर पड़ना। कच्ची सिलाई होना।

७. जो प्रमाणों से पुष्ट न हो। अप्रामाणिक। नि सार। अयुक्त। वेठीक। जैसे, कच्ची राय, कच्ची दलील, कच्ची जुगुप्ता।
मुहा०—कच्चा करना = (१) अप्रामाणिक ठहराना। झूठा साबित करना। जैसे,—उसने तुम्हारी सब बातें कच्ची कर दी। (२) नज्जित करना। शरमाना। नीचा दिखलाना। जैसे,—उसने सबके सामने तुम्हें कच्चा किया। कच्चा पड़ना = (१) अप्रामाणिक ठहरना। नि सार ठहरना। झूठा ठहरना। जैसे,—(क) यहाँ तुम्हारी दलील कच्ची पड़ती है। (ख) यदि हम इस समय तुम्हें रूपा न देंगे तो हमारी बात कच्ची पड़ेगी। (२) सिटपिटाना। सकुचित होना। जैसे, हमे देखते ही वे कच्चे पड़ गए। कच्ची पक्की = मली बुरी। उलटी सोधी। दुर्वाग्र। दुर्वचन। गाली। जैसे,—बिना दो चार कच्ची पक्की सुने वह ठीक काम नहीं करता। कच्ची बात = अश्लील बात। लज्जाजनक बात। झूठी बात। उ०—(क) क्यों भला बात हम सुनें कच्ची, हं न बच्चे न कान के कच्चे।—चुमते०, पृ० १७। (ख) कहै सेख तुम वेगम सच्चिय। ऐसी बात कहो मत कच्चिय।—हम्मीर रा०, पृ० ३६।

८. जो प्रामाणिक ठील या माप से कम हो। जैसे,—कच्चा सेर, कच्चा मन, कच्चा दीघा, कच्चा कोस, कच्चा गज।
विशेष—एक ही नाम के दो मानों में जो कम या छोटा होता है, उसे कच्चा कहते हैं। जैसे,—जहाँ नवरी सेर से अधिक वजन का सेर चलता है, वहाँ नवरी को ही कच्चा कहते हैं।

९. जो सर्वांगपूर्ण रूप में न हो। जिसमें काट छांट की जगह हो। जैसे,—कच्ची वही, कच्चा मसविदा। १०. जो नियमानुसार न हो। जो कायदे के मुताबिक न हो। जैसे, कच्चा दस्तावेज। कच्ची नकल। ११. कच्ची मिट्टी का बना हुआ। गीली मिट्टी का बना हुआ। जैसे,—कच्चा घर। कच्ची दीवार।
मुहा०—कच्चा पक्का = इमारत या जोड़ाई का वह काम जिसमें पक्की ईंटें मिट्टी के गारे से जोड़ी गई हो।

१२. अपरिपक्व। अपटु। अव्युत्पन्न। अनाडी। जिसे पूरा अभ्यास न हो।—(व्यक्तिपरक)। जैसे—वह हिसाब में बहुत कच्चा है। १३. जिसे अभ्यास न हो। जो मँजा न हो। जो किसी काम को करते करते जमा या बैठा न हो।—वस्तुपरक। जैसे, कच्चा हाथ। १४. जिसका पूरा अभ्यास न हो। जो मँजा हुआ न हो। जैसे,—कच्चा खेत, कच्चे मक्षर। जैसे,—जो विषय कच्चा हो उसका अभ्यास करो।

कच्चा^२—सज्ञा पु० १. दूर दूर पर पड़ा हुआ ठागे का वह डोम जिसपर दरजी बधिया करते हैं। यह डोम या सीबन पीछे खोल दी जाती है।

क्रि० प्र०—करना। होना।

२. डाँचा। खाका। ढड़ड़ा। ३. मसविदा। ४. कनपटी के पास नीचे ऊपर के जबड़ों का जोड़ जिसमें मुँह खुलता और बंद होता है। ५. जबड़ा। दाढ़।

मुहा०—कच्चा बँठना = दाँत बँठना। मरने के समय ऊपर से नीचे के दाँतों का इस प्रकार मिल जाना कि वे अलग न हो सकें। ६. बहुत छोटा ताँवे का सिक्का जिसका चलन सब जगह न हो। कच्चा पैसा। ७. अधेला। ८. एक रुपए का एक दिन का व्याज जो एक 'कच्चा' कहलाता है।

विशेष—ऐसे १०० कच्चों का ३१ तक्का माना जाता है। पर प्रत्येक ३०० कच्चों का दस पक्का लिया जाता है। देशी व्यापारी इसी रीति पर व्याज फैलाते हैं।

कच्चाअसामी—सज्ञा पु० [हि० कच्चा + असामी] १. वह आदमी जो किसी खेत को दो ही एक फसल जोनने के लिये ले। ऐसे असामी का खेत पर कोई अधिकार नहीं होता। २. जो लेनदेन के व्यवहार में दृढ़ न रहे। जो अपना वादा पूरा न करता हो। ३. जो अपनी बात पर दृढ़ न रहे। जो समय पर किसी बात से नट जाय।

कच्चा कागज—सज्ञा पु० [हि० कच्चा + अ० कागज] १. एक प्रकार का कागज जो घोंटा हुआ नहीं होता। यह शरवत, तेल आदि के छानने के काम में आता है। २. वह दस्तावेज जिसकी रजिस्ट्री न हुई हो।

कच्चा काम—सज्ञा पु० [हि० कच्चा + काम] वह काम जो झूठे सलमे सितारे या गोटे पट्टे से बनाया गया हो। झूठा काम।

कच्चा कोढ़—सज्ञा पु० [स० कच्चा + कोढ़] १. खुजली। २. गरमी। आतशक।

कच्चा गोटा—सज्ञा पु० [हि० कच्चा + गोटा] झूठा गोटा।

कच्चा घड़ा—सज्ञा पु० [हि० कच्चा + घड़ा] १. वह घड़ा जो आँवे में न पकाया गया हो।

मुहा०—कच्चे घड़े में पानी भरना = अत्यंत कठिन काम करना।

२. घड़ा जो खूब पका न हो। सेवर घड़ा।

मुहा०—कच्चे घड़े की चढ़ना = शराब या ताड़ी आदि को पीकर मतवाला होना। नशे में चूर होना। गहागड्ड नशा चढ़ना। पागल होना। उन्मत्त होना। वहकना।

कच्चा चिट्ठा—सज्ञा पु० [हि० कच्चा + चिट्ठा] वह गुप्त वृत्तांत जो ज्यों का त्यों कहा जाय। पूरा और ठीक ठीक व्योरा।

मुहा०—कच्चा चिट्ठा खोलना = गुप्त भेद खोलना। गुप्त बातों को पूरे व्योरे के साथ प्रकट करना। उ०—चलो, वस अब बहुत न बको। नहीं तो मैं जाके वेगम साहब से जठ ढूँगी कच्चा चिट्ठा।—सँर०, पृ० २८।

कच्चा चूना—सज्ञा पु० [हि० कच्चा + चूना] चूने की कड़ी जो पानी में न बुझाई गई हो।

कच्चा जिन—सज्ञा पु० [हि० कच्चा + अ० जिन = सूत] १. जड़। मूर्ख। २. हठी आदमी। ३. पीछे पड़ जानेवाला आदमी। वह जिसे गहरी घुन हो।

चूर—संज्ञा पुं [हि० कुचलना] १. कुचलकर बनाया हुआ अचार । कुचला । २. कुचली हुई वस्तु । भर्ता । भूर्ता ।

मुहा०—कचूर करना या निकालना = (१) खूब कूटना । चूर चूर करना । कुचलना । २. असावधानी या अत्यंत प्रधिक न्यवहार के कारण किसी वस्तु को नष्ट करना । बिगाड़ना । नष्ट करना ।—जैसे, तुम्हारे हाथ में जो चीज पड़ती है, उसी का कचूर निकाल डालते हो । ३. मारते मारते बदम कर देना । खूब पीटना । भुरकुस निकालना ।

चूर^१—संज्ञा पुं [सं० कचूर] हल्दी की जाति का एक पौधा । नर कचूर । जरवाद उ०—परे पुहुमि पर होइ कचूर । परे केदली महें होइ कचूर ।—जायसी (गुप्त), पृ० ३३१ ।

विशेष—यह ऊपर से देखने में बिलकुल हल्दी की तरह का होता है, पर हल्दी की जड़ और इसकी जड़ या गाँठ में भेद होता है । कचूर की जड़ या गाँठ सफेद होती है और उसमें कपूर की सी कड़ी महक होती है । यह पौधा सारे भारतवर्ष में लगाया जाता है और पूर्वीय हिमालय की तराई में आपसे आप होता है । वैद्यक के अनुसार कचूर रेचक, अग्निदीपक और वात तथा कफ को दूर करनेवाला है । यह साँस, हिचकी और बवालीर में दिया जाता है ।

पर्या०—कचूर । डाविड । कश्यप । गंधमूलक । गवतार । वेच-मूत्र । जटाल ।

मुहा०—कचूर होना = कचूर की तरह हरा होना । खूब हरा होना (चिनी आदि का) ।

कचूर^२—संज्ञा पुं [हि० कचोरा] [खी० कचूरी] कचूला कटोरा । उ०—(क) नयन कचूर प्रेम मद भरे । भई सुदिष्टि योगी सो ढरे ।—जायसी (शब्द०) । (ख) मांगी भीख खपर लइ मुए न छोडे वार । वृक्ष जो कनक कचूरी भीख देहु नहि मार ।—जायसी (शब्द०) ।

कचेरा—संज्ञा पुं [हि० काँच] दे० 'कचेरा' ।

कचेल—संज्ञा पुं [सं०] १. वह डोर जिसमें कागजपत्र, ग्रंथ रखे जायें । २. वह आवरण या जिल्द जिसमें कागजपत्र सुरक्षित रखे जायें [को०] ।

कचेहरी—संज्ञा पुं [हि० कचहरी] दे० 'कचहरी' ।

कचंडी^१—संज्ञा स्त्री [हि० कचहरी] दे० 'कचहरी' । उ०—चाड़ी करै कचंडी चढ़िया ।—वांकी० ग्र०, भा० ३, पृ० १०६ ।

कचोक—संज्ञा स्त्री [हि० कचोकना] कोई लोकदार चीज चुभने या गड़ने की क्रिया या भाव ।

कचोकना—क्रि० सं [अनु०] किसी नुकीली चीज को चुभाना या गड़ाना । चुभाना ।

कचोट—संज्ञा स्त्री [हि० कचोटना] रह रहकर बार बार होनेवाली वेदना । कचोटने की क्रिया या भाव । उ०—उसे देखने के लिये उठता हृदय कचोट ।—भरना, पृ० ७३ ।

कचोटना—क्रि० अ० [अनु०] मन के भीतर की वेदना का उमड़ना । किसी की याद में दुख का होना । उ०—हृदय कचोटने लगता है ।—ककान, पृ० १३ ।

२-२७

कचोना—क्रि० सं [हि० कच = घँसाने का शब्द] चुभाना । घँसाना ।

कचोरा^१—संज्ञा पुं [हि० काँसा + ओरा (प्रत्य०)] [खी० कचोरी] कटोरा । प्याला । उ०—(क) पान लिए दासी चहुँ ओरा । अमिरित दानी भरे कचोरा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) मुकुलित केश सुदेश देखियत नील बसन लपटाए । भरि अपने कर कनक कचोरा पीवत प्रियहि चखाए ।—सूर (शब्द०) ।
कचोरी—संज्ञा स्त्री [हि० कचोरा + ई (प्रत्य०)] छोटा कटोरा । प्याली । कटोरी ।

कचौड़ी—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'कचोरी' ।

कचोरी—संज्ञा स्त्री [हि० कचरी] एक प्रकार की पूरी जिसके भीतर उरद आदि की पीठी भरी जाती है । यह कई प्रकार की होती है । जैसे—सादी, खस्ता आदि । उ०—पूरि सपूरि कचोरी कोरी । सदल सु उज्वल सुदर सौरी ।—सूर० (राधा०), पृ० ४२० ।

कच्चट—संज्ञा पुं [सं०] एक जलीय पौधा [को०] ।

कच्चपच्च—संज्ञा पुं [अनु०] दे० 'कचपच' । भीड़ । शोरगुल । बच्चो का कोनाहल ।

कच्चर^१—वि० [सं०] गर्द से भरा हुआ । मैला कुचैला । मल से दूषित ।

कच्चर^२—संज्ञा पुं पानी मिला मखनिया दूध ।

कच्चा^१—वि० [सं० कषण = कच्चा] १. बिना पका । जो पका न हो । हरा और बिना रस का । अपक्व । जैसे—कच्चा फल ।

मुहा०—कच्चा खा जाना = मार डालना । नष्ट करना । (श्लोघ में लोगों की यह नाधारण बोल चाल है ।) जैसे, तुमसे जो कोई बोलेगा उसे मैं कच्चा खा जाऊँगा । उ०—क्या महमूद के अत्याचारों का वर्णन पढ़कर जी में यह नहीं आता है कि वह सामने आता तो उसे कच्चा खा जाते ।—रस०, पृ० १०१ ।
२. जो जाँच पर न पका हो । जो आँच खाकर गला न हो या खरा न हो गया हो । जैसे,—कच्ची रोटी, कच्ची दाल, कच्चा घड़ा, कच्ची ईंट । ३. जो अपनी पूरी बाढ़ को न पहुँचा हो । जो पुष्ट न हुआ हो । अपरिपुष्ट । जैसे,—कच्ची कली, कच्ची लकड़ी, कच्ची उमर ।

मुहा०—कच्चा जाना = गर्भपात होना । पेट गिरना । कच्चा बच्चा = वह बच्चा जो गर्भ के दिन पूरे होने के पहले ही पैदा हुआ हो ।

४. जो बनकर तैयार न हुआ हो । जिसके तैयार होने में कसर हो । ५. जिसके सस्कार या संशोधन की प्रक्रिया पूरी न हुई हो । जैसे—कच्ची चीनी कच्चा शोरा । ६. अदृढ़ । कमजोर । जल्दी टूटने या बिगड़नेवाला । बहुत दिनों तक न रहनेवाला । अस्थायी । स्थिर । जैसे,—(क) कच्चा धागा कच्चा काम, कच्चा रंग । उ०—(क) कच्चे बारह बार फिरासी । पक्के तो फिर फिर न रहासी ।—जायसी ग्र० (गुप्त०), पृ० ३३२ ।
(ख) ऐसे कच्चे नहीं कि हमपर किसी का दाँवपेंच चले ।—फिसाना०, भा० १, पृ० ६ ।

मुहा०—कच्चा जी या दिल = विचलित होनेवाला चित्त । वह

कचलोदा—सज्ञा पुं० [हि० कच्चा + लोदा] कच्चे आटे का पेड़ा।
लोई। जैसे,—वह रोटी नहीं जानता, कचलोदे उठाकर सामने रख देता है।

कचलोन—सज्ञा पुं० [हि० काँच + लोन] एक प्रकार का लवण।
विशेष—यह काँच की भट्ठियों में जमे हुए क्षार से बनता है। यह पानी में जल्दी नहीं घुलता और पाचक होता है।

कचलोहा—सज्ञा पुं० [हि० कच्चा + लोहा] १ कच्चा लोहा। २ अनाडो का किया हुआ वार। हलका हाथ।

कचलोही—सज्ञा स्त्री० [हि० कचलोहा का स्त्री०] दे० 'कचलोहा'।

कचलोहू—सज्ञा पुं० [हि० कच्चा + लोहू] वह पनछा या पानी जो खुले जखम से थोड़ा थोड़ा निकलता है। रसधानु।

कचवासी—सज्ञा स्त्री० [हि० कच्चा = बहुत छोटा + वास] खेत मापने का एक मान जो बीघे का आठ हजारवाँ भाग होता है। बीस कचवासी का एक विश्वासी होता है।

कचवाठा—सज्ञा स्त्री० [हि० कचाहट] १ खिन्नता। विराग। २ नफरत। चिह्न।

कचहरी—सज्ञा स्त्री० [दे० प्रथवा सं० कप + गृह = कपगृह > कचघरी > कछहरी > कचहरी अथवा सं० कृत्य = कर्तव्य + गृह > कचघरी > कचहरी] १ गोष्ठी। जमावडा। जैसे,—तुम्हारे यहाँ दिन रात कचहरी लगी रहती है। २ दरबार। राजसभा। उ०—अम्बरसिंह राजा को नामा। नागी कचहरी बहु विधि घामा।—कवीर सा०, पृ० ४५५।

क्रि० प्र०—उठना।—करना।—बैठना।—लगना।—लगाना।

३ न्यायालय। अदालत।

क्रि० प्र०—उठना।—करना।—लगाना।—

मुहा०—कचहरी चढ़ना = अदालत तक मामला ले जाना।

४ न्यायालय का दफ्तर। ५ दफ्तर। कार्यालय।

कचा^१—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ हथिनी। २ शोभा। सौंदर्य [को०]।

कचा^२—वि० [हि० कच्चा] दे० 'कच्चा'। उ०—अद्भुत नर्तक नहि कछ कचै। सप फननि पर ताडव नचे।—नद० ग्र०, पृ० २८१।

कचाई—सज्ञा स्त्री० [हि० कच्चा + ई (प्रत्य०)] १ कच्चापन। उ०—सने सने थल पक पिटाई। वीरघ तुननि की गई कचाई।—नद० ग्र० पृ० २९५। २ नातजुवेकारी। अनुभव की कमी। उ०—ललन सलोने भर रहे अति सनेह सो पाणि। तनक कचाई देति दुख सूरन लो मुख लागि।—विहारी (शब्द०)।

कचाकचि—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक दूसरे के बाल पकड़कर खींचना। केशाकेशी [को०]।

कचाकु^१—वि० [सं०] १ दुःशील। उद्दंड। २ कुटिल। ३ असह्य [को०]। ४ दुष्प्राय [को०]।

कचाकु^२—सज्ञा पुं० सर्प। साँप [को०]।

कचाटुर—सज्ञा पुं० [सं०] वनमुरगी जो पानी या दलदल के किनारे की घासों में घूमा करती है।

कचाना^१—क्रि० प्र० [हि० कच्चा] १ कचियाना। पीछे हटना। सकपकाना। हिम्मत हारना। गयभीत होना। डगना।

कचायँध—सज्ञा स्त्री० [हि० कच्चा + गंध] कच्चेपन की महक।

कचायन—सज्ञा स्त्री० [हि० कचकच] किककिच। लड़ाई भगड़ा।

कचार^१—सज्ञा पुं० [हि० कछार] नदी के किनारे उस स्थान का जल जहाँ कीचड़ या दलदल के कारण बयलें उठते हैं और जहाँ नाव नहीं चढ़ सकती।

कचार^२—सज्ञा स्त्री० [कचरा या कचड़ा] खाद।

क्रि० प्र०—काड़ना।—डालना।—फेंकना।—हटाना।

कचार^३—सज्ञा स्त्री० [हि० कचारना] कचारने का काम या नाव।

कचारना—क्रि० सं० [प्रनु०] कपड़े को पटककर धोना। कपड़ा धोना।

कचालू—सज्ञा पुं० [हि० कच्चा + चालू] १ एक प्रकार की मछई। बडा। २ एक प्रकार की चाट। उमाले हुए आनू या बड़े के कतरे जिसमें नमक, मिर्च, चट्टाई आदि चरपरी चीजें मिली रहती हैं। ३ कमरछ, अमरुद, पुरे, कचड़ी आदि के छोटे छोटे टुकड़े जिनमें नमक, मिर्च मिली रहती हैं।

मुहा०—कचालू करना या बनाना। = छूट पीटना।

कचावट—सज्ञा पुं० [हि० कच्चा + घावट (प्रत्य०)] कच्चे घास के पत्ते की अभावट की तरह जमाई हुई खट्टाई।

कचाहट—सज्ञा स्त्री० [हि० कच्चा] कच्चापन। कचाई। कच्चे होने की अवस्था या भाव।

कचाहिंद—सज्ञा स्त्री० [हि० कचायन] किककिच। लड़ाई भगड़ा।

कचिया^१—सज्ञा स्त्री० [हि० काटना] दाँती। हँसिया।

कचिया^२—सज्ञा दे० [सं० काँच] एक प्रकार का नमक जो काच से बनाया जाता है। काच लवण। दे० 'कचनोन'।

कचियाना—क्रि० प्र० [हि० कच्चा] १ दिन कच्चा करना। साहम छोड़ना। हिम्मत हारना। तपपर न रहना। २. डर जाना। पीछे हटना। ३ लज्जित होना। शर्माना। झपटना।

सयो० क्रि०—जाना।

कचीची^१—सज्ञा स्त्री० [हि० कचपची] कृतिका। २. कचपचिया।

उ०—कानन कुडल छूट ग्री छूटी। जानहुँपरी कचीची टूटी।

—जायसी (शब्द०)।

कचीची^२—सज्ञा स्त्री० [हि० कच्चा का अ पा०] कनपटी के पास होने जवबो का जोड़ जिससे मुँह खुलता और बंद होता है। है। जवडा। दाढ़।

मुहा०—कचीची बटना = दाँत पीगना। किककिचाना। कचीची लेना = मरने के समय का दाँत पीसना। कचीची बंधना = दाँत बँटना।

कचु—सज्ञा पुं० [सं०] कद शाक। घुईयाँ। बडा [को०]।

कचुल्ला—सज्ञा पुं० [हि० कसोरा, कचोरा + ऊला (प्रत्य०)] वह कटोरा जिसकी पंदी चौड़ी हो।

कचुमर^१—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कठुमर'।

लोगो का भर जाना । गिचपिच । गुत्यमगुत्या । २ दे० 'कचकच' ।

कचपचिया—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कचपची' । उ०—पहिरे खुभी सिंहल दीरी । जनों भरी कचपचिया सीपी ।—जायसी ग्र०, पृ० ४५ ।

कचपची—सज्ञा स्त्री० [हि० कचपच] १. बहुत से छोटे छोटे तारों का पुंज जो एक गुच्छे के समान दिखाई पड़ता है । कृत्तिका नक्षत्र । उ०—तेहि पर सीस जो कचपचि भरा । राजमंदिर सोने नग जरा —जायसी (शब्द०) । २. दे० 'कचवची' ।

कचपेदिया—वि० [हि० कच्चा + पेदी] १. पेदी का कमजोर । २. अस्थिर विचार का । बात का कच्चा । जिसकी बात का कुछ ठीक ठिकाना न हो । ओछा ।

कचवची—सज्ञा स्त्री० [हि० कचपच] चमकीले वृक्ष जिन्हें स्थिया शोभा के लिये मस्तक, कमट्टी और गाल पर विपकाती हैं । खोरिया । सित रा । तारा । चमकी । उ०—घानि कचवची टीका सजा । तिलक जो देख ठाउँ जिउ तजा ।—जायसी (शब्द०) ।

कचभार—सज्ञा पुं० [स०] १. केश का भार या बोझ । उ०—सुमन भई महि मे रुई, जब मुकुमारि विहार । तब सखियाँ सहि फिरै, हाथ दिए कचभार ।—मिखारी ग्र०, भा० २, पृ० १०६ ।

कचमाल—सज्ञा पुं० [स०] चुग्राँ [को०] ।

कचरई श्रमोवा—सज्ञा पुं० [हि० कचरी + श्रमोवा] एक प्रकार का श्रमोवा रंग जो ग्राम की कचरी के रंग का सा अर्थात् हरापन लिए हुए वादामी होता है ।

विशेष—इसकी चाह लोग रंग के लिये उत्तनी नहीं करते जितनी नुगवं के लिये करते हैं । बड़े बड़े आदमियों के लिहाफ और रचाई के अस्तर इस रंग में प्रायः रंगे जाते हैं । पहले कपड़े को हल्दी के रंग में रंगकर हरे के जोशादे में डुबाते हैं । इसके पीछे उसे कसीस में डुबोकर फिटकरी मिले हुए अनार के जोशादे में रंगते हैं । इस रंग के तीन भेद होते हैं—संतली, सूफीयानी और मलयगिरि ।

कचर कचर^१—सज्ञा पुं० [अनु० या देश०] १. कच्चे फल खाने का शब्द । जैसे—(क) आलू पका नहीं, कचर कचर करता है । (ख) वह सारी ककड़ी कचर कचर खा गया । २. कचकच । बकवाद । वतौभा ।

कचर कचर^२—क्रि० वि० दे० 'कचरना' । कुचल कुचलकर । चवाकर । उ०—खूब मजे में भास कचर कचर खाना और चैन करना ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ७१ ।

कचरकूट—सज्ञा पुं० [हि० कचरना + कूटना] १. खूब पीटना और लतियाना । मारकूट ।

क्रि० प्र०—करना ।—मचाना ।

३. खूब पेट भर भोजन । इच्छा भोजन । उ०—तो कोई गोश्त रोटी और कड़ाच की कचरकूट मचा चला ।—प्रेमधन०, भा० २, पृ० १४२ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।—मचाना ।—मचाना ।

कचरधान—सज्ञा पुं० [हि० कचरना + धान] १. बहुत सी ऐसी वस्तुओं का इकट्ठा होना जिनसे गडबड़ी हो । २. बहुत से लड़के वाले । कच्चे बच्चे । ३. घमासान । ४. मारपीट ।

कचरना—क्रि० न० [स० कच्चरण = बुरी तरह चलना या अनु० कच] १. रैर से कुचलना । रौंदना । दवाना । उ०—चलो चलु चलो चलु विचलु न बीच ही तें कीच बीच नीच तो कुटुब को कचरिहो । परे दगावाज मेरे पातक अपार तोहि गंगा के कछार में पछारि छार करिहो ।—पद्माकर (शब्द०) । २. सानना । उ०—योग समझते हैं कि साला भूँगफ की के तेन में आटा कवर कर ठाने लगा है ।—बो दुनिया०, पृ० १५५ । ३. खूब खाना । चवाना ।

मुहा०—कचर कचरकर खाना = खूब पेट भर खाना ।

कचर पचर—सज्ञा पुं० [अनु०] १. गिचपिच । २. दे० 'कचपच' ।

कचरा—सज्ञा पुं० [हि० कच्चा] १. कच्चा खरबूजा । २. फूट का कच्चा फल । ककड़ी । ३. सेमल का डंडा या ढोढ़ । ४. खूद-खाद । कूड़ा करकट । रद्दी चीज । ५. रुई का खूद या विनोना जो धुनने पर अलग कर दिया जाता है । ६. उरद या चने की पीठी । ७. सेवार जो समुद्र में होनी है । पत्थर का भाड़ । जरस । जर ।

कचरी—सज्ञा स्त्री० [हि० कच्चा] १. ककड़ी की जाति की एक बेल जो खेतों में फैलती है । पेंहटा । पेंहटुन । गुरम्ही । सेंधिया ।

विशेष—इसमें चार पाँच अंगुल के छोटे छोटे अड़क-र फल लगते हैं जो पकने पर पीले और खटमीठे होते हैं । कच्चे फलों को लोग काटकर सुखाते हैं और भूनकर सोघाई या तरकारी बनाते हैं । जयपुर की कचरी खट्टी बहुत होती है और कड़ई कम । पच्छिम में सोठ और पानी में मिलाकर इसकी चटनी बनाते हैं । यह गोश्त गलाने के लिये उसमें डाली जाती है । २. कचरी या कच्चे पेंहटे के सुखाए हुए टुकड़े । ३. सूखी कचरी की तरकारी । उ०—पापरवरी फुलौरी कचरी । कूरवरी कचरी औ मिथौरी ।—सूर० (शब्द०) । ४. काटकर सुखाए हुए फल मूल आदि जो तरकारी के लिये रखे जाते हैं । उ०—कुंदरु और ककोडा कोरे । कचरी चार चचेडा सोरे ।—सूर (शब्द०) । ५. छिलकेदार ढाल । ६. रुई का विनोला या खूद ।

कचलपट—वि० [हि० काछ + लपट] दे० 'कछलपट' ।

कचला—सज्ञा पुं० [स० कच्चर = मलिन] १. गीली मिट्टी । गिलावा । २. कीचड़ ।

कचल—सज्ञा पुं० [देश०] एक पहाड़ी पेड़ ।

विशेष—इसकी कई जातियाँ होती हैं । हिंदुस्तान में इसके चौदह भेद मिलते हैं जिनकी पहचान केवल पत्तियों में होती है, कड़ियों में कुछ भेद नहीं होता । इसकी लकड़ी सफेद, चमकदार और कड़ी होती है । प्रति घनफुट २१ सेर वजन में होती है । यह पेड़ यमुना के पूर्व में हिमालय पर्वत पर ५००० से ६००० फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है । पेड़ देखने में बहुत सुंदर होता है । इसकी पत्तियाँ शिथिल में झर जाती हैं और बसंत में पहले निकल आती हैं । इसके तख्ते मकानों में लगते हैं और चाय के सड़क बनाने के काम में माते हैं ।

कग्गद(७)—सज्ञा पुं० [हि० कागद] दे० 'कागद' । उ०—सुनिय राज चहुग्रान वर दीय कग्गद फिर तेह ।—पृ० रा०, ५।१०६ ।

कग्गर(७)—सज्ञा पुं० [हि० कागद, कागर] दे० 'कागद' । उ०—समर सिध रावर दिसा दै कग्गर चहुग्रान ।—पृ० रा०, २६।५२ ।

कधुतो—सज्ञा स्त्री० [हि० कागज] मध्य और पूर्वी हिमाचल में होने-वाली एक प्रकार की झाड़ी । अरैली ।

विशेष—यह नेपाल, भूटान, वरमा, चीन और जापान में बहुत अधिक होती है । नेपाली कागज इसी के डठगो से बनता है और नेपाल में इसीलिये यह झाड़ी बहुत लगाई जाती है ।

कचगन—सज्ञा पुं० [सं० कचङ्गन] मुक्त हाट । खुली बाजार । वह हाट जहाँ कोई सीमाशुल्क या कर न लागू हो [को०] ।

कचगल—सज्ञा पुं० [सं० कचङ्गल] समुद्र । सागर [को०] ।

कच^१—सज्ञा पुं० [सं०] १ वात (विशेषतया सिर का) । उ०—घार कच विरथ कीन्ह महि गिरा ।—मानस, ३।२३ । २ सूखा फोड़ा या ज्वर । पपड़ी । ३ भुङ्ग । ४ अंगरखे का पत्ता । ५ बादल । ६ वृहस्पति का पुत्र । वि० दे० 'देवपानी' । ७ सुगन्धवाला । ८ कुश्ती का एक पेंच जिसमें एक आदमी दूसरे की वगल में से हाथ ले जाकर उसके कंधे पर चढ़ाता है और गर्दन को दबाता है ।

मुहा०—कच बाँधना = किसी की वगल से हाथ ले जाकर उसके कंधे पर चढ़ाना और उसकी गरदन को दबाना ।

९ मेघ । बादल [को०] ।

कच^२—सज्ञा पुं० [अनु०] १ घँसने या चुमने का शब्द । जैसे,—उसने कच से काट लिया । काँटा कच से चुम गया । २ कुचले जाने का शब्द ।

कच^३—वि० [हि० कच्चा का अल्पा० समास रूप] दे० 'कच्चा' । जैसे,—कचविला = कच्चे दिल का । कच्ची पेंदी का । दुल-मुल । कचलहू = रक्त का पछा । लसिका । कचपेंदिया = (१) कच्ची पेंदीवाला । (२) दुलमुल । जिसकी बात का ठिकाना न हो ।

कचकी—सज्ञा स्त्री० [हि० कचट] वह चोट जो दबने से लगे । कुचल जाने की चोट ।

क्रि० प्र०—लगना ।

कचकच—सज्ञा पुं० [अनु०] वाग्मुद्र । वक्ता । भक्ता ।

क्रि० प्र० करना ।—सचाना ।—लगाना ।—होना ।

कचकचाना—क्रि० अ० [अनु० कचकच] १ कचकच शब्द करना । घँसाने या चुमाने का शब्द करना । खूब दाँत घँसाना । जैसे,—उसने कचकचाकर दाँत से काट लिया । २ दाँत पीसना । दे० 'किचकिचाना' ।

कचकड—सज्ञा पुं० [हि० कच्छ = कछुआ + सं० काण्ड = हड्डी] १ कछुए का खोपड़ा । २ कछुए या हल्ले की हड्डी जिससे चीन जापान में खिलौने बनते हैं । ३ सेल्युलाइड ।

कचकड़ा—सज्ञा पुं० [हि० कचकड़] दे० 'कचकड़' ।

कचकना—क्रि० प्र० [हि० कचक + ना (प्रत्य०)] १ कुचलना । दबना । २ ठेस लगना । ठोकर खाना ।

सयो० क्रि०—उठना ।—जाना ।

कचकाना—क्रि० सं० [हि० कचकना] १ कच से घँसाना । भोक्ता । २ किसी खरी पतली चीज को हाथ से दबाकर तोड़ना या फोड़ना ।

कचकेला—सज्ञा पुं० [हि० कठकेला] एक प्रकार का केला जिसके फल बड़े बड़े और खाने में खुरे या फीके होते हैं ।

कचकोल—सज्ञा पुं० [फा० कजकोल] १ दरियाई नारियल का मिश्रापात्र जिसे फकीर लिये रहते हैं । उ०—सो कचकोल सावित तवकुल किया ।—दक्खिनी०, पृ० १४५ । २ कगल । कासा ।

कचग्रह—सज्ञा पुं० [सं०] केश पकड़ना । कामकेल की एक क्रिया । उ०—विथरी अलक मुकताली छवि ठाँडि माँग, मुख छवि अड़ी कला कचग्रह गेरे म ।—पद्मने०, पृ० १६ ।

कचट—सज्ञा स्त्री० [हि० कचोट] दे० १ 'कचक' । २ चुमन । उ०—उन गीतो में आशा, उपालम, वेदना और स्मृतियों की कचट, ठेस और उदासी भरा रहती ।—आकाश०, पृ० १०७ ।

कचडा—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कचरा' ।

कचदिला—वि० [हि० कच्चा + फा० दिल + हि० आ (प्रत्य०)] कच्चे दिल का । जो कड़े जी का न हो । जिमें किसी प्रकार का कष्ट, पीड़ा आदि सहने का साहस न हो ।

कचनार—सज्ञा पुं० [सं० काञ्चनार] पतली पतली डालियों का एक छोटा पेड़ ।

विशेष—यह कई तरह का होता है और भारतवर्ष में प्रायः हर जगह मिलता है । यह लता के रूप में भी होता है । इसकी पत्तियाँ गोल और सिरे पर दो भागों में कटी होती हैं । यह पेड़ अपनी कनी के लिये प्रसिद्ध है । कनी की तरकारी होती है और अचार पड़ता है । कचनार वसंत ऋतु में फलता है । फूलों में भीनी भीनी सुगंध रहती है । फलों के भङ्ग जाने पर इसमें लबी लबी चिपटी फलियाँ लगती हैं । कचनार कई प्रकार के फूलवाले होते हैं । किसी में लाल फूल लगते हैं किसी में सफेद और किसी में पीले । लाल फूलवाले को ही संस्कृति में काचनार कहा जाता है । काचनार शीतल और कसैला समझा जाता है और दवा में बहुत काम आता है । कचनार की जाति के बहुत पेड़ होते हैं । एक प्रकार का कचनार कुराल या कदला कहलाता है जिसकी गोद 'सैम की गोद' या 'सैमला गोद' के नाम से विकती है । यह कतीरे के तरह की होती है और पानी में घुलती नहीं । यह देहरादून की ओर से आती है और इन्द्रिय जुलाब तथा रज खोलने की दवा मानी जाती है । एक प्रकार का कचनार बनराज कहलाता है जिसकी छाल के रेशों की रस्सी बनती है ।

कचप—सज्ञा पुं० [सं०] १ वृण । २ शाकपत्र [को०] ।

कचपच—सज्ञा पुं० [अनु०] १ थोड़े से स्थान में बहुत सी चीज़ों का

= जो बहुत तमावू पीता हो । हुक्के की लतवाला । कक्कड़-वाला = वह आदमी जो पैसे लेकर लोगों को हुक्का पिलाता फिरता हो ।

कक्का^१—सज्ञा पुं [सं० केकय] एक देश जिसे प्राचीन काल में केकय कहते थे । यह अब काश्मीर के अंतर्गत एक प्रांत है । यहाँ के रहनेवाले कक्करवाले या कक्कर कहलाते हैं ।

कक्का^२—सज्ञा पुं [सं०] नगाडा । दुदुमी ।

कक्का^३—सज्ञा पुं [हिं० काका] दे० 'काका' ।

कक्का^४—सज्ञा पुं सिख जिनके यहाँ कर्दे, केस कडा, कच्छ कडाह इन पंच ककारों का व्यवहार है ।

कक्को^५—सज्ञा स्त्री [देश०] एक प्रकार का छोटा वृक्ष जिसकी पत्तियाँ चारे के काम आती हैं । वि० दे० 'कठमेमल' ।

कक्को^६—सज्ञा पुं [सं० कङ्कु] दे० गाँधीदार बाण ।

कक्कोल—सज्ञा पुं [सं० कङ्कोल] दे० 'ककोल' ।

कक्कट—वि० [सं०] कठिन । कठोर ।

कक्करो—सज्ञा स्त्री [सं०] छटिया [को०] ।

कक्ष—सज्ञा पुं [सं०] १ काँख । बगल । २ काँठ । कछोटा । लाँग । ३ कछार । कक्ष । ४ कास । ५ जगल । ६ सूखी घास । ७ सुखा वन । ८ भूमि । ९ भीत । पाखा । १० घर । कमरा । कोठरी । ११ पाप । दोष । १२ एक रोग । काँख का फोड़ा । कखरवार । १३ दुपट्टे का वह आंचल या छोर जिसे पीठ पर डालते हैं । आंचल । १४ दर्जा । श्रेणी । यौ०—समकक्ष = बराबरी का ।

१५ तराजू का पल्ला । पलरा । पलड़ा । १६ वेल । लता । १७ पेटो । कमरबंद । पटुका । १८ अत पुर । रनिवास [को०] । १९ जंगल का भीतरी भाग [को०] । २ दलदली भूमि [को०] । २१ सेना का दक्षिण और वाम पार्श्व [को०] । २२ कटिवध [को०] । २३ नौका का एक भाग [को०] । २४ ग्रह का पथ । ग्रहकक्षा [को०] । २५ गुप्त या छिपने का स्थान [को०] । २६ प्राचीर । चहारदीवारी [को०] । २७ महिप । भेड़ा [को०] । २८ तारा [को०] । २९ फाटक । द्वार [को०] ।

कक्षा—सज्ञा स्त्री [सं०] १ परिधि । २ ग्रह के भ्रमण करने का मार्ग । वह वृत्तलाकार मार्ग जिसमें कोई ग्रह या उपग्रह भ्रमण करता है । उ०—इस ग्रहकक्षा की हलचल री, तरन गरल की लघु लहरी ।—कामायनी, पृ० ५ । ३ तुलना । समता । बराबरी । ४ श्रेणी । दर्जा । ५ ड्योढ़ी । देहली । ६ काँख । ७ कखरवार । एक रोग जिसमें बगल में फोड़ा होता है । ८ किसी घर की दीवार या पाख । ९ काँठ । कछोटा । १० हाथी बाँधने की रस्सी । ११ एक तौल । रत्ती । १२ कमर । कटि [को०] । १३ पटुका । कटिवध [को०] । १४ प्राचीर । चहारदीवारी [को०] । १५ प्राण । आँगन [को०] । १६ अत पुर [को०] । १७ आपत्ति । विरोध [को०] । १८ शकट या छकड़े का एक भाग [को०] । १९ पल्ला । पलड़ा [को०] ।

कक्षापट—सज्ञा पुं [सं०] १. कछोटा । २. कौपीन या कटिवस्त्र [को०] ।

कक्षावेक्षक—सज्ञा पुं [सं०] १ अत पुर निरीक्षक । २ चित्रकार । ३ अभिनेता । ४ कवि । ५ राजकीय मंत्री या उद्यानपाल । द्वारपाल । दरवान । ७ लण्ट । दुराचारी । ८ प्रेमी या प्रेमिका । ९ भावावेश । भावशक्ति [को०] ।

कक्षी—सज्ञा पुं [सं० कक्षिन्] दे० 'कच्छी' । उ०—दुरावी अरव्वी तुरवर्क अ कक्षी ।—पृ० २।० (उ०), पृ० १६७ ।

कक्षीवत्—सज्ञा पुं [म० कक्षीवत्] दे० 'कक्षीवान्' ।

कक्षीवान्—सज्ञा पुं [सं०] एक वैदिक ऋषि का नाम ।

कक्षोत्था—सज्ञा स्त्री [सं०] नागरमोथा ।

कक्ष्या—सज्ञा स्त्री [सं०] १ आँगन । २ चमड़े की रस्सी । ताँत । नाडी । ३ हाथी बाँधने की रस्सी । ४ महल । अत पुर । ५ ड्योढ़ी । ६ होदा । अमारी । ७ घुँवची । ८ समानता । सादृश्य । ९ रत्ती । १० उद्योग । ११ अंगुली । उँगली [को०] । १२ आंचल । अंचल [को०] । १३ घेरा । प्राचीर [को०] । १४ उपरना । दुकून [को०] ।

कखवाली—सज्ञा स्त्री [हिं० कख + वाली (प्रत्य०)] दे० 'ककराली' ।

कखौरी—सज्ञा स्त्री [हिं० कख + शरी (प्रत्य०)] १ दे० 'काँख' । २ बगल का फोड़ा । काँख का फोड़ा ।

कगदही—सज्ञा स्त्री [हिं० कागद + ही (प्रत्य०)] १ वस्त्रा जिसमें कागज पत्र बँधे हो । २ कागज, किताब आदि का ढेर ।

कगर^१—सज्ञा पुं [सं० क = जल + अग्र = काग्र > कगर] १ कुछ उठा हुआ किनारा । कुछ ऊँचा किनारा । २ वाट । आँठ । वारी । ३ मेड़ । बाँड । ४ छत या छाजन के नीचे दीवार में रोड़ सी उमड़ी हुई लकोर जो खूबसूरती के लिये बनाई जाती है । कारनिस । कंगनी ।

कगर^२—किं० वि० [हिं० कगर] १ किनारे पर । किनारे । २ समीप । निकट । ३ अलग । दूर । उ०—जमुमति तेरो वारो अतिहि अवगरो । दूर दही माखन लै डार दियो नगरो । लियो दियो कछु सोऊ डारि देहु कगरो ।—सूर० (शब्द०) ।

कगही^३—सज्ञा स्त्री [सं० कङ्कही, प्रा० ककड, उ० ककही] दे० 'कधी' । उ०—लिये अतर कगही करन, सरस सुगध ममाज । चुटिया गुयन कारन हिय दुलसत बजराज ।—ब्रज०, ग्रं०, पृ० १६८ ।

कगार—सज्ञा पुं [हिं० कगर] १ ऊँचा किनारा । २ नदी का कगारा । २. ऊँचा टीला ।

कगिरी—सज्ञा पुं [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसके दूध से खड़ बनता है । वि० दे० 'खड़—२' ।

कगेडी—सज्ञा पुं [देश०] एक पेड़ का नाम जो हिंदुस्तान में प्रायः सब जगह होता है । इसकी लकड़ी इमारतों में नहीं लगती ।

कगार—सज्ञा पुं [हिं०] दे० 'कगर' ।

कग^४—वि० [सं० काक, हिं० काग] धृष्ट । डोठ । उ०—सकट ब्यूह सजि सुभग कग चामड अग करि ।—पृ० २।० (उ०), पृ० ६२२ ।

कग^५—सज्ञा पुं [सं० काक, प्रा० कग] दे० 'काग' । कौश्या । वायस । उ०—धर कारन विफ्रम कियो कगामिख मखन ।—पृ० २।०, १८।३२ ।

ककवा—सज्ञा पुं० हि० कक्कई का पुं०] दे० 'कवा' ।

ककसा—सज्ञा स्त्री० [स० कक्षा, प्रा० कक्खा] काँख ।

ककसी—सज्ञा स्त्री० [स० कक्कश, प्रा० कक्कसा] एक प्रकार की मछली ।

विशेष—यह गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र, सिंधु आदि नदियों में होती है । इसका मांस रूखा होता है ।

ककहरा—सज्ञा स्त्री० [क + क + ह + रा (प्रत्यय)] क से हु तक वर्णमाला । वरतनिया ।

विशेष—बालकों को पढ़ाने के लिये एक प्रकार की कविता होती है जिसके प्रत्येक चरण आदि में प्रत्येक वर्ण क्रम से आता है । ऐसी कविताओं में प्रत्येक वर्ण दो बार रखा जाता है, जैसे—
क का कमल किरन में पावै । ख खा चाहे खोरि मनावै ।
—कवीर (शब्द०) ।

ककहा—सज्ञा पुं० [स० कङ्कती, प्रा० ककइ, उ० ककही का पुं०] दे० 'कघा' ।

ककही—सज्ञा स्त्री० [स० कङ्कती, प्रा० ककई] १ एक प्रकार की कपास जिसकी रई कुछ लाल होती है । २ चौगला ।

ककही—सज्ञा स्त्री० [स० कङ्कती, प्रा० ककइ] दे० 'कघी' ।

कका—सज्ञा पुं० [हि० काका] दे० 'काका' ।

ककाटिका—सज्ञा पुं० [स०] सिर के पीछे का भाग [को०] ।

ककार—सज्ञा पुं० [स०] व्यंजन का प्रथम वर्ण । 'क' अक्षर या उसकी ध्वनि ।

ककी—सज्ञा पुं० [स० काकी] मादा 'कोमा' । उ०—कक ककी भृत पील कुरगा । अवर चर सर छेदे अगा ।—रा० रू०, पृ० ६७ ।

ककुजल—सज्ञा पुं० [ककुञ्जल] चातक पक्षी [को०] ।

ककुदर—सज्ञा पुं० [स० ककुन्दर] जघनकृप [को०] ।

ककुत्स्थ—सज्ञा पुं० [स०] इक्ष्वाकुवंशीय एक राजा ।

विशेष—पुराणानुसार एक समय देवताओं और राक्षसों में युद्ध हुआ था । देवताओं ने उस समय अयोध्या के राजा से सहायता माँगी । राजा की सवारी के लिये इंद्र बँल वनकर आया । राजा ने उस बँल की पीठ पर चढ़कर लड़ाई में जा असुरों को परास्त किया । तबसे उसका नाम ककुत्स्थ पड़ गया । वाल्मीकीय रामायण में ककुत्स्थ को भगीरथ का पुत्र लिखा है, पर कहीं उसे इक्ष्वाकु का पुत्र और कहीं सोमदत्त का पुत्र भी लिखा है ।

ककुद्—वि० [स०] प्रधान । श्रेष्ठ [को०] ।

ककुद्—सज्ञा पुं० १ बँल के कंधे का कूबड़ । डिल्ला । २ राजचिह्न । उ०—ककुद साधु के अंग ।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० ११६ ।

ककुद्—वि० दे० 'ककुद' [को०] ।

ककुद्—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'ककुद' [को०] ।

ककुद्मान्—सज्ञा पुं० [स०] १. बँल । २. पर्वत । ३. ऋषभ नाम की एक श्रौपधि ।

ककुद्मी—वि० [स० ककुदिमन्] चोटीवाला । डिल्लेवाला [को०] ।

ककुद्मी—सज्ञा पुं० १ डिल्लयुक्त बँल । २ विष्णु । ३ रवतक नामक राजा की पुत्री जो बलराम को व्याही थी [को०] ।

ककुप्, ककुम्—सज्ञा स्त्री० [म०] १ दिशा । २ शोभा । सौंदर्य । ३ चपक की माला । ४ शास्त्र । ५ एक रागिनी । ६ अक्षा का चतुर्थांश । ७ श्वास । ८ अनन्तृत केश या पूँछ, जैसे लटकते हुए गाल [को०] ।

ककुम्—सज्ञा पुं० [स०] १ अर्जुन का पेड़ । २ बीणा का एक अंग । बीणा के ऊपर का वह अंग जो मुड़ा रहता है । प्रसेक ।

विशेष—कोई कोई नीचे के तूँब को भी ककुम् कहते हैं ।

३ एक राग । ४ एक छंद जो तीन पदों का होता है । इसके पहले पद में ८, दूसरे में १ और तीसरे में १८ वर्ण होते हैं ।

५ दिशा । ६ कुटज फूल [को०] । ७ दंशों के एक रात्ता का नाम [को०] ।

ककुम्बिलावल—सज्ञा पुं० [स० ककुम्ब + विलावल] एक मिथित राग ।

ककुम्भा—सज्ञा पुं० [स०] १ दिशा । २. दक्ष की एक पुत्री जो धर्म की पत्नी थी । ३ मालकोस राग की पाँचवी रागिनी जो सपूर्ण जाति की है । इसे दिन के दूसरे पहर में गाना चाहिए ।

ककुम्भती—सज्ञा स्त्री० [स०] एक वैदिक छंद जिसके तीन चरणों में पाँच पाँच और एक में छह वर्ण होते हैं ।

ककुल—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'काका' । उ०—ककुल बबुन मिव देखिए रे, वीरेंद्र, कहूँ न दिखाई, राजा मातई रे ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ६३३ ।

ककुन—सज्ञा पुं० [अ० ककुल] रेशम के कीड़े द्वारा निर्मित कावा । ककेडा—सज्ञा पुं० [स० कर्कटक, कक्कटक] एक वेन जिसके फल साँप के आकार के होते हैं और तरकारी के काम में आते हैं । चिचड़ा ।

ककेरुक—सज्ञा पुं० [स०] उदर में होनेवाला एक प्रकार का कीड़ा । उदरकृमि ।—माधव०, पृ० ७१ ।

ककैया—वि० [हि० ककही] कधी के आकार की (ईंट) ।

विशेष—यह शब्द ईंट के एक भेद के लिये प्रयुक्त होता है जो बहुत छोटी होती है और जिसे लखावटी या लखौरी भी कहते हैं ।

ककोडा—सज्ञा पुं० [स० कर्कोटक, प्रा० कक्कोडक] लेखसा । ककरोल । उ०—कुँदरु और ककोडा कोरे । कचरी चार चचेडा सोरे ।—सूर० (शब्द०) ।

ककोणि—सज्ञा पुं० [स० कोकमद, > प्रा० कोकणग्र > (वर्णविपर्यय) ककोण्य, < ककोणई = ताल अथवा देश०] रक्त । खून । उ०—श्रोणित रक्त ककोणि पुनि रुधिर अमृक क्षतजात ।—नद ग्र०, पृ० ६२ ।

ककोरना—वि० स० [हि० कोडना] खरोचना । खुरचना । खुरेदना ।

ककोरा—सज्ञा पुं० [हि० ककोडा] दे० 'ककोड़ा' ।—सूर० (राधा०), पृ० ४२० ।

ककड—सज्ञा पुं० [स० कर्कर] १ सूखी या सँकी हुई सुरती का भुराभुरा चूर जिसमें पीनेवाला तमाखू मिला रहता है । इसे छोटी चिलम पर रखकर पीते हैं । २ दे० 'काकड' ।

यी०—कक्कडखाना = (१) जहाँ कई आदमी बैठकर हुक्का पीते हो । (२) चडूखाना । भटियारखाना । बुरी जगह । कक्कड़वाज

पर मल्लिका गुविंद कैयों चंद माझ बुध कुरविंद लव चैरो री ।
—पजनेस०, पृ० २३ ।

कइलासवासो—संज्ञा पुं० [सं० कँलास + वासिन्] १ कँलास में रहने वाले । शंकर । उ०—कइलासवासी उमा करति खवासी दासी मुक्ति तजि कासी नाच्यो राच्यो कैयो राग पर—ब्रज० ग्रं०, पृ० ३२ ।

कइसे०—कि० वि० [हि० कैसे] दे० 'कैसे' । उ०—कइसेहु विरह न छाडइ, भा ससि गहन गिरास ।—पदमावत, पृ० ११० ।

कई^१—वि० [सं० कति, प्रा० कइ] एक से अधिक । अनेक । जैसे,—कई बार । कई आदमी ।

गौ०—कई एक = अनेक । बहुत से । कई बार = कितने बार । कई दफा ।

कई^२—वि० [सं० कृत, ७ क्रिप्र, ७ क्रिय] की हुई । उ०—अपराध छमिबो बोल पडए बहुत हों दीठयो कई ।—मानस, १।३२६ ।

कई^३—कि० सं० [हि० कहना का मूत कृ०, † कँना (खड़ी)] कही । उ०—जा री जा मखि भवन आपुने लाख बात की एकु कई री ।—नंद ग्रं०, पृ० ३६७ ।

कई^४—संज्ञा स्त्री [हि० काई] दे० 'काई' । उ०—सरिता सजम स्वच्छ सलिल सब, फाटी काम कई ।—सूर०, १०।३३६२ ।

कउ^१—प्रत्य० [हि०] का । को । की । उ०—राजमती कउ रचउ बीवाहो ।—वी० रा०, पृ० १५ ।

कउड़ा—वि० [हि० कडुवा] दे० 'कडुवा' । उ०—चण तृण त्रिमवण वसिआ कउड़ा मीठा खाय ।—प्राण०, २८३ ।

कउडि^१—संज्ञा स्त्री [हि० कौड़ी] दे० 'कौड़ी' । उ०—कउडि पठओले पावनहि धोर ।—विद्यापति, पृ० ५६ ।

कउण^१—सर्व० [हि० कौन] कोन । उ०—कउण सुआवै कउण सुजाय ।—प्राण०, पृ० ७७ ।

कउतुक^१—संज्ञा पुं० [सं० कौतुक] दे० 'कौतुक' । उ०—मन विद्यापति कामे रमनि रति, कउतुक बुझ रसमंत ।—विद्यापति, पृ० ३४ ।

कउल^१—संज्ञा पुं० [सं० कमल, ७ कँवल, ७ कवल] दे० 'कौल' । कमल । उ०—घरहर वरपे सर भरे, सहज ऊपजे कउलु ।—प्राण०, पृ० ६६ ।

कउल^२—संज्ञा पुं० [अ० कौल] दे० 'कौल' । उ०—जनमत मरत अनेक प्रकार त्रसित कउल पुनि बार बार ।—भीखा० ग्रं०, पृ० ८२ ।

कउलति^१—संज्ञा पुं० [अ० कवलित] अंगीकार । स्वीकार । उ०—कउलति कए हरि आनन नेह ।—विद्यापति, पृ० ४०४ ।

कउवा^१—संज्ञा पुं० [हि० कौवा] दे० 'कौवा' । उ०—आंखि निर्माणी क्या करइ कउवा लवइ निलज्ज ।—ढोला०, पृ० ५२० ।

ककदी—संज्ञा पुं० [सं० ककन्द] सोना [को०] ।

ककड़ी^१—संज्ञा स्त्री [सं० कडुती, प्रा० कंकड़] दे० 'कधी' ।

ककड़ासीगी—संज्ञा स्त्री [हि० काकड़ासीगी] दे० 'काकड़ासीगी' ।

ककड़ी—संज्ञा स्त्री [सं० ककंदी, प्रा० कक्कटी] १. जमीन पर फैलनेवाली एक बेल जिसमें लंबे लंबे फल लगते हैं ।

विशेष—यह फागुन चैत में बोई जाती है और बसाख जेठ में फलती है । फल लंबा और पतला होता है । इसका फल कच्चा तो बहुत खाया जाता है, पर तरकारी के काम में भी आता है । लखनऊ की ककड़ियाँ बहुत नरम, पतली और मीठी होती हैं ।

२. ज्वार या मक्के के खेत में फैलनेवाली एक बेल जिसमें लंबे लंबे और बड़े फल लगते हैं ।

विशेष—ये फल बादो में पककर आपसे आप फूट जाते हैं, इसी से 'फूट' कहलाते हैं । ये खरबूजे ही की तरह होते हैं, पर स्वाद में फीके होते हैं । मीठा मिलाने से इनका स्वाद बन जाता है ।

मुहा०—ककड़ी के चोर को कटारी से मारना = छोटे अपराध या दोष पर कड़ा दंड देना । निष्ठुरता करना । ककड़ी खीरा करना = तुच्छ समझना । तुच्छ बनाना । कुछ कदर न करना । जैन,—तुमने हमारे माल को ककड़ी खीरा कर दिया ।

ककना^१—संज्ञा पुं० [सं० कङ्कण] दे० 'कङ्कण' । उ०—नेह विगरही दोहरी सजनी, ककना अकिल के डार हो ।—कवीर ग्रं०, पृ० १३४ ।

ककनी—संज्ञा स्त्री [हि० कङ्कनी] १. दे० 'कङ्कनी' । २. गोल चक्कर जिसके बाहरी किनारे पर दाँत या नुकीले कँपूरे हो । ददानेदार चक्कर । ३. कङ्कनी के आकार को एक मिठाई ।

ककनू^१—संज्ञा पुं० [अ० ककनूस] एक पक्षी । उ०—ककनू पंखि जँस सर साजा ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २५८ ।

विशेष—इसके संबन्ध में प्रसिद्ध है कि यह बहुत मधुर गाता है और अपने गान से ही उत्पन्न अग्नि में जल जाता है ।

ककमारी—संज्ञा स्त्री [सं० काक = कौवा + मारना] एक प्रकार की बड़ी लता, जो अवध, बंगाल और दक्षिण भारत में होती है ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ चार से आठ इंच तक लंबी होती हैं । फूल नीलापन लिए पीले रंग के और बहुत सुगंधित होते हैं । इसमें छोटे छोटे तीक्ष्ण फल लगते हैं जो मछलियों और कौबो के लिये मादक होते हैं । विलायत में जो की शराब में इसका मेल दिया जाता है ।

ककर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी । बाज [को०] ।

ककराली—संज्ञा स्त्री [सं० कक्ष, पा० कक्ख हि० काँख + वाली (प्रत्य०)] काँख का एक फोड़ा । वह गिल्टी जो बगल में निकलती है । कहराली । कखवाली । कँखोरी ।

ककरासीगी^१—संज्ञा स्त्री [हि० काकड़ासीगी] दे० 'काकड़ासीगी' ।

ककरी^१—संज्ञा स्त्री [हि० ककड़ी] दे० 'ककड़ी' । उ०—ककरी कचरी अह कवनारयो । सुरस निमोननि स्वाद संवारयो ।—सूर० (राधा०), पृ० ४२० ।

ककरेजा—संज्ञा पुं० [हि० काकरेजा] दे० 'काकरेजा' ।

ककरेजी—संज्ञा पुं० [हि० ककरेजी] दे० 'काकरेजी' ।

ककरोल—संज्ञा पुं० [सं० ककरोटक, प्रा० कक्कोडक] ककोड़ा । खेस ।

ढोलह करइ कंवाइयउ, आयउ पुगल पासि ।—ढोला०,
दू० ५२२ ।

कमलणी०—सज्ञा स्त्री० [सं० कमलिनी, प्रा० कमलिणी] दे०
'कमलिनी' । उ०—धेण कमलाणी, कमलणी सूरिज ऊगइ
आइ ।—ढोला०, दू० १३० ।

कमलाणी०—कि० अ० [सं० कु+म्लान, प्रा० क्मण] कुम्हलाना ।
मुरझा जाना । उ०—(क) धेण कमलाणी, कमदणी, सिसहर
ऊगइ आइ ।—ढोला०, दू० १२६ । (ख) काटत वेलि कूप
ले मेलही, सीचताडी कमलाणी ।—कवीर ग्र०, पृ० १४२ ।

कैरवुए—सज्ञा पुं० [सं० कलम्बक, ०+कैरवुआ, करेमुआ] दे० 'करेपू' ।
उ०—निकले कमल सरो मे श्रीर कैरवुए लहरे ।—अपरा०,
पृ० १६४ ।

कैलगी०—सज्ञा स्त्री० [फा० कैलगी] दे० 'कलगी' । उ०—कैलगी
श्री नवरतन पन्हावा । ताह सचिव कै कोरि चढावा ।—हिदी०
प्रेमा०, पृ० २७२ ।

कैवरि—सज्ञा स्त्री० [सं० कुमारी, ०+कुँवरि] दे० 'कुमारी' । उ०—
चद्रकला देवलि कैवरि, पारसि महिमा साह ।—हम्मीर रा०
पृ० ११६ ।

कैवरी—सज्ञा स्त्री० [हि० कोर ?] तमोलियो की भापा मे पचास
पान की एक गड्डी । (चार कवरी की एक ढोली होती है ।)

कैवल—सज्ञा पुं० [सं० कमल, ०+कवल, केवल] दे० 'कमल' ।

कैवलककड़ी—सज्ञा स्त्री० [हि० कैवल+ककड़ी] कमल की जड़ ।
भसींड । मुरार ।

कैवलगट्टा—सज्ञा पुं० [सं० कमला + ग्रन्थि > हि० गट्टा] कमल का बीज ।

कैवलवाव—सज्ञा पुं० [हि० कमल+वायु] दे० 'कमलवायु' ।

कैवला—सज्ञा पुं० [सं० कमल] दे० 'कमल—१' । उ०—पदुमावति
कैवला ससि जोती ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २८५ ।

कैवारी—वि० [सं० कुमारी] कुँवारी । क्वारी । उ०—वह भी तो
दुलहन बनेगी कभी और खुल जायेंगी मेढियाँ, उसकी कच्ची
कैवारी सभी मेढियाँ ।—वदनवार, पृ०, ५१ ।

कैवासा—सज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० कैवासी] लडकी के लडके का
लडका । नाती का लडका ।

कैसुला—सज्ञा पुं० [हि० काँसा] [स्त्री० अल्पा० कैसुली] काँसे
का एक चौखूँटा टुकड़ा जिसके पहलो मे गोल गड्ढे होते हैं । इस
पर सोनार घुँघरू आदि के बोरो की खोरिया बनाते हैं ।
पाँसा । किरकिरा ।

कैसुली—सज्ञा स्त्री० [हि० कैसुला का स्त्री०] दे० 'कैसुला' ।

कैसुवा—सज्ञा पुं० [हि० काँस] एक कीड़ा जो ईख के नए पौधो
को नष्ट करता है ।

कैसेरा—सज्ञा पुं० [हि० काँसा+एरा (प्रत्यय)] दे० 'कसेरा' ।
उ०—हाट करे भो प्रथम प्रवेश, अष्टधातु घटना पङ्कारे, कैसेरी
पसरौ काँस्य कङ्गारा ।—कीर्ति०, पृ० २८ ।

कैहारी—सज्ञा पुं० [सं० कर्मधार+कम्महार > कैहार हि० कहार]
दे० 'कहार' । उ०—चपल पालकी के कैहार सरवान
महाउत । प्रेमघन०, पृ० १२ ।

कै—सज्ञा पुं० [सं०] १. ग्रहण । २. विष्णु । ३. कामदेव । ४. सूर्य ।
५. प्रकाश । ६. प्रजापति । ७. दक्ष । ८. अग्नि । ९. वायु ।
१०. राजा । ११. यम । १२. आत्मा । १३. मन । १४.
शरीर । १५. काल । समय । १६. धन । १७. मयूर । १८.
शब्द । १९. ग्रन्थि । गाँठ । २०. जल । उ०—ति न नगर न
नागरी, प्रतिपद हस क हानि ।—केशव (शब्द०) ।

यो०—कज=कमल । कद=वादल ।

२१. गरुड (को०) । २२. आनंद । सुख (को०) । २३. मस्तक
(को०) । २४. सुवर्ण (को०) । २५. पक्षी (को०) । २६. केश ।
वाल (को०) । २७. केशगुच्छ (को०) । २८. स्त्री का करण
या क्रिया (को०) । २९. दुग्ध । दूध (को०) । ३०. कृपणता ।
(को०) । ३१. विष (को०) । भय (को०) ।

कै०—वि० [हि०] १. का । उ०—सुवा क वेल पवन होइ
लागा ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २७६ । २. को । उ०—
राम निकाई रावरी, है सचही को नीरु । जो यह सची है
सदा, तो नीको तुलसीक ।—मानस, १।२२ ।

कै०—अव्य० [फा० कि] को । या । अथवा । उ०—काल नहीं
क मस नहीं, नहीं क लेखणहार ।—ढो १०, दू० १४० ।

कइ०—प्रत्य० [हि० की] १. की उ०—शोभा दशरथ भवन कइ,
को कवि वरन पार ।—मानस, १।२६७ । २. को । के लिये ।
उ०—तोहि सम हिन न मोर समारा । वहे जात कइ मइसि
अधारा ।—मानस, २।२३ ।

कइ०—वि० [सं० कति, प्रा० कइ] १. कितनी । उ०—जनम लाभ
कइ अवधि अधाई ।—मानस०, २।५२ ।

कइ०—कि० वि० [सं० कदा, प्रा० कया, ०+कब] कब । उ०—
कइ परणै रुपमणी किमान ।—वेनि०, पृ० १६८ ।

कइ०—अव्य० [फा० कि] या । अथवा । उ०—बइ तूँ ढोरा
नावियउ कइ फागुन कइ चेत्रि ।—ढोला०, दू० १४६ ।

कइक०—वि० [हि० कई+एक] अनेक । कई । उ०—राम दिन
कइक ता ठोर भवरो रहे, आइ बल्लल तही दई देखाई ।
—सूर० (राधा०), पृ० ५८५ ।

कइकाँण०—सज्ञा स्त्री० [देश०] केकाण । घोड़ा । उ०—एही भली
न करहला, करहलिया कइकाँण ।—ढोला०, दू० ६२७ ।

कइकुल०—सज्ञा पुं० [सं० कवि+कुल] कविसमूह । कविदल ।
उ०—अकखर रस वृजभनिहार नहि कहकुल भिखारि भउ ।
—कीर्ति०, पृ० १८ ।

कइती—सज्ञा स्त्री० [हि० कित] मोर । तरफ ।

कइती—सज्ञा पुं० [सं० कपित्य प्रा० कइत्य] कैय । कैया ।

कइथिन०—सज्ञा स्त्री० [हि० कायय का स्त्री०] दे० 'कायय' ।
उ०—कइथिनि चली समाहि न आँगा ।—वदमा०, पृ० ८४ ।

कइनी—सज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चिका] बाँस की टहनो या शाखा ।

कइ०—सज्ञा पुं० [सं० कवर] दे० 'करील' । उ०—कइ कइरी ही
पारणउ, अइ दिन यूँ ही टाल ।—ढोला०, दू० ४३० ।

कइलास—सज्ञा पुं० [सं० कैलास] दे० 'कैलास' । उ०—समु कइलास

कंठोर

कंठोर—सज्ञा पुं० [सं० कण्ठोरव] दे० 'कंठीरव' । उ०—संग मिलियो जोत्री सिवो, कजहुण नवो कंठोर ।—रा० ल०, पृ० ५२८ ।
 कंठीला—वि० [हिं० कांठ + ईला] (प्रत्य०) [खी० कंठीली] कांटेदार । जिसमें कांटे हो । उ०—जिन दिन देखे वे कुसुम गई से बीत बहार । अब अग्नि रही गुनाव की अपन कंठीली डार ।—बिहारी (शब्द०) ।
 कंठेरी—सज्ञा स्त्री० [सं० कण्ठकारि] मटकटैरा ।
 कंठेला—सज्ञा पुं० [हिं० काठ + ऐला] एक प्रकार का केला जिसके फल बड़े और लंबे होते हैं । यह हिंदुस्तान के सभी प्रांतों में होता है । कवकेला । कठकेला ।
 कंठु—सज्ञा पुं० [सं० कण्ठ] दे० 'कंड' । उ०—जेहि किरिरा सो सोहाग सोहागो । चंदा जैस स्याम कंठ लागी ।—जायसी ग्रं० (गुप्त०), पृ० ३३५ ।
 कंठना—सज्ञा पुं० [सं० कठ + ना] (प्रत्य०) गले में पहनने का वस्त्रों का एक गहना । उ०—मणि गन कंठना कठ, मदि केहरि नत्र सोहत ।—तृ० रा०, १।७१७ ।
 कंठहरिया—सज्ञा स्त्री० [सं० कठहार का अल्पा० रूप] कठी । उ०—सूर सगुन वाटि गोकुल में अब निर्गुन को ओमरो । ताकी छार छार कंठहरिया जो ब्रज जातो दूसरो ।—सूर (शब्द०) ।
 कंठोर—सज्ञा पुं० [सं० कण्ठोरव] दे० 'कंठीर' । उ०—मनो मदमत्त कंठीर गुत्ता ।—तृ० रा०, १।२२८ ।
 कंडरा—सज्ञा पुं० [सं० कण्डल] मूरी, सरपों यादि के बीच का मोटा डठन जिसमें फूल निकलते हैं । इसका लोग साग बनाते और अचार डालते हैं ।
 कंडहार—सज्ञा पुं० [सं० कणधार] १ कवट । नाविक । मांझी । कर्णधार । उ०—(क) जा कहैं अइस होहि कंडहार । —जायसी ग्रं० (गुप्त०), पृ० १३२ । (ख) बहत पार नहि कोउ कंडहार ।—मानस १।२८० ।
 कंडिया—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कडिया' । उ०—कंडिया त्रिच घाल्यो कमध ।—नट०, पृ० १।२७२ ।
 कंडिहारा—सज्ञा पुं० [सं० कर्णधार] दे० 'कंडहार' । उ०—सतगुरु सब तारण कंडिहारा ।—कबीर सा०, पृ० ४३० ।
 कंडुवा—सज्ञा पुं० [हिं० कांढो या म० कण्डु] जानवाले अन्तों का एक रोग । इसमें बाल पर काली काली एक चिकनी वस्तु जम जाती है जिससे उसके दाने मारे जाते हैं । यह रोग गेहूँ, ज्वार बाजरे आदि की बालों में होता है । कजुवा । झीटी ।
 किं० प्र०—लगता । मारना ।
 कंडेरा—सज्ञा पुं० [सं० कड + हिं० एरा] [खी० कंडेरिन] एक जाति जो पहले तोर कमाने बनाती थी और अब रई धुनती है । धुनिया ।
 कण्यार—सज्ञा पुं० [सं० कणिकार, हिं० कनेर] कनेर । उ०—धरा कण्यार की कव जयउं, सूकी तोड़ सुरत ।—डोना०, पृ० १३५ ।

२-२६

कंदराना—किं० अ० [सं० कर्दम] मेलयुक्त हो जाना ।

कंदरी—सज्ञा स्त्री० [सं० कर्दम] १ गीली मिट्टी । २. कूटी बरी या सुर्खी ।

कंदारा—सज्ञा पुं० [प्रा० कडि + सं० धार] कमर पर पहननेवाला एक तागा । करघनी । करगता ।

कंदु—सज्ञा पुं० [सं० कण्डुक] दे० 'कंदुक' ।

कंदुआ—सज्ञा पुं० [हिं० कांढो] बालवाले अन्तों का एक रोग जिससे बाल पर काली मुकड़ी जम जाती है और दाना नहीं पड़ता । कडोर ।

कंदूरी—सज्ञा स्त्री० [सं० कण्डूरी] कुंदर । विवा ।

कंदूरी—सज्ञा पुं० [फा०] वह खाना जिसे मुसलमान बीवी फातमा या किसी पीर के नाम का फातिहा करते हैं ।

कंदेलिया—सज्ञा स्त्री० [देश०] कम दूध देनेवाली भैंस ।

कंदेला—वि० [हिं० कांढो, पू० हिं० कंदई + ऐला (प्रत्य०)] मलिन । गंदला । मलयुक्त । उ०—जनम कोटि को कंदैलो हृद हृदय धिरातो ।—तुलसी (शब्द०) ।

कंधाई—सज्ञा पुं० [हिं० कण्हाई] दे० 'कण्हाई' । उ०—मोहि नद के कंधाई बोल भाई रे हरी ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५१० ।

कंधावर—सज्ञा स्त्री० [हिं० कंधा + आवर (= आवरण) (प्रत्य०)] १. वह चदर या दुपट्टा जो कंधे पर डाला जाता है ।

मुहा०—कंधावर डालना = किसी पट या दुपट्टे को जनेऊ की तरह कंधे पर डालना ।

विशेष—विवाह आदि में कपड़े पहनाकर ऊपर से एक दुपट्टा ऐसा डालते हैं कि इसका एक पल्ला बाएँ कंधे पर रहता है और दूसरा छोर पीछे होकर दाहिने हाथ की बगल से होता हुआ फिर बाएँ कंधे पर आ पड़ता है । इसे कंधावर कहते हैं ।

२. जूए का वह भाग जो बेल के कंधे के ऊपर रहता है । ३. हुड्डक या ताशे की वह रस्सी जिससे उसे गले में लटकाकर बजाते हैं ।

कंधेली—सज्ञा स्त्री० [हिं० कंधा + ऐली (प्रत्य०)] १. घोडागाड़ी का एक साज जिसे घोड़े को जोतते समय उसके गले में डालते हैं । इसके नीचे कोई मुलायम या गुलगुली चीज टँकी रहती है जिससे घोड़े के कंधे में रगड़ नहीं लगती है । २. घोड़े या बेल को पीठ पर रखने का सुँडका या गद्दी । यह चारजामे या पलाम के नीचे इसलिये रखी जाती है कि उनकी पीठ पर रगड़ न लगे ।

कंधैया—सज्ञा पुं० [सं० कण्ण, प्रा० कण्ह, हिं० कान्ह, कण्हैया] १. दे० 'कण्हैया' । उ०—हय दावि कण्हैया, सुमिरि कंधैया, सुगज कंधैया पर पहुँची ।—हिम्मत०, छ० २०६ ।

कंधैया—सज्ञा पुं० [सं० स्कन्ध, प्रा० कण्व, हिं० कण्व + ऐया (प्रत्य०)] दे० 'कंधा' ।

कंधैपी—सज्ञा स्त्री० [हिं० कांपना] थरथराहट । कांपना । संचलन ।

कंधना—किं० अ० [सं० कम्पन] १ हिलना । डोलना । संचलित होना । कांपना । २. अयभीत होना । डरना ।

कंधाना—किं० सं० [सं० कण्व से नाम०] छड़ी से मारना । उ०—

खाते हैं। कँगनी के पुराने चावल रोगी को पथ की तरह दिए जाते हैं।

पर्या०—काकन। ककुनी। प्रियगु। कगु। टांगुन। टंगुनी।

कँगनीदुमा—वि० [हि० कँगनी + फा० दुम] जिसकी दुम में गाँठें हो। गठीली पूँछवाला।

कँगनीदुमा—सज्ञा पुं० वह हाथी जिसकी दुम में गाँठें हो। ऐसा हाथी ऐसी समझा जाता है।

कँगल०—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कग'।—डि०।

कँगला—वि० [स० कङ्काल] [स्त्री० कगली] दे० 'कंगाल'।

कँगसी—सज्ञा स्त्री० [स० कङ्कनी = कँगही] पंजा गठना। कम्कन। कँची।

क्रि० प्र०—वाँघना। गठना।

यौ०—कगसी की उडान = मानखम में एक प्रकार की साड़ी पकड़ जिसमें दोनों हाथों से कँगसी बाँधकर या पंजा गठकर उड़ना पड़ता है।

कँगही०—सज्ञा स्त्री० [स० कङ्कनी, प्रा० ककड़] दे० 'कवी'। उ०—कँगही के देत प्यारी कसकत मसकत, पुनकि ललकि तन स्वेद वरसन है।—ब्रज०, प्र० पृ० १३८।

कँगारू—सज्ञा पुं० [अ०] एक जंतु।

विशेष—यह आस्ट्रेलिया, न्यूगिनी आदि टापुओं में होता है।

इसकी कई जातियाँ होती हैं। बड़ी जाति का कँगारू ६ ७ फुट लंबा होता है। मादा नर से छोटी होती है और उनकी नाभि के पास एक रैली होती है। जिसमें वह कभी कभी अपने बच्चे को छिपाए रहती है। कँगारू की पिछली टाँगें लम्बी और अगली बिलकुल छोटी और निकम्मी होती हैं। इसकी पूँछ लंबी और मोटी होती है। पैरों में पंजे होते हैं। गर्दन पतली कान लंबे और मुँह खरगोश की तरह होता है। यह खाकी रंग का होता है, पर अगला हिस्सा कुछ स्याही लिए हुए और पिछला पीनापन लिए होता है। इसका आगे का धड़ पतला और निचल और पीछे का मोटा और दृढ़ होता है। यह १५ से २० फुट तक की लंबी छत्रांग मारता है और बहुत डरपोक होता है। प्रास्ट्रेलियानों ने इसका शिकार करते हैं।

कँगुरिया—सज्ञा स्त्री० [हि० कँगुरी + इया (प्रत्य०)] दे० 'कनगुरिया'।

कँगुरी—सज्ञा स्त्री० [हि०] कानी अगुली।

कँगूरा—सज्ञा पुं० [फा० कँगूरह] [वि० कँगूरेदार] १ शिखर। चोटी। उ०—कोतुकी कपीश कूद कनक कँगूरा चढ़ि रावन भवन जाइ ठाढ़ो तेहि काल भो।—तुलसी (शब्द०)। २ कोट या किले की दीवार में थोड़ी थोड़ी दूर पर बने हुए स्थान जिसका घिरा दीवार से कुछ ऊँचा निकला होता है। और जहाँ से छिपे सिपाही निशाना लगाते हैं। कुर्ज। उ०—कोट कँगूरन चढ़ि गए कोटि कोटि रणधीर।—तुलसी (शब्द०)। ३ मन्दिर आदि का ऊपरी भाग आदि। ४ कँगूरे के आकार का छोटा रवा। ५ नय के चंदक प्रादि पर का वह उनाड जो छोटे छोटे रवों को शिखराकार रखकर बनाया जाता है।

कँगूरेदार—वि० [हि० कँगूरा + फा० दार] जिसमें कँगूरे हों। कँगूरेवाला।

कँगोई०—सज्ञा स्त्री० [स० कङ्कती, प्रा० ककड़] दे० 'कँगही'। उ०—कधी कपडे कँगोई जो चोने वाल। हवा माने हो कँगोई को देवे डाल। दक्खिनी०, पृ० २७१।

कँघेरा—सज्ञा पुं० [हि० कघा + एरा (प्रत्य०)] [स्त्री० कँघेरिन] कघा बनानेवाला। ककहगर।

कँचुप्रा—वि० [हि० कच्चा] दे० 'कच्चा १'। उ०—तितु लागे कँचुप्रा फन मोती।—करीर प्र०, पृ० २०५।

कँचुली—सज्ञा स्त्री० [स० कञ्चुली] कँबुल।

कँचुवा—सज्ञा पुं० [स० कञ्चुक, प्रा० कचुम] १. कुर्ता। २. चोरी।

कँचेरा—सज्ञा पुं० [स० काँच + एरा (प्रत्य०)] [स्त्री० कँचेरिन] काँच का काम करनेवाला। एक जाति जो काँच बनाती है और उसका काम करती है। इस जाति के लोग प्रायः मुसलमान होते हैं पर कहीं कहीं हिंदू भी मिलते हैं।

कँचेली—सज्ञा स्त्री० [स० कञ्चुक या देश०] एक वृक्ष का नाम।

विशेष—यह हजारा, शिमला और जोषार में होता है। वृक्ष मियाना कद का होता है। लफ्डी मफेद रंग की फीर मजबूत होती है, मकान में लगती है तथा खेत के औजार बनाने के काम आती है। पत्ते चौपायों को खिलाए जाते हैं। वरसत में इसके बीज बोए जाते हैं।

कँचोरा०—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कचोरा'।—वर्ण०, ११।

कँजियाना—क्रि० अ० [हि० कडा] अगारै का टड़ा पड़ना। भँवना। मुरझाना।

कँजुवा—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कँडवा'।

कँटवाँस—सज्ञा पुं० [स० कण्टक + वाँस हि० काँट + वाँस] एक प्रकार का वाँस जिसमें बहुत काँटे होते हैं और जा पोता कम होता है। इसकी लाठी अच्छी होती है।

कँटाय—सज्ञा स्त्री० [स० कण्टक] एक प्रकार का कँटीला पेड़।

विशेष—इसकी लकड़ी के यज्ञपात्र बनते हैं। इसकी पत्तियाँ छोटी-छोटी और फल ढेर के समान गोल होने हैं, जो दवा के काम आते हैं।

कँटाल—सज्ञा पुं० [हि० काँट + आल (प्रत्य०)] दे० 'कटारा'।

कँटकटारा। उ०—करहा नोले जउ वरइ, कटालउ नद कोय।

—ढोला०, दू० ४२८।

कँटिया—सज्ञा स्त्री० [स० कण्टकी, कण्टिका, हि० काँटी] १ काँटी।

छोटी कील। २ मछली मारने की पतली नोकदार अँगुली।

३ अँगुलियों का गुच्छा जिससे कुएं में गिरी हुई चीजें पगरा,

रस्सा आदि निकालते हैं। ४ किसी प्रकार का अँगुली

जिसमें वस्तु फँसाई या उलझाई जाय। ५. एक प्रकार का गहना

जो सिर पर पहना जाता है। ६ इसकी तीव्र छोटी फलियाँ

जिनमें बीज न पड़े हो। कतुली।

कँटियारी—सज्ञा स्त्री० [स० कण्टकारी] भटकटैया।

विशेष—यह गाधार के पास था। यहाँ के घोड़े प्रसिद्ध थे।

२. तात्रिक लोगों के मत से खमा का नाम। ३. शख (को०)।

४. हाथी (को०)।

कंभारी—सज्ञा स्त्री [सं० कम्भारी] गंभारी का पेड़।

कम्भु—सज्ञा पुं० [सं० कम्भु] खस। उशोर (को०)।

कंमाल—सज्ञा पुं० [सं० क + माल] मुड़माल। उ०—किलकार काली किलकिलै, कंमाल धारक विलकुलै।—रघु० क० पृ० २२३।

कस सज्ञा पुं० [सं०] १. कांसा। २. प्याला। छोटा गिलास या कटोरा। ३. सुराही। ४. मंजीरा। भाँक। ५. कांसे का बना हुआ वर्तन या चीज। ६. मथुरा के राजा उग्रसेन का लड़का जो श्रीकृष्ण का मामा था और जिसको श्रीकृष्ण ने मारा था।

यौ०—कपतित्, कसनिपूदन = कृष्ण।

कसक—सज्ञा पुं० [सं०] १. कमीस। २. कर्म का बना पाय।

कसताल—सज्ञा पुं० [सं०] भाँक। उ०—कसताल कठतान वजावत शृंग मधुर मुहचग।—सूर (शब्द०)।

कसपात्र—सज्ञा पुं० [सं०] १. कर्म का वर्तन। उ०—कसपात्र को होइ पुनि, सदन मध्य आभास।—सुंदर ग्र०, भा० १, पृ० १८०। २. एक नाप जिसे आठक भी कहते थे। यह चार सेर की होती थी।

कसमथन—सज्ञा पुं० [सं०] कसहता। श्रीकृष्ण। उ०—जामैं पुनि-पुनि अवतरे, कनमथन प्रभु अस।—भूपण ग्र०, पृ० २।

कसरटिना—सज्ञा पुं० [अ०] सट्टक के आकार का एक अंगरेजी बाजा जिसमें भाँकी होती है। और जो दोनों हाथों से खींच छोड़ कर बजाया जाता है।

कसरवेटिव—वि० [अ० कसर्वेटिव] १. परंपरा से प्रचलित रीति के अनुसार ही कार्य करनेवाला और उममे सहसा परिवर्तन का विरोधी। पुरानी लकीर का फकीर। उ०—राजा साहिब यदि कसर्वेटिव थे तो बाबू साहिब लिबरल।—प्रेमघन०, पृ० ४११। २. इंग्लैंड के पार्लियामेंट में वह राजनीतिक दल जो निर्धारित राज्यप्रणाली में कोई परिवर्तन या प्रजातंत्र के सिद्धांतों का प्रसार नहीं चाहता।

कंसर्ट—सज्ञा पुं० [अ०] १. कई एक बाजों का एक साथ मिलकर बजना या कई एक गवैयों का स्वर मिलाकर गाना बजाना। २. भिन्न भिन्न प्रकार के बजते हुए बाजों का समूह। ३. कई गानेवालों या बजानेवालों के स्वर का मेल।

कसर्टिना—सज्ञा पुं० [अ०] 'दि०' 'कसरटिना'।

कसासुर—सज्ञा पुं० [सं०] मथुरा का कस नामक राजा जो असुर कहा जाता था। उ०—वही धनुष रावन सवारा। वही धनुष कंसासुर मारा।—जायसी (शब्द०)।

कँउवा०—सज्ञा पुं० [हि० कँउना] विजनी की चमक। उ०—मनि कुडल चमकहि अति लोने। जनि कउवा लउकहि दुहुं कोने।—जायसी (शब्द०)।

कँई—सज्ञा स्त्री [दिश०] एक नदी का नाम।

विशेष—यह नेपाल की पूर्वी सीमा है और यह सिक्किम से नेपाल को अलग करती है।

कँकडीला—वि० [हि० ककड़ + ईला (प्रत्य०)] [स्त्री० कँकडीली] ककड़ मिला हुआ। जिसमें ककड़ हो। जैसे, कँकडीली जमीन, कँकडीला घाट।

कँकरीला—वि० [हि० ककड़] [स्त्री० कँकडीली] ककड़ मिला। हुआ। जिसमें ककड़ अधिक हों। उ०—फिर फिर भूलि उहै गहै, पिय कँकरीली गेल—विहारी (शब्द०)।

कँकरेत^१—वि० [हि० कंकर + एत (प्रत्य०)] कँकरीला।

कँकरेत^२—सज्ञा स्त्री [अ० काक्रीट] ककड़ जिसे छत पर डालकर गच पीटते हैं। छरी। बजरी।

कँखवारी—सज्ञा स्त्री [हि० कांख + वारी (प्रत्य०)] वह फुडिया जो कांख में होनी है। कँखवार। कँखवाली। कँखोरी। ककराली।

कँखोरी—सज्ञा स्त्री [हि० कांख + ओरी (प्रत्य०)] १. कांख। कुत्ता। २. दे० 'कँखवारी'।

कँगना^१—सज्ञा पुं० [सं० कङ्गु] [स्त्री० कँगनी] १. दे० ककण^१। उ०—गियँ अभरन पहिरै नहँ ताई। श्री पहिरै कर कँगन कलाई—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २२२। २. वह गीत जो ककण बाँधते या खेलते समय गाया जाता है।

कँगना^२—सज्ञा स्त्री [सं० कङ्गु] एक प्रकार की घाम जिमें बँन, घोड़े आदि बहून खाते हैं। यह पहाड़ी मैदानों में अधिक होती है। साका।

कँगनी^१—सज्ञा स्त्री [हि० कँगना] १. छोटा कँगना। आभूषण-विशेष। लाह की मोटी लाल या पीली चूड़ी। २. छत या छाजन के नीचे दीवार में रीढ़ सी उमड़ी हुई लकीर जो खूब-सूरती के लिये बनाई जाती है। अगर कानिस्त। ३. कपड़े का वह छल्ला जो नैचावद नैचे की मुहनाल के पाम लगाते हैं। ४. गोल चक्कर जिसके बाहरी किनारे पर दाँत या नुकीले कंगूरे हो। दानेदार चक्कर। ५. ऐसे चक्कर पर गोल उमड़े हुए दाने।

कँगनी^२—सज्ञा स्त्री [सं० कङ्गु] एक अन्न का नाम।

विशेष—यह समस्त भारतवर्ष, बर्मा, चीन, मध्य एशिया और योरप में उत्पन्न होता है। यह मैदानों तथा ६००० फुट तक की ऊँचाई पहाड़ों में भी होता है। इसके लिये दोपट अर्थात् हत्की सूखी जमीन बहुत उपयोगी है। आकृति, वणं और काल के भेद में इसकी कई जातियाँ होती हैं। रंग के भेद से कँगनी दो प्रकार की होती है—एक पीली और दूसरी लाल। यह अषाढ़ सावन में बोई और भादो वसंत में काटी जाती है। इसकी एक जाति चना या चीनी भी है जो चंत बंसाख में बोई और जेठ में काटी जाती है। इसमें १२-१३ बार पानी देना पड़ता है, इसीलिये लोग कहते हैं—'बारह पानी चैन, नाही तो लेन का देन'। कँगनी के दाने नावों से कुछ छोटे और अधिक गोल होते हैं। यह दाना चिड़ियों को बहुत खिलाया जाता है। पर किसान इसके चावल को पकाकर

कपू—सज्ञा पुं० [अ० कप] १ वह स्थान जहाँ फोज रहती हो। छावनी। उ०—कपू वन बाग के रुदन कपतान पड़े।—पद्याकर ग्र०, पृ० ३२०। २ वह स्थान जहाँ लडाई के समय फोज ठहरती है। पड़ाव। जनस्थान। ३ डेरा। मेमा। ४. फोज। सेना। दे० 'कपनी'।

मुहा०—कपू का विगडा हुमा = (१) लुच्चा या गुडा। (लश०)। (४) वागी।

कपोज—सज्ञा पुं० [अ० कपोज] शब्दों और वाक्यों के अनुसार टाउप के प्रक्षारों को जोड़ना। जैसे,—(क) माज प्रेस में कितना मीटर कपोज हुआ। (ख) तुमने कन कितनी गेली कपोज की थी?

कि० प्र०—करना। होना।

कपोजिग—सज्ञा स्त्री० [अ० कपोजिग] १ कपोज करने का काम। २ कपोज करने की मजदूरी। कपोज कराई।

कपोजिग स्टिक—सज्ञा स्त्री० [अ० कपोजिग स्टिक] कपोजिटर का एक योजन जिसपर अक्षर बँटाए जाते हैं।

कपोजिटर—सज्ञा पुं० [अ० कपोजिटर] छापेघाने का वह कर्मचारी जो छापने के मीटर के अक्षरों को छापने के निग्रे क्रम से बँटाता है।

कपोजिटर—सज्ञा स्त्री० [हि० कपोजिटर + ई (प्रत्य०)] कपोजिटर का पद। जैसे,—कपोजिटर का पयाल छोड़ो। २ कपोजिटर का नाम।

कपोंडर—सज्ञा पुं० [अ० कपाउडर] दवा बनानेवाला। डाक्टर को दवा तैयार करने में सहायता पहुँचानेवाला।

कपोंडरी—सज्ञा स्त्री० [हि० कपोंडर + ई (प्रत्य०)] १ कपोंडर का काम। २ कपोंडर का काम करने की उजरत। ३ कपोंडर का पद।

कप्र—वि० [स० कप्र] कापता हुआ। हिलता हुआ। चल। स्फूर्त। तेज [को०]।

कफहम—वि० [फा० कम + फहम] १ कम अथवा। २ मूर्ख। उ०—कफहम आदमी की राय मुस्तहकम नहीं होती।—श्री निवास ग्र०, पृ० ३१।

कव०—सज्ञा स्त्री० [स० कम्बा] छड़ी। यष्टि। हाथ में शीश से रखने की छड़ी। उ०—धौण कौणपररी कव ज्यउं, सूकी तोइ सुरति।—ढोला०, दू० १३५।

मुहा०—कवलगाना = छड़ी या लकड़ी से मारना। उ०—मारु मन चिता धरइ करहइ कव लगाइ।—ढोला०, दू० ६३४।

कबखता०—वि० [हि०] दे० 'कमवखत'।

कवडी०—सज्ञा स्त्री० [स० कम्बा + हि० डी (प्रत्य०)] दे० 'कव'। उ०—सड सड वाहि म कवडी राँगाँ देह म चूरि।—ढोला०, दू०, ४६२।

कवर^१०—सज्ञा पुं० [स० कम्बल ० कम्पर] पुं० 'कवल'। उ०—बँसेई कवर अवर हार। बँसेई सहज आहार विहार।—नद ग्र०, पृ० २६५।

कवर^२—वि० [सं० कवुर, कम्बु] अनेक वणों का चित। चितकवरा [को०]।

कवर^३—सज्ञा पुं० चितकवरा रंग। मिश्रित रंग। चित्ररंग [को०]।

कवल—सज्ञा पुं० [स० कम्बल] [अ० मरपा० कमली] १ ऊन का बना हुआ मोटा कपड़ा जिस गरीब लोग ओढ़ते हैं। यह भेड़ों के ऊन का बनता है और इसे गोंदिए बुनते हैं। उ०—पहिल ओढ़ण कवना गाठे पुरिम तीर।—शाना० दू० ६६२। २ एक कीड़ा जो बरसात में दिखाई देता है और उसके ऊपर काले रोए होते हैं। कमला। ३ जलप्रवाह।—प्रवेद्यार्थ०, पृ० ६१६। ४ मास्ना। ननरी (को०)। ५ एक प्रकार का हिरन (को०)। ६ भी। दीमार (को०)। ७ जल। पानी (को०)।

कवलक—सज्ञा पुं० [स० कम्बलक] १ ऊनी रंग या कपड़ा। २. कमल [को०]।

कवलिका—सज्ञा स्त्री० [स० कम्बलिका] १ कमली। २ एक प्रकार की हरिणी [को०]।

कवली^१—वि० [स० कम्बलित्] १ कवन से उँचा हुआ। १ खान युक्त। कवलवाना [को०]।

कवली^२—सज्ञा पुं० बँत [को०]।

कवि—सज्ञा स्त्री० [स० कम्बि] दे० 'कवी' [को०]।

कविका—सज्ञा स्त्री० [स० कम्बिका] प्राचीन काल का एक वाजा जिससे ताल दिया जाता था।

कवी—सज्ञा स्त्री० [स० कम्बी] २ कलड़ी। २ बाँग ली गाँठ। ३ बाँस का अक्षर [को०]।

कवु^१—वि० [स० कम्बु] चितकवरा। अनेक वणों का [को०]।

कवु^२—सज्ञा पुं० १ शय। उ०—उर मनिमाल कनु हल ग्रीवा।—मानस, १।२३३।

यौ०—कवुकठ। कवुप्रीव।

२ शय की चूड़ो। ३ घोषा। ४ हाथी। ५ निप्रवर्ण [को०]।

६ कण। कंगना [को०]। ७ नलिका। नली (हड्डी की) [को०]।

कवुकठ—वि० [स० कम्बुकठ] शय जैसी गर्दनवाला [को०]।

कवुकठी—वि० स्त्री० [स० कम्बुकठी] शय की जैसी गर्दनवाली [को०]।

कवुक—सज्ञा पुं० [स० कम्बुक] १ कनु। शय। उ०—जय तेँ तेरे कुच बचिर, हरि हरे भरि नन। कनक कलस, कवुक कहुद नीके तनक लगें ने।—रामच०, पृ० २५७। यह जो प्रथम हो [को०]।

कवुका—सज्ञा स्त्री० [स० कम्बुका] १ अश्वगधा नाम का वृक्ष। २ गदन। ग्रीवा [को०]।

कवुकाण्ठा—सज्ञा स्त्री० [स० कम्बुकाण्ठा] अश्वगधा [को०]।

कवुप्रीव—वि० [स० कम्बुप्रीव] शय जैसी गर्दनवाला [को०]।

कवुप्रीवा—वि० [स० कम्बुप्रीवा] शय जैसी गर्दनवाली [को०]।

कवुपुष्पी—सज्ञा स्त्री० [स० कम्बुपुष्पी] शयपुष्पी [को०]।

कवुमालिनो—सज्ञा स्त्री० [स० कम्बुमालिनो] शयपुष्पी [को०]।

कवु—सज्ञा पुं० [स० कम्बु] १ चोर। २ लुटेरा। ३ कगन [को०]।

कवोज—सज्ञा पुं० [स० कम्बोज] [वि० कावोज] १ अफगानिस्तान के एक भाग का प्राचीन नाम।

जाकर बाएँ कंधे पर से ले जाना । उ०—डोन्त दिमाग डवी डग देत दीठि नाग हरे कर डारन डरीवन कौंवेला की ।—पजनेम (शब्द०) ।

कन०—सज्ञा पु० [सं० कर्ण] कान । कर्ण । उ०—डुनै कन नाही मिनीका सुधीव ।—तृ०, रा०, २५।२०६ ।

कप^१—सज्ञा पु० [म० कम्प] १ कँपकँपी । २ शृंगार के सात्विक अनुभावों में से एक । इसमें शीत, कोप और भय आदि ने अकस्मात् सारे शरीर में कँपकँपी सी मालूम होती है । ३ गिलाशास्त्र में मंदिरों या स्तंभों के नीचे या ऊपर की कौनों । उ०—डोई हुई कौनी ।

यो०—कपज्वर = शीतज्वर । बुझार । कपमापक = भूकप मापक यत्र । कपवायु = एक प्रकार की वातव्याधि जिसमें मस्तक और सब अंगों में वायु के दोष से कपन होता है ।—माधव०, पृ० १५६ । कपविज्ञान = भूकप संबंधी विज्ञान ।

कप^२—सज्ञा पु० [सं० कप] पड़ाव । लश्कर । डेरा । उ०—साथ में कर बहुत बड़ा है ।—हुमायूँ, पृ० ८० ।

कंपनि—सज्ञा पु० [सं० कम्पति] समुद्र । उ०—सत्य तोयनिधि कम्पति, उदधि पयोधि नदीन ।—मानस, ६।५ ।

कपन—सज्ञा पु० [सं० कम्पन] [वि० कपित] १ काँपना । थरथराहट । कँपकँपी । २ शिशिर काल (कौ०) ।

कपना०—क्रि० अ० [सं० कम्पन] १ काँपना । थरथराना । २ हिल उठना । उ०—(क) भएउ कोप कपेउ नैलोका ।—मानस, १।८७ । (ख) फागुन कप्या लख ।—वी० राघो, पृ० ६२ । (ग) कपत चैतन रूप कहा जर जरन समूरे ।—हम्मीर रा०, पृ० २२ ।

कपनी—सज्ञा स्त्री [अ०] १ व्यापारियों का वह समूह जो अपने संयुक्त धन से नियमानुसार व्यापार करता हो । २ अंग्लैंड के व्यापारियों का वह समूह जो सन् १६०० ई० में बना या ।

विशेष—रानी एनीजावेय प्रथम की आज्ञा पाकर इस समूह ने भारतवर्ष में व्यापार करना प्रारंभ किया । इसने यहाँ पहले कोठियाँ बनाई, फिर जमींदारी खरीदी और बढते बढते देश के बहुत से प्रांतों पर अधिकार कर लिया ।

यो०—कपनी कागद = प्रामिसरी नोट ।

३ मेना का वह भाग जिसमें १८०० मैनिक होते हैं । ४ मंडी । जट्या ।

कपमान—वि० [सं० कम्पमान] २० 'कपायमान' ।

कपस०—सज्ञा पु० [अ० कपास] दे० 'कपास' । कुतुबनुमा । दिग्दर्शक । उ०—तोही सो अरुके खरे कास से जुग नैन ।—श्यामा०, पृ० १७४ ।

कपा^१—सज्ञा पु० [म० कम्प] (= गाँठ) + पाश या हि० कप] बाँस की पतली पतली तीनियाँ जिनमें बहेलिए लासा लगाकर चिड़ियों को फँसाते हैं । उ०—लीलि जाते बरही बिलीक बेनी बनित्त की जो न होती गू यनि कुनुमसर कपा की ।—(शब्द०) ।

विशेष—यह दस पाँच पाजी पतली तीलियों का कूँचा होता है । इसे पतले बाँस के निरे पर खोमकर लगाते हैं और फिर उस बाँस को दूसरे में और उसे तीसरे में इसी तरह

खोसते जाते हैं । इससे पेड़ पर बैठी हुई चिड़ियों को फँसाते हैं । बाँस को खोचा और कूँचे को कपा कहते हैं ।

मुहा०—कपा मारना या लगाना = (१) चिड़ियों को कंघे से मारना या फँसाना । (२) घोंघे में किसी को अपने वश में करना । फँसाना । दाँव पर चढ़ाना । उ०—अब तुम माशा अल्लाह से सवानो हो । नेक बद समझ सकती हो । अगर यहाँ कपा न मारा तो कुछ भी न किया ।—सैर०, पृ० २८ ।

कपा सज्ञा स्त्री [म० कम्पा] १ काँपना । २ भय । डर । ३. हिलना । आदोलन (कौ०) ।

कपाउ ड—सज्ञा पु० [अ०] १ अहाता । चहारदीवारी के भीतर की खुली जगह । घेरा । २ दवाइयों का मिश्रण ।

कपाउ डर—सज्ञा पु० [अ०] डाक्टर का सहायक जो औषधियों के मिलने का कार्य करता है । औषधयोजक । २. डाक्टर के कार्य में आवश्यक उपकरण जुटानेवाला और निर्देश के अनुसार डाक्टर का सहायक ।

कपाउ डरी—सज्ञा स्त्री [अ० कपाउ डर + वि० ई (प्रत्य०)] १ कपाउ डर का कार्य । २ कपाउ डर की वृत्ति ।

कपाक—सज्ञा पु० [म० कम्पाक] हवा । वायु (कौ०) ।

कपाना०—क्रि० सं० [हि० कँपना का प्रे०] १ हिलाना । हिलाना-डोलाना । २ भय दिखाना । डराना ।

कपायमान वि० [म० कम्पायमान] हिलता हुआ । कपित ।

कपास—सज्ञा स्त्री [अ०] एक प्रकार का यत्र जिससे दिशाओं का ज्ञान होता है । दिग्दर्शक । कुतुबनुमा ।

विशेष—यह एक छोटी सी डिबिया होता है जिसमें चुबक की एक छोटी सी सूई होती है जिसका सिरा सदा उत्तर को रहता है । इसमें लोगों को दिशाओं का ज्ञान होता है । यह समुद्र में माफियों और स्थल में नापनेवालों और नकशे बनानेवालों के लिये बड़ा उपयोगी है ।

यो०—कपासघर = जहाज में वह स्थान जहाँ कपास रहता है । २ परकार । ज्यामिति के काम में आनेवाला एक मापयंत्र । ३ एक यंत्र जिससे पैमाइश में लैन डालते समय समकोण का अनुमान किया जाता है । अ० राइटैंगल ।

मुहा०—कपास लगाना = (१) नापना । (२) ताक भाँक करना । फँसाने की बात में रहना ।

कपित—वि० [म० कम्पित] काँपता हुआ । अस्थिर । चंचल । उ०—छोमिति सिधु, सेप सिर कपित पवन भयो गति पग ।—सुर० ६।१५८ । २ भयभीत । डरा हुआ ।

कपिल—सज्ञा पु० [सं० कम्पिल, काम्पिल्य] फहवावाद जिने का एक पुराना नगर । कपिला ।

विशेष—यह पहले दक्षिण पावान की राजधानी था और यहाँ द्रोपदी का स्वयंवर हुआ था ।

कपिल—सज्ञा पु० [सं० कम्पिल] कमीला ।—तृ० न०, पृ० २५६ ।

कपीटीशन—सज्ञा पु० [अ० कपिटीशन] प्रतिद्वंद्विता । स्पर्धा । उ०—अच्छी सरकारी नोकरी की राह में कपीटीशन की कसौटियाँ हैं ।—प्रमिशन्त०, पृ० ७१ ।

कंदुक—सज्ञा पुं० [म० कन्दुक] १. गेंद ।

यी०—कन्दुकतीर्थ ।

२ गोल तकिया । गलतकिया । गेंदुग्रा । ३ सुपारी । पुंगीफल ।

४ एक प्रकार का वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में चार मगण और एक लघु होता है । जैसे—यूचौ राइ कै कृष्ण को राधिका साथ । भजो पाद पाथोज नैंके सदा माथ ।—(शब्द०) ।

कंदुकतीर्थ—सज्ञा पुं० [सं० कन्दुकतीर्थ] राज का एक तीर्थ जहाँ श्री-कृष्ण जी ने गेंद खेली थी ।

कंदुगृह—सज्ञा पुं० [सं० कन्दुगृह] पाकशाला ।

कदुपवव—वि० [सं० कन्दुपवव] भाड में भुना हुआ (अन्न) ।

कदू(७)—सज्ञा पुं० [सं० कदम, प्रा० कदम, (७) काँदो, (७) कदो] दे० 'काँदो' । कीचड़ । उ०—अगनि जु लागी नीर में, कदू जलिया भारि ।—कबीर ग्रं०, पृ० ११ ।

कदूरी^१—सज्ञा पुं० [हिं०] १ कुँदरू के आकारवाला । २. ववासीर का मसा ।—माधव०, पृ० ५५ ।

कदूरी—सज्ञा पुं० [फा०] वह खाना जिससे मुसलमान बीबी फातमा या किसी पीर के नाम का फातिहा करते हैं ।

कदेव—सज्ञा पुं० [विश०] पुननाग या सुलताना चपा की जाति का एक वृक्ष ।

विशेष—यह उत्तरी और पूर्वी बंगाल में होता है । इसकी लकड़ी मजबूत होती है और नाव या जहाज का मस्तूल बनाने के काम में आती है ।

कदोई—सज्ञा पुं० [सं० कान्दविक] १ एक जाति । २. मिठाई बनानेवाला । ३ हलवाई ।—अर्थ०, पृ० ४ ।

कदोट, कदोटट—सज्ञा पुं० [सं० कन्दोट, कन्दोटट] १. सफेद कमल । २ नील कमल [को०] ।

कदोत—सज्ञा पुं० [सं० कन्दोट] श्वेत कमल [को०] ।

कदोरा—सज्ञा पुं० [प्रा० कणि + सं० वोरक] १ कमर में पहना सूत्र । करगता । २ करधनी ।

कद्रप(७)—सज्ञा पुं० [सं० कन्दर्प] दे० 'कदर्प' । उ०—सरस परस्पर मुदित, उदित कद्रप तन चीने ।—हम्पीर रा०, पृ० ४३ ।

कध^१(७)—सज्ञा पुं० [सं० स्कन्ध] १ दे० 'कधा' । २ डाली । उ०—अव्यक्त मूलमनादि तत्त्वव चारि निगमागम भने पदकव शाखा पचवीस अनेक पण सुमन घने ।—तुलसी (शब्द०) । ३ योग शास्त्र में प्रसिद्ध नाडियों का एक पुतला जिसका शास्त्रीय नाम कद है ।—प्राण०, पृ० २० ।

कध^२(७)—सज्ञा पुं० [सं० कन्ध] १. मेघ । बादल । २ मुस्ता । मोटा [को०] ।

कधनी—सज्ञा स्त्री० [म० कटिबन्धनी] कमर में पहनने का एक गहना । किकिणी । मेखला ।

कधर—सज्ञा पुं० [सं० कन्धर] १ गरदन । ग्रीवा । उ०—मैं रघुवीर हूँ दत्तकपुत्र ।—मानस०, ६।२० । २ बादल । ३ मुस्ता । मोटा ।

कधरा—सज्ञा स्त्री० [कन्धरा] दे० 'कदर' ।

कधरावध—सज्ञा पुं० [सं० कन्धरावध] कथा काटने का दंड (को०) ।

विशेष—किले में घुसने या सेंध लगाने के लिए चद्रगुप्त मौर्य आदि के समय में यह दंड प्रचलित था । प्रायः लोग २०० गण देकर इस दंड में बच जाते थे ।

कधा—सज्ञा पुं० [सं० स्कंध, प्रा० कव] १ मनुष्य के शरीर का वह भाग जो गले और मोठे के बीच में है ।

मुहा०—कधा देना = (१) श्रम की मे कमा लगाना । श्रम की कंधे पर लेना या लेकर चरना । शब्द के माथ प्रमान तक जाना । (२) सहारा देना । सहायता देना । मदद देना । कधा बदलना = (१) बोल को एक कंधे में दूसरे कंधे पर लेना । (२) बोल को दूसरे कंधे पर से अपने कंधे पर लेना । कधा भरना, कधा भर आना = बोल के कारण पानकी डोनेजाना के कंधे का फूल जाना या मारीपन जान पड़ना । कधा लगना = पहले पहन या दूर तक पानकी आदि डोने से कंधे का कल्लाना । कंधे की उडान = मालजम की एक कमरत जिसमें कंधे के बल उड़ते हैं ।

२ बाहुमूल । मोढ़ा ।

मुहा०—कंधे से कधा छिलना = बहुत अधिक भीड़ होना । जैसे,—मंदिर के फाटक पर कंधे से कधा छिलना वा, भीतर जाना कठिन था ।

३. बेल की गर्दन का वह भाग जिसपर जुआ रखा जाता है ।

मुहा०—कधा डालना = (१) बेल का अपन कंधे से जुआ फेंकना । जुआ डालना । (२) हिम्मत हारना । थक जाना । सहन छोड़ना । कधा लगना = जूए की रगड़ से कंधे का छिल जाना । उ०—लग गया कधा बला से लग गया ।—चुम्ने०, पृ० ३७ । कंधे से कधा मिलाना = अवसर पड़ने पर पूर्ण मदद देना ।

कधाना(७)—क्रि० अ० [हिं० कधा] १ कंधे पर लेना । २ कधा लगाना । उ०—भनत गणेश महापात्र को खिताव दे के, पानकी चढ़ाय लैं अकबर कधाते हैं ।—प्रकवरी०, पृ० ७५ ।

कधार^१—सज्ञा पुं० [सं० गान्धार, मि० फा० कदहार] [वि० कधारी] अफगानिस्तान के एक नगर और प्रदेश का नाम ।—हुमायूँ०, पृ० ५ ।

कधार(७)^२—सज्ञा पुं० [सं० कर्णधार, प्रा० कणधार] [वि० कधारी] केवट । मल्लाह । उ०—(क) जो लैं नार निवाह न पारा । सो का गरव करे कधारा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) राम प्रताप सत्य सीता को यहै नाव कधार । विनु अधार छन न अवलवशो आवत मई न वार ।—सूर (शब्द०) ।

कधारी^१—वि० [हिं० कधार] जो कधार देश में उत्पन्न हुआ हो । कधार का (घोड़ा, अनार आदि) ।

कधारी^२—सज्ञा पुं० घोड़े की एक जाति जो कधार देश में होती है ।

कधारी^३—सज्ञा पुं० [सं० कर्ण + धारिन्] मल्लाह । केवट । माँझी ।

यी०—कधारी जहाज = डाकुओं का जहाज (लग०) ।

कधेला—सज्ञा पुं० [हिं० कधा + एला (प्रत्यय)] स्त्रियों की साड़ी का वह भाग जो कंधे पर पड़ता है ।

मुहा०—कधेला डालना = साड़ी के छोर को सिर पर से न से

निहारे ।—नुलसी (शब्द०) । २. अकुण । ३. थोडा । शुडी (को०) । ४. मेघ । वात्स (को०) ।

कंदर^३—संज्ञा पुं० [सं० कन्द] मूल । जड ।

कंदरफ^३—संज्ञा पुं० [सं० कन्दर्प] दे० 'कंदर्प' । उ०—कठण लहरि कंदरफ को पलटूँ गुर जी ।—रामानंद०, पृ० १५ ।

कंदरा—संज्ञा स्त्री० [सं० कन्दरा] १. गुफा । गुहा । उ०—मानहुँ पर्वत कंदरा, मुख सब गये समाइ ।—सूर०, १०।४३१ । २. घाटी । उपत्यका (को०) ।

कंदराकर—संज्ञा पुं० [सं० कन्दराकर] पर्वत ।—डि० ।

कंदराल—संज्ञा पुं० [सं० कन्दराल] अखरोट ।

कंदरिया^३—संज्ञा स्त्री० [सं० कन्द] दे० कंद । मूल । जूड ।

कंदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कन्दरी] दे० 'कंदरा' (को०) ।

कंदर्प—संज्ञा पुं० [सं० कंदर्प] १. कामदेव ।

यो०—कंदर्पकूप = भग । योनि । कंदर्पञ्जर = काम का ज्वर । कंदर्पदहन = शिव । कंदर्पमयन = शिव । कंदर्पमुपन, कंदर्प-मुसल = लिंग । शिष्यन । कंदर्पशूल = (१) रतिच्छद । (२) एक प्रकार का रतिवध ।

२ संगीत में स्रताल के ११ भेदों में से एक । ३ संगीत में एक प्रकार का ताल जिसमें कम से दो द्रुत, एक लघु और दो गुरु होते हैं । इसके पञ्चावज के बोल इस प्रकार हैं—तक जग धिमि तक धीकृत धीकृत ५ ध्रिध्रिगत थो थो ५ । ४. प्रणय । प्यार (को०) ।

कंदल^१—संज्ञा पुं० [सं० कन्दल] १ नया अंघुआ । उ०—नवन विकच कंदल कुल कलिका जगमोहन अकुलाव ।—श्यामा०, पृ० ११६ । २. कपाल । ३. सोना । ४. वादविवाद । कचकच । वाग्युद्ध । ५. निदा । उ०—नगले मद्ये गारि कंदल घरहलि हरहलि चोट ।—वर्ण० पृ० २।६ । युद्ध । उ०—सालुले विदल कंदल समग्र ।—रा० २०, पृ० ७३ । ७. मधुर ध्वनि या स्वर (को०) । ८. एक प्रकार का केला ।

कंदल^२—संज्ञा स्त्री० [सं० कन्दरा] दे० कंदरा । उ०—पग टोडर कंदल ही जु ठयो ।—पृ० २।०, १।५५३ ।

कदला^१—संज्ञा पुं० [सं० कन्दल = सोना] १ चांदी की वह गुल्ली या लवा छड़ जिससे तारकश तार बनाते हैं । पासा । रेंनी । गुल्ली । विशेष—तार बनाने के लिये चांदी को गलाकर पहले उसका एक लंबा छड़ बनाया जाता है । इस छड़ के दोनों छोर नुकीले होते हैं । अगर मुनहला तार बनाना होता है, तो उसके बीच में सोने का पत्तार चढ़ा देते हैं, फिर इसका यंत्री में खींचते हैं । इस छड़ को सुनार गुल्ली और तारकश कदला, पासा और रेंनी कहते हैं ।

मुहा०—कदला गलाना = (१) चांदी और सोना मिलाकर एक साथ गलाना । (२) सोने या चांदी का पतला तार ।

यो०—कदलाकश । कदलारुचहरी ।

कदला^२—संज्ञा पुं० [सं० कन्दल] एक प्रकार का कचनार । दे० 'कचनार' ।

कदला^३—संज्ञा पुं० [सं० कन्दरा] कंदरा । गुफा । उ०—दिकषी सुवीर कहला रोह ।—पृ० २।०, १।३६८ ।

कदला कचहरी—संज्ञा स्त्री० [हि० कन्दला + कचहरी] वह जगह जहाँ कदलाकशी का काम होता है । तार का कारखाना । कंदले का कारखाना ।

कदलाकश—संज्ञा पुं० [सं० कन्दला + कश] तार खींचनेवाला । जो तारकशी का काम करता है । तारकश ।

कंदलाकशी—संज्ञा स्त्री० [हि० कन्दला + कश + ई (प्रत्य०)] तार खींचने का काम ।

कदलित—वि० [न० कन्दलित] १ प्रस्फुटित । खिला हुआ । २ उद्गत । निकला हुआ (को०) ।

कंदलिवास^३—संज्ञा पुं० [सं० कन्दल = सोना + वास = निवास] हिरण्यगर्भ । परमान्मा । ब्रह्म । उ०—काया माह कंदलिवासा । काया माह है जलाना ।—दादू०, पृ० ६४१ ।

कदली—संज्ञा स्त्री० [न० कन्दली] १. एक पौधा जो नदियों के किनारे पर होता है । बरसात में इसमें सफेद सफेद फूल लगते हैं । २. केला (को०) । ३. हिरन की एक किस्म (को०) । ४. पनाका (को०) । ५. कमलगट्टा (को०) ।

कदलीकुसुम—संज्ञा पुं० १ [सं० कन्दलीकुसुम] कुकुरमुत्ता । २. केले का फूल (को०) ।

कदवघन—संज्ञा पुं० [सं० कन्दवर्धन] सूरन । श्रोत (को०) ।

कदशूरण—संज्ञा पुं० [सं० कन्दशूरण] शूल । जमीकद (को०) ।

कदसार—संज्ञा पुं० [सं० कन्दसार] १ नदनवन । इद्र का बगीचा । २. हिरन की एक जाति ।

कंदा—संज्ञा पुं० [सं० कन्द] १ दे० 'कंद' । २ शकरकद । गजी । ३. घुड़ियाँ । अरई ।

कदाकारी—संज्ञा स्त्री० [फा० कन्दहकारी] वे बेलबूटे जो मोन, चांदी लकड़ों या पत्थर पर बनते हैं । नक्काशी ।—पा० सा०, पृ० १२६ ।

कदालु—संज्ञा पुं० [सं० कन्दालु] वनकद । जगली कद (को०) ।

कदिरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कदिरी] लाजवती । लजालू या लजाधुर नाम का पौधा (को०) ।

कदी—संज्ञा पुं० [सं० कन्दिन्] १ मूरन । श्रोत । २. मूली । —देशी०, पृ० ८० ।

कदीत—संज्ञा पुं० [प्रा०] जैन मत के अनुसार एक प्रकार के देवगण जो वायुव्यंकर के अंतर्गत हैं ।

कदील^१—संज्ञा स्त्री० [प्र० कन्दील] अवरक, कागद या मिट्टी का वह घेरा जिसमें रखकर दीपक जलाते हैं और ऊँचाई पर टांग देते हैं ।

कदील^२—संज्ञा पुं० [हि० कडाल] जहाज में वह स्थान जहाँ पानी रहता है और लोग पायछाना फिरते और नहाते हैं । सेतखाना ।

कंदीलची—संज्ञा पुं० [प्र० कदील + तु० ची (प्रत्य०)] वह आदमी जो मस्जिद में कदल बनाने का काम करता है ।

कदु—संज्ञा पुं० स्त्री० [सं० कन्दु] १ नट्टी । नट्टा । २. नाट्य कड़ाही । ४. तडा । ५. गेंद । ६. पका हुआ अथवा नना हुआ मूत्र (को०) ।

कडूरा—सज्ञा स्त्री० [स० कण्डूरा] केवाँच [को०] ।

कडूल^१—वि० [स० कण्डूल] खुजली पैदा करनेवाला । सुरसुरी उत्पन्न करनेवाला । [को०] ।

कडूल^२—सज्ञा पुं० सूरन । ओल । जमीकद [को०] ।

कडोव—सज्ञा पुं० [स०] कीड़े की दशा को प्राप्त रोएँदार अपूर्ण पतंग । डिम । कमला । झाँफ । इल्ली [को०] ।

कडोल—सज्ञा पुं० [स० कण्डोल] १. वेत या वाँस का बना टोकरा । २. वड़ी दोरी या दौरा । ३. भाडारगृह । ४. ऊँट [को०] ।

कडोलक—सज्ञा पुं० [स० कण्डोलक] १. डलिया । टोकरा । टोकरी । २. भाडारगृह [को०] ।

कडोलवीणा—सज्ञा पुं० [स० कण्डोलवीणा] चाडालवीणा । किंगरी ।

कडोर—सज्ञा पुं० [स० कण्डु या देश० अथवा हि० काँडो] १. अन्न का एक रोग ।

विशेष—यह रोग प्रायः ऐसे अन्नो को होता है जिसमें बाल लगी है, जैसे धान, गेहूँ, ज्वार, बाजरा आदि । बाल में काले रंग की चिकनी धूल या भुकड़ी बैठ जाती है । इससे बाल में दाने नहीं पड़ते और फसल को बड़ी हानि होती है । कंडुआ और कंजुआ भी कहते हैं ।

२. दे० 'कडौरा' ।

कडोप—सज्ञा पुं० [स० कण्डोप] १. डिम । इल्ली । २. विच्छू [को०] ।

कडौरा—सज्ञा पुं० [हि० कडा + घोर (प्रत्य०)] १. वह स्थान जहाँ कडा पाया जाता है । गोहरीर । २. वह घर जिसमें कडे रखे जाते हैं । गोठोला । ३. कडों का ढेर जिसके ऊपर से गोबर छोप देते हैं । वठिया ।

कत^१—वि० [स० कन्त] प्रसन्न । आनंदित [को०] ।

कत^२—सज्ञा पुं० [स० कान्त] १. पति । स्वामी । उ०—मदन लाजवश तिय नयन देखत वनत एकत । ईचे खिचे इत उत फिरत ज्यो दुनारि को कत ।—पद्माकर (शब्द०) । २. मालिक । ईश्वर । उ०—तू मेरा हौं तेरा गुह सिप कीया मत । हुनो भूल्या जात है दाहू विसरथा कत ।—दाहू (शब्द०) ।

कतरि—सज्ञा पुं० [स० कान्तर] वन । जंगल ।

कता—सज्ञा पुं० [स० कान्त] दे० 'कत' । उ०—(क) तब जान्यो कमला के कता ।—सूर० (राधा०), पृ० ४५० । (ख) जैसे कता घर रहे वैसे रहे विदेस (कहावत) ।

कतार—सज्ञा पुं० [स० कान्तर] जंगल । वन ।

कति—सज्ञा स्त्री० [स० कान्ता] दे० 'कता' । उ०—कहै कति सम कत, तत पावन बड कविय ।—पृ० रा० १।७ ।

कतित—सज्ञा पुं० [देश०] एक पुरानी राजधानी जिसके खडहर मिर्जापुर के पश्चिम गंगा के किनारे पर हैं और जहाँ इस नाम का एक गाँव भी है । मिथ्यावासुदेव की राजधानी यहीं थी ।

कतु^१—वि० [स० कान्त, कन्तु] प्रसन्न ।

कतु^२—सज्ञा पुं० १. कामदेव । २. हृदय । ३. अन्न का भाडार । ४. प्रेमी [को०] ।

कथ—सज्ञा पुं० [स० कान्त] दे० 'कत' । उ०—कथ बुलाय केकेई कहियो, आप वचन पूरीजँ आस ।—रघु० ६०, पृ० १०० ।

कथा—सज्ञा स्त्री० [स० कन्या] १. गुदडी । उ०—फारि पटोर सो पहिरौ कथा । जो मोहि कोउ दिखावै पथा ।—जायसी (शब्द०) २. कथड़ी । कथरी (को०) । ३. भीत । दीवार (को०) । ४. नगर । शहर (को०) । ५. जोगियों का पहनावा या परिधान (ला०) ।

कथाधारी—वि० [स० कन्याधारिन्] कथा धारण करनेवाला योगी । जोगी [को०] ।

कथारी—सज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का वृक्ष ।

कथी—सज्ञा पुं० [स० कन्यिन्] गुदडी पहननेवाला व्यक्ति । फकीर । उ०—जोगि जती अरु आवहि कथी । पृष्ठ पिपहि जान कोइ पथी ।—जायसी (शब्द०) ।

कद^१—सज्ञा पुं० [स०] १. वह जड़ जो गूदेदार और बिना रेशे की हो । जैसे—सूरन, मूली, शकरकद इत्यादि ।

यौ०—जमीकद । शकरकद । बिलारीकद ।

२. सूरन । ओन । काँद । उ०—चार सवा सेर कद मंगाधो ।

आठ अश नरियर लै आओ ।—कवीर सा०, पृ० ५४६ ।

३. वादल । धन । उ०—यज्ञोपवीत विचित्र हेममय मुत्तामाल उरसि मोहि भाई । कद तडित विच ज्यो सुरपति धनु निकट बलाक पाँति बलि भाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—घानवकद ।

४. तेरह अक्षरों का एक वर्णवत्त जिसके प्रत्येक चरण में चार यगण और अतः एक लघु वर्ण होता है (य य य य ल) । जैसे,—हरे राम हे राम हे राम हे राम । करो मो हिये मे सदा आपनो घाम ।—(शब्द०) । ५. छप्पय छद के ७१ भेदों में से एक जिसमें ४२ गुरु ६८ लघु, ११० वर्ण और १५२ मात्राएँ, अथवा ४२ गुरु ६४ लघु, १०६ वर्ण और १४८ मात्राएँ होती हैं । ६. योनि का एक रोग जिसमें बतौरी की तरह गाँठ बाहर निकल आती है । ७. शोथ । सूजन (को०) । ८. गाँठ (को०) । ९. लहसुन (को०) ।

कद^२—सज्ञा पुं० [फा०] जमाई हुई चीनी । मिखी । उ०—हक मे आशिक के तुझन वाँका वचन । कद है नेशकर है शक्कर है ।

—कविता को०, भा० ४, पृ० ३६ ।

यौ०—कलाकद । गुलकद ।

कदक—सज्ञा पुं० [स० कन्दक] पालकी [को०] ।

कदगुडुची—सज्ञा स्त्री० [स० कन्दगुडुची] एक प्रकार की गुडुची । पिडालू । बहुच्छिन्ना [को०] ।

कदन—सज्ञा पुं० [स० कन्दन] नाश । ध्वम ।

कदमूल—सज्ञा पुं० [स० कन्दमूल] १. कद और मूत्र । २. तीन बार हाथ ऊँचा एक पीछा ।

विशेष—इसका पत्ता सेमल के पत्ते सा होता है । इसकी जड़ी मोटी, लवी और गूदेदार होती है । इसकी डालियाँ जमीन में लगती हैं । नेपाल की तराई में पहाड़ों के किनारे यह बहुत मिलता है । लकड़ी पोली और निकम्मी होती है । जड़ को लोग उवालकर या तरकारी बनाकर खाते हैं ।

कदर^१—सज्ञा पुं० [स० कन्दर] [स्त्री० कन्दरा] १. गुफा । गुहा ।

उ०—कदर खोह नदी नद नारे । अगम अगाध न जाहि

कठील—सज्ञा पुं० [सं० कण्ठील] १. जँट । २. वह पात्र जिसमें मयने का काम किया जाय [को०] ।

कठीला—सज्ञा स्त्री० [सं० कण्ठीला] मयन का पात्र [को०] ।

कठेकाल—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठेकाल] शिव । महादेव [को०] ।

कठीष्ठ—वि० [सं०] ध्वनि या वर्ण जो एक साथ कठ और ओठ के सहारे से बोला जाय ।

विशेष—शिक्षा में 'ओ' और 'औ' कठीष्ठ्य वर्ण कहलाते हैं ।

कठ्य^१—वि० [सं०] १. गने से उत्पन्न । २. जिसका उच्चारण कठ में हो । ३. गने या स्वर के लिये हितकारी । जैसे,—कठ्य ओषध ।

कठ्य^२—संज्ञा पुं० १. वह वर्ण जिसका उच्चारण कंठ से होता है । हिंदी वणमाला में ऐसे आठ वर्ण हैं—अ, क, ख, ग, घ, ङ, हं और विसर्ग । २. वह वस्तु जिसके खाने से स्वर अच्छा होता है या गंगा धुलता है । गले के लिये उपकारी औषध ।

विशेष—सोठ, कुनजन, मिचं, वच, राई, पीपर, पान । गुटिका कर्मि मुख में ऐ सुर कोकिला समान ।—वैद्यजीवन(शब्द०) ।

कडन—संज्ञा पुं० [सं० कण्डन] १. कूटना । २. पिटाई । ३. कुटाई । ४. भूमी अलग करना [को०] ।

कडनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्डनी] १. ऊखल । २. मूसल [को०] ।

कडम—वि० [सं० कडम] १. बेकार । २. नष्ट । ३. अष्ट । उ०—
लाख मन चावन कडम हो गया ।—अभिषेक, पृ० ५२ ।

कडरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मोठी नस । मोठी नाडी ।

विशेष—सुवृत्त में मोनह कडराएँ मानी गई हैं जिनसे शरीर के अवयव फैलते और विकुडते हैं ।

कडसरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्ठरी] दे० 'कठ्यरी' । उ०—कडसरी
गीवा धुन कुडन, चढ़ण निले तिलक दुत चंद ।—रघु० ६०,
पृ० २५३ ।

कडहार—संज्ञा पुं० [सं० कण्ठहार] दे० 'कण्ठधार' । उ०—करे जीव
मव पार कडहार सो ।—नवीर ग्रं०, पृ० १३२ ।

कडा^१—संज्ञा पुं० [सं० स्कन्दन=मलत्याग] [स्त्री० अल्पां कडी] १.
१ सूखा गोबर जो ईंधन के काम में आता है ।

मुहा०—कडा होना=(१) सूखना । दुर्बल होना । ऐंठ जाना ।

(२) मर जाना । जैसे,—ऐसा पटका कि कडा हो गया ।

२. नव आकार में पया हुआ सूखा गोबर जो जलाने के काम में आता है । ३. सूखा मल । गोटा । सुहा ।

कडा^२—संज्ञा पुं० [सं० कण्ड] मूँज के पीधे का डठल जिसके चिक, कलम, मोटे आदि बनाए जाते हैं । सरकंडा ।

कडानक—संज्ञा पुं० [सं० कण्डानक] शिव का एक अनुचर [को०] ।

कडारी—संज्ञा पुं० [सं० कण्डारिन्] १. जहाज का मांझी । (लश०) ।
२. नाव चालनेवाला । कण्ठधार ।

कडाल^१—संज्ञा पुं० [सं० कण्डोल] लोहे और पीतल आदि की चद्दर का बना हुआ कूपाकार एक गहरा बरतन जिसका मुँह गोल और चौड़ा होता है । इसमें पानी रखा जाता है ।

२-२५

कडाल^२—संज्ञा पुं० [सं० करनाल, फा० करताय] एक बाजा जो पीतल की नली का बनता है और मुँह में लगाकर बजाया जाता है । नरसिंहा । तुरही । तूरी ।

कडाल^३—संज्ञा पुं० [हिं० कड=मूँज] जोनाहो का एक कंजीनुमा औजार जिसपर ताना फैलाकर पाई करने हैं ।

विशेष—यह दो सरकडों का बनता है । दो बराबर बराबर सरकडों को एक साथ रखकर बीच में बाँध देते हैं । फिर उनको आड़े कर आमने सामने के भागों को पतली रस्मी में तानते और ऊपर के सिरो पर तागा बाँधकर नीचे के सिरो को जमीन में गाड़ देते हैं । इस तरह कई एक को दूर दूर पर गाड़कर उनके सिरे पर बंधे तागों पर ताना फैलाते हैं ।

कडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्डिका] १. वेद की ऋचाओं का समूह ।

२. वैदिक ग्रंथों का एक छोटा बाक्य, खंड या अवयव । पैरा ।

कडिया—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्ड] १. बांस की डोलवी । २. पिटारी ।

कडिल—वि० [सं० कण्डिल] प्रमत्त । मधुमत्ता [को०] ।

कडी^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० कडा] १. छोटा कडा । गोहरी । उपरी ।

२. सूखा मल । गोटा । सुहा । ३. वह पात्र जिसमें कडी जलाई जाय । अँगोठी । उ०—गेनों वच्चे मुश्की और हफजा

कडी (अँगोठी) को घेकर बैठे रहे ।—फूना०, पृ० ८१ ।

कडी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्ड] पीठ पर बाँधी जानेवाली वह टोकरी

जिसमें बँठकर या सामान लादकर लोग बदरीनाथ, हिमालय

पहाड़ पर यात्रा करते हैं ।

कडील—संज्ञा स्त्री० [फा० कडील] मिट्टी, अवरक या कागज की बनी

हुई लालटेन जिसका मुँह ऊपर होता है । इसमें दीया जलाकर

लटकाते हैं ।

कडीलिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० कडील या पुर्त० गडील] १. वह ऊँचा

घरहरा जिसके ऊपर रोशनी की जाती है ।

विशेष—यह समुद्र में उन स्थानों पर बनाया जाता है जहाँ चट्टानें

रहती हैं और जहाज के टकराने का डर रहता है । जहाजों

का ठीक मार्ग बतलाने का काम भी इससे लेते हैं । प्रकाश

स्तंभ (लाइट हाउस) ।

२. वह वाँम जिसपर कडील लटकाई जाय ।

कडु—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्डु] खुजली । खाज ।

कडुक—संज्ञा पुं० [सं० कण्डुक] १. मिनावाँ । २. तमाल । उ०—

कालकथ तापिच्छ पुनि कंडुक सोह तमाल ।—प्रतेक (शब्द०) ।

कडुघ्न^१—वि० [सं० कण्डुघ्न] खुजली मिटानेवाला [को०] ।

कडुघ्न^२—संज्ञा पुं० सफेद सरसों ।

कडुर—वि० [सं० कण्डुर] खुजली पैदा करनेवाला [को०] ।

कडू—संज्ञा [सं० कण्डू] दे० 'कडु' ।

कडूधन—संज्ञा पुं० [सं० कण्डूधन] खुजलाहट [को०] ।

कडूधनक—वि० [सं० कण्डूधनक] खुजली पैदा करनेवाला [को०] ।

कडूधनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्डूधनी] रगड़ने के काम आनेवाला एक

प्रकार का ब्रुश [को०] ।

कडूया—संज्ञा स्त्री० [पुं० कण्डूया] खुजली [को०] ।

कठत्राण—सज्ञा पुं० [सं० कण्ठत्राण] लडाईं में गले की रक्षा के लिये बनी हुई लोहे की जाली या पट्टी (को०) ।

कठदवाव—सज्ञा पुं० [हिं० कठ + दवाव] कुश्नी का एक पेंच जिसमें खिलाडी एक हाथ से अपने प्रतिद्वंदी के कठ पर थाप मारता है और दूसरे हाथ से उसका उसी तरफ का पैर उठाकर उसे भीतरी अडानी टांग मारकर चित्त कर देता है । इसे कठभेद भी कहते हैं ।

कठनीलक—सज्ञा पुं० [सं० कण्ठनीलक] १ मशाल । २ लूक । लुकारी । लुक्क (को०) ।

कठभग—सज्ञा पुं० [सं० कण्ठभङ्ग] हकनाना । हकलाहट (को०) ।

कठमणि—सज्ञा पुं० [सं० कण्ठमणि] १ गले में पहना गया रत्न । उ०—गजमुकुटा कर हार कठमणि मोहइ हो ।—तुलसी ग्र०, पृ० ८ । २ घोड़े की एक मैदरी जो कठ के पास होती है । ३ अत्यंत प्रिय वस्तु (को०) ।

कठमाला—सज्ञा पुं० [सं० कण्ठमाला] गले का एक रोग जिसमें रोगी के गले में लगातार छोटी गिल्टियाँ या फुडियाँ निकलती हैं ।

कठला^१—सज्ञा पुं० [हिं० कठ + ला (प्रत्यय)] १ गले में पहनने का वस्त्रों का एक गहना । कठला ।

विशेष—नजरपट्ट, बाध का नख, दो चार ताबीज आदि को तागे में गूँथकर वालों को उनके रक्षार्थ पहनाते हैं ।

२ घेरा डालना । घेरा । उ०—ऊडछा उपरि कठला करि परामणुरि अछुरे ।—पृ० रा० ४।१४ ।

कठला^२—सज्ञा स्त्री० [सं० कठला] वेत की बनी डलिया (को०) ।

कठली^३—सज्ञा स्त्री० [हिं० कठला] दे० 'कठला'—२ । उ०—दुसेन्या दरमसी कडे कठली भी ।—रा० रू०, पृ० ३२ ।

कठशालुक—सज्ञा पुं० [सं० कण्ठशालुक] एक रोग जिसमें गले के भीतरी कफ के प्रकोप से वर वरावर गाँठ उत्पन्न हो जाती है । यह गाँठ खुरखुरी होती है और रुँटे की नाईं चुगती है ।

कठशुडी—सज्ञा स्त्री० [सं० कण्ठशुडी] गले की ग्रन्थि का शोध या सूजन (को०) ।

कठशूल—सज्ञा पुं० [सं० कण्ठशूल] घोड़े के गले की एक भौरी जो दूषित मानी जाती है ।

कठशोभा—सज्ञा पुं० [सं० कण्ठ + शोभा] एक छद जिसके प्रत्येक चरण में ११ अक्षर होते हैं और लघु अक्षरों की स्थानसमता बनी रहती है । जैसे,—फिरे हय बख्खर पखर से । मेने फिर इडुज पख कसे ।—पृ० रा०, ६।३२ ।

कंठशोप—सज्ञा पुं० [सं० कण्ठशोप] १. कठ सूखना । गला सूखना । २. व्यर्थ विवाद (को०) ।

कठथ्रो—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ गले का एक गहना जो सोने का और जड़ाऊ होता है । २ पोत की कठी । गुरिया । घूटा ।

कठसरी—सज्ञा स्त्री० [सं० कण्ठसरी] दे० 'कठथ्रो-१' । उ०—कठमरी बहु श्रुति मिलि मुकताहुँ ।—मीरदास ग्र०, भा० ३, पृ० ३६ ।

कठस्थ—वि० [सं० कण्ठस्थ] १ गले में अटक हुआ । कठगत । २. जवानी । जिह्वाग्र । कठ । कठाग्र ।

कठहार—सज्ञा पुं० [सं० कण्ठहार] गले में पहनने का एक गहना । हार ।

कठा—सज्ञा पुं० [हिं० कठ] [स्त्री० अल्पा० कठी] वह भिन्न भिन्न रंगों की रेखा जो तोते आदि पक्षियों के गले के चारों ओर निकल आती है । हँसली । २. गले का एक गहना जिसमें बड़े बड़े मनके होते हैं । ये मनके सोने, मोती या बद्राक्ष के होते हैं । ३. कुंते या अंगरखे का वह अर्धचंद्राकार भाग जो गले पर आगे की ओर रहता है । (दर्जी) । ४. वह अर्धचंद्राकार कटा हुआ कपड़ा जो कुरते या अंग्रे के कंठ पर लगाया जाता है । ५. पत्थर या मोढ़े की पीठ का वह जो भाग उपान और कारनिस के बीच में है ।

कठाग्र—वि० [सं० कण्ठाग्र] कंठस्थ । जवानी । वरजवान ।

कठाग्रहण^४—सज्ञा पुं० [सं० कण्ठाग्रहण] कठग्रहण । कठानिगन । गले लगाना । उ०—दूरि यकाँ ही मज्जणाँ कठग्रहण करति ।—ढोला०, दू०, २१४ ।

कठारुधन^५—सज्ञा पुं० [सं० कण्ठ + रोध] १ साँस रुकना । २ मृत्यु के निकट की अवस्था । उ०—कठारुधन भए मोह मे लागे अजहूँ ।—पलटू०, भा० १, पृ० २६ ।

कठाल—सज्ञा पुं० [सं०] १ नाव । नौका । २ कुदाल । बेलना । ३ युद्ध । लडाईं । ४ मथन का पात्र । ५ ऊँट । ६ एक खाद्य । कद । सूरन । ७ पट्टेला । सरावन । ८ थैला (को०) ।

कठाला—सज्ञा स्त्री० [सं० कण्ठाला] वह पात्र जिसमें मथने का कार्य किया जाय (को०) ।

कठिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक लडीवाला हार (को०) ।

कठी^१—वि० [सं० कण्ठिन] कठ या ग्रीवा सवधी (को०) ।

कठी^२—सज्ञा स्त्री० [सं० कण्ठी] १ कठ । गला । २ हार । छोटे दानों का हार । ३ घोड़े की गर्दन की रस्सी (को०) ।

कठी^३—सज्ञा स्त्री० [हिं० कठा का अल्पा० रूप] १ छोटी गुरियों का कठा । २ तुलसी चपा आदि के छोटे छोटे मनियों की माला जिसे वैष्णव लोग गले में बाँधते हैं ।

मुहा०—कठी उठाना या छुना = कठी की सोगध खाना । कसम खाना । कठी तोड़ना = (१) वैष्णवत्व का त्याग । मास मछली फिर खाने लगना । (२) गुरु छोड़ना । कठी देना = चेला करना या चेला बनाना । कठी बाँधना = (१) चेला बनाना । चेला मूँडना । (२) अपना अधभक्त बनाना । (३) वैष्णव होना । भक्त होना । (४) मद्य, मास छोड़ना । (५) विषयों को त्यागना । कठी लेना = (१) वैष्णव होना । भक्त होना । (२) मद्य, मास छोड़ना । (३) विषयों को त्यागना ।

३ तोते आदि पक्षियों के गले की रेखा । हँसली । कठी ।

कठीर^४—सज्ञा पुं० [सं० कण्ठीरव] दे० 'कंठीरव' । उ०—सीत मेह मारत तप सह्यो शकत बतौ कठीर रहैं ।—रघु०, पृ० १०२ ।

कठीरव—सज्ञा पुं० [सं० कण्ठीरव] १ सिंह । २ कबूतर । ३ मत-वाला हाथी । ४ स्पष्ट उक्ति । स्पष्टार्थक शब्दों में कथन (को०) ।

कटर—सज्ञा पुं० [अं० डिकटर] १. शीशे की बनी हुई सुटर सुराही जिसमें शराब और सुगंध आदि पदार्थ रखे जाते हैं। यह अच्छे शीशे की होती है, इसपर वेल बूटे भी होते हैं। इसकी डाट शीशे की होती है। करावा। २. चौड़े मुँह की शीशी या बोतल। ३. कनक्टर (बोल०)।

कटल—सज्ञा पुं० [म० कण्टल] ववूल [को०]।

कटा—सज्ञा पुं० [स० काड] डेढ़ बालिशत की एक पतली लकड़ी जिसके एक छोर पर चमड़े का एक टुकड़ा लगा रहता है जिससे चुंगिहारे चूड़ों में गते हैं।

कटाइन^१—सज्ञा स्त्री० [स० कण्टक + हि० आइन (प्रत्यय)] १. चुड़ैल। सुतनी। डाइन। २. लडाकी स्त्री। दुष्टा स्त्री। कंकशा स्त्री।

कटाइन^२—वि० [देश०] १. नकद। २. ठीक ठीक। पक्का।

कटाप—सज्ञा पुं० [स० कटोप] किसी वस्तु का अगला हिस्सा जो भारी हो भारी सिरा।

यो०—कटापदार = जिमका आगा भारी हो। जैसे,—कटापदार जूता।

कटाफल—सज्ञा पुं० [म० कण्टाफल] कटहन [को०]।

कंटाल—सज्ञा पुं० [स० कण्टालु] एक प्रकार का रामबाँस या हाथीचक जो बबई, मदराम, मध्यभारत और गंगा के मैदानों में होता है। इसकी पत्तियों के रेशे से रस्सियाँ बटी जाती हैं।

क टालु—सज्ञा पुं० [स० कण्टालु] अनेक वनस्पतियों के नाम। जैसे, बार्तकी, वग, ब्यूर और बृहती (को०)।

कटाह्वय—सज्ञा पुं० [स० कण्टाह्वय] पद्म की जड़ [को०]।

कटिका—सज्ञा स्त्री० [स० कण्टक] १. पतली छोटी नोकदार नत्थी करने की तीली। २. पिन। ३. आलपिन।

कटी^१—वि० [स० कण्टिन्] काँटेवाला। कटकपुक्त [को०]।

कटी^२—सज्ञा पुं० अनेक वृक्षों के नाम, जैसे,—अगामार्ग, खदिर, गोकुल आदि [को०]।

कटूनमेट—सज्ञा स्त्री० [अ० कैंडूनमेट] वह स्थान जहाँ फौज रहती हो। छावनी।

कटोप—सज्ञा पुं० [हि० कान + तोप] एक प्रकार की टोपी जिसमें सिर और कान ढके रहते हैं। इसमें एक चँदिया के किनारे छह मात अगुल चौड़ी दीवाल लगाई जाती है जिसमें चेहरे के लिये मुँह काट दिया जाता है।

कट्रैक्टर—सज्ञा पुं० [अ०] ठेका। ठीका। इजारा।

कट्रैक्टर—सज्ञा पुं० [अ०] ठेकेदार या ठीकेदार।

कट्रोल—सज्ञा पुं० [अ०] १. नियंत्रण। काबू। जैसे—इतनी बड़ी सभा पर कट्रोल करना हँसी खेल नहीं। २. किसी वस्तु के समुचित वितरण के लिये सरकारी अधिकार।

यो०—कट्रोल आफिस = वह कार्यालय जहाँ से कट्रोल की कार्यवाही का संचालन होता है। कट्रोल शॉप = कट्रोल की दुकान।

कठ—सज्ञा पुं० [म० कण्ठ] [वि० कठघ] १. गला। टेंटुआ। उ०—मेनी कठ सुमन की माला।—मानस, ६।८।

यो०—कठमाला।

मुहा०—कठ सूखना = ध्यास से गला सूखना।

२. गले की वे नलियाँ जिनमें भोजन पेट में उतरता है और आवाज निकलती है। घांटी।

यो०—कठस्थ। कठाग्र।

मुहा०—कठ करना या रखना = कठम्व करना या रखना। जवानी याद करना या रखना। कठ खुलना = (१) हँसे हुए गले का साफ होना। (२) आवाज निकलना। कठ फूटना = (१) वर्णों के स्पष्ट उच्चारण का आरम्भ होना। आवाज खुलना। वक्त्र की आवाज साफ होना। (२) वकारी फूटना। वक्त्र निकलना। मुँह से शब्द निकलना। (३) घांटी फूटना। युवावस्था आरम्भ होने पर आवाज का बदलना। कठ बँटना या गला बँटना = आवाज का त्रसुरा हो जाना। आवाज का भारी होना। कठ होना = कठाग्र होना। जवानी याद होना। जैसे,—उनको यह सारी पुस्तक कठ है।

३. स्वर। आवाज। शब्द। जैसे,—उमका कठ बड़ा कोमल है। उ०—अति उज्ज्वला सब बालहु वसे। शुक केकि पिकादिक कठहु सै।—अश्व (शब्द०)। ४. वह लाल नीली आदि कई रंगों की लकीर जो सुग्गो, पड़क आदि पक्षियों के गले के चारों ओर जवानी में पड़ जाती है। हँसली। कपा। उ०—(क) राते श्याम कठ दुइ भीवा। तेहि दुई फद डरो मठ जीवा।—जायसी (शब्द०)।

मुहा०—कठ फूटना = तोते आदि पक्षियों के गले में रंगीन रेखाएँ पड़ना। हँसली पड़ना या फूटना। उ०—हीरामन हीं तेहि क परेवा। कठ फूट करत तेहि सेवा।—जायसी (शब्द०)।

५. किनारा। तट। तीर। काँठा। जैसे,—वह गाँव नदी के कठ पर बसा है। ६. अधिकार में। पास। उ०—निज कठन पुरसान। पृ० रा०, १३।११०। ७. मेनफल का पेट। मदन वृक्ष।

कठकुब्ज—सज्ञा पुं० [सं० कण्ठकुब्ज] सनिपात रोग का एक भेद।

विशेष—यह तेरह दिन तक रहता है। इसमें सिर में पीड़ा और ज्वर होती है, सारा शरीर गरम रहता और दर्द करता है।

कठकूजिका—सज्ञा स्त्री० [सं० कण्ठकूजिका] बीणा।

कठकूरिका—सज्ञा [सं० कण्ठकूरिका] बीणा।

कठगत—वि० [सं० कण्ठगत] गले में प्राप्त। गले में स्थित। गले में आया हुआ। गले में अटक हुआ।

मुहा०—प्राण कठगत होना = प्राण निकलने पर होना। मृत्यु का निकट आना। उ०—प्राण कठगत भयउ भुवालू।—तुलसी (शब्द०)।

कठत.—किं वि० [सं० कण्ठत.] १. कठ या गले से। २. खुले रूप में या स्पष्टतया [को०]।

कठतलासिका—सज्ञा स्त्री० [सं० कण्ठतलासिका] रस्सी या चमड़े की पट्टी जो घोंडे के गले में रहती है [को०]।

कठतालव्य—वि० [म० कण्ठतालव्य] (वर्ण) जिनका उच्चारण कठ और तालु स्थानों से मिलकर हो।

विशेष—शिक्षा में 'ए' और 'ऐ' को कठतालव्य वर्ण या कठतालव्य कहते हैं। इसका उच्चारण कंठ और तालु से होता है।

कजल सखा पुं [सं] एक प्रकार का पक्षी।

कजा^१—सखा पुं [सं करञ्ज] १ एक कंटीली झाड़ी।

विशेष—इसकी पत्तियाँ पिरिस का पत्तियो से कुछ मिनती जुलती कुछ अधिक चौड़ी होती हैं। इसके फूल पीले पीले होते हैं। फलों के गिर जाने पर कंटीली फलियाँ लगती हैं। इनके ऊपर का छिलका कड़ा और कंटीला होता है। एक एक फली में एक से तीन चार तक बेर के बराबर गोल गोल दाने होते हैं। दानों के छिलके कड़े घोर गहरे खाकी धुएँ के रंग के होते हैं। के लड़के इन के दानों से गोभी की तरह खेलते हैं। बँध लोग इसकी गूदी को औषध के काम में लाते हैं। यह ज्वर और चमरोग में बहुत उपयोगी होती है। अंगरेजी दवाइयों में भी इसका प्रयोग होता है। इससे तेल भी निकाला जाता है जो खुजली की दवा है। इसकी फुनगी और जड़ भी काम में आती है। यह हिंदुस्तान और बर्मा में बहुत होता है और पहाड़ों पर २५००० फुट की ऊँचाई तक तथा मैदानों और समुद्र के किनारे पर होता है। इसे लोग खेतों के बाड़ पर भी रूढ़ने के लिये लगाते हैं।

पर्याय—गटाइन। करजुवा। कुवेराक्षी। कूकचिका। वारिणी। कटकनी।

२ इस वृक्ष का बीज।

कजा^२—वि० [देश० अथवा सं० कञ्ज सेवार के रंग का, काही या खाकी रंग का] [स्त्री० कजी] १ कजे के रंग का। गहरे खाकी रंग का। जैसे,—कजी आँख।

विशेष—इस विशेषण का प्रयोग आँख ही के लिये होता है।

२ जिसकी आँख कजे के रंग की हो। उ०—ऐचा ताना कहे पुकार। कजे से रहियो हुशियार। (कहा०)।

कजार—सजा पुं [सं] १ मोर। २ उदर। ३ हाथी। ४ मुनि ५ सूर्य। ६ ब्रह्मा [स्त्री०]।

कजावलि—सखा स्त्री [सं] एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में मगण, नगण और दो जगण और एक लघु (म न ज ज ल) होता है। इसे पकजवाटिका और एकावली भी कहते हैं। उ०—मानुज जल महँ आय परे जब। कजअवलि विकसँ सर में तव। त्यो रघुवर पुर आय गए तव। नारिख नर प्रमुदे लखिके सब (शब्द०)।

कजासा—सखा पुं [हिं० गाँजा] कूड़ा।

कजिका—सखा स्त्री [सं कञ्जिका] १ ब्राह्मणपट्टिका वृक्ष (२ बम्हनेटी। दे० 'मारगी')।

कजिनी—सखा स्त्री [सं कञ्जिनी] वेश्या।

कजूस—वि० [सं कण + हिं० चूस] [सखा कजूसी] जो धन का भोग न करे। जो न खाए और न खिलावे। कृपण। सूम। मन्खी-चूस।

कजूसी—सखा स्त्री [हिं० कजूस] कृपणता। सूमपन। उदारता का अभाव।

कट^१—वि० [सं कण्ट] काटे से युक्त [स्त्री०]।

यो०—कटपत्रफला = ब्रह्मद्वी नाम का पौधा। कटफल = (१) कटहल। (२) धतूरा। (३) लताकरज। (४) गोखरू।

कट^२—सखा पुं [हिं० काँटा] दे० 'काँटा'।

कटक—सखा पुं [सं कण्टक] [वि० कटकित] १ काटा। उ०—ध्वज कुं। स अकुस कज जुत वन फिरत कटक किन तह।—मानस, ७। १३। २ मूई की नोक। ३ धुत्र शूद्र। ४. वाममागवालो के अनुसार वह पुरुष जो वाममार्ग न हो या वाममार्ग का विराधी हो। पशु। ५ विघ्न। पावा। खेड़ा। ६ रोमाच। ७ ज्योतिष के अनुसार जन्मकुंडली में पहला, चौथा, सातवाँ और दसवाँ स्थान। ८ बाधक। विघ्नकर्ता। उ०—जो निज गो-द्विज देव धर्म कर्मों का कटक।—साकेत १० ४१७। ९ वस्तर। कपड़ा।—हिं०।

यो०—निष्कटक

कटकद्रुम—सखा पुं [सं कण्टद्रुम] १ कंटीली वृक्ष। २ कंटीली झाड़ी। ३ शालमलि वृक्ष। सेमल का पेड़ [स्त्री०]।

कटकफल—सजा पुं [सं कण्टकफल] १ कटहन। २ गोखरू। ३ एरंड या रेंड का पेड़। ४ धतूरा [स्त्री०]।

कटकशोधन—सजा पुं [न० कण्टकशोधन] दे० कंटकोदरण।
—कोटिल्य अर्थ०, पृ० २००।

कटकश्रेणी—सजा स्त्री [सं कण्टकश्रेणी] दे० 'ककारी' [स्त्री०]।

कटकार—सजा पुं [सं कण्टकार] [स्त्री० कटकारी] १ सेमल। २ एक प्रकार का वृक्ष। विकक। पची। ३ मटकटैया। कटेरी।

कटकारिका—सजा स्त्री [सं कण्टकारिका] दे० 'कटकारी' [स्त्री०]।

कटकारी—सजा स्त्री [न० कण्टकारी] १ मटकटैया। २ कटेरी। छोटी कटाई। २ सेमल।

कटकाल—सजा पुं [सं कण्टकाल] १ कटहन। २ काटो का घर।

कटकालुक—सजा पुं [सं कण्टकालुक] जवामा।

कटकाशन—सजा पुं [सं] ऊँट।

कटकाष्ठील—सजा पुं [सं कण्टकाष्ठील] एक तरह की मछली।

कटकाह्वय—सजा पुं [सं कण्टकाह्वय] दे० कटाह्वय [स्त्री०]।

कटकित—वि० [सं कण्टकित] १ रोमाचित। पुलकित। उ०—
होति अति उससि उसामन तें, सहज सुवासन शरीर मजु लागे
पौन।—देव (शब्द०)। २ काँटेदार। उ०—कमल कटकित
सजनी कोमल पाय। निशि मलीन यह प्रफुलित नित दरसाय।
तुलसी (शब्द०)।

कटकनी^१—सजा स्त्री [सं कण्टकिनी] मटकटैया [स्त्री०]।

कटकनी^२—वि० १ कंटीली। २ व्यग्रकरी। ३ चुमनेवाली [स्त्री०]।

कटकिल—सजा पुं [सं कण्टकिल] एक तरह का कंटीला वाम [स्त्री०]।

कटकी^१—वि० [सं कण्टकिन्] काँटेदार। कंटीला।

कटकी^२—सजा पुं १. छोटी मछली। कँटवा। २ खैर का पेड़।

३ मेनफल का पेड़। ४ वाँस। ५. वैर का पेड़। ६ गोखरू। ७. काँटेदार पेड़।

कटकी^३—सजा स्त्री [सं कण्टकी] मटकटैया।

कटकोदरण—सजा पुं [सं कण्टकोदरण] १. काँटा निकालना। २ विघ्ननिवारण। ३ शत्रु का दमन। ४ राष्ट्र या समाजद्रोहियों का अनुशासन।—मनु०, म० ६।

मुहा०—कचन वरतना=(किसी स्थान का) समृद्धि और शोभा में युक्त होना । उ०—तुनमी वहाँ न जाइए कंचन वरस मेह । —तुलसी (शब्द०) ।

२ घन । मयति । उ०—(क) चान चन सव कोउ कहै पहुँचै विरला कोय । इक कचन इक कामिनी दुर्गम घाटी दोय ।—कवीर (शब्द०) । (ख) वंचक भगत कहाय राम के । किकर कचन कोह काम के ।—तुलसी (शब्द०) । ३ घनरा । ४ एक प्रकार का वचनार । रक्त कचन । ५. [खी० कचनी] एक जाति का नाम जिसमें स्त्रियाँ प्रायः वेश्या का काम करती हैं ।

कचन^२—वि० १ नीरोग । स्वस्थ । २ स्वच्छ । सुंदर । मनोहर । कचनपुरुष—संज्ञा पुं० [सं० कञ्चनपुरुष] सोने के पत्र पर खोदी हुई पुरुष की एक मूर्ति जो मृतक कर्न में महाब्राह्मण को दी जाती है । यज्ञपुत्र को भी कचनपुरुष कहते हैं ।

कचनिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० कचनार] एक छोटी जाति का कचनार । इसकी पत्तियाँ और फल छोटे होते हैं ।

कचनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चिनी = वेश्या अथवा सं० कचन + हिं० ई (प्रत्य०)] वेश्या । उ०—नेवक द्विज दच्छिना, कचनी कवि घन पावत ।—प्रेमघन, पृ० ३३ ।

कचा^७—वि० [हिं० कच्चा] दे० 'कच्चा' । उ०—कहे दरिया परिपत्र फंदा रचा इसिक मामुक निनु रहत कचा ।—सं० दरिया, पृ० ७३ ।

कचिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चिका] १. बांस की शाखा । २. फुसी । छोटा कोड़ा ।

कची^७—वि० [हिं० कच्ची] दे० 'कच्ची' । उ०—रज औ विद की कंची काया ।—सं० दरिया, पृ० १६७ ।

कचु—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुक] दे० 'कंचुकी' । उ०—स्वर्ण सूत्र मे रजत हिलोरे कचु काढती प्रात ।—गुजन, पृ० ८८ ।

कचुक—संज्ञा पुं० [सं० कंचुक] [खी० कंचुकी] १. जामा । चोत्रक । चपकन । अचकन । २. चोली । अँगिया । ३. वस्त्र । ४. वस्त्र । कच । ५. कंचुल । ६. कचुक के आकार का कच जो घुटने तक होता था (को०) । ७. मूसी या छिनका (को०) । ८. तममा । चमड़े का पट्टा (को०) ।

कचुकालु—संज्ञा पुं० [सं० कञ्चुकालु] सर्प । नाँप (को०) ।

कचुकित—वि० [सं० कञ्चुकित] १. जो कचुकयुक्त हो । २. जो ऊँच वारण किए हो । ३. कई या अनेक पत्तोंवाला (मोती) (को०) ।

कचुकी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुकी] १. अँगिया । चोली । उ०—कवहि गुपाल कचुकी फारी कव भए ऐसे जोग ।—सूर०, १०।७७८ । २. कंचुल । उ०—मुंदर पानी कंचुकी नीकसि मागी साँप ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७१० ।

कचुकी^२—संज्ञा पुं० [सं० कञ्चुकिन्] १. रनिवास के दास दासियों का ग्रन्थ । अंत पुररत्नक ।

विशेष—कचुकी प्रायः बड़े बड़े और अनुमवी ब्राह्मण द्वारा करते थे जिनपर राजा का पूरा विश्वास रहता था ।

२. द्वारपाल । नकीव । ३. साँप । ४. छिनकेवाला अन्न, जैसे—धान, जो चना इत्यादि । ५. व्यभिचारी । लपट (को०) ।

कचुरि^७—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुली] कंचुल । उ०—नैना हरि अंग रूप लुवधे रे माई । लोक लाज कुल की मर्यादा विसराई । जैसे चंदा चकोर, मृगी नाद जैसे । कचुरि ज्यो त्यागि फनिक फिरत नहीं तैमे ।—सूर (शब्द०) ।

कचुलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुलिका] अँगिया । चोली (को०) ।

कचुली—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुली] कंचुल । उ०—(क) विपै कर्म की कचुली पहिरि दुआ नर नान ।—कवीर ग्रं०, पृ० ४१ । (ख) माँग ते मुकुतावलि टरि, अलक सग अलकि रही उरगिनि सत फन मानो कचुलि तजि दोनी ।—सूर० १०।१६६४ ।

कचू^७—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कचुकी'—१ । उ०—हेरे सिय एम उमग हियो, कचू कज श्रीपतनू कहियो ।—रघु रू०, पृ० ११३ ।

कचूवा—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुक] दे० 'कंचुवा'—२ । उ०—(क) सिर साडी गलि कचुवउ हुवउ निचोवण जोग ।—ढोला० दू० ८३ । (ख) रतन जडित को कचुली औ कसी कचुवउ परड हो सुमीड ।—वी० रासो, पृ० ६६ ।

कछा—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चिका = बांस की पतली टहनो या हिं० कनखा, नि० तु० 'कमचा'] पतली डाल । कनखा । कल्ला ।

कज—संज्ञा पुं० [सं० कज्ज] १. ब्रह्मा । २. कमल ।

यौ०—कजज = ब्रह्मा । उ०—कजज की मति सी बडभागी ।

श्री हरि मंदिर सो अनुरागी ।—केशव (शब्द०) ।

३. चरण की एक रेखा जिसे कमल या पद्म कहते हैं । यह विष्णु के चरण में मानी गई है । ४. अमृत । ५. सिर के वाला केश ।

कज अवलि—संज्ञा स्त्री० [सं० कज्ज + अवलि] दे० 'कजावलि' ।

कजई^१—वि० [हिं० कंजा] कजे के रंग का । धुएँ के रंग का । खाकी ।

कजई^२—संज्ञा पुं० १. एक प्रकार का रंग । खाकी रंग । २. वह घोड़ा जिसकी आँख कजई रंग की होती है ।

कजक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पक्षी विशेष । २. मैना (को०) ।

कजड़—संज्ञा पुं० [देश० या हिं० कालजर] [खी० कजडिन, कजड़ी, कजरी] एक अनार्य जाति ।

विशेष—यह भारतवर्ष के अनेक स्थानों में विशेषकर बुंदेलखंड में पाई जाती है । इस जाति के लोग रस्सी बटते, सिरकी बनाते और भीख माँगते हैं ।

कजन—संज्ञा पुं० [सं० कज्जन] १. कामदेव । १. पक्षीविशेष । ३. मैना (को०) ।

कजनाभ—संज्ञा पुं० [सं० कज्जनाभ] दे० 'पद्मनाभ' (को०) ।

कजर^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. पेट । उदर । २. हाथी । ३. सूर्य । ४. ब्रह्मा । ५. मयूर । मोर । ६. संन्यासी (को०) ।

कजर^२—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'कजड़' ।

कजरवेडिब—वि० [अ० कजवेडिब] १. परंपरावादी । २. अनुदास । ३. ब्रिटेन का एक राजनीतिक दल और उसका सदस्य ।

कजरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. कजड़ जाति की स्त्री । २. वेश्या ।

विशेष—इसके फल शीतलचीनी से बड़े और कड़े होते हैं। ये दवा के काम में आते हैं और तेल के मसालों में पड़ते हैं।

कंकली—सज्ञा स्त्री० [सं० कङ्कली] दे० 'कंकली' [को०]।

कल—सज्ञा पुं० [सं० कल] १ आनंद। २ पाप का या फल का भोग [को०]।

कग^१—सज्ञा पुं० [सं० कङ्कट] कवच। जिरह। बन्तर।—डि०।
कग^२—सज्ञा स्त्री० [सं० कङ्क] दे० 'ककु'।

कगण—सज्ञा पुं० [सं० कङ्कण] १ रोहे का एक चक्र जिसे अकाली सिख सिर में बाँधते हैं। २ दे० 'ककण'।

कगन—सज्ञा पुं० [सं० कङ्कण] ककण।

मुहा०—कगन बोहना = (१) दो आदमियों का एक दूसरे के पजे को गठना। (२) पजा मिलाना। पजा फंसाना। हाथ कगन को आरसी ब्या = प्रत्यक्ष बात के लिये किसी दूसरे प्रमाण को ब्या आवश्यकता है।

कगल^१—सज्ञा पुं० [हिं०] वग। कवच। उ०—(क) कट कगल अग ओ जीन बाजी।—ह० रासो, पृ० १३२। (ख) बड़ फुट्टत पखर कगलय।—ह० रासो, पृ० १०१।

कगल^२—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कग' उ०—लै कगल धावें तेग बवावें पैत्र बुरावें वीर छल।—प० रासो, पृ० १०६।

कगारु—सज्ञा पुं० [अ० कंगरु] एक प्रकार का जानवर जो आस्ट्रेलिया में पाया जाता है।

विशेष—इसकी मादा के पेट में एक बहिर्मुखी थैली होती है जिसमें अपने बच्चे को रखकर वह चलती है।

कगाल—वि० [सं० कङ्काल] [स्त्री० कगालिन (कव०)] १ भूखड़। अकाल का मारा। उ०—तुलसी निहारि कपि भालु किलकत ललकत लखि ज्यो कगाल पातरी सुनाज की।—तुलसी० (च०)। २ निर्धन। दरिद्र। गरीब। रंक। उ०—डाक्टरों प्रयत्न से वह फिर सचेत हुई और कगाल से धनी हुई।—सरस्वती (शब्द०)।

यी०—कगाल गुडा = वह पुरुष जो कगाल होने पर भी व्यसनी हो। कगाल बाँका = दे० 'कगाल गुडा'।

कगाली—सज्ञा स्त्री० [हिं० कगाल] निर्धनता। दरिद्रता। गरीबी।

मुहा०—कगाली में आटा गोला होना = अभाव की दशा में और अधिक सकट पडना। निर्धनता में घोर अभाव का अनुभव करना।

कगु—सज्ञा पुं० [सं० कङ्कु] कंगनी घान्य (भावप्रकाश में इसके चार प्रकार कहे गए हैं)।

कगुनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्कुनी] दे० 'कगु' [को०]।

कगुर^१—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कंगूरा'। उ०—बड़ कगुर कगुर वीर अरे।—ह० रासो, पृ० ७७।

कगुरा^२—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कंगूरा'। उ०—इस मसजिद में तीन कगुरा।—कबीर श०, पृ० ३२।

कगुरिया^३—संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्कुली + हिं० ई (प्रत्य०)] = कङ्कुली + हिं० इया (प्रत्य०)] कनगुरिया।

कगुल—सज्ञा पुं० [सं० कङ्कुल] हाथ [को०]।

कगुण्ठ—सज्ञा पुं० [म० कङ्कुण्ठ] दे० 'कङ्कुण्ठ' [को०]।

कगूरा—सज्ञा पुं० [फा० कगूरह] बुज या गुद।

यी०—कगूरेदार = जिनमें कगूरा हो।

कघा—सज्ञा पुं० [सं० कङ्कुन प्रा० ककघ] [स्त्री० अल्पा० कघी] १ लकड़ी, सींग आदि की बनी हुई चीज जिसमें लंबे पतल दाँत होते हैं। इससे मिर क बान भाड़े या साफ किए जाते हैं। १ बड़े आकार की कघी। २. जुलाहों का एक औजार जिससे वे बरघे में भरनी के तांगों को कसते हैं। यय। बोना। बँसर। दे० 'कघी'—२।

कघी—सज्ञा स्त्री० [म० कङ्कुती, प्रा० ककई] १ छोटा कपा।

मुहा०—कघी चोटी = बनाव सिंगार। कघी चोटी करना = बान सवारना। बनाव सिंगार करना।

२ जुलाहों का एक औजार।

विशेष—यह बास की तीलियों का बनता है। पतली, गज डंड गज लंबी दो तीलियाँ चार में आठ सगुन के फासले पर आसने सामने रखी जाती हैं। इनपर उठत सी छोटी छोटी तथा बहुत पतली और चिकनी तीलियाँ होती हैं जो इनकी सटाकर बाँधी जाती हैं कि उनके बीच एक तागा निकल सके। कपड़े में पहले ताने का एक एक तार इन आठ पतली तीलियों के बीच से निकाला जाता है। बाना बुनते समय इसे जोलाहे राद्य के पहले रखते हैं। ताने में प्रत्येक बाना बुनने पर बाने को गेसने के लिए कपड़ी को अपनी आर खींचते हैं जिससे बाने सीधे और बराबर बुने जाते हैं। बर। बोला। बँसर।

३ एक पीछे का नाम।

विशेष—यह पाँच छह फुट ऊँचा होता है इसकी पत्तियाँ पान के आकार की पर अधिक नुकीली होती हैं और उनके कोर ददानेदार होते हैं पत्तियों का रंग भूरापन लिए हलका हरा होता है। फूल पीले पीले होते हैं। फूलों के भड़ जाने पर मुकुट के आकार के डेढ़ लगते हैं जिनमें खड़ी खड़ी कमरखी या कंगनी होती है। पत्तों और फलों पर छोटे छोटे घने तन्म रोएँ होते हैं जो छूने में मखमल की तरह मुलायम होते हैं। फल पक जाने पर एक एक कमरखी के बीच कई कई काले दाने निकलते हैं। इसकी छाल की रेशे मजबूत होते हैं। इसकी जड़, पत्तियाँ और बीज सज दवा के काम में आते हैं। बँचक में इसको वृष्य और ठंडा माना है। संस्कृत में इसे अतिबला कहते हैं।

पर्या०—अतिबला। बलिका। ककती। विककता। घटा। शीता। शीतपुष्पा। वृष्यगधा।

कच^१^२—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'कचन'। सत सो पूर है सूर माँड रहै कच कुच आदि नहि और आवैं।—गुलाल०, पृ० १०६।

कच^३^४—संज्ञा पुं० [सं० काच] दे० 'काँच'।

कचकी^५—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुकी] दे० 'कचुकी'। उ०—पीत कचकी सधि, पडि कस अग उपट्टिय। पृ० रा०, २४। १६२।

कंचन—संज्ञा पुं० [सं० काञ्चन] १ सोना। सुवर्ण।

ककतिका—सज्ञा स्त्री० [स० कङ्कतिका] १ कवी । २ केशप्रसाधिनी [को०] ।

ककती—सज्ञा स्त्री० [स० कङ्कती] दे० 'कंकतिका' ।

ककत्रोट—सज्ञा पु० [स० कङ्कत्रोट] [स्त्री० ककत्रोटी] एक प्रकार की मछली जिमका मुँह बगने के मुँह की तरह होता है । कौआ मछनी ।

ककन(पु)—सज्ञा पु० [सं० कङ्कण] १. 'ककण' १ । उ०—दीन्ही हार गरी, कर 'ककन' मॉतिनि यार मरे—सूर० १०।१७ ।
दे० 'ककण' । उ०—कर कं पै कंकन छूटै—सूर० २।२५ ।

ककपत्र—सज्ञा पु० [स० कङ्कपत्र] १ कंक का पर । २ बाण ।

ककपत्री—सज्ञा पु० [स० कङ्कपत्रिन्] बाण । तीर ।

ककपवा—सज्ञा पु० [सं० कङ्कपर्वण] एक प्रकार का नाप ।

ककपृष्ठी—सज्ञा स्त्री० [सं० कङ्कपृष्ठी] एक प्रकार की मछली ।

ककमुख—सज्ञा पु० [सं० कङ्कमुख] एक प्रकार की सेंडसी जिससे

त्रिकिसक किस्ती के शरीर में चुने हुए काँटे को निकालते हैं ।

ककर^१(पु)—सज्ञा पु० [स० ककर] दे० 'ककड़' ।

ककर^२(पु)—सज्ञा पु० [सं० कङ्कर] मेवक । दास । उ०—विनु गुर जम ककर वशि परै । प्राण०, पृ० ३५ ।

ककरोट—सज्ञा स्त्री० [प्र० काकरोटा] १ एक मसाला जो गन्ध पीटने के समय छत पर डाला जाता है । चूना या सीमेंट, कंकड़, बालू इत्यादि में मिलकर बना हुआ गन्ध पीटने का मसाला । खरा, वजरी ।

विशेष—चूने या सीमेंट में चौगुने या पचगुने ककड़, ईंट के टुकड़े, बालू आदि मिलाकर यह बनाया जाता है ।

२ छोटी छोटी ककड़ों जो सड़को में बिछाई और कूटी जाती है ।

ककरोल—सज्ञा पु० [स० कङ्करोल] एक वृक्ष का नाम । निकोचक[को०]

ककल—सज्ञा पु० [स० ककल] चन्च या चाव का पौधा ।

विशेष—यह मलका द्वीप में बहुत होता है । भारतवर्ष के मलाबार प्रदेश में भी होता है । इसका फल गजपीपर है । ककड़ी भी दवा के काम में आती है । जड़ को चकठ कहते हैं । बगल में जड़ और ककड़ी रंगने के काम में आती है । इसका अकेला रंग कपड़े पर पीलापन लिए हुए वादामी होता है और वस्त्र के साथ मिश्रित होने से लाल वादामी रंग आता है ।

कका—सज्ञा स्त्री० [स० कङ्का] राजा उग्रसेन की लड़की जो कक की बहिन थी । यह वसुदेव के भाई की ब्याही थी ।

ककारी—सज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष ।

ककाल—सज्ञा पु० [स० कङ्काल] १ टठरी । अस्थिपत्र । शरीर की हड्डियों का ढाँचा ।

यौ०—ककालास्त्र ।

ककालकाय—वि० [स० कङ्कालकाय] १ हड्डियों के ढाँचे से शरीर-वाला । २. अत्यंत दुर्बल । उ०—त्रे दीन क्षीण कंकालकाय ।
—तुलसी०, पृ० १७ ।

ककालमाली^१—वि० [सं० कङ्कालमालिन्] हड्डी की माला पहनने-वाला । जो हड्डी की माला पहने हो ।

कंकालमाली^२—सज्ञा पु० [स्त्री० कङ्कालमालिनी] १ शिव । महादेव ।
२ भैरव ।

ककालय—सज्ञा पु० [सं० कङ्कालय] देह । शरीर [को०] ।

कंकालशर—सज्ञा पु० [सं०] वह बाण जिसके सिरे पर हड्डी लगी हो ।

ककालशेष—वि० [सं० कङ्कालशेष] १ जो हड्डियों का ढाँचा मात्र रह गया हो । २ अतिकृण । उ०—ककालशेष नर मृत्युप्राप्त ।
—ग्रन्थामिका, पृ० २४ ।

कंकालास्त्र—सज्ञा पु० [सं० कङ्कालास्त्र] एक अस्त्र का नाम जो हड्डी से बनता था ।

ककालिनो^१—सज्ञा स्त्री० [सं० कङ्कालिनी] दुर्गा का एक रूप ।

ककालिनी^२—वि० उग्र स्वभाव की । कर्कशा । कगडानू । लडाकी ।
दुष्टा । उ०—ककालिनी कूबरी, कनकिनी कुरूप तैसी चेटकनि
चेरी ताके चित्त को चहा कियो ।—पद्माकर (शब्द०) ।

ककाली^१—सज्ञा पु० [सं० कङ्काल + हि० ई (प्रत्य०)] [स्त्री० ककालिनी]
एक पिछड़ी जाति जो गाँव गाँव किंगरी बजाकर भीख माँगती
फिरती है । उ०—यश कारण हरिचंद नीच घर नारि
सम्प्यो । यश कारण जगदेव सीस ककालिहि अर्प्यो ।—
वैताल (शब्द०) ।

ककाली^२—सज्ञा स्त्री० [सं० कङ्कालिनी] दुर्गा का एक रूप । उ०—
कर गहि कपाल पीवं बधिर ककाली कौतुक करै ।—
हम्मीर०, पृ० ५८ ।

ककाली^३—वि० कर्कशा । लडाकी ।

ककु—सज्ञा पु० [सं० कङ्क] ककु नामक अन्न । कंगनी ।

ककुष्ठ—सज्ञा पु० [सं० कङ्कष्ठ] एक प्रकार की पहाड़ी मिट्टी ।

विशेष—भावप्रकाश के अनुसार यह हिमालय के शिखर पर उत्पन्न होती है । कहते हैं, यह सफेद और पीली दो प्रकार की होती है । सफेद को नालिक और पीली को रेणुक कहते हैं । रेणुक ही अधिक गुणवाली समझी जाती है । वैद्यक के अनुसार यह गुरु, स्निग्ध, विरेचक, तिक्त, कटु, उष्ण, वर्णकारक और कृमि, शोथ, गुल्म तथा कफ की नाशक होती है ।

पर्या०—कालकुष्ठ । बिरण । रसदायक । रेचक । पुलक । शोचक ।
कालपालक ।

ककूष—सज्ञा पु० [सं० कङ्कूष] भीतरी शरीर । ग्राम्यतर देह [को०] ।

ककेरी^१—सज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का पान जो कड़वा होता है ।

ककेरु—सज्ञा पु० [सं० कङ्केरु] कौआ ।

ककेल—सज्ञा पु० [सं० कङ्केल] बयुआ ।

ककेलि—सज्ञा पु० [सं० कङ्केलि] अशोक का पेड़ ।

ककेल्ल—सज्ञा पु० [सं० कङ्केल्ल] दे० 'ककेलि' [को०] ।

ककेलि—सज्ञा पु० [सं० कङ्केलि] दे० 'ककेलि' [को०] ।

ककोल—सज्ञा पु० [सं० कङ्कोल] १. शीतल चीनी के वृक्ष का एक भेद ।

उ०—चदन वदन योग तुम, धन्य द्रुमन के राय, देत कुकुज
ककोल लो, देवन सीम चढाय ।—दीनदयाल (शब्द०) । २

ककोल का फल । इसे ककोल मिच भी कहते हैं । उ०—
शशिधुत डोल जितो ककोल ।—रत्नपरीक्षा (शब्द०) ।

क—हिंदी वर्णमाला का पहला व्यंजन वर्ण। इसका उच्चारण कठ मे होता है। इसे स्पष्ट वर्ण भी कहते हैं। च, ग, घ और ङ इसके सवर्ण हैं।

क—सज्ञा पुं० [सं० कम्] १ जन। २ विप। ३ अग्नि। ४. कनध। ५ रत्न। ६ मेघ। ७ पुष्प। उ०—मेघ पुष्प विग सवर्णमुप क कण्ठ रग तोय।—नद ग्र०, पृ० ५०। ८ मस्तक। उ०—सिन्धु नदी के पत्र पत्र दो बने चक्र प्रनूप। देव क को छत्र छावत सकल सोमा रूप।—सूर (शब्द०)। ९ सुय। १० काम। ११ सोना। उ०—क० सुय, क जल, क मनल, क गिर क पुनि काम। क कंचन ते प्रीति नमि, सदा रह्यो हरिनाम।—नददाम (शब्द०)। १२ केश (को०)। १३ अग (को०)। १४ कृपणता। कजूसी (को०)। १५ दुग्ध। दूध (को०)।

कक—सज्ञा पुं० [सं० ककु] [श्री० कका, ककी (हिं०)] १ एक मामा-हारी पक्षी जिसके पंख बाणों में लगाए जाते थे। सफेद चील। काक। उ०—छग, कक, काक, शमाल। कट कटहि कठिन कराल।—तुलसी (शब्द०)। २ एक प्रकार का आम जो बहुत बड़ा होता है। ३ यम। ४ क्षत्रिय। ५ मुद्दिन्डिर का उन समय का कल्पित नाम जब वे ब्राह्मण बनकर गुप्त भाव से तिराट के यहाँ रहे थे। ६ एक महारथी गावरा जो वसुदेव का भाई था। ७ कम के एक भाई का नाम। ८ एक देश का नाम।—वृ० सं०, पृ० ८३। ९ एक प्रकार के केतु जो वरुण देवता के पुत्र माने जाते हैं।

विशेष—ये सध्या में ३२ हं और इनकी आकृति वाँस की जट के गुच्छे की सी है। ये अशुभ माने जाते हैं।

१० वगला। ११ शरीर। उ०—विपिकन धीर अत्यंत प्रक। जिन पिप्पि कक अनसक सक।—पृ० रा०, ६।७७। १२ युद्ध। उ०—करि कक सक आसुरनि डर।—पृ० रा०, २।२८५। १३ तीक्ष्ण लोहा। १४ वृक्षविशेष (को०)। १५ एक प्रकार का आम (को०)। १६ मिथ्या ब्राह्मण। गब्राह्मण होते हुए अपने को ब्राह्मण कहनेवाला व्यक्ति (को०)। १७ द्वीप। १८ त्रिभागों में से एक (को०)।

यो०—ककत्रोट। ककपत्र। ककपर्व। ककपूठी। ककमुल।

ककट—सज्ञा पुं० [सं० ककुट] कवच। सनाह। वर्म। उ०—इह सु धम्म राजेंद्र। दुष्ट ककट सिर कहै।—पृ० रा०, १।६१५। २ अकुश (को०)। ३ सीमा। हृद (को०)।

ककटक—सज्ञा पुं० [सं० ककुटक] १ कवच। वर्म। मनाह। २ अकुश (को०)।

ककटकर्मि त—सज्ञा पुं० [सं० ककुटकर्मन्ति] तारों से कवच (बद्धर)। पनाने का कारखाना (को०)।

ककड—सज्ञा पुं० [सं० ककर, प्रा० कक्कर] [श्री० अलपा० ककडी] [वि० ककडीला] १ एक खनिज पदार्थ। ककड जो जलाकर चूना बनाया जाता है।

विशेष—यह उत्तरी भारत में पूर्वी के गोदावरी में निकलता है।

इसमें अधिकतर लाल और चिकनी मिट्टी का प्रयुक्त होता है। यह किन्हीं किन्हीं स्थानों पर होता है, पर इनमें प्रायः नदियाँ बहती हैं। इसकी सतह चूने की और नुकीली होती है। यह चार प्रकार का होता है—(क) तेलियाँ प्रवाल काले रंग का, (ख) दुधिया, यर्वात् सफेद रंग का। (ग) विष्ट्रमा, यर्वात् बालू जैसी और (घ) छर्मा, प्रवाल छोटी छोटी ककडी। यह प्रायः मृत्त पर पाया जाता है। इन की गंध और रीतिर की नीच म तीरिया जाता है।

२ पत्थर या छाटा टुकड़ा। ३ तिलि चम्बु का यह कठिन टुकड़ा जो यातायात से र मिश्रित। घंटा। ४ मृदा या मृदा टुकड़ा तमाहूँ जिसे जाने की चट्टानी मिल पर रखकर पीते हैं। ५ रत्न। उ०—एक ककडी नमस्तेन प्राप्ता। ६ जवाहिगत का छोटा प्रायः और पत्थर टुकड़ा। मुहो०—ककड पत्थर = रत्नमणि। ककड करडट।

ककडी—सज्ञा श्री० [हिं० ककड का प्रयोग रूप] १ छोटा ककड। घंटी। २ मृत्त। छोटा टुकड़ा।

विशेष—२० 'ककड'।

ककण—सज्ञा पुं० [सं० ककुण] १ कनास पहनन का याभूषण काना। कडा। उ०—कडा। उ०—इतर ककुण दपण देव।—तुलसी ग्र०, पृ० ५८६। २ एक धागा जिसमें सखी आदि की पुटनी पीले रंग में बाँधकर लोह के एक छत्र के साथ जिसके के समान से पहने इचडा या दुर्हित के साथ में रत्नानों बाँधते हैं।

विशेष—जिवाह में देनासार के अनुसार बोर, सरसों, अजयन आदि की नौ पीटलियाँ पीले कपड में लाल रंग से बाँधते हैं। एक तो लोहे के छत्र के साथ इचडा या दुर्हित के हाथ में बाँधी जाती है और दोप प्राठ मत्तन, चाको, प्रोगली, पीड़ा, हरित, लोड़ा कलम प्रादि में बाँधा जाती है।

३ एक प्रकार का पाउव राग जो गानार में प्रारम्भ होता है और जिसमें पचम स्वर वर्जित है। इसमें प्रायः मध्यम स्वर का अधिक प्रयोग होता है। इनके गानों का समय दोपहर के उपरांत सध्या तक होता है।

क्रि० प्र०—बाँधना।—लोत्तना।—पहनना।—पहनाना।

४ ताल के आठ भेदों में से एक। ५ याभूषण। मडन (को०)।

६ मुकुट। ताज (को०)।

ककणास्त्र—सज्ञा पुं० [सं० ककुणास्त्र] वाल्मीकि के अनुसार एक प्रकार का अस्त्र (को०)।

ककणी^१—सज्ञा श्री० [सं० ककुणी] १ घँघरुदार तरुधनी। क्षुद्र पटिका। २ याभूषण जिसमें घँघरु हो (को०)।

ककणी^२—वि० [सं० ककुणीन] ककड नामक याभूषणवाला (को०)।

ककणीका—सज्ञा श्री० [सं० ककुणीका] २० 'ककणी' (को०)।

ककत—सज्ञा पुं० [सं० ककुत] १ गान सँभारने का कथा। २ एक प्रकार का विपाक्त जीव। ३ नागवला। अतिवला (को०)।

श्रीष्टक^१—वि० [सं०] ऊँट चवथी । ऊँट विषयक [को०] ।

श्रीष्टक^२—संज्ञा पुं० ऊँटों का झुंड । उ०—बैलो के झुंड के लिये श्रीष्टक, ऊँटों के झुंड के लिये श्रीष्टक प्रचलित थे ।—संपूर्णो ग्रं०, पृ० २४८ ।

श्रीष्टरथ—संज्ञा पुं० [सं०] ऊँटगाडी [को०] ।

श्रीष्टिक^१—वि० [न०] ऊँट से प्राप्त या मिला हुआ, जैसे, दूध [को०] ।

श्रीष्टिक^२—संज्ञा पुं० तेनी [को०] ।

श्रीष्ठ—वि० [सं०] ओठ के आकार का । ओष्ठाकृति [को०] ।

श्रीष्ठ्य—वि० [सं०] ओठ से संबंधित ।

श्रीष्ठ्यवर्ण—संज्ञा पुं० [न०] दे० 'ओष्ठचवर्ण' [को०] ।

श्रीष्ठ्यस्थान—वि० [सं०] (वर्ण या शब्द) जो ओठ से उच्चरित हो [को०] ।

श्रीष्ठ्यस्वर—संज्ञा पुं० [सं०] ओष्ठ स्थानीय स्वर । वे स्वर जिनका उच्चारण ओठ से हो । उ, ऊ, स्वर [को०] ।

श्रीष्ण—संज्ञा पुं० [सं०] उष्णता । उष्मा । गर्मी [को०] ।

श्रीष्ण्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'श्रीष्ण' [को०] ।

श्रीष्ण्य—संज्ञा पुं० [सं०] गर्मी की स्थिति । ऊष्मा [को०] ।

श्रीस^१—संज्ञा स्त्री० [न०] अवस्थायाँ दे० 'श्रीस' । उ०—ग्रहन उदै लो तहनई गंग अंग भू की आइ । छिन छिन तिय तन श्रीस सी मितत नरकई जाइ ।—सं० सप्तक, पृ० ३७० ।

श्रीस^२—संज्ञा स्त्री० [हि० उमस] दे० 'उमस' ।

श्रीसत—संज्ञा पुं० [अ०] १ वह सद्यो जो कई स्थानों को भिन्न भिन्न सद्योओं से जोड़ने और उस जोड़ को, जितने स्थान हो उतने से नाग देने पर निकलती हो । बराबर का परता । समष्टि का सम विभाग । सामान्य । जैसे,—एक मनुष्य ने एक दिन १०), दूसरे दिन २०), तीसरे दिन १५) और चौथे दिन ३५), कमाए, तो उसकी रोज की श्रीसत आमदनी २०) हुई । २ माध्यमिक । दरमियानी । साधारण । मामूली । जैसे,—वह श्रीसत दरजे का आदमी है ।

श्रीसतन्—क्रि० वि० [हि० श्रीसत] सामान्य रूप से । साधारणतः ।

श्रीसना^१—क्रि० अ० [हि० उमस+ना (प्रत्य०)] १. गरमी पडना । ऊमस होना । २. देर तक रखी हुई खाने की चीजों में गंध उत्पन्न होना । वासी होकर सडना ।

क्रि० प्र० जाना ।

२. गरमी से व्याकुल होना ।

क्रि० प्र०—जाना ।

४. फन आदि का भूसे आदि में दबाकर पकाना ।

श्रीसर^१—संज्ञा पुं० १. दे० 'श्रवसर' । उ०—अटक हीए असपनी, पाप छित श्रीसर पायो । रद करवा रज्जियाँ, दुरद जेही मद आयो ।—रा० ह०, पृ० १६ । २. बारी । पारी । उ०—पाँच पति एक नारि श्रीसरे सों मानी है ।—गग०, पृ० १३१ ।

श्रीसाण^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'श्रीमान' । उ०—दाहू जिन प्राण पिंड हमके दिया, अतर सेवें ताहि । जै आवैं श्रीसाण सिरि, सोई नाव सवाहि ।—दाहू०, पृ० ३६ ।

श्रीसान^१—संज्ञा पुं० [सं० श्रवसान] १. अंत । २. परिणाम । उ०—जेहि तन गोकुल नाथ भज्यो । ऊयो हरि विछुरत ते विरहिनि सो तनु तवहि तज्यो । अरु श्रीमान घटत कहि कैसे मन उपजो परतीति—सूर (शब्द०) ।

श्रीसान^२—संज्ञा पुं० सुधबुध । होशहवास । चेत । धैर्य । प्रत्युत्पन्न-मति । उ०—सुरसरि सुवन रन भूमि आए । बाण वर्षा लागे करन अति क्रोध ह्वै पार्थ श्रीसान तव भुलाए ।—सूर (शब्द०) ।

मुहा०—श्रीसान उड़ना, श्रीसान खता होना, श्रीसान जाता रहना, श्रीसान भूलना=सुधबुध भूलना । बुद्धि का चकराना । धैर्य न रहना । मतिभ्रम होना । उ०—पूँछ राखी चापि रिसनि-काली कापि, देखि सब सप श्रीसान भूने । पूँछ लीनी भटकि, धरनि सो गाह पटक फूँ कट्यो लटक करि क्रोध फूने ।—सूर (शब्द०) ।

श्रीमाना—क्रि० न० [हि० श्रीसना] फन या और किसी वस्तु को भूसे आदि में दबाकर पकाना ।

श्रीसाफ—संज्ञा पुं० [अ० श्रीसाफ] खासियत । गुण । विशेषता । उ०—तीन लोक जाके श्रीसाफ । जनका गुनह करै सब माफ ।—मूलक०, पृ० ३ ।

श्रीसि^१—क्रि० वि० [सं० अवश्य] दे० 'अवश्य' ।

श्रीमी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'श्रीली' ।

श्रीसेर^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'श्रवसेर' । उ०—वन मापक मुरली की टेर । आवति ब्रजवासिनी श्रीसेर ।—घनानंद, पृ० २२८ ।

श्रीहठा^१—वि० [हि०] दे० 'श्रीघट' । उ०—श्रीहठ पटणि ताके दस द्वार ।—प्राण०, पृ० ११ ।

श्रीहठी^१—वि० [सं० अप+हठिन्] बुरे हठवाला । हठी । जिद्दी । उ०—श्रीहठी हठीले हने बरजहान रिपु कौतुक कों विविध विमान छिति छवें रहे ।—गग०, पृ० ११६ ।

श्रीहत^१—संज्ञा स्त्री० [मं० अपघात या अवहन=कुचलना, कूटना] अपमृत्यु । कुगति । दुर्गति । उ०—श्रीहत होय मरी नहि भूरी । यह सठ मरी जो नेरहि दूरी ।—जायसी (शब्द०) ।

श्रीहाती^१—वि० स्त्री० [हि०] दे० 'अहिवाती' ।

राजा । (३) मुगजवश का अंतिम प्रतापी नरेश । यह शाहजहाँ का तृतीय पुत्र था । इसका शासनकाल ईस्वी १६५६ से १७०७ तक था । य वों में औरंग, औरंग और नौरंग आदि इसके नाम प्राप्त होते हैं । औरंगनशोन = सिंहासनाखंड ।

श्रीरगोटग—संज्ञा पुं० [मला०] दे० 'श्रीरगोटग' ।

श्रीर^१—अव्य० [सं० अपर, प्रा० अवर] एक संयोजक शब्द । दो शब्दों या वाक्यों को जोड़नेवाला शब्द । जैसे—(क) घोड़े और गधे चर रहे हैं । (ख) हमने उनको पुस्तक दे दी और घर का रास्ता दिखा दिया ।

श्रीर^२—वि० १ दूसरा । अन्य । भिन्न । जैसे,—यह पुस्तक किसी और मनुष्य को मत देना ।

मुहा०—श्रीर श्रीर = अन्यान्य । विभिन्न । दूसरे प्रकार के । उ०—अनेक नावों के श्रीर श्रीर आलवन खड़े होते रहते हैं ।—रस०, पृ० २६ । श्रीर का श्रीर = (१) कुछ का कुछ । विपरीत । अडवड । जैसे—वह सदा श्रीर का श्रीर समझता है । श्रीर का श्रीर होना = मारी उलट फेर होना । विशेष परिवर्तन होना । उ०—द्विज पनिया दे कहियो श्यामहि । अब ही और की और होत कछु लाने वारा । तते में पानी लिखी तुम प्राण अधारा ।—मूर (शब्द०) । श्रीर क्या = (१) हाँ । ऐसा ही है । जैसे,—(क) प्रश्न—क्या तुम अभी आग्रोगे ? उत्तर—योर क्या ? (ख) क्या इसका यही अर्थ है ? उत्तर—योर क्या ?

विशेष—ऐसे प्रश्नों के उत्तर में इसका प्रयोग नहीं होना जिनके अंत में निषेधार्थक शब्द 'नहीं' या 'न' इत्यादि भी लगे हों, जैसे,—तुम वहाँ जाओगे या वही ?

(२) आश्चर्यसूचक शब्द । (३) उत्साहपूर्ण वाक्य । श्रीर तो श्रीर = (१) श्रीर बातों को जाने दो । श्रीर सब तो छोड़ दो । जैसे,—श्रीर तो श्रीर पहले आप इसी को करके देखिए ।

(२) दे० 'श्रीर तो क्या' । (३) दूसरों का ऐसा करना तो उतने आश्चर्य की बात नहीं । दूसरों से या दूसरों के विषय में ऐसी सम्भावना हो भी । जैसे,—(क) श्रीर तो श्रीर, स्वयं समापति जी नहीं ग्राए । (ख) श्रीर तो श्रीर यह छोका भी हमारे सामने बातें करता है । श्रीर ही कुछ होना = सबसे निराला होना । विलक्षण होना । उ०—वह चितवन श्रीर कछु जिहि बस होत मुजान ।—विहारी (शब्द०) । श्रीर तो क्या = 'श्रीर बातें तो दूर रहो । श्रीर बातों का तो जिक्र ही क्या । उचित तो बहुत कुछ था । जैसे,—श्रीर तो क्या, उन्होंने पान तवाकू के लिये भी न पूछा । श्रीर लो, श्रीर सुनो = यह वाक्य किसी तीसरे से उस समय कहा जाना है जब कोई व्यक्ति एक के उपरांत दूसरी और अधिक अनहोनी बात कहता है या कहनेवाले पर दोषारोपण करता है । श्रीर सो श्रीर ७ = दे० 'श्रीर का श्रीर' । उ०—ग्रधर मधुर मधु सहित मुख हुतो सबन सिर मौर । सो अब बगरे फलन ज्यों बयो श्रीर सो श्रीर ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ६३ ।

२. अधिक । ज्यादा । विशेष । जैसे,—श्रीर श्रीर कागज लामो, उतने से काम न चलेगा ।

श्रीरग^१—वि० [म०] उरग या साप का । सर्प सर्वधी [को०] ।

श्रीरग^२—संज्ञा पुं० आश्लेषा नाम का नक्षत्र [को०] ।

श्रीरत—संज्ञा स्त्री [अ०] १. स्त्री । महिला । २. जोड़ । पत्नी ।

श्रीरना ७—क्रि० अ० [हि० श्रीर = अधिक + ना (प्रत्य०)] १. आगे की ओर बढ़ना । अपसर होना । २. दिखाई पड़ना । लौकना । सूझना ।

श्रीरभ्र^१—वि० [सं०] मेप या भेड़ मर्दगी । भेड़ का [को०] ।

श्रीरभ्र^२—संज्ञा पुं० १. भेड़ का मास । २. ऊन का वस्त्र । कवच [को०] ।

श्रीरभ्रक—संज्ञा पुं० [सं०] मेप समूह । भेड़ों का झुंड [को०] ।

श्रीरभ्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेपपाल । गडेरिया । २. मेप मर्दगी कोई भी कार्य या वस्तु [को०] ।

श्रीरस^१—संज्ञा पुं० [सं०] स्मृति के अनुसार १२ प्रकार के पुत्रों में सबसे श्रेष्ठ पुत्र । अपनी धर्मपत्नी से उत्पन्न पुत्र ।

श्रीरस^२—वि० जो अपनी विवाहिता स्त्री से उत्पन्न हो । जायज । वैध ।

श्रीरसना ७—क्रि० अ० [सं० अव या अप = बुरा + रस + हि० ना (प्रत्य०)] विरस होना । अनखना । रुट होना । उदासीन होना ।

श्रीरसी—संज्ञा स्त्री [सं०] विवाहिता स्त्री से उत्पन्न कन्या ।

श्रीरस्य—सं० पुं० [सं०] श्रीरस पुत्र ।

श्रीराना ७—क्रि० सं० [सं० आ + वरण, हि० वरना या हि० 'श्रीराना'] अजित करना । सीख कर समाप्त करना । जानना । वरण करना । सीखना । उ०—नहर महँ जिन गुन श्रीरावा । सगुरे जाय सोइ सुख पावा ।—चिदा०, पृ० २२३ ।

श्रीरासना ७—क्रि० अ० [हि० श्रीरसना] दे० 'श्रीरसना' । उ०—खजन नैन सुरंग रस माते । वसे कहूँ सोइ बात कही सखि रहे इहाँ केहि नाते । सोइ सखा देखत श्रीरासी विकल उदास कला ते ।—सूर (शब्द०) ।

श्रीरासी ७—वि० [सं० अप + राशि] १. बुरी या निकृष्ट राशि में पड़ा होनेवाला । ३. विचित्र । देहगा । विलक्षण । उ०—विसरो सूर विरह डुख अपनी अव चलो चाल श्रीरासी ।—सूर (राधा), २८७७ ।

श्रीरेव—संज्ञा पुं० [सं० अव = विरुद्ध + रेख > रेह > रेअ > रेव या फा० उरेव] १. वक्र गति । तिरछी चाल । २. कपड़े की तिरछी काट । ३. पेंच । उलझन । ४. पेंच की बात । चाल की बात । उ०—दीनी है मधुप सर्वाहि सिख नीकी । हमहूँ कछुक लखी है तव की श्रीरेव नंदलाल की ।—तुलसी (शब्द०) । ५. किंचित् दोष या त्रुटि । साधारण खराबी ।

मुहा०—श्रीरेव सुवारना = उलझन दूर करना ।

यो०—श्रीरेववार = टेढ़ी काटवाला ।

श्रीरेणिक—वि० [सं०] ऊर्ण या ऊन से सवधित । ऊन से वननेवाला । ऊनी [को०] ।

श्रीर्द्वंद्वेह—संज्ञा पुं० [सं०] अत्येष्टि कर्म [को०] ।

श्रीर्द्वंद्वेहिक, श्रीर्द्वंद्वेहिक—वि० [सं०] मरने के पीछे का । अत्येष्टि ।

यो०—श्रीर्द्वंद्वेहिक कर्म = प्रेतक्रिया । दसगात्र, सर्पिड दान आदिक कर्म ।

श्रीर्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. वडवानल । २. नोनी मिट्टी का नमक ।

३. पौराणिक भूगोल का दक्षिण भाग जहाँ सूर्य नरक है और दंत्य रहते हैं । ४. पंच प्रवर मुनियों में से एक । ५. भृगुवशीय ऋषि ।

श्रीपनिपद^१—वि० [न०] उपनिपद् सवधी । उपनिपद् मे बताया हुआ [को०] ।

श्रीपनिपद^२—उत्ता पु० १ पराह । २ उपनिपद् का अनुसरण करनेवाला व्यक्ति । उपनिपद् का अनुयायी [को०] ।

श्रीपनिपदिक—वि० [स०] १ उपनिपद् सवधी या उपनिपद् के समान । उ०—वैदिक साहित्य से श्रीपनिपदिक साहित्य की विशेषताएँ निम्न निदिष्ट हैं । —स० दरिया (मू०), पृ० ५६ ।
२ उपनिपद् के अध्यापन में गुजर बसर करनेवाला ।

श्रीपनिपदिक कर्म^३—सज्ञा पु० [स०] कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार वे कर्मों का समूह का नाश करनेवाले कहे गए हैं । शत्रुनाशक कार्य ।

श्रीपनी^४—सज्ञा स्त्री [हि० श्रीप] दे० 'श्रीपनी' ।

श्रीपन्यासिक^५—वि० [स०] १ उन्मत्त विषयक । उपन्यास सवधी ।

२ उपन्यास में वर्णन करने योग्य । ३ अद्भुत । विलक्षण ।
४ उपन्यास की बातों के समान ।

श्रीपन्यासिक^६—सज्ञा पु० [स०] उपन्यास लिखनेवाला । उपन्यास लेखक । जैसे, शरत चन्द्र बंगला के प्रसिद्ध श्रीपन्यासिक हैं ।

विशेष—इन अर्थ में इस शब्द का प्रयोग बहुत हाल में बंगालियों की देखादगी होने लगा है ।

श्रीपपत्तिक^७—वि० [स०] १ उपपत्ति सवधी । २. युक्ति या तर्क द्वारा निरूपित होनेवाला । तर्कसाध्य । युक्तिसंगत । ३ सैद्धांतिक ।

श्रीपपत्तिक शरीर—सज्ञा पु० [स०] देवलोक और नरक के जीवों का नैसर्गिक वा महज शरीर । लिंगशरीर ।

श्रीपप्य—सज्ञा पु० [स०] उपमा का भाव । समता । बराबरी । तुल्यता ।

श्रीपयिक^८—वि० [स०] १ न्याय के योग्य । २ ठीक । उपयुक्त ।
३ प्रवास द्वारा प्राप्त ।

श्रीपयिक^९—सज्ञा पु० १ साधन । ढग । तरीका । उपाय [को०] ।

श्रीपयोगिक—वि० [न०] उपयोग या प्रयोग में आनेवाला । उपयोग सवधी [को०] ।

श्रीपराजित—वि० [न०] राजप्रतिनिधि से सवधित [को०] ।

श्रीपरिष्टक—सज्ञा पु० [स०] वात्स्यायन कामसूत्र में वर्णित रति-क्रिया का एक प्रकार [को०] ।

श्रीपन—वि० [उ०] [वि० स्त्री० श्रीपला, श्रीपली] १ उपन या पत्थर सवधी । २ प्रस्तर निमित्त । पत्थर का बना हुआ ।
३ परस्पर से प्राप्त होनेवाला (रुत आदि) [को०] ।

श्रीपवन्त—सज्ञा पु० [स०] उपवास । फाका [को०] ।

श्रीपवन्त, श्रीपवन्तक—सज्ञा पु० [उ०] १ उपवास के उपयुक्त भोजन ।
२ उपवास [को०] ।

श्रीपानास—वि० [न०] १ उपवास हाजिर होने दिया जानेवाला (घन आदि) । २. उपवास में दिया जानेवाला [को०] ।

श्रीपवात्^{१०}—वि० [स०] सवारी करने योग्य । सवारी के काम में आनेवाला [को०] ।

श्रीपवात्^{११}—सज्ञा पु० १. राजा की सवारी का हाथी । २ राजा की कोई भी सवारी, जैसे, रथ, शयन आदि [को०] ।

श्रीपशामिक—वि० [न०] १ शांतिकारक । शांतिदायक । २ उपशम अर्थात् शांति सवधी [को०] ।

यौ०—श्रीपशामिक भाग=जैन संप्रदाय में वह भाव जो अनुसूय-प्राप्त कर्मों के शांत न होने पर उत्पन्न हो, जैसे,—गंदरा पानी रीठी डालने से साफ हो जाता है ।

श्रीपश्लेपिक (प्राधार)—सज्ञा पु० [स०] व्याकरण में अधिकरण कारक के अंतर्गत तीन आधारों में से वह आधार जिसके किसी अंग हो से दूसरी वस्तु का लगाव हो । जैसे,—वह चटाई पर बैठा है । वह बटलोई में पड़ाता है । यहाँ चटाई और बटलोई श्रीपश्लेपिक आधार हैं ।

श्रीपसंगिक^{१२}—वि० पु० [न०] १ उपसर्ग सवधी । २ उपसर्ग के रूप में होनेवाला [को०] । ३ छत्त से उत्पन्न होनेवाला । रोग आदि [को०] । ४ दुःख आदि का नामना करने में समय ।

श्रीपसंगिक^{१३}—सज्ञा पु० एक प्रकार का सनिपात ।

श्रीपस्थिक—सज्ञा पु० [स०] व्यक्तिचार आदि के आधार पर जीविका चलानेवाला व्यक्ति [को०] ।

श्रीपस्थिका—सज्ञा स्त्री [स०] रस्सी । गणिका । वेश्या [को०] ।

श्रीपस्थ्य—सज्ञा पु० [स०] मंथन । सभोग । सहवाम [को०] ।

श्रीपहारिक^{१४}—वि० [स०] १ उपहार सवधी या उपहार के काम में आनेवाला [को०] ।

श्रीपहारिक^{१५}—सज्ञा पु० भेंट । उपहार [को०] ।

श्रीपाधिक—वि० [स०] १ उपाधि सवधी । २ विशिष्ट स्थितियों में होनेवाला । विशेष धर्म से सम्बद्ध । ३ उपाधिजन्य । ४ (न्याय) विशेष परिस्थिति या कार्य की कारणभूत परिस्थिति [को०] ।

श्रीपायनिक—वि० [स०] १ उपायन या उपहार सवधी । २ उपहार या नजराने में प्राप्त । ३ उपहार में दिया जानेवाला [को०] ।

श्रीपासन^{१६}—सज्ञा पु० [स०] १ वह वैदिक अग्नि जो उपासना के लिये हो । गृह्याग्नि । २ कृत्य जो श्रीपासन अग्नि के पास किया जाय । ३. पितरो को देय पिंड [को०] ।

श्रीपासन^{१७}—वि० [स०] १ गार्हपत्य अग्निसवधी । २ अर्चन या पूजा सवधी । ३ पावन । पवित्र [को०] ।

श्रीपेद्र—वि० [स० श्रीपेन्द्र] उपेद्र या विष्णु सवधी [को०] ।

श्रीम^{१८}—सज्ञा स्त्री [स० अवम] अवम तिथि । वह तिथि जिसकी हानि हुई हो । उ०—गनती मनवे तैं रहे छत ह अछत समान । अनि अय ये तिथि श्रीम ना परे रहो तन प्रान । —विहारी (शब्द०) ।

श्रीम^{१९}—वि० १ उमा सवधी । २. सन का बना हुआ [को०] ।

श्रीमक, श्रीमिक—वि० [स०] सन का बना हुआ । सन का [को०] ।

श्रीमोन—सज्ञा पु० [स०] मनई का खेत । मन का खेत । —संपूर्ण^{१०} अमि० प्र०, पृ० २६६ ।

श्रीरग—सज्ञा पु० [का०] १ राजसिंहासन । २ बुद्धिमान्ता ।

यौ०—श्रीरगजय=(१) राजसिंहासन की शोभा । (२) शासक ।

श्रीदालक^१—सज्ञा पुं० [सं० उद्दालक] १ दीमक और विलनी आदि
वांवी के कोडों के विल से निकला हुआ चेष या मधु ।

२. एक तीर्थ का नाम ।

श्रीदालक^२—वि० उद्दालक के वश का ।

श्रीद्वत्य—सज्ञा पुं० [सं०] १ उग्रता । अवखडपन । उज्जडपन । २.
अविनीतता । अशालीनता । घृष्टता । डिठाई ।

श्रीद्भिज्ज^१—वि० [सं०] धरती से उत्पन्न या प्राप्त [को०] ।

श्रीद्भिज्ज^२—सज्ञा पुं० खारा नमक [को०] ।

श्रीद्भिद^१—वि० [सं०] १ (कुँऐ से) निकलनेवाला । धरती के
अंदर से फूटने या व्यक्त होनेवाला । २. विजयी [को०] ।

श्रीद्भिद^२—सज्ञा पुं० १. प्रपात या ऋने का जल । २ पहाड़ी
नमक । खारा नमक [को०] ।

श्रीद्योगिक—वि० [सं०] उद्योग सवधी ।

श्रीद्वाहिक^१—वि० [सं०] १. विवाह सवधी । २ विवाह का । विवाह
मे प्राप्त ।

श्रीद्वाहिक^२—सज्ञा पुं० १ विवाह से ससुराल से मिला हुआ धन
जिसका वटवारा नहीं होता । २ विवाह मे स्त्री को भेंट या
उपहार स्वरूप मिला धन ।

श्रीव^१—सज्ञा पुं० [न० अवध] पुं० 'अवध' । उ०—सग सुमामिन
भाड नलो, दिन द्वे जनु कौध हुते पडुनाई ।—तुलसी ग्रं०,
पृ० १६१ ।

श्रीव^२—सज्ञा स्त्री० [सं० अवधि] दे० 'अवधि' । उ०—श्रीध
अनल तन तिनको मदर चहुँ दिसि ठाठ ठयो ।—कवीर ग्रं०,
पृ० २२४ ।

श्रीवमोहरा—सज्ञा पुं० [सं० उर्द + हि० मोहड़ा] सिर उठाकर चलने-
वाला हाथी ।

श्रीवस—वि० [सं०] [वि० स्त्री० श्रीवसी] यन या स्तन से सवध रखने-
वाला, जैसे, दुध [को०] ।

श्रीवस्य—सज्ञा पुं० [सं०] दुध । दुग्ध [को०] ।

श्रीवान—सज्ञा पुं० [सं० अवधान, हि० अवधान, अवधान] गर्भ ।
अवधान । उ०—लै कन्या ऋषि घरहि सिधाये । शृगुल
हरि श्रीवानहि आवे ।—कवीर सा०, पृ० ३२ ।

श्रीवि—सज्ञा स्त्री० [सं० अवधि] दे० 'अवधि' । उ०—प्रावन के दिन
तीस कहे गति श्रीधि की ठीक तपी परसों ।—गंग०, पृ० ४३ ।

श्रीवृत^१—सज्ञा पुं० [सं० अवधूत] दे० 'अवधूत' । २०—करता है
सो करेगा, दाहू साजी भून । कौतिगहारा ह्वै रह्या अणकरता
श्रीवृत ।—दाहू०, पृ० ४५७ ।

श्रीन^१—सज्ञा स्त्री० [सं० अवनि] दे० 'अवनि' । उ०—ग्रह साधुन
के दुग्गह कोन । जिनके नहि ममता मति श्रीन ।—नद०
ग्रं०, पृ० २२२ ।

श्रीनापीना^१—वि० [सं० ऊन (कम) + हि० पीना (ड़े भाग)] आधा-
तीहा । थोडा बहुत । अधूरा ।

श्रीनापीना^२—वि० कमती बढती पर ।

मुहा०—श्रीनेपीने करना = कमती बढती दाम पर बेच डालना ।
बितवा मिले उतने पर बेच डालना ।

श्रीनि^१, श्रीनी^१—सज्ञा स्त्री० [सं० अवनि] दे० 'अवनि' । उ०—
मृग की मानी चचल छौनी । पावन करति फिरति छवि श्रीनी ।
—नद० ग्रं०, पृ० १२० ।

श्रीनी—श्रीनिप = दे० अवनिप । श्रीनिवाल = पृथिवीपुत्र मंगल । उ०—
जावक सुरग में न, इगुर के रंग में न, इद्रवधू अग में न, रंग
श्रीनिपाल में ।—गंग०, पृ० २४ ।

श्रीन्तय—सज्ञा पुं० [सं०] १. उन्नति । उत्थान । २ उच्चता ।
ऊँचाई [को०] ।

श्रीप^१—सज्ञा पुं० [हि० श्रोप] दे० 'श्रोप' । उ०—अग वर्म चर्म सु
कीन । सिर टोप श्रीप सु दीन ।—ह० रासो, पृ० १२३ ।

श्रीपकार्य—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० श्रीपकार्या] निवास । डेरा ।
पडाव । खेमा [को०] ।

श्रीपक्रमिक—वि० [सं०] उपक्रम सवधी । प्रारम्भिक [को०] ।

श्रीपक्रमिक निर्जरा—सज्ञा स्त्री० [सं०] अर्हत या जैन दर्शन मे दो
निर्जराओं मे से एक । वह निर्जरा या कर्मक्षय जिममे तपोबल
द्वारा कर्म का उदय कराकर नाश किया जाय ।

श्रीपग्रतिक, श्रीपग्रहिक—सज्ञा पुं० [सं०] १ ग्रहण । उपराग । २.
ग्रहणग्रस्त सूर्य या चंद्रमा [को०] ।

श्रीपचारिक—वि० [सं०] १ उपचार सवधी । २ जो केवल कहने
सुनने के लिये हो । बोलचाल का । जो वास्तविक न हो ।
जैसे,—यदि देह से आत्मा अभिन्न हुआ तो 'मेरा देह', इस
प्रकार की प्रतीति किस प्रकार हो सकती है । इसके उत्तर मे
यही कहना है कि 'राहु का शिर' इत्यादि प्रतीति की नाई
'मेरा देह', इस प्रकार श्रीपचारिक प्रतीति हो जाती है ।

श्रीपटा^१—वि० [हि०] [वि० स्त्री० श्रीपटी] दे० 'अपटी' । उ०—
हाय कछु श्रीपटी उदेग आगि जागि जाति, जब मन लागि जात
काहू निरमोही सो ।—रत्नाकर, भा० २, पृ० ३१ ।

श्रीपदेशिक—वि० [सं०] १ उपदेश सवधी । २ उपदेश या शिक्षा
द्वारा जीविका चलानेवाला । ३ उपदेश द्वारा कमाया या प्राप्त
(धन) [को०] ।

श्रीपद्रविक—वि० [सं०] १ उपद्रव सवधी । २ रोगादि के लक्षणों
से सवध रखनेवाला [को०] ।

श्रीपधर्म्य—सज्ञा पुं० [सं०] धर्मविरोधी विचार या मत [को०] ।

श्रीपधिक^१—वि० [सं०] १ धोखा देनेवाला । धोखेवाज । छली ।
२ धोखा देकर किया जानेवाला (कार्य) ।

श्रीपधिक^२—सज्ञा पुं० धोखा देकर धन लेनेवाला पुरुष । ठग ।

श्रीपनिधिक—वि० [सं०] १ उपनिधि या धरोहर सवधी । २ शुक्र-
नीति के अनुसार विरवास पर किसी के यहाँ रखा हुआ (धन) ।

श्रीपनिवेशिक^१—सज्ञा पुं० [सं०] उपनिवेश मे रहनेवाला व्यक्ति ।
वह जो उपनिवेश मे रहता है । जैसे,—दक्षिण अफ्रीका के
भारतीय श्रीपनिवेशिक ।

श्रीपनिवेशिक^२—वि० उपनिवेश का । उपनिवेश सवधी । जैसे,—
श्रीपनिवेशिक शासन । श्रीपनिवेशिक सचिव । श्रीपनिवेशिक
स्वराज्य आदि ।

जायेंगे उतने ही मुरजीवा की तरह रात और मोती लेकर आवेंगे।—सुदर० प्र०, भा० १, पृ० २०५।

श्रीदुर्वर—सज्ञा पुं० [सं० श्रीदुर्वर] दे० 'श्रीदुर्वर' [को०]।

श्रीदुर्विक^१—वि० [सं०] नाव से (नदी आदि) पार करनेवाला [को०]।

श्रीदुर्विक^२—सज्ञा पुं० नौका के यात्री [को०]।

श्रीदुर्वोमि—सज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि वा आचार्य जिनका मत वेदात सूत्रों में उदाहृत किया गया है।

श्रीदुर्व—सज्ञा पुं० [सं०] उड़ीसा प्रदेश का निवासी। उड़ीसा का रहने वाला [को०]।

श्रीदुर्व—वि० [सं०] अव + हिं० ढार या ढाल जिस ओर मन में आवे उसी ओर ढल पड़नेवाला। जिसकी प्रकृति का कुछ ठीक ठिकाना न हों। मनमौजी। उ०—देत न अघात रीति जात पात आक ही के भोरानाय जोगी जब श्रीदुर्व ढरत हैं।—तुलसी (शब्द०)।

श्रीदुर्वदानी^१—वि० [हिं० श्रीदुर्व + दानी] बहुत अधिक देनेवाला।

श्रीदुर्वदानी^२—सज्ञा पुं० [हिं० श्रीदुर्व + दानी] शिव। शंकर। जो तरंग में आकर बिना विचारे सेवकों की कामना पूर्ण करते हैं। उ०—श्रीदुर्वदानी द्रवत पुनि थोरे। सकत न देखि दीन कर जोरे।—तुलसी (शब्द०)।

श्रीदुर्वक—सज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक गीत।

श्रीदुर्वरना—क्रि० प्र० [सं० अवतरण] दे० 'अवतरना'। उ०—(क) मीन की मराल की ममोले मृग मुकुर की मानिनी मनोज जग जीतिवे श्रीतरी है।—गग०, पृ० २७। (ख) ओसर बीतें फिरि पछतावें। श्रीतरी श्रीतरी या तैं आवे।—सुदर० प्र०, भा० १, पृ० २२०।

श्रीदुर्वरना—सज्ञा पुं० [सं० अवतार] दे० 'अवतार'। उ०—मलखान अवतार मेरी सुलिख्यो।—प० रासो, पृ० ८४।

श्रीदुर्वरी—वि० [हिं० अवतारी] दे० 'अवतारी'।

श्रीदुर्वक—सज्ञा पुं० [सं० श्रीदुर्वक] १ उत्कठा। उत्सुकता। २ आकांक्षा। इच्छा। ३ चिन्ता [को०]।

श्रीदुर्वक—सज्ञा पुं० [सं०] उत्कर्षता। उच्चता। श्रेष्ठता [को०]।

श्रीदुर्वक—सज्ञा पुं० [सं०] उत्सुकता। उत्कठा। इच्छा [को०]।

श्रीदुर्वमणिक—वि० [सं०] शुक्र नीति के अनुसार दूसरे से सूद व्याज पर दिया हुआ (धन)।

श्रीदुर्वमि—सज्ञा पुं० [सं०] १४ मनुओं में से तीसरा।

श्रीदुर्वर—वि० [सं०] १ उत्तरी। उत्तर दिशा सबधी। २ उत्तर में रहने या होनेवाला [को०]।

श्रीदुर्वरेय—सज्ञा पुं० [सं०] अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा से उत्पन्न परीक्षित नरेश [को०]।

श्रीदुर्वतानपाद, श्रीदुर्वतानपादि—सज्ञा पुं० [सं०] १ उत्तानपाद के पुत्र हरिभक्त ध्रुव। २ ध्रुव नाम का तारा [को०]।

श्रीदुर्वपिक—वि० [सं०] १ उत्ताप सबधी। २ उत्तापजन्य।

श्रीदुर्वपत्तिक—वि० [सं०] १ उत्पत्ति सबधी। २ स्वाभाविक। सहज। जन्मजात।

श्रीदुर्वपत्तिक—वि० [सं०] उत्पात या उपद्रव सबधी [को०]।

श्रीदुर्वस—वि० [सं०] उत्तम, प्रवाह या भरना। सवधित [को०]।

श्रीदुर्वसर्गिक—वि० [सं०] १ उत्तमं सवधी। २ महज। स्वाभाविक। ३ व्याकरण में सामान्य रूप से मान्य या सामान्यतः स्वीकार्य (नियम)। ४ त्यागनेवाला। छोड़नेवाला। ५ सामान्य [को०]।

श्रीदुर्वसुक्क—सज्ञा पुं० [सं०] उत्सुकता। उत्कठा। होसना।

श्रीदुर्वरा—वि० [सं० अवस्थल + क (प्रत्य०)] उथला। छिछला। उ०—अति अगाध अति श्रीदुर्वरी नदी कूप सर राय। सो ताको सागर जहाँ जाकी प्यास बुझाय।—विहारी (शब्द०)।

श्रीदुर्वक^१—वि० [सं०] जल सवधी। जलवाला। जलीय [को०]।

श्रीदुर्वक^२—सज्ञा पुं० [सं०] कीटिल्य के अनुसार वह उपनिवेश जिसमें जल की बहुतायत हो।

श्रीदुर्वकना—क्रि० प्र० [हिं० उदकना] उठलना। चौकना।

श्रीदुर्वनिक—सज्ञा पुं० [सं०] १ कीटिल्य के अनुसार पका चावल अर्थात् भात दाल वेचनेवाला। २ भात पकानेवाला रसोइया [को०]।

श्रीदुर्वयिक^१—वि० [सं० उदय] उदय सवधी।

श्रीदुर्वयिक^२—सज्ञा पुं० जैन मतानुसार वह भाव या विचार जो पूर्व-संचित कर्मों के कारण चित्त में उठता है।

श्रीदुर्वर—वि० [सं०] पेट सवधी। २ पाचन क्रिया सबधी [को०]।

श्रीदुर्वरिक—वि० [सं०] १ उदर सबधी। बहुत खानेवाला। पेटू।

श्रीदुर्वर्य—वि० [सं०] उदर सबधी। पेट का। श्रीदुर्वरिक।

श्रीदुर्वरिवत—सज्ञा पुं० [सं०] मट्ठा जिसमें आधा पानी मिलाया गया हो। छाछ [को०]।

श्रीदुर्वसा—क्रि० प्र० [सं० अववशा] बुरी दशा। दुर्दशा। दुःख। आपत्ति।

क्रि० प्र०—फिरना = बुरे दिन आना।

श्रीदुर्वदानी—सज्ञा पुं० [सं० अवदान] वह वस्तु जो मोल लेनेवाले को ऊपर से दी जाती है। घाल। धलुआ।

श्रीदुर्वार्य—सज्ञा पुं० [सं०] १ उदारता। २ सात्त्विक नायक का एक गुण। ३. अर्थसंपत्ति। अर्थवत्ता [को०]। ४ महता। श्रेष्ठता [को०]।

श्रीदुर्वसीन्य, श्रीदुर्वसीन्य - सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उदासीनता'।

श्रीदुर्वच्य^१—वि० [सं०] उत्तर सबधी। उत्तरी [को०]।

श्रीदुर्वच्य^२—सज्ञा पुं० गुजराती ब्राह्मणों की एक जाति।

श्रीदुर्वर^१—वि० [सं० श्रीदुर्वर] उदुवर या गूलर का बना हुआ। २ ताँवा का बना हुआ।

श्रीदुर्वर^२—सज्ञा पुं० १ गूलर की लकड़ी का बना हुआ यज्ञपात्र। २ १४ यमों में से एक। ३ एक प्रकार के मुनि जिनका यह नियम होता था कि सवेरे उठकर जिस दिशा की ओर पहले दृष्टि जाती थी, उसी ओर जो कुछ फल मिलते थे, उस दिन उन्हीं को खाते थे। ४ गूलर का फल [को०]। ५ गूलर की लकड़ी [को०]। ६ ताँवा या ताम्रपात्र [को०]। ७ एक प्रकार का कोढ़ [को०]।

श्रीदुर्वरक—सज्ञा पुं० [सं० श्रीदुर्वरक] गूलर का जगल [को०]।

श्रीदुर्वरी—सज्ञा पुं० [सं० श्रीदुर्वरी] गूलर के वृक्ष की शाखा या लकड़ी [को०]।

श्रीछाना④—क्रि० सं० [सं० अवछादन] आच्छादित करना। छा जाना। फँसना। उ०—छत्रे अकास एम श्रीछायो। घणु आयो किरि वरण वण।—वेलि०, दू० १४४।

श्रीछार—सज्ञा पु० [देश०] ओहार। झूठ। हाथी आदि की पीठ पर डाला जानेवाला आवरण या पट जो नीचे तक झूलता रहता है। उ०—जरकस जराव श्रीछार मडि, मुरराज द्विपन सोनात पडि।—पृ० रा०, १८१२३।

श्रीछाहा—सज्ञा पु० [सं० उत्साह, प्रा० उच्छाह] दे० 'उछाह'। उ०—भावसिध सबल का माडण सवाई। श्रीछाह सी लागे जाकू साह की लड़ाई।—रा० ह०, पृ० १२२।

श्रीज^१—सज्ञा स्त्री० [अ० श्रीज] दे० 'श्रीन'।

श्रीज^२—सज्ञा स्त्री० [न० श्रीज] ऊँचाई। उत्कर्ष। तुलसी। उ०—सम्राटस का जिस श्रीज है आशियाँ, निभा देख अंधारा उजाला तनाम।—दक्खिनी०, पृ० १४५।

श्रीजक④—क्रि० वि० [हि० श्रीजक] दे० 'श्रीचक'।

श्रीजकमाल—सज्ञा पु० [अ०] संगीत में एक मुकाम (फारसी-राग) का पुत्र।

श्रीजड—वि० [सं० श्रव या श्रप + जड] उजड़ड। अनाड़ी। उ०—काल सचाना, नर चिड़ा श्रीजड श्री ओचित।—कवीर (शब्द०)।

श्रीजस—सज्ञा पु० [सं०] सोना। तैजस। स्वर्ण [को०]।

श्रीजसिक^१—वि० [सं०] श्रीजयुक्त। श्रीजस्वी। उत्साही [को०]।

श्रीजसिक^२—सज्ञा पु० वीर पुरुष। श्रीजस्वी व्यक्ति।

श्रीजस्य^१—वि० [सं०] उत्साहवर्धक। बलवर्धक। ताकतवर। शक्ति बढ़ानेवाला [को०]।

श्रीजस्य^२—सज्ञा पु० १ श्रीज का भाव। २. बल। शक्ति। ३. उत्साह [को०]।

श्रीजार—सज्ञा पु० [अ० वजर का बहु व० श्रीजार] वे यत्र जिनसे वंशानिक, इजिनियर, छात्र, लोहार, बढई आदि अपना काम करते हैं। हथियार। राठ।

श्रीजूद④—सज्ञा पु० [अ० वजूद] तन। शरीर। जिस्म। देह। उ०—दादू मालिक कहा अरवाह सौं, अरवाह कहा श्रीजूद। श्रीजूद आलम सौं कट्या हुकम खबर मौजूद।—दादू०, पृ० ४२०।

श्रीज्ज्वल्य—सज्ञा पु० [सं०] उजलापन। उज्वलता [को०]।

श्रीजक④—क्रि० वि० [हि०] दे० 'श्रीचक'।

श्रीझ^१—क्रि० वि० [म० श्रव + हि० झड़ो] लगातार। निरंतर। उ०—होय वेअकलि तन की नुवि जाई। श्रीझ भरमे राहि न पाई।—प्राण०, पृ० १५६।

मूहा०—श्रीझ मारना या लगाना = बार पर बार करना। घडाघड़ चांटे लगाना।

श्रीझड^१—सज्ञा पु० [देश०] १ सयाना। वृद्ध। गुणी। २ उजाड़। वीरान स्थान। उ०—बड़ी बड़ श्रीझी किछु सुझे नाहीं। राह छडि श्रीझड कथो पाही।—प्राण०, पृ० ३२।

श्रीझर—क्रि० वि० [हि० श्रीझड़] लगातार। अवतरत। उ०—

हिरना विरभेऊ सिंह ते श्रीझर खुरी चलाय। फारखड भीना परधो मिहा चले पराय।—गिरिवर (शब्द०)।

श्रीटन—संज्ञा स्त्री० [सं० आवर्त्तन प्रा० आउट्टन, आवट्टन] १ उवाल। ताव। २ ताप। गर्मी। उ०—कनक पान कित जीवन कीन्हा। श्रीटन कठिन विरह वह दीन्हा।—जायसी (शब्द०)। ३. तवाकू काटने की छुरी। ४. श्रीटने का भाव या क्रिया। ५. श्रीटने की वस्तु।

श्रीटना^१—क्रि० सं० [सं० आवर्त्तन, प्रा० आउट्टन, आवट्टन] १ दूध या किसी और पतली चीज को आंच पर चड़ाकर धीरे धीरे चलाना और गाढ़ा करना। उ०—श्रीट्यो दूध कपूर मिलायो प्यावत कनक कटोरे। पीवत देखि रोहिणी दगुमति डारत है तून तोरे—सूर (शब्द०)। २. पानी, दूध या और किसी पतली चीज को आंच पर गरम करना। खोलना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल तरल पदार्थों के लिये होता है।

३. उ० व्यर्थ घूमना। इधर उधर हैरान होना।

श्रीटना^२—क्रि० अ० १ किसी तरल वस्तु का आंच या गरमी खाकर गाढ़ा होना। २. खोलना।

श्रीटनी—संज्ञा स्त्री० [हि० श्रीटना] कलछी या चम्मच जिम्मे आंच पर चढ़े हुए दूध या और किसी तरल पदार्थ को हिलाते या चलाते हैं।

श्रीटपाई④—वि० स्त्री० [हि० श्रीटपाय] शरारती। नटखट। उ०—चुंहुटि जगाई अघराति श्रीटपाई आनि।—घनानंद, पृ० २०६।

श्रीटपाय④—संज्ञा पु० [हि० श्रीटपाय] दे० 'श्रीटपाय'।

श्रीटाना—क्रि० सं० [हि० श्रीटना का प्रे० रूप] दूध या किसी और पतली चीज को आंच पर चड़ाकर धीरे धीरे हिलाना और गाढ़ा करना। खोलना। उ०—(क) लखि द्विज धर्म तेल श्रीटायो। वरत कराह माँझ डरवायो।—विश्राम (शब्द०)। (ख) पय श्रीटावत महेँ इक काला। कडे रंगपति विभव विशाला।—रघुराज (शब्द०)।

श्रीटी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० श्रीटना] वह पुष्टई जो गाय को व्याले पर दी जाती है। २. पानी मिलाकर पकाया हुआ ऊख का रस।

श्रीटपाया^१—संज्ञा पु० [देश०] उत्पात। शरारत। नटखटी। उ०—अनगने श्रीटपाय रावरे गने न जाहि वेऊ आहि तमकि करैया अति मान की। तुम जोई सोई कहो, वेऊ जोई साई सुनें, तुम जीम पातरे वे पातरी हैं कान की।—केशव (शब्द०)।

श्रीड④—संज्ञा पु० [सं० कुण्ड = गड्ढा] दे० 'श्रीड'।

श्रीड—वि० [सं०] आर्द्र। तर। गीला [को०]।

श्रीडन④—संज्ञा पु० [हि० श्रीडना] दे० 'श्रीडन'। उ०—पग उमारि दल रारि तारि कड्डन दुज्जन वे। श्रीडन ह्यह धपि घापि अत चालुकन खे।—पृ० रा०, १२१३२।

श्रीडव^१—वि० [सं०] नक्षत्र संवधी। ताराश्री से संबद्ध [को०]।

श्रीडव^२—सज्ञा पु० संगीत में एक राग का नाम [को०]।

श्रीडा—क्रि० वि० [हि० श्रीडा] गहरे। अंदर की ओर। भीतर। उ०—विषय के अंदर पहुँच जाने की योग्यतावाले जितने श्रीडे

श्रीखी—सज्ञा स्त्री० [सं० उपर] दे० 'श्रीखल' ।

श्रीखदा—सज्ञा पुं० [सं० श्रीषघ] दे० 'श्रीषघ' ।

श्रीखध—सज्ञा स्त्री० [सं० श्रीषघ] दे० 'श्रीषघ' । उ०—इसके पीछे उसने अपनी शोली में से कोई श्रीखध निकाली ।—ठेठ०, पृ० ३८ ।

श्रीखला—सज्ञा स्त्री० [सं० ऊपर] वह भूमि जो परती से आवाद की गई हो ।

श्रीखा—सज्ञा पुं० [हिं० श्रीखा] गाय का चमड़ा । गाय का चरसा ।
श्रीगत^१—सज्ञा स्त्री० [सं० अवगति या अपगति] दुर्दशा । दुर्गति ।
क्रि० प्र०—करना । होना ।

श्रीगत^२—वि० [सं० अवगत] दे० 'अवगत' ।

श्रीगति—सज्ञा स्त्री० [सं० अपगति] अवगति । अघोगति । उ०—ज्ञान हीन श्रीगति भयो मरि नरकहि जाई ।—श्रीखा० श०, पृ० ६७ ।

श्रीगुन^१—वि० [सं० अवगुण] दे० 'अगुन' । उ०—आये श्रीगुन एक के गुन सब जाय नसाय ।—दीन० ग्र०, पृ० ८४ ।

श्रीगुम^२—वि० [सं० अपगम] दे० 'अगम' । उ०—जहाँ न मानुस सचरे निरजन जान भरम । जव दीप के मानई, भरतखड श्रीगुम ।—चित्रा०, पृ० १५६ ।

श्रीगाह—वि० [सं० अवगाह] दे० 'अवगाह' । उ०—प्रति श्रीगाह थाह नहि पाई । विमल नीर जहें पुहुमि देखाई ।—चित्र०, पृ० ६० ।

श्रीगाहना^३—क्रि० अ० [सं० अवगाहन, प्रा० श्रीगाहणा, हिं० अवगाहना] दे० 'अवगाहना' ।

श्रीगी^१—सज्ञा स्त्री० [देश०] १ रस्सी बटकर बनाया हुआ कोड़ा जो पीछे की ओर मोटा और आगे की ओर बहुत पतला होता है । इसे घोड़ों को चक्कर देते समय उनके पीछे जोर जोर से हवा में फटकारते हैं । जिसके शब्द से चौक कर वे और तेजी से दौड़ते हैं । २ बेल हाँकने की छड़ी । पैना । ३. कारचोवी के जूते के ऊपर का चमड़ा ।

श्रीगी^२—सज्ञा स्त्री० [सं० अवगति] हाथी, शेर, भेड़िए आदि को फँसान का गहड़ा जो घास फूस से ढँका रहता है ।

श्रीगुन^३—सज्ञा पुं० [सं० अवगुण] दे० 'अवगुण' ।

श्रीगुनो^४—वि० [सं० अवगुणिन्] १ निर्गुणी । २ दोषी । ऐवी ।

श्रीघ—सज्ञा पुं० [सं०] जलप्लावन । बाढ [को०] ।

श्रीघट^१—वि० [हिं० अवघट] दे० 'अवघट' । उ०—साधो अजब नगर अधिकाई । श्रीघट घाट वाट जहें बाँकी उस मारग हम जाई ।—चरण० दानी०, भा० २, पृ० १३७ ।

यी०—श्रीघट घाट, श्रीघट घाटी = अटपटा मार्ग । दुर्गम मार्ग । उ०—बकनाल की श्रीघट घाटी, तहाँ न पग ठहराई ।—कवीर० श०, पृ० ७८ ।

श्रीघड—सज्ञा पुं० [सं० अघोर = भयानक, शिव] [स्त्री० श्रीघडिन] १. अघोर मत का पुरुष । अघोरी । २. काम में सोवविचार न करनेवाला मनमोजी । ३. बुरा शकुन । अपशकुन (ठगों की बोली) । ४. अविवेकी । विवेकरहित व्यक्ति ।

यी०—श्रीघडपय = दे० 'अघोर पंथ' । श्रीघडपयी = दे० 'अघोर-पथी' । श्रीघडमार्ग = दे० 'अघोरमार्ग' ।

श्रीघड^२—वि० [सं० अव + घट्ट] अटपडा । उलटा पलटा । अटपट ।

श्रीघर—वि० [सं० अव + घट] १ अटपट । अनगढ़ । अडपडा । उलटा-पलटा । 'सुघर' का प्रतिकूल । २ अनोखा । विलक्षण । उ०—(क) कुजविहारी नाचत नीकें लाडिली नचावति नीकें । श्रीघर ताल घरे श्रीश्यामा मिलवत तातायेई तायेई गावत संग पी के ।—हरिदास (शब्द०) । (ख) बलिहारी वा रूप की लेति सुघर श्री श्रीघर तान दै चुवन आरुपनि प्रान ।—सूर (शब्द०) । (ग) मोहन मुरली अघर घरी । श्रीघर तान वधान सरस सूर अह उमगि मरी ।—सूर (शब्द०) ।

श्रीघी^३—सज्ञा स्त्री० [देश० श्रीगी ?] वह जगह जहाँ नए घोड़ों को सिखलाने के लिये चक्कर दिलाया जाता है ।

श्रीघूरना^४—क्रि० अ० [सं० अवघूर्णन] चक्कर पाना । घूमना ।

श्रीचक—क्रि० वि० [सं० अव + चक = आति] अचानक । एकाएक । सहसा । एकवारगी । उ०—(क) खेत श्रीचक ही हरि आए । जननी वाह पकरि बैठाए ।—सूर (शब्द०) । (ख) श्रीचक आय जोउनवाँ अति दुख दीन । छुटिगो सग गोइयवाँ नहि मल कीन ।—रहीम (शब्द०) ।

श्रीचट^५—सज्ञा स्त्री० [सं० अवोच्चाट, हिं० उचटना = हटना] ऐसी स्थिति जिसमें निस्तार का उपाय जल्दी न मूकें । अडस । सकट । कठिनता । साँकरा । उ०—रसखान मो केतो उचाटि रही, उचटो न सकोच की श्रीचट सो । अलि कोटि कियो अटकी न रही, अटकी ओखियाँ लटकी लट सो ।—रसखान (शब्द०) ।

मुहा०—श्रीचट में पडना = सकट में पडना । जैसे—साँप जब श्रीचट में पडता है तभी काटता है ।

श्रीचट^६—क्रि० वि० १. अचानक । अकस्मात् । उ०—इक दिन सब करती रही जमुना में अस्नान । चीर हरे तहें आइक श्रीचट स्याम सुजान ।—विश्राम (शब्द०) । २. अनचीते में । मूल से । उ०—स्वारथ के साथी तज्यो, तिजरा को सो टोटकी श्रीचट उलटि न हेरो ।—तुलसी (शब्द०) ।

श्रीचाटी^७—सज्ञा पुं० [सं० उच्चाटन] दे० 'उच्चाटन' । उ०—यमन मोहन वसिकरन छाडो श्रीचाट । सूणी हो जोगेसरी जोगारम की वाट ।—गोरख०, पृ० १३० ।

श्रीचित^८—वि० [सं० अव = नहीं + चिन्ता] निश्चित । देखवर । उ०—काल सचाना नर चिड़ा ओजड श्री श्रीचित ।—कवीर (शब्द०) ।

श्रीचित्ती—सज्ञा स्त्री० [सं०] श्रीचित्य । उपयुक्तता । योग्यता ।

श्रीचित्य—सज्ञा पुं० [सं०] उचित का भाव । उपयुक्तता । उ०—विपक्षी की प्रतिकूलता ही हर पक्ष को श्रीचित्य की सीमा के बाहर नहीं जाने देती ।—द्विवेदी (शब्द०) ।

श्रीछ—सज्ञा स्त्री० [देश०] दारुहल्दी की जड़ ।

श्रीछकी^९—वि० [सं० अवचकित हिं० श्रीचक + ई (प्रत्य०)] [चौकी हुई । उ०—छकी सी घुमति कछु श्रीछकी सी वात करै ।—गंग०, पृ० ५२ ।

श्रीड④—सज्ञा पुं० [म० कुण्ड, प्रा० उड = गड्डा] गड्डा खोदनेवाला । मिट्टी खोदनेवाला । मिट्टी उठानेवाला मजदूर । बेलदार । उ०—चले जाहु ह्यौ को करै हाथिन को व्योपार । नहि जानत यहि पुर वसैं घोवी, श्रीड, कुम्हार ।—विहारी (शब्द०) ।

श्रीडा^१—वि० [स० कुण्ड, प्रा० उड] [वि० स्त्री० श्रीङ्गी] गहरा । गभीर । उ०—(क) तब तिन एक पुरस भरि श्रीडी । एक एक योजन लाँची चौड़ी ।—पद्माकर (शब्द०) । (ख) यो कहैं गोवर्धन के निकट जाय दो श्रीडे कुड बुदवाए ।—लल्लू (शब्द०) । (ग) यह समझ मणि न पाय श्रीकृष्ण-चंद्र सबको माथ लिए वहाँ गए जहाँ वह श्रीडी महाभयावनी गुफा थी ।—लल्लू (शब्द०) ।

श्रीडा^२—वि० [हिं० श्रीडना = उमडना] [वि० स्त्री० श्रीङ्गी] उमडा हुआ । चढा हुआ । बढा हुआ । उ०—ग्रावत जात ही होय है सौझ वहे जमुना भतरौड लो श्रीडी ।—रसखान (शब्द०) ।

श्रीडावीडा^३—वि० [हिं०] दे० 'ग्रंडवड' ।

श्रीडी—वि० [हिं० श्रींघी] उलटी । श्रींघी । उ०—(क) फेरी नृत्य डौंडी यह श्रीडी बात जानि महा, कही राजा रक पडे नीकी ठोर जानि कै ।—भक्तमाल (श्रीभक्ति०), पृ० ५१३ । (ख) कर स्वतंत्र अधिकार सभी पिटवायी डौंडी । धूर्त चला जो जाल (चाल) पडे वह कभी न श्रीडी ।—कविता० को०, भा० २, पृ० ३५७ ।

श्रीडना④—क्रि० अ० [म० उन्मादन] १. उन्मत्त होना । वेसुध होना । उ०—देय कहै आप श्रींघे वृक्षति प्रसंग आगे सुधि न सेभारै वृक्षि आनंद परस्पर ।—देव (शब्द०) । २. व्याकुल होना । घबराना । अकुलाना । उ०—देत दुसह दुख पवन मोहि अचल चार उडाय । कसु कामिनि करिकै कृपा, श्रींघिय सुधि विसराय ।—रघुराज (शब्द०) ।

श्रीदाना④—क्रि० अ० [स० उद्वेजन] उठना । व्याकुल होना । दम घटने के कारण घबराना । उ०—ब्रह्मा गुरु सुर असुर के मधिक विप नहि जान । मरै सकल श्रींदाइ कै संधिक विप करि पान ।—कवीर (शब्द०) ।

श्रीघना^१—क्रि० अ० [स० अघ या अवघा] उलट जाना । उलटा होना ।

श्रीघना^२—क्रि० स० उलट देना । उलटा कर देना । उ०—जीति सर्व जग श्रींघि घरे हैं मनोज महीप के दुदुभी दोऊ ।—(शब्द०) ।

श्रीघा^१—वि० [स० अघ. या अव + अघ] [वि० स्त्री० श्रींघी] १. उलटा । पट । जिसका मुँह नीचे की ओर हो । जैसे, श्रींघा वरतन । उ०—श्रींघा घडा नहीं जल डूबै सूखे सों घट भरिया । जेहि कारन नर भिन्न भिन्न कर गुरु प्रसाद ते तरिया ।—कवीर (शब्द०) ।

मुहा०—श्रींघी खोपड़ी का = मुख । जड । कूढमग्न । उ०—कविरा श्रींघी खोपड़ी, कवहूँ धारै नाहि । तीन लोक को सपदा कव आवै घर मोहि ।—कवीर (शब्द०) । श्रींघी समझ = उलटी समझ । जड बुद्धि ।—श्रींघे मुँह = मुँह के बल । नीचे मुँह किए । श्रींघे मुँह गिरना = (१) मुँह के बल गिरना । २-२३

(२) बेतरह चूकना या घोखा खाना । झटपट बिना सोचे समझे कोई काम करके दुख उठाना । जैसे,—वे चले तो थे हमे फँसाने, पर आप ही श्रींघे मुँह गिरे । (३) भूल करना । भ्रम में पड़ना । जैसे,—रामायण का अर्थ करने में वे कई जगह श्रींघे मुँह गिरे हैं । श्रींघा हो जाना = (१) गिर पडना (२) वेसुध होना । अचेत होना ।

२. नीचा । उ०—राजा रहा दृष्टि कै श्रींघी । रहि न सका तब भाँट रसौंघी ।—जायसी (शब्द०) । ३. वह जिसे गुदामजन कराने की आदत हो । गाँडू (वाजारू) ।

श्रीघा^२—सज्ञा पुं० एक पकवान जो वेसन और पीठी का नमकीन तथा आटे का मीठा बनता है । उलटा । चिल्ला । चिलडा ।

श्रीघाना—क्रि० स० [सं० अघ करण ?] १. उलटना । उलट देना । पट कर देना । अघोमुख करना । उ०—श्रींघाई सीसी सुलखि विरह वरत विललात । वीचहि सूखि गुलाव गौ छीटो छई न गात ।—विहारी (शब्द०) । २. नीचा करना । लटकाना । उ०—बुधि बल विक्रम विजय बडापत सकल विहाई । हारि गए हिय भूप वैठि सीसन श्रींघाई ।—रघुराज (शब्द०) ।

श्रीरा^१—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अवला' ।

श्रीस—सज्ञा पुं० [अ० आउंस] दे० 'आउंस' ।

श्रीसना—क्रि० अ० [स० उध्म + √कृ, हिं० उमसना] उमस होना ।

श्रीहरा^१—सज्ञा स्त्री० [स० अवरोध, प्रा० श्रीरोह] अटकाव । रुकावट । बाधा । विघ्न ।

श्री^१—सज्ञा पुं० [सं०] १. अनंत । शेष । २. शब्द या ध्वनि (की०) । ३. चार की सख्या का वाचक शब्द (की०) ।

श्री^२—सज्ञा स्त्री० विश्वंभरा । पृथ्वी ।

श्री^३—अव्य० [हिं०] दे० 'श्रीर' ।

श्री^४—सर्व० [हिं०] यह । उ०—श्रीं मेलूँ अवरा तणो, असुरा करण अकाम । सिवो नचिती एण सूँ, राजड ने जगराम ।—रा० रू०, पृ० २५५ ।

श्रीकन—सज्ञा स्त्री० [देश०] राशि । डेर ।

विशेष—श्रीकन ज्वार के उन वालों वा भुट्टों के डेर को कहते हैं जिनसे दाने निकाल लिए गए हो । इस डेर को एक बार फिर बचाबुचा दाना निकालने के लिये पीटते हैं ।

श्रीकात^१—सज्ञा पुं० [अ० वक्त का बहु व०] समय । वक्त ।

श्रीकात^२—सज्ञा स्त्री० (एक व०) १. वक्त । समय ।

यौ०—श्रीकात बसरी = जीवननिर्वाह ।

मुहा०—श्रीकात जाया करना = समय नष्ट करना । श्रीकात बसर करना = जीवन निर्वाह करना ।

२. हैसियत । विसात । विसारत । जैसे,—अपनी श्रीकात देखकर खर्च करना चाहिए । उ०—क्यो कर निभेगी हमसे मुलाकात आपकी । बल्लाह क्या जलील है श्रीकात आपकी ।—शेर०, भा० १, पृ० २६५ ।

श्रीक्ष, श्रीक्षक—सज्ञा पुं० [सं०] वृषभसमूह । बैलों का झुंड ।—संपूर्णा० अभि० अ०, पृ० २४८ ।

ओहट④—संज्ञा स्त्री० [हि० ओट, देश० ओहट्ट=अवगुठन या देश] ओट । ओहल । उ०—(क) ओहट होहु रे नोट निवारी । का नु नाहि देहि अति गारी ।—जायसी २०, पृ० ११५ । (ख) ओहट होसि कोनि तोरि चरी । आवैं बात कुरुकुटा करी ।—जायसी २०, पृ० १३६ ।

ओहटना④—क्रि० प्र० [स० अवघटन] ओहल होना । ओट होना । बीचना । उ०—असह रात ओहटै, चूर परमात दरसैं ।—रा० ह०, पृ० ३६१ ।

ओहदा—संज्ञा पु० [प्र०] पद । स्थान । उ०—जो जिसके मुनासिब या गुरु ने किया पैदा । दारों के लिये ओहदे चिड़ियों के लिये फदा ।—कविता को०, भा० ४, पृ० ६२८ ।

यो०—ओहदेदार ।

ओहदेदार—संज्ञा पु० [प्र० ओहदा + दा० वार(प्रत्य०)] पदाधिकारी हाकिम । कार्यकर्ता । कर्मचारी । अधिकारी ।

ओहना—क्रि० प्र० [स० अवधारण] १. डटनों आदि को ऊपर उठाकर हिलाने दूए उनके दानों का डेर लगाने के लिये नीचे गिराना । चरही करना । २. चित्त वित्त करना ।

ओहनि④—संज्ञा पु० [स० उपनि] वन । गाय का स्तन । अयन । उ०—चरि न सकनि ओहनि के नार । अवति लवत दूध की धार ।—नद० २०, पृ० २६० ।

ओहर—क्रि० वि० [हि०] दे० 'उपर' ।

ओहरना—क्रि० प्र० [स० अवहरण] बढती ओर उमडती हुई चीज का घटना । घटाव पर होना ।

ओहरी—संज्ञा स्त्री० [हि० हारना] बकावट ।

ओहा—संज्ञा पु० [स० उपस] गाय का यन ।

ओकार—संज्ञा पु० [स० अवधार] रव या पालकी के ऊपर पड़ा हुआ ऋषड़ा । परदा । उ०—(क) त्रिविका मुग्ग ओहार उवारी । देखि दुनहिनिन्ह होहि मुखारी ।—मानस, १।३४० । (ख) संत पालकी निकट सिधारे । करिकै विनय ओंगार उवारे ।—रघुराज (जव०) ।

ओहि④, ओही④—सर्व० [हि० वह] १ वह । २ उसको । उ०—(क) ना ओहि पूत न मिता न माता ।—जायसी २०, पृ० ३ । (ख) आन नाति नहि पावो ओही ।—मानस, १।१३२ ।

ओहू④—सर्व० [हि० वह] वह भी । उ०—जो जनतेउ वन बहु विद्योह । पित्त वचन मनितेउ नहि ओहू ।—मानस, ६।९० ।

ओहो—अव्य० [स० ओहो] १ एक आश्चर्यसूचक शब्द । २. एक आनंदसूचक शब्द ।

ओ

ओ—संज्ञित वर्णमाला का चौदहवाँ और हिंदी वर्णमाला का स्यादहवाँ स्वर वर्ण । इसके उच्चारण का स्थान कंठ और ओष्ठ है । यह स्वर अ + ओ के मेलन से बना है ।

ओंगकी—संज्ञा पु० [मला०] पिचन की जाति का एक वंश । जो मुनाथा टाँप में होता है ।

विशेष—यह बंदु कट रंग का होता है, पर विशेष कर ऊदापन लिए दूए पीने रंग का होता है । इसके पैर की डंगलियाँ मिली होती हैं । यह जूनु डोढ़े के माय रहता है । इसका स्वभाव मुगील और डगोह है, पर वह बड़ा चालाक होता है ।

ओंगना—क्रि० प्र० [स० अव्यञ्जन] बँगाड़ी के पहिये को घुरी में ठेक देना ।

ओंगा④—वि० [स० अवाह या गुह] [स्त्री० ओगी] १. मूक । मूंगा । २. न बोलेवाला । चुप्पा । उ०—मुनि खग कहत अब ओगी रहि मुमुनि प्रेन सब न्यारी । गए वे प्रभू पहुँचाइ फिर पुनि कृत करन तुन गारी ।—तुलसी (जव०) ।

ओगी—संज्ञा [स० अवाह] चुप्पी । गुंजावन । खानेवाला ।

ओंगना—क्रि० प्र० [स० अवाह=नीचे मुँह अथवा प्रा०√उघ, √उघ ओंग] ऊँचना । अलसाना । नडकी देना ।

ओवाई—संज्ञा स्त्री० [स० अवाह=नीचे मुँह या प्रा०] हथकी नौद । उँदा । नपकी ।

ओंगना—क्रि० प्र० [स० अवाह या प्रा०√उघ] दे० 'ओङना' ।

ओङना④—क्रि० प्र० [स० उङेवन=व्याकुल होना] ऊँचना ।

व्याकुल होना । अकुलाना । उ०—एक करै घोंच, एक कहै काडो घोंच, एक आँखि पानी पी कै कहै वनत न आवनो । एक परे गाडे, एक डाटन हों काडे, एक देखत है डाटे, कहै पावक प्रवादनो ।—तुलसी २०, पृ० १७५ ।

ओङना—क्रि० प्र० [?] एक वरतन में से दूसरे वरतन में डालना । उँहलना । उँटना ।

ओटन—संज्ञा पु० [न० अकुटन, प्रा अउटन, आवटन=छेदन करना या स० अवघटन] १. नकडी का टीहा जिसपर चौपायों का चारा काटा जाता है । २. वह टीहा जिसपर ऊँच की गँडेरी काटी जाती है ।

ओटना—क्रि० प्र०, क्रि० प्र० [स० आवर्तन, प्रा० अउटन] दे० 'ओटाना' ।

ओटाना—क्रि० प्र० [स० आवर्तन, प्रा० अउटन] दे० 'ओटाना' ।

ओठ④—संज्ञा पु० [स० ओष्ठ] दे० 'ओड' । उ०—हसति कहति बात, फूल से भरत जात ओठ अवदात राती देख नन मोहिये ।—केशव २०, भा० १, पृ० १६६ ।

ओठ—संज्ञा स्त्री० [स० ओष्ठ, प्रा० ओड] उठा हुआ कितारा । उनरा हुआ कितारा । चारी । उँच —पड़े की ओठ । रोटी की ओठ ।

मूठा—ओठ उठाना=पगती पडे हुए तेल को उठाना ।

ओठा—संज्ञा पु० [हि० ओठा] स्त्रियों के पैर के ओंठों में पहनने का एक मासूषण । उ०—विद्युता पहिरिन ओठा पहिरिन ।—कबीर रा०, पृ० १५१ ।

यो०—ओष्ठोपमफल, ओष्ठोपमफला, ओष्ठफला, ओष्ठभा =
बिवाफल । कंदरु ।

ग्रोष्ठक—वि० [सं०] ग्रोठों की रक्षा करनेवाला (को०) ।

ग्रोष्ठक^२—सना पु० [स०] ग्रोठ [जो०] ।

ग्रीष्मोष्ण, शीतोष्ण—सन्ना ५० [सं०] शीत पर होनेवाला
एक रोग [सं०] ।

ग्रीष्मज्याह- सन्ना पु० [स०] ग्रीष्म का मूल या जड़ [सि०] ।

ग्रीष्मपल्लव—सूत्रा पु० [स०] कोमल ग्रीष्म (को०) ।

ग्रोष्ठपाक—सुज्ञा पु० [सं०] नर्दी के कारण ओठों का फटना [को०]।

ग्रीष्मपुट-सत्रा पु० [स०] ओठों की खोलते समय वननेवाला गहड़ा क्रि० ।

श्रोष्टपूष्प—सुता पु० [स०] वंशूक नामक वृक्ष [को०] ।

श्रोष्ठरोग--सना पुं०[सु०] श्रोष्ठ से सवधित कोई भी बीमारी [को०] ।

ग्रीष्मी—संज्ञा श्री० नि० १ विषाफल । कुंदरु । २ कुंदरु की लता ।

ग्रोह्य--३० [त०] १ ओठ सबधी । २ जिसका उच्चारण
ओठ से हो ।

यौ० - ओष्ठ्यवर्णः ।

श्रोष्ठ्यवर्ण—सज्ञा पु०[मं०] वर्ण जिनके उच्चारण में श्रोष्ठ की सहायता लेनी पड़ती है। यथा, उ, ऊ, ए, फ, व, म, और न।

श्रोण्या—वि० [स०] ईषत उष्ण । कुनकुना । थोडा गरम (को०) ।

ग्रीस—सद्वा ली० [स० श्रवश्याय, पा० उत्साव, प्रा० उम्सा] हवा मे मिली हुई भाप जो रात की सर्दियों मे जमकर ग्रीर जाविदु के रूप मे हवा से अलग होकर पदार्थों पर लग जाती है । शीत । शवनम । उ०—ग्रीस ग्रीस सब कोई कहे आंसु कह न कोय । मोहि विरहिन के सोग मे रैन रही है रोय ।—कविता को०, भा० ४, पृ० ५७६ ।

विशेष—जब पदार्थों की गर्मी निकलने लगती है, तब वे तथा उनके आसपास की हवा बहुत ही ठंडी हो जाती है। उसी से आस की बूँदें ऐसी ही वस्तुओं पर अधिक देखी जाती हैं जिनमें गर्मी निकालने की शक्ति अधिक है और धारण करने की कम, जैसे घास। इसी कारण ऐसी रात को आस कम पड़ेगी जिसमें बादल न होंगे और हवा तेज न चलती होगी। अधिक सरदी पाकर आस ही पाला हो जाती है।

मुहा०—ओस चाटने से प्यास न बुझना=थोड़ी सामग्री से बड़ी आवश्यकता की पूर्ति न होना । उ०—मजी ओस चाटने से कहीं प्यास बुझी है ।—प्रेमघन०, मा० २, पृ० ४६ । ओस पड़ना या पड़ जाना=(१) कुम्हलाना । बेरोनक हो जाना । (२) उमग बुक जाना । (३) लज्जित होना । शरमाना । ओस का मोती=शीत नाशवान । जल्दी मिटनेवाला । उ०—यह ससार ओस का मोती बिखर जात इक छिन में ।—कवीर (शब्द०) ।

श्रोसर^१—सज्ञा पुं० [स० अवसर, प्रा० श्रोसर] नमय । मोका । अवसर ।

३०—कहूँ स्याम सदेश एक मैं तुम पै आयाँ, कहूँ समय

सकेत कहं ओसर नहि पायो, ।—नद० ग्रं० पृ० १७३ ।

मोसर^२—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'मोसरिया' ।

श्रोतराङ्ग—सज्ञा पुं० [स० अवतर, प्रा० श्रोतर] १ वारी । दाँव ।

उ०—सो एक दिवस या वेंणव को ओसरा आयो । —दो

सी वावन०, पृ० ८ । २ दूध दूहने का समय ।

प्रोसरियाँ—सज्ञा स्त्री० [स० उपसर्ग] वह भैंस जो गर्भ धारण करने योग्य हो चुकी हो, परंतु अभी गाम्नि न हुई हो।
जवान। बिना व्याई भैंस।

ग्रीसरिया—सज्ञा ली० [स० उपशालिका, देश० ग्रीसरिया] दे०
'ग्रीसारा' ।

प्रोसरी(पुं०)—सज्ञा स्त्री [सं० श्रद्धा] पारी । दारी । दांव । उ०—
 अबकै हमारी ओयुनी निज भाग तैं विधि ने दई ।—गथाकर
 पं०, पृ० १८ ।

ओसाई--सत्ता खी [हि० ओसाना] १ ओसाने का काम। दाये
हुए गले वो हवा में उड़ाने का काम, जिससे भूना और अन्न
अलग हो जाता है। २ ओसाने क काम की मजरी।

श्रीसाह^{१३}— सत्रा पं० [दि० श्रीसावा] श्रीसावे का काम । श्रीसावं ।

ग्रोसान्^३—सत्र। पं० [सं० श्रवसान्, पा० श्रोसाण] द्वे० श्रवसान्

ग्रोसाना—क्रि०सं० [सं० ग्रावर्णण प्रा० ग्रावत्सन अथवा उत्सारण सं०
उत्सारण प्रा० उत्सारण] द यें दूए गल्ले वो हग मे उडाना,
जिसे दाना ग्रीर भूसा अलग अलग हो जाय । वरमाना ।
डाली देना ।

मुहा०— अपनी ओसताना = इतनी अधिक बातें करना कि दूसरे को बात करने का समय ही न मिले। बातों की झड़ी बाँधना। जैसे—तुम तो अपनी ही ओसाते हो, दूसरे की सुन्ते ही नहीं। किसी को ओसताना = किसी को खूब फटकारना।

ग्रीसार'—सङ्घ पु० [स० अक्षर = फेलाव] फेलाव । विस्तार ।
चोड़ाई । अक्षर ।

प्रोसार^२—वि० चौड़ा ।

ग्रोसार^३—सद्वा पु० [स० उपशाल] दे० ओसार।

प्रोसारा—सङ्घा पुं० [स० उपशाला अथवा देशी प्रोसार=गोवाडा]

[स्त्री० अल्पा० ओसारी]१ दालान् । वसमदा । उ० - राति

ओसारे में सोय रही कहि जाति न एतौ ममानि सताई । —
रघुनाथ (शब्द०) ३ ओनारे की छाजन । सायवान । उ० —
छलनी हुई अटारी कोठा निदान टपका । बाकी या एक ओमारा
सो वह भी ग्रान टपका । — कविता को०, भा० ४, पृ० ३६५ ।

क्रि० प्र०—लगाना । लटकाना ।

ओसीसा—सङ्ग पुं० [स० उत् + शीर्षक या उष्णोश्] दे० 'उसीसा' ।

असुर(५) — सज्ञा पुं० [सं० असुर] दे० 'असुर' । उ० — तज गया गह्वर
खाय तापा ममक असुर नागिया । — रघु० ह०, पृ० १२६ ।

ग्रीह^२—अव्य० [स० ग्रहह] १ माश्चर्यसूचक शब्द । २. दुःखसूचक शब्द । ३. वपरावर्ष का सूचक शब्द ।

ओह^२—सर्वं [हिं०] दे० 'बह'। उ०—(क) यम का ठेगा है कुरा
ओह नहिं सहिया जाइ।—कबीर ग्रं०, पृ० २५३। (ख)
काया हाँडी काठ की ना ओह चढ़ै बहोरि।—कबीर ग्रं०,
पृ० १२१।

श्रीला^३—वि० १ श्रीले के ऐसा ठंडा । बहुत सर्द । २ मिस्री का बना हुआ लड्डू जिसे गरमी में ठंडक के लिये घोलकर पीते हैं ।

श्रीला^३—सज्ञा पुं० [देश०] कांगडा जिले में होनेवाला एक प्रकार का वृक्ष जिसकी लकड़ी से खेती के औजार बनते हैं ।

श्रीला^४—सज्ञा पुं० [हि० श्रील] १ परदा । ओट । २ भेद । गुप्त बात ।

श्रीला^५—प्रत्य० [हि०] हिंदी का एक प्रत्यय जो कतिपय शब्दों के अंत में लगकर किसी वस्तु के लघु रूप का बोधक होता है । जैसे, ग्राम से श्रीमोला ।

श्रीलारना^६—क्रि० सं० [हि०] दे० 'उलारना' ।

श्रीलिक^७—सज्ञा पुं० [हि० श्रील=आड, ओट, १० श्रीला] ओट । परदा । उ०—नील निचोल दुराह कपोल विलोकति हो करि श्रीलिक तोही ।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० ५२ ।

श्रीलिगार्वा^८—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ वह सरकार जिसमें राजसत्ता या शासनसूत्र इने गिने लोगों के हाथों में हो । कुछ लोगों का राज्य या शासन । स्वल्पव्यक्तित्र । २ ऐसे लोगों का समाज ।

श्रीलिया^९—सज्ञा पुं० [प्र० श्रीलिया] दे० 'श्रीलिया' । उ०—ग्राहि ग्राहि करत औरगसाह श्रीलिया ।—भूषण ग्र०, पृ० १११ ।

श्रीलियाना^{१०}—क्रि० सं० [हि० श्रीली=गोद] श्रीली में भरना । गोद में भरना ।

श्रीलियाना^{११}—क्रि० सं० [हि० हलना] प्रविष्ट करना । घुसेड़ना । घुसाना । जैसे,—पेट में सींग श्रीलियाना ।

श्रीली—सज्ञा स्त्री० [हि० श्रील+ई (प्रत्य०)] १ गोद । उ०—अपनी श्रीली में बैठकर मुख पोछा, हवा करने लगी ।—श्यामा० पृ० ७१ ।

मुहा०—श्रीली लेना=गोद लेना । दत्तक बनाना ।

२ अचल । पल्ला । उ०—देहि री काल्हि गई कहि दैन पसारहु श्रीलि भरी पुनि फेंदी ।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० ३० ।

मुहा०—श्रीली ओडना=अचल फैलाकर कुछ माँगना । विनय-पूर्वक कोई प्रार्थना करना । विनती करना । उ०—(क) ऐंड सो ऐंडाई जिन अचल उडात, श्रीली ओडति हों काहू की जू डीठि लगी जायगी ।—केशव (शब्द०) । (ख) बोली न हों वे बुलाइ रहे हरि पाँय परे अरु श्रीलियों ओडी ।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० ११ ।

३ श्रीली । उ०—(क) श्रीलिन अवीर, पिचकारि हाथ । सोहैं सखा अनुज रघुनाथ साथ ।—तुलसी (शब्द०) । (ख)

दसन वसन श्रीनी मरियै रहै गुलाल, हँसनि लसनि त्यों कपूर सरस्यो करै ।—पनानद, पृ० ७० । ४ खेत की उपज का अदाज करने का एक ढग जिसमें एक बिस्वे का परता लगाकर बीघे भर की उपज का अनुमान किया जाता है ।

श्रीलीना^{१२}—सज्ञा पुं० [सं० तुलना से नामिक धातु] उदाहरण । मिसाल । तुलना ।

श्रीलीना^{१३}—क्रि० अ० उदाहरण देना । दृष्टांत देना ।

श्रील^१—सज्ञा पुं० [सं०] जमानत [को०] ।

श्रील^२—वि० आर्द्र । गीला [को०] ।

श्रील^३—सज्ञा स्त्री० [हि० श्रील] ओट । आड । उ०—(क)

तिगुनै श्रीलहै राम है, परवत मेरै भाइ । सतगुरु मिलि परचा भया तब हरि पाया घट माँहि ।—कवीर ग्र०, पृ० ८१ । (ख) बूँढन बूँढत जग फिरचा, तिगुनै श्रीलहै राम ।—कवीर ग्र० पृ० ८१ ।

श्रीवडना^{१४}—क्रि० अ० [देशी] दे० 'उमडना' उ०—प्रावरत मेव सम श्रीवडे घड़ी पच वग्गी खटग ।—रा० रू०, पृ० २५० ।

श्रीवर—सज्ञा पुं० [अ०] १ समाप्त । खत्म । उ०—मैच श्रीवर हो गया ।—चद० ख०, पृ० ४१ । २ क्रिकेट के खेल में पाँच या छह गेंद दिए जाने भर का समय ।

क्रि० प्र०—होना ।

विशेष—जब एक श्रीवर समाप्त हो जाता है, तब गेंद दूसरी तरफ से दिया जाता है और खिलाड़ियों की जगहें बदल दी जाती हैं ।

श्रीवरकोट—सज्ञा पुं० [अ०] बहुत लंबा कोट जो जाड़े में सब कपड़ों के ऊपर पहना जाता है । लंबादा । उ०—कुँअर साहब का श्रीवरकोट लिए खेल में दिन भर साथ रहा ।—प्रांथी, पृ० ३६ ।

श्रीवरसियर—सज्ञा पुं० [अ०] इजीप्शियरी के मुहकमे का एक कार्यकर्ता जिसका काम बनती हुई इमारतों, सड़कों आदि की निगरानी और मजदूरों की देख रेख करना है ।

श्रीवा—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'श्रीवा' ।

श्रीष—सज्ञा पुं० [सं०] १ जलन । दाह । २ भोजन पकाना [को०] ।

श्रीषण—सज्ञा पुं० [सं०] तिक्तता । तीखा स्वाद [को०] ।

श्रीषणी—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का शाक [को०] ।

श्रीषद^{१५}—सज्ञा स्त्री० [सं० श्रीषध] दे० 'श्रीषध' । उ०—सोच घटै कोई साधु की सगत रोग घटै कछु ओषध खाए ।—गंग०, पृ० ११८ ।

श्रीषधी—सज्ञा स्त्री० [सं० श्रीषधि] दवा । ओषध । उ०—कीन्हैसि पान फूह बहु भोगू । कीन्हैसि बहु ओषध बहु रोगू ।—जायसी (शब्द०) ।

श्रीषधि, श्रीषधी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ वनस्पति । जड़ी बूटी जो दवा में काम आवे । उ०—ज्वर दहमारे ने उन्हें थोड़े ही दिनों में निर्वल कर दिया, पर श्रीषधी अच्छी की । श्यामा०, पृ० ६२ । २. पौधे जो हर एक बार फलकर सुख जाते हैं । जैसे,—गेहूँ, जौ इत्यादि ।

यौ०—श्रीषधिपति । श्रीषधीश ।

श्रीषधिगर्भ—सज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. सूर्य [को०] ।

श्रीषधिघर—सज्ञा पुं० [सं०] १ चंद्रमा । २ कपूर । ३ वंछ [को०] ।

श्रीषधिपति—सज्ञा पुं० [सं०] १ चंद्रमा । २ कपूर ।

विशेष—श्रीषधिवाची शब्दों में 'स्वामी' वाची शब्द लगाने से चंद्रमा या कपूरवाची शब्द बनते हैं ।

श्रीषधीश—सज्ञा पुं० [सं०] १ चंद्रमा । २ कपूर ।

श्रीपर—सज्ञा पुं० [सं० श्रीपर] छुटिया नोन । रेह का नमक ।

श्रीष्ठ—सज्ञा पुं० [सं०] १ होठ । ओठ । लव । २. दो या दो सख्या का सूचक शब्द ।

घोरी—सञ्ज्ञा पु० [दिगं] एक प्रकार का बहुत लंबा बांस जो आसाम और ब्रह्मा (बर्मा) में होता है।

विशेष—वहाँ यह घर तथा छकड़े बनाने के काम में आता है। इनसे खाने के डबे भी बनते हैं। इसकी ऊँचाई १२० फुट तक की होती है और घेरा २५-३० इंच।

ओलदेज—सञ्ज्ञा पु० [फ्र० ओलंदेज, अ० हालैंड] [वि० ओलदेजी] हालैंड देश का निवासी व्यक्ति।

ओलदेजी—वि० [फ्र० ओलंदेज] हालैंड देश सवधी। हालैंड देश का। उ०—इंगलिस्तानी ओ दरियानी कच्छी ओलदेजी। ओरु विविध जाति के वाजी नकत पवन की तेजी।—रघुराज (शब्द०)।

ओलवा(१)—सञ्ज्ञा पु० [सं० उपात्मन्] दे० 'ओलमा'। उ०—सो वाचाल भयो विज्ञानी। लखि कूरेश उचित नहि जानी। रामानुज को दियो ओलवा। कीन्हो काह धर्म अवलंबा।—रघुराज (शब्द०)।

ओलभा—सञ्ज्ञा पु० [सं० उपात्मन् प्रा० उवात्मन्] उलाहना। शिकायत। गिला। उ०—सच है बुद्धिमान मनुष्य जो करना होता है वही करता है परंतु ओरो का ओलभा भिटाने के लिये उनके सिर मुफ्त का छप्पर जरूर घर देता है।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० २६६।

ओल^१—सञ्ज्ञा पु० [सं०] सूरन। जिमीक'द।

ओल^२—वि० [सं० आर्दे, प्रा० उत्तल] गीला। चोटा।

ओल^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ओड] १ गोद। २ आड। ओर। ३ शरण। पनाह। उ०—जाँके मीत नदनदन से ढकि लई पीत पटोलै। मूरदास ताकां डर काकी हरि गिरिधर के ओलै।—सूर० १।२५६। ४ किसी वस्तु या प्राणी का किसी दूसरे के पास जमानत में उस समय तक के लिये रहना जब तक उस दूसरे व्यक्ति को कुछ रुपया न दिया जाय या उसकी कोई शर्त न पूरी की जाय। उ०—टीपू ने अपने दोनों लड़कों को ओल में लाई कानवालिस् के पास भेज दिया।—शिवप्रसाद (शब्द०) क्रि० प्र०—देना। से देना।—ने लेना।

५ वह वस्तु या व्यक्ति जो दूसरे के पास जमानत में उस समय तक रहे जब तक उसका मालिक या उसके घर का प्राणी उन दूसरे आदमी को कुछ रुपया न दे या उसकी कोई शर्त पूरी न करे।—(क) बाजे बाजे राजनि के वेटा वेटी ओल हैं।—मुलसी ग्र०, पृ० १७६। (ख) राजहि चली छुडावै तहै रानी होइ ओल।—जायसी ग्र०, पृ० २८७। (ग) बने विमाल अति लोचन लोल। चितै चितै हरि चारु विलोकिनि मानो मंगत हैं मन ओल।—सूर०, १०।६३०।

क्रि० प्र०—देना। उ०—एक ही ओल दै जाहु चली भगरो नगरो मिटि बात परै सल।—घनानंद, पृ० १। लेना उ०—तोप रहकता माल मव लै ओल निवाया।—सूदन (शब्द०)। ६ बहना। मिस। उ०—बैठी बहू गुरु लोगन में लखि लाल गए करि कै कछु ओलो।—देव (शब्द०)। ७ कोना। उ०—घर में घरे सुनेर से अजहूँ खानी ओल।—सुंदर ग्र०, भा० १, पृ० ३१६।

ओलक—सञ्ज्ञा पु० [हि० ओल=ओट] याड़। ओट। उ०—देखत रूप अनूप वह वदत दृगन दग जोत। फिर कैसे वह सांवरो आखिन ओलक होत।—सं० सप्तक, पृ० ३५४।

ओलग—वि० [सं० अपलग्न, अप०, ओलग, राज०, ओलगो, हि० अलग] दूर। पृथक्। अलग। उ०—आतम तुभ पासइ अछइ, ओलग लडा रख।—डोला० दू०, ११४।

ओलगना(१)—क्रि० अ० [सं० अपलग्न, अप० ओलग] अलग होना। दूर होना। प्रस्थान करना। उ०—ढाडी रातू ओलग्या गाया बहु बहू भत।—डोला० दू० १८६।

ओलगी—वि० [अप० ओलग] दे० 'ओलग'। उ०—रहि रहि राव ओलगी तू जाई, माइरी गइली तु करह पठाई।—बी० रासो, पृ० २६।

ओलचा—सञ्ज्ञा पु० [सं० उलचना] १ खेत का पानी उनीचने का चम्मक के आकार का काठ का वस्तु। हावा। २ दोरी जिससे किसी ताल का पानी ऊपर खेत में ले जाते हैं।

ओलची—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आल] आलू वालू नाम का फल। गिलास।

ओलती—सञ्ज्ञा स्त्री० [देशज] १ ढलुवां छप्पर का वह भाग जहाँ से वर्षा का पानी नीचे गिरता है। उ०—नित सावन डीठि मुवँठक में टपकै बरनी तिहि ओलतियाँ।—घनानंद, पृ० ८८।

मुहा०—ओलती तले का नूत=घर का भेदिया। निकटवर्ती व्यक्ति जो घर का सारा भेद जानता हो।

ओलना^१—क्रि० सं० [हि० ओल=आड] १ परदा करना। ओट में देना। उ०—लोल अमोल कटाक्ष करोल अलौकिक सो पट ओलि कै फेरे।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० ७३। २ आडना। रोकना। ३ ऊपर लेना। सहना। उ०—केसोदास कौन बड़ी रूप बुलकानि पै अनोखो एक तेरे ही अनूप उर ओलियै।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० ७३।

ओलना^२—क्रि० सं० [सं० शूल, हि० हूल] धुपाना। चुभाना। उ०—ऐसी तू है ईन पुनि आपने कटाछ मृगमद घनसार मम मेरे उर ओलिहै।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० ४६।

ओलमना—क्रि० अ० [हि०] दे० 'ओरमना' या 'उलमना'।

ओलरना^१—क्रि० अ० [हि०] दे० 'उलरना'।

ओलराना^१—क्रि० सं० [हि०] दे० 'उलारना'।

ओलहना—सञ्ज्ञा पु० [हि०] 'उलाहना'।

ओला^१—सञ्ज्ञा पु० [सं० उपल] गिरते हुए मेढ़ के जमे हुए गोले। पत्थर। विनीली। इद्रोपन। उ०—पाना कही, ओले कही, लगता कही कुछ रोग है।—भारत०, पृ० ६४।

विशेष—इन गोली के बीच में वर्ष की कड़ी गुठली सी होती है जिसके ऊपर मुलायम वर्ष की तह होती है। पत्थर कड़े आकार के गिरते हैं। पत्थर पड़ने का समय प्रायः शिशिर और वसंत है।

क्रि० प्र०—गिरना।—पड़ना। उ०—गडगडाहट बड़ने नगी, ओला पड़ने की समावना की।—आंधी, पृ० ११८।

होते। चलते समय इसके तलवे ओर पंजे अच्छी तरह से जमीन पर नहीं पड़ते। यदि कोई इसे सताता है तो यह बड़ी भयकरता से उसका सामना करता है।

ओर^१—सज्ञा स्त्री [सं अवसर = किनारा] २ किसी नियत स्थान के अतिरिक्त शेष विस्तार जिसे दाहिना, बाँया, ऊपर, नीचे, पूर्व, पश्चिम आदि शब्दों से निश्चित करते हैं। तरफ। दिशा।

यो०—ओर पास = पास पास। इधर उधर।

विशेष—जब इस शब्द के पहले कोई सख्यावाचक शब्द आता है, तब इसका व्यवहार पुल्लिङ्ग की तरह होता है। जैसे,—घर के चारों ओर। उसके दोनों ओर। उ०—नैन ज्यो चक्र फिर चहुँ ओरा।—जायसी ग्र०, पृ० ७५।

२- पक्ष। जैसे,—(क) यह उनकी ओर का आदमी है। (ख) हम आपकी ओर से बहुत कुछ कहेंगे।

ओर^२—सज्ञा पुं० १ अत। सिरा। छोर। किनारा। उ०—(क) देखि हाट कछु सुझ न ओरा। सर्वे बहुत किछु दीख न थोरा।—जायसी ग्र०, पृ० ३१। (ख) गुन को ओर न तुम विखै ओगुन को मो माहि।—ब्रज० ग्र०, पृ० ११।

मुहा०—ओर आना = नाश का समय आना। उ०—हँसता ठाकुर खासता चोर। इन दोनों का आया ओर। ओर निमाना या निवाहना = अत तक अपना कर्तव्य पूरा करना। उ०—(क) पुरुष गमोर न बोलहि काहू। जो बोलहि तो ओर निवाहू।—जायसी (शब्द०)। (ख) प्रणतपाल पालहि सब काहू। देहु दुहँ दिसि ओर निवाहू।—तुलसी (शब्द०)।

२ आदि। आरम्भ। जैसे, ओर से ओर तक। उ०—(क) ओर दरिया भी कौन जिसका ओर न छोर।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १३०। (ख) ओर तें याने चराई पैहँ अब व्यानी वराइ मो मागिन आसौ।—पद्माकर ग्र०, पृ० ३१८।

ओरती^१—सज्ञा स्त्री [हि० ओरमना] दे० 'ओरती'। उ०—रोवति भई न सांस सँभारा। नैन चुवहि जस ओरति धारा।—जायसी (शब्द०)।

ओरमना^७—कि० अ० [सं अवलम्बन] लटकना। झुकना।

ओरना^७—कि० अ० [हि०] दे० 'ओराना'।

ओरमा—सज्ञा स्त्री [हि० ओर से नाम धातु] एक प्रकार की सिलाई जो आँवठ जोड़ने के काम में आती है।

विशेष—जब आँवठों को मोड़कर कहीं सीना होता है, तब दोनों आँवठों की कोरों को भीतर की ओर मोड़कर परस्पर मिला देते हैं। फिर आगे की ओर में सूई को दोनों आँवठों या कोरों में से डालकर ऊपर को निकाल लेते हैं। फिर आगे को उन कोरों के ऊपर लाकर सूई डालते हैं।

ओरमाना—कि० सं० [हि० ओरमना] लटकाना। उ०—तेल फुलेल चमक चटकाई। टेढी पाग छोर ओरमाई।—घट०, पृ० ३००।

ओरवना^७—कि० श० [हि० ओरमना] वच्चा देने का समय निकट या जाना (चोपायो के लिये)। जैसे,—गाय का ओरवना।

ओरहना^७—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'उलहना'। उ०—ठाली ग्वालि

ओरहने के मिस आइ बकहि वेकामहि।—तुलसी ग्र० पृ० ४३२।

ओरहा—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'होरहा'।

ओराव^१—सज्ञा स्त्री [देश०] १ एक जाति जो प्राचीन काल में चपारन, पलामू आदि के आसपास रहती थी। उ०—ओराव आदि जाति में जलाने की प्रथा चलती थी।—प्रा० भा० प० (भू०, पृ०, 'घ')। २ ओराव जाति की बोली या नापा।

ओरा^१—सज्ञा पुं० [सं उपल, हि० ओला] दे० 'ओला'। उ०—(क) ओरा गरि पानी भया जाइ मिल्यो ढल कूलि।—कवीर ग्र०, पृ० २५६। (ख) ओछी उपमानि को गहर ओरे लों गरै।—घनानंद, पृ० ३५।

ओरा^२—वि० [हि० ओला] उज्ज्वल। उ०—गोरे रंग ओरे सुदृग भए अरुन अनभग।—पद्माकर ग्र०, पृ० ५१।

ओराना^१—कि० अ० [हि० ओर (= अत) से नाम धातु का प्रे० रूप] अत तक पहुँचना। समाप्त होना। खतम होना। उ०—(क) जो चाहै जो लेय जायगी लूट ओराई।—पलटू०, पृ० ६। (ख) नदी सुखानी प्यास ओरानी टूटि गया गढ़ लका।—सं० दरिया, पृ० ११२।

ओराहना^१—सज्ञा पुं० [हि० उरहना] दे० 'उलहना'।

ओरिजिनल—वि० [अ०] मौलिक। मूल से स्रष्ट।

ओरिजिनल साइड—सज्ञा पुं० [अ०] प्रेसिडेंसी हाईकोर्ट का वह विभाग जहाँ प्रेसिडेंसी नगर के दीवानी मामले दायर किए जाते हैं तथा उन मामलों का विचार होता है जिन्हें प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट दौरा सुपुर्द करते हैं। इन फौजदारी मामलों का विचार करने के लिये प्रायः प्रतिमास एक दौरा अदालत बैठती है। इसे ओरिजिनल जूरिस्टिकशन भी कहते हैं।

ओरिया^१—सज्ञा स्त्री [हि० ओरी + इया (प्रत्यय)] दे० 'ओरी'।

ओरिया^२—सज्ञा स्त्री [हि० ओर = सिरा] वह लकड़ी जो ताना तानते समय खूँटी के पास गाड़ी जाती है।

ओरिया^३—^३पुं०—सज्ञा स्त्री [हि० ओर] तरफ। ओर। उ०—कब ऐहँ स्याम बसीवाला हमरी ओरिया।—प्रेमधन०, भा० २, पृ० ३६४।

ओरी^१—सज्ञा स्त्री [हि० ओर = सिरा + ई (प्रत्यय)] ओरती। ओलती। उ०—(क) ओरी का पानी बरेंडी जाय। कड़ा बूँड सिल उतराय।—कवीर (शब्द०)।

ओरी^२—अव्य० [हि० ओ, री] स्त्रियों को पुकारने का एक संबोधन। विशेष—बुंदेलखंड में इस शब्द से माता को भी पुकारते हैं, ओर माता शब्द के अर्थ में भी इसका व्यवहार करते हैं।

ओरी^३—सज्ञा स्त्री [हि० ओर] ओर। तरफ। उ०—हम तुम हिलि मिलि करि एक सग हवै चलै गगन की ओरी।—जग० श०, पृ० ७५।

ओरीता^१—वि० [हि० ओर + ओता (प्रत्यय)] १ अत। समाप्त। २ जिसका अंत या समाप्ति होने को हो। अंतिम। अंत का।

ओरीती^१—सज्ञा स्त्री [हि० ओरमना] ओलती।

२ आरंभ । शुद्ध ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

ओप—संज्ञा स्त्री० [प्रा० ओप्पा, हि० ओपना] १ चमक । दीप्ति । आना । काति । झलक । सुदरता । शोभा । उ०—(क) मनि देह, वेई वसन, मलिन विरह के रूप । पिय आगम और चढी आनन ओप अनूप ।—विहारी २०, दो० १६३ । (ख) भीने पट में भ्रूमुनी झनकति ओप अपार । सुरत की मनु सिधु में लसति सपल्लव डार ।—विहारी २०, दो० १६ । २. जिला । पालिश । उ०—ए री प्रानप्यारी तेरी जानु कै सुजानु विधि ओप दीन्हो अपनी तमाम सुघराई को ।—भिखारी २०, भा० १, पृ० ६५ ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।

ओपची—संज्ञा पुं० [हि० ओप (= चमक) + तु० ची (प्रत्य०) = वाला] वह जोड़ा जिसके शरीर पर झिलमिल चमकता है । कबचद्वारी योद्धा । रक्षक योद्धा । उ०—(क) किते वीर तनुवान को अग साजे । किते ओपची हूँ धरे ओप गाजे ।—सूदन (शब्द०) । (ख) जिरही सिलाही ओपवी उमडे हृयारन को लिये ।—मन्नाकर २०, पृ० ११ ।

यो० ओपचीखाना = चौकी ।

ओपति—संज्ञा स्त्री० [सं० उत्पत्ति] दे० उत्पत्ति । उ०—जल है सूतक थल है सूतक, सूतक ओपति होई ।—कवीर २०, पृ० २८८ ।

ओपना—क्रि० सं० [सं० आवपन = सब वाल मुडाना, हि० ओप] मांजना । साफ करना । जिला देना । चमकाना । पालिश करना । उ०—(क) केशवदास कुदन के कोश ते प्रकाशमान, चितामणि ओपनी सो ओपि कै उतारि सी ।—(केशव शब्द०) । (ख) जुरि न मुरे सग्राम लोक की लीक न लोपी । दान, सत्य, सम्मान सुषय दिशि विदिशा ओपी ।—राम चं०, पृ० ३ ।

ओपना—क्रि० अ० १ झलकना । चमकना । उ०—जिती हुती हरि के अवगुन की ते सबही तोपी । सूरदास प्रभु प्रेम हेम ज्यों, अधिक ओप ओपी ।—सूर (शब्द०) ।

ओपनि—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ओप' ।

ओपनिवारी—वि० [हि० ओपनि + वारी (प्रत्य०)] चमकानेवाली । प्रकाशित करनेवाली । सातित करनेवाली । उ०—हंसत सुखा पहुँचाइ सो नारी । दीन्ह कसौटी ओपनिवारी ।—जायसी २०, पृ० ३५ ।

ओपनी—संज्ञा स्त्री० [हि० ओप + नी (प्रत्य०)] मांजने की वस्तु । पत्तर या इंट का टुकड़ा जिससे तलवार या कटारी इत्यादि रगड़कर साफ की जाती है । उ०—केशवदास कुदन के कोश ते प्रकाशमान, चितामणि ओपनी सो ओपि कै उतारी सी ।—केशव (शब्द०) ।

ओपम—संज्ञा पुं० [सं० उपमा, प्रा० उप्पम] दे० 'उपमा' । उ०—पाती वैधिय कन्ह चप, इह ओपम करि अपि ।—पृ० २०, ५१७ ।

ओपाना—क्रि० अ० [हि० ओप] दूध में घुएँ की गंध आना ।

ओपासम—संज्ञा पुं० [अं०] दक्षिण अमेरिका में रहनेवाला बिल्ली की तरह का एक जंतु ।

विशेष—यह रात को घूमता और छोटे छोटे जीवों का शिकार करता है । इसके ५० दाँत होते हैं । मादा एक बेर में कई बच्चे देती है । चलते समय बच्चे माँ की पीठ पर सवार हो जाते हैं और उसकी पूँछ में अपनी पूँछ लपेट लेते हैं ।

ओपिका—वि० स्त्री० [हि० ओप + इक (प्रत्य०)] ओपयुक्त । कातियुक्त । विभूषित । शृंगारित । उ०—प्रदित असोक भरी सोक भरी दिति और दाँप भरी पूतना ओपि करी ओपिका ।—सुजान०, पृ० ३ ।

ओपित—वि० [हि० ओप + इत (प्रत्य०)] कातियुक्त । विभूषित । उ०—तमो गुन ओप तन ओपिन, विरूप नैन, लोकनि बिलोप करे, कोप के निकेत है ।—केशव २०, भा० १, पृ० १५२ ।

ओपी—वि० [हि० ओप + ई (प्रत्य०)] कातियुक्त । सुदर । उ०—कुब्जा विभगी ओपी हम सब बुरी हैं गोपी ।—ब्रज २०, पृ० ४३ ।

ओपी—क्रि० वि० डूबी हुई । लीन । निमग्न । उ०—गावत गोरी रस में ओपी गोप बजावत तारी ।—भारतेंदु २०, भा० २, पृ० ५१३ ।

ओफ—प्रव्य० [अ० उफ या अनु०] पीडा, वेद, शोक और आश्चर्य-सूचक शब्द । ओह । उफ ।

ओवरी—संज्ञा स्त्री० [सं० उप विवर] छोटा घर । छोटा कमरा । कोठरी । उ०—(क) कागज केरी ओवरी मसु के कर्म कागट ।—कवीर २०, पृ० ३५० । (ख) विलग जनि मानो ऊँची कारे । वह मयुरा काजर की ओवरी जे आवैंते कारे ।—सूर १०३७६२ । (ग) खिसि करि खिसी तू, निसीय कोऊ साथ जैं, ओवरी के मलत पगार जाइ चढी है ।—गग, पृ० ६२ । ओवरी—संज्ञा स्त्री० समूह । ढेरी । उ०—हीरा की ओवरी नहीं मलयागिरि नहि पाति । सिंहन के लेंहडा नही साधु न चलै जमाति ।—कवीर (शब्द०) ।

ओभना—क्रि० अ० [हि० ऊभना] दे० 'ऊभना' । उ०—कोऊ कह कछु वृदावन सोभा । तापर भैया अजगर ओभा ।—नंद २०, पृ० २६१ ।

ओभा—संज्ञा स्त्री० [सं० अवभा, प्रा०, ओभास] शोभा । काति । चमक । उ०—(क) होतहि छोटा ब्रज की सोभा । देखो सखि कछु औरहि ओभा ।—नंद २०, पृ० ३३१ । (ख) होत मुकुरमय सबै तवै उज्जल इक ओभा ।—भारतेंदु २०, भा० २, पृ० ४५५ ।

ओम्—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रणव । ओकार । २ दे० 'ओ' ।

ओरगोटंग—संज्ञा पुं० [मला० ओराग ऊतान = जपली मनुष्य, मरा० ओरगोटंग = कपि आकृति का मनुष्य] सुमात्रा और वीनिरो आदि द्वीपों में रहनेवाला एक बदर या प्रभानुप ।

विशेष—यह लगभग चार फुट ऊँचा होता है । इसका रंग लाल और भुजाएँ बहुत लंबी होती हैं । टोंगे छोटी होती हैं । यह बदर पेड़ों की पर अधिक रहता है । इसके चेहरे पर वाज नहीं

पयराण श्रोदे वमन श्रौगोष्ठि।—सूर०, १०।६०६। (ख)
निरहिनि श्रोदी लाकडी सपचे श्रो घुंघुयाय। छूटि पड्यो या
विरह से जो सिंगरो जरि जाय।—कवीर सा०, पृ० १६।

श्रोदाता—सज्ञा पु० [स० श्रवदात] दे० 'श्रवदात'। उ०—हरित,
मजिष्ठ, लोहित, श्वेत (श्रोदात) या मिश्रित '।—हिंदु०
सम्प्रदाय, पृ० २०१।

श्रोदादार०—वि० [फा० श्रोहदेदार] दे० 'श्रोहदेदार'। उ०—श्रोदा-
दार आगे छा जका ने दूरि कीना। माटा काम छोटा आदम्पा
न सोप दीना।—शिवर०, ११०।

श्रोदारना—क्रि० स० [स० श्रवदारण या उद्धारण] १ विदीर्ण
करना। फाटना। २ छिन्न भिन्न करना। ढाना। नष्ट करना।

श्रोदासी०—सज्ञा पु० [हि० उवासी] विरक्त पुरुष। त्यागी पुरुष।
उ०—ना इह गिरही ना श्रोदासी। ना इह राज न भीष्म
मोंगासी।—कवीर ग्र०, पृ० ३०१।

श्रोद्रक०—सज्ञा पु० [स० उद्रक] दे० 'उद्रक'। उ०—सामद्र उहोला
श्रोद्रक, जाण हिलोला हल्लियो।—रा० रू०, पृ० १६४।

श्रोघ—सज्ञा पु० [स० श्रोघस] यन। स्तन [को०]।

श्रोघ०—सज्ञा स्त्री० [स० श्रवधि] सीमा। इह। पराकाष्ठा। उ०—
भूपन मनत भीसिता मूनाल भूमि तेरी करतूति रही अद्भुत
रम श्रोघ है।—भूपण ग्र०, पृ० १०६।

श्रोघणा—सज्ञा पु० [स० श्रवस, हि० श्रोघा] मोटे लंबे लकड़े, जो
गाड़ी के नीचे लगे रहते हैं। उ०—वडकै श्रोघण वधियां,
पैसे पई पताल।—वांकी० ग्र०, भा० १, पृ० ३८।

श्रोघना—क्रि० प्र० [स० श्रवण] १ रेंघना। लगना। फँसना।
उलभना। उ०—रोय रोय तन तासो श्रोघा। सूतहि सूत
वेधि जिउ सोघा।—जायसी ग्र०, पृ० ११२। २ काम में
लगना या फँसना। उ०—मचिव सुसेवक भरत प्रसोधे।
निज निज काज पाइ सिध श्रोघे।—मानस, २।३२२।

श्रोघना^३—क्रि० स० नाँघना। ठानना। उ०—नारत श्रोइ जुझ जो
श्रोघा। होहि सहाय माइ सब जोघा।—जायसी ग्र०, पृ० ११३।

श्रोघा^४—सज्ञा पु० [स० श्रोहदा] १. पद। अधिकार। २ अधिकारी
मालिक।

यो०—श्रोघादार=श्रोहदेवार। उ०—श्रोघादार मोल्या आणि
पैसे तो निमडिगो।—शिवर०, पृ० ४८।

श्रोघायता—सज्ञा पु० [स० श्रोहदा, राज० श्रोघा, श्रोघा+श्रायत=
वाला या युक्त] हाकिम। अधिकारी। उ०—अवरही
कारखाने तिस तिसके श्रोघायत अपनी अपनी जिनसूँ ले आया।
—रघु० रू०, पृ० २४१।

श्रोघू०—सज्ञा पु० [स० श्रवधूत, पु० हि० श्रवधू] योगियो का एक
भेद। अउधूत। उ०—ये इन्द्रिय दवें सु श्रोघू। ये इन्द्रिय दवें
सु श्रोघू।—मुद्गर ग्र०, भा० १, पृ० १४६।

श्रोघे—सज्ञा पु० [स० उपाध्याय] अधिकारी। मालिक।

श्रोत०—वि० [स० श्रवन्त] नत। नम्र। झुका हुआ। उ०—उठे
कोप जनु दारिद्री दाखा। मई श्रोत प्रेम के माया।—जायसी
ग्र० (गुप्त), पृ० १६०।

श्रोत०—सर्व० [हि०] दे० 'उन'। उ०—श्रोतहूँ निम्ति जो देव
परेवा। तजा राज कजरी उन मेवा।—जायसी ग्र० (गुप्त),
पृ० २०८।

श्रोतइस०—वि० [स० ऊनविश] दे० 'उनइस' और 'उन्नीस'। उ०
—वारह श्रोतइस चारि मनाइस। जोगिन पच्छिउं दिमा
गनाइम।—जायसी ग्र०, पृ० १६८।

श्रोतचना—सज्ञा स्त्री० [स० उदञ्चन, या श्रार्णञ्चन, श्रवाञ्चन हि०
ऐचना] वह रस्सी जो चारपाई के पैदाने की ओर बिनन या
छोचकर कडा रखने के लिये लगी रहती है।

श्रोतचना—क्रि० स० [हि० ऐचना] चारपाई के पायताने की चारों
जगह में लगी हुई रस्सी को बिनन बो कड़ी रखने के
लिये छोचना।

श्रोततिसा—वि० [स० ऊनविश] दे० 'उनतिस'। उ०—श्रीस यशइस
श्रोततिस माता। उत्तर पछिउं ओ' तेद नाचा।—जायसी
ग्र०, पृ० १६८।

श्रोतवना०—क्रि० प्र० [स० श्रवन्मन या उन्नयन] १ 'उनवना'।
उ०—श्रोतवत ग्राइ सेन मुलतानी। जानइ परलय आव
तुलानी।—जायसी ग्र०, पृ० २६०।

श्रोतवाना०—क्रि० स० [हि० श्रोतवना का प्रे० रूप] नीचे
नमाना। झुकाना। उ०—मेहरी भेम रैन के श्रावै। तर पड़
कै पुरुष श्रोतवारवै।—जायसी ग्र०, पृ० ३४३।

श्रोता^१—सज्ञा पु० [स० उद्गमन, प्रा० उग्मवन] तालाबों में पानी
के निकलने का मार्ग। निकास। उ०—गावनि वजावति
नचत नाना रूप करि जहाँ तहाँ उमगन आनद को श्रोतो सो।
केशव (शब्द०)।

मुहा०—श्रोता लगना=तालाब में इतना पानी भरना कि श्रोत
की राह से ज़ाहूर निकल चले। जैसे,—आज इतना पानी
बरसा है कि कीरत सागर में श्रोता लग जायगा। उ०—जमुना
जन जाति डराति हुती, यहै जानति ही घर घेर हैं होनी।
गग कहे सोइ देखिये ताहि हों जाहि जु ये जिय लाग्यो है
श्रोतो।—गग०, पृ० ८२।

श्रोताड०—वि० [देशज] १ जोरावर। बलवान।—(रू०)
२ ऐठनेवाला। उ०—अगू के श्रोताड आचू के उदार।—रघु०
रू०, पृ० २४१।

श्रोताना^२—क्रि० स० [स० श्रवन्मन] १ दे० 'उनाना'। २ काम
लगाकर मुनना।

श्रोताना^३—क्रि० प्र० [स० आकर्णन, प्रकर्णन] सुनाई पड़ना।
श्रवणमोचर होना। उ०—हेरत घातै फिरै चहुधा तँ श्रोतान
हैं वातें देवाल तरी सो।—मिशारी ग्र०, भा० १, पृ० २५।

श्रोतामासी—सज्ञा स्त्री० [स० अक्ष नम सिद्धम्] १. अक्षरारम्भ। उ०—
पढ़ो मन श्रोतामासी घग।—कवीर ग्र०, पृ० २।

विशेष—वच्चो में पाठ आरम्भ कराने से पहले श्रोतम. सिद्धम्
कहलाया जाता है। इसका रूप श्रोतामासी^४ और श्रोतामा
सीघग भी मिलता है। जैसे,—२१ साल तक घर में रहे
श्रोतामासीघ। बाप पढ़े न हम।—किन्नर०, पृ० ६७।

श्रोढाना—क्रि० सं० [हि० श्रोढाना] ढांकना । कपड़े से ग्राच्छादित करना । उ०—(क) कामरी श्रोढाय कोऊ साँवरों कुँवर मोहि बाँह गहि लायो छाँह बाँह को पुलिन ते ।—देव (शब्द०) । (ख) नीरा चौकनर उठी और एक फटा सा कवल उम बुड़्डे को श्रोढाने लगी ।—ग्रांथी, पृ० १०७ ।

श्रोढोनी०, श्रोढोनी०—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० श्रोढना] दे० 'श्रोढनी' । उ०—पूरि कूर की पूरि विलोचन सूँधि सरोरुह श्रोढि श्रोढोनी ।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १६६ ।

श्रोत^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० श्रवण पु० हि० श्रोत्र, श्रोत्रि] १ कण्ठ की कमी । प्राराम । चैन । उ०—(क) नाना उपचार करि हारे सुर सिद्ध मुनि, होत न विसोक श्रोत पावै न मनाक सो ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १७७ । (ख) भली वस्तु नागा लगे काहू भीति न श्रोत । त्रै उद्वेग सुवस्तु अरु देश काल तें होत ।—देव (शब्द०) । २ आलस्य । ३ किन्नायत ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

श्रोत^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० श्रवण या हि० श्रवण] प्राप्ति । लाभ । नफा । वचत । जैसे,—जहाँ चार पैसे की श्रोत होगी वहाँ जायेंगे । यौ०^३—श्रोत कसर = नफा नुक्सान । जैसे—इनमें कौन सी श्रोत कसर है ।

श्रोत^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ताने का सूत ।

श्रोत^४—वि० [सं०] बुना हुआ । गुँथा हुआ ।

यौ०—श्रोतश्रोत ।

श्रोत^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० श्रोत] दे० 'श्रोत' । उ०—साहि तनै सरजा के भय सो भगाने भूप, मेरु में लुकाने ते लेहत जाय श्रोत हैं ।—भूपण ग्रं०, पृ० १६ ।

श्रोतनी०—वि० [अ० वननी] देश का । स्वदेश सवधी । अपने देश का । उ०—अरे हाँ, पलटू बडे खेलाडी यार हमारे श्रोतनी ।—पलटू, पृ० ७६ ।

श्रोतप्रोत^१—वि० [सं०] एक में एक बुना हुआ । गुँथा हुआ । परस्पर लगा और उलझा हुआ । बहुत मिला हुआ । इतना मिला हुआ कि उसका अलग करना असंभव सा हो । उ०—श्रोतप्रोत है जहाँ मनुज का जीवन मद मत्सर से ।—पथिक, पृ० १३ ।

श्रोतप्रोत^२—सञ्ज्ञा पुं० १ ताना बाना । २ एक प्रकार का विवाह जिसमें एक आदमी अपनी लड़की का विवाह दूसरे के लड़के के साथ करता है और वह दूसरा भी अपनी लड़की का विवाह पहले के लड़के के साथ करता है ।

श्रोता०—वि० [हि० उत्तना] [स्त्री० श्रोती] उत्तना । उ०—(क) मोहि कुसल कर सोच न श्रोता । कुसल होत जौ जनम न होता ।—जायसी ग्रं०, पृ० ६३ । (ख) कहीं लिलार दुइज कै जोती । दुइजहि जोति कहीं जग श्रोती ।—जायसी ग्रं०, पृ० ४३ ।

श्रोतान०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रवण] श्रुत राग या सुनने से उत्पन्न अनुराग । उ०—सुनि राजन लग्यो श्रोतान । लंगे मीनकेतु कृत वान ।—पृ० रा० २५।२८ ।

२-२२

श्रोतारा०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रवण, हि० उत्तारा] दे० 'उतारा' ।

उ०—पेछे पुर वासियाँ, घणी अगजोत घरा री । जादम गोंयद तरौ, बाग कीर्वा श्रोतारी ।—राज० रत्न०, पृ० ३५१ ।

श्रोताल०—क्रि० वि० [सं० उद् + त्वर] शीघ्र । जल्दी । उ०—पड़ही लहराँ मिस पगा, त्यों हँदा श्रोताल ।—वांकी० ग्रं० भा० ३, पृ० ६६ ।

श्रोतु^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ ताना । २ विडाल । मार्जार [को०] ।

श्रोतु^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] विल्ली ।

श्रोतु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रोतु] श्रोतु । ताना । उ०—'बुनने की करधी 'तिसर' कहलाती थी, ताना 'श्रोतु' और बाना 'तंतु' कहलाता था' ।—हिंदु सभ्यता, पृ० ७६ ।

श्रोतो०—वि० [हि०] दे० 'श्रोता' ।

श्रोत्ता^१—वि० [हि०] दे० 'श्रोता' या 'उतना' ।

श्रोत्ता^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रवण] उन पट्टे का पावा जिसपर दरी बुननेवाले बैठते हैं ।

श्रोथ—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] शपथ । प्रतिज्ञा ।

श्रोद^१—वि० [सं० श्रद्धा] उद् या सं० उद = जल] नमी । तरी । गीलापन । मील ।

श्रोद^२—वि० गीला । आर्द्र । नर । उ०—आर्द्रकः सकल मुखशायक, निसि दिन रहत केलि रस श्रोद ।—सूर०, १०।११६ ।

श्रोदक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जल में रहनेवाला जंतु । जलमाणी [को०] ।

श्रोदन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पका हुआ चावल । भात । उ०—(क) जल लौं हों जीवों जीवन भर सदा नाम तब जपिहौ । दधि श्रोदन दोना भरि देहों अरु भाइनि मैं थपिहौ ।—सूर०, ६।१६४ । (ख) भाजि चले किलकन मुख दधि श्रोदन लपगइ ।—मानस, १।२०३ । २ वादल । मेघ [को०] ।

श्रोदनपाकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नीलभटिका [को०] ।

श्रोदनाह्वया, श्रोदनाह्व्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'श्रोदनिका' ।

श्रोदनिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ बना नामक ओषधि । २. महासमंगा नामक एक पौधा [को०] ।

श्रोदनो—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] बला । वरियारा । वीजवंध ।

श्रोदनीय, श्रोदन्य—वि० [सं०] १ श्रोदन सवधी । २ श्रोदन के योग्य [को०] ।

श्रोदर^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उदर] दे० 'उदर' । उ०—(क) जब रहनी जननी के श्रोदर परन संभारल हो ।—धरम०, पृ० ४५ । (ख) पुनि वह जोति मातु घट आई । तेहि श्रोदर कादर बहु पाई ।—जायसी ग्रं०, पृ० १६ ।

श्रोदरना०—क्रि० अ० [सं० श्रवण, हि० श्रोदरना] १ विदीर्ण होना । फटना । २ छिन्न भिन्न होना । टूटना । नष्ट होना । जैसे,—वर श्रोदरना । उ०—फूटहि कोट फूट जनु सीसा । श्रोदरहि बुरुज जाहि सव पीसा ।—जायसी ग्रं०, पृ० २३४ ।

श्रोदा—वि० [सं० श्रद्धा] उद्, हि० श्रोद या सं० उद = जल] [वि० स्त्री० श्रोदी] गीला । नम । तर । उ०—(क) उत्तम विधि सो मुख

श्रीरामाना—समा पुं [हिं० श्रीराम] ३० 'श्रीराम' ।

श्रीरामाना—समा पुं [हिं० श्रीराम] १ श्रीराम की वस्तु । राम
राम ही श्रीराम । उ०—श्रीराम श्रीराम कमध्वज नम्र श्रीराम सब
हिं० ।—सं० १०, ६१।२०१३ । २ टाल । करी । उ०—
श्रीराम रामें तप पर दीन्हा । श्रीरामें वे श्रीराम पर लीन्हा ।
—श्रीराम (नन्द०) ।

श्रीरामाना—हिं० उ० [मं० श्रीराम=हृदय या हिं० श्रीराम+ना
(प्रत्यय)] १ रामना । रामना करना । राम करना । उ०—
श्रीराम तुमसे प्रभु राम । श्रीरामहिं हाथ रामनिहं के धाये ।
—मानस, २।३०५ । २ उपर लेना । सहना । उ०—दूसरी
श्रीराम निमति प्रमान नतावत ही हाइ हाइ भइ है । रामयो भले
रामनात नमन फनि के फूल सो श्रीराम नई है ।—राम
१०, पृ० १०१ । ३ (दृष्ट लेने के लिये) फैलाना । पसारना ।
रोपना । उ०—(क) चन्द्र मातु, सहिदानी मुद्रिका दर्श प्रीति
रामिनाय । रामप्राय तू मोर निवारहु श्रीराम दक्षिण हाथ ।
सूर० ६।३३ । (ख) राम के लीजें कही कोन नहिं श्रीरामो
हार ।—मन०, पृ० १२८ । (ग) राम श्रीराम मनावहिं
हिं० सो नई जगत्पुत्र राम । विष्णु निवारि विवाह करानहु
या दृष्ट पुत्र रामो ।—रघुराज (शब्द०) ।

श्रीरामाना—समा पुं [मं०] राम का एक भेद जिसमें 'सा ग म प नि'
१ पाँच स्वर माने । इसमें श्रवण और पञ्चम वजित हैं ।
मनस्य शक्ति राम शक्ति प्रवर्तन ।

श्री०—श्रीरामाना=मनस्य में श्रीराम का एक भेद । इसके
प्राथम्य मन्त्र स्वर और प्रवरोह में छह स्वर प्रयुक्त किए
जाते हैं । श्रीराम संपूर्ण=यह भी श्रीराम का एक भेद है । जिसके
प्राथम्य मन्त्र स्वर और प्रवरोह में मूल्य प्रवर्तन सात स्वरों
का प्रयोग किया जाता है ।

श्रीरामाना—समा पुं [मं० कुट्ट, प्रा० उड] [श्री० श्रीराम] १ २० 'श्रीराम'
२ राम का एक भेद जिसमें मन्त्रों का प्रयोग होता है । गोवा ।
राम दोहरा । उ०—मुच श्रीराम दे नाहिने पर काचडा पुरीय ।
—श्रीराम १०, भा० २, पृ० ५३ । ३ एक चंचिया का
नाम जिसमें मूर्ति, चूना नापा जाता है ।

श्रीरामाना—समा पुं [मं० जन, प्रा० जन] समी । सकात । टोटा ।

श्रीरामाना—श्रीराम पञ्चम=(१) प्रप्राप्य होना । प्रकाल पञ्चम ।
२. निन्दना ।

श्रीरामाना—समा पुं [मं०] राम का एक भेद जिसमें उदात्त होनेवाला
या यः । शिवा । शिवा (दे०) ।

श्रीरामाना—समा पुं [हिं० उडिया] २० 'श्रीराम' ।

श्रीरामाना—समा पुं [मं०] 'श्रीराम' (दे०) ।

श्रीरामाना—समा पुं [मं०] राम प्रणीत मन्त्रों का एक
भेद जिसमें राम नाम श्रीराम या श्रीराम नामक नामक
राम नाम के उर के राम पर श्रीराम का नाम ही निन्द
श्रीराम नाम होता है ।

श्रीरामाना—समा पुं [हिं०] २ 'श्रीराम' । उ०—रामे पाउं
श्रीराम नई है । श्रीरामाना—श्रीराम १० (मुद्रा),
पृ० २।६१ ।

श्रीरामाना—समा पुं [मं०] १ उडोसा देश । २ उस देश का निवासी ।

३. गुडहर का फूल । देवीफूल । अडहुल ।

श्रीरामाना—वि० [मं०] समीप या नजदीक लाया हुआ (कौ०) ।

श्रीरामाना—समा पुं [हिं० श्रीरामाना] श्रीरामने का वस्तु । उ०—लोभइ श्रीराम
डासन । सिन्धोदर पर जमपुर रास न ।—मानस, ७।४० ।

श्रीरामाना—क्रि० सं० [मं०] श्रवा या उपा+वेष्टन, प्रा० श्रीरामाना

१ कपड़े या इसी प्रकार की और वस्तु से देह ढकना । शरीर के
किसी भाग को वस्त्र आदि से आच्छादित करना । जैसे,—रजाई
श्रीरामाना, दुपट्टाश्रीरामाना, चदर श्रीरामाना । उ०—मारण चलत अनीति
करत है, हठ करि मावन पात । पीतावर वह सिर तें श्रीरामाना,
अंचल दं मुमुकात ।—सूर०, १०।३३८ । २ अपने ऊपर
लेना । सहना । उ०—परं सो श्रीराम सीम पर भीखा सनमुख
जोइ । दृढ निस्चिं हरि को भजै होनी होइ सो होइ ।
—भीखा०, भा०, पृ० ६४ । ३ जिम्मे लेना । भागी बनना ।
अपने सिर लेना । जैसे,—उनका श्रवण हमने अपने ऊपर
श्रीराम लिया । उ०—बोले नहीं रह्यो दुरि वानर
हुम मे देह छिपाइ । कै अपराध श्रीराम अब मेरो कै तू देहि
दिखाइ ।—मूर०, (शब्द०) ।

श्रीरामाना—श्रीराम या विद्यावे ? = क्या करें ? किस काम में लावें ?

उ०—दुमह वचन अति हमें न भावै । जोग कहा श्रीराम कि
विद्यावे ।—सूर०, १०।३०६४ ।

श्रीरामाना—समा पुं श्रीरामने का वस्तु । उ०—ममूलिका का छाजन
टपक रहा था । श्रीरामने की कमी थी । वह ठिठुरकर एक कोने
में बंठी थी ।—श्रीराम, पृ० ११७ ।

श्री०—श्रीरामाना विद्यावे=(१) श्रीरामने और विद्यावे का वस्तु ।
(२) व्यवहार की वस्तुएँ । मरजाम । टटपट ।

श्रीरामाना—श्रीरामाना उतारना=अप्रमानित करना । इज्जत उतारना ।

श्रीरामाना श्रीरामाना=रौद्र स्त्री के साथ मगाई करना (छोटी
जाति) । श्रीरामाना गले में डालना=वाधकर न्यायकारों के
पास ले जाना । अपराधी बनाकर पकड़ रखना ।

विशेष—पहले यह रीति थी कि जब छोटी जाति की स्त्रियों के
साथ कोई अपराध करता था तब वे उसके गले में कपड़ा
डालकर चौधरी के पास ले जाती थी ।

श्रीरामाना विद्यावे बनाना=हर वक्त या बेपरवाही से काम
में लाना ।

श्रीरामाना—समा पुं [हिं० श्रीरामाना] स्त्रियों के श्रीरामने का वस्तु ।
उपरनी । करिया । उ०—देख लनाई स्वच्छ मधूर कपोत मे,
छिमक गई उर मे जरतारी श्रीरामाना ।—महा०, पृ० १३ ।

श्रीरामाना—श्रीरामाना वचना=वचनाया जोड़ना । मन्त्र उतारना ।
बढ़न या उग्र स्थापित करना ।

श्रीरामाना—समा पुं [हिं० श्रीरामाना या श्रीराम=श्रीराम, सहारा] सहाना ।
मिस । उ०—मुनि श्रीराम श्रीराम जानि करहु । निज पुत्र रीति
दृढ मई घरहु । सन सन मव गोविन केरे । हरि श्रीराम आवे
रति मेरे ।—विद्याम (शब्द०) ।

श्रीरामाना—हिं० सं० [हिं० श्रीरामाना का प्र० रूप] कपड़ों से
ढकाना ।

श्रीज्ञा^१—सज्ञा पुं [सं उपाध्याय, प्रा० उवज्ज्ञाश्री, उवज्ज्ञाश्र, श्रीज्ञाश्र] [श्री० श्रीज्ञाइन] सरजूपारी, मैथिल और गुनरावों ब्राह्मणों की एक जाति ।

श्रीज्ञा^२—संज्ञा पुं भूत प्रेत का डनेवाला । सयाना । उ०—भए जीउं विनु नाउत श्रीभा । विप भइ पूरि, काल भए गोभा ।—जायसी (शब्द०) ।

श्रीज्ञाई—सज्ञा स्त्री [हि० श्रीज्ञा + ई (प्रत्य०)] श्रीभा की वृत्ति । भाउफूक । भूत प्रेत भाडने का काम ।

श्रीज्ञेती—सज्ञा स्त्री [हि० श्रीज्ञा + ऐत + ई (प्रत्य०)] दे० 'श्रीभाई' ।

श्रीष्ट^१—सज्ञा स्त्री [सं उट = घास फूस या स० आ + वृत्ति = श्रावण, या स० श्रीणन > श्रीडन > श्रीष्ट श्रयवा देश० श्रीहृष्ट = श्रव-गुठन] १ रोक जिससे सामने की वस्तु दिखाई न पड़े या और कोई प्रभाव न डाल सके । विक्षेप जो दो वस्तुओं के बीच कोई तीसरी वस्तु आ जाने से होता है । व्यवधान । आड़ । श्रीभन । जैसे,—वह पेड़ों की श्रीष्ट में छिप गया । उ०—लता श्रीष्ट सब सखिन लखाए ।—मानस, १।२३१ ।

मुहा०—श्रीष्टो से श्रीष्ट होना = दृष्टि से छिप जाना । श्रीष्ट में = वहाने से । हँसे से । जैसे,—घम की श्रीष्ट में बहुत से पाप होते हैं । २ शरण । पनाह । रक्षा । उ०—(क) बड़ी है राम नाम की श्रीष्ट । मरन गए प्रभु काहि देत नहि, करत कृपा कै कोट ।—सूर०, १।२३२ । (ख) तन श्रीष्ट के नाते जु कवड़ें डाल हम आही नहीं ।—पद्माकर ग्र०, पृ० १४ । ३ वह छोटा भी दीवार जो प्रायः राजमहलों या बड़े बड़े जनाने मकानों के मुख द्वार के ठीक आगे, अंदर की ओर परदे व लिये बनी रहती है । घूँघट की दीवार । गुलामगदिय ।

श्रीष्ट^२—सज्ञा पुं [देश०] कुसुमोदर नाम का एक वृक्ष ।

विशेष—इसमें वरसात के दिनों में सफ़ेद और पीले सुगंधित फूल तथा ताड़ की तरह के फल लगते हैं । इन फलों के अंदर चिकना गुदा होता है और इनका व्यवहार सटाई के रूप में होता है । वैद्यक में यह फल रुचिकर, श्रम-शूल-नाशक, मलरोधक और विषघ्न कहा गया है ।

पर्या०—भव । भव्य । भविष्य । भवन । वक्शोचन । लोभक । सपुटाग । कुसुमोदर ।

श्रीष्टन—सज्ञा पुं [सं आ + वृत्तन, हि० श्रीष्टना] चरखी के दो डंडे जिनके घूमने से रई में स विनील अलग हो जाते हैं ।

श्रीष्टना—क्रि० सं [सं श्रावतन, पा० श्रावटन, प्रा० श्राउटन] १ कपास को चरखी में दबाकर रई और विनीलों को अलग अलग करना । उ०—यहि विधि कहीं कहा नहि माना । मारग माहि पसारिनि ताना । रात दिवस मिलि जोरिनि ताना । श्रीष्टन कातत भरम न भागा ।—कबीर (शब्द०) । २ बार बार कहना । अपनी ही बात कहते जाना । जैसे,—तुम तो अपनी ही श्रीष्टते हो दूसरे की सुनते ही नहीं । ३ रोकना । आटना । अपने ऊपर सहना । उ०—(क) दास को जो डारी चोट श्रीष्ट नई अग मे ही नहीं मैं तो जाहुँ विजय मूरति बताई है ।—प्रिया० (शब्द०) । (ख) मुरि मुसुकाइ जो पिछोई चोट श्रीष्टी है ।—रत्नाकर, भा० २, पृ० २०६ । ४ अपने जिम्मे लेना । अपने ऊपर लेना ।

श्रीष्टनी—सज्ञा स्त्री [हि० श्रीष्टना] कपास श्रीष्टने की चरखी । चरखी जिसमें कपास के विनील अलग किए जाते हैं । डेलनी ।

श्रीष्टपाय—सज्ञा पुं [सं श्रावटपाद, प्रा० श्रावटपाव] दे० 'श्रावटपाव' । उ०—चाड सिर चढत बढत प्रति नाडिलो ह्वै कैसे गनै वनै जेव श्रीष्टपाय तव के ।—घनानंद०, पृ० ४६ ।

श्रीष्ट^१—सज्ञा पुं [हि० श्रीष्ट] १. परदे की दीवार । पतली दीवार जो केवल परदे के वास्ते बनती है । उ०—(क) मन अरपण कौधै हरि मारग । चाहे प्रज श्रीष्टे चडी ।—वेलि०, दू० १३६ ।

(ख) चाहे मुख अगणि श्रीष्टे चडि ।—वेलि०, दू० १५५ । २ परकोटा । घेरा । बाँध । उ०—तन सरवर जन बीर रस श्रीष्टा बधि सुरपि ।—पृ० रा०, ५।६६ । ३ आड़ । श्रीष्ट । उ०—देखत रूप ठगोरी मी लागत नैननि सैन निमेष की श्रीष्टा ।—नंद० ग्र०, पृ० ३४१ । ४ ब्राह्मणी । बननी । बनकुस ।

श्रीष्टा^२—सज्ञा पुं [हि० श्रीष्टना] कपास श्रीष्टनेवाला आदमी ।

श्रीष्टा^३—सज्ञा पुं [हि० उठना] जाँत के निकट पिसनहारियों के बैठने का चक्कर ।

श्रीष्टा^४—सज्ञा पुं [हि० गोठना] मोनारो का एक श्रीष्टार जिसमें वे बाजूबद के दाँतो की खोरिया बनाते हैं । इसे गोटा भी कहते हैं ।

श्रीष्टी—सज्ञा स्त्री [हि० श्रीष्टना] चरखी । कपास श्रीष्टने की कन ।

श्रीष्टेगना^१—सज्ञा पुं [हि० श्रीष्टेगना] दे० 'उठेगना' ।

श्रीष्टेगना—क्रि० अ० [सं *श्रावटयाङ्गन > प्रा० *श्रीष्टयाङ्गन या हि० उठना + अंग] १ किसी वस्तु से टिककर बैठना । सहारा लेना । टेक लगाना । उठेगना । २ थोड़ा आराम करना । कमर सीधी करना ।

श्रीष्टेगना^२—क्रि० अ० [हि०] दे० 'श्रीष्टेगना' । उ०—सब चौपारिन्ह चदन खना । श्रीष्टेगि सभापति बैठे सना ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १६ ।

श्रीष्टेगना^३—क्रि० म० [हि०] दे० 'उठेगना' ।

श्रीष्ट^१—सज्ञा पुं [सं श्रीष्ट, प्रा० श्रीष्ट] दे० 'श्रीष्ट' । उ०—मुझे प्यास लगी थी, श्रीष्ट चाटने लगी ।—कंकाल, पृ० २१३ ।

श्रीष्ट^२—सज्ञा स्त्री [हि० श्रीष्ट] वह खेत जो परती छोड़ते हैं । उ०—सिमटा पानी खेतों का, श्रीष्ट पर चले हल ।—अपरा, पृ० १६५ ।

श्रीष्ट^३—सज्ञा पुं [हि० श्रीष्ट] दे० 'श्रीष्ट' । उ०—गरव अगिन गहिरे सब बरा । विनती श्रीष्ट खरग निसतरा ।—चिना०, पृ० ६५५ ।

श्रीष्ट^४—सज्ञा पुं [सं अवार] दे० 'श्रीष्ट' । उ०—(क) कवार तामू श्रीष्टि करि जो निरवाहे श्रीष्टि ।—कवीर ग्र०, पृ० ८८ । (ख) मानिनि मान आहुँ कर श्रीष्ट । रयनि बहति है रहति श्रीष्ट श्रीष्ट ।—विद्यापति, पृ० १२२ ।

श्रीष्ट^५—सज्ञा पुं [हि० श्रीष्ट या देश०] १ वह जो गदहों पर ईंट, चूना मिट्टी आदि डोना हो । गदहों पर माल डोनेवाला व्यक्ति । दे० 'श्रीष्ट' ।—बल्लभ, पृ० १ ।

श्रीष्टक—सज्ञा पुं [सं] दे० 'श्रीष्टक' [श्रीष्ट] ।

ओछाई—सज्ञा स्त्री० [हि० ओछा + ई (प्रत्य०)] नीचता । क्षुद्रता । छिछोरापन । खोटाई । उ०—हमहि ओछाई मई जबहि तुमको प्रतिपाले । तुम पूरे सब भाति मातु पितु सकट चाने ।—सूर (शब्द०) ।

ओछाडी—वि० [प्रा० ओच्छाय = आच्छादन करना] रक्षा करनेवाला । रक्षक । पालक । उ०—सगत सुखी कर सेवगा, अखिल जगत ओछाड ।—बांकी ग्र०, भा० १, पृ० ४८ ।

ओछापन—सज्ञा पुं० [हि० ओछा + पन (प्रत्य०)] नीचता । क्षुद्रता । छिछोरापन ।

ओछारत—सज्ञा स्त्री० [हि० ओछाड़] दे० 'बोछाड़' ।

ओज^१—वि० [स० ओजस्] विपम । अग्रगम [को०] ।

ओज^२—सज्ञा पुं० [हि० ओजना = सहना] कृपणता । किफायतदारी । कार्पण्य । जैसे,—वह बहुत ओज से खर्च करता है ।

ओज^३—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० ओजस्वी, ओजित] १ वल । प्रताप । उ०—तेज ओज और वल जो बदान्यता कदम्ब सा ।—लहर, पृ० ५६ । २ उजाला । प्रकाश । उ०—कामना की किरन का जिसमे मिला हो ओज । कौन हो तुम, इसी भूले हृदय की चिर खोज ।—कामायनी । ३ कविता का वह गुण जिससे सुननेवाले के चित्त में आवेश उत्पन्न हो ।

विशेष—वीर और रौद्र रस की कविता में यह गुण अवश्य होना चाहिए । टवर्गी अश्वरो की अधिकता, सयुक्ताश्वरो की बहुतायत और समासयुक्त शब्दों से यह गुण अधिक आता है । परुषावृत्ति में यह गुण होता है ।

४ शरीर के भीतर के रसों का सार भाग । ५ ज्योतिष में विपम राशियाँ (को०) । ६ शस्त्रकौशल । ७ गति । वेग (को०) । ८ पानी (को०) । ९ प्रत्यक्ष होना । आविर्भाव होना (को०) । १० धातु का प्रकाश (को०) । ११ जननशक्ति या जीवन शक्ति (को०) ।

ओजक^४—सज्ञा पुं० [हि० उज्जकना] उछल कूद । क्रीडा । आनन्द । उ०—लाडो लाडी जाय लडावण रात्यू ओजक सारै । जन हरिराम फिर मन फीटी ध्यान न हरि का धारै ।—राम० धर्म०, पृ० १७३ ।

ओजना—कि० सं० [स० अवर्ण्य, प्रा० ओरुज्ज, हि० ओझल] रोकना । ऊपर लेना । सहना । स्वीकार करना ।

ओजसीन—वि० [स०] मजबूत । शक्तिशील । ताकतवर [को०] ।

ओजस्वान्—वि० [स०] १ शक्तिशाली । ताकतवर । २ दीप्त । चमकीला । ज्योतिर् (को०) ।

ओजस्विता—सज्ञा स्त्री० [सं०] तेज । काति । दीप्ति । प्रभाव ।

ओजस्वी—वि० [स० ओजस्विन्] [वि० स्त्री० ओजस्विनी] १ शक्तिमान् । तेजवान् । प्रभावशाली । २ प्रतापी । च्योति । दीप्ति । चमकीला (को०) ।

ओजित—वि० [स०] १ वलवान् । प्रतापी । तेजवान् । शक्तिशाली । २ उत्तोजित । जिसमें जोश प्राया हो । ओजयुक्त ।

ओजिष्ठ—वि० [स०] अत्यंत उग्र । अत्यधिक शक्तिशाली [को०] ।

ओजोय—वि० [सं०] दे० 'ओजिष्ठ' [को०] ।

ओजूद—सज्ञा पुं० [अ० वजूद] शरीर । तन । जिस्म । उ०—तजो कुलती मेटी भग । अह्निसि रापी ओजूद वधि । सरव सजोग आवै हाथि । गुरु राखै निरवाण समाधि ।—गोरख०, पृ० ७४ ।

ओजोन—सज्ञा पुं० [फ्रेंच] कुछ घना किया हुआ अम्लजन तत्व ।

विशेष—इसका घनत्व अम्लजन से १३ गुना होता है । इसमें गंध दूर करने का विशेष गुण है । गरमी पाने से ओजोन साधारण अम्लजन के रूप में हो जाता है । ओजोन का बहुत थोड़ा अणु वायु में रहता है । नगरो की अपेक्षा गाँवों की वायु में ओजोन अधिक रहता है । सागरतट पर तथा पहाडों पर यह बहुत मिलता है इसका सकत 'ओ^३' है ।

ओजोन पेपर—सज्ञा पुं० [फ्रेंच ओजोन + अ० पेपर] एक प्रकार का कागज जिसके द्वारा यह परीक्षा हो सकती है कि वायु में ओजोन है या नहीं ।

ओजोनबकस—सज्ञा पुं० [फ्रेंच ओजो + अ० बक्स] वह सूक्ष्म जिसमें ओजोन पेपर रखकर परीक्षा करते हैं कि यहाँ की हवा में ओजोन है या नहीं । यह बकस ऐसा बना होता है कि इसके भीतर हवा ता जा सकती है, पर प्रकाश नहीं जा सकता ।

ओझ^१—सज्ञा पुं० [स० उवर, हि० ओझर] १ पेट की थैली । पेट । २ आँत ।

ओझ^२—सज्ञा पुं० [हि० ओझा] दे० 'ओम्हा' । उ०—तुलसी रामहि परिहरे निपट हानि सुनु ओम्हा । सुरसरिगत सोई सलिल सुरा सरिस गगोभ ।—तुलसी ग्र०, पृ० १०८ ।

ओझइती—सज्ञा पुं० [हि० ओझा + ऐत > झइत (प्रत्य०)] दे० 'ओम्हा' ।

ओझइती—सज्ञा स्त्री० [हि० ओझइत] दे० 'ओम्हनी' ।

ओझकना^४—कि० अ० [हि० उझकना] चौंकना । चमकना । उ०—सूती सपनै ओझकी बोली अटपट वैन । जन हरिया घर आँगनै सही पधारे सैन । रा० धर्म०, पृ० ६७ ।

ओझडी—सज्ञा स्त्री० [दे० प्रा० ओज्जरी] दे० 'ओम्हरी' ।

ओझर—सज्ञा पुं० [स० उवर, प्रा० ओज्जरी, पुं० हि० ओवर, ओझर] [को० अल्पा० ओझरी] १ पेट । २ पेट के भीतर की वह थैली जिसमें खाए हुए पदार्थ भरे रहते हैं । पचोनी ।

ओझराना^४—कि० अ० [स० अवर्ण्यन, प्रा० ओरुज्जन] उलझना । अरुझाना । लिपटना । उ०—प्रधर सुखाएल केस ओझराएल नीलि नलिन दल तहु ।—विद्यापति, पृ० ३०५ ।

ओझरी—सज्ञा स्त्री० [दे० प्रा० ओज्जरी] ओम्हर । पचोनी । उ०—ओम्हरी की ओम्हरी काँधे आँतन की सेल्ही बाँधे मूँड के कमडलु खपर किए कोरि कै ।—तुलसी ग्र०, पृ० १६५ ।

ओझल^१—सज्ञा स्त्री० [स० अव = नहीं + हि० झलक] ओट । झाड़ । उ०—अब तो रूप की ओझल से इसे निशक वातचीत करते देखूँगा ।—शकुंतला, पृ० १४ ।

ओझल^२—वि० लुप्त । गायब । उ०—दिल ओझल मेरा दिल जानी ।—धरनी०, पृ० १८ ।

पढ़ना । कष्ट सहने पर उतार होना । जैसे —अब तो हम ओखली में सिर दे ही चुके हैं, जो चाहे सो हो ।

श्रीला^१—सज्ञा पुं [सं० √ ओख् = वारण करना, वचाना] भिन्न । व्याज । वहाना । हीला । उ०—(क) देखिये को नंदनदन को, ननदी नंदगाँव चलीं केहि ओखे ।—येनी प्रवीन (शब्द०) । (ख) नेनी अनखाति न अनख मरी आखिन, अनोखी अनखाली रोख ओखे ते करति है ।—देव (शब्द०) ।

श्रीला^२—वि० [सं० √ ओख् = 'सूचना', प० श्रीला = टेढ़ा, कठिन] वि० स्त्री० श्रीलो] १. हल्का सूखा । २. कठिन । विकट । टेढ़ा । उ०—सुनु, नीको न नेह लगवानो है, फिर जो पै लग तो निवाहनो है । अति ओखी है प्रीति की रीति, अरी नहि जोस को रोच सुहावनो है ।—सुदरी सर्वस्व (शब्द०) । ३. छोटा । जिसमें मिलावट हो । चोखा का उलटा । ४. भीना । जिसकी विनावट दूर दूर हो । विरल । ५. ओछा । टलका । साधारण । श्रीला^३—सज्ञा पुं [हिं० उपाख्यान, प्रा० उवक्खण] उपाख्यान । कथा । कहानी । उ०—उलटा समके राम ओख खो साचो करयो । शरणागत दुखताम यह कारण अबही भयो ।—राम० धर्म, पृ० २६६ ।

श्रीलापन—सज्ञा पुं [हिं० श्रीला + पन (प्रत्य०)] दे० 'ओलापन' । श्रीग^१—सज्ञा पुं [सं० उद् + √ ग्रह हिं० उगहना] उगहनी । कर । चदा । महसूल । उ०—काहे को हमसो हरि लागत । पैंडो देहु बहुत अब कीनो सुनत हैंसें लोग । सूर हमें मारग जनि रोकहु घर तें लीजें श्रीग ।—सूर (शब्द०) ।

श्रीगण^१—वि० [सं०] सामर्थ्ययुक्त । सघटित [को०] । श्रीगण^२—सज्ञा पुं [सं० अवगुण] दे० 'अवगुण' ।—(डि०) । श्रीगरना^१—क्रि० अ० [सं० अवगरण] पानी या और किसी तरल वस्तु का धीरे धीरे टपकना या निकलना । निचुड़ना । रसना । श्रीगरना^२—क्रि० सं० निकालना । बाहर करना । प्रकट करना । उ०—सत्ता सव्द के नेजा बाँधो श्रीगरत नाम अगारी हो ।—गुलाल०, पृ० २६ ।

श्रीगल^१—सज्ञा पुं [देश०] परजी भूमि । श्रीगल^२—सज्ञा पुं [हिं० श्रीगरना, या प्रा० श्रीगाल = छोटा प्रवाह] एक प्रकार का कुआँ ।

श्रीगला^१—सज्ञा पुं [देश०] कूट । फाफर । उ०—फाफड़ या फाफड़ा यहाँ श्रीगला कहा जाता है—किन्नर०, पृ० ७० ।

श्रीगार^१—सज्ञा पुं [हिं० उगाल] पान की पीक । उ०—लाल यह सुंदर बीरी लीजें । हँसि हँसि के नदलाल श्रीगी मुख श्रीगार मोहि दीजें ।—मास्तेदु ग्र०, भा० २, पृ० १२७ ।

श्रीगारना^१—क्रि० सं० [म० अगारण] कुँए का पानी निकाल डालना । कुँआ साफ करना । छानना ।

श्रीगुण^१—सज्ञा पुं [सं० अवगुण] दे० 'अवगुण' । उ०—अग अपार हुबे जो अवगुण, तोपिण नाह न नाह तजें ।—रघु० ह०, पृ० १०२ ।

श्रीघ—सज्ञा पुं [सं०] १. समूह । ढेर । उ०—सिल निदक अब श्रीघ नसाए । लोक विलोक बनाइ वसाए ।—मानस, १/१६ ।

यो० श्रीघ = पापों का समूह ।

२. किसी वस्तु का घनत्व । ३. दहाव । धारा । ४०—(क) सुनु मुनि उहाँ मुवाहू लखि निज दल खडित गात । महा विकन पुनि रुधिर के ओघ विपुल तन जात ।—रामायणवेध (शब्द०) । (ख) साहस उमडना या वेगपूर्ण ओघ सा ।—लहर, पृ० ६६ । ४. साध्य के अनुसार एक प्रकार की तुष्टि । कालतुष्टि ।

विशेष—'काल पा के मव काम आप हो हो जावगा', इस प्रकार सतोष कर लेने को कालतुष्टि या 'ओघ' कहते हैं ।

५. सातत्य । नैरतय । अविच्छिन्नता (को०) । ६. परपरा या परपरागत निर्देश (को०) । ७. समग्र । सपूर्ण (को०) । ८. नृत्य का एक भेद (को०) । ९. द्रुत लय (को०) । १०. गीत के साथ बजाई जानेवाली तीन वाद्य विधियों में से एक । शेष दो के नाम तत्त्व और अनुगत हैं (को०) ।

श्रीघात^१—वि० [सं० अवघट] दे० 'अवघट' । उ०—इसे घाट श्रीघाट किन्ने हमोर ।—हम्मीर रा०, पृ० १५२ ।

श्रीछ^१—वि० [उच्छ] दे० 'ओछा' । उ०—ओछ जानि कै काहुहि जिन कोइ गरव करेइ । ओछे पर जो दंड है जीति पत्र तेइ देइ ।—जायसी ग्र०, पृ० ११४ ।

श्रीछना^१—क्रि० सं० [हिं० श्रीछ + ना (प्रत्य०)] दे० 'ऊँछना' । उ०—मैया कवहि बढंगी चोटी । काहत गुहत नहावत ओछत नागिन सी भव लोटी ।—कविता को०, भा० १, पृ० ६६ ।

श्रीछना^२—क्रि० सं० [सं० अङ्गोच्छन] दे० 'अंगोछना' ।

श्रीछना^३—क्रि० सं० [सं० अवाञ्चन] दे० 'अवाञ्चना' ।

श्रीछव^१—सज्ञा पुं [सं० उत्सव, प्रा० उच्छव] दे० 'उत्सव' । उ०—जोधा जंत कमाने जादव, इल मछरीक करे दव ओछव ।—राज० ह०, पृ० ३२३ ।

श्रीछा—वि० [सं० तुच्छ, प्रा० उच्छ] [स्त्री० श्रीच्छी] १. जो गभीर न हो । जो उच्चाशय न हो । तुच्छ । क्षुद्र । छिछोरा । बुरा । छोटा । उ०—(क) ये उपजे ओछे नद्य के लपट भए बजाइ । सूर कहा तिनकी सगति जे रहे पराए जाइ ।—सूर०, १०/२३६६ । (ख) ओछे वडे न ह्वैं सकें लगी सतर ह्वैं गैन । दीरघ होहि न नैकहूँ फारि निहारे नैन ।—विहारी २०, दो० ६० ।

यो०—श्रीछी कोख = ऐसी कोख या पेट जिससे जनम लडके न जिएँ । श्रीछी नजर = अदूरदर्शिता । हल्की निगाह । निम्न विचार । उ०—दिल साजना दुमेल, नीचे सम श्रीछी नजर ।—वांकी० ग्र०, भा० १, पृ० ६१ ।

२. जो गहरा न हो । छिछला । उ०—देवलि जाँउं तो देवी देखीं तीरथ जाँउं त पाँणी । ओछी बुद्धि अगोचर बाँणी नही परम गति जाणी ।—कबीर ग्र०, पृ० १५४ । ३. हनका । जोर का नहीं । जिसमें पूरा जोर न लगा हो । जैसे,—ओछा हाथ पडा नहीं तो बचकर न निकल जाता । उ०—सहसा किसी ने उसके कंधे पर छुरी मारी, पर वह ओछी लगी ।—कंकाल, पृ० १७८ । ४. छोटा । कम । जैसे,—ओछा अँगरवा, ओछी पूँजी । उ०—या वाई ने वस्तू बडी पाई है और पात्र तो ओछो है ।—दो सो बावन०, भा० १, पृ० ३१७ ।

श्रींटा हिलना = मुँह से शब्द निकलना । श्रींटा हिलाना = मुँह से शुद्ध निकलना ।

श्रींटा^१—वि० [स० कुड, प्रा० उड] गहरा ।

श्रींटा^२—सज्ञा पुं० [स्त्री० श्रींटी] १. गड्ढा । गढ़ा । गर्त । उ०—
श्रींटा की श्रींटी, महाश्रींटी मोह की कनोडी, माया की मसूरती
है मूरती है मैल की ।—राम० धर्म०, पृ० ६७ । २. चोरी
की खोदी हुई सेंध ।

श्रींटा^३—सज्ञा [सं० वध] वह रस्सी जिससे छाजन पूरी होने के पहले
लकड़ियाँ अपनी अपनी जगहों पर कसी रहती हैं ।

श्रीं^१—सज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा ।

श्रीं^२—अव्य० १ एक सवोधनसूचक शब्द । जैसे,—श्रीं लडके ।
इधर आश्रीं । २. सयोजक शब्द । श्रीं । ३. विस्मय या
आश्चर्यसूचक शब्द । ओह । ४. एक स्मरणसूचक शब्द ।
जैसे,—श्रीं । हाँ ठीक है, आप एक बार हमारे यहाँ आए थे ।

श्रीं^३—सर्व० [हिं०] दे० 'वह' । उ०—उसकूँ कर कर सनाय
नामदेव दीनानाथ श्रीं गाई लियो सात उस वक्त चल दिये ।
—दक्खिनी०, पृ० ५० । २. यह । उ०—राणी राजानूँ कहइ
श्रीं म्हाँ नातरउ कीध ।—ढोला०, दू० ६ ।

श्रींश्रीं^१—सज्ञा पुं० [सं० श्रीं] दे० 'श्रीं' । उ०—पहिले आरति
विराज, श्रीं सोह ध्यान लगावै ।—धरनी०, पृ० १८ ।

श्रीं श्रीं—अव्य० [हिं०] दे० 'श्रीं' । उ०—वह इतना डर जाता
कि उसके मुँह से श्रीं श्रीं छोडकर सीधी बात न निकलती ।
—रस० क० (भू०), पृ० ३० ।

श्रींश्रीं—सज्ञा पुं० [देश०] हाथी फँसाने का गड्ढा । श्रीं ।

श्रींई^१—सज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ का नाम ।

श्रींई^२—सर्व० [हिं० वह, श्रींहि] दे० 'वह' । उ०—अधम के उधारन
तुम चारो जुग श्रींई । मोते अब अधम आहि कवन धौं
बडोई ।—सतवाणी०, भा० २, पृ० १२६ ।

श्रीं^३—सज्ञा पुं० [सं० श्रीं] १. घर । स्थान । निवासस्थान । उ०—
(क) सूर स्याम काली पर निरतत आवत हैं ब्रज श्रीं ।
—सूर०, १०।५६५ । (ख) श्रीं की नीव परी हरि लोक
विलोकत गग तरंग तिहारे ।—तुलसी ग्र०, पृ० २३४ ।
२. आश्रय । ठिकाना । उ०—(क) श्रीं दे विसोक किए
लोकपति लोकनाथ रामराज भयो धरम चारिहु चरन ।
—तुलसी ग्र०, पृ० ५८० । (ख) सेनानी के सटपट, चद्र चित
चटपट, अति अति अटपट अतक के श्रीं है ।—केशव ग्र०,
भा० १, पृ० १४५ ।

श्रीं—जलोक = जल में आश्रय या घरवाली । जोक ।

३. नक्षत्रों या ग्रहों का समूह । ४. समूह । ढेर । उ०—घर घर
नर नारी लसे दिव्य रूप के श्रीं ।—मतिराम (शब्द०) ।
५. पक्षी (को०) । ६. वृष । ७. आनंद (को०) ।

श्रीं^३—सज्ञा पुं० [हिं० वृक = अजली] अजुरी । अजलि । उ०—
(क) वैंरी की नारि विलखति गग यो सुखि गयो मुख जीम
लुठानी । काडिये म्यान ते श्रीं करौ प्रिय तैं जु कह्यो तरवारि
कौ पानी ।—गग०, ११२ । (ख) श्रीं पनघटवाँ आनि

श्रीं । अटपटि प्यास भरो ब्रजमोहन पलकनि श्रीं कर ।

—धनानंद, पृ० ४६७ ।

श्रीं प्र०—लगाना । जैसे,—श्रीं लगाकर पानी पी लो ।

श्रीं^३—सज्ञा स्त्री० [‘श्रीं’ से अनु० + √कृ > क] वमन करने की
इच्छा । मतली ।

श्रींकर, श्रींकरि—सज्ञा पुं० [सं०] १. छटमल । २. केशकीट ।
ढील । जूँ (को०) ।

श्रींकरणी—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'श्रींकर', 'श्रींकरि' (को०) ।

श्रींकरना—कि० प्र० [अनु० श्रीं + हिं० करना या हिं० श्रीं + ना]
१. श्रीं श्रीं करना । कै करना । २. भैंस की तरह चिल्लाना ।

श्रींकरपति—सज्ञा पुं० [सं० श्रींकर पति] सूर्य या चंद्रमा । पू०—नागरी
स्याम सो कहति बानी । छद्रपति, छुद्रपति, लोकपति, श्रींकरपति,
धरनिपति, गगनपति अगम बानी ।—सूर०, १०।१६४७ ।

श्रींकर—सज्ञा [सं०] घर । गृह । दे० 'श्रींकर' ।

श्रीं—वनोक्त विवोक्त ।

श्रींकाई—सज्ञा स्त्री० [हिं० श्रींकर + काई (प्रत्य०)] १. वमन । कै ।
२. वमन करने की इच्छा । मतली ।

श्रींकार—सज्ञा पुं० [सं०] 'श्रीं' अक्षर ।

श्रींकारात—वि० [सं० श्रींकारात] जिसके अंत में 'श्रीं' अक्षर हो ।
जैसे,—फोटो, ठोगो ।

श्रींको—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'श्रींकाई' ।

श्रींकुल—सज्ञा स्त्री० [सं०] अश्वभुजा या तपन किया हुआ गेहूँ (को०) ।

श्रींकुली—सज्ञा स्त्री० [सं०] आँटे की रोटी (को०) ।

श्रींकूब^१—वि० [सं० उकूब] वाक्फि । जानकार । बुद्धिमान । उ०—
चार भेद तिणरा चर्व कवियण बड श्रींकूब ।—रघु०
रू०, पृ० ६७ ।

श्रींकोदनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'श्रींकर' (को०) ।

श्रींकरणी—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'श्रींकर' (को०) ।

श्रींकर्य—वि० [सं०] १. गृह के अनुकूल । २. गृह सवधी (को०) ।

श्रींकर्य—सज्ञा पुं० १. आनंद । प्रसन्नता । २. विश्राम स्थान । आश्रय ।
३. गृह । मकान (को०) ।

श्रींखद^१—सज्ञा पुं० [सं० श्रींखद] दे० 'श्रींखद' । उ०—(क) विरह
महाविस तन वसइ श्रींखद दिवइ न आइ ।—ढोला०,
दू० १२७ । (ख) जनहु वइद श्रींखद लेइ आवा । रोगिया रोग
मरत जिउ पावा ।—पदुमा०, पृ० ११० ।

श्रींखरी—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'श्रींखली' ।

श्रींखली^१—सज्ञा पुं० [सं० ऊपर] परती भूमि । ऊसर ।

श्रींखली^२—सज्ञा पुं० [सं० उलूखल] ऊखल । श्रींखली ।

श्रींखली—सज्ञा स्त्री० [सं० उलूखलिका, प्रा० श्रींखली] काठ
या पत्थर का बना हुआ गहरा वरतन जिसमें धान या श्रीं
किसी अन्न को डालकर भूखी अलग करने के लिये मूसल से
कूटते हैं । काँडो । हावन ।

मुहा०—श्रींखली में सिर देना = अपनी इच्छा से किसी भ्रष्ट में

ऐसन^१—वि० [हि० ऐसा] दे० 'ऐसा' । उ०—लोम मोह सब दूरि
बढ़ावो ऐसन अदल चलावा । धर्म० श०, पृ० ७० ।

ऐसन^२—क्रि० वि० दे० 'ऐसे' ।

ऐसा—वि० [स० ईश्वर, अण० अइण] [स्त्री० ऐसी] १ इस प्रकार का ।
इस ढंग का । इस भाँति का । इसके समान । जैसे,—तुमने
ऐसा आदमी कहीं देखा है ?

मुहा०—ऐसा तँसा या ऐसा बँसा = साधारण । तुच्छ । अदना ।
नाचीज । जैसे,—हमें क्या तुमने कोई ऐसा बँसा आदमी समझ
रखा है । (किसी को) ऐसी तँसी = धोनि या गुदा (एक
गाली) । जैसे,—उसकी ऐसी तँसी, वह क्या कर सकता है ?
ऐसी तँसी करना = बलात्कार करना । (गाली) । जैसे,—
तुम्हारी ऐसी तँसी करूँ, खड़े रहो । ऐसी तँसी में जाना = भाड

में जाना । चूल्हे में जाना । नष्ट होना । (देपरदाई सूचित
करने के लिये) । जैसे,—जब सम्मान से नहीं मानते तब
अपनी ऐसी तँसी में जायें ।

ऐसे—क्रि० वि० [हि० ऐसा] इस ढंग से । इस ढंग में । इस तरह से
जैसे,—वह ऐसे न मानेगा ।

ऐहलौकिक—वि० [स०] १ 'ऐहिक' [क्रि०] ।

ऐहिक^१—वि० [स०] [वि० स्त्री० ऐहिकी] इस लोक से सबंध रखनेवाला ।
जो पारलौकिक न हो । सासारिक । दुनियावी । स्थानीय ।

ऐहिक^२—सज्ञा पु० सामारिक व्यापार या कर्म [क्रि०] ।

ऐहिकदर्शी—वि० [स० ऐहिकदर्शन] सनार को समझनेवाला ।
दुनियादार [क्रि०] ।

श्रो

श्रो—संस्कृत वर्णमाला का तेरहवाँ और हिंदी वर्णमाला का दसवाँ
स्वर वर्ण । इसका उच्चारणस्थान ओष्ठ और कंठ है । इसके
उदात्त, अनुदात्त, स्वरित तथा सानुनासिक और अननुनासिक
भेद होते हैं । सध में अ + उ = श्रो होता है ।

श्रो—अव्य० [स० श्रोम्] १ एक अर्द्धांगीकार या स्वीकृतिसूचक शब्द ।
हाँ । अच्छा । तथास्तु । २. परब्रह्मवाचक शब्द जो प्रणव मंत्र
कहलाता है ।

विशेष—यह शब्द बहुत पवित्र माना जाता है और वेदमंत्रों के
पहले तथा पीछे बोला जाता है । माहूक्य उपनिषद् में इसी
शब्द की व्याख्या भरी हुई है । यह ग्रंथ के आरंभ में भी
रखा जाता है । पुराण में 'श्रोम्' के अ, उ और म क्रम से
विष्णु, शिव और ब्रह्मा के वाचक माने गए हैं ।

श्रोकार—सज्ञा पु० [स० श्रोङ्कार] १ 'श्रो' शब्द । २ 'श्रो' शब्द
का निर्देश या उच्चारण । ३ सोहन चिडिया । ४ सोहन
पक्षी का पर जिससे फौजी टोप की कलंगी बनती है ।

श्रोकारनाथ—सज्ञा पु० [स० श्रोङ्कारनाथ] शिव के द्वादश ज्योतिर्लिंगों
में से एक । इनका मंदिर मध्यप्रदेश के माघाता नामक
ग्राम में है ।

श्रोम^१—सज्ञा पु० [स० श्रोम्] दे० 'श्रोम्' । उ०—ब्रह्म ऋद्धि श्रोम
पद सारा ।—कवीर श०, पृ० ६१ ।

श्रोइछना^१—क्रि० स० [आ + श्रावञ्चन] वारना । लोछावर
करना ।

श्रोकना—क्रि० अ० [हि० श्रोकाई] दे० 'श्रोकना' ।

श्रोगनी—सज्ञा पु० [स० श्रोज्जन] गाड़ी के पहिए की घुरी में लगाने
के काम अनेवाला तैल ।—(घोरा) ।

श्रोगना—क्रि० स० [स० श्रोज्जन या हि० 'श्रोगन' से] गाड़ी की
घुरी में चिकनाई लगाना जिसमें पहिया आसानी से फिरे ।

श्रोगा—सज्ञा पु० [स० अपामार्ग] लट्जीरा । अज्जाभारा । बिचडा ।
अपामार्ग ।

श्रोछना—क्रि० स० [स० उञ्छन, हि० ऊँछना] दे० 'ऊँछना' ।

उ०—वह अंचल दूल् पोछते, कर कबी पर वाल ग्रीछते ।
—साकेत, पृ० ३३८ ।

श्रोझला^१—सज्ञा पु० [हि०] दे० 'श्रोझन' । उ०—देवनदन ने देखा,
इतनी बातों के कहने पीछे वह जोत फिर श्रोझन हो
गई ।—ठेठ०, पृ० २१ ।

श्रोटना—क्रि० स० [हि०] दे० 'श्रोटना' ।

श्रोठा^१—सज्ञा पु० [स० श्रोष्ठ, प्रा० श्रोदठ] मुँह के बाहरी उभड़े हुए
छोर जिनसे दाँत ढँके रहते हैं । लव । होठ । रदच्छद ।
रदपट । उ०—हरदम मिर पर मौत खडी है श्रोठा पर ईश्वर
है ।—पथिक, पृ० ४२ ।

मुहा०—श्रोठ उखाडना = परती खेत को पहले पहल जोतना ।
श्रोठ काटना = दे० श्रोठ चवाना । श्रोठ चवाना = क्रोध और
दुःख से श्रोठ को दाँतों के नीचे दवाना । क्रोध और दुःख प्रकट
करना । श्रोठ चाटना = किसी वस्तु को खा चुकने पर स्वाद
की लालसा रखना । जैसे,—उस दिन कैसी अच्छी मिठाई खाई
थी, अबतक श्रोठ चाटते होंगे । श्रोठ चूसना = अघर चुवन
करना । श्रोठ पपडाना = श्रोठ पर खुशकी के कारण चमड़े की
सूखी हुई तह बँध जाना । श्रोठों पर आना या होना = जवान
पर होना । कुछ कुछ स्मरण आने के कारण मुँह से निकलने
पर होना । बाणी द्वारा स्फुरित होने के निकट होना ।
जैसे,—(क) उनका नाम श्रोठों ही पर है, मैं याद करके
बतलाता हूँ । (ख) उनका नाम श्रोठों पर आ के रह जाता है ।
(अर्थात् थोड़ा बहुत याद आता है और कहना चाहते हैं पर भूल
जाता है) । श्रोठों पर मुस्कराहट या हँसी आना दिखाई
देना = चेहरे पर हँसी देख पडना । श्रोठ फटना = खुशकी के
कारण श्रोठ पर पपड़ी पडना । श्रोठ फडकना = क्रोध के कारण
श्रोठ काटना । श्रोठ मलना = कड़ई बात करनेवाले को दंड
देना । मुँह मलना । जैसे,—प्रबं ऐसी बात कहोगे तो श्रोठ
मल देंगे । श्रोठों में कहना = धीमे और अस्पष्ट स्वर में कहना ।
मुँह से साफ शब्द न निकलना । श्रोठों में मुसकराना =
बहुत थोड़ा हँसना । ऐसा हँसना कि बहुत प्रकट न हो ।

यो०—ऐरा गंरा नत्पू खंरा=ऐरा गंरा । ऐरे गंरे पंचकल्यान ।
ऐरे गंरे पंचकल्यान=इधर उधर के बिना जाने बूझे आदमी ।
उ०—ऐरे गंरे पंचकल्यान बहुत देखे हैं तुम कौन हो ।—
किमाना०, मा० ३, पृ० ३०३ ।

ऐरापति०—सज्ञा पुं [सं० ऐरावत] ऐरावत हाथी । उ०—सुरगण
उहित इद्र ब्रज आवन । प्रबल बरन गेजपति देख्यो उत्तरि
गगन तें घरिण घनावत ।—मूर (शब्द०) ।

ऐराव—सज्ञा पुं [अ०] शतरज ने बादशाह की किशत वचाने के
लिये किसी मोहरे को बीच में डाल देना । अरदब ।

ऐराबू—सज्ञा पुं [सं० इरा=उल+आबू] एक प्रकार की पहाड़ी
ककड़ी जो नरबूज की त ह होती है । यह कुमाऊँ से निकल
तक होती है ।

ऐरावण—सज्ञा पुं [सं०] ऐरावत ।

ऐरावत—सज्ञा पुं [सं०] १ इरावान् मेघ विजली से प्रदीप्त
वादन । २ इद्रधनुष । ३ विजली । ४ इद्र का हाथी जो
पूर्व दिशा का दिग्गज है । ५ एक नाग का नाम । ६ नारगी ।
७ लकुच । बड़हर । ८ सपूर्ण जाति का एक राग जिसमें
नव गुद म्बर लाते हैं । ९ चंद्रमा का उत्तरी मार्ग (को०) ।

ऐरावती—सज्ञा स्त्री [सं०] १ ऐरावत हाथी की स्त्री । विजली ।
२ रावी नदी । ४ ब्रह्म (ब्रह्मा देव) की एक प्रधान नदी ।
५ वटपत्री का पौधा । ६ चंद्रमा की एक बीबी जिसमें
आश्लेषा, पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्र पड़ते हैं ।

ऐरिण—सज्ञा सं० पुं [सं०] १ सेंधा नमक । २ रेह से बरी जमीन ।
ऊसर (को०) ।

ऐरिस्टोक्रंसी—सज्ञा स्त्री [अ०] १ एक प्रकार की राजसत्ता
या शाननमुष जो बड़े बड़े भूम्यधिकारियों (सरदारों)
या ऐश्वर्यसंपन्न नागरिकों के हाथों में रहती है । सरदार तथ ।
कुलीन तंत्र । अग्निजात तथ । २ ऐसे लोगों की समष्टि या
समाज । अग्निजात समाज । कुलीन समाज ।

ऐरेय—सज्ञा पुं [सं०] अन्न की बनी हुई एक प्रकार की शराव (को०) ।

ऐल^१—सज्ञा पुं [सं०] इला का पुत्र पुरखा ।

ऐल^२०—सज्ञा पुं [हि० अहिल] १ बाड । बूडा । २. अधिकृता ।
बहुनायक । उ०—धुवन ननत साहि तनै सरजा के पास आइव
को चडी उर हौसनि की ऐल है ।—भूपण (शब्द०) ३
समुद्र । झुंड । दल । उ०—तोखे तेगवाही औ सिपाही चडे
पानेन पैं न्याही चडे अमित अरिदन की ऐल पै ।—पद्माकर
प्र०, पृ० ३१० । ४ खोरगुन । हनचल । खलवली । उ०—
खलन के खैन मैल, मनमय मन ऐल, मैलजा के सैन गैल गैल
प्रति रोक है ।—केशव प्र०, भा० १, पृ० १४५ ।

ऐल^३—सज्ञा पुं [दे०] एक प्रकार की कैंटीली लता जिसकी पत्तियाँ
प्रायः एक फुट लंबी होती हैं । अलई । अलू ।

विशेष—यह देहरादून न्हलबड, अकध और गोरखपुर की नम
जमीन में पाई जाती है । प्रायः खेतों आदि के चारों ओर
इसकी बाढ़ लगाई जाती है । कहीं कहीं इसकी पत्तियाँ चमड़ा
चिन्नाने के काम में भी आती हैं ।

ऐलक—सज्ञा स्त्री [सं०] दे० 'एलक' ।

ऐलवालुक—सज्ञा पुं [सं०] १ एक गधद्रव्य । २ १
'ऐलवालुक' (को०) ।

ऐलविल—सज्ञा पुं [सं०] कुवेर । एनविल (को०) ।

ऐलान—सज्ञा पुं [अ०] दे० 'एलान'^२ (को०) ।

ऐश^१—सज्ञा पुं [अ०] आग । चैन । भोग विलास । उ०—
'अमीरों को ऐश के निन्नाय और क्या काम है ।'—श्रीनिवास
प्र०, पृ० १२ ।

क्रि० प्र०—करना ।

यो०—ऐस व आराम, ऐशो आराम, ऐश व इशरत, ऐशो इशरत=
सुख चैन । भोग विलास ।

ऐश^२—वि० [सं०] [वि० स्त्री ऐशी] १ ईश । (निव) सबधी । २
दैविक । ईश्वरीय । ३ ईश (राजा) सबधी । राजकीय (को०) ।

ऐशगाह—सज्ञा पुं [अ०] केलिनवन । विलासगृह (को०) ।

ऐशान—वि० [सं०] १. शिव सबधी । २ ईशान कोण सबधी (को०) ।

ऐशानी—वि० [सं०] १. दुर्गा (को०) । २ ईशान कोण सबधी ।

ऐशिक—वि० [सं०] १. ईश सबधी । दैविक । २ शिव सबधी (को०) ।

ऐशू—सज्ञा पुं [दे०] चौपायों का एक रोग जिसमें उनका मुँह
बंद जाता है, वे पाशुर नहीं कर सकते ।

ऐश्य—सज्ञा पुं [सं०] १ ईशत्व । प्रभुत्व । २ शक्ति (को०) ।

ऐश्वर—वि० [सं०] १ शिव सबधी । २ ईश्वरीय । दैविक । ३
शक्तिशाली । ४ राजकीय (को०) ।

ऐश्वर्य—सज्ञा पुं [सं०] १ विभूति । धन संपत्ति । २ आधिपत्य
सिद्धियाँ । ३ प्रभुत्व । आधिपत्य । ४. ईश्वरता (को०) । ५
शक्ति । ताकत (को०) । ६ राज्य (को०) ।

क्रि० प्र०—भोगना ।

यो०—ऐश्वर्यशाली, ऐश्वर्ययुक्त=संपन्न । बंनवशाली ।

ऐश्वर्यवान्—वि० [सं०] [वि० स्त्री ऐश्वर्यवती] बंनवशाली । संपत्ति-
वान् । संपन्न ।

ऐपीक^१—सज्ञा पुं [सं०] एक शस्त्र जो तल्टा देवता का मंत्र पढ़कर
चलाया जाता है ।

ऐपीक^२—वि० [सं०] सरकंडा या बेंत का (शर) । सरकंडा या बेंत
सबधी (को०) ।

यो०—ऐपीक पर्व=महाभारत के सौप्तिक पर्व का एक अंश ।

ऐष्टक^१—सज्ञा पुं [सं०] यज्ञार्थ ईंटों को चुनना या उन ईंटों को
क्रमबद्ध करना (को०) ।

ऐष्टक^२—वि० ईंटोंवाला । ईंटों का बना हुआ (मकान) (को०) ।

ऐष्टिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री ऐष्टिकी] इष्टि अर्थात् यज्ञ से संबंध
रखनेवाला । यज्ञ या उत्सव सबधी (को०) ।

ऐस^१०—वि० [हि०] दे० 'ऐसा' । उ०—भास न, वास न, मानुष
अडा । भए चौखंड जो ऐस पखंडा ।—बावनी प्र० पृ० ३०४ ।

ऐस^२—सज्ञा दे० [अ० ऐश] दे० 'ऐश' । उ०—सबन लगी है । कष्ट
कवहूँ सिंगारन को, तजन लगी है कहुँ ऐस बंस वारी की —
पद्माकर प्र०, पृ० २०१ ।

१५—वि० १ ठीक। उपयुक्त। सटीक। जैसे,—(क) तुम ऐन वक्त पर आए। (ख) मार्गशीर्ष की ऐन पूर्णिमा को जीवन मे आया।
—अपलक, पृ० १६। २. विल्कुल। पूरापूरा। जैसे—आपकी ऐन मेहरबानी है।

११क—सज्ञा स्त्री० [अ० ऐन=आँख] आँख मे लगाने का चश्मा।
उ०—अजन आँखियो मे मत आँजो, आला ऐनक लेहु लगाय।
—कविता कौ०, भा० २, पृ० ६५।

११स—सज्ञा पुं० [स०] पाप। एनस [को०]।

ऐना—सज्ञा पुं० [फा० आईनहू > आईना > हि० अइना] दे० 'आईना'।

ऐनि०—सज्ञा पुं० [स०] सूर्य का पुत्र।

यौ०—ऐनिवस [स० ऐनिवश] = सूर्यवश। उ०—मन सकल्पत आप कल्पतरु सम सोहर वर। जन मन वाञ्छित देव तुरंत द्विज ऐनिवस वर।—तुलसी (शब्द०)।

ऐनीता—सज्ञा पुं० [फा० आईनहू] वंदर को शोशा या दर्पण दिखाना (कलदरो की बोली)।

ऐन्य—वि० [स०] १ सूर्य सवधी। २ स्वामी या मानिक सवधी [को०]।

ऐपन—सज्ञा पुं० [स० लेपन अथवा देशी आइप्पण = चावल का दूध।

गृह का भूषण] एक मागलिक द्रव्य। यह चावल और हल्दी को एक साथ गीला पीसने से बनता है। देवताओं की पूजा मे इससे छाप लगाने हैं और घड़े पर चिह्न करते हैं। उ०—
(क) रूपनो ऐपन निज हथा तिय पूजहि नित भीति। फल सकल मनकामना तुलसी प्रीति प्रतीति।—तुलसी ग्र०, पृ० १४१। (ख) वैतक सोने की डीङ्गि केसर सो मारी मीङ्गि ऐपन की पीङ्गि जोति चपाळ लजायो है।—गंग०, पृ० २३।

ऐपरि०—अव्य० [स० एतदुपरि] दे० 'ऐपरि'। उ०—ऐपरि कवि इक ठौर बतारैं। जव बलि मे कछु गाथा गावैं।—नद० ग्र०, पृ० १३७।

ऐपे०—क्रि० वि० [हि० ऐ+पे] इतने पर भी। एते पै। उ०—(क) ऐपे कहूँ बाको मुख देखन न पाइयै।—घनानंद०, पृ० ४६८। (ख) उपजे वनिक कुल सेवे कुल अच्युत को, ऐपे नहि बने एक तिया रहे पास है।—(भक्तमाल) श्रीभक्ति०, पृ० ५५६।

ऐव—सज्ञा पुं० [अ०] १ दोप। दूषण। नुक्स। उ०—ऐव अपने घटाओ पै खबरदार रहो। घटने से न उनके बढ़ जाए गहर।—कविता कौ०, भा० ४ पृ० ६०१।

मुहा०—ऐव निकालना = दोप दिखाना (किसी वस्तु मे)। उ०—
अगर चाहा निकालो ऐव तुम अच्छे से अच्छे मे। जो बूढ़ोगे तो अकबर मे भी पाओगे हुनर कोई।—शेर०।

२ अवगुण। कलक। बुराई। उ०—यहाँ के दुकानदारो मे यह बड़ा ऐव है कि जलन के मारे दूसरे के माल को वारह आने का जाँच देते हैं।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १७४।

मुहा०—ऐव लगाना = कलक लगाना। दोषारोपण करना (किसी व्यक्ति पर)।

यौ०—ऐवजोई। ऐवदार। ऐवपोशी। ऐबहनर = गुण दोष।

ऐवजो—वि० [फा०] दोप ढूँढनेवाला। छिद्रान्वेषी।

२-२१

ऐवजोई—सज्ञा स्त्री० [फा०] दोप ढूँढना। छिद्रान्वेषण।

ऐवदार—वि० [फा०] दोषयुक्त। दोषी। पापी। उ०—कहि कवि गग तुम कहनानिधान कान्ह, कोटि जो है ऐवदार और द्वार भयो है—गंग०, पृ० ५।

ऐवपोशी—सज्ञा स्त्री० [अ०] ऐव पर पर्दा डालना। दोष छिपाना [को०]।

ऐवारा—सज्ञा पुं० [हि० वार < स० द्वार = दरवाजा] १ बाढा जिसमे भेड़ बकरियाँ रखी जाती हैं। २ वह घेरा जिसके भीतर जंगल मे चौपाए रखे जाते हैं। गोवाड। ठाढा।

ऐवी—वि० [अ०] १ दूषणयुक्त। खोटा। बुरा। २ नटखटा दुष्ट। शरीर। ३ विकलांग, विशेषतः काना।

ऐभ—वि० [स०] इभ अर्थात् हाथी सवधी [को०]।

ऐमेचर—सज्ञा पुं० [अ०] वह जो कलाविशेष पर विशेष रुचि और अनुराग के कारण शौकिया तौर से उसका अभ्यास करता है और अपनी कलाभिज्ञता दिखाकर धन उपार्जन नहीं करता। शौकीन। जैसे—(क) ऐमेचर ड्रामटिक क्लब। (ख) 'वह ऐमेचर होने पर भी बड़े बड़े ऐक्टरों के कान काटता है।'।

ऐयाँ—सज्ञा स्त्री० [स० आर्या, प्रा० अर्या] १ बड़ी बूढ़ी स्त्री। दादी। २. सास।

ऐयाम—सज्ञा पुं० [अ० योम (दिन) का बहु व०] दिन। समय। मौसम। वक्त। उ०—यादे ऐयाम बेकारारिए दिल, वह भी या रव अजब जमाना या।—शेर० पृ० १६७।

ऐयार—सज्ञा पुं० [अ०] [स्त्री ऐयारा] १ चालाक। धूर्त। उस्ताद। घोखेवाज। छली। उ०—(क) ऐयार नजर मक्कार अदा त्योरी की चढ़ावत बैसी ही।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३२७। (ख) उसे ऐयार पाया यार समझे जौक हम जिसकी।—शेर० पृ० ४१३। २ वह व्यक्ति जो चालाकी से अनोखे काम करता हो। बहुगुण युक्त गुप्तचर या कार्यकर।

ऐयारी—सज्ञा स्त्री० [अ०] चालाकी। धूर्तता। छल। ऐयार का कार्य।

ऐयाश—वि० [अ०] [सज्ञा ऐयाशी] १. बहुत ऐश या आराम करनेवाला। २. विषयी। लपट। इद्रियलोलुप।

ऐयाशी—सज्ञा स्त्री० [अ०] विषयासक्ति। भोग विलास।

ऐरणा—सज्ञा पुं० [स० आहनन, आ+घनवा आ+घरण] दे० 'अहरन'। निहाई। उ०—लोहा होय तो ऐरण मगाऊँ धरा की चोट दिराऊँ।—राम० धर्म०, पृ० ४४।

ऐरन—सज्ञा पुं० [अ० इपरिंग] कान का एक आभूषण।

ऐराक०—सज्ञा पुं० [अ० एराक] दे० 'एराक'।

ऐराकी०—दे० [अ० ऐराकी] दे० 'एराकी'।

ऐराखी०—वि० [हि० ऐराखी] दे० 'एराकी'। उ०—ऐराखी घर घोरिय जाए। पच बछेरा लगै सुहाए।—प० रा०, पृ० ११७।

ऐरागैरा—वि० [अ० + गैर] १ बेगाना। अजनबी (व्यक्ति) जिससे कुछ वास्ता न हो। २. इधर उधर का। तुच्छ।

ऐडवटिजमेट—सज्ञा पुं० [ग्र०] विज्ञापन । सार्वजनिक सूचना । इतहार ।

ऐडवास—सज्ञा पुं० [अ०] १ अग्रिम । पेशगी । २ अग्रगामी । प्रगतिशील ।

ऐडवाइजर—सज्ञा पुं० [अ०] वह जो परामर्श या सलाह देता हो । परामर्शदाता । सलाह देनेवाला । सलाहकार । जैसे,—लीगल ऐडवाइजर ।

ऐडवाइजरी वि० [अ०] सलाह या परामर्श देनेवाली । जैसे,—ऐडवाइजरी कौंसिल ।

ऐडविड—सज्ञा पुं० [स०] १ कुवेर । २. मगल ग्रह [को०] ।

ऐडवोकेट—सज्ञा पुं० [अ०] अदालत में किसी का पक्ष लेकर बोलनेवाला । वकील ।

ऐडवोकेट जनरल—सज्ञा पुं० [अ०] वह सरकारी वकील जो हाइकोर्टों में सरकार का पक्ष लेकर बोलता है । वह सरकार का वेतन-भोगी कर्मचारी होता है ।

ऐड(उ०)—सज्ञा स्त्री० [हि० ऐड] दे० 'ऐड' । उ०—तिन मधि मुग्ध वंस की वाना । ऐड सो कहति भई तिहि काला ।—नद० ग्र०, पृ० ६६ ।

ऐडा—क्रि० अ० [हि०] दे० 'ऐठा', 'ऐडा' । उ०—ऐडो रहै निसक तामु हाँसी करि डोलै ।—दीन० ग्र०, पृ० १६४ ।

ऐडाना—क्रि० अ० [हि० ऐड] इठलाना । ठसक दिवाना । उ०—यह जग है सपते सुपने की देखि कहा ऐडानो ।—सतवाणी०, भा० २, पृ० ४७ ।

ऐडिशनल—वि० [अ०] अतिरिक्त । जैसे,—ऐडिशनल मैजिस्ट्रेट ।

ऐडी—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'एडी' उ०—वह चंचल चाल जवानी की ऊँची ऐडी नीचे पजे ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३२८ ।

ऐण—वि० [स०] [स्त्री ऐणी] हिरन से सवधित । जैसे,—मृगचर्म, ऊन आदि [को०] ।

ऐणिक—वि० [स०] [स्त्री ऐणिकी] कृष्णसार या काले मृग का शिकार करनेवाला । हिरन मारनेवाला [को०] ।

ऐणैय^१—वि० [स्त्री ऐणिकी] कानी हरिणी से उत्पन्न या उससे सवधित [को०] ।

ऐणैय^२—सज्ञा पुं० एक प्रकार की रतिक्रिया । एकवध । रति का एक ग्रामन [को०] ।

ऐत(उ०)—वि० [हि०] दे० 'एत' और 'इतना' । उ०—तुम सुखिया अपने घर राजा । जेखिउँ ऐत सहहु केहि काजा ।—जायसी(शब्द०) ।

ऐतरेय—सज्ञा पुं० [स०] १ ऋग्वेद का एक ब्राह्मण ।

विशेष—इसमें ४० अध्याय और आठ पञ्चिकाएँ हैं । पहले १६ अध्यायों में अग्निष्टोम और सोमयाग का वर्णन है । १७-१८ वें अध्याय में गवामयन का विवरण है जो ३६० दिनों में पूरा होता है । १९२४ तक द्वादशाह यज्ञ की विधि और होता के कर्तव्य का वर्णन है, २५वें अध्याय में अग्निहोत्र-विधान और भूतों के लिये प्रायश्चित्त आदि की व्यवस्था है । २६ से ३० अध्याय तक सोमयाग में होता के सहायक का

कर्तव्य तथा शिल्पशास्त्र के कुछ विषय वर्णित हैं । ३३ अध्याय से ४० अध्याय तक राजा को गद्दी पर विठाने तथा पुरोहित के और और कामों का वर्णन है । शुन शेष की कथा ऐतरेय ब्राह्मण की है । [को०] ।

२ एक अरण्यक जो वानप्रस्थों के लिये है ।

विशेष—इसके पाँच अरण्यक अर्थात् भाग हैं । प्रथम भाग में, जिसमें पाँच अध्याय और २२ खंड हैं, सोमयाग का विचार है । दूसरे अरण्यक के ७ अध्याय और २६ खंड हैं जिनमें से तीसरे अध्याय में प्राण और पुरुष का विचार है और चार अध्यायों में ऐतरेय उपनिषद् है । तीसरे अरण्यक में (२ अध्याय १२ खंड) में संहिता के पदपाठ और क्रमपाठ के अर्थों को अलंकारों द्वारा प्रकट किया है । चौथे अरण्यक में एक अध्याय है जिसको आश्वलायन ने नष्ट किया था । पाँचवें अरण्यक के ३ अध्याय और १४ खंड हैं जो शौनक ऋषि द्वारा प्रकट हुए हैं ।

ऐतरेयी—वि० [स० ऐतरेयिन्] ऐतरेय ब्राह्मण का अध्ययन करनेवाला ऐतरेय का अध्ययता [को०] ।

ऐतिहासिक—वि० [अ०] १ इतिहास सवधी । जो इतिहास से हो । जो इतिहास से सिद्ध हो । उ०—मैंने भारतीय समाज का ऐतिहासिक अध्ययन करना चाहा ।—कंकाल, पृ० ७२ । २ जो इतिहास जानता हो ।

ऐतिह्य—सज्ञा पुं० [स०] प्रत्यक्ष, अनुमान आदि चार प्रमाणों के अतिरिक्त, अर्थापत्ति और समव्यय आदि जो चार प्रमाण माने गए हैं उनमें से एक । परंपरासिद्ध प्रमाण । इस बात का प्रमाण कि लोक में बराबर बहुत दिनों से ऐसा सुनते आए हैं ।

विशेष—यह शब्दप्रमाण के अंतर्गत ही आ जाता है । न्याय में ऐतिह्य आदि को चार प्रमाणों से अलग नहीं माना है, उनके अंतर्गत ही माना है ।

ऐतु(उ०)—सज्ञा पुं० [स० अयुत] दस हजार की संख्या । उ०—प्रद्वारह घृति छव्विस ऐतु इकीस सँ उपर चव्वालिस । वावन ऐतु वयालिस सँ प्रद्वारी विधि अतिघृति उनईस ।—मिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० २३६ ।

ऐन^१—सज्ञा पुं० [स० अयन] घर । निवास । उ०—प्राण के ऐन में नैन में वैन में ह्वै रह्यो रूप गुन नाम तेरो ।—मिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० २३४ ।

ऐन^२—सज्ञा पुं० [स० एण] [स्त्री ऐनी] मृग । हिरण । उ०—(क) जिन्हें देखिके ऐन की सेन लाजी ।—पद्माकर ग्र०, पृ० २८० । (ख) ऐनि नैन ऐनी भई वेनी गुही गुपाल ।—मिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १६ ।

ऐन^३—सज्ञा पुं० [अ०] आत । नयन । उ०—जगजीवन गहि चरन गुरु ऐनन निरखि निहारि ।—जग० वाणी, पृ० १३१ । २ अरबी लिपि का एक अक्षर जो इस प्रकार C लिखा जाता है और जिसके उपर एक बिंदु लगाकर गैर बनाते हैं । उ०—नाम जगत सम ममुभु जग वस्तु न कब चित चैन । बिंदु गए जिमि गैन तें रहत ऐन को ऐन ।—स० सप्तक, पृ० ३१२ ३ स्रोत । चश्मा (को०) ।

एकमत्य—संज्ञा पुं [सं०] मतव्य । एकमत होना । एक ही राय का होना [को०] ।

एकराज्य—संज्ञा पुं [सं०] एकछत्र राज्य । पूर्ण प्रभुत्व [को०] ।

एकशफ—वि० [सं०] [स्त्री० एकशफी] ऐसे पशु का (दुग्ध आदि) जिसके छुर फटे न हों [को०] ।

एकश्रुत्य—संज्ञा पुं [सं०] एकस्वरता । उतार चढ़ाव की ध्वनि के बिना बोलना । उदासी लानेवाला स्वर [को०] ।

एकाग्र—संज्ञा पुं [सं०] एकाग्र] अग्ररक्षक सैनिक [को०] ।

एकातिक—वि० [सं०] एकात्मिक] १ पूर्ण । पक्का । २ बिना प्रतिबंध का । निश्चित । संदेहरहित । एकदम [को०] ।

एकागारिक—वि० [सं०] एक ही घर में रहनेवाला ।

एकागारिक—संज्ञा पुं १ एक ही गृह का मालिक । २ चोर ।

एकाग्र—वि० [सं०] दे० 'एकाग्र' [को०] ।

एकाग्र्य—संज्ञा पुं [सं०] एकाग्रता । स्थिरबुद्धिता [को०] ।

एकात्म्य—संज्ञा पुं [मं०] १ एवता । आत्मा की एकता । २. एकात्मता । तद्रूपता । तादात्म्य । ३. परमात्मा में विलय [को०] ।

एकविकारण्य—संज्ञा पुं [मं०] १ सर्वध की एकता । एक ही विषय से संबधित होना । २ तर्क में साध्य के द्वारा हेतु में व्याप्ति [को०] ।

एकार—संज्ञा पुं [सं०] स्वरवर्ण 'ऐ' या उसकी ध्वनि [को०] ।

एकार्थ्य—संज्ञा पुं [सं०] १ अर्थ की समानता । २ प्रयोजन की एकता [को०] ।

एकाहिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० एकाहिकी] १ क्षणभंगुर । एक-दिवसीय । अल्पकालीन । २ जिसकी स्थिति एक ही दिन की हो । जैसे, यज्ञ, उत्सव, ज्वर आदि [को०] ।

एक्ट—संज्ञा पुं [अ०] १. किसी राजा, राजसभा, व्यवस्थापिका सभा या न्यायालय द्वारा स्वीकृत सर्वसाधारण सर्वध की विधान । राजविधि । कानून । आईन । जैसे—प्रेस ऐक्ट । पुलिस ऐक्ट । म्युनिसिपल ऐक्ट । २ नाटक का एक अंश या विभाग । अंक ।

एक्टर—संज्ञा पुं [अ०] नाटक में अभिनय करनेवाला । नाटक का कोई पात्र बननेवाला । अभिनेता ।

एक्टिंग—संज्ञा स्त्री [अ०] नाटक में किसी पार्ट या भूमिका का अभिनय करना । रूपाभिनय । चरित्राभिनय, जैसे—'महाभारत' नाटक में वह दुर्योधन के रूप में बहुत ही सुंदर और स्वाभाविक एक्टिंग करता है ।

क्रि० प्र०—करना ।

एक्टिंग—वि० [अ०] स्थानापन्न । किसी की एवजी पर काम करनेवाला ।

एक्ट्रेस—संज्ञा स्त्री [अ०] रंगमंच पर अभिनय करनेवाली स्त्री । अभिनेत्री । नटी ।

एक्य—संज्ञा पुं [सं०] १. एक का भाव । एकत्व । २. एका । मेल । ३. एकत्रीकरण । जोड़ । समाहार ।

ऐक्षव—संज्ञा पुं [सं०] ईख से उत्पन्न—(१) गुड़ । (२) राव । (३) चीनी । (४) एक प्रकार की मदिरा [को०] ।

ऐक्ष्वाक—वि० [सं०] इक्ष्वाकु से संबधित । इक्ष्वाकु का [को०] ।

ऐक्ष्वाक—संज्ञा पुं [सं०] १ इक्ष्वाकु का वंशज । २. इक्ष्वाकु वंश द्वारा शासित देश [को०] ।

ऐक्ष्वाकु—संज्ञा पुं [सं०] दे० 'ऐक्ष्वाक' ।

ऐगुन—संज्ञा पुं [सं०] अवगुण दे० 'अवगुण' । उ०—हैं जो पांच नग तोप हैं लेइ पाँचो कहैं भेंट । मकु सो एक गुन मानै, सब ऐगुन धरि मेट ।—जायसी ग्रं०, पृ० २३६ ।

ऐची—संज्ञा स्त्री [हिं० ऐचना] चढ़ की या मदक पीने की नली । बट्ट ।

ऐच्छिक—वि० [सं०] १. जो अपनी, इच्छा पसन्द पर निर्भर हो । उ०—गगन में गूँजकर ऐच्छिक करो गान ।—आराधना, पृ० ३४ । २. अपनी इच्छा या पसंद से लिया या दिया जानेवाला । वैकल्पिक । जैसे,—उन्होंने संस्कृत ऐच्छिक विषय लिया है ।

ऐजन—अर्थ० [अ० अयजन्] तथा । तदेव । वही ।

विशेष—सारिणी या चक्र में जब एक ही वस्तु को कई बार लिखना रहता है तब केवल ऊपर एक बार उसका नाम लिखकर नीचे बराबर ऐजन, ऐजन लिखते जाते हैं । साधारण लिखा-पढ़ी में ऐसे स्थल पर " का व्यवहार किया जाता है ।

ऐट्टेस्टिंग अफसर—संज्ञा पुं [अ०] १ वह अफसर जिसके सामने निर्वाचन संबंधी 'वोट' लिखे जाते हैं और जो साक्षी स्वरूप रहता है । वोट लिखे जाने के समय साक्षी स्वरूप उपस्थित रहनेवाला अफसर । २ जो अधिकारी किसी के हस्ताक्षर अथवा वयान को प्रमाणित करे ।

ऐड^१—वि० [सं०] १ ताजगी देने वाला । शक्तिवर्धक । २ भेड़ से संबधित [को०] ।

ऐड^२—संज्ञा पुं इडा का पुत्र । पुरुषवा [को०] ।

ऐडकी^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० ऐडकी] भेड़ से संबधित । भेड़ संबधी [को०] ।

ऐडकी^२—संज्ञा पुं [सं०] भेड़ की एक जाति [को०] ।

ऐडमिनिस्ट्रेटर—संज्ञा पुं [अ०] १ वह अधिकारी जिसके अधीन किसी राज्य या रियासत या बड़ी जमींदारी का प्रबंध हो । २ किसी संस्थान का प्रबंधक । प्रशासक । ३ नगरपालिका वा कारपोरेशन का प्रबंधक ।

ऐडमिनिस्ट्रेशन—संज्ञा पुं [अ०] १ प्रबंध । व्यवस्था । बन्दोबस्त । २. शासन । हुकुमत । ३. राज्य । सरकार ।

विशेष—गवर्नरी, प्राविन्शल गवर्नमेंट या प्रादेशिक सरकार कहलाती है और चीफ कमिश्नरी लोकल ऐडमिनिस्ट्रेशन या स्थानीय सरकार कहलाती है ।

ऐडमिरल—संज्ञा पुं [अ०] सामुद्रिक या जलसेना का प्रधान सेनापति । नौसेना का प्रधान ।

ऐडमिरल्टी—संज्ञा स्त्री [अ०] ऐडमिरल का पद या विभाग ।

यह, रामनाम लेत जीम ऐंडीवेंडी जाति है।—गग०, पृ० ६।

ऐंटा^१—वि० [हि० ऐंडना] [खी० ऐंडी] टेडा। ऐंड़ा हुआ।

मुहा०—अग ऐंटा करना=ऐंठ दिखाना। बेपरवाई और घमंड दिखाना। उ०—यह ग्वारन को गाँव बात नहि सूघे वोलें। वसैं पसुन के सग अग ऐंठे करि डोलें।—दीन-दयाल (शब्द०)।

ऐंटा^२—सज्ञा पुं० [स० आड़क] १ वाट। बटखरा। अँहडा। २ सेंध। नकव।

ऐंडाना—कि० प्र० [हि० ऐंडना] १ अंगडाना। अंगड़ाई लेना। वदन तोडना। उ०—कवहूँ श्रुति कडू करे आरस सो ऐंटाइ। केसोदास विलास सो बार बार जमुहाइ।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० २४। २ इठलाना। अकड दिखाना। बल दिखाना। उ०—ज्यो सावन ऐंटात मुजा ठोकि सव शूरमा।—केशव (शब्द०)।

ऐंटा^१—सज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गँडासा।

ऐंटा^२—सज्ञा पुं० [हि० ऐंटा=सेंध] सेंध। सधि। नकव। उ०—अव मैं यहाँ ठहरेगा तो ऐंड़े का चोर बन जाऊँगा।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ५३।

ऐंदव^१—वि० [सं० ऐन्दव] [वि० खी० ऐंदवी] चंद्रमासवधी। इडु सवधी।

ऐंदव^२—सज्ञा पुं० मृगशिरा नक्षत्र (जिसके देवता चंद्रमा हैं)। २ चांद्र मास। कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से आरंभ होकर पूर्णिमा को समाप्त होनेवाला महीना। ३ चांद्रायण नाम का व्रत।

ऐंदवी—सज्ञा खी० [सं० ऐन्दवी] सोमराजी [को०]।

ऐंद्र^१—वि० [सं० इन्द्र] [वि० खी० ऐंद्री] इंद्रसवधी।

ऐंद्र^२—सज्ञा पुं० १ इंद्र का पय--(१) अर्जुन, (२) बालि। २ ज्येष्ठा नक्षत्र। ३ एक सवत्सर का नाम (को०)। ४. यज्ञ में इंद्र का भाग (को०)। ५ वन अदरक (को०)।

ऐंद्रजाल—सज्ञा पुं० [सं० ऐन्द्रजाल] इंद्रजाल। वाजीगरी [को०]।

ऐंद्रजालिक^१—वि० [सं० ऐन्द्रजालिक] इंद्रजाल करनेवाला। मायावी।

ऐंद्रजालिक^२—सज्ञा पुं० [खी० ऐंद्रजालिकी] जादूगर। वाजीगर [को०]।

ऐंद्रजालिक कर्म—सज्ञा पुं० [सं० ऐन्द्रजालिक कर्म] जादू के काम। माया के काम। ऐसे काम जिनमें लोग धोखा खाए।

विशेष—कोटिलीय अर्थशास्त्र के औपनिषदिक खंड के दूसरे प्रकरण में इस प्रकार के अनेक उपाय बताए हैं, जिनसे मनुष्य कुरूप हो जाता था, बाल सफेद हो जाते थे, वह कोढ़ी की तरह या काला हो जाता था, आग में जलता नहीं था, अतर्धान हो सकता था और उसकी छाया नहीं पड़ती थी।

ऐंद्रलुप्तिक—वि० [सं० ऐन्द्रलुप्तिक] [खी० ऐंद्रलुप्तिकी] खलवाट। गजा [को०]।

ऐंद्रशिर—सज्ञा पुं० [सं० ऐंद्रशिर] एक प्रकार का हस्ती। एक जाति का हाथी [को०]।

ऐंद्रि—सज्ञा पुं० [सं० ऐन्द्रि] १ इंद्र का पुत्र—(१) जयत, (२) बालि, (३) अर्जुन। २ वायस। काग (को०)।

ऐंद्रिय^१—वि० [सं० ऐन्द्रिय] दे० 'ऐंद्रियक'।

ऐंद्रिय^२—सज्ञा पुं० इंद्रियो का जगत्। विषय [को०]।

ऐंद्रियक—वि० [सं० ऐन्द्रियक] इंद्रियग्राह्य। जिसका ज्ञान इंद्रियो से हो। इंद्रियसवधी।

ऐंद्रियक^२—सज्ञा पुं० दे० 'ऐंद्रिय'।

ऐंद्री—सज्ञा खी० [सं० ऐन्द्री] १ इंद्राणी। शची। २ दुर्गा। ३. इंद्रवाहणी। ४ इलायची। ५ इंद्र सवधी एक वैदिक ऋचा (को०)। ६ पूर्व दिशा (को०)। ७ ज्येष्ठा नक्षत्र (को०)। ८ मार्गशीर्ष शुक्ला अष्टमी (को०)। ९ पौष शुक्ला अष्टमी (को०)। १० अमावस्य। दुर्भाग्य (को०)। ११ ककडी (को०)।

ऐंधन^१—वि० [सं० ऐन्धन] ईंधन से युक्त। ईंधन से उत्पन्न (अग्नि) [को०]।

ऐंधन^२—सज्ञा पुं० सूर्य का एक नाम [को०]।

ऐपरि(पुं०)—अव्य० [सं० एतद् याइयत् + उपरि] इसपर। इतने पर। उ०—ऐपरि रिपुहि अलप न जानिये। मर्मं दुखद बहुते मानिये।—नद० ग्र०, पृ० २३३।

ऐंहडा^१—सज्ञा पुं० [हि० ऐंड़ा] सेंध। नकव। ऐंटा।

ऐ^१—सज्ञा पुं० [सं०] शिव।

ऐ^२—अव्य० [सं० अघि वा हे] एक सवोधन। उ०—ऐ वेगम साहव, यह क्या सामने बजा रहे हैं।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १५। विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का उच्चारण संस्कृत से भिन्न 'अय्' की तरह होता है।

ऐ^३—सर्व० [सं० एतव, हि० यह] यह। उ०—राम वरण रूप ऐ सह वरणा सिरताज।—रघु० क०, पृ० २।

ऐक—वि० [सं०] एक से सवद्ध। एक का। एकसवधी [को०]।

ऐककर्म्य—सज्ञा पुं० [सं०] १ जैन दर्शन के अनुसार कर्म का एकत्व। २. निश्चित कर्मफल।

ऐकत(पुं०)—वि० [सं० एकान्त] अकेला। एकाकी। उ०—ऐकत छाड़ि जाहि घर घरनी तिन भी बहुत उपाया। कहै कवीर कछु समझि न परई, विषम तुम्हारी माया।—कवीर ग्र०, पृ० १५३।

ऐकद्य—वि० [सं०] तत्काल। तुरत। साथ साथ [को०]।

ऐकद्य—सज्ञा पुं० [सं०] एक समय या घटना [को०]।

ऐकपत्य—सज्ञा पुं० [सं०] १ पूर्ण प्रभुता। सर्वोच्च शक्ति। २ एक-तंत्र शासन। एकाधिपत्य [को०]।

ऐकपदिक^१—वि० [सं०] [वि० खी० ऐकपदिकी] एक पदवाला। सरल पदवाला।

ऐकपदिक^२—सज्ञा पुं० [सं०] निषट्ट पर यास्क की टोका के नैगम। खंड का नाम [को०]।

ऐकपद्य—सज्ञा पुं० [सं०] १ शब्दों की एकता। २ एक शब्द या पद में गठित होना [को०]।

ऐकभाव्य—सज्ञा पुं० [सं०] प्रकृति या उद्देश्य की एकता। सम या एकभाव का होना [को०]।

क्रि० प्र०—करना ।—दिखलाना ।

३. कुटिल भाव । द्वेष । विरोध । उ०—या दुनियाँ में आइके छाँड़ि देइ तू ऐंठ ।—कबीर सा० स०, पृ० ६७ ।

क्रि० प्र०—पडना ।—रखना ।

ऐंठवैठ(५)—सज्ञा पु० [हि० ऐंठ + गोइँठा] तनन । खिचना । घमड करना । उ०—जो पै ऐंठवैठि जाइ कालि की बिटोनी ग्वानि, तो पै देसवानि दुती काहे को कहाइहो ।—गंग०, पृ० ६४ ।

क्रि० प्र०—जाना ।—होना ।

ऐंठन—सज्ञा स्त्री० [स० आवेष्टन, पा० आवेष्टन] १ वह स्थिति जो रस्सी या उसी प्रकार की और लचीली चीज को लपेटने या मरोड़ने से प्राप्त होती है । घुमाव । लपेट । पेंच । मरोड़ । बल । जैसे—रस्सी जल गई, पर ऐंठन नहीं गई ।

यौ०—उलटी ऐंठन—वह ऐंठन जिसका घुमाव दाहिनी ओर से बाईं ओर को हो । वामावर्त ऐंठन सीधी ऐंठन—वह ऐंठन जो बाएँ से दाहिने गई हो । दक्षिणावर्त ऐंठन ।

२ खिचाव । अकड़ाव । तनाव । ३ कुडल । कुडिल । तशन्नुज ।

ऐंठना^१—क्रि० स० [स० आवेष्टन, पा० आवेष्टन या हि० ऐंठ + ना (प्रत्य०)] १ घुमाव देना । घटना । बल देना । मरोड़ना । घुमाव के साथ तानना या कसना ।

सयो क्रि०—डालना ।—देना ।

यौ०—ऐंठ को बेल—पत्थर के खमे पर बनी हुई वह बेल जो उसके चारों ओर लिपटी हो ।

२ दबाव डालकर बमूल करना ।

सयो० क्रि०—लेना ।

३ घोखा देकर लेना । भ्रष्टना । उ०—हम खुशामदी नहीं हैं कि किसी की झूठी प्रशंसा करके कुछ ऐंठा चाहें ।—प्रताप० ग्र०, पृ० ७१५ ।

संयो० क्रि०—रखना ।—लेना ।

ऐंठना^२—क्रि० अ० १. बल खाना । पेंच खाना । खिचाव । घुमाव के साथ तनना । २ तनना । खिचना । अकड़ना । जैसे,—हाथ पाँव ऐंठना ।

मुहा०—पेट ऐंठना—पेट या प्रांतों में मरोड़ या दर्द होना ।

३ मरना । ४ अकड़ दिखाना । घमड करना । इतराना ।

उ०—अब भरि जनम महलिया, तकव न ओहि । ऐंठल गो अभिमनिया तजि के मोहि ।—रहीम (शब्द०) । ५ टेढ़ी सीधी बानें करना । टराना । उ०—तयहीं ते उनि हमहि मूलायो गई उतहि कौं घाइ । अब तो तरकि तरकि ऐंठति है लेनी लेति बनाइ ।—सूर०, १०।२४०५ ।

ऐंठमैठ(५)—सज्ञा स्त्री० [हि० ऐंठना] घुमाव । मरोड़ । वक्रता । तिरछापन । उ०—तनु ऐंठमैठि भौह कि बाल । मूरछयो मेन जग वही व्याल ।—पृ० रा०, १।४२३ ।

ऐंठवाना—क्रि० स० [हि० ऐंठना का प्रे० रूप] ऐंठन की क्रिया दूसरे से करवाना ।

ऐंठा^१—सज्ञा पु० [हि० ऐंठना रस्सी बटने का

विशेष—इसमें एक लकड़ी होती है जिसके बँचोबीच एक छेद होता है । इस छेद में एक लट्टूदार लकड़ी पड़ी रहती है । लकड़ी के एक छोर से दूसरे छोर तक एक डोली रस्सी बँधी रहती है जिसके बीच बटी जानेवाली रस्सी बाँध दी जाती है । लकड़ी के एक छोर पर एक लगर बँधा रहता है । छेद में पड़ी हुई लकड़ी को घुमाने से बिनी जानेवाली रस्सी में ऐंठन पड़ती जाती है ।

२. घोवा ।

ऐंठा^२—वि० ऐंठा हुआ । घमंडी । नाराज ।

ऐंठाना—क्रि० स० [हि० ऐंठना का प्रे० रूप] ऐंठने की क्रिया दूसरे से करवाना ।

ऐंठागुइँठा(५)—वि० [हि० ऐंठा + गुइँठा] घमड से भरा हुआ । अकड़ा हुआ । उ०—पाँच तल का जामा पहिरे ऐंठागुइँठा डोलै । जनम जनम का है अपराधी कबहूँ साँच न बोलै ।—पलटू०, भा० ३, पृ० ५४ ।

ऐंठू—वि० [हि० ऐंठना] अकड़वाज । ऐंठ रखनेवाला । अभिमानी । टर्रा ।

ऐंड़^१—सज्ञा स्त्री० [हि० ऐंठ] १ ऐंठ । ठमक । गवँ । उ०—रँगो सुरत रँग पिय हिये लगी जगी सब राति । पेंड पेंड पर ठठुकि कै ऐंड़ भरी ऐंड़ाति ।—विहारी र०, दो० १८३ । २. पानी का भँवर ।

ऐंड़^२—वि० निकम्मा । नष्ट ।

यौ०—ऐंड़ हो जाना—निकम्मा हो जाना । नष्टभ्रष्ट हो जाना ।

टूट फूट जाना । गया बीता होना ।

ऐंड़दार—वि० [हि० ऐंड़ + फा० वार] १ ठमकवाना । गर्वीला । घमंडी । उ०—जेते ऐंड़दार दरवार मरदार सब ऊपर प्रताप दिल्लीपति को अभग भो ।—मतिराम (शब्द०) । २. शानदार । वाँका । तिरछा । उ०—सखा मरदार ऐंड़दार सोहैं सग संग करें सतकार पुरजन सुख हेतु है ।—रघुराज (शब्द०) ।

ऐंड़ना^१—क्रि० अ० [हि० ऐंठना] १. ऐंठना । बल खाना । २. अँगडाना । अँगड़ाई लेना । ३ इतराना । घमड करना । उ०—घन जीवन मद ऐंड़ो ऐंड़ो ताकत नारि पराई । लालच लुब्ध श्वान जूठन ज्यो सोऊ हाय न आई ।—सूर (शब्द०) ।

मुहा०—ऐंड़ा ऐंड़ा फिरना या डोलना—इतराया फिरना । घमड में फूलकर घूमना । उ०—जिन पै कृपा करी नंदनन सो ऐंड़ी काहे नहि डोलै ।—सूर (शब्द०) ।

ऐंड़ना^२—क्रि० स० १ ऐंठना । बल देना । २ बदन तोड़ना । अँगडाना । उ०—उठे प्रात गाया मुज भाषत आतुर रैन विहानी । ऐंड़त अग, जम्हात बदन भरि कहत सर्व यह बानी ।—सूर० १०।११७० ।

ऐंड़वैड़(५)—वि० [हि० वैड़ो + ऐंड़ी (अनु०)] [वि० स्त्री० ऐंड़ी वैड़ी] टेढ़ा । तिरछा । उ०—(क) ऐंड़ सो ऐंड़ाइ भति अंचल उड़ाइ ऐसी छाँड़ि ऐंड़वैड़ चितवन निरमोलिए ।—केशव (शब्द०) । (ख) देखो देवी पूरविले पाप को प्रताप

काती मेह । आडवर प्रति दाखवर, आस न पूरइ तेह ।—ढाला०
दू० ६३६ । (ख) एक उजावर कलहि एहवा, माथी सद्
आखाडसिध ।—वेलि०, दू० ७८ ।

एहसान—सज्ञा पुं० [अ०] वह भाव जो उपकार करनेवाले के प्रति
होता है । कृतज्ञता । निहोरा । उ०—कहो दुआ एहसान कोन
सा किसी व्याक्त पर मेरा ।—पथिक, पृ० ६४ । २. उपकार ।
भलाई । नेकी ।

एहसानकरामोश—वि० [अ० एहसान + फा० करामोश] [सज्ञा स्त्री०
एहसानकरामोशी] कृतघ्न । अकृतज्ञ । उ०—पर यह

एहसानकरामोश आदमी मोघा चला गया ।—रग०,
पृ० ६०० ।

एहसानमद—वि० [अ०] निहोरा माननेवाला । उपकार माननेवाला
कृतज्ञ ।

एहाता—सज्ञा पुं० [अ०] ३० 'अहाता' ।

एहि—सर्व० [हि० एह] 'एह' का वह रूप जो हिंदी की बिनापाश्री
और बोलियों में उसे विभक्ति के पहले प्राप्त होता है । उ०—
एहि मह रघुपति नाम उदारा ।—मानस १।१० ।

एहो—अव्य० [हि० हे, हो] सन्बोधन शब्द । हे । ऐ ।

ऐ

ऐ—संस्कृत वर्णमाला का वारहवाँ और हिंदी या देवनागरी वर्णमाला
का नवाँ स्वर वर्ण । इसका उच्चारण स्थान कंठ और
तालु है ।

विशेष—हिंदी में इसका उच्चारण दो ढंग से होता है । संस्कृत
या तत्सम शब्दों में तो 'ऐ' का उच्चारण संस्कृत के अनुसार ही
कुछ 'इ' लिए हुए 'अइ' के ऐसा होता है जैसे 'ऐरावत' । पर
हिंदी शब्दों में इसका उच्चारण 'य' लिए हुए 'अय' की तरह
होता है, जैसे—'ऐसा' । यह प्रवृत्ति पश्चिम की है । पूर्व
की प्राकृत बोलियों में या मराठीभाषी आदि के हिंदी
उच्चारण में 'ऐसा' में भी 'ऐ' का उच्चारण संस्कृत ही
की तरह रहता है ।

ऐं—अव्य० [सं शये या ऐ] १. एक अव्यय जिसका प्रयोग अच्छी
तरह न सुनी या समझी हुई बात को फिर से कहलाने के
लिये होता है । जैसे—ऐं, क्या कहा ? फिर तो कहो । २.
एक अव्यय जिससे आश्चर्य सूचित होता है । जैसे—ऐं ।
यह क्या हुआ ?

ऐगुदी—वि० [सं ऐङ्गद] इगुदी वृक्ष से उत्पन्न । इगुदी सबधी ।
इगुदीयुक्त [को०] ।

ऐगुदी—सज्ञा पुं० इगुदी के फल की गिरी [को०] ।

ऐग्लो—वि० [अ०] अंगरेजी से संबंधित । इंग्लैंड से संबंधित ।

यी०—ऐंग्लोइंडियन=(१) वह जो भारत, बर्मा आदि में
उत्पन्न हो । (२) यूरोपीय और एशियाई दंपति की सतान ।
ऐंग्लोबर्मीज । ऐंग्लोबर्नमूलर स्कूल=वह पाठशाला जहाँ
अंगरेजी तथा देशी दोनों भाषाओं की पढ़ाई हो ।

ऐच(उ)—सज्ञा स्त्री० [सं अच + √ प्रच्, हि० खीचना, या खेच
पुं० हि० होंचना] खिचाव । तनाव । ऐठ । उ०—कसदलन
पर और उठ, इत राधाहित जोर । चलि रहि सकै न स्याम
चित ऐचतगी दुहुँ और ।—मिखारी ग्र०, भा० २, पृ० ३६ ।

ऐचना—क्रि० सं० [सं अवाञ्चन हि० खीचना, पुं० हि० होंचना] १
खीचना । तानना । उ०—(क) नीलावर कर ऐ चि लियो हरि
मनु वादर तें चंद उजारयो ।—सूर० १०।४०७ । (ख) रह्यो
ऐ चि, अतु न लहै अवधि दुसासनु वीर । आलो, वाढ़त विरह
ज्यों पंचाली को चीर ।—विहारी र०, दो० ४०० । २.

अपने जिम्मे लेना । जिसका रूपया अपने यहाँ बाँकी हो
उसका कर्ज अपने जिम्मे लेना । मोड़ना । श्रोतना । जैसे—
अब प्राप इनसे अपने रूपए का तजाना न करूँ मैं उसे अपनी
और ऐच लेता हूँ । ३. अनाज की भूमी अलग करने के
लिये फटकारना ।

ऐचाऐची—सज्ञा स्त्री० [हि० ऐचना] खींचा खींची । ऐचातानी ।
उ०—(क) दस घटपार वाट पारत नित इद्रजाल बगराय ।
तिनकी प्रति ऐचाऐची में परि पुनि कछु न बनाय ।—साकर
ग्र०, पृ० २६६ । (ख) अँचरा की ऐचाऐची, अँगिया की
खींचाखींची, छतिया की छुवा छुई मान छुटि जाइगो ।—गग०,
पृ० ७६ ।

ऐचाखेची—सज्ञा स्त्री० [हि० ऐचना + खेचना] ऐचातानी । ऐचाऐची
उ०—ऐचाखेची से सबहिन के परिगै भयकामोरी ।—जग०
ग्र०, पृ० ७७ ।

ऐचाताना—वि० [हि० ऐचना + तानना] [वि० स्त्री० ऐचातानी]
जिमकी पुतली देखने में दूसरी ओर की खींची हो । जो
देखने में उधर देखना हुआ नहीं जान पड़ना निधर वह वास्तव
में देखता है । भ्रंश । उ०—सो मे फुनी सहन मे काना ।
सवा लाख में ऐचाताना । ऐचाताना नहै पुकार । कजे से
रहियो दुसियार ।

ऐचातानी—सज्ञा स्त्री० [हि० ऐचना + तानना] खींचाखींची । घसीटा
घसीटी । अपनी अपनी ओर लेने का प्रयत्न । उ०—इक इक
नाम बिना वह कानी, हो रही ऐचातानी ।—कबीर ग्र०,
भा० १, पृ० ६८ ।

ऐचीला—वि० [हि०] लचकदार । लचीला । खिच सकनेवाला ।
खिचने लायक ।

ऐछना(उ)—क्रि० सं० [सं प्रोञ्छन=चुनना] १ भाडना । साफ
करना । २ (बालों में) कधी करना । जँछना । उ०—भोरहि
मातु पठावति लालन सबल कछक खवाई । पोछि शरीर, ऐ छि
कारे कच भूपन पट पहलाई ।—रघुराज (शब्द०) ।

ऐठ—सज्ञा स्त्री० [हि० ऐठन] १ अहंकार की चेष्टा । अकड़ । ठसक ।
२ गर्व । घमंड । उ०—पर आशा की ओर कहाँ तक ऐठ
सहूँ मैं ।—साकेत, पृ० ४०१ ।

कहि रमानिवासा । हरपि चले कुमज रिपि पासा ।—
मानस ३।६ (क) ।

विशेष—इस पद का प्रयोग प्रार्थना को स्वीकार करने या मांगा
हुआ वरदान देने के समय होता है ।

एव^२—अव्य० और । ऐसे ही और । इसी प्रकार और ।

एव—अव्य० [स०] १ एव निश्चयार्थक शब्द । ही । उ०—बलि
मिम देखे दवता कर मिस मानव देव । मुए मार सुविचार हत
स्वार्थ साधन एव ।—तुलसी ग्र०, पृ० १३२ । २ भी ।

एवज—सज्ञा पु० [अ० एवज] १. वदना । प्रतिफल । प्रतिकार ।
२ पविर्तन । वदना ।

क्रि० प्र०—देना । उ०—‘और मैं उसका भी एवज दिया चाहता
था’ ।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३४३ ।—मिलना ।—लेना ।

३ स्थानापन्न पुरुष । दूसरे की जगह पर कुछ काल तक के लिये
का काम करनेवाला आदमी ।

यौ०—एवज मुआवजा = बदल बदल ।

एवजी—सज्ञा पु० [फ० एवजी] स्थानापन्न पुरुष । दूसरे की जगह
पर कुछ काल के लिये काम करनेवाला आदमी ।

एवजीदार—वि० [फ० एवजी + दार (प्रत्य०)] दूसरे की जगह पर
कुछ समय के लिये काम करनेवाला । स्थानापन्न । उ०—जै
दिन काम न करें तै दिन पूरी तनववाइ एवजीदार को दें ।—
प्रताप० ग्र० पृ० ४६१ ।

एवड^०—सज्ञा पु० [देश०] दे० ‘रेवड’ । उ०—ग्राहवले आधोफरड,
एवड मोहि असन्न ।—ढोला०, दू०, ४३६ ।

एवाल^०—सज्ञा पु० [स० अविपाल] गडेरिया । आभीर । उ०—
ढोलइ करह विभासियड, देखे वीस वसाल । ऊंचे थलइ ज
एरलो बच्चालइ एवाल ।—ढोला० दू०, ४३५ ।

एवेन्यू—सज्ञा पु० [अ०] १ वह स्थान जो वृक्ष, लता आदि से
आच्छादित हो । कुज । २ रास्ता । मार्ग । जैसे,—चितरंजन
एवेन्यू ।

एशिया—सज्ञा पु० [यू० (यह शब्द इब्रानीशब्द ‘अशु’ से निकला)
हे जिसका अर्थ है ‘वह दिशा जहाँ से सूर्य निकले अर्थात् पूर्व
पाँच बड़े भूखंडों में से एक भूखंड जिसके अंतर्गत भारतवर्ष,
फारस, चीन, ब्रह्मा, इत्यादि अनेक देश हैं ।

एशियाई—वि० [यू० एशिया + हि० ई (प्रत्य०)] एशिया का ।
एशिया सबधी । उ०—हिंदू मुस्लिम एक हैं दोनों । यानी ये
दोनों एशियाई हैं ।—कविता को०, भा० ४, पृ० ६४३ ।

यौ०—एशियाई रूम । एशियाई रूस । एशियाई कोचक ।

एपण—सज्ञा पु० [न०] १ इच्छा । अभिलाषा । चाहना । २ लेने का
यत्न करना । पाने का प्रयास करना । ३ दवाना । ४. रोग
की जाँच करना । ५ लोहे का वाण [को०] ।

एपणा—सज्ञा स्त्री० [न०] [वि० एपणीय, एपतव्य] १. इच्छा ।
आकांक्षा । अभिलाषा । उ०—सबके पीछे लगी हुई हैं कोई
व्याकुल नई एपणा ।—कामायनी, पृ० २६६ । २. याचना ।
माँगना (को०) ।

एपणासमिति—सज्ञा स्त्री० [स०] जैना में ४२ दोषरहित वस्तुओं
के आहार का नियम । दुषणरहित आहार का ग्रहण ।

एपणिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] सर्राफ की तराजू [को०] ।

एपणी^१—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ दे० ‘एपणिका’ । २ लोहे की
सलाख । लोहशाला का [को०] ।

एपणी^२—वि० [सं० एपणिन्] चाहने या इच्छा रखनेवाला [को०] ।

एपणीय—वि० [सं०] चाहने या प्राप्त करने योग्य [को०] ।

एपा—सज्ञा स्त्री० [सं०] चाह । आकांक्षा । इच्छा [को०] ।

एपिता—वि० [सं० एपितृ] चाहनेवाला । अभिलाषुक । इच्छा
करनेवाला [को०] ।

एपी—वि० [सं० एपिन्] ३० ‘एपिता’ ।

एष्टि—सज्ञा स्त्री० [सं०] चाहना । इच्छा [को०] ।

एष्य—वि० [सं०] १ चाहने योग्य । प्रस्तुत करने योग्य । ३.
निरीक्षण करने योग्य [को०] ।

एसिड—सज्ञा पु० [अ०] तेजाब । अम्लद्वार । द्राव ।

एसीवादी—सज्ञा पु० [प्रा०] जैन संप्रदाय में वाणव्यतर नामक
देवगण के अंतर्गत एक देवता ।

एसेंवली—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ सभा । परिषद् । मंडल । मजलिस ।
व्यवस्थापिका सभा । जैसे—लेजिस्लेटिव एसेंवली । २ समूह ।
जमाव । मजमा ।

एसेंस—सज्ञा पु० [अ०] १ रासायनिक प्रक्रिया से खींचा हुआ फलों
फूलों की सुगंध आदि का सार । पुष्पसार । अंतर । २ वनस्पति
आदि का खींचा हुआ सार । अरक । ३ सुगंध । ४. रूह ।

एस्टिमेट—सज्ञा पु० [अ०] अंदाज । तखमीन । अनुमान । जैसे,—
‘इसमें कितना खर्च पड़ेगा, इसका एस्टिमेट दीजिए’ ।

क्रि० प्र०—देना ।—बताना ।—लगाना ।

एस्परांटो, एस्परातो—सज्ञा दे० [अ०] यूरोप आदि के प्रचलित एक
नवीन कल्पित अंतरराष्ट्रीय भाषा । उ०—‘सरस्वती की किसी
पिछली सख्या में हमने एस्परातो भाषा के विषय में कुछ लिखा
है’ ।—सरस्वती, अप्रैल, १९०५, पृ० १२१ ।

एह^१^०—सर्व० [सं० एह, अप० एह] यह । उ०—स्वार्थ परमारय
रहित सीताराम सनेह । तुलसी सो फल चार को फल हसार
मत एह ।—तुलसी ग्र०, पृ० ६१ ।

एह^२—वि० यह ।

एहतमाम—सज्ञा पु० [अ० एहतिमाम] १ प्रबंध । २. निरीक्षण ।

एहतियात—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ सावधानी । होशियारी । चौकसी ।
वचाव । २ परहेज ।

एहतियातन—वि० [अ०] होशियारी से । एहतियात के तौर पर ।
सुरक्षा की दृष्टि से ।

एहतियाती—वि० [अ०] एहतियात सबधी । जिसने एहतिमात का
खयाल रहे । हिफाजत सबधी [को०] ।

यौ०—एहतियाती काररवाई = खतर से बचने के लिये की जानेवाली
काररवाई । हिफाजत सबधी व्यवस्था ।

एहतिलाम—सज्ञा पु० [अ०] स्वप्नदोष [को०] ।

एहवा^०—वि० [सं० एह, अप० एह + वा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री०
एहवी] दे० ‘एसा’ । उ०—(क) पिय छोटीरा एहवा, जेहा

एवार्ह, एवार्हिक—सज्ञा पुं [सं०] एक प्रकार की ककड़ी [को०] ।

एल—सज्ञा पुं [अ०] कपड़े की एक नाप जो ४५ इंच की होती है। इससे अधिकतर विलायती रेशमी कपड़े और भखमल आदि नापे जाते हैं ।

एलक^१—सज्ञा पुं [सं०] दे० 'एडक' [को०] ।

एलक^२—सज्ञा पुं [सं०] एलक = भेड़ या भेड़ के चमड़े का बना हुआ ।

१ चलनी जिसमें आटा चालते हैं । २ मैदा चालने का आखा ।

एलकेशी—सज्ञा स्त्री [सं०] एला + केश] एक तरह का वैन जो बगल में होता है ।

एलकोहल—सज्ञा पुं [अ०] एक प्रसिद्ध मादक तरल पदार्थ जो कोई चीजों का खमीर उठाकर बनाया जाता है । फूल शराब ।

विशेष—इसका कोई रंग नहीं होता । इसमें स्फिरिट की सी महक आती है । यह पानी में भली भाँति घुल जाता है और स्वाद में बहुत तीक्ष्ण होता है । इसमें गोद, तेल तथा इसी प्रकार के और अनेक पदार्थ बहुत सहज में घुल जाते हैं, इसलिये रंग आदि बनाने तथा औषधि में इसका बहुत अधिक व्यवहार होता है । शराब इसी से बनती है । जिस शराब में इसकी मात्रा जितनी ही अधिक होती है, वह शराब उतनी ही तेज होती है ।

एलची—सज्ञा पुं [तु०] वह जो एक राज्य का सदेशा लेकर दूसरे राज्य में जाता है । दूत । राजदूत । उ०—लखि हजरति फरमान उलटि एलची पठाए ।—ह० रासो० पृ०, ५६ ।

एलचीगरी—सज्ञा पुं [फा०] दौत्य । दूतकर्म ।

एलवालु, एलवालुक—सज्ञा पुं [सं०] १ कपित्थ की सुगंधित छाल । २ एक दानेदार पदार्थ [को०] ।

एलविल—सज्ञा पुं [सं०] कुवेर ।

एला^१—सज्ञा पुं [सं०, मल०] एलाम्] १ इलायची तथा उसका पेड़ । २ शुद्ध राग का एक भेद । ३ वनरीठा । ४ आमोद प्रमोद । विलास । क्रीडा ।

एला^२—सज्ञा पुं [देश०] एक प्रकार की कंटीली लता जिसकी पत्तियों की चटनी बनाई जाती है । वि० दे० 'रसूल' ।

एलागधिका—सज्ञा स्त्री [सं०] एलागन्धिका] कैय या कपित्थ की छाल [को०] ।

एलान^१—सज्ञा पुं [सं०] नारंगी [को०] ।

एलान^२—सज्ञा पुं [अ०] मुनादी । घोषणा । सार्वजनिक घोषणा या सूचना ।

एलापर्णी—सज्ञा स्त्री [सं०] एक पौधा । रास्ना । [को०] ।

एलार्म—सज्ञा पुं [अ०] विपद् या खतरे का सूचक शब्द या संकेत ।

यौ०—एलार्मघड़ी = वड़ी घड़ी जो नियत समय पर टन टन का शब्द करके सूचित करती है । एलार्म चैन । एलार्म वेल एलार्म सिगनल ।

एलार्मचैन—सज्ञा स्त्री [अ०] वह जजीर जो रेलगाड़ियों के अदर लगी रहती है और किसी प्रकार की विपद् की आशका होने पर जिसे खींचने से ट्रेन खड़ी कर दी जाती है । खतरे की जजीर । विपद्सूचक शृंखला ।

एलार्म वेल—सज्ञा पुं [अ०] वह घटा जो विपद् या खतरे की सूचना देने के लिये बजाया जाता है । विपद्सूचक घटा । खतरे का घटा ।

एलि^१—सज्ञा स्त्री [सं०] एलीका] एला । इलायची । उ०—इत लवण नव रंग एलि इत भोलि रही रस । इत कुण्वक केवरा केतकी गंध बधु बस ।—नद० ग्र०, पृ० ६३ ।

एलिमवार^१—वि० [फा०] इल्मवार] ज्ञानवाला । ज्ञानी । उ०—दरिया जो कहैं दल एलिमवार है पार कहा सब सुन्न सुनायो ।—सं० दरिया, पृ० ६५ ।

एलीका—सज्ञा स्त्री [सं०] छोटी इलायची [को०] ।

एलुक—सज्ञा पुं [सं०] १ एक सुगंधित द्रव्य । २ औषधि में प्रयुक्त एक पौधा या द्रव्य [को०] ।

एलुला, एलुवा—सज्ञा पुं [अ० या अ०] एलो] कुछ विशेष प्रकार से सुखाया और जमाया हुआ घीकुर्वार का दूध या रस । मुसब्बर ।

एलेक्टर—सज्ञा पुं [अ०] दे० 'निर्वाचक' ।

एलेक्टरेट—सज्ञा पुं [अ०] दे० 'निर्वाचकसभ' ।

एलेक्टेड—वि० [अ०] दे० 'निर्वाचित' ।

एलेक्ट्रिक—सज्ञा स्त्री [अ०] विद्युत् । बिजली ।

एलेक्शन—सज्ञा पुं [अ०] दे० 'निर्वाचन' ।

एल्क—सज्ञा पुं [अ०] एक प्रकार का बहुत बड़ा वारहसिया जो यूरोप और एशिया में मिलता है ।

विशेष—यह घोड़े से ऊँचा होता है । इसे थूथन होता है । इसकी गरदन इतनी छोटी होती है कि यह जमीन पर की घास आराम से नहीं चर सकता । इससे यह पेड़ की पत्तियाँ और डालियाँ खाता है । इसकी टाँगें चलते समय छितरा जाती हैं । यह न हिरन की तरह दौड़ सकता और न कूद सकता है । इसकी घ्राणशक्ति बहुत तीव्र होती है ।

एल्डरमैन—सज्ञा पुं [अ०] म्युनिसिपल कारपोरेशन का सदस्य जिसका दर्जा मेयर या प्रधान के या डिप्टी मेयर के बाद और साधारण कौन्सिलर या सदस्य से ऊँचा होता है जैसे,—कलकत्ता कारपोरेशन के एल्डरमैन ।

विशेष—इंग्लैंड आदि देशों में एल्डरमैन को म्युनिसिपैलिटी सदस्य होने के सिवा स्थानिक पुलिस मैजिस्ट्रेट के भी अधिकार प्राप्त होते हैं । सन् १७२६ ई० में बर्बई, मद्रास और कलकत्ता आदि में जो मेयर कोर्ट स्थापित किए गए थे, उनमें भी एल्डरमैन थे ।

एल्युमिनम—सज्ञा पुं [अ०] एलुमीनियम] एक प्रकार की बहुत हल्की सफेद धातु जिससे वर्तन, कल पुर्जे आदि बनते हैं । अलुमीनियम । अलमोनियम ।

एल्वालु, एल्वालुक—सज्ञा पुं [सं०] दे० 'एलवालु' [को०] ।

एव^१—कि० वि० [सं०] एवम्] ऐसा ही । इसी प्रकार ।

यौ०—एवगुण = ऐसे गुणोवाला । एवविध = इस प्रकार का ।

इस रूप या ढग का । ऐसा । उ०—एवविध तुम, जीवन कु कुम,

चढ़ी देह पर द्रुम हो ।—पराधना, पृ० ६० । एवमूत =

इस प्रकार का । एवमस्तु = ऐसा ही हो । उ०—एवमस्तु

करना । २ हुंडी या चेक की पीठ पर हस्ताक्षर करके उसे हस्ताक्षरित करना । ३ सकारना । स्वीकार करना ।

क्रि० प्र०—करना ।—कराना ।

एनमद④—संज्ञा पु० [सं० एनमद] मृगमद । कस्तूरी । उ०—यो होत है जाहिरे तो हिये स्याम, ज्यों स्वर्नसीसी भरघो एनमद वाम ।—मिखारी ग्र०, भा० १ पृ० २०१ ।

एनस—संज्ञा पु० [सं०] १ पाप । २ अपराध ।

एनामेल—संज्ञा पु० [अ०] कुछ विशिष्ट क्रियाओं से प्रस्तुत किया हुआ एक प्रकार का लेप जो चीनी मिट्टी या लोहे आदि के वस्तुओं तथा घात के और अनेक पदार्थों पर लगाया जाता है ।

विशेष—यह कई रंगों का होता है और सूखने पर बहुत अधिक कड़ा तथा चमकीला हो जाता है । कभी कभी यह पारदर्शी भी बनाया जाता है ।

एनी—संज्ञा पु० [देश०] एक बहुत बड़ा पेड़ जो दक्षिण में पच्छिमी घाट पर होता है ।

विशेष—इसकी लकड़ी मकानों में लगती है तथा असवाय बनाने के काम में आती है । इसके हीरे की लकड़ी मजबूत और कुछ पीलापन लिए हुए भूरी होती है । एनी ही का दूसरा भेद डील है जिसकी लकड़ी बहुत चमकदार होती है तथा जिसके बीज और फल कई तरह से खाए जाते हैं ।

एप्रिल—संज्ञा पु० [अ०] दे० 'अप्रैल' ।

यौ०—एप्रिल फूल ।

एप्रवर—संज्ञा पु० [अ०] किसी फौजदारी के मामले का वह अभियुक्त जो अपना अपराध स्वीकार कर लेता है और अपने साथी या साथियों के विरुद्ध गवाही देता है । वह अभियुक्त या अपराधी जो सरकारी गवाह हो जाता है । अपराधी साक्षी । मुजरिम इकरारी । इक्वाली गवाह । सरकारी गवाह ।

विशेष—एप्रवर मामला हो जाने पर छोड़ दिया जाता है ।

एफीडेविट—संज्ञा पु० [अ०] १ शपथ । हलफ । २ हलफनामा ।

एवा—संज्ञा पु० [अ० अवा] दे० 'अवा' । उ०—एवा और कदा पहिना छोड़ा ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २५८ ।

एम④—क्रि० वि० [गु०] ऐसा । इस तरह । उ०—ग्रहे सीस ईस करारत दीस । जुरत मरद मचे एम कद् ।—पृ० २१०, २१२५ ।

एमन—संज्ञा पु० [सं० यवन, फा० यमन] एक सपूर्ण जाति का राग जो कल्याण और केदारा राग के मिलाने से बना है ।

विशेष—इसमें तीव्र मध्यम स्वर लगता है और यह रात के पहले पहर में गाया जाता है । इसको लोग श्री राग का पुत्र मानते हैं । कोई इसे कौमाली के ठेके से बजाते हैं और कोई क्षणताल के ।

यौ०—एमन कल्याण । एमन चौताल । एमन घमार । एमन रूपक ।

एमिग्रेशन—संज्ञा पु० [अ०] एक देश से या दूसरे देश या राज्य में बसने के लिये जाना । देशांतराधिवास । उत्प्रवास । परदेशमन ।

२-२०

एम्बुलेंस—संज्ञा पु० [अ०] १ युद्ध क्षेत्र का अस्पताल जिसमें घायलों की मरहम पट्टी आदि की जाती है । मैदानी अस्पताल । २. एक प्रकार की गाड़ी जिसमें घायलों या बीमारों को आराम से नेताकर अस्पताल आदि में पहुँचाते हैं ।

एम्बुलेंसकार—संज्ञा पु० [अ०] दे० 'एम्बुलेंस'-२ ।

एरग—संज्ञा पु० [सं० एरङ्ग, एलङ्ग] एक प्रकार का मत्स्य [को०] ।

एरंड—संज्ञा पु० [सं० एरण्ड] रेंड । रेंडी । उ०—तेल के लिये सिल भी और एरंड भी कम नहीं ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १८ ।

यौ०—एरंडपत्रिका । एरंडफला । एरंडवीज ।

एरंडक—संज्ञा पु० [सं० एरण्डक] दे० 'एरंड' [को०] ।

एरंडखरवृजा—संज्ञा पु० [सं० एरण्ड + हि० खरवृजा] पपीता । रेंड खरवृजा ।

एरंडपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० एरण्डपत्रिका] रेंड की जाति का एक वृक्ष । दतीवृक्ष [को०] ।

एरंडफला—संज्ञा स्त्री० [सं० एरण्डफला] दे० 'एरंडपत्रिका' [को०] ।

एरंडवीज—स्त्री० पु० [सं० एरण्डवीज] रेंडी ।

एरंडसफेद—संज्ञा पु० [सं० एरण्ड + हि० सफेद] मोगली । वाग वरंडा ।

एरंडा—संज्ञा स्त्री० [एरण्डा] पिप्पली ।

एरंडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक भाड़ी जो सुलेमान पर्वत और पश्चिम हिमालय के ऊपर ६०० फुट तक की ऊँचाई पर होती है । इसकी छाल, पत्ती और लकड़ियाँ चमड़ा सिझाने के काम में आती हैं । इसे तुगा, ग्रामी या दरेगढ़ी भी कहते हैं ।

एरफेर—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'हेरफेर' ।

एराक—संज्ञा पु० [अ०][वि० एराकी] १ फारसी संगीत के अनुसार बाहर मोकामो या स्थानों में से एक । २ अरब देश का एक प्रदेश जहाँ का घोड़ा अच्छा होता है ।

एराकी^१—वि० [फा०] एराक देश का । एराक का ।

एराकी^२—संज्ञा पु० वह घोड़ा जिसकी नस्ल एराक देश की हो । यह अच्छी जाति के घोड़ों में गिना जाता है ।

एराफ—संज्ञा पु० [अ० एराफ=स्वर्ग और नरक के बीच का स्थान] जहान का पैदा ।—(लश०) ।

एराव—संज्ञा पु० [अ० एराफ] जहान का पैदा ।

एरिसा④—क्रि० वि० [म० ईदूश, ईदूशी] दे० 'ईदूश' । उ०—ईशे पित मात एरिसा अवयव विमल विचार करे वीवाह ।—वेलि० दू०, ४० ।

एरे—अव्य० [अनु०] अरे । हे (सगो०) । उ०—एरे दगादार मेरे पातक अपार तोहि गया की कठार में पठार छार करिहों ।—पद्याकर ग्र०, पृ० २५५ ।

एरोड्रोम—संज्ञा पु० [अ०] हवाई अड्डा ।

एरोप्लेन—संज्ञा पु० [अ०] एक प्रकार की उड़ने की मशीन । वायु-यान । हवाई जहाज ।

एत^३—वि० [स०] १ मिश्रित रंग का। २ चमकता हुआ। ३ आगत। आया हुआ। ४ गतिशील। गमनशील [को०]।

एत^३—सञ्ज्ञा पुं० १ हिरन। मृग। मृग की ऊँचाई। ३ मिश्रित रंग [को०]।

एतक^७—वि० [स० एतावत्, प्रा० एतिथ, एत्तिन] इतना। एतना। उ०—एतत् कष्ट सहा दुख भगा।—कवीर सा०, पृ० २८२।

एतकाद—सञ्ज्ञा पुं० [अ० एतकाद] विश्वास। भरोसा। उ०—मत रज कर किमी को कि अपने तो एतकाद। दिन ढाय कर जो कावा बनाया तो क्या हुआ।—कविता को०, भा० ४, पृ० ६८।

कि० प्र०—जमना=दृढ़ विश्वास या भरोसा होना।

एतत्, एतद्—सर्व० [म०] यह।

विशेष—इसका प्रयोग योगिक या समस्त पद बनाने ही में अधिक होता है, जैसे—ए देशीय, एाद्विपयक।

एतदनुसार—कि० वि० [म० एतद् + अनुसार] इसके अनुसार। इसके समान। इसके मुताफिक। 'एतदनुसार आज हमारी होली है।'—प्रताप ०, पृ० ५०२।

एतदर्थ—कि० वि० [स०] १ इसके लिये। इसके हेतु। २ इसलिये। इस हेतु।

एतदवधि—प्रवा० [म०] इस सीमा तक। अत तक [को०]।

एतदाल—सञ्ज्ञा पुं० [प्र०] [वि० मुअनदिल] १ बराबरी। समता। न कमी न अधिकता। १ फारसी के मुकाम नामक राग का पुत्र।

एतद्देशीय—वि० [स०] इस देश का। इस देश से सबध रखनेवाला। उ०—अत वे जो वाने नियत कर गए हैं।' एतद्देशीय जलवायु एव प्रवृत्ति के अनुकूल ही नियत कर गए हैं।—प्रताप ०, पृ० ६७२।

एतद्विपयक—वि० [स०] इस सबध का। इस विषय से सम्बन्ध। उ०—एतद्विपयक कानून बनाने की नीवत आई तब कान खड़े हुए हैं।—प्रताप ०, पृ० ४०४।

एतन—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ श्वाभ। निश्वास। २ एक प्रकार की मछली।

एतना^७—वि० [स० एतावत्] [स्त्री० एतनी] दे० 'इतना'। उ०—(क) एकता कहत छीक नइ बाएँ।—मानस, २।१६२। (ख) एतना बोल कहत मुख, उठी विरह के आगि—जायसी ०, पृ० ६०।

एतनिक^७—वि० [स० एतावत्, प्रा० एत्तिन] दे० 'इतनक'। उ०—(क) एतनिक दोस विरचि पिउ लठा। जो पिउ आपन कहै सो झूठा।—जायसी ० (गुप्त), पृ० १७८।

एतवार—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] विश्वास। प्रीति। धाक। साख। उ०—माप जो कुछ करार करते हैं। कहिए हम एतवार करते हैं।—शेर०, भा० १, पृ० १४१।

कि० प्र०—करना।—मानना।—होना।

मृहा०—(किसी का) एतवार उठना=किसी के ऊपर से लोगों का विश्वास हटना। (किसी का) अविश्वास होना। जैसे,—'उनका एतवार उठ गया है उसने उन्हें कही उधार भी नहीं मिलता। एतवार खोना—अपने ऊपर से लोगों का विश्वास हटना। जैसे,—'तुमने अपनी चाल से अपना एतवार खो दिया। एतवार जमाना=विश्वास उत्पन्न होना।

एतवारी—वि० [अ०] विश्वसनीय। विश्वास करने योग्य [को०]।

एतमाद—सञ्ज्ञा पुं० [प्र०] विश्वास। प्रतीति। भरोसा। उ०—जान, तुझ प कुछ एतमाद नहीं। विदगानी का क्या भरोसा है।—कविता को०, भा० ४, पृ० ४८।

एतराज—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] विरोध। आपत्ति। नुक्ताचीनी।

एतली^३—वि० [हि०] दे० 'एतना'। उ०—जान मुणते एतनी, दूना आया दूत।—रा० ०, पृ० १७७।

एतवार—सञ्ज्ञा पुं० [स० आदित्यवार] दे० 'इतवार'।

एतवारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० इतवार] १ वह दान जो रविवार को दिया जाता है। २ पैसा जो मदरसों के लड़के प्रति रविवार को गुरु जी या मोनवी माहव को देते हैं। ३ एतवार सबधी काय या वस्तु।

एता^७—वि० [स० इयत्त] [स्त्री० एनी] इतना। इत मात्रा का। उ०—(क) काहे को एता बिया पञ्जारा, यह तन जरि बरि लूँ है छारा।—कवीर ०, पृ० ११८। (ख) देखि सी हरि के चचल तारे। कमल मोन की कहँ एती छवि खजन ह न जान अनुहारे।—सूर०, १।१७६७।

एतादृश—वि० [म० एतादृश] [स्त्री० एताशी] ऐसा। इसके समान।

एतदृस^७—वि० [स०] दे० 'एतादृश'। उ०—नसर एतादृस प्रवध, निवानू—मानस २।६८।

एतावत्^७—वि० [स०] इतना [को०]।

एतावता—कि० वि० [स०] इस कारण। इसलिये। अत। उ०—'एतावता मैं यह नही कह सकता कि इस विषय पर उसने क्या लिखा है।—हम्मीर० (भू०), पृ० ४।

एतिक^७—वि० स्त्री० [स० एतावत् प्रा० एत्तिथ, एत्तिक (जी०)] इतनी। उ०—जेतिक सँल मुमेर घरनि मैं भुजसरि मान मिलाऊँ। सप्त समुद्र देउँ ठानीतर, एतिक देह बडाऊँ।—सूर० ६।१०७।

एथ^७—कि० वि० [म० अत्र, प्रा० अत्य] दे० 'यत्र'। उ०—लागा धधै लेणई, आयो कुमले एथ।—गीतादास ०, भा० ३, पृ० २६।

एथ—सञ्ज्ञा पुं० [स०] इधन। इधन [को०]।

एथस्—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ इधन। २ वृद्धि। अभ्युदय [को०]।

एथित—वि० [स०] १ वर्द्धित। पूर्ण। भरा हुआ [को०]।

एन^७—सञ्ज्ञा पुं० [म० एण] [स्त्री० एनी] दे० 'एण'। उ०—(क) कहै कवि गग कुल एननि को चैनहर नीलपट ओट नैना ऐसै दमकत हैं।—गग०, पृ० १०। (ख) एनी की अखियनि ते नीकी अखियानि।—स० सप्तक, पृ० २५१।

एनडोर्स—सञ्ज्ञा पुं० [अ० एनडोर्स] १. हुडी आदि की पीठ पर हस्ताक्षर

एटम—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] अणु ।

यौ०—एटमवम = अणुवम । एक महाविध्वंसक आयुध । द्वितीय महायुद्ध के आखिरी वर्ष अमेरिका ने जापान के हिरोशिमा और नागासाकी शहरों पर इसका पहले पहल प्रयोग किया था ।

एटर्नी—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] दे० 'अटर्नी' ।

एड^१—वि० [स०] वहरा [को०] ।

एड^२—सञ्ज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का मेप [को०] ।

एड^३—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] सहायता । मदद ।

एडक—सञ्ज्ञा पुं० [स०] [खी० एडका] १. मेप । भेडा । २. जगली बकरा ।

एडगज—सञ्ज्ञा पुं० [स०] चक्रवर्द्ध । चक्रमर्द ।

एडवास—वि० [अ० एडवास] अग्रिम । उ०—मैंने तत्काल एडवास भाड़ा चुकाकर रसीद लेकर उसे ठीक कर लिया ।—सन्यासी, पृ० ११४ ।

एडवोकेट—सञ्ज्ञा पुं० [अ० एडवोकेट] वह वकील जो साधारण वकीलों में पद में बड़ा हो और जो पुलिस कोर्ट से लेकर हाईकोर्ट तक में बहस कर सके । वकील ।

एडवोकेट जनरल—सञ्ज्ञा पुं० [अ० एडवोकेट जनरल] सरकार का प्रधान कानूनी परामर्शदाता और उसकी ओर से मामलों की पैरवी करनेवाला । महाधिवक्ता ।

विशेष—भारत में बंगाल, मद्रास और बंबई में एडवोकेट जनरल होते थे । इन तीनों में बंगाल के एडवोकेट जनरल का पद बड़ा था । बंगाल सरकार के सिवा भारत सरकार भी (कौंसिल के बाहर) कानूनी मामलों में इनसे सलाह लेती थी । जजों की भांति इन्हें भी सम्राट नियुक्त करते थे ।

एडिटर—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] संपादक । किसी समाचारपत्र, पत्रिका या पुस्तक को ठीक करके उसे प्रकाशित करने योग्य बनानेवाला । उ०—(क) चरन खावें एडिटर जात, जिनके पेट पचें नहि वात ।—भारतेंदु ग्रं० भा० १, पृ० ६६३ । (ख) 'खास अपने शहर की खबर, और वह भी एडिटर हो के, भूझो छापे ।—प्रताप० ग्रं०, पृ० १७६ ।

यौ०—एडिटरपोशी = अपने अनुकूल करने के लिये संपादकों का पोषण । उ०—दांत पीसी हाय हाय, एडिटरपोशी हाय हाय ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ६७८ ।

एडिटरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० एडिटर + हि० ई (प्रत्य०)] संपादन । किसी ग्रंथ या पत्र को प्रकाशित करने के लिये ठीक करने का काम । उ०—'पच' की एडिटरी चिरकीन के शागिर्दों का काम नहीं ।—प्रताप०, ग्रं०, पृ० ६११ ।

एडीकाग—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] १ वह कर्मचारी जो सेना के प्रधान सेनापति की आज्ञा का प्रचार करता हो और काम पड़ने पर उसकी ओर से पत्रव्यवहार भी करता हो । एडीकाग प्रधान शरीररक्षक का काम भी करता है । २ प्रधान शरीररक्षक ।

एड—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० एडक = हड्डी या हड्डी की तरह कडा,] टखनी के पीछे पैर की गद्दी का निकाला हुआ भाग । एडी ।

क्रि० प्र०—देना ।—मारना ।—लगाना ।

मुहा०—एड करना = (१) एड लगाना । (२) चल देना । खाना

होना । एड देना या लगाना = (१) लात मारना । (२)

घोड़े को आगे बढ़ाने के लिये एड से मारना । (घोड़े को) आगे बढ़ाना । (३) उमाड़ना । उसकाना । उत्तेजित करना ।

(४) अडंगा लगाना । चलते हुए काम में बाधा डालना ।

एडक—सञ्ज्ञा पुं० [स० एडक] [खी० एडका] भेडा । मेडा ।

एडो—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० एडूक = हड्डी या हड्डी की तरह कडा, हि० एड] टखनी के पीछे पैर की गद्दी का निकाला हुआ भाग । एड । उ०—बार बार एडी अलगाय कै उचकि लफी, गई लचि बहुरि पयोधर विदेह सो ।—कविता कौ०, भा० २, पृ० ६६ ।

महा०—एडी घिसना या रगड़ना = (१) एडी को मल मलकर घोंना । उ०—मुँह धोवति एडी घमति, हसति अनैगति तीर । विहारी २०, दो० ६६७ । (२) रीघना । बहुत दिनों से क्लेश या दुःख में पड़ा रहना । कष्ट उठाना । जैसे—'वे महीनों से चारपाई पर पड़े एडियाँ घिस रहे हैं । (३) खूब दौड़धूर करना । अगतोड परिश्रम करना । अत्यंत यत्न करना । जैसे—'व्यर्थ एडियाँ घिस रहे हो कुछ होने जाने का नहीं । एडी चोटी पर से वारना = (१) सिर और पाँव पर से व्योछावर करना । तुच्छ समझना । नाचीज समझना । कुछ कदर न न करना । (स्त्रियाँ) । जैसे—'ऐसो को तो मैं एडी चोटी पर वार दूँ । उ०—एडी चोटी पे मुए देव को कुरवान कल ।—इं०रसमा (शब्द०) । एडीदेख = चमकवदूर । तेरी आँख में राई लोन । जब कोई ऐसी बात कहता है जिससे बच्चे को नजर या भूत प्रेत लगने का डर होता है तब स्त्रियाँ यह वाक्य बोलती हैं । एडी से चोटी तक = सिर से पैर तक । एडी चोटी का पसीना एक होना या करना = अति परिश्रम करना । श्रम पड़ना ।

एडीटर—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] दे० 'एडीटर' । उ०—'इस अखबार के एडीटर को पहले लाला मदनमोहन से अच्छा फायदा हो चुका था' ।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३८४ ।

एड्रेस—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] दे० 'अड्रेस' ।

एडा(उ) — वि० [म० आड्य या देशी] बलवान् । बली ।—(हि०) ।

एण—सञ्ज्ञा पुं० [स०] [खी० एणी] १ हिरण की एक जाति जिसके पैर छोटे और आँखें बड़ी होती हैं । यह काले रंग का होता है । क०तूरीमृग ।

यौ०—एणतिलक, एणभृत्, एणलाछन = चंद्रमा ।

एणहक—सञ्ज्ञा पुं० [स०] मकराशि [को०] ।

एणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] हिरणी [को०] ।

एणीदाह—सञ्ज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का ज्वर । एक प्रकार का सन्निपात ।—माधव०, पृ० २१ ।

एणीपद—सञ्ज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का माँप [को०] ।

एणीपदी—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] एक जहूलीला कीड़ा ।

एत(उ) — वि० [स० इयत्] दे० 'एता' । उ०—छोरि उदर ते दुमह् दाँवरी डारि कठिन कर वेत । कहि धौं री तोहि क्यो करि आवैं सिमु पर तामस एत ।—सूर० १०।३४६ ।

एक हृदय में भरा था। इससे रक्त का घूट भीतर ही भीतर
पिया किए।—प्रताप० अ०, पृ० ६७।

एक्टिंग—सज्ञा स्त्री० [अ०] अभिनय। नकल करना।

एक्यान्वे—वि० [स० एकनवति, प्रा० एकाणउड] नब्बे
और एक।

एक्यान्वे^२—सज्ञा पुं० नब्बे और एक की मयुक्त मध्या का बोध कराने-
वाला अंक, जो इस प्रकार लिखा जाता है—६१।

एक्यावन^१—वि० [स० एकपञ्चास, प्रा० एकावन्] पचास
और एक।

एक्यावन^२—सज्ञा पुं० पचास और एक की सख्या का बोधक अंक जो
इस प्रकार लिखा जाता है—५१।

एक्यासी^१—वि० [स० एकाशीति, प्रा० एकासीड] अस्सी और एक।

एक्यासी^२—सज्ञा पुं० एक और अस्सी की सख्या का बोधक अंक जो
इस प्रकार लिखा जाता है—८१।

एक्सचेंज—सज्ञा पुं० [अ० इक्सचेंज] १ बदला। परिवर्तन। २
वह स्थान जहाँ नगर के व्यापारी और महाजन परस्पर लेनदेन
या ऋण वक्रय के लिये इकट्ठे होते हैं।

एक्सपर्ट—सज्ञा पुं० [अ०] वह जिसे किसी विषय का विशेष ज्ञान
हो। किसी विषय में पारगट। विशेषज्ञ।

एक्सपोज—सज्ञा पुं० [अ० एक्सपोज] १ किसी वस्तु को इसलिये
दूसरी वस्तु के सामने या निकट रखना जिसमें उपर उस दूसरी
वस्तु का प्रभाव पड़े। २ फोटोग्राफी में प्लेट को कैमरे में
लगाकर अक्स लेने के लिये लेंस का मुँह खोलना।

एक्सपोर्ट—सज्ञा पुं० [अ०] दे० 'निर्यात'। जैसे—एक्सपोर्ट ड्यूटी।

एक्सप्रेसन—सज्ञा स्त्री० [अ०] भाव मगिमा। अभिव्यक्ति। उ०—
उनके चेहरे का एक्सप्रेसन देखते नहीं, एक भरपेट भोजन-
प्राप्त गैवार की तरह हँस रहे हैं।—सन्धासी, पृ० १८७।

एक्सप्लोसिव—सज्ञा पुं० [अ०] नमक उठनेवाला पदार्थ। फिस्फोटक
पदार्थ। गधक वाल्ड आदि। जैसे—एक्सप्लोसिव ऐक्ट।

एक्सरे—सज्ञा पुं० [अ०] एक विद्युत्किरण जिसकी सहायता से
शरीर के भीतरी भागों का चित्र लिया जाता है। उ०—
एक्स रे की तरह उसके शरीर के बाह्यावरण को भेदकर
उसके मर्म का अणु अणु देख लेगी।—सन्ध्यामी, पृ० ३७५।

एक्साइज—सज्ञा पुं० [अ० एक्साइज] वह टैक्स या कर जो नमक और
आवकारी की चीजों पर लगता है। नमक और आवकारी की
चीजों पर लगनेवाला टैक्स या कर। महसूल। चुगी।

यौ०—एक्साइज डिपार्टमेंट = आवकारी विभाग। एक्साइज
ड्यूटी = मादक द्रव्यों आदि पर लगनेवाला कर।

एखनी—सज्ञा स्त्री० [फा० यखनी] मास का रमा। मास का शोरवा।

यौ०—एखनी पुलाव = वह पुलाव जिसमें एखनी डालते हैं।

एगानगी—सज्ञा स्त्री० [फा० यगानगी] १ एका। मेल। २ मित्रता
मैत्री। हेलमेल।

एगाना—वि० [फा० यगानह] जो बेगाना न हो। अपना। आत्मीय।

उ०—(क) मातु पिता सुत बाधवा सम कहत एगाना रे।

कहे दरिया सतगुर रिना जम हाय रिफाना रे।—शं० दरिया
पृ० १६७। (घ) 'जितने ही एगाने मित्र अच्छा ही है।—
प्रेमघन०, भा० २, पृ० १३८।

एग्जामिनेशन—सज्ञा पुं० [अ०] परीक्षा। इम्तिहान।

एग्जिविट—सज्ञा पुं० [अ०] १ प्रदर्शनी आदि में दिखाई देनेवाली
वस्तु। २ वह जो अदालत में किसी मामले में प्रमाण-
स्वरूप दिखाई जाय। अदालत में किसी मामले के सबूत में
प्रमाणस्वरूप उपस्थित की जानेवाली वस्तु। जैसे—'न०' ३०
एग्जिविट एक तेज छुरा था।

एग्जिविशन—सज्ञा पुं० [म०] प्रदर्शनी। नुमायश। जैसे—'एपायर
एग्जिविशन'।

एजाज—सज्ञा पुं० [अ० ऐजाज] चमत्कार। अद्भुत कार्य। करिमा।

एजुकेशन—सज्ञा पुं० [अ०] शिक्षा। तालीम।

यौ०—एजुकेशन डिपार्टमेंट = शिक्षाविभाग।

एजुकेशनल—वि० [अ०] शिक्षासंबंधी।

एजेंट—सज्ञा पुं० [अ०] १ वह आदमी जो किसी की ओर से उसका
कोई काम करता हो। मुद्यतार। २ वह आदमी जो किसी
कोठी, कारखाने या व्यापारी की ओर से माल बेचने या
खरीदने के लिये नियुक्त हो। ३ वह राजपुरुष या अफसर जो
(अंगरेज) सरकार (या बड़े लाट) के प्रतिनिधि के रूप में
किसी (देशी) राज्य में रहता हो। ४ दे० एजेंट गवर्नर
जनरल।

एजेंट गवर्नरजनरल—सज्ञा पुं० [अ०] भारत में अंग्रेजी शासन
काल का वह राजपुरुष या अफसर जो बड़े लाट के एजेंट या
प्रतिनिधि रूप से कई देशी राज्यों की राजनीतिक दृष्टि से
देखभाल करता था।

एजेंडा—सज्ञा पुं० [अ०] किसी सभा का कार्यक्रम।

एजेंसी—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ आदत। वह स्थान जहाँ किसी कार-
खान या कंपनी का माल एजेंट के द्वारा बिकता हो। २
वह स्थान जहाँ एजेंट या गुमाश्ते किसी कंपनी या कारखाने
के लिये माल खरीदते हो। ३ वह स्थान जहाँ शासक या
सरकार या गवर्नरजनरल (बड़े लाट) या स्वामी का एजेंट
या प्रतिनिधि रहता था या जहाँ उसका कार्यालय है। ४ वह
प्रांत जो राजनीतिक दृष्टि से एजेंट के अधिकारयुक्त था।
जैसे—राजपूताना एजेंसी, मध्यभारत एजेंसी।

विशेष—अंग्रेजी के शासनकाल में हिंदुस्तान में पाँच रेजिडें-
सियाँ (हेदरावाद, मेसूर, बड़ोदा, काश्मीर और सिकम में)
और चार एजेंसियाँ (राजपूताना, मध्यभारत, विलोचिस्तान
तथा पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत में) थी। एक एक एजेंसी के
अंतर्गत कई राज्य थे। इन एजेंसियों में सब मिलाकर कोई
१७५ राज्य या रियासतें थी। प्रत्येक एजेंसी में गवर्नर
जनरल या बड़े लाट का एजेंट या प्रतिनिधि रहता था। इन
एजेंटों के सहायताय रियासतों में पोलिटिकल अफसर रहते
थे। जिस स्थान पर ये लोग रहते वहाँ प्रायः अंगरेज सरकार
की छावनी होती थी और कुछ फौज रहती थी।

एकाष्टक—सज्ञा स्त्री [सं०] माघ का आठवाँ दिन [को०] ।

एकाष्टी—सज्ञा पुं [सं०] १ वक्र वृक्ष । २ मदार । ३ एक बीज का विनोला [को०] ।

पर्या०—एकाष्टीन । एकाष्टीला ।

एकाह—वि० [सं०] एक दिन में पूरा होनेवाला । जैसे—‘एकाह पाठ’ । एकाह यज्ञ’ ।

एकाहिक—वि० [सं०] एक दिन का । एक दिन में पूरा होनेवाला । एकाह ।

एकीकरण—संज्ञा पुं [सं०] एक करना । मिलाकर एक करना । गड़बड़ कराना ।

एकीकृत—वि० [सं०] एक किया हुआ । मिलाया हुआ ।

एकीभवन, एकीभाव—संज्ञा पुं [सं०] १. मिलना । मिलाव । एक होना । २ एकत्र होना । इकट्ठा होना ।

एकीभूत—वि० [सं०] १ मिला हुआ । मिश्रित । जो मिलाकर एक हो गया हो । २ जो इकट्ठा हुआ हो ।

एकेंद्रिय—संज्ञा पुं [सं० एकेंद्रिय] १ साध्य शास्त्र के अनुसार उचित और अनुचित दोनों प्रकार के विषयों से इन्द्रियों को हटाकर उन्हें अपने मन में जीन करना । २. जैन मतानुसार वह जीव जिसके केवल एक ही इन्द्रिय अर्थात् त्वचामात्र होती है, जैसे जोक, केचुआ आदि ।

एकेश्वरवाद—संज्ञा पुं [सं०] जगत् की उत्पत्ति और नियमन करनेवाला ईश्वर एक ही है, यह सिद्धांत या मत । उ०—‘यह मामान्य भक्ति मार्ग एकेश्वरवाद का एक अनिश्चित स्वरूप लेकर खड़ा हुआ’ ।—इतिहास, पृ० ६६ ।

एकेश्वरवादी—वि० [सं० एकेश्वरवादिन्] एकेश्वरवाद को माननेवाला । ससार का सृजन, स्थिति, संहार करनेवाली शक्ति ईश्वर’ एक ही है, इस विचार या मत को माननेवाला । उ०—‘हमारा धर्म मुख्यतः एकेश्वरवादी है—वह ज्ञानप्रधान है’ ।—ककाल, पृ० १०५ ।

एकोत्तर—वि० [सं० एकोत्तर] दि० ‘एकोत्तर’ । उ०—‘यान एकोत्तर लँह जाई । असद्य जन्म का कर्म नशाई ।—कबीर सा०, पृ० ५५२ ।

एकोत्तरसो—वि० [सं० एकोत्तरशत, अप० एकोत्तरसय] एक सौ एक । उ०—‘उनकर सुमिरण जो तुम करिहो । एकोत्तरसो पुरुषा लँ तरिहो ।—कबीर सा०, पृ० ४०० ।

एकोत्तरा—संज्ञा पुं [सं० एकोत्तर] एक रूपया सैकड़ा व्याज ।

एकोत्तरा—वि० एक दिन अंतर देनेवाला । जैसे—‘एकोत्तरा ज्वर’ ।

एकोत्तर—वि० [सं०] एक से अधिक [को०] ।

एकोदक—संज्ञा पुं [सं०] वह मयघी जो एक ही पितर को जल देता हो [को०] ।

एकोद्विष्ट (याद्व) —संज्ञा पुं [सं०] पह याद्व जो एक के उद्देश्य से किया जाय । यह प्रायः वर्ष में एक बार किया जाता है ।

एकोह—सर्व० [सं० एकोहम्] मैं एक हूँ । मैं अकेला हूँ । उ०—‘गा गा एकोह बहुस्याम । हर लिए भेद, भव भीति मार ।—युगात, पृ० ५६ ।

यी०—एकोह बहुस्यामि ।

एकोटेंट—संज्ञा पुं [अ० अकाउन्टेन्ट] दि० ‘अकाउटेन्ट’ । उ०—‘किसी एकोटेंट की जगह खाली है, आप सिफारिश कर दें तो शायद वह जगह मुझे मिल जाय —काया०, पृ० २६८ ।

एकोझा—वि० [सं० एक] अकेला । एकाकी । उ०—‘जो देवपाल राउ रन गाजा । मोहि तोहि जूझ एकोझा राजा ।—जायसी (शब्द०) ।

एकौतना—क्रि० अ० [हि० एक + पत्ता] धान या गेहूँ में उस पत्ते का निकलना जिसके गाँभ में बाल हो । धान आदि का फूटने पर आना । गरभाना ।

एकौसा—वि० [सं० एक + आवास, प्रा० श्रोवास, अप० श्रोसास] १ अकेला । एककी । २ एक ही वासवाला । एक ही के प्रति रागवाला । उ०—‘चलो न बलाइ लेउ आगे तँ एकौसे होहु, ताही के सिधारी जाके निसि बनि आए हो ।—गंग०, पृ० ५७ ।

एक्का—वि० [सं० एकक] १ एकवाला । एक से सवध रखनेवाला । २ अकेला ।

यी०—एक्का दुक्का = अकेला । दुकेला ।

एक्का—संज्ञा पुं १ वह पशु या पक्षी जो झुंड छोड़कर अकेला चरता या घूमता हो ।

विशेष—इसका व्यवहार उन पशुओं या पक्षियों के सवध में आता है जो स्वभाव से झुंड बाँधकर रहते हैं । जैसे, एक्का सूअर, एक्का मुर्ग ।

२ एक प्रकार की दोपहिया गाड़ी जिसमें एक बैल या घोड़ा जोता जाता है । ३ वह सिपाही जो अकेले बड़े बड़े काम कर सकता है और जो किसी कठिन समय में भेजा जाता है । ४ फौज में वह सिपाही जो प्रतिदिन अपने कमान अफमर के पास नमन (फौज) के लोगों की रिपोर्ट करे । ५ बड़ा भारी मुगदर जिसे पहलवान दोनों हाथों से उठाते हैं । ६ बाँह पर पहिने का एक गहना जिसमें एक ही नग होता है । ७ वह बैटकी या शमादान जिसमें एक ही बत्ती जलाई जाती है । इक्का । ८ ताग या गंजीफे का वह पत्ता जिसमें एक ही बूटी या चिह्न हो । एक्की ।

एक्कावान—संज्ञा पुं [हि० एक्का + वान (प्रत्य०)] [संज्ञा एक्का-वानी] । एक्का हाँकनेवाला । वह पुरुष जो एक्का चलाता हो ।

एक्कावानी—संज्ञा स्त्री [हि० एक्कावान + ई (प्रत्य०)] १ एक्का हाँकने का काम । २ एक्का हाँकने की मजदूरी ।

एक्की—संज्ञा स्त्री [हि० एक्का + ई (प्रत्य०)] १ वह बैलगाड़ी जिसमें एक ही बैल जोता जाय । २ ताश या गंजीफे का वह पत्ता जिसमें एक ही बूटी हो ।

विशेष—यह पत्ता प्रायः सबसे प्रबल माना जाता है और अपने रंग के सब पत्तों को मार सकता है ।

एक्जिविशन—संज्ञा स्त्री [अ० एक्जिविशन] प्रदर्शनी । नुमाइश ।

एक्ट—संज्ञा पुं [अ० ऐक्ट] नियम । कानून । उ०—‘दृष्ट रेलवे

एकाक्ष—वि० [सं०] एक स्वरवाला (शब्द) [को०] ।

एकाच्छरी^७—वि० [सं० एकाक्षर + हि० ई (प्रत्य०)] दे० 'एकाक्षरी' ।

उ०—भाषा करि एकाच्छरी समझी बुद्धि अगाधि ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ५४३ ।

एकात्म—वि० [सं० एकात्मन्] एकहृदय । एकप्राण । अभिन्न [को०] ।

एकात्मता—सज्ञा स्त्री [सं०] १ एकता । अभेद । २ मिल मिलाकर एक होना । एकमय होना ।

एकात्मवाद—सज्ञा पुं० [सं०] वह सिद्धांत जिसमें आत्मा और परमात्मा के एकाकार की मान्यता है । जीव ब्रह्म के ऐक्य का सिद्धांत । अद्वैतवाद [को०] ।

एकादश^१—वि० [सं०] ग्यारह ।

एकादश^२—सज्ञा पुं० ग्यारह की सख्या का बोध करानेवाला अक्षर-११ ।

एकादशाह—सज्ञा पुं० [सं०] मरने के दिन से ग्यारहवाँ दिन ।

विशेष—उस दिन हिंदू मृतक के लिये वृषोत्सर्ग करते हैं, महा-ब्राह्मण खिनाते हैं तथा शय्यादान इत्यादि देते हैं ।

एकादशी—सज्ञा स्त्री [सं०] प्रत्येक चांद्र मास के शुक्ल और कृष्ण पक्ष की ग्यारहवीं तिथि ।

विशेष—वैष्णव मत के अनुसार एकादशी के दिन अन्न खाना दोष है । इस दिन लोग अनाहार या फलाहार व्रत करते हैं । व्रत के लिये दशमीविद्धा एकादशी का निषेध है और द्वादशी-विद्धा ही ग्राह्य है । वर्ष में चौबीस एकादशी होती हैं जिनके जिनके नाम अलग हैं, जैसे, भीमसेनी, प्रबोधिनी, हरिश्चयनी, उत्पन्ना इत्यादि ।

दृष्टां—एकादशी मनाना = भूखे रहना । बिना भोजन के रहना ।

उ०—इस महेगो से नित एकादशी मनाते, लडके वाले सत्र घर में हैं चिल्लाते ।—कविता को०, भा० २, पृ० ३७ ।

एकादसी—^७—सज्ञा स्त्री [सं० एकादशी] दे० 'एकादशी' । उ०—(क) 'मो ऐसैं करत वोहोत दिन बीते । तब एक एकादसी आई ।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० २७ । (ख) एकादसी गाल मह आरव, द्वादसि काम कपोल समारव ।—चित्रा०, पृ० २१६ ।

एकाध—वि० [हि० एक + धावा] कुछ । स्वल्प । थोड़ा । इक्का दुक्का । उ०—(क) 'उत्तर में सिसकियो के साथ एकाध हिचकी ही सुनाई पड जाती थी' ।—ग्रांथी, पृ० ३८ । (ख) 'यार यह तो होता रहेगा, एकाध तान तो उड़े' ।—प्रताप० ग्र० पृ० ६ ।

एकाधिक—वि० [सं०] एक से अधिक । अनेक [को०] ।

एकाधिकार—सज्ञा पुं० [सं०] एक व्यक्ति या दल का अधिकार । एक का प्रभुत्व । उ०—एकाधिकार रखते भी धन पर, अविचल चित्त । अपरा, पृ० ६३ ।

एकाधिप—सज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण देश का एकमात्र शासक । एकमात्र स्वामी [को०] ।

एकाधिपति—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'एकाधिप' [को०] ।

एकाधिपत्य—सज्ञा पुं० [सं०] एकमात्र अधिकार । पूर्ण प्रभुत्व । उ०—

'जय ने श्यामदुलारी चली गई, घामपुर में तहसीलदार का एकाधिपत्य था ।—तितली, पृ० १३६ ।

एकानन—वि० [न० एक + आनन = मुख] एक मुखवाला । उ०—एकानन हम, चतुरानन तू, अत कह गया और विशेष ।—कविता को०, भा० २, पृ० १५२ ।

एकान्विति—सज्ञा पुं० [सं०] एक में अन्वित अर्थात् युक्त होना । ऐक्य । एकत्व । उ०—उनमें एकान्विति और संबंध की सब पूछिए जगह ही नहीं रहती ।—आचार्य०, पृ० १२८ ।

एकावदा—सज्ञा स्त्री [सं०] एक वर्ष की गणित [को०] ।

एकायन^१—वि० [सं०] १ एकाग्र । २ एकमात्र या एक के गहन योग्य । जिसको छोड़ और किसी पर चरने आदक न हो (मार्ग आदि) ।

एकायन^२—सज्ञा पुं० १ नीतिशास्त्र । २ विचारों की एकाता [को०] ।

३ एकमात्र मार्ग [को०] । ४ एकत म्यान [को०] ।

एकार^१^७—^७—वि० [हि० एकाकार] एक समान । एक सदृश । एक मा । उ०—परदल पिए जीपि पदमणी परणे । आर्गद उमै हुआ एकार ।—वेणि०, दू०, १३८ ।

एकार^२—सज्ञा पुं० [न०] 'ए' अक्षर तथा उसकी ध्वनि [को०] ।

एकार्गल—सज्ञा पुं० [सं०] चन्द्रस्वध नामक योग ।

एकार्णव—सज्ञा पुं० [सं०] जनप्लावन । जनप्रलय [को०] ।

एकार्य—वि० [सं०] समान अर्थवाला ।

एकार्यक—वि० [न०] समानार्थक ।

एकावली^१—सज्ञा स्त्री [सं०] १ एक अक्षर जिसमें पूर्व और पूर्व के प्रति उत्तरोत्तर वस्तुओं का विशेषण भाव से स्थापन अथवा निषेध दिखलाया जाय ।

विशेष—इसके दो भेद हैं । पहला वह जिसमें पूर्वकथित वस्तुओं के प्रति उत्तरोत्तर कथित वस्तु का विशेषण भाव से स्थापन किया जाय । जैसे—सुबुद्धि सो जो हिन ग्रापुनो लखै, हिनी वही हूँ परदुख ना जहाँ । परी वहै आगिन साधु भाव जो जहाँ रहै केशव साधुता वही । वही सुबुद्धि का विशेषण 'हिन ग्रापुनो लखै' और 'हिन' का 'परदुख ना जहाँ' रखा गया है । दूसरा वह जिसके पूर्वकथित वस्तु के प्रति उत्तरोत्तर कथित वस्तु का विशेषण भाव से निषेध किया जाय । जैसे—शोभित सो न सना जहँ वृद्ध न, वृद्ध न ते जे पड़े कछ नाहीं । ते न पड़े जिन साधु न साधत, दोह दया न दिखै जिन माहीं । नो न दया जु न धर्म न सो जहँ दान वृथा ही । दान न सो जहँ साँच न केशव, साँच न मो, जु बसै छल दाही ।

२ एक छंद । दे० 'पकजवाटिका' । ३ मोतियों की एक हार लंबी माना । एक तार की माना जिसमें मोतियों की सन्ध्या नियत न हो । उ०—'अमयकुमार ने एक हार में अपने गले से मुक्ता की एकावली निकालकर अञ्जलि में ले ली ।' इन्द्र०, पृ० १३४ ।

विशेष—कोटिल्य के अनुसार यदि इस माला के बीच में मणि होती थी तो इसकी 'यष्टी' सज्ञा थी ।

एकावली^२—वि० एक लर का । एकहरा ।

निर्जन स्थान में रहनेवाला। अकेले में रहनेवाला। सबसे न्यारा रहनेवाला। उ०—‘फिर एकांतवासी लोग भी परम धर्म से क्योंकर न्यारे होंगे।’—प्रताप० प्र०, पृ० १०३।

एकांतस्वरूप—वि० [सं० एकान्तस्वरूप] असंग। निर्दिष्ट।

एकांतिक—वि० [सं० एकान्तिक] एकदेशीय। जो एक ही स्थान के लिये हो। जिसका व्यवहार एक से अधिक स्थानों या अवसरों पर न हो सके। जो सर्वत्र न घटे। एकदेशीय। जैसे—एकांतिक नियम।

एकांती—संज्ञा पु० [सं० एकान्तिन्] एक प्रकार का मत्त जो भगवत्प्रेम को अपने अंतःकरण में रखता है, प्रकट नहीं करता फिरता।

एका—संज्ञा स्त्री [सं०] दुर्गा।

एका^२—संज्ञा पु० [सं० एकता, > प्रा० *एकआ, > हि०] ऐक्य। एकता। मेल। अभिसंधि। जैसे—(क) उन लोगों में बड़ा एका है। (ख) उन्होंने एका करके माल का लेना ही बंद कर दिया। उ०—‘ऐसे केवल कुछ जीते सिध सृजान नैं। तब मलार हूँ सुद्ध कर्म सौ एकी कियो।’—सुजान०, पृ० ३५।

एकाई—संज्ञा स्त्री [हि० एक + आई (प्रत्यय)] १. एक का भाव। एक का मान। इकाई। लघुतम घटक अंग। २. वह मात्रा जिसके गुणन या विभाग से और दूसरी मात्राओं का मान ठहराया जाता है। जैसे—किसी लंबी दीवार को मापने के लिये कोई लवाई ले ली और उसका नाम गज फुट इत्यादि रख लिया। फिर उस लवाई को एक मानकर जितनी गुनी दीवार होगी उतने ही गज या फुट लंबी वह कही जायगी। ३. अकों की गिनती में पहले अंक का स्थान। ४. उस स्थान पर लिखा हुआ अंक।

विशेष—अंकों के स्थान की गिनती दाहिनी ओर से चलती है, जैसे—हजार, सैकड़ा, दहाई, एकाई। एक स्थान पर केवल ९ तक की संख्या लिखी जा सकती है। संख्या के अभाव में शून्य रखा जाता है, जैसे ‘१०’। इसका अभिप्राय यह है कि इस संख्या में केवल एक दहाई (अर्थात् दस) है और एकाई के स्थान पर कुछ नहीं है। इसी प्रकार १०५ लिखने से यह अभिप्राय है कि इस संख्या में एक सैकड़ा, शून्य दहाई और पाँच एकाई हैं।

एकाएक—क्रि० वि० [हि० एक, मि० फा० यकायक] अकस्मात्। अचानक। सहसा। उ०—‘एकाएक मिलें गुह पूरा मूल मय तब पार्वी।’—धरम०, पृ० ७६।

एकाएकी^१—क्रि० वि० [हि० एकाएक] अकस्मात्। सहसा। अचानक। एकाएक। उ०—‘सहृदयों को इन पथ का एकाएकी अंत हो जाना अत्यंत कष्टदायक होगा।’—प्रताप० प्र०, पृ० ७२३।

एकाएकी^२—वि० अकेला। तनहा। उ०—‘एकाएकी रमे अवनि पर दिल का दुविधा खोइवे। कहे कबीर अलमस्त फकीरा आप निरंतर सोइवे।’—कबीर (शब्द०)।

एकाकार^१—संज्ञा पु० [सं० एक + आकार] मिल मिलकर एक होने की क्रिया। एकत्र होना। भेद का अभाव। जैसे ‘वहाँ सर्वत्र एकाकार है, जाति पाति कुछ नहीं है।’

एकाकार^२—वि० एक आकार का। समान रूप का। मिल जुलकर एक।

एकाका—वि० [सं० एकाकिन] [स्त्री० एकाकिनी] अकेला। तनहा।

उ०—‘देवविग्रह एकाका धर्मोन्मत्त काला पहाड के अश्वारोहियों से घिर गया।’—इंद्र०, पृ० ११७।

एकाक्ष^१—वि० [सं०] [स्त्री० एकाक्षी] जिसमें एक ही आँख हो। काना।

२. एक ही अक्ष या धुरीवाला (को०)।

यौ०—एकाक्ष द्वाक्ष = वह द्वाक्ष जिसमें एक ही आँख या बिंदी हो। एकमुख द्वाक्ष। एकाक्षपिगल।

एकाक्ष^२—संज्ञा पु० १. कौआ। २. युकाचार्य। ३. शिव (को०)।

एकाक्षपिगल—संज्ञा पु० [सं० एकाक्षपिङ्गल] कुवेर।

एकाक्षर^१—वि० [सं०] एक अक्षरवाला (को०)।

एकाक्षर^२—संज्ञा पु० १. एक अक्षरवाला मंत्र ‘ॐ’। २. एक उपनिषद् (को०)।

एकाक्षरी—वि० [सं० एकाक्षरिन्] एक अक्षर का। जिसमें एक ही अक्षर हो। एक अक्षरवाला। जैसे—‘एकाक्षरी मंत्र’।

यौ०—एकाक्षरी कोश = वह कोश जिसमें अक्षरों के अलग अलग अर्थ दिए हों जैसे ‘ए’ से वासुदेव, ‘इ’ से कामदेव इत्यादि।

एकाग्र^१—वि० [म० एकाग्र] एक ओर स्थिर। चंचलता रहित। एकाग्र। उ०—‘चौद सुरज एकाग्र करिकें उगटि उरध अनुसरे।’—मीरा श०, पृ० ८।

एकाग्र^२—वि० [सं०] १. एक ओर स्थिर। चंचलता में रहित। २. अनन्यचिन्ता। जिसका ध्यान एक ओर लगा हो।

यौ०—एकाग्रचित्त। एकाग्रदृष्टि। एकाग्रभूमि। एकाग्रमन।

एकाग्र^३—संज्ञा पु० योग में चित्त की पाँच वृत्तियों या अवस्थाओं में से एक जिसमें चित्त निरंतर किसी एक ही विषय की ओर लगा रहता है। ऐसी अवस्था योगसाधना के लिये अनुकूल और उपयुक्त कही गई है। वि० ‘चित्तभूमि’।

एकाग्रचित्त—वि० [सं०] स्थिरचित्त। जिसका ध्यान बँधा हो। जिसका मन इधर उधर न जाता हो, एक ही ओर लगा हो। उ०—‘मैं भी आज इस मामले को बड़े एकाग्रचित्त से विचारा था।’—श्रीनिवास प्र०, पृ० ६६।

एकाग्रचित्तता—संज्ञा स्त्री [सं०] स्थिरचित्त होने की स्थिति या भाव। उ०—‘पर यह उन्हीं का नाश है जिन्हें एकाग्रचित्तता का अभ्यास हो।’—प्रताप० प्र०, पृ० ५२३।

एकाग्रता—संज्ञा स्त्री [सं०] १. चित्त का स्थिर होना। अचंचलता। उ०—‘उसे कल्पना की एकाग्रता ने माना के पैरों की चाँप तक सुनवा दी।’—तिलनी, पृ० ६८। २. योगदर्शन के अनुसार चित्त की एक भूमि जिसमें किसी प्रकार की चंचलता या अस्थिरता नहीं रह जानी और योगी का मन विलकुल शांत रहता है।

एकाग्रदृष्टि—वि० [म०] एक बिंदु पर दृष्टि केंद्रित रखनेवाला (को०)।

एकाग्रभूमि—संज्ञा स्त्री [सं०] चित्त की अवस्था जिसमें किसी वस्तु पर चित्त एकाग्र हो जाना है (को०)।

जमाना । एकाधिकार । जैसे—'छई के व्यापार को उन्होंने एकहृत्य कर लिया' ।

क्रि० प्र०—करना ।

एकहृत्यो—सज्ञा स्त्री० [हि० एक + हाथ] मालखम की एक कसरत । विशेष—इसमें एक हाथ उलटा कमर पर ले जाते हैं और दूसरे हाथ से पकड़ के ढग से मालखम में लपेटकर उड़ते हैं । कभी कभी कमर पर के हाथ में तलवार और छुरा भी लिए रहते हैं ।

यौ०—एकहृत्यो छूट=मालखम की एक कसरत जिसमें किसी तरह की पकड़ करके मालखम पर एक ही हाथ की थाप देने हुए कूदते हैं । एकहृत्यो निचली कमान=मालखम की कसरत के समान उतरने की वह विधि जिसमें खिलाड़ी एक ही हाथ से मालखम पकड़ता है । खिलाड़ी का मुँह नीचे की ओर झुकता है और छाती उठी रहती है । एकहृत्यो पीठ की उड़ान=मालखम की एक कसरत जिसमें खिलाड़ी मालखम को एक वगल में दबाकर दूसरा हाथ पीछे की ओर से ले जाकर दोनों हाथ बाँधकर पीठ के बल उलटा उड़ता है और उलटी सवारी बाँधता है ।

एकहृत्यो हुलूक—सज्ञा पुं० [वि०] कुश्ती का एक पेंच ।

विशेष—इसमें विपक्षी जब वगल में आना है तब खिलाड़ी अपने उस वगल के हाथ को उसकी गरदन में लपेटता है और दूसरे हाथ से उस हाथ को तानते हुए गरदन दबाकर वगली टाँग से चित करता है ।

एकहरा—वि० [स० एक + स्तर, हि० हरा (प्रत्य०) या स० एक + घर, प्रा० हर] [स्त्री० एकहरी] एक परत का । जैसे—एकहरा अग्रा ।

यौ०—एकहरा बदन=वह शरीर जो मोटा न हो । दुबला पतला शरीर । न मोटेनेवाली देह ।

एकहरी—सज्ञा स्त्री० [हि० एकहरा] कुश्ती का एक पेंच ।

विशेष—इसमें जब विपक्षी सामने खड़ा होकर हाथ मिलाता है तब खिलाड़ी उसका हाथ पकड़कर अपनी दाहिनी तरफ भटका देकर दोनों हाथों से उसकी दाहिनी रान निकाल लेता है ।

एकहृत्य—वि० [स०] एक बार जोता हुआ [स्त्री०] ।

एकहस्तपादवध—सज्ञा पुं० [स०] एक हाथ और एक पैर काट लने का दंड ।

विशेष—कोटिल्य के अनुसार चंद्रगुप्त के समय में जो लोग ऊँचे वरुण के लोगों तथा गुरुओं के हाथ पैर मरोड़ देते थे या सरकारी घोड़े गाड़ियों पर बिना आज्ञा के चढ़ते थे, उनको यह दंड दिया जाता था । जो लोग इस दंड से बचना चाहते थे, उनको ४०० पण देना पड़ता था ।

एकहस्तवध—सज्ञा पुं० [स०] एक हाथ काटने का दंड ।

विशेष—कोटिल्य के अनुसार जो लोग नकली कौड़ी, पासा आदि बनाकर खेलते थे या हाथ की सफाई से वाजी जीतते थे, उनको यह दंड दिया जाता था । जो लोग इस दंड से बचना चाहते थे, उनको ८०० पण देना पड़ता था ।

एकहाज—सज्ञा पुं० [स०] नृत्य का एक भेद । एक प्रकार का नाच ।

एकहायन—वि० [स०] एक वर्ष की अवस्थावाला [स्त्री०] ।

एकाक—वि० [स० एकाङ्क] दे० 'एकाकी' [स्त्री०] ।

एकाकी—वि० [स० एकाङ्क] एक अकवाला (नाटक) आधुनिक नाटक की एक विशेष विधा ।

एकाग्र—वि० [स० एकाङ्ग] एक अग्र का । जिसे एक अग्र हो ।

एकाग्र—सज्ञा पुं० १ बुध ग्रह । २ चंदन । ३ विष्णु (स्त्री०) । ४ सिर (स्त्री०) । ५ अग्ररक्षक । शरीररक्षक (स्त्री०) ।

एकाग्रघात—सज्ञा पुं० [स० एकाङ्गघात] एक प्रकार का रोग जिसमें शरीर का एक अग्र सुन्न हो जाता है [स्त्री०] ।

एकाग्रदर्शिता—सज्ञा स्त्री० (स० एकाङ्गदर्शिता) किसी एक ही पक्ष पर ध्यान देने की वृत्ति । एकतरफा देखना । दृष्टि सकीर्णता । उ०—'इसी प्रकार की एकाग्रदर्शिता के कारण कवि के कर्मक्षेत्र से सहृदयता धक्के देकर निकाल दी गई ।—रस०, पृ० १०३ ।

एकाग्रवध—सज्ञा पुं० [स० एकाङ्गवध] कौटिल्य के अनुसार एक अग्र काटने का दंड ।

एकाग्रवात—सज्ञा पुं० [स० एकाङ्गवात] पक्षाघात । लकवा [स्त्री०] ।

एकाग्रिका—सज्ञा स्त्री० (स० एकाङ्गिका) चंदन के योग से तैयार किया हुआ एक मिश्रण [स्त्री०] ।

एकाग्री—वि० [स० एकाङ्ग्री] १ एक ओर का । एक पक्ष का । एकतरफा । जैसे—एकाग्री प्रीति । उ०—'तुम्हारी भक्ति अभी एकाग्री है' ।—इतिहास, पृ० ६७ । २ एक ही पक्ष पर झुकेवाला । हठी । जिद्दी । ३ एक ओपधि जो कठवी, शीतल और स्वादिष्ट होती है । यह पित्त, वात, ज्वर, रुधिर-दोष आदि को नष्ट करती है । ४ एक अग्रवाला । ५ असमाप्त । अपूर्ण (स्त्री०) ।

एकाङ्ग—सज्ञा पुं० (स० एकाङ्ग) एक प्रकार का घोड़ा [स्त्री०] ।

एकात^१—वि० (स० एकांत) १ अत्यंत । विलकुल । नितात । अति । २ अलग । पृथक् । अकेला । ३ अपवादरहित । निरपवाद (स्त्री०) । ४ एकनिष्ठ ।

एकात^२—सज्ञा पुं० १ निर्जन स्थान । निराला । सूना स्थान । २. अकेलापन । तनहाई (स्त्री०) ।

एकातकैवल्य—सज्ञा पुं० [स० एकांतकैवल्य] मुक्ति का एक भेद । जीवनमुक्ति ।

एकातता—सज्ञा स्त्री० [स० एकांतता] अकेलापन । तनहाई ।

एकातर^१—वि० [स० एकांतर] एक का अंतर देकर पड़ने या होने वाला । एक के बाद होनेवाला [स्त्री०] ।

एकातर^२—सज्ञा पुं० एक दिन का अंतर देकर आनेवाला ज्वर । अंतरा या अंतरिया ज्वर [स्त्री०] ।

एकातवास—सज्ञा पुं० [स० एकांतवास] निर्जन स्थान में रहना । अकेले में रहना । सबसे न्यारा रहना । उ०—'माठ वरम के दीर्घ एकातवास के बाद सौंदर्य के चुनाव में भाग लेने के लिये सालवती बाहर आ रही है' ।—इंद्र०, पृ० १४६ ।

एकातवासी—वि० (स० एकांतवासिन्) (स्त्री० एकांतवासिनी)

आचार्यों, ऋषी या शास्त्रों के वाक्यों या उनके आशयों का परस्पर मिल जाना ।

एकवासा—सज्ञा पुं० [सं० एकवासस] एक प्रकार के दिगंबर जैन जो नग्न के अतर्गत हैं ।

एकविंश—वि० [मं०] इक्कीसवाँ [को०] ।

एकविंशति^१—वि० [सं०] एक और बीस । इक्कीस [को०] ।

एकविंशति^२—संज्ञा स्त्री० २१ की संख्या [को०] ।

एकविंशति(७)—वि० [सं० एकविंशति] इक्कीस । उ०—उत्र एक-विंशति वेर मैं त्रिन छत्र की पृथ्वी रची ।—रामचं०, पृ० ४१ ।

एकविध—वि० [सं०] एक ही प्रकार का । एक ही विधि का । माधारण [को०] ।

एकविलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] १ बृहत्संहिता के अनुसार पश्चिमोत्तर दिशा में एक देश जो उत्तरापार श्रवण और घनिष्ठा नक्षत्रों के अधिकार में है । २. कुवर (को०) । ३. कौश्या (को०) ।

एकवृद्ध—सज्ञा पुं० [सं० एकवृद्ध] गले का एक रोग जिसमें कफ और रक्त के विकार से गले में गिल्टी या सूजन हो जाती है । इस गिल्टी या सूजन में दाह और खूजली भी होती है तथा यह पकने पर भी कड़ी रहती है ।

एकवेणी—वि० [मं०] १ जो (स्त्री) शृगार की रीति से कई चोटियाँ बनाकर सिर न गुंथाए बल्कि एक ही चोटी बनाकर बालों को किसी प्रकार समेट ले । २. वियोगिनी । जिसका पति परदेश गया हो । ३. विधवा ।

एकदाफ—सज्ञा पुं० [सं०] वह पशु जिसके खुर फटे न हों, जैसे—घोड़ा, गदहा ।

एकशासन—सज्ञा सं० [सं०] वह शासन व्यवस्था जिसमें सत्ता एक ही व्यक्ति के हाथ में हो । एकतंत्र [को०] ।

एकशेष—वि० [नं०] १ एकमात्र वचा हुआ । उ०—कर भस्मीभूत समन्त विश्व को एकशेष, उड़ रही धूँ, नीचे अदृश्य हो रहा देश ।—ग्रनामिका, पृ० ८४ । २. दृढ़ समास का एक भेद जिसमें दो या अधिक पदों में से एक ही शेष रह जाता है । जैसे—पितरौ = माता और पिता [को०] ।

एकश्रुत—वि० [सं०] एक बार का सुना हुआ [को०] ।
यौ०—एकश्रुतधर = एक बार का सुना हुआ याद रखनेवाला ।

एकश्रुति—सज्ञा स्त्री० [सं०] वेदपाठ करने का वह क्रम जिसमें उदात्तादि स्वरों का विचार न किया जाय ।

एकपण्ठि—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'एकसठ' [को०] ।

एकसठ^१—वि० [सं० एकपण्ठि, एकपण्ठि, पा० एकसठि, प्रा० एकसठ्ठ] माठ और एक ।

एकसठ^२—संज्ञा पुं० वह अंक जिससे एकसठ की संख्या का बोध हो—६१ ।

एकसत्ताक—वि० [सं०] एक ही की सत्ता या अधिकारवाला । एक के तन्त्र का, जैसे, एकसत्ताक शासन या राज्य ।

एकसत्तावाद—संज्ञा पुं० [सं०] दर्शन का एक सिद्धांत जिसमें सत्ता ही प्रधान वस्तु ठहराई गई है ।

विशेष—यूरोप में इस मत का प्रधान प्रवर्तक पमंडीज था ।

यह समस्त ससार को सत्स्वरूप मानता था । इसका कथन था कि सत् ही नित्य वस्तु है । यह एक अविमर्श और परिमाण-शून्य वस्तु है । इसका विभाजक असत् हो सकता है, पर असत् कोई वस्तु नहीं । ज्ञान सत् का होता है असत् का नहीं । अतः ज्ञान सत्स्वरूप है । सत् निर्विकल्प और अविकारी है अतः इन्द्रियजन्य ज्ञान केवल भ्रम है, क्योंकि इन्द्रिय से वस्तुएँ अनेक और विकारी देख पड़ती हैं । वास्तविक पदार्थ एक सत् ही है पर मनुष्य अपने मन से असत् की कल्पना कर लेता है । यही सत् और असत् अर्थात् प्रकाश और तम सब संसार का कारण रूप है । यह मत शंकराचार्य के मन से बिल्कुल मिलता हुआ है । भेद केवल यही है कि शंकर ने सत् और असत् को ब्रह्म और माया कहा है ।

एकसर^१(७१)—वि० [सं० एकशस् या हिं० एक + सर (प्रत्य०)] १ अकेला । उ०—एकसर आइ मढ़ी महुँ सोवा । ढूँढत फिरहि रतन जनु खोवा ।—चित्रा०, पृ० ३२ । २. एक पल्ले का ।

एकसर^२—वि० [फा० एकसर] एक सिरे से दूसरे सिरे तक । बिल्कुल । तमाम ।

एकसाँ—वि० [फा० एकसाँ] १ बराबर । समान । तुल्य । २. समतल । हमवार ।

एकसाक्षिक—वि० [सं०] जिसका एक ही साक्षी (गवाह) हो [को०] ।

एकसार्थ—अव्य० [सं०] एक साथ [को०] ।

एकसाला—वि० [फा० एकसाला] जो एक साल तक बँध हो । जिसकी अवधि एक साल तक हो [को०] ।

एकसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] केवल एक ही उपाय से होने-वाली सिद्धि ।

एकसूत्र^१—वि० [सं०] [संज्ञा एकसूत्रता] एक रूप । आपस में संबद्ध [को०] ।

एकसूत्र^२—संज्ञा पुं० डमरू [को०] ।

एकसूनु—संज्ञा पुं० [सं०] इकलोता लड़का [को०] ।

एकस्थ—वि० [सं०] १ एक व्यक्ति या स्थान पर केंद्रित । २. मिला हुआ । एकत्र [को०] ।

एकहजारी—संज्ञा पुं० [फा० एकहजारी] १ एक हजार सेना का स्वामी । २. मुगल बादशाहों द्वारा दिया जानेवाला एक पद । उ०—इनको एकहजारी का पद और आठ सौ घोड़े प्रदान किए थे ।—अकबरी०, पृ० ४६ ।

एकहत्तर^१—वि० [एकसप्तति, पा० एकसत्तरि, एकहत्तरि] सत्तर और एक ।

एकहत्तर^२—संज्ञा पुं० सत्तर और एक की संख्या का बोध करानेवाला अंक जो इस तरह लिखा जाता है—७१ ।

एकहत्या—संज्ञा पुं० [हिं० एक + हाथ] किसी विषय विशेषकर व्यापार या रोजगार को अपने हाथ में करना, दूसरे को न करने देना । किसी व्यापार या बाजार पर अपना एकमात्र अधिकार

एकरदन—सज्ञा पुं० [सं०] गणेश । उ० कदन अनेकन विघ्न को एकरदन गनराउ ।—मिहारी० ग्र०, भा० १, पृ० ३ ।

एकरस—वि० [सं०] एकदम का । न बदलनेवाला । समान । उ०—
(क) सिधु, किसोर, विरधौ तनु होइ । सदा एकरस आतम सोइ ।—सूर० ७।२ । (२) सुखी मीन सब एकरस अति अगाध जल माहि ।—मानस, ३।३३ । २. एकमेक । एक दिल ।

एकरसता—सज्ञा स्त्री० [म० एकरस + ता (प्रत्य०)] समानता ।
एकरात्र—सज्ञा पुं० [सं०] एक ही रात में पूरा होनेवाला यज्ञ [को०] ।
एकरार—सज्ञा पुं० [अ०] १ स्वीकार । हामी । स्वीकृति । मजूरी । २ प्रतिज्ञा । वादा ।

क्रि० प्र०—करना ।—लेना ।—होना ।

यौ०—एकरारनाना = यह पत्र जिसमें दो या दो से अधिक पुरुष परस्पर कोई प्रतिज्ञा करें । प्रतिज्ञापत्र ।

एकरखा—वि० [हिं० ए + खा + ख] [वि० स्त्री० एकरखी] १ एक तरफ रखवाला । एक तरफ मुँहवाला । २ जिसमें कोई कार्य (कपड़े आदि में वेन बूटे) एक ही तरफ किया गया हो । एकतरफा ।

एकरूप—वि० [सं०] १ एक ही रूप का । समान आकृति का । एक ही रंग ढग का । उ०—एकरूप तुम आता दोऊ ।—मानस, ४।८ । २ ज्यों का त्यों । वैसा ही । जैसे का तैसा । कोरा । उ०—एक रूप ऊधो फिरि आए हरि चरनन सिर नायो ।—तूर (शब्द०) ।

एकरूपता—सज्ञा स्त्री० [म०] १ समानता । एकता । २ सायुज्य मुक्ति ।
एकरूपी—वि० [सं० एकरूपिन्] १ [स्त्री० एकरूपिणी] समान रूप का । एक तरह का । एक सा ।

एकरेज—सज्ञा पुं० [अ०] एकड़ के आधार पर लगनेवाली माल-गुजारी या भूमि कर । उ०—(क) एकरेजा तो लगा है, वह भी नदी देना चाहता । (ख) एकरेज तो तुमको देना ही चाहिए ।—तितली, पृ० ३८ ।

एकलगा—सज्ञा पुं० [हिं० एक + लगा = लेंगडा] कुश्ती का एक पेंच ।
विशेष—जब विपक्षी सामने खड़ा होता है । तब खिलाड़ी अपने दाहिने हाथ से विपक्षी की बाईं बाहुँ ऊपर से लपेट आने बाएँ हाथ से विपक्षी का दाहिना पहुँचा पकड़ अपनी दाहिनी टाँग को, विपक्षी की बाईं टाँग पर रखता है और उसको एकबारगी उठाता हुआ विपक्षी को बाह से दबाकर झुकाकर चित्त कर देता है ।

एकलगाडड—सज्ञा पुं० [हिं० एक + अलग (= और, तरफ, + डड)] एक प्रकार की कसरत या डड जिसे करते समय एक ही हाथ पर बहुत जोर देकर उसी ओर सारा शरीर झुकाकर दड करते हैं और दूसरी ओर का पाँव उठ कर हाथ के पास ले जाते हैं ।

एकल०—वि० [सं०] १ अकेला । २ अद्वितीय । एकता । उ०—वेद पुरान कुरान कितेवा नाना भीति बखानी । हिंदू तुरक जैन अरु जोगी एकल काहु न जानी ।—कवीर (शब्द०) ।

एकल०—वि० [सं० एकल + हिं० डी (प्रत्य०)] प्रकेला । एकाकी । एकला । उ०—महि मोरों मडन करइ, मनमय अगि न भाइ । हूँ एकलही किम रईऊँ, मेह पधारउ भाइ ।—ढोला० दू०, २६३ ।

एकलत्तीछपाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० एकलत्ती + छपाई] कुश्ती का एक पेंच ।

विशेष—जब विपक्षी के हाथ और पाँव जमीन पर टिके रहते हैं और उसकी पीठ पर खिलाड़ी रहता है तब वह विपक्षी की पीठ पर अपना सिर रखकर बाएँ हाथ को उसकी पीठ पर ले जाकर पेट के पास लँगोट पकड़ता है और दाहिने पाँव से उसके दाहिने हाथ की कुहनी पर थाप मारता है और उसे लुढ़काकर चित्त करता है ।

एकलवैया—संज्ञा पुं० [हिं०] एक प्रकार का डिगल गीत । इसे धणुकवा भी कहते हैं ।

एकलव्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक निपाद का नाम जिसने द्रोणाचार्य की मूर्ति को गुरु मानकर उसके सामने शस्त्राभ्यास किया था ।

एकला०—वि० [सं० एकल, प्रा० एकल] [स्त्री० एकली] अकेला । उ०—कई आलम किए हैं कत्तल उनने । करे क्या एकला हातिम बेचारा ।—कविता को०, भा० ४, पृ० ४० ।

एकलिंग—संज्ञा पुं० [सं० एकलिङ्ग] १ शिव का एक नाम । एक शिवलिंग जो मेवाड़ के महाराणाओं और गहलोत राजपूतों का प्रधान कुलदेव है । २ कुवेर । ३ वह शिवलिंग जो पाँच कोश के भीतर अकेला हो (को०) ।

एकलेखा—संज्ञा पुं० [हिं०] एक प्रकार का फूँज या उसका पीघा ।
एकलो—संज्ञा पुं० [सं० एकला] ताश या गजीफे का एक्का ।

एकलोता—वि० [सं० एकल (= अकेला) + पुत्र, प्रा० उत्त] [स्त्री० एकलोती] अपने माँ बाँप का एक ही (लड़का) । जिसके और भाई न हो ।

एकवचन—संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण में वह वचन जिससे एक का बोध होता हो ।

यौ०—एकवचनात् = एकवचन की विभक्तिवाला ।

एकवर्ण—वि० [सं०] १. एक रंगवाला । २. एक रूपवाला । एक समान । ३. एक वर्ण या जातिवाला । ३. जो वर्ण, जाति आदि भेदों से अलग हो [को०] ।

एकवर्ण—संज्ञा पुं० १ समान रंग, रंग या आकृति । २. ब्राह्मण । ३. ऊँची जाति [को०] ।

एकवर्षी—वि० [सं० एकवर्षिन्] एक ही वर्ष तक रहनेवाला । वर्ष में एक ही बार फूलने फलनेवाला [को०] ।

एकवसना—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'एकवस्था' ।

एकवस्त्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जो एक ही वस्त्र पहने । रजस्वला [को०] ।

एकवर्ज—संज्ञा स्त्री० [सं० एक + वर्ज्या, प्रा० वसा] वह स्त्री जिसे एक बच्चे के पीछे और दूसरा बच्चा न हुआ हो । काकवर्ज्या ।

एकवाक्य—वि० [सं०] एक वाक्य । एक विचार । एक मत ।

एकवाक्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एकमत्य । परस्पर दो या अधिक लोगों के मत का मिल जाना । २. सीमासा में दो या अधिक

एकपेटिया

एकपेटिया—वि० [हि० एक + पेट + इया (प्रत्य०)] निरुपे पेट पर काम करनेवाला । उ०—‘सो श्री गुसाईं जी वाको गरीब जानि एरु-पेटिया करि दीये’ ।—दो सो वादन०, भा० २, पृ० १३२ ।

एकप्राण—वि० [स०] एक दिल । जो मिलकर एक जैसे हो गए हो । एकाकार । उ०—वन गए स्थूल, जगजीवन से हो एक प्राण । —युग०, पृ० १५ ।

एकफर्दा—वि० [फा०] जिस (वित या जमीन) में वष में केवल एक हा फसल उपजे । एकफसला ।

एकफसला—वि० [फा० एकफसली] दे० ‘एकफर्दा’ ।

एकवद्धी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० एक + वद्धी] नाव ठहराने का लोहे का लगर जिसमें केवल दो आँकुड़े हो ।

एकवद्धी^२—वि० [हि०] एक बाध या रस्सी का ।

एकवारगी—क्रि० वि० [फा० एकवारगी] १ एक ही दफे में । एक ही साथ । एक ही समय में । जैसे—‘सब पुस्तकें एक-वारगी मत ले जाओ एक एक करके ले जाओ । २ अचानक । अकस्मात् । जैसे—‘तुम एकवारगी आ गए इससे मैं कोई प्रवचन कर सका ।’ ३ बिल्कुल । सारा । जैसे—‘आपने तो एकवारगी दवात ही खाली कर दी ।

एकवारी—वि० [फा० एकवार] दे० ‘एकवारगी’ । उ०—एकवारी धक से होकर दिल की फिर निकली न तान ।—शेर०, भा० १, पृ० १२१ ।

एकवाल—संज्ञा पुं० [अ० इकवाल] १ प्रताप । सौभाग्य । २ स्वीकार । हामी ।

यौ०—एकवाल दावा=(१) मुद्दे या महाजन के दावे की स्वीकृति में मुद्दामलेह की ओर से लिखा हुआ स्वीकारपत्र जो अदालत में हाकिम के सामने उपस्थित किया जाता है । एकरार दावा । (२) राजीनामा ।

एकभाव—वि० [स०] १ एकनिष्ठ । २ परस्पर समान भाव वाला [क्रि०] ।

एकभुक्त^१—वि० [स०] जो रात दिन में केवल एक बार भोजन करे ।

एकभुक्त^२—संज्ञा पुं० एकवार भोजन करने का व्रत [क्रि०] ।

एकभूम—वि० [स०] एक मजिल या एक खडवाला [क्रि०] ।

एकमजिला—वि० [हि० एक + फा० मजिल] जिसमें एक ही मजिल हो । एकतल्ला ।

एकमत^१—वि० [हि० एक + मत = सलाह] दे० ‘एकमत’ । उ०—अजहूँ आइ सँभारहु कता । विरहा जाड नए एकमता ।—चित्रा०, पृ० १७२ ।

एकमत^२—वि० [स०] एक या समान मत रखनेवाले । एक राय के । जैसे—‘सब ने एकमत होकर उस बात का विरोध किया’ । उ०—एकमत होइ कै कोन्ह विचारा । विलस न करिय घरम वेवहारा ।—चित्रा०, पृ० १६६ ।

एकमति—वि० [स०] एकमत । एक राय । उ०—प्रग अग सुमग अति चलति गजराज गति कुण सौँ एकमति जमुन जाही —सुर०, १०।७५१ ।

एकमत^३—वि० [स० एकमात्र, प्रा० एकमता] एकमात्रिक । उ०—एकमत लट्ट मति गुह को दुमत गनि याही से उदाहरन हेरि लै हृदय जांचि ।—चिचारी० ग्र०, भा० १, पृ० १६७ ।

एकमता—वि० [म० एकमनस] १. एक तरह के विचारवाले । एकचित्त । किसी एक ओर ही मन को लगानेवाला [क्रि०] ।

एकमात्र—अव्य० [स०] एक ही । केवल एक । अकेला । उ०—(क) ‘वाराणसी युद्ध के अन्यतम धीर सिंहमित्र की यह एकमात्र कन्या है’ ।—आँधी, पृ० ११४ । (ख) जय जयति लच्छमी जगत की एकमात्र सुख सार जो ।—कविता को०, भा० २, पृ० १६६ ।

एकमात्रिक—अव्य० [स०] एक मात्रा का । जिसमें केवल एक ही मात्रा हो । जैसे—एकमात्रिक छंद ।

एकमुँहा—वि० [म० एकमुख] एक मुँह का ।

यौ०—एकमुँहा दहरिया=फूल या काँस का एक गहना जिसे लोथियों और काठियों को स्थिरता पहनती है । इसके ऊपर रत्ना और नीचे सूत होता है ।

एकमुख—वि० [म०] १ उद्देश्य की ओर प्रवृत्त । २ एक दरवाजे वाला । ३ एक को प्रधानता से युक्त [क्रि०] ।

एकमुखविक्रय—संज्ञा पुं० [स०] सबके हाथ एक दाम पर बेचना । बँधी कीमत पर बेचना ।

विशेष—कीटिल्य के अनुसार चंद्रगुप्त के समय में पण्य बाहुल्य अर्थात् माल को पूरी आमदनी होने पर व्यापारियों को माल बँधी कीमत पर बेचना पड़ना था । वे मात्र घटा बढ़ा नहीं सकते थे ।

एकमुखी—वि० [स०] एक मुँहवाला ।

यौ०—एकमुखी खराश=बहु खराश जिसमें फाँकवाली लकौर एक ही हो ।

एकमूला—संज्ञा स्त्री० [स०] १ शालपर्णी । २ अलसी । तीसी ।

एकमेक—वि० [हि०] दो या इनसे अधिक के मिलकर एक होने का भाव । एकाकार या तद्रूप होना । उ०—घरती अवर जायेंगे, विनमों के नास । एकमेक होइ जायेंगे, तब कहां रहेंगे दास । —करीर सा०, भा० १, पृ० २१ ।

एकमेव—वि० [स०] एकमात्र । एक ही । उ०—‘अपना सुख त्यागना उनके दुख में मायी होना एकमेव कतव्य है ।’—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २८१ ।

एकमोला—वि० [हि० एक + मोल] १ एक मूल्यवाला । निश्चित दाम का । २. कहे हुए दाम में कमी बेगी न करनेवाला ।

एकरंग—वि० [हि० एक + रंग] १ एक रंगदग का । समान । २ जिसका भीतर बाहर एक हो । जो बाहर से भी वही कहता या करता हो जो उसके मन में हो । काष्ठान्य । साफ दिल । ३ जो चारों ओर एक ना हो । जैसे—‘दा-रंगी छोट दे एकरंग हो जा ।’

एकरंगा^१—वि० [हि०] एक रंगवाला । जिसमें एक ही रंग हो ।

एकरंगा^२—संज्ञा पुं० एक प्रकार का कपड़ा जो लाल रंग का होता है ।

एकरंगी—संज्ञा स्त्री० [हि०] १ एकरूपता । २ निष्कपटता [क्रि०] ।

और ३ कोस उत्तर तेंग ३ कोस दक्षिण जाऊंगा। यह वह किसी दिशा में निर्धारित नियम के विरुद्ध अधिक चला जाय और अपने मन में यह समझ ले कि मैं अमुक दिशा में नहीं गया उसके बदले इसी ओर अधिक चला गया तो वह एकदिशा परिमाणातिक्रमण का नाम अतिचार हुआ।

एकदृक्—वि० [स०] १ काना। २ समदर्शी। ३ ब्रह्मज्ञानी। तत्त्वज्ञ।

एकदृक्^२—सज्ञा पु० १ शिव। २ कीवा।

एकदृष्टि—वि० सज्ञा पु० [म०] दे० 'एकदृक्' [को०]।

एकदेशी—वि० [एकदेशिन] दे० 'एकदेशीय'।

एकदेशीय—वि० [स०] एक देश का। एक ही स्थान से संबंध रखनेवाला। जो एक ही अवसर या स्थल के लिये हो। जिसको सब जगह काम में न ला सकें। जो सर्वत्र न घटे। जो सर्वदेशीय या बहुदेशीय न हो। जैसे,—एकदेशीय नियम, एकदेशीय प्रवृत्ति एकदेशीय आचार। उ०—'एक नया फैशन टाल्मटाय के समय से चला है वह एकदेशीय है।'—रस०, पृ० ६४।

यो०—एकदेशीय समास = पंठी तत्पुरुष समास का एक भेद।

एकदेह—सज्ञा पु० [स०] १ बुध ग्रह। २ गोत्र। वंश। ३ दपती।

एकधर्मा—वि० [स० एकधर्मन] समान गुण, धर्म या स्वभाववाला [को०]।

एकधर्मी^१—वि० [स० एकधर्मिन्] दे० 'एकधर्मा'।

एकनयन^१—वि० [स०] काना। एकाक्ष। उ०—मुनि कृपाल अति भारत बानी। एकनयन करि तजा भवानी।—मानस, ३२।

एकनयन^२—सज्ञा पु० १ कीवा। २ कुवेर। ३ शिव [को०]। ४ शुक्र ग्रह [को०]।

एकनायक—सज्ञा पु० [स०] शिव [को०]।

एकनिष्ठ—वि० [स०] जिसकी निष्ठा एक में हो। जो एक ही से सरोकार रखे। एक पर श्रद्धा रखनेवाला।

एकनेत्र, एकनेत्रक—सज्ञा पु० [म०] शिव [को०]।

एकन्ती—सज्ञा स्त्री० [हि० एक + आना] ब्रिटिश भारत का निकल धातु का एक छोटा सिक्का जो एक आने या चार पैसे मूल्य का होता है। आजकल यह ६ नए पैसे के मूल्य का है।

एकपक्षी, एकपक्षीय—वि० [स०] एक ओर का। एकतरफा।

एकपटा—वि० [हि० एक + पाट = चौड़ाई] [स्त्री० एकपटी] एक पाट का। जिसकी चौड़ाई में जोड़ न हो। जैसे, एकपटी चादर। उ०—भेद न विचार्यो गुजमाल औ गुलीक माल नीली एकपटी घर भोली एकलाई में।—मिखारी० ब्र०, भा० १, पृ० १४६।

एकपट्टा—सज्ञा पु० [हि० एक + पट्टा] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—जब विपक्षी सामने होता है तब उसका पाँव जव में से उठाकर बगली बाहरी ठोकर दूसरे पाँव में लेकर उसे चित करते हैं।

एकपत्नी—वि० स्त्री० [स०] जो एक ही की पत्नी हो। पतिव्रता।

एकपत्नीव्रत—सज्ञा पु० [स०] १ एक को छोड़ दूसरी स्त्री से विवाह या प्रेम संबंध न करने का व्रत। २ केवल एक विवाहिता पत्नी को छोड़कर और किसी स्त्री से विवाह या प्रेम संबंध न करने का व्रत। उ०—'राम की तरह एकपत्नीव्रत कर सकूँगा तो कर लूँगा।—इंद्र०, पृ० ५०।

एकपत्नीव्रती—वि० [स० एकपत्नीव्रत] एकपत्नीव्रत का पालन करनेवाला। उ०—चिरजीव सयोग योगी अरोगी। सदा एकपत्नीव्रती भोग भोगी।—रामच०, पृ० १५८।

एकपत्रिका—सज्ञा स्त्री० [स०] गधपत्रा। दोना [को०]।

एकपद^१—सज्ञा पु० [स०] १ बृहत्संहिता के अनुसार एक देश। यह आर्द्रा, पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्रों के अधिकार में है। २ त्रैकुठ। ३ कैलास। ४ रतिक्रिया का एक आसन [को०]।

एकपद^२—वि० लँगड़ा। एक पैरवाला [को०]।

एकपदी^१—सज्ञा स्त्री० [स०] पगडंडी। रास्ता। गली।

एकपदी^२—वि० एक पद या चरणवाला [छंद०] [को०]।

एकपर्णा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ दुर्गा। २. एक देवी। ३ एक पत्तेवाला पौधा [को०]।

एकपर्णिका—सज्ञा स्त्री० [स०] दुर्गा।

एकपर्णी—सज्ञा स्त्री० [स०] दुर्गा।

एकपलिया (मकान)—सज्ञा पु० [हि० एक + पल्ला + डया (प्रत्य०)] वह मकान जिसमें बेंडर नहीं लगाई जाती बल्कि लवाई की दोनो आंगने सामने की दीवारों पर लकड़ियाँ रखकर छाजन की जाती है। छाजन की ढाल ठीक रखने के लिये एक ओर की दीवार ऊँची कर दी जाती है।

एकपाटला—सज्ञा स्त्री० [स०] १ देवी। २ दुर्गा [को०]।

एकपाठी—वि० [स० एकपाठिन्] एक ही वार पढ़कर या सुनकर पाठ याद कर लेनेवाला [को०]।

एकपात्—सज्ञा पु० [स०] १ विष्णु। २ सूर्य। ३ शिव।

एकपात^१—वि० [स०] अचानक होनेवाला [को०]।

एकपात^२—सज्ञा पु० मंत्र का पहला शब्द या प्रतीक [को०]।

एकपाद^१—वि० [स०] लँगड़ा। एक टाँगवाला [को०]।

एकपाद^२—सज्ञा पु० १ विष्णु। २ शिव [को०]।

एकपादवध—सज्ञा पु० [स०] एक पैर काट देने का दंड।

विशेष—जो लोग साधारण द्रव्य की चोरी करते थे उनको एक पैर काट लेने का दंड मिलता था। प्रायः ३०० पण देकर वे इस दंड से मुक्त भी हो सकते थे।

एकपिगा—सज्ञा पु० [स० एकपिङ्ग] कुवेर।

एकपिगल—सज्ञा पु० [स० एकपिङ्गल] कुवेर।

एकपुत्रक—सज्ञा पु० [स०] कीड़िला पक्षी।

एकपेंचा^१—वि० [फा०] एक पेंच का। जिसमें एक ही पेंच या ऐठन हो।

एकपेंचा^२—सज्ञा पु० एक प्रकार की पगड़ी जो बहुत पतली होती है। इसकी चाल दिल्ली की ओर है। इसे पेंचा भी कहते हैं।

मडा हुआ तूँवा लगा रहता है और दूसरे छोर पर एक खूँटी होती है। डंडे के एक छोर से लेकर दूसरे छोर की खूँटी तक एक तार बँधा रहता है जो मडे हुए चमड़े के बीचोबीच घोड़िया पर से होकर जाता है। तार को अंगूठे के पासवानी अँगली (तर्जनी) से बजाते हैं।

एकताल - वि० [स० एक+ताल] दे० 'एक' शब्द का मुहावरा 'एकतार'।

एकताला—संज्ञा पु० [स० एकताल] बारह मात्राओं का एक ताल। इसमें केवल तीन आघात होते हैं। खाली का इसमें व्यवहार नहीं होता। एकताला का तबले का बोल यह है - धिन् धिन् धा, धा३ दिन्ता तादेत् धागे तेरे केटे धिन्+ता, धा।

एकतालिका—संज्ञा स्त्री० [स०] सालन अर्थात् दो रागों से मिलकर बने हुए रागों में से एक।

एकतालीस^१—वि० [स० एकत्वारिंशत्, पा० एकचत्तारिंशत्, एकतालीस] गिनती में चालीस और एक।

एकतालीस^२—संज्ञा पु० ४१ की संख्या का बोध करानेवाला अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—४१।

एकति०—क्रि० वि० [स० एकत्र] दे० 'एकत्र'। उ०—खजन मीन कमल नरगिस मृग सीप और सर साधे। मनु इनके गुन एकति करिके अजन गुन दै बाधे।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ४१४।

एकतीर्थी^१—संज्ञा पु० [स० एकतीर्थिन्] वह जिसने एक ही आश्रय में एक ही गुरु से शिक्षा पाई हो। गुरुनाई।

एकतीर्थी^२—वि० १ एक ही तीर्थ में नहानेवाला। २ एक ही संप्रदाय, विचार या पथ को माननेवाला [क्रि०]।

एकतीस^१—वि० [स० एकत्रिंश, पा० एकतीस] गिनती में तीस और एक।

एकतीस^२—संज्ञा पु० ३१ की संख्या का बोधक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—३१।

एकतोभोगी मित्र—संज्ञा पु० [स०] कौटिल्य मत से वह वश्य मित्र जो एक साथ एक ही को लाभ पहुँचा सके, अर्थात् अमित्र को नहीं। उभयतोभोगी का उलटा।

एकत्य०—वि० [स० एकत्य] दे० 'एकत्र'।

एकत्र—क्रि० वि० [स०] एकट्ठा। एक जगह। उ०—वसन्धल पर एकत्र घरे, समृति के सब विज्ञान ज्ञान।—कामायनी, पृ० १६८।

मुहा०—एकत्र करना = बटोरना। संग्रह करना। उ०—सुखसाधन एकत्र कर रहे जो उनके संवल में हैं।—कामायनी, पृ० १८२। एकत्र होना = जमा होना। कट्ठा होना। जुड़ना। जुटना। उ०—दूई एकत्र हम मेरी अगलतिका में।—बहुर, पृ० ६०।

एकत्रा—संज्ञा पु० [स० एकत्र] कुल जोड़। मीजान। टोटल।

एकत्रिंशत्—वि०, संज्ञा पु० [स०] दे० 'एकतीस'।

एकत्रित—वि० [स० एकत्र से हि०] जो इकट्ठा किया गया हो या जो इकट्ठा हुआ हो। जुटा हुआ। संगृहीत। उ०—और लोग भी एकत्रित थे, कैसी बातें होती थीं।—प्रेम०, पृ० १८।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

एकत्व—संज्ञा पु० [स०] ऐक्य। एकता। उ०—'हमानी आत्मा और परमात्मा का एकत्व अर्थात् आत्मिक सुख का जनक हमारा प्यारा प्रेम तो कही जाता ही नहीं।'—प्रताप० ग्रं, पृ० १०३।

एकत्वभावन।—संज्ञा स्त्री० [स०] जैन शास्त्रानुसार आत्मा की एकता का चिंतन। जैसे—जीव अकेला ही कर्म करता है और अकेला ही उसका फल भोगता है प्रवेले ही जन्म लेता और मरता है। इसका कोई साथी नहीं, स्त्रीपुत्रादि सब यहीं रह जाते हैं। यहाँ तक कि उसका शरीर भी यहीं छूट जाता है। केवल उसका कर्म ही उसका साथी होता है, इत्यादि बातों का सोचना।

एकदंडा—संज्ञा पु० [स० एकदण्ड] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—यह पीठ के डंडे की तोड़ का तोड़ है। इसमें शत्रु जिस ओर को बुदा मारता है, खिलाडी उसकी दूसरी ओर का हाथ भट गर्दन पर से निकाल कर कुदे में फँसा हुआ हाथ खूब जोर से गर्दन पर चढ़ाता है। फिर गर्दन को उल्टे डंडे हुए पुट्टे पर से लेकर टाँग मारकर गिराता है। तोड़—खिलाडी के तरफ को टाँग से भीतरी अडानी खिलाडी की दूसरी टाँग पर मारे और दूसरी तरफ के हाथ ने टाँग को लपेट कर पिछली बैठक करके खिलाडी को पीछे सुलाने को तोड़ कहते हैं।

एकदंडी—संज्ञा पु० [स० एकदण्डिन्] सन्नासियों का वह वर्ग जिसकी उपाधि हंस है [क्रि०]।

एकदत्^१—वि० [स० एकदन्त] एक दाँतवाला। उ०—'आदिदेव श्री एकदत्त गणेश जी को प्रणाम करके श्री पुष्पदंताचार्य ने महिम्न में जिनकी स्तुति की है'।—प्रताप० ग्रं, पृ० १६३।

एकदत्^२—संज्ञा पु० [स० एकदन्त] गणेश।

एकदत्ता—वि० [स० एकदन्तक] [स्त्री० एकदन्तकी] एक दाँतवाला। जिसके एक दाँत हो।

एकदंष्ट्र—संज्ञा पु० [म०] गणेश [क्रि०]।

एकदरा—संज्ञा पु० [हि० एक+फा० दर=द्वार] एक दर का दालान।

एकदस्ती—संज्ञा स्त्री० [हि० एक+फा० दस्ती=हाथ संवयो] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—इसमें खिलाडी एक हाथ से विपक्षी का हाथ दस्ती से खींचता है और दूसरे हाथ से भट पीछे से उसी तरफ की टाँग का मोजा उठाता है और भीतरी अडानी से टाँग मारकर गिराता है।

एकदा—क्रि० वि० [स०] एक समय। एक बार। उ०—जोरि तुरंग रथ एकदा रवि न लेत विग्राम।—शकुंतला, पृ० ८३।

एकदिशा परिमार्णातिक्रमण—संज्ञा पु० [स०] जैनशास्त्रानुसार दिशा संबंधी बाँधे नियम का उल्लंघन करना।

विशेष—प्रत्येक श्रावक का यह कर्तव्य है कि वह नित्य यह नियम कर लिया करे कि आज मैं अमुक अमुक दिशा में इतनी इतनी दूर से अन्निक न जाऊँगा। जैसे किसी श्रावक ने यह निश्चय किया कि आज मैं १ कोस पूरव, १३ कोन पच्छिम

राजकर्मचारी जिसका काम प्रवध करना हो। नियमों का पालन करानेवाला कर्मचारी। शामिल। अधिशासी अधिकारी।

एकजीव्यूटिव कमेटी—संज्ञा स्त्री० [ग्र० एकजीव्यूटिव कमेटी] प्रवध कारिणी समिति। प्रवध समिति।

एकजीव्यूटिव काउंसिल—संज्ञा स्त्री० [ग्र० एकजीव्यूटिव काउंसिल] कायकारिणी सभा। वह सभा जो निश्चित नियमों के पालन का प्रवध करती है। अधिशासी समिति।

एकजीव—वि० [सं०] १ एकलप। अभिन्न। समान [को०]।

एकटगा—वि० [हि० एक+ताग] एक टांगवाला। लेंगडा।

एकट^१—वि० [सं० एकस्थ, एकल] दे० एस्त^१। उ०—एकट चीता रङ्गले नीता और छठीले सब आमा।—दक्खिनी०, पृ० १६।

एकट^२—संज्ञा पुं० [ग्र० एकट] नियम। कानून। आईन।

एकटकी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० एकटक] स्तब्ध दृष्टि। टकटकी।

एकटगा^१—वि० [हि०] अभिनेष। एकटक। उ०—राम जय रवि साधु कौं, साधु जय रवि राम। दादू दोन्यू एकटग यहु आरम यहु काम।—दादू०, पृ० ११८।

एकटा^१—वि० [सं० एकस्थ, एकत या एक, मि० वें० एकटा, एकटि] एक। एक सा। एकत्र। उ०—गुरु धनि धन ह्वे पाइए शिष्य सुद्वलण लेहि। उभय अभागी एकटे कहा लेय कहा देहि।—रज्जव०, पृ० १४।

एकट्ठा—वि० [सं० एकस्थ] [वि० स्त्री० एकट्ठी] दे० 'इकट्ठा'।

एकठा^१—संज्ञा पुं० [हि० एक+काठ=एककठा] एक प्रकार की नाव जो एक लकड़ी की होती है।

एकठा^२—वि० [हि०] [वि० स्त्री० एकठी] दे० 'एकट्ठा'। उ०—(क) गउसे वइठा एकठा, मालवणी नइ डोल।—डोला० दू०, २४३। (न) सातों घात मिलाइ एकठी तामें रग निचोया।—सुंदर० ग्र० भा० २, पृ० ८७८।

एकठो^१—वि० [हि०] दे० 'एकट्ठा'। उ०—और वह बटोरघौ माखन सब एकठो करि कै धी ताथे।—दो सो बावन०, भा० २, पृ० ४।

एकड—संज्ञा पुं० [ग्र० एकर] पृथ्वी की एक माप जो १३ बीघे या ३२ बिस्ते के बराबर होती है।

एकडाल^१—वि० [हि० एक+डाल] १ एक मेल का। एक ही तरह का एक ही टुकड़े का बना हुआ।

एकडाल^२—संज्ञा पुं० वह कटार या छुरा जिसका फल और बेंट एक ही लोहे का हो।

एकडेमी—संज्ञा स्त्री० [ग्र० एकाडेमी] १ शिखालय। विद्यालय। स्कूल। २ वह सभा या समाज जो साहित्य, ललितकला, शिल्पकला या विज्ञान की उन्नति के लिये स्थापित हुआ हो। विज्ञान समाज।

एकण^१—वि० [सं० एकल ?] एक। एक ही। उ०—अकबर एकरा वार दागल की सारी दुनी। पृथ्वीराज (शब्द०)।

एकतत्र—वि० [सं० एकतत्र] जिस व्यवस्था में शासन सूत्र एक शब्दों के हाथ में हो। उ०—एकतत्र शासन होते हुए भी

राजा परोपकारी तथा प्रजाहितैषी होते थे।—पू० म० भा०, पृ० १०१।

यौ०—एकतत्र शासन द्रष्टाणी=वह शासन पद्धति जिसमें केवल राजा की इच्छा पर शासन चलता हो।

एकत—कि० वि० [सं० एकतस] एक और से।

एकत^१—कि० वि० [सं० एकत्र, प्रा० एकत्त] एकत्र। एक जगह। इकट्ठा। उ०—(क) नहि हरि लो हियरा धरौ नहि हर लो अरधग। एकत ही करि राखिये अग अग प्रति अग।—विहारी र०, दो० ४६४ (ख) कहलाने एकत वसत अहि मयूर, मृग बाध। जगतु तपोवन सो कियो दोरघ-बाध निदाघ।—विहारी र०, दो० ४८६।

एकतन—कि० वि० [हि० एक+तन=और, तरफ] दे० 'इकतन'। उ०—इकतन नर एतन नई नारी। खेल मच्चो ब्रज कं विच भारी।—सूर०, २।३५१६।

एकतरफा—वि० [फा०] १ एक ओर का। एक पक्ष का। २ जिसमें तरफदारी की गई हो। पक्षपातग्रस्त। ३ एकद्वारा। एक पार्श्व का।

मुहा०—एकतरफा डिगरी=वह व्यवस्था जो प्रतिवादी का उत्तर बिना सुने दी जाय। वह डिगरी जो मुद्दालह के हाजिर न होने के कारण मुद्दई को प्राप्त हो। एकतरफा फंसला=एकतरफा डिगरी। एकतरफा राय या विचार=एक ही पक्ष की बात सुनकर बनी हुई धारणा।

एकतरा—संज्ञा पुं० [सं० एकोतर, या एकान्तर] एक दिन अंतर देकर आनेवाला ज्वर। अंतरा।

एकतल्ला—वि० [हि०] एक मजिलवाला। जैसे, एकतल्ला महान।

एकता^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ऐक्य। मेल। २ समानता। बराबरी।

यौ०—एकताचारी=अभिन्नता का व्यवहार या आचरण। आत्मीयता। उ०—ता पाछे वा ब्रजवासिनी तें श्री गोवर्धन-नाथ जी तें एकताचारी भई।—दो सो बावन०, भा० २, पृ० ६।

एकता^२—वि० [फा० एकता] अकेला। एका। अद्वितीय। वैजोड। अनुपम। जैसे—'वह अपने दुनर में एकता है। उ०—'कोई मुर्ग लडाने में एकता, कोई किससा खा।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८७।

एकताई^१—संज्ञा स्त्री० [सं० एकता+हि० ई (प्रत्य०)] दे० 'एकता'।

एकतान—वि० [सं०] तन्मय। लीन। एकाग्रचित्त। उ०—तुझमें इन तरह एकतान हुई उस वाला को देख मैंने अपना प्रयास सफल समझा।—सरस्वती (शब्द०)।

एकतानता—संज्ञा स्त्री० [सं० एकतान+ता (प्रत्य०)] तल्लीनता। तन्मयता। उ०—'वास्तव में विषय और विषयी की यह एकतानता कोई दुर्लभ या निराली वस्तु नहीं है।'—आचार्य०, पृ० १४८।

एकतारा—संज्ञा पुं० [हि० एक+तार] एक तार का सितार या बाजा। विशेष—इनमें एक डडा होता है जिसके एक छोर पर चमड़े से

ककु ७—सज्ञा पुं [सं०] एक प्रकार का कोड [को०] ।
 ककु ८—वि० [सं०] एक बार जोता हुआ (खेत) [को०] ।
 ककु ९—वि० [सं० एककोशिन] १. एक ही कोश का बना हुआ (प्राणी) [को०] ।
 ककु १०—सज्ञा पुं [सं०] परब्रह्म । परमात्मा [को०] ।
 ककु ११—सज्ञा स्त्री [हिं० एक + गाछ + ई (प्रत्य०)] वह नाव जो एक ही पेड़ के तने को खोखला करके बनाई गई हो ।
 एकग्राम—वि० [सं०] एक ही गाँव में रहनेवाला । एक गाँव का [को०] ।
 एकचक्र—सज्ञा पुं [सं०] १ सूर्य का रथ (जिसमें एक ही पहिया माना गया है) । २ सूर्य ।
 एकचक्र—वि० १ एक चक्कावाला । एक पहियावाला [को०] ।
 २ एक राजा द्वारा शासित [को०] । ३. चक्रवर्ती । उ०—
 चत्थो सुमत् हरिकेश सुवन स्यामक को भारी । एकचक्र नृप
 जोग दोय भुज सरधनुवारी ।—गोपाल (शब्द०) ।
 एकचक्रा—सज्ञा स्त्री [सं०] एक प्राचीन नगरी जो आरा के पास थी । यहाँ वकासुर रहता था । पाँच लोग लाक्षागृह से वचकर यही रहे थे और यही भीम ने वकासुर को मारा था ।
 एकचक्री—सज्ञा स्त्री [सं०] वह गाड़ी जिसमें एक ही पहिया हो [को०] ।
 एकचर—वि० [सं०] १ अकेले चरनेवाला । भुड़ में न रहनेवाला ।
 एका । २. अकेला । एकाकी [को०] । ३ एक समय या एक साथ चरनेवाला ।
 एकचर—सज्ञा पुं १ जंतु या पशु जो भुड़ में नहीं रहते अकेले चरते हैं, जैसे, सिंह, साँप । २ गंडा । ३ यति [को०] ।
 एकचश्म—वि० [हिं० एक + फा० चश्म] एक आँखवाला । काना [को०] ।
 एकचश्म—सज्ञा पुं वह चित्र जिसमें चेहरे का एक ही पक्ष दीख पड़ता है [को०] ।
 एकचारिणी—सज्ञा स्त्री [सं०] पतिव्रता स्त्री [को०] ।
 एकचारी—वि० [सं० एकचारिन्] ३० 'एकचर' ।
 एकचित्त—वि० [सं० एकचित्त] १ स्थिरचित्त । एकाग्रचित्त ।
 जैसे—'मैं कथा कहता हूँ एकचित्त होकर सुनो ।' २. समान विचार का । एक दिल । खूब हिलामिला । जैसे—'तुम दोनों एकचित्त हो ।'
 एकचित्त—सज्ञा पुं १ एक ही बात या विचार पर दृढ़ रहनेवाला चित्त । उ०—जागि सुरति सपन मिट गयऊ । दुइचित्त भेटि एकचित्त भयेऊ ।—कबीर सा०, पृ० १५३३ । २ एकाग्रता ।
 एकचेता—वि० [सं० एकचेतस्] ३० 'एकचित्त' [को०] ।
 एकचोवा—सज्ञा पुं [फा०] वह खेमा या डेरा जिसमें केवल एक चोव या खमा लगे ।
 एकछता—वि० [हिं० एकछत्र] ३० 'एकछत्र' उ०—रावन अस तँतोस कोटि सब एकछत राज करे ।—घट०, पृ० २६५ ।
 एकछत्र—वि० [सं० एकछत्र] बिना और किसी के आधिपत्य का (राज्य) । जिसमें कहीं और किसी का राज्य या अधिकार

न हो । पूर्ण प्रभुत्वयुक्त । अनन्यशामनयुक्त । निष्कण्टक । उ०—
 जरा मरन दुख रहित तनु समर जितै जिन कोउ । एकछत्र
 रिपुहीन महि राज कलपसत होउ ।—मानस, १।१६४ ।
 एकछत्र—वि० [सं०] एकाधिपत्य के साथ । पूर्ण प्रभुत्व के साथ ।
 उ०—बैठ सिंहासन गरमहि गूजा । एकछत्र चारऊ खँड भूजा ।
 जायसी (शब्द०) ।
 एकछत्र—सज्ञा पुं [सं०] शासन या राज्यप्रणाली का वह भेद जिसमें किसी देश के शासन का सारा अधिकार अकेले एक पुरुष को प्राप्त होता है और वह जो चाहे सो कर सकता है ।
 एकज—सज्ञा पुं [सं०] १ जो द्विज न हो । शूद्र । २ राजा । ३. सगा भाई [को०] ।
 एकज—वि० [एक + एव, प्रा० ज्वेव जेव] एक ही । एकमात्र ।
 उ०—थली जो चरता मिरगला वेधा एकज सौन । हम तो पथी पथ सिर हरा चरंगा कौन ।—कबीर (शब्द०) ।
 एकजटा—सज्ञा स्त्री [सं०] एक देवी । उग्रतारा [को०] ।
 एकजदी—वि० [फा०] जो एक ही पूर्वज से उत्पन्न हुए हो । सपिंड या सगोत्र ।
 एकजन्मा—सज्ञा पुं [सं० एकजन्मन्] १ शूद्र । २ राजा ।
 एकजवान—वि० [हिं० एक + फा० जवान] एक विचार । एक मत ।
 २ एक वाक्य [को०] ।
 एकजा—सज्ञा स्त्री [सं०] सगी बहन [को०] ।
 एकजाई—वि० [फा० एक + जा = जगह, स्थान + हिं० ई (प्रत्य०)] एक स्थान में सीमित । एक जगह का । उ०—जरे एकजाई तूँ तो हाजिर रहता है हर जा ।—मारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ५६१ ।
 एकजात—वि० [म०] एक माँ बाप से पैदा हुआ । सहोदर [को०] ।
 एकजाति—वि० [म०] एक ही जाति या वंश का [को०] ।
 एकजाति—सज्ञा पुं शूद्र [को०] ।
 एकजातीय—वि० [सं०] एक ही जाति का । समान जाति का ।
 उ०—राजनीति विपयिणी छोटी बड़ी एक जातीय तथा बहुजातीय समाग्रो, उपदेशको और समाचारपत्रो का प्रादुर्भाव इसी उद्देश्य से हुआ है ।—प्रताप० ग्र०, पृ० ३६७ ।
 एकजीक्यूटिव—वि० [अ० एंजीक्यूटिव] १ प्रवध विषयक । कार्य संपादन संबंधी । अमलदरामद या काररवाई से संबंध रखनेवाला । २ प्रवध करनेवाला । अमलदरामद करनेवाला । शामिल । काय में परिणत करनेवाला ।
 विशेष—शासन के तीन विभाग हैं—नियम, न्याय और प्रवध । विचारपूर्वक नियम निर्धारित करना अर्थात् कानून बनाना और आवश्यकतानुसार समय समय पर उनका सशोधन करना नियम या लेजिस्लेटिव विभाग का काम है । उन नियमों के अनुसार भ्रूकदमो का फैसला करना या मामलो में व्यवस्था देना न्याय या जुडिशियल विभाग का काम है । उन नियमों का दुख या अपनी निगरानी में पालन कराना प्रवध या एंजीक्यूटिव विभाग का काम है ।
 एकजीक्यूटिव आफिसर—सज्ञा पुं [अ० एंजीक्यूटिव आफिसर] वह

एक के दस सुनाना = एक कड़ी बात के बदले दस कड़ी बातें सुनाना । एक जान = खूब मिला जुला । जो मिलकर एक रूप हो गया हो । (अपनी और किसी की) एक जान करना = (१) किसी की अपनी सी दशा करना । (२) मारना और मर जाना । जैसे—‘अब फिर तुम ऐसा करोगे तो मैं अपनी और तुम्हारी जान एक कर दूँगा’ । एक जान दो कालिव = एक प्राण दो शरीर । अत्यंत घनिष्ठ । गहरी दोस्ती । जैसे—‘इन दोनों साहित्यों में एक जान दो कालिव का मुआमला है ।’ —प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६२ । एक टाँग फिरना = बराबर घूमा करना । बँटकर दम भी न लेना । एक टक = (१) बिना आँख की पलक मारे हुए । अनिमेष । स्थिर दृष्टि से । नजर गड़ाकर । उ०—(क) भरतहि चितवत एकटक ठाढ़ा ।—मानस, २।१६५ । (ख) उदित विमल जन हृदय नम एकटक रही निहारि ।—मानस, २।३०२ । एक टक आसा लगाना = लगातार बहुत दिन से आसरा बँधा रहना । उ०—जन्म तें एकटक लागि आसा रही विषय विष खात नहि तृप्ति मानी । सूर०, १।११० । एक ताक = समान । बराबर । भेदरहित । तुल्य । उ०—सखन सग हरि जँवत छाक । प्रेम सहित मेया दे पठ्यो सब वनाए है एक ताक ।—सूर० (शब्द०) । एक तार = वि० (१) एक ही नाप का । एक ही रूप रंग का । समान । बराबर । (२) (कि० वि०) समभाव से । बराबर । लगातार । उ०—का जानौ कब होयगा हरि सुमिरन एक तार । का जानौ कब छाँडि है यह मन विषय विकार ।—दादू (शब्द०) । एक तो = पहले तो । पहिली बात तो यह कि । जैसे—(क) ‘एक तो वह यो ही उजड़ है दूसरे आज उसने भाँग पी ली है’ । (ख) ‘एक तो वहाँ भले आदमियों का सग नहीं दूसरे खाने पीने की भी तकलीफ’ । एक दम = (१) बिना रुके । एक क्रम से । लगातार । जैसे—(क) ‘यह सड़क एकदम चुनार चली गई है’ । (ख) ‘एक दम घर ही चले जाना बीच में रुकना मत ।’ (२) फौरन । उसी समय । जैसे—‘इतना सुनते ही वह एकदम भागा ।’ (३) एक बारगी । एक साथ । जैसे—‘एकदम इतना बोझ मत लादो कि पैल चल हो न सके । उ०—‘साधारण लोग कहेंगे, कहाँ का दरिद्र एकदम से आ गया जो घर की चीजें बेच डालते हैं ।’—प्रताप० ग्र०, पृ० । (४) विल्कुल । नितात । जैसे—‘हमने वहाँ का आना जाना एकदम बंद कर दिया’ । (५) जहाज में यह वाक्य बहकर उस समय चिल्लाते हैं जब बहुत से जहाजियों को एक साथ किसी काम में लगाना होना है । एक दिल = (१) खूब मिला जुला । जो मिलकर एक रूप हो गया हो । जैसे—‘सब दवाओं को खरल में घोटकर दिल कर डालो ।’ (२) एक ही विचार का । अभिन्नहृदय । एक दीवार रूपा = हजार हुए । (दलाल) । एक दूसरे, का, पर, मे, से = परस्पर । जैसे—(क) ‘वे एक दूसरे का बड़ा उपकार मानते हैं ।’ (ख) ‘वहाँ कोई एक दूसरे से बात नहीं कर सकता’ । (ग) मित्र एक दूसरे में भेद नहीं मानते’ । (घ) ‘वे एक दूसरे पर हाथ रखे जाते थे । एक न चलना या एक एक नहीं चल पाना = कोई युक्ति सफल न होना । एक न

मानना = विरोध में कोई बात न सुनना । एक पास = पास पास । एक ही जगह । परस्पर निकट । उ०—(क) रची सार दोनों एक पास । होय जुग जुग प्रावहि कैलासा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) जलचर वृद्ध जाल अंतरगत सिमिटि होत एक पास ।—तुलसी (शब्द०) । एक पेट के = सहोदर । एक ही माँ से उत्पन्न (भाई) । एक ब एक = एकस्मात् । अचानक । एकबारगी । एक बात = (१) दृढ़ प्रतिज्ञा । जैसे—‘मर्द की एक बात’ । (२) ठीक बात । सच्ची बात । जैसे—‘एक बात कहो । मोलचाल मत करो ।’ एकमएका होना = एक दिल होना । खूब मिनजुल जाना । उ०—एकम एका होन दे मिनसन दे कैनास । धरती अवर जान दे मा में मेरे दास ।—कवीर ना०, सं०, भा १, पृ० २१ । एक मामला = कई आदमियों में परस्पर इतना हेलमेल कि किसी एक का क्रिया दुआ दूसरो को स्वीकार हो । जैसे—‘हमारा उनका तो एक मामला है’ । एक मुँह से कहना, बोलना आदि = एकमत होकर कहना । एक स्वर से कहना । जैसे—‘सब लोग एक मुँह से यही बात कहते हैं ।’ एक मुँह होकर कहना बोलना इत्यादि = एक मत होकर कहना । एक मुश्त या एक मुट्ठ = एक साथ । एक बागी । इकट्ठा (रूपे पैसे क सवध में) । जैसे—‘जो कुछ देना हो एकमुश्त दीजिए, थोड़ा थोड़ा करव नहीं ।’ एकमेक होना = एकाकार होना । परस्पर मिलाकर एक समान होना । एक लख्त = एकदम । एकबारगी । एक समझना = भेद न मानना । अभिन्न समझना । उ०—‘बादल और आसमान को यह लोग एक समझते हैं ।’ सूर०, भा० १, पृ० १२ । एक सा = समान । बराबर । एक से एक, एक ते एक = एक से एक बढ़कर । जैसे—‘वहाँ एक से एक महाजन पड़े हैं ।’ उ०—एक ते एक महा रनधीरा ।—मानस (शब्द०) । एक से इक्कीस होना = बढ़ना । उन्नति करना । फलना फूलना । एक स्वर से कहना या बोलना = एकमत होकर कहना । जैसे—‘सब लोग स्वर से इसका विरोध कर रहे हैं ।’ एक होना = (१) मिलना जुलना । मेल करना । जैसे—‘ये लड़के अभी लड़ते हैं, फिर एक होंगे ।’ (२) तद्रूप होना । एकइस (उ०) —वि० [स० एकविंशति] इक्कीस’ । उ०—एकइस बड़ महल के भीतर ।—धरम०, भा० १, पृ० ६६ । एकक—वि० [स०] १ अकेला । बिना किसी व्यक्ति के साथ । २ वही । एककपाल—सब्बा पुं० [स०] वह पुरोडाश जो यज्ञ में एक कपाल में पकाया जाय । एककलम—कि० वि० [फा० यक + अ० कलन] एक बार ही । पूर्णरूपेण । पूरी तरह से । एककालिक—वि० [स०] एक ही समय में होनेवाला । एक काल का । एक समय का [की०] । एककालीन—वि० [स०] दे० ‘एककालिक’ [की०] । एककुंडल—सब्बा पुं० [मं० एककुंडल] १ बनराम । २ कुबेर । ३ शेषनाग [की०] ।

मूंगा से अडी का रेशम कुछ घट कर होता है। इसे अडी या एंडी भी कहते हैं।

२. इस कीड़े का रेशम। अंडी। मूंगा।

एंडी^१—सज्ञा स्त्री [हि०] 'एंडी'। उ०—व्या कुरे से कुरे दुखो को सह, ऐंडियां ही घिसा करेंगे हम।—चुमते०, पृ० २३।

एंडुआ—सज्ञा पुं [हि०] 'एंडना' [स्त्री० अल्पा० एंडुई] रस्सी, कपड़े आदि का बना हुआ गोल मंडरा जिसे गद्दी की तरह सिर पर रखकर मजदूर लोग बोझ उठाते हैं। गेंडरी। विडूआ। बिना पेंदे के वरतनों के नीचे भी एंडूआ लगाया जाता है जिसमें वे लुढ़क न जायें।

ए^१—सज्ञा पुं [सं०] विष्णु।

ए^२—अव्य० [हि०] एक अव्यय जिसे संज्ञोपन या बुलाने के लिये प्रयोग करते हैं। उ०—ए। विधिना जो हमें हंसती अब नेक कही उतको पग धारें।—रमखान (शब्द०)।

ए^३—सर्व० [सं० एष, > प्रा० एह] यह। उ०—कुरे न निघरघटयो दिये ए रावरी कुवान। विपु सी लागति है वुरी, हैमी खिसी की लाल।—विहारी २०, दो० ४८२।

एकक(पु)—किं० वि० [न० एक + अङ्क] निश्चय। इकक। इकग्राह। उ०—ये गेह के लोग धों कातकी न्हान कों ठानिहें कालिह एकक ही गोन।—बिहारी० ग्र०, भा० १, पृ० २४५।

एकंग—वि० [सं० एक + अङ्ग = एकांग] अकेला। तनहा।

एकगा—वि० [सं० एक + अङ्ग = ओर, तरफ] एक ओर का। एकतरफा।

एकगी^१—सज्ञा स्त्री [हि० एक + अगी] मुठिया लगा हुआ दो डेढ़ गज लंबा लट्टूदार डंडा जिसे हाथ में लेकर लकड़ी खेलनेवाले लकड़ी खेलते हैं। इसी डंडे से वार भी करते हैं और रोकते भी हैं।

एकगी^२—वि० [सं० एकाङ्गी] एक ओर या पक्ष का। एकतरफा। एकागी। उ०—चंद की चाह चकोर मरै अर दीपक चाह जर जो पतगी। ये सब चाहें, इन्हें नहि कोऊ, सो जानिए प्रीति की रीति एकगा।—(शब्द०)।

एकड़िया^१—सज्ञा पुं [सं० एकाङ्क] १. वह घोड़ा या बैल जिसके एक ही अङ्कूप हो। २. वह लहसुन की गाँठ जिसमें एक ही अडी हो। एकपुतिया लहसुन।

एकड़िया^२—वि० एक अडे का।

एकत(पु)—वि० [सं० एकांत] जहाँ कोई न हो। एकांत। निराला। सुना। जैसे—एकांत स्थान में मैं तुमसे कुछ कहूँगा। उ०—आइ गयो मतिराम तहाँ घर जानि एकत अनद से चंचल।—मतिराम (शब्द०)।

एकतरि(पु)—वि० [सं० एकान्तर] एक के अंतरवाला। एक व्यवधानवाला। उ०—वाँणी सुरग सोधि करि आँणी आँणे नौ रंग घागा। चंद सूर एकतरि कीया मोवत बहु दिन लागा।—कवीर ग्र०, पृ० १६०।

२-१८

एक—वि० [सं०] १. एकाइयों में सबसे छोटी और पहली सख्या। वह सख्या जिसमें जाति या समूह में से किसी अकेली वस्तु या व्यक्ति का बोध हो। २. अकेला। एकता। अद्वितीय। बेजोड़। अनुपम। जैसे—वह अपने ढंग का एक आदमी है। उ०—प्रभु को देखो एक सुभाई। अति गंभीर उदार उदधि हरि, जान सिरोमणि राइ।—सूर०, १। ३. कोई। अनिश्चित। किसी। जैसे—सबको एक दिन मरना है। उ०—एक कहैं अमल कमल मुख सीता जू को, एक कहैं चंद्र सम आनंद को कद री।—रामच०, पृ० ५३। ४. एक प्रकार का। समान। तुल्य। जैसे—एक उमर के चार पाँच लड़के खेल रहे हैं। उ०—एक रूप तुम भ्राता दोऊ।—मानस, ४८।

मुहा०—एक अक या एक प्राँक = एक बात। ध्रुव बात। पक्की बात। निश्चय। उ०—(क) मुख फेरि हँसें सब राव रक। तेहि धरे न पहुँ एक अक।—कवीर (शब्द०)। (ख) जाउँ राम पहि आयेसु देह। एकहि प्राँक मोर हित एह।—मानस, २। १७८। एक अनार सौ बीमार = किमी चीज के अनेक चाहनेवाले। एक आँख देखना = समान भाव रखना। एक ही तरह का बतवि करना। एक आँख न भाना = तनिक भी अच्छा न लगना। नाम मात्र पद न भाना। उ०—'हमें यह बातें एक आँख नहीं भाती, जब देखो बमचख मची हुई है।'—सर०, पृ० ३२। एक आवा (वि०) = थोड़ा। कम। इक्का दुक्का। जैसे—(क) सब लोग चले गए हैं एक आध आदमी रह गए हैं। (ख) अच्छा एक आध रोटी मेरे लिये भी रहने देना। एक एक = (१) हर एक। प्रत्येक। जैसे—एक एक मुहताज को दो दो रोटीयाँ दो। (२) अलग अलग। पृथक् पृथक्। जैसे—एक एक आदमी आवे और अपने हिस्से को उठा उठा चला जाय। (३) वारी वारी। क्रमशः। जैसे—एक एक लड़का मदरसे से उठे और घर की राह ले। एक एक करके = एक के पीछे दूसरा। धीरे धीरे। जैसे—यह मुन सब लोग एक एक करके चलते हुए। एक एक के दो दो करना = (१) काम बढ़ाना। जैसे—एक एक के दो दो मत करो भटपट काम होने दो। (२) व्यर्थ समय खोना। दिन काटना। जैसे—वह दिन भर बैठा हुआ एक एक के दो दो किया करता है। उ०—कहना, एक एक के दो दो कर रहे हैं और नहीं।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २६०। एक ओर या एक तरफ = किनारे। दाहिने या बाएँ। जैसे—'एक तरफ खड़े हो, रास्ता छोड़ दो।' एक और एक ग्यारह करना = मिलकर शक्ति बढ़ाना। एक और एक ग्यारह होना = कई आदमियों के मिलने से शक्ति बढ़ना। एक कलम = विलकुल। सब। एकदम। जैसे—(क) 'साहब ने उनको एक कलम बरखास्त कर कर दिया'। (ख) 'इस खेत में एक कलम ईख ही बो दी गई'। एक के स्थान पर चार सुनना = एक कड़ी बात के बदले चार कड़ी बातें सुनना। उ०—'बरच एक के स्थान पर चार सुनने ही पर सन्नद होते हैं।'—प्रेमघन०, भा० ३, पृ० २८५।

ऋपिदेव—सज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम [को०] ।
 ऋपिपचमी—सज्ञा स्त्री० [सं० ऋपिपञ्चमी] मात्र शुक्ल पचमी । इस तिथि को स्त्रियाँ ब्रतोपवास आदि करती हैं ।
 ऋपिपत्तन—सज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल में वाराणसी के निकट एक वन का नाम । वर्तमान सारनाथ [को०] ।
 ऋपिप्रोक्ता—सज्ञा स्त्री० [सं०] मापवर्ण नामक गीष्ठा [को०] ।
 ऋपिमित्र—वि० [सं०] ऋपियों में सूर्य के समान तेजस्वी । उ०—
 हंसि के कह्यो ऋपिमित्र । अब बँठ राजपवित्र ।—राम च०, पृ० १० ।
 ऋपियज्ञ—सज्ञा पुं० [सं०] ऋपियों के ऋण से मुक्ति पाने के निमित्त किया जानेवाला एक यज्ञ [को०] ।
 ऋपिराई—वि० [सं० ऋपिराज] ऋपियों में श्रेष्ठ । ऋपिराज ।
 ऋपिलोक—सज्ञा पुं० [सं०] सत्यलोक के पास का एक लोक [को०] ।
 ऋपिस्तोम—सज्ञा पुं० [सं०] १ ऋपियों की स्तुति या प्राचना ।
 २ एक दिन में होनेवाला यज्ञविशेष [को०] ।
 ऋपिस्वाध्याय—सज्ञा पुं० [सं०] वेदों का अध्ययन या प्रावृत्ति [को०] ।
 ऋपिहृदय—सज्ञा पुं० [सं०] ऋपियों के समान शुद्ध हृदयवाला [को०] ।
 ऋपीक—सज्ञा पुं० [सं०] १ ऋषि का पुत्र । २ द० 'ऋषिक' [को०] ।
 ऋपीश—वि० [सं०] ऋपियों में श्रेष्ठ । उ०—प्रासपास, ऋपीश शोभित सूर सोदर साय ।—राम० च०, पृ० १७५ ।
 ऋपीश्वर—वि० [सं०] द० 'ऋपीश' । उ०—तर्कनी यह पति ऋपीश्वर की सी ।—राम च०, पृ० ८८ ।
 ऋपु^१—वि० [सं०] १ बड़ा शक्तिशाली । २ बुद्धिमान । चतुर ।
 ३ गता । जानेवाला [को०] ।
 ऋपु^२—सज्ञा पुं० १ सूर्य की किरण । २ जलती हुई अग्नि । ३ उल्का । मशान । ४ ऋषि [को०] ।

ऋष्टि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ पट्ट । तलवार । २ शस्त्र । हथियार ।
 ३ दीप्ति । कांति । ४ एक माघ [को०] । ५ दुपारी तलवार [को०] ।
 ऋष्टिक—सज्ञा पुं० [म०] दक्षिण का एक देश जिसका उल्लेख वाल्मीकीय रामायण में है ।
 ऋष्य—सज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का मृग जिसके पंर खेत होते हैं और जो कुछ काले रंग का होता है । ऋष्य । २ एक प्रकार का कोड़ ।
 ऋष्यकेतन, ऋष्यकेतु—सज्ञा पुं० [सं०] अनिरुद्ध ।
 ऋष्यगन्धा—सज्ञा स्त्री० [सं० ऋष्यगन्धा] द० 'ऋक्षगन्धा' ।
 ऋष्यगन्ता—सज्ञा स्त्री० [सं०] द० 'ऋष्यप्रोक्ता' [को०] ।
 ऋष्यप्रोक्ता—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ सतावर । २ शूर्पांगी । केवाँच [को०] । ३ अतिप्रता [को०] ।
 ऋष्यजित्—सज्ञा पुं० [म०] कोड़ का एक प्रकार ।
 ऋष्यमूक—सज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण का एक पर्वत [को०] ।
 ऋष्यक—सज्ञा पुं० [सं०] चितकर्म या श्वेत पैरोवाना मृग [को०] ।
 ऋष्यशृंग—सज्ञा पुं० [म० ऋष्यशृंग] एक ऋषि जो विनाडक ऋषि के पुत्र थे ।
 विशेष—इनकी उत्पत्ति एक मृगों से कही गई है । इनको एक छोटी मींग थी जिससे इनका यह नाम पड़ा । यग देव के लोभाद राजा की पालिता कन्या शाता, जो दत्तारव की पुत्री थी, इन ही बगही गई थी ।
 ऋष्व^१—वि० [सं०] विशाल । उच्च । शिष्ट [को०] ।
 ऋष्व^२—सज्ञा पुं० १ इन्द्र । अग्नि [को०] ।
 ऋहत्—वि० [सं०] छोटा । दुर्बल [को०] ।

ए

ए—संस्कृत वर्णमाला का ग्यारहवाँ और देवनागरी वर्णमाला का आठवाँ स्वर वर्ण । शिक्षा में यह सध्यक्षर माना गया है और इसका उच्चारण कंठ और तालु से होता है । यह अ और इ के योग से बना है, इसीलिये यह कठतालव्य है । संस्कृत में मात्रानुसार इसके केवल दीर्घ और प्लुत दो ही भेद होते हैं, पर हिंदी में इसका ह्रस्व या एकमात्रिक उच्चारण भी सुना जाता है । जैसे,—एहि विधि राम सवहि समुभावा ।—तुलसी । भाषा वैज्ञानिक इसे स्पष्ट करने के लिये इनके ऊपर एक टेढ़ी 'ए' की मात्रा 'ँ' लगाते हैं । पर इसके लिये कोई और संकेत नहीं माना गया है । मीके के अनुसार ह्रस्व पढ़ा जाता है । प्रत्येक के सानुनासिक और निरनुनासिक दो भेद होते हैं ।

ऐंगुरा—सज्ञा पुं० [हिं०] द० 'इंगुर' । उ०—अमरक कै तनु ऐंगुर कीन्हा । सो तुम फेरि अग्नि महे दीन्हा ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३२१ ।

ऐचपेंच—सज्ञा पुं० [फा० पेच या स० प्रति + √ प्रञ्च; प्रा० √ प्रञ्च + फा० पेंच] १ उलभाव । उलभन । घुमाव फिराव । घटकाव । २ टेढ़ी चाल । चाल । घात । गूढ़ युक्ति ।

क्रि० प्र०—करना ।—बालना ।—होना ।

ऐजिन—सज्ञा पुं० [अ०] द० 'इजन' । उ०—पुतलीघर में ऐजिन चलाते हुए देशी साहब की अपेक्षा खेत में हल चलाते हुए किसान में अधिक स्वाभाविक आनंद है ।—रस०, पृ०, १४३ ।
 ऐंडाबेंडा—वि० [हिं० बेंडा + अनु० ऐंडा, या हिं० ऐंडा + बेंडा] [स्त्री० ऐंडीबेंडी] उलटा सीधा । अड़बड़ ।

मृहा—ऐंडी बेंडी सुनाना = भला बुरा कहना । फटकारना ।

ऐंडी^१—सज्ञा स्त्री० [सं० एरिंडिका प्रा० एमंडिआ] १ एक प्रकार का रेशम का कीड़ा ।

विशेष—यह कीड़ा मंडी के पत्ते खाता है । यह पूर्वी बंगाल तथा आसाम के जिलों में होता है । जो कीड़े नवंबर, फरवरी और मई में रेशम बनाते हैं उनका रेशम बहुत अच्छा समझा जाता है ।

ऋद्धिकाम—वि० [स०] समृद्धि । चाहनेवाला [को०] ।

ऋद्धिमान—वि० [स० ऋद्धिमान्] संपन्न । प्रतिष्ठित ।

ऋद्धिसिद्धि—सज्ञा स्त्री० [स०] समृद्धि और सफलता ।

विशेष—ये गणेश जी की दासियाँ मानी जाती हैं ।

ऋधिसिधि—सज्ञा स्त्री० [स० ऋद्धिमिधि] दे० 'ऋद्धिसिद्धि' ।

उ०—ऋधि निधि विधि चारि सुगति जा विनु गति अगति ।

—तुलसी ग्रं० पृ० ३६० ।

ऋन—सज्ञा पुं० [स० ऋण] दे० 'ऋण' । उ०—पाही खेती,
लग्नवट, ऋन कुव्याज, मग खेत । वर वडे सों आपने किए
गोच दुख हेत—तुलसी ग्रं०, पृ० १४३ ।

ऋनियाँ—वि० [हिं ऋन + इया (प्रत्य०)] ऋणी । कर्जदार ।
देनदार । उ०—साँची सेवकाई हनुमान की सुजानगय ऋनियाँ
कहाए हौ विकानो ताके हाय जू ।—तुलसी ग्रं०, पृ० २०२ ।

ऋनी—वि० [स० ऋणी] दे० 'ऋणी' । उ०—पूरव तप वृ
क्रियो कष्ट करि इनको वृद्ध ऋनी हों ।—सूर (शब्द०) ।

ऋभू—सज्ञा पुं० [स०] १ एक गण देवता । २ देवता । ३ देवों का
अनुचर वर्ग (को०) । ४ शिल्पी । रथकार (को०) । ५ अर्ध देवता
के रूप में कथित सुधन्वा के तीन पुत्र ऋभू, वाज और विध्वन
जिनका बोध ज्येष्ठ ऋभू के नाम से होता है ।

ऋभुक्ष—सज्ञा पुं० [स० ऋभुक्षन्] १ इद्र । २ स्वर्ग । ३ वज्र ।

ऋश्य—सज्ञा पुं० [स०] १ सफेद पैरोवाला मृग । २ हनुन । वध ।
३ दुख देना । कष्ट पहुँचाना । पीडन ।

ऋश्यकेतन, ऋश्यकेतु—सज्ञा पुं० [स०] १ कामदेव । प्रद्युम्न के पुत्र
अनिरुद्ध [को०] ।

ऋश्यद—सज्ञा पुं० [सं०] हरिन को पकड़ने के लिये खुदा हुआ
गर्त [को०] ।

ऋश्यमूक—सज्ञा [स०] पर्वतविशेष [को०] ।

ऋषभ—सज्ञा पुं० [सं०] १ बैल । वृषभ ।

विशेष—पुरुष या नर आदि शब्दों के आगे उपमान रूप में नमस्त
होने से सिंह, न्यात्र आदि शब्दों के समान यह शब्द भी श्रेष्ठ
का अर्थ देता है । जैसे, पुरुषर्षभ = पुरुषश्रेष्ठ ।

२ नक्र या नाक नामक जलजंतु की पूँछ । ३ राम की सेना का
एक वदर । ४ बैल के आकार का दक्षिण का एक पर्वत जिस
पर हरिश्चाम नामक चंदन होता है (वाल्मीकीय) । ५ संगीत
के सात स्वरों में से दूसरा ।

विशेष—इसकी तीन श्रुतियाँ हैं—दयावती, रजनी और रतिका ।
इसकी जाति क्षत्रिय, वर्ण पीला, देवता ब्रह्मा, ऋतु शिशिर,
वार सोम, छंद गायत्री तथा पुत्र मालकोश है । यह स्वर बैल
के समान कहा जाता है पर कोई कोई इसे चातक के स्वर के
समान मानते हैं । नाम से उठकर कठ और शीर्ष को जाती
हुई वायु से इसकी उत्पत्ति होती है । ऋषभ (कोमल) के
स्वरग्राम बनाने से विकृत स्वर इस प्रकार होते हैं—
ऋषभ स्वर । गाधार—ऋषभ । तीव्र मध्यम—गाधार ।
पंचम—मध्यम । ध्रुवत—पंचम । निपाद—ध्रुवत । कोमल
ऋषभ—निपाद ।

५. लहमुन की तरह की एक ओषधि या जड़ी जो हिमालय पर
होती है । इसका कंद मधुर, बलकारक और कामोद्दीपक होता
है । ७ नर जानवर । जैसे, अजर्षभ = वकरा (को०) । ८
वाराह की पूँछ (को०) । ९ विष्णु का एक अवतार (को०) ।

ऋषभक—सज्ञा पुं० [स०] अष्टवर्ग की ओषधियों में से एक [को०] ।

ऋषभकूट—सज्ञा पुं० [म०] एक पर्वत का नाम [को०] ।

ऋषभतर—सज्ञा पुं० [स०] छोटा या जवान बैल [को०] ।

ऋषभदेव—सज्ञा पुं० [स०] १ भागवत के अनुसार राजा नाभिके
पुत्र जो विष्णु के २४ अवतारों में गिने जाते हैं । २ जैन
धर्म के पादि तीर्थंकर ।

ऋषभवज्र—सज्ञा पुं० [स०] शिव । महादेव ।

ऋषभी—सज्ञा स्त्री० [स०] १ वह स्त्री जिसका रग रूप पुरुष की
तरह हो । २ गाय (को०) । ३ दिव्या (को०) । ४ कपिकुच्छु ।
केवाँच (को०) । ५ दे० 'शिराला' 'शिरालक' (को०) ।

ऋषि—सज्ञा पुं० [स०] १ वेदमंत्रों का प्रकाश करनेवाला । मन्त्र-
द्रष्टा । आध्यात्मिक और भौतिक तत्वों का साक्षात्कार
करनेवाला ।

विशेष ऋषि सात प्रकार के माने गए हैं—(क) महर्षि, जैसे
व्यास । (ख) परमर्षि जैसे भेल । (ग) देवर्षि जैसे नारद ।
(घ) ब्रह्मर्षि, जैसे वसिष्ठ । (च) श्रुतर्षि, जैसे सुश्रुत । (छ)
राजर्षि, जैसे ऋतुपर्ण और (ज) वाडर्षि, जैसे जैमिनि । एक
पद ऐम सान ऋषियों का माना गया है जो कल्पात प्रलयों में
वेदों को रक्षित रखते हैं । मित्र मिन्न मन्वन्तरों में सप्तर्षि के
प्रतर्गत मिन्न मिन्न ऋषि माने गये हैं । जैसे, इस वैवस्वत
मन्वन्तर के सप्तर्षि ये हैं—कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वामित्र,
गीतम जमदग्नि और भरद्वाज । स्वार्थमुव मन्वन्तर के—
मरीचि, अत्रि, अगिरा, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु और वसिष्ठ ।

यौ०—ऋषिऋण । ऋषिकल्प = ऋषितुल्य । ऋषिकुमार = ऋषि का
पुत्र । ऋषिगिरि = मगध का एक पर्वत । ऋषिपचमी । ऋषि-
मित्र । ऋषिराज । ऋषिवर्य । ऋषिसाहस्र = ऋषिपत्तन ।
ऋषिस्वाध्याय ।

ऋषिऋण—सज्ञा पुं० [सं० ऋषि + ऋण] ऋषियों के प्रति कर्तव्य ।

विशेष—वेद के पठनपाठन से इस ऋण से उद्धार होता है ।

ऋषिक—सज्ञा पुं० [स०] १ निम्न श्रेणी या स्तर का ऋषि । २
प्राचीन काल का एक जनपद और उसके निवासी [को०] ।

ऋषिकुल—सज्ञा पुं० [म०] १ ऋषि का वंश । २ ऋषि का
आश्रम । ३ गुरुकुल [को०] ।

ऋषिकुल्या—सज्ञा स्त्री० [स०] एक नदी का नाम जिसका उल्लेख
महाभारत के तीर्थयात्रा पर्व में है ।

ऋषिचाद्रायण—सज्ञा पुं० [स० ऋषिचान्द्रायण] एक विशिष्ट प्रकार का
व्रत [को०] ।

ऋषिजागल—सज्ञा पुं० [न० ऋषिजाङ्गल] [स्त्री० ऋषिजाङ्गलिका]
ऋषगंधा नामक पौधा [को०] ।

ऋषितर्पण—सज्ञा पुं० [न०] ऋषियों की तृप्ति के निमित्त किया
जानेवाला तर्पण या जलदान [को०] ।

ऋतुपति कोसलपुर मिहिरत सहित समाज ।—तुलसी ग्रं०, पृ० २६५ ।

ऋतुपर्ण—सज्ञा पुं० [सं०] अयोध्या के एक राजा जो नल के सखा थे और पासा खेलने में बड़े निपुण थे ।

ऋतुपर्याय—सज्ञा पुं० [सं०] ऋतुओं की आवृत्ति । ऋतुओं का आवागमन [को०] ।

ऋतुपा—सज्ञा पुं० [सं०] इन्द्र का एक नाम [को०] ।

ऋतुप्राप्त—वि० [सं०] फलनेवाला (वृक्ष) । फल देनेवाला (पेड़) ।

ऋतुप्राप्ता—वि० [सं०] (स्त्री) जिसे रजोदर्शन हो चुका हो ।

ऋतुप्राप्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] रजोदर्शन [को०] ।

ऋतुफल—सज्ञा पुं० [सं०] ऋतुविशेष में होनेवाले फल [को०] ।

ऋतुभाग—सज्ञा पुं० [सं०] छठा हिस्सा [को०] ।

ऋतुमती—वि० स्त्री० [सं०] १ रजस्वला । पुष्पवती । मासिक-धर्म-युक्ता ।

विशेष—धर्मशास्त्र और आयुर्वेद के अनुसार रजोदर्शन के उपरांत तीन दिन तक स्त्री को ब्रह्मचर्यपूर्वक रखना चाहिए, पति का मुख न देखना चाहिए चटाई इत्यादि पर सोना चाहिए, हाथ पर अथवा कटोरे या दोने में खाना चाहिए, आसू न गिराना चाहिए, नाखून न कटाना चाहिए, तेल उबटन और काजल न लगाना चाहिए, दिन को सोना न चाहिए बहुत भारी शब्द न सुनना चाहिए, हँसना और बहुत बोलना भी न चाहिए । चौथे दिन स्नान करके सुंदर वस्त्र और आभूषण धारण करना और पति का मुख देखकर सब व्यवहार करना चाहिए ।

२ (स्त्री) जिसका ऋतुकाल हो । जिस (स्त्री) के रजोदर्शन के उपरांत के १६ दिन न बीते हों और गर्भाधान के योग्य हो ।

ऋतुमुख—सज्ञा पुं० [सं०] किसी भी ऋतु का पहला दिन [को०] ।

ऋतुराज—सज्ञा पुं० [सं०] ऋतुओं का राजा वसंत । उ०—मानहु चयन मयनपुर आयत प्रिय ऋतुराज ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३४८ ।

ऋतुलिङ्ग—सज्ञा पुं० [सं०] ऋतुलिङ्ग १ ऋतुबोधक चिह्न । २ रज्जुस्राव के लक्षण [को०] ।

ऋतुवती—वि० स्त्री० [सं०] ऋतुमती दे० 'ऋतुमती' ।

ऋतुविज्ञान—सज्ञा पुं० [सं०] १ वह विज्ञान जिसमें वायुमंडल में होनेवाले परिवर्तनों के आधार पर आँधी, वर्षा आदि का अनुमान लगाया जाता है । २ आधुनिक भौतिक विज्ञान की एक शाखा ।

ऋतुविपर्यय—सज्ञा पुं० [सं०] ऋतु के अनुसार वायुमंडल का न होना । जैसे, वसंत ऋतु में पानी का वरसना ।

ऋतुवृत्ति—सज्ञा पुं० [सं०] ऋतुओं का आवागमन [को०] ।

ऋतुवेला—सज्ञा स्त्री० [सं०] रजोदर्शन या उसके बाद १६ दिनों तक गर्भाधान के लिये उपयुक्त समय [को०] ।

ऋतुसंधि—सज्ञा स्त्री० [सं०] ऋतुसन्धि १ दो ऋतुओं का संधिकाल । २ पक्ष की अंतिम तिथि-पूर्णिमा और अमावस्या [को०] ।

ऋतुसंहार—सज्ञा पुं० [सं०] कालिदास का पद्मऋतु-वर्णन-विषयक प्रसिद्ध खंडकाव्य ।

ऋतुसात्म्य—सज्ञा पुं० [सं०] ऋतु के अनुसार आहार [को०] ।

ऋतुस्तोम—सज्ञा पुं० [सं०] एक विशेष यज्ञ [को०] ।

ऋतुस्नाता—सज्ञा स्त्री० [सं०] वह जो रजोदर्शन के चौथे दिन स्नान करके शुद्ध हुई हो [को०] ।

ऋतुस्नान—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० ऋतुस्नाता] रजोदर्शन के चौथे दिन का स्त्रियों का स्नान । रजस्वला का चौथे दिन का स्नान ।

विशेष—रजोदर्शन के उपरांत तीन दिन तक स्त्री अपवित्र रहती है । चौथे दिन जब वह स्नान करती है तब कुटुंब के लोगों तथा घर की सब खाने पीने की वस्तुओं को छूने पाती है । स्नान के पीछे स्त्री को पति या उसके अभाव में सूर्य का दर्शन करना चाहिए ।

ऋतुत्व—सज्ञा पुं० [सं०] १ परिपुष्ट वीर्य । २ गर्भाधान का उपयुक्त अवसर [को०] ।

ऋतुत्विक—सज्ञा पुं० [सं०] ऋतुत्विक दे० 'ऋतुवज्' । उ०—देव विवाह यज्ञ में ऋतुत्विक को दान । प्रेमघन०, भा० २, पृ० ५७ ।

ऋतुवज्—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० ऋतुवजी] यज्ञ करनेवाला । वह जिसका यज्ञ में वरण किया जाय ।

विशेष—ऋतुवज् की सख्या १६ होती है जिसमें चार मुख्य हैं—(क) होता (ऋग्वेद के अनुसार कर्म करानेवाला) । (ख) अध्वर्यु (यजुर्वेद के अनुसार कर्म करानेवाला) । (ग) उद्गाता (सामवेद के अनुसार कर्म करानेवाला) । (घ) ब्रह्मा (चार वेदों का जाननेवाला और पूरे कर्म का निरीक्षण करनेवाला) । इनके अतिरिक्त बारह और ऋतुवज् के नाम ये हैं—मैत्रावरुण, प्रतिप्रस्थाता, ब्राह्मणच्छसी, प्रस्तोता, अच्छावाक्, नेष्टा, आग्नीध्र, प्रतिहर्ता, श्रावस्तुत्, उन्नेता, पाता और सुब्रह्मण्य ।

ऋतुवज्—सज्ञा पुं० [सं०] ऋतुवज् दे० 'ऋतुवज्' । उ०—मंत्र चल् वेदी पर विछाने के लिये ये दाभ मुझे ऋतुवज् ब्राह्मणों को देने हैं ।—शकुंतला, पृ० ४३ ।

ऋद्ध—वि० [सं०] १ संपन्न । वृद्धिप्राप्त । समृद्ध । २ संप्रह किया हुआ । जमा किया हुआ (अन्न) ।

ऋद्ध—सज्ञा पुं० १ पेड़ से मलकर या दायँकर अलग किया हुआ धान । संपन्न धान्य । २ विष्णु [को०] । ३ उत्कर्ष । वृद्धि [को०] । ४ विशिष्ट अथवा प्रत्यक्ष फल [को०] ।

ऋद्धि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक ओपधि या लता जिसका कद दवा के काम में आता है ।

विशेष—यह कद कपास की गाँठ के समान और बाँई और को कुछ घूमा रहता है तथा इसके ऊपर सफेद रोई होती है । यह बलकारक, शिदोपनाशक, शुक्रजनक, मधुर, भारी तथा मूर्छा को दूर करनेवाला है ।

पर्यां—प्राणप्रिया । वृष्या । प्राणवा । सपदाह्वया । सिद्धा । योग्या । चेतनीया । रयागी । मगल्या । लोककाता । जीवश्रेष्ठा । यशस्या ।

२ समृद्धि । बढ़ती । ३. आर्या छंद का एक भेद जिसमें २६ गुरु और ५ लघु होते हैं । ४. गणेश की एक दासी जो समृद्धि की देवी मानी जाती है [को०] । ५ पार्वती [को०] । ६ लक्ष्मी [को०] । ७. परती [को०] । ८. सफलता । सिद्धि [को०] ।

ऋणमोक्षित

ऋणमोक्षित—सज्ञा पुं [सं] स्मृति में लिखे हुए १५ प्रकार के दानों में से एक। वह जो घपना ऋण चुकाने में असमर्थ होकर अपने महाजन का अथवा उस महाजन को रुपया चुकानेवाले का दास हो गया हो।
 ऋणलेख्य पत्र—सज्ञा पुं [सं] लेन देन के व्यवहार का वह पत्र जो साक्षियों के सामने लिखा गया हो। दस्तावेज।
 ऋणविद्युत्—सज्ञा पुं [सं] ऋण + विद्युत् विकर्षण करनेवाली विजली। घन विद्युत् का विलोम।
 ऋणशुद्धि—सज्ञा स्त्री [सं] ऋण का साफ होना। कर्ज का अदा होना।
 ऋणशोध—सज्ञा पुं [सं] ऋण + शोध ऋण चुकाना। कर्ज अदा करना। उ०—मानव की शीतल छाया में ऋणशोध करूँगा निज कृति का।—कामायनी, पृ० ७६।
 ऋणशोधन—सज्ञा पुं [सं] दे० 'ऋणशोध'।
 ऋणसमुद्धार—सज्ञा पुं [सं] कर्ज की वसूली [को०]।
 ऋणांतक—सज्ञा पुं [सं] ऋणान्तक [को०] मंगल ग्रह [को०]।
 ऋणात्मक—वि० [सं] ऋणरूप। 'नेगेटिव' का अर्थानुवाद। बहुधा 'विद्युत्' का विशेषण [को०]।
 ऋणादान—सज्ञा पुं [सं] दिया हुआ कर्ज वापस मिलना [को०]।
 ऋणानपाकरण—सज्ञा पुं [सं] कर्ज चुकाना। ऋण या उधार चुकता करना [को०]।
 ऋणापनयन—सज्ञा पुं [सं] दे० 'ऋणापकरण' [को०]।
 ऋणापनोदन—सज्ञा पुं [सं] ऋण का चुकता हो जाना। कर्ज की अदायगी [को०]।
 ऋणाण—सज्ञा पुं [सं] वह ऋण जो दूसरा ऋण चुकाने के लिये लिया जाय।
 ऋणिक—वि० [सं] ऋणी। कर्जदार।
 ऋणियाङ्—वि० [सं] ऋणिन् ऋणी।
 ऋणी—वि० [सं] ऋणिन् १. जिसने ऋण लिया हो। कर्जदार। देनदार। अधमर्ण। २. उपकृत। उपकार माननेवाला। अनुगृहीत। जिसे किसी उपकार का बदला देना हो। जैसे—इस विपत्ति से उद्धार कीजिए, हम आपके चिर ऋणी रहेंगे।
 ऋणोद्ग्रहण—सज्ञा पुं [सं] किसी भी प्रकार से कर्ज को चुकता करा लेना [को०]।
 ऋतम्बर—वि०, सज्ञा पुं [सं] ऋतम्बर सत्य का धारण तथा पालन करनेवाला। परमेश्वर [को०]।
 ऋतम्बरा—सज्ञा स्त्री [सं] ऋतम्बरा सदा एक समान रहनेवाली बुद्धि [को०]।
 ऋत^१—सज्ञा पुं [सं] १ उल्लवृत्ति। २ मोक्ष। ३ जल। ४ कर्म का फल। ५. यज्ञ। सत्य। ७ ईश्वरीय नियम। ८. ब्रह्म। ९ एक आदित्य। १० सूर्य। ११. प्रिय भाषण। अनुकूल कथन [को०]।
 ऋत^२—वि० १ दीप्ति। २. पूजित। ३. सच्चा। ४ उचित। योग्य। ५ अनुकूल।
 ऋतधामा^१—वि० [सं] ऋतधामन् सत्य में वास करनेवाला। सत्य तथा पवित्र आचरणवाला [को०]।

ऋतधामा^२—सज्ञा पुं विष्णु [को०]।
 ऋतवज—सज्ञा पुं [सं] शिव का एक नाम [को०]।
 ऋतपर्ण—सज्ञा पुं [सं] दे० 'ऋतुपर्ण'।
 ऋतपेय—सज्ञा पुं [सं] १ एक एकाह यज्ञ जो छोटे छोटे पापों के नाश के लिये किया जाता है।
 ऋतवादी—वि० [सं] ऋतवादिन् सत्यवादी। सच बोलनेवाला [को०]।
 ऋतव्य—वि० [सं] ऋतु सवधी। मौसमी [को०]।
 ऋतव्रत—वि० [सं] सत्य का व्रत लेनेवाला। सत्यवादी [को०]।
 ऋतिकर—वि० [सं] ऋतिङ्कर १ कष्टद। २. भाग्यहीन [को०]।
 ऋति^१—सज्ञा स्त्री [सं] १ गति। २ स्पर्द्धा। २ निंदा। ४ मार्ग। ५. मंगल। कल्याण। ६ स्मृति। याददाश्त [को०]। ७ दुर्भाग्य। अभाग्य [को०]। ८ कष्ट। दुःख [को०]। ९. आक्रमण [को०]। १० सत्य। सच्चाई [को०]।
 ऋति^२—सज्ञा पुं [सं] १ नरमेघ यज्ञ में पूज्य एक देव। २. आक्रामक शत्रु या सेना [को०]।
 ऋतीया—सज्ञा स्त्री [सं] १ घृणा। २. लज्जा। ३ निंदा [को०]।
 ऋतु—सज्ञा पुं [सं] १. प्राकृतिक अवस्थाओं के अनुसार वर्ष के दो दो महीनों के छह विभाग। मौसम। उ०—सिगरी ऋतु शीमित शुभ्र जही।—राम चं०, पृ० ८०।
 विशेष—ऋतुएँ छह हैं—(क) वसंत (चैत और वैशाख), (ख) ग्रीष्म (ज्येष्ठ और आषाढ), (ग) वर्षा (सावन और भादो), (घ) शरद (वृषार और कार्तिक), (च) हेमंत (अग्रहन और पूस), (छ) शिशिर (माघ और फागुन)।
 २ रजोदर्शन के उपरांत वह काल जिसमें स्त्रियाँ गर्भधारण के योग्य होती हैं। ३. उपयुक्त समय या काल [को०]। ४. समुचित या सुनिश्चित व्यवस्था [को०]। ५ विष्णु [को०]। ६ मास। महीना [को०]। ७ दीप्ति। प्रकाश [को०]। ८ छह की सख्या [को०]।
 ऋतुकर—सज्ञा पुं [सं] शिव का एक नाम।
 ऋतुकाल—सज्ञा पुं [सं] रजोदर्शन के उपरांत के १५ दिन जिसमें स्त्रियाँ गर्भधारण के योग्य रहती हैं। इनमें से प्रथम चार दिन तथा ग्यारवाँ और तेरहवाँ दिन गमन के लिये निषिद्ध है। यौ०—ऋतुकालाभिगामी = दे० 'ऋतुगामी'।
 ऋतुगमन—सज्ञा पुं [सं] [वि० ऋतुगामी] ऋतुकाल में स्त्री के पास जाना। ऋतुमती स्त्री के साथ समोग करना।
 ऋतुगामी—वि० [सं] ऋतुगामिन् ऋतुकाल में स्त्री के पास जानेवाला [को०]।
 ऋतुचर्या—सज्ञा स्त्री [सं] ऋतुओं के अनुसार आहार विहार की व्यवस्था।
 ऋतुदान—सज्ञा स्त्री [सं] ऋतुमती स्त्री के साथ सतान की इच्छा से समोग। गर्भावधान।
 ऋतुनाथ—सज्ञा पुं [सं] ऋतुओं का स्वामी। वसंत ऋतु। उ०—मानहु रति ऋतुनाथ सहित मुनि वेप बनाए है मैंन।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३३५।
 ऋतुपति—सज्ञा पुं [सं] दे० 'ऋतुनाथ'। उ०—जनु रतिपति

कडिका । ३ स्तोत्र । स्तुति । उ०—लगे पढन रच्छा ऋचा
ऋपिराज विराजे ।—तुलसी ग्र०, पृ० २७१ ।

ऋचोक्त—सज्ञा पुं० [स०] मृगवशीय एक ऋषि जो जमदग्नि के पिता
थे । विश्वामित्र के पिता गांधि ने अपनी सत्यवती नाम की
कन्या इन्हें व्याही थी ।

ऋचीप—सज्ञा पुं० [स०] १ एक नरक का नाम । २ कडाही [को०] ।
ऋच्छ(उ)—सज्ञा पुं० [स० ऋक्ष] १ भालू । रीछ । उ०—घायल
वीर विराजत चहुँदिसि, हरपित सकल ऋच्छ अरु वनचर ।
—तुलसी ग्र०, पृ० ४०० । २ दे० 'ऋक्ष' ।

यो०—ऋच्छपति=जाववान् ।

ऋच्छका—सज्ञा स्त्री० [स०] अभिलाषा । इच्छा [को०] ।

ऋच्छरा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ वेडी । २ वेश्या [को०] ।

ऋजिमा—सज्ञा स्त्री० [स० ऋजिमन्] सरलता [को०] ।

ऋजीक^१—वि० [स०] १ मिश्रित । मिला हुआ । २ पृथक् किया
हुआ । हटाया हुआ । ३ भ्रष्ट [को०] ।

ऋजीक^२—सज्ञा पुं० [स०] १ इद्र का नाम । २ साधन । ३ एक
पर्वत का नाम । ४ धूम्र । धुम्राँ [को०] ।

ऋजोप—सज्ञा पुं० [स०] १ लोहे का तसला या कडाही । २ सोमलता
की । सीठी ३ सीठी । ४ एक नरक का नाम । ५ जल ।

ऋजु—वि० [स०] [स्त्री ऋज्वी] १ सीधा । जो टेढ़ा न हो । अचक्र ।
उ०—ऋजु प्रशस्त पय वीच वीच मे, कही लता के कुज घने ।
—कामायनी, पृ० १८२ । २ सरल । सुगम । सहज । जो
कठिन न हो । ३ सीधे स्वभाव का । सरल चित्त का ।
अकुटिल । ४ अनुकूल । प्रसन्न ।

ऋजुकाय^१—वि० [स०] सीधे शरीरवाला [को०] ।

ऋजुकाय^२—सज्ञा पुं० कश्यप ऋषि [को०] ।

ऋजुव्रत^१—वि० [स०] सही और उचित ढंग से काम करनेवाला ।
सुकर्मी [को०] ।

ऋजुव्रत^२—सज्ञा पुं० इद्र का नाम ।

ऋजुग^१—वि० [स०] अपने आचरण एवं व्यवहार के प्रति ईमानदार ।
सदाचारी [को०] ।

ऋजुग^२—सज्ञा पुं० [स०] १ इपु । तीर । वाण । २ सदाचारी
व्यक्ति [को०] ।

ऋजुता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ सीधापन । टेढ़ेपन का अभाव । २
सरलता । सुगमता । ३ सरल स्वभाव । सिधार्थ । सज्जनता ।

ऋजुनीति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ सदाचार । २ मार्गदर्शन [को०] ।

ऋजुमिताक्षरा—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'मिताक्षरा' [को०] ।

ऋजुरोहित—सज्ञा पुं० [स०] इद्र का सीधा और लाल रंग का
धनुष [को०] ।

पर्या०—इद्रायुध । शक्रधनु ।

ऋजुलेखा—सज्ञा स्त्री० [स०] सीधी रेखा [को०] ।

ऋजुसूत्र—सज्ञा पुं० [स०] जैन दर्शन में वह 'नय' या प्रमाणों द्वारा
निश्चित अर्थ को ग्रहण करने की वृत्ति जो अतीत और
अनागत को नहीं मानती, केवल वर्तमान ही को मानती है ।

ऋज्वी—सज्ञा स्त्री० [स०] १ सरल स्वभाव की तथा सीधी स्त्री । २
ग्रहों की गति या चाल [को०] ।

ऋण^१—सज्ञा पुं० [स०] १ किसी से कुछ समय के लिये कुछ द्रव्य
लेना । व्याज पर मिला हुआ धन । कर्ज । उधार ।

क्रि० प्र०—करना ।—काढ़ना ।—चुकाना ।—देना ।—लेना ।

मुहा०—ऋण उतरना=कर्ज अदा होना । ऋण चढ़ना=कर्ज
होना । जैसे,—उनके ऊपर बहुत ऋण चढ़ गया है । ऋण
चढ़ाना=जिम्मे रूपा निवालना । ऋण पटाना=धीरे धीरे
कर्ज का रूपया अदा होना । ऋण पटाना=धीरे धीरे उधार
लिया हुआ रूपया चुकता करना । जैसे,—हम चार महीनों में
यह ऋण पटा देंगे । ऋण मढ़ना=ऋण चढ़ाना । देनदार
वनाना । जैसे,—'वह हमारे ऊपर ऋण मढ़कर गया है ।'

२ किसी उपकार के बदले में किसी के प्रति आवश्यक या कर्तव्य
रूप से किया जानेवाला कार्य । वह कार्य जिसका दायित्व
किसी पर हो । ३ किसी का किया हुआ उपकार या एहसान ।
४ घटाने या बाकी निकालने का चिह्न (—) (गणित) ।
५ किला । दुर्ग (को०) । ६ भूमि । जमीन (को०) । ७ पानी ।
जल (को०) ।

यो०—ऋणकर्ता, ऋणग्राही=कर्ज लेनेवाला । ऋणव, ऋणदाता,
ऋणदायी=कर्ज चुकता करनेवाला । ऋणमुक्त । ऋण-
मुक्ति=ऋणशुद्धि ।

ऋण^२—वि० खाते, गणित आदि में जो ऋण के पक्ष का हो ।

ऋणग्रस्त—वि० [स०] कर्ज से लदा हुआ [को०] ।

ऋणग्रस्तता—सज्ञा स्त्री० [स०] कर्ज से लद जाने की स्थिति [को०] ।

ऋणच्छेद—सज्ञा पुं० [स०] कर्ज को चुकाना [को०] ।

ऋणत्रय—सज्ञा पुं० [स०] तीन प्रकार का ऋण—देवऋण, ऋषि-
ऋण और पितृऋण [को०] ।

ऋणदान—सज्ञा पुं० [स०] कर्ज चुकाना [को०] ।

ऋणदास—सज्ञा पुं० [स०] ऐसा दास जो उस व्यक्ति की दासता
करता हो जिसने उसका कर्ज चुकता करके उसे खरीद लिया
हो [को०] ।

ऋणनिर्मोक्ष—सज्ञा पुं० [स०] पितृऋण से मुक्ति [को०] ।

ऋणपत्र—सज्ञा पुं० [स०] लेन देन के व्यवहार का पत्र जिसपर
गवाहों के समक्ष ऋण लेने और देने की व्यवस्था लिखी रहती
है । तमस्सुक । रुक्का । दस्तावेज [को०] ।

पर्या०—ऋणलेख्य । ऋणलेख्य पत्र ।

ऋणमत्कुरा—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'ऋणमार्गण' [को०] ।

ऋणमार्गण—सज्ञा पुं० [स०] जिसने कर्जदार से महाजन का रूपया
अदा करने का जिम्मा अपने ऊपर लिया हो । प्रतिभू । जामिन ।

ऋणमुक्त—वि० [स०] जो कर्ज अदा कर चुका हो । उद्धृत । ऋण-
रहित । उ०—तो हमसे धन लेकर आप शीघ्र ही ऋणमुक्त
हूँजिए ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २८८ ।

ऋणमुक्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] कर्ज अदायगी [को०] ।

ऋणमोक्ष—सज्ञा पुं० [स०] कर्ज से छुटकारा । ऋण का चुकता हो
जाना [को०] ।

चुपचाप बैठ रहता है। उ०—क्या बाहर की ठेलापेली ही कुछ कम थी, जो भीतर भी भापो का ऊहापोह मचा।

—मिलन० पृ० १६०।

विशेष—यह बुद्धि का गुण कहा गया है जिसमें किसी विचार को ग्रहण किया जाता है।

अहिनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] भाड़ू। बुहारी [को०]।

अही^१—वि० [सं० उहिन्] ऊहा करनेवाला। तर्क वितर्क करनेवाला। अही^२—सर्व० दे० 'वही'। उद—जिण देसे सज्जण वसइ, तिणि दिसि वज्जउ वाउ। उहाँ लगे मो लगसी, अही लाख पसाउ। डोला०, दू० ७४।

अह्य—वि० [सं०] जो ऊहा करने योग्य हो। तर्क्य। तर्कनीय [को०]।

ऋ

ऋ—एक स्वर जो वर्णमाला का सातवाँ वर्ण है। इसकी गणना स्वरो में है और इसका उच्चारण स्थान सस्कृत व्याकरणानुसार मूर्द्धा है। इसके तीन भेद हैं—ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत। इनमें से भी एक एक के उदात्त, अनुदात्त और त्वरित तीन तीन भेद हैं। इन तीनों भेदों में भी प्रत्येक के अनुनासिक और निरनुनासिक दो दो भेद हैं। इस प्रकार ऋ के कुल अठारह भेद हुए।

ऋजासन—सज्ञा पुं० [सं० ऋज्जासन] मेघ। बादल [को०]।

ऋ^१—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ देवमाता। अदिति। २ निदा। बुराई।

ऋ^२—सज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग [को०]।

ऋकार—सज्ञा पुं० [सं०] 'ऋ' स्वर और उसकी ध्वनि [को०]।

ऋक्^१—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. ऋचा। वेदमन्त्र। २ स्तुति। स्तोत्र। ३ पूजा [को०]। ४ काति। प्रभा। रोचिस् [को०]।

ऋक्^२—सज्ञा पुं० ऋग्वेद।

ऋक्ण—वि० [सं०] आहत। चोट खाया हुआ। क्षत [को०]।

ऋक्तंत्र—सज्ञा पुं० [सं० ऋक्तंत्र] सामवेद का परिशिष्ट भाग [को०]।

ऋक्थ—सज्ञा पुं० [सं०] १ धन। मुक्ता। सोना। ३ दाय धन। विरासत। वसा। किसी सब्जी की सपत्ति का वह भाग जो धर्मशास्त्र के अनुसार मिले। ४ हिस्से की जायदाद। हिस्सा।

ऋक्थग्राह—सज्ञा पुं० [सं०] किसी के द्वारा छोड़ी हुई सपत्ति को प्राप्त करनेवाला व्यक्ति। उत्तराधिकारी। वारिस [को०]।

ऋक्थभाग—सज्ञा पुं० [सं०] १. हिस्सा। दाय। २. सपत्ति वा जायदाद का भाग [को०]।

ऋक्थभागी—सज्ञा पुं० [सं० ऋक्थभागिन] दे० 'ऋक्थग्राह'।

ऋक्थहारी—सज्ञा पुं० [सं० ऋक्थहारिन्] उत्तराधिकारी। वारिस [को०]।

ऋक्सहिता—सज्ञा स्त्री० [सं०] ऋग्वेद के मन्त्रों का संग्रह [को०]।

ऋक्ष—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री ऋक्षी] १ भाल। २. तारा। नक्षत्र। उ०—जनु ऋक्ष सर्वे यहिन्नास भगे। जिय जानि चकोर फंदान ठगे।—राम च०, पृ० १८। ६. मेघ-वप आदि राशि। ४. भिलावा। ५ शोनाक वक्ष। ६. रवितक पर्वत का एक भाग।

ऋक्षगघा—सज्ञा स्त्री० [सं० ऋक्षगन्धा] महाश्वेता। जागली। क्षोर विदारी [को०]।

ऋक्षजिह्व—सज्ञा पुं० [सं०] कूष्ठ का एक भेद। वह पीड़ायुक्त कोष्ठ

जो किनारों पर लाल, बीच में पीलापन लिए काला, छूने में कड़ा और रीछ की जीभ के आकार का हो।

ऋक्षनाथ—सज्ञा पुं० [सं०] १ नक्षत्रों के राजा चंद्रमा। २ भालुओं के सरदार जाववान्।

ऋक्षनेमि—सज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०]।

ऋक्षपति—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ऋक्षनाथ' [को०]।

ऋक्षप्रिय—सज्ञा पुं० [सं०] वृषभ। बैल [को०]।

ऋक्षर—सज्ञा पुं० [सं०] १ पुरोहित। २ कांटा। ३. वर्षा। ४. वाष्प। भाप [को०]।

ऋक्षराज—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ऋक्षनाथ' [को०]।

ऋक्षवान—सज्ञा पुं० [सं०] ऋक्ष पर्वत जो नर्मदा के किनारे से गुजरात तक है। यह रवितक पर्वत की चोटी से उत्पन्न अर्थात् उसी का एक भाग माना गया है।

ऋक्षविडंबी—सज्ञा पुं० [सं० ऋक्षविडम्बिन्] ठग ज्योतिषी [को०]।

ऋक्षविभावन—सज्ञा पुं० [सं०] ग्रहों एवं नक्षत्रों की गति का निरीक्षण [को०]।

ऋक्षहरीश्वर—सज्ञा पुं० [सं०] रीछ और बदरो का राजा। सुग्रीव [को०]।

ऋक्षा—सज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तर दिशा [को०]।

ऋक्षी—सज्ञा स्त्री० [सं०] रीछ की मादा। मादा भालू [को०]।

ऋक्षोक—वि० [सं०] रीछ के समान मांस खानेवाला [को०]।

ऋक्षोका—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक अपदेवी [को०]।

ऋक्षेश—सज्ञा पुं० [सं०] हिमाशु। चंद्रमा [को०]।

ऋक्षि^१—सज्ञा पुं० [सं० ऋक्षिदे० 'ऋक्षि'] उ०—गाधि के नद तिहारे गुरु जिनते ऋक्षि पेख किए उवरे हैं।—राम० च०, पृ० ४२।

ऋग^१—सज्ञा पुं० [सं० ऋग्] दे० 'ऋग्वेद'। उ०—(क) पृथ्वी परधो न छठी छमत, ऋगु, जजुर, अथर्वन, साम को।—तृलसी ग्र०, पृ० ५३७। (ख) न हो सतोप इमपर भी तो उपमा तीसरी लेलो। युगल पदधारिणी त्रिगुणात्मिका ऋग की ऋचा समझे।—कविता को०, भा० २, पृ० २३४।

ऋग्वेद—सज्ञा पुं० [सं०] चार वेदों में से एक। प्रथम वेद। वि० दे० 'वेद'।

ऋग्वेदी—वि० [सं० ऋग्वेदिन्] ऋग्वेद का जानने या पढ़नेवाला।

ऋचा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. वेदमन्त्र जो पद्य में हो। २ वेदमन्त्र।

ऊपरण—सज्ञा पुं० [सं०] १ चीता या चित्रक । २ काली मिर्च । ३. सोठ । शुठी । ४ पिप्पली । ५ पिप्पलीमूल । ६ चव्य [को०] ।

ऊपद(उ)—सज्ञा स्त्री० [सं० ओषधि] दे० 'ओषधि', 'ओषधी' । उ०—काहूरक पीवी न ऊपद खाई, दांत कष्ट बढ्यो गोरही ।—वी० रासो, पृ० ६४ ।

ऊपधी(उ)—सज्ञा स्त्री० [सं० ओषधि] दे० 'ओषधि', 'ओषधी' । उ०—ऊपधी सब्ब मनि सब्ब घात । वर वृष्य लता फल पुद्ग पात ।—पृ० २०, १।२३३ ।

ऊपर^१—सज्ञा पुं० [सं०] वह भूमि जहाँ रेह अधिक हो और कुछ उत्पन्न न होता हो । ऊसर ।

ऊपर^२—वि० खारा । क्षार [को०] ।

ऊपरज—सज्ञा पुं० [सं०] नोनी मिट्टी से तैयार किया हुआ नमक । २ एक प्रकार का चुवक [को०] ।

ऊपरना(उ)—क्रि० प्र० [हि० उसरना] हटना । उतरना । अलग होना । उ०—तौ पाई जरिया सिर पर धरिया विस ऊपरिया तन तिरिया ।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० २३० ।

ऊपा—सज्ञा पुं० [सं०] १ प्रभात । सवेरा । २ अरुणोदय । पी फटने की लाली । ३ वाणासुर की कन्या जो अनिरुद्ध को व्याही गई थी ।

ऊपाकाल—सज्ञा पुं० [सं०] प्रातःकाल । सवेरा । तडका ।

ऊपापति—सज्ञा पुं० [सं०] श्री कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध ।

ऊपी—सज्ञा स्त्री० [सं०] नोना लगी हुई मिट्टी । रेहवाली जमीन [को०] ।

ऊष्म^१—सज्ञा पुं० [सं०] १ गर्मी । २ आप । ३ गरमी का मौसम ।

ऊष्म^२—वि० गर्म ।

ऊष्मज^१—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ऊष्मज' । उ०—ऊष्मज खान विष्णु ने उत्पन्न किए ।—कवीर मं०, पृ० ४० ।

ऊष्मज^२—वि० [सं०] १. गर्मी में उत्पन्न । २ गर्मी से उत्पन्न होनेवाला ।

ऊष्मप—सज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि । २ एक पितृवर्ग [को०] ।

ऊष्मवर्ण—सज्ञा पुं० [सं०] 'श, प, स, ह' ये अक्षर ऊष्म कहलाते हैं ।

विशेष—शायद इस कारण कि इनमें उच्चारण के समय मुँह से गरम हवा निकलती है ।

ऊष्मा—सज्ञा स्त्री० [सं० ऊष्मन्] १ ग्रीष्म काल । २ तपन । गर्मी । ३ भप । ४ आवेश । क्रोध [को०] ।

ऊष्मायण—सज्ञा पुं० [सं०] गरमी का मौसम [को०] ।

ऊसन^१—सज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा । जिससे तेल निकलता है ।

विशेष—यह सरसो की तरह जो और गेहूँ के साथ बोया जाता है और इनमें से तेल निकलता है जो जलाने के काम में आता है । इसकी खली चोपायो को दी जाती है । इसे जेवा और तरमिरा भी कहते हैं ।

ऊसन^२(उ)—वि० दे० 'उष्ण' । उ०—सीत वायु ऊसन नहि सरवत काम कुटिल नहि होई ।—रं० वानी, पृ० ११ ।

ऊसन^३—वि० [सं० अवसन्त] आलसी । अनश्वेष्ट । उ०—करहा वामन रूप करि, चिह्न चलणें पग पूरि । तू थाकट, हू ऊसनउ, भेइ भारी घर इरि ।—ढोला०, दू० ४६७ ।

ऊसर^१—सज्ञा पुं० [सं० ऊपर] वह भूमि जिसमें रेह अधिक हो और कुछ उत्पन्न न हो । उ०—ऊसर वरसे तृण नहि जामा ।—तुलसी (शब्द०) ।

मुहा०—ऊसर में कमल खिलाना = असंभव कार्य को संभव कर दिखाना । उ०—वोज को धूल में मिलाकर भी, जो नहीं धूल में मिता देते । ऊसरो में कमल खिला देना, वे हँसी खेल हैं समझ लेते ।—चुमते०, पृ० ८ ।

ऊसर^२—वि० (भूमि) जिसमें तृण या पौधा न उत्पन्न हो ।

ऊससना(उ)—क्रि० प्र० [मं० उच्छ्वास > हि० 'उसास' से] उच्छ्वसित होना । आनंदित होना । उ०—ऊससे धरै उछाह, चाँप बाण धरे चाह । रघु०, क०, पृ० ७६ ।

ऊसार(उ)—सज्ञा पुं० [मं० उपशाल] दे० 'ओसार' । उ०—पाइयो ऊसार तेइयो छइ राई, छानी उलगी माई सूँ कही ।—वी० रासो, पृ० ८३ ।

ऊसास(उ)—सज्ञा पुं० [हि० उसास] दे० 'उसास' । उ०—ते ऊसास अग्नि की उषी । कुँवरि क देवी ज्वालामुखी ।—नंद० ग्रं०, पृ०, १३४ ।

ऊसे(उ)—क्रि० वि० [हि०] वैसे । उस तरह के । उ०—साहिब सेती रहो सुखरू आतम बखसे ऊसे से ।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० २३ ।

ऊह^१—अव्य० [हि०] १ बलेश या दुःखसूचक शब्द । ओह । २ विस्मयसूचक शब्द ।

ऊह^२—सज्ञा सं० पुं० १ अनुमान । विचार । उ०—सँग सवा लाख सवार । गज त्योही अमित तयार । वह सुतर प्यादे जूह । कवि को कहै करि ऊह ।—रघुराज (शब्द०) । २ तर्क । दलील । ३ परिवर्तन । फेरफार (को०) । ४ परीक्षा (को०) । ५ अध्याहार द्वारा अनुक्त पद की पूर्ति करना (को०) । ६ तर्क की युक्ति । तर्कयुक्ति (को०) ।

ऊह^३—सज्ञा स्त्री० [सं०] किवदनी । अफवाह ।

ऊहन—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० ऊहनीय] १ तर्क । दलील । २ परिवर्तन । बदलाव (को०) । ३ सुधार (को०) ।

ऊहनी—सज्ञा स्त्री० [को०] [सं०] भाड़ । बढनी [को०] ।

ऊहनीय—वि० [सं०] १ तर्क करने योग्य । तर्कनीय । विचार योग्य । २ परिवर्तन या सुधार योग्य (को०) ।

ऊहाँ(उ)—क्रि० वि० [हि० 'तहाँ' के वजन पर] दे० 'उहाँ' । उ०—तब हरिवंश जी ऊहाँ दडवत करि परदेश के सर्व समाचार कहैं—वो सो वावण०, भाग १, पृ० ७६ ।

ऊहा—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ऊड़' ।

ऊहापोह—सज्ञा पुं० [सं० ऊह + अपोह] तर्क वितर्क । सोचविचार । जैसे,—इस कार्य की साधन सामग्री मेरे पास है या नहीं, अश्वत्थ पुरुष इसी ऊहापोह में कार्य का समय व्यतीत करके

छिनक में करो, भरो, सहारो, । ऊर्ननामि लौ फिर विस्तारो ।
—नंद ग्रं०, पृ० २२६ ।

ऊर्मी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. लहर । तरंग । उ०—ऊर्मि धूर्णित
रे, मृत्यु महान, खोजता कहाँ कहाँ नादान ।—गीतिका,
पृ० २७ ।

यौ०—ऊर्मिलाली = समुद्र ।

२ पीडा । दुःख ।

विशेष—ये छह हैं । जैसे,—एक मत से सर्दी, गर्मी, लोभ, मोह,
भूख, व्यास । दूसरे मत से भूख, व्यास, जरा मृत्यु, शोक,
मोह ।

३ छह की सख्या । ४. शिकन । कपड़े की सलोट । ५ धारा ।
प्रवाह या वेग (को०) । ६ पक्ति । क्रम (को०) । ७ प्रकाश ।
ज्योति (को०) ।

ऊर्मिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ लहर । तरंग । २ अंगूठी । मुद्रिका ।
३. दुःख (किसी खोई हुई वस्तु के लिये) । ४ मधुमक्खी की
भनमनाहट । ५ कपड़े की सलोट (को०) ।

ऊर्मिमान—वि० [सं० उर्मिमत] १ ऊर्मिल । लहरो से युक्त ।
तरंगायित । २. घुँघराले (केश) (को०) ।

ऊर्मिमाला—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] १ तरगावली । लहरो का समूह ।
२ एक प्रकार का छद (को०) ।

ऊर्मिमुखर—वि० [हिं० ऊर्मि + मुखर] लहरो से ध्वनित । लहरो की
कलकल से गुञ्जित । उ०—क्या वही तुम्हारा देश, ऊर्मि-
मुखर इस सागर के उस पार कनक किरण से छाया प्रस्ता-
चल पश्चिम द्वार ।—प्रनामिका, पृ० ५६ ।

ऊर्मिल—वि० [सं०] लहरीला । तरंगयुक्त । तरंगित । उ०—है
ऊर्मिल जल निश्चलत्प्राण पर शतदल ।—तुलसी०, पृ० १ ।

ऊर्मिला^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मण के पत्नी का नाम ।

ऊर्मिला^२—वि० दे० 'ऊर्मिल' । उ०—बहु चली सलिला अनवसित,
ऊर्मिला, जैसे उतारी ।—प्रचर्ना, पृ० १०४ ।

ऊर्मी—वि० [सं० उर्मिन्] तरंगमय । तरंगित (को०) ।

ऊर्म्य—वि० [सं०] ऊर्मिल । तरंगायित । लहराता हुआ (को०) ।

ऊर्म्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] रात्रि । रात (को०) ।

ऊर्व^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र । २ मेघ । बादल । ३. सरोवर ।
ताल । ४ कासार । हृन्त । भील । ५. वड़वानल । ६ पशु-
शाला । ७ पितरो का एक वर्ग (को०) ।

ऊर्व^२—वि० विस्तृत । बड़ा (को०) ।

ऊर्वरा^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] दे० 'ऊर्वरा' ।

ऊर्वरा^२—वि० दे० 'ऊर्वरा' ।

ऊर्वशी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ऊर्वशी' ।

ऊर्व्यंग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ऊर्व्यङ्ग] छत्रक । कुकुरमुत्ता (को०) ।

ऊर्पा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] देवताड नामक घास (को०) ।

ऊलग^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चाय ।

ऊलग^२—वि० [सं० उन्नमन] उलग । नगा ।

२-१७

'ऊलवना'—वि० [सं० अवलम्ब, प्रा० श्रोलव या ऊलव]
अवलम्बित करके । सहारा लिए हुए । उ०—ऊनवे सिर
हत्वडा, चाहदी रसलुध विरह महाधण ऊमटथऊ याह
निहालड मुध ।—ढोला०, दू० १५ ।

ऊलजलूल—वि० [देश०] १ असवद्ध । वेसिरपैर का । अड बढ ।
वेठिकाने का । अनुचित । उ०—जो मैं जानूँगा कि तूने मून के
किसी ऊलजलूल काम मे रुपये धूल किए तो फिर उमर भर
तेरी वात न मानूँगा । शिवप्रसाद (शब्द०) । २ अनाडी ।
अहमक । वसमभ । जैसे,—वह बड़ा ऊलजलूल आदमी है ।
३ वेगदव । अश्लिष्ट ।

ऊलना—वि० [सं० उल्लया उत् + लृत्] १ कूदना । उछलना ।
अनदित होने के कारण उछलना, कूदना । ३ उमंगित होना ।
उ०—साज सज्जि चलयी सुफुनि जनु ऊली दरियाव ।—
पृ० रा० ६१।६२० । ४ अकुलना । ५ आतुर होना ।

ऊला—वि० [हिं० ऊलना] उछाल । वेग । उ०—ओर भी बढ़ाये पैग
दोनो ओर ऊले से ।—साकेत, पृ० २७३ ।

ऊलर^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] कश्मीर देश की एक भील ।

ऊलर^२—वि० [हिं०] झुका हुआ । घिरा हुआ । उ०—घुमंड
घटा उलर होई आई, दामिनि दमक डरावे । सत० वाणी०,
भा० २, पृ० ७३ ।

ऊलहना—वि० [सं० उत् + लृत्, प्रा० उल्लभ, उल्लर]
१ विकसित होना । २ दे० 'उलसना' । उ०—दोप वसत को
दीजे कहा, उलही न करील की डारन पाती ।—पद्माकर
ग्रं०, पृ० २३८ ।

ऊला—वि० [हिं० ऊरे] इधर । इस ओर । उ०—अँ राठोड
हुवँ ज्याँ आगँ मिडताँ ऊला पैला भागँ ।—रा०, ह०, पृ० ६० ।

ऊलालना—वि० [सं०] उछालना । उड़ाना । उ०—आडा
डूँगर वन घणा ताह मिलीजइ केम । उलालीजइ मूँठ मरि
मन सीचाणउ जेम ।—ढोला०, दू० २१२ ।

ऊली—वि० [हिं० ऊलना = उछलना = अस्विर] छगी । उ०—
छछछ छाया देपनि भूली । छल बल करें छलंगी ऊली ।—
सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० २२१ ।

ऊलूक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उलूक' ।

ऊवडना—वि० [हिं०] दे० 'उमडना' । उ०—ऊजलियाँ धाराँ
ऊवडियो परनाले जल रुहिर पडे ।—वेलि०, दू० १२० ।

ऊवावाई—वि० [देश०] ऊटपटांग । व्यर्थ । उ०—ऊपर
तेरे पहिचानै, ऊवावाई जगतहि जानै ।—सुंदर ग्रं०, भा०
१, पृ० २१६ ।

ऊप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. ऊसर भूमि । रेहवाली भूमि । २ नोनी
मिट्टी । लोना मिट्टी । ३. अम्ल । क्षार । ४. दरार । छेद ।
५. कान का छेद । ६. मलय पर्वत । ७ उपा । भोर । ८.
वीर्य (को०) ।

ऊपक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ प्रत्यूष । भोर । २ नमक । ३ काली
मिचं (को०) ।

बल खड़े होकर तप करते हैं । २ शरभ नामक सिंह जिसके आठ पैरों में से चार पैर ऊपर की ओर होते थे ।

ऊर्ध्वताल—सज्ञा पुं० [सं०] सगीत में एक ताल विशेष ।

ऊर्ध्वतित्त—सज्ञा पुं० [सं०] चिरायता ।

ऊर्ध्वदृष्टि—वि० [सं०] जिसकी दृष्टि ऊपर की ओर हो । महत्वाकाक्षी ।

ऊर्ध्वदृष्टि—सज्ञा स्त्री० योग की एक क्रियाविशेष जिसमें दृष्टि ऊपर की ओर ले जाकर त्रिकुटी पर जमाते हैं [को०] ।

ऊर्ध्वदेव—सज्ञा पुं० [सं०] विष्णु । नारायण ।

ऊर्ध्वदेह—सज्ञा स्त्री० [सं०] मृत्यु के पश्चात् मिलनेवाला सूक्ष्म या लिङ्गशरीर को ।

ऊर्ध्वद्वार—सज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मद्वार । दसवीं द्वार । ब्रह्मांड का छिद्र ।

विशेष—कहते हैं, इसमें प्राण निकलने पर मुक्ति होती है ।

ऊर्ध्वनयन—सज्ञा पुं० [सं०] शरभ नामक जंतु ।

ऊर्ध्वनयन—वि० १ जिसके नेत्र ऊपर की ओर हो । २. महत्वाकाक्षी [को०] ।

ऊर्ध्वनेत्र—वि० [सं०] १ जो ऊपर देख रहा हो । २ महत्वाकाक्षा-वाला [को०] ।

ऊर्ध्वपाद—सज्ञा पुं० [सं०] शरभ नामक पौराणिक जंतु ।

विशेष—इसके आठ पैर माने गए हैं जिनमें से चार ऊपर की ओर होते हैं ।

ऊर्ध्वपुङ्ख—सं० पुं० [सं० उर्ध्वपुङ्ख] खड़ा तिलक । वंणुवी तिलक ।

ऊर्ध्वबाहु—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के तपस्वी जो अपने एक बाहु को ऊपर की ओर उठाए रहते हैं । वह बाहु सूखकर बेकाम हो जाता है ।

ऊर्ध्ववृहती—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक वैदिक छंद ।—प्रा० भा० पृ०, पृ० १७२ ।

ऊर्ध्वमंडल—सज्ञा पुं० [सं० उर्ध्वमंडल] वायुमंडल का ऊपरी भाग, जो पृथ्वीतल से २० मील की ऊँचाई तक माना जाता है [को०] ।

ऊर्ध्वमथी—वि० [सं० उर्ध्वमन्यु] १ जो अपने वीर्य को गिरने न दे । स्त्रीप्रसंग से वचनेवाला । ऊर्ध्वरेता ।

ऊर्ध्वमथी—सज्ञा पुं० ब्रह्मचारी ।

ऊर्ध्वमुख—सज्ञा पुं० [सं०] अग्नि । आग ।

ऊर्ध्वमुख—वि० जिसका मुँह ऊपर की ओर हो ।

ऊर्ध्वमूल—सज्ञा पुं० [सं०] संसार । दुनिया । जगत् ।

ऊर्ध्वमूल—वि० जिसकी जड़ ऊपर की ओर हो ।

ऊर्ध्वरेखा—सज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार रामकृष्ण आदि विष्णु के अवतारों के ४८ चरणचिह्नों में से एक चिह्न ।

विशेष—झंगूटे और झंगूटे के निकटवाली झंगुली के बीच से निकलकर यह रेखा सीधे ऊपर लंबे आकार में एंडी के मध्य भाग तक गई हुई मानी जाती है ।

ऊर्ध्वरेता—वि० [सं० उर्ध्वरेतस] जो अपने वीर्य को गिरने न दे । ब्रह्मचारी । स्त्रीप्रसंग से परहेज करनेवाला ।

ऊर्ध्वरेता—सज्ञा पुं० १ महादेव । २ भीष्म पितामह । ३. हनुमान । ४ सनकादि । ५ सन्यासी ।

ऊर्ध्वलिङ्गी—सज्ञा पुं० [सं० उर्ध्वलिङ्गिन्] १ शिव । महादेव । २. ऊर्ध्वरेता । ब्रह्मचारी ।

ऊर्ध्वलोक—सज्ञा पुं० [सं०] १ आकाश । २ वंकुठ । स्वर्ग ।

ऊर्ध्ववात—सज्ञा पुं० [सं०] १ अधिक डकार आने का रोग । २ शरीर के ऊपरी भाग में रहनेवाला वायु (को०) ।

ऊर्ध्ववायु—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ डकार । २ शरीर के ऊपरी भाग में रहनेवाली वायु (को०) ।

ऊर्ध्वशायी—वि० [सं० उर्ध्वशायिन्] ऊपर की ओर मुँह करके सोनेवाला ।

ऊर्ध्वशायी—सज्ञा पुं० शिव । महादेव ।

ऊर्ध्वशोधन—सज्ञा पुं० [सं०] वमन । कं [को०] ।

ऊर्ध्वश्वास—सज्ञा पुं० [सं०] १ ऊपर की चढ़ती हुई साँस । उल्टी साँस । २ श्वास की कमी या तपी ।

क्रि० प्र०—चलना ।—लगना ।

ऊर्ध्वसानु—वि० [सं०] १ अधिकाधिक ऊपर जानेवाला । २ आगे निकल जानेवाला ।

ऊर्ध्वसानु—सज्ञा पुं० पर्वत की चोटी । पर्वतशिखर ।

ऊर्ध्वस्थ—वि० [सं०] जो ऊपर हो । उच्च [को०] ।

ऊर्ध्वस्थिति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अश्व का शिक्षण । घोड़ा निकालना या फेरना । २ अश्व की पीठ । ३ उच्चता । उदात्तता । ४ उत्थान । समुत्थान । ५ सीधा खड़ा होना । खड़े होने की स्थिति [को०] ।

ऊर्ध्वस्रोता—वि० [सं०] स्त्री प्रसंग से वचनेवाला । ऊर्ध्वरेता । ब्रह्मचारी [को०] ।

ऊर्ध्वर्ग—सज्ञा पुं० [सं० उर्ध्वर्ग] शरीर का ऊपरी भाग । सिर । मूँह । मस्तक ।

ऊर्ध्वर्गपण—सज्ञा पुं० [सं०] ऊपर की ओर का खिंचाव ।

ऊर्ध्वर्ग्यन—सज्ञा पुं० [सं०] १ ऊपर की ओर गमन । २ ऊपर की ओर उड़ने का कार्य । ३ स्वर्ग जाने का मार्ग [को०] ।

ऊर्ध्वरोह—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ऊर्ध्वरोहण' ।

ऊर्ध्वरोहण—सज्ञा पुं० [सं०] ऊपर की ओर चढ़ना । २ स्वर्ग-रोहण । स्वर्गगमन । ३ मरना । देहात । इतकाल ।

ऊर्ध्व—क्रि० वि० [सं० उर्ध्व] दे० 'ऊर्ध्व' ।

ऊर्ध्व—क्रि० वि० [सं०] दे० 'ऊर्ध्व' ।

ऊर्ध्व—वि० दे० 'ऊर्ध्व' ।

ऊर्ध्वदृग्—क्रि० वि० [सं० ऊर्ध्वदृक्, ऊर्ध्वदृग्] आँख ऊपर किए हुए या उठाए हुए । उ०—ऊर्ध्वदृग् गगन में देखते मुक्ति मणि । —गीतिका पृ० २० ।

ऊर्ध्व—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक विशेष प्रकार की प्राचीन नौका जो ३२ हाथ लंबी, १६ हाथ चौड़ी और १६ हाथ ऊँची होती थी ।

ऊर्ध्वनाभि—सज्ञा पुं० [सं० 'ऊर्ध्वनाभि'] दे० 'ऊर्ध्वनाभि' । उ०—

ऊर्ध्वस्तम्भ—संज्ञा पुं० [सं० ऊर्ध्वस्तम्भ] वात का एक रोग जिसमें पैर जकड़ जाते हैं ।

ऊर्ध्वस्तम्भा—संज्ञा स्त्री० [सं० ऊर्ध्वस्तम्भा] केले का पेड़ [को०] ।

ऊर्ध्व' ७—संज्ञा पुं० [सं० ऊर्ध्व] दे० ऊर्ध्व । उ०—नीवी वंघन दृढ कै धरै । ऊर्ध्व जमन बाँधि इव करै ।—नद० ग्र०, पृ० १४६ ।

ऊर्ध्व^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] ऐल नाम की कँटीली लता । अलई ।

ऊर्ध्वभ्रू^१—संज्ञा पुं० [सं०] ऊर्ध्व से उत्पन्न वंश [को०] ।

ऊर्ध्वभ्रू^२—वि० [सं०] जो ऊर्ध्व या जाँघ से उत्पन्न हो [को०] ।

ऊर्ध्व' १—वि० [हिं० श्रोर] इधर । पहले । उ०—अथ श्री गुसाई की सेवकिनी एक ब्राह्मणी, उज्जैन ते चार कोस ऊरे में एक ग्राम है ।—दो नौ वावन०, भा० १, पृ० ३१३ ।

ऊर्ध्व^१—वि० [सं० ऊर्ध्व, ऊर्ध्व] बलवान् । शक्तिमान् । बली ।

ऊर्ध्व^२—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० ऊर्ध्वस्व, ऊर्ध्वस्वी] १. बल । शक्ति । २. कातिक मास । ३. एक काव्यालंकार जिसमें सहायकों के घटने पर भी अहंकार का न छोड़ना वर्णन किया जाता है । उ०—को वपुरा जा मिल्यो है विभीषण हूँ कुल दूषण जीवैगो को लौं । कुंभ करन मरयो मधवा रिपु तोऊ कहा न डरो चम सौं । श्री रघुनाथ के गावन सुदरि जानहु तू कुशलात न तो लौं । शाल सब दिगपालन को कर रावण के करवास है जो लौं । (इसमें भाई और पुत्र के न रहने पर भी रावण अहंकार नहीं छोड़ता) ।—केशव (शब्द०) । ४. अन्न का सार-भूत रस [को०] । ५. पानी [को०] । ६. आहार । भोजन [को०] । ७. जीवन [को०] । ८. श्वास [को०] । ९. प्रयत्न । उद्योग [को०] । १०. उत्साह [को०] । ११. प्रजनन शक्ति [को०] ।

ऊर्ध्वमेव—वि० [सं०] अत्यंत प्रतिभाशाली । अत्यंत चतुर [को०] ।

ऊर्ध्वस्—संज्ञा पुं० [सं०] १. बल । शक्ति । पराक्रम । २. उमग । उत्साह । ३. भोज्य वस्तु । आहार ।

ऊर्ध्वस्व—वि० [सं०] १. बलवान् । बली । शक्तिमान् । २. श्रेष्ठ । उ०—करा रहे ऊर्ध्वस्व बल से नित्य नवल कौशल का मेल । साध रहे हैं सुभट विकट बहु भय विस्मय साहस के खेल ।—साकेत, पृ० ३७५ । ३. तेजस्वी । तेजयुक्त [को०] ।

ऊर्ध्वस्वान्—वि० [सं० ऊर्ध्वस्व] १. ऊर्ध्वस्वी । २. रसीला । ३. वाद्य-युक्त [को०] ।

ऊर्ध्वस्वित—वि० [सं०] शक्तिशाली । श्रेष्ठ । कातियुक्त । उ०—मैं तुम्हें पवित्र, उज्ज्वल और ऊर्ध्वस्वित पाता हूँ ।—ककाल, पृ० १११ ।

ऊर्ध्वस्वी^१—वि० [सं० ऊर्ध्वस्विन्] १. बलवान् । शक्तिमान् । २. तेजवान् । ३. प्रतापी ।

ऊर्ध्वस्वी^२—संज्ञा पुं० [सं०] एक काव्यालंकार । जहाँ रसाभास या भावाभास स्थायी भाव का अथवा भाव का अंग हो ऐसे वर्णन में यह अलंकार माना जाता है ।

ऊर्ध्व^३—संज्ञा स्त्री० [सं० ऊर्ध्व] १. शक्ति । बल । २. आहार । ३. उत्पत्ति । ४. दक्ष की पुत्री का नाम जो वशिष्ठ के साथ व्याही गई थी [को०] ।

ऊर्ध्वजित—वि० [सं०] १. शक्तिशाली । बलवान् । २. महान् । प्रतापी । ३. गौरवशाली । योग्य । उदात्तचरित्र । ४. गभीर ।

उ०—दृश्य मेवाड के पवित्र वलिदान कों ऊर्ध्वजित आलोक आँख छोलता या सबकी ।—लहर, पृ० ६६ ।

ऊर्ध्व^४—वि० [सं०] जहाँ खाने पीने की वस्तुएँ अत्यधिक हो [को०] ।

ऊर्ध्व^५—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऊन । भेड़ या बकरी के बाल ।

ऊर्ध्वनाभ—संज्ञा पुं० [सं०] मकड़ी । लूता ।

ऊर्ध्वनाभि—संज्ञा पुं० [सं०] मकड़ी ।

ऊर्ध्वपट—संज्ञा पुं० [सं०] मकड़ी [को०] ।

ऊर्ध्वप्रद—वि० [सं०] ऊन की तरह मुलायम [को०] ।

ऊर्ध्व^६—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ऊन । २. चित्ररथ नामक गधर्व की स्त्री । ३. भौहों के मध्य की भौरी [को०] ।

ऊर्ध्वपिण्ड—संज्ञा पुं० [सं० ऊर्ध्वपिण्ड] ऊन का गोला [को०] ।

ऊर्ध्वयु—संज्ञा पुं० [सं०] १. कवल । ऊनी वस्त्र । २. एक गंधर्व का नाम । ३. भेंडा [को०] । ४. मकड़ा [को०] ।

ऊर्ध्वविल—वि० [सं०] ऊनी [को०] ।

ऊर्ध्ववान्—वि० [सं० ऊर्ध्ववत्] ऊनी [को०] ।

ऊर्ध्वसूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] ऊन का धागा [को०] ।

ऊर्ध्वत—वि० [सं०] ढका हुआ [को०] ।

ऊर्ध्व^७—संज्ञा पुं० [सं०] १. अनाज नागने का पात्र । २. बीर । ३. राक्षस [को०] ।

ऊर्ध्व^८—क्रि० वि० [सं०] ऊपर । ऊपर की ओर ।

ऊर्ध्व^९—वि० १. ऊँचा । ऊपर का । ऊपर की ओर किए हुए । २. खड़ा । ३. बिखराए हुए (बाल) [को०] ।

विशेष—हिंदी में धौगिक शब्दों में ही यह प्रायः आता है जैसे, उर्ध्वगमन, उर्ध्वरेता, उर्ध्ववास ।

ऊर्ध्व^{१०}—संज्ञा पुं० [सं०] १. दस दिशाओं में से एक । सिर के ठीक ऊपर की दिशा । २. उच्चता । ऊँचाई [को०] ।

ऊर्ध्व^{११}—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मृदग [को०] ।

ऊर्ध्वकण्ठ—वि० [सं० उर्ध्वकण्ठ] उठी हुई गरदनवाला [को०] ।

ऊर्ध्वक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मृदग ।

ऊर्ध्वकर्ण—वि० [सं०] ऊपर को उठे हुए या खड़े कानवाला [को०] ।

ऊर्ध्वकाय—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर का ऊपरी भाग [को०] ।

ऊर्ध्वकेश—वि० [सं०] १. खड़े बालोंवाला । २. बिखरे-बालोंवाला [को०] ।

ऊर्ध्वक्रिया—संज्ञा स्त्री० [म०] उच्च पद-प्राप्ति के लिये कार्य या क्रिया ।

ऊर्ध्वग—वि० [सं०] १. ऊपर को जानेवाला । २. चठना हुआ । जो ऊपर को गया हो [को०] ।

ऊर्ध्वगुलि—वि० [सं० उर्ध्वगुलि] उंगलियों को ऊपर किए हुए [को०] ।

ऊर्ध्वगति^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ऊपर की ओर चाल । २. मुक्ति ।

ऊर्ध्वगति^२—वि० ऊपर की ओर जानेवाला [को०] ।

ऊर्ध्वगामी—वि० [सं० उर्ध्वगामिन्] १. ऊपर जानेवाला । २. मुक्त । निर्वाणप्राप्त ।

ऊर्ध्वचरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार के तपस्वी जो सर के

ऊभा—वि० [हि० ऊभना = खड़ा होना] खड़ा। स्थित। उ०—परी करे औ ऊभा धावे, बाहर नीतर दोडा आवे।—कवीर० सा०, पृ० ५४२।

ऊभासांसी—सज्ञा स्त्री [हि० ऊवना + सांस अथवा ऊभ + सास] दम घुटना। सांस फूलना। ऊवना।

ऊभि०—वि० [हि० ऊभ] दे० 'ऊभ'। उ०—निसँसि ऊभि मरि लोन्हेसि स्वांसा। भई अधार जियन कै आसा।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २८८।

ऊमती०—वि० [स० उन्मत्त] १ उन्मत्त। पागल। विक्षिप्त। २ विचारहीन। उ०—चिन्हानी बुलि पति सो, ऊमती वर-जत। वड गुरजन वती सुनी सो दिट्ठी दिपि कत।—पृ० रा०, ६१। १८५१।

ऊमक०—सज्ञा स्त्री [स० उमग] भोक। उठान। वेग। उ०—इक ऊमक अरु दमक सहारै। लेहि सांस जब बीसक मारै।—लाल (शब्द०)।

ऊमट०—सज्ञा पुं [देश०] क्षत्रियो का एक भेद। उ०—ऊमट अनेक अवनी निधान। अरवीन चढे आए अमान।—सूदन(शब्द०)।

ऊमटना०—क्रि० स० [हि० उमटना] दे० 'उमटना'। उ०—विरह महाघण ऊमटघर, याह निहालइ मुघ्य।—ढोला० दू० १५।

ऊमना०—क्रि० घ० [देश०] उमडना। उमगना। उ०—वरसत भूमि भूमि उनए वादर महि कहूँ चूमि चूमि। निसरि परी साँपिनि सी नदिया वेगि चली ऊमि ऊमि।—देवस्वामी (शब्द०)।

ऊमर^१—सज्ञा पुं [स० उदुम्बर] १ गूलर। उदुवर। २ वनियो की एक जाति।

ऊमर^२—सज्ञा स्त्री [घ० उम्र] दे० 'उम्र'। उ०—दोडे ऊमर पटका देती, छित जिमि वादल छाया।—रघु० रू०, पृ० १६।

ऊमरा—सज्ञा पुं [हि० ऊमर] दे० 'ऊमर'।

ऊमरि०—सज्ञा पुं [हि० ऊमर] दे० 'ऊमर'। उ०—तरु ऊमरि को आसन अनूप। यह रचित हेय मय विश्वरूप।—राम० घर्म०, पृ० १५५।

ऊमस—सज्ञा स्त्री [हि० ऊमस] दे० 'उमस'।

ऊमहना—क्रि० अ० [हि० उमहना] दे० 'उमहना'। उ०—पाहिब मारु ऊमह्या, खोडइ होइ रहइ।—ढोला० दू०, ३१७।

ऊमा—सज्ञा [हि०] दे० 'उवी'।

ऊमरि—सज्ञा स्त्री [घ० उम्र] दे० 'उम्र'। उ०—वीती ऊमरि मोर वीती निसि न वियोग।—नट०, पृ० १०४।

ऊमी—सज्ञा स्त्री [स० उम्बी] जो या गेहूँ की हरी वाल। दे० 'उवी'।

ऊर^१—सज्ञा पुं [देश०] पञ्जाब में घान बोलने की एक रीति। जड़हन रोपना।

विशेष—वेहन के पीछे जब एक महीने के हो जाते हैं तब उन्हें पानी से भरे हुए खेत में तुर दुर पर बैठते हैं।

ऊर^२०—वि० हि० श्रीर] दे० 'श्रीर'। उ०—गरव करि ऊरौ उर सामग्यो राव, मो सरीखा नहीं ऊर भुवाल।—वी० रासो, पृ० ३२।

ऊर^३—सज्ञा पुं [हि० श्रीर] श्रीर। अत।

ऊरज^१०—सज्ञा पुं [स० उरोज] दे० 'उरोज'। उ०—तपती, रमनी सुदरी, तनु ऊरज पुनि सोइ। तिय तोसी तिहुँ लोक में रची विरचि न कोइ—नद० ग्र०, पृ० ८६।

ऊरज^२०—सज्ञा पुं [स० उर्ज] दे० 'ऊर्ज'।

ऊरण^१०—सज्ञा पुं [स० आवरण] आवरण वस्त्र। कपडा। उ०—सुभ ऊरण जघ सुनोमय। पदकन्त श्रभूषण सज्ज लय।—प० रासो, पृ० १६४।

ऊरण^२०—वि० [हि० ऊरण] दे० 'ऊरण'। उ०—करसू जग ऊरण करण पर दुख हरण पमार।—बांकी० ग्र०, पृ० ७७।

ऊरघ०—वि० [सं० उर्ध्व] दे० 'ऊर्ध्व'।

ऊरघरेता०—वि० [सं० ऊर्ध्वरेतस] दे० 'ऊर्ध्वरेता'। उ०—ग्रह समुभाये योग ही बहु भाँति बहु अग। ऊरघरेता ही कही जोतन विद अनग।—भक्ति०, पृ० ५७।

ऊरम—सज्ञा स्त्री [देश०] आत्म कलाओं में से एक। उ०—ऊरम बोलिये मन धूरम बोलिये पवन।—गोरख०, पृ० २०४।

ऊरमधूरम—वि० [हि० ऊरम + धूरम] प्रसन्न। प्रसन्न। उ०—ऊरम-धूरम जोती भाला।—गोरख०, पृ० २४१।

ऊरमी—सज्ञा स्त्री [सं० ऊर्मि] लहर। उ०—सरित सग करि छुभित सु सिधु। उमगि ऊरमी ह्वै गयो अघु।—नद० ग्र०, पृ० २८६।

ऊरव्य—सज्ञा पुं [सं०] ऊरुज। वंश।

ऊरस—सज्ञा स्त्री [सं० विरस] विरस। स्वादहीन। उ०—नीरस निगोड़ो दिन भरै भीरु ऊरसो।—घनानन्द, पृ० १४८।

ऊरा—वि० [हि० पूरा का अनु०] न्यून। कम। उ०—पूरन साह न कवहुँ ऊरा।—प्राण०, पृ० ३६।

ऊरी—सज्ञा स्त्री [देश०] जुलाहों का एक औजार। दुतकला। सलाक।

ऊरु—सज्ञा पुं [सं०] जानु। जघा। रान। उ०—रोक सकता हूँ ऊरुओं के बल से ही उसे, टूटे भी लगाम यदि मेरी कभी भूने से।—साकेत, पृ० ७३।

ऊरुलानि—सज्ञा स्त्री [सं०] जाँघों को कमजोरी [को]।

ऊरुज^१—सज्ञा पुं [सं० ऊरु + ज] १ जघा से उत्पन्न वस्तु। २ वंश जाति जो कि ब्रह्म के जघा से उत्पन्न कही जाती है।

ऊरुज^२—वि० जो जाँघ से उत्पन्न हो [को]।

ऊरुजन्मा—सज्ञा पुं [सं० ऊरुजन्म] वंश।

ऊरुफलक—सज्ञा स्त्री [सं०] जाँघ की हड्डी। कूल्हे की हड्डी [को]।

ऊरुसधि—सज्ञा स्त्री [सं० ऊरुसन्धि] पट्टा। जाँघ का जोड़ [को]।

ऊरुसम्भव—वि० [ऊरुसम्भव] जाँघ से उत्पन्न [को]।

ऊरुस्कर्म—सज्ञा पुं [सं० ऊरुस्कर्म] दे० 'ऊरुस्कर्म' [को]।

ऊपरी- वि० [हि० ऊपर+ई (प्रत्य०)] १ ऊपर का । २. बाहर का । बाहरी । ३. जो नियत न हो । बंधे हुए के सिवा । गैर मामूली । ४. दिखीया । नुमाइशी ।

ऊपरीफसाद-सञ्ज्ञा पुं० [हि० उपरी+अ० फसाद] भूतवाधा । प्रेतादि ।

ऊपरीफेर-सञ्ज्ञा पुं० [हि० ऊपरी+फेर] दे० 'ऊपरी फसाद' ।

ऊपली-सञ्ज्ञा पुं० [हि० उपली] दे० 'उपली' ।

ऊपली०-वि० [हि०] दे० 'ऊपरी' । उ०-दादू यह परिख सराफी ऊपली, भीतरि की यह नाहि । अतरि की जानै नहीं, तावैं छोटा खाहि ।-दादू०, पृ० २८८ ।

ऊपली०-वि० [हि० ऊपर+ओ (प्राय०)] ऊपर का । ऊपरी । उ०-थारो नाक सरीखा ऊपली होठ ।-वी० रासो, पृ० ७२ ।

ऊपाड़ना-क्रि० स० [हि० उपाडना] दे० 'उमारना' । उ०-ऊपाड़े आवू जिली, पर निदारी पोटा ।-वांकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ५८ ।

ऊवंधी०-सञ्ज्ञा पुं० [स० उवध] बांध । उ०-मुरझ धान मेवाड, रांण राजान सरीखा । महुण देख ऊवध, करै कुण बध परीखा ।-रा० ह०, पृ० २३ ।

ऊवंधी-वि० वधरहित । मर्यादा रहित । उ०-सितर खान सकबंध, कटक अनमध छिलेकर । असपत हृद सामंद, कीध ऊवध प्रमेसर ।-रा० ह०, पृ० १५३ ।

ऊवंधना०-क्रि० स० [हि० बांधना] बांधना । उ०-सूजै घर बाधो सकवधी बांधे पाप किया ऊवधी ।-रा० ह०, पृ० १४ ।

ऊव१-सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० उवना] कुछ काल तक निरंतर एक ही अवस्था में रहने से चित्त की व्याकुलता । उद्वेग । घबड़ाहट । उ०-चहत न काहू सो न कहत काहू की सवकी सहत, उर अंतर न ऊव है ।-तुलसी (शब्द०) ।

यौ०-ऊवकर सांस लेना=ठंडी सांस लेना । दीर्घ निश्वास खीचना । उ०-हाय धोय जब बैठो लीन्ह ऊवि के सांस ।-जायसी (शब्द०) ।

ऊव३-सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ऊम=होसला, उमंग] उत्साह । उमंग । उ०-नन्दन लै गए हमारी अव ब्रज कुल की ऊव । सूरश्याम तजि ओरे सूझै ज्यो खेरै की दूव ।-सूर (शब्द०) ।

ऊवट१-सञ्ज्ञा पुं० [स० उद्=बुरा+वर्त्म, वट्ट=मार्ग] कठिन मार्ग । अटपट रास्ता । उ०-जव वर्षा में होत है मारग जल सयोग । वाट छाडि ऊवट चलत सकन सयाने लोग ।-गुमान (शब्द०) ।

ऊवट३-वि० ऊवड़ खावड़ । ऊंचा नीचा । उ०-ऊवट न गैल सदा सिहन की शैल बनजोर के ले बैल मानों बोलें डकरात से ।-हनुमान (शब्द०) ।

ऊवड खावड-वि० [अनु०] ऊंचा नीचा । जो समथल न हो । अटपट ।

ऊवटना०-क्रि० अ० [उद्भूत] उत्पन्न होना । पैदा होना । उदित होना । उ०-काट जिका कुल ऊवट आठ वाट इतफाक ।-वांकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ६४ ।

ऊवना-क्रि० अ० [स० उव्वेज्जन, पा० उव्विज्जन, हि० उवियाना] उक्ताना । घबराना । अकुलाना । कुछ काल तक एक ही अवस्था में निरंतर रहने से चित्त की व्याकुलता । उ०-ऊवत हो डूबत डगत, हो डोलत हो बोलत न काहे प्रीति रीति न रितै चले । कहैं पदमाकर-त्यो उससि उसासनि सो आसुवै अपार आइ आखिन इतै चले ।-पद्माकर (शब्द०) ।

ऊवर०-वि० [हि० उवरना] अतिरिक्त । अधिक ।

ऊवरना०-क्रि० अ० [हि० उवरना] दे० 'उवरना' ।

ऊवां०-सञ्ज्ञा पुं० [देश०] ऊसर । उ०-ऊवां जलवन कायरां, विदर्ग कुल विवहार ।-वांकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ३५ ।

ऊवेड़ना-क्रि० स० [हि० उवेरना] दे० 'उवेरना' । उ०-जेडो सीहा जाड, ऊवेडै ऊवइहरो ।-वांकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० १७ ।

ऊवट०-सञ्ज्ञा पुं० [हि० ऊवट] दे० 'उवट' । उ०-वड उवटं वाट बट्टे सुचल्ले ।-ह० रासो, पृ० ६८ ।

ऊम०-वि० [हि० ऊभना=खड़ा होना] ऊंचा । उमरा हुआ । उठा हुआ । उ०-पर पीपर सिर ऊम जो कीन्हा । पाकर तिन सुखे फर दीन्हा ।-जायसी (शब्द०) ।

ऊम३०-सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ऊव] १ व्याकुलता । ऊव । उ०-राज लीन्ह ऊम भर सांसा । ऐस बोन जनु बोन निरासा ।-जायसी ग्रं० (गुप्त०), पृ० ६८ । २ उमस । गरमी । ३. हीसला । उमग । हुव्व ।

ऊमचूम१-सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ऊम+चूम] १ डूबना उतराना । २ आशा निराशा के मध्य की स्थिति ।

क्रि० प्र० होना=उ०-व्यस्त महा कच्छप सी धरणी, ऊम-चूम थी विकलित सी ।-कामायनी, पृ० १५ ।

ऊमचूम३-क्रि० वि० पूर्ण रूप से या सराबोर (जल) ।

ऊमट०-सञ्ज्ञा पुं० [हि० ऊवट] दे० 'ऊवट' । उ०-पूरे को पूरा मिलै, पडै सो पूरा दाव । निगुरा तो ऊमट चलै, जव तव करै कुदाव ।-कबीर सा० स०, भा०-१, पृ० १७ ।

ऊभना१०-क्रि० अ० [स० उद्भवन=ऊपर होना, गुज० ऊभू=खड़ा होना] १ उठना । खड़ा होना । उ०-(क) विरहित ऊमी पय सिर पथी पूछै घाय । एक शब्द कहो पीव का कवरे मिलैगै घाय ।-कबीर (शब्द०) । (ख) एक खड़ा होना लहे इक ऊमा ही विललाय । समरथ मेरा सांझा सूता देइ जगाय ।-कबीर (शब्द०) । (ग) ऊमा मारु बैठा मारु मारु जागत सूता । तीन भवन में जाल पसारु कहाँ जायगा पूता ।-दादू (शब्द०) । (घ) कहरा करति मदोदरि रानी । चौदह सहस सुदरी ऊमी उठै न कंत महा अभिमानी ।-सूर (शब्द०) । २. उत्पन्न होना । आना या लगना (लाज) । उ०-डोलउ मन चलपय थपउ ऊमउ साहइ लाज, साम्हउ वीसु आवियउ, आइ कियउ सुमराज ।-डोना० दू० १०५ ।

ऊभना३-क्रि० [हि० ऊवना] घबड़ाना । व्याकुल होना ।

ऊभरना०-क्रि० अ० [हि० उभरना] दे० 'उभरना' । उ०-उरमाल भलभण ऊभरिय ।-दा० ह०, पृ० ३४ ।

ऊनीदरता तप^७—सज्ञा पुं० [स०] जैन लोगो का एक व्रत जिसमे प्रति दिन एक एक ग्रास भोजन घटाते जाते हैं।

ऊनी^७—वि० दे० 'ऊन'। उ०—रसहूँ लगि कल कत सौं कलह न कीजै काउ। कानहि जो ऊनी करै, सो सोनो जरि जाउ।—नद० ग्र०, पृ० १५२।

ऊन ल—सज्ञा पुं० [स० ऊष्णकाल, प्रा० उण्ह + आल = ऊण्हाल] उष्णकाल। ग्रीष्म ऋतु। उ०—कहिए मालवणी तराड रहियइ साल्ह विमास। उण्हालउ ऊतारियउ, प्रगटचउ पावस मास।—ढोला० दू०, २४२।

ऊप—सज्ञा पुं० [स० वप] अन्न का एक तरह का व्याज।

विशेष—इसका व्यवहार यो है कि बीज बोने के लिये जो अन्न किसान लेते हैं उसके बदले में फसल के अन्न में प्रति मन दो तीन सेर अधिक देते हैं। कहीं कहीं ड्योडा सवाई भी चलता है।

ऊप^७—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ओप'। उ०—(क) तो निरमल मुख देखै जोग होइ तेहि ऊप।—जायसी (शब्द०)। (ख) अजब अन्नूप रूप चमक दमक ऊप, सुंदर सोमित अति सुहावनी।—सुंदर ग्र०, भा० २, पृ० १४६।

ऊपजना^७—क्रि० अ० [हि० उपजना] दे० 'उपजना'। उ०—शब्द गहा सुख ऊपजा, गथा अदेशा मोर।—दरिया० बानी०, पृ० ३।

ऊपट^७—सज्ञा पुं० [स० ऊप + पट] उपवस्त्र। उत्तरीय। वह चादर जो दीक्षा में गुरु देता है। उ०—ऐसो ऊपट पाय अब, जग मग चलै बलाय।—मल्लूक०, पृ० ३२।

ऊपडना^७—क्रि० अ० [हि० उपडना] दे० 'उपणना'। उ०—उत्तर दी मुडैजू ऊपडइ, पालउ पवन घण्हाह।—ढोला० दू०, २६६।

ऊपति^७—सज्ञा, स्त्री० [स० उत्पत्ति] दे० 'उत्पत्ति'। उ०—तब वस भाव जरतित मान, संभरी हुत ऊपति थान।—पृ० रा०, ५७। २६३।

ऊपना^७—क्रि० अ० [हि० उपना] दे० 'उपना'। उ०—चंदन के ढिग मानो ऊपनी है चंदनी।—सुंदर० ग्र० (जी०), पृ० १६८।

ऊपर—क्रि० वि० [स० उपरि][वि० ऊपरी] १ ऊँचे स्थान में। ऊँचाई पर आकाश की ओर। जैसे,—तस्वीर बहुत ऊपर है, नहीं पहुँचोगे। आधार पर। सहारे पर। जैसे,—(क) पुस्तक मेज के ऊपर है। (ख) मेरे ऊपर कृपा कीजिए। २ ऊँची श्रेणी में। उच्च कोटि में। जैसे,—इनके ऊपर कई कर्मचारी हैं। ४ (लेख में) पहले। जैसे,—ऊपर लिखा जा चुका है। कि। ५ अधिक। ज्यादा। जैसे,—हमें यहाँ आए दो घंटे से ऊपर हुए। ६ प्रकट में। देखने में। जाहिरी तौर पर। प्रत्यक्ष में। बाहर में। उ०—ऊपर हित अतर कुटिलाई।—विश्राम (शब्द०)। ७ तट पर। किनारे पर। जैसे,—ताल के ऊपर, गाँव से थोड़ा हटकर, एक बड़ा भारी बड़ का पेड़ है। ८ अतिरिक्त। परे। प्रतिकूल। उ०—वर्णाश्रम कर मान यदि, तब लगि श्रुति कर दास। वर्णाश्रम ते त्यक्त जे श्रुति ऊपर तेहि दास।—(शब्द०)।

मुहा०—ऊपर ऊपर=वाला वाला। अलग अलग। निरासे निराले। बिना और किसी को जताए। चपके से। जैसे,—तुम ऊपर ऊपर सपया फटकार लेते हो, हमें कुछ नहीं देते। ऊपर ऊपर जाना=लक्ष्य से बाहर जाना। निष्फल होना। व्यर्थ जाना। कुछ प्रभाव न उत्पन्न करना। जैसे,—मैं लाख कहूँ, मेरा कहना तो सब ऊपर ऊपर जाता है। ऊपर का दम भरना=ऊँची सीस चलना। उखड़ी मौम चलना। ऊपर की ग्रामदनी=(१) वह प्राप्ति जो नियत या निश्चित से अधिक हो। बँधी तनउवाह वा ग्रामदनी के सिवाय मिली हुई रकम। (२) इधर उधर से फटकरी हुई रकम। ऊपर की दोनो जाना=दोनों आँखें फूटना। उ०—ऊपर की दोनों गई हिय की गई हेराय। कह कबीर चारिहुँ गई तातो कहा बसाय।—कबीर (शब्द०)। ऊपर छार पड़ना=मर जाना। उ०—जो लहि ऊपर छार न परे, तो लहि यह तृणा नहीं मरे।—जायसी (शब्द०)। ऊपर टूट पड़ना=धावा करना। आक्रमण करना। ऊपर तले=(१) ऊपर नीचे (२) एक के पीछे एक। आगे पीछे। लगातार। क्रमशः। ऊपर तले के=आगे पीछे के भाई वा बहनें। वे दो भाई वा बहनें जिनके बीच में और कोई भाई या बहन न हुई हो। पू० तरउपरिया (स्त्रियों का विश्वास है कि ऐसे लडकों में बराबर खटपट रहा करती है।) ऊपर लेना=जिम्मे लेना। हाथ में लेना। (किसी कार्य का) भार लेना। जैसे,—तुम यह काम अपने ऊपर लो। ऊपर-वाला=(१) ईश्वर। (२) अफसर। ऊँचे दर्जे का। (३) मृत्यु। सेवक। नोकर। चाकर। काम करनेवाला। (४) अपरिचित। बिना जाना वृक्षा ग्रादमी। बाहरी ग्रादमी। ऊपर से—(१) बलवी से। (२) इसके अतिरिक्त। सिवा इसके। (३) वेतन से अधिक। घूस। रिश्वत। ऊपर की आय। भेंट। नञ्ज। असाधारण आय। (४) प्रत्यक्ष में दिखाने के लिये। जाहिरी तौर पर। जैसे,—वह मन में कुछ और रखता = और ऊपर से मीठी मीठी बातें करता है। ऊपर से चला जाना=कचर के चले जाना। रौंते हुए जाना। ऊपर ही से उसासे लेना=दिखावटी रज या दुख करना। उ०—जो न जानें ऊपर ही से उसके लिये उसासे लिया करते हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ५५। ऊपर होना=(१) बड़ जाना। आगे निकल जाना। (२) बढ़कर होना। श्रेष्ठ होना। (३) प्रधान होना। जैसे,—(क) उन्हीं की बात सबके ऊपर है। (ख) भाग्य ही सबके ऊपर है।

ऊपरचूँट—सज्ञा स्त्री० [हि० ऊपर + चूँटना=खोदना] बाल को ऊपर से काट लेना और डठल को खड़ा रहने देना। छपका। ऊपरछेंट।

ऊपरहार—सज्ञा स्त्री० [हि० ऊपर + देश० हार] गाँव से दूर स्थित कम उपजाऊ भूमि। उ०—गोदान की भूमि और ऊपरहार की भूमि में भी अंतर माना जाता है।—कृपि०, पृ० ५०।

ऊपरि^७—क्रि० वि० [हि० ऊपर] दे० 'ऊपर'। उ०—वैष्णव को जीवमात्र ऊपरि दया राखी चाहिए।—दो सो वावन०, भा० १, पृ० १४१।

ऊदी सेम—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ऊदी + सेम] केवाँच ।

ऊध—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ऊधस्, ऊध] १ गुप्त स्थान जहाँ मित्र हो जा सकें । २ स्तन या छाती [क्रो०] ।

ऊधन्—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दुग्ध [क्रो०] ।

ऊधम—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उद्धम = ध्वनित] उपद्रव । उत्पात । घूम । हल्ला । हल्ला गुल्ला । शोर गुन । दगा फसाद ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—करना ।—जोतना ।—मचाना ।

ऊधमी—वि० [हि० ऊधम] [स्त्री० ऊधमिन] ऊधम करनेवाला । उपद्रवी । शरारती । फसादी ।

ऊधव०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उद्धव] दे० 'उद्धव' ।

ऊधस्—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ स्तन । छाती । २ मित्रों के मिलने का गुप्त स्थान [क्रो०] ।

ऊधस्य०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ऊधस्] दूध (द्रि०) ।

ऊधो०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उद्धव] उद्धव । कृष्ण के सखा एक यादव ।

मुहा०—ऊधो का लेना न माधो का देना = किसी से कुछ संबंध नहीं । किसी के देने लेने में नहीं । लगाव वभाव से अलग ।

ऊधो—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उद्धव] दे० 'ऊधो' । उ०—ऊधो की उपदेश सुनी ब्रजनागरी । रूप सील नावन्य सर्व गुण आगरी ।—नद० २०, पृ० १७३ ।

ऊनत०—वि० [सं० उन्नत] दे० 'उन्नत' । उ०—बेटी राजा भोज की ऊनत पयोहरवाली वेस ।—वी० रासो०, पृ० ६ ।

ऊन^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ऊर्ण] भेड़ बकरी आदि का रोयाँ । भेड़ के ऊपर का वह वाल जिससे कवल और पहनने के गरम कपड़े बनते हैं ।

विशेष—भारतवर्ष में उत्तराखण्ड वा हिमालय के तटस्थ देशों की भेड़ों का ऊन होता है । काश्मीर और तिब्बत इसके लिये प्रसिद्ध हैं । पंजाब, हजारा और अफगानिस्तान की कोच वा घरल नाम की भेड़ का भी ऊन अच्छा होता है । गढ़वाल, नैनीताल, पटना, कोयंबटूर और मैसूर आदि की भेड़ों से भी बढ़िया ऊन निकलता है ।

ऊन और वाल में भेद यह है कि ऊन के तागे यो ही बहुत बारीक होते हैं अर्थात् उनका घेरा एक इंच के हजारवें भाग से भी कम होता है । इसके अतिरिक्त उनके ऊपर बहुत सी सूक्ष्म दिडली वा पत (जो एक इंच में ४००० तक आ सकती हैं) होती हैं । इसी कारण अच्छे ऊन की जो लोई आदि होती है उनके ऊपर थोड़े दिन के बाद महीन महीन गोल रवे से दिखाई पड़ने लगते हैं । प्रायः बहुत सी भेड़ों में ऊन और वाल मिला रहता है । ऊन की उत्तमता इन बातों से देखी जाती है—रोएँ की बारीकी, उसकी गुरुचन, उसका दिडलीदार होना, उसकी लवाई, मजबूती, मुलायमियत और चमक । भेड़ के चमड़े की तह में से एक प्रकार की चिकनाई निकलती है जिससे ऊन मुलायम रहता है ।

काश्मीर, तिब्बत और नेपाल आदि ठंडे देशों में एक प्रकार की बकरी होती है जिसके रोएँ के नीचे की तह में पशम या पशमीना होता है । इसे को काश्मीर में 'मसली तूस' कहते हैं जो दुशाले आदि में दिया जाता है ।

ऊन^२—वि० [सं०] १ कम । न्यून । थोड़ा । २. तुच्छ । हीन । नाचीज । क्षुद्र ।

ऊन^३—सञ्ज्ञा पुं० मन छोटा करना । खेद । दुःख । ग्लानि । रंज । उ०—(क) अस कस कहहु मानि मन ऊना । सुख सुहाग तुम कहैं दिन दूना ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) जनि जननी मानहु मन ऊना । तुमते प्रेम राम के दूना ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—मानना = दुख मानना । रज मानना । उ०—सुनु कपि जिय मानसि जनि ऊना । तैं मम प्रिय लछिमन तैं दूना ।—तुलसी (शब्द०) ।

ऊनक—वि० [सं०] १. न्यून । कम । २. हीन । मद । तुच्छ । ३. दोषपूर्ण । दोषयुक्त [क्रो०] ।

ऊनत०—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ऊनता] दे० 'ऊनता' । उ०—त्रिकुटी चढ़ा अनंत सुख पाया, मन की ऊनत भागी ।—दरिया० वानी०, पृ० ५७ ।

ऊनता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ऊन] कमी । न्यूनता । घटी । हीनता ।

ऊनमना०—क्रि० अ० [सं० अवनमन] दे० 'उनवना' । उ०—ऊनमियउ उत्तर दिसइ, गाज्यउ गहिर गभीर ।—ढोला० दू०, पृ० १८ ।

ऊनयना०—क्रि० अ० [सं० अवनमन] दे० 'उनवना' । उ०—गउखे वइठे एकठा मालवणी नई डोल । अवर दीठउ ऊनयउ, तिय समारय बोल ।—ढोला०, दू० २४३ ।

ऊनरना०—क्रि० अ० [हि०] दे० 'उनरना' । उ०—ए पिया, काँहिर ऊनरे ओरू काँहिर वरस्यो जाइ ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६१४ ।

ऊनवना—क्रि० अ० [सं० अवनमन] दे० 'उनवना' । उ०—एक सवद सौ ऊनवै, वर्ष न लागै आइ । एक सत्रद सौ बीखरै, आप आप कौ जाइ ।—गढ़०, पृ० ३६२ ।

ऊना^१—वि० [सं० ऊन] [वि० स्त्री० ऊनी] १. कम । थोड़ा । छोटा । उ०—सुनो कै परमपद, ऊनो कै अनत मद, ननो कै नदीस नद, इदिरा झुरे परी ।—देव (शब्द०) । २. तुच्छ । नाचीज । हीन ।

ऊना^२—सञ्ज्ञा पुं० १ एक प्रकार की छोटी तलवार जो स्त्रियों के व्यवहार के लिये बनती है । उ०—मुरि मुरित कहूँ ना, उत्तम ऊना, सब तैं दूना काट करै ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २८ ।

विशेष—इसका लोहा बहुत अच्छा और लचीला होता है । इसे रानियाँ अपने तकिए के नीचे रखती हैं ।

ऊनित—वि० [सं०] घटाया हुआ । कम किया गया [क्रो०] ।

ऊनी^१—वि० स्त्री० [सं० ऊन] १. कम । न्यून । थोड़ा ।

ऊनी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० उदासी । रंज । खेद । ग्लानि । उ०—सीति सजोग न जानि परै मन मानती का उर माननी ऊनी । सुदर मंजुल मोतिन की पहिरो न भटू किन नाक नयूनी ।—प्रताप (शब्द०) ।

ऊनी^३—[हि० ऊन + ई (प्रत्यय)] ऊन का बना हुआ । (वस्त्र आदि) ।

ऊढ—वि० [सं० ऊढ] [खी० ऊढा] १ व्याहा हुआ । २ धारण किया हुआ ।
 ऊढकटक—वि० [सं० ऊढकटक] जिसने कवच धारण किया हो [को०] ।
 ऊढना^७—क्रि० अ० [सं० ऊढ=सदेह पर विचार] १ तर्क करना । सोच विचार करना । अनुमान बाँधना । उ०—मृगमद नाहिन मृगन में ऊढत हैं दिन राति । तिल तरुनि के चिबुक मे सोई मृगमद भाति ।—मुवारक (शब्द०) ।
 ऊढा—सज्ञा स्त्री [सं० ऊढा] १. विवाहिता स्त्री । २. परकीया नायिका का एक भेद । वह व्याही स्त्री जो अपने पति को छोड़ दूसरे से प्रेम करे ।
 ऊढि—सज्ञा स्त्री [म० ऊढि] १ विवाह । व्याह । २ डोना । वहन करना [को०] ।
 ऊणहार^७—वि० [सं० अनुहार] ३० 'उनहार' । उ०—घट घट के ऊणहार सब, प्राण परस ह्वै जाइ ।—दादू, पृ० ४२३ ।
 ऊत—वि० [सं० अपुत्र, प्रा० अउत्त] १ विना पुत्र का । निःसतान । निपूता ।
 यो०—ऊत निपूता=नि सतान । वे ओलाद ।
 विशेष—एक प्रकार की गाली है जिसे स्त्रियाँ बहुत देती हैं ।
 २ उजड़ड । वेवकूफ । उ०—टोटे में भक्ती करै, ताका नाम सपूत । माया धारी मस्खरे, केते ही गये ऊत ।—कवीर० सा० स०, भा० १, पृ० ३६ ।
 ऊत^२—सज्ञा पुं वह जो नि सतान मरने के कारण पिंड आदि न पाकर भूत होता है । उ०—ऊत के ऊत, उजाड के भूत । सीता के सराये, जनम के शरावी (शब्द०) ।
 ऊतभूत—सज्ञा पुं [हि० ऊत+सं०भूत] भूत, प्रेत, पिशाच आदि । उ०—ऊत भूत को ध्यावना पाखंड और परपच ।—कवीर० म०, पृ० ५२७ ।
 ऊतम^७—वि० [सं० उत्तम] दे० 'उत्तम' । उ०—नहि को ऊतम नाही को हीना । सम में एक जोति प्रभु कीना ।—प्राण०, (शब्द०) ।
 ऊतर^१^७—सज्ञा पुं [सं० उत्तर] दे० 'उत्तर' । उ०—वहूँ द्वारी होत क्यों यों जब बूझो सास । ऊतर कढ्यो न बालमुख ऊँचे लेत उसास ।—नद० ग्र०, पृ० २९६ ।
 ऊतर^२^७—सज्ञा पुं [सं० उत्तर] वहाना । मिस । उ०—ऊतर कोन हूँ कै पदमाकर दे फिरै कुजगलीन में फेरी ।—पद्माकर (शब्द०) ।
 ऊतर^३^७—सज्ञा पुं [सं० उत्तर] दे० 'उत्तर' । उ०—आन की ढिग उसास नहि लेई । मूँदै मुख तिहि ऊतर देई ।—नद० ग्र०, पृ० १५० ।
 ऊतला^७—वि० [हि० उतावला] चंचल । वेगवान । तेज । उ०—पानों ते अति पातला, धूम्राँ ते अति भीन । पवनहुँ ते अति ऊतला, दोस्त कवीरा कीन ।—कवीर (शब्द०) ।
 ऊति—सज्ञा स्त्री [सं०] १ रक्षा । २ उन्नति । ३. आनंद । ४ बुनना । ५ सीना । ६ सिलाई की मजदूरी । ७ सहायता । ८ अभिलाषा या इच्छा । ९ खेल या क्रीडा । १० कृपा या अनुग्रह [को०] ।

ऊतिम^७—वि० [सं० उत्तम] दे० 'उत्तम' ।

ऊती—सज्ञा स्त्री [सं० ऊति] रक्षा करना । उ०—अवतारी अवतार धरन अरु जितक विभूती । इह सब आनंद के अधार जग जिहि की ऊती ।—नद० ग्र०, पृ० ४४ ।

ऊथल पथल^७—सज्ञा पुं [हि०] दे० 'उथलपुथल' । उ०—भूवाल भूमि ऊथलपथल इस स छत्रि पट्ट पंग दल ।—पृ० रा०, ६० । २०३८ ।

ऊद^१—सज्ञा पुं [अ०] १ अग्रर का पेड़ । २ अग्रर की लकड़ी । ३ एक प्रकार का बाजा । वरतन ।

ऊद^२—सज्ञा पुं [सं० उद] ऊदविलाव ।

ऊदवत्ती—सज्ञा स्त्री [अ० ऊद+हि० वत्ती] एक प्रकार की दक्षिण की बनी हुई अग्ररवत्ती । इसे सुगंध के लिये लोग जलाते हैं ।

ऊदविलाव—सज्ञा पुं [सं० उद्विलाव] नेत्रों के आकार का पर उससे बड़ा एक जंतु जो जल और स्थल दोनों में रहता है ।

विशेष—यह प्रायः नदी के किनारों पर पाया जाता है और मछलियाँ पकड़कर खाता है । इसके कान छोटे, पंजे जालीदार, नाखून टेढ़े और पूँछ कुछ चिपटी होती है । रंग इसका भूरा होता है । यह पानी में जिस स्थान पर डूबता है वहाँ से बड़ी दूर पर और बड़ी देर के बाद उतराता है । लोग इसे मछली पकड़वाने के लिये पालते भी हैं ।

यो०—ऊदविलावकी डेरी=वह भगड़ा जो कभी न निपटे । सब दिन लगा रहनेवाला भगड़ा ।

विशेष—कहते हैं, जय कई ऊदविलाव मिलकर मछलियाँ मारते हैं तब वे एक जगह उनकी डेरी लगा देते हैं और फिर वाँटने बैठते हैं । जब सबके हिस्से अलग अलग लग जाते हैं तब कोई न कोई ऊदविलाव अपना हिस्सा कम समझकर फिर सबको मिला देता है और फिर बैठे शुरू होती है ।

ऊदर—सज्ञा पुं [सं० उदर] दे० 'उदर' । उ०—सवा लख जीव भरोँ अहारा, तऊ न ऊदर भरै तुम्हारा ।—कवीर० सा०, पृ० ६ ।

ऊदल^१—सज्ञा पुं [विश०] एक पेड़ । गुल्मवादन । बूटी ।

विशेष—यह हिमालय की तराई के जंगलों में बहुत होता है । वरमा और दक्षिण में भी होता है । इसकी छाल से बड़ा मजबूत रेशा निकलता है जिसे बटकर रस्सा बनाते हैं । दक्षिण में हाथी बाँधने का रस्सा प्रायः इसी का बनाते हैं ।

ऊदल^२—सज्ञा पुं [हि० उदयगिह का सक्षिप्त रूप हि०] महोद के राजा परमाल के मुख्य सामंतों में से एक, जो अपने समय के बड़े भारी वीरों में था । यह आल्हा का छोटा भाई और पृथ्वीराज का समकालीन था ।

ऊदसोज—सज्ञा पुं [अ० ऊद+फा० सोज] धूपदानी । अग्रदान ।

ऊदा^१—वि० [अ० ऊद अथवा फा० कबूद] ललाई लिए हुए काने रंग का । बैंगनी रंग का ।

ऊदा^२—सज्ञा पुं ऊदे रंग का घोड़ा ।

ऊदी—वि० [हि० ऊद+ई प्रत्य०] १ ऊद का या ऊद सबधी । २ ऊदी का रंग । बैंगनी रंग का ।

ऊजती०—वि० [हि०] दे० 'उजला' । उ०—नीरद नरद के दरद दनि देस करै उपदेस ये ऊजती वेस साजिके ।—दीन० ग्र०, पृ० ४४ ।

ऊन^१०—वि० [सं विजन] । विजन । निर्जन । मानवरहित । उ०—जहूँ देवी अविदा । नगर बाहर मठ ऊजन ।—नंद० ग्र० पृ० २०८ ।

ऊ०—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ऊज' । उ०—नित कोलाहल नित ब्रज ऊजन ।—घनानंद, पृ० २६० ।

ऊ०—क्रि० अ० [हि० उ + ऊजन > *उ + ऊजन > ऊजन] आदीत होना । उमंगित होना । उ०—आवे कहुँ मनमोहन मो गली पूरव भागन को ब्रज ऊजै ।—नानंद, पृ० २०३ ।

ऊजम०—संज्ञा पुं० [सं उद्यम, प्रा० उज्जम] दे० 'उद्यम' । उ०—उपडी धुडी रवि लागी अंधारि, खेतिए ऊजम भरिया खाद ।—वेनि०, दू० १६३ ।

ऊजर^१०—वि० [सं० उज्ज्वल, प्रा० उज्जल] दे० 'उजला' । उ०—कविरा पाँच वनधिया ऊजर जाहि । बलिहारी वा दास की, पकरि जो राखै वाहि ।—कवीर सा० सं०, भा० १, पृ० २२ ।

ऊजर^२०—वि० [हि० उजड़ना] उजाड़ । उजड़ा हुआ । बिना वस्ती का । उ०—(क) ऊधी कैसे जीवै कमननयन विनु । तव तो पलक लगत दुख पावत अरु जो निरपि भरि जात अग छिनु । जो ऊजर खरे के देवन को पूनै को मानै । तो हम विनु न पल भए ऊधी कनि प्रीति को जनै ।—मूर (शब्द०) ।

ऊजरा०—वि० [हि० उजला] दे० 'ऊजर' और 'उजला' ।

ऊजरी०—वि० स्त्री० [हि० उजला] दे० 'उजला' । उ०—सेज ऊजरी, चंद ते निरमल, तापै कमल छए ।—नंद ग्र०, पृ० ३४२ ।

ऊजल०—वि० [हि० उजला] दे० 'ऊजर' । उ०—मैं अति ऊजल, हौ प्रभु को प्रिय पाप न रंच गहौ गुनगाही ।—दीन० ग्र०, पृ० १७२ ।

ऊजला०—वि० [हि० उजला] दे० 'उजला' । उ०—कोइला होय न ऊजला, सो मन सावुन लाय ।—कवीर सा० सं०, पृ० ५७ ।

ऊजासड़०—संज्ञा पुं० [हि० उजाड़ + (स्वा० मध्यागम) स] दे० 'उजाड़' । उ०—यल मथइ ऊजासड़क ये इण केहइ रंग । धण लीजइ, श्री मारिजइ, ठाँडि विहाणउ सग ।—ढोला० दू० ६३२ ।

ऊजू—संज्ञा पुं० [अ० वजू] नमाज पढ़ने से पहले मुँह हाथ धोना । उ०—न्याइ धोइ नहि अचारा । ऊजू ते पुनि हूवा न्यारा ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ३०४ ।

ऊझड़०—वि० [हि०] दे० 'ऊजड़' । *ऊझड़ जातों वाट वनावै ।—कवीर ग्रं०, पृ० १३४ ।

ऊझल^१०—वि० [सं० उज्ज्वल] दे० 'उज्ज्वल' । उ०—द्रुम नव पल्लव लागि, फूल खिले बहु माँत के । रस ऊझल तन जागि, आगि मदन के गात के ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० २२ ।

ऊझल^२०—संज्ञा पुं० [हि० ओझल] दे० 'ओझल' । उ०—हरपट ऊभन मित्र तुम्हारा । पट उठाइ कबू है उँजियारा ।—ईशान०, पृ० १६१ ।

ऊटक नाटक—संज्ञा पुं० [सं० नाटक अथवा हि० ऊटक (असदृशा,

नुररणात्मकपूर्वद्विचिन्ति + सं० नाटक] इधर उधर का काम । वह काम जिसका कुछ निश्चय न हो । जैसे,—(क) बैठने से तो काम चलेगा नहीं, कुछ ऊटक नाटक करना ही होगा । (क) वह ऊटक नाटक करके किसी प्रकार गुजर करता है ।

ऊटना०—क्रि० अ० [हि० ओटना = खलबलाना] १ उत्साहित होना । हौसला करना । मँसूवा वाँचना । उमंग में आना ।

उ०—(क) काज मही सिवरगज बली हिंदुवान बड़ाइवे को उर ऊटै ।—भूपण (शब्द०) । (ख) काँडे तीर वीर जव ऊटयो । सर समूह सधुन पर छूटयो ।—नान (शब्द०) ।

(ग) भारत गाल कहा इननो मनमोहन जू अपने मन ऊटे । रघुनाथ (शब्द०) । (ग) जूटै लगे जान गन, ऊटै लगे ज्ञान जन, छूटै लगे वान घन, लूटै लगे प्रान तन ।—गिरधरदास (शब्द०) । २ तर्क वितर्क करना । सोच विचार करना ।

ऊटपटांग—वि० [हि० अटपट + अंग अथवा हि० ऊँट + पट (< सं० पृष्ठ) + अंग] १. अटपट । टेढ़ामेढ़ा । बेढंगा । बेमेन । असंबद्ध । बजोड़ । बेसिर पैर का । कमबिहीन । अडबड़ । ऊनजलून । उ०—तुम्हारे सब काम ऊटपटांग होते हैं । २. निरर्थक । व्यर्थ । बाहियात । फजूल ।

विशेष—दिल्ली में 'ऊटपटांग' बोलते हैं ।

ऊड०—संज्ञा स्त्री० [हि० उठान] १ उमार । उठाव । उ०—चातुरी चोख मनोज के चोजनि घूघरिवारि में ऊड अगैठी ।—नानंद, पृ० ३७ । २ उमंग । उ०—रिस हसनैं रुखि मैं ऊड अनूठि मे लागति जागति जोति महा ।—नानंद, पृ० २२ ।

ऊठत०—क्रि० वि० [हि० उठना] उठते हुए । उ०—बैठत राम हि ऊठत रामहि, बोलत रामहि राम रह्यो हैं ।—सुंदर० ग्रं०, पृ० ५०२ ।

ऊठना०—क्रि० अ० [हि०] दे० 'उठना' ।—तब श्री मुसाई जी गोविंददास कोटोरि कै कहे, जो गोविंददास, ऊठो तुमको नवनीतप्रिय जी के सदैव ऐसे ही दरसन होंगे ।—दो सो वावन०, भा० १, पृ० ३८६ ।

ऊडना—क्रि० सं० [सं० ऊड] विवाह करना । शादी करना । उ०—विरिध खाइ नवजोवन सो तिरिया सो ऊड ।—जायसी (शब्द०) ।

ऊडा—संज्ञा पुं० [सं० ऊन, प्रा० *उण* > ऊड़] १ कमी । टोटा । घाटा । गिरानी । अकाल । २ नाश । लोप । क्रि० प्र०—पडना ।

ऊडी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० उड़ना] १ जुलाहों के डांडे वा सेटे में लगा हुआ टेकुआ जिसपर लपेटे हुए सूत की जुलाहे पट्टी पर घूम घूम कर चढ़ाते जाते हैं । डुतकला । २. रेशम खोलनेवालों की चरघी जिसपर वे लोग संगल वा रेशम के बड़े बड़े लच्छों को ढालकर एक प्रकार की परेती पर उतारते हैं ।

ऊडी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० √ वृड (वर्ण विपर्यय) = डूबना, हि० वूडना] १. वुडडी । गोता ।

क्रि० प्र०—मारना ।

२. पनडुब्बी चिडिया । उ०—मौड़ धनुक पन काजल वूडी । वह भइ धानुक हौं भयो ऊडी ।—जायसी (शब्द०) ।

गरम । उ०—ऊर्ण ज्ञान यह देह तिन मगची तन ऊर् । चातक
वतिपां ना रची, ग्रन जल नीचे हय ।—तुलसी (शब्द०) ।
ऊर्^१—सज्ञा पुं० १ धूप । घाम । २ शीघ्र श्नु । गर्मी
के दिन ।
ऊर्^२—सज्ञा स्त्री० [स० उपा, प्रा० ऊर् हि० उल] ऊर् । सूर्योदय
से पूर्व की वेला ।
ऊर्^३—सज्ञा पुं० [उ० ऊर्] पहाड़ के नीचे की सूखी जमीन ।
नाभर (कुमाऊँ) ।
ऊर्^४—सज्ञा स्त्री० [स० श्रोत्रपि] वनस्पति, वनोपधि । उ०—
पीलाणी धरा ऊर्घी पाका, सरदि कालि एहवी सिरी ।
—वेवि०, दू० २०७ ।
ऊर्^५—सज्ञा पुं० [स० उलूखल] काठ या पत्थर का बना हुआ एक
गहरा परतन जिसमें रखकर धान और किसी अन्न की भूसी
अलग करने के लिये मूल से कूटते हैं । श्रोत्रपि । काँडी ।
हायन । उ०—ऊर्गल तनिक तिरीछी करिकै, शरि दिए तह
तिन मरि प्रि कै ।—नद ग्र०, पृ० २५१ ।
मुहा०—ऊर्गल में सिर देना = भ्रष्ट में जान बूझकर पडना ।
ऊर्गल में सिर देकर भूल से उरगा क्या = भ्रष्ट में जान-
बूझकर पडने पर मुनीवतो की क्या चिन्ता ।
ऊर्गल^२—सज्ञा पुं० [न० ऊर्गल] एक प्रकार का वृक्ष या घास ।
ऊर्गा^३—सज्ञा स्त्री० [न० ऊर्गा] उपा । बाणानुर की कन्या का
नाम जो प्रतिरुद्ध की पत्नी थी । उ०—जम ऊर्गा कहँ अनिष्ट
मिना । मेदिन जाइ लिवा पुरुविना ।—जायसी ग्र० (गुप्त),
पृ० २५५ ।
ऊर्गाणा^४—सज्ञा पुं० दे० 'उपजान' । उ०—(क) खाघो तो ही
मीठ है, मग जनम किए दीठ । ऊर्गाणो अदता पढ़ै, पूरव
पद दे पीठ ।—वाकी ग्र०, भा० २, पृ० २७ । (ख)
ऊर्गाणो चावद भरे, मो मोला घर मून ।—वाकी ग्र०,
भा० २, पृ० २८ ।
ऊर्गि^५—सज्ञा स्त्री० दे० 'ऊर्' । उ०—कीन्हैसि ऊर्गि मीठि रस
मरी । कीन्है कहइ वेनि गहु फरी ।—जायसी ग्र० (गुप्त),
पृ० १२३ ।
ऊर्गिल^६—वि० [देश०] पराया । अपरिचित । उ०—रूपनिधान
मुजान लयें विन प्रांछिन दीठि हि पीठि दई है ऊर्गिल ज्यों
चरक पुत्ररीन में, नल को मूल सनाक मई है ।—
पद्मानन्द०, पृ० ५ ।
ऊर्गट^७—सज्ञा पुं० [स० उर्गत, प्रा० उवट्ठ] दे० 'उवटना' । उ०—
साविए ऊर्गट मॉणिवड, पिजमति करइ मनत, मासू तन
नरन रचउ, मिलल मुद्रावा कत ।—ढोला०, दू० ५३५ ।
ऊर्गना^८—क्रि० प्र० [न० उद् + √गन्, हि० उगना] दे० 'उगना' ।
उ०—(क) नरन मोय सर नुनिया, ऊर्ग न सकं केर ।
—दरिया० बानी०, पृ० ३ । (घ) ना जानौ क्या होयगा
ऊँ ते पद्मावत ।—कवीर० ना० मं०, पृ० ३ ।
ऊर्ग^९—क्रि० प्र० [स० उद् + √ग् प्रा० उगिल, राज० उगरो
उग्ररो] बन रहना । निरुत्तना । उ०—प्राव घरा दस

अनम्यउ, महली ऊपर मेह । बाहर थाजइ ऊगरइ भीगा मौक
घरेह ।—ढोला, दू० २७२ ।

ऊर्गा^१—वि० [हि० श्रोत्रना] खाली उवाला हुआ ।

ऊर्गा^२—सज्ञा पुं० खाली उवाला हुआ भोजन ।

ऊर्गालना^३—क्रि० प्र० [स० उद्गार, प्रा० उगाल, उगार]
जुगाली करना । पगुराना । उ०—तत तणक्कइ, पी पियइ,
करहुउ उगालेह ।—ढोला०, दू० ६३१ ।

ऊर्घट—सज्ञा स० [हि०] दे० 'अवघट' । उ०—हम न जाएव तुम
पासे, जाएव ऊर्घट घाटे कन्हैया ।—विद्यापति, पृ० ३४६ ।

ऊर्चल—वि० दे० 'उच्च' । उ०—तइ जमो काम हृदय अनुपाम । रोएल
घट ऊर्चल कए ठाम ।—विद्यापति, पृ० ४०६ ।

ऊर्चाला—सज्ञा पुं० [स० उच्चलन, प्रा० उच्चालो] १ स्थानांतर
गमन । २ अकाल पडने पर मरुस्थल की जातियो द्वारा पशुओं
के साथ किसी साधनसपन्न स्थान में जाकर बसना । उ०—
पिगल उचालऊ कियउ नल नखर चइदेस । ढोला०, दू० २ ।

ऊर्चित—वि० [हि०] दे० 'उचित' । उ०—तातें आपको मोहो घरनी
ऊर्चित नाही हतो ।—दो सो वावन०, भा० २, पृ० ७३ ।

ऊर्चेडती^३—वि० [स० उर्चंचलन्ती] निकलनेवाली । बाहर
करनेवाली । उ०—सिधु परइ सउ जोग्रणे, नीची खिवई
निहल्ल । उर मेहदी सज्जणाँ, ऊर्चेडती सल्ल । ढोला०,
दू० १९१ ।

ऊर्जजना—क्रि० स० [हि० उ + जजना] ऊपर की ओर करना ।
उठाना । उ०—छोह धणै ऊर्जज छरा, केहर फाई डाच ।—
वाकी० ग्र०, भा० १, पृ० ११ ।

ऊर्जव^४—सज्ञा पुं० [स० उत्सव, प्रा० उच्छव] दे० 'उत्सव' । उ०—
पहिरावणी राजा करी । उर्जव गुडी भोज दुवारि ।—
वीसल० रास०, पृ० ११२ ।

ऊर्छाह^५—सज्ञा पुं० [स० उत्साह, प्रा० उच्छाह] दे० 'उत्साह' । उ०—
सजि सिंगार आनद मढी बढी सरस ऊर्छाह । रगमहल फूली
फिरति चितवत मग चित चाह ।—स० सप्तक, पृ० ३८६ ।

ऊर्छेद^६—सज्ञा पुं० [स० उच्छेद] उच्छेद । खडन । उ०—गुरु के
शब्द ऊर्छेद को कहत सकल हम जान ।—कवीर सा०, ८७४ ।

ऊर्छेर—क्रि० प्र० [स० उत् + श्रि० प्रा० उच्छेर] ऊँचा होना ।
उठना । वधित होना । उ०—कुल उर्छेर कुवाट, पैला घर
वाछे पिसण ।—वाकी० ग्र०, भा० १, पृ० ६१ ।

ऊर्ज^७—सज्ञा पुं० [देश०] उपद्रव । ऊग्रम । अंधेरे । उ०—हमारो
दान मारघो इनि रातिनी वेचि वेचि जात । घेरो सखा जान
ज्यों न पावै छियो जिनि । देखो हरि के ऊर्ज उठाइवे की बात
रातिबिराति बहु वेटी कोऊ निकसति है पुनि । आहरिदास
के स्वामी की प्रकृति ना फिरि छिपा छाडो किनि ।—स्वामी
हरिदास (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—मचाना ।

ऊर्जड—वि० [स० उत् + जजानि या जजति] उजडा हुआ । द्रव्य ।
वीरान । विना वस्ती का ।

ऊँडे—वि० [टि० ग्र०] गहरे । उ०—कस्तूरी कूडे भरी, मेली ऊँडे ठाय ।—दरिया० बानी०, पृ० ३६ ।

ऊँदरा—सज्ञा पु० [सं० उन्दुर] चूहा । मूसा ।

ऊँवा^१—वि० [हि०] दे० 'अँवा' । उ०—ऊँवे खोरे काचे भाडे ।

इन मझि अन्नित टिकै न पाडे ।—प्राण० पृ० २६५ ।

मुहा०—ऊँवा ताला मारना=उलटा ताला बद करना । दिवाले का द्योतन । उ०—ए बाजै देवालिवा, ऊँवा ताला मार ।—वांकी० ग्र०, भा० २, पृ० ६६ ।

ऊँवा^२—सज्ञा पु० [हि० अँवा] १ टालुवाँ किनारा । ढाल । २ तालाब में चोपायो के पानी पीने का घाट जो ढालुवा होता है । गऊघाट ।

ऊँनमना—कि० ग्र० [सं० अवनमन] दे० 'उनवना' । उ०—उँनमि विआई वादनी वसँण लगे अँगार ।—कवीर ग्र०, पृ० ८० ।

ऊँमरा—सज्ञा पु० [हि०] दे० 'उमरा' । उ०—ग्रोर बघाई उँमरा करी आइ सुरतान ।—पृ० रा०, २।२१० ।

ऊँवरा—सज्ञा पु० [ग्र० उमरा] दे० 'उमराव' । उ०—प्रक्वर लखवाँ ऊँवरा, कीधा साथ कमध ।—रा० ह०, पृ० ६६ ।

ऊँहूँ—अव्य० [दिश०] कभी नहीं । हगिज नहीं ।

विशेष—जब लोग किसी प्रश्न के उत्तर में आलस्य से वा और किसी कारण से मुँह खोलना नहीं चाहते तब इस अव्यक्त शब्द से काम लेते हैं ।

ऊँ—सज्ञा पु० [सं०] १ महादेव । २ चंद्रमा ।

ऊँ^१—अव्य० [सं० अपि (सहिता दशा में उ)=भो] भी । उ०—तुलनीदास खालिन अति नागरि, नटनागर मनि नदलना ऊँ—तुलसी (शब्द०) ।

ऊँ^२—सर्व० [सं० अवस् या असौ > प्रा० अहउ > वह, उह ओह, ऊ, अथवा प्रा० अस्व > वह, ऊ, उह, ओह] वह । उ०—(क) लगन जिसका जिस जिस घात सूँ है । ऊ नई किसका खुदा की जात सूँ है ।—दक्खिनी०, पृ० ११५ । (ख) ऊ गति काहू विरले जाना ।—कवीर० सा०, पृ० ६०६ ।

ऊँग्राना^१—कि० ग्र० [सं० उदयन] उगना । उदय होना । निकलना । उ०—(क) भयो रजायस मारहु सुग्रा । सूर न आउ चद जह ऊँग्रा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) नासा देखि लजान्यो सुग्रा । सूक आय वेसर होय ऊँग्रा ।—जायसी (शब्द०) ।

उग्रावाई—वि० [हि० आव वाव, सं० वापु=हवा ?] अडबड । बे स्थिरपैर का । निरर्थक । व्यर्थ । उ०—जन्म गवायो उग्रावाई भोजन । भजे न चरण कमल यदुपति के रह्यो विलोक्त छाई ।—सूर (शब्द०) ।

ऊँ^३—सज्ञा पु० [सं० उल्का] १. उल्का । टूटता तारा । उ०—ऊँक पात दिकदाह दिन फेकरहि स्वान नियार । उदित केतु गत हेतु महि कपति बारहि बार ।—तुलसी (शब्द०) । २. लुकक लुप्राडा । उ०—वरी एक ऊँरि सार बहु ज्यो अग्नि ननुत्ता ऊँक । पृ० रा०, १० । ३३ ।

३. दाह । जलन । आच । ताप । तपन । ताव । उ०—कहाँ लौ मानै अपनी चूक । विनु गुपाल सखि री यह छतियाँ ह्वै न

गई द्वै टूक । तन मन धन यौवन ऐसे सब भए भुयंगम फूँक । हृदय जरत है दावानल ज्यो कठिन विरह की ऊँक । जाकी मणि सिर ते हरि लीनी कहा कहत अति मूक । सूरदास ब्रज वास वसी हम मनो दाहिनी सुक ।—सूर (शब्द०) ।

ऊँक^१—सज्ञा स्त्री० [हि० चूक का अनुकरण अथवा सं० अव+कृ (भवकृत्)] भूत । चूक । गलती । उ०—सुंदर इस ओज्जूद भौं इश्क लगाई ऊँक । आशिक ठठा होइ तब आइ मिलै माशूक ।—सुंदर० ग्र०, भा० १, पृ० २६१ ।

ऊँक^२—वि० [सं० उत्कट] उत्कट । तीव्र । उ०—अति ऊँक गध रघु रत्न वासि ।—पृ० रा०, ५७ । २५२ ।

ऊँकटना—कि० ग्र० [हि० 'उकठना'] । उ०—उत्तर आज स उत्तरउ, ऊँकटिया सारेह । वेलाँ वेलाँ परहरइ, एकलाँ मारेह ।—ढोला०, दू० २६५ ।

ऊँकट्टी—सज्ञा स्त्री० [सं० उत्कट] दे० 'उत्कट' ।

ऊँकठना—कि० ग्र० [सं० उत्त+कर्ष, हि० कड़ना] बाहर निकलना । उ०—उत्तर आज स वज्रियउ ऊँकठियइ केकाँण कामणि । कौमकमेडि, ज्यऊँ हइ लागउ सीचाण ।—ढोला०, दू० २६७ ।

ऊँकना^१—कि० ग्र० [हि०] चूकना । भूल करना । गलती करना । उ०—अपनो हित मानि सुजान सुनो धरि कान निदान तें ऊँकिए ना । निज प्रेम की पोखनिहारि विसारि अनीति भरोखनि ठूकिए ना ।—प्रानदधन (शब्द०) ।

ऊँकना^२—^१—कि० सं० छोड़ देना । भूल जाना । उ०—दूर दूर पै काज द्वै, परे एक संग आया । ऊँकन जोग न एक हू, इनमे परत लखाय ।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०) ।

ऊँकना^३—^२—कि० सं० [सं० उल्का, हि० ऊँक] जगाना । दाहना । मरम करना । तपाना । उ०—ए ब्रजचंद्र, चलो किन वा ब्रज लूकें वसंत की ऊँकन लागी । त्यों पदमाकर पेखो पनासन पावक सौ मनो फूँकन लागी ।—पदमाकर (शब्द०) ।

ऊँकपात—सज्ञा पु० [सं० उल्का+पात] दे० 'उल्कापात' ।—उ०—ऊँकपात, दिकदाह दिन फेकरहि स्वान सियार । तुलसी ग्र०, पृ० ८६ ।

ऊँकरडी—सज्ञा पु० [सं० अवकर, अवस्कर, प्रा० अवक्कर, उक्कर > उक्कर+डो (प्रत्य०)] १ अशुचि राशि । २ घूरा । वह स्थान जहाँ मैला इकट्ठा किया जाता है । उ०—करहउ कूँडई मन थकइ, पग राखीयउ जाँण । ऊँकरडी डोका चुगइ अपस डैमायउ आँण ।—ढोला०, दू० ३३६ ।

ऊँकलता—सज्ञा, स्त्री० [सं० आकुलता] १ व्यग्रता । २ त्वरा । जल्दीबाजी । उ०—ऊँकलता वृकी मती, है नह कोतक हास ।—वांकी० ग्र०, भा० १, पृ० ३३ ।

ऊँकलना—^३—कि० ग्र० [हि०] दे० 'उकलना' । उ०—कलकलिया कूत किरण कलि ऊँकलि । वरजित विसिख विवरजित पाउ ।—वेलि०, दू० ११६ ।

ऊँकार—सज्ञा पु० [सं० ऊ+कार] ऊँ अक्षर या उसकी ध्वनि [की०] ।

ऊँख^१—सज्ञा पु० [सं० इख] ईख । गन्ना दे० 'ईख' ।

ऊँख^२—वि० [सं० उख > प्रा० उखम् > हि० ऊँख] तपा हुआ ।

२ जोर से (शब्द करना)। उ०—ग्रवसर हार्यो रे तँ हारयो।
हरि भजु विलंब छाड़ि सूरज प्रभु ऊँचे टेरि पुकारयो।—
सूर (शब्द०)।

मुहा०—ऊँचे नीचे पंर पडना=व्यभिचार में फँसना।

विशेष—छड़ी बोली में वि० 'नीचा' से कि० वि० 'नीचे' तो बनाते हैं। पर 'ऊँचा' से 'ऊँचे' नहीं बनाते। पर ब्रजभाषा तथा और और प्रांतिक बोलियों में इस रूप का कि० वि० की तरह प्रयोग बराबर मिलता है।

ऊँचो०—वि० [स० उच्च] दे० 'ऊँचा'। उ०—ऐसो ऊँचो दुख महावली को जामै, नखतावली सो बहस दीपावली करति है।
—भूपण ग्र०, पृ० १२।

ऊँछ—सज्ञा पुं० [दे०] एक राग का नाम। उ०—ऊँछ गढ़ाने के सुर सुनियत निपट नाप की लीन। करत विहार मधुर केदारो सकल सुरन सुख दीन।—सूर (शब्द०)।

ऊँछना—कि० अ० [स० उच्छन=घीनना] कधी करना।

ऊँट—सज्ञा पुं० [स० उष्ट्र, प्रा० उट्ट] [खी० ऊँटनी] एक ऊँचा चौपाया जो सवारी और घोड़े लादने के काम में आता है।

विशेष—यह गरम और जलशून्य स्थानों अर्थात् रेगिस्तानी मुल्कों में अधिक होता है। एशिया और अफ्रीका के गरम प्रदेशों में सर्वत्र होता है। इसका आदि स्थान अरब और मिस्र है। इसके बिना अरबवालों का कोई काम नहीं चल सकता। वे इसपर सवारी ही नहीं करते बल्कि इसका दूध, मांस, चमड़ा सब काम में लाते हैं। इसका रंग भूरा, डील बहुत ऊँचा (७-८ फुट), टाँगें और गरदन लंबी, कान और पूँछ छोटी, मुँह लंबा और होठ लटके हुए होते हैं। ऊँट की लवाई के कारण ही कभी कभी लंबे आदमी को हँसी में ऊँट कह देते हैं। ऊँट दो प्रकार का होता है—एक साधारण या अरबी और दूसरा बगदादी। अरबी ऊँट की पीठ पर एक कूब होता है। ऊँट भारी बोझ उठाकर सँकड़ों कोस की मजिल तँ करता है। यह बिना दाना पानी के कई दिनों तक रह सकता है। मादा को ऊँटनी या साँडनी कहते हैं। यह बहुत दूर तक बराबर एक चाल चलने से प्रसिद्ध है। पुराने समय में इसी पर ढाक जाती थी। ऊँटनी एक बार में एक बच्चा देती है और उसे दूध बहुत उतरता है। इसका दूध बहुत गाढ़ा होता है और उसमें से एक प्रकार की घघ आती है। कहते हैं, यदि यह दूध देर तक रखा जाय तो उसमें कीड़े पड़ जाते हैं।

मुहा०—ऊँट किस करवट बैठता है=मामला किस प्रकार निवटता प्रयत्न क्या नतीजा निकलता है। ऊँट की कौन सी कल सीधी=वेढगे के काम में कहीं भी सलीके का न होना। ऊँट से आदमी होना=वेढगे से सलीकेदार होना। उ०—जो कहीं छह महीने हमारी जूतियाँ सीधी करो तो ऊँट से आदमी बन जाओ।—फिसाना०, भा० १, पृ० ७। ऊँट की चोरी और मुँके मुँके=छिप न सकनेवाली बात को छिपाने का यत्न। ऊँट के गले में बिल्ली बाँधना=ऐसा जोड़ बाँध देना जिसका कोई मेल ही न हो। १. ऊँट का पाद होना=बेफायदा बात। निरर्थक बात। उ०—करनी की रस मिठि

गयो भयो न आतम स्वाद। मई बनारस की दशा जया ऊँट को पाद।—अर्थ०, पृ० ५४। ऊँट के मुँह में जोरा=अधिक भोजन करनेवाले को स्वल्प सामग्री देना। बड़ी जरूरत के सामने स्वल्प सामग्री की व्यवस्था। ऊँट निगत जायें, दुम से हिचकियाँ=दावा बड़ी बड़ी बातों का और व्यवहार में उलझन तनिक सी बात पर। २ ऊँट मक्के को भागता है=स्वभाव आदत का शिकार होना। ऊँट बेल का साथ=वेमेल साथ। अनमेल संगति। उ०—ऊँट बेल का साथ दुआ है। कुत्ता पकड़े हुए जुवा है।—भारवना पृ० ७२।

ऊँटकटारा—सज्ञा पुं० [स० उष्ट्रकण्ट] एक कँटीली झाड़ी जो जमीन पर फैलती है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ मँडभांड की तरह लंबी लंबी और काँटेदार होती हैं। जालियों में गढ़नेवाली रोई होती है। ऊँटकटारा ककरीली और ऊसर जमीन में होता है। इसे ऊँट बड़े चाव से खाते हैं। इसकी जड़ को पानी में पीसकर पिचाने से स्त्रियों को शीघ्र प्रसव होता है। इसको कोई कोई बलवर्द्धक भी मानते हैं।

पर्याय—ऊँटकटीरा, ऊँटकटेला, कटालु, करमादन, उत्कटक, शृगार, तीक्ष्णाय।

ऊँटकटाला०—सज्ञा पुं० [हि० ऊँटकटारा] दे० 'ऊँटकटारा'। उ०—दूजा दोबड चोवडा, ऊँट कटालउ खाँण, जिण मुख नागर बेलियाँ, सो करहुउ केकाँण।—ढोला०, दू० ३०६।

ऊँटकटाला०—सज्ञा पुं० [हि० ऊँटकटारा] दे० 'ऊँटकटारा'। उ०—मन गमता पाया नहीं ऊँटकटाला खाइ।—ढोला०, दू० ४२७।

ऊँटकटीरा—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ऊँटकटारा'।

ऊँटनाल—सज्ञा स्त्री० [हि० ऊँट+नाल] छोटी तोप जो ऊँट पर से चलाई जाती है। उ०—जमी जामगी त्यों चलें ऊँटनालें।—पद्माकर ग्र०, पृ० १०।

ऊँटनी—सज्ञा स्त्री० [स० उष्ट्री] मादा ऊँट [को०]।

यौ०—ऊँटनी सवार=साँडनी सवार। सदेशवाहक। हरकारा।

ऊँटवान—सज्ञा पुं० [हि० ऊँट+वान (प्रत्य०)] ऊँट चलानेवाला।

ऊँठ०—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ऊँट'। उ०—तोप हजार पचीस री, भार तणाँ सो ऊँठ।—रा० रू०, पृ० २७२।

ऊँडा^१०—सज्ञा पुं० [स० कुड] १ वह वस्तु जिसमें घन रखकर भूमि में गाड़ दें। २ चह्वच्छा। तहखाना। उ०—(क) है कोई मुसलमान समभाव। ई मन चंचल चार पाहरू छूटा हाथ न आवै। जोरि जोरि घन ऊँडा गाडे जहाँ कोई लेन न पावै।—कवीर (शब्द०)। (ख) ऊँडा चित्तसुख सम दशा साधुगण गभीर। जो घोखा विरचै नहीं सोही सत सधीर।—कवीर (शब्द०)।

ऊँडा^२—वि० गहरा। गभीर। उ०—(क) ऊँडा पाणी कोहरइ थल चढ़ि जाइ निट्ट। मारवणी कइ कारणइ देस अदीठा दिट्ट।—ढोला०, दू० ५३३। (ख) कस्तूरी कडेपरी, मेरी उडे ठाय। दरिया छानी क्यों रहै, साख मरै सब गाय।—दरिया० बानी०, पृ० ३६।

उहासना०—कि० अ० [सं० उल्हासन] प्रसन्न होना । प्रमुदित होना । उ०—जब क्रीडत जल केलि चित्त कमास उहासै ।—पृ० रा०, ५८।२ ।

उहिं—सर्व० [हि०] दे० 'वह' । उ०—सखि सौ कह सखि उहि गृह अतर । अब ते हों सोऊँ न सुततर ।—नद० ग्रं०, पृ० १४८ ।

उहीं—सर्व० [हि०] दे० 'वही' ।

उहूल०—सज्ञा स्त्री० [सं० उल्लोल] तरंग । लहर । मौज ।—डि० ।

उहौं—सर्व० [हि०] दे० 'वही' ।

उल्ल—सज्ञा पुं० [सं०] वृषभ । साँड । मृगद्वान [को०] ।

ऊ

ऊ—संस्कृत या हिंदी वर्णमाला का छठा अक्षर या वर्ण जिसका उच्चारण स्वान धोठ है । यह दो मात्राओं का होने से दीर्घ और तीन मात्राओं का होने से प्लुत होता है । अनुनासिक और निरनुनासिक के भेद से इन दोनों के भी दो दो भेद होंगे । इन वर्णों के उच्चारण में जीम की नोक नहीं लगती ।

ऊँचा—सज्ञा पुं० [हि०] 'ऊँच', 'ईँच' ।

ऊँगा—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ऊँघ' ।

ऊँगना—सज्ञा पुं० [दिश०] १ चौपायों का एक रोग जिसमें उनके कान बहते हैं और उनका शरीर ठंडा हो जाता है और खाना पीना छूट जाता है । २ बँलगाड़ी आदि की घुरी में तेल देना । ओँगना ।

ऊँगलि०—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अँगुली' । उ०—ढादस ऊँगलि सास उलटै बैठत बाय ।—प्राण०, पृ० ४१ ।

ऊँगा—सज्ञा पुं० [सं० अपामार्ग] [स्त्री० अल्पा ऊँगी] अपामार्ग । चिचडा । अज्जाभारा ।

ऊँगी—सज्ञा स्त्री० [हि०] ऊँगा चिचडी । अपामार्ग ।

ऊँघ^१—सज्ञा स्त्री० [सं० अवाङ्=नीचे मुख, प्रा० उघड=सोता है] उँघाई । निद्रागम । भ्रमकी । अर्धनिद्रा ।

ऊँघ^२—सज्ञा स्त्री० [हि० ओँगन] बँलगाड़ी के पहिए की नाभि और घुरकीली के बीच पहनाई हुई सन की गेडरी । यह इसलिये लगाई जाती है जिसमें पहिया कसा रहे और घुरकीली की रगड से कटे नहीं ।

ऊँघन—संज्ञा स्त्री० [हि० ऊँघ] ऊँघ । भ्रमकी ।

ऊँघना—कि० अ० [सं० अवाङ्=नीचे मुँह] भ्रमकी लेना । नींद में भ्रमना । निद्रालु होना ।

ऊँचा—वि० [सं० उच्च] १. ऊँचा । उपर उठा हुआ । २. बड़ा । श्रेष्ठ । उत्तम ।

यो०—ऊँच नीच=छोटा बड़ा । आला अदना ।

३ उत्तम जाति या कुल का । कुलीन । उ०—दानव, देव, ऊँच अरु नीच ।—तुलसी (शब्द०) ।

यो०—ऊँच नीच=कुलीन अकुलीन । सुजाति । उ०—वहाँ पर ऊँच नीच का कुछ भी विचार नहीं है ।

मुहा०—ऊँच नीच न सोचना=भला बुरा न सोचना । उ०—वेगम—तसवीर की जरूरत ही क्या है ? अ०—हमारी खुशी । वेगम—तुम ऊँच नीच नहीं सोचते और यह ऐव है ।—संर कु०, पृ० २६ ।

ऊँचा—वि० [सं० उच्च][स्त्री० ऊँची] १. जो दूर तक ऊपर की ओर गया हो । उठा हुआ । उन्नत । बुनद । जैसे,—ऊँचा पहाड़ । ऊँचा मकान ।

मुहा०—ऊँचा नीचा=(१) ऊबड़ खावड़ । जो समयल न हो ।

उ०—ऊँच नीच में कोई कियारी । जो उपजी सो भई हमारी ।

—(शब्द०) । (२) भला बुरा । हानि लाभ । जैसे,—मनुष्य

को ऊँचा नीचा देखकर चलना चाहिए । ऊँचा नीचा बिलाना,

सुनाना या समझाना=(१) हानि लाभ बतलाना । (२)

उलटा सीधा समझाना । बहकाना । जैसे—उसने ऊँचा नीचा

सुझाकर उसे अपने दाँव पर चढ़ा लिया । ऊँचा नीचा

सोचना या समझना=हानि लाभ विचारना । उ०—बड़ा

हुआ तो क्या हुआ बढ़ गया जैसे बाँस । ऊँच नीच समझे नहीं

किया बस का नाश ।—कवीर (शब्द०) ।

२. जिसका छोर ऊँचे तक न हो । जो ऊपर से नीचे की ओर

कम दूर तक आया हो । जिसका लटकाव कम हो, जैसे ऊँचा

कुरता, ऊँचा परदा । जैसे,—तुम्हारा अँगरखा बहुत ऊँचा है ।

३ श्रेष्ठ । महान् । बड़ा । जैसे,—ऊँचा कुल । ऊँचा पद ।

जैसे,—(क) उनके विचार बहुत ऊँचे हैं । (ख) नाम बड़ा

ऊँचा कान दोनों बूचा ।

मुहा०—ऊँचा नीचा या ऊँची नीची सुनाना=बोटी खरी सुनाना ।

भला बुरा कहना । फटकारना ।

४ जोर का (शब्द) । तीव्र (स्वर) । जैसे,—उसने बहुत ऊँचे

स्वर से पुकारा ।

मुहा०—ऊँचा सुनना=केवल जोर की आवाज सुनना । कम

सुनना । जैसे,—वह थोड़ा ऊँचा सुनता है, जोर से कहो ।

ऊँचा सुनाई देना या पड़ना=केवल जोर की आवाज सुनाई

देना । कम सुनाई पड़ना । जैसे,—उसे कुछ ऊँचा सुनाई पड़ता

है । ऊँची दुकान फोका पकवान=नाम या रूप के अनुरूप गुण

का अभाव । ऊँची साँस=लंबी साँस । दुखभरी साँस ।

ऊँचाई—सज्ञा स्त्री० [हि० ऊँचा+ई (प्रत्य०)] १. ऊपर की ओर

का विस्तार । उठान । उच्चता । बलदी । २. गौरव ।

बड़ाई । श्रेष्ठता ।

ऊँचि०—वि० [हि०] दे० 'ऊँचा' में । उ०—इहाँ ऊँचि पदवी हुती

गोपीनाथ कहाय । अब जदुकुल पावन भयो, दासी' जूठन

खाय ।—नद० ग्रं०, पृ० १८३ ।

ऊँचे १०—कि० वि० [हि० ऊँचा] १. ऊँचे पर । ऊपर की ओर । उ०—

ऊँचे चित्तै सराहियत गिरह कवूतर लेत ।—विहारी (शब्द०) ।

उसीसा^७—सज्ञा पुं० [सं० उत् + शीर्ष + क] १ सिरहाना । २ तकिया ।

उसीसी—सज्ञा स्त्री० [सं० उत्थोषक, पा० उत्सीसक, प्रा० उत्सीस = 'तकिया'] तकिया । उ०—उतनी कहत कुँवरि उयवानी । सहचरि दौरि उसीसी आनी ।—नद० ग्र०, पृ० १४१ ।

उसीसो—सज्ञा पुं० [सं० उव् + शीर्ष] तकिया । उ०—उपवहँन, उप-
धान पुनि कदुक सोई छीन । मृदुल उसीसो उठैगि कै, बैठी तिथ
रिस नीय ।—नद० ग्र०, पृ० ८१ ।

उसूल—सज्ञा पुं० [ग्र०] १ सिद्धांत । उ०—सब बातें काम के पीछे
अच्छी लगती हैं जो सब तरह का प्रबंध बंध रहा हो, काम के
उसूलो पर दृष्टि हो, भले बुरे काम और भले बुरे आदमियों
की पहचान हो, तो अपना काम किए पीछे घड़ी की दिलगी
मे कुछ बिगाड नहीं है ।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १०६ । २
दे० 'वसूल' ।

उसूली^१—सज्ञा स्त्री० [ग्र० वसूली] उगाहना । मालगुजारी या अन्य
कर अथवा ऋण दिया हुआ धन वसूल करना ।

उसूली^२—वि० सिद्धांतवादी । वसूल का पक्का ।

उसेना^७—क्रि० सं० [सं० उष्ण] उबालना । उसनना । पकाना ।

उसेय—सज्ञा पुं० [देश०] खसिया और जयतिया की पहाडियों पर
होनेवाला एक प्रकार का बाँस जिसकी ऊँचाई ५०-६० फुट,
घेरा ५-६ इंच और दल की मोटाई एक इंच से कुछ कम होती
है, इससे दूध या पानी रखने के चोंगे बनाते हैं ।

उस्तति^७—सज्ञा स्त्री० [हिं० उ (आविस्तरागम) + सं० स्तुति]
प्रार्थना । विनय । स्तुति । उ०—मेरी यह इच्छा है जो सतिगुरु
जी की उस्तति सुणाईए जी ।—प्राण०, पृ० २२० ।

उस्तुरा—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उस्तुरा' ।

उस्तवार—वि० [फा०] दृढ़ । पक्का । उ०—खुदा सूँ जो कोई निपट है,
उस्तवार । सो उन पर खुदा भीत धरता है प्यार ।—
दक्खिनी०, पृ० २६२ ।

उस्ताद^१—सज्ञा पुं० [फा०] [स्त्री० उस्तानी] गुरु । शिक्षक ।
अध्यापक । मास्टर ।

उस्ताद^२—वि० १. चालाक । छली । धूर्त । गुरुघटाल । उ०—वह बड़ा
उस्ताद है, उससे बचे रहना । २. निपुण । प्रवीण । विज्ञ ।
दक्ष । जैसे,—इस काम में वह उस्ताद है । उ०—तब उसको
वे अपने उस्ताद के निकट ले गए ।—कबीर सा०, पृ० ६८२ ।
उस्तादी—सज्ञा स्त्री० [फा०] १ गुरुमाई । शिक्षक की वृत्ति ।
मास्टर । २. चतुराई । निपुणता । ३. विज्ञता । ४. चालाकी ।
धूर्तता ।

उस्तानी—सज्ञा पुं० [फा०] १ गुरुमानी । गुरुपत्नी । २ जो स्त्री
किसी प्रकार की शिक्षा दे । ३. चालाक स्त्री । ठगिन ।

उस्तुरा—सज्ञा पुं० [फा०] छुरा । अस्तुरा । बाज़ बनाने का औजार ।
उस्तरस्मि^७—सज्ञा पुं० [सं० उष्णरश्मि] सूर्य । उ०—मिहिउ तिमिर
हर प्रभाकर उस्तरस्मि तिममस ।—मनेकार्य०, पृ० १०३ ।

उस्साक^७—सज्ञा पुं० [ग्र० उस्साक, इस्क का बहुव०] १. प्रेमी
लोग । २. राग के एक स्थान का नाम जो दो घड़ी दिन रहते

गाया जाता है । उ०—गोरे दे ना लयारदी वातें दिल उस्साक
दुखौंदा कातूँ ।—नट०, पृ० १२८ ।

उस्ती^१—सज्ञा पुं० [सं०] १ किरण । मरीचि । रश्मि । २. सांड ।
वृषभ । ३. देव । ४. सूर्य । ५. दिन । ६. दो अश्विनी-
कुमार [को०] ।

उस्ती^२—वि० १. प्रभावान् । तेजस्वी । चमकीला । २. प्रभात
सवधी [को०] ।

उस्ती—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्रातःकाल । उपाकाल । २. प्रकार । ३.
चमकीला तारा । ४. गाय [को०] ।

उस्त्रिक—सज्ञा पुं० [सं०] १ बछड़ा । छोटा बैल । २. बूढ़ा बैल [को०] ।

उस्त्रिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] गाय [को०] ।

उस्त्रिय—सज्ञा पुं० [सं०] १ बैल । २. देवता [को०] ।

उस्त्रिया—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ गाय । २. प्रभा । ३. बछड़ा । ४.
दूध [को०] ।

उस्वाँस^७—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उसाम' । उ०—स्वाँस उस्वाँस का
प्रेम प्याला पिया, गगन गरजै जहाँ बजै तूरा ।—कबीर श०,
भा० १, पृ० ६३ ।

उस्वास^७—सज्ञा पुं० [सं० उच्छ्वास] दे० 'उच्छ्वास' । उ०—स्वास
उस्वास उठै सब रोम चलै दुग नीर प्रबडित धारा । सुदर
कौन फरै नवधा विधि छाकि पर्यो रस पी मतवारा ।—
सुदर ग्र०, भा० १, पृ० २५ ।

उस्सास—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उच्छ्वास' । उ०—नाम ते अज्जपा
जाप ओऊँ । नाम तें सास उस्सास सोऊँ ।—राम०
धर्म०, पृ० १२६ ।

उस्सीस—सज्ञा पुं० [सं० उपशीर्षक, उ० उसीस] दे० 'उसीसा' ।
उ०—नर धर वर मसनद सीस उस्सीस धराइय ।—
सुजान०, पृ० २३ ।

उह^७—सर्व० [हिं०] दे० 'वह' । उ०—उहै ब्रह्म गुरु सत उह वस्तु
विराजत येक । वचन विलास विभाग त्रय बधन भाव विवेक ।
—सुदर ग्र०, भा० १, पृ० ४ ।

उह^२^७—सर्व० [हिं०] दे० 'उस' । उ०—सो वह लरिकिनी कौ
दुख देखि कै श्रीनाथ जी ने श्रीगुमाई जी सो कह्यो, जो-वह
बनिया बैणव की वेटी उह गाँव मे है । सो बाकी दुख मो तें
सह्यो जात नाही ।—दो सो वाचन०, भा० २, पृ० ३८ ।

उहदा^१—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ओहदा' ।

उहदेदारी—सज्ञा पुं० [हिं०] 'ओहदेदार' ।

उहवाँ—क्रि० वि० [हिं० वहाँ] वहाँ । उस जगह । उस स्थान
पर । उ०—चित चोखा मन निर्मला, दयावत, गभीर । सोई
उहवाँ विचरई, जेहि सतगुरु मिलै कबीर ।—कबीर सा०
सं०, पृ० १० ।

उहाँ^७—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'वहाँ' । उ०—तब नारायनदास
उहाँई स्नान करे ।—दो सो वाचन०, भा० १, पृ० १०६ ।

उहार^७—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ओहार' । उ०—नारि उहार
उधारि दुलहिनिन्ह देखहि । नैन लाहु लहि जनम सफल करि
लेखहि ।—तुलसी ग्र०, पृ० ६३ ।

उसनना—क्रि० सं० [सं० उष्ण] १ उबालना । पानी के साथ आग पर चढ़ाकर गरम करना । २ पकाना ।

उसनाना—क्रि० सं० [हिं० उसनना का प्रेरणा०] उबलवाना । पकवाना ।

उसनीस(उ)—सज्ञा पुं० [सं० उष्णीष] दे० 'उष्णीष' ।

उसनोदक(उ)—सज्ञा पुं० [सं० उष्णोदक] दे० 'उष्णोदक' । उ०—अष्टमघ उसनोदक सो असनान कराए ।—नद० ग्र०, पृ० २०४ ।

उसमार्—सज्ञा पुं० [अ० वसमह] उबटन । बटना ।

उसमान—सज्ञा पुं० [अ०] मुहम्मद के चार सखाओं में से एक ।

उसरना^१—क्रि० अ० [सं० उत् + सरण (जाना), प्रा० उत्सर] १.

हटना । टलना । दूर होना । स्थानांतरित होना । उ०—(क) कर उठाय धूँधुट करत उसरत पट गुफगीट । सुख मोटे लूटी ललन लखि ललना की लोट ।—विहारी (शब्द०) । (ख) उसरि बैठि कुकि कागरे जो बलबीर मिलाय । तौ कचन के कागरे पालू छोर पिलाय ।—सं० सप्तक०, पृ० २५४ । (ग) उनका गुण और फल नित्य के कामों में ऐसे अधिक विस्तार से पाया जाता है कि जिसका ध्यान से उतरना असंभव सा है ।—गोल विनोद (शब्द०) । २ बीतना । गुजरना । उ०—सघन कुज ते उठे भोर ही श्यामा श्याम खरे । जलद नवीन मिली मनो दामिनि वरपि निशा उसरे ।—सूर (शब्द०) ।

उसरना^२—क्रि० सं० [सं० विस्मरण] विस्मृत होना । भूलना । याद न रहना ।

उसवुंघ(उ)—सज्ञा पुं० [सं० उपवुंघ] दे० 'उपवुंघ' । उ०—ग्रावक, वहिन दहन, ज्वलन, शिखी, धनजय, होइ । सक, उसवुंघ, वायुसख वीरहोव पुनि ओइ ।—नद० ग्र०, पृ० ६४ ।

उसरीडी—सज्ञा स्त्री० [देश०] १ एक चिड़िया । २ ऊसर से उगने वाली एक प्रकार की घास जो सूख जाने पर कड़ी हो जाती है और पँरों में चुभती है ।

उसलना(उ)—क्रि० अ० [सं० उत् + सरण, प्रा० उत्सर] १ दे० 'उसरना' । उ०—ऐल फँल मैल खलक में गैल गैल गजन की ठेल पेल सैल उसलत है । तारा सो तरनि धूरि धारा में लगत जिमि थारा पर पारा परावार यों हलत है ।—भूषण ग्र० पृ० ८८ । २ तरना । उतराना । पानी के भीतर से ऊपर आना । उ०—टिंग बूढा उसला नही, यही अँदेशा मोहि । सलिल मोह की धार में, क्या निद आई तोहि ।—कवीर (शब्द०) ।

उसवास(उ)—सज्ञा पुं० [सं० उच्छ्वास, प्रा० उत्सास = ऊँची साँस] १. उद्वेग । आवेश । चित्त की चंचलता । उ०—जन जीवन उसवास मिटिगा, दरस सतगुरु पायो ।—जग० बानी, पृ० ४५ । २. दुःख । उ०—कर उसवास मन में देखे यह सुगध धौ कहा बसाना ।—कवीर (शब्द०) ।

उससना(उ)—क्रि० सं० [सं० उत् + सरण] १, खिसकना । टलना । स्थानांतरित होना । उ०—(क) गोरे गात उससत जो असित पट और प्रगट पहिचान । नैन निकट ताटक की शोभा मडल कविन बखान ।—सूर० (शब्द०) । (ख) बैसिये सु हिलि मिलि, बैसी पिय संग, अग मिलत न कैहूँ मिस, पीछे

उससति जाति ।—रसकुसुमाकर (शब्द०) । २ साँस लेना । दम लेना । उ०—एक उसास ही के उससे सिगरेई मुग्ध विदा कर दीन्ह ।—केशव (शब्द०) । तैयारी करना । बनाना । उ०—कूप उसास्यो कुम मैं पानी भरयो अटूट । सुदर तृपा सबै गई घाए चारघो पूट ।—सुदर० ग्र०, भा २, पृ० ७६० ।

उसाँस(उ)—सज्ञा पुं० [सं० उच्छ्वास, (उ) उसाँस] दे० 'उसास' ।

उसाना(उ)—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'ओसाना' ।

उसारना(उ)—क्रि० सं० [सं० उद् + सरण (जाना)] १ उखाड़ना । हटाना । टालना । उ०—(क) विहँसि रूप वसुदेव निहार । कोटि जामिनी तिमिर उसार ।—नाल (शब्द०) । (ख) रछी कपि झुडन के मुडन उतारो कहो कोटले उसारो पैन हारों रहो टेक ही ।—हनुमान (शब्द०) । २ मकान अथवा दीवार आदि खड़ी करना ।

उसारा(उ)—सज्ञा पुं० [सं० उपशालाअव] दे० 'ओसारा' ।

उसरि—सज्ञा स्त्री० [सं० उपशालाअव, प्रा० ओसार] दे० 'ओसारा' । उ०—कहा चुनाव मड़ियाँ, लवा भीति उसारि । घर तो साढ़ें तीन हाथ, घना तो पीने चार ।—कवीर सा०, पृ० १५ ।

उसालना(उ)—क्रि० सं० [सं० उत् + सारण] १. उखाड़ना । २. हटाना । टलना । ३. भगाना । उ०—प्रपने वरणधर्म प्रति पालो । साहन के दल दौरि उसालो ।—लाल (शब्द०) ।

उसास—सज्ञा स्त्री० [हिं० उ + सास (सं० श्वांस)] १ लवी साँस । ऊपर को चढ़ती हुई साँस । उ०—(क) वियुरयो जावक सौति पग, निरखि हँसी गहि गाँस । सलज हँसीही लखि लियो, आधी हँसी उसास ।—विहारी (शब्द०) । (ख) अजब जोगिनी सी सबै, झुकी परत चहुँ पास । करिहँ काय प्रवेश जनु, सब मिलि ऐँचि उसास ।—(शब्द०) । २ साँस । श्वास । उ०—पल न चलें जकि सी रही, थकि सी रही उसास । अब ही तन रित्तयो कहा, मन पठयो केहि पास ।—विहारी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—छोड़ना ।—भरना ।—लेना ।

३. दुःखसूचक या शोकसूचक श्वास । ठंडी साँस ।

उसासी—सज्ञा स्त्री० [हिं० उसास] दम लेने की फुरसत । अवकाश । छुट्टी । उ०—केहू नहि गिरिराजहि धारा । हमरै सुत भारू कह ठहरा । लेहु लेहु अब ते कोइ लेहु । लालहि नेकु उसासी देहु ।—विश्राम (शब्द०) ।

उसिनना—क्रि० सं० [सं० उष्ण] दे० 'उसनना' ।

उसिर(उ)—सज्ञा पुं० [सं० उशीर] दे० 'उशीर' ।—उसिर, गुलाब नीर, करपूर परसत, विरह अनल ज्वाल जालन जगतु है ।—मति० ग्र०, पृ० २६५ ।

उसीर(उ)—सज्ञा पुं० [सं० उशीर] दे० 'उशीर' । उ०—(क) हे प्रियवदा तू किसके लिये उसीर का लेप और नालसहित कमल पत्ते लिए जाती है ।—शकुंतला, पृ० ४३ । (ख) चंदन लेप, उसीर रस उलटो जारत गात ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ३८७ ।

उसीला(उ)—सज्ञा पुं० [अ० वसीलह] दे० 'वसीला' ।

उसीस(उ)—सज्ञा पुं० [सं० उत्सीयक] तकिया । उपधान (को०) ।

उपाकाल—सज्ञा पुं० [मं०] भोर । प्रभात । तडका ।

उपापति—सज्ञा पुं० [सं०] अनिरुद्ध ।

उषारमण—सज्ञा पुं० [सं०] अनिरुद्ध [को०] ।

उपित^१—वि० [सं०] १ जला हुआ या दग्ध । २ वसा हुआ ।
आवाद । ३ जो ताजा या टटका न हो । वासी । ४. फुर्तीला
तेज [को०] ।

उपित^२—सज्ञा पुं० वस्ती या आवादी [को०] ।

उपीर—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उशीर' [को०] ।

उपीरक^१—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उशीर' [को०] ।

उपीरक^२—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उशीर' [को०] ।

उपीरक^३—वि० [सं०] उशीरविक्रेता । खस बेचनेवाला [को०] ।

उषेय—सज्ञा पुं० [सं०] अनिरुद्ध [को०] ।

उष्टर(पु)—सज्ञा पुं० [सं० उष्ट्र] दे० 'उष्ट्र' । उ०—सूकर श्वान सियाल
रासभा उष्टर जानो । हरि वेमुख मति अघ काल भव्य उनही
मानो ।—राम० धर्म०, पृ० २४५ ।

उष्ट्र—सज्ञा पुं० [सं०] १ ऊँट । क्रमेलक । २ रथ । ३ डिल्ल या
ककुद्वाला साँड़ । ४ महिष । भैंसा । ५ बैलगाड़ी [को०] ।

उष्ट्रकांडी—सज्ञा स्त्री० [सं० उष्ट्रकाण्डी] १ उटाँटी नाम का पौधा ।
२ रक्तपुष्पी [को०] ।

उष्ट्रगीव—सज्ञा पुं० [सं०] अश्व नामक रोग । ववासीर का मर्ज ।

उष्ट्रपादिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] मदनमाली नामक पुष्प या लता [को०] ।

उष्ट्रिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ ऊँटनी । २ शराव रखने का एक
वर्तन [को०] ।

उष्ट्री—सज्ञा स्त्री० [सं०] ऊँटनी । मादा ऊँट [को०] ।

उष्ण^१—वि० [सं०] १ तप्त । गरम । २ तासीर में गरम । उ०—
यह औषध उष्ण है । ३ सरगरम । फुर्तीला । तेज ।
आलस्यरहित ।

उष्ण^२—सज्ञा पुं० १ ग्रीष्म ऋतु । २ प्याज । ३ एक नरक का नाम ।

उष्णक^१—सज्ञा पुं० [सं०] १. ग्रीष्म काल । २ ज्वर । बुखार ।

उष्णक^२—वि० १ गरम । तप्त । २ ज्वर युक्त । ३. तेज । फुरतीला ।

उष्णकटिबंध—सज्ञा पुं० [सं० उष्ण कटिबन्ध] पृथ्वी का वह भाग
जो कर्क और मकर रेखाओं के बीच में पड़ता है । इसकी
चौड़ाई ४७ अंश है अर्थात् भूकम्प रेखा से २३½ अंश उत्तर
और २३½ अंश दक्षिण । पृथ्वी के इस भाग में गरमी बहुत
पड़ती है ।

उष्णकर—सज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०] ।

उष्णधन—सज्ञा पुं० [सं०] छाता । छतरी । आतपत्र ।

उष्णता—सज्ञा स्त्री० [सं०] गरमी । ताप ।

उष्णत्व—सज्ञा पुं० [सं०] गरमी ।

उष्णानदी—सज्ञा स्त्री० [सं०] वैतरणी नामक नदी [को०] ।

उष्णवारण—सज्ञा पुं० [सं०] छत्र । छाता । छतरी [को०] ।

उष्णा—सज्ञा स्त्री० [सं०] गरमी [को०] ।

उष्णालु—वि० [सं०] १ ताप से पीड़ित । गरमी खाया हुआ । २.
गरमी सहन न कर सकनेवाला [को०] ।

उष्णासह—सज्ञा पुं० [सं०] जाड़ा । जाड़े की ऋतु [को०] ।

उष्णिक—सज्ञा पुं० [सं० उष्णिक] एक छद जिसके प्रत्येक चरण में
सात अक्षर होते हैं । यह वैदिक छद है । प्रस्तार से इसके
१२८ भेद होते हैं ।

उष्णिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ माँड जो भात के पक जाने पर उससे
गाढ़े पानी के रूप में निकाला जाता है । २ लम्पी । उ०—
मध्यम वर्ग यवागू (४।२।१३६ लम्पी) भी खाता था । इसी
का दूसरा नाम उष्णिका (५।२।७१) था ।—सपूर्णा० अभि०
प्र०, पृ० २४६ ।

उष्णिमा—सज्ञा स्त्री० [सं० उष्णिमन्] गरमी । उष्णता [को०]

उष्णीप—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ पगड़ी । साफा । २ मुकुट । ताज ।
३ महल का गुवद । प्रासादशिखर [को०] ।

उष्णीपी^१—वि० [सं० उष्णीसिन्] उष्णीप या मुकुट धारण करने
वाला [को०] ।

उष्णीपी^२—सज्ञा पुं० १ शिव का नाम । २. एक चक्राकार
भवन [को०] ।

उष्म—सज्ञा पुं० [सं०] १ गर्मी । ताप । २ घूप । ३ गरमी की
ऋतु । वसत [को०] । ५ क्रोध [को०] ।

उष्मक—सज्ञा पुं० [सं०] ग्रीष्म ऋतु । गरमी का मौसम [को०] ।

उष्मज^१—सज्ञा पुं० [सं०] छोटे छोटे कोड़े जो पसीने, मेल और सड़ी
गली चीजों से पैदा हो जाते हैं । जैसे—खटमल, मच्छर,
किलनी, जूँ, चीलर इत्यादि ।

उष्मज^२—वि० गर्मी या पसीने के कारण उत्पन्न होनेवाले [को०] ।

उष्मप—सज्ञा पुं० [सं०] १ ऋतु के पुत्र का नाम । २ पितृदेव ।
श्राद्ध ग्रहण करनेवाला । पितृपितामहादि [को०] ।

उष्मस्वेद—सज्ञा पुं० [सं०] वाष्पस्नान । गरम किए हुए जल में
स्नान [को०] ।

उष्मा—सज्ञा स्त्री० [सं० उष्मन्] १ गर्मी । ग्रीष्म ऋतु । २ घूप ।
३. रिस । क्रोध । ४ उष्म वर्णं ण् स, ह अक्षर [को०] ।

उष्मागम—सज्ञा पुं० [सं०] ग्रीष्म ऋतु [को०] ।

उष्मान्वित—वि० [सं०] क्रुद्ध । क्रोध में भरा हुआ [को०]

उस—सर्व० उभ० [सं० अमुष्य > प्रा० अमुस्स, अउस्स अथवा सं०
*अवस्य] यह शब्द 'वह' शब्द का वह रूप है जो विभक्ति
लगने पर बनता है, जैसे, उसने, उसको, उससे, इसमें इत्यादि ।

उसकन—सज्ञा पुं० [सं० उत्कर्षण = खींचना, रगड़ना, अथवा देशो
(वै० रूप उकसन)] घास पात या पयाल का वह पीटा
जिसमें बालू आदि लगाकर बरतन माँजते हैं । उसन ।

उसकना(पु)—क्रि० अ० [हि०] दे० 'उकसना' ।

उसकाना(पु)—क्रि० सं० [हि०] दे० 'उकसाना' ।

उसकारना(पु)—क्रि० सं० [हि०] दे० 'उकसाना' । उ०—टेढ़ी पाग
बाँधि बार बार ही मुरेरे मूँछ बाँह उसकारे अति धरत गुमान
है ।—सुंदर०, प्र०, भा० २, पृ० ४२२ ।

उसन(पु)—सज्ञा पुं० [सं० उष्ण] उष्ण । गरम । उ०—सीतर हुत
सो गा तुम्ह सगा, रहो उसन मम दाहृत अगा ।—चित्रा०
पृ० १६७ ।

उल्हवण(७)—वि० [सं० उत् + लस] उल्लसित करनेवाला। उ०—
चदन देह कपूर रस सीतल गंग प्रवाह, मनरजन तन उल्हवण
कदे मिलेसी नाह।—डोला०, पृ० १६१।

उल्हास(७)—सज्ञा पुं० [सं० उल्लास] उल्लास। आनंद। उ०—
सद्गुरु बहुत भाति समझायो भक्ति सहित यह ज्ञान उल्हास।
—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० १५७।

उवठान(७)—सज्ञा पुं० [सं० उपम्यान, प्रा० उवठान] बैठने का कार्य
या स्थिति। एक स्थान में विशेष रूप से स्थित रहना। उ०—
इद्रावति मन मो वसी, की मन सो उवठान। है तसो वह की
नहीं, जैसो कहै वखान।—इंद्रा०, पृ० ६९।

उवना^१(७)—क्रि० अ० [हि०] दे० 'उन्नना', 'उपना'। उ०—गड गांजर
तैं कूच कर, बीचहि सिवर कराय। दिनकर उवत सो बलिवा,
सायागड कहै ग्राय।—प० रा०, पृ० १५६।

उवना^२(७)—क्रि० अ० [सं० उवय, प्रा० उवय] दे० 'ऊमना'। उ०—
पियहि निरखि ब्रजवाल उवी सब एकहि काला। ज्यों प्रानन्हि
कैं आए उभकहि इंदिय जाला।—नंद ग्रं०, पृ० ४५।

उवनि(७)—सज्ञा स्त्री० [हि० उवना] उदय। प्रकाश। उ०—चद से
वदन मानु भई वृषमानु जाई उवनि लुनाई की लवनि की सी
लहरी।—देव (शब्द०)।

उवानी—सज्ञा स्त्री० [हि० अवानी] आगमन। उ०—जवई सरद
उवानी जानी। कुँवरि सहचरी तन मुसुकानी।—नंद० ग्रं०,
पृ० ३४।

उवारा—सज्ञा पुं० [हि० उवारना] रक्षा। हिफाजत। देखमाल।
उ०—इन कहि सोंप दीन्ह जिव भारा। सब जीवन को करे
उवारा।—कवीर सा० पृ० ६६६।

उवारी—सज्ञा स्त्री० [दिश०] कर। महसूल। मालगुजारी। उ०—
वारमल मे निकट का सारा इलाका 'दासपल्ला' कहलाता
था जो एक धनिक जमींदार के अधीन था। यह जमींदार
मगठो को कोई उवारी नहीं देता था।—शुक्ल अभि० ग्रं०,
पृ० ११६।

उशत्—वि० [सं०] १. सुंदर। नेत्ररजन। २. प्रिय। मनचाहा। ३.
पवित्र। निर्मल। निष्पाप। ४. अपवित्र। अश्लील [को०]।

उशती^१—वि० स्त्री० [सं०] दे० 'उशत्'।

उशती^२—सज्ञा स्त्री० १. कठवी बात। ऐसी उक्ति जिससे श्रोता के मन
को चोट पहुँचे। अशुभ कथन [को०]।

उशना—सज्ञा पुं० [सं० उशनस] शुक्राचार्य का एक नाम।

उशवा—सज्ञा पुं० [अ०] एक पेड़ जिसकी जड़ रक्तशोधक है। हकीम
लोग इसका व्यवहार करते हैं।

उशाना—सज्ञा स्त्री० [वं०सं०] १. इच्छा। अभिलाषा। चाहना।
२. सोमलता जिससे सोमरस निकाला जाता है। ३. वृद्ध की
एक पत्नी का नाम [को०]।

उशिज—सज्ञा पुं० [सं०] कक्षीवान् के पिता का नाम [को०]।

उशी—सध स्त्री० [सं०] इच्छा। कामना। स्वादिष्ट [को०]।

उशीनर—सज्ञा पुं० [मं०] १. प्राचीन भारत के अतर्गत एक राज्य
२-१५

का नाम। गांधार देश या मध्यदेश। उशीनर देश का
निवासी [को०]।

उशीनरी—सज्ञा स्त्री० [सं०] उशीनर देश की रानी। उशीनरवासियो
की शासिका [को०]।

उशीर—सज्ञा पुं० [सं०] खस। गाँडर या कतरे की जड़।

यौ०—उशीर बीज = हिमालय का एक खड।

उशीरक—सज्ञा पुं० [सं०] उशीर। खस।

उशीरिक—वि० [सं०] खस बेचनेवाला। उशीर का व्यापारी [को०]।

उशीरी^१—सज्ञा स्त्री० [सं०] छोटे प्रकार की घास [को०]।

उशीरी^२—वि० उशीर रखनेवाला [को०]।

उशन(७)—वि० [सं० उष्ण] गरम। तापमय। जलता हुआ। उ०—
उशन शीत नाही तहि घामा। सूर्ज जपत नही तहि कामा।—
प्राण०, पृ० २६८।

उश्वास(७)—सज्ञा पुं० [सं० उच्छ्वास] दे० 'उच्छ्वास'। उ०—श्वास
उश्वासा सुभिरले दादू नाम कवीर।—कवीर म०, पृ० ४१३।

उश्शाक—सज्ञा पुं० [अ० उश्शाक, आशिक का बहुव०] प्रेमी लोग।
प्रेम करनेवाले। उ०—फोज उश्शाक देख हर जानिव।
नाजनी साहब दिमाग हुआ।—कविता को०, भा० ४, पृ० ६।

उपे—सज्ञा पुं० [सं०] १. पांशुज लवण। खारी मिट्टी से निकाली
हुआ नमक। २. गुग्गुल। ३. रात्रिशेष। प्रभात। सवेरा।
दिन। ४. कामी पुरुष। ५. खारी मिट्टी [को०]।

उपेण—सज्ञा पुं० [सं०] १. काली मिर्च। मरीच। २. पिप्पलीमूल।
पीपर [को०]।

उपेणा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. पीपर। पिप्पलीमूल। २. सोठ।
शुठ [को०]।

उपेती—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उशती' [को०]।

उपना—क्रि० अ० [सं० उप = 'गरम होना'] तपना। उ०—ते उस्वास
अगिनि की उपी। कुँवरि क देवी ज्वालामुखी।—नंद० ग्रं०,
पृ० १३४।

उपेप—सज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. अग्नि। ३. चित्रक [को०]।

उपेवुध^१—सज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि। २. चीते का पेड़। ३. चीता
(को०)। ४. वृक्षा। शिशु (को०)।

उपेवुध^२—वि० प्रातःकाल जागनेवाला। उपा वेला में निद्रा त्याग कर
उठ जानेवाला (को०)।

उपस्—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उपा'।

उषसी—सज्ञा स्त्री० [सं०] दिनात। संध्या। द्वाभा [को०]।

उषसुत—सज्ञा पुं० [सं०] पाशुज लवण। नोनी मिट्टी से निकाला
हुआ नमक।

उपा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रभात। वह समय जब दो घंटे रात रह
जाय। ब्राह्म वेला। २. अरुणोदय की लाली। ३. बाणामुर
की कन्या जो अनिरुद्ध को व्याही गई थी।

यौ०—उपाकाल। उपापति।

उपाकल—सज्ञा पुं० [सं०] मुर्गा। कुक्कुट [को०]।

उल्लिखित—वि० [स०] १ खोदा हुआ। उत्कीर्ण। २ छीना हुआ। खरादा हुआ। ३ ऊपर लिखा हुआ। ४ खींचा हुआ। चित्रित। नक्श किया हुआ। लिखित।

उल्लो—सज्ञा स्त्री [स०] सघ। गिरोह [को०]।

उल्लोढ—वि० [स०] १ रगड़कर साफ किया हुआ। खराद पर चढ़ाया हुआ। २ पालिश किया हुआ [को०]।

उल्लुंचन—सज्ञा पुं० [स० उल्लुञ्चन] १ उखाड़ना। २ काटना। ३ बाल नोचना या खींचना [को०]।

उल्लुंठन—सज्ञा पुं० [म० उल्लुण्ठन] १ कुढ़कना। २ आक्षेप। करना। व्यग्य करना [को०]।

उल्लुंठा—सज्ञा स्त्री [स० उल्लुण्ठा] १ लुढ़कन। २ आक्षेप। काकूति। व्यग्य [को०]।

उल्लुंठित—वि० [स० उल्लुण्ठित] रगड़ा हुआ। घर्षित [को०]।

उल्लू—सज्ञा पुं० [स० उल्लू] १. दिन में न देखनेवाला एक पक्षी। कुचकुचवा। कुम्हार का ढिगरा। खूमट।

विशेष—यह प्रायः भूरे रंग का होता है। इसका भिर बिलनी की तरह गोल और आँखें भी उसी की तरह बड़ी और चमकीली होती हैं। ससार में इसकी सँकड़ो जातियाँ हैं पर प्रायः सब की आँखों के किारे पर भौरी के समान चारो ओर ऊपर को फिरे होते हैं। किसी किसी जाति के उल्लू के सिर पर चोटी होती है और किसी किसी के पैर में अँगुलियों तक पर होते हैं। ५ इंच से लेकर २ फुट तक ऊँचे उल्लू ससार में होते हैं। उल्लू की चोच कँटिए की तरह टेढ़ी और नुकीली होती है। किसी किसी जाति के कान के पास के पर ऊपर को उठे होते हैं। सब उल्लूओं के पर नरम और पजे दृढ़ होते हैं। ये दिन को छिपे रहते हैं और सूर्यास्त होते ही उड़ते हैं और छोटे बड़े जानवरों और कीड़े मकोड़ों को पकड़कर अपना पेट भरते हैं। इसकी बोली भयावनी होती है और यह प्रायः ऊँड़ स्थानों में रहता है। लोग इसकी बोली बुरा समझते हैं और इसका घर में या गाँव में रहना अच्छा नहीं मानते। तांत्रिक लोग इसके मास का प्रयोग उच्चाटन आदि प्रयोगों में करते हैं। प्रायः सभी देश और जातिवाले इसे अभक्ष्य मानते हैं।

मुहा०—उल्लू का गोश्त खिलाना=वेवकूफ बनाना। मूर्ख बनाना।

विशेष—लोगों की धारणा है कि उल्लू का मास खाने से लोग मूर्ख हो जाते या मूर्ख बहरे हो जाते हैं।

उल्लू बनाना=किसी को वेवकूफ साधित करना। उ०—हम तुम मिल जाय तो पी वारह है। इनको मिल के उल्लू बनाओ।—फिसाना०, पृ० १६५। उल्लू बोलना=उजाड़ होना। उजड़ जाना। उ०—किसी समय यहाँ उल्लू बोलेंगे (शब्द०)।

२. निबुद्धि। वेवकूफ। मूर्ख।

क्रि० प्र०—करना।—बनना।—बनाना।—होना।

उल्लेख—सज्ञा पुं० [स०] [वि० उल्लेखक, उल्लेखनीय, उल्लेखित, उल्लेख्य] १ लिखना। लेख। २ वर्णन। चर्चा। जिक्र। जैसे,—इस बात का उल्लेख ऊपर हो चुका है।

क्रि० प्र०—करना। होना।

३ एक काव्यालंकार जिसमें एक ही वस्तु का अनेक रूपों में दिखाई पड़ना वर्णन किया जाय।

विशेष—इसके दो भेद हैं, प्रथम और द्वितीय। प्रथम—जहाँ अनेक जन एक ही वस्तु को अनेक रूपों में देखें वहाँ प्रथम भेद है, जैसे,— वारन तारन वृद्ध तिय, श्रीपति जुवतिन भूमि। दर्शनीय वाला जनन लखे कृष्ण रंगभूमि (शब्द०)। अथवा जानत सीति अनीति है, जानत सखी सुनीति। गुरुजन जानत लाल है, प्रीतम जानत प्रीति (शब्द०)। पहले उदाहरण में एक ही कृष्ण को वृद्धा स्त्रियों ने हाथी का उद्धार करनेवाला और युवतियों ने लक्ष्मी के साथ रमण करनेवाला देखा और दूसरे उदाहरण में एक ही नायिका को सीत ने अनीति रूप में और गुरुजनों ने लज्जा रूप में देखा। पहला उदाहरण शुद्ध उल्लेख का है क्योंकि उसमें और अलंकार का आभास नहीं है, पर दूसरा उदाहरण सकीर्ण उल्लेख का है क्योंकि एक ही नायिका में सुनीति और लज्जा आदि कई अन्य वस्तुओं का आरोप होने के कारण उसमें रूपा अलंकार भी मिल जाता है। द्वितीय—जहाँ एक ही वस्तु को एक ही व्यक्ति कई रूपों में देखें वहाँ द्वितीय भेद होता है। जैसे,—कजन अमलता में, खजन चपलता में, छलता में भीन, कलता में बड़े ऐन के।—यामे भूरी है न प्यारे ही में आह लागिवे मे प्यारी जू के नैन ऐन तीखे वान मेन के (शब्द०)।

उल्लेखन—सज्ञा पुं० [स०] १ लिखना। उल्लेख करना। २ चित्रकारी करना। ३ रेखाएँ खींचना। ४ रगड़ना। खरोचना। ५ वमन करना। ६ गाड़ना ७ खड़ा करना। ऊपर उठाना [को०]।

उल्लेखनीय—वि० [स०] लिखने योग्य। उल्लेख योग्य।

उल्लेखी—वि० [स० उल्लेखिन] १ विदीर्ण करनेवाला। फाड़नेवाला। २ वेग से चलनेवाला।

उल्लेख्य—वि० [स०] १ उल्लेख करने योग्य। लिखने योग्य। २ कहने योग्य। कथनीय। बताने योग्य [को०]।

उल्लोच—सज्ञा पुं० [स०] १ वितान। चद्रातप। चंदोवा। २. आच्छादन। व्यवधान [को०]।

उल्लोल^१—वि० [स०] जोरो से हिलता या कांपता हुआ। अतिशय चंचल [को०]।

उल्लोल^२—सज्ञा पुं० ऊँची लहर। कल्लोल। हिलोरा। हिल्लोल [को०]।

उल्व—सज्ञा पुं० [स०] १ भिल्ली जिसमें बच्चा बँधा हुआ पैदा होता है। आँवला। अँवरी। २ गर्भाशय।

उल्वण^१—वि० [स०] अद्भुत। विलक्षण। उ०—उल्वण, दारण, घोर अरु उत्कट, उग्र, कराल।—नद० ग्र० पृ०, १११।

उल्वण^२—सज्ञा पुं० [स०] १ आँवल। वह हल्की भिल्ली, जो बच्चे को, जब वह माँ के गर्म में रहता है, चारो ओर से घेरे रहती है। उल्व। अँवरी २ वशिष्ठ के एक पुत्र का नाम।

उल्लहना^१—क्रि० स० [हि०] दे० उल्लहना। उ०—नददास ज्यो स्याम तमालहि, कनकलता उल्लहए।—नद० ग्र०, पृ० ३४८।

उल्लव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वह भिल्ली, जिसमें गर्भस्थ शिशु लिपटा रहता है। २. गर्भाशय। ३. गुफा। कदरा [को०]।

उल्लवण^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नृत्य के समय की हाथों की एक मुद्रा। २. गर्भाशय। आँव [को०]।

उल्लवण^२—वि० १. प्रचुर। पुष्कल। अत्यधिक। २. दृढ़। शक्तिमान। बलिष्ठ [को०]।

उल्लवण^३—क्रि० वि० जोरों से। प्रबल रूप में [को०]।

उल्लव्य^१—पुं० सञ्ज्ञा [सं०] १. त्रिदोष। वात, पित्त और कफ में किसी एक का आधिक्य या दोष। २. विपत्ति [को०]।

उल्लव्य^२—वि० गर्भाशय में रहनेवाला [को०]।

उल्लमुक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. अंगारा। अंगार। २. लुग्राठ। उल्का। ३. एक यादव का नाम। ४. महाभारत में आया हुआ एक महारथी राजा।

उल्लघन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उल्लङ्घन] १. लंघना। डाँकना। अतिक्रमण। २. विरुद्ध आचरण। न मानना। पालन न करना। जैसे,—बड़ों की आज्ञा का उल्लघन न करना चाहिए।

उल्लघन(पु)—क्रि०सं० [सं० उल्लङ्घन] २० 'उल्लघना'।

उल्लघित—वि० [सं० उल्लङ्घित] १. लंघा हुआ। तोड़ा हुआ। २. अतिक्रमण किया हुआ [को०]।

उल्लफन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उल्लम्फन] कूदना। कुदना [को०]।

उल्लवित—वि० [सं० उल्लम्बित] खड़ा हुआ। उठा हुआ [को०]।

उल्लक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मदिरा [को०]।

उल्लकसन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रोमाच होना। रोएँ खड़े हो जाना [को०]।

उल्लल—वि० [सं०] १. हिलता हुआ। काँपता हुआ। अस्थिर। २. रोएँदार। ३. अनेक रोगों से पीड़ित या ग्रस्त [को०]।

उल्ललित—वि० [सं० उत् + ललित] १. कपित। सज्ज किया हुआ। २. खड़ा किया हुआ। उठाया हुआ [को०]।

उल्लस—वि० [सं० उत् + लस] १. दमकता हुआ। चमकीला। २. प्रसन्न। हर्षित। बाहर होता हुआ। प्रकट होता हुआ [को०]।

उल्लसन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० उल्लसित, उल्लासी] १. हर्ष करना। खुशी करना। २. रोमाच।

उल्लसित—वि० [सं०] १. प्रसन्न। हर्षित। २. चमकता हुआ। ३. बाहर निकाला हुआ (खग)। ४. हिलता हुआ। आदोलित। कपित [को०]।

उल्लाघ^१—वि० [सं०] १. रोग में छुटकारा पाता हुआ। २. चतुर। कुशाग्रबुद्धि। कौशली। ३. पवित्र। ४. प्रसन्न। हर्षयुक्त। ५. दुष्ट। ६. काला [को०]।

उल्लाघ^२—सञ्ज्ञा पुं० काली मिर्च [को०]।

उल्लाघता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] स्वस्थता। स्वास्थ्य [को०]।

उल्लाप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. काकूति। २. आर्तनाद। कराहना। विललाना। ३. दुष्टवाक्य। ४. संकेत। इशारा [को०]। ५. आवेग में स्वर का परिवर्तन [को०]।

उल्लापक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० उल्लापिका] खुशामदी। ठकुरमुहानी करनेवाला।

उल्लापन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० उल्लापक] खुशामद। ठकुरमुहानी। उपचार। तोषामोद।

उल्लापिक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ऊपरी स्तर। ऊपर की तह [को०]।

उल्लापिक^२—वि० १. खुशामद करनेवाला। २. बतानेवाला। प्रकट करनेवाला [को०]।

उल्लापी—वि० [सं० उल्लापिन] उल्लाप करनेवाला। खुशामदी [को०]।

उल्लाप्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. उपरूपक का एक भेद। यह एक अंक का होता है। २. सात प्रकार के गीतों में एक। जब सामगान में मन न लगे तब इसके पाठ का विधान है (मिताक्षरा)।

उल्लाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक मात्रिक अर्धसम छंद जिसके पहले और तीसरे चरण में १५ मात्राएँ और दूसरे और चौथे चरण में १३ मात्राएँ होती हैं। जैसे—यह कवित कहा दिन खचिर मति। मति सो कहा दिनही विरति। कह विरतिउ लाल गोपाल के। चरननि होय जु प्रीति अति (शब्द०)।

उल्लाला—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उल्लाल] एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में १३ मात्राएँ होती हैं। इसे चंद्रमणि भी कहते हैं। जैसे,—सेवहु हरि सरसिज चरण, गुणगुण गावहु प्रेमकर। पावहु मन में भक्ति को, और न इच्छा जानि यह (शब्द०)।

उल्लास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० उल्लासक, उल्लासित] १. प्रकाश। चमक। झलक। २. हर्ष। मुग्ध। आनंद। ३. अथ का एक भाग। पर्व। ४. एक अलंकार जिसमें एक के गुण या दोष से दूसरे में गुण या दोष दिखताया जाता है इसके चार भेद हैं—(क) गुण से गुण होना। जैसे—न्हाय सत पवन करें, गग धरें यह आश (शब्द०)। (ख) दोष से दोष होना। जैसे,—जरत निरखि पररपर घसन सो, वाँस अनल उपजाय। जरत आप सकुटुव अन, वन हूँ देत जराय (शब्द०)। (ग) गुण से दोष होना। जैसे—करन ताल मदवश करी, उडवत अलि अवलीन। ते अलि विचरहि सुमनवन, है करि शोभाहीन (शब्द०)। (घ) दोष से गुण होना। जैसे,—मूँघ चूप अरु चाट भट, फँव्यों वानर रत्न। चंचलता वश जिन वरघो जेहि फोरन को यत्न (शब्द०)।

विशेष—कोई कोई (क) और (ख) को हेतु अलंकार या सम अलंकार और (ग) और (घ) को विचित्र या विषम अलंकार मानते हैं।—उनके मत से यह अलंकारांतर है।

उल्लासक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० उल्लासिका] आनंद करनेवाला। आनंदी। मोजी।

उल्लासना(पु)—क्रि० सं० [सं० उल्लासन] १. प्रकाशन करना। प्रकट करना। २. प्रसन्न करना। उ०—(क) प्रवन तेज तिहि जगत जीव रक्षा उल्लासिय।—मतिराम ग्रं०, पृ० ४१३। (ख) चंद्र उदय सागर उल्लासा। हाहि सकल नम केर विनासा।—शंकर दिग्विजय (शब्द०)।

उल्लासित—वि० [सं०] १. खुश। हर्षित। मुदित। प्रसन्न। २. उदित। ३. स्फुरित।

उल्लासी—वि० [सं० उल्लासिन] [वि० स्त्री० उल्लासिनी] आनंदी। मुजी। मोजी।

उल्लिगित—वि० [सं० उल्लिङ्गित] प्रख्यात। मशहूर [को०]।

उल्लेखनां—क्रि० सं० [हि० उल्लेखना] दे० 'उल्लेखना' ।
 उल्लेखनां—वि० [हि० उल्लेखना] दे० 'उल्लेखना' ।
 उल्लेखना—क्रि० सं० [हि० उल्लेखना] डरकाना । उल्लेखना ।
 डालना । उ०—गारी होरी देत देवावत, ब्रज मे फिरत गोपि—
 कन गावत । रुकि गए वाटन नारे पड़े, नव केसर के माट
 उल्लेखे ।—सूर० (शब्द०) ।
 उल्लेख^१—सञ्ज्ञा [सं० उल्लेख, प्रा० उल्लेख] १. उमंग । जोश ।
 तेजी । उल्लेखकूट । उ०—(क) ठठके सब जड से भए मरि गई
 द्विय की उल्लेख । प्राननाथ के विनु रहे माटी के सी खेल ।—
 काण्डजिह्वा (शब्द०) । (ख) क्यो याके ढिग भाव ताव
 भापत उल्लेख को । सुकवि कहत यह हँसत आचमनकरि फुलेल
 को ।—व्यास (शब्द०) । २. वाढ ।

उल्लेख^२—वि० [हि०] वेपरवाह । अल्लेख । अनान ।

उल्लेखना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'उल्लेखना' ।

उल्लेख—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. लूक । लुगठा ।

यौ०—उल्लेखमुख । उल्लेखजिह्वा ।

३. मशाल । दस्ती । ३. दिया । चिराग । ४. एक प्रकार के
 चमकीले पिंड जो कभी कभी रात को आग की लकीर के
 समान आकाश में एक ओर से दूसरी ओर को वेग से जाते
 हुए अथवा पृथ्वी पर गिरते हुए दिखाई पड़ते हैं ।

विशेष—इनके गिरने को 'तारा टूटना' या 'लूक टूटना' कहते
 हैं । उल्लेख के पिंड प्रायः किसी विशेष आकार के नहीं होते ।
 ककड़ या भाँवे की तरह ऊबड़खाबड़ होते हैं । इनका रंग
 प्रायः काला होता है और उनके ऊपर पालिश या लूक की
 तरह चमक होती है । ये दो प्रकार के होते हैं—एक धातुमय
 और दूसरे पाषाणमय । धातुमय पिंडों की परीक्षा करने से
 उनमें विशेष अथ लोहे का मिलता है, जिसमें निकल भी मिला
 रहता है । कभी कभी थोड़ा ताँबा और राँगा भा मिलता है ।
 इनके अतिरिक्त सोना, चाँदी आदि बहुमूल्य धातुएँ कभी नहीं
 पाई जाती । पाषाणमय पिंड यद्यपि चट्टान के समान होते हैं,
 तथापि उनमें भी प्रायः लोहे के बहुत महान कण मिले रहते हैं ।
 यद्यपि किसी किसी में उज्जन या उद्जन (हाइड्रोजन) और
 आक्सिजन के साथ मिला हुआ कार्बन भी पाया जाता है जो
 सावयव द्रव्य (जैसे, जीव और वनस्पति) के नाश से उत्पन्न
 कार्बन से कुछ मिलता है । पर ऐसे पिंड केवल पाँच या छह
 पाए गए हैं, जिनमें किसी प्रकार की वनस्पति की नसों का
 पता नहीं मिला है । धातुवाले उल्लेख कम गिरते देखे गए हैं ।
 पत्थरवाले ही अधिक मिलते हैं । उल्लेखपिंड में कोई ऐसा
 तत्व नहीं है जो इस पृथ्वी पर न पाया जाता हो । उनकी
 परीक्षा से यह बात जान पड़ती है कि वे जिस बड़े पिंड से
 टूटकर अलग हुए होंगे, उनपर न जीवों का अस्तित्व रहा होगा,
 न जल का नामानिधान रहा होगा । वे वास्तव में 'तेजसभव'
 हैं । ये कुछ कुछ उन चट्टान या धातु के टुकड़ों से मिलतेजुलते
 हैं जो ज्वालामुखी पर्वतों के मुँह से निकलते हैं । भेद इतना
 ही होता है कि ज्वालामुखी पर्वत से निकलते टुकड़ों में लोह के

अथ मोरचे के रूप में रहते हैं और उल्लेखपिंडों में धातु के
 रूप में । उल्लेख का वेग प्रति सेकेंड दम मील से लेकर चालीस
 पचास मील तक का होता है । साधारण उल्लेख छोटे छोटे पिंड
 हैं जो अनियत मार्ग पर आकाश में इधर उधर फिरा करते हैं ।
 पर उल्लेखों का एक बड़ा भारी समूह है जो सूर्य के चारों
 ओर केतुओं की कक्षा में घूमता है । पृथ्वी इस उल्लेख क्षेत्र में से
 होकर प्रत्येक तीसरे वर्ष कन्या राशि पर अर्थात् १४ नवंबर
 के लगभग निकलती है । इस समय उल्लेख की भड़ी देखी
 जाती है ।

उल्लेखजड जब पृथ्वी के वायुमंडल के भीतर आते हैं तब वायु की
 रगड़ से वे जलने लगते हैं और उनमें चमक आ जाती है ।
 छोटे छोटे पिंड तो जलकर राख हो जाते हैं और घड़घड़ाहट
 का शब्द भी होता है । जब उल्लेख वायुमंडल के भीतर आते
 हैं और उनमें चमक उत्पन्न होती है तभी वे हमें दिखाई
 पड़ते हैं । उल्लेख पृथ्वी से अधिक से अधिक १०० मील के
 ऊपर अथवा कम से कम ४० मील के ऊपर से होकर जाते
 दिखाई पड़ते हैं । पृथ्वी के आकर्षण से ये नीचे गिरते हैं ।
 गिरने पर इनके ऊपर का भाग गरम होता है । लदन, पेरिस,
 वरलिन, वियना आदि स्थानों में उल्लेख के बहुत से पत्थर
 रखे हुए हैं ।

६. फलित ज्योति में गौरी जातक के अनुसार मंगला आदि आठ
 दशाओं में से एक । यह छह वर्षों तक रहती है ।

उल्लेखचक्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. उत्पात । विघ्न । २. हलचल ।

उल्लेखचिह्न—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक रासस का नाम ।

उल्लेखधारी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उल्लेखधारिन्] मशालची । मशाल दिखाने
 वाला व्यक्ति (को०) ।

उल्लेखपात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तारा टूटना । लूक गिरना । २. उत्पात ।
 विघ्न बाधा ।

उल्लेखपाती—वि० [सं० उल्लेखपातिन्] [वि० स्त्री० उल्लेखपातिनी]
 दंगा मचानेवाला । हलचल करनेवाला । उत्पाती ।
 विघ्नकारी ।

उल्लेखपाषाण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पत्थर या धातु का वह ठोस पिंड
 जो उल्लेख के रूप में आकाशमार्ग से होता हुआ धरती पर आ
 गिरता है (को०) ।

उल्लेखमाली—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उल्लेखमालिन्] भगवान शंकर के एक गण
 का नाम (को०) ।

उल्लेखमुख—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० उल्लेखमुखी] १. गीदड़ । २. एक
 प्रकार का प्रेत जिसके मुँह से प्रकाश या आग निकलती है ।
 अग्निया बँताल ।

उल्लेखुपी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. उल्लेख । लूक । २. मशाल (को०) ।

उल्लेखा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० उल्लेखना] मापातर । अनुवाद । तरजुमा ।

उ०—इसमें यह शका न करना कि मैंने किसी मत की निंदा
 के हेतु यह उल्लेख किया है ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १,
 पृ० ५० ।

उल्लूकी—सञ्ज्ञा पुं० [हि० उल्लूक] डाक का हरकारा ।

उल्लूधना^(५)—क्रि० सं० [सं० उल्लघन, प्रा० उल्लघण] १ लौधना । डाँकना । फाँदना । २ अवज्ञा करना । न मानना । विरुद्ध आचरण करना । ३ चावुक सवारों की बोली में पहले घोड़े पर चढ़ना ।

उल्ला^(५)—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० उरण या म० उरभ्र प्रा० उरवम] भेड़ का वच्चा । भेड़ना ।—डि० ।

उल्लाक—वि० [सं० उल्लघन] चपल । रफूचक्कर । उ०—नाक हूँ निकाम जाको देखत उल्लाक होत नाक सुख खोय गिरे नरक गटाक दे ।—राम० धर्म०, पृ० ८४ ।

उल्लाटना^(५)—क्रि० सं० [हि० उलटना] दे० 'उलटना' ।

उल्लाथना^(५)—क्रि० प्र० [हि०] उलथना । हटना । दूर जाना । उलटना । उतरना । उ०—आजुलुँउ घन दीहणउ साहिब कउ मुख दिट्ठ, माथा भार उल्लाथियउ आँडियाँ अभी पयट्ठ ।—ढोला०, दू० ५३१ ।

उल्लार—वि० [हि० ओलरना = लेटना] जिसका पिछला हिस्सा भारी हो । जो पीछे की ओर झुका हो । जिसके पीछे की ओर बल अधिक हो ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग गाड़ी आदि के सवध में होता है । जब गाड़ी में आगे की अपेक्षा पीछे अधिक बल हो जाता है तब वह पीछे की ओर झुक जाती है और नहीं चलती । इसी को उल्लार कहते हैं ।

उल्लारना^(५)—क्रि० सं० [हि० उलरना] उछालना । नीचे ऊपर फेंकना । उ०—दीन्हे शकुनी अक्ष उल्लारी । किकर भए घरम-सुत हारी ।—सवल (शब्द०) ।

उल्लारना^(५)—क्रि० सं० [हि० ओलरना] दे० 'ओलारना' ।

उल्लारा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० उलरना] वह पद जो चौताल के अंत में गाया जाता है ।

उल्लाह^(५)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उल्लास] उल्लास । उमंग । जोश । उत्साह । उ०—कैसे मिलाप लियो इन मानि मिले मग आनि अनेक उल्लाह ।—धनानंद०, पृ० ११८ ।

उल्लाहना^(५)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उपालभ, प्रा० उवालभ, ओलभ] १ किसी की भूल या अपराध को उसे दुःखपूर्वक जताना । किसी से उसकी ऐसी भूल चूक के विषय में कहना सुनना जिससे कुछ दुःख पहुँचा हो । शिकायत । गिला । जैसे,—जो हम उनके यहाँ न उतरेंगे तो वे जब मिलेंगे तब उल्लाहना देंगे ।—

क्रि० प्र०—देना ।

२ किसी के दोष या अपराध को उससे सवध रखनेवाले किसी और आदमी से कहना । शिकायत । जैसे,—लडके ने कोड़े नटखटी की है तभी ये लोग उसके बाप के पास उल्लाहना लेकर आए हैं ।

क्रि० प्र०—वेना ।—लाना ।—लेकर आना ।

उल्लाहना^(५)—क्रि० सं० [हि० उल्लाहना] १ उल्लाहना देना । गिला करना । २ दोष देना । निंदा करना । उ०—मोहि लगावत दोष कहा है । तें निज लोचन क्यों न उल्लाहै ।—प्रताप-नारायण (शब्द०) ।

उल्लिद—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उल्लिन्द] १ शिव । एक देश [को०] ।

उल्लिगण^(५)—वि० [सं० अल्लग्न] दे० 'अलग' । बाहर गया हुआ । मुसाफिर । युद्ध पर गया हुआ । उ०—जिए सिरजइ उल्लिगण धर नारि, जाइ दिहाइउ झूरिनाँ ।—वी० रासो, पृ० १ ।

उल्लिचना^(५)—क्रि० सं० [हि०] दे० 'उलीचना' ।

उलीचना—क्रि० म० [सं० अवनेजन, उल्लु चन, पा० ओणेजन] १ पानी फेंकना । हाथ वा वरतन से पानी उछालकर दूसरी ओर डालना । जैसे,—नाव से पानी उलीचना । उ०—(क) पेंड काटि तें पालव मीचा । मीन जियन हित वारि उलीचा ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) पानी बाढ़ो नाव मे घर मे बाढो दाम, दोऊ करन उलीचिए यही सयानो काम ।—गिरिधर (शब्द०) । (ग) दै पिचकी मजी मीजी तहाँ परे पीछे गोपाल गुलाल उलीची ।—पद्माकर (शब्द०) ।

उलुवा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० उलुम्बा] हरी पत्ती वालवाले जो या गेहूँ का भूना हुआ पौधा । उबी । ऊमी ।

उलुप—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उलप' [को०] ।

उलुपी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उलुपिन्] दे० 'उलपी' [को०] ।

उलुप्य—वि० [सं०] दे० 'उलप्य' [को०] ।

उलू^(५)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उलूक] दे० 'उलूक' । उ०—(क) हैरै गयो दुमाय जो कोई । उलू मिला जो सरवस खोई ।—हिंदी० प्रेमा०, पृ० २६६ । (ख) कर तोर पुष्प रंजि को राऊ । उलू न जान दिवस कर आऊ ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १७७ ।

उलूक^(५)—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. उल्लू । २ इद्र । ३ दुर्योधन का एक दूत । यह उलूक देश के राजा कितव का पुत्र था और महा-भारत में कौरवों की ओर था । ४ उत्तर पर्वत का एक प्राचीन देश जिसका वर्णन महाभारत में आया है । ५ कणाद मुनि का एक नाम ।

यौ०—उलूकदर्शन = कणाद मुनि का वैशेषिक दर्शन ।

उलूक^(५)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उलूक] लूक । लीक । उ०—जोरि जो धरी है वेदद द्वारे होरी तीन मेरी विरहाग की उलूकनि ली लाय आव ।—पद्माकर (शब्द०) ।

उलूखल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. ओखली । २ खन । खरल । चट्टन । ३ गुग्गुल ।

उलूखलक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ छोटी ओखली । २ गुग्गुल ।

उलूत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अजगर की जाति का एक साँप ।

उलूप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उलप' [को०] ।

उलूपी—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ ऐरावतवशी कौरव्य नाम की कन्या जिससे अर्जुन ने अपने १२ वर्ष के वनवास में विवाह किया था । इसी का पुत्र वभ्रुवाहन था । २ मछली । सुस (को०) । ३ दे० 'उलपी' (को०) ।

उल्लेखनी^(५)—क्रि० प्र० [सं० उल्लेख] पहचानना । जानना । उ०—मैं बहुतों का एक जहाँ, एक वस्तु को देखि । बहु विधि करि उल्लेख हैं, तो उने उल्लेखि ।—तूतल ग्रं० पृ० ११ ।

उलथा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० उलटना] १ एक प्रकार का नृत्य । नाचने के समय ताल के अनुसार उलथना ।

क्रि० प्र०—मारना ।

२ कलावाजी । कलैया । ३ गिरह मारकर कलावाजी के साथ पानी में कूटना । उलटा । उडी ।

क्रि० प्र०—मारना ।—लेना ।

४ एक स्थान पर बैठे बैठे इधर उधर अंग फेरना । करवट बदलना ।

क्रि० प्र०—मारना ।—लेना । जैसे,—भैंस पानी में पड़ी पड़ी उलथा मारा करती है ।

दे० 'ललथा' ।

उलथाना^१—क्रि० अ० [हि० उलथना] दे० 'उलथना' । उ०—लहरें उठी समुंद उलथना । धूला पथ सरग नियराना ।—जायसी (शब्द०) ।

उलद^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अव + द्रव (ण) अववा हि० उलदना] प्रलवण । भडी । वर्षण । उ०—देख्यो गुजरेठी ऐसे प्रात ही गली में जात स्वेद भरयो गात भात घन की उलद से ।—रघुराज (शब्द०) ।

उलदना^३—क्रि० स० [सं० अव + द्रवण अववा हि० उलटना] १ उडेलना । उभिलना । ढालना । गिराना । वरसाना । उ०—(क) गाज्यो कपि गाज ज्यो विराज्यो ज्वाल जाल जुत, भाजे धीर वीर अमुलाइ उठ्यो रावनो । घावो घावो धरो सुनि धाए जातुधान धारि, धारि धार उलदै जलद ज्यो न सावनो ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) उलदत मद, अनुमद ज्यो जलधि जल, बल हृद भीम कद काहू के न आहू के ।—भूपण (शब्द०) । (ग) लै तुवा सरजु जल आनी । उलदत मुहरें सब कोइ जानी । रघुराज (शब्द०) ।

उलदना^३—क्रि० स० [प्रा० उल्लदिय = लावा हुआ या आकात] लादना । ऊपर लादना । उ०—मन ही में लादै उलदै अनत न जाय । मनहि की पैदा मनहि में खाय ।—पलटू, भा० ३, पृ० ५४ ।

उलप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कोमल घास का एक प्रकार या भेद । २ विस्तीर्ण लता [क्रि०] ।

उलपराजि, उलपराजिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] घास की ढेरी [क्रि०] ।

उलपराजी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उलपराजि' [क्रि०] ।

उलपा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उलप' [क्रि०] ।

उलपी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उलपिन] शिशुमार । सूँस [क्रि०] ।

उलप्य—वि० [सं०] वि० स्त्री० उलप्या उलप घास सवधी या उलप घास में रहनेवाला [क्रि०] ।

उलप्य^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रुद्र [क्रि०] ।

उलफत—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० उल्फत] प्रेम । मुहब्बत । प्यार । प्रीति ।

उलमना^४—क्रि० अ० [मं० अवलम्बन न० पा० प्रा० अवलम्बन = लटकना] लटकना । झुकना । उ०—अंगुरिन उचि भर भीत दै उलमि चित्त चख लोल । रुचि सो दुहूँ दुहन के चूमे चार कपोल ।—विहारी (शब्द०) ।

उलमा—सञ्ज्ञा पुं० [अ० अलमि का बहु० व०] अलमि लोग । विद्वज्जन । उ०—मजहब के मामले में उलमा के सिवा और किसी को देखल देने का मजाज नहीं है ।—काया, पृ० ४७ ।

उलमाय^५—सञ्ज्ञा पुं० [अ० उलमा] दे० 'उलमा' । उ०—उलमाय फकीरान की तकरीर में देखो —कवीर म०, पृ० ५६७ ।

उलरना^६—क्रि० अ० [सं० उद् + लर्ब = डोलना या उल्ललन, प्रा० उल्लर = ऊपर को चलना] १ कदना । उलथना । उ०—विनहि लहे फल फल भूल सो उलरत हुलसन । मनहुँ पाइ रवि रतन तारिहैं सो निज कुल सत (शब्द०) । २ नीचे ऊपर होना । ३ झपटना । उ०—कह गिरिधर कविराय बाज पर उलरै घुघुकी । समय समय की बात बाज कहैं धिरवैं फुदकी ।—गिरिधर (शब्द०) ।

उलरना^६—क्रि० अ० [प्रा० उल्लरण] पड़ जाना । सो जाना । उ०—इक दिन पाँव पसारि उलरना, समुक्ति देखि निश्चै करि मरना ।—सुंदर ग्र०, भा० १, पृ० ३३४ ।

उलरप्राल—सञ्ज्ञा पुं० [हि० उलरना] बेलगाड़ी के पीछे लटकती हुई एक लकड़ी जिससे गाड़ी उलार नहीं होती अर्थात् पीछे की ओर नहीं दबती ।

उलरना^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० उलरना] १ ढरकना । ढलना । २ उलटना । पलटना । इधर उधर होना ।

उलवा^८—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उलूक, हि० उल्लू] दे० 'उल्लू' उ०—उलवा मारै काग कों काकु सु हनै उलूक । सुंदर बैरी परस्पर सज्जन हस कहूँक ।—सुंदर ग्र०, भा० २ पृ० ७६६ ।

उलवी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० उद् + वी] एक प्रकार की मछली जिसके पर वा पाँव का व्यापार होता है । इसके पर से एक प्रकार की सरेस निकलती है ।

उलसना^९—क्रि० अ० [सं० उल्लसन] शोभित होना । सोहना । उ०—छवि उलसी तुलसी की माल । वनि रही पदार्जत विशाल ।—नंद० ग्र०, पृ० २६७ ।

उलहना^{१०}—क्रि० प्र० [मं० उल्लसन] १ उमडना । निकलना । प्रस्फुटित होना । उ०—(क) दोप वसत को दीजे कहा उलही न करील की डारन पाती—प्याकर (शब्द०) । (ख) उलटे महि अकुर मजु हरे । वगरी तहूँ इद्रवधू गन ये । (शब्द०) । २ उमडना । हुलसना । झूठना । उ०—(क) कलि भवन नव बेल सी दुलही उलही कन, बैठ रही चुप चंद लखि तुमहि बुलावत कत, उ०—प्याकर (शब्द०) । (ख) काजर भीनी कामनिधि दीठ तिरीछी पाय भरयो । मजरिन निकल तर मनहुँ रोम उलहाय ।—हरिश्चंद्र (शब्द०) ।

उलहना^{१०}—क्रि० स० [सं० उपलम्भ, प्रा० उवालय, उवालेभ] दे० 'उलाहना' ।

उलहाना^{११}—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उल्लसन] उल्लासित करना । बढ़ाना । उ०—मनो कुलहा रघुवस को चार दुरयो जिय उलहता उलहावै ।—उत्तर०, पृ० १८ ।

उलहाना^{१२}—क्रि० अ० उल्लसित होना । उमडना । बढ़ना । उ०—दुष्ट सुभाव वियोग विस्थाने सग्रह कियो सहाई । सूखी लकरी वायु पाई कै चली अग्नि उलहाई ।—भारतें ग्र०, भा० २ पृ० ५४२ ।

उल्लाप—सञ्ज्ञा पुं० [हि० लांघना सं० उत् + लङ् प्रा० उल्लप] १ चिद्दी पत्री आने जाने का प्रवध । डाक । २ पटेला नाव ।

उल्लापत्री—सञ्ज्ञा पुं० [हि० उल्लाप + सं० पत्र] पोस्टकार्ड या चिद्दी ।

सो भ्रम भूल हूँ न कीजे मान हाँतो करि हियहूँ सो होत हिय हानिए । लोक मे अलोक आन नीकहूँ लगावत हैं सीता जू को दूत गीत कैसे उर आनिए । आँखिन जो देखियत सोई साँची केशवराइ कानन की सुनी साँची कवहूँ न मानिए । गोकुल की कुलटा ये यों ही उलटावनि हैं आज लो तो वैसी ही हैं काल्हि कहा जानिए ।—केशव (शब्द०) । ३. फेरना । दूसरे पक्ष में करना । इ०—(क) अब लखहु करि छल कलह नृप सो भेद बुद्धि उपाइ कै । परवत जनन सो हम विगारत राक्षसहि उलटाइ कै—हरिश्चन्द्र (शब्द०) ।

उलटा पलटा—वि० [हि० उलटा + पलटना] इधर का उधर । अडवड । बसिर पैर का । बिना ठीक ठिकाने । बेतरतीब ।

उलटा पलटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० उलटा + पलटी = पलटने या फेरने का कार्य] १ फेर फार करना । अदल बदल । इधर का उधर होना । नीचे ऊपर होना । उ०—बहरात उरोजन के उपरा हियहार करै उलटा पलटी (प्रत्य०) ।

उलटा पुलटा—वि० [हि० उलटा + पुलटा] 'दे० उलटा पलटा' ।

उलटा पुलटी—वि० [हि० उलटा + पुलटी = पलटने या फेरने का कार्य] दे० 'उलटा पुलटा' । उ०—(क) उलटा पुलटी वज्रै सो तार । काहुहि मारै काहुहि उबार ।—कवीर (शब्द०) । (ख) सबी तुम बात कही यह साँची । तुमही उलटी कही, तुमहि पुलटी कही तुमहि रिस करति मैं कछु न जानौ ।—सूर (शब्द०) ।

उलटामाँच—सञ्ज्ञा पुं० [हि० उलटा + माँच < अ० मार्च] जहाज का पीछे की ओर हटना या चलना ।

उलटाव—सञ्ज्ञा पुं० [हि० उलट + आव (प्रत्य०)] १. पलटाव । फेर । २. धुमाव । चक्कर ।

उलटावसी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० उलटवाँसी] दे० 'उलटवाँसी' । उ०—उलटावसी जो कही कवीरा । रमज रेखता में मत धोरा ।—घट०, पृ० २४७ ।

उलटामुलटा—वि० [हि० उलटा + मुलटा] उलटा सीधा । क्रमरहित । बेतरतीब । उ०—उलटे मुलटे वचन कै, सिष्य न मानै बुक्ख । कहै कवीर ससार मे, सो कहिये गुरुमुख ।—कवीर सा० स०, भा० १, पृ० १६ ।

उलटी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० उलटना] १. वमन । २. मालखम की एक कसरत जिसमें खिलाडी की पीठ मालखम की ओर और सामना देखनेवालों की ओर रहता है । खिलाडी दोनों पैरों को पीछे फेंककर मालखम में लिपटता है और ऊपर चढ़ता उतरता है । कलैया ।

उलटी^२—वि० स्त्री० [हि० उलटा का स्त्री रूप] १ विपरीत । विरुद्ध ।

उलटी^३—क्रि० वि० [हि०] दे० 'उलटा' । उ०—पूने की गाँठ मिगाने से उलटी कडी होती है ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ३७६ ।

उलटी काँगसी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० उलटी + देश० काँगसी] मालखम की एक कसरत जिसमें पंजा उलटकर उँगलियाँ फँसाई जाती हैं ।

उलटी खड़ी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० उलटी + खड़ी] मालखम की एक कसरत जिसमें खड़े होकर दोनों पैरों को आगे से तिर पर उड़ाते हुए पीठ पर ले जाते हैं और फिर उसी जगह पर लाते हैं जहाँ से पैर उड़ाते हैं ।

उलटी चीन—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० उलटा + चीन = चुनना] नैचा बांधने का एक भेद जिसमें कपड़े की मुड़ी हुई पट्टी नर पर लपेटते हैं ।

उलटी वगली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० उलटी + वगली] मुगदल की एक कसरत जो बल अदाजने के लिये की जाती है । इसमें पीठ पर से छाती पर मुगदल आता है तो भी मुट्ठी ऊपर ही रहती है ।

उलटी रमाली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० उलटी + फा० रमाल] मुगदल भाँजने का एक भेद ।

विशेष—यह प्रकार की रमाली है, भेद केवल यह है कि इसमें मुगदलों की भोक आगे की होती है । रमाली के समान इसमें भी मुगदल की मुठिया उलटी पकड़नी चाहिए ।

उलटी सरसो—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० उलटी + सरसो] वह सरसो जिसकी फलियों का मुँह नीचे होता है । यह जादू टोना, मन्त्र तंत्र के काम आती है । टेरो ।

उलटी सवाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० उलटी + सवाई] वह जंजीर जिससे जहाज की अनी या नोक के नीचे सबदरा बँधा रहता है ।

उलटे—क्रि० वि० [हि० उलटा] विरुद्ध क्रम में । और क्रम से । वेठिकाने । ठीक ठिकाने के साथ नहीं । उ०—कहूँ विचार चलु सुपय मग आदि मध्य परिनाम । उलटे जपे जरा मरा सूघे राजा राम ।—तुलसी (शब्द०) । २ विपरीत व्यवस्था—नुसार । विरुद्ध न्याय से । जैसे होना चाहिए उससे और ही ढग से । जैसे, ' (क) उलटे चोर कोतवाल को डाँटे । (ख) उसने उलटे अपने ही पक्ष की हानि की ।

विशेष—क्रियाविशेषण में भी 'उलटा' ही का प्रयोग अधिकतर होता है । 'अ' कारात विशेषण के 'आ' को क्रि० वि० में 'ए' कर देने के भी नियम का पालन खड़ी बोली में कभी कभी नहीं होता पर पूर्वोक्त प्रात की भाषाओं में बराबर होता है । जैसे,—'अच्छा' का क्रि० वि० 'अच्छे' खड़ी बोली में नहीं होता पर पूर्वोक्त भाषा में बराबर होता है ।

उलटटना—क्रि० आ० [हि० उलटना] दे० 'उलटना' । उ०—मारु चाली मंदिराँ चदउ बादल माँहि । जाँणे गर्बद उलट्टियउ कज्जल वन मँहि जाँहि । डोला० दू०, ५३८ ।

उलट पलट—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० उलट पलट] दे० 'उलट पलट' ।

उलटना—क्रि० अ० और स० [हि० उलटना] दे० 'उलटना' ।

उलटाना—क्रि० स० [हि० उलटना] दे० 'उलटाना' ।

उलथना^१—क्रि० अ० [हि० उलटना] ऊपर नीचे होना । उथल पुथल होना । उलटना । उ०—उलथहि सीप मोति उतराही । चुगहि हस औ कलि कराही ।—जायसी ग्र०, पृ० १२ ।

उलथना^२—क्रि० स० उपर नीचे करना । उलट पुलट करना । गथना । उलट फेर करना ।

क्रि० प्र०—रटना।—होना।

उलट पलट^२—वि० १ परिवर्तित। बदला हुआ। २ इधर का उधर किया हुआ। अडबड। अव्यवस्थित। गडबड। अस्त व्यस्त।

क्रि० प्र०—रटना।—जाना।—देना।—होना।

उलट पुलट—सञ्ज्ञा पुं० [हि० वि०] दे० 'उलट पलट'।

उलट फेर—सञ्ज्ञा पुं० [हि० उलटना + फेर] परिवर्तन। अदल बदल।

हेर फेर। जैसे,—(क) समय का उलट फेर। (ख) इन दो तीन महीनों के बीच न जाने कितने उलट फेर हो गए।

उलटवांसी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० उलटा + सं० वांसी या वासी = बोली]

सीधे न कहकर घुमा फिराकर या उलटकर कही हुई बात या व्यंजना। जैसे,—फील रवावी बलदु पखावज कीया ताल बजावै। पहिरि चोलना गदहा नाचै मैसा भगति करावै।—कबीर ग्र०, पृ० ३०७।

उलटा^१—वि० [हि० उलटना] [स्त्री० उलटी] १ जो ठीक स्थिति में न हो। जिसके ऊपर का भाग नीचे और नीचे का भाग ऊपर हो। आँधा। जैसे—उलटा घड़ा। (ख) बैताल पेड़ से उलटा जा लटका।

मुहा०—उलटा तवा = अत्यंत काना। काला कलूटा। जैसे,—उसका मुंह उलटा तवा है। उलटा लटकना = किसी वस्तु के लिये प्राण देने पर उतारू होगा। जैसे, तुम उलटे लटक जाओ तो भी तुम्हें वह पुस्तक न दूँगे। उलटी टांगें गले पडना = (१) अपनी चाल से आप खराब होना। आपत्ति मोल लेना। लेने के देने पडना। (२) अपनी बात से आप ही कायल होना। उलटी साँस चलना = साँस का जल्दी जल्दी बाहर निकलना। दम उखडना। नाँस का पेट में समाना। मरने का लक्षण दिखाई देना। उलटी साँस लेना = जल्दी जल्दी साँस खींचना। मरने के निकट होना। उलटे मुँह गिरना = दूसरे की हानि करने के प्रयत्न में स्वयं हानि उठाना। दूसरे को नीचा दिखाने के बदले स्वयं नीचा देना।

२ जो ठिकाने से न हो। जिसके आगे का भाग पीछे अथवा दाहिनी ओर का भाग बाईं ओर हो। इधर का उधर। क्रम विरुद्ध। जैसे,—उलटी टोपी। उलटा जूता। उलटा मार्ग। उलटा हाथ। उलटा परदा (मंगरखे का)। उ०—उलटा नाम जपत जग जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना। तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—उलटा घड़ा वाँचना = और का और करना। मामले को फेर देना। ऐसी युक्ति रचना कि विरुद्ध चाल चलनेवाले की चाल का मुग फन घूमकर उसी पर पड। उलटा फिरना या लोटना = तुरत लोट पडना। बिना छड भर ठहरे पलटना। चलते चलते घूम पडना। जैसे,—तुम्हें घर पर न पाकर वह उलटा फिरा, दम मारने के लिये भी न ठहरा। उलटा हाथ = गीया हाथ। उलटी गंगा बहना = अनहोनी बात होना। उलटी गंगा बहाना = जो कभी नहीं हुआ हो, उसको करना। विरुद्ध रीति चलाना। उलटी माला फेरना = मारण या उच्चाटन के लिये जप करना। बुरा मानना। ग्रहित चाहना। उलटे काँटे तोनना = कम जोनना। डाँगे मारना। उलटे छुरे से भूँडना = उन्मू बनाकर काम निकालना। बेयकूफ बनाकर लूटना।

भँसना। उलटे पाँव फिरना = तुरत लोट पडना। बिना क्षण भर ठहरे पलटना। चलते चलते घूम पडना। उलटे हाथ को दाँव = बाएँ हाथ का खेल। बहुत ही सहज काम।

३ कालक्रम में जो आगे का पीछे और पीछे का आगे हो। जो समय से आगे पीछे हो। जैसे,—उसका नहाना खाना सब उलटा। ४ अत्यंत असमान। एक ही कोटि में सबसे अधिक भिन्न। विरुद्ध विपरीत। खिलाफ। वरअवस। जैसे—हमने तुमसे जो कहा था उसका तुमने उलटा किया। ५ उचित के विरुद्ध। जो ठीक हो उससे अत्यंत भिन्न। अडबड। अयुक्त। और का और। वेठीक। जैसे,—उलटा जमाना। उलटी समझ। उलटी रीति। उ०—सहित विपाद परस्पर कहहीं, विधि करतव सब उलटे अहहीं।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—उलटा जमाना = वह समय जब भली बात बुरी समझी जाय और कोई नियत अवस्था न हो। अघेर का समय। उलटा सीधा = बिना क्रम का। अडबड। बेसिर पैर का। बिना ठीक ठिकाने का। अव्यवस्थित। मला बुरा। जैसे,—(क) उन्होंने जो उलटा सीधा बतलाया वही तूम जानते हो। (ख) हमसे जैसा उलटा सीधा बनेगा, हम कर लेंगे। उलटी खोपड़ी का = आँधी समझ का। जड। मूर्ख। उलटी पट्टी पढ़ाना = टेढ़ी सीधी समझाना। और की और सुझाना। भ्रम में डालना। बहकाना। उलटी सुनना = जैसा न हो वैसा सुनना। विपरीत सुनना। उ०—आपने जो बात मनी है उलटी ही सुनी है।—सर० पृ० १६। उलटी सीधी सुनना = मला बुरा सुनना। गाली खाना। जैसे—तुम बिना दस पाँच उलटी सीधी सुने न मारोगे। उलटी सीधी सुनाना = खरी खोटी सुनाना। मला बुरा कहना। फटकारना।

उलटा^२—क्रि० वि० १ विरुद्ध क्रम से। और तौर से। वेठिकाने। ठीक रीति से नहीं। अडबड। २ जैसा होना चाहिए उससे और ही प्रकार से। विपरीत व्यवस्था के अनुसार। विरुद्ध न्याय से। जैसे,—(क) उलटा चोर कोतवाल को डाँट। (ख) तुम्हीं ने काम बिगाडा, उलटा मुझे दोष देते हो।

उलटा^३—सञ्ज्ञा पुं० १ एक पकवान। पपरा। पोपरा।

विशेष—यह चने या मटर के बेंसन से बनाया जाता है। बेंसन को पानी में पतला घोलते हैं, फिर उसमें नमक, हलदी, जीरा आदि मिलाते हैं। जब तवा गरम हो जाता है तब उसपर धी या तेल डालकर घोले हुए बेंसन को पतला फँला देते हैं। हैं। जब यह सूखकर रोटी की तरह हो जाता है तब उलटकर उतार लेते हैं। २ एक पकवान। गोभा।

विशेष—यह आटे और उरद की पीठी से बनता है। आटे का चक्का बनाते हैं फिर उसमें पीठी भरकर दोमड देते हैं। इससे पानी की भाप से पकाते हैं। ३. विपरीत।

उलटाना^४—क्रि० सं० [हि० उलटना] १ पलटना। लोटाना। पीछे फेरना। उ०—विहारीलाल, आवड, आई छाकि। भई अवार गाइ बहुरावड उलटावड दै हाकि।—सूर (शब्द०)। (ख) जो शोक सों भई मातुगन की दिशा सो उलटाईहैं।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। २. और का और करना या कहना। अन्यथा करना या कहना। उ०—हरि से हित

विशेष—गद्य में इस अर्थ में इस क्रिया का प्रयोग अकेले नहीं होता, या तो 'पड़ना' के साथ होता है अथवा 'जाना' और 'जाना' के साथ केवल इन रूपों में—'उलटा जा रहा है', 'उलटा चला आ रहा है', 'उलटा जा रहा है' और 'उलटा चला जा रहा है'।

४. इधर का उधर होना। अंडवंड होना। अस्त व्यस्त होना। क्रमविरुद्ध होना। जैसे,—यहाँ तो सब प्रबंध ही उलट गया है। उ०—जाने प्रातः निपट अलसाने भूखन सब उलटाने। करत सिंगार परस्पर दोऊ अति आलस सिधिलाने।—सूर (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।

५. विपरीत होना। विरुद्ध होना। और का और होना। जैसे—आजकल जमाना ही उलट गया है।

संयो० क्रि०—जाना।

६. फिर पढ़ना। क्रुद्ध होना। विरुद्ध होना। जैसे,—मैं तो तुम्हारे भले के लिये कहता था तुम मुझपर व्यर्थ ही उलट पड़े।

संयो० क्रि०—पढ़ना।

विशेष—केवल 'पड़ना' के साथ इस अर्थ में यह क्रिया आती है। ७. ध्वस्त होना। उखड़ना पुखड़ना। वरवाद होना। नष्ट होना। बुरी गति में पहुँचना। जैसे,—एक ही बार ऐसा घाटा आया कि वे उलट गए। उ०—इसकी बातों से तो प्राण मुँह को आते हैं और मालूम होता है कि सत्तार उलटा जाता है—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।

विशेष—केवल 'जाना' के साथ इस अर्थ में यह क्रिया आती है। ८. मरना। बेहोश होना। बेमुश्क होना। जैसे,—(क) वह एक ही डके में उलट गया। (ख) भाँग पीते ही वह उलट गया। संयो० क्रि०—जाना।

विशेष—केवल 'जाना' के साथ इस अर्थ में यह क्रिया आती है। ९. गिरना। धरती पर पड़ जाना। जैसे,—हवा से खेत के धान उलट गए।

संयो० क्रि०—जाना।

१०. घमड़ करना। इतराना। जैसे,—बोडे ही से धन में इतने उलट गए।

विशेष—केवल 'जाना' के साथ इस अर्थ में यह क्रिया आती है। ११. चौपायों का एक बार जोड़ा खाकर गर्भ धारण न करना और फिर जोड़ा खाना। १२. (किसी अंग का) मोटा या पुष्ट होना। जैसे,—चार ही दिनों की कसरत में उसका बदन या उसकी रान उलट गई।

उलटना^३—क्रि० स० १ नीचे का भाग ऊपर और ऊपर का भाग नीचे करना। आँधा करना। लौटना। पलटना। फेरना। जैसे—यह घड़ा उलटकर रख दो। २. आँधा गिराना। ३. पटकना। दे मारना। गिरा देना। फेंक देना। जैसे,—पहले पहलवान ने दूसरे को हाथ पकड़ते ही उलट दिया। ४.

२-१४,

किसी लटकती हुई वस्तु को समेटकर ऊपर चढ़ाना। जैसे,—परदा उलटा दो। ५. इधर का उधर करना। अडबड़ करना। अस्त व्यस्त करना। घालमेल करना। जैसे,—तुमने तो हमारा किया कराया सब उलट दिया। ६. विपरीत करना। और और का करना। जैसे,—(क) उसने तो इस पद का सारा अर्थ उलट दिया। (ख) कलक्टर ने तहसील के इतजाम को उलट दिया।

संयो० क्रि०—देना।

७. उत्तर प्रत्युत्तर करना। बात दोहराना। जैसे,—(क) बड़ों की बात मत उलटा करो। उ०—आवत गारी एक है उलटत होय अनेक। कहै कबीर नहि उलटिए वही एक की एक।—कबीर (शब्द०)।

८. खोकर फेंकना। उखाड़ डालना। खोदना। खोदकर नीचे ऊपर करना। जैसे,—यहाँ की मिट्टी भी फावड़े ने उलट दी। उ०—वेगि देखाउ मूढ़ न तु आजू। उलटौं महि जहँ नगि तव राजू।—तुलसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—देना।

९. बीज मारे जाने पर फिर से बोने के लिये खेत को जोतना। १०. बेमुश्क करना। बेहोश करना। जैसे,—भाँग ने उलट दिया है, मुँह से बोला नहीं जाता है।

संयो० क्रि०—देना।

११. कै करना। वमन करना। जैसे,—खाया पीया सब उलट दिया। १२. उँडेलना। अच्छी तरह डालना। ऐसा डालना कि वरतन खाली हो जाय। जैसे,—उमने सब दवा गिलास में उलट दी।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

१३. वरवाद करना। नष्ट करना। जैसे,—नडकी के व्याह के खर्च ने उन्हें उलट दिया। १४. रटना। जपना। बार बार कहना। जैसे,—नू रात दिन क्यों उसी का नाम उलटनी रहती है।

विशेष—माला फेरने या जपने को 'माला उलटना' भी कहते हैं, इसी से यह मुहावरा बना है।

उलटना पलटना^१—क्रि० स० [अवलुण्ठन परिलुण्ठन प्रा० उल्लङ्घ पलट्] १. इधर उधर फेरना। नीचे ऊपर करना। जैसे,—(क) सब असवाव उलट पलट कर देखो, घड़ी मिल जायगी। उ०—उलटा पलटा न उपजे ज्यों खेतन में बीज।—कबीर (शब्द०)। २. अडबड़ करना। अस्त व्यस्त करना। २ और का और करना। बदल डालना। जैसे,—नए राजा ने सब प्रबंध ही उलट पलट दिया।

उलटना पलटना^२—क्रि० अ० इधर उधर पलटा खाना। घूमना फिरना। उ०—(क) आप अपुनपो भेद विनु उलटि पलटि अरुसाइ, गुरु विनु भिटइ न दुगदुगी अनवनिनयत न नसाइ।—कबीर (शब्द०)। (ख) उलटि पलटि कपि लका जारी।—(शब्द०)।

उलट पलट^१—संज्ञा पुं० [हि० उलट + पलट] १. हेर फेर। बदल-बदल। फेर फार। परिवर्तन। २. अव्यवस्था। गड़बड़।

क्रि० प्र०—उलझना ।—पडना ।

३ पंच । चक्कर । समझा । व्यग्रता । चिता । तरद्बुद ।

मुहा०—उलझन में उलझना = झुंझ में फँसना । वल्ले में डालना । जैसे,—तुम क्यों व्यर्थ अपने को उलझन में डालते हो । उलझन में पडना = फेर में पडना । चक्कर में पडना । माया पीछा करना ।

उलझना—क्रि० अ० [हि० उलझन] १ फँसना । अटकना । किसी वस्तु से इस तरह लगना कि उसका कोई अंग घुस जाय और छुड़ाने में जल्दी न छूटै । जैसे, काँटे में उलझना । (उलझना का उलटा मुलझना) ।

सयो० क्रि०—जाना ।

२ लपेट में पडना । गुथ जना । (किसी वस्तु में) पँच पडना । बहुत से घुमावों के कारण फँस जाना । जैसे,—रस्सी उलझ गई है, खूँती नहीं है ।

सयो० क्रि०—जाना ।

३ लिपटना । उ०—मोहन नव नृगार विटप मो उरभी आनद वेल ।—सूर (शब्द०) ।

सयो० क्रि०—जाना ।

४ किसी काम में लगना । लिपन होना । लीन होना । जैसे—(क) हम तो अपने काम में उलझे थे इधर उधर ताकते नहीं थे । (ख) इस हिमाचल में क्या है जो घटो में उलझे हो ।

सयो० क्रि०—जाना ।

५ प्रेम करना । आसक्त होना । जैसे, वह लखनऊ में जाकर एक रडो से उलझ गया ।

सयो० क्रि०—जाना ।

६ विवाद करना । तकरार करना । लडना-झगडना । छेडना । जैसे,—तुम जिससे देखो उसी से उलझ पडते हो ।

सयो० क्रि०—जाना ।—पडना ।

७ कठिनाई में पडना । अडचन में पडना । ८ अटकना । रुकना । जैसे,—वह जहाँ जाता है वहीं उलझ रहता है ।

मुहा०—उलझना मुलझना = फँसना और खुलना । उलझना पलझना = बुरी तरह फँसना और निवारने में और फँसते जाना । उ०—यह मसार काँटे की गाड़ी उलझ पलझ मर जाता है ।—कवीर श०, भा० १, पृ० २१ । उलझना मुलझना = अच्छी तरह फँसना । उ०—ब्राह्मण गुह हैं जगत के करम भरम का चाहि । उनकि पुत्रकि के मरि गए चारिउ वेदन माहि ।—कवीर (शब्द०) । उलझा मुलझा = टेढ़ा सीधा । मला बुरा । उ०—बेनुरी ये ठेकाने की उलझी सुनझी तान सुनाऊँ ।—झाप्रल्ला (शब्द०) । उलझना उलझाना = बात बात में दखन देना । उ०—जब तक लाला जो लिहाज करते हैं, तब तक ही उनका उलझना उलझाना चल रहा है ।—परीनामु (शब्द०) ।

उलझा—सज्ञा पुं० [हि०] १ 'उलझन' ।

उलझा^२—सज्ञा पुं० [वि०] १ हून । २ शून । पीड़ा । उ०—

वीर वियोग के ये उलझा निकासैं जिन रे जिकरा हियरा तैं ।

—ठाकुर०, पृ० ४ ।

उलझाना^१—क्रि० स० [हि० उलझना] १ फँसाना । अटकाना ।

२ लगाए रखना । लिप्ट रखना जैसे ।—वह लोगो को घंटों बातों ही में उलझा रखता है । ३ लकड़ी आदि में बल डालना या टेढ़ा करना ।

उलझाना^२—क्रि० अ० [हि० उलझना] उलझना । फँसना ।

उ०—जीव जजालों मढ़ि रहा उलझानो मन सूत । कोइ एक सुलझे सावधी गुरु वाह अवधूत ।—कवीर (शब्द०) ।

उलझाव—सज्ञा पुं० [हि० उलझ + आव (प्रत्य०)] १ अटकाव । फँसाव । २ झगडा । बखेडा । झूझ । ३ चक्कर । फेर ।

उलझेड—सज्ञा पुं० [हि० उलझ + एड (प्रत्य०)] उलझन । उ०—इसको दा लम्हेड न सुलझेगा ज्यानी वड़े ।—नट०, पृ० १२७ ।

उलझेडा—सज्ञा पुं० [हि० उलझेड] १ अटकाव । फँसान । २ झगडा बखेडा । झूझ । ३ खीचातानी ।

उलझीहाँ—वि० [हि० उलझ + झँहा (प्रत्य०)] १ अटकानेवाला । फँसानेवाला । २ वश में करनेवाला । लुभानेवाला । उ०—हांत सखि ये उलझींहे नैन । उरकि परत सुरभ्यो नहि तानत सोचत समुजत हैं न ।—हरिश्चंद्र (शब्द०) ।

उलटकवल—सज्ञा पुं० [वि०] एक पौधा या झाड़ी जो हिंदुस्तान के गरम भागों में पत्तीली भूमि में होती है ।

विशेष—इसकी रेशेदार छाल पानी में सडाकर या धो ही छीलकर निकाली जाती है । छाल सफेद रंग की होती है । पौधे से साल में दो तीन बार छह या सात फुट की डालियाँ छाल के लिये काटी जाती हैं । छाल को कूटकर रस्सी बनाते हैं । जड़ की छाल प्रदर रोग में दी जाती है ।

उलटकटेरी—सज्ञा स्त्री० [हि० उलट्ट कट] अटकटारा । अटकटाई ।

उलटन—सज्ञा पुं० [हि० उलटना] लौटने का कार्य या स्थिति । उ०—दुरि मुरि भगन बचावत छवि सो आवन उलटन सोहै ।—नट० प्र०, पृ० ३८१ ।

उलटना—क्रि० अ० [सं० उलण्ठन या अवलुण्ठन] १ ऊपर नीचे होना । ऊपर का नीचे और नीचे का ऊपर होना । झँझा होना । पलटना । जैसे, यह दावात कैसे उलट गई ।

सयो० क्रि०—जाना ।

२ फिरना । पीछे मुड़ना । घूमना । पलटना । जैसे—मैंने उलटकर देखा तो वहाँ कोई न था । उ०—जेहि दिमि उलट सोई जनु खावा । पलटि सिंह तेहि ठाऊँ न प्रावा ।—जायसी (शब्द०) ।

सयो० क्रि०—पडना ।

विशेष—गद्य में पूर्वान्वित रूप में 'पडना' के साथ सयुक्त रूप ही में यह क्रिया अधिक आती है ।

३ उमडना । टूट पडना । उलझ पडना । एकवारगी बहुत सख्या में आना या जाना । जैसे—तमाशा देखने के लिये सारा शहर उलट पडा । उ०—नयन बाँक सर पूज न कोऊ मन समुद्र अस उलटहि दोऊ ।—जायसी (शब्द०) ।

जिसका मुँह ऊपर की ओर हो। उ०—हमरे देसवा उर्वमुख
कुइयाँ सँकर बाकी खोरिया।—घरम० श०, पृ० ३५।

क-संज्ञा पु० [अ० उर्फ] चलतू नाम। पुकारने का नाम।

उ-संज्ञा स्त्री० [स० ऊर्मि] दे० 'ऊर्मि'।

ला-संज्ञा स्त्री० [स० उर्मिला] १. सीता जी की छोटी बहिन
जो लक्ष्मण जी से ब्याही थी। उ०—(क) माडवी श्रुतिनीति
उर्मिला कुँअरि लई हँकारि कै।—तुलसी (शब्द०)। २
एक गंधर्वा जिसकी पुत्री सोमदा से ब्रह्मदत्ता उत्पन्न हुआ
जिसने कपिला नगरी बसाई।

उर्वट-संज्ञा पु० [स०] १. बछड़ा। २. वर्ष [को०]।

उर्वर-वि० [स०] उजा या पैदाकरनेवाला [को०]।

उर्वरक-संज्ञा पु० [स० उर्वर + क] खाद जो खेतों की उपज बढ़ाने के
लिये रासायनिक ढग से तैयारी की जाती है।

उर्वरता-संज्ञा स्त्री० [स० उर्वर + ता (प्रत्य०)] १. उर्वर होने
की स्थिति। उपजाऊपन। २. अधिक उपजाऊ होना।

उर्वरा^१-संज्ञा पु० [स०] १. उजाऊ भूमि। २. पृथ्वी। भूमि। ३
एक अप्सरा। ४. सूत या ऊन आदि की डेरी या गड़्डी (को०)।
५. घुँघराले बाल (हाम परिहास में) (को०)।

उर्वरा^२-वि० स्त्री० उपजाऊ। जरखेज।

यो०—उर्वरा शक्ति।

उर्वराजित्-वि० [स०] उपजाऊ भूमि को अधिकार में करने-
वाला [को०]।

उर्वरापति-संज्ञा पु० [स०] खड़ी खेती या फसल का स्वामी [को०]।

उर्वरित-वि० [स०] १. बहुत। अत्यधिक। २. अवशिष्ट। मुक्त [को०]।

उर्वरी-संज्ञा स्त्री० [स०] १. वह पत्नी जो बहुत सी अन्य स्त्रियों के
साथ वरण के लिये दी गई हो। २. श्रेष्ठ स्त्री। ३. सूत या
रेशा जो चरखे से निकाला गया हो [को०]।

उर्वर्य-वि० [स०] उपजाऊ भूमि से संबंध रखनेवाला [को०]।

उर्वशी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक दिव्य अप्सरा। स्वर्ग की अप्सरा।

यो०—उर्वशीतीर्थ। उर्वशीरमण, उर्वशीवल्लभ, उर्वशीसहाय =
पुरुषवा नरेश का नाम।

उर्वशीतीर्थ-संज्ञा पु० [स०] महाभारत में वर्णित एक तीर्थ का नाम।

उर्वारि-संज्ञा पु० [स०] १. खरबूजा। २. ककड़ी।

उर्वारि-संज्ञा पु० [स०] १. खरबूजा। २. ककड़ी। ३. कद्दू (को०)।

उर्विजा(उ)-संज्ञा पु० [स० उर्वी + जा] दे० 'उर्विजा'।

उर्वी-संज्ञा स्त्री० [स०] पृथिवी।

यो०—उर्वीजा। उर्वीतल। उर्वीधव, उर्वीपति, उर्वीमृत, उर्वीश।
उर्वीश्वर = नरेश। राजा।

उर्वीजा-संज्ञा स्त्री० [स०] पृथ्वी से उत्पन्न सीता।

उर्वीतल-संज्ञा पु० [स०] पृथ्वी का तल। धरातल [को०]।

उर्वीधर-संज्ञा पु० [स०] १. शेष। २. पर्वत।

उर्वीरुह-संज्ञा पु० [स०] वृक्ष, पौधा आदि वनस्पति समूह [को०]।

उर्स-संज्ञा पु० [अ०] १. मुसलमानों के मत के अनुसार किसी साधु,

महात्मा, पीर आदि के मरने के दिन का कृत्य। २. मुसलमान
साधुओं की निर्वाण तिथि।

उलंग-वि० [स० उल्लङ्घन] नगा। उ०—दास गरीब उलग छवि
अधर डक कूदत।—कवीर म०, पृ० ५८८।

उलंगना(उ)-क्रि० सं० [स० उल्लङ्घन] दे० 'उलघना'। उ०—व
इल्लीस भुई पर थे हमला किया। व सातो तवक सूँ उलंग कर
गया।—दक्खिनी०, पृ० ३२८।

उलगन-संज्ञा पु० [स० उल्लङ्घन] दे० 'उलघन'।

उलघना(उ) उलघना-क्रि० सं० [स० उल्लघन प्र० उल्लघण =
लघना] १. नाँघना। डँकना। फाँदना। उलघन करना।
उ०—(क) ऊँचा चढ़ि असमान को मेरु उलँभी उड़ि। पशु
पक्षी जीव जंतु सब रहा मेरु में गूड़ि।—कवीर (शब्द०)।
या भव पारावार को उलँघि पार को जाय, तिय छवि छाया
ग्राहिनी गहै बीच ही आय।—विहारी (शब्द०)। २. न
मानना। अवहेलना करना। अवज्ञा करना। उ०—सतगुरु
सबद उलघि करि जो कोई शिष्य जाय। जहाँ जाय तहँ काल
है कह कवीर समुझाय—कवीर (शब्द०)।

उलका(उ)-संज्ञा स्त्री० [स० उल्का] दे० 'उल्का'। उ०—मुख में
उलका लए फिरति हैं कुणिवा कारी।—श्यामा०
(भू०), पृ० ५।

उलकैया विलुकैया(उ)-संज्ञा स्त्री० [हि०] भाई। भाँसापट्टी।
दमपट्टी। लुकाछिपी।

क्रि० प्र०—देना। उ०—राजा तो उलकैया विलुकैया दै के
निकरि आयो।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० १०६।

उलगटा-संज्ञा स्त्री० [हि० उल्लङ्घ + ट (प्रत्य०)] कूद। फाँद।

उलगना-क्रि० अ० [स० उल्लङ्घन] कूदना। लघना।

उलगाना-क्रि० सं० [सं० उल्लघन] [संज्ञा उलगट] कुदना।
फँदना।

उलचना-क्रि० सं० [हि०] दे० 'उलीचना'।

उलछना(उ)-क्रि० सं० [हि० उलचना] १. हाथ से छितराना।
विखराना। २. उलीचना।

उलछा-संज्ञा पु० (हि० उलचना) हाथ से छितराकर बीज बोने की
रीति। छीटा। बखेरना। पवेरा।

विशेष—इसका उगटा सेव या गुल्ली है।

उलछारा-संज्ञा पु० [हि०] छीटने या बखेरने की क्रिया। २
ऊपर या अगल वगन फेंकना। ३. हूल आना। कै
मालूम होना।

उलछारना(उ)-क्रि० सं० [हि० उलछना या उछाल] १. ऊपर
या अलग उछालना या फेंकना। २. कोई गुप्त बात सब पर
प्रकट कर देना। ३. आरोप करना। इनजाम लगाना। ४.
निंदा करना। बुराई करना।

उलझन-संज्ञा पु० [स० अवलम्बन, 'अवलम्ब्यते' के रहित भाग 'ते' से
पा० ओरुज्जन] १. अटकाव। फँसान। गिरह। गँठ। २.
बाधा। जैसे—तुम सब कामों में उलझन डाला करते हो।

उरुहार—सज्ञा पुं [सं] बहुमूल्य हार [को०] ।

उरुह—सज्ञा पुं [सं] एक प्रकार का उल्लू [को०] ।

उरुज—सज्ञा पुं [अ०] १ ऊपर उठना । चढ़ना । २ बढ़ती । वृद्धि ।
उन्नति ।

यौ०—उरुजोजवाल = (१) उन्नति-प्रवर्धन । (२) लाभ-हानि ।
वृद्धि हास ।

उरुएस—वि० [सं] चौड़ी नाकवाला [को०] ।

उरुसी^१—सज्ञा पुं [?] एक वृक्ष जो जापान में होता है । इसके
घड़ से एक प्रकार का गोद निकाला जाता है जिससे रंग और
वारनिश बनती है ।

उरुसी^२—सज्ञा स्त्री [पुं उरुस] दुलहन । उ०—जब इस वज्र
छव की उरुसी दिखाय, तो जोहर को ज्यो दिप मने जल्वा
गाय ।—दक्खिनी०, पृ० १३८ ।

उरौ^१—क्रि० वि० [वै० सं] अवसर = निकट, इधर, सं अवसर १
परे । आगे । दूर । ३ इधर । निकट उ०—(क) श्री
जगन्नाथराय जी तें उरे कोस वीस कोस पर एक ग्राम है ।—
दोसोवावन०, भा० २ पृ० १३ (ख) घरतें चलि कै दिल्ली
के उरे को चलयो ।—दो सो वावन, भा० १, पृ० १६५ ।

उरेखना^१—क्रि० सं [हिं अवरेखना] दे० 'अवरेखना' । उ०—
अवर पीत लसं चपला छवि अबुद मेचक अग उरेखे ।—
मतिराम ग्र०, पृ० ३३० ।

उरेखना^२—क्रि० सं [सं उल्लेखन या अवरेखन] 'उरेहना' ।
उ०—यूसुफ मूरत हिउँ उरेखैं, घरैं ध्यान निज आगे देखैं ।
—हिंदी प्रेमा०, पृ० २६६ ।

उरेक्षा^१—सज्ञा पुं [हिं उल्लेखन] दे० 'उल्लेखन' । उ०—परे
जहाँ तहें मुरझि भूप सब उरझि उरेक्षा ।—नद० ग्र०,
पृ० २१० ।

उरेहना^१—सज्ञा पुं [सं उल्लेख] चित्रकारी । नक्काशी । उ०—
(क) कीन्हेसि अगिनि पवन जल खेहा, कीन्हेसि बहुतें रंग
उरेहा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) जावतें सब उरेह
उरेहे । भाँति भाँति नग लाग उवेहे ।—जायसी (शब्द०) ।

उरेहना^२—क्रि० सं [सं उल्लेखन] १ खीचना । लिखना ।
रचना । उ०—काह न मूठ भरी वह देही, अस मूरति के
देव उरेही ।—जायसी (शब्द०) । २. सलाई से लकीर
करना । रँगना । लगाना । उ०—खेह उडानी जाहि घर
हेरत फिरत सो खेहु, पिय आवाहि अव दिष्ट तोहि अजन
नयन उरेहु ।—जायसी (शब्द०) ।

उरेडना^१—क्रि० प्र० [हिं उडेलना] दे० 'उडेलना' ।

यौ०—उरेडाउरेडो = उडेलो उडेलो । छीनाभूषण में गिराने का
काम । उ०—आनंदधन सो मिलि चलि दामिन नातर मचि
है दधि की उरेडाउरेडो ।—घनानंद, पृ० ५२६ ।

उरै^१—क्रि० वि० [हिं] दे० 'उरे' । उ०—छगन मगत वारे
कन्हैया, नैकु उरै धौ माइ रे ।—नद० ग्र०, पृ० ३३६ ।

उरो—सज्ञा पुं [सं] 'उरस्' का समास प्राप्त रूप ।

उरोगम—सज्ञा पुं [सं] संप । सांप [को०] ।

उरोग्रह—सज्ञा पुं [सं] पार्श्व शून [को०] ।

उरोधात—सज्ञा पुं [सं] छाती का दर्द [को०] ।

उरोज—सज्ञा पुं [सं] स्तन । कुच । छाती ।

उरोवृहती—सज्ञा स्त्री [सं] एक छंद का नाम [को०] ।

उरोभूषण—सज्ञा पुं [सं] छाती पर धारण किया जानेवाला
एक अलंकार [को०] ।

उरोरुह—सज्ञा पुं [सं] उरोज । कुच । उ०—नयनो मे नि सीम
व्योम, श्री उरोरुहो मे सुरसरि धार ।—पल्लव, पृ० ३६ ।

उरोविवध—सज्ञा पुं [सं उरोविवध] श्वास रोग । दमा [को०] ।

उरोहस्त—सज्ञा पुं [सं] बाहुयुद्ध या मल्लयुद्ध का एक भेद [को०] ।

उर्जित—वि० [सं] १ वर्धित । शक्तिशाली । बलवान् । २ त्यक्त ।
छोड़ा हुआ । ३ गर्वी । अभिमानी । घमडी [को०] ।

उर्जोरा^१—सज्ञा पुं [हिं] दे० 'उरभेरा' । उ०—तीन सौ साठ
पैठ उर्जोरा । कैसे हसन लेव उवेरा ।—कवीर सा०, पृ० ८०४ ।

उर्ण—सज्ञा पुं [सं] दे० 'ऊर्ण' ।

उर्णनाभ—सज्ञा पुं [सं] मकड़ा ।

उर्णा—सज्ञा स्त्री [सं] दे० 'ऊर्णा' ।

उर्दी—सज्ञा पुं [हिं] दे० 'उरद' ।

उर्दपर्णी—सज्ञा स्त्री [हिं उर्द + सं पर्णी] मापपर्णी । वन उर्दी ।

उर्द^१—सज्ञा पुं [तु०] लश्कर । छावनी ।

उर्द^२—सज्ञा स्त्री [तु०] वह हिंदी जिसमें अरबी, फारसी भाषा के
शब्द अधिक मिले हों और जो फारसी लिपि में लिखी जाय ।
विशेष—तुर्की भाषा में इस शब्द का अर्थ लश्कर, सेना का शिविर
है । शाहजहाँ के समय से इस शब्द का प्रयोग भाषा के अर्थ में
होने लगा । उस समय बादशाही सेना में फारसी, तुर्क और
अरब आदि भरती थे और वे लोग हिंदी में कुछ फारसी,
तुर्की, अरबी आदि के शब्द मिलाकर बोलते थे । उनको इस
भाषा का व्यवहार लश्कर के बाजार में चीजों के लेनदेन में
करना पड़ता था । पहले उर्द एक बाजार भाषा समझी जाती
थी पर धीरे धीरे वह साहित्य की भाषा बन गई ।

यौ०—उर्द ए मुसल्ला = प्रशस्त या उच्च कोटि की उर्द जिसमें
अरबी फारसी शब्दों का अधिकतम प्रयोग हो । उर्द बेगनी =
बाजार में खरीदी हुई स्थियाँ जो लड़ाई के वक्त अमीरों की
बेगम का काम करती थीं ।—राज० इति०, पृ० ७६६ ।

उर्द बाजार—सज्ञा पुं [तु० उर्द + बाजार] १ लश्कर का बाजार ।
छावनी का बाजार । २ वह बाजार जहाँ सब चीजें मिलें ।

उर्द^३—वि० [सं ऊर्ध्व] दे० 'ऊर्ध्व' । उ०—अध को अधर धरा प
धरचो । उर्द अधर जलधर मै करचो ।—नद०
ग्र०, पृ० २६० ।

उर्द^४—सज्ञा पुं [सं] ऊर्ध्विलाव [को०] ।

उर्ध्व^१—वि० [सं ऊर्ध्व] दे० 'ऊर्ध्व' ।

उर्ध्वाहु^१—सज्ञा पुं [सं ऊर्ध्ववाहु] जिसकी बांह ऊपर उठी हो ।

उ०—कोई उर्ध्वाहु कर रहे उठाई ।—जग० शा०, पृ० ६६ ।

उर्ध्वमुख^१—वि० [सं ऊर्ध्वमुख] ऊपर की ओर मुँहवाला ।

उराट्—सज्ञा पुं० [म० उरस्यल, > प्रा० *उरट्, > हि० उराठ] छाती । (डि०) ।

उराण—वि० [स०] चौड़ा या विस्तृत करनेवाला । फैलानेवाला [को०] ।

उराना—क्रि० प्र० [हि० ओर + आना (प्रत्य०)] समाप्त होना । खतम होना । वि० दे० 'ओराना' । उ०—देखत उरै कपूर ज्यो उर्प जाइ जनि लाल । छिन छिन जाति परी खरी छीन छबीली वात ।—विहारी (शब्द०) ।

उरमाथी—वि० [स०] भेड़ को मारनेवाला (भेड़िया) [को०] ।

उराय—सज्ञा पुं० [हि० उराव] दे० 'उराव' ।

उरारा—वि० [स० प्रा० उराल] विस्तृत । विशाल । उ०—रूप मरे मारे अनूप अनियारे दृग कोरनि उरारे कजरारे वृंद डरकनि । देव ग्रन्थ नई ग्रन्थ नई रिसि की छवि सुधा मधुर अधर सुधा मधुर पलकनि ।—देव (शब्द०) ।

उराव—सज्ञा पुं० [स० उरस् + आव (प्रत्य०)] चाव । चाह । उमग । उत्साह । होसला । उ०—(क) जे पद कमल सुरसरी परसे तिहूँ भुवन यश छाव । सूर श्याम पद कमल परसिहूँ मन अति बढ्यो उराव ।—सूर (शब्द०) । (ख) तुलसी उराव होत सम को सुभाव मुनि को न बलि जाइ न बिकाइ विन मोल को —तुलसी (शब्द०) । (ग) अति उराव महाराज मगन अति जान्यो जात न काला ।—रघुराज (शब्द०) ।

उराह—सज्ञा पुं० [स०] पीले रंग का एक घोड़ा जिसका पंर काला हो ।

उराहना—सज्ञा पुं० [स० उपात्म] १ उपात्म । शिकायत । उ०—(क) भए वटाऊ नेह तजि वाद वकति वेकाज । अव अलि देत उराहनो, उर उपजति अति लाज ।—विहारी (शब्द०) । (ख) काहे को काहू को दीजे उराहनो आवैं इहाँ हम आपनी चाडे ।—देव (शब्द०) ।

उरिण—वि० [स० उरुण] दे० 'उरुण' ।

उरिन—वि० [स० उरुण] दे० 'उरुण' । उ०—अव हूँ हीं दै माय उरिन तिहारे लीन सौं —हम्मीर०, पृ० ६७ ।

उरिण्ट—सज्ञा पुं० [स०] रीठा । रीठी । फेनिल ।

उरी—अव्य [देशी०] दे० 'अर' । उ०—मजो हो सतगुर नाम उरी ।—कबीर० श०, भा० १, पृ० ३८ ।

उरुजिरा—सज्ञा स्त्री० [स० उरुजिरा] विपाशा नदी का नाम [को०] ।

उरु—वि० [स०] १ विस्तीर्ण । लवा चौड़ा । २ विशाल । बड़ा । ३ श्रेष्ठ । बड़ा । महान् । ४ प्रचुर (को०) । ५ बहुल (को०) । ६ मूल्यवान् । कीमती (को०) ।

उरु—सज्ञा पुं० [स० उरु] जघा । जांघ ।

उरुकाल, उरुकालक—सज्ञा पुं० [स०] एक लता । महाकाल नाम की लता [को०] ।

उरुकीर्ति—वि० [सं०] प्रतिष्ठ । यशस्वी । अत्यंत नामी [को०] ।

उरुकृत्—वि० [स०] विस्तीर्ण या अधिक करनेवाला [को०] ।

उरुकर्म—वि० [स०] १ वनवान् । पराक्रमी । २ लवे लवे पांव बढ़ानेवाला । लवे डग भरनेवाला ।

उरुकर्म—सज्ञा पुं० १ विष्णु का वामन अवतार । २ सूर्य । ३ शिव (को०) । ४ लवा उग (को०) ।

उरुक्षय—सज्ञा पुं० [म०] विस्तीर्ण निवास या वासस्थान [को०] ।

उरुगव्युति—वि० [सं०] विस्तृत क्षेत्र या स्थानवाला [को०] ।

उरुगाय—वि० [स०] १ जिमका गान किया जाय । २. प्रशंसित । ३ जिसके डग तवे हो । फैला हुआ ।

उरुगाय—सज्ञा पुं० १ विष्णु । २ सूर्य । ३. स्तुति । प्रशंसा । ४. इद्र (को०) । ५ सोम (को०) । ६ अश्विनीकुमार (को०) । ७ प्रशस्त स्थान (को०) ।

उरुगुला—सज्ञा स्त्री० [स०] सर्प । सांप [को०] ।

उरुचक्षा—वि० [स० उरुचक्षस्] दूरदर्शी [को०] ।

उरुचक्र—वि० [स०] चौड़े चक्के या पहियोवाली (गाड़ी) [को०] ।

उरुजना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'उरभना' ।

उरुजन्मा—वि० [सं० उरुजन्मन्] अच्छे कुल या वंश में उत्पन्न [को०] ।

उरुजयस्—वि० [सं०] विशाल पथ में गमन करनेवाला । विस्तृत क्षेत्र में फैलनेवाला (प्रगति और इद्र) [को०] ।

उरुजना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'उरभना' ।

उरुता—सज्ञा स्त्री० [म०] विशालता । विस्तार [को०] ।

उरुताप—सज्ञा पुं० [स०] अधिक गरमी या ऊष्मा [को०] ।

उरुत्व—सज्ञा पुं० [स०] १ विस्तीर्णता । २ विशालता [को०] ।

उरुवार—वि० [स०] १ चौड़ी धारा देनेवाला । २ अधिकता से बहनेवाला [को०] ।

उरुपुष्पिका—सज्ञा स्त्री० [स०] एक प्रकार का पीघा [को०] ।

उरुविल—वि० [स०] चौड़े मुँहवाला, जैसे घड़ा [को०] ।

उरुविल्व—सज्ञा पुं० [स०] वह म्यान जहाँ बुद्ध को सम्यक् बुद्ध या बुद्धत्व की प्राप्ति हुई थी । आजकल इम स्थान को बुद्ध गया कहते हैं ।

उरुमार्ग—सज्ञा पुं० [स०] विशाल पथ या राजमार्ग [को०] ।

उरुरात्रि—सज्ञा स्त्री० [स०] रात का अंतिम या उत्तर भाग [को०] ।

उरुवा—सज्ञा पुं० [स० उलूक, प्रा० उलूक] उलू की जाति की एक चिड़िया । रुआ ।

उरुविक्रम—वि० [स०] बलशाली । पराक्रमी [को०] ।

उरुवु—सज्ञा पुं० [स०] १ रेंड का वृक्ष । २. लाल एरंड [को०] ।

उरुवा—सज्ञा स्त्री० [स०] विस्तार [को०] ।

उरुव्रज—वि० [स०] विस्तृत स्थानवाला । विस्तृत [को०] ।

उरुशंस—वि० [स०] बहुप्रशंसित । जिनकी प्रशंसा बहुत लोग करें [को०] ।

उरुसी—सज्ञा पुं० [हि०] खटमल । उडस ।

उरुस—सज्ञा पुं० [म० उस्] दे० 'उम' । उ०—रोजा करे निमाज गुजारे, उरुस करे और आतम मारे ।—मलूक०, पृ० २२ ।

उरुसत्व—वि० [सं०] उदार [को०] ।

उरुस्वान्त—वि० [म०] जिसकी प्रावाज ऊँची हो । ऊँची प्रावाजवाला [को०] ।

गुह्य उर म उग्रमान । मोमा पर मे खु खुवात ।—हेज
(सू.१०) ।

उपना(५)—दि० प्र० [हि० उत्तमाना] दे० 'उत्तमा' । उ०—
ज्यो ज्यो गुरनि मज्यो बढा त्यों त्यो उरन्दा जान ।
—बिहारी ७०, दो० ६७१ ।

उरझाना—श्रि० मं० [हि०] १० 'उरझाना'। उ०—स्मृति नाम्न
पुराण ब्रह्मणा। तान उरुज जीव उरझाना।—कपीर ना०,
पृ० ६४।

उपेष्ट-म.ग. सं० [हि० उत्तमना] उपेष्ट । उ०-परी हि कय
ना परी परी हिण् उपेष्ट ।-गुरुतला, पृ० २६ ।

उत्पत्ति-समाप्त ३० [३० उत्तर ॥] ३० 'उत्पत्ति' ।

उरजेर७—य.ग. ३० [हि० उरसना] १. उरजेर। उमजन।
उ०—रुह प्रजर उरजेर, परपो प्राणि सो निर पजरि।—
नट०, पृ० १६६। २. प्रजर। उ०—पानी को को फेरि
निथी पोन उरजेर निथी प्रजर को को फेरि कोऊ कने कें गहुउ
हैं।—नट० प्र०, ना० २, पृ० ६५०।

उरजेरा(५)- सना पु० [१६०] 'उरजेरा ।' उ०-युम प्रम प्रयुम
हा हरे निरोग । मेरा हाव नवन उरजेरा ।-कयीर सा०,
प० २०५ ।

हरनेरो (ॐ) — सज्ञा श्री० [दि० उर + मेरी] हृदय की जगता । मन की उन्नत । व्याकुलता । उन्नत । उ० — प्रानेदपत्त रम-
यित्त जिया की प्रात परोक्षा सरस्वता हृ उरनेरी तो ।
— पनामद, प० ३३३ ।

उ. रा. - म. ग. पु. [मं.] १ भेदा । नडा । २ एक मपुर (टी.) । ३
दुरेतम नामक ग्रह ।

विशेष - पृथ्वी से बहुत अधिक दूर होने के कारण एक भूनिच
हिरर जारे या नन्हा के समान जान पड़ता है। पृथ्वी से सूर्य
जिनगी दूरी पर है, उसकी मयोज्ञा यह प्राय १३ गुनी अधिक
होती पर है। यद्यपि प्राचीन नास्तीय ज्योतिषियों को बहुत
दिना बहुत इनका ज्ञान था, तत्पनि वास्तविक ज्योतिषियन न
स होते तब १७०१ ई० में इनका ज्ञान लगाया था। इसकी
परिधि १९००० मील है। प्राय २८ एवं १ सप्ताह में
इनका परिक्रमण होता है। इसके चार उपाग्र हैं, जिनमें से
उन छोटें हैं कि सिवा बहुत मज्झी दूरबीन से दिखाई नहीं
देते। इन्हें १।

उत्तराङ्क—पृष्ठा १ [नं०] १ पृष्ठ २ नं० ३ पृष्ठ ४ नं० ५ ।

उत्सृज्यते--१.११ पु० [७०] नमः ॥ (२०) ॥

उत्तराध्यायः -- अ. ११. ३० [१०] इत्यनं नाम एव प्रथितम् [३०] ।

पार्श्वो-उरला.क. । उरलाभ्य । उरलाभ्यः ।

ਤਸੀਹੋ - ੩.੧.੫੭ [੧੭] ਜੋ : ਚਿੰ : ।

उत्तर - जहाँ पूरा [मन इच्छा, भाव तथा शक्ति] [को प्रयोग करने] का प्रभाव है। जो भी विचारों की शक्ति के साथ ही है, तो ही मान लिया है।

पिपिता—राक्षस एक एक सिद्धि नमना शत्रु ही मानवतावादी
होती है। बगल रक्त के पुनः पिपाता है। कविता २-४ पद्य
की होती है और पुनः न लक्ष्य होती है। कविता कभी

[illegible]

पर्याप्त-मात्र । कुशल । मानस ।

मुहा०—उर के प्रादे से गम्ह फेंकना = (१) शरणागति । सराव
होना । उँग, जो उर के प्रादे से गम्ह फेंक दी जाती
होती है । (२) पनडुब्बी । डूबना । डूब दिखाना ।
उ०—मुझ लोग प्रादे ही पन में उर के प्रादे से गम्ह फेंक
जाते हैं । उर पर लफेंदी = वृद्ध । कम । कम मात्र । शरीर
मजबूत । गे०—उमर दिया उतना ही मैं उर पर
लफेंदी ।

विनिष—उरर रा गीत्र काजा हरा गता * हरर अरु
मंहर पर गुरु छोटी नी गहर विनी होनी ।

ઠરદો—નમ્રા બાં [હિં ઉરદા કા ધન્યાં ૫૪] ૧ ઉરદા મી ૫૮
છોટી જાતિ ।

विशेष—यह समाज मशीन में ग्यार, गहवा, गहरा भाँति के नाव बोरे जाती है और ग्यार भाँति, गहरा जाती है। इसके बीच या दाने जाने होते हैं। एक प्रकार की निम्नलिखित उरदो होती है जो नीचे पर प्रकाश देती है तथा न बिना हो जाती है।

२ वह गोम नित्तिन प्रो प्रीतिन हो पाती है गोम न नित्तिन
है। ३ मोह का एक टप्पा प्रीतिन पाती है प्रीति नित्तिन है।

उत्तर—प्रमाण [पृ. ३३] १० 'उत्तर'। उ०—'दूर' तथा 'उत्तर'।
एक प्रकार का नाटक है।—नारद उ० २५, पृ. १, पं. १०-२१।

उरध्व(७) - वि० [न० उ० + धन] ऊपर ऊपर ३० - धा ११, १११
उरध्व नम्र प्राग् वृत्ति एव सना १ - धा १०, १० २६।

उपरा७—किं हि [मं. क्र.] १० ऊपर । १०—१०० ३५८
म.५ निरार पुनन ४३८ पुनर ३५१—३५२ प्र.३०,
१०७१

उरधमुत्तं ५—शिव [उ० ज प्रमुत्त] ज्ञान का पार क्षेपण । उ०—
 मुरति दैव धनुज बरे, यती क्षुद्र उरधमुत्त । उ० ५५५
 यमन म, स्व निरि परम मु० १—उ० ५५५

उपधाया—वि० प्र० [वि० उपधाया] वि० प्र० १००—
उपधाया वि० प्र० १००—
वि० प्र० १००—

[illegible][illegible][illegible]

उम्मेद—सज्ञा स्त्री० [फा०] आशा । भरोसा । आसार ।

क्रि० प्र०—करना । वाँचना । होना ।

मुहा०—उम्मेद होना—सतान की आशा होना । गर्भ के लक्षण दिखाई देना । जैसे—इन दिनों लाला साहव के घर कुछ उम्मेद है, देखें लडका होता है कि लडकी । उम्मेद से होना = गर्भवती होना । जैसे—उनकी स्त्री उम्मेद से है ।

उम्मेदवार—सज्ञा पुं० [फा०] १ आशा करनेवाला । आसरा रखनेवाला । २ नौकरी पाने की आशा करनेवाला । ३ काम सीखने के लिये और नौकरी पाने की आशा से किसी दफ्तर में बिना तनख्वाह काम करनेवाला आदमी । वह जो किसी स्थान या पद के लिये अपने को उपस्थित करता या किसी के द्वारा किया जाता है । ४ निर्वाचन में चुने जाने के लिये खड़ा होनेवाला । जैसे—(क) वे व्यवस्थापिका परिषद की मेवरी के लिये उम्मेदवार हैं । (ख) वे बनारस डिवीजन से कौंसिल के लिये उम्मीदवार खड़े किए गए हैं ।

उम्मेदवारी—सज्ञा स्त्री० [फा०] १ आशा । आसरा । २ काम सीखने के लिये नौकरी पाने की आशा से बिना तनख्वाह किसी दफ्तर में काम करना ।

उम्र—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ अवस्था । वयस । २ जीवनकाल । आयु ।

क्रि० प्र०—काटना । —गुजारना । —बिताना ।

मुहा०—उम्र टेरना = किसी प्रकार जीवन के दिन पूरे करना । किसी तरह दिन काटना ।

उयना—क्रि० अ० [स० उवय प्रा० उयम] उदय होना । उगना । उ०—उयेउ ग्रह अवलोकित ताता ।—मानस, १।२३८ ।

उयवानी—क्रि० अ० [वैशी०] जैमाना । जैमाई लेना । उ०—उतनी कहत कुंअरि उयवानी । सहचरि दौरि उसीसी आनी ।—नद० प्र०, पृ० १४१ ।

उरग—सज्ञा पुं० [सं० उरङ्ग] १ साँप । २ नागकेसर ।

उरगम—सज्ञा पुं० [सं० उरङ्गम] साँप ।

उर—सज्ञा पुं० [सं०] 'उरस्' का समास में प्रयुक्त रूप ।

उर कपाट—सज्ञा पुं० [सं०] कपाट के समान चौड़ा, दृढ़ वक्ष [को०] ।

उर क्षत—सज्ञा पुं० [सं०] वक्ष का रोग [को०] ।

उर क्षतकास—सज्ञा पुं० [सं०] क्षयकारक खाँसी [को०] ।

उर क्षय—सज्ञा पुं० [सं०] क्षय रोग । यक्ष्मा [को०] ।

उर शूल—सज्ञा पुं० [सं०] छाती का रोग ।

उर शूली—वि० [सं० उर शूलिन्] जिसे उर शूल हो [को०] ।

उर सूत्रिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] छाती पर स्थित रहनेवाला मोतियों का हार [को०] ।

उर स्तम्भ—सज्ञा पुं० [सं० उर-स्तम्भ] दमा [को०] ।

उर स्थल—सज्ञा पुं० [सं०] वक्ष । छाती [को०] ।

उर—सज्ञा पुं० [सं० उरस्] १ वक्षस्थल । छाती ।

यौ०—उरोज ।

मुहा०—उर आनना वा लाना = छाती से लगाना । आलिंगन करना । उ०—(क) दिन दस गए बालि पहुँचाई । पूछेहु

कुशल सखा उर लाई ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) ताप सरसानी, देखँ अति अकुलानी, जऊ पति उर आनी तक सेज में विलानी जात ।—पद्माकर (शब्द०) । २ हृदय । मन । चित्त । उ०—करउ सो मम उर धाम सदा छीरसागर सयन ।—तुलसी (शब्द०) ।

मुहा०—उर आनना वा लाना = मन में लाना । ध्यान करना । विचारना । समझना । उ०—उर आनहु रघुपति प्रभुनाई ।—तुलसी (शब्द०) । उर धरना = ध्यान में रखना । ध्यान करना । उ०—वदि चरण उर धरि प्रभुताई । अगद चलेउ सर्वाहि सिर नाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

उरई—सज्ञा स्त्री० [सं० उशरी अथवा वेश०] उशीर । खस ।

उरकना—क्रि० अ० [हिं० रुकना या उड़कना] रुकना । ठहरना । उ०—राधव चेतन चेतव महा । आइ उरकि राजा पहुँ रहा ।—जायसी (शब्द०) ।

उरग—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० उरगी] १ साँप । २ पेट के बाँचलनेवाला जीव ।

यौ०—उरगराज । उरगस्थान । उरगाशन । उरगारि । उरगराति ।

उरगड्डी—सज्ञा स्त्री० [सं० उर + हिं० गाडना] एक खूँटी जिसने जुलाहे पृथिवी में ताना गाडने के लिये सूरख करते हैं ।

उरगना—क्रि० स० [सं० उरी कृत् > हिं० उसक > उरग] स्वीकार करना । अंगीकार करना । प्रंगेजना । उ०—प्राय भरतय कहाँ करें जिय माँहि गुन । जो दुख देखि लै उरगी यह बात सुनो ।—केशव (शब्द०) ।

उरगभूषण—सज्ञा [सं०] शिव [को०] ।

उरगयव—सज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का यव । २ एक प्रकार का मान [को०] ।

उरगराज—सज्ञा पुं० [सं०] १ वासुकि । २ शेषनाग [को०] ।

उरगलता—सज्ञा स्त्री० [सं०] नागवल्ली । पान ।

उरगसारचदन—सज्ञा पुं० [सं० उरगसारचन्दन] एक प्रकार का चदन [को०] ।

उरगस्थान—सज्ञा पुं० [सं०] पाताल [को०] ।

उरगाद—सज्ञा पुं० [सं०] गड ।

उरगाय—सज्ञा पुं० [सं० उरगाय] दे० उरगाय ।

उरगारि—सज्ञा पुं० [सं०] १ गड । २ मोर [को०] ।

उरगाशन—सज्ञा पुं० [सं०] १ गड । २ मोर [को०] ।

उरगास्य—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की कुदाल [को०] ।

उरगिनी—सज्ञा पुं० [सं० उरगी] सर्पिणी । नागिनी । उ०—धूमत ही मनो प्रिया उरगिनी नव विलास श्रम से जब से हो । काजर अघरनि प्रगट देखियत नाग बेलि रंग निपट लसे हो ।—सूर (शब्द०) ।

उरज—सज्ञा पुं० [सं० उरोज] कुच । स्तन । उ०—बाढत तो उर उरज भर भर तरुनई विकास । बोकनि सौनिनि के लिए आवतु रुँध उसास ।—विहारी (शब्द०) ।

उरजात—सज्ञा पुं० [सं० उरस + जात] कुच । स्तन । उ०—प्रति

उमाकांत—सज्ञा पुं० [सं० उमाकांत] पार्वती के प्रिय पति या शिव[को] ।
उमाकिनी①—वि० [हिं० उमाकिनी] उखाडनेवाली । खोदकर
फेंक देनेवाली । उ०—माया मोह नाशिनी उमाकिनी अविद्या
मूल पापन की आसिनी है ज्ञान रस रासिनी ।—रघुराज
(शब्द०) ।

उमागुरु—सज्ञा पुं० [सं०] उमा के पिता हिमवान् । हिमालय [को] ।
उमाचतुर्थी—सज्ञा स्त्री० [सं०] ज्येष्ठ मास की शुक्ल चतुर्थी । जेठ
सुदी चौथ [को] ।

उमाचना①—क्रि० सं० [म० उन्मच्चन = ऊपर उठाना] १. उमा-
डना । ऊपर उठाना । २. निकालना । उ०—लाज वस वाम
छाम छाती पै छी के, मानो नाभि त्रिवली तैं दूजी ननिनि
उमाची है ।—(शब्द०) ।

उमाट्—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उमाकट' [को] ।

उमाद①—सज्ञा पुं० [सं० उन्माद] दे० 'उन्माद' ।

उमाधव—सज्ञा पुं० [सं० उमा + धवपति] शिव । उमापति [को] ।
उमाधो①—सज्ञा पुं० [सं० उमाधव] पार्वती के पति । महादेव ।
शिव । उ०—हरो पीर मेरी उमाधो उमाधो । प्रवीधो उदो
देहि श्री विदुमाधो ।—केशव (शब्द०) ।

उमापति—सज्ञा पुं० [सं०] महादेव । शंकर । शिव ।

उमामहेश्वरव्रत—सज्ञा पुं० [म०] एक विशेष व्रत का नाम जिसमें
पार्वती श्रीर शिव की कृपा के लिये उमाधक अनुष्ठान या
व्रतोपवास प्रादि करता है [को] ।

उमावन—सज्ञा पुं० [सं०] बाणपुर नामक नगर । शोणितपुर ।
देवीकोट [को] ।

उमासुत—सज्ञा पुं० [मं०] १. कार्तिकेय । २. गणेश [को] ।

उमाह—सज्ञा पुं० [सं० उद + √मह् = उमगाना, उत्साहित करना]
उत्साह । उमग । जोश । चित्त का उद्गार । उ०—(क)
आधो सुवाहु उमाह भरो रन जो सुरनाह को दान देवैया ।
—रघुराज (शब्द०) । (ख) जान देहु सब और चित्त के मिलि
रस करन उमाहु । हरीचंद सूरत तो अपनी वारक फेरि
दिखाहु ।—हरिश्चंद्र (शब्द०) ।

उमाहना①—क्रि० प्र० [हिं० उमहना] १. उमड़ना । उमाना ।
भरकर ऊपर आना । उ०—अगन अगन माहि अनत के तुग
तरंग उमाहत आवैं ।—पद्माकर (शब्द०) । २. उमंग में
आना । उद्गार से भरना । उ०—तैंसहि राज समाज जोरि
जन धावैं हरख उमाहे ।—रघुराज (शब्द०) ।

उमाहना—क्रि० सं० उमडाना । उमगाना । वेग से बढ़ाना । उ०—
भलभगत रिस ज्वाल वदन सुत चहूँ दिशि चाहिय । प्रनय
करन त्रिपुरारि कुपित जुग उमाहिय ।—सूदन (शब्द०) ।

उमाहल①—वि० [हिं० उमाह + ल (प्रत्य०)] उमंग से भरा ।
उत्साहित । उ०—ब्रज घर घर भति होत कुलाहल । जहूँ
तहँ बाल किरन उमंगे सब अति आनंद भरे जु उमाहल ।
—सूर १०।२६ ।

उमिरिया①—क्रि० [हिं० उमार > उमिर + इया (प्रत्य०)]
दे० 'उमर' । उ०—हमरी उमिरिया होरी खेलन की, पिय मोसो
मिलि के विछुरि गयो री ।—घरम०, पृ० ५६ ।

उमेठन—सज्ञा स्त्री० [सं० उद्मेठन] ऐंठन । मरोड । पेंच । बल ।

उमेठना—क्रि० सं० [सं० उद्मेठन] ऐंठना । मरोडना ।

उमेठवां—वि० [हिं० उमेठना] ऐंठना । ऐंठनदार । धुमावदार ।
मुरेरवां ।

उमेड़ना—क्रि० सं० [हिं० उमेठना] दे० 'उमेठना' ।

उमाहउ①—सज्ञा पुं० [हिं० उमाह + उ (प्रत्य०)] दे० 'उमाह' ।
उ०—आज उमाहउ मो घडउ, ना जाएँ किंव केण ।—
ढोला० दू० ५१८ ।

उमेद—सज्ञा स्त्री० [फा० उम्मेद] उम्मीद । आशा । उ०—रावरे
अनुग्रह को मेह वरसायो आय, एको बीज उग्यो नाहि नाग यो
दिखायतु । हा हा नटनागर उमेद फनफन की थी प्यारे
मीति खेत मे तो रेत न लखायतु ।—नट०, पृ० ८२ ।

उमेदवार—सज्ञा पुं० [फा० उम्मेदवार] दे० 'उम्मेदवार' ।

उमेदवारी—सज्ञा स्त्री० [फा० उम्मेदवारी] दे० 'उम्मेदवारी' ।

उमेलना①—क्रि० सं० [सं० उम्नीलन] १. खोलना । उघाडना ।
२. प्रकट करना । ३. वर्णन करना । उ०—आवाज जगल
मनि कहै लग कहौ उमेल । ते मनुद महुँ खायो हौं का जियो
अकेल ।—जायसी (शब्द०) ।

उमैना①—क्रि० प्र० [हिं० उमहना] मनमाना व्यवहार करना ।
उमग में आना । उमडना ।

उम्दगी—सज्ञा स्त्री० [फा०] अच्छापन । भलापन । खूबी ।

उम्दा—वि० [प्र० उम्दह्] अच्छा । भला । उत्तम । श्रेष्ठ । बढ़िया ।

उम्म—सज्ञा स्त्री० [प्र०] १. जन्म देनेवाली माता । २. जड़ ।
मूल [को] ।

उम्मट—सज्ञा पुं० [देशी] एक देश का नाम । उ०—उम्मट के हव शान
जगनी जात अलाई ।—पुजान०, पृ० ८ ।

उम्मत—सज्ञा स्त्री० [प्र०] १. किसी मन के अनुयायियों की मंडली ।
उ०—कबीर सोई हुकुम हरम की उम्मत निपाई जत ।
पंगवर हुकम हरम क, बडे शरम की बात ।—कबीर०
(शब्द०) । २. जमावत । समिति । समान । किरका । ३.
ओलाद । सनान (व्याघ्र) । ४. पैरोकार । सनयंक ।
अनुयायी ।

उम्मसा—सज्ञा स्त्री० [देशी] दे० 'उमस' ।

उम्मी—सज्ञा स्त्री० [सं० उम्बी] १. गेहूँ या जौ की कच्ची बान जिसमें
से हरे दाने निकलते हैं । २. आग की लपट में जौ गेहूँ की
बालों को झुनकर खाने के लिये बनाई गई स्वादिष्ट वस्तु ।

उम्मीद—सज्ञा स्त्री० [फा०] दे० 'उम्मेद' । उ०—कहे पत्राव ने सब
हिंद की उम्मीद हुई ।—मारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ५४२ ।

मुहा०—उम्मीद वर आना = प्राप्ति प्राप्ति होना । अनीष्ट
प्राप्ति होना । उ०—कोई उम्मीद वर नहीं आती । कोई सूरत
नजर नहीं आती ।— १

उमडना—क्रि० अ० [हि० उमडना]१ पानी या और किसी द्रव वस्तु का अधिकता या बाहुल्य के कारण ऊपर उठना। भरकर ऊपर आना। उतराकर वह चलना। जैसे—वरसात में नदी नाले उमडते हैं। उ०—नदियाँ नद लों उमडी लतिका तर डारन पै गुरवान लगी।—सेवक (शब्द०)। २ उठकर फैलना। छाना। घेरना। जैसे—बादल उमडना, सेना उमडना। उ०—(क) घनघोर घटा उमडी चहुँ ओर सो मेह कहै न रहौं वरसों।—कोई कवि (शब्द०)। (ख) अनी वडी उमडी लखें असि बाहक भट भूप।—विहारी (शब्द०)।

यो०—उमडना घुमडना = घूम घूमकर फैलना वा छाना। उ०—उमडि घुमडि घन वरसन लागे, इत्यादि।—(शब्द०)।

३ किसी आवेश में भरना। जोश में आना। क्षुब्ध होना। जैसे—इतनी बातें मुनकर उसका जी उमड आया।

सयो० क्रि०—आना।—चलना।—जाना।—पडना।

उमडाना—क्रि० अ० [हि० उमडना का प्रे० रूप] १ उमडने का कारण होना २ दे० 'उमडना'।

उमत्त०—सज्ञा स्त्री [अ० उम्मत] दे० 'उम्मत'। उ०—मेरी उमत्त करै हकतायत।—मं० दरिया, पृ० २२।

उमत्त०—वि० [मं० उम्मत प्रा० उम्मत] मत्त। मतवाला। उ०—बडि सामत स सूर करै उच्छव उमत्त पर।—पृ० २१०, २४। ३५७।

उमदगी—सज्ञा स्त्री [अ०] अच्छापन। उत्तमता। खूबी।

उमदना०—क्रि० अ० [सं० पा० उम्मत प्रा० उम्मत] १ उमग में भरना। मस्त होना। २ उमगना। उमडना। उ०—बडल उमद जैसे जलद। गोली वर बूँदे परि विहद।—सूदन (शब्द०)।

उमदा—वि० [अ० उमद] [स्त्री० उमदी] अच्छा। उत्तम। बढ़िया।

उमदाना०—क्रि० अ० [सं० उम्मत] १ मतवाला होना। मद में भरना। मस्त होना। मस्त होकर किसी ओर झुकना। उ०—(क) हँसि हँसि हेरति नवल तिय मद के मद उमदाति।—विहारी० २०, दो० १७६। (ख) जीवन के मद उनमद मदिरा के मद मदन के मद उमदात वरवस पर।—देव (शब्द०)। (ग) माइ वाप तजि धी उमदानी हरपत चलो खसम के पास।—सूदर ग्र०, भा० २, पृ० ५४१। २ उमग में आना। आवेश में आना। जोश में आना। उ०—बहु सुमट बडि कै प्राण त्यागे विष्णु पुरते जात भे। सो देखि सगर करन महँ सब सुभट अति उमदात भे।—गोपाल (शब्द०)।

उमर^१—सज्ञा स्त्री [अ० उम्र] १ अवस्था। वय। २ जीवनकाल। आयु।

यो०—उमरदराज = लवी उमरवाला।

उमर^२—सज्ञा पुं० [अ०] वगदाद का एक खनीफा। हजरत मुहम्मद के बाद दूसरा खलीफा।

उमरती—सज्ञा स्त्री [सं० अनृतिका] एक प्रकार का बाजा। दे० 'अविरती'। उ०—बाज उमरती अति कहकहे। (पाठांतर) बाज उँवरती अति गह गहे।—जायसी (शब्द०)।

उमरा—सज्ञा पुं० [अ० अमीर का बहु व०] प्रतिष्ठित लोग। सरदार। उ०—निखी पत्रि चारिहँ दिसि धाए। जहँ नक उमरा वणि बुलाए।—जायसी (शब्द०)।

उमराऊ०—सज्ञा पुं० [अ० उमरा] दे० 'उमराव'। उ०—चार प्रधान सात उमराऊ। प्रोहित दोय हिए मन भाऊ।—कबीर सा०, पृ० ५६३।

उमराय०—सज्ञा पुं० [अ० उमरा] दे० 'उमराव'।—प्रेरे ते गुसुलखाने बीच ऐसे उमराय लै चले मनाय महाराज शिवराज को।—भूपण ग्र०, पृ० ६।

उमराव०—सज्ञा पुं० [अ० उमरा] प्रतिष्ठित लोग। सरदार। दरबारी। रईस।—महा महा जे, सुमट दैत्यदल बँडे सब उमराव। तिहूँ भुवन भरि गम है मेरो, मो सम्मुख को आव ?—सूर (शब्द०)।

उमरी—सज्ञा स्त्री [हि०] एक पीघा जिसे जनाकर सज्जीखार बनाते हैं। यह मदरास, बबई तथा बगाल में खारी मिट्टी के दलदलों के पास होता है। मचोल।

उमस—सज्ञा स्त्री [सं० उष्म] गरमी। वह गरमी, जो हवा पतली पडने या न चलने पर मालूम होती है।

उमहना०—क्रि० अ० [सं० उन्मथन, प्रा० उन्महण अथवा सं० उद् + √मह = उभाडना] १ उमडना। भरकर ऊपर आना। उमगना। फूट चलना। उ०—(क) सोने सो जाको म्वळ सब कर पल्लव काति महा उमही है।—देव (शब्द०)। (ख) कान्हू भले जू भले समझायहो मोह समुद्र को जो उमह्यो है।—केशव आपने मानिक सो मन हाथ पाए दे कोने लह्यो है।—केशव (शब्द०)। २ छाना घेरना। चारों ओर से टूट पडना। उ०—सघन विमान गगन भरि रहे। कीतुक देखन अम्बर उमहे।—सूर (शब्द०)। ३ उमग में आना। जोश में आना। उ०—गाँव धवावति ही नंदलाल सो ऐठि उमेठन रग मरी सी। चार महाकवि की कविता सी लसै रस में दुलही उमही सी।—(शब्द०)।

उमहाना०—क्रि० सं० [हि०] दे० 'उमाहना'।

उमा—सज्ञा स्त्री [सं०] १ हिमालय की पुत्री। शिव की स्त्री पार्वती। विशेष—कालिका पुराण में लिखा है कि जब पार्वती शिव के लिये तप कर रही थी उस समय उनकी माता मेनका ने उन्हें तप करने से रोका था इसी से पार्वती का नाम उमा पडा, अर्थात् उ (हे), मा (मत)।

२ दुर्गा। ३ हलदी। ४ अलवी। ५ कीर्ति। ६ काति।

७. ब्रह्मविद्या। ब्रह्मज्ञान। ८ चक्रात मणि। ९ रात। रात्रि (को०)।

यो०—उमाकात। उमापुत्र = उमाचतुर्थी। उमाजनक। उमानायक।

उमाधव। उमासहाय = शिव। उमासुत।

उमाकट—सज्ञा पुं० [सं०] तीसी के फूल की धून या पराग। अलसी के फूल का मकरद (को०)।

उमाकना—क्रि० सं० [देसज] उखाडना। खोदकर फेंक देना। नष्ट करना।

उभराहा—वि० [हि० उभार + ओहा (प्रत्य०)] उभार पर आया हुआ। उभरा हुआ। उ०—मावुक उभरौहा भयो, कछुक परयो भरुआइ। सीप ठरा कै भिसि हियो निसि दिन हेरत जाइ।—विहारी २०, दो० २५२।

उभांखरा(उ)—वि० [स० उद्भावन, गुज० ऊम् + हि० खरा = खडा] खड़े रहनेवाले। कहीं न टिकनेवाले। भ्रमणशील। जिनका एक जगह निवास न हो। उ०—पहिरण-ओढण कवला, साठे पुरसे नीर। आपण लोक उभांखरा गाडर छाली खीर।—ढोला० दू०, ६६२।

उभाड—सज्ञा पुं० [स० उद्भेद या उद्भरण हि० उभरना] १ उठान। ऊँचापन। ऊँचाई। २ ओज। वृद्धि।

उभाडदार—वि० [हि० उभाड + फा० दार (प्रत्य०)] उठा हुआ। उभरा हुआ। सतह से ऊँचा। फूला हुआ। जैसे—उस वरतन पर की नक्काशी उभाडदार है। २ भडकीला। जैसे—इस जेवर की बनावट ऐसी उभाडदार है कि लागत तो दस ही रुपए की है, पर सौ का जैचता है।

उभाडना—क्रि० सं० [हि० उभडना] १. किसी जमी वा रखी हुई भारी वस्तु को धीरे धीरे उठाना। उकसाना। जैसे—पत्थर जमीन में धँस गया है, इसको उभाड़ो। २ उत्तेजित करना। इधर उधर की बातें करके किसी बात पर उतारू करना। बहकाना। जैसे—उसी के उभाडने से तुमने यह सब उपद्रव किया है। ३. जगह से उठाना।

उभाना(उ)—क्रि० अ० [हि० अभुआना, हवुआना] अभुआना। सिर हिलाना और हाथ पैर पटकना जिससे सिर पर भूत का आना समझा जाता है। उ०—घूमन लगे समर मे घँहा। मनहुँ उभात भाव भरि मँहा।—नाल (शब्द०)।

उभार—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'उमाड़'।

उभारदार—वि० [हि०] दे० 'उभाडदार'।

उभारना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'उभाडना'।

उभासना(उ)—क्रि० अ० [स० उद्भासन, प्रा० उद्भासण,] प्रकाशित होना। घोषित होना। चमकना। उ०—दीप के तेज मे दीपक दोलत हीरे के तेज तँ हीरो उभासै। तैसे हि सुदर आतम जानहुँ आपु के तेज से आपु प्रकासै।—सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ६१६।

उभिटना(उ)—क्रि० अ० [स० उद्भिवन, प्रा० उद्भिडन] ठिठकना। हिचकना। भिठकना। उ०—जाहु नहीं ग्रहो जाहु चले हरि, जात जिते दिन ही विन वागे। देखि कहा रहे घोखे परे उभिटै कैसे देखिबो देखहु आगे।—केशव (शब्द०)।

उभियाना—क्रि० सं० [हि० उभना] खडा करना। ऊपर उठाना।

उभेप(उ)—सज्ञा पुं० [सं० उभयस्य ?] सदेह। अनिश्चय। उ०—ऐसा अदभुत मेरे गुरि कय्या, मैं रह्या उभेपै। मूसा हस्ती सौ लडै, कोई विरला पेपै।—कबीर ग्र० पृ० १७१।

उभै—वि० [सं० उभय] दे० 'उभय'।

उभौ(उ)—वि० [सं० उभय] दे० 'उभय'। उ०—मिरे उभौ वाली अति तर्जा। मुँठका मारि महा धुनि गर्जा।—मानस, ४८।

उमग—सज्ञा स्त्री० [सं० उद् = ऊपर + मङ्ग = चलना अथवा सं० उन्म-वाङ्ग, प्रा० *उन्मग्र अथवा देशी०] १ चित्त का उमाड़। सुखदायक मनोवेग। जोश। मौज। लहर। आनंद। उल्लास।

जैसे—आज उनका चित्त बड़े उमग मे है। उ०—वैसे जाय आनंद उमग सो गया सुखद चरावै।—सूर (शब्द०)। २ उमाड़। अधिकता। पूर्णता। उ०—आनंद उमग मन, जीवन उमग तन, रूप के उमग उमगन अग अग है—तुलसी (शब्द०)।

उमंगना(उ)—क्रि० अ० [हि० उमग + ना (प्रत्य०)] दे० 'उमगना'। उमड—सज्ञा पुं० [सं० उद् = ऊपर + मण्ड = माँड़ (या मण्डन) या वा फेन] १. उठान। १ चित्त का उवाल। वेग। जोश।

उमडना—क्रि० अ० [हि० उमड + ना (प्रत्य०)] दे० 'उमडना'। उ०—जलज अचल डेरा दए सिंह सुजान उमडि। निर्भै ह्वै कूरम नृपति पाछै चलयो धुमडि—सुजान, पृ० ३६।

उम - सज्ञा पुं० [सं०] १. नगरी। नगर। पुरी। २. घाट। तट। घाट पर बनी हुई रक्षा चौकी [को०]।

उमत(उ)—वि० [सं० उन्मत्त प्रा० उन्मत्त अथवा सं० उन्मन्त्र = मन्त्रहीन] विचाररहित। मन्त्ररहित। उन्मत्त। उ०—ए सामत उमत-भुङ्ग देपत विरुझाने।—पृ० रा० ६६।४३७।

उमकना^१—क्रि० अ० [देश०] उखडना।

उमकना^२(उ)—क्रि० अ० [हि० उमगना] दे० 'उमगना'। उ०—वहदत फसरत एकै रंग। ज्यो जल से जल उमकि तरंग।—प्राण०, पृ० १३।

उमग(उ) सज्ञा स्त्री० [हि० उमंग] दे० 'उमंग'।

उमगन(उ)—सज्ञा स्त्री० [सं० उ + मङ्ग] आनंद। हर्ष। खुशी। प्रसन्नता।

उमगना(उ)—क्रि० अ० [हि० उमग + ना] १ उमडना। उमडना। भरकर ऊपर उठना। बढ चलना। उ०—ऋधि, सिधि, सपति नदी मुहाई। उमगि अवध अयुधि पहुँ आई।—तुलसी (शब्द०)। २ उल्लास मे होना। हुलसना। जोश मे आना।

उमगा(उ)—वि० पुं० [सं० उ + मङ्ग [स्त्री० उमगी] उमडा। उत्साहित हुआ। सीमा से बाहर हुआ। हृद् से निकला हुआ। सीमोल्लघित।

उमगाना—क्रि० सं० [हि० उमगना] उत्साहित होना। जोश मे भर जाना। उमगने का कारण होना।

उमगावन(उ)—वि० [हि० उमगन] उमग भरनेवाला। आनंदित करनेवाला। उ०—सोकहरन आनंदकरन, उमगावन सव गात।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ४८२।

उमचना(उ)—क्रि० अ० [हि० उन्मञ्चन] १ किसी वस्तु पर तबो से अधिक दाव पहुँचान के लिये झटके के साथ शरीर के ऊपर उठाकर फिर नीचे गिराना। हुमचना। २ चौक पडना। चौकन्ना होना। सजग होना।—सुनहु सखी मोहन कहाँ कीन्हो। उमचि जाति तब ही सब सकुचति बहुरि मगन ह्वै जाति। सूर श्याम सो कहौ कहा यह कहत न वनउ लजाति।—सूर (शब्द०)।

उमड—सज्ञा स्त्री० [सं० उन्मङ्गन्] १ बाड़। वडाव। बराव। २. धिराव। धिरन। छाजन। ३. धावा।

यौ०—उमड़ धुमड़।

उभचुभी—सच्चा स्त्री० [अनुध्वं] डूबने उतारने की स्थिति, क्रिया या भाव ।

क्रि० प्र०—होना । उ०—वह अथाह अघकार के समुद्र में उभचुभ हो रही थी ।—कंकाल, पृ० १५६ ।

उभटना—क्रि० अ० [हि० उभरना] १ ग्रहकार करना । ममिमान करना । शेखी करना । २ रुक जाना । अडना ।—रथ को चतुर चलावन हारो । खिन हाँकें खिन उमटें राखें नही पान को सारो ।—रं० वानी, पृ० ४२ ।

उभटना—क्रि० अ० [सं० उद्भिदन, अथवा उद्भरण, प्रा० उम्भरण] १ किसी तल वा सतह का आसपास की तरह से कुछ ऊँचा होना । किसी अश का इस प्रकार ऊपर उठना कि समूचे से उसका लगाव बना रहे । उकसना । फूलना । जैसे—गिलटी उभटना । फोडा उभटना । उ०—नारंगी के छिलके पर उमड़े हुए दाने होते हैं । २ किसी वस्तु का इस प्रकार ऊपर उठना कि वह अपने आधार से लगी रहे । ऊपर निकलना । जैसे—तभी तो खेत में अँखुए उभड़ रहे हैं । ३ आधार छोड़कर ऊपर उठना । उठना । जैसे—मेरा तो पैर ही नहीं उभड़ता चलूँ कैसे ? ४ प्रकट होना । उत्पन्न होना । पैदा होना । जैसे—दर्द उभटना, ज्वर उभटना । ५ खुलना । प्रकाशित होना । जैसे—वात उभड़ना ६ बढ़ना । अधिक होना । प्रबल होना । जैसे—ग्राहक इसकी चर्चा खूब उभड़ी है । ७ वृद्धि को प्राप्त होना । समृद्ध होना । प्रतापवान् होना । जैसे—मरहटो के पीछे सिख उमड़े । ८ चल देना । हट जाना । भागना । उ०—ग्रव यहाँ से उमड़ो । ९ जवानी पर आना । उठना । १० गाय, भैंस आदि का मस्त होना ।

उभय—वि० [सं०] दोनों ।

उभयचर^१—सच्चा पुं० [सं०] १ कछुवा । २ मेढक [क्रि०] ।

उभयचर^२—वि० जल और स्थल दोनों में समान रूप से रह सकने वाला (जीव) [क्रि०] ।

उभयत—क्रि० वि० [सं० उभयतस्] दोनों ओर से । दोनों तरफ से ।

उभयतोदत—वि० [सं० उभयोदन्त] जिसके दोनों ओर दो दाँत निकले हो जैसे—हाथी सूत्र आदि ।

उभयतोमुख—वि० [सं०] दोनों ओर मुँह रखनेवाला । दोमुँहा [क्रि०] ।

उभयतोमुखी—वि० स्त्री० [सं०] दोनों ओर मुँहवाली ।

यो०—उभयतोमुखी गो = व्याती हुई गाय, जिसके गर्भ से बच्चे का मुँह बाहर निकल आया हो । ऐसी गाय के दान का बड़ा माहात्म्य लिखा है ।

उभयोत्तरार्थापद—सच्चा पुं० [सं०] कोटिल्य के अनुसार ऐसी स्थिति जिसमें दो ही मार्ग हो और दोनों अनिष्टकर हो ।

उभयतोभागी—सच्चा पुं० [सं० उभयतोभागिन्] कोटिल्य मत से वह राजा जो अमित्र तथा आसार (साथी) दोनों का साथ ही उपकार करे ।

उभयतोऽर्थापद—सच्चा पुं० [सं०] जिधर लाभ की सम्भावना दिखाई पड़ती हो, उधर ही शत्रु की वाधा । ऐसा करते हैं तो भी बाधा, और बँसा करते हैं तो भी (क्रि०) ।

उभयत्र—क्रि० वि० [सं०] १. दोनों जगह । २. दोनों ओर । ३. दोनों विषयों में [क्रि०] ।

उभयथा—क्रि० वि० [सं०] दोनों प्रकार में [क्रि०] ।

उभयपदी—वि० [सं० उभयपदिन्] वह धातु जो परस्मैपदी और आत्मनेपदी दोनों रूप धारण करती है ।

उभयवादो(५)—वि० [सं० उभयवादिन्] स्वर और ताल दोनों का बोध करानेवाला (वाजा, जैसे वीणा) ।

उभयविपुला—सच्चा स्त्री० [सं०] आर्या छंद का एक भेद । जिस आर्या के दोनों दलों के प्रथम तीन गणों में पाद पूर्ण होते हैं उसे उभयविपुला कहते हैं ।

उभय्यजन—सच्चा पुं० [सं० उभय्यजन] नपुंसक । वलीव । स्त्री और पुरुष दोनों के चिह्न धारण करनेवाला व्यक्ति [क्रि०] ।

उभयसम्भव—सच्चा पुं० [सं० उभयसम्भव] सदेह । विकल्प [क्रि०] ।

उभयसुगधगण—सच्चा पुं० [सं० उभयसुगन्धगण] वे महकनेवाली वस्तुएँ, जिसकी सुगंध जलाने पर भी फैलती है, जैसे—चंदन, सुगंधवाला, अगुरु, जटामासी, नख, कपूर, कस्तूरी इत्यादि ।

उभयहस्ति—क्रि० वि० [सं०] दोनों हाथों में समा सकने योग्य परिमाण-वाला । अजली भर [क्रि०] ।

उभया—क्रि० वि० [सं०] दोनों प्रकार से [क्रि०] ।

उभयात्मक—वि० [सं० उभय + आत्मक] १. दोनों प्रकार की विशेषता लिए हुए । २. दोनों से रचित [क्रि०] ।

उभयान्वयी—वि० [सं० उभयान्वयिन्] व्याकरण के नियमानुसार (पद और वाक्य) दोनों से मिला हुआ । दोनों सबधित [क्रि०] ।

उभयायी—वि० [सं० उभयायिन्] १. इस लोक और परलोक दोनों के लिये उपयोगी हो । २. जो दोनों लोकों से सबद्ध [क्रि०] ।

उभयार्थ^१—सच्चा पुं० [सं०] दोनों अर्थ [क्रि०] ।

उभयार्थ^२—वि० १. दो अर्थ रखनेवाला । २. जो विस्पष्ट न हो [क्रि०] ।

उभयालकार—सच्चा पुं० [सं० उभयालङ्कार] वह अलंकार जिसमें शब्दगत और अर्थगत दोनों प्रकार का चमत्कार हो ।

विशेष—इसके दो प्रकार होते हैं—(१) सस्फुटि और सकर ।

जहाँ शब्दालंकार और अर्थालंकार तिलतडुल न्याय से पृथक् अस्तित्व रखते हुए एकत्र स्थित होते हैं वहाँ सस्फुटि और जहाँ नीरक्षीर न्याय से एक दूसरे से घुलमिल जाते हैं वहाँ सकर नामक उभयालंकार होता है ।

उभयाविमित्र—सच्चा पुं० [सं०] वह राजा या राष्ट्रनायक जो परस्पर सधर्परत दो राजाओं में से किसी एक का भी पक्ष ग्रहण नहीं करता ।

उभयेद्यु—क्रि० वि० [सं० उभयेद्युस्] १. दोनों दिन । २. लगातार दो दिन [क्रि०] ।

उभयोन्नतोदर—वि० [सं०] जिसका पेटा दोनों ओर को निकला हो ।

उभरना(५)—क्रि० अ० [सं० उद्भरण] ३० 'उभटना' । उ०—मो उभरल, इ गेल मुखाए । नाह बलोह मेघे भरि जाए ।—विद्यापति, पृ० ४५६ ।

उठाना । उ०—(क) पुनि सलार कादिम मत माहीं । छाई दान उवह नित वाहीं ।—जायसी (शब्द०) । (ख) रघुराज लखे रघुनायक ते महा भीम भयानक दड गहे । सिर काटन चाहत ज्यों अबहीं करवाल कराल लिए उवहे ।—रघुराज (शब्द०) । २ पानी फेंकना । उलीचना ।

उवहना^२—क्रि० अ० ऊपर की ओर उठना । उभरना । उ०—जावत मवै उरेह उरेहे, भांति भांति नग लाग उवेहे ।—जायसी उवहना^३—क्रि० स० [स० उवहन=जोतना] जोतना । उ०—स्वारथ सेवा कीजिए । तातें भला न कोय । दादू उसर वहि उकरि कौठा भरै न कोय । दादू (शब्द०) ।

उवहना^४—वि० [देशज, मि० हि० उवेना] विना जूते का । नंगा । उ०—रथ तें उतरि उवहने पायन । चलि भे रहहि हरहि चित चायन । पद्माकर (शब्द०) ।

उवहनी, उवहनी—सज्ञा स्त्री [स० उवहन, अव० उवहनि=रम्सी] पानी खींचने की रम्सी । उ०—गगरिया मोरी चित सो उतरि न जाय । इक कर दरवा एक कर उवहनि, वतिया कहीं अरयाय ।—जग० बानी, पृ० ४८ । (ख) जब जल से भर मारी गागर खींचती उवहनी वह, बरबस ।—ग्राम्या, पृ० १२ ।

उवात^१—सज्ञा स्त्री [स० उव्वात] उलटी । वमन । कै । उ०—वस तुम महा प्रसाद न पायो । अस कहि करि उवात दरसायो ।—रघुराज (शब्द०) ।

उवाना^१—संज्ञा पुं० [हि० उवहना=नगा अथवा उ=नहीं+वाना] वह जो कपड़ा बुनने में राख के बाहर रह जाता है । उ०—पाई करि कै भरना लीन्हों वे बाँधे को रामा । वे ये भरि तिहुँ लोकहि बाँधे कोई न रहे उवाना—कवीर (शब्द०) ।

उवाना^२—वि० विना जूते का । नगे पैर । उ०—मो हित मोहन जेठ की धूप में आए उवाने परे पग छाले ।—वेनी (शब्द०) ।

उवाना^३—क्रि० स० [हि० उवना] १ तंग करना । नाको दम कर देना । २ उवाने का कारण होना या बनना ।

उवार—सज्ञा पुं० [स० उव्वार] १ उद्धार । निस्तार । छुटकारा । बचाव । रक्षा । उ०—मन तेवान कै राधो भूरा । नाहि उवार जीउ डर पूरा ।—जायसी ग्र०, पृ० २०४ । (ख) गहत चरन कह बालि कुमारा । मम पद गहे न तोर उवारा ।—मानस, ६।३१ । २ आरोहण । ३ वचन ।

उवारना—क्रि० स० [स० उव्वारण] उद्धार करना । छुड़ाना । निस्तार करना । मुक्त करना । रक्षा करना । बचाना । उ०—सात मातु हा सुनिअ पुकारा । एहि अवसर को हमहि उवारा ।—मानस, ५।२६ ।

उवारा—सज्ञा पुं० [स० उद् (म० उदक)=जल+वारण=रोक] वह जल का कुंड जो कुशों पर चौपायों के जल पीने के लिये बना रहता है । निपान । खँवर । ग्रोहरी ।

उवाल—सज्ञा पुं० [हि० उवलना] १ आँच पाकर फेंक के सहित ऊपर उठना । उफान । जोश ।

क्रि० प्र०—पाना ।—उठना ।

२. जोश । उद्देग । लोभ । जैसे—जैसे देखते ही उनके जी में ऐसा उवाल आया कि वे उसकी ओर दौड़ पड़े ।

उवालना—क्रि० स० [हि० उवलना] १. पानी, दूध या और किसी तरल पदार्थ को आग पर रखकर इतना गरम करना कि वह फेंक के साथ उपर उठ आवे । खोलाना । चुराना । जोश देना । जैसे,—दूध उवालकर पीना चाहिए । २. किसी वस्तु को पानी के साथ आग पर चढ़ाकर गरम करना । जोश देना । उत्तेजना । जैसे—आलू उवाल डालो ।

उवासा—सं० स्त्री [स० उच्छ्वास] जैसाई ।

उवाहना^१—क्रि० स० [हि० उवहना] दे० 'उवहना' ।

उविठना—क्रि० स०, क्रि० अ० [हि०] दे० 'उवीठना' ।

उवीछना^१—क्रि० स० [देशी] उलीचना । पानी फेंकना ।

उवीठना^१—क्रि० स० [स० अव, पा० ओ+उं=इष्ट पा० इष्ठ=ओइष्ट] जी भर जाने के कारण अच्छा न लगना । चित्त से उतर जाना । अधिक व्यवहार के कारण अरुचिकर हो जाना । उ०—(क) सुठि मोठी लाड मोठे, वै खात न कवहू उवीठे ।—सूर०, १।८०१ । (ख) वचक विषय विविध तनु धरि अनुभवे, सुने अरु डीठे । यह जानतहु हृदय अपने सपने न अघाइ उवीठे ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५४३ ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग यद्यपि देखने में कर्त्तृप्रधान की तरह है पर वास्तव में है कर्मप्रधान ।

संयो० क्रि०—जाना ।

उवीठना^२—क्रि० अ० उवना । धवराना । उ०—देव समाज के, साधु समाज के लेत निवेदन नाहि उवीठे ।—(शब्द०) ।

उवीधना^१—क्रि० अ० [सं० उव्विद्ध, प्रा० उव्विद्ध] १ फँसना । उलझना । २ घँसना । गडना ।

उवीधा—वि० [सं० उव्विद्ध] [स्त्री उवीधो] १ घँसा हुआ । गड़ा हुआ । उ०—गरवीली गुनन लजीली डोली भौहन के, ज्यों ज्यों नई त्यों त्यों नई नेह नित ही । वीधी बात बातन, समीची गात गातन, उवीधी परजक में निसक अक हित ही ।—देव (शब्द०) । २ छेदेवाना । गडनेवाला । काँटो से भरा हुआ । फाड़ फँसाया हुआ । उ०—कहुँ शीतल कहुँ उप्पण उवीधो । कहुँ कुटिल मारग कहुँ सीधो ।—शं० दि० (शब्द०) ।

उवेना^१—वि० [हि०] नंगा । विना जूते का । उ०—तवलो मलीन हीन दीन सुख सपने न जहाँ तहाँ दुखी जन भाजन कलेस को । तवलो उवेने पाएँ फिरत पेट खलाए बाएँ मुँह सहत परामो देस देस को ।—तुलसी (शब्द०) ।

उवेरना^१—क्रि० स० [हि०] दे० 'उवारना' । उ०—अलख अगोचर हो प्रभु मेरा । अब जीवन को करो उवेरा ।—कवीर (शब्द०) ।

उव्वहिका—सज्ञा स्त्री [स० उद्वहिका, प्रा० उव्वहिका] जूरी । निर्णय में सलाह देनेवाले व्यक्ति । उ०—सभ्यो का काम उव्वहिका या जूरी का रह गया था ।—भा० इ० रू०, पृ० १०१० ।

उभइ^१—वि० [स० उभय] दे० 'उभय' ।

क्रि० प्र०—न करना ।

विशेष—यह शब्द प्रायः शोक और पीडा के अवसरो पर अनायास मुँह से निकलता है ।

उफडना^७—क्रि० अ० [हि० उफनना] उवलना । उफान खाना । जोश खाना । उ०—काचा उछरई उफडई काया हाँडी माँहि । दाहू पर कामलि रहहि, जीव ब्रह्म होइ नाहि ।—दाहू (शब्द०) ।

उफताद—सज्ञा स्त्री० [फा० उफताव] १ आपत्ति । मुसीबत । २ आराम । शुरुआत । ३ घटना । संयोग [को०] ।

उफतदा—वि० [फा० उफतावह] १ परती पडा हुआ (खेत) । २ गिरा हुआ (को०) । ३ दीन । दुखी । दलित (को०) ।

उफनना^७—क्रि० अ० [सं० उत् + फेन या उत् + √फण = गमन, या सं० उत् + हि० फाल = गति चलना] १ उवलना । उठना । आँच या गरमी से फेन के साथ होकर ऊपर उठना । उ०—(क) उफनत छोर जननि करि व्याकुल, इहि विधि भुजा छढायो ।—सूर०, १०।६६० । (ख) उफनत दूध न धरधो उतारि । सीभी थूली चूल्हे दारि ।—सूर (शब्द०) । २ उमड़ना । उ०—प्रनुराग के रगन रूप तरगन अगन रूप मनो उफनी । (शब्द०) ।

उफनाना—क्रि० अ० [सं० उत् + फेन या उत् + √फण = गतो] १ उवलना । किसी तरह की आँच या गरमी पाकर फेन के सहित ऊपर उठना । उ०—आँच पय उफनात सींचत सलिल ज्यो सकुचाइ । तुलसी ग्र०, पृ० ४२७ । २ पानी आदि का ऊपर उठना । हिलोर मारना । उमड़ना ।—भौर भरी उफनात खरी सु उपाव की नाव तरेरति तोरति ।—घनानन्द, पृ० १५ ।

उफान—सज्ञा पुं० [सं० उत् + फेन या उत् + फण] किसी वस्तु का आँच या गरमी पाकर फेन के सहित ऊपर उठना । उवाल ।

उवकना—क्रि० अ० [हि० ओकना या उवाक] के करना ।

उवका—सज्ञा पुं० [सं० उव्वाहक, पा उव्वाहक] डोरी का वह फटा जिसमें लोटे या गगरे का गला फँसाकर कुँए से पानी निकालते हैं । अरिवन ।

उवकाई^७—सज्ञा स्त्री० [हि० ओकाई] उवात । मतली । कै ।

क्रि० प्र०—भाना । लगना ।

उवछनार्—क्रि० सं० [सं० उत्प्रोक्षण, प्रा० उप्पोक्खन, उप्पोच्छन] १ पछाड़ना । पछाड़कर धोना । २ सिंचाई के लिये पानी खींचना ।

उवट—सज्ञा पुं० [सं० उद् + वट् = उव्वट = चलना फिरना] अटपट माग । बुरा रास्ता । विकट मार्ग ।

उवट^३—वि० ऊबड खावड । ऊँचा नीचा । अटपट ।—(क) जोरि उवट मुई परी भलाई । की मरि पय चर्न नहि जाई । (ख) सायर उवट सिखिर की पाटी । चढ़ी पानि पाहन हिय काटी ।—जायसी (शब्द०) ।

उवटन—सज्ञा पुं० [सं० उव्वटन, प्रा० उव्वट्टन] १ शरीर पर मलने के लिये सरसों, तिन और चिरौजी आदि का लेप । वटना । अभ्यंग । उ०—तव सहिर बाँहि गहि भाने । लै तेल उवटनो

साने ।—सूर०, १०।८०१ । (ख) उवटन उवटि अग अन्हवाइ । पठए, पट भूखनि वनाई ।—नद० ग्र०, पृ० २५६ ।

उवटना—क्रि० अ० [सं० उव्वटन, प्रा० उव्वट्टण] वटना लगाना । उवटन मलना । उ०—(क) जननि उवटि अन्हवाइ कै अतिक्रम सो लीनो गोद । पीडाएँ पट पालने शिशु निरखि जननि मन मोद ।—सूर (शब्द०) । (ख) माइन्ह सहित उवटि अन्हवाए । छरस असन अति हेतु जेवाए ।—मानग, १।३३६ ।

उवना^१^७—क्रि० अ० [सं० उवय > प्रा० उव्वय, उवय] १ दे० 'उगना' ।

उवना^२^७—क्रि० अ० [हि० ऊवना] दे० 'ऊवना' ।

उवरना—क्रि० अ० [सं० उद् + √वृ, प्रा० उव्वर] १ उद्धार पाना । निस्तार पाना । मुक्त होना । उ०—(क) आपुहि मूल फूल फुलवारी, आपुहि चुनि चुनि खाई । कहै कवीर तेई जन उवरे जेहि गुरु लियो जगाई ।—कवीर (शब्द०) । (ख) भवसागर जो उवरन चाहे साई नाम जिन छोडे ।—(शब्द०) । २ छूटना । वचना । उ०—घरीन क हाँ धीर सबके मन मनसिज हरे । जे राखे रघुवीर ते उवरे तेहि काल महु ।—मानस १।८५ । ३ शेष रहना । बाकी वचना । उ०—(क) फोरे सब वासन घर के दधि माखन खायो जो उवरयो सो डारयो रिस करिकै ।—सूर (शब्द०) । (ख) देव दनुज मुनि नाग मनुज नहि जाँचत कोउ उवरयो ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५०५ ।

उवरा^१—वि० [हि० उवरना] [वि० स्त्री० उवरी] १ वचा हुआ । फालतु । यौ०—उवरा-पवरा = वचा हुआ ।

२ जिसका उद्धार हुआ हो ।

उवरा^२—सज्ञा पुं० बोन से वचा हुआ बीज जो हलवाहो और मजदूरों को बाँट दिया जाता है । विवरा । मुठिया ।

उवरी^१—सज्ञा स्त्री० [सं० अपवारिका, प्रा० उव्वरिषा] दे० 'ओवरी' ।

उवरी^२—सज्ञा स्त्री० [प्रा० उव्वर = विषमोन्नत प्रदेश या हि० उवरना] एक प्रकार की काष्ठकारी ।

उवरी^३—वि० स्त्री० [हि० उवरना] १ मुक्त । जिसका उद्धार हुआ हो । २ वची हुई । शेष ।

उवलना—क्रि० [सं० उद् = ऊपर + वलन = जाना अथवा हि० उ (= सं० उत्) + वल (= सं० √ज्वल > हि० जल, बल)] १ ऊपर की ओर जाना । आँच या गरमी पाकर पानी, दूध आदि तरल पदार्थों का फेन के साथ ऊपर उठना । उफनाना । जैसे,—

दूध जब उवलने लगे तब आग पर से उतार लो । २ उमड़ना । वेग से निकलना । जैसे,—सोते से पानी उवल रहा है ।

उवसन—सज्ञा पुं० [सं० उव्वसन = ऊपर की छाल,] खर या नागिनल की कूटी हुई जटा जिससे रगड़कर वरतन माँजते हैं । गुफना । जूना ।

उवसना^१—क्रि० सं० [सं० उव्वसन] १ वरतन माँजना । दे० 'उपासना' । २ उजड़ना । अपना निवासस्थान छोड़कर अन्यत्र जा बसना ।

उवहना^१—सज्ञा स्त्री० [सं० उव्वहन, प्रा० उव्वहण,] कुँए से गगरी या लोटा खींचने की रस्सी । पानी निकालने की डोरी ।

उवहना^२^७—क्रि० सं० [सं० उव्वहन, पा० उव्वहना + ऊपर उठाना] १ हथियार खींचना । (हथियार) म्यान से निकालना । शस्त्र

उपास्तमन—सज्ञा पु० [स० उप + अस्तमन] न्यास्त [को०] ।
 उपास्तमय—क्रि० वि० [स०] सूर्यास्त के आसपास । सूर्य के अस्त होने से कुछ पहले [को०] ।
 उपास्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ सेवा । २ देवपूजा । ३ आराधना । उपासना [को०] ।
 उपास्त्र—सज्ञा पु० [स०] छोटा हथियार । छोटा या लघु अस्त्र [को०] ।
 उपास्थित—वि० [स०] १ चढ़ा हुआ । २. खड़ा हुआ । ३ सतोप-जनक [को०] ।
 उपास्य—वि० [स०] पूजा के योग्य । आराध्य । जिसकी सेवापूजा की जाती हो ।
 यौ०—उपास्यदेव ।
 उपाहार—सज्ञा पु० [स०] जलपान । नाश्ता ।
 उपाहित—वि० [स०] १ परस्पर की संमति से किया हुआ । २ जिसका आरोप किया गया हो । आरोपित ३ पहला या धारण किया हुआ । ४ रखा हुआ [को०] ।
 उपेद्र—सज्ञा पु० [सं० उपेन्द्र] १ इद्र के छोटे भाई वामन या विष्णु भगवान् । कृष्ण ।
 उपेन्द्रवज्रा—सज्ञा स्त्री० [सं० उपेन्द्रवज्रा] ग्यारह वर्णों की एक वृत्ति जिसमें क्रमशः जगण, तगण, जगण और अत में दो गुरु होते हैं । जैसे—ग्रकप घृत्राक्षहि जानि जूझ्यो । महोदर रावण मत्र वृझ्यो । सदा हमारे तुम मत्रवादी । रहे कहा हूँ अति ही विषादी —केशव (शब्द०) ।
 उपेक्षक—वि० [स०] १ उपेक्षा करनेवाला । विरक्त होनेवाला । २ घृणा करनेवाला ।
 उपेक्षण—सज्ञा पु० [सं०] [वि० उपेक्षणीय, उपेक्षित, उपेक्ष्य] १ त्याग करना । छोड़ना । विरक्त होना । उदासीन होना । दूर रहना । किनारा खींचना । २ घृणा करना । ३ आसन नीति का एक भेद । अवज्ञा प्रदर्शित करते हुए आक्रमण न करना ।
 उपेक्षणीय—वि० [स०] १. त्यागने योग्य । दूर करने योग्य । २ घृणा करने योग्य ।
 उपेक्षा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ उदासीनता । लापरवाही । विरक्ति । चित्त का हटना । २ घृणा । तिरस्कार ।
 उपेक्षायान—सज्ञा पु० [सं०] शत्रु से छुट्टी पाकर उसके सहायक मित्रों पर चढ़ाई (कामद०) ।
 उपेक्षासन—सज्ञा पु० [सं०] शत्रु की उपेक्षा करते हुए चुपचाप बैठे रहना, उसपर चढ़ाई आदि न करना (कामद०) ।
 उपेक्षित—वि० [सं०] जिसकी उपेक्षा की गई हो । जिसकी परवा न की गई हो । तिरस्कृत ।
 उपेक्ष्य—वि० [सं०] उपेक्षा के योग्य । दूर करने या त्यागने योग्य । घृणा के योग्य ।
 उपेक्षना—क्रि० सं० [सं० उपेक्षण] उपेक्षा करना । अन्याय करना । तिरस्कार करना ।
 उपेक्ष—वि० [सं०] युक्त । सहित । उ०—राधा पद अकिन विराजि रही मही महा, श्रीपति निवास हूँ तैं दीपति उपेत है ।—धनानन्द, पृ० २७ ।

उपेय—वि० [सं०] उपायसाध्य । जो उपाय से सिद्ध हो । जिसके लिये उपाय करना उचित हो ।
 उपेना^१—वि० [देशी] [स्त्री० उपेनी] खुला हुआ । नगा । आच्छादन-रहित । उ०—जनु ता लागि तरवारि त्रविक्रम, धरि करि कोप उपेनी ।—सुर०, ६।११ ।
 उपेना^२—क्रि० अ० [हि०] उड़ना । लुप्त हो जाना । उ०—देखत दुरै कपूर ज्यों उपे जाइ जिन लाल । छिन छिन जाति परी खरी छीन छवीली बाल ।—विहारी २०, दो० ८६ ।
 उपोढी—वि० [सं० उपोड] १ लाया हुआ । २ घनीभूत । दृढ़ । ३ एकत्र किया हुआ । एकत्रित । ४ व्यूह में रचित । ५ आरंभ किया हुआ [को०] ।
 उपोढ^२—सज्ञा पु० व्यूह [को०] ।
 उपोत—वि० [सं०] १ ढका हुआ । आच्छादित (कवच से) २. आवरण में रखा हुआ [को०] ।
 उपोती—सज्ञा स्त्री० [सं०] पूतिका नाम का पौधा [को०] ।
 उपोदक^१—वि० [सं०] पानी के पासवाला । जल का समीपवर्ती । जल के पास [को०] ।
 उपोदक^२—सज्ञा पु० जल की निकटता । पानी का पड़ोस [को०] ।
 उपोदका—सज्ञा स्त्री० [सं०] जल के समीप होनेवाला पूतिका नाम का एक पौधा [को०] ।
 उपोदकी—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उपोदका' [को०] ।
 उपोदिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उपोदका' [को०] ।
 उपोदीका—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उपोदका' [को०] ।
 उपोद्ग्रह—सज्ञा पु० [सं०] अठदृष्टि । ज्ञान [को०] ।
 उपोद्घात—सज्ञा पु० [सं०] १. किसी पुस्तक के आरम्भ का वक्तव्य । प्रस्तावना । भूमिका । २. नव्य न्याय में छह सगतियों में से एक । सामान्य कथन से भिन्न निर्दिष्ट या विशेष वस्तु के विषय में कथन ।
 उपोद्बलन—सज्ञा पु० [सं०] पुष्टि । समर्थन । ताईद [को०] ।
 उपोपण—सज्ञा पु० [सं०] [वि० उपोपणीय, उपोपित, उपोप्य] उपवास । निराहार व्रत ।
 उपोपित^१—वि० [सं०] १ उपवास किया हुआ । जिसने उपवास किया है । २ भूखा [को०] ।
 उपोपित^२—सज्ञा पु० उपवास । व्रत । [को०] ।
 उपोसथ—सज्ञा सं० [सं० उपवसथ, प्रा० उपोसथ] निराहार व्रत । उपवास ।
 विशेष—यह शब्द जैन और बौद्ध लोगों का है ।
 उपपम—सज्ञा स्त्री० [देश०] मद्रास प्रांत के तिरुवनैली और कोयंबदूर जिलों में उत्पन्न होनेवाली एक प्रकार की कपास ।
 उपपर^१—वि० [सं० उपर अथवा उपरि] दे० 'ऊपर' । उ०—इक्षिण उरु उपपरय प्रथम वामहि पग आनय ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १ पृ० ४२ ।
 उफ—प्रत्यय [प्र० उफ] आह । ओह । अकसोस ।
 यौ०—उफ मोह = विस्मयसूचक शब्द ।

उपायी—वि० [सं० उपायिन्] १ उपाय करनेवाला । युक्ति रचने-वाला । २ पास जानेवाला (को०) । ३ सुरत के लिये पास जानेवाला (को०) ।

उपायें(०)†—कि० वि० [सं० उपायेन] उपाय से । उ०—सो श्रम जाइ न कोटि उपायें ।—मानस, १। ११ ।

उपारभ—सज्ञा पुं० [सं० उपारम्भ] आरम्भ । शुरुवात (को०) ।

उपार—सज्ञा पुं० [सं०] १ निकटता । समीपता । २ मूल । ३ अपराध । ४ पाप (को०) ।

उपारत—वि० [सं०] १ प्रसन्न । खुश । २ लौटाया हुआ । ३ लगा हुआ । तल्लीन । ४ बार बार होनेवाला । ५ त्यक्त । अयुक्त (को०) ।

उपारना(०)—कि० सं० [सं० उत्पादन, प्रा० उप्पाडण] ३० 'उपाटना' । उ०—(क) खाएँसि फल अरु विटप उपारे ।—मानस, ५। १८ । (ख) सिम्हार का जलो सींग जनमए गिरि उपारव चाह ।—विद्यापति, पृ० ३५० ।

उपार्जक—वि० [सं०] उपार्जन करनेवाला । कमानेवाला । पैदा करनेवाला (को०) ।

उपार्जन—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० उपजिनीय, उपार्जित] कमाना । पैदा करना । लाभ करना । प्राप्त करना । उ०—प्राप्त कुछ उपार्जन किया ही नहीं, जो था वह नाश हो गया ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २६५ ।

क्रि० प्र०—करना 'होना' ।

उपार्जना—सज्ञा स्त्री [सं०] दे० 'उपार्जन' (को०) ।

उपार्जनीय—वि० [सं०] १ संग्रह करने योग्य । एकत्र करने लायक । २ प्राप्त करने योग्य ।

उपार्जित—वि० [सं०] कामया हुआ । प्राप्त किया हुआ । सगृहीत । उपार्थ—वि० [सं०] कम कीमत का । अल्प मूल्य का (को०) ।

उपालभ—सज्ञा पुं० [सं० उपालम्भ] [वि० उपालब्ध] ओलाहना । शिकायत । निंदा । उ०—यह उपालभ आपको शोभा नहीं देता, करनेवाला सब दूसरा है ।—भारतेंदु ग्र० भा० १, पृ० १८७ ।

उपालम्भन—सज्ञा पुं० [सं० उपालम्भन] [वि० उपालम्भनीय, उपालम्भित, उपालम्भ्य, उपालम्भ्य] १ ओलाहना देना । २ निंदा करना । रक्षा के लिये जाना । बचाने के लिये जाना (को०) ।

उपालि—सज्ञा पुं० [सं०] गौतम बुद्ध के एक प्रधान शिष्य का नाम, जो पहले जाति का नाई था (को०) ।

उपाव(०)†—सज्ञा पुं० [सं० उपाय] दे० 'उपाय' । उ०—करत उपाय पृष्ठत काहू, गुनत न खाटी खारो ।—सूर० १। १५२

उपावणहार—वि० [सं० उत्पादन, प्रा० उप्पावण + हि० हार(प्रत्यय)] उत्पन्न करनेवाला । उ०—(क) अरे मेरा अमर पावणहार रै खालिक आसिक तेरा ।—सतवाणी०, भा० २, पृ० ६५ । (ख) दादू सब जग मरि मरि जात है अमर उपावणहार ।—दादू०, पृ० ३६५ ।

उपावर्तन—सज्ञा पुं० [सं०] १ लौटना । २ चारो ओर चक्कर काटना । ३ पास आना । ४ एक जाना । त्याग देना (को०) ।

उपावृत्त—वि० [सं०] १ लौटा हुआ । आया हुआ । २ विरत । ३ योग्य । उचित । ४ चक्कर खाया हुआ ।

उपाव्याध—सज्ञा पुं० [सं०] अरक्षित स्थान । वह स्थान जहाँ रक्षा का कोई उपाय या साधन न हो (को०) ।

उपाशसनीय—वि० [सं०] १ प्रतीक्षा के योग्य । २ अपेक्षा करने के योग्य (को०) ।

उपाश्रय—सज्ञा पुं० [सं०] १ आश्रय । शरण । २ विवामस्थान । वह जगह जहाँ आराम किया जाय । ३ ग्राहक जन । ४ तकिया । मसनद (को०) ।

उपाश्रित—वि० [सं०] १ आश्रित । २ आघातित । आघूत । ३ परोक्षत आश्रित । ४ तकिया लगाया हुआ (को०) ।

उपास(०)†—सज्ञा पुं० [सं० उपवास] [वि० उपासा] खाना पीना छूटना । लघन । फाका । उ०—(क) रैठ सिंहासन गुँजै सिंह चरै नहि पास । जब लग मिरग न पारन भोजन करै उपास । (शब्द०) । (ख) बहुत कुसुम मधुमान पिप्रामल जाएत तुम उपासे ।—विद्यापति, पृ० ४२६ ।

उपासक^१—वि० [सं०] [स्त्री० उपासिका] पूजा करनेवाला । आराधना करनेवाला । भक्त । सेवक ।

उपासक^२—सज्ञा पुं० १ अनुचर । दास । सेवक । २ शूद्र । ३ मिथु । भिवपु (वीर) ।

उपासकदशा—सज्ञा स्त्री [सं०] जैन धर्मग्रन्थ के एक ग्रन्थ का नाम (को०) ।

उपासन—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० उपासी उपासित, उपासनीय, उपास्य] १ पास बैठना । २ सेवा में उपस्थित रहना । सेवा करना । पूजा करना । आराधना करना । ३ अभ्यास के लिये वाण चलाना । तीरदाजी । शराम्यास । ४ गार्हपत्या । अग्नि ।

उपासना^१—सज्ञा स्त्री [सं०] १. पास बैठने की क्रिया । २ सेवा । आराधना । पूजा । टहल । परिचर्या ।

उपासना^२(०)—कि० सं० [सं०] उपासना करना । पूजा करना । सेवा करना । भजना । उ०—गोड देश पाखड मेटि कियो भजन परायन । कछनासिधु कृतज्ञ भए अगतिन गति दायन । दशधा रस आकात महत जन चरण उपासे । नाम लेत निगाप दुरित तिहि नर के नासे ।—प्रिया (शब्द०) ।

उपासना^३—कि० प्र० [सं० उपवास, (०) उपास] १ उपवास करना । भूखा रहना । अन्न छोड़ना । २ निराहार व्रत रहना ।

उपासनीय—वि० [सं०] सेवा करने योग्य । आराधनीय । पूजनीय । उपासा^१—वि० [हि० उपास + प्रा (प्रत्यय)] उपवास या व्रत करने वाला । भूखा ।

उपासा^२—सज्ञा स्त्री [सं०] १ सेवा । टहल । २ भक्ति । पूजा । उपासना । ३ धार्मिक चिन्तन (को०) ।

उपासित—वि० [सं०] १ जिसकी उपासना की गई हो । सेवित । पूजित । २ पूजा करनेवाला । उपासक (को०) ।

उपासिता—वि० [सं० उपासितृ] उपासक । आराधक । भजन पूजन करनेवाला (को०) ।

उपासी—वि० [सं० उपासिन] [वि० स्त्री० उपासिनी] उपासना करने वाला । सेवक । भक्त । उ०—प्रानेदघन ब्रजमहल मङ्गन बडं सकेतउपासी ।—घनानन्द, पृ० ४८५ ।

५. १—वि० [सं०] १ प्राप्त । उ०—इन्हें उपादि कहते हैं क्योंकि यह आलय से उपात्त है ।—सपूर्णा०, अमि० ग्रं०, पृ० ३०१ ।
२. युक्तियुक्त (को०) । ३. अनुभूत (को०) । ४. समाविष्ट (को०) ।
५. अतर्गत (को०) । ६. अतर्गणित (को०) । ७. प्रतिसंहत (को०) । ८. वृणित (को०) ।

८. १—संज्ञा पुं० मदहीन हाथी (को०) ।

७. त्यय—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रचलित रुढ़ि या परंपरा का परित्याग ।

२. अशिष्टता । अमद्र आचरण (को०) ।

।दान—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उपादेय] १ प्राप्त । ग्रहण । स्वीकार । २. ज्ञान । परिचय । बोध । ३. अपने अपने विषयो से इन्द्रियो की निवृत्ति । ४. वह कारण जो स्वयं कार्य रूप में परिणत हो जाय । सामग्री जिससे कोई वस्तु तैयार हो । जैसे, घड़े का उपादान कारण मिट्टी है । वैशेषिक में इसी को समवायिकरण कहते हैं । साध्य के मत से उपादान और कार्य एक ही है । ५. माध्य की चार आध्यात्मिक तुष्टियों में से एक, जिसमें मनुष्य एक ही बात से पूरे फल की आशा करके और प्रयत्न छोड़ देता है । जैसे, सन्यास लेने से ही विवेक हो जायगा, यह समझकर कोई सन्यास ही लेकर संतोष कर ले और विवेकप्राप्ति के लिये और यत्न न करे ।

उपादि—संज्ञा स्त्री० [सं० उपाधि] दे० 'उपाधि' ।

उपादेय वि० [सं०] १ ग्रहण करने योग्य । अंगीकार करने योग्य । लेने योग्य । २. उत्तम । श्रेष्ठ । अच्छा ।

उपाधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ और वस्तु को और बतलाने का छल । कपट । २. वह जिसके संयोग से कोई वस्तु और की और अथवा किसी विशेष रूप में दिखाई दे । जैसे, आकाश अपरिमित और निराकार पदार्थ है, पर घड़े और कोठरी के भीतर परिमित और जुदा जुदा रूपों में जान पड़ता है ।

विशेष—साध्य में बुद्धि की उपाधि से ब्रह्म कर्ता देख पड़ता है । वास्तव में है नहीं । इसी प्रकार वेदात्त में माया के संबन्ध और असंबन्ध से ब्रह्म के दो भेद माने गए हैं—सोपाधि ब्रह्म (जीव) और निरुपाधि ब्रह्म ।

३. उपद्रव । उत्पात । ४. कर्तव्य का विचार । धर्मचिन्ता । ५. प्रतिष्ठासूचक पद । खिताब ।

उपाधी—वि० [सं० उपाधि (लाक्ष०)] [वि० स्त्री० उपाधिन] उपद्रवी । उत्पात करनेवाला ।—जो तू लंगर ढीठ उपाधी ऊधम रूप भयो ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ३७६ ।

उपाध्याय—संज्ञा पुं० [सं० उपाध्याय] दे० 'उपाध्याय' ।

उपाध्याय—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० उपाध्याया, उपाध्यायानी, उपाध्यायी] १. वेद वेदांग का पढ़ानेवाला । २. अध्यापक । शिक्षक । गुरु । ३. ब्राह्मणों का एक भेद ।

उपाध्याया—संज्ञा स्त्री० [सं०] अध्यापिका । पढ़ानेवाली ।

उपाध्यायानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपाध्याय की स्त्री । गुरुपत्नी ।

उपाध्यायी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ उपाध्याय की स्त्री । गुरुपत्नी । २. अध्यापिका । पढ़ानेवाली स्त्री ।

३-१२

उपाध्व—संज्ञा पुं० [सं० उपाध्वन्] खेतों में जानेवाली पगडंडी । डांड । मेड़ (को०) ।

उपाध्वा—संज्ञा पुं० [सं० उपाध्वन्] दे० 'उपाध्व' (को०) ।

उपान—संज्ञा स्त्री० [प्रा० उपपयण = ऊँचा जाना या ऊपर जाना अथवा हिं० ऊपर + पान (प्रत्य०)] १ इमारत की कुर्सी । २. खम्भे के नीचे की वह चौकी जिसपर खंभा बैठाया जाता है । पदस्तल ।

उपानत्—संज्ञा पुं० [सं०] १. जूता । पनहीं । २. खडाऊँ ।

उपानत—संज्ञा पुं० [सं० उपानत्] दे० 'उपानत्' । उ०—(क) विरचित उपानत वेचन करई । आधो घन सतन कहे, भरई ।—रघुराज (शब्द०) । (ख) लघु लघु लसत उपानत लघु पद लघु धनुहो कर माहीं ।—रघुराज (शब्द०) ।

उपानद—संज्ञा पुं० [सं०] हिंडोल राग का पृथ या भेद ।

उपानना(उ)—क्रि० सं० [हिं०] उत्पन्न करना । पैदा करना ।

उपानह—संज्ञा पुं० [सं० उपानह] जूता । पनहीं । उ०—घोली फटी सी लटी दुपटी ग्रह पायें उपानह को नहीं सामा ।—इतिहास, पृ० २०० ।

उपाना(उ)—क्रि० अ० [सं० उत्पादन, पा० उत्पादन, प्रा० उप्पायण] १. उत्पन्न करना । पैदा करना । उ०—(क) जेहि सृष्टि उगई त्रिविध बनाई सग सहाय न दूजा ।—मानस, १।१८६ । (ख) अमृत की आपगा उपाई करतार है ।—श्यामा०, पृ० २६ । २. करना । संपादन करना । उ०—(क) तवहिं स्याम इक मुक्ति उपाई ।—सूर (शब्द०) । (ख) धर्मपुत्र जत्र जज्ञ उपायी, द्विज मुख ह्वै पन लीन्हों ।—सूर (शब्द०) ।

उपानी—संज्ञा स्त्री० [सं० उत्पन्न, प्रा० उप्पण, उत्पन्न [उत्पत्ति] सृष्टि । उ०—चलसी चद सूर पुनि चलसी, चलमी सर्व उपानी ।—दादू०, पृ० ५७२ ।

उपाप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्राप्ति । २. पहुँच (को०) ।

उपावर्त्य(उ)—संज्ञा पुं० [सं० उपवर्ण्य] दे० 'उपवर्ण्य' उ०—जहाँ अनादर आन को उपावर्त्य उपमेय । वरनत तहाँ प्रतीप है कोऊ सुकवि अजेय ।—मतिराम ग्रं०, पृ० ३७३ ।

उपाय—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उपायी, उपेय] १. पथ पहुँचना । निकट आना । २. वह जिससे अभीष्ट तक पहुँचे । साधन । युक्ति तदवीर । ३. राजनीति में शत्रु पर विजय पाने की युक्ति । ये चार हैं, साम (मैत्री), भेद (फूट डालना), दण्ड (आक्रमण) और दान (कुछ देकर राजी करना) । ४. शृ गार के दो साधन साम और दान ।

उपायन—संज्ञा पुं० [सं०] १. भेंट । उग्रहार । नजराना । सोगात । २. पास आना (को०) । गुरु के पास जाना । शिष्य होना (को०) । ४. आरम्भ (को०) । ५. अध्यवसाय (को०) । ६. प्रवृत्ति (को०) ।

उपायिक—वि० [सं०] १. उन्नति करनेवाला । २. बढ़ाने या वृद्धि करनेवाला (को०) ।

उपहृत—वि० [स०] १ मेट किया हुआ । २ पास लाया हुआ । ३ परसा हुआ । ४ बलि दिया हुआ [को०] ।

उपह्वर—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ एकात या निर्जल स्यान् । २ पास । अतिक । ३ समीपता । ४ सोमपात्र का टेढ़ा आकार । ५ रथ [को०] ।

उपह्वान—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ पुकारना । २ निमन्त्रित करना । ३ नाम लेकर पुकारना । अनिमन्त्रित करना [को०] ।

उपाग—सञ्ज्ञा पुं० [स० उपाङ्ग] १ अंग का भाग । अवयव । २ वह वस्तु जिससे किसी वस्तु के अंगों की पूर्ति हो । जैसे, वेद के उपाग, जो चार हैं—पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र । ३ तिलक । टीका । ४ प्राचीन काल का एक वाजा जो चमड़ा मटकर बनाया जाता था ।

उपागगीत—सञ्ज्ञा पुं० [स० उपाङ्गगीत] एक प्रकार का गीत [को०] ।

उपागललिता—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० उपाङ्गललिता] एक देवी जिनका अत आश्विन मास की शुक्ला पंचमी को रखा जाता है [को०] ।

उपाजन—सञ्ज्ञा पुं० [स० उपाञ्जन] १ गोबर से घरती को लीपना । २ चूने से सफेदी करना ।

उपात^१—सञ्ज्ञा पुं० [स० उपात्त] [वि० उपात्य] १ अत के समीप का भाग । २ प्रात भाग । आसपास का हिस्सा । ३ छोर । किनारा ।

उपात^२—वि० अतिम के पासवाला । अतवाले से एक पड़ला [को०] ।
उपातिक^३—वि० [स० उपात्तिक] पासवाला । समीपवर्ती । पड़ोसी [को०] ।

उपातिक^४—सञ्ज्ञा पुं० निकटता । समीपता । सनिशान । अतरहीनता [को०] ।

उपातिम—वि० [स० उपात्तिम] अतवाले के समीपवाला । उपात्य ।
उ०—‘ज्ञानस्वरोदय’ उनकी उपातिम रचना थी ।—स० दरिया, पृ० ४१ ।

उपात्य^१—वि० [स० उपात्य] १ अतवाले के समीपवाला । अतिम से पहले का ।

उपात्य^२—सञ्ज्ञा पुं० १ आँख का कोना । २ समीपता [को०] ।
उपाशु^३—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ मद स्वर में मथ का जप । २ मौन । ३ सोमरस के उपहार का नाम [को०] ।

उपाशु^४—क्रि० वि० १ मद स्वर में । धीरे धीरे । २ व्यक्तिगत रूप में । रहस्यात्मक ढंग से [को०] ।

उपाशुत्व—सञ्ज्ञा पुं० [स०] मौनता [को०] ।

उपाइ^५—सञ्ज्ञा पुं० [स० उपाय] दे० ‘उपाय’ उ०—(क) ती सब दरसी सुनिय प्रभु करी सो बेगि उपाइ ।—मानस, १५६ ।
(ख) श्रीमद करि जु अथ ह्वै जाइ । दारिद अजन बढी उपाइ ।
—नद० प्र०, पृ० २५२ ।

उपाउ^६—सञ्ज्ञा पुं० [स० उपाय] दे० ‘उपाय’ । उ०—रूधड़ करि उपाउ वर वारी ।—मानस, २।१७ ।

उपाक^७—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ योजना । उपक्रम । तैयारी । अनुष्ठान ।

२ यज्ञ में वेद पाठ । ३ यज्ञ के पशु का एक संस्कार । ४ कार्य प्रारंभ करने के लिये निमन्त्रण या बुलावा [को०] ।

उपाकर्म—सञ्ज्ञा पुं० [स०] संस्कारपूर्वक वेद का ग्रहण । वेदपाठ का प्रारंभ ।

विशेष—यह वैदिक कर्म समस्त ग्रीष्मप्रश्नों के जन्म जाने पर आवश्यक मास की पूर्णिमा को, या श्रवण नक्षत्र-युक्त दिन को या हस्त-नक्षत्र-युक्त पंचमी को गृह्यसूत्र में कही विधि से किया जाता है । उत्सर्ग का उलटा ।

२ वेदाध्ययन प्रारंभ करने के पहले किया जानेवाला वैदिक कर्म
उपाकृत^१—वि० [स०] १ पास लाया हुआ । २ बुलाया हुआ । प्रप मन्त्रों के उच्चारण द्वारा निर्मित । ३ यज्ञ में हृत (बलि पशु) । ४ अमग्नजनक । ५ मन्त्रों द्वारा पवित्र किया हुआ । ६ प्रस्तुत या तैयार किया हुआ [को०] ।

उपाकृत^२—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ यज्ञ का अग्निपशु, जो विहित प्रार्थना जाठ के समय मारा जाता है । २ दूँद । अमग्न । ३ प्रारंभ । ४ यज्ञपशु का विहित संस्कार ५ निमन्त्रण । आह्वान । बुलावा [को०] ।

उपाख्यान—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ पुरानी कथा । पुराना वृत्तान्त । २ किसी कथा के अंतर्गत कोई और कथा । ३ वृत्तान्त । हान । ४ दूसरे से सुनी गई कथा में आख्यायिका को कहना [को०] ।

उपाख्यानक—सञ्ज्ञा पुं० [स०] २० ‘उपाख्यान’ [को०] ।

उपागत—वि० [स०] १ आया हुआ । २ घटित । लौटा हुआ । ४ प्रतिज्ञा किया हुआ । ५ अनुभूत । ६ नहा हुआ [को०] ।

उपागम—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ आगमन । आना । २ घटना । ३ प्रतिज्ञा । ४ समझौता । वचन बद्धता । ५ स्वीकृति । ६ पीडा । कष्ट । ७ अनुभूति [को०] ।

उपाग्निका—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] समुचित ढंग से विवाहित पत्नी [को०] ।

उपाग्र—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ अतिम के पानवाला भाग । २ गौण या अनुमुख्य सदस्य का व्यक्ति [को०] ।

उपाग्रहण—सञ्ज्ञा पुं० [स०] दे० ‘उपाकर्म’ ।

उपाटना^८—क्रि० सं० [स० उत्पादन, प्रा० उत्पाडण] उखाड़ना । उ०—‘लौह एक तेहि सैल उपाटी, रघुकुन तिलक भुजा सीइ काटी ।—मानस, ६।६७ ।

उपाडी—सञ्ज्ञा पुं० [प्रा० उपाड, हि० उपडना=उभरना] किताबी ग्रंथ आदि के कारण शरीर की खाल का उठने लगना ।

मुहा०—उपाड करना=किसी दवा का शरीर पर छाले डालना या वहाँ की खाल उठाना ।

उपाडना—क्रि० सं० [सं० उत्पादन, प्रा० उत्पाडण] दे० ‘उपाटना’ । उ०—(क) जोबण छत्र उपाडियउ राज न बइसऊ काइ ।—ढोला० दू० २७ । (ख) सो पित्रे म ते काड उपाड उसके पर ।—दक्खिनी०, पृ० ८८ ।

उपाती—सञ्ज्ञा स्त्री० [उत्पत्ति, प्रा० उत्पत्ति] उत्पत्ति । पैदाइश । उ०—सुन्नहि तैं है सुन्न उपाती । सुन्नहि तैं उपजेहिहु भाँती ।—जायसी (शब्द०) ।

उपस्नेहता—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] गीलापन । आर्द्रता [को०] ।

उपस्पर्श—सञ्ज्ञा पुं [सं०] १ छूना । २ मेल । सपर्क । ३ स्नान ।
४ आचमन [को०] ।

उपस्पर्शन—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] ३० 'उपस्पर्श' [को०] ।

उपस्मृति—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] छोटे या गौण स्मृतिग्रंथ । ये संख्या में
अठारह हैं, जो इस प्रकार हैं—(१) व्यास स्मृति, (२)
सनत्कुमार स्मृति, (३) कश्यप स्मृति, (४) स्कंद स्मृति, (५)
जाबालि स्मृति, (६) कात्यायन स्मृति, (७) कपिल स्मृति,
(८) जनक स्मृति, (९) नाचिकेत स्मृति, (१०) व्यास स्मृति
(११) जातुकर्ण स्मृति, (१२) यतजु स्मृति, (१३) लौगाक्षि
स्मृति, (१४) विश्वामित्र स्मृति, (१५) कणाद स्मृति, (१६)
बोधायन स्मृति, आदि [को०] ।

उपस्रवण—सञ्ज्ञा पुं [सं०] १ स्त्री का मासिक स्राव । २ प्रवाह ।
धारा [को०] ।

उपस्वत्व—सञ्ज्ञा पुं [सं०] १ जमीन या किसी जायदाद की पैदावार
या ग्रामदानी का हक । २. मालगुजारी [को०] ।

उपस्वेद—सञ्ज्ञा पुं [सं०] १. पसीना । २ नमी । आर्द्रता । ३.
ऊष्मा । गर्मी [को०] ।

उपहृता—वि० [सं० उपहृन्तृ] १ विपरीत प्रभाववाला । बाधक ।
२ आवेश में लानेवाला । ३ नष्ट करनेवाला [को०] ।

उपहत—वि० [सं०] १ नष्ट किया हुआ । बरबाद किया हुआ । २
विगाडा हुआ । दूषित । ३ पीड़ित । सकट में पडा हुआ । ४
किसी अपवित्र वस्तु के संसर्ग से अशुद्ध । ५ वज्रागत से
आहत [को०] । ६ अनादृत । तिरस्कृत [को०] ।

उपहतक—वि० [सं०] अमागा । भाग्यहीन [को०] ।

उपहतात्मा—वि० [सं० उपहत + आत्मन्] विकृत मस्तिष्कवाला ।
जिसका दिमाग ठीक न हो [को०] ।

उपहति—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] १ प्रहार । आघात । चोट । २ हत्या ।
वध [को०] ।

उपहत्या—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] १. आँखों की चकाचौंध । २ आँखों द्वारा
व्यक्त विकारी प्रेम [को०] ।

उपहरण—सञ्ज्ञा पुं [सं०] १ लाना । उठाकर लाना । २ पकड़ना ।
ग्रहण करना । ३ देवता अथवा सामान्य व्यक्ति को भेंट या
नजर देना । ४ शिकार की भेंट करना । ५ भोजन या खाद्य
पदार्थ परोसना [को०] ।

उपहव—सञ्ज्ञा पुं [सं०] १ निमग्नण । बुनाना । २ सूचना देना ।
३ प्रार्थना करना [को०] ।

उपहसित^१—सञ्ज्ञा पुं [सं०] १ हास के छह भेदों में से चौथा ।
नाक फुलाकर आँखें टेढ़ी करते और गर्दन हिलाते हुए
हँसना । २ व्यंग्य से भरा हास । उपहास [को०] ।

उपहसित^२—वि० जिसका उपहास किया गया हो [को०] ।

उपहस्तिका—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] १ पान रखने का डब्बा । पानदान ।
पनडब्बा । २. दण्डुआ [को०] ।

उपहार—सञ्ज्ञा पुं [सं०] १ भेंट । नजर । नजराना । उ०—(क)
घरि घरि सुंदर त्रेप चले हरपित हिए । चँवर चीर उपहार

हार मणि गए लिए ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) आए
गोप भेंट लै लै कै भूपण वसन सोहाए । नाना विधि उपहार
दूध दधि आगे घरि सिर नाए ।—(शब्द०) । (ग) दोह दोह
दिग्गजन के केशव मनहु कुमार । दीन्हें राजा दशरथाहि
दिग्गपालन उग्रहार ।—केशव (शब्द०) । २ शैवी की
उपासना के नियम जो छह हैं—हसित, गीत, नृत्य हुडुक्कार,
नमस्कार और जप ।

उपहारक—सञ्ज्ञा पुं [सं०] १. बलि । देवता का उपहार । नैवेद्य ।
२ भेंट । नजर [को०] ।

उपहारसवि—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० उपहारसवि] वह सवि जिसमें
सवि करने के पूर्व एक पक्ष को दूसरे को कुछ उपहार में देना
पड़े । (कामद०) ।

उपाहारिका—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] ३० 'उपहारक' [को०] ।

उपहारी—वि० [सं० उपहारिन्] १ भेंट देनेवाला । २ लानेवाला ।
३ बलि देनेवाला [को०] ।

उपहार्य—सञ्ज्ञा पुं [सं०] भेंट । नजर [को०] ।

उपहालक—सञ्ज्ञा पुं [सं०] कुतल देश का प्राचीन नाम [को०] ।

उपहास—सञ्ज्ञा पुं [सं०] [वि० उपहास्य] हँसी ठट्ठा । दिल्लीगी ।
२ निंदा । बुराई । उ०—पैहाँ सुख मुनि सुजन जन, खल
करिहँहि उपहास ।—मानस, १ । ८ ।
यौ०—उपहासजनक । उपहासार्ह ।

उपहासक^१—वि० [सं०] दूसरों का उपहास करनेवाला । दिल्लीवाज ।
मजाकिया [को०] ।

उपहासक^२—सञ्ज्ञा पुं १ विद्वपक । २ भड । मांड । ३ नट [को०] ।
उपहासास्पद—वि० [सं०] १ उपहास के योग्य । हँसी उड़ाने के
लायक । २ निंदनीय ।

उपहासी^७—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० उपहास] हँसी । ठट्ठा । निंदा
उ०—सब नृप भए जोग उपहासी ।—मानस, १ । २५१ ।

उपहास्य—वि० [सं०] उपहास के योग्य । हँसी का पात्र । जिसकी
मूर्खता की हँसी उड़ाई जा सके [को०] ।

उपहास्यता—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] हँसी उड़ाई जाने की पात्रता या
योग्यता । उपहास भाजनता [को०] ।

उपहित—वि० [सं०] १ ऊपर रखा हुआ । स्थापित । २ धारण
किया हुआ । ३ समीप लाया हुआ । हवाले किया हुआ ।
दिया हुआ । ४ सम्मिलित । मिला हुआ । ५ उपाधिपुस्त ।
६ कुछ लाभकारी [को०] ।

उपहिति—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] १ ऊपर रखना । २. आत्मसमर्पण [को०] ।

उपही^७—सञ्ज्ञा पुं [सं० उद् + पबिन्, प्रा० उपहि = ऊपर जानेवाले]
अपरिचित व्यक्ति । बाहरी या विदेशी आदमी । बायबी ।
अजनबी । उ०—(क) ये उपही कोउ कुँप्रर अहेरी । स्थाम
गौरधनुवान तूनधर चित्रकूट प्रव आय रहेरी ।—तुलसी ग्र०
पृ० ३८४ । (ख) जानि पहिचानि विनु आपु ते आपुने हु
प्राणहु तें प्यारे प्रियतम उपही ।—तुलसी ग्र०, पृ० ३४२ ।

उपहृति—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] १. ग्रामव्रण । घातान । पुकारना । २
लड़ने के लिये ललकार या चुनौती [को०] ।

उपस्कर—सज्ञा पुं० [सं०] १ हिंसा करना। चोट पहुँचाना। २ दाल या तरकारी में डालने का मसाला। ३ घर का सामान या सजावट की सामग्री। ४ वस्त्राभूषणादि। ५ जीवननिर्वाह के लिये आवश्यक पदार्थ। रसद या सामान (को०)।

उपस्करण—सज्ञा पुं० [सं०] १ सजाना। शृ गार करना। २. निंदा। ३ विकार। ४ डेर। समूह। ५. वध करना। आघात पहुँचाना [को०]।

उपस्कार—सज्ञा पुं० [सं०] १ पूरक। किसी वस्तु में कुछ और जोड़ देना। २ अध्याहार। व्यञ्जना। ३ शृ गार करना। सजावट। ४ आभूषण। ५ आघात। प्रहार। ३ सग्रह। समूह। डेर। ७ उपस्कर [को०]।

उपस्कृत—वि० [सं०] १ प्रस्तुत। तैयार। २ निदित। लाछित। ३ मारा हुआ। हत। ४ एकत्र किया हुआ। सगृहीत। ५ सज्जित। शृ गारित। ६ अध्याहृत। पूरित [को०]।

उपस्कृति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ पूति। २ सजावट [को०]।

उपस्तम्भ—सज्ञा पुं० [सं० उपस्तम्भ] सहारा। अवलम्बन। २ जीवन का आश्रय (भोजन, निद्रा आदि) ३ प्रोत्साहन। उत्साह बढ़ाना। ४ आश्रय। आधार [को०]।

उपस्तम्भन—सज्ञा पुं० [सं० उपस्तम्भन] दे० 'उपस्तम्भ' [को०]।

उपस्तब्ध—वि० [सं०] १ जिसे सहारा दिया गया हो। आश्रित। २ रोका हुआ [को०]।

उपस्तरण—सज्ञा पुं० [सं०] १ बिखेरना। छितराना। २ विस्तर। ३. फैली हुई वस्तु। ४ (यज्ञ की अग्नि के चारों ओर) घास फैलाना [को०]।

उपस्तीर्ण—वि० [सं०] फैला हुआ। बिखरा हुआ [को०]।

उपस्त्री—सज्ञा स्त्री० [सं०] उपपत्नी। रखेली। विना। व्याह के पत्नी के समान रख ली जानेवाली स्त्री [को०]।

उपस्थ^१—सज्ञा पुं० [सं०] १ नीचे या मध्य का भाग। २ पेड़। ३ पुष्पचिह्न। लिंग। ३. स्त्रीचिह्न। भग।

यो०—उपस्थेन्द्रिय।

५ गोद। क्रोड।

उपस्थ^२—वि० निकट बैठा हुआ।

उपस्थदल—सज्ञा पुं० [सं०] पीपल का वृक्ष [को०]।

विशेष—इस वृक्ष का नाम 'उपस्थदल' इसलिये पड़ा क्योंकि इसके पत्ते स्त्री जाननेन्द्रिय के आकार के होते हैं।

उपस्थनिग्रह—सज्ञा पुं० [सं०] इन्द्रियदमन। कामवासना पर अधिकार रखना [को०]।

उपस्थपत्र—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उपस्थदल' [को०]।

उपस्थल—सज्ञा पुं० [सं०] १ नितम्ब। चूतड़। २ कूल्हा। ३ पेड़।

उपस्थली—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ कूल्हा। कटि। २. नितम्ब। ३ पेड़।

उपस्थाता^१—सज्ञा पुं० [सं० उपस्थातृ] १ अनुचर। दास। सेवक। २ यज्ञपुरोहित। ऋत्विक् [को०]।

उपस्थाता^२—वि० १ आश्रित। उपनत। समय का पालन करनेवाला। ठीक समय पर आनेवाला [को०]।

उपस्थान—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० उपस्थानीय, उपस्थित] १ निकट आना। सामने आना। २. अभ्यर्थना या पूजा के लिये निकट आना। ३ खड़े होकर स्तुति करना। खड़े होकर पूजा करना। उ०—दै दिनकर को अर्घ्य मंत्र पढ़ि उपस्थान पुनि कीन्हें। गायत्री को जपन लगे पुनि ब्रह्म बीज मन दीन्हें।—रघुराज (शब्द०)।

विशेष—इस प्रकार का विधान प्रायः सूर्य ही की पूजा में है।

४. पूजा का स्थान। कोई पवित्र स्थान। ५ समा। समाज।

६ प्रस्तुत राज्यकर इकट्ठा करना और पुराना बाकी बसूल करना। ७ अखाड़ा। मल्लशाला (को०)। ८ स्मृति। याददाश्त (को०)। ९ प्राप्ति (को०)। १० स्वीकृति। समझौता करना (प्रेमी की भाँति) (को०)।

उपस्थानशाला—सज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्ध धर्मानुसार प्रार्थनामवन। विहार का प्रार्थनाकक्ष [को०]।

उपस्थापक—सज्ञा पुं० [सं०] १ वह जो विषय को विचार और स्वीकृति के लिये किसी समामे उपस्थित करता हो। २ स्मृति को जगानेवाला। ३ व्याख्याता। पढ़ानेवाला। सिखानेवाला [को०]।

उपस्थापन—सज्ञा पुं० [सं०] पास रखना। २ तैयार करना। प्रस्तुत करना। ३ स्मृति का जागरण। याद आना। ४ सेवा [को०]।

उपस्थापना—सज्ञा स्त्री० [सं०] दीक्षित करना। (जैन मत के क्षणिक के रूप में) [को०]।

उपस्थापक—सज्ञा पुं० [सं०] १ दास। नौकर। २ बौद्ध धर्म को माननेवाला।

उपस्थायी—वि० [सं० उपस्थायिन्] १ पास खड़ा हुआ। २ प्रतीक्षा करनेवाला। ३ पास आनेवाला [को०]।

उपस्थित^१—वि० [सं०] १ समीप बैठा हुआ। सामने या पास आया हुआ। विद्यमान। मौजूद। हाजिर।

क्रि० प्र०—करना=(१) हाजिर करना। सामने लाना। (२) पेश करना। दायर करना, जैसे,—अभियोग उपस्थित करना। होना=(१) आ पड़ना। जैसे,—बड़ा सफ़ट उपस्थित हुआ। (२) ध्यान में लाया हुआ। स्मरण किया हुआ। याद। जैसे—हमें वह सूत्र उपस्थित नहीं है।

उपस्थित^२—सज्ञा पुं० १. द्वारपाल। दरवान। २ सेवा। ३ प्रार्थना। ४ आसनविशेष [को०]।

उपस्थिता—सज्ञा पुं० [सं०] एक वयुर्वृत्त का नाम। इस वृत्त के प्रत्येक चरण में एक तगण, जो जगण और अत में एक गुण होता है। त, ज, ज, ग=५५१, १५१, १५१, ५१। उ०—तीजी जग पावन कस को। द मुक्ति पठावत धाम को। बाकी लखि रानि उपस्थिता। दै ज्ञान करी सुख साजिता।—छन्द० पृ० १५१।

उपस्थिति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. विद्यमानता। मौजूदगी। हाजिरी। २ प्राप्ति। ३. पूति। ४. स्मृति। स्मरण शक्ति। सेवा। ५ समीपता। निकटता [को०]।

उपस्नेह—सज्ञा पुं० [सं०] गीला करना। आर्द्र करना [को०]।

उपसंयोग—संज्ञा पु० [सं०] १. गौण सवध । २. रूपांतरण । रूप में परिवर्तन या सुधार कर देना [को०] ।

उपमरोह—संज्ञा पु० [सं०] १. साय साय बढना । सहवर्धन । २. शोषण । सोखना [को०] ।

उपसवाद—संज्ञा पु० [सं०] समझौता । ऐकमत्य [को०] ।

उपसवीत—वि० [सं०] १. ढका हुआ । २. लपेटा हुआ [को०] ।

उपसव्यान—संज्ञा पु० [सं०] भीतरी पहनावा । अतर्वस्त्र [को०] ।

उपसंस्कार—संज्ञा पु० [सं०] १. प्रमुख संस्कारों के अतिरिक्त किए जानेवाले गौण संस्कार । २. सज्जित करना । सजाना । ३. पवित्र करना [को०] ।

उपसंस्कृत—वि० [सं०] १. प्रस्तुत । तैयार । २. सज्जित । सजा हुआ । ३. भरा हुआ [को०] ।

उपसहरण—संज्ञा पु० [सं०] १. पीछे हटाना । २. अस्वीकार करना । नामजूर करना । ३. अनग करना । ४. आक्रमण करना । चढाई करना [को०] ।

उपसंहार—संज्ञा पु० [सं०] १. हरण । परिहार । २. समाप्ति । खातमा । जैसे—गुरु जी, कृपाकर हमारे भ्रम का उपसंहार कीजिए । ३. किसी पुस्तक का अंतिम प्रकरण । किसी पुस्तक के अंत का अध्याय जिसमें उसका उद्देश सक्षेप में बतलाया गया हो । ४. सारांश । निचोड़ । ५. किसी बाँधपेच या हथियार की रोक । महार । ६. किसी पुस्तक या लेख का अंतिम अक्षर [को०] । ७. विनाश । ध्वंस । नाश [को०] । ८. समाप्ति । अंत [को०] ।

उपसंहारी^१—वि० [सं० उपसंहारिन्] १. उपसंहार करनेवाला । २. ग्रहण किया हुआ । ३. समझा हुआ । ४. पृथक किया हुआ [को०] ।

उपसंहारी^२—संज्ञा पु० [सं०] न्याय शास्त्र के अनुसार एक हेतु ।

उपसहित—वि० [सं०] १. मिला हुआ । संयुक्त । २. सवद्ध । घिरा हुआ [को०] ।

उपसंहृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. समझ । बुद्धि । फहम । २. ग्रहण । ३. अंत । परिपूर्णता । ४. निवृत्ति [को०] ।

उपसर्ग—संज्ञा स्त्री० [सं० उपस + वास = महक] दुर्गंध । बदबू ।

उपसक्त—वि० [सं० उप + सक्त] १. लगा हुआ । सलग्न । २. आसक्त [को०] ।

उपसत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सवंध । मेल । २. सेवा । ३. पूजा । ४. पारितोषिक । भेंट । ५. सूचना [को०] ।

उपसना—कि० सं० [हि० उपस + ना (प्रत्यय)] १. दुर्गंधित होना । २. सडना ।

उपसम^१—संज्ञा पु० [सं० उपसम] १. 'उपशम' । उ०—नेह न देह नेह सन कवहूँ । उपसम चितन समता सवहूँ ।—नद० ग्र०, पृ० २१२ ।

उपसयना^२—कि० अ० [सं० उपस + √सर् या उप + सद् हि०] हटना । गायब होना । उ०—बहुरि न जानौं दहूँ का भई, दहूँ कविलास कि कहुँ उपसई ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २५७ ।

उपसर—संज्ञा पु० [सं०] १. (गाय की तरह) जाना । गाय के पास

साँढ का गर्भ धारण कराने के लिये जाना । २. गाय का पहली बार गर्भ धारण करना [को०] ।

उपसरण—संज्ञा पु० [सं०] १. किसी के पास या किसी की तरफ जाना । २. वह जिसके पास शरण पाने या रक्षा करने के लिये जाया जाय । ३. (बीमारी की हालत खत में) का हृदय की ओर तेजी से बहना [को०] ।

उपसर्ग—संज्ञा पु० [सं०] १. वह शब्द या अव्यय जो केवल किसी शब्द के पहले लगता है और उसमें किसी अर्थ की विशेषता ला देता है । जैसे अनु, अव, अप, उद् इत्यादि । २. अशकुन । ३. उपद्रव । देवी उत्पात । ४. योगियों के योग में होनेवाला विघ्न, जो पाँच प्रकार का कहा गया है—प्रतिभ, आवरण, देव, भ्रम और आवर्तक । (मार्कंडेय पुराण) । ५. ग्रहण [को०] । ६. मृत्यु का लक्षण [को०] । ७. भूत प्रेत आदि दुष्ट आत्माओं का अधिकार [को०] । ८. दुख । व्यथा [को०] ।

उपसर्जन—संज्ञा पु० [सं०] १. डालना । २. देवी उत्पात । उपद्रव । ३. अग्रधान वस्तु । गौण वस्तु । ४. त्याग ।

उपसर्पण—संज्ञा पु० [सं०] १. पास जाना । आगे बढ़ना [को०] ।

उपसवना^३—कि० अ० [सं० उपस + सादन या उप + √सुव्] हट जाना । दूर चला जाना । उ०—पवन बाँधि उपसवहि अकास । मनसहि जहाँ जाहि तेहि पास ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३२८ ।

उपसागर—संज्ञा पु० [सं०] छोटा समुद्र का एक भाग । खाड़ी ।

उपसादन—संज्ञा पु० [सं०] १. आदर । श्रद्धा । २. आदरपूर्वक पास जाना । ३. जिम्मेदारी लेना । भार ग्रहण करना ।

उपसाना—कि० सं० [हि० उपसना] वासी करना । सडाना ।

उपसिक्त—वि० [सं०] सींचा हुआ । भीगा हुआ । आर्द्र [को०] ।

उपसीर—संज्ञा पु० [सं०] खेत जोतने का हल [को०] ।

उपसुद—संज्ञा पु० [सं० उपसुन्द] सुद नामक दैत्य का छोटा भाई और निकुंज दैत्य का पुत्र [को०] ।

उपसूतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] घाय । घाई । घात्री [को०] ।

उपसूर्यक—संज्ञा पु० [सं०] १. एक प्रकार का भौरा । २. जुगनू । ३. सूर्यमंडल [को०] ।

उपसृष्ट—वि० [सं०] १. लिया हुआ । प्राप्त । २. प्रेत, भूत आदि दुष्ट आत्माओं द्वारा पराभूत या अधिकृत । ३. ग्रहण किया हुआ । ग्रस्त [को०] ।

उपसेक—संज्ञा पु० [सं०] १. सींचना । २. छिड़काव । छिड़कना । ३. रस । जूस [को०] ।

उपसेचन—संज्ञा पु० [सं०] १. सींचना या भिगोना । पानी छिड़कना । २. गीली चीज । रसा । ३. वह गीली चीज जिससे रोटी या भात खाया जाय । जैसे, दाल, कढ़ी, सालन इत्यादि ।

उपसेवन—संज्ञा पु० [सं०] १. पूजा करना । पूजन । २. सेवा करना । ३. व्यवहार में लाना । आनंद लेना । ४. अनुभव करना [को०] ।

उपसेवी—वि० [सं० उपसेविन्] १. अभ्यास करनेवाला । २. सेवा करनेवाला [को०] ।

उपशायक—वि० [स०] क्रमानुसार सोनेवाला । अपनी वारी आने पर सोनेवाला [को०]

उपशायी—वि० [स० उपशायिन्] दे० 'उपशायक' [को०] ।

उपशाल—सज्ञा पु० [सं०] गाँव का चौपाल जहाँ बैठकर पचायत होती थी या गाँव भर के लोग उत्सव आदि मनाते थे । आए हुए साधु सन्यासी इसी में बैठकर उपदेश देते तथा व्यास लोग कथा सुनाते थे [को०] ।

उपशिघन—सज्ञा पु० [स० उपशिघ्न] १ सूँघना । १ सूँघने की वस्तु [को०] ।

उपशिघन—सज्ञा पु० [स०] दे० 'उपशिघन' [को०] ।

उपशिक्षक—सज्ञा पु० [सं०] सहायक अध्यापक । नायब मुदरिस [को०] ।

उपशिष्य—सज्ञा पु० [स०] शिष्य का शिष्य । चेले का चेला ।

उपशीर्षक—सज्ञा पु० [स०] १ एक रोग जिसमें सिर में छोटी छोटी फुसियाँ निकल आती हैं । चाईचूई । २ एक विशेष प्रकार का मोतियों का हार, जिसके बीच में समान आकार के पाँच बड़े मोती गुँथे होते हैं (को०) । मुख्य या प्रधान शीर्षक के अंतर्गत आनेवाले छोटे शीर्षक (को०) ।

उपशोभन—सज्ञा पु० [स०] सज्जित या अलंकृत करना । सजाना [को०] ।

उपशोभा—सज्ञा स्त्री० [स०] अलंकरण । साज सज्जा । सजावट [को०] ।

उपशोभिका—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'उपशोभा' [को०] ।

उपशोप—सज्ञा पु० [स०] १ सुखाना । २ सूखना [को०] ।

उपशोपण—सज्ञा पु० [स०] दे० 'उपशोपण' [को०] ।

उपश्री—सज्ञा स्त्री० [स०] ऊपर से ढँक लेनेवाली कोई वस्तु [को०] ।

उपश्रुत—वि० [स०] १ सुना हुआ । २ प्रतिज्ञा किया हुआ । प्रतिज्ञात । राजी [को०] ।

उपश्रुति—सज्ञा पु० [स०] १. सुनना । २ श्रवण सीमा जहाँ तक सुना जा सके । ३ स्वीकृति । ४ रात में सुनी जानेवाली दिव्य वाणी जिसे देवता द्वारा भविष्यकथन करना कहा जाता है । ५ भविष्यकथन । ६ प्रतिज्ञा । वाग्दान । ७. अफवाह । लोकचर्चा । जनरव । ८ अतर्भाव । ९ एक देवी का नाम [को०] ।

उपश्रोता—वि० [स० उपश्रोतृ] सुननेवाला । श्रोता । पास से सुनने वाला [को०] ।

उपश्लाघा—सज्ञा स्त्री० [स०] श्लोकी । डींग । बड़ चढ़कर वारें करना । अभिमान [को०] ।

उपश्लिष्ट—वि० [स०] १ पास रखा हुआ । २ मिला हुआ । ३ समीपवर्ती [को०] ।

उपश्लेष—सज्ञा पु० [स०] १ सपर्क । २ आलिंगन [को०] ।

उपश्लेषण—सज्ञा पु० [स०] दे० 'उपश्लेष' [को०] ।

उपश्लोक—सज्ञा पु० [स०] दशम मनु ब्रह्मसर्वाणि के पिता का नाम [को०] ।

उपसक्रांत—वि० [स० उपसङ्क्रान्त] दूसरी ओर घूमा या मुड़ा हुआ [को०] ।

उपसंख्यान—सज्ञा पु० [स०] १ योग । २ योग जो पूरक का काम करे ।

विशेष—वार्तिककार कात्यायन के वार्तिकों पर प्रयुक्त एक पारिभाषिक शब्द 'उपसंख्यान' है । इन वार्तिकों का रचना पाणिनी के सूत्रों में न आनेवाले नियमों या विधियों के विधान के लिये हुई है । ये उन सूत्रों के आगे जोड़ दिए गए हैं, जिनमें शब्दासिद्धि के नियमों का अभाव है ।

उपसग्रह—सज्ञा पु० [स०] १ प्रघन रचना । २ रक्षा करना । ३. एकत्र करना । ४ प्रणतिपूर्वक नमस्कार । चरण छूकर नमस्कार करना । ५ विनम्रता के साथ भाषण । ६ स्वीकार करना (पत्नी के रूप में) । ७ तकिया । उपधान [को०] ।

उपसगत—वि० [स० उपसङ्गत] १ मिला हुआ । समिलित । २ संयुक्त (मैथुन क्रिया के लिये) [को०] ।

उपसगमन—सज्ञा पु० [उपसङ्गमन] १ एकत्र होना । सामूहिक रूप में इकट्ठा होना । २ सभोग । रतिक्रिया [को०] ।

उपसगृहीत—वि० [स० उपसङ्गृहीत] १ संग्रह किया हुआ । २ अधिकृत । अधिकार में लाया हुआ [को०] ।

उपसघात—सज्ञा पु० [स० उपसङ्घात] इकट्ठा करना । जुटाना [को०] ।

उपसचार—सज्ञा पु० [सं० उपसञ्चार] प्रवेश । पंठ [को०] ।

उपसधान—सज्ञा पु० [सं० उपसन्धान] १ जोड़ना । युक्त करना । २ मिलाना [को०] ।

उपसध्य—क्रि० वि० [स० उपसन्ध्य] संध्या के आसपास । सायंकाल के कुछ पहले ।

उपसन्यास—सज्ञा पु० [स०] १ लेटना । २ त्याग [को०] ।

उपसपत्—सज्ञा स्त्री० [स० उपसम्पत्, उपसम्पद्] बौद्ध धर्म की दीक्षा [को०] ।

उपसपत्ति—सज्ञा स्त्री० [न० उपसम्पत्ति] १ पास पहुँचना । २ अवस्था-तर में प्रवेश करना [को०] ।

उपसपदा—सज्ञा स्त्री० [स० उपसम्पदा] बौद्धधर्म की दीक्षा ग्रहण करना [को०] ।

उपसपन्न—वि० [स० उपसम्पन्न] १ पाया हुआ । लाभान्वित । २ पहुँचा हुआ । ३ उपचित । सचित किया हुआ । ४ परिचित । ५ पर्याप्त । काफी ।

उपसपादक—सज्ञा पु० [स० उपसम्पादक] [स्त्री० उपसंपादिका] १ किसी कार्य में मुख्य कर्ता का सहायक या उसकी अनुपस्थिति में उसका कार्य करनेवाला व्यक्ति । २ किमी पत्र या पत्रिका के संपादक का सहायक ।

उपसभाष—सज्ञा पु० [स० उपसम्भाष] १ बातचीत । वाणी द्वारा भावों और विचारों का आदान प्रदान । २. मित्रतापूर्ण अनुरोध [को०] ।

उपसभाषा—सज्ञा स्त्री० [स० उपसम्भाषा] दे० 'उपसभाष' [को०] ।

उपसयत—वि० [स०] १ विलकुल मिना हुआ या संयुक्त । २. निरुद्ध [को०] ।

उपसयम—सज्ञा पु० [स०] १ नियंत्रण । निरोध । २ विश्वसहार प्रलय [को०] ।

क' उज्ञा पु० [सं०] चोरो से या सदेह की स्थिति में किसी माल का खरीदा या बेचा जाना ।

विशेष—वृहस्पति के अनुसार घर के भीतर, गाँव के बाहर या रात में किसी नीच जाति के आदमी से कम दाम में कोई वस्तु खरीदना उपविक्रय के अतर्गत है । ऐसा माल खरीदने-वाला अपराधी होता था । पर यदि वह खरीदने के पहले राज्य को सूचना दे देता था तो अपराधी नहीं होता था । (नारद) ।

५ वच २—संज्ञा पु० [सं०] प्रतिवेश । पड़ोस [को०] ।

५ विद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ गौण विद्या । साधारण व्यवहार में आनेवाली विद्या । २ लौकिक विद्या या लोकज्ञान [को०] ।

विप—संज्ञा पु० [सं०] हलके विप । कम तेज जहर । जैसे, अफीम, धतूरा इत्यादि । एक मत से उपविप पाँच हैं—(१) मदार का दूध, (२) सेहूँड का दूध, (३) कलिहारी या करियारी, (४) कनेर, (५) धतूरा, दूसरे मत से सात हैं—(१) मदार, (२) सेहूँड, (३) धतूरा, (४) कलिहारी या करियारी, (५) कनेर, (६) गुंजा, (७) अफीम ।

उपविप प्रणिधि—संज्ञा पु० [सं०] विप या यत्र मत्र आदि द्वारा मनुष्यों को गुप्त रूप से मारनेवाला ।

विशेष—कौटिल्य के समय में ऐसे गुप्तचर उन लोगों के वध के लिये नियुक्त किए जाते थे जिनसे राजा असंतुष्ट होता था, या जो वागी समझे जाते थे ।

उपविपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अतीत ।

उपविष्ट—वि० [सं०] बैठा हुआ ।

उपविष्टक—संज्ञा पु० [सं०] आयुर्वेद के अनुसार वह गर्भस्थ भ्रूण, जो समय पूरा हो जाने पर भी गर्भ में टिका रहता है [को०] ।

उपवीणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वीणा वाद्य की बड़ी तूँबीवाला निचला भाग [को०] ।

उपवीणित—संज्ञा पु० [सं०] वशी पर गान करना [को०] ।

उपवीत—संज्ञा पु० [सं०] [वि० उपवीति] १. जनेऊ । यज्ञसूत्र । २. उपनयन संस्कार । उ०—करणवेध, चूड़ाकरण श्री रघुवर उपवीत, समय सकल कल्याणमय मजुल मंगल गीत ।—तुलसी (शब्द०) ।

उपवीतक—संज्ञा पु० [सं०] यज्ञोपवीत । जनेऊ [को०] ।

उपवीती—वि० [सं० उपवीतिन्] यज्ञसूत्र या जनेऊ पहननेवाला [को०] ।

उपवीर—संज्ञा पु० [मं०] एक प्रकार का दंत्य [को०] ।

उपवृहण—संज्ञा पु० [सं०] २० 'उपवृहण' [को०] ।

उपवेद—संज्ञा पु० [सं०] विद्याएँ जो वेदों से निकली हुई कही जाती हैं । ये चार हैं—(१) धनुर्वेद—जिसे विश्वामित्र ने यजुर्वेद से निकाला । (२) गद्यवेद—जिसे भरतमुनि ने सामवेद से निकाला । (३) आयुर्वेद—धन्वतरि ने ऋग्वेद से निकाला । (४) स्थापत्य—जिसे विश्वकर्मा ने अथर्ववेद से निकाला ।

उपवेधक—संज्ञा पु० [सं०] वह जो रास्ते चलते लोगों को तंग करे या लूटे । गुंडा । बदमाश [को०] ।

उपवेश—संज्ञा पु० [सं०] २० 'उपवेशन' [को०] ।

उपवेशन—संज्ञा पु० [सं०] [वि० उपवेशित, उपवेशी, उपवेश्य, उपवेष्ट] १. बैठना । २. स्थित होना । जमना । ३. द्वार मान लेना [को०] ।

उपवेशित—वि० [सं०] बैठाया हुआ ।

उपवेशी—वि० [सं०] उपवेशिन् १. बैठानेवाला । २. अपने को लगा देनेवाला [को०] ।

उपवेष्टन—संज्ञा पु० [सं०] पूरुंतया लपेट देना । आवरितकरना । कपड़े में बाँध देना । (पुस्तक आदि) [को०] ।

उपवेष्टित—वि० [सं०] लपेटा हुआ । बैठन में बैठा हुआ [को०] ।

उपवैश्व—संज्ञा पु० [सं०] दिन के तीन भाग, प्रभात, मध्याह्न और संध्याकाल । त्रिसध्य [को०] ।

उपव्याघ्र—संज्ञा पु० [सं०] एक छोटा शिकारी चीता [को०] ।

उपव्रज—किं० वि० [सं०] व्रज या चौपायों के रहने के स्थान के पास [को०] ।

उपशम—संज्ञा पु० [सं०] १. वासनाओं को दवाना । इद्रियनिग्रह । निवृत्ति । शांति । उ०—राम मलाई आपनी मल कियो न काको । चितवत भाजन कर लियो उपशम समता को ।—तुलसी (शब्द०) । २. निवारण का उपाय । इलाज । चारा । उ०—कामानल को ताप यह हिय जारैगा तोहि । वृथा जरो, उपशम कछू सूझत नाही मोहि ।—रत्नावली (शब्द०) ।

उपशमक—वि० [सं०] उपशमन करनेवाला [को०] ।

उपशमन—संज्ञा पु० [सं०] [वि० उपशमनीय, उपशामित, उपशम्य] १. शांति रखना । दवाना । २. निवारण । उपाय से दूर करना ।

उपशय^१—संज्ञा पु० [सं०] १. किसी वस्तु के व्यवहार से क्लेश का घटना या बढ़ना देखकर रोग का अनुमान । यह रोगज्ञान के पाँच उपायों में से एक है । निदान । २. सुख या आराम देनेवाली वस्तु या उपाय । अनुकूल औषध या पथ्य । मुद्राफिक इलाज । ३. पास सोना [को०] । ४. सहसा आक्रमण करने के लिये एकांत स्थान [को०] ।

उपशय^२—वि० १. पास सोनेवाला । सात्वना देनवाला [को०] । उपशया—संज्ञा स्त्री० [मं०] काम में लाने के लिये तैयार की हुई गौली मिट्टी [को०] ।

उपशय^३—वि० १. पास सोनेवाला । सात्वना देनवाला [को०] । उपशया—संज्ञा स्त्री० [मं०] काम में लाने के लिये तैयार की हुई गौली मिट्टी [को०] ।

उपशय^४—वि० १. पास सोनेवाला । सात्वना देनवाला [को०] ।

उपशय^५—वि० १. पास सोनेवाला । सात्वना देनवाला [को०] ।

उपशय^६—वि० १. पास सोनेवाला । सात्वना देनवाला [को०] ।

उपशय^७—वि० १. पास सोनेवाला । सात्वना देनवाला [को०] ।

उपशय^८—वि० १. पास सोनेवाला । सात्वना देनवाला [को०] ।

उपशय^९—वि० १. पास सोनेवाला । सात्वना देनवाला [को०] ।

उपशय^{१०}—वि० १. पास सोनेवाला । सात्वना देनवाला [को०] ।

उपलिङ्ग—सज्ञा पुं० [सं० उपलिङ्ग] उपलिङ्ग । १ अरिष्ट । उत्पात ।
 २ दुर्लक्षण । भावी अमंगल का सूचक चिह्न [को०] ।
 उपलिप्त—वि० [सं०] लीपा हुआ । लेप किया हुआ [को०] ।
 उपलिप्ता—सज्ञा स्त्री० [सं०] प्राप्त करने की इच्छा । पाने की
 इच्छा [को०] ।
 उपली—सज्ञा स्त्री० [हिं० उपला का अल्पा० रूप] छोटा उपला ।
 गोहरी । कडी । चिपडी ।
 उपलेप—सज्ञा पुं० [सं०] १ किसी वस्तु से लीपना । किसी वस्तु
 की ऊपरी तह में कोई गोली चीज पोतना । २ गाय के गोबर
 से लीपना । ३ वह वस्तु जिससे लेप करें ।
 उपलेपन—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० उपलेपित, उपलेप्य, उपलिप्त] लीपना ।
 लीपने का कार्य ।
 उपलेपी—वि० [सं० उपलेपिन्] १ लीपने या पोतने का काम
 करनेवाला । २ वाघक । वाघा विघ्न डालनेवाला [को०] ।
 उपलोह—सज्ञा पुं० [सं०] एक गौण धातु [को०] ।
 उपलोह—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उपलोह' [को०] ।
 उपल्ला—सज्ञा पुं० [प्रा० उपरिल्ल = ऊपर का या हिं० ऊपर + ला
 (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्प उपल्ली] १ ऊपर की पर्त । वह
 तह जो ऊपर हो । किसी वस्तु का ऊपरवाला भाग ।
 उपवग—सज्ञा पुं० [सं० उपवङ्ग] वगाल से सटा हुआ एक प्राचीन
 जनपद [को०] ।
 उपवक्ता^१—सज्ञा पुं० [सं० उपवक्तृ] १ यज्ञ का पुरोहित । २ ऋत्विक्
 [को०] ।
 उपवक्ता^२—वि० प्रेरित या उत्साहित करनेवाला प्रेरक [को०] ।
 उपवट—सज्ञा पुं० [सं०] प्रियासाल नाम का वृक्ष । चिरौजी का
 पेड़ [को०] ।
 उपवन—सज्ञा पुं० [सं०] १ वाग । वगीचा । कुज । फुलवारी ।
 २ छोटे छोटे जंगल । पुराणों में २४ उपवन गिनाए गए हैं ।
 उपवना^(३)—कि० अ० [सं० उत्पादन, प्रा० उप्पायण] १ उदय
 होना । उगना । २ उपजना । पैदा होना । उ०—मोद भरी
 गोद लिए लालति सुमित्रा देखि देव कहैं सबको सुकृत उपविधी
 है ।—तुलसी अ०, पृ० २७३ ।
 उपवर्ण—सज्ञा पुं० [सं०] सूक्ष्म या विस्तृत वर्णन [को०] ।
 उपवर्णन—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उपवर्ण' [को०] ।
 उपवर्ण्य—सज्ञा पुं० [सं०] उपमान । वह जिससे उपमा दी जाय ।
 उ०—जहें प्रसिद्ध उपवर्त को पत्रटि कहत उपमेय । वरनत तहाँ
 प्रतीप हैं कविजन जगत अजेय ।—(शब्द०) ।
 उपवर्त—सज्ञा पुं० [सं०] एक ऊँची विशिष्ट सख्या [को०] ।
 उपवर्तन—सज्ञा पुं० [सं०] १ व्यायामशाला । श्रम्यास स्थली । २
 वसा हुआ या उजड़ा हुआ स्थान । ३ जिला या परगना । ४
 राज्य । ५ दलदलीवाला भूमि [को०] ।
 उपवर्ष—सज्ञा पुं० [सं०] १ वेदात के प्रधान भाष्यकारों या आचार्यों
 में से एक । २ शंकर स्वामी के एक पुत्र का नाम । इन्होंने
 भीमासा दर्शन पर अनेक ग्रन्थ प्रस्तुत किए [को०] ।

उपवर्णित—वि० [सं०] १ सूजा या फूला हुआ । सूजनवाला ।
 २ अशुपूर्ण । आसू से डबड़ाया हुआ [को०] ।
 उपवल्लिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] अमृतयवा नाम की लता [को०] ।
 उपवसथ—सज्ञा पुं० [सं०] १ गाँव । वस्ती । २ यज्ञ करने के पहले
 का दिन जिसमें व्रत आदि करने का विधान है ।
 उपवसथोय—वि० [सं०] १ उपवसथ के लिये चुना हुआ (दिन) ।
 २ उपवसथ सवधी [को०] ।
 उपवसथ्य—वि० [सं०] दे० 'उपवसथोय' [को०] ।
 उपवसन—सज्ञा पुं० [सं०] १ व्रत । उपवास करना । २ पास
 रहने की अवस्था [को०] ।
 उपवस्त—सज्ञा पुं० [सं०] व्रत । उपवास [को०] ।
 उपवस्ता—वि० (सं० उपवस्तृ) उपवास करनेवाला । व्रती [को०] ।
 उपवस्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] जीवन का अवलम्ब । जीने का सहारा ।
 जैसे, भोजन, निद्रा आदि [को०] ।
 उपवहन—सज्ञा पुं० [सं०] ऊँचे स्वर में स्पष्ट गायन आरम्भ करने के
 पहले मद् और अस्पष्ट स्वर में गुनगुनाना [को०] ।
 उपवाक—सज्ञा पुं० [सं०] १ वातचीत करना । संवोधित करना ।
 २ प्रश्नमा करना । ३ इद्रयव नामक धान्य [को०] ।
 उपवाक्य—सज्ञा पुं० [सं०] वाक्यपद । किसी प्रधान वाक्य के
 भीतर आया वह वाक्यपद जिसमें कोई समापिका क्रिया
 हो [को०] ।
 उपवाजन—सज्ञा पुं० [सं०] पखा । व्यजन [को०] ।
 उपवाद—सज्ञा पुं० [सं०] अपवाद । निंदा ।
 उपवादी—वि० [सं० उपावादिन्] निंदा करनेवाला । लाछन
 लगानेवाला [को०] ।
 उपवास—सज्ञा पुं० [सं०] १ भोजन का छूटना । फाका । जैसे, आज
 इन्हे तीन उपवास हुए ।
 क्रि० प्र०—करना ।—होना ।
 २ वह व्रत जिसमें भोजन छोड़ दिया जाता है । ३ वे नीच जाति
 के लोग जिनको गाँव के मामलों में विशेष अधिकार न हो ।
 वि० दे० 'ग्रामिक' । ४ समीप रहना [को०] । ५ यज्ञाग्नि
 जलाना [को०] । यज्ञकुंड [को०] ।
 उपवासक^१—सज्ञा पुं० [सं०] व्रत । उपवास [को०] ।
 उपवासक^२—वि० उपवास करनेवाला । व्रती [को०] ।
 उपवासी^१—वि० [सं० उपवासिन्] (वि० स्त्री० उपवातिनी) उपवास
 करनेवाला । निराहार रहनेवाला ।
 उपवासी^२—सज्ञा पुं० नीच जाति का ग्रामीण, जिसे गाँव में विशेष
 अधिकार प्राप्त नहीं रहता [को०] ।
 उपवाहन—सज्ञा पुं० [सं०] पास ले जाना [को०] ।
 उपवाही—वि० (सं० उपवाहिन्) वहनेवाला प्रवाहित होनेवाला [को०] ।
 उपवाह्य^१—वि० [सं०] पास ले जाने योग्य । वहन करने या ढोने के
 योग्य [को०] ।
 उपवाह्य^२—सज्ञा पुं० १ राजा की सवारी के काम आनेवाला हाथी ।
 २ राजवाहन रथ, घोड़ा, हाथी आदि [को०] ।

शिल्पक, (१४) विलासिका, (१५) दुर्मल्लिका, (१६) प्रकर-
णिका, (१७) हल्लीश, (१८) भाणिका ।

२ ॐ—सज्ञा पुं [हि० उपरना] दे० 'उपरना' । उ०—पाछे
श्री गुसाईं जी स्नान करि घोती उपरना पहिरि अपरस की
गादी पर विराजि कै संखचक्र धरत हते ।—दो सी वावन०,
भा० १, पृ० ६ ।

रेना—सज्ञा पुं [हि० ऊपर+ना (प्रत्य०)] दुपट्टा ।
चदर । उ०—सीस मोर मुकुट लकुट कर लीने ओढ़े पीत
उपरना जामैं टैंक्यो चार गोबरु ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २,
पृ० २२६ ।

उपरनी—सज्ञा स्त्री [सं०] ओढ़नी । उ० धोखे उरनी के जो ओढ़े
उपरनी रहे ताही को लै दियो सोतो तवै लै अली गई । फूलन
को हार लिए रही तासो मारि फेरि हायन पसारि कै सरापत
चली गई ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

उपरोक्त—वि० [हि० ऊपर+सं० उक्त अथवा सं० उपर्युक्त] उपर
कहा हुआ । पहले कहा हुआ ।

उपरोध—सज्ञा पुं [सं०] १ रोक । अटकाव । २ आड । आच्छादन ।
ढकना ।

उपरोधक^१—सज्ञा पुं [सं०] १ रोकनेवाला । बाधा डालनेवाला । २
भीतर की कोठरी । गर्भागार । वासगृह ।

उपरोधक^२—वि० उपरोध करनेवाला । बाधक [को०] ।

उपरोधन—सज्ञा पुं [सं०] रूकावट । अटकाव । अडवन ।

उपरोधी—सज्ञा पुं [सं० उपरोधन्] [स्त्री० उपरोधिनी] रोकने-
वाला । बाधा डालनेवाला ।

उपरोहिता—सज्ञा पुं [सं० पुरोहित] दे० 'पुरोहित' । उ०—तुम्हरे
उपरोहित कहूँ राया । हरि आनव मैं करि निज माया ।—
मानस १।१६६ ।

उपरोहिती—सज्ञा स्त्री [हि० उपरोहित] दे० 'पुरोहिती' । उ०—
उपरोहिती करम अति मदा । वेद पुरान सुमृति कर निदा ।—
मानस, ७।४८ ।

उपरोद्धा—क्रि० वि० [हि० ऊपर+उद्धा (प्रत्य०)] १. ऊपर की
ओर । २. ऊपर का ।

उपरोटा—सज्ञा पुं [हि० ऊपर+ओटा (प्रत्य०)] (किसी वस्तु के)
ऊपर का पल्ला । अतरोटा का उनटा ।

उपरोठा—वि० [हि० ऊपर ओठा (प्रत्य०)] ऊपर की ओर का ।
ऊपरवाला । जैसे—उपरोठी कोठरी ।

उपरोना—सज्ञा पुं [हि०] दे० 'उपरना' ।

उपर्युपरि—क्रि० वि० [सं० उपरि+उपरि] उपर ऊपर । उ०—
उपर्युपरि लेखक भी आशान्वित जान पड़ता है ।—यो०
उ० सा०, पृ० ६७ ।

उपलम्भ—सज्ञा पुं [सं० उपलम्भ] १ अनुभव । २. प्राप्ति । लाभ ।
३ ध्वनि [को०] ।

उपलम्भक—वि० [सं० उपलम्भक] १ जानने या अनुभव करनेवाला ।
२ प्राप्त करनेवाला । लाभ उठानेवाला [को०] ।

उपलम्भन—सज्ञा पुं [सं० उपलम्भन] १. अनुभव । २. लाभ । प्राप्ति
[को०] ।

उपन—सज्ञा पुं [सं०] १. पत्थर । २ ओला । उ०—जिमि हिय
उपन कृपी दलि गरही ।—मानस, १।४ । ३. रत्न । ४. मेघ ।
वादल । ५. बालू । चीनी ।

उपलक्ष—सज्ञा पुं [सं०] दे० 'उपलक्ष्य' ।

उपलक्षक^१—वि० [सं०] १. उद्भावना करनेवाला । २. अनुमान
करनेवाला । ताडनेवाला । लखनेवाला ।

उपलक्षक^२—सज्ञा पुं वह शब्द जो उपादान लक्षण से अपने वाच्य
या अर्थ द्वारा निर्दिष्ट वस्तु के अतिरिक्त प्रायः उसी कोटि की
ओर वस्तुओं का भी बोध कराए । जैसे 'कौश्यों से अनाज
को बचाना' इस वाक्य में लक्षण द्वारा 'कौश्यों' शब्द से ओर
पक्षी भी समझ लिए गए ।

उपलक्षण—सज्ञा पुं [सं०] [वि० उपलक्षक, उपलक्षित] १ बोध
करानेवाला चिह्न । संकेत । २ शब्द की वह शक्ति जिससे
उसके अर्थ से निर्दिष्ट वस्तु के अतिरिक्त प्रायः उसी की कोटि
की ओर ओर वस्तुओं का भी बोध होता है । यह एक प्रकार
की अजहृत्स्वार्थ लक्षणा है । जैसे, 'खेत को कौश्यों में बचाना'
इस वाक्य में कौश्यों शब्द से ओर ओर पक्षी भी समझ
लिए गए ।

उपलक्षित—वि० [सं०] १ अनुमानित । २ लक्ष्य किया हुआ । ३
संकेत से बताया हुआ । ४ शब्द की लक्षण शक्ति द्वारा
उद्भावित [को०] ।

उपलक्ष्य—सज्ञा पुं [सं०] १ संकेत । चिह्न । २. दृष्टि । उद्देश्य ।
यौ०—उपलक्ष्य मे = दृष्टि से । विचार से । बदले में । एवज में ।
उ०—पड़ित जी को हिंदी के सुलेखक होने के उपलक्ष्य में एक
एड्रेस भी दिया गया था ।—सरस्वती (शब्द०) ।

उपलविप्रिय—सज्ञा पुं [सं०] चमर नामक मृग, जिसे बालवि अर्थात्
पूँछ प्रिय होती है [को०] ।

उपलब्ध—वि० [सं०] १ पाया हुआ । प्राप्त । २ जाना हुआ ।

उपलब्धा—वि० [सं० उपलब्ध] १, प्राप्त करनेवाला । लाभ उठाने-
वाला । २. अनुभव करनेवाला । जाननेवाला [को०] ।

उपलब्धि—सज्ञा स्त्री [सं०] १. प्राप्ति । २ बुद्धि । ज्ञान ।

उपलब्धिसम—सज्ञा पुं [सं०] न्यायदर्शन के अनुसार एक प्रकार
का हेत्वाभास रूप तार्किक खडन । जैसे, यह कहना कि 'शब्द
अनित्य है क्योंकि इनकी उत्पत्ति यत्नपूर्वक होती है' ।

उपलम्भ्य—वि० [सं०] १. प्राप्त । प्राप्त हो सकने योग्य । २ आदर-
णीय । संमान के योग्य [को०] ।

उपला—सज्ञा पुं [सं०] [स्त्री०, अल्पा० उपली] ईधन के निचे
गोबर के सुखाए हुए टुकड़े । कड़ा । गोहरा ।

उपलाम्भ—सज्ञा पुं [सं०] १. प्राप्ति । २ ग्रहण [को०] ।

उपलालन—सज्ञा पुं [सं०] दुलारना । प्यार करना [को०] ।

उपलालिका—सज्ञा स्त्री [सं०] १ प्यासा । तृषा । २ उत्पीड़न ।
३. कुशासन । [को०] ।

उपराजा—सज्ञा पुं० [सं० उप + राजन्] प्राचीन काल में राजसभा के एक अधिकारी का पद जिसे उपसभापति कहते हैं।

उपराठना^७—क्रि० सं० [सं० उपरक्त या उपरत, प्रा० उवस्त, उवरय या देशज] पीठ फेरना। विमुख होना। उ०—(क) सखि हे राजिद चालियउ पल्लाणियाँ दमाज। किहि पुनवती साँमहुउ, ह्यौ उपराठउ आज।—ढोला० दू०, ३५०। (ख) प्री मारवणी सामुहुउ, म्हाँ उपराठउ अज्ज।—ढोला० दू० ३६३।

उपराना^१—क्रि० अ० [हिं० ऊपर] १ ऊपर आना। उठना। २. प्रकट होना। जाहिर होना। ३ उतराना।

उपराना^२—क्रि० सं० ऊपर करना। उठाना।

उपराम—सज्ञा पुं० [सं०] १ त्याग। उदासीनता। विराम। उ०—साधन सहित कमं सब त्यागै, लखि विपसम विषयन तें भागै। नारी लखे होय जिय ग्लाना यह लक्षण उपराम बखाना।—(शब्द०)। २ ग्राम। विश्राम। उ०—नियमकाल तजि नित प्रति होई, राति दिवस उपराम न सोई।—श० दि० (शब्द०)। ३ निवृत्ति। छुटकारा।

उपराला^७—सज्ञा पुं० [हिं० उपर + ला (सत्य०)] पक्षग्रहण। सहायता। रक्षा। उ०—चहुँ दिसि घेरि कोटरा लीनो। जूझ लतीफ मास द्वै कीनो। उपराला करि सवयो न कोई। सकित भयो लतीफ गढोई।—लाल (शब्द०)।

उपरावटा^७—वि० [सं० उपरि + आवत्तं या प्रा० उपल्ल (अध्यासित, आलुङ्) + हिं० आवटा (प्रत्य०)] तना हुआ। अकड़ा हुआ। जो अपना सिर गर्व से ऊँचा किए हो। उ०—कहा चलत उपरावटे अजहूँ खिसी न गात। कस सौह दै पूछिए जिन पटके हैं सात।—सूर (शब्द०)।

उपराह^७—क्रि० वि० [हिं० ऊपर] दे० 'उपराही'। उ०—बदन उधारा है पुहुप, अली भँवहि उपराहँ। की समुझत पति भार को, अहे छिपी पट माहँ।—इंद्रा०, पृ० ४८।

उपराहना^७—क्रि० सं० [हिं०] प्रशंसा करना। सराहना।

उपराही^७—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'उपराही' उ०—लै मोती दोउ हायन माहँ, आरु रतन सीर उपराही।—इंद्रा० पृ० ५।

उपराही^१^७—क्रि० वि० [हिं० ऊपर] ऊपर। उ०—(क) छाहहि वान जाहि उपराही। गर्व केर सिर सदा तराही।—जायसी (शब्द०)। (ख) सेंदुर आग सीस उपराही। पहिया तरवन चमकत जाही।—जायसी (शब्द०)।

उपराही^२^७—वि० बढकर। वेहतर। श्रेष्ठ। उ०—(क) वह सुजोति हीरा उपराही। हीरा जाति सो तेहि परछाही।—जायसी ग्र०, पृ० ४४। (ख) कहँ अस नारि जगत उपराही। कहँ अस जीव मिलन सुख छाहीं।—जायसी (शब्द०)। (ग) आम जो फरि कै नवै तराही, फल अमृत भा सब उपराही।—जायसी (शब्द०)।

उपरि—क्रि० वि० [सं०] ऊपर।

यौ०—उपयुक्त।

उपरिक—सज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल में बड़े अधिकारी के लिये प्रयुक्त पदवी। राज्यपाल। गवर्नर। उ०—हर्ष के ताम्रपत्रो

में राजस्थानीय, कुमारामात्य तथा उपरिक शब्द मिले हैं। यह कहना उचित है कि ये तीनों पदवियाँ गवर्नर के लिये प्रयुक्त की जाती थी।—पूर्व म० भा०, पृ० ११७।

उपरिकर—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कर जो उन किसानों से लिया जाता था जिनका जमीन पर मोहसी या अन्य किसी प्रकार का हक नहीं होता था।

उपरिचर^१—सज्ञा पुं० [सं०] १ एक वस्तु का नाम। २ दे० 'चेदिराज'। पक्षी। ४ वसुधो मे से एक [को०]।

उपरिचर^२—वि० ऊपर चलनेवाला (जैसे पक्षी) [को०]।

उपरिचित—वि० ऊपर एकत्र किया हुआ। ऊपर संगृहीत [को०]।

उपरितन—वि० [सं०] और ऊपर का। और ऊँचा [को०]।

उपरिष्ठा—सज्ञा पुं० [सं०] पराँठा। परीठा। पराँवठा। उपराँठा।

उपरिसद^१—सज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का वर्गविशेष [को०]।

उपरिसद^२—वि० १ ऊपर लेटा हुआ। २ ऊपर बँठा हुआ [को०]।

उपरी^१—सज्ञा स्त्री० [हिं० उपला] दे० 'ऊपरी' और 'उपली'।

उपरीउपरा—सज्ञा पुं० [हिं० ऊपर] १ एक ही वस्तु के लिये कई आदमियों का उद्योग। चढाउपरी। उपराचढी। २ एक दूसरे से बढ़ जाने की इच्छा। स्पर्धा। उ०—(क) कटकटात भट भालु विकट मकंद करि केहरि नाद। कूदत करि रघुनाथ सपथ उपरीउपरा करि बाद।—तुलसी (शब्द०)। (ख) विरुझे विरदैत जे सेत अरे न टरे हठि बँर बढावन के। रन रारि मची उपरीउपरा भले वीर रघुपति रावन के।—तुलसी ग्र०, पृ० १६१।

उपरीतक—सज्ञा पुं० [सं०] रतिवध विशेष, जिसमें कामी अपना एक पैर जाँघ पर और दूसरा कंधे पर रखकर कामिनी के साथ केतिक्रीडा करता है [को०]।

उपरुद्ध^१—वि० [सं०] १ रोक दिया गया। बाधित। २ अवरुद्ध। घेरे में ले लिया गया। अवरुद्ध। बदीकृत। कैद। ३ छिपाया हुआ। ४ रक्षित [को०]।

उपरुद्ध^२—सज्ञा पुं० वदी। कैदी [को०]।

उपरुद्धसैन्य—सज्ञा पुं० [सं०] शत्रु के द्वारा रोकी हुई सेना।

विशेष—कोटिल्य ने लिखा है कि उपरुद्ध हुआ परिक्षिप्त (सब ओर से घिरी हुई) सेना में उपरुद्ध अच्छी है, क्योंकि वह किसी एक ओर से निकलकर युद्ध कर सकती है। परिक्षिप्त सब ओर से घिर जाने के कारण ऐसा नहीं कर सकती।

उपरुद्ध—वि० [सं०] १ बदला हुआ। २ (ब्रह्म) भरा हुआ या अच्छा हुआ [को०]।

उपरूप—सज्ञा पुं० [सं०] आयुर्वेद के अनुसार रोग का यत्किचित् लक्षण। रोग का आरम्भिक लक्षण [को०]।

उपरूपक—सज्ञा पुं० [सं०] नाटक के भेदों में दूसरा भेद। छोटा नाटक। इसके १८ भेद हैं—(१) नाटिका, (२) श्रोटक, (३) गोष्ठी, (४) सट्टक, (५) नाट्यरासक, (६) प्रस्थानक, (७) उल्लास्य, (८) काव्य, (९) प्रेक्षण, (१०) रासक, (११) सलापक, (१२) श्लोदित (श्रीरासिका), (१३)

उपरंजनीय—वि० [सं० उपरंजनीय] १. रंगने लायक । २. जिम-पर प्रभाव डाला जा सके ।

उपरंज्य—वि० [सं० उपरंज्य] १. रंगने लायक । २. जिसपर प्रभाव पड़े ।

उपरंघ्र—संज्ञा पुं० [सं० उपरंघ्र] १. छोटा छेद । २. घोड़े की पसलियों के बीच का भाग जो गड्डेनुमा दिखाई पड़ता है । [को०] ।

उपर—अव्य० [सं० उपरि] दे० 'ऊपर' । उ०—(क) पुत्र सनेह मई रसमई । माया जननि उपर फिर गई ।—नद० ग्रं०, पृ० २४३ । (ख) तब वह ब्राह्मण उपर कै घर खोजिकै आप नीचे रह्यो ।—दो सो बावन०, भा० २, पृ० ७० ।

उपरक्त—वि० [सं०] १. जिसमें ग्रहण लगा हो । राहुग्रस्त । २. भोगविलास में फँसा हुआ । विषयासक्त । ३. उपरजह या उपाधि की सन्निकटता के कारण जिसमें उसका गुण आ गया हो ।

उपरक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. चौकी । पहरा । २. फौजी नौयारी । सैनिक नौयारी (डि) ।

उपरत—वि० [सं०] १. विरक्त । उदासीन । हटा हुआ । २. मरा हुआ । मृत ।

उपरति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विषय से विराग । विरति । त्याग । २. उदासीनता । उदासी । ३. मृत्यु । मौत ।

उपरत्न—संज्ञा पुं० [सं०] घटिया रत्न । कम दाम के रत्न या पत्थर । विशेष—वैद्यक ग्रंथों के अनुसार वैश्वरूपमणि, मोती का सीप, रक्षस, मरकत मणि, लहसुनिया, लाजा, गारुडिमणि (जह्म-मोहरा), शंख और स्फटिक मणि ये नव उपरत्न माने गए हैं ।

उपरना^१—संज्ञा पुं० [हिं० ऊपर + ना (प्रत्य०)] ऊपर से ओढ़ने का वस्त्र । दुपट्टा । चद्दर । उ०—पिछर उपरना काखा सोती ।—मानस, १।३२७ ।

उपरना^२—क्रि० सं० [सं० उत्पादन] उखड़ना ।

उपरनी^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० उपरना] दे० 'उपरना' । उ०—भीने पट की बोवती, उपरउपरनी भीने ।—माधवानल०, पृ० १६२ ।

उपरफट—वि० [हिं० ऊपर + फट (प्रत्य०)] ऊपरी । इधर उधर का । व्यर्थ का । निष्प्रयोजन । उ०—मेरी बाँह छँडि दै राधा करत उपरफट बातें । सूर स्वाम नागर नागरि सौं करत प्रेम की बातें ।—सूर०, १० । १२६६ ।

उपरफट्टू—वि० [हिं० ऊपर + फट्टू (प्रत्य०)] १. ऊपरी । वालाई । नियमित के अतिरिक्त । बेंचे हुए के सिवाय । जैसे—नौकरी के सिवाय उन्हें उपरफट्टू काम भी बहुत मिलते हैं । २. इधर उधर का । बठिकाने का । व्यर्थ का । फजूल । निष्प्रयोजन । जैसे, वह उपरफट्टू बातों में बहुत रहा करता है, अपना काम नहीं देखता है ।

उपरम—संज्ञा पुं० [सं०] १. विरति । वैराग्य । उदासीनता । चित्त का हटना । २. त्रिवृत्ति (को०) । ३. मृत्यु (को०) । ४. मेधा (को०) । बुद्धि (को०) ।

उपरमण—संज्ञा पुं० [सं०] १. विषय भोग से विरत हो जाना । २. वैधिक क्रियाओं से विराग या उदासीनता । ३. विश्रुति (को०) ।

उपरवार^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊपर + वार (प्रत्य०)] बाँगर जमीन । ऐसी भूमि जिसपर वर्षा का जल अधिक न ठहरे ।

उपरवार^२—वि० ऊपर स्थित (को०) ।

उपरस—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में पारे के समान गुण करनेवाले पदार्थ ।

विशेष—गंधक, ईशुर, अन्नक, मैनसिल, सुर्मा, तूतिया, लाजवर्द, पत्थर, चुबक, पत्थर, फिटकरी, शंख, खडिया, मिट्टी, गेरू, मुलतानी मिट्टी, कौडी, कसीम और बालू इत्यादि उपरस कहलाते हैं ।

उपरहिता^१—संज्ञा पुं० [सं० पुरोहित, ७] उपरोहित] दे० 'पुरोहित' ।

उपरहिती^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० उपरहित] दे० 'पुरोहिती' ।

उपरांठा^१—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'परांठा' ।

उपरात—क्रि० वि० [हिं० ऊपर + सं० अन्न] अनंतर । पीछे ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग काल के ही सबब में होता है ।

उपरा^१—संज्ञा पुं० [सं०] उपला । कड़ा । मोहरा । उ०—गौर नाँतह उपरा बापूँगी ।—दो सो बावन०, भा० १, पृ० १६४ ।

उपरागा^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. रग । २. किसी वस्तु पर उसके पास की वस्तु का आभास पड़ना । अपने टिकट की वस्तु के प्रभाव से किसी वस्तु का अपने असल रूप में भिन्न रूप में दिखाई पड़ना । जैसे,—लाल कपड़े के ऊपर रखा हुआ स्फटिक लाल दिखाई पड़ता है । उपाधि ।

विशेष—साध्य में बुद्धि के उपराग या उपाधि से पुरुष (आत्मा) कर्ता समझ पड़ता है, वास्तव में है नहीं ।

३. विषय में अनुरक्ति । वामना । ४. चंद्र या सूर्य ग्रहण ।

उ०—भएउ परव विनु रवि उपरागा ।—मानस, ६ । १०१ ।

उपराचढी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ऊपर + चढ़ना] किसी काम को करने या किसी चीज को लेने के लिये कई आदमियों का यह कहना कि हमी करें या हमी लें, दूसरा नहीं । एक ही वस्तु के लिये कई आदमियों का उद्योग । अहमहमिका स्पर्धा । उ०—एक पारिपद् ने हँसकर कहा—'महाराज' । यदि बहुत आदमी जाने को प्रस्तुत हैं तो बहुत अच्छी बात है । इस उपराचढी में आपकी सेना का व्यय कम होगा ।—गदाधरसिंह (शब्द०) ।

उपराज^१—संज्ञा पुं० [सं०] राजप्रतिनिधि । वाइसराय । गवर्नर जनरल ।

उपराज^२—संज्ञा स्त्री० [सं० उपार्जन] उज । पैदावार ।

उपराजना—क्रि० सं० [सं० उपार्जन] १. पैदा करना । उत्पन्न करना । जनमाना । उ०—प्रथम जोति विधि ताकर साजी, श्री वेहि प्रीति सिहिउ उपराजी ।—जायसी ग्रं०, पृ० ४ । २. रचना । बनाना । मानुष साज लाख मन साजा । होई सोई जो विधि उपराजा ।—जायसी ग्रं०, पृ० ११६ । ३. उपार्जन करना । कमाना । उ०—घटै बढै मो शिला सदा ही, उपराजै धन दिन प्रति ताही ।—रघुराज (शब्द०) ।

बीच उपमावाचक शब्द का लोप करके बनता है। जैसे,—
पुरुषसिंह, नरव्याघ्र, घनश्याम।

उपमिता—वि० स्त्री० [स०] दे० 'उपमित'।

उपमिति—सज्ञा स्त्री० [स०] उपमा या सादृश्य से होनेवाला ज्ञान।

उपमित्र—सज्ञा स्त्री० पुं० [स०] बहिरंग साथी। साधारण मित्र [स्त्री०]।

उपमेत—सज्ञा पुं० [स०] साखू नाम का पेड़। शालवृक्ष [स्त्री०]।

उपमेय^१—वि० [स०] उपमा के योग्य। जिसकी उपमा दी जाय।
वर्ण। वर्णनीय।

उपमेय^२—सज्ञा पुं० वह वस्तु जिसकी उपमा दी जाय। वह वस्तु जो
किसी दूसरी वस्तु के समान बतलाई गई हो। जैसे, 'मुखकमल'
में मुख उपमेय है।

उपमेयोपमा—सज्ञा स्त्री० [स०] वह उपमा अलंकार जिसमें उपमेय
की उपमा उपमान हो और उपमान की उपमेय। जैसे,—
पूरनमासी सी तू उजरी अरु तोसी उजारी है पूरनमासी।—
देव (शब्द०)।

उपयता—सज्ञा पुं० [स० उपयन्तृ] [स्त्री० उपयन्त्री] वर। पति।
वह जो अपना विवाह करनेवाला हो।

उपयत्र—सज्ञा पुं० [स० उपयन्त्र] वंश या जर्तियों का एक यंत्र जिससे
देह में चुमकर रह जानेवाली काँटा आदि चीजें निकाली
जाती हैं।

उपयना^①—कि० अ० [स० उत् + पद् प्रा० उप्यञ्ज, हि० उपयना]
उत्पन्न होना। पैदा होना। उ०—सुनि हरि हिय गरव गूढ
उपयो है।—गीता०, ६।११।

उपयम—सज्ञा पुं० [स०] १ विवाह। २ संयम। ३ आधार।
आलवन [स्त्री०]।

उपयमन—सज्ञा पुं० [स०] १. विवाह। २ संयम। ३ वटा
हुआ कुश। ४. अग्नि के नीचे रखना [स्त्री०]। ५ अवलवन।
सहारा [स्त्री०]।

उपयाचक—वि० [स० उप + याचक] १ माँगनेवाला। निवेदन
करनेवाला। २ किसी युवती से विवाह की प्रार्थना करनेवाला।
विवाहार्थी [स्त्री०]।

उपयाचन—सज्ञा पुं० [स०] १ याचना करना। प्रार्थना करना।
माँगना। मनौती [स्त्री०]।

उपयाचना—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'उपयाचन' [स्त्री०]।

उपयाचित^१—वि० [स०] माँगा हुआ। प्रार्थित। निवेदित [स्त्री०]।

उपयाचित^२—सज्ञा पुं० १ प्रार्थना। निवेदन। २ देवता की बलि।
मनौती [स्त्री०]।

उपयान—सज्ञा पुं० [स०] १ पास आना। प्राप्त करना। प्राप्ति।
उपलब्धि [स्त्री०]।

उपयापन—सज्ञा पुं० [स०] १. पास लाना। २ विवाह [स्त्री०]।

उपयाम—सज्ञा पुं० [स०] १ यज्ञपात्र विशेष। २. सोमरस
निकालते समय पड़े जानेवाले सूत्र या वैदिक मंत्र। ३
विवाह [स्त्री०]।

उपयायी—वि० [स० उपयायिन्] १ समीप जानेवाला। २. किसी
विशेष स्थिति या अवस्था को प्राप्त करनेवाला [स्त्री०]।

उपयुक्त—वि० [स०] १ योग्य। ठीक। २ उचित। वाजिव।
मुनासिब। ३ सबद्ध [स्त्री०]। ४ सहकारी अधिकारी [स्त्री०]।

५ उपयोग में लाया हुआ [स्त्री०]।

उपयुक्तता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ ठीक उतरने का भाव। यथार्थता।
२ योग्यता। ३ औचित्य।

उपयोग—सज्ञा पुं० [स०] [वि० उपयोगी, उपयुक्त] १ काम।
व्यवहार। इस्तेमाल। प्रयोग। प्रयोजन। २ योग्यता। ३
फायदा। लाभ। ४ प्रयोजन। आवश्यकता।

यो०—उपयोगवाद।

उपयोगवाद—सज्ञा पुं० [स० उपयोग + वाद] वह सिद्धांत जिसके
अनुसार जीवन के सब कार्यों का उद्देश्य अधिक से अधिक
प्राणियों को अधिक से अधिक सुख पहुँचाना है। यह १९वीं
शती के विचारक जॉन स्टुअर्ट मिल का सिद्धांत है।
(अ० यूटिलिटेरियनिज्म)।

उपयोगिता—सज्ञा स्त्री० [स०] काम में आने की योग्यता लाभका-
रिता। उ०—अर्थशास्त्र यह नहीं बतलाता कि कौन कार्य
करना उचित है और कौन अनुचित। वह तो केवल इतना ही
बतलाता है कि जिस कार्य के करने से अधिक सतोष या
उपयोगिता प्राप्त हो—चाहे वह कार्य अच्छा हो या बुरा—
उसको ही करना चाहिए।—अर्थ०, पृ० २६।

उपयोगितावाद—सज्ञा पुं० [स०] अधिकाधिक लोगों के अधिकाधिक
हित का सिद्धांत। यह ज्ञान वैधर्म द्वारा प्रतिपादित हुआ
था। उ०—व्यक्तिवादी राज्य को उपयोगितावादी तर्क द्वारा
भी उचित बताया गया था।—राजनीति० विचार, पृ० ६६।

उपयोगितावादो—वि० [स० उपयोगितावादिन्] १ उपयोगितावाद
के सिद्धांत को माननेवाला। २. उपयोगितावाद के सिद्धांत
का प्रवर्तक।

उपयोगी—वि० [स० उपयोगिन्] [स्त्री० उपयोगिनी] १.
काम देनेवाला। काम में आनेवाला। प्रयोजनीय। मसरफ
का। २ लाभकारी। फायदेमंद। उपकारी। ३ अनुकूल।
मुवाफिक।

उपयोप—सज्ञा पुं० [स०] आनंद। सुख [स्त्री०]।

उपरग^①—सज्ञा पुं० [स० उपरग, उपरङ्ग] १ ग्रहण। २.
निंदा। परीवाद। ३ व्यसन। ४ ग्रहों की हलचल। उ०—
अखर अभंगा सब उपरगा नाहिन लघा आधारम्।—राम०
धर्म०, पृ० २३०।

उपरजक^१—वि० [स० उपरञ्जक] [स्त्री० उपरजिका] १ रंगने-
वाला। २ प्रभाव डालनेवाला। असर डालनेवाला।

उपरजक^२—सज्ञा पुं० साध्य में वह वस्तु जिसका आभास उसकी
पासवाली वस्तु पर पड़ता है। वह वस्तु जिसके प्रभाव से
उसके निकट की वस्तु अपने असली रूप से कुछ भिन्न दिखाई
पड़ती है। उपाधि। जैसे, लाल कपड़ा जिसके कारण उसपर
रखा हुआ स्फटिक लाल दिखाई पड़ता है।

उपरंजन—सज्ञा पुं० [स० उपरंजन] [वि० उपरंजक, उपरंजनीय,
उपरंजित, उपरंज्य] १. रंगना। २ प्रभाव डालना। असर
डालना।

उपभोग्य—वि० [स०] उपभोग के योग्य । व्यवहार के योग्य ।
 उपभोज्य^१—वि० [स०] १ खाने योग्य । २ व्यवहार में लाने योग्य ।
 आनंद लेने योग्य [को०] ।
 उपभोज्य^२—सज्ञा पु० भोजन । आहार [को०] ।
 उपमन्त्रण—सज्ञा पु० [स० उपमन्त्रण] १ सवोधन करना ।
 आमन्त्रण । २ अपनी राय में मिलाना । खुशामद करना [को०] ।
 उपमंत्रो^१—सज्ञा पु० [स० उप + मन्त्रिन्] १ वह मंत्री जो प्रधान
 मंत्री के नीचे हो । २ दूत [को०] ।
 उपमंत्रो^२—वि० १. आमन्त्रण देनेवाला । २ अनुरोध करनेवाला ।
 ३ स्वपक्ष में मिलाने का यत्न करनेवाला [को०] ।
 उपमंथनी—सज्ञा स्त्री० [स० उपमन्थनी] चलाने की लकड़ी या
 डंडा । वह लकड़ी जिससे आग को उलटा पलटा जाता है ।
 [को०] ।
 उपमथिता—वि० [स० उपमन्थितृ] उपमथन करनेवाला । (प्रति
 को) खुड़ेनेवाला [को०] ।
 उपमज्जन—सज्ञा [स०] नहाना । स्नान । श्रवणाहन [को०] ।
 उपमन्यु^१—सज्ञा पु० [स०] गोत्रप्रवर्तक एक ऋषि जो आयोदधौष्य
 के शिष्य थे ।
 उपमन्यु^२—वि० १ प्रतिभाशाली । व्युत्पन्नमति । २ उद्योगी [को०] ।
 उपमर्द—सज्ञा पु० [स०] १ ममलना । रगड़ना । २ विनाश । वध ।
 ३ अपमान । भर्त्सना । ४. आरोप का खडन । ५ हिलना ।
 गति देना [को०] ।
 उपमर्दक—वि० [स०] १. नष्ट करनेवाला । २ आरोप का
 खडन [को०] ।
 उपमर्दन—सज्ञा पु० [स०] १ दवाना । क्लेश देना [को०] ।
 उपमा^१—सज्ञा स्त्री० [स०] [वि० उपमान, उपमापक, उपमित, उपमेय]
 १. किसी वस्तु, व्यापार या गुण को दूसरी वस्तु, व्यापार या
 गुण के समान प्रकट करने की क्रिया । सादृश्य । समानता ।
 तुलना । मिलान । पटतर । जोड़ । मुशावहत । उ०—सब
 उपमा कवि रहे जुझारी । केहि पटतरों विदेहकुमारी ।—
 मानस, १। २३० । २. एक अर्थालंकार जिसमें दो वस्तुओं
 (उपमेय और उपमान) के बीच भेद रहते हुए भी
 उनका समान धर्म वतलाया जाता है । जैसे,—उसका
 मुख चंद्रमा के समान है ।
 विशेष—उपमा दो प्रकार की होती है पूर्णोपमा और लुप्तोपमा ।
 पूर्णोपमा वह है जिसमें उपमा के चारों अंग उपमान, उपमेय,
 साधारण धर्म, और उपमावाचक शब्द वर्तमान हो ।
 जैसे,—‘हरिपद कोमल कमल से’ इस उदाहरण में
 ‘हरिपद’ (उपमेय), कमल (उपमान), कोमल (सामान्य
 धर्म) और ‘से’ (उपमावाचक शब्द) चारों आए हैं ।
 लुप्तोपमा वह है जिसमें उपमा के चारों अंगों में से एक दो,
 या तीन न प्रकट किए गए हों । जिसके एक अंग का लोप
 हो उसके तीन भेद हैं, धर्मलुप्ता, उपमानलुप्ता और वाचकलुप्ता
 जैसे,—(क) विज्जुलता सी नागरी, सजल जलद से श्याम
 (प्रकाश आदि धर्मों का लोप) । (ख) मालति

सम सुंदर कुसुम ढूँढ़ेहु मिलिहै नाहि (उपमान का लोप) ।
 (ग) नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन वारिज नयन (उपमा-
 वाचक शब्द का लोप) । इसी प्रकार जिस उपमा के दो
 अंगों का लोप होता है उसके चार भेद हैं—वाचकधर्मलुप्ता,
 धर्मोपमानलुप्ता, वाचकोपमेयलुप्ता, वाचकोपमानलुप्ता, जैसे,—
 (क) धरनधीर रन टरन नहि करन करन अरि नाश । राजत
 नृप कुजर सुमट यस तिहु लोक प्रकाश (सामान्य
 धर्म और वाचक शब्द का लोप) । (ख) रे अलि ! मालति
 सम कुसुम ढूँढ़ेहु मिलिहै नाहि (उपमान और धर्म का
 लोप) । (ग) अटा उदय हो तो भयो छविघर पुरनचद
 (वाचक और उपमेय का लोप) ।

उपमा^२—सज्ञा स्त्री० [गु० उपमान=वर्णन, दृष्टात] वर्णन ।
 वयान । प्रशंसा । उ०—जो गई भैसि पाई । या प्रकार सगरे
 ब्रजवासी बहू की उपमा करने लागे ।—दो० सौ वावन०, भा०
 २, पृ० ३ ।

उपमाता^१—सज्ञा पु० [स० उपमातृ] [स्त्री० उपमात्री] उपमा
 देनेवाला । मिलान करनेवाला ।

उपमाता^२—सज्ञा स्त्री० [स०] दूध पिलानेवाली स्त्री । दाई । धाय [को०] ।
 उपमाति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ निवेदन । आग्रह । २. तुलना । ३
 मारण [को०] ।

उपमाद^१—सज्ञा पु० [स०] १ हर्ष । खुशी । २. उपभोग [को०] ।

उपमाद^२—वि० खुश करनेवाला । हर्ष पहुँचानेवाला [को०] ।

उपमान—सज्ञा पु० [स०] १ वह वस्तु जिससे उपमा दी जाय । वह
 जिसके समान कोई दूसरी वस्तु वतलाई जाय । वह जिसके
 धर्म का आरोप किसी वस्तु में किया जाय । जैसे,—‘उसका
 मुख कमल के समान है’ इस वाक्य में ‘कमल’ उपमान है ।
 २ न्याय में चार प्रकार के प्रमाणों में से एक । किसी प्रसिद्ध
 पदार्थ के साधर्म्य से साध्य का साधन । वह निश्चय जो किसी
 वस्तु को किसी अधिक परिचित वस्तु के कुछ समान देखकर
 होता है । जैसे,—‘गाय नीलगाय की तरह होती है’ इस बात
 को सुनकर यदि कोई जगल में गाय की तरह का कोई
 जानवर देखेगा तो समझेगा कि यह नील गाय है । वास्तव में
 उपमान अनुमान के अंतर्गत आ जाता है । इसी से योग में
 तीन ही प्रमाण माने गए हैं प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द ।
 ३. २३ मात्राओं का एक छंद जिसमें १३वीं मात्रा पर विराम
 होता है । उ०—अब बोलि ले हरिनामै, काल जात बीता ।
 हाथ जोरि विनती करौ, नाहि जात रीता ।—छंद०, पृ० ५२ ।

उपमानलुप्ता—सज्ञा स्त्री० [स०] वि० दे० ‘उपमा’ ।

उपमाना^१—क्रि० सं० [हि०] समता करना । बराबरी दिखाना ।

उपमालिनी—सज्ञा स्त्री० [म०] एक वर्णवृत्त का नाम [को०] ।

उपमित^१—वि० [स०] जिसकी उपमा दी गई हो । जो किसी वस्तु
 के समान वतलाया गया हो । जिसपर उपमा घटती हो ।
 जैसे, ‘उसका मुख कमल के ऐसा है’ इसमें मुख उपमित है ।

उपमित^२—सज्ञा पु० कर्मधारय के अंतर्गत एक समास जो दो शब्दों के

उपपाद्व—सज्ञा पुं० [सं०] १ कथा । २ दगल । विपरीत पक्ष ।
४ छोटी पसली [को०] ।
उपपीडन—सज्ञा पुं० [सं० उपपीडन] १ दवाना । २ कष्ट देना ।
चोट पहुँचाना । ३ पीडा । कष्ट । मानसिक व्यथा [को०] ।
उपपीडित—वि० [सं० उपपीडित] १. दवाया हुआ । २ कष्ट
पहुँचाया हुआ [को०] ।
उपपुर—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० उपपुरी] नगर का बाहरी भाग ।
उपनगर [को०] ।
उपपुराण—सज्ञा पुं० [सं०] १८ मुख्य पुराणों के अतिरिक्त और छोटे
पुराण ।
विशेष—ये भी गिनती में १८ हैं । (१) सनत्कुमार, (२)
नारसिंह, (३) नारदीय, (४) शिव, (५) दुर्वासा, (६) कपिल,
(७) मानव, (८) श्रीशनस, (९) वरुण, (१०) कालिक,
(११) शाव, (१२) नदा, (१३) सौर, (१४) पराशर,
(१५) आदित्य, (१६) माहेश्वर, (१७) भार्गव और (१८)
वाशिष्ठ ।
उपपुरी—सज्ञा स्त्री० [सं०] नगर का उपात । नगर का परिवेश ।
परिसर [को०] ।
उपपुष्पिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. जंभाई । २. पूरा मुँह खोलकर
सांस लेना [को०] ।
उपपौरिक—वि० [सं०] [स्त्री० उपपौरिकी] नगर के उपात में
रहनेवाला । उपपुर का निवासी [को०] ।
उपप्रदर्शन—सज्ञा पुं० [सं०] सकेत करना । इंगित करना । निर्देशन ।
वताना [को०] ।
उपप्रदान—सज्ञा पुं० [सं०] १ देना । सौंपना । २ घूस । रिश्वत । ३.
भेंट [को०] ।
उपप्रधान—सज्ञा पुं० [सं०] प्रधान का सहायक । प्रधान का सहयोगी ।
उपप्रमुख—सज्ञा पुं० [सं०] उपाध्यक्ष ।
उपप्रश्न—सज्ञा पुं० [सं०] किसी बड़े और गंभीर प्रश्न के भीतर निकल
आनेवाला छोटा प्रश्न । उपप्रधान या उपमुख्य प्रश्न [को०] ।
उपप्रेक्षण—सज्ञा पुं० [सं०] उपेक्षा करना या परवाह न करना [को०] ।
उपप्रेष—सज्ञा पुं० [सं०] १ निमंत्रण । २. सूचनापत्र [को०] ।
उपप्लव—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० उपप्लवित, उपप्लवी, उपप्लव्य]
उपप्लुत] १ बाढ़ । २ उल्पात । हलचल । हगामा ।
बलवा । ३ कोई प्राकृतिक घटना जैसे ग्रहण, भूकंप, आदि ।
४ आँधी । तूफान । ५ भय । खतरा । ६ विघ्न । बाधा ।
राहु । ७ शिव [को०] । ८ संदेह । विचिकित्सा (बौद्ध) ।
उपप्लवी—वि० [सं० उपप्लविन्] [स्त्री० उपप्लविनी] १. उपद्रव
मचानेवाला । हलचल मचानेवाला । आफत डानेवाला । २
डुवानेवाला । तरावीर करनेवाला । ३ जिसपर या जहाँ पर
आफत आई हो । ४ जिसपर ग्रहण लगा हो ।
उपप्लुत—वि० [सं०] १ भयकर रूप से आक्रांत । २. ग्रस्त (राहु
से) । ३ उल्पात से पूर्ण । ४ सँचा हुआ । जलप्लावित । ५
आँसू से भरी (आँखें) । ६. रौंदा हुआ । मसला हुआ [को०] ।
उपप्लुता—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का रोग [को०] ।

उपवध—सज्ञा पुं० [सं० उपवन्ध] १ सवध । २ कामशास्त्र के
अनुसार एक आसन । ३ अनुवध । प्रयोग [को०] ।
उपवरहन(उ)—सज्ञा पुं० [सं० उपवर्हण] दे० 'उपवर्हण' [को०] ।
उ०—उपवरहन वर वरनि न जाही, सग सुगध मनि मरि
माही ।—मानस, १।३।५६ ।
उपवर्ह—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उपवर्हण' [को०] ।
उपवर्हण—सज्ञा पुं० [सं०] १ तकिया । २ दवाना । निपीडन [को०] ।
उपवहु—वि० [सं०] थोड़े । अल्पसंख्यक [को०] ।
उपवाहु—सज्ञा पुं० [सं०] पहुँचा । हाथ का कोहनी से नीचे का भाग
[को०] ।
उपवृहण—सज्ञा पुं० [सं०] परिवर्धित । बढाना [को०] ।
उपवृहित—वि० [सं०] अभिवर्धित । बढाया हुआ । २. युक्त ।
सयुक्त [को०] ।
उपवृही—वि० [सं० उपवृहन्] न्यूनता या कमी को पूरा करने-
वाला । पूरक [को०] ।
उपवैन(उ)—सज्ञा पुं० [सं० उपवचन, उ० उपवयन] उपवचन ।
उपकथन । उपवाक्य । उ०—जिते वाल उपवैन भूते उचाहै ।
घरे नाम छत्री न सस्य पचारै ।—पृ० रा०, १।२।४७३ ।
उपभग—सज्ञा पुं० [सं० उपभङ्ग] १ भागना । पीछे हटना । २
छद का एक खड या टुकड़ा [को०] ।
उपभापा—सज्ञा स्त्री० [सं०] बोली । जनपदीय भाषा । प्रातीय भाषा
के क्षेत्र के अंतर्गत किसी छोटे भूभाग में बोली जानेवाली जन-
भाषा [को०] ।
उपभुक्त—वि० [सं०] १ जिसका भोग किया गया हो । व्यवहार
किया हुआ । काम में लाया हुआ । वर्तित हुआ । २ जूठा ।
उच्छिष्ट ।
यौ०—उपभुक्त घन=वह जिसने अपने घन का उपयोग
किया हो ।
उपभुक्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ उपभोग । २. ग्रह की दैनिक गति
[को०] ।
उपभूषण—सज्ञा पुं० [सं०] हलका या छोटा गहना । लघु आभूषण
[को०] ।
उपभूत—वि० [सं०] १ पास लाया हुआ । २ उपलब्ध [को०] ।
उपभेद—सज्ञा पुं० [सं०] प्रधान भेद या प्रकार के भीतर किए गए
लघु प्रकार । शाखाभेद [को०] ।
उपभोक्तव्य—वि० [सं०] उपभोग के योग्य । उपभोगक्षम [को०] ।
उपभोक्ता—वि० [वि० उपभोक्तृ] [वि० स्त्री० उपभोक्तृ] उपभोग
करनेवाला । व्यवहार का सुख उठानेवाला । काम में
लानेवाला ।
उपभोग - सज्ञा पुं० [सं०] [वि० उपभोगी, उपभोग्य, उपभुक्त] १
किसी वस्तु के व्यवहार का सुख । मजा लेना । २ व्यवहार ।
काम में लाना । वर्तना । सुख की सामग्री । विलास की
वस्तु । ४. विषय भोग [को०] । ५ स्त्रीप्रसंग [को०] । ७
फलप्राप्ति [को०] ।
उपभोगी—वि० [सं० उपभोगिन्] उपभोग करनेवाला [को०] ।

७. (५) —वि० [हि०/उपन+इत (प्रत्य०)] उत्पन्न । उ०—
छकेई रहत रैनियोस प्रेम व्यास आस, कीनी नेम घरम कहानी
उपनेत है ।—घनानन्द, पृ० ६० ।
उपनेता—वि० सज्ञा, पु० [स० उपनेतृ] [लो० उपनेत्री] १. लानेवाला ।
पहुँचानेवाला । २. उपनयन करानेवाला । आचार्य । गुरु ।
३. नेता का प्रधान सहायक (को०) ।
उपनेत्र—सज्ञा पु० [स०] चश्मा (को०) ।
उपन्न—वि० [स० उत्पन्न, प्रा० उपपन्न] दे० 'उत्पन्न' । उ०—मारु
देस उपन्नियाँ, ताँह का दत सुसेत । कूँभ वचा गोरगिया,
खजर जेहा नेत ।—ढोला०, दु०, ४५७ ।
उपन्ना^१—सज्ञा पु० [स०] [हि० उपरना] दे० 'उपरना' ।
उपन्न^२—वि० [स० उत्पन्न, प्रा० उपपन्न] उत्पन्न । उ०—सुचा
मन साचु न मैला होई, आपे आय उपन्ना सोई ।—प्राण०,
पृ० २२१ ।
उपन्यस्त—वि० [स०] १. पास रखा हुआ । २. धरोहर रखा हुआ ।
अमानत रखा हुआ । ३. उल्लिखित । दर्ज । कहा हुआ ।
उपन्यास—सज्ञा पु० [म०] [वि० उपन्यस्त] १. वाक्य का उपक्रम ।
वधान । वात की लपेट । वात का लच्छा । २. कल्पित
आख्यायिका । कथा । नावेल । ३. धरोहर । गिरवी । ४.
प्रसादन (को०) । ५. प्रसंग । सदर्म । सकेत (को०) । ६. प्रस्ता-
वना । भूमिका । उपोद्घात (को०) । ७. नियम । विधान (को०) ।
उपन्याससधि—सज्ञा स्त्री [स० उपन्याससधि] वह सधि जो किसी
कल्याणकारी कर्म की इच्छा से की जाय (कामद०) ।
उपपक्ष—सज्ञा पु० [स०] १. कथा । २. काँख । कुक्षि । ३. काँख का
वाल (को०) ।
उपपत्ति—सज्ञा पु० [स०] वह पुरुष जिससे कोई दूसरे को व्याही हुई
स्त्री प्रेम करे । जार । यार । आशना ।
उपपत्तित—वि० [स०] उपपातक करनेवाला । छोटा पाप करनेवाला
(को०) ।
उपपत्तिरस—सज्ञा पु० [स० उपपत्ति+रस] पर पुरुष का प्रेम ।
उ०—जो कहौ उपपत्ति-रस नहि स्वच्छ, सब कोउ निदत अरु
अनि तुच्छ ।—नद० ग्रं०, पृ० ३२१ ।
उपपत्ति—सज्ञा स्त्री [स०] १. हेतु द्वारा किसी वस्तु की स्थिति का
निश्चय । २. प्राप्ति । सिद्धि । प्रतिपादन । घटना । चरितार्थ
होना । मेल मिलना । सगति । ३. युक्ति । हेतु । ४. समाधान
(को०) । ५. आशय । आधार (को०) । ६. सन्निकर्ष । सपर्क
(को०) । ७. उचित होना । युक्तता (को०) । ८. साधन (को०) ।
९. सिद्धांत (को०) । १०. प्रमाण । प्रक्रिया (गणित)
(को०) । ११. समाधि (को०) । १२. संयोग (को०) ।
उपपत्तिसम—सज्ञा पु० [स०] न्याय में दो कारणों की प्राप्ति । बिना
वादी के कारण और निगमन आदि का खंडन किए हुए
प्रतिपादन करना । प्रतिवादी का यह कहना कि जिस प्रकार
वादी के दिए हुए कारण से वह बात हो सकती है, उसी
प्रकार हमारे दिए हुए कारण से भी यह बात हो सकती है ।

जैसे,—एक कहता है शब्द अनित्य है क्योंकि उसकी उत्पत्ति
होती है । दूसरा कहता है जिस प्रकार उत्पत्ति घर्मवाला
होने से शब्द अनित्य कहा जा सकता है उसी प्रकार स्पर्शवाला
न होने से नित्य भी हो सकता है ।

उपपत्नी—सज्ञा स्त्री [स०] बिना विवाह किए ही जिस स्त्री को पत्नी
के समान रख लिया जाय । रखेली (को०) ।

उपपथ—कि० वि० [स०] सड़क के पास । राजमार्ग के समीप (को०) ।

उपपद—सज्ञा पु० [स०] १. पहले कहा गया शब्द । वह शब्द जो
पहले आ चुका है । २. स्थितिविशेष में लाना । ३. उपाधि ।
पदवी (को०) ।

उपपद समास—सज्ञा पु० [स०] वह समास जो नाम या सज्ञा के साथ
कृदन्त के मिलने से होता है । जैसे—स्वर्णकार, हलधर आदि
(को०) ।

उपपन्न—वि० [स०] १. पास आया हुआ । पहुँचा हुआ । २. शरण
में आया हुआ । शरणागत । ३. प्राप्त । लब्ध । पाया हुआ ।
मिला हुआ । ४. युक्त । सपन्न । ५. उपयुक्त । मुनासिब । ६.
पूर्ण (को०) । ७. सम्भव (को०) । ८. प्रमाणित । सिद्ध किया
हुआ (को०) ।

उपपशुका—सज्ञा स्त्री [स०] अमुक्य पसली (को०) ।

उपपात—सज्ञा पु० [स०] १. अप्रत्याशित घटना । २. दुर्घटना ।
विपत्ति । विनाश । (को०) ।

उपपातक—सज्ञा पु० [स०] छोटा पाप । उ०—जे पातक उपपातक
अह्नी, करम वचन मन भव कवि कह्नी ।—मानस, २।१६७ ।
विशेष—मनु के अनुसार परस्त्रीगमन, गुरुसेवात्याग, आत्मविक्रय,
गोवध आदि उपपातक हैं ।

उपपाद—सज्ञा पु० [स०] बड़े स्तम्भ के ऊपर लगा हुआ उसका सहायक
छोटा खम्भा (को०) ।

उपपादक—वि० [स०] १. सिद्ध करनेवाला । २. प्रकट करनेवाला ।
३. अच्छी तरह विचारता हुआ (को०) ।

उपपादन—सज्ञा पु० [स०] [वि० उपपादक, उपपादित, उपपन्न,
उपपादनीय, उपपाद्य] १. सिद्ध करना । नावित करना ।
ठहराना । प्रतिपादन । युक्ति देकर समर्थन करना । २.
सपादन कार्य को पूरा करना ।

उपपादनीय—वि० [स०] प्रतिपादनीय । सिद्ध करने योग्य । सावित
करने योग्य ।

उपपादित—वि० [स०] १. जिसका उपपादन या समर्थन किया गया
हो । प्रतिपादित । सिद्ध किया हुआ । सावित किया हुआ ।
ठहराया हुआ । २. दिया हुआ । प्रदान किया हुआ (को०) ।
३. चिकित्सा किया हुआ (को०) ।

उपपादुक^१—वि० [स०] १. जिसके पैर में पादुका हो । जूते पहना
हुआ । २. जिसके पैरों में नालें लगी हों (बोडा आदि)
३. स्वतः सभूत । स्वयम्भू (को०) ।

उपपादुक^२—सज्ञा पु० परमात्मा । ईश्वर (को०) ।

उपपाद्य—वि० [स०] प्रतिपादन के योग्य । सिद्ध किए जाने योग्य ।

उपपाण—सज्ञा पु० [स०] दे० 'उपपातक' (को०) ।

उपना७—क्रि० घ० [म० उत्पन्न, प्रा० उप्पण] १ उत्पन्न होना ।
उ०—कुधर सहित चढ़ी विसिप, नेगि पठयो सुनि हरि द्विप
गरव गूढ़ उपयो है।—तुलसी ग्र०, पृ० ३६८ । २ जन्म ग्रहण
करना । जनमना ।

उपनागरिका—सज्ञा स्त्री० [स०] अलंकार में वृत्ति अनुयाय का एक
भेद जिसमें कान को मधुर लगनेवाले वर्णों प्राप्ति हैं । इसमें
ट ठ ड ढ को छोड़ 'क' से लेकर म तक सब वर्ण, तथा
अनुसार रहित अक्षर रह सकते हैं । समास इसमें पा तो
न हो और हो भी तो छोटे छोटे । जैसे—कजन, घजन, गजन
हैं अलि अजन हूँ मन रजनहारे।— (शब्द०) ।

उपनाना७—क्रि० म० [हि० 'उपना' का सक० रूप] उत्पादन
करना । पैदा करना ।

उपनाम—सज्ञा पुं० [स० उपनामन्] १ दूसरा नाम । प्रचलित नाम ।
२ पदवी । तख्तलुस । उपाधि ।

उपनाय—सज्ञा पुं० [म०] दे० 'उपनयन' [को०] ।

उपनायक—सज्ञा पुं० [स०] नाटको में प्रधान नायक का साथी या
सहकारी ।

उपनायन—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'उपनयन' ।

उपनायिका—सज्ञा स्त्री० [म०] नाटको में अति नायिका की प्रधान
सखी और सहायिका [को०] ।

उपनासिक—सज्ञा पुं० [स०] नासिका के पास का भाग । नाक का
निकटवर्ती भाग [को०] ।

उपनाह—सज्ञा पुं० [म०] १ सितार की खूँटी जिसमें तार बंधे रहते
हैं । २ कोढ़े या पाव पर लगाने का लेप । मरहम । ३
आँख का एक रोग । विलनी । गुहाजनी । ४ गठरी ।
वडन [को०] ।

उपनाहन—सज्ञा पुं० [स०] १ मरहम या लेप लगाना । २ पलस्तर
करना [को०] ।

उपनिक्षेप—सज्ञा पुं० [म०] १ धरोहर । २ खुली धरोहर । ३
मुहरबंद धरोहर [को०] ।

उपनिधाता—वि० [स० उपनिधातृ] धरोहर रखनेवाला [को०] ।

उपनिधान—सज्ञा पुं० [स०] धरोहर रखना [को०] ।

उपनिधायक—वि० [म०] दे० 'उपनिधाता' [को०] ।

उपनिधि—सज्ञा स्त्री० [स०] [वि० श्रीपनिधि] धरोहर । अमानत ।
उपनिधिभोक्ता—सज्ञा पुं० [स० उपनिधिभोक्तृ] वह मनुष्य जिसने
दूसरे की रखी धरोहर का स्वयं प्रयोग किया हो ।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में ऐसे लोग देश काल के अनुसार
उसका बदला या भोगवैतन देने के लिये वाध्य किए जाते थे ।

उपनिपात—सज्ञा पुं० [स०] कौटिल्य मत से राजा, चोर, आग और

पानी आदि से माल का खराब या नष्ट होना । वि० दे० 'दोष' ।

उपनिपातन—सज्ञा पुं० [स०] १ सहसा घट जाना । २ सहसा
आक्रमण करना [को०] ।

उपनिर्वचक—सज्ञा पुं० [स० उपनिर्वचक] निवचक का सहायक ।
सहायक निवचक [को०] ।

उपनियम—सज्ञा पुं० [स०] १. नियम के प्रतर्गत रहनेवाला छोटा
नियम । २. गौण नियम [को०] ।

उपनिविष्ट—वि० [म०] [सज्ञा उपनिवेश] दूसरे स्थान से प्राप्त
बसा हुआ ।

उपनिविष्ट (सैन्य)—वि० [म०] युध्दक्षेत्र में प्रानुनयी (सैन्य) ।
विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि उपनिविष्ट तथा समान्य (एक
ही ढंग की सड़ाई जाननेवाली) सेना में उपनिविष्ट सेना ही
उत्तम है, क्योंकि उपनिविष्ट को भिन्न भिन्न स्थानों में मड़गा
जाता है और वह छावनी के प्रतिरिक्त भी तैयार कर
सकती है ।

उपनिवेश—सज्ञा पुं० [म०] [वि० उपनिवेशित, उपनिविष्ट] १ एक
स्थान से दूसरे स्थान पर जा बसना । २. अन्य स्थान में
प्राप्त हुए लोगों की बस्ती । एक देश के लोगों को दूसरे देश
में पठादी । कालोनी (प्र०) ।

उपनिवेशित—वि० (स०) दूसरे स्थान से प्राप्त बसा हुआ ।

उपनिवेशी—वि० [स० उपनिवेशिन्] १ उपनिवेश में निवास करने-
वाला । २ विदेश में बस जानेवाला । ३ बसानेवाला [को०] ।

उपनिषद्—सज्ञा स्त्री० [म०] १ पास बैठना । २ आश्रय की
प्राप्ति के लिये गुरु के पास बैठना । ३ वेद की आश्रयों के
ब्राह्मणों के वे प्रतिम भाग जिसमें अत्युपनिषा पञ्चान् प्राप्ता,
परमात्मा आदि का निरूपण रहता है ।

विशेष—कोई कोई उपनिषद् महिमाओं में भी मिलती हैं, जैसे
ईश, जो गुणल यजुर्वेद का ४०वाँ अध्याय माना जाता
है । प्रधान उपनिषद् ये हैं—ईश या वाजसनेय, केन या
तपस्कार, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय,
छांदोग्य, बृहदारण्यक । इनके प्रतिरिक्त कोपीतकी, मंत्रायणी,
और श्वेताश्वतर भी प्रायः मानी जाती हैं । उपनिषदों की
संख्या कोई १८, कोई ३४, कोई ५२ और कोई १०८ तक
मानते हैं पर इनमें से बहुत सी बहुत पीछे की बनी हुई हैं ।
४ वेदग्रन्थ अत्युपनिषद् के ४० संस्कारों में से एक जो गोदान
अर्थात् केशांत संस्कार के पहले होता है । ५ निर्जन स्थान ।
५. धर्म ।

उपनिपादी—वि० [स० उपनिपादिन्] १ गुरु के पास रहनेवाला । २
वशीकृत । वश में लाया हुआ [को०] ।

उपनिष्कर—सज्ञा पुं० [स०] राजपरा । सडक [को०] ।

उपनिष्क्रमण—सज्ञा पुं० [म०] १ बाहर जाना । २ एक संस्कार
जिसमें नवजात शिशु को पहले पहल घर के भीतर से बाहर
निकालते हैं । ३ राजमार्ग । प्रधान सडक [को०] ।

उपनिहित—वि० [स०] उपधान या धरोहर के रूप में रखा
हुआ [को०] ।

उपनीत—वि० [स०] १ लाया हुआ । २ जिसका उपनयन संस्कार
हो गया हो ।

उपनीति—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'उपनयन' [को०] ।

उपनुन्न—वि० [स०] वायु द्वारा धीरे धीरे प्रेरित । हवा से धीरे धीरे
ले जाया गया [को०] ।

उपनृत्य—सज्ञा पुं० [स०] नृत्यशाना । नाचघर [को०] ।

विशेष—प्रधान धातुओं के समान उपधातु भी सात गिनाई गई हैं—सोनामखी, लपामाखी, तूतिया, कांसा, मुदासिख, सिद्धर, शिलाजतु या गेरू (भावप्रकाश) पर किसी किसी के मत से सात उपधातु ये हैं—सोनामाखी, नीलायोया, हरताल, सुरमा, अवरक, मैनसिल और खपरिया।

२ शरीर के रस, रक्त आदि सात धातुओं से बने हुए दूध, चरबी, पसीना आदि पदार्थ।

उपधान—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० उपहित] १. ऊपर रखना या ठहराना। २. वह जिसपर कोई वस्तु रखी जाय। सहारे की चीज।

यौ०—पादोपधान।

३ तक्रिया गडुआ। वाविश। उ०—विविध वसन उपधान तुराई, छोर फेन नम विसद सुहाई।—मानस, २। ६१। ४ मन्त्र जो यज्ञ की ईंट रखते समय पड़ा जाता है। ५ विशेषता। ६. प्रणय। प्रेम।

—सज्ञा पुं० [सं०] १. वालिश। तक्रिया। शिरोपधान। २. एक व्रत। ३. प्रेम। ४. विप [को०]।

उ०—५—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. पादपीठ। पैर रखने की चौकी। २. तक्रिया। ३. गद्दा [को०]।

उपधानीय^१—वि० [सं०] पाम रखने योग्य [को०]।

उपधानीय^२—सज्ञा पुं० तक्रिया। उपवर्ह [को०]।

उपधायी वि० [सं० उपधायिन्] १ तक्रिया की भांति प्रयुक्त। २ तक्रिया का व्यवहार करनेवाला [को०]।

उपधारण—सज्ञा पुं० [सं०] १ ऊपर रखी हुई किसी वस्तु को लगी आदि से खीचना। २ चिंतन। विमर्श [को०]।

उपधावन—सज्ञा पुं० [सं०] १ अनुगमन। २. विचारण। चिंतन। ३. भक्ति। पूजा। अनुगामी। अनुचर [को०]।

उपधि—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० श्रोपधिक] १ जानबूझकर और का और कहना। छल। कपट। २. चक्रया पहिया [को०]। ३. (बौद्ध मत के अनुसार) आधार या नींव [को०]।

उपाधिक—वि० (सं०) १ धूर्त। विश्वासवादी। २ फिडकी और धूर्तता से काम लेनेवाला [को०]।

उपधियुक्त—सज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह माल जो असली या खालिस न हो। मिलावटी माल।

उपधूपित—वि० [सं०] १ धूप क धुएँ में सुवासित। २. मृत्यु के निकट पहुँचा हुआ। ३. कठिन और असह्य पीड़ा से पीड़ित [को०]।

उपधूमित योग—सज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में वह योग जिसमें यात्रा तथा और शुभ कर्मों का निषेध है, जैसे प्रत्येक दिन का पहला पहर ईशान कोण की यात्रा के लिये, दूसरा पूर्व के लिये, तीसरा अग्निकोण के लिये, चौथा दक्षिण के लिये उपधूमित है।

उपधृति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ किरण। २. ग्रहण। पकड़ना [को०]।

२-१०

उपध्मान—सज्ञा पुं० [सं०] १. ओठ। साँस लेना। मुँह से फूँकना [को०]।

उपध्मानी—वि० [सं० उपध्मानिन्] हुवा करनेवाला। जोर से फूँकनेवाला [को०]।

उपध्मानीय—सज्ञा [सं०] 'प' वर्ग अर्थात् प, फ, ब, भ, म, के पहले आनेवाला महाप्राण विसर्ग जिसका उच्चारण ओठ से होता है [को०]।

विशेष—'प' और 'फ' के पहले आनेवाला विसर्ग महाप्राण हो जाता है, और ब, भ, म, के पहले आनेवाला विसर्ग 'रेफ' या 'श्रोत्व' में बदल जाता है।

उपध्वस्त—वि० [सं०] १ नष्ट या बरबाद किया हुआ। २ मिश्रित। घुला मिला [को०]।

उपनद—सज्ञा पुं० (सं० उपनन्द) १ ब्रज के अधिकारी नद के छोटे भाई। २. वसुदेव के एक पुत्र। ३. गर्गसहिता के अनुसार वह जिसके पास पाँच लाख गाएँ हो।

उपनक्षत्र—सज्ञा पुं० [सं०] सहायता नक्षत्र। गोढ नक्षत्र या तारा [को०]।

उपनख—सज्ञा पुं० [सं०] अँगुली के नखों में होनेवाला एक प्रकार का रोग। गलका [को०]।

उपनगर—सज्ञा पुं० [सं०] नगर का बाहरी भाग। नगर के ग्रामपास बसा हुआ हिस्सा [को०]।

उपनत—वि० [सं०] १ पास आया हुआ। २. पास लाया हुआ। ३. प्राप्त। ४. उपस्थित। ५. विनत। नम्र। ६ (शरणागत के लिये) आश्रित। ७. पास का या सनिकट का (समय या स्थान) [को०]।

उपनति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. समीप आना। २. नमन। नमस्कार। ३. प्रणय [को०]।

उपनद्ध—वि० [सं०] बँधा हुआ। २. नधा हुआ। नद्ध।

उपनना^(१)—क्रि० घ० [सं०] पंदा होना। उत्पन्न होना। उपजना। उ०—वन वन वृच्छ न चदन होई, तन तन विरह न उपन सोई।—जायसी (शब्द०)।

उपनय—सज्ञा पुं० [सं०] १ समीप ले जाना। २. बालक को गुरु के पास ले जाना। ३. उपनयन संस्कार। ४. न्याय में वाक्य के चौथे अवयव का नाम। कोई उदाहरण लेकर उस उदाहरण के धर्म को फिर उपसहार रूप से साध्य में घटाना। जैसे,—उत्पत्ति धर्मवाले अनित्य हैं, जैसे, घट (उत्पत्ति धर्मवाला होने से) अनित्य है, वैसे ही शब्द भी अनित्य हैं (उपनय)। उपनय वाक्य के चिह्न 'वैसे ही', 'उसी प्रकार' आदि शब्द हैं। 'उपनय' को 'उपनीति' भी कहते हैं।

उपनयन—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० उपनीत, उपनेता, उपनेतव्य] १. निकट लाना। पास ले जाना। २. यज्ञोपवीत संस्कार। व्रतवध। जनेऊ।

उपनहन—सज्ञा पुं० [सं०] १ वह कपड़ा जिम्मे कोई चीज बँधी हो। २. एक दूसरे को बंधनयुक्त करना [को०]।

उपदर्शक—वि० [स०] १ राह बतानेवाला । २ द्वाररक्षक । ३ साक्षी । देखनेवाला [को०] ।

उपदर्शन—सञ्ज्ञा पुं० [स०] टीका । भाष्य । व्याख्या [को०] ।

उपदा—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ भेंट जो बड़े लोगो को दी जाय । नजर । २ धूस । उत्कोच (को०) ।

उपदाग्राहक—वि० [स०] धूम लेनेवाला । रिशवत लेनेवाला । रिशवती ।

विशेष—चाणक्य ने लिखा है कि न्यायाधीश के चरित्र की परीक्षा के लिये खुफिया पुलिस का कोई आदमी उससे जाकर कहे कि एक मेरा मित्र राज्यापराध में फँस गया है । आप कृप्यकर उसको छोड़ दीजिए और यह धन ग्रहण कीजिए । यदि वह उपदा ग्रहण कर ले तो राज्य उसको 'उपदाग्राहक' समझकर राज्य के बाहर निकाल दे (को०) ।

उपदाता—वि० [स० उपदातृ] दान करनेवाला [को०] ।

उपदान—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ भेंट । २ घम । उत्कोच [को०] ।

उपदानक—सञ्ज्ञा पुं० [स०] दे० 'उपदान' [को०] ।

उपदानवी—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ वृषपर्वी दानव की पुत्री और दुष्यत की माता का नाम । २ वैश्वानर की कन्या का नाम [को०] ।

उपदिग्ध—वि० [स०] १ दिया हुआ । ढका हुआ । २ ध्वरेदार [को०] ।

उपदिशा—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] दो दिशाओं की बीच की दिशा । कोण ।

उपदिष्ट—वि० [स०] १ जिसे उपदेश दिया गया हो । २ जिसके विषय में उपदेश दिया गया हो । जिसके विषय में कुछ कहा गया हो । जापित । ३. जिसे दीक्षा दी गई हो (को०) । ४. निर्दिष्ट । निर्देश दिया हुआ (को०) ।

उपदी—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] वंशक । वंश नामक पौधा [को०] ।

उपदीका—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ एक लघु कीट । एक प्रकार का चीटा [को०] ।

उपदीक्षी—वि० [स० उपदीक्षिन्] १ किसी आरम्भ या अन्य धार्मिक कार्यों में समिलित होनेवाला । २ निकट सवधी [को०] ।

उपदृष्टि—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] दृश्य वस्तु । प्रत्यक्ष विषय [को०] ।

उपदेव—सञ्ज्ञा पुं० [स०] यक्ष, गधर्व किन्नर आदि छोटे देव [को०] ।

उपदेवता—सञ्ज्ञा पुं० [स०] दे० 'उपदेव' [को०] ।

उपदेश—सञ्ज्ञा पुं० [स०] [वि० उपदेश्य, उपविष्ट, उपदेशी, औपदेशिक] १ शिक्षा । सीख । नसीहत । हित की बात का कथन । २ दीक्षा । गुरुमंत्र ।

उपदेशक—सञ्ज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० उपदेशिका] उपदेश करनेवाला । शिक्षा देनेवाला । अच्छी बात बतलानेवाला । उ०—इकबाल बड़ा उपदेशक है, मन बातों से मोह लेता है । गुप्तार का गाजी बन तो गया, किंदार का गाजी बन न सका ।—वागैदरा ।

उपदेशना—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ उपदेश का भाव या अवस्था । २ सीख । ३ नियम या सिद्धांत [को०] ।

उपदेशन—सञ्ज्ञा पुं० [स०] उपदेश की क्रिया । शिक्षा देना [को०] ।

उपदेशना—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ सिद्धांत या नियम । २ उपदेश । शिक्षा [को०] ।

उपदेशी—वि० [स० उपदेशिन्] [स्त्री० उपदेशिनी] उपदेश देनेवाला । शिक्षा देनेवाला । उ०—कहूँ गो गुन पाऊँ उदेशी, भगम पय कर गुन नदशी ।—जायसी (शब्द०) ।

उपदेश्य—वि० [म०] १ उपदेश के योग्य । जिसे उपदेश देना उचित हो । २. जिस (बात) का उपदेश करना उचित हो । मिथ्याने योग्य (बात) ।

उपदेष्टा—सञ्ज्ञा पुं० [म० उपदेष्टृ] [स्त्री० उपदेष्ट्री] उपदेश देनेवाला शिक्षक ।

उपदेस(उ)—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] १ 'उपदेश' । उ०—नाग न उर उपदेसु जरणि कहैउ तिव बार बहु ।—मानस, ५१ ।

उपदेसना(उ)—वि० स० [स० उपदेश] उपदेश करना । शिक्षा देना । नसीहत करना । उ०—द्विरदहि बहुरि बुनाइ नरेमा, सोरि गयद यूव उपदेमा ।—सजल (शब्द०) ।

उपदेहिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] दीमक ।

उपदोह—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ गाय का बच्चा । गाय की छोटी । २ वह पाय जिसमें दूध दुदा जाता है [मे०] ।

उपद्रव—सञ्ज्ञा पुं० [म०] [वि० उपद्रवी] १ उत्पान । प्राकस्मिक बाधा । हलचल । विप्लव । २ ऊँचम । दगा । फसाद । गड़बड़ ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—करना ।—चढ़ा करना ।—पचाना ।

३ हिन्दी प्रधान रोग के बीच में होनेवाले दूसरे विकार या पीड़ाएँ जैसे,—ज्वर में प्यास मिर की पीडा प्रादि । जैसे,—यह दगा दो, दाढ़, प्रादि सब उपद्रव शांत हो जायेंगे ।

उपद्रवी—वि० [स० उपद्रविन्] १ उपद्रव मचानेवाला । हनवल मचानेवाला । दगा करनेवाला । ऊँचम मचानेवाला । २. फसादी । बगैडिया ।

उपद्रष्टा^१—वि० [स० उपद्रष्टृ] देखनेवाला । दर्शन [को०] ।

उपद्रष्टा^२—सञ्ज्ञा पुं० गमाह । साक्षी [को०] ।

उपद्रुत—वि० [स०] १. उपद्रवग्रस्त । जहाँ या जिसपर उपद्रव हुआ हो । २ (ज्योतिष के अनुसार) ग्रहणयुक्त [को०] ।

उपद्वार—सञ्ज्ञा पुं० [स०] गढ़े द्वार के प्रतिरक्त उना हुआ छोटा दरवाजा । लघु द्वार [को०] ।

उपद्वीप—सञ्ज्ञा पुं० [स०] छोटा द्वीप [को०] ।

उपघरना(उ)—क्रि० प्र० [स० उपघार, अपनी और सीचना] ग्रहण करना । अंगीकार करना । अपनाना । शरण में लेना । सहारा देना । उ०—जिनको सईं उपघरा, तिन्ह वाँका नहि कोई । सब जग रूसा का करै राखन हारा सोई ।—दादू (शब्द०) ।

उपधर्म—सञ्ज्ञा पुं० [स०] मुख्य धर्म के अतिरिक्त गौण या अनुवर्ध धर्म [को०] ।

उपधा—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] सञ्ज्ञा १ छल । कपट । २. राजा द्वारा मंत्री, पुरोहित प्रादि की परीक्षा । ३ व्याकरण में किसी शब्द के अंतिम अक्षर के पहले का अक्षर । ४ उपाधि ।

उपधातु—सञ्ज्ञा पुं० [स०] २ अप्रधान धातु जो या तो लोहे, तबे आदि धातुओं के विकार या मेल हैं या उनके योग से बनी हैं अथवा स्वतंत्र धातुओं से निकलती हैं ।

उपजीविका—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ जीविका या साधन । उपजीवन ।
२. गोजी [को०] ।
उपजीवी—वि० [सं० उपजीविन्] [स्त्री० उपजीविनी] दूसरे के
आधार पर रहनेवाला । दूसरे के सहारे पर गुजर
करनेवाला ।
उपजीव्य^१—वि० [सं०] १ जीविका या रोजी देनेवाला । २ सखण
देनेवाला [को०] ।
उपजीव्य^२—सज्ञा पुं० १. आश्रयदाता । सरसक । २ आवश्यक
वस्तुएं प्राप्त करने का साधन । ३ आश्रय । आधार [को०] ।
उपजुष्ट—वि०, [सं०] १-प्राप्त । गृहीत । २ सेवित [को०] ।
उपजोष—सज्ञा पुं० [सं०] १ इच्छा । २ प्रेम । ३ उपनोग । ४.
सेवन [को०] ।
उपजोषण^१—सज्ञा पुं० [सं०] ३० 'उपजोष' [को०] ।
उपजोषण^२—क्रि० वि० [सं०] १ स्वेच्छया । इच्छानुसार । २ हर्ष-
पूर्वक । ३ चुपचाप [को०] ।
उपज्ञा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ आत्मोपाजित ज्ञान । सहज ज्ञान ।
प्रकृतिदत्त प्रतिभा । २ आविष्कार । ३ नए सिरे से किसी
नई वस्तु का निर्माण [को०] ।
उपज्ञात—वि० [सं०] १ बिना किसी दूसरे के बताए स्वतः ज्ञात ।
अपने आप जाना हुआ । २ जिसे पहले जाना नहीं गया । नए
सिरे से निर्मित । आविष्कृत [को०] ।
उपटन^१—सज्ञा पुं० [हिं०] ३० 'उवटन' ।
उपटन^२—सज्ञा पुं० [सं० उत्पतन = ऊपर उठना] अक या चिह्न जो
आघात पहुँचाने, दवाने या लिखने से पड़ जाय । निशान ।
साँट ।
उपटना—क्रि० अ० [सं० उत्पतन = ऊपर उठना] १ आघात, दाव
या लिखने का चिह्न पड़ना । निशान पड़ना । साँट पड़ना ।
जैसे, (क) इस स्याही से लिखे अक्षर उपटे नहीं हैं । (ख)
उसने ऐसा तमाचा मारा कि गाल पर उँगलियाँ (उँगलियों
के चिह्न) उपट आईं । २ उखड़ना । (ग) मनमोहन की
वतियों में छूटी उट्टी यह वेनी दिखा पड़ी है ।—पद्माकर
ग्र०, पृ० १०१ ।
उपटा^१—सज्ञा पुं० [सं० उत्पतन = ऊपर आना] १ पानी की
वाढ़ । करार पर पानी का चढ़ना । २ ठोकर ।
उपटा^२—क्रि० सं० [सं० उत्पाटन] उखड़वाना । उखाड़ना । उ०—
द्विद को दत्त उपटाय तुम लेत हो उहै बल आज काहे न
सँभारयो २—सूर० (शब्द०) ।
विशेष—यह प्रयोग उन प्रयोगों में से है जहाँ सकर्मक रूप अक-
र्मक के स्थान पर लाया जाता है ।
उपटाना^१—क्रि० सं० [सं० उद्धर्तन, प्रा० उघट्टण] उवटन लगवाना ।
उपटारना^१—क्रि० सं० [सं० उत्पाटन] उच्चाटन करना ।
उठाना । हटाना । उ०—कोकिल हरि को बोल नुनाव,
मधुवन तें उपटारि श्याम को यह व्रज लै करि आव ।—नूर
(शब्द०) ।
उपट्टना^१—क्रि० अ० [सं० उत्पतन] ऊपर की ओर चढ़ना । ऊपर की

ओर उठना । उ०—दोड फौज निजर दिठाल मिल्लि, उपट्ट
सिधु जनु, लहरि जल्लि ।—पृ० रा०, १। ४४८ ।
उपडना—क्रि० अ० [सं० उत्पाटन प्रा० उप्पाडन] १ उखड़ना ।
२ उपटना । अकित होना । निशान पड़ना । उ०—देखा कि
उन चरण चिह्नों के पास एक नारी के पाँव भी उपडे हुए
हैं ।—लल्लू० (शब्द०) ।
उपडौकन—सज्ञा पुं० [सं०] उपहार । उ०—सकल को उपडौकन यादि
ले, उचित है चलना मयुरापुरी ।—प्रि० प्र० १२ ।
उपडवाना^१—क्रि० म० [हिं० 'उपडना' का प्रे० रूप] उखड़वाना ।
उत्पाटन कराना [को०] ।
उपडाना—क्रि० सं० [हिं० 'उपडना' क्रिया का प्रे० रूप] ३०
'उपडवाना' [को०] ।
उपतपन—वि० [म० उप+तपन] कष्टकारक । दुःख देनेवाला
[को०] ।
उपतप्न—वि० [सं०] १ व्यथित । दुःखी । २ जना हुआ या भुनसा
हुआ । ३ रोगी [को०] ।
उपतप्ता^१—वि० [सं० उपतप्त] १. टुट या व्यथा पहुँचानेवाला ।
२ जलानेवाला [को०] ।
उपतप्ता^२—सज्ञा पुं० १ असाधारण गर्मी या उष्णता । २ गर्मी या
जलन का कारण । ३ एक प्रकार का रोग [को०] ।
उपतल्प—सज्ञा पुं० [सं०] १ मकान का ऊपरी तल्ला । भवन की
छत पर बना हुआ कक्ष या कमरा । २ बैठने की चौकी [को०] ।
उपताप—सं० पुं० [सं०] १ गर्मी । उष्णता । ऊमस । २ व्यथा ।
पीडा । मनस्ताप । ३ दुःख । दुर्दैव । ४ बीमारी । आघात ।
चोट । ५ शीघ्रता । त्वरा [को०] ।
उपतापक—वि० [सं०] १ जलानेवाला । दुःखद । ३ कष्टसहिष्णु
[को०] ।
उपतापन—सज्ञा पुं० [सं०] १ कष्ट पहुँचाना । २ ताप देना ।
तपाने की क्रिया [को०] ।
उपतापी—वि० [सं० उपतापिन्] ३० 'उपतापक' [को०] ।
उपतारक—वि० [म०] सीमा या तट को लाँघकर बहता हुआ [को०] ।
उपतिष्य—सज्ञा पुं० [सं०] १ आपत्तेपा नक्षत्र । २ पुनर्वसु नक्षत्र [को०] ।
उपतुला—सज्ञा स्त्री० [म०] वास्तु विद्या (घर बनाना) में खभे के
नौ बराबर नागों में तीसरा भाग ।
उपत्यका—सज्ञा स्त्री० [सं०] पर्वत के पास की भूमि । तराई ।
उपदंश—सज्ञा पुं० [सं०] १ गरमी । आतंशक । फिरंग रोग । २.
मद्य के ऊपर बचनेवाली वस्तु । गजक । चाट । उ०—
राधिका हरि अतिथि तुम्हारे, अघर सुधा उपदश सीक शुचि,
विधु-पूरन-मुखवास मचारे ।—सूर (शब्द०) । ३. वैद्यक के
अनुसार एक प्रकार का रोग जिसमें पुरुष की लिंगेन्द्रिय पर
नाखन या दाँत लगने के कारण घाव हो जाता है ।
उपदंशित—वि० [सं०] प्रसंग । अवतरण । मप्रसंग कही गई (वात)
[को०] ।
उपदंशी—वि० [सं० उपदंशिन] उपदश रोग का रोगी । जिसे
उपदश हुआ हो [को०] ।

कैसे जग को अपना सकती, कैसे उसके मन को जँचती ।—
प्रलय सृजन पृ० १२ ।

विशेष—व्यक्त चेतना को दो भागों में विभाजित किया जाता है ।—केंद्रीय भाग और सीमांत भाग अथवा चेतना की कोर । सीमांत भाग या चेतना की कोर का ही नाम उपचेतन या अवचेतन है । इस भाग में विचार भाव और अनुभव रहते हैं । जिनके विषय में हमें अभी, इस स्थल पर तो कोई ज्ञान नहीं है, पर चेष्टा करते ही हमें उसका ज्ञान हो सकता है ।

उपचेतना—संज्ञा स्त्री० [सं०] अतः संज्ञा । अतःचेतना । ऊपरी चेतना के भीतर स्थित चेतन शक्ति [को०] ।

उपचेय—वि० [सं०] इकट्ठा करने योग्य । संग्रह करने योग्य [को०] ।

उपच्छेद—संज्ञा पुं० [सं० उपच्छेद] १ फुसलाना । बहकाना । २ मेल करना । ३ आवरण । ढक्कन । ४ प्रार्थना [को०] ।

उपच्छेदन—संज्ञा पुं० [सं० उपच्छेदन] १ फुसलाने या बहलाने की क्रिया या भाव । २ निमित्त करना । ३ अपनी राय में मिलाना [को०] ।

उपच्छेदित—वि० [सं० उपच्छेदिन] १ लालच दिखाकर फुसलाया हुआ । २ अपने मत में मिलाया हुआ [को०] ।

उपच्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] ढक्कन । आवरण । चदर [को०] ।

उपच्छेदन—वि० [सं०] ढका हुआ । छिपाया हुआ [को०] ।

उपज—संज्ञा स्त्री० [सं० उत्त + पद् या उत्पाद्य प्रा० उपज्ज] १ उत्पत्ति । उद्भव । पैदावार । जैसे, इस खेत की उपज अच्छी है ।

विशेष—इसका प्रयोग बड़े जीवों के सब्ध में नहीं होता, विशेषकर वनस्पति के सब्ध में होता है ।

२ मन में आई हुई नई बात । नई उक्ति । उद्भावना । सूझ । जैसे, यह सब कवियों की उपज है । ३ मन में गढ़ी हुई बात । मनगढ़त ।

मुहा०—उपज की लेना = नई उक्ति निकालना । ४ गाने में राग की सुंदरता के लिये उसमें बँधी हुई तानों के सिवा कुछ तान अपनी ओर से मिला देना । मितार बजानेवाले इसे मिजराव कहते हैं । उ०—घरे अघर उपज उपजे लेत हैं गिरिधारि । —सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—लेना ।

उपजगती—संज्ञा स्त्री० त्रिष्टुप् छंद का एक भेद या प्रकार, जिसके तीन चरणों में ग्यारह की जगह बारह वरुण होते हैं [को०] ।

उपजत(७)—संज्ञा स्त्री० [हि०] उपज । पैदावार [को०] ।

उपजन—संज्ञा पुं० [सं०] १ वृद्धि । सन्धन । २ अनुभव । सब्ध । ३. किसी शब्द के निर्माणार्थ एक अक्षर और जोड़ देना । ४. संयुक्त वरुण । ५. शरीर । देह [को०] ।

उपजनन—संज्ञा पुं० [सं०] १ उत्पन्न करना । पैदा करना । प्रजनन [को०] ।

संपजना—क्रि० अ० [सं० 'उत्पद्यते', विकरयुक्त 'उत्पद्य' से प्रा० उपज्ज, उपज्ज, उपज + ना] उत्पन्न होना । उगना । उ०—जेहि जल उपजे सकल सरास, सो जल भेद न जान कवीरा ।

—कवीर (शब्द०) । (ख) खेत में उपजें सब कोई बाप, घर में उपजे घर बहि जाय ।—पहेली (शब्द०) । बिनसइ उपजइ ज्ञान जिमि पाइ कुसंग सुसंग ।—मानस । ८ । दो० १५ ।

विशेष—गद्य में इस शब्द का प्रयोग बड़े जीवों के लिये नहीं होता है । जड़ और वनस्पति के लिये होता है । पर पद्य में इसका व्यवहार सबके लिये होता है । उ०—जिमि कुपूत के उपजे कुल सद्धर्म नसाहि ।—मानस, ४ । दो० १५ ।

उपजप्त—वि० [सं०] १ कानाफूसी से बहकाया हुआ । २ कान में घीरे से बुद्ध भेद की बात कहकर विद्रोह के लिये उकसाया गया [को०] ।

उपजाऊ—वि० [हि० उपज + आऊ (प्रत्य०)] जिसमें अच्छी उपज हो । जिसमें पैदावार अच्छी हो । उर्वर । जरखेज ।

यौ०—उपजाऊ भूमि ।

उपजाऊपन—संज्ञा पुं० [हि० उपजाऊ + पन] उर्वरता । उपजाऊ होने का भाव [को०] ।

उपजात—वि० [सं०] १ उत्पन्न किया हुआ । २ ऋद्ध किया हुआ । आविष्ट किया हुआ [को०] ।

उपजाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वे वृत्त जो इद्रवच्चा और उपेद्रवच्चा तथा इद्रवशा और वशस्थ के मेल से बनते हैं । इद्रवच्चा और उपेद्रवच्चा के मेल से १४ वृत्त बनते हैं—कीर्ति, वाणी, माना, शाला, हंसी, माया, जाया, बाला, आर्वा, भद्रा, प्रेमा, रामा, ऋद्धि और सिद्धि । कहीं कहीं शार्दूलविक्रीडित और स्रग्वरा के योग से भी उपजाति बनती है ।

उपजाना—क्रि० सं० [हि० उपजाना का सकर्मक रूप] उत्पन्न करना । पैदा करना ।

विशेष—गद्य में इसका प्रयोग विशेषतः जड़ और वनस्पति के लिये होता है, बड़े जीवों के लिये नहीं । पर पद्य में सबके लिये होता है । उ०—(क) भलेउ पोच सब विधि उपजाए । मानस १ । दो० ६ । (ख) पिय पिय रटै पपिहुरा रे हिय दुख उपजाव ।—विद्यापति, पृ० ५४४ ।

उपजाप—संज्ञा पुं० [सं०] १. रहस्य की बात जो घीरे घीरे कान में कही जाय । २. विरोध का बीज बोना । ३. भडकाना । ४. प्रयत्न । अलगाव [को०] ।

उपजापक—वि० [सं०] १ नायक या नेता के कान में भेद की बात डालकर उसे विद्रोह के लिये भडकानेवाला । २. देशद्रोही । विश्वासघात करनेवाला [को०] ।

उपजिह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जिह्वा के मूल में स्थित छोटी जिह्वा । लोला । लोकर । घटी । जीम का भीतरी या वर्धित भाग [को०] ।

उपजिह्विका—संज्ञा स्त्री० [सं०] २० 'उपजिह्वा' [को०] ।

उपजीवक—वि० [सं०] १ किसी उद्यम से जीविका उपार्जित करनेवाला । २. आश्रित । ३. अनुचर । सेवक [को०] ।

उपजीवन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उपजीवी, उपजीवक] १ जीविका । रोजी । दूसरे का सहारा । निर्वाह के लिये दूसरे का अवलंब ।

की क्रिया । २. इंद्रियों का अपने अपने काम में असमर्थ होना । अशक्ति । ३. रोग । व्याधि । ४. इन पाँच पातकों का समूह-उपपातक, जातित्रयीकरण, सकरीकरण, अपात्रीकरण, मलिनीकरण ।—स्मृति । ५. आघात । प्रहार (को०) । ६. आक्रमण । हमला (को०) ।

उपघातक—वि० [स०] [खी० उपघातिका] १ नाशकारक । २ पीडा देनेवाला ।

उपघातो—वि० [स० उपघातिन्] [खी० उपघातिनी] १ नाशकारी । १ पीडा पहुँचानेवाला ।

उपघ्न—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ आश्रय । सहारा । २ शरण (को०) ।

उपच—सञ्ज्ञा खी० दे० 'उपज' । उ०—क्या आखिर हुआ क्या, फिर कोई उपच की ली । सूर०, पृ० १३ ।

उपचय—सञ्ज्ञा पुं० [स०] [वि० उपचयित, उपचित] १ वृद्धि । उन्नति । बढ़ती । २ संघम । जमा करना । ३ कूडली में लग्न से तीसरा, छठा, दसवाँ या ग्यारहवाँ स्थान । ४ चुनना । चयन (को०) । ५ ढेर । राशि । अवार (को०) ।

उपचर—सञ्ज्ञा पुं० [स०] उपचार । दवा । इलाज (को०) ।

उपचरण—सञ्ज्ञा पुं० [स०] [वि० उपचारित, उपचर्य] १ पास जाना । पहुँचना । २ सेवा पूजा करना । ३ चिकित्सा करना । शुश्रूषा करना (को०) ।

उपचरित—वि० [स०] १ सेवित । पूजित । लक्षण से जाना हुआ ।

उपचर्या—सञ्ज्ञा खी० [स०] १. सेवा (रोगी की) । २. चिकित्सा ।

उपचार्यो—वि० [स० उपचार्यिन्] उपचय करनेवाला । बढ़ानेवाला । (को०) ।

उपचार्य—पुं० [स०] १ यज्ञ की अग्नि । यज्ञाग्नि के संग्रह करने का कूड (को०) ।

उपचार—सञ्ज्ञा पुं० [स०] [वि० उपचारक, उपचारी, उपचारित, श्रोपचारिक] १ व्यवहार । प्रयोग । विधान । २. चिकित्सा । दवा । इलाज । उ०—ग्रह ग्रहीत पुनि वात वस, तेहि पुनि वीछी मार । ताहि पिषाड्य बालनी, कहहु कौन उपचार ।—मानस, २ । दो० १८० । ३. सेवा । तीमारदारी । ४. धर्म-नुष्ठान । ५. पूजन के अग या विधान जो प्रधानतः सोलह माने गए हैं जैसे,—प्रावाहन, आसन, अर्घपाथ, आचमन, मधुपर्क, स्नान, वस्त्रांतरण, यज्ञोपवीत, गद्य, (चदन), पुष्प, धूप दीप, नैवेद्य, ताबूल, परिक्रमा, वदना । उ०—कै पूजन को उपचार लै चाहति मिलन मन सोहुई ।—भारतेंदु ग्रं०, भाग १, पृ० ४५५ ।

यो—घोड़ेशपचार ।

६ किसी को समुष्ट करने के लिये उसके मुँह पर झूठ बोलना । खुशामद । ७ घूस । रिश्वत । ८ एक प्रकार की सधि जिसमें विसर्ग के स्थान पर श या स हो जाता है जैसे,—निश्छल से निश्छल । नि सन्देह से निस्सदेह । ९ सामवेद का एक परिशिष्ट ।

उपचारना—क्रि० सं० [स० उपचार] १. व्यवहार में लाना । काम में लाना । २. विधान करना । उ०—घर घर तें आई

ब्रजसुंदरि मगल साज सँवारे । हेम कलस सिर पर धरि पूरन काम मत्र उपचारे ।—सूर० (शब्द०) ।

उपचारक^१—वि० [सं०] [खी० उपचारिका] १ उपचार करनेवाला । सेवा करनेवाला । २. विधान करनेवाला ।

चिकित्सा करनेवाला । दवा करनेवाला ।

उपचारक^२—सञ्ज्ञा पुं० [स०] आजिजी । विनीतता । नम्रता (को०) ।

उपचारच्छल—सञ्ज्ञा पुं० [स०] न्याय में विकल्प या विरुद्ध कार्य के निदर्शन द्वारा सद्भाव या अभिप्रेत अर्थ का निषेध करना । जैसे,—वादी ने कहा कि 'गद्दी से ठुकुम हुआ'; इस पर प्रतिवादी कहे कि 'गद्दी जड़ है, वह कैसे ठुकुम दे सकती है?' तो यह उसका उपचारच्छल है ।

उपचारछल—सञ्ज्ञा पुं० [स०] वादी के कहे वाक्य में जान बूझकर अभिप्रेत अर्थ से भिन्न अर्थ की कल्पना कर दूषण निकालना, जैसे,—किसी ने कहा कि 'ये नव (नौ) कवल हैं' इसपर दूसरा कहे कि 'वाह ये नए कहा हैं' ।

उपचारना—क्रि० सं० [स० उपचार से नाम०] १. व्यवहार में लाना । काम में लाना । २. विधान करना । उ०—घर घर ते आई ब्रजसुंदरी मगल साज सँवारे, हेम कलस सिर पर धरि पूरन काम मत्र उपचारे ।—सूर (शब्द०) ।

उपचारी—वि० [स० उपचारिन्] [वि० खी० उपचारिणी] १. उपचार करनेवाला । सेवा करनेवाला । २. चिकित्सा या इलाज करनेवाला ।

उपचार्य^१—वि० [स०] १ उपचार या सेवा के योग्य । २. चिकित्सा के योग्य ।

उपचार्य^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चिकित्सा ।

उपचित^१—वि० [स०] १. बढ़ा हुआ । समृद्ध । २. सचित । इकट्ठा । ३. शक्तिमान् (को०) । ४. ढका हुआ । आवरण में लिपटा हुआ (को०) । ५. जला हुआ । दग्ध (को०) ।

उपचिति^२—सञ्ज्ञा खी० [स०] १. संग्रह । राशि । २. वृद्धि । ३. प्रतिष्ठा । ४. लाभ (को०) ।

उपचित्र—सञ्ज्ञा पुं० [स०] एक वर्ण्य समवृत्त जिसके विपम चरणों में तीन सगण और एक लघु तथा एक गुरु हो एव सम चरणों में तीन भगण और दो गुरु हो । जैसे,—कहणानिधि माधव मोहना । दीनदयाल सुनो हमारी जू । कमलापति यादव सोहना । मैं शरणागत हों तुम्हारी जू ।—छंद०, पृ० २६६ ।

उपचित्रा—सञ्ज्ञा खी० [सं०] १. चित्रा नक्षत्र के पास के नक्षत्र, हस्त और स्वाती । २. दती वृक्ष । ३. मूसाकानी का पौधा । ४. १६ मात्राओं का एक छंद जिसमें आठ मात्रा के बाद एक गुरु होता है और श्रुत में भी गुरु होता है । यह एक प्रकार की चौपाई है । जैसे, मोरी सुनु चित द रघुवीरा, कह दायी मो पै बलवीरा ।—छंद०, पृ० ४५ ।

उपचूलन—सञ्ज्ञा पुं० [स०] गर्म करना । जलाना (को०) ।

उपचेतन—सञ्ज्ञा पुं० [स० उपचेतना] मन का एक भाग । चेतन और अचेतन से भिन्न मानस के बीच की एक अवस्था । उ०—यह क्षितिज पार के स्वर्ण स्वप्न, यह कला अछूती उपचेतन ।

दुःख । २ क्लेशो का कारण (को०) । उ०—इस प्रकार समाहित, परिशुद्ध, पर्यवदात, निर्मल विगत उपम्लेश चित से पूर्वभय की अनुसृष्टि का ज्ञान प्राप्त किया ।—हिंदू० सम्प्रदाय —२४० ।

उपववण—सं० पुं० [सं०] वीणा वाद्य की ध्वनि (को०) ।

उपववाण—सज्ञा पुं० [सं०] देखो 'उपववण' (को०) ।

उपक्षय—सज्ञा पुं० [सं०] धीरे धीरे होनेवाला क्षय । क्रमशः क्षीण होना (को०) ।

उपक्षेप—सज्ञा पुं० [सं०] १ अग्निनय के आरंभ में नाटक के समस्त वृत्तांत का संक्षेप में कथन । २ आक्षेप । ३ आरंभ (को०) । ४ चर्चा (को०) । ५ फेंकना । उल्लेख या चर्चा (को०) ।

उपक्षेपण—सज्ञा पुं० [सं०] १ फेंकने की क्रिया या भाव । २ आक्षेप या कटाक्ष करना । ३ संकेत । ४ उपेक्षा । ५ शूद्र का अन्न पकाने के लिये ब्राह्मण के घर देना (को०) ।

उपखड—सज्ञा पुं० [सं० उपखण्ड] १ खड का लघु खड । २ किसी धारा अथवा उपधारा का छोटा भाग ।

उपखान(०)—दे० 'उपख्यान' । उ०—यह उपखान सांच है भाई ।—नद० ग्र०, पृ० १२७ ।

उपगता—सज्ञा पुं० [सं० उपगन्तृ] १ पहुँचनेवाला । २ स्वीकार करनेवाला । ३ जानकार । जाननेवाला । ४ ज्ञान रखनेवाला (को०) ।

उपगत—वि० [सं०] १ प्राप्त । उपस्थित । सामने आया हुआ । २ ज्ञात । जाना हुआ । ३ स्वीकार किया हुआ । अगीकार किया हुआ । ४ जो हुआ हो । घटित (को०) । ५ मिला हुआ । प्राप्त (को०) । ६ गया हुआ (को०) । ७ दिवगत । मृत (को०) ।

उपगति—सज्ञा स्त्री [सं०] १ प्राप्ति । स्वीकार । २ ज्ञान ३ पास जाना । समीप गमन (को०) ।

उपगम—सज्ञा पुं० [सं०] १ पाम जाना । २ परिचय । ज्ञान । ३ प्राप्ति । ४ समीप । ५ साथ । समागम । ६ अनुसृष्टि । ७ वचन । वादा । ८ स्वीकृति । ९ सपन्न करना (को०) ।

उपगमन—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० उपगन्तृ] १ पास जाना । २ स्वीकार । ३ ज्ञान । ४ जाना । गमन करना (को०) ।

उपगाता—सज्ञा पुं० [सं० उपगातृ] यज्ञ के ऋत्विजो में से एक, जो गाने में उद्गाता का साथ देता है ।

उपगामी—वि० [सं० उपगामिन्] जो उपगमन करे (को०) ।

उपगार(०)—सज्ञा पुं० [सं० उपकार = सहायता, प्रा० उवयार, भलाई हित करना] दे० 'उपकार' उ०—दादू सतगुरु सहज में, कीया वह उपगार, निरघन धनवत करि लिया, गुरु मिलिया दातार ।—दादू० पृ० २ ।

उपगारी(०)—वि० [सं० उपकारी, प्रा० उवपार] दे० 'उपकारी' (को०) ।

उपगिरि^१—सज्ञा पुं० [सं०] बाहरी शृंखला या उपत्यका । बाह्य शृंखला ।

विशेष—इस चोईई में फँसे पहाड पहाड़ियाँ नीचे से ऊपर तीन

दर्जों में बाँटे जाते हैं, जिन्हें क्रम से बाहरी शृंखला, भीतरी शृंखला और गर्मशृंखला अथवा उपत्यका, छोटा हिमालय और बड़ा हिमालय कहते हैं । हमारे पुरखे भी इस भेद को पहचानते थे और इन शृंखलाओं को क्रम से उपगिरि, वहगिरि और अतगिरि कहते थे ।—भारत० नि०, पृ० ११० ।

उपगिरि^२—कि० वि० [सं०] पर्वत के निकट (को०) ।

उपगीति—सज्ञा स्त्री [सं०] आधा छंद का एक भेद जिसके विषम पदों में १२ और सम पदों में १५ मात्राएँ होती हैं । अतः एक गुरु होता है । विषम गणों में जगण न होना चाहिए । इसका दूसरा नाम 'गाहू' भी है । उ०—रामा रामा रामा गाढी जामा जपै रामा । छाडी सारे कामा पंही अर्त मुवित्रामा ।—छंद०, पृ० ६६ ।

उपगुप्त—वि० [सं०] गुप्त किया हुआ । छिपाया हुआ (को०) ।

उपगुरु^१—सज्ञा पुं० [सं०] सहायक अध्यापक (को०) ।

उपगुरु^२—कि० वि० अध्यापक के पास या समीप (को०) ।

उपगूढ^१—वि० [सं० उपगूढ] १ दिशा हुआ । २ आलिंगित । मिला हुआ । ३ पकड़ा हुआ । गृहीत । ४ दबाया हुआ (को०) ।

उपगूढ^२—सज्ञा पुं० आलिंगन (को०) ।

उपगूहन—सज्ञा पुं० [सं०] १ आलिंगन । उ०—तरंगो ने अपने हाथों में उपगूहन कर लिया ।—श्यामा०, पृ० १४२ ।

उपग्रह—सज्ञा पुं० [सं०] १ गिरफ्तारी । २ कैद । ३ बधुप्रा । कैदी । ४ अग्रधान ग्रह । छोटा ग्रह ।

विशेष—ग्रहों की पुरानी गणना में राहु केतु आदि उपग्रह माने गए हैं । ५ फलित ज्योतिष में सूर्य जिस नक्षत्र के हो उससे पाँचवाँ (विद्युन्मुख), आठवाँ (शून्य), चौदहवाँ (सन्निपात) अठारहवाँ (केतु), इक्कीसवाँ (उल्का), बाईसवाँ (कप), तेईसवाँ (वज्रक), और चौबीसवाँ (निर्घात) नक्षत्र भी उपग्रह कहलाता है ।

६ वह छोटा ग्रह जो अपने बड़े ग्रह के चारों ओर घूमता है । जैसे,—पृथ्वी का उपग्रह चंद्रमा । ७. बहुयांत्रिक ग्रह जैसे राकेट की सहायता से अंतरिक्ष में पहुँचाते हैं एव जो पृथ्वी की आकर्षण शक्ति की सीमा के बाहर एक स्वतंत्र कक्षा में भ्रमण करने लगता है । ७ रार । पराजय (को०) । ८ कृपा । अनुग्रह (को०) । ९ बड़ावा । प्रोत्साहन (को०) । १० कुश की राशि (को०) ।

उपग्रहण—सज्ञा पुं० [सं०] १ हथेली में ली हुई चीज को गिरने या टपकने से बचाने के लिये उसके नीचे दूसरी हथेली लगा देना । २ गिरफ्तार करना । कैद करना । ३ सत्कारपूर्वक अध्यायन । पठना । २ सम्भालने का कार्य (को०) ।

उपग्रहसन्धि—सज्ञा स्त्री [सं० उपग्रह सन्धि] सर्वस्व देकर विजेता से की जानेवाली संधि (को०) ।

उपग्राह—सज्ञा पुं० [सं०] १ उपहार । २ उपहार या भेंट देना (को०) ।

उपग्राह्य—सज्ञा पुं० [सं०] १. भेंट । उपहार । २ राजा अथवा किसी महापुरुष को दिया जानेवाला उपहार । नजराना (को०) ।

उपघात—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० उपघातक, उपघाती] १. नाश करने

(शब्द०) । ३. समारम्भ । तैयारी (को०) । ४. प्राभूषण । अलंकार (को०) । ५. पर्व या उत्सव के अवसर पर द्वारशोभा के लिये वदनवार बनाना, त्रिशपतया फूलों और मालाओं द्वारा (को०) ।
 उपकारक—वि० [न०] [स्त्री० उपकारिका] १. उपकार करनेवाला । भलाई करनेवाला । २. लाभप्रद (को०) ।
 उपकारिका^१—वि० [स०] उपहार करनेवाली ।
 उपकारिका^२—सज्ञा स्त्री० १. राजभवन । २. खेमा । तबू । पटगृह । शिविर । ३. उपकार करनेवाली स्त्री । ४. मिष्टान्न विशेष (को०) ।
 उपकारिता—सज्ञा स्त्री० [स०] १. भलाई । २. प्रयोजन की सिद्धि ।
 उपकारी^१—वि० [स० उपकारिन्] [स्त्री० उपकारिणी] १. उपकार करनेवाला । भलाई करनेवाला । २. लाभ पहुँचानेवाला । फायदा पहुँचानेवाला । उ०—ससि सपन्न सोह महि कैसी । उपकारी कै सपति जैसी—मानस, ४।१५ ।
 उपकारी^२—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'उपकारिका' (को०) ।
 उपकार्य—वि० [स०] [वि० स्त्री० उपकार्या] उपकार किए जाने योग्य । जिसके साथ उपकार करना उचित हो ।
 उपकार्या^१—वि० [स० उपकार्या] जिस (स्त्री) के साथ उपकार करना उचित हो ।
 उपकार्या^२—सज्ञा स्त्री० १. खेमा । तबू । पटगृह । २. राजभवन । शाही-महल (को०) ।
 उपकिरण^१—सज्ञा पुं० [स०] १. विकीर्ण करना । फैलाना । छितरा देना । २. फेंक देना । ३. ढकना । ४. गाड़ना (को०) ।
 उपकिरण^२—क्रि० वि० किरणों के पास (को०) ।
 उपकीर्ण—वि० [स०] १. ढका हुआ । २. फैला हुआ । विकीर्ण (को०) ।
 उपकुचि—सज्ञा स्त्री० [न० उपकुञ्चि] दे० 'उपकुचिका' (को०) ।
 उपकुचिका—सज्ञा स्त्री० [स० उपकुञ्चिका] १. छोटी इलायची । २. कालाजीरा (को०) ।
 उपकुर्वण^१—सज्ञा पुं० [स०] ब्रह्मचारियों के दो भेदों में से एक । वह ब्रह्मचारी जो स्वाध्याय पूरा कर गुरु दक्षिणा देकर गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करे, अर्थात् यावज्जीवन ब्रह्मचारी न रहे ।
 उपकुर्वण^२—वि० उपकार करनेवाला (को०) ।
 उपकुल्या—सज्ञा स्त्री० [स०] १. खाई । परिखा । २. नहर । ३. पिपली या पीपरि (को०) ।
 उाकुश—सज्ञा पुं० [स०] मसूडों का एक रोग, जिसमें दाँत हिलने लगते हैं, उनमें मद-मद पीड़ा होती है ।
 उपकूजित—वि० [स०] १. प्रतिध्वनित । २. प्रतिध्वनिपूर्ण (को०) ।
 उपकूप—सज्ञा पुं० [स०] छोटा कुँआ । वह कुँआ जो ईंट पत्थर से नहीं बंधा होता, कच्चा ही रहता है । पोडा (देश०) (को०) ।
 उपकून^१—सज्ञा पुं० [स०] १. किनारा । तट । २. तट के पास की भूमि । तीर के पास की जमीन ।
 उपकूव^२—क्रि० वि० तट पर स्थित । तट के पास (को०) ।
 उपकृत—वि० [स०] १. जिसके साथ उपकार किया गया हो । जिसके साथ भलाई की गई हो । उपकारप्राप्त । २. कृतज्ञ । एहसान-मंद ।

उपकृति—सज्ञा स्त्री० [स०] उपकार । भलाई ।
 उपकृती—वि० [स० उपकृतिन्] उपहारी । दूसरे का हित करने-वाला (को०) ।
 उपकृता—वि० [स० उपकृन्तृ] शुरु करनेवाला । आरम्भ करनेवाला (को०) ।
 उपक्रम—सज्ञा पुं० [स०] १. कार्यारम्भ की पहली अवस्था । प्रथमारम्भ । अनुष्ठान । उठान । २. किसी कार्य को आरम्भ करने के पहले का आयोजन । योजना । तैयारी ।
 क्रि० प्र०—करना ।
 ३. भूमिका । तमहीद ।
 क्रि० प्र०—वाँघना ।
 ४. चिकित्सा । इलाज । ५. समीप जाना (को०) । ६. प्रस्तावना । पूर्ववचन (को०) । ७. शुश्रूषा (को०) । ८. सत्य का परीक्षण या सचाई की जाँच (को०) । ९. वह संस्कार जो वेदारम्भ के पूर्व किया जाता था (को०) ।
 उपक्रमण—सज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० उपक्रमणी] १. आरम्भ । अनुष्ठान । २. आयोजन । तैयारी । ३. भूमिका । तमहीद । ४. चिकित्सा । इलाज (को०) । ५. समीप जाना (को०) ।
 उपक्रमणिका—सज्ञा स्त्री० [स०] १. किसी पुस्तक के आदि में दी हुई विषयसूची । किसी पुस्तक के विषयों का संक्षिप्त विवरण । २. एक पुस्तक जिसमें वेद के मंत्रों और सूक्तों के ऋषि, छंद और देवता लिखे रहते हैं ।
 उपक्रमणीय—वि० [स०] १. पास जाने योग्य । २. आरम्भ करने योग्य । ३. रोगी के परिचारक से संबंधित । औपधि विषयक काम (को०) ।
 उपक्रमिता—वि० [स० उपक्रमितृ] आक्रम करनेवाला । १. आरम्भ करनेवाला । २. चिकित्सा करनेवाला । पास जानेवाला । ३. सत्यता की परख या मौलिकता की जाँच करनेवाला । ४. विहित संस्कार करनेवाला (को०) ।
 उपक्रांत—वि० [स० उपक्रान्त] १. शुरु किया हुआ । आरब्ध । २. जिसके पास जाया जा चुका है । ३. दया किया हुआ । चिकित्सित । (को०) ।
 उपक्रिया—सज्ञा स्त्री० [स०] उपकार । हित । भलाई (को०) ।
 उपक्रीडा—सज्ञा स्त्री० [स०] खेल का मैदान । खेलने का स्थान (को०) ।
 उपक्रीत—वि० [स०] पोष्य । पालन पोषण किया हुआ (पुत्र) ।
 उपक्रुष्ट^१—वि० [स०] १. निंदित । २. झिड़की खाया हुआ । फटकारा हुआ (को०) ।
 उपक्रुष्ट^२—सज्ञा पुं० [स०] १. एक नीच जाति । २. बड़ई (को०) ।
 उपक्राश—सज्ञा पुं० [स०] १. निंदा । २. झिड़की (को०) ।
 उपक्रोशन—सज्ञा पुं० [स०] १. निंदा करना । २. झिड़कना । कोमना (को०) ।
 उपक्रोष्टा^१—वि० [स० उपक्रोष्टृ] निंदक । दोष लगानेवाला (को०) ।
 उपक्रोष्टा^२—सज्ञा पुं० गधा । गर्दम (को०) ।
 उपक्लिन्न—वि० [स०] १. भीगा हुआ । गीला । २. नष्ट हुआ (को०) ।
 उपक्लेश—सज्ञा पुं० [स०] १. बौद्ध धर्मानुसार तृणक्लेश । हनका

उर्हाला^७—सज्ञा पुं० [स० उष्णकाल, प्रा० उर्हाल] दे० 'उर्हाला' [को०] ।

उर्हानि^७—सज्ञा स्त्री० [हि० उनहारि] समता । बराबरी । उ०—इदु, रवि, चद्र न, फणींद्र न, मुनींद्र न, नरेंद्र न, नगेंद्र गति जानै जग जैनी की । देव, ब्रज दपति सुहाग भाग सपति की सुख की उर्हानि ये करै न एक रैनी की ।—देव (शब्द०) ।

उर्हार^७—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अनुहार' । उ०—इसलिये हुषा कि इस बालक की और तुम्हारी उर्हार बहुत मिलती है । शकु०, पृ० १०१ ।

उर्हारि^७—सज्ञा स्त्री० [स० अनुहार] १. समता । तुल्यता । आकृति-गत एकता । २. किमी वस्तु या व्यक्ति के समान बनी हुई वस्तु या व्यक्ति [को०] ।

उर्हारी^७—सज्ञा स्त्री० [बुधेलपडो—हि० उर्हाला] फामुन, चंत और वंशाख में तैयार होनेवाली फमल, जिसे 'रवी' कहते हैं ।

उर्हाला^७—सज्ञा पुं० [स० उष्णकाल, प्रा० उर्हाल] गर्मी का मोसम । ग्रीष्मकाल ।

उपग—सज्ञा पुं० [म० उपाङ्ग या उप + अंग] १. एक प्रकार का बाजा । नसतरंग । उ०—(क) चग उपग नाद सुर तूरा । मुहर बस बाजे भल तूरा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) उघटत स्याम नृत्यति नारि । धरे अघर उपग उपजें लेत हैं गिरिधारि ।—सूर० १०।१०५६ । २. उद्धव के पिता ।

उपत^७—वि० [स० उत्पन्न, प्रा० उत्पन्न हि० उपत] उत्पन्न, पैदा । उ०—तरवर भरहिं, भरहिं बन ढाखा । भई उपत फूल कर साखा ॥ जायसी (शब्द०) ।

उपेग^७—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'उपग' । उ०—हरि गोकुल की प्रीति चलाई, सुनहु उपेग सुत मोहि न बिसरत ब्रजवासी सुखदाई ।—सूर०, १०।३४२२ ।

उप—उप० [स०] यह उपसर्ग जिन शब्दों के पहले लगता है उनमें इन अर्थों की विशेषता करता है समीपता, जैसे—उपकूल, उपनयन, उपगमन । सामर्थ्य (वास्तव में आधिक्य) जैसे—उपकार, गौणता या न्यूनता, जैसे—उपमन्त्री, उपसभापति । उपपुराण, व्याप्ति, जैसे—उपकीर्ण ।

उपइया^७—सज्ञा पुं० [स० उपाय—देश० उपया या उपइया] ढंग । तरीका । उपाय ।

उपकठ^७—सज्ञा पुं० [स० उपकण्ठ] १. समीपता । निकटता । २. गाँव का छोर । ३. घोड़े की एक चाल, जिसे सरपट चाल कहते हैं । इस चाल में वेग की अधिकता और त्वरा दर्शनीय होती है । किसी दूरस्थ स्थान पर शीघ्र पहुँचने के लिये सवार घोड़े को इसी चाल से दौड़ाता है ।

उपकठ^७—वि० १. पास का । समीप रहनेवाला । २. निकट [को०] । उपकथन—सज्ञा पुं० [स०] १. प्रत्युत्तर । किसी के कथन के उत्तर में कही गई बात । २. अपने पूर्वकथन के समर्थन में कही गई बात । ३. आलोचना [को०] ।

उपकथा—सज्ञा स्त्री० [स०] १. प्रासंगिक कथा । मुख्य कथा के प्रसंग में आ जानेवाली गौण कथा जो मुख्य कथा को और सजीव

बना देने का कार्य करती है । २. लघु आख्यायिका । छोटी कहानी [को०] ।

उपकनिष्ठिका—सज्ञा स्त्री० [स०] सबसे छोटी उँगली के पास की उँगली । अनामिका ।

उपकन्या—सज्ञा स्त्री० [स०] पुत्री की सखी ।

उपकन्यापुर—सं० पुं० [स०] अत पुर के समीप । जनानखाने के पास [को०] ।

उपकरणा—सज्ञा पुं० [स०] १. साधक वस्तु । सामग्री । सामान । २. राजाओं के छत्र चैत्र आदि राजचिह्न । ३. राजसेवक । राजा के नौकर चाकर [को०] । ४. दूसरे का हित करना । सेवा करना । सहायता देना [को०] । ५. उपकार या भलाई करना [को०] । ६. यत्र । और [को०] । ७. आजीविका । साधन [को०] । ८. राजा के छत्र चामर आदि [को०] । ९. राजा के सेवक या अनुचर [को०] ।

उपकरना^७—क्रि० सं० [स०] उपकार करना । भलाई करना । उ०—(क) युक्ते साँठ गाँठ जो करे, साँकर परे सोइ उपकरे ।—जायसी (शब्द०) । (ख) जहाँ परस्पर उपकरत तहाँ परस्पर नाम । बरनत सब ग्रथनि मते कवि कोविद मतिराम ।—मतिराम (शब्द०) ।

उपकर्ण^७—सज्ञा पुं० [स०] मुनना [को०] ।

उपकर्ण^७—क्रि० वि० कान के पास । कान में [को०] ।

उपकर्तन—सज्ञा पुं० [स०] १. श्रवण करना । २. कान देना [को०] ।

उपकर्णिका—सज्ञा स्त्री० [स०] लोकवाद । जनश्रुति । अफवाह [को०] ।

उपकर्ता^७—सज्ञा पुं० [स० उपकर्तृ] [स्त्री० उपकर्त्री] उपकार करनेवाला । भलाई करनेवाला ।

उपकर्म—सज्ञा पुं० [स० उपकर्मन्] उपनयन सत्कार में बटु का सिर सूँघने का शास्त्रविहित कृत्य [को०] ।

उपकर्या^७—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'उपकार्या' [को०] ।

उपकर्षण—सज्ञा पुं० [स०] समीप खींचना । पास लाना [को०] ।

उपकल्प—सज्ञा पुं० [स०] १. आभूषण । २. धन संपत्ति । ३. सामग्री । साज सामान [को०] ।

उपकल्पन—सज्ञा पुं० [स०] १. बनाना । प्रस्तुत करना । २. तैयारी करना । आयोजन [को०] ।

उपकल्पना—सज्ञा स्त्री० [स०] निश्चय करना । मन में स्थिर करना । २. बनाना । आविष्कार करना । ३. तैयार करना [को०] ।

उपकल्पित—वि० [स०] १. प्रस्तुत । तैयार । २. परिकल्पित । आयोजित [को०] ।

उपकार—सज्ञा पुं० [स०] [वि० उपकारक, उपकारी, उपकार्य, उपकृत] १. भलाई । हितसाधन । नेकी ।

क्रि० प्र०—करना, मानना=की हुई भलाई को याद रखना ।—कृतज्ञ होना ।

यौ०—कृतोपकार । परोपकार ।

२. लाभ । फायदा । जैसे—इस औपधि ने बड़ा उपकार किया

आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सको के अनुसार जीवन के भ्रष्ट, विश्राम के अभाव, मादक द्रव्यों के सेवन, कुत्सित भोजन, घोर व्याधि, अधिक सतानोत्पत्ति, अधिक विषय भोग, सिर की चोट आदि से उन्माद होता है। डाक्टरों ने उन्माद के दो विभाग किए हैं एक तो वह मानसिक विषयों जो मस्तिष्क के अच्छी तरह बढकर पुष्ट हो जाने पर होता है, दूसरा वह जो मस्तिष्क की वाढ के रुकने के कारण होता है। उन्माद प्रत्येक अवस्था के मनुष्यों को हो सकता है, पर स्त्रियों को २५ और ३५ के बीच और पुरुषों को ३५ और ५० के बीच अधिक होता है। २. रस के ३३ सचारी भावों में से एक, जिसमें वियोग आदि के कारण चित्त ठिकाने नहीं रहता।

यी०—उन्मादप्रस्त।

उन्मादक—वि० [सं०] १ चित्तविभ्रम उत्पन्न करनेवाला। पागल करनेवाला। २ नशा करनेवाला।

उन्मादन^१—सज्ञा पु० [सं०] १ उन्मत्त करने का कार्य। मतवाला करने की क्रिया। २ कामदेव के पाँच वाणों में से एक।

उन्मादन^२—वि० उन्मत्त करनेवाला [को०]।

उन्मादी—वि० [सं० उन्मादिन्] [वि० स्त्री० उन्मादिनी] जिसे उन्माद हुआ हो। उन्मत्त। पागल। वावला।

उन्मान^१—सज्ञा पु० [सं०] १ नापने या तौलने का कार्य। २ नाप। तौल। ३ द्रोण नाम की पुरानी तौल जो ३२ सेर की होती थी।

उन्मान^२—सज्ञा पु० दे० 'अनुमान'।

उन्मार्ग^१—सज्ञा पु० [सं०] [वि० उन्मार्गी] १ कुमार्ग। बुरा रास्ता। २ बुरा ढग। बुरी चाल। निकृष्ट आचरण।

उन्मार्ग^२—वि० [सं०] कुमार्ग पर चलनेवाला। बुरे चाल चलनेवाला [को०]।

उन्मार्गी—वि० [सं० उन्मार्गिन्] [स्त्री० उन्मार्गिनी] कुमार्गी। बुरी राह पर चलनेवाला। बुरे चाल चलन का।

उन्मार्जन—सज्ञा पु० [सं०] १ रगड़कर साफ करना। २ किसी-दाग या धब्बे को मिटाना [को०]।

उन्मार्जित—वि० [सं०] १ रगड़कर साफ किया हुआ। २ मलकर और धोकर धब्बा मिटा हुआ। शुद्ध। साफ [को०]।

उन्मित—वि० [सं०] २ तौला हुआ। २ जिसकी माप की गई हो [को०]।

उन्मिति—सज्ञा स्त्री० [सं०] नापा हुआ। २ तौला हुआ [को०]।

उन्मिष^१—वि० [सं०] १ खिला हुआ। विकसित। २ खुला हुआ (नेत्र) [को०]।

उन्मिष^२—सज्ञा पु० [सं०] १ खोलना (आँखों का)। २ विकसित होना। खिलना। (जैसे, कमल के फूल का)। ३ उठना या उगना। ४ चमकना। उद्दीप्त होना [को०]।

उन्मिषित—वि० [सं०] १ खुला हुआ। २ फूला हुआ। विकसित।

उन्मीलन—सज्ञा पु० [सं०] [वि० उन्मीलक, उन्मीलनीय, उन्मीलित] १ खुलना (नेत्र का)। २ विकसित होना। खिलना।

उन्मीलना^२—क्रि० सं० [सं० उन्मीलन] १ खोलना २ विकसित करना। खिलाना [को०]।

उन्मीलित^१—वि० [सं०] खुला हुआ।

उन्मीलित^२—सज्ञा पु० एक काव्यान्कार जिसमें दो वस्तुओं के बीच इतना अधिक सादृश्य वर्णन किया जाय कि केवल एक ही बात के कारण उनमें भेद दिखाई पड़े। उ०—ढीठि न परत, सयान-दुति कनकु कनक सँ गात। भूपन कर करकस लगत परसि पिछाने जात। विहारी २०, दो० ३३३। यहाँ सोने के गहने और सोने के ऐसे शरीर के बीच केवल छूने से भेद मालूम होता है।

उन्मुक्त—वि० [सं०] खुला हुआ। अच्छी तरह मुक्त। स्वच्छद।

उन्मुख—वि० [सं०] [स्त्री० उन्मुखी] १ ऊपर मुँह किए। ऊपर ताकता हुआ। २ उत्कठा से देखता हुआ। ३ उत्कठित। उत्सुक। ४ उद्यत। तैयार। जैसे, गमनोन्मुख। प्रसवोन्मुख। ५ शब्द करता हुआ। ध्वनित (को०)। ६ मुख से बाहर आता हुआ [को०]।

उन्मुखर—वि० [सं०] बहुत मुखर। बहुत शोर मचानेवाला। अति-वाचाल [को०]।

उन्मुख--वि० [सं०] १ अत्यंत आसक्त। २ अतिशय मूर्ख। ३ व्यग्र। व्याकुल [को०]।

उन्मुद्र—वि० [सं०] १ मुद्रारहित। जिसपर मुहर न लगी हो। २ नियन्त्रणविहीन। ३. खिला हुआ [को०]।

उन्मूलक—[सं०] उखाड़नेवाला। समूल नष्ट करनेवाला। ध्वस्त करनेवाला। वरवाद करनेवाला।

उन्मूलन—सज्ञा पु० [सं०] [वि० उन्मूलक, उन्मूलनीय, उन्मूलित] १ जड़ से उखाड़ना। समूल नष्ट करना। ध्वस्त करना। भटियामेट करना।

उन्मूलनीय—वि० [सं०] १ उखाड़ने योग्य। २ नष्ट करने योग्य।

उन्मूलित—वि० [सं०] १ उखाड़ा हुआ। २. नष्ट किया हुआ।

उन्मृष्ट—वि० [सं०] १ रगड़कर साफ किया हुआ। २ मिटाया हुआ। ३ शुद्ध किया हुआ [को०]।

उन्मेदा—सज्ञा स्त्री० [सं०] स्थूलता। मोटापन [को०]।

उन्मेप—सज्ञा पु० [सं०] [वि० उन्मिषित] १. खुलना (आँख का)। २ विकास। खिलना। उ०—समस्त चराचर में सामान्य हृदय की अनुभूति का जैसा तीव्र और पूर्ण उन्मेप कल्याण में होता है वैसा किसी और भाव में नहीं।—चित्तमणि, भाग २, पृ० ५७। ३. थोड़ा प्रकाश। थोड़ी रोशनी।

उन्हू^१—सर्व० [हि०] दे० 'उन' उ०—ता मधि पूरी ऐसी सोभा मानो भँवर लपटात, उन्हू मधि उडि परे रंग मँजीठे।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ३६४। (ख) उन हुत देख पायजँ दरस गोसाईं केर।—जायसी ग्र०, पृ० ८।

उन्हूलागम^२—सज्ञा पु० [सं० उष्णकालागम ग्र० उन्हाल + सं० आगम] ग्रीष्म ऋतु। जेठ और असाढ़।—दि०।

कल से कुछ उन्नीस अवयव है। (मात्रा के सबध मे इस मुहावरे का प्रयोग केवल दशा सूचित करने के लिये होता है, जिसमे गुण का कुछ भाव आ जाता है।) उन्नीस बीस होना = (१) मात्रा मे कुछ कम होना। थोडा घटना। जैसे, कहिए इस दवा से आपका दर्द कुछ उन्नीस बीस है। (मात्रा के सबध मे इस मुहावरे का प्रयोग केवल दशा सूचित करने के लिये होता है जिसमे गुण का कुछ भाव आ जाता है) (२) गुण मे घटकर होना। जैसे, यह कपडा उससे किसी तरह उन्नीस नहीं है। (३) आपत्ति आना। बुरी घटना का होना। ऐसी वै गी बात न होना। भला बुरा होना। जैसे, क्यों पराए लडके को अपने घर रखते हो कुछ उन्नीस बीस हो जाय तो मुश्किल हो। (दो वस्तुओं का परस्पर) उन्नीस बीस होना = एक का दूसरे से कुछ अच्छा होना। जैसे मैंने दोनों दोस्तीयाँ देखी हैं। कुछ उन्नीस बीस जरूर हैं। उन्नीस बीस का फर्क = बहुत ही थोडा अंतर।

उन्नीसवाँ—वि० [हि० उन्नीस + वाँ (प्र०)] गिनती मे उन्नीस के स्थान पर पडनेवाला। अठारहवें के बाद का।

उन्नेता^१—सज्ञा पुं० [स०] यज्ञ करनेवाले सोलह श्रुतिजो मे से चौदहवाँ, जो तंभार सोमरस को ग्रहों या पात्रों मे ढालता है।

उन्नेता^२—क्रि० १ उत्कर्ष या अम्पुदय करनेवाला या लानेवाला। २ ऊपर ले जानेवाला [को०]।

उन्नैना^३—क्रि० अ० [स० उन्नयन] झुकना। नत होना। उ०—लागि मुहाई हरफारखोरी। उन्नै रही केरा की खोरी।—जायसी (शब्द०)।

उन्मथी—सज्ञा पुं० [स० उन्मथ्य] कान का एक रोग जिसमे कान की लवें सूज आती हैं और उनमे खाज होती है। यह रोग कान के लव के ठेद को आगूषण आदि पहनने के निमित्त बहुत बढ़ाने से होता है।

उन्मथक^१—वि० [स० उन्मथक] १ मथनेवाला। २. गति देनेवाला [को०]।

उन्मथक^२—सज्ञा पुं० कान का फूलना [को०]।

उन्मथक^३—वि० १ मथन करनेवाला। २. गति देनेवाला [को०]।

उन्मकर—सज्ञा पुं० [स०] मकर की आकृतिवाला कान का एक आभूषण [को०]।

उन्मज्जक^१—सज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का तपस्वी [को०]।

उन्मज्जक^२—वि० [स०] पानी मे डुबकी लगानेवाला। पानी से बाहर आनेवाला [को०]।

उन्मज्जन—सज्ञा पुं० [स०] [वि० उन्मज्जनीय, उन्मज्जित] मज्जन या डूबने का उल्टा। निकलना। उठना।

उन्मत्त^१—वि० [स०] [सज्ञा उन्मत्ता] १ मतवाला। मदाघ। २ जो आपे मे न हो। ३ पागल। वावला। सिडी। विक्षिप्त।

यो०—उन्मत्ताप्रलयित, उन्मत्त प्रलाप = पागलों की बातचीत। अदम्य और निरर्थक वचन।

उन्मत्त^२—सज्ञा पुं० १ घटूरा। २ मुचकुद का पेड़।

यो०—उन्मत्त पचक = घटूरा, बकुची, भाँग, जावित्री और खस-खास इन पाँच मादक द्रव्यों का समुच्चय। उन्मत्तरन = पारा, गधक, सोठ, मिर्च और पीपल के संयोग से बनी हुई एक रसोपध जिसे नाक मे नास देने से सन्निपात दूर होता है।

उन्मत्तक—वि० [स०] उन्मत्त। पागल [को०]।

उन्मत्तकीर्ति—सज्ञा पुं० [म०] शिव। महादेव [को०]।

उन्मत्तलिङ्गो—वि० [स० उन्मत्तलिङ्गन्] उन्मत्त होन या पागलपन का वहाना करनेवाला [को०]।

उन्मत्तवेश—सज्ञा स० [स०] शिव। रुद्र [को०]।

उन्मत्तता—सज्ञा स्त्री० [स०] मतवालापन। पागलपन।

उन्मथन—सज्ञा पुं० [स०] १ मथना। बिलोना। २ क्षुभित करना।

३ हिलाना। ४. मारण। ५ फेंकना [को०]।

उन्मथित—वि० [स०] १ मथा हुआ। २ क्षुभित। ३ मिलाया हुआ। मिश्रित [को०]।

उन्मद^१—वि० [स०] १ पागल करनेवाला। उन्मत्त बनानेवाला [को०]।

उन्मद^२—सज्ञा पुं० १ उन्माद। पागलपन। २ नशा [को०]।

उन्मदन—सज्ञा पुं० [स०] कामपीडित। प्रेम मे मत्त। गभीर प्रेम मे अपने को मूला हुआ [को०]।

उन्मदिष्णु—वि० [स०] १ मत्त। मतवाला। २ मद चुगाता हुआ (हाथी) [को०]।

उन्मन—वि० [स०] अनमना। उदास। अन्यमनस्क।

उन्मनस्क—वि० [स०] १ खोए हुए मनवाला। अन्यमनस्क। २ व्याकुल। व्यग्र। ३ लानाथित। ४ शोकरमन [को०]।

उन्मना—वि० स्त्री० [स० उन्मनस्] दे० 'उन्मन'। उ०—शकाएँ थी विकल करती काँपता था कलेजा, खिन्ना दीना परम मलिना उन्मना राधिका थी—प्रिय०, पृ० ५१।

उन्मनी—सज्ञा स्त्री० [स०] खेचरी, भूचरी आदि हठयोग की पाँच मुद्राओं मे से एक। इसमे दृष्टि को नाक की नोक पर गडाते हैं और भों को ऊपर चढाते हैं।

उन्मयूख—वि० [स०] चमकता हुआ। प्रकाशवान्। तेजस्वी [को०]।

उन्मर्द—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'उन्मर्दन' [को०]।

उन्मर्दन—सज्ञा पुं० [स०] १. मलना। २ रगडना। ३. एक सुगंधित द्रव्य जिसे शरीर मे मलते हैं। ४ वायु का शुद्धीकरण [को०]।

उन्माद—स० पुं० [स० उद् + पद्, 'चित्तदिश्रयो'] [वि० उन्मादक, उन्मादी] १ पागलपन। वादलापन। विक्षिप्तता। चित्त-विभ्रम। वह रोग जिसमे मन और बुद्धि का कार्यक्रम विगड जाता है।

विशेष—वैद्यक के अनुसार भाँग, घटूरा आदि मादक द्रव्यों तथा प्रकृतिविरुद्ध पदार्थों के सेवन तथा मय, हर्ष, शोक, आदि की अधिकता से मन बातादि दोषयुक्त हो जाता है और उसकी धारणा शक्ति जाती रहती है। बुद्धि ठिकाने न रहना, शरीर का बल घटना, दृष्टि स्थिर न रहना आदि उन्माद के पूर्वरूप कहे गए हैं। उन्माद के छह मुख्य भेद माने गए हैं—वातो-न्माद, पित्तोन्माद, कफोन्माद, सन्निपातोन्माद, शोकोन्माद और विपोन्माद।

ग्रंगन मे यौवन सुभग लसत कुसुम उन्हार ।—शकुन्तला,
पृ० १५ ।

उन्हारि०—सज्ञा स्त्री० [सं० अनुहार] समानता । सादृश्य । एक-
रूपता । उ०—(क) अपनी स्त्री की उन्हारि सो हरिदास को
पहिचाने ।—दो सौ बावन, भा० १, पृष्ठ २७० । (ख) गिरा
गग उन्हारि काव्य रचना प्रेमाकर ।—श्रीभक्ति० पृ०
५५५ । (ग) रचक कहि वलि पिय उन्हारी ।—नद० ग्र०,
पृ० १२८ ।

उनाना०—क्रि० न० [सं० अव + नम, प्रा० ओणन = नमाना, अवनत
करना] १ भुङ्गना । २ लगाना ।

मुहा०—कान उनाना = सुनने के लिये कान लगाना । उ०—पामा
सारि कुँअर सब खेनहि श्रीनद गीत उनाहि, चैन चाव तस देखा
जनु गढ छँका नाहि ।—जायसी (शब्द०) ।

३ सुनना । ध्यान देना । उ०—नाख करोरहि वस्तु त्रिकाई,
सहसन केर न कोउ उनाई ।—जायसी (शब्द०) । ४ आज्ञा
मानना । कहने पर कोई काम करना ।

उनारना०—क्रि० म० [हि० उतरना] १ बढ़ाना । २ खिन्ना करना ।
३ उठाना ।

उनासी०—वि० [सं० ऊनासीती] दे० 'उन्नासी' ।

उनि०—सर्व० [हि०] दे० 'उन' । उ०—नहि निकमत लाई बारा,
उनि आवत ही फुफकारा ।—सुदर० ग्र०, भा० १, पृ० १४२ ।

उनिहार०—वि० [सं० अनुहार] दे० 'उन्हार' । उ०—इनमे कृष्ण की
उनिहार है ।—दो सौ बावन, भा० २, पृ० १३ ।

उनीदा—वि० [सं० उन्निद्र] [स्त्री० उनीदी] बहुत जागने के कारण
अलसाया हुआ । नींद से भरा हुआ । नींद में मात्ता हुआ ।
ऊँघता हुआ । उ०—(क) श्याम उनीदि जानि मानु रवि सेज
विछायो, तापै पीढै लाल अतिह मन हरख बढ़ायो ।—सूर
(शब्द०) । (ख) उठी सबी हँसि मिस करि कहि मृदु वैन, मिय
रघुवर के भए उनीदे नैन ।—तुलसी ग्र०, पृ० २० । (ग)
लटपटी पाग सिर साजत, उनीदे अग द्विजदेव ज्यो त्यों कै
सँभारत सबै वदन ।—द्विजदेव (शब्द०) ।

उनीना०—क्रि० अ० दे० [सं० अवनमन या अवलम्बन] १ झुकना ।
२ छा जाना । उ०—आई उनी मुह मे हँसी, कोहि तिया पुनि
चाप सीढ़ि भौह चढाई ।—इतिहास, पृ० २५४ ।

उन्नईस०—वि०, सज्ञा पु० [सं० ऊनविश, प्रा० अउणवीस] ३०
'उन्नीस' ।

उन्नत—वि० [सं०] १ ऊँचा । ऊपर उठा हुआ । २ वृद्धिप्राप्त । बढ़ा
हुआ । समृद्ध । ३ थोड़ा । बड़ा । महत् ।

उन्नतकोकिला—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक वाद्ययंत्र [को०] ।

उन्नताश—सज्ञा पु० [सं०] दूज के चद्रमा का वह छोर जो दूसरे
से ऊँचा हो ।

विशेष—फलित ज्योतिष में इसका विचार होता है कि चद्रमा
का बाँया छोर उन्नत है या दाहिना ।

उन्नति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ ऊँचाई । बढ़ाव । २ वृद्धि । समृद्धि ।
तरक्की । बढ़ती ।

उन्नतिशोल—वि० [सं०] उन्नति के लिये प्रयत्न करनेवाला । जिसके
उन्नति करने की पूरी पूरी आशा हो [को०] ।

उन्नतोदर—सज्ञा पु० [म०] १ चाप या वृत्तखंड के ऊपर का तल ।
२ वह पदार्थ जिसका वृत्तखंड ऊपर की ओर उठा हुआ हो ।
जैसे, उन्नतोदर शीशा ।

उन्नद्ध—वि० [म०] १ खूब बँधा हुआ । २ फूला हुआ । ३. बढ़ा
हुआ । ४. अभिमानी । ५. अत्यंत [को०] ।

उन्नवी—सज्ञा पु० [सं०] सकीर्ण राग का एक भेद ।

उन्नमन—सज्ञा पु० [मं०] १ उठाने का कार्य । उठाना । ऊपर ले
जाना । २ उन्नयन । उत्कर्ष । अभ्युदय [को०] ।

उन्नमित—वि० [सं०] १ उत्कर्षित । उन्नति किया हुआ । २ बढ़ाया
हुआ । वर्धित [को०] ।

उन्नम्र—वि० [सं०] उठा हुआ । ऊँचा । उच्च [को०] ।

उन्नयन—वि० [मं०] १ आँखें ऊपर को करनेवाला । २ उन्नति-
शील । नेतृत्व करनेवाला [को०] ।

उन्नस—वि० [सं०] ऊँची नासिकावाला । ऊँची नाकवाला [को०] ।

उन्नाद—सज्ञा पु० [सं०] १ उत्कर्ष । विकास । उन्नति । २ ऊपर
ले जाना । उठाना । ३ जोर का नाद या वद [को०] ।

उन्नहन—वि० [सं०] निर्वाध । अबाध [को०] ।

उन्नाव—सज्ञा पु० [अ०] एक प्रकार का वर जो अफगानिस्तान से
मूखा हुआ आता है और हकीमी नुस्खों में पड़ता है ।

उन्नावी—वि० [अ० उन्नाव + हि० ई (प्रत्य०)] १ उन्नाव के रंग
का । कालापन लिए हुए लाल । स्थाही लिए हुए । सुर्ख । सालो ।

उन्नाय—सज्ञा पु० [सं०] [वि० उन्नाय] १ उच्चता । उत्थान ।
२ वितर्क । सोच विचार । ३ निष्कर्ष । परिणाम । ४.
सादृश्य । सामान्यता । तद्रूपता [को०] ।

उन्नायक—वि० [सं०] [स्त्री० उन्नायिका] १ ऊँचा करनेवाला ।
उन्नत करनेवाला । २. बढ़ानेवाला । तरक्की देनेवाला ।

उन्नासी^१—वि० [सं० ऊनासीति, प्रा० अउणसीति] सत्तर और नौ ।
एक कम अस्सी ।

उन्नासी^२—सज्ञा पु० सत्तर और नौ की संख्या या अंक ।

उन्नाह—सज्ञा पु० [सं० उत् + नह] १ उमार । अग्रभाग की ओर
बढ़ाव । अतिवृद्धि । जैसे—स्तनोन्नाह । अतिशयता । आधिक्य ।
२ आगे की ओर निकला हुआ । ३ बाँधना । ४ अभिमान ।
घमंड । भाजी [को०] ।

उन्निद्र^१—वि० [सं०] १ निद्रारहित । २. जिसे नींद न आई हो ।
जैसे—उन्निद्ररोग । ३ विकसित, खिला हुआ ।

उन्निद्र^२—सज्ञा पु० नींद न आने का रोग [को०] ।

उन्नीस^१—वि० [सं० एकोनविंशति या ऊनविश प्रा० एकोनवीस,
एकूनवीस प्रा० अउणवीस] एक कम बीस । दस और नौ ।

उन्नीस^२—सज्ञा पु० दस और नौ की संख्या या अंक ।

मुहा०—उन्नीस बिम्बे (१) एक बीबे, बीस बिम्बे का उन्नीस
भाग । (२) अधिकतर बहुत अधिक समव । उ०—उन्नीस
बिम्बे तो उनके आने की आशा है । (३) अधिनाश । प्रायः,
जैसे, यह बात उन्नीस बिम्बे ठीक है । उन्नीस होना = (१)
मात्रा में कुछ कम होना । थोड़ा घटना जैसे, उसका दर्द

अगाध, पचम दिशा है अलख की जानैगा कोई साध ।—कवीर (शब्द०) । (घ) कहिये मे न कछू सक राखी । बुधि विवेक उत्तमान आपने मुख आई सो भाखी ।—सूर (शब्द०) । २ अटकल । अदाज । उ०—प्रागम निगम नेति करि गायो । शिव उत्तमान न पायो, सूरदास बालक रस लीला मन अभिलाख बढायो ।—सूर (शब्द०) ।

उत्तमान^२—सज्ञा पुं० [सं० उद् + मान या उन्मान] १ परिमाण । नाप । तौल । बाहु । उ०—रूप समुद छवि रस भरो अति ही सरस सुजान, तामें तें भरि लेत दग अपने घट उत्तमान ।—रसनिधि (शब्द०) । २ शक्ति । सामर्थ्य । योग्यता । उ०—जो जैसा उत्तमान का तैसा तासो बोल, पोता को गाहक नही हीरा गौठि न खोल ।—कवीर (शब्द०) ।

उत्तमान^३—वि० [हिं०] तुल्य । समान । उ०—तुव नासा पुट गात मुक्त फल अघरविव उत्तमान, गुजा फल सबके सिर धारत प्रगटी मीन प्रमान ।—सूर (शब्द०) ।

उत्तमानना^४—क्रि० सं० [हिं० उत्तमान] अनुमान करना । खयाल करना । सोचना । समझना ।

उत्तमाना^५—क्रि० सं० [सं० उन्मादन] १ उन्मत्त होना । २ मस्त-हो जाना । भावमुग्ध होना ।

उत्तमानि^६—वि० [हिं०] दे० 'उत्तमान' ।

उत्तमोलन^७—सज्ञा पुं० [सं० उन्मोलन] दे० 'उन्मोलन' ।

उत्तमुनी^८—वि० [सं० अत्यमनस्क, हिं० अतमना] [स्त्री० उत्तमुनी] मीन । चूप चाप । उ०—हंसै न बोलै उत्तमुनी चचल मेल्या मार, कह कवीर अतर विधा सतगुरु का हथियार ।—कवीर (शब्द०) ।

उत्तमुनी^९—सज्ञा स्त्री० [सं० उन्मनी] १ उन्मनी मुद्रा । उ०—निरा-काश ओ लोक निराश्रय निर्णय ज्ञान विसेखा । सूक्ष्म वेद है उत्तमुनि मुद्रा उत्तमून बानी लेखा ।—कवीर (शब्द०) । २ आत्मविस्मृति । मोहावस्था (की०) ।

उत्तमूलना^{१०}—क्रि० सं० [सं० उन्मूलन] उखाड़ना । उ०—(क) मद परे रिपुगन तारा सम जन-भय-तम उत्तमूले ।—भारतेन्दु ग्र०, भा० १, पृ० २७२ । (ख) हरीचंद छविरासि त्रिया-पिय दरसत ही जिय दुख उत्तमूल ।—भारतेन्दु ग्र०, भा० २, पृ० ५०० ।

उत्तमेख^{११}—सज्ञा पुं० [सं० उन्मेख] १ आँख का खुलना । २ फूल का खुलना या खिलना । विकास । उ०—सखि, रघुवीर-मुख-छवि देखु । नयन सुखमा निरखि नागरि सुफल जीवन लेखु । मनहुँ विधि जुग जलज विरचे सति सुपूरन भेखु । मृकृटि माल विशाल राजत रचिर कूकुमि रेखु । भ्रमर है रवि किरन लाए करन जनु उत्तमेखु ।—तुलसी (शब्द०) । ३ प्रकाश ।

उत्तमेखना^{१२}—क्रि० सं० [हिं० 'उत्तमेख' से नाम०] १ आँख का खुलना । उन्मीलित होना । २ विकसित होना (फूल आदि का) ।

उत्तमेद^{१३}—सज्ञा पुं० [सं० उद् = जल + मेद = चरबी] पहली वर्षा से उठा हुआ जहरीला फेन जिसके खाने से मछलियाँ मर जाती

हैं । माजा । उ०—थोरो जीवन बहुत न भारो । कियो न साधु समागम कबहुँ लियो न नाम तिहारो । अति उनमत्त मोह माया बस नहि कफ वात विचारो । करत उपाय न पूछत काहुँ गनत न खाए खारो । इद्री स्वाद विवस निसि वासर आपु अपुनपो हारयो । जल उनमेद मीन ज्यो वपुरो पाव कुहारो मारयो ।—सूर (शब्द०) ।

उत्तमोचन^{१४}—सज्ञा पुं० [सं० उन्मोचन] छोड़ना । बधन दूर कर देना ।

उत्तयना^{१५}—क्रि० अ० [हिं०] १ झुकना । लटकना । उ०—उने रही केरा कै धोरी ।—जायसी ग्र०, पृ० १३ । २ छा जाना । घिर आना । उ०—(क) उनई बदरिया परिगै साँझा, अनुग्रा भूले वनखंड माँझा ।—कवीर (शब्द०) । (ख) उनई घटा चहुँ दिसि आई, छूटहि वान मेघ भरि लाई ।—जायसी (शब्द०) । (ग) उनई आई घटा चहुँ फेरी, कत उवाच मदन हो घेरी ।—जायसी (शब्द०) ।

उत्तरना^{१६}—क्रि० अ० [सं० उत्तरण = ऊपर जाना या उन्नम या हिं०] १ उठना । उमडना । उ०—प्रहिरन हाथ दहँडी सगुन लेइ आवइ हो, उत्तरत जीवन देखि नृपति मन भावइ हो ।—तुलसी ग्र०, पृ० ४ । २ कूदते हुए चलना । उछलते हुए जाना । उ०—मेरो कहो किन मानती, मानिनि आपुही तें उतको उत्तरोगी ।—देव (शब्द०) ।

उत्तवना^{१७}—क्रि० अ० [सं० अवतमन प्रा० ओणम] १ झुकना । लटकना । २ छाना । घिर जाना । उ०—उत्तवत आव सैन सुलतानी, जानहुँ परलय आव सुलानी ।—जायसी (शब्द०) । ३ टूटना । ऊपर पडना । उ०—देखि सिंगार अनूप विधि विरह चला सब भाग । काल कष्ट वह उत्तवा सब मोरें जिउ लाग ।—जायसी (शब्द०) ।

उत्तवर^{१८}—वि० [सं० ऊन = कम + वर हिं० (प्रत्य०)] न्यून । कम । तुच्छ । उ०—जहँ कटहर की उत्तवर पूछी, वर पीपर का बोलहि छूछी ।—जायसी (शब्द०) ।

उत्तवान^{१९}—सज्ञा पुं० [सं० अनुमान, मि० उत्तमान] अनुमान । सोच । ध्यान । समझ ।

उत्तवान^{२०}—सज्ञा पुं० [अ०] शीर्षक । नाम (की०) ।

उत्तसठ^{२१}—वि० [सं० एकोनषष्ठि या ऊनषष्ठि, प्रा० अउणसष्टि] १ पचास और नौ ।

उत्तसठ^{२२}—सज्ञा पुं० पचास और नौ की सख्या या अंक जो इस तरह लिखा जाता है—'५६' ।

उत्तसठि^{२३}—वि०, सज्ञा पुं० [सं० ऊनषष्ठि प्रा० अउणसष्टि] दे० 'उत्तसठ' ।

उत्तहत्तर^{२४}—वि० [सं० एकोनसप्तति, प्रा० अउणसत्तरि, अउणहत्तरि] साठ और नौ ।

उत्तहत्तर^{२५}—सज्ञा पुं० साठ और नौ की सख्या या अंक जो इस तरह लिखा जाता है—'६६' ।

उत्तहत्तरि^{२६}—वि०, सज्ञा पुं० [हिं० उत्तहत्तर] दे० 'उत्तहत्तर' ।

उत्तहानि^{२७}—सज्ञा स्त्री० [सं० अनुहरण] दे० 'उत्तहानि' ।

उत्तहार^{२८}—वि० [सं० अनुहार या अनुहार] सद्गुण । समान । उ०—

कभी रियासत हाथ आएगी, इनी बात पर तो वे उधार लाए बैठे हैं। २ किसी की मृत्यु के आसरे में रहना। किसी का नाश चाहना। जैसे,—वह बहुत दिनों से तुमपर उधार लाए बैठा है (महापात्र लोग इस आशा पर उधार लेते हैं कि अमुक धनी आदमी मरेगा तो खूब रूपया मिलेगा)।

२ मँगनी। किसी एक की वस्तु का दूसरे के पास केवल कुछ दिनों के व्यवहार के लिये जाना। जैसे,—हलवाई ने वरतन उधार लाकर दुकान खोली है।

क्रि० प्र०—देना।—पर लेना।—लेना

३ उधार। छुटकारा।

उधारक^७—वि० [स० उधारक] दे० 'उधारक'।

उधारन^७—वि० [स० उधार] उधार करनेवाला। उ०—सगर-सुवन सठ सहन परस जल मात्र उधारन।—भारतेंदु ग्र० भा० १, पृ० २२२।

उधारना^७—क्रि० प्र० [स० उद्धरण] उधार करना। मुक्त करना। छुटकारा करना। निस्तार करना। उ०—माया तिमिर मिटाया कै खल कोटि उधारे।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ४४४।

उधारा^७—वि० [स० उधारिन्] [स्त्री० उधारिनी] उधारक। उधार करनेवाला।

उधारो^७—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उधार'। उ०—द्रव्य कौ सी कार्य न होइ तोऊ उधारो लाइ कै करनो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २८७।

उधेडना—क्रि० प्र० [स० उद्धरण=उन्मूलन, उखाड़ना] १ मिली हुई पत्तों को अलग करना। उखाड़ना।—जैसे, मारते मारते चमड़ा उधेड लूँगा। २ टाँका खोलना। सिलाई खोलना। ३ छितराना। बिखराना।

उधेडवुन—सज्ञा पुं० [हिं० उधेडना+वुनना] १ सोचविचार। ऊहापोह। उ०—१ड़ गए हो उधेडवुन में क्यों।—बुभुते०, पृ० ४२। २ युक्ति बौधना। जैसे,—किस उधेडवुन में हो जो कही हुई बात नहीं सुनते।

उधेर^७—क्रि० प्र० [हिं०] दे० 'उधेड'।

उधेरना^७—क्रि० प्र० [हिं०] दे० 'उधेडना'।

उनत^७—वि० [सं० अनुव्रत या अवतत] झुका हुआ। नत। उ०—कोष जस दारिद दाखा। भई उनत प्रेम कै साखा।—जायसी ग्र०, पृ० २४।

उन—सर्व० [हिं०] 'उस' का बहुवचन।

विशेष—'वह' का किसी विभक्ति के साथ संयोग होने से 'उस' रूप हो जाता है।

उनइस^७—वि० [सं० ऊर्नविश] दे० 'उन्नीस'।

उनका—सज्ञा पुं० [अ० अन्का] एक पक्षी जिसे आज तक किसी ने नहीं देखा है। यह ययार्य में एक कल्पित प्राणी है।

यौं—उनका सिफत=उनका की तरह कभी न दिखाई देनेवाला। जैसे, आप तो आज कल उनका सिफत हो रहे हैं। कभी आपकी चूरत ही नहीं दिखाई पड़ती (शब्द०)।

उनचास^१—वि० [सं० एकोनपञ्चाशत्, प्रा० एकुण्णचास, ७०] उनचास

या स० ऊनपञ्चाशत्] चालीस और नौ। उ०—लाग डाँट सम विसम तान उनचास कूटि बट।—टुम्हीर रा०, पृ० ३३।

उनचास^२—सज्ञा पुं० चालीस और नौ की सख्या या अंक जो इस तरह लिखा जाता है—'४६'।

उनतीस^१—वि० [सं० एकोनत्रिंशत्, प्रा० अउणतीस या स० ऊनत्रिंशत्] एक कम तीस। बीस और नौ।

उनतीस^२—सज्ञा पुं० बीस और नौ की सख्या या अंक जो इस तरह लिखा जाता है—'२९'।

उनदा^७—वि० [सं० उन्निद्र] उनीदा। नींद से भरा। उ०—पारधी मोर सुहाग कौ इन् वनहीं पिय नेह, उनदी ही अँखियाँ कँक कै अलसोंही देह।—विहारी (शब्द०)।

उनदौही^७—वि० स्त्री० [सं० उन्निद्र, हिं० उनींदा, स्त्री० 'उनदौही'] नींद से भरा हुआ। ऊघता हुआ। उनींदा।

उनविसत^७—वि० [सं० ऊर्नविंशति] उन्नीस। उ०—सुनै जु कोऊ हरिचरित उनविसत अघ्याइ, पाप न परसै नद तिहि पदमिनि दल जल न्याइ।—नद० ग्र०, पृ० २८८।

उनमत^७—वि० [सं० उन्मत्त] दे० 'उन्मत्त'। उ०—इहि विधि वैन वैन वृक्षि दूँडि उनमत की नाई।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ३८७।

उनमत^७—वि० [सं० उन्मद] १ उन्मत्त। मतवाला। मदमस्त। उ०—वाजत सुवैन रहै, उनमद भैन रहै, चित्त में न चैन रहै चातकी के रव सो।—पद्माकर ग्र०, पृ० १८७।

उनमन^७—सज्ञा स्त्री० [सं० उन्मनी] दे० 'उन्मनी'। उ०—एता कीजै आपकै, तनमन उनमन लाइ। पंच समाधी राखिए, हुजा सहज नुमाइ।—दादू वानी, पृ० १५।

उनमना^७—वि० [सं० उन्मनस्क] [स्त्री० उनमनी] दे० 'अनमना'।

उनमायना^७—क्रि० प्र० [सं० उदमथ या उन्मथन] [वि० उनमाथी] मथना। विलोडन करना।

उनमाथी^७—वि० [सं० उन्माथिन् या हिं० उनमाथना] मथनेवाला। विलोडन करनेवाला। उ०—जल तें सुथल पर, थल तें सुजल पर उथल पथल जल थल उनमाथी को। वरस कितेक बीते जुगुति चली न कछु बिना दीनबधु होत साँकरे मे साथी को? मन बच करम, पुकारत प्रगट 'बेनी' नाथन के नाथ श्री अनावन सनाथी को। वन करि हारे हाथा हाथी सब हाथी, तव हाथा हाथी हरखि उवारि लीनो हाथी को।—बेनी (शब्द०)।

उनमाद^७—सज्ञा पुं० [सं० उन्माद] दे० 'उन्माद'। उ०—ग्रानदघन लीला रस चाखें वढै प्रेम उनमाद।—घनानंद, पृ० ४३६।

उनमादना^७—क्रि० प्र० [हिं० उनमाद] उन्मत्त होना।

उनमादी—वि० [सं० उन्माद+ई (प्रत्य०) या उन्मादिन्] पागल करनेवाला। उन्मत्त करनेवाला। उ०—कान्हू की बसुरिया है उनमादी खेलति रहै बारहमासी फाग।—घनानंद, पृ० ४८५।

उत्तमान^१^७—सज्ञा पुं० [सं० अनुमान] १ अनुमान। ब्याप। व्याप। समझ। उ०—(क) तीन लोक उत्तमान में चौथा अगम

उद्वाहो—वि० [सं० उद्वाहिन] १ ढीनेवाला । २ दूर ले जानेवाला ।

३ ऊपर ले जानेवाला । ४ विवाहेच्छु (पुरुष) [को०] ।

उद्वाग्म—वि० [म०] १ उद्देगपुत्र । आकुल । घबराया हुआ । २ व्यग्र । ३ आतंकित [को०] ।

उद्वाग्मता—सज्ञा स्त्री [सं०] आकुलता । घबराहट । व्यग्रता ।

उद्वाह—वि० [सं०] १ क्षुब्ध । २ ऊपर उठा हुआ । उठलता हुआ [को०] ।

उद्वाक्षण—सज्ञा पुं० [सं०] १ ऊपर देखना । २ दृष्टि । आँख । ३ अवलोकन । देखना ।

उद्वाजन—सज्ञा पुं० [सं०] पखा डुलाना । पखा झूलना [को०] ।

उद्वावृत्त—वि० [सं०] १ असभ्य । २ अस्मिमान् । ३ वृद्धिप्राप्त । ४ क्षोभ से भरा हुआ । ५ उठा हुआ [को०] ।

उद्देग—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्देगिन] १ चित्त की आकुलता । घबराहट । २ मनोवेग । चित्त की तीव्र वृत्ति । आवेश । जोश । जैसे,—मन के उद्देगों को दबाए रखना चाहिए । ३ भोक जैसे,—क्रोध के उद्देग में उसने यह काम लिया है । ४ रस की दस दशाओं में से एक । त्रियोग समय की वह व्याकुलता जिसमें चित्त एक जगह स्थिर नहीं रहता । ५ विस्मय, आश्चर्य (को०) । ६ भय । डर । (को०) । ७ सुपारी । पूँगीफल (को०) ।

उद्देग—वि० १ शात । २ धैर्यवान् । धीर । ३ दे० 'उद्वाह' । ४ शीघ्र जानेवाला । ५ आरोहणकर्ता [को०] ।

उद्देगजनक—वि० उद्देग पैदा करनेवाला । वेचन करनेवाला ।

उद्देगी—वि० [सं० उद्देगिन] १ पीडा या कष्ट में पड़ा हुआ । दुःखी । २ चित्ताजनक [को०] ।

उद्देजक—वि० [सं०] उद्देग करनेवाला । उद्देगजनक ।

उद्देजन—सज्ञा पुं० [म०] [वि० उद्देजक, उद्देजनीय, उद्देजित] उद्देग में होने या करने की क्रिया । आकुल होने या करने का काम । घबराना ।

उद्देजायिता—वि० [सं० उद्देजयितृ] उद्देग उत्पन्न करनेवाला । क्षोभकारी [को०] ।

उद्देप—सज्ञा पुं० [सं०] कैंपकंपी । कनन [को०] ।

उद्देल—वि० [सं०] तट या किनारा छापकर बहनेवाला । मर्यादा का अतिक्रमण करनेवाला । अतिशय । उ०—उद्देल हो उठो भाटे से, बढ़ जाओ घाटे घाटे से ।—प्राराधना, पृ० २ ।

उद्देलन—सज्ञा पुं० [सं०] १ उकान । किनारा लाँघकर बहना । २ मर्यादा लाँघ जाना [को०] ।

उद्देलित—वि० [सं०] १ अमर्यादित । २ बाँध या तट को पारकर बहता हुआ [को०] ।

उद्देलित—वि० [सं०] उफनता हुआ । सीमा को लाँघकर बहता हुआ [को०] ।

उद्देष्टन—सज्ञा पुं० [सं०] १ बाढ़ या घेरा । २ घेरने की क्रिया या भाव । ३ पीठ की ओर होनेवाला दंड [को०] ।

उद्देष्टनीय—वि० [म०] खोलने योग्य । मुक्त करने योग्य [को०] ।

उद्देष्टित—वि० [सं०] धिरा हुआ [को०] ।

उद्देढा—सज्ञा पुं० [सं० उद्देढ] पति । भर्ता [को०] ।

उधडना—क्रि० अ० [सं० उधरण=उन्मूलन, उधडना] खुलना । उखडना । बिखरना, तितर बितर होना । जैसे,—(क) कुछ दिन में इस कपड़े का सूत उधड़ जायगा । (ख) इस पुस्तक के पन्ने पन्ने उधड़ गए ।

यो०—सिलाई उधड़ना=सिलाई का टांका टूट जाना या खून जाना ।

२ उधडना । पत से अलग होना जैसे,—पानी में भीगने से दफती के ऊपर का कागज उधड़ गया ।

यो०—चमड़ा उधडना=शरीर से चमड़े का अलग होना । जैसे,—ऐसी मार मारेंगे कि चमड़ा उधड़ जायगा ।

उधम—सज्ञा पुं० (हिं० ऊधम) दे० 'ऊधम' ।

उधर—क्रि० वि० [सं० उत्तर अथवा पु० हिं० ऊ (वह)+धर (प्रत्य० सं० धृ)] उस ओर । उस तरफ । दूसरी तरफ । जैसे,—उधर मूलकर भी मत जाना ।

उधरना—क्रि० अ० [सं० उधरण] १ उधार पाना । मुक्त होना । छुटकारा पाना । उ०—पाव जन समार में शीतल चदन वास, दाहू केते उधरे जे आए उन पास ।—दाहू० वानी, पृ० २९१ । २ दे० 'उधडना' ।

उधरना—क्रि० सं० उधार करना । मुक्त करना । उ०—सोक कनक-लोचन, मति छोनी । हरी विमल गुन गन जग जोनी ॥ भरत विवेक बराह विसाला । अनायास उधरी तेहि काला ॥—मानस, १ । २९६ । (ब) छोर समुद्र मध्य ते यो कहि दीरघ वचन उचारि हो । उधरौ धरनि असुर कुन मारौ धरि नर तनु अवतारा हो ।—सूर । (शब्द०) ।

उधराना—क्रि० अ० [सं० उधरण] १ हवा के कारण छितराना । खड खड होकर इधर उधर उडना । तितर बितर होना । बिखराना । जैसे,—(क) रुई हवा में मल रखो, उधरा जायगी । उ०—मन के भेद नैन गए भाई । लुब्धे जाइ श्याम सुदर-रस करी न कछु भलाई । व्याकुल फिरति भवन वन जहँ तहँ तूल आक उधराई ।—सूर०, १० । २८५७ । २ मदाध होना । ऊधम मचाना । सिर पर दुनिया उठाना ।

उधाड—सज्ञा पुं० [सं० उधार] कुश्ती का एक पेंच । उखाड ।

विशेष—जब दोनों लड़नेवालों के हाथ दोनों की कमर पर रहते हैं और पेंच करनेवाले की गर्दन विपक्षी के कंधे पर होती है, जब वह (पेंच करनेवाला) अपना बाँया हाथ अपनी गरदन पर से ले जाता है और उससे विपक्षी का लगोट पकड़ता है और दाहिना पैर बढ़ाकर उसको बगल में फँक देता है । इस पेंच को उधाड या उखाड कहते हैं ।

उधार^१—सज्ञा पुं० [सं० उधार=विना व्याज का ऋण] १ कर्ज । ऋण । जैसे,—उसने मुझसे १००) उधार लिए ।

क्रि० प्र०—करना । जैसे,—वह १०) बनिए का उधार कर गया है ।—खाना=ऋण लेना । ऋण लेकर काम चलाना ।—देना ।—लेना ।

मुहा०—उधार लाए बँठना=(१) किसी अपने अनुकूल होने वाली बात के लिये अत्यंत उत्सुक रहना । जैसे,—कभी न

चालुक्य और वंगदेश के राजाओं को जीतने की अपेक्षा बढकर दिखाया गया है। २ जहाँ गुण से दोषों की तुच्छता दिखाई जाय। उ०—वैठ जल, पैठन पुहुमि ह्वै निमि प्रन उद्योत। जगत प्रकाशकता तदपि रवि मे हानि न होत। यहाँ जल मे बैठ जाने और रात मे प्रकाशरहित रहने की अपेक्षा सूर्य मे जगत् को प्रकाशित करने के गुण की अधिकता दिखाई गई है। ३ जहाँ दोष से दोषों की तुच्छता दिखाई जाय। उ०—निरखत बोलत हँसत नहि नहि आवत पिय पास। भो इन सबसे अधिक दुख, सौतिन के उपहास। ४ जहाँ दोष से गुणों की तुच्छता दिखाई जाय। उ०—गिरि हरि लोटत जतु लो पूर्ण पतालहि कीन्ह। परम्यो गौरव मिथु को मुनि इक अजुलि पीन्ह। यहाँ समुद्र मे विष्णु और पर्वत के लोटने और पाताल को पूर्ण करने के गुणों की अपेक्षा उसके अगस्त्य मुनि द्वारा किए जाने के दोष का उद्बेक है।

उद्बेका—सज्ञा ली० [स०] वकायन। महानिब [को०]।

उद्बेचक—वि० [स०] बहुत अधिक बड़ा देनेवाला। अत्यधिक वृद्धि करनेवाला [को०]।

उद्बत्सर—सज्ञा पुं० [स०] साल। वर्ष [को०]।

उद्बपन—सज्ञा पुं० [स०] १. हिलाकर गिराना। उडेलना। २. दान [को०]।

उद्बर्त^१—सज्ञा पुं० [स०] १. उवटन। २. उवटन लगाने का कार्य। ३. वचा हुआ या अतिरिक्त अश। ४. अतिशयता। प्राचुर्य। आधिक्य। ५. विनाश काल। प्रलय काल [को०]।

उद्बर्त^२—वि० अतिरिक्त। शेष। फालतू [को०]।

उद्बर्तक—वि० [स०] १. उवटन लगानेवाला। मालिश करनेवाला। २. उठानेवाला।

उद्बर्तन—सज्ञा पुं० [स०] १. किसी वस्तु को शरीर मे लगाने की क्रिया। व्यवहार। अम्यंग। जैसे—तेल लगाना, चदन लगाना, उवटन लगाना। २. उवटन। ३. उड्डता। उजड्डपन [को०]। ४. ऐश्वर्य अम्युदय [को०]। ५. तार खींचने का काम। तारकशी [को०]। ६. चूर्ण करना। पीसना [को०]।

उद्बर्तित—वि० [स०] १. जिसकी मालिश की गई हो। जिसे उवटन लगाया गया हो। उठाया हुआ। ३. बहिष्कृत। निकाला हुआ। ४. सुगन्धित [को०]।

उद्बर्धन—सज्ञा पुं० [स०] १. बढाव। वृद्धि। २. धीमी या दबाई हुई हँसी [को०]।

उद्बर्हित—वि० [स०] १. आकर्षित। खींचा हुआ। २. नष्ट किया हुआ। उन्मूलित [को०]।

उद्बस^१—सज्ञा पुं० [स०] जनशून्य स्थान [को०]।

उद्बस^२—वि० १. समाप्त। २. गत। गया हुआ। लुप्त। ३. जिससे शहद निकल लिया गया हो (छत्ता)। ४. खाली। शून्य [को०]।

उद्बह^१—सज्ञा पुं० [स०] (ली० उद्बहा) १. पुत्र। बेटा।

यौ०—रघूद्वह।

२. सात वायुओं मे से एक जो तृतीय स्कंध पर है। ३. उदान वायु जिसका स्थान कठ मे माना गया है। वि० दे० 'उदान'।

४. व्याह। विवाह। ५. अग्नि की एक जिह्वा (ली०)। ६. परिवार या घर का प्रधान व्यक्ति (ली०)।

उद्बह^२—वि० १. ले जानेवाला। २. निरंतर चालू रहनेवाला [को०]।

उद्बहन—सज्ञा पुं० [स०] १. ऊपर खिंचना। उठाना। २. विवाह। ३. ऊपर उठाना या उठा ले जाना। (ली०)। ४. चढना। सवार होना (ली०)। ५. युक्त होना। सपन्न होना (ली०)। ६. रक्षण। संभालना (ली०)।

उद्बहा—सज्ञा ली० [स०] कन्या। पुत्री।

उद्वात^१—सज्ञा पुं० [स० उद्वात्न] १. वमन। कै।

उद्वात^२—वि० उगला हुआ। कै किया हुआ। वमिन।

उद्वात—सज्ञा पुं० [स०] १. अग्निस्थान। चूल्हा। २. वमन [को०]।

उद्वाप—सज्ञा पुं० [स०] १. खेती फसल।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय मे राज्य का यह नियम था कि यदि कृषक खेती न करे तो उनको राज्यकर इकट्ठा करनेवाले समाहर्ता के करिंदे बाध्य करते थे कि वे गम्भी की फसल तैयार करें।

२. दूर करना। हटाना। फेंकना (ली०)। ३. मुडन कराना (ली०)। ४. ऊपर उठाना या खींचना (ली०)।

उद्वापन—सज्ञा पुं० [स०] (अग्नि को) बुझावने या शांत करने की क्रिया।

उद्वास—सज्ञा पुं० (म०) १. निकाल बाहर करना। २. मगा देना। ३. त्याग। ४. मारने के लिये जाना। ५. बध। ६. छोड़ देना [को०]।

उद्वासन—सज्ञा पुं० [स०] [वि० उद्वासनीय, उद्वासक, उद्वातित, उद्वास्य] १. स्थान छोड़ना। हटाना। भगाना। खदेड़ना। २. उजाड़ना। वासस्थान नष्ट करना। ३. मारना। बध। ४. एक सस्कार। यज्ञ के पहले आसन बिछाने, यज्ञपात्रों को साफ करके यथास्थान रखने और उनमे घृत आदि डाल रखने का काम। ५. प्रतिमा की प्रतिष्ठा के एक दिन पहले उमे रात मर ओषधि मित्रे हुए जन मे डान रखना।

उद्वाह—सज्ञा पुं० [स०] [वि० उद्वाहक, उद्वाहिक, उद्वाहित, उद्वाही, उद्वाह्य] १. विवाह। २. उठाना। संभालना (ली०)।

उद्वाहन—सज्ञा पुं० [स०] [वि० उद्वाहक, उद्वाहनीय, उद्वाही, उद्वाहित, उद्वाह्य] १. ऊपर ले जाना। ऊपर चढाना। उठाना। २. ले जाना। हटाना। ३. विवाह करना। ४. एक बार जोते हुए खेत को फिर से जोतना। एक बाँह जोते हुए खेत को दूसरी बाँह जोतना। चास लगाना। ५. व्यग्रता। चिंता। परेशानी (ली०)।

उद्वाहनी—सज्ञा ली० (पु०) १. रस्सी। उग्रहनी या उग्रहन जिसे घड़े मे बांधकर कुँए से पानी खींचा जाता है। २. नोडा [को०]।

उद्वाहर्क्ष—सज्ञा पुं० [स०] वे नक्षत्र जिनमे विवाह होते हैं, जैसे तीनों उत्तरा, रेवती, रोहिणी, मूल, स्वाती, मृगशिरा, मघा, अनुराधा और हस्त।

उद्वाहिक—वि० [स०] उद्वाह से संबंधित। वैवाहिक [को०]।

नमस्कार करने के वहाने से प्रिय को देखने के लिये नायिका छिडकी पर गई पर छिपाने की चेष्टा करने पर भी मुसकान और कटाक्ष द्वारा उसका गुप्त प्रेम प्रकट हो ही गया। ४ मून। उत्तम। छोन (को०)। ५ पुनक। रोमांच (को०)। ६ तोड़ना। खडन (को०)।

उद्भेदन—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्भेदक, उद्भेदनीय, उद्भिन्न] १ तोड़ना। फोड़ना। २ फोड़कर निकलना। ऊपर आना। दे० 'उद्भेद'।

उद्भ्रम—सज्ञा पुं० [सं०] १ चक्कर काटना। मूँचमुँचैया में पड़ जाना। चकराना। २ भ्रमण। पर्यटन ६ पश्चात्ताप। ८ उद्वेग (को०)।

उद्भ्रमण—सज्ञा पुं० [सं०] १ भ्रमण करना। घूमना। ३ उदित होना। उगना (को०)।

उद्भ्रात—वि० [सं० उद्भ्रान्त] १ घूमता हुआ। चक्कर मारता हुआ। २ भ्रातिभुक्त। मूला हुआ। ३ चकित। भौचक्का। उद्भ्रात—सज्ञा पुं० तत्वार के ३२ हाथों में से एक जिसमें ऊँचा हाथ करके तलवार चारों ओर घुमाते हैं। इससे दूसरे के किए हुए वार को रोकते या व्यर्थ करते हैं।

उद्यत—वि० [सं०] १ तैयार। तत्पर। प्रस्तुत। मुस्तैद। उतारू। उ०—प्रजा काजे राजा नित सुकृत पर उद्यत रहै।—शकुंतला पृ० ११४।

यौ०—वधोद्यत। गमनोद्यत।

२ उठाया हुआ। ताना हुआ। ३ शिक्षित। अनुशासित (को०)। ४ श्रम करनेवाला। परिश्रमी (को०)।

उद्यत—सज्ञा पुं० १ सगीत में ताल। २ अध्याय। परिच्छेद। उल्लास (को०)।

उद्यति—सज्ञा स्त्री [सं०] १ तैयारी। २ प्रयत्न। उद्योग। ३ उठाना (को०)।

उद्यम—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्यत] १ प्रयास। प्रयत्न। उद्योग। मेहनत। उ०—विफल होहि सब उद्यम ताके। जिमि पर-द्रोह-निरत-मनसा के।—मानस। ६।९१। २ कामधधा। रोजगार। व्यापार। उ०—किसी उद्यम में लगे तब रुपया मिलेगा। ३. उठाना (को०)। तैयारी (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

उद्यमी—वि० [सं० उद्यमिन्] मेहनती। उद्यम करनेवाला। यत्नशील (को०)।

उद्यान—सज्ञा पुं० [सं०] १ बगीचा। उपवन। २ उद्देश्य। अमि-प्राय। (को०)। ३ भारत के उत्तर स्थित देश विशेष (को०)। ४ घूमना। टहलना (को०)।

यौ०—उद्यानपाल, उद्यानपालक, उद्यानरक्षक = बगीचे की देख-भाल करनेवाला माली।

उद्यानक—सज्ञा पुं० [सं०] बगीचा। उपवन (को०)।

उद्यानकव्यूह—सज्ञा पुं० [सं०] वह व्यूह जिसके चारों ओर घसहत हो।

उद्यापन—सज्ञा पुं० [सं०] किसी वस्तु की समाप्ति पर किया जानेवाला उत्प, जेंसे, दान, तोड़ना इत्यादि।

उद्यापित—वि० पुं० [सं०] [उद्यापन किया हुआ। विधिवत् पूर्ण किया हुआ (को०)।

उद्याव—सज्ञा पुं० [सं०] १ मिलाना। मिश्रण करना। जोड़ना (को०)।

उद्युक्त—वि० [सं०] १ उद्योग में रत। तत्पर। तैयार। मुस्तैद।

उद्योग—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्योगी, उद्युक्त] १ प्रयत्न। प्रयास। कोशिश। मिहनत। २ उद्यम। कामधधा।

यौ०—उद्योगधधा = उत्पादक का कार्य। उत्पादन का काम।

उद्योगपति = अनेक उद्योगों का स्वामी। कारखानों का मालिक।

उद्योगशाला = उद्योग का स्थान। कारखाना।

उद्योगी—वि० [सं० उद्योगिन्] [स्त्री० उद्योगिनी] उद्योग करने-वाला। प्रयत्नवान्। मेहनती।

उद्योगीकरण—सज्ञा पुं० [सं०] उद्योग के अभाव को दूर करने के लिये उद्योग की स्थापना करना। आधुनिक ढंग के कल कारखाने चालू करना।

उद्योत—सज्ञा पुं० [सं०] १ दे० 'उद्योत'। उ०—ज्ञान उद्योत करि हृदय गुरु वचन धरि जोग सग्राम के खेत आवै।—गुलाल० बानी, पृ० १०६।

उद्योतन—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्योतक, उद्योतनीय, उद्योतित] १ प्रकाशित करने या होने की क्रिया। चमकने या चमकाने का कार्य। २ प्रकट करने की क्रिया। व्यक्त करने का कार्य।

उद्रक, उद्रग—सज्ञा पुं० [सं० उद्रङ्क, उद्रङ्ग] १ के 'उद्रग्रथ' तथा 'उद्रग्राह' (सारस्वत कोष)। २ वह अन्न जो राजा के अण के रूप में गाँवों से इकट्ठा किया गया हो (बृहल्लर)।

उद्र^(७)—सज्ञा पुं० [सं० उदर] १ दे० 'उदर'। उ०—मयो गाफिल भूलि माया, नहि उद्र अघात।—जग० बानी, पृ० ५५।

उद्र^३—सज्ञा पुं० [सं०] १ जल मार्जार। ऊदविलाव। २ जल (को०)।

उद्रथ—सज्ञा पुं० १ अरुणशिखा। मुर्गा। २ गाड़ी के पहिए की धुरी की किल्ली (को०)।

उद्राव—सज्ञा पुं० [सं०] शोरगुल। हल्ला (को०)।

उद्रिक्त—वि० [सं०] [सज्ञा स्त्री० उद्रिक्ता] १ बड़ा हुआ। अधिक। अतिशय। २ स्पष्ट। प्रत्यक्ष (को०)।

यौ०—उद्रिक्तचित्त, उद्रिक्तचेता = (१) उदारहृदय। उच्चाशय।

(२) मादकता से प्रभावित।

उद्रुज—वि० [सं०] १ विध्वंस करनेवाला। समूल नष्ट करनेवाला। २ तोड़ डालनेवाला (को०)।

उद्रेक—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्रिक्त] १ वृद्धि। बढ़ती। अधिकता। ज्यादाती। २ आरम्भ। उपक्रम (को०)। ३ ऐश्वर्य (को०)। एक काव्यालंकार जिसमें कई, सजातीय वस्तुओं की किसी एक जातीय या विजातीय वस्तु की अपेक्षा तुच्छता दिखाई जाय अर्थात् जिसमें वस्तु के कई गुणों या दोषों का किसी एक गुण, या दोष के आगे मंद पड़ जाना वर्णन किया जाय।

विशेष—इसके चार भेद हो सकते हैं—(क) जहाँ गुण से गुणों की तुच्छता दिखाई जाय। उ०—जयो नृपति चालुक्य को, नयो वगपति कध। परगहि अठ सुलतान सय, किय अपूर्व जयचंद। यहाँ जयचंद का आठ सुलतानों को एक साथ पकड़ना,

उद्बल—वि० [सं०] शक्तिशाली । मजबूत । ताकतवर [को०] ।
 उद्वाष्प—वि० [सं०] अश्रुपूर्ण । वाष्पपूरित [को०] ।
 उद्वाह—वि० [सं०] हाथ ऊपर उठाए हुए । उर्व्ववाह [को०] ।
 उद्बुद्ध—वि० [सं०] १ विकसित । फूला हुआ । २. प्रबुद्ध । चैतन्य ।
 जिसे बोध या ज्ञान हो गया हो । ३. जगा हुआ । ४ स्मृत ।
 स्मरण किया हुआ [को०] । ५ उद्दीप्त [को०] ।
 उद्बुद्धा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अपनी ही इच्छा से उपपत्ति से प्रेम करने-
 वाली परकीया नायिका ।
 उद्बोध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. थोड़ा बहुत ज्ञान । २ जागना । प्रबुद्ध
 होना [को०] । ३ स्मरण होना । याद आना [को०] ।
 उद्बोधक^१—वि० [सं०] [स्त्री० उद्बोधिका] १. बोध करानेवाला ।
 चेतानेवाला । खयाल रखनेवाला । २ प्रकाशित करनेवाला ।
 प्रकट करनेवाला । सूचित करनेवाला । ३ उद्दीप्त करनेवाला ।
 उत्तेजित करनेवाला । ४ जगानेवाला ।
 उद्बोधक^२—सञ्ज्ञा पुं० सूर्य [को०] ।
 उद्बोधन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्बोधनीय, उद्बोधक, उद्बोधित]
 १ बोध कराना । चेताना । खयाल रखना । २. उद्दीपन
 करना । उत्तेजित करना । ३. जगाना ।
 उद्बोधिता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह परकीया नायिका जो उपपत्ति के
 चतुराई द्वारा प्रकट किए हुए प्रेम को समझकर प्रेम करे ।
 उद्भट^१—वि० [सं०] [सञ्ज्ञा उद्भटता] १ प्रगल । प्रबुद्ध ।
 यौ०—रणोद्भट ।
 २ श्रेष्ठ । असाधारण । जैसे,—ईश्वरचन्द्र संस्कृत के एक उद्भट
 विद्वान् थे । ३. उच्चाशय ।
 उद्भट^२—सञ्ज्ञा पुं० १ सुप । २ कच्छप । ३ मुक्तक । स्फुट रचना ।
 फुटकल छंद । उ०—मुवत्तु या उद्भट मे जो रस की रसम
 अदा की जाती है उसमें शील दशा का समावेश नहीं होता ।
 —रस०, पृ० १८६
 उद्भव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्भूत] १. उत्पत्ति । जन्म । सृष्टि ।
 यौ०—उद्भवकर=उत्पादक । पैदा करनेवाला । उद्भव क्षेत्र,
 उद्भवस्थान=उत्पत्तिस्थान ।
 २ वृद्धि । बढ़ती । जैसे—हम दूसरे के उद्भव को देख क्यों जलें ।
 ३ मूल । उद्गम । बुनियाद [को०] । ४ विष्णु का नाम [को०] ।
 उद्भार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वादल । मेघ [को०] ।
 उद्भाव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ उद्भव । उत्पत्ति । २ कल्पना ।
 उद्भावना । ३ उदारता [को०] ।
 उद्भावक—वि० [सं०] १ उत्पन्न करनेवाला । २. कल्पना या
 उद्भावना करनेवाला [को०] ।
 उद्भावन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० उद्भावना, वि० उद्भावनीय, उद्भा-
 वित, उद्भाव्य] १ कल्पना करना । मन में लाना । २
 उत्पन्न होना । उत्पादन । ३ कहना । बोलना [को०] । ४.
 उपेक्षा या तिरस्कार करना [को०] ।
 उद्भावना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ कल्पना । मन की उपज ।

यौ०—दोपोद्भावना ।

२ उत्पत्ति ।

उद्भावयिता—वि० [सं० उद्भावयितृ] दे० 'उद्भावक' [को०] ।
 उद्भास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्भासनीय, उद्भासित, उद्भासुर] १.
 प्रकाश । दीप्ति । आभा । २ हृदय में किसी बात का उदय ।
 प्रतीति ।
 उद्भासित—वि० [सं०] १ प्रकाशित । उद्दीप्त । २. प्रकट । जैसे,—
 उसकी आकृति से झूरता उद्भासित होती है । ३ प्रतीत ।
 विदिन । जैसे,—हमें तो ऐसा उद्भासित होता है कि इस वर्ष
 वृष्टि कम होगी ।
 उद्भासी—वि० [सं० उद्भासिन्] [वि० स्त्री० उद्भासिनी] १.
 दमकवाला । चमकीला । २ प्रकट होनेवाला । ३ प्रकट करने
 या चमकानेवाला [को०] ।
 उद्भासुर—वि० [सं०] ज्योतिष्मान् । तेजवान् । चमकीला [को०] ।
 उद्भिज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उद्भिज्ज' ।
 उद्भिज्ज^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष, लता, गुल्म आदि जो भूमि फोड़कर
 निकलते हैं । वनस्पति ।
 विशेष—सृष्टि में ये चार प्रकार के प्राणियों में से हैं । मनु इत्यादि
 ने वृक्षों को अतःसत्त्व कहा है अर्थात् उनमें ऐसी चेतना या
 संवेदना बतलाई है जिन्हें वे प्रकट नहीं कर सकते । आधुनिक
 वैज्ञानिकों का भी यही मत है ।
 उद्भिज्ज^२—वि० भूमि फोड़कर बाहर निकलनेवाला (पौधा
 आदि) [को०] ।
 उद्भिद्—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उद्भिद' ।
 उद्भिद^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वृक्ष, लता, गुल्म आदि जो भूमि
 फोड़कर निकलते हैं । वनस्पति । २ अंधुआ । कल्ला । ३.
 समुद्री नमक ।
 उद्भिद^२—वि० उगनेवाला । उठने या निकलनेवाला । दे० 'उद्भिज्ज'^२
 [को०] ।
 उद्भिन्न—वि० [सं०] १ तोड़कर कई भागों में किया हुआ । फोड़ा
 हुआ । २. उत्पन्न । व्यक्त । खुला या निकला हुआ [को०] ।
 ४. विकसित । खिला हुआ [को०] । ५ जिससे विश्वासघात
 किया गया हो [को०] ।
 उद्भुज(पुं)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उद्भिज] दे० 'उद्भिज' । उ०—उद्भुज
 सतेज जेरज अडा, सुपनरूप वरतै ब्रह्मडा ।—दरिया०
 बानी, पृ० २७ ।
 उद्भूत—वि० [सं०] १ उत्पन्न । निकला हुआ । २ गोचर । युक्त
 [को०] । ऊँचा । उच्च [को०] ।
 उद्भेद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ फोड़कर निकलना (पौधों के समान) ।
 २ प्रकाशन । उद्घाटन । ३ प्राचीनों के मत से एक
 काव्यालंकार जिसमें कौशल से छिपाई हुई किसी बात का
 किसी हेतु से प्रकाशित या लक्षित होना वर्णन किया
 जाय । जैसे—वातावन गत नारि प्रति नमस्कार मिस भान,
 सो कटाच्छ मुसुकान सो जान्यो सखी सुजान । यहाँ सूर्य को

उद्धता^२—सञ्ज्ञा पुं० १ विध्वंसक या नाशक व्यक्ति । २. रक्षा करने-वाला । त्राता [को०] ।

उद्धर्पे—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उद + हृप] १ प्रसन्नता । आनन्द । अति हर्ष । २ व्रतादि का उत्सव । ३ किसी कार्य को करने का साहस । ४. उद्रेक । अधिव्यय [को०] ।

उद्धर्पण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ उत्तेजना । २ रोमाच । ३ हर्षित करना [को०] ।

उद्धव—सञ्ज्ञा पुं० [न०] १ उत्सव । पर्व । २ यज्ञ की अग्नि । ३ कृष्ण के चाचा और सखा एक यादव ।

उद्धव्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध शास्त्रानुसार दस क्लेशों में से एक ।
उद्धस्त—वि० [सं०] जिसके हाथ ऊपर उठे हों [को०] ।

उद्धात^१—वि० [वि० उद्धान्त] दे० 'उद्धान' ।

उद्धात^२—सञ्ज्ञा पुं० मदरहित हाथी [को०] ।

उद्धान^१—वि० [सं०] १ उगला हुआ । वमन किया हुआ । २ स्थूल-काय । पीन । फूला हुआ । ३ ऊपर गया या निकला हुआ । उद्गत [को०] ।

उद्धान^२—सञ्ज्ञा पुं० १ उलटी । वमन । २ अग्निस्थान । चूल्हा [को०] ।

उद्धार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्धारक, उद्धारित] १ मुक्ति । छुटकारा । आण । निस्तार । दुःखनिवृत्ति । जैसे,—(क) इस दुःख से हमारा उद्धार करो । (ख) इस ऋण से तुम्हारा उद्धार जल्दी न होगा । २ बुरी दशा से अच्छी दशा में आना । सुधार । उन्नति । अभ्युदय ।

यो०—जीर्णोद्धार ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

३ ऋणमुक्ति । कर्ज से छुटकारा । ४ सति का वह अश जो बराबर बाँटने के पहले किसी विशेष क्रम से बाँटने के लिये निकाल लिया जाय ।

विशेष—मनु के अनुसार पैतृक संपत्ति का २०वाँ भाग सबसे बड़े के लिये, ४०वाँ उससे छोटे के लिये, ८०वाँ उससे छोटे के लिये इत्यादि निकालकर तब बाँकी को बराबर बाँटना चाहिए ।

५ युद्ध की लूट का छठा भाग जो राजा लेता है । ६ ऋण, विशेषकर वह जिसपर व्याज न लगे । ७ चूल्हा । ८ अनु-कथा । कृपा [को०] । ९ जाना । गमन करना [को०] । १० उद्धारण [को०] ।

उद्धारक—वि० [सं०] निस्तार करनेवाला । वि० दे० 'उद्धर्ता' ।

उद्धारण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ आण करना । २ ऊपर उठाना । ३ विरलेप या विभाग करना [को०] ।

उद्धारणा—क्रि० सं० [सं० उद्धारण] उद्धार करना । मुक्त करना । छुटकारा देना ।

उद्धार—सञ्ज्ञा स्त्री० [न०] गुडची । गिलोय [को०] ।

उद्धारित—वि० [सं०] उद्धार किया, बचाया हुआ [को०] ।

उद्धित—वि० [सं०] उठाया हुआ । ऊपर उठाया हुआ [को०] ।

उद्धर—वि० [सं०] १ विजेता । २ हिम्मती । साहसी । ३ आजाद । मुक्त । स्वतंत्र । ४ भार से मुक्त । ५ मोटा । ६. प्रसन्न । सुंदर । ७ उच्च (स्वर) । ८ योग्य । अनुकूल । [को०] ।

उद्धूत—वि० [सं०] १ ऊपर उछाला हुआ । २ उन्नत । ऊँचा । ३ हिलाया हुआ । कणित [को०] ।

उद्धूनन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ ऊपर उठालना या फेंकना । २ हिलाना । ३ उठाना [को०] ।

उद्धूपन—सञ्ज्ञा पुं० [म०] धूपयुक्त करना । वासित करना [को०] ।

उद्धूलन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] धूलि या मलम आदि से युक्त करना । [को०] ।

उद्धूषण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रोगटे खड़े होना । रोमाच । पुलक [को०] ।

उद्धृत^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गाँव के वे बृद्ध जन जो गाँव सबधी पुरानी घटनाओं से परिचित तथा समय पर उनको प्रकाशित करनेवाले हों ।

विशेष—मध्यकाल में सीमा सबधी भगडों का इन्हीं लोगों के साक्ष्य के अनुसार निर्णय किया जाता था । आजकल पटवारी (लेखपाल) ही इन लोगों का स्थानपन्न है ।

उद्धृत^२—वि० [सं०] १ उगला हुआ । २ ऊपर उठाया हुआ । ३ अन्य स्थान से त्यो का ज्यो किया हुआ । जैसे,—(क) यह लेख उसका लिखा नहीं है कहीं से उद्धृत है । (ख) इन उद्धृत वाक्यों का अर्थ बतलाओ । ४ वात । वमित [को०] । ५ खुना हुआ । अनावृत्त [को०] । ६ अलग या पृथक् किया हुआ [को०] । ७ उन्मूलन । उद्गाटित [को०] । ८ विहीन [को०] । ९ चुना हुआ । छाँटा हुआ [को०] । १० अलग अलग हिस्सों में विभक्त [को०] । ११ बचाया हुआ । रक्षित [को०] ।

उद्धृति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ उद्धार । निकालना, बचाना या रक्षा करना । २ उद्धारण देना । ३ हटाना । दूर करना [को०] ।

उद्धौ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उद्धव] कृष्ण के चाचा और सखा एक यादव । उ०—पुनि तिनकी पद पंज रज अज अजहूँ छिछै । उद्धौ शुद्धि विशुद्धनु सौ पुनि सो रज इछै ।—नद० ग्रंथ, पृ० ४१ ।

उद्ध्वान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चूल्हा । सिंगडी [को०] ।

उद्ध्वस—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ नाश । उच्छेद । कर्कशता । कठोरता (बाणी की) । (रोग से) ग्रस्त होना [को०] ।

उद्ध्वस्त—वि० [सं०] ध्वस्त । गिरा पड़ा हुआ । टूटा हुआ । भग्न । नष्ट ।

उद्धव^१—वि० [सं० उद्धवन्ध] वधनमुक्त । छूटा हुआ [को०] ।

उद्धव^२—सञ्ज्ञा पुं० १ काँसी लगा लेना । २ लटकाना [को०] ।

उद्धवक^१—वि० [सं० उद्धवन्धक] छुड़ानेवाला । मुक्त करनेवाला । [को०] ।

उद्धवक^२—सञ्ज्ञा पुं० एक मिश्रित जाति । जातिविशेष जो कपडा धोने का काम करती है [को०] ।

उद्धघन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उद्धघन] १ दे० 'उद्धघ' । २ छोड़ना । मुक्त करना [को०] ।

उद्धघनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] हुक । काँटी । खूँटी [को०] ।

उद्देशक^२—संज्ञा पुं० १ दृष्टात । उदाहरण । २ निर्देशक व्यक्ति । ३. प्रश्न (गणित) ।

उद्देशन—संज्ञा पुं० [सं०] दिखलाने या बताने की क्रिया [को०] ।

उद्देश्य^१—वि० [सं०] १ लक्ष्य इष्ट । २ स्पष्ट करने योग्य (को०) ।

उद्देश्य^२—संज्ञा पुं० १ वह वस्तु जिसपर ध्यान रखकर कोई बात कही या की जाय । अभिप्रेत अर्थ । इष्ट । जैसे,—किस उद्देश्य से तुम यह कार्य कर रहे हो । २ वह जिसके विषय में कुछ विधान किया जाय । वह जिसके संबंध में कुछ कहा जाय । विशेष्य । विशेष का उल्टा । जैसे,—वह पुरुष दड़ा वीर है' इस वाक्य में 'वह पुरुष' या 'पुरुष' उद्देश्य है और 'वीर है' या 'वीर' विशेष्य है ।

यौ०—उद्देश्य-विधेय-भावा = उद्देश्य और विधेय का संबंध । विशेषण विशेष्य का भाव ।

उद्देष्टा—वि० [सं० उद्देष्ट] १ संकेत करनेवाला । २ किसी लक्ष्य के अनुसार काम में प्रवृत्त होनेवाला [को०] ।

उद्देस^७—संज्ञा पुं० [सं० उद्देश] दे० 'उद्देश्य' । उ०—कवन सु फल काके उद्देस । कवन देवता नेस सुरेस ।—नद० ग्रं०, पृ० ३०५ ।

उद्देहका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीमक [को०] ।

उद्देत^१^७—वि० [सं० उद्योत] प्रकाश । उ०—वन ते घर आवैं नही घर ते वन नहि जाइ, सुंदर रवि उद्देत तें तिमिर बहा रहाइ ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ८११ ।

उद्देत^२—वि० १ प्रकाशित । चमकीला । २ उदित । उत्पन्न । उ०—काहू को न भयो कहूँ ऐसो समुन न होत, पुर पैठत श्रीराम के भयो मित्र उद्देत ।—केशव (शब्द०) ।

उद्देतितार्ई^७—संज्ञा स्त्री० [सं० उद्योतित + हि० आई (प्रत्यय)] चमकीलापन । प्रकाश ।

उद्देत^३—वि० [सं० उद्योत] प्रकाशित । ज्योतिर्युक्त । कांतियुक्त [को०] ।

उद्देत^४—संज्ञा पुं० १ प्रकाश । उजाला । उ०—ज्ञान उद्योत करि हृदय गुरु वचन धरि जोग सग्राम के खेत आवैं ।—गुलाल०, वानी पृ० १०६ । २ चमक । झलक । आभा । ३ प्रकाशन । व्यक्तीकरण । आविष्करण (को०) । ४ ग्रंथ का विभाग । अध्याय या परिच्छेद (को०) । ५ महाभाष्य, काव्यप्रदीप और रत्नावली की टीका का नाम (को०) ।

उद्देतन—संज्ञा पुं० [सं० उद्देतन] [वि० उद्योतक, उद्योतनीय, उद्योतित]

१ प्रकाशित करने या होने की क्रिया । चमकने या चमकाने का कार्य । २ प्रकट करने की क्रिया । व्यक्त करने का कार्य ।

उद्देतित—वि० [सं० उद्देतित] प्रकाशित । प्रज्वलित । द्योतित । [को०] ।

उद्देवाव^१—वि० [सं०] दोहता या मागता हुआ [को०] ।

उद्देवाव^२—वि० पुं० अपमरण । पलायन [को०] ।

उद्देवुत—वि० [सं०] पनायनशील । भागनेवाला [को०] ।

उद्ध^७—क्रि० वि० [सं० ऊर्ध्व, पा० प्रा०, उद्ध = ऊँचा] ऊपर । उ०—मिली परस्पर डीठ वीर पंगिय रिस लगिय । जंगिय जुद्ध विरुद्ध उद्ध पलचर खग खगिय ।—सूदन (शब्द०) ।

उद्धर्त^१—वि० [सं०] [संज्ञा ओद्धर्त] १. उग्र । प्रचंड । अखड ।

अविनीत । जैसे,—वह उद्धर्त स्वभाव का मनुष्य है । २. प्रगल्भ । जैसे, वह अपने विषय का उद्धर्त विद्वान् है । ३ अभिमानी । गरवीला (को०) । ४ क्षुब्ध । उत्तेजित (को०) । ५ अत्यधिक । अतिशय (को०) । ६. ऊपर उठा हुआ (को०) । ७ राजसी । राजकीय (को०) ।

उद्धर्त^२—संज्ञा पुं० १ ४० मात्राओं का एक छंद जिसमें प्रत्येक दमवी मात्रा पर विराम होता है और अंत में गुरु लघु होते हैं । जैसे—विष्णु पूरन रघुवर, सुंदर हरि नरवर, विष्णु परम धुरंधर, राम जू सुख सार । मम आशय पूरन, बहु दानव मारन, दीनन जन तारन, कृष्ण जू हर भार । २ राजा का पहलवान । राजमहल ।

उद्धर्तपन—संज्ञा पुं० [सं० उद्धर्त + हि० पन (प्रत्यय)] उजड्डपन । उग्रता ।

उद्धर्तमनस्क—वि० [सं०] दे० 'उद्धर्तमना' ।

उद्धर्तमना—वि० [सं० उद्धर्तमनस्] गर्विष्ठ । अभिमानी [को०] ।

उद्धर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अखडपन । उजड्डपन । २ अभिमान । गर्व । ३ उत्थान । उठान । ४ आघात । चोट । मारना [को०] ।

उद्धर्ता^७—क्रि० अ० [सं० उद्धरण] ऊपर उठना । उठना । छितराना । बिखरना । उ०—जरै वाँस ओ काँस उद्धर्त फुलगा । नचै भूमि को पूत कै कोटि अगा ।—सूदन (शब्द०) ।

उद्धर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १ ध्वनित करना । बजाना । २ जोर जोर से साम लेना [को०] ।

उद्धरण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्धरणीय, उद्धर्त] २ ऊपर उठना । २ मुक्त होने की क्रिया । छुटकारा । ३ बुरी अवस्था से अच्छी अवस्था में आना । ४ पढ़े हुए पिछले पाठ का अभ्यास के लिये फिर फिर पढ़ना । ५ किसी पुस्तक या लेख के किसी अंश को दूसरी पुस्तक या लेख में ज्यों का त्यों रखना ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

६ उन्मूलन । उखाड़ना । ७ उठाना । उत्थापन । ८ परोसना ।

९ वमन । १० निकालना । भीतर से बाहर करना (को०) ।

११ वमन किया हुआ पदार्थ (को०) ।

उद्धरणी—संज्ञा स्त्री० [सं० उद्धरण + हि० ई (प्रत्यय)] पढ़े हुए पिछले पाठ को अभ्यास के लिये बार बार पढ़ना ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

उद्धर्ता^७^१—क्रि० सं० [सं० उद्धरण] उद्धार करना । उबारना । उ०—अब हूँ कौन जतन अनुसरी, इहि मारों अपनेन उद्धर्त ।—नद० ग्रं०, पृ० २६१ ।

उद्धर्ता^२—क्रि० अ० वचना । छूटना । मुक्त होना । उ०—सूम सदा ही उद्धर्त दाता जाय नरक, कहै कवीर ये साख सुनि मति कोइ जाय सरक ।—कवीर (शब्द०) ।

उद्धर्ता^३—वि० [सं० उद्धर्त] १ उद्धार करनेवाला । संकट से बचानेवाला । उठानेवाला । २ जायदाद में हिस्सेदार । ३ संपत्ति को बचानेवाला । ४ उद्धरणी करने या दुहरानेवाला । ५ उद्धरण देनेवाला [को०] ।

बल सो करिहे ग्रस कह —'। (नेपथ्य मे) हैं । मेरे जीते चद्र को कौन बल से ग्रस कर सकता ? सूत्र०—जेहि बुध रच्छत आप' । भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० १३८ । यहाँ सूत्रधार ने तो ग्रहण का विषय कहा था किन्तु चाणक्य ने 'चद्र' शब्द का अर्थ चद्रगुप्त प्रकट करके प्रवेश करना चाहा, इसी से उद्घातक प्रस्तावना हुई ।

उद्घातो—वि० [सं० उद्घातिन्] [स्त्री० उद्घातिनी] १ ठोकर मारनेवाला । धक्का पहुँचानेवाला । २ ऊँचा नीचा । ऊबड़ खावड़ ।

उद्घुष्ट^१—वि० [सं०] घोषित । जिसकी घोषणा हो चुकी हो [को०] ।
उद्घुष्ट^२—सज्ञा पुं० कोलाहन । शोरगुल [को०] ।
उद्घोष—सज्ञा पुं० [सं०] १ घोषणा । डोंडी पीटना । २ चर्चा । प्रवाद । ३ निवाद । गर्जन [को०] ।

उद्द—वि० [सं० उद्दम्भ] [सज्ञा उद्दम्भ] १ जिसे दड इत्यादि का कुछ भी भय न हो । अक्खड । निडर । उज्जड । प्रचड । उद्धत । २ जिसका डडा ऊँचा हो ।

उद्दपाल—सज्ञा पुं० [सं० उद्दण्डपाल] १ दडनायक । दडाधिकारी । २ एक प्रकार की मछली । ३ एक तरह का साँप [को०] ।
उद्दतुर—वि० [सं० उद्दतुर] १ बड़े दाँतोवाला । २ ऊँचा । ३ डरावना [को०] ।

उद्दश—सज्ञा पुं० [सं०] १ मच्छड । २ खटमल । ३ जू [को०] ।
उद्दत^१—वि० [सं० उद्यत] दे० 'उद्यत' ।
उद्दम^१—सज्ञा पुं० [सं०] १ वशीकरण । वश में करना । २ दमन करना । नीचा दिखाना [को०] ।

उद्दम^२—सज्ञा पुं० [सं० उद्यम] दे० 'उद्यम' ।
उद्दर्शन सज्ञा पुं० [सं०] स्पष्टीकरण । साफ करना । द्रष्टव्य बनाना [को०] ।

उद्दात—वि० [सं० उद्दान्त] १ विनीत । नम्र । २ उत्साहवान् [को०] ।
उद्दान—सज्ञा पुं० [सं०] १ वधन । बाँधना । २ उद्यम । ३ बड़वानल । ४ चूल्हा । ५ लग्न । ६ मध्य । कमर [को०] ।

उद्दाम^१—वि० [सं०] १ वधनरहित । २ निरकुश । उग्र । उद्द । बेकहा । ३ स्वतंत्र । ४ महान् । गम्भीर । ५ गर्वयुक्त । अभिमानी [को०] । ६ भयदायक । भयकर [को०] । ७ बडा । विशाल [को०] ।

उद्दाम^२—सज्ञा पुं० १ वरुण । २ दडक वृत्त का एक भेद जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण और १३ रगण होते हैं । ३ यम [को०] ।

उद्दाल—सज्ञा पुं० [सं०] १ उद्दालक ऋषि २ बहुवारक नाम का पोधा [को०] ।

उद्दालक—सज्ञा पुं० [सं०] १ वनकोदव नाम का अन्न । २ एक ऋषि का नाम । ३ एक प्रकार का मधु [को०] । ४ जिसकी सावित्री पतित हो गई हो, अर्थात् १६ वर्ष की अवस्था हो जाने पर भी जिसको गायत्री दीक्षा न मिली हो, उसके लिये कर्तव्य एक व्रत ।

विशेष—इम व्रत में दो महीने जो, एक महीना सिखरन (दही, दुध और चीनी का शरबत), आठ रात धी और छठ रात

बिना माँगे मिले हुए पदार्थ पर निर्वह करना चाहिए । इसके पीछे तीन रात केवल जन पीकर एक दिन रात उपवास करना चाहिए ।

उद्दित^१—वि० [सं० उद्यत, उदित, उद्धत] दे० १ 'उद्यत' । २ दे० 'उदित' । ३ दे० 'उद्धत' ।

उद्दित^२—वि० [सं०] बँधा हुआ । प्रतिबद्ध [को०] ।

उद्दिन—सज्ञा पुं० [सं०] दोपहर । मध्याह्न [को०]

उद्दिम^१—सज्ञा पुं० [सं० उद्यम] दे० 'उद्यम' । उ०—मधवा है मेघनि को राजा, यह उद्दिम सब उनके काजा ।—नद० ग्र०, पृ० १६० ।

उद्दिष्ट^१—वि० [सं०] १ दिखाया हुआ । इंगित किया हुआ । २ लक्ष्य । अभिप्रेत । ३ बताया अथवा कहा हुआ [को०] । ४ ख्यात । प्रसिद्ध । मशहूर [को०] ।

उद्दिष्ट^२—सज्ञा पुं० १ पिगल में वह किया जिससे यह बतलाया जाता है कि दिया हुआ छद मात्राप्रस्तार का कौन सा भेद है । २ लाल चदन । ३ किसी वस्तु का वह भोग जो मालिक से आज्ञा प्राप्त करके किया जाय ।

उद्दीप—सज्ञा पुं० [सं०] १ प्रज्वालन । जलाना । २ उत्तेजित या उद्दीप्त करना । ३ एक प्रकार की लसदार चीज (जैसे गोद) । ४ गुग्गुलु [को०] ।

उद्दीपक^१—वि० [सं०] [स्त्री० उद्दीपिका] १. उद्दीपन करनेवाला । उत्तेजित करनेवाला । उमाडनेवाला । २ जलानेवाला [को०] ।

उद्दीपक^२—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की चिड़िया [को०] ।

उद्दीपका—सज्ञा स्त्री० [सं०] चीटी का एक भेद [को०] ।

उद्दीपन—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्दीपनीय, उद्दीपक, उद्दीपित, उद्दीप्त, उदीप्य] १ उत्तेजित करने की क्रिया । उमाडना । बडाना । जगाना । २ उद्दीपन करनेवाली वस्तु । उत्तेजित करनेवाला पदार्थ । ३ काव्य में वे विभाव जो रस को उत्तेजित करते हैं जैसे शृंगार रस का उद्दीपन करनेवाले सखा, सखी, दूती, ऋतु, पवन, वन, उपवन, चाँदनी आदि हैं । ४ ज्वलित करना । जलाना [को०] । ५ मृत व्यक्ति को जलाना । शवदाह [को०] ।

उद्दीपित—वि० [सं०] १ उद्दीप्त किया हुआ । २ जागरित किया हुआ [को०] ।

उद्दीप्त—वि० [सं०] १ जगाया हुआ । २ उत्तेजित । चमकीला । दीप्त [को०] ।

उद्दीप्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ जागरण । २ उत्तेजन [को०] ।

उद्दीप्त्र^१—वि० [सं०] चमकता हुआ । उद्दीप्त [को०] ।

उद्दीप्त्र^२—सज्ञा पुं० गुग्गुलु [को०] ।

उद्देश—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० उद्दिष्ट, उद्देश्य उद्देशित] १ अभिलाषा । चाह । इष्ट । मशा । मतलब । अभिप्राय । २ हेतु । कारण । ३ अनुसन्धान । ४ न्याय में प्रतिज्ञा । ५ स्पष्टीकरण [को०] । ६ निश्चयन । निर्धारण [को०] । ७ उच्च स्थान । ऊँचा पद [को०] । ८ स्थान । जगह [को०] ।

उद्देशक^१—वि० [सं०] उदाहरणस्वरूप [को०] ।

वमन । ३. वेग से बाहर निकला हुआ तरल पदार्थ । ४. वमन की हुई वस्तु । कै । ५. बूक । कफ । ६. डकार । खट्टी डकार । ७. बाह । अत्रविषय । ८. घोर शब्द । तुमुल शब्द । धरधराहट । ९. किसी के विरुद्ध बहुत दिनों से मन में रखी हुई बात को एकवारगी कहना । जैसे, उनकी बातें सुनकर न रह गया, मैंने भी अपने हृदय का उद्गार खूब निकाला ।

यो०—उद्गारचूड़क = एक पक्षी ।

उद्गारकमणि—संज्ञा पुं० [न०] विद्रुम । प्रवाल [को०] ।

उद्गारी^१—वि० [स० उद्गारिन्] [वि० स्त्री० उद्गारिणी] १. उगलने वाला । बाहर निकालनेवाला । २. प्रकट करनेवाला ।

उद्गारी^२—संज्ञा पुं० ज्योतिष में बृहस्पति के १२वें युग का दूसरा वर्ष । इसमें राजस्व और असमान वृष्टि होती है । इसका दूसरा नाम रक्तोद्गारी भी है ।

उद्गारण—संज्ञा पुं० [स०] [वि० उद्गोर्ण] १. उगलना । बाहर निकलना । २. वमन । ३. डकार [को०] ।

उद्गीति—संज्ञा स्त्री० [स०] १. आर्षा छंद का एक भेद जिसके विषम पदों में १२ और दूसरे में १५ तथा चौथे में १८ मात्राएँ होती हैं । इसके विषम चरणों में जगण नहीं होता । इसे विगाया और विगाहा भी कहते हैं । जैसे—राम भजहु मनलाई तन मन धन के सहित मीठा । रामहि निसि दिन ध्यावौ, राम भजहि तबहि जग जीता । २. जोर से गाना गाना [को०] । ३. साम का गान [को०] ।

उद्गीथ—संज्ञा पुं० [सं०] सामवेद के गाने का एक भेद । सामवेद का द्वितीय खंड । एक प्रकार का सामगान । उ०—जिसमें शीतल पवन गा रहा पुलकित हो पावन उद्गीथ ।—कामायनी, पृ० ३४ । २. ओकार । ३. सामगान ।

उद्गीरण—संज्ञा पुं० [स०] १. बाहर निकाल देना । २. उगलना । बूकना । ४. वमन करना [को०] ।

उद्गीर्ण—वि० [स०] १. उगला हुआ । मुँह से निकला हुआ । २. निकला हुआ । बाहर किया हुआ । ३. वमन किया हुआ ।

उद्गूर्ण—वि० [स०] १. उठाया हुआ । २. उत्तेजित । क्षुब्ध [को०] । उद्गैय—वि० १. [स०] गाए जाने योग्य । २. गाया जानेवाला [को०] ।

उद्गेही—संज्ञा स्त्री० [स०] एक प्रकार की चींटी । उदैही [को०] । उद्ग्रय^१—वि० [स० उद्ग्रन्य] विना वधन का । वधनमुक्त । ढीला [को०] ।

उद्ग्रय^२—संज्ञा पुं० पुस्तक का एक अध्याय या विभाग [को०] । उद्ग्रयि—वि० [स० उद्ग्रन्य] १. खुला हुआ । मुक्त । २. विरक्त । माया के वधन से मुक्त [को०] ।

उद्ग्राह—संज्ञा पुं० [स०] १. कर के लिये एकत्र धन । २. प्रतिवाद । ३. ऊपर उठाना या ले लेना । ४. उन्नति की ओर बढ़ना । ऊँचे जाना । ५. प्रातिशाख्य में कथित एक प्रकार की स्वरसंधि । इसे उद्ग्राह पदवृत्ति भी कहते हैं [को०] ।

उद्ग्राहित—वि० [स०] १. हटाया हुआ । लिया हुआ । २. उपन्यस्त । रखा हुआ । ३. बँधा हुआ । ४. स्मरण किया हुआ । स्मृत । ५. कथित । जिसका उल्लेख किया गया हो । ६. श्रेष्ठ [को०] ।

उद्ग्रीव—वि० [स०] १. गर्दन उठाए हुए । उन्नतशिर । उ०—हींस रहे ये उग्र अश्व उद्ग्रीव हो, मानो उसका उडा जा रहा जीव हो । साकेत, पृ० १२७ । २. उत्कण्ठित । उ०—गौर से सुननेवाले जमाने को उद्ग्रीव छोड़कर यह महान कलाकार खुद ही सो गया ।—प्रेम० और गोकी, पृ० १२५ ।

उद्ग्रीवी—वि० [स० उद्ग्रीविन्] दे० 'उद्ग्रीव' ।

उद्ध—संज्ञा पुं० [स०] १. श्रेष्ठता । महत्ता । जैसे, ब्राह्मणोद्ध = श्रेष्ठ या उत्तम ब्राह्मण । २. प्रसन्नता । ३. रिक्त हस्त । ४. अग्नि । ५. आदर्श । नमूना । ६. प्राणवायु [को०] ।

उद्धटित—संज्ञा पुं० [स०] इशारा । संकेत [को०] ।

उद्धट्टक—संज्ञा पुं० [स०] ताल के ६० मुख्य भेद में से एक ।

उद्धट्टन—संज्ञा पुं० [स०] [संज्ञा स्त्री० उद्धट्टना] १. मुक्त करना । खोलना । २. फैलना । छिड़कना । ३. रगड़ । सघर्ष [को०] ।

उद्धट्टित—वि० [स०] १. उन्मुक्त । खोला हुआ । २. पृथक् किया हुआ [को०] ।

उद्धन—संज्ञा पुं० [स०] बढई के काम करने की वह लकड़ी जिसपर रखकर वह लकड़ियों को गड़ता है । ठीहा [को०] ।

उद्धर्पण—संज्ञा पुं० [स०] १. रगड़ । २. घोटने की क्रिया । ३. मारना । ग्राहण । ४. उडा । सोटा [को०] ।

उद्धस—संज्ञा पुं० [स०] मांस [को०] ।

उद्धाट—संज्ञा पुं० [स०] १. खोलने या दिखाने का कार्य (दाँत सवधी) । २. वह स्थान जहाँ राज्य की ओर से माल को खोलकर जाँच हो । चौकी ।

उद्धाटक^१—वि० [स०] उद्धाटन करनेवाला [को०] ।

उद्धाटक^२—संज्ञा पुं० १. ताली । कुजी । २. कुएँ पर लगी हुई पानी खींचने की चरखी [को०] ।

उद्धाटन—संज्ञा पुं० [स०] [वि० उद्धाटक, उद्धाटनीय, उद्धाटित, उद्धाट्य] १. खोलना । उवाडना । २. प्रकट करना । प्रकाशित करना । ३. किसी प्रसिद्ध व्यक्ति द्वारा किसी कार्य का प्रारम्भ ।

उद्धाटित—वि० [स०] १. खोला हुआ । २. ऊपर उठाया हुआ । ३. शुरू किया हुआ ।

उद्धात—संज्ञा पुं० [स०] [वि० उद्धाटक, उद्धातकी] १. ठोकर । धक्का । आघात । २. आरम्भ । ३. हवाला । विवरण । उल्लेख [को०] । ४. शस्त्र । आयुध [को०] । ५. हिलना । हलमगाना [को०] । ६. गदा या परिघ [को०] । ७. प्राणायाम [को०] । ८. ग्रथ का विभाग । अध्याय [को०] ।

उद्धातक^१—वि० [सं०] [स्त्री० उद्धातिका] १. धक्का मारनेवाला । ठोकर लगानेवाला । २. आरम्भकर्ता [को०] ।

उद्धातक^२—संज्ञा पुं० नाटक में प्रस्तावना का एक भेद ।

विशेष—इसमें सूत्रधार और नटी आदि की कोई बात सुनकर उसका अर्थ लगाता हुआ कोई पात्र प्रवेश करता है या नेपथ्य से कुछ कहता है । जैसे,—सूत्रधार-प्यारी, मैंने ज्योतिषशास्त्र के चौंसठों अंगों में बड़ा परिश्रम किया है । जो हो, रसोई तो होने दो । पर आज ग्रहण है, यह तो किसी ने तुम्हें घोखा ही दिया है क्योंकि 'चंद्रविग्रह पूर न आए' के तु हठ प ।

उदोर्ण-वि० [स०] १. कथित । २. विकसित । ३. पैदा किया हुआ ।
४. आविष्ट । उत्तेजित । ५. उदार । उत्तम । ६. प्रस्तुत ।
तत्पर (सस्त्रसधानार्थ) । ७. महान् । श्रेष्ठ । ८. अभिमानी ।
गर्विष्ठ [को०] ।

उदुवर-सज्ञा पुं० [स० उदुम्बर] [वि० औदुवर] १. गूँर । २.
देहली । डघोड़ी । नपुंसक । ४. एक प्रकार का कोड़ । ५.
तावा । ६. अस्सी रत्ती की एक तोल ।

पर्या०—उडुवर । उडुवल ।

उदुवरपर्णी—सज्ञा स्त्री० [स० उदुम्बरपर्णी] दती । दाँती । एक वृक्ष ।

उदुवल—वि० [स० उदुम्बल] शक्तिशाली । ताकतवर [को०] ।

उदुम्रा—सज्ञा पुं० [स० ऋतु, पा० प्रा० उतु=एक प्रकार का भोजन]
एक प्रकार का मोटा जड़हन ।

उदुष्ट—वि० [स०] लाल [को०] ।

उदुखल—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'उलूखल' ।

उदूढ—वि० [स०] १. विवाहित । २. प्राप्त । स्वायत्त । ३. लवा ।
ऊँचा । ४. भारी । वजनी । ५. स्थूल । पीन । ६. सारवान् ।
सारयुक्त । ७. बहुत अधिक ।

उदूल—सज्ञा पुं० [अ०] अवज्ञा । नाफमानी । अवहेलना [को०] ।

उदूलहुक्मी—सज्ञा स्त्री० [अ० उदूल+हुक्म+फा० ई (प्रत्य०)]
आज्ञा न मानना । आज्ञा का उल्लंघन ।

उदेग—सज्ञा पुं० [स० उद्देग] उद्देग । उचाट । उ०—देश काल बल
ज्ञान लोभ करि हीन है । स्वामि काम मैं लीन सुसील कुलीन
है । बहु विधि बरने बानि हिये नहिँ भै रहै । पर उर करे उदेग
दूत तासों लहै ।—सूदन (शब्द०) ।

उदेजय—वि० [स०] १. कपिन करनेवाला । काँसानेवाला । २.
भयकर । डरावना । [को०] ।

उदेल—सज्ञा पुं० [अ० ऊव] लावान ।

उदेस—सज्ञा पुं० [स० उद्देश] खोज । अनुसन्धान । उ०—पिय
कँ उदेश न पायो कैसे क जिय ठहराय ।—गुलाल० बानी
पृ० ८२ ।

उदेश—सज्ञा पुं० [स० विदेश, प्रा० विएस, विदेस] विदेस अथवा
स० उत् = उन्नत + देश] अन्य देश । परदेश । उ०—कमर
बाँधि खोजन चले, पलटू फिरे उदेस । पट दरसन सब पचि मुए,
कोऊ न कहा सदेस ।—पलटू० बानी, भा० ३, पृ० ११५ ।

उदै—सज्ञा पुं० [स० उदय] दे० 'उदय' । उ०—पूरन ससि प्राची
उदै विहरनि रुचि कीनी ।—घनानन्द, पृ० ४५५ ।

उदैही—सज्ञा स्त्री० [स० उद्देहि] दीमक । उ०—वाँकी फिर
अगह बली, अग उदैही जाम ।—पृ० रा० १११० ।

उदो—सज्ञा पुं० [स० उदय] दे० 'उदय' ।

उदोत^३—सज्ञा पुं० [स० उद्योत] प्रकाश । दीप्ति ।
उ०—गग नीर विधु रुचि भलक मृदु मुसुकानि उदोति ।
कनक भोन के रँप लौ जगमगाति तन जोति ।—मति० ग्र०,
पृ० ४२१ । ३. अभिवृद्धि । बढ़ती । उन्नति ।

यो०—उद्योतकर ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

उदोत^३—वि० १. प्रकाशित । दीप्त । उ०—रुबहुँ न मूर्ति बिलग दोउ
होती । दिन दिन करती कना उदोती ।—रघुनाथ (शब्द०) ।
२. शुभ्र । उत्तम । उ०—एक ब्राह्मणी रचै एक धोती । वर्ष
दिवस महँ अतिहिँ उदोती ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

उद्योतकर—वि० [स० उद्योतकर] १. प्रकाश करनेवाला । प्रकाशक ।
२. चमकानेवाला । उज्ज्वल करनेवाला । उ०—प्रोपधि बर
वश उद्योतकर सूर सूरता लोप रत । गोपाल (शब्द०) ।

उद्योती—वि० [स० उद्योत] [स्त्री० उद्योतिनी] प्रकाश करनेवाला ।
उदय करनेवाला । विकासक । उ०—ग्रहहास की रोरनि
चितित मन की द्योतिनि, कलित क्लिक्लि मि त मोद उर
भाव उद्योतिनि ।—आधर पाठक (शब्द०) ।

उदी—सज्ञा पुं० [स० उदय] दे० 'उदय' ।

उद्गाध—वि० [स० उद्गन्ध] १. तीखी गंधवाला । २. सुगंध
युक्त [को०] ।

उद्गत—वि० [स०] १. निकला हुआ । उद्भूत । उत्पन्न । २. प्रकट ।
जाहिर । ३. फैला हुआ । व्याप्त । ४. वमन किया हुआ ।
छदित । ५. प्राप्त । लब्ध । ६. गया हुआ । गमित [को०] ।

उद्गता—सज्ञा स्त्री० [स०] एक वृत्त का नाम [को०] ।

उद्गतार्थ—सज्ञा पुं० [स०] वह पदार्थ या धरोहर जिसका पडे पडे ही
भोग आदि बढ़ने से दाम चढ़ गया हो ।

उद्गतासु—वि० [स०] निष्प्राण । मृत [को०] ।

उद्गति—सज्ञा स्त्री० [स०] १. ऊपर की ओर जाना । आरोह । २.
वमन । छदि । ३. उदय । ४. उत्स । मूल [को०] ।

उद्गम—सज्ञा पुं० [स०] १. उदय । अविर्भाव । २. उत्पत्ति का
स्थान । उद्भवस्थान । निकास । मखरज । ३. वह स्थान जहाँ
से कोई नदी निकलती हो । ४. वमन [को०] । ५. जाना ।
निकलना । जैसे, प्राणोद्गम [को०] । ६. खडा होना । भर-
भराना । जैसे, रोमोद्गम [को०] । ७. अक्रुर । अखुम्रा [को०] ।
८. जन्म । पैदाइश । उत्पत्ति [को०] । ९. अवलोकन । दृष्टि
[को०] ।

उद्गमन—सज्ञा पुं० [स०] उगना । प्रकट होना [को०] ।

उद्गमनीय—सज्ञा पुं० [स०] १. स्वच्छ या धुले हुए वस्त्र का जोड़ा ।
२. धुला वस्त्र [को०] ।

उद्गाढ—वि० [स०] १. गहरा २. अतिशय । अधिक । ३. प्रचंड
[को०] ।

उद्गाता—सज्ञा पुं० [स० उद्गातृ] यज्ञ मे चार प्रधान ऋत्विजों मे
एक जो सामवेद के मन्त्रों का गान करता है और सामवेद
सबधी कृत्य कराता है ।

उद्गातृ—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'उद्गाता' । उ०—एक उद्गातृ चाहिए
था जो सोम गाए ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ४२ ।

उद्गाथा—सज्ञा स्त्री० [स०] आर्था या गथा छंद का एक प्रकार
[को०] ।

उद्गार—सज्ञा पुं० [स०] [वि० उद्गारी, उद्गारित] १. तरल
पदार्थ के वेग से बाहर निकलने या ऊपर उठने की क्रिया ।
उवाल । उफान । २. मुँह से निकल पड़ने की क्रिया ।

उदासीवाजा—सज्ञा पुं० [हि० उदासी + फा० वाजा] एक प्रकार का भोग या फूँककर बजाया जानेवाला वाजा ।

उदास्थित^१—वि० [सं०] नियुक्ति । काम पर लगाया हुआ [को०] ।

उदास्थित^२—सज्ञा पुं० १ द्वारपाल । २ चर । ३ अधीनक । निरीक्षक । ४. सन्यास आश्रम का त्यागकर गुप्तचर का काम करनेवाला व्यक्ति [को०] ।

उदाहृत—सज्ञा पुं० [हि० ऊदा + हृत (प्रत्यय)] ललाई मिला हुआ नीलापन । ऊदापन ।

उदाहरण—सज्ञा पुं० [म०] [वि० उदाहरणीय, उदाहार्य, उदाहृत] १. दृष्टांत । मिसाल । न्याय में वाक्य के पाँच प्रवयवों में से तीसरा जिसके साथ साध्य का साधर्म्य या वैधर्म्य होता है ।

विशेष—उदाहरण दो प्रकार का होता है, एक 'अन्वयी' और दूसरा 'व्यतिरेकी' । जिससे साध्य के साथ साधर्म्य होता है वह अन्वयी है, जैसे—शब्द अनित्य है, उत्पत्ति धर्मवाला होने से घट की तरह । यहाँ घट अन्वयी उदाहरण है । व्यतिरेकी वह है जिसका साध्य के साथ वैधर्म्य हो, जैसे—शब्द अनित्य है उत्पत्ति धर्मवाला होने से । जो उत्पत्ति धर्मवाला नहीं होता, वह नित्य होता है, जैसे, आकाश, आत्मा आदि ।

३ आरंभ (को०) । ४. एक प्रकार का अर्थालंकार जिसमें प्रस्तुतार्थ के समर्थन के लिये उसी की समता के अप्रस्तुत को उदाहरणस्वरूप उपस्थित कर देते हैं (को०) ।

उदाहार—सज्ञा पुं० [सं०] १ उदाहरण । दृष्टांत । २ वक्तव्य का आरंभ [को०] ।

उदाहृत—वि० [सं०] ऊपर उठाया हुआ [को०] ।

उदाहृत—वि० [सं०] १ कथित । उक्त । २ उदाहरण या दृष्टांत के रूप में प्रयुक्त [को०] ।

उदाहृति—सज्ञा स्त्री [सं०] १ नाट्यशास्त्र के अनुसार किसी प्रकार का उत्कर्षयुक्त वचन कहना, जो गर्भसंधि के १३ अंगों में से एक है । जैसे—रत्नावली में विदूषक का यह कथन—(हर्ष से) आज मेरी बात मुनकर प्रिय मित्र को जैसा हर्ष होगा, वैसा तो कौशावी का राज्य पाने से भी न हुआ होगा । अच्छा, अब चलकर यह शुभ सवाद सुनाऊँ उदाहरण । दृष्टांत [को०] ।

उदिग्रान्—सज्ञा पुं० [सं० उद्यान] दे० 'उद्यान' ।

उदिग्राना—क्रि० प्र० [सं० उद्दिग्न्] उद्दिग्न् होना । धवडाना । हैरान होना । उ०—मर रे कौन कुमति तैं लीनी । परदारा निर्दिधा रस रचि, और रामभगति नहि कीन्ही । ना हरि भज्यो न गुरुजन सेयो नहि उपज्यो कछु जाना । घट ही माँहि निरजन तेरे तैं खोजत उदिग्राना ।—तेगबहादुर (शब्द०) ।

उदित^१—वि० [सं०] [स्त्री० उदिता] १ जो उदय हुआ हो । निकला हुआ । २ प्रकट । जाहिर । ३ उज्ज्वल । स्वच्छ । ४ प्रफुल्लित । प्रसन्न । ५ कहा हुआ । कथित । ६ उच्च । ऊँचा (को०) । ७ उत्पन्न । पैदा हुआ (को०) । ८. तत्पर । सज्ज । तैयार (को०) ।

उदित^२—सज्ञा पुं० १. एक प्रकार की सुगंध । २ एक प्रकार का उच्चारण [को०] ।

उदितयौवना—सज्ञा स्त्री [सं०] मुग्धा नायिका के सात भेदों में से एक जिसमें तीन हिस्सा यौवन और एक हिस्सा लडकपन हो ।

उ०—तीन अश जोवन जहाँ लरिकाई इक अस । उदितयौवना सो तहाँ वरनत कवि अवतस ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

उदिताचल—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उदयाचल' ।

उदिता—सज्ञा स्त्री [सं०] १ (सूर्य का) चढ़ना या ऊपर उठना । २ सनिवेश । निवेशन । ३ अस्त होना । ४ वक्तव्य [को०] ।

उदिम—सज्ञा पुं० [सं० उद्यम] दे० 'उद्दिम' । उ०—दादू उदिम ओगुण को नहीं, जे करि जाएँ कोइ । उदिम में आनद है, जे साईं सेती होइ ।—दादू बानी, पृ० २३६ ।

उदियान—सज्ञा पुं० [सं० उदयान] दे० 'उद्यान' ।

उदियाना—क्रि० प्र० [सं० उद्दिग्न्] धवडाना । उद्दिग्न् होना ।

उदीक्षण—सज्ञा पुं० [सं०] १ देखना । तजबीजना । २ ऊपर की ओर देखना [को०] ।

उदीची—सज्ञा स्त्री [म०] [वि० उदीचीन, उदीच्य, औदिच्य] उत्तर दिशा ।

उदीचीन—वि० [सं० तुल० अवे० उदीचीन (=उत्तरी)] १. उत्तर दिशा का । उत्तर का । २ उत्तर की ओर । उत्तराभिमुख [को०] ।

उदीच्य^१—वि० [म०] १ उत्तर दिशा का रहनेवाला । २ उत्तर दिशा का । उत्तर की ओर का ।

उदीच्य^२—सज्ञा पुं० १ एक देश जो सरस्वती के उत्तर पश्चिम ओर है । २ किसी यज्ञ आदि कर्म के पीछे दान दक्षिणादि कृत्य । ३ एक सुगंधित पदार्थ (को०) । ४ ब्राह्मणों की एक शाखा ।

उदीच्य^३—सज्ञा पुं० [सं०] बैंगली छद का एक भेद जिसके विषम अर्थान् पहले और तीसरे चरणों में दूसरी और तीसरी मात्राएँ मिलकर एक गुह वरुण हो जाएँ । जैसे—हरिहि भज जाम आठहुँ । जजानहि तजिकै करी यही । तर्न मन दे लगा सर्व पाइही परम घाम ही सही ।

उदीतना—क्रि० प्र० [सं० उद्दीप्त, प्रा० उदित] प्रकाशित करना । उ०—दादू जी दयाल गुर अतर उदीतयो है ।—सुंदर ग्र०, भा० १, पृ० ६० ।

उदीर^१—वि० [सं०] बाढ़ के जल से प्लावित [को०] ।

उदीर^२—सज्ञा पुं० पानी की बाढ़ । जलप्लावन [को०] ।

उदीपन—सज्ञा पुं० [सं० उद्दीपन] दे० 'उद्दीपन' ।

उदीपित—वि० [सं० उद्दीपित] दे० 'उद्दीपित', 'उद्दीपन' ।

उदीपमान—वि० [सं०] १ उगता हुआ । २ विकसित । विकसित ।

उदीरण—सज्ञा पुं० [सं०] १ कथन । उच्चारण । २. बोलना । कहना । ३. फेंकना । क्षेपण (प्रत्यय का) [को०] ।

उदीरित—वि० [सं०] १. कथित । कहा हुआ । २ सञ्चुक्र । प्रयमित । उत्तेजित । ३ विकसित । प्रफुल्लित । ४. अभिवृद्धि । समुन्नत [को०] ।

यौ०—उदीरितयो = कुशाग्रबुद्धि । तीक्ष्णबुद्धि ।

उदारघो^१—सज्ञा स्त्री० उत्तम गुण । उत्कृष्ट बुद्धि (को०) ।

उदारना—क्रि० म० [स० उदारण] १ फाटना । विदीर्ण करना ।

उ०—भने रघुराज तैसे अतिथि से आदर को, आसु ही अनादर उदार्यो करि पीर को ।।—रघुराज (शब्द०) । २ गिराना । तोड़ना । ढाना । छिन्न भिन्न करना । उ०—रावण से गहि कोटिक मारो । कहहु तो जननि जानकी ल्याऊँ कहो तो लक उदारो । कहो तो अग्रही पंडि सुभट हति अनन सकल पुर जारो ।—सूर (शब्द०) ।

उदाराशय—वि० [स०] उदार आशय का । जिसका उद्देश्य उच्च हो । जिसके विचार सङ्कुचित न हो ।

उदावत्सर—सज्ञा पुं० [म०] वर्षविशेष । कालविशेष का निर्माण करने वाले पाँच वर्षों में से एक (को०) ।

उदावर्त—सज्ञा पुं० [स०] गुदा का एक रोग जिसमें काँच निकल आती है और मलमूत्र रुक जाता है । गुदाग्रह । काँच ।

विशेष—वैद्यक शास्त्र के अनुसार यह रोग वायु के विगडने से होता है । यह वायु अधोवायु, मल, मूत्र, जैमाई, आसु (रोवाई), छीक, डकार, वमन, काम, भूख, प्यास, नींद के वेगों को रोकने से तथा श्वासरोग से कुपित हो जाती है ।

उदावर्त—सज्ञा स्त्री० [म०] स्त्रियों का एक रोग जिसमें रजोधर्म रुक जाता है और ऋतुकाल में पीड़ा के साथ योनि से फेनयुक्त रश्मि या रज निकलता है ।

उदावसु—सज्ञा पुं० [स०] विदेहराज जनक के एक पुत्र का नाम (को०) ।

उदास^१—वि० [स० उत् + आस] १ जिसका चित्त किसी पदार्थ से हट गया हो । विरक्त । उ०—(क) घरही मर्है रहु मई उदासा । अंचल खप्पर शृंगी खासा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) तेहि के वचन मानि विश्वासा । तुम्ह चाहहु पति सहज उदासा । मानस, १।७६ । (ग) नि किंचन जन मैं मम वास । नारि सग ते रहौ उदास ।—सूर, १०।४१६५ । २ भगडे से अलग । निरपेक्ष । तटस्थ । जो किसी के लेन देन में न हो । उ०—(क) एक भरत कर समत कहही । एक उदास भाय सुनि रहहीं ।—मानस, २।४८ । ३ खिन्नचित्त । दुःखी । रजिदा । उ०—(क) साधू, भँवरा जग कली, निसि दिन फिरै उदास । टुक इक तहाँ विलविया जहँ शीतल शब्द निवास ।—कवीर (शब्द०) । (ख) हाड जरै ज्यो लाकडी केश जरै ज्यो घास । यह सब जलता देखि के भया कवीर उदास ।—कवीर (शब्द०) । रामचंद्र अवतार कहत हैं सुनि नारद मुनि पास । प्रकट भयो निश्चर मारन को सुनि वह भयो उदास ।—सूर (शब्द०) ।

उदास^२—सज्ञा पुं० १ दुःख । खेद । रज । उ०—कहहि कवीर दासन के दास । काहुहि सुख दे काहुहि उदास ।—कवीर (शब्द०) ।

उदास^३—सज्ञा पुं० [स०] १ ऊपर उठना । उठना । २ तटस्थता । विरक्ति । सन्यास (को०) ।

उदासना—क्रि० अ० [स० उवास से नामिक धातु] खिन्न या विरक्त होना । दुःखयुक्त होना ।

उदासना^४—क्रि० स० [स० उवासन] १ उजाड़ना । नष्ट करना । उ०—केशव अफल अकाश वायु बिल देश उदासी ।—केशव (शब्द०) । २ (विस्तर) समेटना या बटोरना । (फैला-हुआ विस्तर) षटना ।

उदामिता—वि० [स० उदासितृ] उदामीन । तटस्थ । निरपेक्ष (को०) ।

उदासिल^५—वि० [म० उवास + हि० इल (प्रत्य०)] उदासीन । उदास । उ०—देवता तुमको चहै निज प्राण सो मरनाइ कै । आप ही उनते उदामिल कोन सो गुण पाइ कै ।—गुमान (शब्द०) ।

उदामी^६—नि० [म० उदासिन्] तटस्थ । अलग । निरपेक्ष (को०) ।

उदासी^७—सज्ञा पुं० [म० उवास + हि० ई (प्रत्य०)] [स्त्री उवासिनी] १ विरक्त पुरुष । त्यागी पुरुष । सन्यासी । उ०—(क) होय गृही पुनि होय उदासी । अतकाल दोनो विश्वामी ।—जायसी (शब्द०) । (ख) ओहि पय जाइ जो होय उदासी । जोणी जती तया सन्यासी ।—जायसी ग्र०, पृ० १० । (ग) प्रमुदित तीरथराज निवासी । वैपानस, बटु गृही उदासी ।—मानस, २।२०५ । २ नानकशाही साधुओं का एक भेद । ये साधु जिन्हा नहीं रखते । ये मन-वागियों के ममान मिर घुमात और लँगोट पहनते हैं ।

उदासी^८—सज्ञा स्त्री० [स० उदास + हि० ई (प्रत्य०)] १ त्रिन्ता । उत्साह या आनंद का अभाव । दुःख । जैसे—(क) नादि शाह के आक्रमण के बाद दिल्ली में चारों ओर उदामी वसती थी । (ख) राम के वनवास से अयोध्या में उदामी छा गई । उ०—विनु दशरथ सग चले तुरत ही कोशल पुर के वामी । आए रामचंद्र मुख देख्यो तबकी मिठी उदासी ।—सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—छाना । टपकना । बरसना ।—होना ।

उदासीन^९—वि० [स०] [वि० स्त्री उदासीना, सज्ञा उदासीनता] १ विरक्त । जिसका चित्त हट गया हो । प्रवचनशून्य । २ भगडे वगैरे से अलग । जो किसी के लेने देने में न हो । ३ जो दो विरोधी पक्षों में से किसी की ओर न हो । निष्पक्ष । तटस्थ । ४ रूपा । उपेक्षायुक्त । जैसे,—हम उनसे मिलने गए पर उन्होंने बड़ा उदासीन भाव धारण किया ।

उदासीन^{१०}—सज्ञा पुं० १ बारह प्रकार के राजाओं में वह राजा जो दो राजाओं के बीच युद्ध होते समय किसी की ओर न हो, किनारे रहे । २ वह पुरुष जिसे किसी अभियोग या मामले में दो पक्षों में से किसी के सबध में न हो । ३ पंच । तीसरा । ४. कौटिल्य के अनुसार दूरवर्ती राष्ट्र का वह राजा जो शक्तिशाली तथा निग्रह अनुग्रह में समर्थ हो । ५ अजनबी (को०) ।

उदासीनता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ विरक्ति । त्याग । निरपेक्षता । निर्द्वंद्वता । ३ उदासी । खिन्नता ।

उदासीन मित्र—सज्ञा पुं० [स०] वह मित्र राजा जिसके सबध में यह निश्चय न हो कि वह सहायता में कुछ करने का कष्ट उठाएगा ।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार जिस राजा के पास बहुत अधिक उपजाऊ जमीन होगी, जो बलवान सन्तुष्ट तथा आलसी होगा और कष्ट से दूर भागनेवाला होगा, उसे सहायता के लिये कुछ करने की कम परवा होगी ।

उदरिक्—वि० [सं०] तोड़वाला । तुड़िल । बड़े पेटवाला [को०] ।
 उदरिणी—सज्ञा स्त्री [सं०] गर्मिणी नारी । अतर्वन्ती [को०] ।
 उदरिल—वि० [सं०] दे० 'उदरिक्' [को०] ।
 उदरी—वि० [सं० उदरिन्] [वि० स्त्री० उदरिणी] दे० उदरिक् [को०] ।
 उदक—मज्ञा पुं० [सं०] १. घटूरा । मदन वृक्ष । २. गुवद । मीनार ।
 ३. भविष्यत् काल । ४. भावी फल । अभिवृद्धि । वर्धन ।
 बढ़ना । अत या समाप्ति [को०] ।
 उदचि^१—सज्ञा पुं० [सं० उदचिस्] १. शिव । २. अग्नि । ३. कामदेव [को०] ।
 उदचि^२—वि० ऊपर की ओर ज्वाला या प्रकाश फैलनेवाला । जिसकी
 किरणें ऊपर की ओर जाती हैं [को०] ।
 उदरद—सज्ञा पुं० [सं०] १. एक रोग जो शिशिर ऋतु में होता है ।
 ददोरा । जुडपित्ती ।
 विशेष—इसमें शरीर पर ददोरे निकलते हैं । ये ददोरे बीच में
 गहरे और किनारों पर ऊँचे होते हैं । इनका रंग गाल होता है
 और इनमें खजली होती है । वैद्यक के अनुसार यह रोग कफ
 की अधिकता से होता है ।
 उदर्व—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ज्वर [को०] ।
 उदर्य—वि० [न०] १. उदर स्रग्धी । २. उदर के भीतर का [को०] ।
 उदवना^१—क्रि० अ० [सं० उदवन] उगना । निकलना । प्रकट
 होना । उ०—दमयन्ती भूराड, उठी देखि आयो नृपति ।
 उदवत शशि नियगइ सिधु प्रवीची बीच ज्यो—गुमान
 (शब्द०) ।
 उदवसित—सज्ञा पुं० [सं०] घर । भवन [को०] ।
 उदवाह^१—सज्ञा पुं० [सं० उद्वाह] दे० 'उद्वाह' ।
 उदवेग^१—सज्ञा पुं० [सं० उद्वेग] दे० 'उद्वेग' ।
 उदश्रु—सज्ञा पुं० [सं०] रोता हुआ या रोनेवाला । [को०] ।
 उदसन—सज्ञा पुं० [सं०] १. निरसन । खडन । २. फेंकना । निकाल
 देना । ३. उठाना [को०] ।
 उदसना^१—क्रि० अ० [सं० उदसन (=नष्ट करना) या उद्+वसन
 अथवा उद्वासन] १. उजड़ना । उ०—तिन इन देसन आनि
 उजार्यो । उदसि देश यह भो वन भार्यो—पद्माकर
 (शब्द०) । २. बेतरतीव होना । अड बड होना । उडसना ।
 उदस्त—वि० [न०] १. उदसन किया हुआ । २. उजाड़ा हुआ । ३.
 फेंका हुआ । ४. अपमानित । ५. उठा हुआ [को०] ।
 उदात्त^१—वि० [सं०] १. ऊँचे स्वर से उच्चारण किया हुआ । २.
 दयावान् । कृपालु । ३. दाता । उदार । ४. श्रेष्ठ । बड़ा ।
 ५. स्पष्ट । विशद । ६. समर्थ । योग्य । ७. प्रिय । प्यारा
 [को०] । ८. ऊँचा । उच्च [को०] ।
 उदात्त^२—सज्ञा पुं० [सं०] १. वेद के स्वरों के उच्चारण का एक भेद
 जो तालु आदि के ऊपरी भाग की सहायता से होता है ।
 २. उदात्त स्वर । ३. एक काव्यालंकार जिसमें सभाव्य विभूति
 का वर्णन खूब बढ़ा चढ़ाकर किया जाता है । जैसे—
 कुदन की भूमि कोट कांगरे सुकवन दिवार द्वार विद्रुम अशेष
 २-७

के । लसत पिरोजा के किवार खम मानिक के हीरामय छात
 छाज पन्ना छवि वेश के । जटिल जवाहिर भरोखा पै सिम्पाने
 तास तास आसपास मोनी उडुगन भेप के । उन्नत सुमदिर से
 सुंदर परदर के मदिर तै सुंदर ये मदिर वृजेश के । (शब्द०) ।
 ४. दान । ५. एक आभूषण । ६. एक प्रकारका वाजा । बड़ा
 ढोल । नायक का एक भेद । दे० 'घोरोदात्त' [को०] ।

उदात्तराधव—सज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत का एक नाटक ।

उदात्तश्रुति—वि० [सं०] जो उदात्त स्वर में उच्चरित या कहा हुआ
 हो (वणं) [को०] ।

उदान—सज्ञा पुं० [सं०] १. प्राणवायु का एक भेद जिसका स्थान कंठ
 है । इसकी गति हृदय से कंठ और तालु तक और सिर से
 भ्रूमध्य तक है । इससे डकार और छीक आती है । २. श्वास ।
 सांस [को०] । ३. पक्ष्म । वरीनी [को०] । ४. नाभि [को०] ।
 ५. प्रशंसा या आनंद की व्यंजना (बोद्ध) [को०] । ६. एक
 प्रकार का सर्प [को०] ।

उशम^१—वि० [सं० उद्दाम] दे० 'उद्दाम' ।

उदायन^१—सज्ञा पुं० [सं० उद्यान] वाग । वाटिका । उपवन । उ०—
 तुम श्याम गौर सुनो दोउ लालन आयो कहाँ से उदायन में ।—
 रघुराज (शब्द०) ।

उदार^१—वि० [सं०] [सज्ञा उदारता] १. दाता । दानशील । २.
 महान् । बड़ा । श्रेष्ठ । ३. जो सकीर्णचित्त न हो । ऊँचे दिल
 का । ४. सरल । सीधा । शीलवान् । शिष्ट । ५. दक्षिण ।
 अनुकूल । ६. सुंदर । उत्कृष्ट । उम्दा [को०] । ७. प्रभूत ।
 प्रचुर [को०] । ८. उचित । ठीक [को०] । धर्मशील । धीर
 [को०] । ९. विस्तृत । बड़ा । विशाल [को०] । ११. ईमानदार
 [को०] ।

उदार^२—सज्ञा पुं० [देश०] गुनू नाम का वृक्ष । (अवध) ।

उदार^३—सज्ञा पुं० [सं०] योग में अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश
 इन चारों क्लेशों का एक भेद या अवस्था जिसमें कोई क्लेश
 अपने पूर्ण रूप में वर्तमान रहता हुआ अपने विषय का ग्रहण
 करता रहता है ।

उदारचरित—वि० [सं०] जिसका चरित उदार हो । ऊँचे दिल का ।
 शीलवान् ।

उदारचेता—वि० [सं० उदारचेतस्] जिसका चित्त उदार हो ।

उदारता—सज्ञा स्त्री [सं०] १. दानशीलता । फौजारी । २. उच्च
 विचार । शील ।

उदारथि^१—वि० [सं०] १. ऊपर की ओर जाने या उठनेवाला । २.
 ज्ञानेन्द्रियों की चेतना को जागरित करनेवाला । ३. उफनाता
 हुआ । भाप देता हुआ [को०] ।

उदारथि^२—सज्ञा पुं० विष्णु [को०] ।

उदारदर्शन—वि० [सं०] जिसे देखने से आँखों की शीतलता और हृदय
 की शांति मिले । देखने मात्र से तृप्ति प्रदान करनेवाला [को०] ।

उदारधी^१—वि० [सं०] बुद्धिमान् । प्रशस्त बुद्धिवाला । प्रतिभाशाली
 [को०] ।

उदारधी^२—सज्ञा पुं० विष्णु [को०] ।

उदयन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अवती देश का राजा वत्सराज जिसका वर्णन गुणादय की 'बृहद्वक्त्रा', क्षेमेन्द्र की 'बृहत्कथामञ्जरी' और सोमदेव के 'कथासरित्सागर' में है। २ एक दार्शनिक आचार्य जिसने 'न्यायकुसुमाञ्जलि' और 'आत्मतत्त्वविवेक' आदि ग्रंथ रचे हैं। ३ गौड देश का एक पंडित जिसे शंकराचार्य ने शास्त्रार्थ में परास्त किया था। ४ ऊपर की ओर उठना। उगना (को०)। ५ फल। परिणाम (को०)। ६ समाप्ति। परिणति (को०)।

उदयनक्षत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जिस नक्षत्र पर कोई ग्रह दिखाई पड़े वह नक्षत्र उस ग्रह का उदयनक्षत्र कहलाता है।

उदयना०—क्रि० अ० [सं० उदय] उदय होना। उ०—(क) जीवन भानु नहीं उनघो ससि सँसव हूँ की प्रकाश न ऊनो। ज्यों हरदी महीं की पियराई जुन्हाई की तेज मयो मिलि चूनो।—देव (शब्द०)। (ख) सहीं वालमय मे तर्हि उदए माग मषाप।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० २८५।

उदयपर्वत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उदयगिरि' (को०)।

उदयपुर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मेवाड़ की पुरानी राजधानी का नाम।

उदयशैल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उदयगिरि' (को०)।

उदयाचल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार पूर्व दिशा का एक पर्वत जहाँ से सूर्य निकलता है।

उदयातिथि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह तिथि जिसमें सूर्योदय हो।

विशेष—शास्त्र में स्नान, दान और अध्ययन आदि कर्म इसी तिथि में करना लिखा है।

उदयाद्रि०—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] उदयाचल। उदयगिरि।

उदयान०—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उद्यान] दे० 'उद्यान'। उ०—(क) गिरह उदयान एक सम लेख।—कबीर श०, पृ० ७२। (ख) जस गृह जस उदयान। वै सदा अहैं निरवान।—जग० वानी, पृ० ५२।

उदयास्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] उत्कर्ष और अपकर्ष। उत्थान और पतन। वृद्धि और ह्रास (को०)।

उदयी—वि० [सं० उदयिन्] उदयोन्मुख। विकासशील।

उदरभर—वि० [सं० उदरम्भर] दे० 'उदरभरि'।

उदरभरि—वि० [सं० उदरम्भरि] अपना पेट भरनेवाला। पेटू। पेटार्थी।

उदरभरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० उदरम्भरि + हि० ई (प्रत्य०)] पेटार्थिनी। पेटूनी।

उदर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ पेट। जठर।

मुहा०—उदर जिलाना=पेट पालना। पेट भरना। खाना।

उ०—माँगत वार वार शेष ग्वालन को पाऊँ। आप लियो कछु जानि भक्ष करि उदर जियाऊँ।—सूर (शब्द०)। उदर भरना=पेट भरना। खाना। उ०—मिक्षावृत्ति उदर नित भरै, निसिदिन हरि हरि सुमिरन करै।—सूर (शब्द०)।

यो०—जलोदर। वृकोदर।

२ किसी वस्तु के बीच का भाग। मध्य। पेटा। जैसे, यवोदर।

३ भीतर का भाग। अंतर। जैसे-पृथ्वी के उदर में अग्नि है।

४ विभिन्न विकारों के कारण पेट का फूलना (को०)।

उदरक—वि० [सं०] उदर से सवद्ध। पेट समधी (को०)।

उदरकृमि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ पेट में होनेवाला कीड़ा। ८ दुष्ट या निम्न व्यक्ति (को०)।

उदरगुल्म—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्लीहा रोग का एक प्रकार (को०)।

उदरग्रथि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० उदरग्रन्थि] दे० 'उदरगुल्म' (को०)।

उदरज्वाला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जठराग्नि। २ मूख।

उदरवाण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पेट मथवा शरीर के मामने के हिस्से की रक्षा के निमित्त बाँधा जानेवाला कपड़ (को०)।

उदरथि—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उदरधिन] १ सागर। सिंधु। ८. सूर्य (को०)।

उदरदास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जन्म से दान या दाम का पुत्र हो।

विशेष—ऐसे मनुष्य को छोड़ दूसरे किसी मनुष्य को वेचना अपराध माना जाता था।

उदरना०—क्रि० अ० [सं० अवदारण, हि० उदारना] १ फटना। विदीर्ण होना। उ०—प्रभिन अविद्या राक्षसी प्रेत सहित पापड। रामनिरजन रटत मुप उदरि गई सत खड।—कैवल (शब्द०)। ७ छिन्न निम्न होना। डहना। नष्ट होना। जैसे—पानी से उसका कोठिला उदर गया। ३ गिरना। उखटना। उ०—देखत ऊँचाई उदरत पाग सूघी राह चीन हूँ मैं चढ़े ते जे साहसनिकेत है।—भूपण ग्र०, पृ० ७८।

उदरपिशाच—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बहुत खानेवाला आदमी। पेटू।

उदररेख०—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० उदररेखा] दे० 'उदररेखा'।

उदररेखा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह लकीर जो बँटने में पेट में पड़ जाती है। शिबनी।

उदरवृद्धि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक रोग जिसमें पेट बड़ जाता है और उसमें पानी भर जाता है। जलोदर। जलघर।

उदरशय—वि० [सं०] पेट के बल सोनेवाला। पट सोनेवाला (को०)।

उदरसर्पी—वि० [सं० उदरसर्पिण] पेट के बल सरकनेवाला (को०)।

उदरसर्वस्व—वि० [सं०] पेट की ही सब कुछ माननेवाला। भोजन के लिये ही जीनेवाला। बहुत खानेवाला (को०)।

उदरस्थ^१—वि० [सं०] छाया हुआ। मक्षित (को०)।

उदरस्थ^२—सञ्ज्ञा पुं० जठराग्नि (को०)।

उदराग्नि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जठराग्नि। भोजन को पचानेवाली पेट के भीतर स्थित अग्नि (को०)।

उदराट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उदरकृमि' (को०)।

उदराध्मान—सञ्ज्ञा [सं०] अपव का रोग। अजीर्ण। पेट का फूल जाना (को०)।

उदरामय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० उदरामयी] पेट का रोग। उदररोग।

उदरावरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पेट की घेरनेवाली झिल्ली (को०)।

उदरावर्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नाभि। डोड़ी।

उदरावेष्ट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कब्ज। अपच (को०)।

उदवर्तन(५) —सज्ञा पुं० [सं० उद्वर्तन] दे० 'उद्वर्तन' ।

उदवस(५) —वि० [म० उद्वस = निर्जन, उजाह वा स० उद्वसत = स्थान से हटाना] १ उजाह । सूना । उ०—(क) उदवस अवध नरेश विनु देश दुषी नर नारि । राजभगु कुसमाज बड गतग्रह चालि विचारि । तुलसी (शब्द०) । (ख) उदवस अवध प्रनाथ सत्र अंव दशा दुख देखि ।—तुलसी ग्र०, पृ० ६१ । २ उद्भासित । स्थान से निकाला हुआ । एक स्थान पर न रहनेवाला । खानाबदोश । उ०—(क) अव तो वान घरी पहरन की जगौ उदवस की भीत्यो । सूर स्याम दासी मुख सोवहु, मयी उमै मनवीत्यो । सूर०, १० । ४०० । (ख) चंचल निशि उदवस रहै करन प्रान वसि राज । अरविदिनि मे इदिरा सुंदर नैननि लाज । मतिराम (शब्द०) ।

उदवासना—क्रि० सं० [सं० उद्वसत] १. स्थान से हटाना । उठा देना । भगा देना । २ उजाड़ना ।

उदवेग(५) —सज्ञा पुं० [सं० उद्वेग] दे० 'उद्वेग' । उ०—(क) गुन वर्तन, उदवेग पुनि कहि प्रलाप, उन्माद ।—मतिराम ग्र०, पृ० ३५३ । (ख) 'मुनि उदवेगु न पावइ कोई' ।—मानस, २।१२६ ।

उदभट(५) —वि० [सं० उदभट] दे० 'उदभट' । उ०—उदभट भूप मकर—केतन कौ, आग्या होत नई ।—पीदार अमि० ग्र०, पृ० २३८ ।

उदभव(५) —सज्ञा पुं० [म० उदभव] दे० 'उदभव' ।

उदभौत(५) —सज्ञा स्त्री० [सं० उदभूत] अद्भुत वस्तु या घटना । अचमा । उदभौति(५) —सज्ञा स्त्री० [सं० उदभूत] दे० 'उदभौत' । उ०—अखियनि तैं मुरली अति प्यारी—बैं बैरिनि यह सौति । सूर परस्पर कहति गोपिका, यह उपजो उदभौति ।—सूर०, १०।३०२७ ।

उदमद(५) —सज्ञा पुं० [सं० उद + मद] १ दे० 'उदमाद' । उ०—(क) गुरु अकुस मानें नहीं उदमद माता अघ । दादू मन चेतें नहीं, काल न देखै फध ।—दादू०, पृ० १६ । मदाधिक्य । मद की अधिकता । उ०—छिन एक मनवो उदमदि मातौ स्वोई लागी खाए रे ।—दादू०—पृ० ६२२ ।

उदमदना(५) —क्रि० प्र० [सं० उद + मद] पागल होना । उन्मत्त होना । आपे को भूलना । उ०—(क) अपने अपने टोल कहन ब्रजवासी आई । आव भगति ले चले सुदपति आसी आई । शरद काल श्रुतु जानि दीपमालिका बनाई । गोपन के उदमाद फिरत उदमदे कन्हई । सूर० (शब्द०) ।

उदमाती(५) —वि० स्त्री० [हिं० उदमादी] मद से भरी हुई । मन्वाली ।

उदमाद(५) —सज्ञा पुं० [सं० उद + माद] उन्मत्तता । पागलपन । उ०—(क) गोपन के उदमाद फिरत उदमदे कन्हई ।—सूर (शब्द०) । (ख) दोऊ उमिरि अराक दुहुन उदमाद रारि हित । दोऊ जानत जीति हारि जानत न दुह चित ।—सूदन (शब्द०) । (ग) सुंदर यह मन मीन है बंधै जिह्वा स्वाद । कटक कान न सूझई करत फिरै उदमाद ।—सूदन ग्र०, भा० २, पृ० ७७२ ।

उदमादी(५) —वि० [सं० उन्मादिन्] उन्मत्त । मत्वाका । वावला ।

उदमान(५) —वि० [म० उन्मत्त] [स्त्री० उदमानो] उन्मत्त । उ०—सात्व परधान उदमान मारी गदा प्रद्युम्न मुरहित भए सुधि बिसारा ।—सूर (शब्द०) ।

उदमानना(५) —क्रि० प्र० [सं० उन्मादन] उन्मत्त होना । उ०—मैं तुम्हरे मन की सब जानी । आपु सबै इतराति हौ दूषन हेतु स्याम को आनी । मेरे हरि कहैं दसहि वरस को तुमही जोवन मद उदमानो । लाज नहीं आवत इन लंगरन कैमे धौ कहि आवत वानी ।—सूर (शब्द०) ।

उदय—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० उदित] १ ऊार आना । निकलना । प्रकट होना । जैसे—(क) सूर्य के उदय से अधकार दूर हो जाता है । (ख) न जाने हमारे किन घुरे कर्गों का उदय हुआ ?

विशेष—ग्रहों और नक्षत्रों के सवध मे इस शब्द का प्रयोग विशेष होता है ।

क्रि० प्र०—करना (प्रकर्मक प्रयोग) = उगना । निकलना । प्रकट होना । उ०—जनु ससि उदय पुरुव दिसि लीन्हा । श्री रवि उद । पछिउ दिसि कीन्हा । जायसी ग्र०, पृ० ८५ । करना—(सकर्मक प्रयोग) = प्रकट करना । प्रकाशित करना । उ०—तिलक भात पर परम मनोहर गोरोवन को दीनो । मानो तान लोक की सोभा अधिक उदय सो कीनो ।—सूर (शब्द०) । लेना = उगना । निकलना । उ०—जनु ससि उदय पुरुव दिनि लीन्हा । जायसी ग्र०, पृ० ८५ ।—होना = उगना ।

मुह०—उदय से अस्त तक या लौ = पृथ्वी के एक छोर से दूसरे छोर तक । सारी पृथ्वी में । उ०—(क) हिरनकश्यप बढयो उदय अरु अस्त लौ हठी प्रह्लाद चित चगन लायो । भीर के परे तैं धार सर्वाहन तजी खम तैं प्रकट ह्वै जन छुडायो ।—सूर—(शब्द०) । (ख) चारिहु खड भीख का बाजा । उदय अस्त तुम ऐस न राजा ।—जायसी (शब्द०) ।

यो०—सूर्योदय । चन्द्रोदय । शुक्रोदय । कर्कोदय ।

२ वृद्धि । उन्नति । बढ़ती । जैसे—किसी का उदय देखकर जलना नहीं चाहिए ।

क्रि० प्र०—बेना(५) [सकर्मक प्रयोग] उन्नति करना । बढ़ती करना । उ०—प्रबोधो उदै देइ श्रीविदुमाधव ।—केशव (शब्द०) ।—होना ।

यो०—भाग्योदय ।

३ उदगम । निकलने का स्थान । ४ उदयाचन । ५ व्यक्त होना । प्रकट होना । प्रादुर्भा (को०) । ६ सृष्टि (को०) । ७ परिणाम । परिणति (को०) । ८ कार्य का पूर्णत्व (को०) । ९ लाभ (को०) । १० मुद । व्याज (को०) ।

उदयगड(५) —सज्ञा पुं० [सं० उदय + हिं० गड] उदयाचन । उ०—सूर उदयगड चढत भुलाना, गहने गहा कमल कुमिलाना ।—जायसी (शब्द०) ।

उदयगिरि—सज्ञा पुं० [म०] उदयाचल । उ०—उदिन उदयगिरि मच पर रघुवर वाल पतग ।—मानस, १।२५४ ।

उदगर्गल—सज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिषशास्त्र के अतर्गत वह विद्या जिससे यह ज्ञान प्राप्त हो कि अमुक स्थान में इतने हाथ की दूरी पर जल है। यह भूगर्भ विद्या के अतर्गत है।

उदगार—सज्ञा पुं० [सं० उद्गार] दे० 'उद्गार'। उ०—रावरे पठाए जोग देन कौं सिधाए हुते ज्ञान-गुन गौरव के अति उदगार में।
—रत्नाकर, भा० १, पृ० १५६।

उदगारना—कि० सं० [सं० उद्गारण] १ बाहर निकलना। डकार लेना। २ बाहर फेंकना। उगलना। ३ खोदकर उमाडना। ४ डकाना। प्रवर्तित करना। उत्तेजित करना। जैसे—क्रोध उदगारना। उ०—पीवन प्याला प्रेम सुधारम मतवाले सतसंगी। अरघ उरध लै माठी रोपी ब्रह्म अग्नि उदगारी।—कवीर (शब्द०)।

उदगारी—वि० [सं० उदगारी या हि० उदगारना] १ उगलनेवाला। २ बाहर निकालनेवाला। डकार लेनेवाला। ३ उमाडनेवाला।

उदग्ग—वि० [सं० उदग्ग, प्रा० उदग्ग] १ ऊँचा। उन्नत। उ०—सुडन भगवत्किं उल्लटत उदग्गगिरि पदत सुसद्वल किमत सिंहद है।—सुजान०, पृ० ८। २ प्रचंड। उग्र। उ० त। उ०—(क) सत एक हयदनु लै उदग्ग हरिनारायन जिहि प्रवल खग।—सूदन (शब्द०)। (ख) औरौ उदग्ग कर खग घरि अग पग घर घरिय रन।—सुजान०, पृ० २२। (ग) मालव भूप उदग्ग चल्थो कर खग जग जित।—गोपाल (शब्द०)।

उदग्गति—सज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तरायण (को०)।

उदग्गद्वार—वि० [सं०] उत्तराभिमुख दरवाजेवाला (को०)।

उदग्गभूमि—सज्ञा स्त्री० [सं०] उजाऊ भूमि (को०)।

उदग्र—वि० [सं०] [वि० स्त्री० उदग्रा] १ ऊँचा। उन्नत। २ उठा। परिवर्धित। ३ प्रचंड। उद्धत। उग्र। भयकर। प्रवल। शक्तिशाली (को०)। ५ उदार (को०)। ६ आयुवृद्ध। वयोवृद्ध (को०)। ७ असह्य। जो सहन न हो सके (को०)।

उदग्रदत्—वि० [सं०] जिसके दाँत निकले हुए हों। बड़े दाँतवाला (को०)।

उदग्रदत्—सज्ञा पुं० बड़े दाँतवाला हाथी (को०)।

उदग्रनख—सज्ञा पुं० [सं०] जुड़े हुए हाथ। अजलि (को०)।

उदग्रप्लुतत्व—सज्ञा पुं० [सं०] ऊँचे कूदने का भाव या क्रिया (को०)।

उदग्रशिर—वि० [सं०] १ ऊँचे शिरवाला। ऊँची चोटीवाला २ अभिमानी (को०)।

उदघटना—कि० अ० [सं० उद्घटन = संचालन] प्रकट होना। उदय होना। उ०—कुपि रटि अटत विमूढ लट घट उदघटत न ग्यान। तुलसी रटत हटत नही अतिसय गत अभिमान।—सं० सप्तक, पृ० ३०।

उदघटन—सज्ञा पुं० [सं० उद्घाटन] दे० 'उद्घाटन'।

उदघाटना—कि० सं० [सं० उद्घाटन] प्रकट करना। प्रकाशित करना। खोलना। उ०—(क) तब भुज बल महिमा उदघाटी। प्रगटी धनु विघटन परिपाटी।—मानस, १।२३६। (ख) तहाँ सुघन्वा सब शर काटी। उदघाटी अपनी परिपाटी।—सबल (शब्द०)।

उदघोष—सज्ञा पुं० [सं०] जलीय गर्जन (को०)।

उदङ्मुख—वि० [सं० उदङ् + मुख] उत्तर की ओर जिसका मुख हो (को०)।

उदङ्मृत्तिक—सज्ञा पुं० [सं० उदङ् + मृत्तिका] उर्वरा भूमि। उजाऊ धरती (को०)।

उदचमस—सज्ञा पुं० [सं०] जल पीने का पात्र (को०)।

उदज—सज्ञा पुं० [सं०] १ जल में उत्पन्न या जलीय पदार्थ। २ कमल (को०)।

उदथ—सज्ञा पुं० [सं० उदगीथ = सूर्य] सूर्य। उ०—अिन अवनव कलिकानि ग्राममान में तूँ होत विनगम नहीं इदु और उदथ को। भूषण ग्र०, पृ० ६५।

उदधान—सज्ञा पुं० [सं०] १ मेघ। बादल। २ घड़ा (को०)।

उदधि—सज्ञा पुं० [सं०] २ समुद्र।

यो०—उदधिजा। उदधितनय। उदधितिय। उदधिमल। उदधिमेलला। उदधिवस्त्रा। उदधिसुत।

२ घड़ा। ३ मेघ। ४ भीमया जनाश (को०)। ५ चार घोर सात की सटपा का वाचक (शब्द०) (को०)। ६ नदी (को०)। उदधि—वि० चार। वि० दे० 'समुद्र'।

उदधिकन्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी (को०)।

उदधिकुमार—सज्ञा पुं० [सं०] जैन मत के अनुसार एक देवता जो भुवनपति नामक देवगण में हैं।

उदधिक्रम, उदधिक्राम—सज्ञा पुं० [सं०] केवट। माँझी। नाविक (को०)।

उदधितनय—सज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा। उ०—उदधितनयवाहन सुनौ तासम तुल्य वधानिये। यों सुंदर सदगुर गुण अकय तास पार नहि जानिये।—सुंदर ग्र०, भा० १, पृ० १११।

उदधितनया—सज्ञा स्त्री० [सं०] समुद्र की पुत्री। लक्ष्मी (को०)।

उदधिल—सज्ञा पुं० [सं०] समुद्रफेन (को०)।

उदधिमेलला—सज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी (को०)।

उदधिवस्त्रा—सज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी।

उदधिसंभव—सज्ञा पुं० [सं० उदधिसंभव] समुद्र के पानी से तैयार नमक (को०)।

उदधिसुत—सज्ञा पुं० [सं०] १ वह पदार्थ जो समुद्र से उत्पन्न हो या समझा जाता हो। २ चंद्रमा। ३ अमृत। ४ शख। ५ कमल।

उदधिसुता—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ समुद्र से उत्पन्न वस्तु। २ लक्ष्मी ३ द्वारिकापुरी (को०)। ४ सीप।

उदधीय—वि० [सं०] १ समुद्र संधी।

उदन्य—वि० [सं०] १ प्यासा। तृपित। २ जल सत्रधी (को०)।

उदन्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] उपा। प्यास। जल की इच्छा (को०)।

उदन्यु—वि० [सं०] १ प्यासा। २ जलवारी (को०)।

उदन्वान्—सज्ञा पुं० [सं० उदन्वत्] समुद्र। सिंधु (को०)।

उदपान—सज्ञा पुं० [सं०] १ कूर्छ के समीप का गड्ढा। कूल। खाता।

२ कमंडलु। उ०—मुद्रा स्रवन कठ जपमाला, कर उदपान काँध धवआला।—जायसी ग्र०, पृ० ५३। ३ तालाब के आसपास की भूमि या टीला।

उद्^१—उप० [स०] एक उपसर्ग जो शब्दों के पहले लगकर उनमें इन अर्थों की विशेषता उत्पन्न करता है—उपर, जैसे—उदगमन, अतिक्रमण, जैसे—उत्तीर्ण, उत्क्रांत, उत्कर्ष, जैसे—उद्बोधन, उद्गति, प्रावत्य, जैसे—उद्देग, उद्बल, प्राधान्य, जैसे—उद्देश, अभाव जैसे—उत्पथ, उद्वासन, प्रकाश, जैसे—उच्चारण, दोष, जैसे—उन्मार्ग ।

उद्^२—संज्ञा पुं० १. मोक्ष । २. ब्रह्म । ३. सूर्य । जज ।

उद्^३—संज्ञा पुं० [सं०] जल । पानी । समास आदि या अत मे प्रयुक्त, जैसे अच्छोद, क्षीरोद, उदकुम्भ, उदकोष्ठ, उदपात्र = जलपूर्ण घट ।

उदउ^७—संज्ञा पुं० [स० उदय] दे० 'उदय' । उ०—उदउ करहु जनि रवि रघुकुल गुर, अवध विलोकि सून होइहि उर ।—मानस, २।३७ ।

उदक्^१—संज्ञा पुं० [सं०] उत्तर दिशा ।

उदक्^२—क्रि० वि० [सं०] १ ऊपर की ओर । २ उत्तर की ओर [को०] ।

उदक्^३—वि० [सं०] [अन्य रूप-उदङ्, उदक्] [वि० स्त्री० उदीची] १ ऊपर की ओर गतिशील । २ उत्तर का । उत्तरी । ३. परवर्ती । वाद का । ४. ऊँचा [को०] ।

उदक—संज्ञा पुं० [सं०] १. उत्तर दिशा । २. जल । पानी ।

यौ०—उदककार्य । उदककुम्भ । उदकक्रीडन । उदकक्रीड़ा । उदक ग्रहण = जल लेना । उदकद । उदकदानिक = दे० 'उदकदाता' । उदकधर = मेघ । उदक प्रतीकाश = उदकांबु । उदकशाक । उदकाद्रि । गगोदर ।

विशेष—समस्त पदों के आदि में कभी कभी उदक के स्थान में उत् हो जाता है, जैसे—उत्कुम्भ ।

उदक अद्रि^७—संज्ञा पुं० [सं० उदगद्रि] दे० 'उदगद्रि' ।

उदककर्म—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उदकक्रिया' ।

उदकक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तिलाजलि । जलदान । उदकदान । प्रेत का तर्पण ।

विशेष—यह क्रिया मृतक के शव का दाह हो जाने पर उसके गोत्रवालों को दस दिन तक करनी पड़ती है ।

२ तर्पण ।

उदककृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णुस्मृति के अनुसार एक व्रत जिसमें एक मास तक जी का सत्तू और जल पीने का विधान है ।

उदकगाह—संज्ञा पुं० [सं०] स्नान करना । नहाना [को०] ।

उदकगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] जलाशयों से पूर्ण पर्वत [को०] ।

उदकचरण—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह चोर या घातक जो स्नान करने हुए मनुष्य को पानी के भीतर खींच ले जाय । पनडुब्बा । बुड्ढा ।

उदकदाता—संज्ञा पुं० [सं० उदकदातृ] १ वह व्यक्ति जो पितरों का तर्पण करता हो । २ उत्तराधिकारी । हकदार [को०] ।

उदकदान—संज्ञा पुं० [सं०] जलदान । तर्पण ।

उदकना—क्रि० अ० [सं० उद् = ऊपर + क = उदक या उद् + मञ्ज्] कूटना । उछलना । छटकना । उ०—मदण करत

देखि लोगन की हन्या कुलिश सुरराई । गड्यौ न तनु मे उदकि गयो मुरि शक्र भज्यो भय पाई ।—रघुराज (शब्द०) ।

उदकपरीक्षा—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल में शपथ का एक भेद जिसमें शपथ करनेवाले को जल में अपने वचन की सत्यता प्रमाणित करने के लिये डूबना पड़ता था ।

उदकप्रमेह—संज्ञा पुं० [सं०] प्रमेह रोग का एक भेद ।

विशेष—इसमें वीर्य अत्यंत पतला हो जाता है और मूत्र के साथ निकला करता है । मूत्र सफेद रंग का चिकना गाढ़ा गंधरहित और ठंडा होता है । इस रोग में पेशाब बहुत होता है ।

उदकमेह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उदक प्रमेह' ।

उदकल—वि० [सं०] जलवाला । जलसवधी [को०] ।

उदकशान्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० उदयशान्ति] व्याधि दूर करने के लिये रोगी पर अभिमन्त्रित जल छिड़कना [को०] ।

उदकशुद्ध—वि० [सं०] स्नात । नहाया हुआ [को०] ।

उदकस्पर्श—संज्ञा पुं० [सं०] १ शरीर के विभिन्न अंगों को जल से स्पर्श करना । २ शपथ, दान, प्रतिज्ञा आदि के समय जल का स्पर्श करना ।

उदकहार—संज्ञा पुं० [सं०] पनिहार [को०] ।

उदकात—संज्ञा पुं० [सं० उदकान्त] किनारा । पुलिन [को०] ।

उदकाधार—संज्ञा पुं० [सं०] कूँआ । होज [को०] ।

उदकार्थी—वि० [सं० उदकार्थिन्] तृपित । प्यासा । जल चाहनेवाला [को०] ।

उदकीर्य—संज्ञा पुं० [सं०] करज का वृक्ष और फल [को०] ।

उदकेचर—संज्ञा पुं० [सं०] जलचर । पानी का जंतु ।

उदकेविशीर्ण—वि० [सं०] जल में सुखाया हुआ अर्थात् कमी न सुना हुआ । असम्व [को०] ।

उदकोदचन—संज्ञा पुं० [सं० उदकोदञ्चन] जल मरने का घड़ा ।

उदकोदर—संज्ञा पुं० [सं०] जलोदर ।

उदकोदन—संज्ञा पुं० [सं० उदक + ओदन] पानी में पकाया हुआ चावल । भात [को०] ।

उदक्त—वि० [सं०] १ ऊपर की ओर मोड़ा या उठाया हुआ । २. ऊपर जाता हुआ । ३. कथित [को०] ।

उदक्य^१—वि० [सं०] १ जलवाला । जलीय । २ जिसको पवित्रता के लिये स्नान की आवश्यकता हो । अपवित्र । अशुचि । ३. जलेच्छु [को०] ।

उदक्य^२—संज्ञा पुं० पानी में होने वाला अन्न, जैसे, धान ।

उदकथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रजस्वला नारी ।

उदग्—संज्ञा पुं० [सं०] 'उद्क्' शब्द का समास प्रयुक्त रूप ।

उदगद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय ।

उदगयन—संज्ञा पुं० [सं०] उत्तरायण ।

उदगरनी—क्रि० अ० [सं० उदगरण] १ उगरना । निःसलना । बाहर होना । २. प्रकाशित होना । खुल पड़ना । प्रकट होना । ३. उभड़ना । मटकना ।

उत्सूर—सज्ञा पुं० [सं०] सायकाल । संध्या ।

उत्सृष्ट—वि० [सं०] त्यागा हुआ । छोड़ा हुआ ।

उत्सृष्ट पशु—सज्ञा पुं० [सं०] श्राद्ध के समय छोड़ा गया गाय का बछड़ा जिसे छोड़ने के पहले विशेष चिह्न से दाग देते हैं । साँड [को०] ।

उत्सृष्टवृत्ति—सज्ञा पुं० [सं०] फेंके हुए अन्न को लेना । यह एक वृत्ति है जिसके दो भेद हैं—शिल खोर उ छ ।

उत्सृष्ट—सज्ञा स्त्री० [सं०] त्याग । उत्सर्जन [को०] ।

उत्सृष्ट—सज्ञा पुं० [सं०] १ अभिमान । गर्व । २ छिड़काव । ऊपर को बढ़ाना । उफान [को०] ।

उत्सेको—वि० [सं० उत्सेकिन] १ अभिमानी । घमडी । २ बढ़कर । बहनेवाला । ३ उफानवाला [को०] ।

उत्सेचन—सज्ञा पुं० [सं०] १ सींचने की क्रिया । २ उफान [को०] ।

उत्सेध^१—सज्ञा पुं० [सं०] १ बढती । उन्नति । २ ऊँचाई । ३ शोय ४ सहनन ।

उत्सेध^२—वि० १ ऊँचा । २ श्रेष्ठ । उ०—जहाँ कहीं निज बात को समुक्ति करत प्रतिपेध । तहाँ कहत आक्षो हैं कवि जन मति उत्सेध । (शब्द०) ।

उत्स्मय—सज्ञा पुं० [सं०] स्मित । मुस्कान [को०] ।

उत्स्य—वि० [सं०] १ उत्स या सोते से निकला हुआ । सोते में होनेवाला । २ उत्सवघी [को०] ।

उत्थपनथापन^१—वि० [सं० उत्थापन + हि० थापन] उत्थापित को स्थापित करनेवाला । उ०—कहेउ जनक कर जोरि कीन्ह मोहि आपन, रघुकुल तिनक सदा तुम्ह उथपन थापन ।—तुलसी ग्र०, पृ० ६१ ।

उत्थपना^२—क्रि० सं० [सं० उत्थापन] उठान । उखाड़ना । उजाड़ना उ०—(क) तेरे थपे उथपै न महेश थपै थिर को कपि जे घर धाले ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) उथपै तेहि को जेहि राम थपै थपिहै पुनि को जेहि वं टरिहैं ।—तुलसी (शब्द०) ।

उत्थपन^३—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'उत्थापन' । उ०—नृपति को थपन उथपन समर्थ सत्रु साल-मुत करै करतूति चित्त चाह की ।—मतिराम ग्र०, पृ० ३७२ ।

उथराना^४—क्रि० प्र० [सं० उत् + स्थिर] उठना । क्वचित उठना । उ०—नैतनि वोरति रूप के भौर अचभे भरी छतिया उथराई ।—घनानंद, पृ० १०६ ।

उथलना—क्रि० प्र० [सं० उत् + हि० √हिल] १ चलना । हिलना । उ०—ये हृदयविदारक वचन कहने को मेरी जीभ नहीं उथलती ।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १३१।२ । डगमगाना । डावाँडोल होना । चलायमान होना । उ०—राजा शिशुपाल जरासंध समेत सब असुर दल लिए इस धूमधाम से आया कि जिसके बोझ से लगे थोपनाग और पृथ्वी उथलने ।—लल्लू (शब्द०) ।

यौ०—उथलना पुथलना = (१) नीचे ऊपर होना । इधर का उधर होना । (२) उलटना । उलट पुनट होना । नीचे ऊपर होना । (३) पानी का कम होना । पानी का छिछला होना ।

उथलपुथल^५—सज्ञा पुं० [हि० उथलना] उलट पुलट । अडबड । विपर्यय । क्रमभंग ।

उथलपुथल^६—सज्ञा वि० उलट पुनट । अड का बड । इधर का उधर । उथला—वि० [सं० उत् + स्थल] कम गहरा । छिछला । छोटा ।

उथापना^७—क्रि० म० [म० उत्थापन] १ ऊपर उठाना या खड़ा करना । २ उखाड़ना । उ०—एकन उथापि एक थापत जगज-हित अनघ अनघ रिपु फिरे चहुँ चक्रवर ।—ग्रन्थरी०, पृ० ६६ ।

उथापना^८—क्रि० सं० दे० 'थापना' ।

उथुराना^९—क्रि० प्र० [हि० उथला] उथला होना । उ०—त्रिमि जिमि संसव जल उथुराने । तिमि तिमि नैन-मीन इतराने ।—नंद ग्र०, पृ० १२२ ।

उदक—सज्ञा पुं० [म० उदङ्क] चमड़े का बना तैलपात्र । कुपी [को०] ।

उदगल—सज्ञा पुं० [फा० दगल] हुंगामा । शोरगुल । उ०—इस ही बीच नगर में मोर । नवी उदगल चारिहु मोर—ग्रंथ०, पृ० २४ ।

उदचन—सज्ञा पुं० [सं० उदञ्चन] १ आवरण । ढकना । २ ऊपर की ओर फेंकना । ३ चढना । ४ डोल । घडा । वालटो । जल रखने का बड़ा बरतन [को०] ।

उदचित—वि० [सं० उदञ्चित] १ घादत । पूजित । २ ऊपर की ओर उठाया हुआ । ३ कथित । उक्त । ४ प्रतिध्वनि [को०] ।

उदचु वि० [सं० उदञ्चु] ऊपर की ओर जानेवाला [को०] ।

उदजरस्थान—सज्ञा पुं० [सं० उदञ्जर स्थान] पानी रखने का स्थान या गुसलखाना ।

उदड^१—वि० [सं० उदङ्ग] दे० 'उदङ्ग' । उ०—है बलमार उदड भरे हरि के 'भुजदड' सहायक भरे ।—इतिहास, पृ० २४३ ।

उदड^२—वि० स्त्री० [सं० उदङ्ग] अनेक अडे देनेवाली । जैसे, मत्स्य, सर्प आदि [को०] ।

उदडपाल—सज्ञा पुं० [सं० उदङ्गपाल] १ मछली । २ एक प्रकार का साँप [को०] ।

उदडी^३—वि० [हि०] दे० 'उदङ्ग' । उ०—उदडी भुसडी लिये हत्य केते, चलै चाल उताल आतक देते ।—सुजान०, पृ० २६ ।

उदत^४—वि० [सं० प्र + दत्त] जिसके दाँत न जमे हो । बिना दाँत का । अदत ।

विशेष—इसका प्रयोग चौपायों के लिये होता है । वह बल या गाय अथवा भैंस जो तीन साल से कम अवस्था की होती है तथा जिसके दूध के दाँत न जमे हो उसे 'उदत' कहते हैं ।

उदत^५—वि० [सं० उदन्त] किसी वस्तु की समाप्ति या सीमा तक पहुँचानेवाला [को०] ।

उदत^६—सज्ञा पुं० १ वार्ता । वृत्तांत । समाचार । लेखाजोखा । विवरण । २ साधु । सज्जन [को०] । ३ यज्ञ आदि द्वारा जीविका प्राप्त करनेवाला व्यक्ति [को०] । ४ वह जो व्यापार एवं कृषि के द्वारा जीविकार्जन करता हो [को०] ।

उदतक—सज्ञा पुं० [सं० उदन्तक] समाचार । वृत्तांत । वार्ता ।

उदतिका—सज्ञा स्त्री० [सं० उदन्तिका] सतोष । तृप्ति [को०] ।

उदत्य—वि० [सं० उदन्त्य] सीमांत या सीमा के बाहर रहनेवाला [को०] ।

नज्जानि के रूप से प्राप्त धन । ६ नाडी व्रण का आंतरिक भाग । ७ शिखर । चोटी । ८ मतह । ९ डाल । १० बगल । ११ विनान ।

उत्सर्गक—सज्ञा पुं [सं० उत्सर्गक] हाथ की एक मुद्रा का नाम [को०] ।

उत्सर्गित—वि० [सं० उत्सर्गित] १. संमिलित । युक्त । संयुक्त । २. गोद में लिया हुआ । आलिंगित [को०] ।

उत्सर्गिनी—सज्ञा स्त्री [सं० उत्सर्गिनी] फुसी जो पक्ष के नीचे हो जाती है [को०] ।

उत्सर्गो^१—वि० [सं० उत्सर्गिन्] १. साहचर्य में रहनेवाला । २. गहरे पड़ुँचा हुआ (व्रण) ।

उत्सर्गो^२—सज्ञा पुं व्रण । गहरा घाव [को०] ।

उत्स—सज्ञा पुं [सं०] १. स्रोत । २. करना । जलधारा । ३. जलमय स्थान ।

उत्सन्न—वि० [सं०] १. उत्थित । उखाड़ा हुआ । २. बड़ा हुआ । ३. पूरा किया हुआ । ४. ऊपर उठा हुआ [को०] ।

उत्सर—सज्ञा पुं [सं०] एक वृत्त का नाम [को०] ।

उत्सर्ग—सज्ञा पुं [सं०] [वि० उत्सर्ग, औत्सर्गिक, उत्सर्ग्य] १. त्याग । छोड़ना ।

यौ०—वृषोत्सर्ग । व्रजोत्सर्ग ।

२. दान । न्योछावर । ३. ममाप्ति । एक वैदिक कर्म ।

विशेष—यह पूस महीने की रोहिणी और अष्टका को ग्राम से बाहर जल के समीप अपने गृह सुत्र की विधि के अनुसार किया जाता है । उसके बाद दो दिन एक रात वेद की पढ़ाई बंद रहती है ।

४. व्याकरण का कोई माधारण सा नियम ।

उत्सर्गत—क्रि० वि० [सं०] माधारणतः । नियमतः । सामान्य रूप से [को०] ।

उत्सर्गी—वि० [सं० उत्सर्गिन्] त्यागनेवाला । निछावर करनेवाला [को०] ।

उत्सर्जन—वि० [सं०] [वि० उत्सर्जित, उत्सृष्टि] १. त्याग । छोड़ना । दान । ३. एक वैदिक गृहकर्म जो वर्ष में दो बार होता है, एक पूस में, और दूसरा श्रावण में ।

उत्सर्प—सज्ञा पुं [सं०] २० 'उत्सर्पण' ।

उत्सर्पण—सज्ञा पुं [सं०] १. ऊपर चढ़ना । चढ़ाव । उल्लंघन । लांघना । ३. फूलना । ३. फैल जाना ।

उत्सर्पिणी—सज्ञा पुं [सं०] जैनमतानुसार काल की वह गति या अवस्था जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श इन चारों की क्रम से वृद्धि होती है ।

उत्सर्पी—वि० [सं० उत्सर्पिन्] १. ऊपर चढ़नेवाला । २. उत्तम । श्रेष्ठ [को०] ।

उत्सर्ग्य—सज्ञा स्त्री [सं०] गर्भयोग्य अवस्था को पहुँचती हुई गाय [को०] ।

उत्सव—सज्ञा पुं [सं०] १. उठाह । मंगल कार्य । धूमधाम । जलसा । २. मंगल समय । त्योहार । पर्व । समेधा । आनंद । विहार । जैसे, रामुत्सव ।

उत्साद—सज्ञा पुं [सं०] विनाश । संहार [को०] ।

उत्सादक—वि० [सं०] विनाशकारी । आतनायी । उ०—क्षमा नहीं है खल के लिये मी । समाज उत्सादक दंड योग्य है ।—प्रि० प्र०, पृ० १८३ ।

उत्सादन—सज्ञा पुं [सं०] १. नाश । क्षय । २. बाधा देना । रोकना । ३. उबटन या सुगंधित तेल लगाना । ४. घाव का पूरा होना । ५. ऊपर चढ़ना । ६. उठाना । ७. मली भाँति खेत जोतना या दुवारा खेत जोतना [को०] ।

उत्सादनीय—वि० [सं०] १. नाश करने योग्य । २. चढ़ने योग्य [को०] ।

उत्सादित—वि० [सं०] १. नष्ट किया हुआ । २. सुगंध द्रव्य में शुद्ध किया हुआ । ३. चढ़ाया हुआ । ४. उठाया हुआ [को०] ।

उत्सारक—सज्ञा पुं [सं०] द्वारपाल । चौकदार ।

उत्सारण—सज्ञा पुं [सं०] [वि० उत्सारणीय] १. दूर हटाना । निकालना । २. अतिथि का स्वागत करना । ३. गति देना । चलाना । ४. भाव या दर को कम कर देना [को०] ।

उत्साह—सज्ञा पुं [सं०] [वि० उत्साहित, उत्साही] १. वह प्रसन्नता जो किसी आनेवाले सुख को सोचकर होती है और मनुष्य को कार्य में प्रवृत्त करती है । उमंग । उठाह । जोश । होसला । २. साहस । हिम्मत ।

विशेष—उत्साह वीर रस का स्थायी माना जाता है ।

उत्साहक—वि० [सं०] १. उत्साह देनेवाला । २. कर्म में रुचि लेनेवाला [को०] ।

उत्साहन—सज्ञा पुं [सं०] १. उत्साह देना । कर्म की प्रेरणा देना । अध्यवसाय । उद्यम [को०] ।

उत्साहवर्धन—सज्ञा पुं [सं०] १. उत्साह की वृद्धि । २. शक्ति का अधिक हो जाना । ३. वीर रस [को०] ।

उत्साहवृत्तात—सज्ञा पुं [सं० उत्साहवृत्तात] उत्साह को बढान की युक्ति या कोशल । युद्ध के लिये उत्साहित करने की क्रिया [को०] ।

उत्साहशक्ति—सज्ञा स्त्री [सं०] चढ़ाई तथा युद्ध करने की शक्ति ।

उत्साहसिद्धि—सज्ञा स्त्री [सं०] वह कार्य जो उत्साहशक्ति (लड़ने भिड़ने के साहस) से सिद्ध हो ।

उत्साहहेतुक—वि० [सं०] उत्तेजित या उत्साहित करनेवाला [को०] ।

उत्साही—वि० [सं० उत्साहिन्] उत्साहयुक्त । उमंगवाला । हींम्लेवाला ।

उत्सिक्त—वि० [सं०] १. जिसका उत्सर्ग हुआ हो । अभिप्रेत । सिंचित । २. धमडी । गर्वोन्मत्त । ३. चलचित्त । अस्थिर चित्तवाला [को०] ।

उत्सुक—वि० [सं०] १. उत्कटित । अत्यंत इच्छुक । चाह से आकुल । उ०—वे यह पुस्तक देखने के लिये बड़े उत्सुक हैं । (शब्द०) ।

२. चाही हुई बात में देर न सहकर उसके उद्योग में तत्पर ।

उत्सुकता—सज्ञा स्त्री [सं०] १. आकुल इच्छा । २. किसी कार्य में विलंब न सहकर उसमें तत्पर होना । यह रस में एक सत्तारी भाव है ।

उत्सूत्र—वि० [सं०] १. सूत्र में मुक्त । नियमविहीन । २. धागे से पूवक [को०] ।

उत्प्रबंध—वि० [स० उत्प्रबंध] १ निरतर । अनवरत । अविराम
[को०] ।

उत्प्रभ^१—वि० [स०] प्रभा से भरा हुआ । प्रभापूर्ण । प्रकाश फैलाने-
वाला [को०] ।

उत्प्रभ^२—सज्ञा पुं० बड़ी तीव्र आग । तेज आग । दहकता हुआ अंगारा
[को०] ।

उत्प्रसव—सज्ञा पुं० [स०] गर्भ गिराना । गर्भपात होना [को०] ।

उत्प्रास—सज्ञा पुं० [स०] १ लडखडाना । लुढ़कना । २ फेंकना । ३
हास विनोद । हँसी मजाक । ४ अट्टहास । ५ तीक्ष्ण वचन ।
कटुवचन । व्यंग्यवचन । ६ आधिक्य [को०] ।

उत्प्रासन—सज्ञा पुं० [स०] १ 'उत्प्रास' [को०] ।

उत्प्रेक्षक—वि० [स०] उत्प्रेक्षा करनेवाला । अनुमान करनेवाला ।
समझनेवाला । विचार करनेवाला [को०] ।

उत्प्रेक्षा—सज्ञा स्त्री० [स०] [वि० उत्प्रेक्ष्य] १ उद्भावना । आरोप ।
२ एक अर्थालंकार जिसमें भेद-ज्ञान-पूर्वक उपमेय में उपमान
की प्रतीति होती है । जैसे, मुख मानो चंद्रमा है । मानो, जानो, ।
मनु, जनु, इव, मेरी जान, इत्यादि शब्द इस अलंकार के
वाचक हैं । पर कही ये शब्द लुप्त भी रहते हैं जैसे
गम्योत्प्रेक्षा में ।

विशेष—इस अलंकार के पाँच भेद हैं—(१) वस्तुत्प्रेक्षा, (२)
हेतुत्प्रेक्षा, (३) फलोत्प्रेक्षा, (४) गम्योत्प्रेक्षा और (५)
सापह्नवोत्प्रेक्षा । (१) वस्तुत्प्रेक्षा में एक वस्तु दूसरी वस्तु के
तुल्य जान पड़ती है । इसको स्वरूपोत्प्रेक्षा भी कहते हैं । इसके
दो भेद हैं—'उक्तविषया' और 'अनुक्तविषया' । जिसमें उत्प्रेक्षा
का विषय कह दिया जाय वह उक्तविषया है । जैसे, सोहत
ओढ़ें पीतु पटु स्याम, सलोने गात, मनो नीलमनि सैल पर आतपु
परधो प्रभात ।—विहारी र०, दो० ६८६ । यहाँ 'श्यामतनु,'
जो उत्प्रेक्षा का विषय है, वह कह दिया गया है । जहाँ विषय
न कहकर उत्प्रेक्षा की जाय तो उसे 'अनुक्तविषया उत्प्रेक्षा' कहते
हैं । जैसे, 'अजन वरवत गगन यह मानो अथये मानु (शब्द०) ।
अधकार, जो उत्प्रेक्षा का विषय है, उसका उल्लेख यहाँ नहीं
है । (२) हेतुत्प्रेक्षा—जिसमें जिस वस्तु का हेतु नहीं है,
उसको उस वस्तु का हेतु मानकर उत्प्रेक्षा करते हैं । इसके
भी दो भेद हैं—'सिद्धविषया' और 'असिद्धविषया' । जिसमें
उत्प्रेक्षा का विषय सिद्ध हो उसे 'सिद्धविषया' कहते हैं । जैसे,
'अरुण भये कोमल, चरण भुवि चलिब ते मानु । (शब्द०) ।—
यहाँ नायिका का भूमि पर चलना सिद्धविषय है परंतु भूमि पर
चलना चरणों के लाल होने का कारण नहीं है । जहाँ उत्प्रेक्षा
का विषय असिद्ध अर्थात् असंभव हो उसे 'असिद्धविषया' कहते
हैं । जैसे, अजहूँ मान रहिवो चहत थिर तिय-हृदय-निकेत,
मनहूँ उदित शशि कुपित हूँ अरुण भयो एहि हेत (शब्द०) ।
स्त्रियों का मान दूर न होने से चंद्रमा को शोध उत्पन्न होना ।
सर्वथा असंभव है । इसलिये 'असिद्धविषया' है । (३) फलोत्प्रेक्षा
जिसमें जो जिसका फल नहीं है वह उसका फल माना जाय ।
इसके भी दो भेद हैं—सिद्धविषया और असिद्धविषया ।
'सिद्धविषया' जैसे, कटि मानो कुच धरन को किसी कनक की

दाम (शब्द०) । 'असिद्धविषया' जैसे, जो कटि समता लहन
मनु सिंह करत वन वाम (शब्द०) । (४) गम्योत्प्रेक्षा
जिसमें उत्प्रेक्षावाचक शब्द न रखकर उत्प्रेक्षा की जाय ।
जैसे, तोरि तीर तर के सुमन वर नुगध के मोन, यमुना
तव पूजन करत वृंदावन के पीन (शब्द०) । (५) सापह्नवो-
त्प्रेक्षा जिसमें अपह्नुति सहित उत्प्रेक्षा की जाय । यह भी
वस्तु, हेतु और फल के विचार से तीन प्रकार की होती है—
(क) सापह्नव वस्तुत्प्रेक्षा जैसे, तंगी चाल चाहन चलति
उतसाहन मी, जँसो विधि गहन विराजत पित्रो है । तँसा
भृकुटी को ठाट तँसो ही दिई लभाट तँगो ही गिलोकिरे को
पीको प्रान पँठो है । तँगिय तदनताई नीलकंठ माई उर
शंभव महाई तासो किं ऐंठो ऐंठो है । नाडी लट भाल पर
छूटे गोरे गाल पर मानस रूपभाट पर व्याल ऐंठ वँठो है ।
(शब्द०) । यहाँ गोरवर्ण कपोल पर छूटी हुई घलकी का
निषेध करके रूपमाना पर तंग के वँठने की संभावना की गई
है । अतः 'सापह्नव वस्तुत्प्रेक्षा' है । (ख) सापह्नव हेतुत्प्रेक्षा
जैसे फूलन के मग में परत पग डगमगे मानो सुकुमारता की
वेलि विधि रई है । गोरे गरे घन लमन पीर नीर नीकी
मुख भेष पूरण छेश द्रि छई है । उन्नत उगोत्र ओ नितव
भीर श्रीपति जू टूटि जिन परै लक शाफ चित्त नई है । यत्ते
रोममाल मिस मारग छरी दं प्रिवली की डोरि गाडि काम
वागमान दई है (शब्द०) । यहाँ 'मिस' शब्द के कथन से कँवा
हनुति से मिनो हुई हेतुत्प्रेक्षा है, क्योंकि प्रिवली रूप रस्सी
वाँघते कुच और नितव भार से कटि न टूट पड़े इस अहेतु को
हेतु भाव से कथन किया गया है । (ग) 'सापह्नव फलोत्प्रेक्षा'
जैसे, कमलन को तिहि मित्र लखि मानहु हलवे काज, प्रविशहि
सर नहि स्नानहित रवितापित नगराज (शब्द०) । यहाँ
सूर्यतापित होकर गज का सरोवर में प्रवेश स्नान के लिये न
वताकर यह दिखाया गया है कि वह कमल को, जो सूर्य के
मित्र हैं, नष्ट करने के लिये आया है ।

उत्प्रेक्षोपमा—सज्ञा स्त्री० [स०] एक अर्थालंकार जिसमें किसी एक
वस्तु के गुण का बहुतांश में होना पाया जाना वर्णन किया जाता
है । उ०—न्यारो ही गुमान मन मोननि के मानियत जानियत
सबही सुकैसे न जताइये । गर्व वाढयो परिमाण पचबाण
वाणनि को आन आन भाति विनु कैसे कँ वताइये । केसोदास
सविलास गीत रग रगनि कुरगअ गनानि हँ के आनसनि
गाइये । सीता जी के नयन की निकाई हमही मैं है सु भई है
कमल खजरीट हँ में पाइये ।—केशव (शब्द०) ।

उत्प्लव—सज्ञा पुं० [स०] उछालना । कूदना [को०] ।

उत्प्लवन—सज्ञा पुं० [स०] १ कूदना । उछलना । २ तेल, घी आदि
का मेल कुश से निकालना [को०] ।

उत्फाल—सज्ञा पुं० [स०] १ छाँग मारना । उछलना [को०] ।

उत्फुल्ल—वि० [स०] १ विकसित । फूला हुआ । प्रफुल्लित । खिला
हुआ । २ उत्तान । चित्त ।

उत्संग—सज्ञा पुं० [स० उत्सङ्ग] १ गोद । कोड । कोरा । अक । २
मध्य भाग । बीच । ३ ऊपर का भाग । ४ निर्निष्ठ । विरक्त ।
५ राजकुमार के जन्म पर प्रजा तथा करद राजाओं से

उत्पट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. पेड़ की गोद । २. ऊपर पहनने का कपड़ा ।
उपरना । डुपट्टा ।

उत्पत्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी [को०] ।

उत्पत्तन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०][वि० उत्पत्तनीय, उत्पत्तित] १ ऊपर उठना ।
२ उठना (को०) । ३. उछलना । कूदना (को०) । ४ उछालना (को०) । ५ उत्पन्न करना (को०) ।

उत्पातक—वि० [सं०] १ भड़े ऊँचा किए हुए । २ विप्लवकारी (को०) ।

उत्पत्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'उत्पत्ति' । उ०—(क) नृप प्रसन्न करिय यह उये बात । सब कहो वस उत्पत्ति सुतात ।—हम्मीर रा० पृ० ३ । (ख) उत्पत्ति प्रलय होत जग माई, कहौ सुनौ सो नृप बित लाई ।—सूर (शब्द०) ।

उत्पत्ती—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'उत्पत्ति' । उ०—नीर पवन की उत्पत्ती, कहैं कवीर विचार, जो निज शब्द समावही, सोई हंस हमार ।—कवीर सा०, पृ० ६६४ ।

उत्पत्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० उत्पन्न] १ उद्गम । पैदाइश । जन्म । उद्भव । २ सृष्टि । ३ आरम्भ । शुरु ।

उत्पथ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. बुरा रास्ता । विकट मार्ग । २ कुमार्ग । बुरा आचरण ।

यौ०—उत्पथगामी ।

उत्पथिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वे लोग जो नगर में इधर उधर आ जा रहे हो ।

उत्पन्न—वि० [हिं०] दे० 'उत्पन्न' ।

उत्पन्न—वि० [सं०] [स्त्री० उत्पन्ना] पैदा । जन्मा हुआ ।

उत्पन्ना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अगहनवदी एकादशी ।

उत्पल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कमल । २ नीलकमल ।

उत्पलगन्धिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उत्पलगन्धिक] एक प्रकार का चदन [को०] ।

उत्पलपत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कमल की पत्ती । २ नाखून से चमड़े का हल्का छिल जाना । नखशत । ३ चदन का तिलक । ४ चोड़े फलवाला चाकू [को०] ।

उत्पलपत्रक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उत्पलपत्र-४' [को०] ।

उत्पलशारिवा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] श्यामा लता [को०] ।

उत्पलिनो—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ कमल फूलों का समूह । २ फूल सहित कमल का पौधा । ३ वृत्त [को०] ।

उत्पवन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ साफ करना । पवित्र करना । २ शुद्ध या साफ करने का यंत्र । ३ कुश द्वारा अग्नि पर घृत छिड़कना [को०] ।

उत्पाचित—वि० [सं०] अच्छी तरह उवाला हुआ । अच्छी तरह पकाया हुआ [को०] ।

उत्पाट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कान में पीड़ा होना । २ दे० 'उत्पाटन' [को०] ।

उत्पाटन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० उत्पाटित] उखाड़ना ।

उत्पाटिका^१—वि० [सं०] उखाड़नेवाली [को०] ।

उत्पाटिका^२—सञ्ज्ञा स्त्री० पेड़ की छाल [को०] ।

उत्पात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कष्ट पहुँचानेवाली आकस्मिक घटना । उपद्रव । आफत । २. अशांति । हलचल । ३ ऊधम । दगा । शरारत ।

उत्पातक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कान का एक रोग । लोलक के छेद में भारी गहना पहनने से अथवा किसी प्रकार के खिचाव से लोलक में सूजन, दाह और पीड़ा उत्पन्न होती है ।

उत्पातक^२—वि० उपद्रव या उत्पात करनेवाला ।

उत्पातिक—वि० [सं०] अपर प्रकृतिवाला । प्राकृतिक सत्ता से परे (जैन) [को०] ।

उत्पाती—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उत्पातिन्] [स्त्री० हिं० उत्पातिनी] उत्पात मचानेवाला । उपद्रवी । नटखट । शरारती । दगा मचानेवाला । अशांति उत्पन्न करनेवाला । उ०—पीयी पाठ पढ़े दिन राती, ये केवल भ्रम के उत्पाती । कवीर सा०, पृ० ८४० ।

उत्पाद^१—वि० [सं०] जिसके पैर ऊपर उठे हो [को०] ।

उत्पाद^२—सञ्ज्ञा पुं० जन्म । उत्पत्ति [को०] ।

उत्पादक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० उत्पादिका] उत्पन्न करनेवाला । उत्पादन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० उत्पादित] उत्पन्न करना । पैदा करना ।

उत्पादशय—संज्ञा पुं० [सं०] १ बालक । २. टिट्ठिम पक्षी [को०] ।

उत्पादिका^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक फतिगी । एक तरह का कीड़ा । २ माता [को०] ।

उत्पादिका^२—वि० पैदा करनेवाली [को०] ।

उत्पादित—वि० [सं०] उत्पन्न किया हुआ ।

उत्पादी—वि० [सं० उत्पादिन्] [स्त्री० उत्पादिनी] उत्पन्न करनेवाली ।

उत्पाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वास्थ्य । तदुरुस्ती [को०] ।

उत्पिज—संज्ञा पुं० [सं० उत्पिञ्ज] १ पङ्कज । २ अराजकता । विद्रोह [को०] ।

उत्पिजर—वि० [सं० उत्पिञ्जर] १ मुक्त किया हुआ । २ अव्यवस्थित । ३ व्याकुल [को०] ।

उत्पिजल—वि० [सं० उत्पिञ्जल] दे० 'उत्पिजर' [को०] ।

उत्पीड—संज्ञा पुं० [सं० उत्पीड] १. बहना । २ फेंकना । ३ धाव (को०) । ४. दे० 'उत्पीडन' (को०) ।

उत्पीडक—वि० [सं० उत्पीडक] त्रासप्रद । पीड़ा पहुँचानेवाला । उ०—किंतु अविवेक उन्हें उत्पीडक बना देता है ।—रस क०, पृ० ४ ।

उत्पीडन—संज्ञा पुं० [सं० उत्पीडन] [वि० उत्तपीडित] १ दवाना । तकलीफ देना । २ पीड़ा पहुँचाना ।

उत्पुच्छ—वि० [सं०] ऊपर पूँछ किए रहनेवाला [को०] ।

उत्पुट—वि० [सं०] खिला हुआ । विकसित [को०] ।

उत्पुटक—संज्ञा पुं० [सं०] कान का एक रोग [को०] ।

उत्पुलक—वि० [सं०] १ पुलकित । रोमांचित । २ प्रसन्न । खुश । [को०] ।

उत्तारक^३—सञ्ज्ञा पुं० शिव । महादेव [को०] ।

उत्तारण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ उद्धार करना । २ पार ले जाना या उतारना । ३ विष्णु [को०] ।

उत्तारी—वि० [सं० उत्तारिन्] १ पार करने या उतारनेवाला । २ अस्थिर । ३ अस्वस्थ [को०] ।

उत्तार्य—वि० [सं०] १ पार करने योग्य । नौका से पार करने योग्य । २ वमन करने योग्य [को०] ।

उत्ताल^१—वि० [मं०] १ अशांत । क्षुब्ध । उ०—मदर थका, थके असुरामुर, थका रज्जु का नाग, थका सिधु उत्ताल शिथिल हो उगल रहा है भाग ।—धूप और धुआँ, पृ० २१ । २ प्रवल । विकराल । प्रचंड [को०] । ३ उन्नत [को०] । ४ कठिन [को०] । ५ प्रत्यक्ष [को०] ।

उत्ताल^२—सञ्ज्ञा पुं० १ वनमानुष १ एक विशेष सख्खा [को०] ।

उत्ताव^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उत्ताप] दे० 'उत्ताप' । उ०—पण्य पच पंथह गवन, आतुर खरि उत्ताव, ।—पृ० २०, ५५।५० ।

उत्तिम—वि० [हिं०] दे० 'उत्तम' । उ०—सब ससार परथम आए सातो दीप । एकी दीप न उत्तिम सिंहल दीप समीप ।—जायसी ग्रं० (गुप्त) २५ ।

उत्तिर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उत्तर] वह पट्टी जो खभे में गले के ऊपर और कप के नीचे होती है ।

उत्तीर्ण—वि० [सं०] १ पार गया हुआ । पारगत । २ मुक्त । ३ परीक्षा में कृतकार्य । पासशुद्ध ।

उत्तु ग—वि० [मं० उत्तुङ्ग] १ ऊँचा । बहुत ऊँचा । उ०—हिमगिरि के उत्तुङ्ग शिखर पर बैठ शिला की शीतल छाँह ।—कामायनी, पृ० ३ । २ तीव्र लहरवाला ।

उत्तुडित—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उत्तुण्डित] काँटे की नोक । काँटे का सिरा [को०] ।

उत्तुप—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] भूसी निकाला हुआ या भुना हुआ चना [को०] ।
उत्तू^३—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] १ वह औजार जिसको गरम करके कपड़े पर बेल बूटे तथा चुन्नट के निशान डालते हैं । २ बेलबूटे का काम जो इस औजार से बनता है ।

क्रि० प्र०—करना ।—का काम बनना ।

मुद्दा^०—उत्तू करना = (१) गाली देना । २ कपड़े पर बेल बूटे की छाप या चुन्नट डालना । मारकर उत्तू बनाना = किसी को इतना मारना की उसके बदन में दाग पड़ जायें तो कुछ दिन तक बने रहें ।

उत्तू^३—वि० बदहवाश । नशे में चूर ।

क्रि० प्र०—करना —होना । जैसे, उसने इतनी भाँग पी ली कि उत्तू हो गया (शब्द०) ।

उत्तूकश—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० उत्तू + फा० कश] उत्तू का काम बनानेवाला ।

उत्तूगर—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० उत्तू + फा० गर] दे० 'उत्तूकश' ।

उत्तेजक—वि० [मं०] १ उमाड़नेवाला । बढ़ानेवाला । उकसानेवाला । प्रेरक । २ वेगो को तीव्र करनेवाला ।

उत्तेजन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बढ़ावा । उत्साह । प्रेरणा ।

उत्तेजना—पञ्चा स्त्री० [सं०] [वि० उत्तेजित, उत्तेजक] १ प्रेरणा । बढ़ावा । प्रोत्साहन । २ वेगो को तीव्र करने की क्रिया ।

यो०—उत्तेजनाजनक = मड़कानेवाला । क्रोध उत्पन्न करनेवाला ।
उत्तेजित—वि० [सं०] १ क्षुब्ध । आविष्ट । २, प्रेरित । प्रोत्साहित ।

उ०—जनता उत्तेजित होकर आदर्शवादी हो जाती है ।—कायाकल्प, पृ० १८३ ।

उत्तोरण—वि० [सं०] तोरण से सजाया हुआ [को०] ।

उत्तोलन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ ऊपर का उठाना । ऊँचा करना । तानना । २ तौलना । वजन करना ।

यो०—झड़ोत्तोलन, ध्वजोत्तोलन = झंडा फहराना या ऊँचा करना ।

उत्त्रास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अत्यधिक भय । २ आतंक [को०] ।

उत्थ—वि० [सं०] उत्पन्न या निकाला हुआ । निकला हुआ ।

विशेष—इसका प्रयोग पदार्थ में होता है—जैसे, आनन्दोत्थ [को०] ।
उत्थथ^७—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] उठान । उत्थान । उ०—वह कोई रिद्धि न सिद्धि है वहाँ नहि पुण्य न पाप, हरिया विषय न वासना वहाँ उत्थप नहि थाप ।—राम० धर्म०, पृ० ६१ ।

उत्थवना^७—क्रि० सं० [सं० उत्थापन] अनुष्ठान करना । आरम्भ करना । उ०—राजा सुकृत पञ्च उत्थपक । तेहिठौं एक अचभा भयक ।—सबल सिंह (शब्द०) ।

उत्था^१—क्रि० वि० [प०] वहाँ । इधर । उधर । उ०—इत्या उत्था जित्या कित्या, हूँ जीवाँ तो नान वे ।—दादू वानी, पृ० ५१३ ।

उत्थान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ उठने का कार्य । २ उठान । आरम्भ । ३ उन्नति । समृद्धि । बढ़ती । ४ जागना [को०] । ५ खुशी । [को०] । ६. लड़ाई [को०] । ७ आंगन [को०] । ८ सेना [को०] । ९ सीमा । हद्द [को०] । १० पुरुषत्व [को०] । ११ किताब [को०] । १२ मातृपार्षण [को०] । १३ प्रवध । व्यवस्था [को०] । १४ रोग होने का कारण [को०] ।

यो०—उत्थान एकादशी = कार्तिक शुक्ल पक्ष की एकादशी । देवोत्थान । उत्थानपत्तन = उन्नति अवनति ।

उत्थानक—वि० [सं०] १ ऊपर उठानेवाला । २ उन्नत करानेवाला [को०] ।

उत्थापक—वि० [सं०] उन्नत करनेवाला । उभारनेवाला । २ उठानेवाला जगानेवाला । ३ प्रेरणा देनेवाला [को०] ।

उत्थापन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ उपर उठाना । २ हिलानाड्डाना । ३ जगाना । उ०—तब स्नान वी कै श्री गिरिगज ऊपर पधारे । सो श्री गोवर्धननाथ जी को उत्थापन किए ।—दो सो वावन०, भा० २ पृ० २३ ।

उत्थापनभोग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जागरण का भोग । जागरणकालीन भोग । उ०—भावप्रवाश बयो ? जो, उत्थानभोग में मेवा अवश्य ग्रहण चाहिए ।—दो सो वावन०, भा० १, पृ० १०३ ।

उत्थित—वि० [सं०] उठा हुआ । उ०—जलपणत के उत्थित जल सी ।—इत्यलम्, पृ० २७ । २ बचाया हुआ । ३ उत्पन्न । ४ बढ़नेवाला । घटित होनेवाला । ६ फैलाया हुआ [को०] ।

उत्थिति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उत्थान' [को०] ।

व्यस्तपद, जैसे, रूप के अभियोग के उत्तर में कोई कहे कि वादी ने हमें मारा है। (७) अव्यापी, अर्थात् जिनके उत्तर का कोई ठीर टिकाना न हो। (८) निगूढ़ार्थ, जैसे, रूप के अभियोग में अभियुक्त कहे कि हैं, क्या मुझपर चाहते हैं? अर्थात् मुझ पर नहीं, किसी और पर चाहते होंगे। (९) आहुत, जैसे, 'मैंने रूप लिए हैं, पर मुझपर चाहिए नहीं।' (१०) व्याख्यानम्, जिन उत्तर में कठिन या दोहरे अर्थ के शब्दों के प्रयोग से व्याख्या की आवश्यकता हो। (११) अमार, जैसे किसी ने अभियोग चलाया कि अभुक्त ने व्याज तो दे दिया है पर सूँ घन नहीं दिया है। और वह कहे कि हमने व्याज तो दिया है पर मूलघन लिया ही नहीं।

उत्तरायण—सज्ञा पुं० [म०] १ सूर्य की मकर रेखा से उत्तर, कर्क रेखा की ओर, गति। २ वह छह महीने का समय जिसके बीच सूर्य मकर रेखा में चलकर बराबर उत्तर की ओर बढ़ता रहता है।

विशेष—सूर्य २२ दिसम्बर को अपनी दक्षिणी अयनमीमा मकर रेखा पर पहुँचता है फिर वहाँ से मकर की अयनमक्षति अर्थात् २३-६ दिसम्बर से उत्तर की ओर बढ़ने लगता है और २१ जून को कर्क रेखा अर्थात् उत्तरी अयनमीमा पर पहुँच जाता है।

उत्तरायणी—सज्ञा स्त्री० [म०] मगीत में एक मूर्छना जिसका स्वरग्राम यो है—घ, नि, रे, ग, म, प, स, रे, ग, म, प,।

उत्तरायणी—सज्ञा स्त्री० [म०] १ 'उत्तरायणी' [को०]।

उत्तरायणी—सज्ञा स्त्री० [म०] अभिनयन की दो लकड़ियों में से ऊपर की लकड़ी।

उत्तरार्ध—सज्ञा पुं० [म०] पिठला घाघा। पीछे का अर्ध भाग।

उत्तरापाढा—सज्ञा स्त्री० [म०] २१वाँ नक्षत्र।

उत्तरासग—सज्ञा पुं० [म० उत्तरासग] १० उत्तरवस्त्र [को०]।

उत्तरी^१—वि० [म० उत्तरीय] उत्तर दिशा से संबंधित। उत्तर का [को०]।

उत्तरी^२—सज्ञा स्त्री० [म०] कर्नाटकी पद्धति की एक रागिनी (सगीत) [को०]।

उत्तरी ध्रुव—सज्ञा पुं० [हि० उत्तरी + ध्रुव] पृथ्वी का ऊपरी सिंग। नुमर [को०]।

उत्तरीय^१—सज्ञा पुं० [म०] १ उपरना। दुपट्टा। चद्दर। ओडनी।

२ एक प्रकार का बहुत बड़ा सन जो बड़ा मजबूत होता है और सहज में काता जा सकता है। यह बड़ा मुलायम और चमकीला होता है तथा सब सनो से अच्छा समझा जाता है।

उत्तरीय^२—वि० १ ऊपर का। उपरना। २ उत्तर दिशा का। उत्तर दिशा संबंधी।

यो०—उत्तरीय पट।

उत्तरीयक^१—सज्ञा पुं० १० 'उत्तरीय' [को०]।

उत्तरीयक^२—वि० १० 'उत्तरीय' [को०]।

उत्तरेतर—वि० [म०] उत्तरदिशा से भिन्न। दक्षिणी [को०]।

उत्तरोत्तर—क्रि० वि० [म०] आगे आगे। एक के पीछे एक। एक के अनंतर दूसरा। क्रमशः। लगातार। दिनो दिन।

उत्तर्जन—सज्ञा पुं० [म०] १ प्रचंड तर्जन। २ भयंकर तर्जन [को०]।

उत्तर्जित—वि० [म०] ऊपर की तरफ उछाला या फेंका हुआ [को०]।

उत्तर्जितल०—वि० [हि०] २० 'उत्तर्जन'। उ०—ऊर्जश्रुत प्रज्ञान जिते प्रन ईश्वरवादी।—भक्तमान, पृ० ६६१।

उत्तसुमग०—सज्ञा पुं० [हि०] १० 'उत्तसुमग'। उ०—माधन मुटु उत्तसुमंग, रवि महु घात मौन सुरंग।—पृ० २१०, १८६।

उत्ता^१—वि० [हि० उत्ता] [स्त्री० उत्ती] उत्ता।

उत्ता^२—वि० [हि० उत्तरा] उत्तरा हुआ। उ०—भिडका ज्यों डाले तुता। सबही के मन सूँ उता।—चरण० वागी पृ० २८।

उत्तान^१—वि० [म०] पीठ को जमीन पर गिराए हुए। चित। सीधा। यो०—उत्तानपाणि। उत्तानपाद।

उत्तान^२—सज्ञा पुं० चरक के मत से ज्ञान रक्त का एक भेद। इसका प्रभाव त्वचा और मांस पर होता है। उ०—वात रक्त चरक ने दो प्रकार का कहा है—एक तो उत्तान, दूसरा गभीर।—माधव नि०, पृ० १५१।

उत्तानक—सज्ञा पुं० [म०] उच्चटा नामक घान [को०]।

उत्तानकर्मक—सज्ञा पुं० [म०] पेंडने की मुद्रा [को०]।

उत्तानपत्रक—सज्ञा पुं० [म०] ताल एरंड [को०]।

उत्तानपात०—सज्ञा पुं० [हि०] १० 'उत्त नप द'। उ०—उत्तानप त सुत ब्रूम जेम, रहि जय अत इन अचनतम।—पृ० २१० ६६६५।

उत्तानपाद—सज्ञा पुं० [म०] एक राजा जो स्वार्थनुव मनु के पुत्र और प्रविष्ट अथ व्रुव के पिता थे। उ०—नृप उत्त नपाद सुत ताम्, व्रुव हरिभगत नपउ सुत जाम्।—तानम०, १११६९।

उत्तानपादज—सज्ञा स्त्री० [म०] १ व्रुवतारा। २ ध्रुव [को०]।

उत्तानशय^१—वि० [म०] ऊपर की तरफ मुँह करके लेटा हुआ [को०]।

उत्तानशय^२—सज्ञा पुं० दुपमुहाँ जच्चा [को०]।

उत्तानहृदय—वि० [म०] १ निश्छिन। निष्पट। माफ दिलवाना। २ उदार [को०]।

उत्तानित—वि० [म०] १ ऊपर उठाया या फेंकाया हुआ। २ ऊपर की तरफ मुँह किए हुए [को०]।

उत्ताप—सज्ञा पुं० [म०] [वि० उत्तप और उत्तापित] १. गर्मी। तपन।

२ कष्ट। वेदना। ३ दुःख। शोक। उ०—जो कुकार्य में अभिमत द्रव्य, फूँट दिगने निज सामर्थ्य। सो अपनी कर्त्तनी पर आप, पछताते पाकर उत्ताप।—मरस्यती (शब्द०)।

४. क्षोभ। उग्रभाग। उ०—उठे विविध उत्तप प्रवन अवहट्ठ नाव गर्जनकारी, त्यो उन्नत अनिलाप प्रपूरित करै मन साधन भारी॥—श्रीधर पाठक (शब्द०)।

उत्तापित—वि० [म०] १ गर्म। तपाया हुआ। नतापित। २ बुद्ध। दुःखी अवेशित।

उत्तापी—वि० [म० उत्तापित] १ बहुत गरम। उ०—उत्तापित। २ दुःखी किया हुआ। दुःखमुक्त [को०]।

उत्तार^१—वि० [म०] १. नीचे उतरा। २. अवनत।

उत्तार^२—सज्ञा पुं० १. उदार करना। २. उतरा। ३. उतरना। ४. उतरना। ५. उतरना। ६. उतरना। ७. उतरना। ८. उतरना। ९. उतरना। १०. उतरना।

उत्तारक^१—वि० [म०] उदार करने वाला [को०]।

उत्तरक्रिया—सज्ञा स्त्री० [स०] शवदाह के अनन्तर मृतक के निमित्त होनेवाला विधान ।

उत्तरगुण—सज्ञा पुं० [स०] जैनशास्त्रानुसार वे गुण जो मूल गुण की रक्षा करें ।

उत्तरग्रन्थ—सज्ञा पुं० [स० उत्तरग्रन्थ] रचना का परिशिष्ट [को०] ।

उत्तरच्छद—सज्ञा पुं० [म०] १ आवरण । २ विछावन के ऊपर बिछाई जानेवाली चादर [को०] ।

उत्तरज्योतिष—सज्ञा पुं० [स०] पश्चिम दिशा का एक देश ।

उत्तरण—सज्ञा पुं० [स०] उतरना । नाव आदि के द्वारा जलाशय पार करना [को०] ।

उत्तरतन्त्र—सज्ञा पुं० [स० उत्तरतन्त्र] सुश्रुत या किसी वैद्यक ग्रन्थ का पिछला भाग ।

उत्तरदाता^१—सज्ञा पुं० [म० उत्तरदाता] [स्त्री उत्तरदात्री] वह जिससे किसी कार्य के बनने विगडने पर पूछताछ की जाय ।

उत्तरदाता^२—वि० जवाबदेह । जिम्मेदार ।

उत्तरदायित्व—सज्ञा पुं० [स० उत्तर + दायित्व, फा० जवाबदेही का हि० रूप] जवाबदेही । जिम्मेदारी । उ०—गुप्त साम्राज्य की मानी शासक को अपने उत्तरदायित्व का ध्यान नहीं ।—स्कंद०, पृ० ८ ।

उत्तरदायी—वि० [स० उत्तरदायिन्] [वि० स्त्री उत्तरदायिनी] उत्तर देनेवाला । जवाबदेह । जिम्मेदार ।

उत्तरदायी सरकार—सज्ञा स्त्री० [हि० उत्तरदायी + सरकार] उत्तरदायी शासन । उत्तरदायित्वपूर्ण शासन । वह शासन जिसमें शासक वर्ग के व्यक्ति अपने कार्यों के लिये जनता या जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी हों । उ०—यद्यपि केंद्र और प्रांतो दोनों में उत्तरदायी सरकार की व्यवस्था की गई थी ।—भा० रा० शा० वि०, पृ० ३ ।

उत्तरनाभि—सज्ञा स्त्री० [स०] यज्ञ में उत्तर की ओर का कुंड ।

उत्तरपक्ष—सज्ञा पुं० [स०] शास्त्रार्थ में वह सिद्धांत जिसमें पूर्व पक्ष अर्थात् पहले किए हुए निरूपण या प्रश्न का खंडन या समाधान हो । जवाब की दलील ।

उत्तरपट—सज्ञा पुं० [स०] १ उपरना । दुपट्टा । चादर । २. विछाने की चद्दर ।

उत्तरपथ—सज्ञा पुं० [स०] देवयान ।

उत्तरपद—सज्ञा पुं० [स०] किसी योगिक शब्द का अंतिम शब्द । जैसे, रवि-कुल-कमल-दिवाकर में 'दिवाकर' (शब्द०) ।

उत्तरपाद—सज्ञा पुं० [स०] चुनौती का जवाब [को०] ।

उत्तरप्रदेश—सज्ञा पुं० [म०] भारत सब का एक राज्य [को०] ।

उत्तरप्रोष्ठपदयुग—सज्ञा पुं० [स०] नदन, विजय, जय, मन्मथ और दुमुंघ, इन वर्षों का समूह ।

उत्तरप्रोष्ठपदा—सज्ञा स्त्री० [स०] उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र ।

उत्तरभोगी—वि० [स० उत्तरभोगिन्] उपभुक्त, त्यक्त या वची हुई वस्तु का उपभोग करनेवाला [को०] ।

५५५—सज्ञा पुं० [स० उत्तरमन्त्र] सगीत में एक मूर्च्छना का नाम ।

इसका स्वरग्राम यो है ।—स, रे, ग, म, प, ध, नि, ध, नि, स, रे, ग, म, प, ध, नि, स, रे, ग ।

उत्तरमानस—सज्ञा पुं० [स०] गया तीर्थ में एक सरोवर ।

उत्तरमीमांसा—सज्ञा स्त्री० [स०] वेदाव दर्शन ।

उत्तरलक्षण—सज्ञा पुं० [स०] जवाब का उपयुक्त सन्नेत [को०] ।

उत्तरवय—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'उत्तरवयस' [को०] ।

उत्तरवयस—सज्ञा पुं० [स०] बुढ़ापा । वृद्धावस्था ।

उत्तरवर्तन—सज्ञा पुं० [स०] २० 'अनुवृत्ति' [को०] ।

उत्तरवस्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] छोटी पिचकारी [को०] ।

उत्तवस्त्र—सज्ञा पुं० [स०] १ उपर पहना जानेवाला वस्त्र । २ दुपट्टा आदि [को०] ।

उत्तरवादो—सज्ञा पुं० [स० उत्तरवादिन्] वह जो वाद में न्याय की माँग करता है प्रतिवादी । मुद्दालेह [को०] ।

उत्तरसाक्षी—सज्ञा पुं० [स०] कृतसाक्षी के पाँच भेदों में से एक । वह साक्षी जो औरों के मुँह से मामले का हाल मुनमुनाकर साक्षी दे ।

उत्तसाधक^१—सज्ञा पुं० [स०] सहायक [को०] ।

उत्तरसाधक^२—वि० १ शेष भाग को पूरा करनेवाला । २ उत्तर (जवाब) को सिद्ध करनेवाला [को०] ।

उत्तरा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ राजा विराट की कन्या और अभिमन्यु की स्त्री जिससे परीक्षित उत्पन्न हुए थे । २ उत्तरीदिशा [को०] । ३ एक नक्षत्र [को०] ।

उत्तराखंड—सज्ञा पुं० [स० उत्तराखण्ड] भारतवर्ष का वह उत्तरी हिस्सा जो हिमालय के आसपास में पड़ता है [को०] ।

उत्तराधिकार—सज्ञा पुं० [स०] किसी के मरने के पीछे उसके धनादि का स्वत्व । वरासत ।

उत्तराधिकारी—सज्ञा पुं० [स० उत्तराधिकारिन्] [स्त्री उत्तराधिकारिणी] वह जो किसी के मरने के पीछे उसकी संपत्ति का मालिक हो । वारिस ।

उत्तरापेक्षी—वि० [स० उत्तरापेक्षिन्] अपने कयन का जवाब चाहनेवाला [को०] ।

उत्तराफाल्गुनी—सज्ञा स्त्री० [स०] वारहवाँ नक्षत्र ।

उत्तराभाद्रपद—सज्ञा स्त्री० [स०] छब्बीसवाँ नक्षत्र ।

उत्तराभास—सज्ञा पुं० [स०] झूठा जवाब । अडवड जवाब (स्मृति) ।

१ विशेष—यह कई प्रकार का होता है—(१) सदिग्ध, जैसे, किसी पर सौ मुद्रा का अभियोग है और वह पूछने पर कहे कि हमें याद नहीं कि हमने १०० स्वर्णमुद्राएँ ली या रजत मुद्राएँ । (२) प्रकृति से अग्न्य, जैसे, किसी पर गाय का दाम न देने का अभियोग है और वह पूछने पर कहे कि गाय तो नहीं घोड़ा अलवत इनसे लिया था । (३) अत्यल्प, जैसे, १०० के स्थान पर पूछने पर कोई कहे कि मैं पाँच ही हएँ निएँ थे । (४) अत्यधिक । (५) पक्षकदेशव्यापी, जैसे किसी पर सोने और कपड़े का दाम न देने का अभियोग है और वह कहे कि हमने कपड़ा लिया था, सोना नहीं । (६)

उत्तमवैश—संज्ञा पु० [सं०] शिव [को०] ।

उत्तमश्रुत—वि० [न०] बहुश्रुत । बड़ा विद्वान् [को०] ।

उत्तमश्लोक^१—वि० [सं०] यशस्वी । कीर्तिमान [को०] ।

उत्तमश्लोक^२—संज्ञा पु० १ सुयश । उत्तमकृति । पुण्य । यश । २

भगवान् । नारायण । विष्णु [को०] ।

उत्तमसंग्रह—संज्ञा पु० [सं० उत्तमसङ्ग्रह] परस्त्री से लगव [को०] ।

उत्तमसाहम्—संज्ञा पु० [सं०] १ एक हजार पण के तुमने का दंड । २ कोई बड़ा दंड, जैसे—शूली, फाँसी, जायदाद का जव्त होना अगमग, देशनिकाला इत्यादि-।

उत्तमागु—संज्ञा पु० [सं० उत्तमाङ्ग] सिर । शीर्ष । मस्तक ।

उत्तमाभस—संज्ञा पु० [सं० उत्तमान्मस] साध्यमतानुसार नौ प्रकार की तुष्टियों में एक जो हिंसा के त्याग से होती है । योग की परिभाषा में उसे सार्वभौम महाव्रत कहते हैं ।

उत्तमा^१—वि० [सं० उत्तम का वि० स्त्री०] अच्छी । भली ।

उत्तमा^२—संज्ञा स्त्री० १ पुरी विशेष । २- शूक रोग के १८ भेदों में से एक जिसमें अजीर्ण तथा रक्तपित्त के प्रयोग से इन्द्रिय पर भूँग या उर्द की सी लाल फुसियाँ हो जाती हैं । ३ दूधी । दुद्धो दुग्धिका । ४. इदीवरा । युग्मफल । ५ हिंदी साहित्य समेलन की एक परीक्षा का नाम ।

उत्तमादूती—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह दूती जो नायक या नायिका को मोठी बातों से समझा बुझाकर मना लावे ।

उत्तमानायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्वकीया नायिका जो पति के प्रतिकूल होने पर भी अनुकूल बनी रहे ।

उत्तमारणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] इदीवरी नाम का एक पौधा [को०] ।

उत्तमार्द्ध—संज्ञा पु० [सं०] १ पूर्वार्द्ध की एक अपेक्षा सुंदर उत्तरार्द्ध । वह जिसका उत्तरार्द्ध अच्छा हो । २ उत्तरार्द्ध [को०] ।

उत्तमार्ध—संज्ञा पु० [न०] दे० 'उत्तमार्द्ध' [को०] ।

उत्तमाह—संज्ञा पु० [सं०] १ अच्छा दिन । सौभाग्यवाला दिन । अंतिम दिन [को०] ।

उत्तमीय—वि० [सं०] सबसे ऊपर । सबसे अच्छा । सबसे ऊँचा । प्रधान [को०] ।

उत्तमोत्तम—वि० [सं०] अच्छे से अच्छा । सर्वोत्तम ।

उत्तमोत्तमक—संज्ञा पु० [सं०] लास्य के दस अंगों में से एक । कोप अथवा प्रसन्नताजनक, आक्षेपयुक्त, रसपूर्ण, हाव और भाव से समुक्त विचित्र पद्य-रचना-युक्त । (नाट्यशास्त्र) ।

उत्तमोजा^१—वि० [सं० उत्तमोजस्] जिसका बल या तेज उत्तम हो ।

उत्तमोजा^२—संज्ञा पु० १. मनु के दस लक्षों में से एक । २ युगमन्यु का भाई एक राजा जो पांडवों का पक्षपाती था ।

उत्तरग^१—संज्ञा पु० [सं० उत्तरङ्ग] काठ का मेहराब जो चौखट के ऊपर उगाया जाता है [को०] ।

उत्तरंग^२—वि० १ आनंद से भरा हुआ । २ लहराता हुआ । ३ कांपता हुआ । उछलता हुआ [को०] ।

उत्तर^१—संज्ञा पु० [सं०] १ दक्षिण दिशा के सामने की दिशा । ईशान और वायव्य कोण के बीच की दिशा । उदीची । २ किसी बात को सुनकर उसके समाधान के लिये कही हुई बात । जवाब । ३—लघु आनन उत्तर देत बड़ी लरिहै मरिहै करिहै

कुछ साको । गीरी, गहर गुमान मरी कही कीसिक, छोटी सो डोटो है काको ।—तुलसी ग्र०, पृ० १६० । जैसे, हमारे प्रश्न का उत्तर अभी नहीं आया । ३ प्रतिकार । बदला । जैसे, हम गालियों का उत्तर घूसों से देंगे । ४ एक वैदिक गीत । ५ राजा विराट का पुत्र । ६ एक काव्यालंकार जिसमें उत्तर के सुनते ही प्रश्न का अनुमान किया जाता है अथवा प्रश्नों का ऐसा उत्तर दिया जाता है जो अप्रसिद्ध हो । जैसे—(क) धेनु घूमरी रावरी ह्याँ कित है जदुवीर, वा तमाल तरवर तकी, तरनि तनूजा तीर (शब्द०) । इन उदाहरण में 'तुम्हारी गाय यहाँ कहाँ है' इस उत्तर के सुनने से हमारी गाय यहाँ कहीं है ? इस प्रश्न का अनुमान होता है । (ख) 'कहा विषम है ? दैवगति, सुख कह ? तिय गुनगान । दुर्लभ कह ? गुन गाहकहि, कहा दुख ? खल जान' (शब्द०) । इस उदाहरण में 'दुख क्या है' आदि प्रश्नों के 'खल' आदि अप्रसिद्ध उत्तर होता है । उ०—(क) को कहिए जन सो सुखी का कहिए पर श्याम, को कहिए जे रस विना को कहिए सुख वाम (शब्द०) । यहाँ 'जल से कौन सुखी है ?' इस प्रश्न का उत्तर इसी प्रश्न-वाक्य आदि का शब्द 'कोक (कमल)' है । इसी प्रकार और भी है । (ख) गाउ, पीठ पर लेहु, अग राग अरु हार कर, गृह प्रकाश करि देहु कान्ह कट्यो सारंग नही (शब्द०) । यहाँ गाओ, पीठ पर चढ़ाओ, आदि सब बातों का उत्तर 'सारंग (जिसके अर्थ वीणा, घोड़ा, चंदन, फूल और दीपक आदि हैं) नहीं' से दिया गया है । (ग) प्रश्न—बोडा क्यों अढा, पान क्यों सडा, रोटी क्यों जनी ? उत्तर—'फेरा न था' ।

यो०—उत्तर प्रत्युत्तर ।

उत्तर^२—वि० १ पिछला । बाद का । उपरात का । उ०—(क) देहूँ दग स्वकर इत आछे । उत्तर कियहि करहुँ गो पाछे ।—पद्माकर (शब्द०) ।

यो०—उत्तर भाग । उत्तर कान ।

२. ऊपर का । जैसे, उत्तरदत्त । उत्तरद्वनु । उत्तरारणी ३. बढ़कर । श्रेष्ठ । जैसे,—लोकोत्तर ।

उत्तर^३—क्रि० वि० पीछे । बाद । जैसे, उत्तरोत्तर ।

उत्तरकल्प—संज्ञा पु० [सं०] दूसरा कल्प जिसमें खनिज पदार्थों एवं पर्वतों की सृष्टि हुई थी [को०] ।

उत्तरकांड—संज्ञा पु० [सं० उत्तरकाण्ड] रामायण का सातवाँ या अंतिम कांड (अध्याय) [को०] ।

उत्तरकाय—संज्ञा पु० [सं०] शरीर का ऊपरी भाग [को०] ।

उत्तरकाल—संज्ञा पु० [सं०] भविष्यकाल [को०] ।

उत्तरकाशी—संज्ञा पु० [सं०] एक स्थान जो हरिद्वार के उत्तर में है और बदरीनारायण के मार्ग में पड़ता है ।

उत्तरकुरु—संज्ञा पु० [सं०] जवूदीप के नौ वर्षों या षडो में से एक ।

उत्तरकोशल—संज्ञा पु० [सं०] अयोध्या के आसपास का देश । प्रवध ।

उत्तरकोशला—संज्ञा स्त्री० [सं०] अयोध्या नगरी ।

उत्तरकोशल—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'उत्तरकोशल' [को०] ।

उत्क्रोशपात—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नृत्य [को०] ।

उत्क्लेद—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उत्क्लेदन' [को०] ।

उत्क्लेदन—पज्ञा पुं० [सं०] तर या गीला ।

यौ०—उत्क्लेदनवस्ति=तरी पहुँचाने की इच्छा से उपयुक्त औपधियों के बवाय निचकागे द्वारा वस्ति में पहुँचना ।

उत्क्लेश—सज्ञा पुं० [सं०] १ शरीर का स्वस्थ न रहना । २ वेवंची । ३ कलेजे के सर्प, प जलन [को०] ।

उत्क्षिप्त—वि० [सं०] १ ऊपर उछाला हुआ । ऊपर फेंका हुआ [को०] ।

उत्क्षेप—सज्ञा पुं० [सं०] १ ऊपर की तरफ उछालना । उपर की तरफ फेंकना [को०] ।

उत्क्षेपक—सज्ञा पुं० [सं०] १ वस्त्रादि का चोर ।—(स्मृति) । २ वह जो उछालता या फेंकता है [को०] । ३ वह जो भेजता है [को०] ।

उत्क्षेपण—सज्ञा पुं० [सं०] १ चुगना । चोरी । २ ऊपर की ओर फेंकना । ३ सोलह पण की एक माप । ४ पखा । ४ किसी वस्तु का ढकना । पिहान । ६ मूसल, मुँजरी या पिटना इत्यादि जिससे भन्न पीटा जाता है । ७ सूप ।

उत्खनन—सज्ञा पुं० [सं०] खोदना । खनना । गढी वस्तु को बाहर निकालना ।

उत्खला—सज्ञा स्त्री० [सं०] मुरा नामक एक सुगन्धित द्रव्य [को०] ।
उत्खात—वि० [सं०] उखाड़ा हुआ । २ खोदकर निकाला हुआ । [को०] । ३ खोदा हुआ [को०] ।

उत्खाता—वि० [सं० उत्खातृ] १ खोदनेवाला । २ उखाड़नेवाला [को०] ।

उत्खाती—वि० [सं० उत्खातिन्] १ ऊबड़ खाबड़ । जो सम न हो । २ नष्ट करनेवाला । विनाशकारी [को०] ।

उत्खान—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उत्खनन' [को०] ।

उत्खेद—सज्ञा पुं० [सं०] १ खोदना । खनना । २ बाहर निकालना । ३ छेदना [को०] ।

उत्तक—सज्ञा पुं० [सं० उत्तङ्क] दे० 'उत्तक' [को०] ।

उत्तगु—वि० दे० 'उत्तुग' । उ०—उत्त ग मरकत मंदिरन मधिवहु मृदग जु वाजही । घन-सर्प भानहु घुमरि करि घन घन पटल गल गाजही ।—भूपण ग्र०, पृ० ४ ।

उत्तभ—सज्ञा पुं० [सं० उत्तम्भ] १ आधार देना । सहारा देना । २ रोकना [को०] ।

उत्तभन—सज्ञा पुं० [सं० उत्तम्भन] दे० 'उत्तम' [को०] ।

उत्तस—सज्ञा पुं० [सं०] १ मुकुट । किरीट । २ मुकुट पर धारण की हुई माला । ३ कान का एक गहना । कर्णपूर । कनफूर । ४ एक प्रकार का श्लकार (साहित्य) । उ०—उत्तस—गौण भाव से कही उक्ति को प्रधानता देना ।—सूणी० अमि० ग्र०, पृ० २६३ ।

उत्त'—सज्ञा पुं० [उत्] आशयं । सदेह । उ०—मेरे मन उत्तरी तू कैसे उतरी है, मुंदरी तू कैसे करि उतरी समुदरी ।—धनुमान (शब्द०) ।

उत्त'—क्रि० वि० [हि०] दे० उत । उ०—कहा किया हम प्राइ कहा करेंगे जाइ, इत के मये न उत्त के चल मूल गेवाइ ।—कवीर ग्र०, पृ० २३ ।

उत्त'—अव्य० उधर ।

उत्ताट—वि० [सं०] किनारे तक छत्रकता हुआ [को०] ।

उत्तपन—सज्ञा पुं० [सं०] एक विशेष प्रकार की आग [को०] ।

उत्तप्त—वि० [सं०] १ खूब तपा हुआ । २ दुःखी । क्लेशित । पीडित । सतप्त । ३ क्रोधित । क्रुपित । ४, स्नान किया हुआ । धोया हुआ ।

उत्तप्त'—सज्ञा पुं० १ सुखाया हुआ मास । २ अधिक गर्म [को०] ।

उत्तव्य—वि० [सं०] १ ऊपर उठाया हुआ । २ उत्तेजित किया गया [को०] ।

उत्तमित—वि० [सं०] दे० 'उत्तव्य' [को०] ।

उत्तम'—वि० [सं०] [वि० स्त्री० उत्तमा] १ श्रेष्ठ । मन्त्रसे प्रच्छा । सबसे भला ।

उत्तम'—सज्ञा पुं० [सं०] छोटी रानी सुखचि से उत्पन्न राजा उत्तानपाद का पुत्र । ध्रुव का सौतेला भाई ।

उत्तमगधा—सज्ञा स्त्री० [सं० उत्तमगधा] चमेली । मालती । उ०—सुसना जाती मल्लिका, उत्तमगधा आस, कछु इक तुव तन वास सो मिलति जासु की बात ।—नद० ग्र०, पृ० १०२ ।

उत्तमतया—क्रि० वि० [सं०] उत्तमतापूर्वक । उत्तमता से । अच्छी तरह से । मली भाँति ।

उत्तमता—सं० स्त्री० [सं०] श्रेष्ठता । उत्कृष्टता । खूबी । भलाई । उ०—इसमे तो सब जाक की उत्तमता निकल सकती है ।—भारतेंदु ग्र०, भा० ३, पृ० १६ ।

उत्तमताई—सज्ञा स्त्री० [सं० उत्तमता + हि० ई (प्रत्यय)] भलाई । बड़ाई । बड़प्पन । उ०—वनिक लहत सुनि घन अधिकारी लहत सूद्रकुन उत्तमताई ।—पद्माकर (शब्द०) ।

उत्तमत्व—सज्ञा पुं० [सं०] अच्छापन । भलाई ।

उत्तमन—सज्ञा पुं० [सं०] १ अघंथ । २ साहस छटना । दिल खोना [को०] ।

उत्तमपुरुष—सज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण में वह सर्वनाम जो बोलने वाले पुरुष को सूचित करता है, जैसे,—'मैं', 'हम' ।

उत्तमफलिनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] दुग्दी या दुग्धिका नाम का पौधा ।

उत्तमर्ण—सज्ञा पुं० [सं०] ऋण देनेवाला व्यक्ति । महाजा । अघमर्ण का उलटा ।

उत्तमर्णिक—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उत्तमर्ण' [को०] ।

उत्तममित्र—सज्ञा पुं० [सं०] वह जो राष्ट्र या राज्य के लिये सबसे उत्तम मित्र हो । उत्तम मित्र के कीटिल्य ने छह भेद दिए हैं—(१) नित्यमित्र (२) वश्यमित्र, (३) लघूत्थानमित्र, (४) भितृर्गतामह मित्र, (५) मदनमित्र, (६) अद्वैत्यमित्र [को०] ।

उत्तमवयस—सज्ञा पुं० [सं०] जीवन की अंतिम अवस्था । जीवन का शेष भाग [को०] ।

उत्तमवर्ण—वि० [सं०] १. सुवर्ण । अच्छे रंगवाला । उत्तम जाति का [को०] ।

यो०—उत्कलखड=स्कंदपुराण का एक भाग।

२—वहेलिया। ३ वोभा डोनेवाला। ४. ब्राह्मणा का एक भेद [को०]।

उत्कलप—वि० [स०] ऊपर की तरफ पूँछ फँसाए हुए [को०]।

उत्कलिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ उत्कठा। २ फूल की कली। ३ तरंग। लहर। ४ वह गद्य जिसमें बड़े बड़े समासवाले पद हों।

उत्कलित—वि० [स०] मुक्त। प्रस्फुटित। उ०—हर पिता कठ की हृष्ट धार, उत्कलित रागिनी की वहार।—प्रनामिका, पृ० १२३।

उत्कलपण—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ चीरना। फाटना। २. हल से जोतना [को०]।

उत्का—वि० स्त्री० [म०] दे० 'उत्कठिता'। उ०—ग्राप जाय सकेत में, पीव न आयो होय। ताकी मत चिंता करै उत्का कहिए सोय।—मतिराम ग०, पृ० ३०४।

उत्काका—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] वह गाय जो प्रति वर्ष वच्चा दे। वरमाइन गाय।

उत्कार—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ अनाज फटकना या पछोरना। २. अनाज की राशि लगाना। ३. वह जो बीज बोता है [को०]।

उत्कारिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] लोधा। पुलटिस। लेप [को०]।

उत्काशन—सञ्ज्ञा पुं० [स०] आज्ञा देना [को०]।

उत्कास—सञ्ज्ञा पुं० [स०] गला साफ करना। खबारना [को०]।

उत्कासन—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'उत्कास' [को०]।

उत्कासिका—सञ्ज्ञा स्त्री० दे० 'उत्कासन' [को०]।

उत्कीर्ण—वि० [स०] लिखा हुआ। खुदा हुआ। छिदा हुआ। विधा हुआ। उ०—गवर्नमेंट ने पंडित जी की विद्वत्ता की प्रशंसा उत्कीर्ण कराकर एक सोने का पदक पुरस्कार में दिया।—सरस्वती (शब्द०)।

उत्कीर्णकर्ता—वि० [स०] लिखने या लिखवानेवाला। उ०—आगे के पल्लव अमिलेख सस्कृत में हैं जिसके अध्ययन से पता चलता है कि उनके लेखक तथा उत्कीर्णकर्ता पाँचवीं तथा छठी शताब्दी में हुए थे।—प्रा० ना०, पृ० ५६१।

उत्कीर्तन—सञ्ज्ञा पुं० [स०] [वि० उत्कीर्तित] १. प्रशंसा। स्तुति करना। २. चिल्लाना। जोर से पुकारना। ३. घोषणा करना।

उत्कुट—सञ्ज्ञा पुं० [स०] चित्त सोना। [को०]।

उत्कुटक—वि० [स०] ऊपर मुँह करके सोया हुआ [को०]।

उत्कुण—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १. मत्कुण। खटमल। उडस। २. वालों का कीड़ा। जूँ।

उत्कूज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कोयल का गान करना। कोयल का कूकना [को०]।

उत्कूट—सञ्ज्ञा पुं० [स०] छाता या छतरी [को०]।

उत्कूर्दन—सञ्ज्ञा पुं० [म०] कूदना। उछलना [को०]।

उत्कूल—वि० [स०] १ ऊपर जानेवाला (पर्वत या नदी)। २ किनारे पर पहुँचानेवाला। ३. किनारे की तरफ बढ़नेवाला [को०]।

उत्क्रांति^१—सञ्ज्ञा पुं० [स०] २२ वण क वृत्तों का नाम। सुख ग्राह भुजग विजृम्भित इत्यादि इन्हीं के अंतर्गत हैं।

उत्क्रांति^२—वि० छव्वीस (सदया)।

उत्क्रुष्ट—वि० [स०] १ उत्तम। श्रेष्ठ। अच्छे से अच्छा। सर्वोत्तम। २ ऊपर से उठाया हुआ [को०]। ३ जोता हुआ। [को०]।

४. तोड़ा हुआ। काटा हुआ [को०]।

उत्क्रुष्टवेदन—सञ्ज्ञा पुं० [स०] अपने से उच्च जाति के व्यक्ति से विवाह करना [को०]।

उत्क्रुष्टता—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] बड़ाई। श्रेष्ठता। अच्छापन। बड़प्पन। उत्क्रुष्ट होने की स्थिति। उ०—यह मनुष्य जिससे वेनिस के प्रत्येक निवासियों को घृणा है, जिसके निकट महत्व और पानिप कोई उत्क्रुष्टता नहीं रखता, जो वृद्ध और युवा सब पर कराघात करने को उद्यत है।—अयोध्या (शब्द०)।

उत्केद्र—वि० [स० उत्केन्द्र] १ केंद्र से निकाला या अलग किया हुआ। २ बिना नियमवाला [को०]।

उत्केद्रक—वि० [स० उत्केन्द्रक] केंद्र से अलग या बाहर करनेवाला [को०]।

उत्केद्रकशक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० उत्केन्द्रकशक्ति] केंद्र से दूर फेंकनेवाली शक्ति। यह शक्ति जोर से चक्कर मारती हुई वस्तुओं में उत्पन्न हो जाती है, जिससे उस वस्तु का कोई खंडित अंश अथवा ऊपर रखी हुई कोई और चीज उसके केंद्र से बाहर की ओर वेग से जाती है, जैसे, पहिए से लगा हुआ कीचड़ गाड़ी चलते समय दूर जा पड़ता है।

उत्केद्रता—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० उत्केन्द्रता] केंद्र से च्युत होना। घुरी-हीनता। उ०—दुर्वोधता, प्राचुर्य और उत्केद्रता शास्त्रीय संपूर्णता के विरुद्ध है।—पा० सा०, पृ० १७१।

उत्कोच—सञ्ज्ञा पुं० [स०] घूस। रिश्वत।

यो०—उत्कोचग्राही। उत्कोचजीवी।

उत्कोचक^१—वि० [स०] [वि० स्त्री० उत्कोचिका] घूसखोर। रिश्वत खानेवाला।

उत्कोचक^२—सञ्ज्ञा पुं० रिश्वत खाना। रिश्वत लेना [को०]।

उत्कोटि—वि० [स०] नोकवाला। नोकदार [को०]।

उत्क्रम—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ उलटपट। क्रमभंग। विपर्यय। २. असमान होना।

उत्क्रमण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० उत्क्रमणीय] १. क्रम का उल्लंघन। २ मरण। मृत्यु। ३ बाहर या ऊपर जाना [को०]। ३ वृद्धि होना। बढ़ना [को०]।

उत्क्रांति—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० उत्क्रान्ति] क्रमशः उत्तमता और पूर्णता की ओर बढ़ती हुई प्रवृत्ति। दे० 'आरोह'। उ०—मनोमंदिर की मेरी शांति। बनी जाती है क्यों उत्क्रांति?—साकेत, पृ० ३२।

यो०—उत्क्रांतिवाद। उ०—भाषाविज्ञान और उत्क्रांतिवाद ने भी बहुत सी ऐतिहासिक घटनाओं में तार्किक सन्नद्धता दिखाई।—पा० सा०, पृ० ६।

उत्क्रोश—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १. शोरगुल। हल्ला। चिल्लाना। जोर की आवाज। २. घोषणा। राजाज्ञापत्र द्वारा प्रकाशन। ३ कुररी पक्षी [को०]।

बोलाइ । मूर स्याम दुहि देन कह्यो, सुनि राधा गई मुसुकाइ ।
—सूर०, १० । ७२८ । (क) आजु अकेली उतावली हौं पहुँची
तट लौं तुम आई करार मे । बालसखीन के हा हा
किए मन कहूँ दियो जल केलि विहार मे ।—सुदरीसर्वस्व
(शब्द०) ।

उताहल^१—वि० [हि० उतावल] शीघ्रता से । तेजी से ।
चपलता से । उ०—गुह मेहदी सेवक में सेवा, चलै उताहल
जेहिकर बेवा ।—जायसी (शब्द०) ।

उताहल^२—वि० उतावला ।

उताहल^३—[हि०] दे० 'उतावल' ।

उतिपत्ति^४—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'उत्पत्ति' । उ०—दीपमालिका
उतिपत्ति सब कहै सुनाऊँ तोहि ।—पृ० रा० २३।२ ।

उतिम^५—वि० [म० उत्तम] दे० 'उत्तम' । उ०—एहि रे दगध हुँत
उतिम मरीज ।—जायसी ग्र०, पृ० १०८ ।

उतिमाहीं^६—क्रि० वि० [स० उत्तम] उत्तम । श्रेष्ठ । उ०—
चपावति जो रूप उतिमाहीं, पदमावति कि जोति मन छाहीं ।
—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० १५३ ।

उतू—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'उत्तू' । उ०—बोली चुनावट चीन्हे चुभें चपि
होन उजागर दाग उतू के ।—नानन्द, पृ० ४७ ।

उतृण^७—वि० [सं० उद्+तीर्ण] १ ऋणमुक्त । उच्छ्रय ।
अनृण । उ०—हाय किस भाँति उस पिता के धर्म
ऋण से उतृण होऊँ ।—नोताराम (शब्द०) । २ जिसने
उपकार का बदला चुका दिया हो । उ०—प्राप अपना आघा
घन भी उसको दे देवें तब भी उसके ऋण से उतृण नहीं ।
हो मकते ।—शिवप्रसाद (शब्द०) ।

उतृन^८—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'उतृण' । उ०—पलटू में उतृन
नया, मोर दोस जिन देय ।—पलटू० बानी०, भा० १,
पृ० ६ ।

उतै^९—क्रि० वि० [हि० उत] वहाँ । उधर । उस ओर । उ०—
खेलत खेल सखीनि मे उतै घूरि अवगाहि, पलक न लागत एक
पल इतै नाह मुख चाहि ।—मतिराम ग्र०, पृ० ४४६ ।

उतैला^{१०}—क्रि० वि० [हि०] दे० 'उतावला' ।

उतैला^{११}—सज्ञा पुं० [देश०] उज्जैन । माप ।

उत्क^{१२}—वि० [म० उत्कण्ठ] १ ऊपर गर्दन किए हुए । २ तैयार ।
उद्यत । ३ उत्कटायुक्त । उत्कठित [को०] ।

उत्क^{१३}—सज्ञा पुं० रतिकर्म का एक आसन [को०] ।

उत्क^{१४}—सज्ञा स्त्री० [सं० उत्कण्ठा] १ प्रबल इच्छा । तीव्र
अमिलापा । लालसा । चाव । २ रस में एक सचारी का
नाम । किसी नाम में विलव न सहकर उसे चटपट
करने की अमिलापा । जैसे, फिर फिर वृभक्ति, कहि कहा
कह्यो साँवरे गात, कहा करत देखे, कहाँ आली चली क्यों
बात ।—विहारी र०, दो० २१६ ।

उत्कठानुर—वि० [म० उत्कण्ठा + आनुर] तीव्र इच्छा की पूर्ति के
निये आनुर ।

उत्कठित—वि० [रत्नकण्ठता] उत्कटायुक्त । उत्सुक । उत्साहित ।
चाव से भरा हुआ ।

उत्कठिता—सज्ञा स्त्री० [सं० उत्कण्ठिता] सकेत स्थान में प्रिय के न
ग्रहाने पर वितर्क करनेवाली नायिका । जैसे, नभ लाली चाली
निसा, चटकीली धुनि कीन, रति पाली आली, अनत आए
वनमाली न —विहारी र०, दो० ११५ ।

उत्कदक—सज्ञा पुं० [सं० उत्कन्दक] एक प्रकार का रोग [को०] ।

उत्कधर^१—वि० [सं० उत्कधर] उपर गर्दन किए हुए [को०] ।

उत्कधर^२—सज्ञा पुं० गर्दन ऊपर करना [को०] ।

उत्कप—सज्ञा पुं० [सं० उत्कम्प] कंपकंपी ।

उत्क^१—वि० [सं०] १ इच्छा रखनेवाला । १ दुःख । कष्टप्र ।
३ भूलनेवाला [को०] ।

उत्क^२—सज्ञा पुं० १ इच्छा अवसर [को०] ।

उत्कच^१—सज्ञा पुं० [सं०] १ हिरण्यक्ष के नौ पुत्रों में से एक ।

२ परावसु गन्धर्व के नौ पुत्रों में से एक ।

उत्कच^२—वि० १ खड़े बालोवाला । २ गजा [को०] ।

उत्कट^१—वि० [सं०] तीव्र । निकट । कठिन । उग्र । प्रचंड । दुःसह ।
प्रबल । उ०—तथापि दूमरो की उत्कट कीर्ति से इसमें ईर्ष्या
होती है ।—भारतेंदु ग्रंथ, भा० १, पृष्ठ २२३ ।

उत्कट^२—सज्ञा पुं० [सं०] १ मूँज । २ ईख । गन्ना । ३ दालचीनी
४ तज । तेजपात्ता ।

उत्कटा—सज्ञा स्त्री० [सं०] सँही लता [को०] ।

उत्कर—सज्ञा पुं० [सं०] राशि । ढेर [को०] ।

उत्कर्कर—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाजा [को०] ।

उत्क—वि० [सं०] १ कान खड़े हुए । २ उत्सुक । (किसी
बात को सुनने के लिये) [को०] ।

उत्कर्णता—सज्ञा स्त्री० [सं० उत्कर्ण] उत्सुकता । उ०—देख भाव-
प्रवणता, वरवर्णता, वाक्य सुनने की हुई उत्कर्णता —साकेत,
पृ० ६६ ।

उत्कर्तन—सज्ञा पुं० [सं०] १ काटना । २ फाड़ डालना । ३
उन्मूलन [को०] ।

उत्कर्ष—सज्ञा पुं० [सं०] १ बड़ाई । प्रशंसा । २ श्रेष्ठता । उत्तमता ।
अधिकता । बढ़ती । उ०—भले की भलाई और बुरे की बुराई
दिखलाकर एक का उत्कर्ष और दूसरे का पतन दिखलाया जाता
है —रस क०, पृ० २७ ।

उत्कर्षक—वि० [सं०] उत्कर्ष की प्रेर से ले जानेवाला । उत्कर्ष-
दायक [को०] ।

उत्कर्षता—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ श्रेष्ठता । बड़ाई । उत्तमता । २
अधिकता । प्रचुरता । ३ समृद्धि ।

उत्कर्षित—वि० [सं०] उत्कर्षप्राप्त । उत्कर्ष को पहुँचा हुआ । उ०—
उसे ज्ञात था, लोहे को है गुण विधि से अर्पित । निम्न सार से
यह सुवर्ण में हो सकता उत्कर्षित ।—दैनिकी, पृ० २३ ।

उत्कर्षी—वि० [सं० उत्कर्षिन्] दे० 'उत्कर्षक' [को०] ।

उत्कल—सज्ञा पुं० [सं०] १ एक देश जिसे अब उड़ीसा कहते हैं ।

साथ उतार जाओ। १४ जन्म देना। उत्पन्न करना। उ०—
दियो शाप भारी, बात सुनी न हमारी, घटि कुल मे उतारी,
देह सोई याको जानिए।—प्रिया (शब्द०)। १५ किसी ऐसी
वस्तु का तैयार करना जो सूत या उसी प्रकार की और किसी
अखड़ सामग्री के बराबर बँटाते जाने से तैयार हो। सुई तागे
आदि मे बननेवाली चीजों का तैयार करना। जैसे, जुलाहे ने
कल चार थान उतारे। १६. ऐसी वस्तु का तैयार करना जो
खराद, सचि या चाक आदि पर चढाकर बनाई जाय। जैसे,
चाक पर से बरतन उतारना, कालिव पर से टोपी उतारना।
उ०—(क) कुम्हार ने दिन भर मे १०० हँडियाँ उतारी। (ख)
केशोदास कुदन के कोश ते प्रकाशमान चितामणि ओपनी सो
ओपि कै उतारी सी। (शब्द०)। १७ बाजे आदि की कसन
को ढीला करना। जैसे, सितार और ढोल को उतार-
कर रख दो।—केशव (शब्द०)। १८. भभके से खीचकर
तैयार करना। खोलते पानी मे किसी वस्तु का सार उतारना।
जैसे, (क) वह शराब उतारता है। (ख) हम कुसुम का रंग
अच्छी तरह उतार लेते हैं। १९. शतरज मे प्यादे को बढाकर
कोई बडा मोहरा बनाना। २ स्त्री का समोग करना।
(अश्लिष्ट की भाषा)। २१ तौल मे पूरा कर देना। जैसे,
वह तौल मे सेर का सवा सेर उतार देता है। २२ आग पर
चढाई जानेवाली वस्तु का पककर तैयार करना। जैसे, पूरी
उतारना। पाग उतारना।

सयो०क्रि०—डालना।—देना—लेना।

उतारना^३—क्रि० स० [स० उत्तरण] पार ले जाना। नदी नाले के
पार पहुँचाना। उ०—वह तीर मारहु लखनु पै जब लगि न पाय
पखाहि। तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पार
उतारिहो।—मानस, २। १००।

उतारा^१—संज्ञा पुं० [हि० उतरना] १ डेरा डालने या टिकाने का
कार्य। उ०—वाग ही मे पथिक उतारो होत आयो है।—दूल्ह
(शब्द०)। २ उतरने का स्थान। पडाव। उ०—नारजत क्रोध
लोभ को नारी, सूक्त कहु न उतारो।—सूर० १।२०६।
३ नदी पार करने की क्रिया।

यौ०—उतारे का क्षोपडा= सराय। धर्मशाला।

उतारा^२—संज्ञा पुं० [हि० उतरना] १ प्रेतवाधा या रोग की शांति
के लिये किसी व्यक्ति के शरीर के चारो ओर खाने पीने आदि
की कुछ सामग्री को घुमाकर चोराहे या ओर किसी स्थान
पर रखना। उ०—कहुँ रुसत रोवत नहि सोवत रगवाये न
रगाही, धी के तुला करावहि जननी विविध उतार कराही।
—रघुराज (शब्द०)।

क्रि० प्र०—उतारना।—करना।

२. उतारे की सामग्री या वस्तु।

उतारु^१—[हि० उतरना] उद्यत। उत्तर। सन्नद्ध। तैयार। मुस्तैद।
जैसे, इतनी ही सी बात के लिये वे मारने पर उतारु हुए।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

उतारु^२—संज्ञा पुं० [हि०] मुसाफिर।—(लश०)।

२-५

उताल^१—क्रि० वि० [प्रा० उताल, जल्दी, शीघ्र] जल्दी। शीघ्र।
उ०—(क) कहै न जाइ उताल जहाँ भूपति तिहारो। हीं
वृदावन चद्र कहा कोउ करै हमारो?।—सूर (शब्द०)। (ख)
कहै घाय मिनय कै भाव उतात तू गाय गोपाल की गाइन
मे।—रघुनाथ (शब्द०)। (ग) सो राजा जो अगमन पहुँचै सूर
सु भवन उताल।—सूर०, १०। २२३।

उताल^२—संज्ञा स्त्री० शीघ्रता। जल्दी। उ०—(क) ज्यों ज्यों आवति
निकट निसि त्यों त्यों खरी उताल, भ्रमकि भ्रमकि टहलै
करै लगी रहचटै वाल।—विहारी २०, दो ५४३। (ख)
कहै शिव कवि दवि काहे को रही है वाम, धाम ते पसीना भयो
ताको सियराय ले, बात कहिवे मे नदलाल की उताल कहा?
हाल तो, हरिननैनी। हफनि मिटाय ले।—शिव (शब्द०)।

उताली^१—संज्ञा स्त्री० [हि० उताल] शीघ्रता। जल्दी। उतावली।
चपलता। फुर्ती। उ०—गोपी ग्वाल माली जुरे आपुस मे कहै
आली कोऊ जसुदा के ओतरयो जो इद्रजाली है, कहै पद्माकर
करै को यी उताली जापै रहन न पावै कहुँ एको फन खाली है।
—पद्माकर ग्रं०, पृ० २३१।

उतालो^२—क्रि० वि० शीघ्रता के साथ। जल्दी से। उ०—रुसि कहु
कडि माली गयो गई ताहि मनावन सासु उताली।—पद्माकर
ग्रं०, पृ० १६१।

उतावल^१—क्रि० वि० [प्रा० उतावल] जल्दी जल्दी। शीघ्रता से
उ०—(क) कोउ गावत कोउ वेनु वजावत कोऊ उतावल
धावत। हरिदशन की आसा कारन विविध मुदित सब धावत।
—सूर०, १०। ४२५२ (ख) मोको श्री गोकुल उतावल ही
जानो है।—सो सो वावन०, भा० १, पृ० ४४।

उतावल—क्रि० वि० दे० 'उतावला'।

उतावला—वि० [प्रा० उतावल + आ (प्रत्य०)] [स्त्री० उतावली]
१ जल्दी मचानेवाला। जिसे जल्दी हो। जल्दवाज।
चंचल। उ०—(क) पानी हू ते पातग धूर्प्रै हू ते
भीन, पवनहुँ वेग उतावला दोस्त कवीरा कीन।
—कवीर (शब्द०)। अरे मन, तू उतावना न हो,
धीरज धर, तेरे हित की अनसूया पूछ रही है।—शकुतना,
पृ० २०। ८. व्यग्र। धवराया हुआ। उत्सुक। उ०—क्या जाने
उतावला होकर जी बहलाने के लिये उसने बाजे मे कुजी दे
रखी हो।—अयोध्या (शब्द०)।

उतावलि^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'उतावली'। उ०—सो
जनेऊ तोरि कै बुहारि उतावलि गो बांधी।—सो सो वावन०,
भा० २, पृ० ८५।

उतावली^१—संज्ञा स्त्री० [प्रा० उतावल—ई (प्रत्य०)] १. जल्दी।
शीघ्रता। जल्दवाजी। हड़बडी। उ०—(क) बसन शुक्र तनया
के लीन्हे, करत उतावलि परे न चीन्हे।—पूर०, ६। १७४।
(ख) उनको कई तीर्थों मे जाना है इसलिये वह उतावली कर
रहे हैं। अयोध्या शब्द०। २ व्यग्रता। चंचलता।

उतावली^२—वि० स्त्री० जिसे जल्दी हो। जो जल्दी मे हो। शीघ्रता
करनेवाली। उ०—तबहि गई मे ब्रज उतावली आई ग्वाल

उतलाना^७—क्रि० प्र० [प्रा० उतावल, उतावल = शीघ्रता]
जल्दी करना । उ०—चनी तब घाई लछमन पाव छुए जाई ।
वोली मुसकाय एक बात कहौ भावती । वरवे के काज राम तुम
पै पठाई हौ गजानन मनाय आई ताते उतलावती ॥—हनुमान
(शब्द०)

उतल्ला—वि० [हि०] दे० 'उतायल' ।

उतवग^७—सज्ञा पुं० [स० उत्तामग] मस्तक । सिर ।—डि० ।
उतसहकठा^७—सज्ञा स्त्री० [स० उत्कृष्ठा] प्रबल इच्छा । उत्कठा ।
उ०—गरद सुहाई आई राति, दुहै दिस फूल रही बन जाति,“
उतसहकठा हरि सो बड़ी ।—सूर (शब्द०) ।

उताइल^७—वि० [प्रा० उत्तावल] दे० 'उतायल' । उ०—(क) गुरु
मोहदा खेक मैं सेवा । चलै उताइल जेहि कर सेवा । जायसी
प्र० पृ० ८१ । (ख) दधि सुत अरि नख सुत सुमाव चल तहाँ
उताइल आई । देखि ताहि सुर लिख कुवेर को वित्त तुरत
समुभाई ।—साहित्य०, १६६ ।

उताइली^७—सज्ञा स्त्री० [प्रा० उत्तावली] दे० 'उतायली' ।

उतान—वि० [स० उत्तान = उत् + तान, प्रा० उत्ताण = उन्मुख] २ पीठ
को जमीनपर लगाकर लेटे हुए । चित । सीधा । उ०—उमा
रावनहि प्रस अभिमाना । जिमि टिटिम खग सूत उताना ।
—मानस, ६।३६ । २ तना हुआ । फैला हुआ ।

क्रि० प्र०—चनना ।

उतामला^७—वि० [हि०] 'उतावला' ।

उतायल^७—वि० [प्रा० उत्तावल = उतावली] जल्दी । शीघ्र ।
तेज । उ०—जब सुमिरत रघुवीर सुभाऊ, तब पथ परत
उतायन पाऊ ।—तुलसी (शब्द०) ।

उतायली^७—सज्ञा स्त्री० [हि० उतायल] जल्दी । शीघ्रता । उ०—
श्याम सकुच प्यारी उर जानी । करत कहा पिय अति उता-
यनी मैं कहूँ जात परानी ।—सूर (शब्द०) ।

उतार—सज्ञा पुं० [स० अव + √तृ, प्रा० उत्तार, हि० उतरना] १
उतरने की क्रिया । २ क्रमशः नीचे की ओर प्रवृत्ति । ढाल ।
जैसे,—पहाड़ का उतार । (शब्द०) ।

यौ०—उतार चढ़ाव = ऊँचाई निचाई । उतार सुतार = गी ।
सुनीता ।

मुहा०—उतार चढ़ाव बताना = (२) ऊँचा नीचा समझाना । (२)
धोखा देना । ३ उतरने योग्य स्थान । जैसे, (क) पहाड़ के
उस तरफ उतार नहीं है, मत जाओ । ४ किसी वस्तु की
मोटाई या घेर का क्रमशः कम होना । जैसे, इस छड़ी का
चढ़ाव उतार बहुत अच्छा है । किसी क्रमशः बढ़ी हुई वस्तु
का घटना । घटाव । कमी । जैसे नदी अब उतार पर है ।
६ नदी में हलकर पार करने योग्य स्थान । हिलान । जैसे—
यहाँ उतार नहीं है, ओर आगे चलो । ७ समुद्र का भाटा ।
= दरी के करके का पिछना वॉन जो बुनेवाले में दूर ओर
रफ़्ताने के समानांतर होना है । ८ उतारन । निकृष्ट । उ०—
प्रथम उतार, अष्टमर को अष्टमर जग जाकी छाँह छुए सहमत

व्याघ्र बाँध को ।—तुलसी प्र०, पृ० २१३ । १० उतारा ।
न्योछावर । सदका ।

११ परिहार । उस वस्तु का प्रयोग जिससे विष आदि का
दोष या और कोई प्रभाव दूर हो । जैसे, (क) हीम अफीम का
उतार है । (ख) इस मन्त्र का उतार क्या है । १२ वह अभि-
चार जो अपने मंगल के लिये किसान करते हैं । इसमें वे एक
दिन गाँव के बाहर रहते हैं । १३ कुश्ती का एक दाँव ।
उ०—दस्ती, उतार, लोकान, पट, ढाक, कालाजग, घिस्ते
आदि दाँव चले और कटे ।—काले० पृ० ४१ ।

उतारन—सज्ञा पुं० [प्रा० उत्तारण, हि० उतारना] उतारा हुआ कपड़ा ।
वह पहिरावा जो धारण करते करते पुराना हो गया हो ।
जैसे, आपकी उतारन पुतारन मिल जाय । २ न्योछावर ।
उतारा । ३ निकृष्ट वस्तु ।

यौ०—उतारन पुतारन ।

उतारना^१—क्रि० स० [स० अवतारण, प्रा० उत्तारण] १ ऊँचे स्थान
से नीचे स्थान में लाना । उ०—अहे, दहेडी जिन धरै, जिन
तू लेहि उतारि, नीकें है छीकें छुवै ऐसैं रहि नारि ।
—विहारी २०, दो० ६१६ । २ किसी वस्तु का
प्रतिरूप कागज इत्यादि पर बनाना । (चित्र) खीचना ।
जैसे, यह मनुष्य बहुत अच्छी तसवीर उतारता है । ३ लेख
की प्रतिलिपि लेना । लिखावट की नकल करना । जैसे,
इस पुस्तक की एक प्रति लिपि उतारकर अपने पास रख लो ।
४ लगी या लिपटी वस्तु का अलग करना । सफाई के साथ
काटना । उबाड़ना । उधेड़ना । उ०—(क) अस्वस्थामा निसि
तहँ आए, द्रोपदि सुत तहँ सोवत पाए । उनके सिर लै गयो
उतारि, कहाँ पाडवनि आयो मारि ।—सूर०, १।२८६ । (ख)
सिर सरोज निज करन्हि उतारी, पूजेऊ अमित बार निपुरारी ।
—मानस ६।२५ । (ग) वक्रे की खाल उतार लो । (घ)
दूध पर से मलाई उतार लो । (शब्द०) । ५ किसी धारण
की हुई वस्तु को दूर करना । पहनी हुई चीज को अलग
करना । जैसे, (क) कपड़े उतार डालो । (ख) भँगूठी
कहाँ उतारकर रखी ? ६ ठहराना । टिकाना । डेरा देना ।
जैसे, इन लोगों को धर्मशाले में उतार दो । ७ आदर के
निमित्त किसी वस्तु को शरीर के चारो ओर से घुमाना ।
जैसे,—आरती उतारना । ८ उतारा करना । किसी वस्तु को
मनुष्य के चारो ओर घुमाकर भूत प्रेत की भेंट के रूप में चौराहे
आदि पर रखना । ९ न्योछावर करना । वारना । उ०—
वारिए गीन मे सिधुर सिहिनी, शायद नीरज नैनन वारिए ।
वारिए मत्त महा वृष ओजहि चद्रघटा मुसुकान उतारिए ।
—रघुराज (शब्द०) । १० चुकाना । मदा करना । जैसे, पहले
अपने ऊपर से ऋण तो उतार लो । तब तीर्थयात्रा
करना । ११ वसूल करना । जैसे, (क) पुस्तकालय का सब
चदा उतार लाओ तब तनखाह मिलेगी । (ख) हम
अपना सय लहना उतार लेंगे तब यहाँ से जाएंगे ।
(ग) उसने इधर से उधर की बातें करके १०० उतार लिए ।
१२ किसी उग्र प्रभाव का दूर करना जैसे,—नशा उतारना,
विष उतारना । १३ निगलना । जैसे, इस दवा को पानी के

का तैयार होना । जैसे, मोजा उतरना, थान उतरना, कसीदा उतरना । जैसे, चार दिनों के बाद यह मोजा उतरा है । (८) ऐसी वस्तु का तैयार होना जो खराद या साँचे पर चढ़ाकर बनाई जाय । (९) भाव का कम होना । जैसे, गेहूँ का भाव आजकल उतर गया है । (१०) डेरा करना । ठहरना । टिकना । जैसे, जब ग्राप बनारस आइए तब मेरे यहाँ उतरिए । ११ नकल होना । खिचना । अकित होना । जैसे, (क) तुम्हारी तसवीर कहाँ उतरेगी । (ख) ये सब कविताएँ तुम्हारी कापी पर उतरी हैं । १२ बच्चों का मर जाना । जैसे, उसके बच्चे हो होकर उतर जाते हैं । १३ भर आना । संचारित होना । जैसे, नजला उतरना । दूध उतरना । फोते में पानी उतरना । जैसे, उसकी माँ के थनों में दूध ही नहीं उतरता १४ फलों का पकने पर तोड़ा जाना । जैसे, तुम्हारी ओर खरबूजे उतरने लगे या नहीं ? १५ भ्रमके में खिचकर तैयार होना । खोलते हुए पानी में किमी चीज का सार उतरना । जैसे, यहाँ अकं किम जगह उतरता है ? (ख) अमी कुसुम का रंग अच्छी तरह नहीं उतरा है, ओर खोलाओ । (ग) अमी चाय अच्छी तरह नहीं उतरी । १६ लगी या लिपटी वस्तु का अलग होना । सफाई के साथ कटना । उचड़ना । उघड़ना । जैसे, कलम बनाते हुए उसकी उँगली उतर गई (ख) एक ही हाथ में बकरे का सिर उतर गया (ग) बकरे की खाल उतर गई । १७ धारण की हुई वस्तु का अलग होना । जैसे, उसके शरीर पर से सब कपड़े लत्ते उतर गए । १८ तौल में ठहरना । जैसे, देखें यह चीज तौल में कितनी उतरती है । १९ किसी बाजे की कसन का ढीला होना जिससे उसका स्वर विकृत हो जाता है । जैसे, सितार उतरना, पखावज उतरना, ढोल उतरना । २० जन्म लेना । अवतार लेना । जैसे,—तुम क्या सारे ससार की विद्या लेकर उतरे हो ? २१ सामने आना । घटित होना, जैसा तुम करोगे वैसा तुम्हारे आगे उतरेगा । २२ कुशती या युद्ध के लिये अखाड़े या मैदान में आना । जैसे, (क) अखाड़े में अच्छे अच्छे पहलवान उतरे हैं । (ख) यदि हिम्मत हो तो तलवार लेकर उतर आओ । २३ आदर के निमित्त किसी वस्तु का शरीर के चारों तरफ घुमाया जाना । जैसे, आरती उतरना, न्योछावर उतरना । २४ शतरंज में किमी प्यादे का कोई बड़ा मोहरा बन जाना । जैसे, फरजी उतरा और मात हुई । २५—वसूल होना । जैसे,—(क) कितना चढ़ा उतरा ? (ख) हमारा सब लहना उतर आया । २६—स्त्रीसभोग करना (अशिष्टों की भाषा) । २७—प्राग पर चढ़ाई जानेवाली चीज का पककर तैयार होना । जैसे, पूरी उतरना । पाग उतरना ।

मुहा०—उतरकर=निम्न श्रेणी का । नीचे दर्जे का । उ०—वह जाति में मुझसे उतरकर है ।—ठेठ हिंदी० पृ० ६ । गले में उतरना या गले के नीचे उतरना=(१) निगल जाना । जैसे,—घास करे, दवा गले के नीचे उतरती ही नहीं । (२) मन में घँसना । चित्त में असर करना । जैसे, हमारी कही बात तो उसके गले के नीचे उतरती ही नहीं ।

चित्त से उतरना=(१) विस्मृत होना । भूल जाना । (२) नीचा जैचना । अप्रिय लगना । अथवा भाजन होना । जैसे—उसकी चाल ऐसी है कि वह सबके चित्त से उतर जाएगा । चेहरा उतरना=मुख मलिन होना । मुख पर उदासी छाना । जैसे, उनका चेहरा आज हमने उतरा देखा । चेहरे का रंग उतरना—दे० 'चेहरा उतरना' ।

उतरना^२—क्रि० सं० [सं० उत्तरण] नदी, नाले या पुल को पार करना । उ०—लखन दीख पय उतर करारा । चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा ।—मानस २।१३३ ।

उतरवाना—क्रि० सं० [हि० उतरना का प्रे० रूप] किसी को उतारने के कार्य में प्रवृत्त करना ।

उतरहा—वि० [हि० उत्तर+हा (प्रत्य०)], [औ० उतरही] उतरवाना । उतार का ।

उतराई—सत्ता औ० [हि० उतरना] १ ऊपर से नीचे आने की क्रिया । २ नदी के पार आने का महसूल या मजूरी । उ०—बहेउ कृपाल लेहि उतराई, बंठ चरन गहे अकुनाई ।—मानस २।१०२ । ३ नाव आदि पर से उतरने का स्थान । ४ नीचे की ओर ढलती हुई जमीन । उतार । ढाल ।

उतराना^१—क्रि० अ० [सं० उत्तरण] १ पानी के ऊपर आना । पानी की सतह पर तैरना । जैसे,—काग इतना हल्का होना है कि पानी में डालने से उतराता रहता है । २ उबलना । उफान खाना । उ०—ताही समय दूध उतराना, दोरी तुरत उतार न जाना ।—विश्राम (शब्द०) ३ पीछे पीछे लगे फिरना । जैसे—यह बच्चा कहना नहीं मानता साथ ही साथ उतराता फिरता है । ४ प्रकट होना । हर जगह दिखाई देना । इधर उधर बहका फिरना । जैसे, आजकल शहर में काबुली बहुत उतराए हैं । (ख) घायल हूँ करसायल ज्यो मृग त्यो उतही उतरायल धूमै । देव (शब्द०) ।

उतराना^२—क्रि० सं० [उतारना क्रिया का प्रे० रूप] उतारने का काम अन्य से कराना 'उतारना' ।

उतरायल^७—वि० [हि० उतरना] उतारा हुआ व्यवहार किया हुआ । पुराना । जैसे,—उतरायल कपड़े (शब्द०) ।

उतरारी^७—वि० [सं० उत्तर+हि० आरी प्रत्य०] उत्तर की (हवा) ।

उतराव—सब्ज पु० [हि० उतरना] उतार । ढाल । उ०—शिमना मसूरी इत्यादि स्थानों में जहाँ सरकार ने पत्थर काटकर सड़कें निकाल दी हैं वहाँ चढ़ाव उतराव तो अवश्य रहता है, पर लोग वेखटके घोड़ा दोड़ाते चने जाते हैं ।—शिवप्रसाद (शब्द०) ।

उतरावना^७—वि० सं० [हि० उतरना क्रिया का प्रे० रूप] उतारने का काम किसी और से कराना ।

उतराहा^१—क्रि० वि० [सं० उत्तर+हि० हा० (प्रत्य०)] उत्तर की ओर । उ०—मियून तुना कुम पछाहाँ, करन मीन विरछिछ उतराहा ।—जायसी (शब्द०) ।

उतरिन^७—वि० [हि०] दे० 'उत्तरण' ।

उतरिबो^७—क्रि० अ० [हि०] दे० 'तर्गना' । उ०—गारपा सी लागी निसि वासर विलोचननि, यादो परवाह नयो नावनि उतरिबो ।—मतिराम ग्र०, पृ० ३५८ ।

तब लेवै नि सक, इहि विधान पूजै गिरिहि नर वर बुद्धि
उत्तक ।- गोप ल (शब्द०) ।

उत्तग^७—वि० [सं० उत्तुङ्ग, प्रा० उत्ताग] १ ऊँचा । बलद । उ०—
अति उत्तग जलनिधि चहुँ पासा, कनक कोट कर परम प्रकासा ।
—मानस ५।३ ।

उत्तगा—वि० [सं० उत्तुङ्ग, प्रा० उत्ताग] २ 'उत्तग' । उ०—सहजै
सहजै मेला होइगा, जागी भक्ति उत्तगा ।—कवीर श०,
भा० २, पृ० ६१ ।

उत्तत^७—वि० [सं० उत्तत या उत्तत = ऊँचा] सयाना । जवान ।
बडा । उ०—भइ उत्तत पदमावति वारी, रचि रचि विधि सय
कला सँवारी ।—जायसी (शब्द०) ।

उत्तस^७—सज्ञा पुं० [सं० उत्तस] दे० 'उत्तस' ।

उत्तसक^७—वि० [सं० उत्तस + क (प्रत्य०)] दे० 'द्रवत्तस'
उ०—जब जब जो उद्गार होइ अति प्रेम विध्वंसक ।
सोइ सोइ करें निरोध गोपकुल केलि उत्तसक । नद प्र०,
पृ० ४४ ।

उत्तैग—वि० [सं० उत्तुङ्ग] दे० 'उत्तुङ्ग' । उ०—उत्तैग जैभीर होइ
रखवारी, छुइ को सकै राजा कै वारी ।—जायसी प्र०,
पृ० ४६ ।

उत्तय्य—सज्ञा पुं० [सं०] अगिरस गोत्र के एक ऋषि ।

विशेष—यह बृहस्पति के बड़े भाई थे । इनके बनाए बहूत से
मन्त्र वेदो में हैं ।

यो०—उत्तय्यानुज = बृहस्पति । उत्तय्यतनय = गोतम ।

उत्तन^७—क्रि० वि० [हि० उ = उत् + तन (प्रत्य०)] उत्त
तरफ । उत्त श्रोत । उ०—उत्तन ग्वालि तू कित चली ये
उनये घनघोर । हौं आयो लखि तुव घरै पैठत कारो चोर ।
(शब्द०) ।

उत्तना^१—वि० [हि० उत्त + तन (हि० प्रत्य० सं० 'तावान्' से)
या हि० उत्त + ना (प्रत्य०)] उत्त मात्रा का । उत्त कदर ।
जैसे,—बालको को जितना आराम माता दे सकती है उतना
और कोई नहीं ।

उत्तना^२—क्रि० वि० उत्त परिमाण से । उत्त मात्रा से । जैसे,—अरे भाई
उतना ही चलना जितना चल सको ।

उत्तना—सज्ञा पुं० [सं० उत्तस श्रवण देशज] एक प्रकार की वाली
जो कान के ऊपरी भाग में पहनी जाती है ।

उत्तपत्ति^७—सज्ञा स्त्री० [सं० उत्पत्ति] दे० 'उत्पत्ति' । उ०—कैसे
ऐसे रूप की नर ते उत्तपत्ति होइ । भूतल ते निकसति कहूँ
विज्जुछटा की लोइ ।—शकुन्तला, पृ० २१ ।

उत्तपत्ति—^७सज्ञा स्त्री० [सं० उत्पत्ति] दे० 'उत्पत्ति' । उ०—कर्महि ते
उत्तपत्ति है कर्महि ते सब नास । कर्म किए ते मुक्ति होइ
परब्रह्मपुर वास ।—नद० प्र०, पृ० १७६ ।

उत्तपथ^७—सज्ञा पुं० [सं० उत्पथ] विषय । कुपथ । उ०—अँधरो
करै बधिर पुनि करहीं । उत्तपथ चलत विचार न टरहीं ।—
नद०, प्र०, पृ० २१६ ।

^७—क्रि० प्र० [सं० उत्पन्न] उत्पन्न होना । उ०—सुप्त का

बुदबुदा गुन्न उत्तपत नया सुन्नदी गगहि फिर गुप्त होई ।—
बनो २०, पृ० २७ ।

उत्तपन्न^७—वि० [सं० उत्पन्न] दे० 'उत्पन्न' ।

उत्तपात^७—सज्ञा पुं० [सं० उत्पात] १ 'उत्पात' । उ०—समन
अमित उत्तपात सब मरत चरित जय तान ।—मानस, १ ४१ ।
उत्तपानना^७—क्रि० सं० [सं० उत्पादन या उत्पन्न या प्रा०]
उत्पायण] उत्पन्न करना । उपजाना । पंश करना । उ०—
तासो मिलि नृप बहू गुप माने, पष्ट पुत्र तासो उपपाने ।—
सूर (शब्द०) ।

उत्तपानना^२^७—क्रि० प्र०—उत्पन्न होना ।

उत्तमग^७—सज्ञा पुं० [सं० उत्तमाङ्ग] दे० 'उत्तमाङ्ग' ।

उत्तरग—सज्ञा पुं० [सं० उत्तरङ्ग] लाठी या पत्थर की पट्टी जो
दरवाजो में साह के ऊपर पंठाई जाती है ।

उत्तर^७—सज्ञा पुं० [सं० उत्तर] दे० 'उत्तर' । उ०—(क) उत्तर देव छोडो
हिनु मारे, केवल कोनिक गोल तुम्हारे ।—मानस, २।२५ ।
(घ) पुनि घनि कनक पानि मसि मोगी, उत्तर निग्या नीनी
तन मोगी ।—जायसी प्र० पृ० २२ ।

उत्तरन^१—सज्ञा स्त्री० [हि० उत्तरना] २ पढ़ने हुए पुराने रूपरे ।

उत्तरन^२—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'उत्तरन' ।

उत्तरन पुतरनी—सज्ञा स्त्री० [हि० उत्तरना + प्रनु०] उतारे हुए
पुराने वस्त्र ।

उत्तरना^१—क्रि० प्र० [सं० अवतरण या प्रा० उत्तरण] [क्रि० सं०
उत्तरना । प्रे० उत्तरवाना] २. अपनी चेष्टा से ऊपर से नीचे
माना । ऊँचे स्थान से सँभलकर नीचे माना । जैसे, घोडे से
उतरना, कोठे पर से उतरना इत्यादि । २ टनना । प्रवर्तित
पर होना । घटाव पर होना । ह्लावो-मुप होना । जैसे,—
(क) उसकी अब उतरती अवस्था है । (घ) नदी अब
उतर गई है । ३ शरीर में किसी जोड़, नस या हड्डी का अपनी
जगह से हट जाना । जैसे, (क) उसका कूना उतर गया ।
(घ) यहाँ की नस उतर गई है । ४ काँति या स्वर का
फीका पडना, बिगडना या धीमा पडना । जैसे, (क) धूप
खाते खाते उसका रंग उतर गया है । (घ) ये आग अब
उतर गए हैं, खाने योग्य नहीं है । (ग) उसका चेहरा
उतर गया है । (घ) देखो स्वर कैसा उतरना चढ़ता है ।
५ किसी उग्र प्रभाव या उद्वेग का दूर होना । जैसे, नशा
उतरना । विष उतरना । (६) किसी निर्दिष्ट कालविभाग
जैसे, वर्ष, मास या नक्षत्रविशेष का समाप्त होना । जैसे,
(क) आषाढ़ उतरते उतरते वे आएँगे । (घ) शनि की
दशा अब उतर रही है ।

विशेष—दिन या उससे छोटे कालविभाग के लिये 'उतरना' का
प्रयोग नहीं होता, जैसे—यह नहीं कहा जाता कि 'सोमवार
उतर गया' । या 'एकादशी उतर गई' ।

७. किसी ऐसी वस्तु का तैयार होना, जो सूत या उसी प्रकार
की और किसी अखड सामग्री के थोड़े थोड़े अंश बराबर
बँटाते जाने से तैयार हो । सूई तागे आदि से बननेवाली चीजों

उड़स—संज्ञा पुं० [देशज] खटमल ।

उड़ेची—संज्ञा पुं० [हि० उड़ + च] १. कुटिलता । कपट । २.

वैर । अदावत । दुश्मनी ।

क्रि० प्र०—रखना ।—निकालना ।

उड़ेदड़—संज्ञा पुं० [हि० उड़ना + दड़] एक प्रकार का दड़ (कसरत)

जिसमें सपाट खींचते हुए दोनों पैरों को ऊपर फेंकते हैं ।

उड़ेरना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'उड़ेलना' ।

उड़ेलना—क्रि० सं० [सं० उदारण = निकालना अथवा, उदीरण = फेंकना] १ किसी तरन पदार्थ को एक पात्र से दूसरे पात्र में ढालना । ढालना । जैसे,—दूध इस गिलास में उड़ेल दो । २ किसी द्रव पदार्थ को गिराना या फेंकना । जैसे,—पानी को जमीन पर उड़ेल दो ।

क्रि० प्र०—देना । लेना ।

उड़नी—संज्ञा स्त्री० [हि० उड़ना] जुगनू । खद्योत । उ०—(क)

कौधत रहि जस भादों रैनी । श्याम रैन जनु चलै उड़नी ।—

जायसी (शब्द०) । (घ) चमक बीस जस भादों रैनी ।

जगत दिष्टि मरि रही उड़नी । जायसी (शब्द०) ।

उड़ाहँ—वि० [हि० उड़ना + ओहँ (प्रत्यय)] उड़नेवाला । उ०—
करे चाहँ सीं चुटकि कै खरे उड़ोहँ मैंन । ताज नवाएँ तरफरत
करत खूँद सी नैन ।—विहारी २०, दो० ५४२ ।

उड़ुयन—संज्ञा पुं० [सं०] उड़ना । उड़ान ।

उड़ामर—वि० [सं०] १ समान्य । श्रेष्ठ । आदरणीय । २ प्रचंड ।
शक्तिशाली । अत्युग्र । दुर्बल [क्रि०] ।

यो०—उड़ामर तत्र = एक तंत्र का नाम ।

उड़ामरी—वि० [सं० उड़ामरिन्] तीव्र कोलाहल या घोष
करनेवाला [क्रि०] ।

उड़ोयान—संज्ञा पुं० [सं०] हाथ की उँगलियों की एक प्रकार की
मुद्रा [क्रि०] ।

उड़ोनी^१—वि० [सं०] उड़ा हुआ । उड़ान करता हुआ । उड़ता हुआ [क्रि०]

उड़ोनी^२—सं० पुं० [सं०] १ उड़ान । उड़ना । २ पक्षियों की विशेष
प्रकार की उड़ान [क्रि०] ।

उड़ोयन—संज्ञा पुं० [सं०] १. हठयोग का एक वध या क्रिया जिसके
द्वारा योगी उड़ते हैं । कहते हैं इसमें सुषुम्ना नाडी में प्राण
को ठहराकर पेट की पीठ में सटाते हैं और पक्षियों की तरह
उड़ते हैं । १. उड़ना । उड़ान । उ०—स्वनित उड़ोयन-ध्वनित
गतिनित अनहद नाद से यह—दिग्दिगताकाश वसस्थल, रहा
है गूँज अहरह ।—कवासि, पृ० १०१ ।

उड़ोयमान—वि० [सं० उड़ोयमत्] [स्त्री० उड़ोयमती] उड़नेवाला ।
उड़ता हुआ ।

क्रि० प्र०—होना । उड़ना ।

उड़ोश—संज्ञा पुं० [सं०] १ शिव । २. एक प्रकार का तत्रग्रथ [क्रि०] ।

उड़्यान—संज्ञा पुं० [सं० उड़यन] हठयोग का एक आसन, जिसमें दोनों
जानुओं को मोड़कर पैरों के तलवों को परस्पर मिलाकर बैठा
जाता है । उ०—उड़्यान वध सुभूल बंधहि वध जालघर
करी ।—सुंदर ग्रं० भा० १, पृ० ५० ।

उड़ा—संज्ञा पुं० [बोल० हि० ऊड़ा] वह घास फूस या वियड़े का पुतला
जो फसल को चिड़ियों से बचाने के लिये खेत में गाड़ दिया
जाता है । पुतना । बिजूका ।

उड़कन—संज्ञा पुं० [हि० उड़कना] १. ठोकर । रोक । २ सहारा ।

वह वस्तु जिसपर कोई दूसरी वस्तु गड़ी रहे ।

उड़कना—क्रि० अ० [हि० उड़कना] १. गड़ना । ठोकर खाना । जैसे,
—देखो उड़ककर गिरना मत । २. रुकना । ठहरना ३.
सहारा लेना । टेक लगाना । जैसे,—वह दीवार से उड़ककर
बैठा है ।

उड़काना—क्रि० सं० [हि० उड़कना] किसी के सहारे खड़ा करना ।
जैसे,—हल को दीवार से उड़काकर रख दो । उ०—प्रसमसान
की भूमि तें गुरु को घर लै आय । गिरदा में उड़काय कै देत
भये बैठाय ।—रघुराज (शब्द०) ।

उड़रना—क्रि० अ० [सं० ऊड़ा = विवाहिता + हरण] विवाहिता स्त्री
का किसी अन्य पुरुष के साथ निकल जाना । उ०—मुए चाम
से चाम कटावै मुई सँकरी में सोवै । घाघ कहै ये तीनों भकुप्रा
उंदरि जाय श्री रोवै ॥ (शब्द०) ।

उड़री—संज्ञा स्त्री० [हि० उड़रना] १ वह स्त्री जो विवाहिता न हो ।
रखुई । मुँरैतिन । २ वह स्त्री जिसे कोई निकाल ले गया हो ।
उ०—जनम लेत उड़री अवला के ले छीर पियाई । कबीर
श्र०, भा० १, पृ० ५३ ।

उड़ाना—क्रि० सं० [हि० उड़ाना] दे० 'ओड़ाना' उ०—कहूँ जो उड़ावो
यहाँ बैठि मोही ।—हम्मीर रा०, पृ० ३८ ।

उड़ारना—क्रि० सं० [हि० उड़रना] किसी अन्य की स्त्री को निकाल
लाना । दूसरे की स्त्री को ले भागना ।

उड़ावनि—उ०, उड़ावनी—संज्ञा स्त्री० [हि० उड़ाना] चढ़र ।
ओढ़नी । उ०—उन्होंने आते ही रक्मिणी को राता
चोला उड़ावनि बनाय विठाया ।—लल्लू (शब्द०) ।

उड़कना—संज्ञा पुं० [हि०] दे० "उड़कन" ।

उड़ुकना—क्रि० अ० [हि०] दे० "उड़कना" ।

उड़काना—क्रि० सं० [हि०] दे० "उड़काना" ।

उड़ोनी—संज्ञा स्त्री० [हि० उड़ावनि] दे० 'ओढ़नी' ।

उड़ु—वि० [सं० उड़ु, प्रा० उडु] उर्व । ऊपर । ऊँचा । उ०—ऊन
सिंधार भुपभार । उड़ु वड़ु उच्छारे ।—पृ० रा०
६१। ५४४ ।

उणती—संज्ञा स्त्री० [सं० उन्नति] दे० "उन्नति" । उ०—जन
रज्जव उणती उठै, दुख दारिद्र्य सु दूरि ।—रज्जव०, पृ० ५ ।

उणहारि—वि० [सं० अनुहार, प्रा० अणहार, राज० उणिहार] दे०
'अनुहार' । उ०—पुरुष विदेनि कामणि किया, उमही के
उणहारि । कारज को सोभै नही, दादू मायें मारि ।—दादू
बानी, पृ० २४७ ।

उतंक—संज्ञा पुं० [सं० उत्तङ्ग] १. एक ऋषि जो वेद ऋषि के
शिष्य थे । २. एक ऋषि, जो गौतम के शिष्य थे ।

उतक—वि० [सं० उत्तङ्ग] ऊँचा । उ०—देवें पावर भर पुरट

वाले जोशे को भगाना या हटाना। जैसे—चिड़ियों को खेत में से उडा दो। ४ भटके के साथ अलग करना। चट से पृथक् करना। काटना। गिराकर दूर फेंकना। जैसे—(क) उसने चाकू से अपनी अंगुली उडा दी। (ख) मारते मारते खाल उडा दंगे। (क) निपाहियों ने गोली से बुजं उडा दिए। उ०—असि रन धारत जदपि तदपि बहु सिर न उडावत।—गोपाल (शब्द०)। ५ हटाना। दूर करना। गायन करना। जैसे,—वाजोगर ने देखते देखते रुमाल उडा दिया। ६ चुराना। हजम करना। जैसे,—चोर ने यात्री की गठरी उडाई। ७ दूर करना मिटाना। नष्ट करना। खारिज करना। जैसे, (क) गुरु ने लडके का नाम रजिस्टर से उडा दिया। (ख) उसने सब अक्षर उडा दिए। ८ पर्व करना। वरपाद करना। जैसे—उसने अपना धन थोड़े ही दिनों में उडा दिया। ९. खाने पीने की चीज को खूब खाना पीना। चट करना। जैसे,—लोग शराब कड़ाव उड़ा रहे हैं। १० किसी भोग्य वस्तु को भोगना। जैसे,—स्थीसभोग करना। ११ आमोद प्रमोद की वस्तु का व्यवहार करना। जैसे,—लोग वहाँ ताश या शतरंज उडाते हैं। (ख) थोड़ी देर रह उसने तान उडाई। १२ हाथ या हलकें हथियार से प्रहार करना। लगाना। मारना। जैसे—चपत उडाना। वेंत उडाना, जूते उडाना, डंडे उडाना इत्यादि। १३ भुलावा देना। वात काटना। वात टालना। प्रसंग बदलना। जैसे,—हमें वातो ही में मत उडाओ, लाओ कुछ दो। (च) हम उसी के मुँह से कहलाना चाहते थे, पर उसने वात उडा दी। ११ भूठ मूठ दोष लगाना। भूठी अपकीर्ति फैलाना। जैसे,—व्यर्थ क्यों किसी को उडाते हो। १५. किसी विद्या या कला कौशल को इस प्रकार चुपचाप सीख लेना कि उसके आचार्य या धारणकर्ता को खबर न हो। जैसे,—जब कि उसने तुम्हें सिखाने से इनकार किया तब उसने वह विद्या कैसे उडाई। १६ दोडना। बेग से भगाना। जैसे,—उसने अपना घोडा उडाया और चलता हुआ।

उडाना^२—क्रि० सं० [हि० उडाना] दे० 'ओठाना'। उ०—कोई दिन सर पर छतर उडावे।—दक्खिनी०, पृ० ६४।

उडायक^३—वि० सज्ञा पुं० [स उडायक] दे० 'उडाइक'।

उडाल—सज्ञा पुं० [प०] १ कचनार की छाल। २ कचनार की छाल की बटी हुई रस्सी जिसमें पजाब में छप्पर छते हैं।

उडावनी—सज्ञा स्त्री० [हि० उडाना] मोवाई। ओसाने का कार्य।

उडास^४—सज्ञा स्त्री० [स उडास] रहने का स्थान। वासस्थान। महल। उ०—(क) सात खड घोराहर तामू। सो रानी कहूँ दीन्ह उडामू।—जायसी (शब्द०)। (ख) और नखत वहि के चहुँवासा। सब रानिन की अहं उडासा।—जायसी (शब्द०)।

उडासना—क्रि० सं० [सं० उडासन] १ विछोने को समेटना। विस्तार उठाना। जैम,—विस्तार उडाम दो। २ किसी चीज को तहस नहस करना। उजाडना। उ०—मनै रघुराज राज सिहन की वासिनी है शामिनी अघिन की यमपुर की उडासिनी।—रघुराज (शब्द०)। ३ किसी के बैठने या सोने में विघ्न डालना। किसी को स्थान से हटाना। जैसे,—चिड़ियों ने यहाँ बसेरा लिया है, उन्हें मत उडासो।

उडिगन^५—सज्ञा पुं० [सं० उडुगन] दे० 'उडुगण'। उ०—चौद मुहज नाहि तहना नाहि उडिगा की जाति।—सं० दरिया, पृ० १।

उडिया^६—क्रि० [हि० उडोता] उडोता देन का रहनेवाला।

उडिया^७—सज्ञा स्त्री० [उत्कल माडिया] उडीसा की भाषा और उसकी लिपि। जैसे, उडिया भाषा। उडिया लिपि।

उडियाना—सज्ञा पुं० [देश०] एक मायिक छद्म जिसमें १२ और १० के विश्राम में २२ मायाएँ होती हैं और अतः में एक गुप्त होता है। १२ मायाएँ इस क्रम से हो कि या तो मय द्विकन या त्रिकन हो प्रथमा दो पिकल के पीछे तीन द्विकन प्रथवा तीन द्विकल के पीछे दो त्रिकन हो। जैसे—टुमुकि चतुस रामचन्द्र वाजत पैजनिया। घाय मानु गोद नेति दशरथ की रनिया।—तुलसी (शब्द०)।

उडियानी^८—सज्ञा स्त्री० [हि० उड + इयानी (प्रत्य०)] उडान। कल्पना। विचार। उ०—उहज मुमार्थ वापर त्याई, मोरे मन उडियानी माई।—गोरख०, पृ० १०४।

उडिल—सज्ञा पुं० [सं० ऊर्ण + इल (प्रत्य०)] वह नेड जिसका बाल मूडा न गया हो। मूडिल का उलटा।

उडी—सज्ञा स्त्री० [हि० उड से] १ मानचम की एक प्रकार की फसरत जिससे गरीर में फुरती घाटी है। इसके तीन भेद हैं—सशस्त्र, सचक्र और साधारण। २ कर्तवा। कलावाजी।

उडीकना—क्रि० सं० [सं० उड्डीकरण] वाट जोहना। राह देचना। प्रतीक्षा करना। उ०—(क) प्रणी प्रनी यारी वाँट उडीकीं यां बिन फिरहा अधिक नगारं।—घनानन्द, पृ० ३३४। (ख) रही उडीक द्वार पर मे हूँ अत घडो जीवन की, पूर्ण करो हे नाथ। शेष है एक साध दर्शन की।—पयिक, पृ० ५२।

उडीश—सज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बेंबर जिससे बोग्ग बांधते हैं और झूले का पुल और टोकरा बनाने हैं।

उडीसा—सज्ञा पुं० [सं० ओड्ड + देश] भारतवर्ष का एक समुद्रतटस्थ प्रदेश जो छोटा नागपुर के दक्षिण पडता है। उत्कल प्रदेश।

उडुवर—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'उडुवर'।

उडु—सज्ञा पुं० [सं०] १. नक्षत्र। तारा।

यो०—उडुपति। उडुराज।

२ पक्षी। चिड़ियाँ। ३ केवट। मल्लाह। ४ पानी। जल।

उडुप^१—सज्ञा पुं० [सं०] १ चद्रमा। उ०—कन स्वेद मयो सु विराजत यो उडुपी नम तारनि सग मयो।—घनानन्द, पृ० १४४। २. नाव। ३ घडनई या घडई। ४ मिनावा। ५ चडा गहड। ६ चर्म से बँटा हुआ एक प्रकार का पानवाज (को०)।

उडुप^२—सज्ञा पुं० [हि० उडना] एक प्रकार का नृत्य। उ०—बहु वर्ण विविध मालाप कानि। मुखचालि चारु मरु शब्द-चालि। बहु उडुप, तियगति, पति, अडाल। अरु लाग, घाउ रापउरंगाल।—केशव (शब्द०)।

उडुपति—सज्ञा पुं० [सं०] १. चद्रमा। १. सोमलता।

उडुपथ—सज्ञा पुं० [सं०] आकाश।

उडुराज—सज्ञा पुं० [सं०] चद्रमा उ०—ताही छिन उडुराज उदित रसन रास सहायक।—नद० प्र०, पृ० ७।

उना + असभव कार्य करना । उ०—अब तो वह उडती चिड़ियाँ पकड़ती है ।—सूर कु०, पृ० २६ । उड खाना = (१) उड उड के काटना । घर खाना । (२) अप्रिय लगना । न सुहाना ।

उ०—ता ऊपर लिखि योग पठावत खाहु नीव तजि दाख । सूरदास ऊयो की वतियाँ उडि उडि बैठी खात ।—सूर (शब्द०) ।

उडप^१—सज्ञा पुं० [हि० उडना] नृत्य का एक भेद ।

उडप^२—सज्ञा पुं० [सं० उडुप] दे० 'उडप' । उ०—जब ही नंदनदनमन भयो, तब ही उडप उदय है लयो ।—नद० ग्र०, पृ० २१६ ।

उडपति^३—सज्ञा [सं० उडुपति] दे० 'उडुपति' ।

उडपाल—सज्ञा पुं० [सं० उडुपाल] दे० 'उडुपाल' ।

उडराज—सज्ञा पुं० [सं० उडुराज] दे० 'उडुराज' ।

उडरो—सज्ञा स्त्री० [हि० उडद + ई (प्रत्य०)] एक प्रकार का उरद जो छोटा होता है ।

उडव—सज्ञा पुं० [सं० ओडव] १. रागो की एक जाति जिसमें केवल पाँच स्वर लगे और कोई दो स्वर न लगे । जैसे,—मधुमास सारंग, वृंदावनी सारंग, इन दोनों में गाधार और धैवत नहीं लगते, भूपाली जिसमें मध्यम और निषाद नहीं है तथा माल-कोश और हिंडोल जिनमें ऋषभ और पंचम नहीं लगते । २. मृदंग के बारह प्रवर्धों में से एक ।

उडवना^४—क्रि० सं० [हि०] दे० 'उडाना' । उ०—उडवत धूरि घरे काँकरी । सवनि के दृगनि परी साँकरी ।—नद० ग्र०, पृ० २४२ ।

उडवाना^५—क्रि० सं० [हि० उडाना का प्रे० रूप] उडाने में प्रवृत्त करना ।

उडसना^६—क्रि० अ० [सं० वि + घ्वसन > विडसन > उड्सना अथवा सं० उड् + √वस्] भग होना । नष्ट होना । उ०—उडसा नाच नच-नियाँ मारा । रूहसे तुलक वजाइ के तारा ।—जायसी (शब्द०) ।

उडाका^७—वि० [हि० उड + आक (प्रत्य०), उड + आका (प्रत्य०)] १ उडनेवाला । उडाकू । २. जिसमें उडने की योग्यता हो । जो उड सकता हो । उ०—छपन छा के रवि इव भा के दड स्तग उडाके । विविधि कता के, वेंधे पताके, छुवें जे रवि रथ चाके ।—रघुराज (शब्द०) ।

उडाकू—वि० [हि० उड + आकू (प्रत्य०)] दे० 'उडाक' ।

उडा—सज्ञा पुं० [हि० ओडना] रेशम धोने का एक औजार । यह एक प्रकार का परेता है जिसमें चार परे और छह तीखियाँ होती हैं । तीखियाँ मयानी के आकार की होती हैं । तीखियों के बीच में छेद होता है जिसमें गज डाला जाता है ।

उडाइक^८—वि०, सज्ञा पुं० [सं० उड्डायक] वह जो (गुड्डी आदि) उडाता हो । उडानेवाला । उडायक । उ०—कहा भयो, जो विछुरे, मो मनु तो मन साथ । उडी जाउ किहूँ, तऊ गुडी उडाइक हाथ ।—विहारी २०, दो० ५७ ।

उडाई—सज्ञा स्त्री० [उड + आई (प्रत्य०)] १ उडने की क्रिया या भाव ।

उडाऊ—वि० [हि० उड + आऊ (प्रत्य०)] १. उडनेवाला । उडकू । २. खर्च करनेवाला । खरची । अमितव्ययी । फजूलखर्च । जैसे,—वह बड़ा उडाऊ है, इसी से उसे अँटता नहीं ।

उडाका—सज्ञा पुं० [हि० उड + आका (प्रत्य०)] १ वह जो उड सकता हो । २. वह जो वायुयान आदि पर उडता हो । हवाई जहाज पर उडनेवाला । ३. विमानचालक ।

उडाका दल-सज्ञा पुं० [हि० उडाका + सं० दल] पुलिस का वह विशेष दल जो दुर्घटना की सूचना मिलते ही तुरत दुर्घटना स्थल की ओर रवाना हो जाता है ।

उडाकू—वि० [हि० उड + आकू (प्रत्य०)] १ उडनेवाला । उडकू । २ जो उड सकता हो । जिसमें उडने की योग्यता हो ।

उडान^९—सज्ञा स्त्री० [सं० उड्डयन] १. उडने की क्रिया । उ०—पखि न कोई होय सुजानू । जानै भुगति कि जान उडानू ।—जायसी ग्र०, पृ० २१ ।

यौ०—उडानघाई, उडनफल = दे० 'उडनघाई', उडनफल । वें उडान फर तनिये खाए । जब भा पखि पाँख तन आए ।—जायसी ग्र०, पृ० २६ । उडान पर्दा ।

२. छलाँग । कुदान । जैसे—(क) हिरन ने कुत्तो को देखते ही उडान भारी । (ख) चार उडान में घोडा २० मील गया ।

क्रि० प्र०—भरना । मारना ।

३ उतनी दूरी जितनी एक दौड में तै कर सकें । जैसे उ०—काशी से सारनाथ दो उडान है । ४ कल्पना । उक्ति । विचार ।

मुहा०—उडान मरना = कल्पना करना । विचार करना । विचारना । उ०—किंतु वहाँ से यो ही उडान भरना नहीं होता—चिता मणि, भा० २, पृ० २ । उडान मारना = बहाना करना । बातों में टालना । जैसे—तुम इतनी उडान क्यों मारते हो, साफ साफ कह क्यों नहीं डालते ? उड उडू होना = (१) दुर दुर होना । (२) चारों ओर से बुरा होना । कलकित होना । बदनाम होना । नक्कू बनना ।

उडान^{१०}—सज्ञा पुं० [देश०] १ कलाई । गट्टा । उ०—गोरे उडान रही खुभिकै चुभिकै चित माँह बडो चटकीली ।—गुमान (शब्द०) । २. मालखम की एक कसरत जिसमें एक हाथ में वेत दबाकर उसे हाथ से लपेटकर पकड़ते हैं और दूसरे हाथ से ऊपर का भाग पकड़कर पावें पृथ्वी से उठा लेते हैं और एक बार आजमाकर वेत पर उसी प्रकार चढ़ जाते हैं जैसे गड्डे हुए मालखम पर ।

उडानघाई—सज्ञा स्त्री० [हि० उडान + घाई = उँगलियों के बीच की संधि] धोखा । जुल । चालाकी ।

विशेष—यह शब्द जुप्रारियों का है । जुप्रारी जुप्रा खेलते समय उँगुलियों की घाई या गवा में छोटी कौडियाँ छिपाए रखते हैं जिसमें फँकते समय यथेष्ट कौडियाँ पड़ें ।

उडानपर्दा—सज्ञा पुं० [हि० उडान + फा० पर्दह] बैलगाड़ी का पर्दा । वह पर्दा जो बैलगाड़ी पर डाला जाता है ।

उडानफर—उ०, ऊडानफल^{११}—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'उडनफल' । उ०—वें उडानफर तहिये खाए । जब भा पखि पाँख तन आए ॥—जायसी ग्र०, पृ० २६ ।

उडाना^{१२}—क्रि० सं० [हि० उडना का सक० रूप] १. किसी उडनेवाली वस्तु को उडने में प्रवृत्त करना । जैसे,—वह कवूनर उडाता है । २. हवा में फैलाना । हवा में इधर उधर छितराना । जैसे,—सुगंध उडाना । धूल उडाना । अवीर उडाना । उ०—(क) जेहि मारत गिरि मेर उडाहीं । कहहु तूल केहि लेखे माही ।—मानस, १।१२ । (ख) जानि कै सुजान कही लै दिखाओ लाल प्यारेनाल नैसुक उधारे पर सुगंध, उडाइए ।—श्रिया० (शब्द०) ३. उडने-

उडन—सज्ञा स्त्री० [हि० उडना] उडने की क्रिया । उडान ।

यो०—उडनखटोला । उडनछु । उडनझाई ।

उडनखटोला—सज्ञा पुं० [हि० उडन + खटोला] उडनेवाला खटोला । विमान ।

उडनगोला—सज्ञा पुं० [हि० उडन + गोला] बटुक की गोली जो बिना निशाना ताके चलाई जाय ।

उडनघाई—सज्ञा स्त्री० [हि० उडना + हि० घाई = घात] घोखा । जुल चालाकी । चकमा । उ०—मगर जिस शौ को साफ साफ अपनी आँखों देखा, उसमे तुम क्या उडनघाईयाँ बतानोगे । सर कु०, पृ० २० ।

विशेष—यह शब्द जुगारियो का है, वि० दे० 'उडानघाई' ।

उडनछु—वि० [हि० उडना] चपत । गायब ।

क्रि० प्र०—होना ।

उडनझाई—सज्ञा स्त्री० [हि० उडन + झाई] चकमा । वुत्ता । बहाली ।

क्रि० प्र०—बताना ।

उडनतश्तरी—सज्ञा स्त्री० [हि० उडन + तश्तरी] तश्तरी के तरीके का ज्योतिर्मय यांत्रिक उपकरण जो कमी कमी आकाश में यान की तरह उडता हुआ दिखाई देता है ।

विशेष—ऐसा कहा जाता है कि ये वैज्ञानिक उपकरण अन्य ग्रहवासियों के हैं, जिसमें बैठकर वे पृथ्वी की ओर आते हैं और फिर अपने ग्रहों को चले जाते हैं ।

उडनफल—सज्ञा पुं० [हि० उडन + फल] वह फल जिसके खाने से उडने की शक्ति उत्पन्न हो ।

उडनफाखता—वि० [हि० उडन + फा० फाखतह] सीध सादा । मूर्ख ।

उडना^१—क्रि० अ० [सं० उड्वायन] १ चिड़ियों का आकाश या हवा में होकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना । जैसे—चिड़ियाँ उडती हैं । उ०—सुआ जो उतर देत रहूँ पूछा । उडिगा पिंजर न बोल छूछा ।—जायसी (शब्द०) १ आकाश-मार्ग से एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना । हवा में होकर जाना । निराधार हवा में ऊपर फिरना । जैसे,—गर्द उडना, पत्ती उडना । उ०—अधकूप भा आवइ उडत आव तस छार । ताल तालाव ओ पोखरा धूरि भरी ज्योनार ।—जायसी (शब्द०) ३ हवा में ऊपर उठना । जैसे—गुडड़ी उड रही है । उ०—लहर झकोर उडहि जल भीजा तोहू रूप रग नहि छीजा । जायसी (शब्द०) । हवा में फँलना । जैसे—छोटा उडना, सुगंध उडना, खबर उडना । ५ वायु से चीजों का इधर उधर हो जाना । छितराना । फैलना । जैसे,—एक ऐसा भौंका आया कि सब कागज कमरे भर में उड गए । ६ किसी ऐसी वस्तु का हवा में इधर उधर हिलना जिसका कोई भाग किसी आधार से लगा हो । फहराना । फरफराना । जैसे—पताका उड रही है । ७ तेज चलना । वेग से चलना । भागना । जैसे—(क) चलो उडो, अब देर मत करो । (ख) घोड़ा सवार को लेकर उ । उ०—कोइ वोहित जग पवन उडाही । कोई चमकि बीच पर जाही ।—जायसी (शब्द०) ८ भटके के साथ अलग होना । कटना । गिरकर दूर जा पड़ना । जैसे,—(क) एक हाथ में बकरे का सिर उड गया ।

(ख) सँभालकर चाकू पकड़ो नहीं तो उँगली उड जायगी । उ०—फूटा कोट फूट जनु सीसा । उडहि बुजें जाहि सव पीसा ।—जायसी (शब्द०) ९ पृथक् होना । उवडना । छितराना । जैसे—किताब की जिल्द उड गई । उ०—बहिके गुण सँवरत भइ माला । अबहूँ न बहुरा उडिगा छाला ।—जायसी (शब्द०) १०. जाता रहना । गायन होना । लापता होना । दूर होना । मिटना । नष्ट होना । उ०—(क) घर बंद का बंद और सारा माल उड गया । (ख) झमी तो वह स्त्री यही बँठी थी, कहां उड गई । (ग) देखते देखते दर्द उड गया । (घ) इस पुरानी पुस्तक के अक्षर उड गए हैं, पढ़ें नहीं जाते । (ङ) रजिस्टर से लडके का नाम उड गया । ११ खाने पीने की चीज का खर्च होना । आनंद के साथ खाया पीया जाना । जैसे,—कल तो खूब मिठाई उडो । १२ किसी योग्य वस्तु का भोग जाना । जैसे, स्त्री न भोग होना । १३ आमोद प्रमोद की वस्तु का व्यवहार होना । जैसे—(क) वहाँ तो ताश उड रहा है । (ख) यहाँ दिन रात तान उडा करती है । १४. रंग आदि का फीका पडना । धीमा पडना । जैसे—(क) इस कपड़े का रंग उड गया । (ख) इस वरतन की कलई उड गई । १४ किसी पर मार पडना । लगना । जैसे—उसपर स्कूल में खूब वेंत उडे । १६ बातों में बहलाना । भुलावा देना । चकमा देना । घोखा देना । जैसे—भाइ उडते क्यों हो, साफ साफ बतानो । १७ घोड़े का चौफाल कूदना । घोड़े का चारों पैर उठाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर बड़ी शान से रखना । जमना । १८ फर्लांग मारना । फलागना । कूदना । (कुश्ती) ।

उडना^२—क्रि० सं० फर्लांग मारकर किसी वस्तु को लाँघना । कूदकर पार करना । जैसे—(क) वह घोड़ा खाई उडता है । (ख) अच्छे सिखाए हुए घोड़े सात सात टट्टियाँ उडते हैं । (ग) वह घोड़ा बात की बात में खदक उड गया ।

मुहा०—उड आना—(१) किसी स्थान से वेग से आना । झटपट आना । भाग आना । जैसे—इतने जल्द तुम वहाँ से उड आए । उ०—बहुत व्यास कह ठाकुर काही । उडि अइहै ठाकुर ब्रज माँही ।—रघुराज (शब्द०) । (२) इतनी जल्दी आना कि किसी को खबर न हो । चुपके से भाग आना । उ०—(क) करी खेचरी सिद्ध जनु उडि सी आई ग्वारि । बाहिर जनु मदमत्त विधु दियो अमी सब डारि ।—व्यास (शब्द०) । उड चलना—(१) तेज दौडना । सरपट भागना । (२) शोभित होना । भला लगना । अच्छा लगना । फटना । जैसे,—टोपी देने से वह उड चलता है । (३) मजेंदार होना । स्वादिष्ट बनना । जैसे—नरकारी मसाले से उड चलती है । (४) कुमार्ग स्वीकार करना । बदराह बनना । जैसे,—प्रब तो वह भी उड चला । (५) इतराना । मर्यादा को छोड़ चलना । बढ़कर चलना । धमक करना । जैसे,—नीच आदमी थोड़े ही में उड़ चलते हैं । उडता होना या बनना = भाग जाना । चलता होना । चल देना । जैसे—वह सारा माल लेकर उडता हुआ । उडती खबर = वह खबर जिसकी सच्चाई का निश्चय नहीं । वाजालू खबर । किंवदंती । उडती चिट्ठी या पत्र

१४. भोग करना । अनुभव करना । भोगना । जैसे—दुख उठाना, सुख उठाना । उ०—इतना कष्ट आप ही के लिये उठाया है । १५. शिरोधार्य करना । सादर स्वीकार करना । मानना । उ०—करँ उपाय जो विरया जाई । नृप की आज्ञा लियो रवाई ।—सूर (शब्द०) । १६. जगाना । जैसे,—उसे सोने दो, मत उठाओ । १७. किसी वस्तु को हाथ में लेकर कसम खाना । जैसे, गंगा उठाना, तुलसी उठाना ।

मुहा०—उठा धरना=बढ़ जाना । जैसे—उसने तो इस बात में अपने वष को भी उठा धरा । उठा रखना=छोड़ना, बाकी रखना । कसर छोड़ना । जैसे,—तुमने हमें तग करने के लिये कोई बात उठा नहीं रखी । उठा ले जाना=(१) किसी वस्तु को इस प्रकार लेकर चल देना कि किसी को पता न लगे । चोरी से वस्तु को उठा ले जाना । चोरी करना । (२) वल-पूर्वक किसी वस्तु को ले जाना ।

विशेष—कहीं कहीं जिम वस्तु या विषय की सामग्री के साथ इस क्रिया का प्रयोग होता है वहाँ उस वस्तु या विषय के करने का आरम्भ सूचित होता है । जैसे—कलम उठाना=लिखने के लिये तैयार होना । उड्डा उठाना=मारने के लिये तैयार होना । झोली उठाना=भीख माँगने जाने के लिये तैयार होना, इत्यादि । उ०—(क) प्रव विना तुम्हारे कलम उठाए न बनेगा । (ख) जब हमसे नहीं सहा गया, तब हमने छडी उठाई ।

उठाव—संज्ञा पुं० [हि० उठाना] १ उन्नत अञ्च । उठान । २. मेहराब के पाट के मध्यविन्दु और झुका के मध्यविन्दु के अन्तर ।

उठावना पुं०—क्रि० सं० [सं० उत्थापन प्रा० उठावण] दे० 'उठाना' ।

उठावनी—सञ्ज्ञा स्त्री० हि० [उठावना] दे० उठानी ।

उठेल—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ठेलना] धक्का । उ०—अरिवर सिलाही बहु गिराए सक्ति की जु उठेल सो ।—पद्माकर ग्र० पृ० २० ।

उठीया वि० [हि० उठ+ओया (प्रत्य०)] दे० 'उठीवा' ।

उठानी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० उ०+आनी (प्रत्य०)] १. उठाने की क्रिया । २. उठाने की मजदूरी या पुरस्कार । ३. वह रुपया जो किसी फसल की पैदावार या और किसी वस्तु के लिये पेशगी दिया जाय । अगोहा । बेहरी । दादनी । ४. वनियों या दूकानदारों के साथ उधार का लेन देन । ५. वह दक्षिणा जो पुरोहित या न्योतिपी को विवाह का मूर्त विचारने पर दी जाती है । पुरहूत । ६. वह धन या रुपया आदि जो निम्न जातियों में वर की ओर से कन्या के घर विवाह करने से पहले उसे दृढ़ बनाने के लिये भेजा जाता है । लगन धरोप्रा । ७. वह रुपया पंसा या अन्न जो संकट पड़ने पर किसी देवता की पूजा के उद्देश्य से अलग रखा जाय । ८. वैश्यो के यहाँ की एक रीति जो किसी के मर जाने पर होती है । इसमें मरने के दूसरे या तीसरे दिन विरादरी के लोग इकट्ठे होकर मृतक के परिवार के लोगों को कुछ रुपया देते हैं और पुरुषों को पगडी बाँधते हैं । ९. एक रीति जो किसी के मरने के तीसरे दिन होती है । इसमें मृतक की अस्थि सचित्त करके रख दी जाती है । १०. एक लकड़ी जिसमें जुलाहे पाई की लुगदी लपेटते हैं । ११. धान के खेत

की हलके हल की दूर दूर जाताई । यह दो प्रकार की हाती है—विदहनी और घुरहनी । अधिक पानी होने पर जोतने को विदहनी कहते हैं और सूखे में जोतने को घुरहनी कहते हैं । गाहना । १२. प्रसूता की सेवा सुयूपा ।

उठीवा^१—वि० [हि० उठ+ओवा (प्रत्य०)] जिसका कोई स्थान नियत न हो । जो नियत स्थान पर न रहता हो ।

यी०—उठीवा चूल्हा=वह चूल्हा जिसे हम जहाँ चाहे उठा ले जायें । उठीवा पायखाना=वह पायखाना जिसे भंगी नित्य प्रति या प्राय आकर उठाता है ।

उठीवा^२—सञ्ज्ञा स्त्री० प्रसूता की सेवा सुयूपा जो दाई करती है । उठानी । क्रि० प्र०—कमाना ।

उडंड^१—वि० [सं० उड्डण्ड] दे० 'उड्डण्ड' । उ०—हे मन चेतनि बुद्धि हू चेतनि चित्त हू चेतनि आहि उडडा ।—सुंदर० ग्र०, भा० २, पृ० ६४६ ।

उडंड^२—वि० [हि० उड्डना] उडनेवाला । उडता हुआ । उ०—समरु वन रुव वधन्न दुन । न फिरै तिन ह्यथन मीस पिन । अति उच उतग तुरग तुरं । धरि चपि गिलद उडद पुरं ।—पृ० २० १२ । ३५ ।

उडगन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उडगण] नक्षत्रसमूह । उडगन । उ०—श्वन विराजत स्वाति सुत करत न वनै बखान ॥ मनु कमल पत्र अग्रज रहे । ओस उडगन ग्रान ।—पृ० २०, १।१५३ ।

उडियन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उडुगण, प्रा० उडिगण] उडुगन । नक्षत्र-समूह । तारे । उ०—इक्क कहै आकास तास हो उडियन तुट्टी । इक्क कहै सुरलोक तास कोई नर लुट्टी ।—पृ० २०, ४ । ३ ।

उडीयण—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उडुगण] नक्षत्रसमूह । तारे । उ०—राजति राजकुंअरि राय अंगरम उडीयण बीरज अवहरि ।—वेलि, दू० १४ ।

उडकू—वि० [हि० उडकू=उड+आकू, अंकू (प्रत्य०)] १ उडनेवाला । २ उडने की योग्यता रखनेवाला । जो उड सके । ३ चलने फिरनेवाला । डोलनेवाला ।

उडंत—सञ्ज्ञा पुं० [हि० उड+अंत (प्रत्य०)] कुश्ती का एक पंच या ढग जिसमें खिलाडी एक दूसरे की पकड़ को बचाने के लिये श्घर से उधर हुआ करते हैं ।

उडंवरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० उडुम्बर] एक पुराना बाजा जिसमें वजाने के लिये तार लगे रहते हैं ।

उड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उडु] दे० 'उडु' । उ०—तनरु जु वाम चरन यो कर्यो । उडि कै जाय उडनि में रर्यो ॥—नद० ग्र०, पृ० २४१ ।

उडचका—सञ्ज्ञा पुं० [हि० उडना] चोर । उचक्का ।

उडतक—सञ्ज्ञा पुं० [हि० उठना] दे० 'उठतक' ।

उडती बैठक—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० उडना+बैठक] दोनों-पावों को समेटकर उठते बैठते हुए आगे बडना या पीछे हटना । बैठक का एक भेद ।

उडदी—सञ्ज्ञा पुं० [हि० उरव] दे० 'उरव' ।

उडघ—वि० [सं० ऊर्ध्व] ऊँचा । उ०—प्रकासे उडघ न अचवै आतम तत्त विचारी ।—रामानन्द, पृ० १२ ।

अक या चिह्न का स्पष्ट होना। उमड़ना। जैसे—इस पृष्ठ के अक्षर अच्छी तरह उठे नहीं हैं। ११ पाँस बनना। खमीर आना। सड़कर उफनाना। जैसे,—(क) ताड़ी घूप में रखने से उठने लगती है। (ख) ईख का रस जब घूप खाकर उठता है तब छानकर सिरका बनाने के लिये रख लिया जाता है। १२ किसी दुकान या समा समाज का बंद होना। किसी दुकान या कार्यालय के कार्य का समय पूरा होना। जैसे,—अगर लेना है तो जल्दी जाओ, नहीं तो दुकानें उठ जायगी। उ०—दास तुलसी परत धरनि घर धकनि धुक हाटसी उठत जवुकनि लूदयो। तुलसी (शब्द०)। १३ किसी दुकान या कारखाने का काम बंद होना। किसी कार्यालय का चलना बंद हो जाना। उ०—यहाँ बहुत से चीनी के कारखाने थे, सब उठ गए। १४ हटना। अलग होना। दूर होना। स्थान त्याग करना। प्रस्थान करना। जैसे,—(क) यहाँ से उठो। (ख) वारात उठ चुकी। १५ किसी प्रया का दूर होना। किसी रीति का बंद होना। जैसे—सती होने की रीति अब हिंदुस्तान से उठ गई। १६ खंच होना। काम में लगना। जैसे,—(क) आज सबेरे से इस समय तक १० रुपए उठ चुके। (ख) तुम्हारे यहाँ कितने का धी रोज उठता होगा।

सयो० क्रि०—जाना।

७ विकना। भाड़े पर जाना। लगान पर जाना। जैसे,—(क) —ऐसा सौदा दुकान पर क्यों रखते हो जो उठता नहीं। (ख) उनका घर कितने महीने पर उठा है? १८ याद आना। ध्यान पर चढ़ना। स्मरण आना। जैसे,—वह श्लोक मुझे उठता नहीं है। १९ किसी वस्तु का क्रमशः जुड़ जुड़कर पूरी ऊँचाई पर पहुँचना। मकान या दीवार आदि का तैयार होना। जैसे (क) तुम्हारा घर अभी उठा या नहीं। (ख) नदी के किनारे बाँध उठ जाय तो अच्छा है। उ०—उठा बाँध तब सब जग बाँधा।—जायसी (शब्द०)।

विशेष—इस अर्थ में उठना का प्रयोग उन्हीं वस्तुओं के संबंध में होता है जो बराबर इंट मिट्टी आदि सामग्रियों को नीचे ऊपर रखते हुए कुछ ऊँचाई तक पहुँचाकर तैयार की जाती हैं। जैसे—मकान, दीवार, बाँध, भीटा इत्यादि।

२ गाय, भैंस या घोड़ी आदि का मस्ताना या अलग पर आना। विशेष—‘उठना’ उन कई क्रियाओं में से है जो और क्रियाओं के पीछे सयोज्य क्रियाओं की तरह लगती हैं। यह अकर्मक क्रिया धातु के पीछे प्रायः लगता है। केवल कहना, बोलना आदि दो एक सकर्मक क्रियाएँ हैं जिनकी धातु के साथ भी यह देखा जाता है। जिस क्रिया के पीछे इसका सयोग होता है, उसमें आकस्मिक का भाव आ जाता है। जैसे, रो उठना, बिल्ला उठना, बोल उठना।

उठल्लू—वि० [स० उत् + हि० ठल्लू या हि० उठ + लू (प्रत्य०)]

१. एक स्थान पर न रहनेवाला। आसनदगधो। आसनकोपी। २. आचारा। बैठकाने का।

मुहा०—उठल्लू का चून्हा या उठल्लू चून्हा = बेकाम इधर उधर फिरनेवाला। निकम्मा। आचारागर्द। न०—दो तीन उम्मेद-

वार और दस बीन उठल्लू के चूल्हे, कोई खड़ा है, कोई बैठा है।—भारतेंदु ग्र०, भा० ३, पृ० ५१४।

उठवाना—क्रि० स० [हि० उठना का प्रे० रूप] उठाने के लिये किसी को तत्पर करना।

उठवैया—वि० [हि० प्रे० उठवा + ऐया (प्रत्य०)] १ उठानेवाला। २ उठानेवाला। ३ उठनेवाला।

उठांगन—सद्मा पु० [हि० उठ + आंगन] बड़ा आंगन। लंबा चौड़ा सहन।

उठाईगीर, उठाईगीरा—वि० [हि० उठाना + फा० गीर] १ आँख बचाकर छोटी मोटी चीजों को चुरा लेनेवाला। उचक्का। जेबकतरा। चाई। २ बदमाश। लुच्चा। उ०—ऐसे उठाई-गीरो के मुँह बंधे लगते हो। मान०, भा० १, पृ० ३१०।

उठान—सद्मा स्त्री० [सं० उत्थान, उद्धान प्रा० उद्धान] १ उठना। उठने की क्रिया। २ ऊँचाई। ३ रोह। बाढ़। बढ़ने का ढंग। वृद्धिक्रम। जैसे—इस लड़के की उठान अच्छी है। ३ गति की प्रारम्भिक अवस्था। आरम्भ। जैसे, इस ग्रह का उठान तो अच्छा है, इसी तरह पूरा उतर जाय तो कहे। उ०—सरस सुमिलि चित तुरग की करि करि अमित उठान। गोइ निवाहे जीतिए प्रेम खेल चौगान।—विहारी (शब्द०)। ४ खंच। व्यय। खपत। जैसे—गल्ले की उठान यहाँ बहुत नहीं होती है।

उठाना—क्रि० स० [हि० उठना का सक० रूप] १ नीची स्थिति से ऊँची स्थिति में करना। जैसे, लेटे हुए प्राणी को बैठाना या बैठे हुए प्राणी को खड़ा करना। किसी वस्तु को ऐसी स्थिति में लाना जिसमें उसका विस्तार पहले की अपेक्षा अधिक ऊँचाई तक पहुँचे। ऊँचा या खड़ा करना। जैसे—(क) दूहने के लिये—गाय को उठाओ। (ख) कुरसी गिर पड़ी है, उसे उठा दो। २ नीचे से ऊपर ले जाना। निम्न आधार से उच्च आधार पर पहुँचना। ऊपर ले जाना। जैसे,—(क) कलम गिर पड़ी है, जरा उठा दो। (ख) वह पत्थर को उठाकर ऊपर ले गया। ३ धारण करना। कुछ काल तक ऊपर लिए रहना। जैसे,—(क) उतना ही लादो जितना उठा सको। (ख) ये कड़ियाँ पत्थर का बौझ नहीं उठा सकती। ४ स्थान त्याग कराना। हटाना। दूर करना। जैसे,—(क) इसको यहाँ से उठा दो। (ख) यहाँ से अपना डेरा उठाओ। ५ जगाना। ६ निकालना। उत्पन्न करना। सहसा आरम्भ करना। एकत्रासी शुरू करना। अचानक उमाड़ना। छेड़ना जैसे—बात उठाना, झगड़ा उठाना। उ०—जब से हमने यह काम उठाया है, तनी से विघ्न हो रहे हैं। ७ तैयार करना। उद्यत करना। सन्नद्ध करना। जैसे, इन्हे इस काम के लिये उठाओ तो ठीक हो। ८ मकान या दीवार आदि तैयार करना। जैसे, घर उठाना, दीवार उठाना। १०. नित्य नियमित समय के अनुसार किसी दुकान या कारखाने को बंद करना। ११ किसी प्रया का बंद करना। जैसे—प्रयोजो ने यहाँ से सती की रीति उठा दी। १२ खंच करना। लगाना। व्यय करना। जैसे,—रोज इतना रुपया उठाओगे तो कैसे काम चलेगा? १३ किसी वस्तु को भाड़े या किराए पर देना।

उठडपा—संज्ञा पुं [हि० उठना या ऊठ] दे० 'उठडा' ।

उठडा—संज्ञा पुं [देशज] एक टेढ़ी लकड़ी जो गाड़ी के अगले भाग में, जहाँ हार से मिलते हैं, जूए के नीचे लगी रहती है। इसी के बल पर गाड़ी का अगला भाग जमीन पर टिकाया जाता है। उठहपा। उठहडा।

उठपटांग—संज्ञा पुं [हि०] दे० 'ऊठपटांग'। उ०—दूसरी कसर निकालने के लिये व्यर्थ उठपटांग वार्ते वरु चलते हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २५३।

उठहडा—संज्ञा पुं [हि०] दे० 'उठडा'।

उठारी—संज्ञा स्त्री [हि० उठना] वह लकड़ी जिस पर रखकर चारा काटा जाता है। निठ्ठा। निहटा।

उठेव—संज्ञा पुं [हि० उ+ठेव] छाजन की धरन के बीचोबीच ठोका हुई डेढ़ हाथ की दो खड़ी लकड़ियाँ जिनपर एक वेड़ी लकड़ी या गहारी बँठाकर उसके ऊपर धरन रखते हैं।

उठ्ठा—संज्ञा पुं [हि० श्रोतना] दे० 'श्राटनी'।

उठ्ठाना(उ)—क्रि० अ० [स० उत्+स्था, प्रा० उठ्ठण] दे० 'उठना'। उ०—सोई घाव तन पर लगे उठ्ठ सँभलें साज।—दरिया० बानी, पृ० १२।

उठ्ठी—संज्ञा स्त्री [हि० उठना] किसी प्रतियोगिता में पराजय या उससे हट जाने की स्थिति, भाव या क्रिया।

क्रि० प्र०—उठ्ठी बोलना=पूरी तरह से हार स्वीकार कर लेना। उ०—इस अर्थयुग में सब सबन जिसका है वही उठ्ठी बोल गया।—इंद्र०, पृ० ६६।

विशेष—बच्चे अपने खेल में इस शब्द का प्रयोग करते हैं।

उठंगल—वि० [देश०] १. वेधना। २. वेशऊर। अशिष्ट।

उठंगना—संज्ञा पुं [स० *उत्थिताङ्ग > *उठंग *उठंग से बना] १. आड। टेक। २. उठंगने की वस्तु। बैठने में पीठ को सहारा देनेवाली वस्तु।

उठंगना—क्रि० अ० [स० उत्थित+अङ्ग] १. किसी ऊँची वस्तु का कुछ सहारा लेना। टेक लगाना। जैसे—वह दीवार से उठंगकर बैठ गया। २. लेटना। पड़ रहना। कमर सीधी करना। जैसे—बहुत देर से जग रहे हो, जरा उठंग तो लो।

उठंगाना—क्रि० स० [हि० उठंगना का सक० रूप] १. किसी वस्तु को पृथ्वी या और किसी आधार पर खड़ा रखने के लिये उसे तिरछा करके उसके किसी भाग को किसी दूसरी वस्तु से लगाना। मिडाना। २. (किवाड) मिडाना या बंद करना। ३. शयन करना। लिटा देना।

उठकना—क्रि० अ० [हि० उठंगना] दे० 'उठंगना'।

उठतक—संज्ञा पुं [हि० उठना] १. वह चीज जो पीठ लगे हुए घोड़े की पीठ को बचाने के लिये जीन या काठी के नीचे रखी जाय। उडतक। २. उचकन। आड। टेक।

उठना—क्रि० अ० [स० उत्थान, पा० उठ्ठान, प्रा० उठ्ठण, उठ्ठण] १. नीची स्थिति से और ऊँची स्थिति में होना। किसी वस्तु का ऐसी स्थिति में होना जिसमें उसका विस्तार

पहले की अपेक्षा अधिक ऊँचाई तक पहुँचे। जैसे, लेंटे हुए प्राणी का खड़ा होना। ऊँचा होना।

संयो० क्रि०—जाना।—पडना।

मुहा०—उठ खड़ा होना=चलने को तैयार होना। जैसे, अभी आए एक घटा भी नहीं हुआ और उठ खड़े हुए। उठ जाना=दुनिया से उठ जाना। मर जाना। जैसे,—इस सप्ताह में कैसे कैसे लोग उठ गए। उ०—जो उठि गयो वढ़िर नहि आयो मरि मरि कहाँ समाही।—रवीर (शब्द०)। उठनी कोपल=नवयुवक। गमल। उठनी जवानी=युवावस्था का आरम्भ। उठनी परती=आजमगढ (उत्तर प्रदेश) में प्रचलित जोत का एक भेद जिसके अनुसार किसानों को केवल उन खेतों का लगान देना पड़ता है जिनको वे उस वर्ष जोतते हैं और परती खेतों का नहीं देना पड़ता। उठने बैठने=प्रत्येक प्रवस्था में। हर घड़ी। प्रतिक्षण। जैसे—किसी को उठते बैठते गालियाँ देना ठीक नहीं। उठने जूनी और बैठने लात=परस्पर मेल न होना। आत्म में न बनना। उठना बैठना=आना जाना। संग साथ। मेल जो। जैसे—इनका उठना बैठना बड़े लोगों में रहा है। उठ बैठ=दे० 'उठावैठी'। उठावैठी=(१) हैरानी। दोह धू। २. बेहली। बेचैनी। ३. उठने बैठने की कसरत। नैठक।

२. ऊँचा होना। और ऊँचाई तक बढ़ जाना। जैसे—लहर उठना। उ०—लहरे उठी समुद उलथाना। भूला पथ सरग नियराना—जायसी (शब्द०)। २. ऊपर जाना। ऊपर चढ़ना। ऊपर होना। जैसे—बादन उठना, धूँआँ उठना, गर्द उठना। टिड्डी उठना। उ०—(क) उठी रेनु रवि गरुड छपाई। मरुत यकित् वसुधा अकुलाई।—मानस, ६।७८। (ख) खन उठइ खन बूझइ, अस हिय कमल सँकेत। हीरामनहि बुलावहि सखी कहत जिव लेत।—जायसी (शब्द०)। ४. कूदना। उछलना। उ०—उठहि तुरग लेहि नहि बागा। जातो उलटि गगन कहैं लागी—जायसी (शब्द०)। ५. विस्तर छोड़ना। जागना। जैसे,—देखो किनना दिन चढ़ आया, उठो। उ०—प्रातकाल उठिकै रघुनाथ। मातु पिता गुह नावहि माया।—तुलसी (शब्द०)। संयो० क्रि०—पडना।—बैठना।

६. निकलना। उदय होना। उ०—विहंसि जगार्वाति सखी सयानी। सूर उठा, उठु पदुमिनि रानी।—जायसी (शब्द०)।

७. निकलना। उत्पन्न होना। उद्भूत होना, जैसे—विचार उठना, राग उठना। जैसे,—मेरे मन में तरह तरह के विचार उठ रहे हैं। उ०—(क) छुद्रघट कटि कचन तागा। चलते उठहि छतीसो रागा।—जायसी (शब्द०)। (उ) जो धनहीन मनोरथ ज्यों उठि वीरहि बीच विनाइ गयो है।—(शब्द०)।

८. महत्ता आरम्भ होना। एकवारगी शुरू होना। अचानक उभड़ना। जैसे—बात उठना, बंद उठना, आँधी उठना, हवा उठना। उ०—प्राये समुद प्राय मो नाहीं। उठी बाड प्राँधी उपराही।—जायसी (शब्द०)। ९. तैयार होना। तन्तु होना। उद्यत होना। जैसे,—प्रब प्राप उठे हैं, वह काम चटपट हो जाएगा।

मुहा०—मारने उठना=मारने के लिये उद्यत होना। १०. किसी

उ०—यह छुएँ उभक्तं विभुक्तं न धरै पलिका पग ज्यो रतिभीति है ।—संस्कृत (शब्द०) ।

२ ऊपर उठना । उमडना । उमडना । उ०—नेह उभक्ते से नैन देखि को विरुभे से विभुनी सी भीहे उभक्ते से डर जात है ।—केशव (शब्द०) । ३ तारुने के लिये ऊँचा होना । भौकने के लिये सिर उठाना । भौकने के लिये सिर बाहर निकालना । उ०—(क) जहँ तहँ उभक्ति भरोखा भौकति जनक नगर की नार । चितवनि कृपा राम अवलोकत दीन्हो सुख जो अपार ।—सूर (शब्द०) । (ख) सुने भवन अकेली में ही नीके उभक्ति निहारयो ।—सूर०, १०।२६६३ । (ग) मोहि भरोसो रोकिहै उभक्ति भौकि इक वार ।—विहारी २०, दो० ६२ । (घ) फिरि फिरि उभक्ति, फिरि दुरति, दुरि, दुरि उभक्ति जाइ ।—विहारी २०, दो० ५२७ । (ङ) अचरज करै भूलि मन रहे । भेरि उभक्तकर देखन चहै ।—तल्लू (शब्द०) । ४ चंचल होना । सजग होना । चौकना । उ०—(क) देखि देखि मुगलन की हरमें भवन त्यागैं उभक्ति उभक्ति उठै बहुत बयारी के । भूपण (शब्द०) । (ख) हेरत ही जाके छके पल्लू उभक्ति सकै न । मन गहनै धरि भीत पै छवि मद पीवत नैन ।—रसनिधि (शब्द०) ।

उभक्तुन—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'उचकन' ।

उभक्तना—क्रि० प्र० [हि०] भातना [खुलना । पलको का बदन होना ।

उभक्त०—वि० [देशी०] उज्जल = अवल [वनिष्ठ] । उ०—है हन्यो जाम उद्धव उभक्त मिलि विहुँ चपिय बढ नर ।—पृ० रा० १।२०३ ।

उभक्तना०^१—क्रि० स० [सं० उत् + सरण] ऊपर की ओर उठाना । ऊपर घिसकाना । उ०—कय उठाइ धूँधटु करत उभक्त पट गुँकरोट, सुध मोटै लूटी ललन लखि ललना की लोट ।—विहारी २०, दो० ५२४ ।

उभक्तना०^२—क्रि० प्र० [हि०] उजडना [उजडना । समाप्त होना । उ०—कहूँ कवीर नट नाटिक बाके मदन को न बजावै । गये पपनियाँ उभक्ती बाजी, को काहूँ के आवै ।—कवीर ग्रंथ० पृ० ११३ ।

उभक्तना^३—क्रि० स० [सं० उज्जरण] डालना । किसी द्रव पदार्थ को ऊपर से गिराना ।

उभक्तना०^४—क्रि० प्र० उमडना । बढ़ना । उ०—वह सेन दरेरन देति चली । मनु मायन की सरिता उभक्ती । सुदन (शब्द०) ।

उभक्तना—क्रि० स० [हि०] उ + भाँकना [भाँकना । उचककर देना । उ०—तोऊ चडो द्वार कोउ ताकै । दोरी गलियन फिरत उभक्तै ।—तल्लू (शब्द०) ।

उभक्तना०—क्रि० स० [सं० उभक्त] उठना । गिराना । उ०—गऊ पय मोटिय धार उभक्ति । धरे भरि भाजन मिश्रिय बाँटि ।—पृ० रा० ६३ । १०६ ।

उभक्तना०—क्रि० स० [हि०] दे० 'उभक्तना' ।

उभक्ति०^१—सज्ञा स्त्री० [सं० भौज्यत्व] काति । दीप्ति । उ०—

रूप की उभक्ति आछे आनन पै नई नई तैसी तरुनई तेह ओपी अरुनई है ।—घनानंद, पृ० ३१ ।

उभिलना—क्रि० स० [हि०] दे० 'उभलना' ।

उभिला—सज्ञा स्त्री० [हि०] उभिलना । १ उबटन के लिये उबानी हुई सरसो । उबटन का सुगंधित सामान जिसमें तिल, सरसो, नागरमोथा आदि पड़ता है । २ खेत के ऊँचे स्थानों से खोदी हुई मिट्टी जो उसी खेत के गड्ढों या नीचे स्थानों में खेत चोरस करने के लिये भरी जाती है । ३ अदाव या टपके हुए महुए को पिसे हुए पीस्ते के दाने के साथ उवालकर बनाया हुआ एक प्रकार का भोजन ।

उभिला—सज्ञा पुं० [देश०] जलाने के लिये उभले जोड़ने की क्रिया । अहरा ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

उटगा, उटु गा—वि० [सं० उत्सृज] वह कपड़ा जो पहनने में ऊँचा या छोटा हो । वह कपड़ा जो नीचे वहाँ तक न पहुँचता हो जहाँ तक पहुँचना चाहिए । ओछा कपड़ा ।

उटगन—सज्ञा पुं० [सं० उट = घास + गन] एक घास ।

विशेष—यह ठंडी जगहों में नदी के कठारों में उत्पन्न होती है । और तिनपतिया के आकार की होती है, पर इसमें चार पतियाँ होती हैं । इसका साग खाया जाता है । यह शीतल, मलरोधक, त्रिदोषघ्न, हलकी, कसैली और स्वादिष्ट होती है और ज्वर, श्वास तथा प्रमेह आदि को दूर करती है ।

पर्याय—सुनिषक । शिरिमारि । चौपतिया । गुडुवा । सुना ।

उटगा—वि० [हि०] दे० 'उटंग' ।

उट—सज्ञा पुं० [सं०] पत्ती । घास । तृण । [क्रि०] ।

उटकना^१—क्रि० स० [देशी] अनुमान करना । अटकल लगाना । अदाजना । उ०—भूखन वसन विलोकत सिय के । बरने तेहि अवसर वचन विवेक वीर रस बिय के । धीर वीर सुनि समुक्ति परमपर बल उपाय उटकत निज हिय के —तुलसी (शब्द०) ।

उटकना^२—क्रि० प्र० [हि०] अटकना [गाय भैंस आदि का दूध देते देते बीच में रुक जाना ।

उटक नाटक—वि० [हि०] उठना [ऊँचानीचा । ऊँच खावड अडवड ।

उटकर०—सज्ञा पुं० [हि०] १ दे० 'टकर' । उ०—सीमन को टकर लेत उटकर घालत छकर लरि लपटै ।—पद्मा ग्रं०, पृ०, २६ । २ मनमाना । इधर उधर का ।

यो—उटकर फातिहा = दे० 'उटकरलैस' ।

उटकरलैस—वि० [हि०] अटकल + लसना [अटकलपचू । मनमाना । अडवड । बिना समझा वृत्ता । जैसे,—तुम्हारी सब बातें उटकरलैस हुआ करती हैं । उ०—निदान बिना किसी ठोस ठिकाने उटकरलैस इधर से उधर और उधर से इधर । प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५६ ।

उटज—सज्ञा पुं० [सं०] भँपड़ी । कुटी ।

हार काजु नहिं आवे जैसे उज्ज्वल ओरे।—नंद० प्र०, पृ० २०५।

उज्जोगरी०—वि० खी० [हि० उज्जगर] उज्जगर करनेवाली। प्रकाशित करनेवाली। उ०—मध्य ब्रजनागरी, रूप रस आगरी, घोष उज्जोगरी, स्वाम प्यारी।—मूर० १०।१७५१।

उज्जगरना०—वि० सं० [म० उज्जालन, प्रा० उज्जालण] जलाना। ध्वस्त करना। उजाड़ना। उ०—जागीर भोपति किय जायिय, तनुज मारि वरती उज्जारिय।—प० रा०, पृ० १२३।

उज्जासन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मारण। वध।

उज्जित—वि० [सं०] विजित। जीता हुआ। पराजित [को०]।

उज्जित—सञ्ज्ञा खी० [सं०] विजय। जीत [को०]।

उज्जिहान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वाल्मीकीय रामायण में वर्णित एक देश का नाम।

उज्जीवन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] फिर से या दुबारा प्राप्त होनेवाला जीवन। नष्ट होने पर फिर से अस्तित्व में आने का भाव। पुनर्जीवन [को०]।

उज्जीवित—वि० [सं०] पुन जीवितप्राप्त। फिर से अस्तित्व में आया हुआ [को०]।

उज्जीवी—वि० [सं० उज्जीविन्] फिर से जीवितप्राप्त। जिसे फिर से जीवन प्राप्त हो सकता हो। [को०]।

उज्जू—सञ्ज्ञा पुं० [अ० 'वजू' हि० उजू] दे० 'वजू' उ०—क्या उज्जू पाक किया मुह धोया क्या मसीति सिर लाया।—कबीर प्र० पृ० ६२३।

उज्जू भ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उज्जुम्भ] १ उबामी। जेमाई लेना। २ फलना। प्रसरित होना। ३. खिलना। विकसित होना। ४ टूटना। अलग होना [को०]।

उज्जू भ^२—वि० १. खिला हुआ। स्फुटित। २ खुला हुआ। [को०]।

उज्जू भण—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उज्जुभण] दे० 'उज्जू भ'।

उज्जैन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उज्जयिनी] मालवा देश की प्राचीन राजधानी।

उज्जनि—सञ्ज्ञा खी० [सं० उज्जयिनी] दे० 'उज्जयिनी'। उ०—ता सर्म उज्जनि के वोहोत वैष्णव नाम पाइवे को आए हते।—दो सी वावन०, भा० १, पृ० ३१४।

उज्ज्वल^१—वि० [सं०] १ दीप्तिमान्। प्रकाशमान्। २ शुभ्र। विद्यद। स्वच्छ। निर्मल। उ०—नव उज्ज्वल जलधार हार हीरक सी सोहति।—मार्तेंदु प्र०, भा० १, पृ० २८२। ३ वेदांग। ४ श्वेत। सफेद। ५ शानदार। भव्य। वैभवपूर्ण। उ०—उज्ज्वल गाथा कैसे गाऊँ मधुर चाँदनी रातो की।—लहर, पृ० ५। ६ पवित्र। शुचि। उ०—तुम्हारी कुटियों में चुपचाप, चल रहा था उज्ज्वल व्यापार।—लहर पृ० ७। ८ सुंदर। सौंदर्यपूर्ण [को०]। ९ खिला हुआ। विकसित [को०]।

उज्ज्वल^२—सञ्ज्ञा पुं० १. प्रीति। अनुराग। प्यार। २. स्वर्ण [को०]।

उज्ज्वलता—सञ्ज्ञा खी० [सं०] १. कांति। दीप्ति। चमक। आभा। आब। २. स्वच्छता। निर्मलता। उ०—तया होगी इतनी उज्ज्वल इतना वदन अभिनदन।—प्रपरा, पृ० ७४। ३. सफेदी।

उज्ज्वलन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. प्रकाश। दीप्ति। २. जनना।

वलना। ३. स्वच्छ करने का कार्य। ४ अग्नि। [को०]।

५. स्वर्ण। सोना [को०]।

उज्ज्वला—सञ्ज्ञा खी० [सं०] बारह अक्षरों का एक वृत्त जिसमें दो नगण, एक भगण और एक रगण होते हैं। उ०—न नम रघुवरा कहूँ भूसुरा। लसत तरणि तेज भनों फुरा॥ धरनि तन जबै भिन ना थला। गगन भरति कीरति उज्ज्वला। (शब्द०)। २. कांति। प्रकाश। ज्योति। चमक [को०]। ३. स्वच्छता। सफाई [को०]।

उज्ज्वलित—वि० [सं०] १ प्रकाशित किया हुआ। प्रदीप्त २ स्वच्छ किया हुआ। साफ किया हुआ। झलकाया हुआ।

उज्ज—वि० [सं०] त्यक्त। छोड़ा हुआ [को०]।

उज्जक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ बादल। मेघ। मत्त [को०]।

उज्जटित—वि० [सं०] धवड़ाया हुआ। उलझन में पड़ा हुआ। परेशान [को०]।

उज्जड—वि० [सं० उद्] (= बहुत) + जड (= मूर्ख) [भक्की। भक्कड। मनमौजी। आगा पीछा न सोचनेवाला। उद्धत। मूर्ख।

उज्जन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] छोड़ना। हटाना। परित्याग [को०]।

उज्जित—वि० [सं०] छोड़ा या त्याग हुआ। परित्यक्त [को०]।

उज्यारा०—सञ्ज्ञा पुं० [हि० उजियारा] दे० 'उजाला'।

उ०—मृदु मुसकानि मुखचंद चार चाँदनी सौ राख्यो कै उज्यारो अमिराम द्वार मोन को।—मति० प्र०, पृ० ३४५।

उज्यारी०—सञ्ज्ञा खी० [हि० उजियारी] दे० 'उजाली'। उ०—भूपन सुद्ध सुधान के सोधनि सोधति सी धरि ओप उज्यारी।—भूपण प्र०, पृ० २८।

उज्यास०—सञ्ज्ञा पुं० [हि० उजास] दे० 'उजास'।

उज्ज—सञ्ज्ञा पुं० [अ० उज्ज] १ बाधा। विरोध। आपत्ति। २ वक्तव्य। जैसे—(क) हमको इस काम को करने में कोई उज्ज नहीं है। (ख) जिसे जो उज्ज हो, वह अभी पेश करे। ३. वहना [को०]। २. कारण। हेतु [को०]।

क्रि० प्र०—उरना।—पेग करना।—लाना।

५. विवशता। लाचारी [को०]। ६. वहना। हेतु। कारण [को०]।

उज्जस्वाही—सञ्ज्ञा खी० [अ० उज्ज + फा० स्वाह + ई० (प्रत्यय०)] क्षमाप्रार्थना। क्षमायाचना [को०]।

उज्जत—सञ्ज्ञा खी० [अ०] दे० 'उजरत'।

उज्जदारी—सञ्ज्ञा खी० [अ० उज्ज + फा० दार] किसी ऐसे मामले में उज्ज पेश करना जिसके विषय में अदालत से किसी ने कोई आज्ञा प्राप्त की हो या प्राप्त करने की दरखास्त दी हो। जैसे, दाखिल खारिज, वेंचवारा, नीलाम आदि के विषय में।

उज्जटना०—क्रि० सं० [सं० उज्ज] छोड़ना। उछानना। भटकना।

उ०—मयो जग में जग आवै न बटै, उमै सीस ईस दुग्यारै उज्जटै।—पृ० रा०, ६१।२२०३।

उज्जकना०—क्रि० अ० [हि० उज्जकना] १ उज्जकना। उछलना। कूदना। उ०—वरज्यो नाहि मानत उज्जकत फिरत हो कान्ह घर घर।—नूर (गद्द०)।

यो०—उज्जकना बिभूकना = उछलना कूदना। उछलना पटकना।

उजियाना—क्रि० सं० [सं० उज्जीवन, प्रा० उज्जीवण, उज्जीयण]
उत्पन्न करना। पैदा करना। प्रकट करना।

उजियार^१—संज्ञा पुं० [सं० उज्ज्वल] उजाला। प्रकाश। उ०—
(क) राम नाम मनि दीप घर जीह देहरी द्वार, तुलसी
भीतर बाहिरेहु जो चाहसि उजियार।—मानस १।२१।

क्रि० प्र०—करना। उ०—जोति अयन को कियो उजियार, जैसे
कोऊ गेह सवार।—सूर (शब्द०)। होना।

उजियार^२—वि० १ प्रकाशमान्। दीप्तिमान्। कात्तिमान्।
उज्ज्वल। उ०—(क) जस अचल महे छिपै न दीया, तस
उजियार दिखावै हीया।—जायसी (शब्द०)। २ चतुर।
बुद्धिमान्। उ०—आगे आउ पखि उजियारा। कह सुदीप
पतग किय मारा।—जायसी (शब्द०)।

उजियारना^१—क्रि० सं० [हिं० उजियारा] १ प्रकाशित करना।
२. बालना। जलाना। उ०—सरस सुगधन सो आंगन सिचावै
करपूरमय वातिन सो दीप उजियारना।—व्यग्यार्थ (शब्द०)।

उजियारा^१—संज्ञा पुं० [सं० उज्ज्वल] [श्री० उजियारी] १
उजाला। प्रकाश। चांदना। उ०—देखि घराहर कर उजि-
यारा। छिपि गए चांद सुरुज ओ तारा।—जायसी (शब्द०)।
२ प्रतापी और मायशाली पुरुष। वश को उज्ज्वल या गौर-
वान्वित करनेवाला पुरुष। उ०—(क) तू राजा दुहु कुल
उजियारा अस कै चरच्यो मरम तुम्हारा। (ख) तेहि कुन
रतन सेन उजियारा धनि जननी। जनमा अस वारा।—
जायसी (शब्द०)।

उजियारा^२—वि० १ प्रकाशमान्। उ०—सैयद असरफ पीर
पियारा, जेहि मोहि पथ दीन्ह उजियारा। जायसी प्र०, पृ०
७। २ कात्तिमान्। द्युतिमान्। उज्ज्वल। उ०—ससि चौदह
जो दई सँवारा। ताहु चाहि रूप उजियारा। जायसी (शब्द०)।

उजियारी^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० उजियारा] १ चांदनी। चंद्रिका।
उ०—आय सरद अहुत अधिक पियारी। नव कुआर कातिक
उजियारी।—जायसी (शब्द०)। प्रकाश। रोशनी। उ०—
—और नखत चहुँ दिसि उजियारी। ठाँवहि ठाँव दीप अस
वारी।—जायसी (शब्द०)। २ वश को उज्ज्वल करनेवाली
स्त्री। सती साध्वी स्त्री। उ०—(क) माई मैं दूनों कुल उजि-
यारी। बारह खसम नैहरे खायो सोरह खायो समुरारी।—
कबीर (शब्द०)। (ख) सो पदमावती ताकरि वारी, ओ सब
दीप माहि उजियारी।—जायसी (शब्द०)।

उजियारी^२—वि० प्रकाशयुक्त। उजेली। उ०—रवहुक रतन महल
विप्रसारी सरद निसा उजियारी। वैंठे जनक सुता सँग बिल-
सत मधुर केलि मनुहारी।—सूर (शब्द०)।

उजियाला—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उजाला'। उ०—द्विज चहक
उठे, हो गया नया उजियाला।—साकेत, पृ० २४५।

उजिहिरा—वि० [सं० उज्ज्वल] ज्योतिर्मय। प्रकाशयुक्त।
चमकता हुआ। उ०—हीरा मोती लाल जवहिरा। पान चढ़े
पुनि देहु उजिहिरा।—कबीर सा०, पृ० ५५७।

उजीता^१—वि० [सं० उत् + ज्योति + प्रा० *उज्जइति > उजीता
अथवा उद्युति, प्रा० उज्जोम] प्रकाशमान। रोशन।

उजीता^२—संज्ञा पुं० चांदनी। प्रकाश। उजाला।

उजीर^१—संज्ञा पुं० [अ० वजीर] दे० 'वजीर'। उ०—(क) पाप
उजीर कह्यो मोड़ मान्यो, धर्म सु धन लुट्यो। सूर०, १।६४।
(ख) खिज्यो देखि पतिसाह को कियो उजीर सुबोध।—हम्मीर
रा०, पृ० ५६।

उजुर—संज्ञा पुं० [अ० उज्ज] दे० 'उज्ज'। उ०—चाकर हूँ उजुर
कियो न जाय, नेक पै कछु दिन उवरते तो घने काज करते।—
भूपण प्र०, पृ० ४०।

उजू—संज्ञा पुं० [अ० वजू] दे० 'वजू'।

उजूवा^१—संज्ञा पुं० [अ० उजूवा] बँगनी रंग का एक पत्थर जिसमें
चमकदार छीटे पड़े रहते हैं।

उजूवा^२—वि० [अ० उजूवह] दे० 'गजूवा'।

उजेणी^१—उजेनी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० उज्जयिनी, प्रा० उज्ज-
यिणी उज्जैणी] दे० 'उज्जयिनी'। उ०—(क) हाडा बुदी
का घरणी नग्र उजेणी आई दीयो मेल्हाण।—वीसल० रास०,
पृ० १८। (ख) गयेऊँ उजेनी सुनु उरगारी।—मानस, ७।
१०५।

उजेर^१—संज्ञा पुं० [सं० उज्ज्वल] उजाला। प्रकाश। उ०—
मारण हुत जो अँधेरा सूझा, भा उजेर सब जाना बूझा।
—जायसी (शब्द०)।

उजेरना^१—क्रि० सं० [हिं० उजेर से नाम०] दे० 'उजालना'।
उ०—पुनि कहि उठी जसोदा मैया उठहु कान्ह रवि किरनि
उजेरत।—सूर०, १०।४०५।

उजेरा^१—संज्ञा पुं० [सं० उज्ज्वल] उजाला। प्रकाश।

उजेरा^२—वि० प्रकाशमान्।

उजेरा^३—संज्ञा पुं० [अव-उ = नहीं + जेर = रहट] बेल जो हल
इत्यादि में जोता न गया हो।

उजेला^१—संज्ञा पुं० [सं० उज्ज्वल] प्रकाश। चांदनी। रोशनी।

उजेला^२—वि० [श्री० उजेली] प्रकाशमान्।

यौ०—उजेली रात = चांदनी रात। उजेला पाख = शुक्ल पक्ष।

उजीरा—संज्ञा पुं० [सं० उज्ज्वल] प्रकाश। रोशनी। चांदनी।

उज्जना^१—क्रि० अ० [सं० उज्ज] उदित होना प्रकट होना।
उपस्थित होना। उ०—लाज सरस चहुमान जोग उज्जै जुध
मुत्तम।—पृ० रा० २६। ५०।

उज्जयत—संज्ञा पुं० [सं० उज्जयन्त] रैवत पर्वत जो विष्णु श्रेणी
का एक भाग है [को०]।

उज्जयिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मालवा देश की प्राचीन राजधानी।

विशेष—यह सिन्धु नदी के तट पर है। विक्रमादित्य यहाँ के
बड़े प्रतापी राजा हुए हैं। यहाँ महाकाल नाम का शिव का
एक अत्यंत प्राचीन मंदिर है।

उज्जर—वि० [सं० उज्ज्वल, प्रा० उज्जल] दे० 'उज्ज्वल'।

उज्जल^१—क्रि० वि० [सं० उद् = ऊपर + जल = पाना] बहाव से
उलटी ओर। नदी के चढ़ाव की ओर। भाटा का उठना।
उजान। जैसे, यह नाव उज्जल जा रही है।

उज्जल^२—वि० [सं० उज्ज्वल, प्रा० उज्जल] दे० 'उज्ज्वल'। उ०—

हुआ तो क्या हुआ जो रे बड़ा मति नाहि । जैसे फूल उजाड़
। का मिथ्या ही भरि जाहि ।—जायसी (शब्द०) ।

उजाड़^२—वि० १ ध्वस्त । उच्छिन्न । गिरा पड़ा ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना । उ०—अवहूँ दृष्टि मया कर नाथ
निहुर घर आव, मंदिर उजाड़ होत है नव कै आई वसाव ।
—जायसी (शब्द०) ।

२ जो आवाद न हो । निर्जन । जैसे—उस उजाड़ गाँव में क्या
था जो मिलता ।

उजाड़ना—क्रि० सं० [हि० उजड़ना] १ ध्वस्त करना । तितर
वितर करना । गिराना पड़ाना । उधेड़ना । २ उखाड़ना ।
उच्छिन्न करना । नष्ट करना । खोद फेंकना । ३ नष्ट करना ।
विगाड़ना । जैसे—मैंने तेरा क्या विगाड़ा है जो तू मेरे पीछे
पड़ा है ।

उजाड़—वि० [हि० उजाड़ना] उजाड़नेवाला । नष्ट करनेवाला ।
उजाथर^३—वि० [सं० युद्ध + स्थिर या झोझ + स्थिर] वीर ।
बहादुर । उ०—एक ऊजाथर कलहि एहवा साथी सहु
आखाड-सिंध ।—वेलि०, दू० ७४ ।

उजान—क्रि० वि० [सं० उद् = ऊपर + यान = जाना] धारा
से उलटी ओर । चढ़ाव की ओर । भाटा का उल्टा । जैसे—
नाव इस समय उजान जा रही है ।

उजार^४—वि० सखा पु० [हि०] दे० 'उजाड़' । उ०—फलानो
परगनो उजार पन्यो है ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २०६ ।

उजारना^५—क्रि० सं० [हि०] दे० 'उजाड़ना' । उ०—(क)
नाथ एक आवा कपि भारी । जेहि अशोक बाटिका उजारी ।
—मानस, ५।१८ (ख) जारि डारों लकहि उजारि डारों
उपवन फारि डारों रावन को तो मैं हनुमत हों ।—
पद्माकर (शब्द०) ।

उजारना^६—क्रि० सं० [हि० उजालना] जलाना (दीपक) ।
प्रकाश करना ।

उजारा^७—सखा पु० [हि० उजाला] उजाला । प्रकाश ।

उजारा^८—वि० प्रकाशमान । कातिमान । उ०—(क) जौ न होत
अस पुरुष उजारा । सूक्ति न परत पथ अंधियारा ।—जायसी
ग्रं०, पृ० ४ । (ख) हरि के गर्मवाम जननी को वदन उजारयो
लाग्यो हो । मानहुँ सरद चद्रमा प्रगटयो सोच तिमिर तनु
भाग्यो हो ।—सूर (शब्द०) ।

उजारी^९—सखा श्री० [हि०] दे० 'उजाली' ।

उजारी^{१०}—सखा श्री० कटी हुई फसल का थोड़ा सा अन्न जो किसी
देवता के लिये अलग निकाल दिया जाता है । अगऊँ ।

उजारी^{११}—वि० [हि०] दे० 'उजाड़' । उ०—मोर वसत मो
पदमिनि बारी । जेहि विनु भयउ वसत उजारी । जायसी
ग्रं०, पृ० ८७ ।

उजालना—क्रि० सं० [सं० उज्ज्वलन, प्रा० उज्जालण] १ गहना
और हथियार आदि साफ करना । मेल निकालना । चमकाना ।
निवारना । २. प्रकाशित करना । उ०—उन्होंने हिमोत के
तेल से उजाली हुई, भीतर पवित्र मृगचर्म के बिछोनेवाली
कुटी उसको रहने के लिये दी ।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०) । ३
बालना । जलाना । जैसे, दिया उजालना ।

उजाला^१—सखा पु० [सं० उज्ज्वल] [श्री० उजाली] १. प्रकाश ।
चांदनी । रोशनी । जैसे, (क) उजाले में आओ तुम्हारा मुँह
तो देखें । (ख) उजाले से अंधेरे में आने पर थोड़ी देर तक कुछ
नहीं सुझाई पड़ता ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

२ वह पुरुष जिससे गौरव हो । अपने कुल और जाति में श्रेष्ठ ।
जैसे—वह लड़का अपने घर का उजाला है ।

मुहा०—उजाला होना = (१) दिन निकलना । प्रकाश होना ।
(२) सर्वनाश होना । उजाले का तारा = शुक्र ग्रह ।

उजाला^२—वि० [श्री० उजाली] प्रकाशमान । अंधेरा का उल्टा ।
यौ०—उजाली रात = चांदनी रात । उजाला पाख, उजाले
पाख = शुक्ल पक्ष । सुदी ।

उजालिका^३—सखा श्री० [सं० उज्जालिका] उजियाली रात ।
चांदनी रात । उ०—मानहुँ सिमुभार चक्र उडुगन सह लसत
गगन । उदित मुदित पसरित दस दिसि उजालिका ।—
भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० २६८ ।

उजाली—सखा श्री० [हि० उजाला] चांदनी । चद्रिका । उ०—उस
प्रसन्न मुख में और खिली उजाली के चद्रमा में दोनों में नेत्र
धारियों की प्रीति समान रस लेनेवाली हुई ।—लक्ष्मणसिंह
(शब्द०) ।

उजास—सखा पु० [सं० उद्युति प्रा० उज्जोम्र, अथवा सं० उद्भास
प्रा० उज्जास (= देवोप्यमान)] १ चमक । प्रकाश । उजाला ।
उ—पिंजर प्रेम प्रकासिया अंतर मया उजास, सुख करि
सूती महल में बानी फूटी वास । कवीर (शब्द०) । (ख)
पथा ही तिथि पाइए वा घर कै चहुँ पास, नित प्रति पूनोई
रहै आनन ओप उजास ।—विहारी रं०, दो० ७३ ।

क्रि० प्र०—पाना = भलक मिलना । उ०—जालरंध्र मग अँगु
कौ कछु उजास सौ पाइ । पीठि दिए जग सौ रह्यो दीठि
भरोखे लाइ ।—विहारी रं०, दो० २६३ ।—रहना ।—होना ।

उजासना—क्रि० सं० [सं० उद्भासन, प्रा० उज्जासण, हि० उजात
से नाम०] १ प्रकाशित करना । बालना । जलाना । प्रज्व-
लित करना । २ उज्ज्वल या स्वच्छ करना ।

उजासी^४—सखा श्री० [हि० उजास + ई (प्रत्य०)] उजाला
प्रकाश । द्युति । छटा । उ०—हामी लौ उजासी जाही जगत
हुलासी है ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २२१ ।

उजियरि^५—वि० श्री० [सं० उज्ज्वल] उजली । गोरी । कातिमती ।
उ०—चाँद जैस धन उजियरि ग्रही, भा पिउ रोस गहन अस
गही ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १७८ ।

उजियर^६—वि० [सं० उज्ज्वल] उजला । तर्क । उ०—
छालहि माडा और घी पीई । उजियर देखे पाप गम बीई ।—
जायसी (शब्द०) ।

उजियरिया^७—सखा श्री० [सं० उज्ज्वल] चांदनी । प्रकाश ।
उजला । उ०—(क) लै पीडी रागन ही मुत को छिटकि रही
आछी उजियरिया । सूर स्वाम कछु कहत कहत ही बस
करि लीन्हें आइ निदरिया—सूर०, १०।२४६ । (ख) गगन
भवन माँ मगन नदई में, विनु दीपन उजियरियाँ री ।—जग०
शं०, भा० २, पृ० १०६ ।

उचड़ा पुचड़ा हुआ। ध्वस्त। २ जिसका घरवार सजड़ गया हो। ३ नष्ट। निकम्मा (स्त्रि०)।

उजड़्ड—वि० [सं उत् (=वहुत) + ङ (सूख) १ वज्र मूखं। ग्रशिष्ट। अतम्य। जगती। गवार। १ उद्द। निरकुश। जिसे बुरा काम करने में कुछ आगा पीछा न हो।

उजड़ुपन—सज्ञ पुं० [हि० उजड़ + पन (प्रत्य०)] उद्दता। ग्रशिष्टता। असम्भ्यता। वेहूदापन।

उजवक^१—सज्ञ पुं० [तु० उजवेक] तातारियों की एक जाति।

उजवक^२—वि० उजड़्ड। वेवकूफ। मनाडी। मूखं।

उजवकपन—सज्ञ पुं० [तु० उजवेक + हि० पन (प्रत्य०)] वेवकूफी। मूखता। उ०—बौद्धिक उजवकपन (इंटेलेक्चुअल वल्गेरिज्म) भी एक बड़ा बुरा दोष है।—कुकुम (भू०), पृ० १८।

उजवेग—वि० [तु० उजवेक] तातारियों की जाति से संबंधित। तातारियों की जाति का। उ०—सैमूरी और उजवेग बादशाहों के साथ इतने युद्ध किए और सकट भेले।—दुमायू, पृ० २।

उजम्मत—सज्ञ स्त्री० [अ०] बड़ाई। प्रतिष्ठा। समान। उ०—मनमानी अपनी उजम्मत और तारीफ लिखी।—प्रेमधन० भा० २, पृ० १५७।

उजरा^१—वि० [सं उज्ज्वल, प्रा० उज्जल] दे० 'उज्ज्वल'। उ०—उजर नयन नलिना काजरे न कर मलिना।—विद्यापति, पृ० ७७।

उजरत—सज्ञ स्त्री० [अ०] १ मजदूरी। २ किराया। भाडा। उ०—अच्छा, तो क्या आप समझते हैं कि अपनी उजरत छोड़ देंगी।—मान० भा०, पृ० ३६।

मुहा०—उजरत पर देना = किराये पर देना। भाडे पर देना।

उजरना^१—क्रि० अ० [हि० उजडन] दे० 'उजडना'। उ०—नाद वचन न मे परिहरऊँ। वसी भवन उजरी नहि डरऊँ।—मानस, १।८०।

उजरनि^१—सज्ञा स्त्री० [हि० उजरना] उजडने का भाव। वीरानापन। उ०—उजरनि वसी है हमारी अखियां देखो, सुबस सुदेस जहाँ भावते बसत हो।—धनानंद, पृ० ७१।

उजरा^२—वि० [हि०] दे० 'उजला'।

उजराई^१—सज्ञा स्त्री० [हि० उज्जर] १ उज्ज्वलता। सफेदी। २ स्वच्छता। सफाई। काति। दीप्ति। उ०—कहा कुपुपु, कह कोमुदी, कितक आरसी जोति। जाकी उजराई लखे आंखि ऊजरी होति।—विहारी २०, दो० १२।

उजराना^१—क्रि० सं० [सं उज्ज्वलन] उज्ज्वल करना। उजलवाना। साफ करना। उ०—(क) अजन दे नैननि, अतर मुख मनन कै, नीहें उजराइ कर गजरा जराइ के।—दे० (शब्द०)। (ख) तन कचन, हीरा हंमनि विद्रुम अघर बनाय, तिन मनि स्याम जडे तहाँ विधि जरिया उजराय।—मुबारक (शब्द०)।

उजल^१—वि० [सं उज्ज्वल, प्रा० उज्जल] दे० 'उज्ज्वल'। उ०—मृदुल उजा गया जन पहिरे उजल जु तन तें छवि की सहरे।—नंद० प्र०, पृ० २८८।

उजलत—सज्ञा स्त्री० [अ०] उतावली। जल्दी।

यौ०—उजलत प्रसद, उजलतवाज = उतावली करनेवाला। उजलतवाजी = शीघ्रता। उतावली।

उजलवाना—क्रि० सं० [हि० उजालना का प्रे० रूप] १ गहने या अस्त्र आदि का साफ करवाना। मैल निकलवाना। निखरवाना। २ उज्ज्वलित करना। जलाना।

उजला^१—वि० [सं उज्ज्वल, प्रा० उज्जल] [स्त्री० उजली] १ श्वेत। धोना। सफेद। २ स्वच्छ। साफ। निर्मल। भक्त। दिव्य।

मुहा०—उजला मुँह करना = गौरवान्वित करना। महत्व बढ़ाना। जैसे, उसने अपने कुल भर का मुँह उजला किया। उजला मुँह होना = (१) गौरवान्वित होना। जैसे, उनके इस कार्य से सारे भारतवासियों का मुँह उजला हुआ। (२) निरालंकार होना। जैसे, लाख करो, तुम्हारा मुँह उजला नहीं हो सकता। उजली समझ = उज्ज्वल बुद्धि, स्वच्छ विचार।

उजला^२—सज्ञा पुं० [हि० उजली = घोड़िन] घोड़ी।

उजलापन—सज्ञा पुं० [हि० उजला + पन (प्रत्य०)] सफेदी। स्वच्छता। निर्मलता।

उजलो—सज्ञा स्त्री० [हि० उजला] घोड़िन (स्त्री०)।

विशेष—मुमनमान स्त्रियाँ रात को घोड़िन का नाम लेना बुरा समझती हैं, इसे वे उसे 'उजली' कहती हैं।

उजवना^१—क्रि० अ० [सं उज्ज, प्रा० उज्जम, सं० उज् + यत्, प्रा० उज्जव] प्रयत्न करना। उद्यत होना। उद्यम करना। उ०—हैं उजऊ सू अज्ज, करो राजन अकय क्रम।—पृ० रा०, ६। १३३।

उजवालना^१—क्रि० सं० [सं उज्ज्वल] उज्ज्वलित करना। प्रकाशित करना। जलाना। उ०—(क) पंखी घर में पवण सूँ, वचै दीप दुतिवत। घर में उजवाली घणौ दीप हूत दरसत।—वांकी० ग्र०, भा० १, पृ० ६८। (ख) लवा प्राग अचभा भारी खास वेग ततकालू। प्रकट इकीसू मणिया छेद्या मुरति शब्द उजवालू।—राम०, धर्म०, पृ० ३६८।

उजवास—सज्ञा पुं० [सं उद्यस = अयत्न]। प्रयत्न। चेष्टा। तैयारी।

उजागर^१—वि० [उज् = ऊपर, अच्छी तरह + जागर = जागना, जलना, प्रकाशित होना। जैसे, उज्ज्वल स्वामने प्रति जागृ हीथ। प्रा० उज्जागर = जागरण अथवा सं उद्योतकर, प्रा० उज्जोग्रगर। स्त्री० उजागरी] १ प्रकाशित। जाज्वल्यमान्। दीप्तिमान्। जगमगाता हुआ। २ प्रभिद्ध। विख्यात। उ०—(क) जाववान जो वली उजागर सिंह मारि मणि लोन्ही। पर्वत गुफा वैठि अपने गृह जाय सुता को दीन्ही।—सूर (शब्द०)। (ख) सोई विजई विनई गुनसागर। तास सुजस उजागर॥—तुलसी (शब्द०)। (ग) वयो गुन रूप उजागरि त्रयलोक नागरि भूखन धारि उतारन लागी॥—मतिराम (शब्द०)। उ०—बधु वस तैं कीन्ह उजागर। भजेहु राम सोभा मुखसागर।—मानस। ६। ३३।

क्रि० प्र०—करना होना।

उजाड^१—सज्ञा पुं० [सं उत् + जड या जर अथवा उज्जवाल > उजार > उजाड] १. उजड़ा हुआ स्थान। ध्वस्त स्थान। गिरी पड़ी जगह। २ निर्जन स्थान। शून्य स्थान। वह स्थान जहाँ वस्ती न हो। ३. जंगल। वियावान। उ०—वडा

विस्तार।—विश्राम (शब्द०)। ४ उछलता हुआ कण। छीटा। उ०—आई खेलि होगी ब्रजगोरी वा किसोरी संग अग अग रगीन अगग सरसाइगो। कुकुम की मार वाप रगिति उछार उई बुक्का औ गुलाल लाल लाल वरसाइगो। रसखान (शब्द०)। ५ वमन। कै।

उच्चारना—क्रि० सं० [हि० 'उच्चारना' का प्रे० रूप] दे० 'उछालना'।

उछाल^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० उच्छाल] २ सहसा ऊपर उठने की क्रिया २ फलांग। चौकड़ी। कुदान। जैसे, हिरन की उछाल सबसे अधिक होती है।

क्रि० प्र०—भरना। मारना। लेना।

३ ऊपर उठने की हद या ऊँचाई।

उछाल^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० छवि, प्रा० छड्डि] उलटी। कै। वमन।

उछालछक्का—वि० [हि० उछाल + छक्का] व्यभिचारिणी। छिनाल।

उछालना—क्रि० सं० [सं० उच्छालन] १ ऊपर की ओर फेंकना।

उचकाना। २ प्रकट करना। प्रकाशित करना। उजागर करना। जैसे, तुम अपनी करनी से अपने पुरखों का खूब नाम उछाल रहे हो। ३. कलकित करना। वदनाम करने की चेष्टा करना। (वग्य)।

उछाला—सञ्ज्ञा पुं० [प्रा० उच्छाल, हि० उछाल] जोश। उवाल। दे० 'उछाल'।

उछाव^१—सञ्ज्ञा पुं० [स० उत्साह, प्रा० उच्छाह] उत्सव। उछाह। उ०—देश मालगिर हुबउ हो उछाव राजमती कउ रचउ बीवाह।—वी० रासो, पृ० १५।

उछावा^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० उछाव] उत्साह। हर्ष। आनन्द। उ०—देखि दरसा होय अधिक उछोव। कवीर सा०, पृ० ५६१।

उछाह—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उत्साह प्रा० उत्साह] [वि० उछाही] १ उत्साह। उमग। हर्ष। प्रसन्नता। आनन्द। उ० (क) छड़हि कुँवर मन करहि उछाह। आगे घाल जिन नहि काहू॥—जायसी (शब्द०)। (ख) ओर सब हरेखी हँसति गावति भरी उछाह। तुन्ही बहू विलखी फिरँ क्यों देवर कै व्याह।—विहारी र० ६०३। (ग) नाह के व्याह की चाह सुनी हिय माहि उछाह छवीली के छायो। पौढि रही पट ओढ़ि अटा दुख को मिस कै मुख वाल छिपायो।—मतिराम (शब्द०)। २ उत्सव। आनन्द की धूम। ३. जैन लोगों की रथयात्रा। उत्कठा। इच्छा। उ०—लकादाह देवे न उछाह रह्यो काहून को कहँ सब सचिव पुकारे पाँव रोपिहँ।—तुलसी ग्र० पृ० १८०।

उछाहित^१—वि० [सं० उत्साहित, प्रा० उच्छाहिय, हि० उछाह उछाह + इत (प्रत्य०)] उत्साही। उछाह से युक्त। उछाह भरा। उत्साह करनेवाला। उ०—वीर विजय दिन वीर भूमि के वीर उछाहित। प्रेमधन० भा० १, पृ० ३४६।

उछाही^१—वि० [हि० उछाह] उत्साह करनेवाला। आनन्द मनानेवाला।

उच्छिन्न^१—वि० [स० उच्छिन्न] दे० 'उच्छिन्न'।

उच्छिष्ट^१—वि० [सं० उच्छिष्ट—दे० 'उच्छिष्ट']

२-३

उछीड़ी^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० छीर = किनारा] जगह। छेद। अनावृत स्थान।

उछीनना^१—क्रि० सं० [सं० उच्छिन्न] उच्छिन्न करना। उखाड़ना। नष्ट करना। उ०—गने मीर वनवीर उछीने। पेलि मतग घाट उन लीने।—नाल (शब्द०)।

उछीर^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० छोर = किनारा] अवकाश। जगह। रत्र। अनावृत स्थान। उ०—देखि द्वार मीर पगदासी कटि बाँधी छीर कर नो उछीर करि चाहँ पद गाइए। देखि लीनो वेई, काहू दीनी पाँच सात चोट, कीनी धकाधकी, रिस मन मे न आइए॥—प्रियादास (शब्द०)।

उछेद^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उच्छेद] दे० 'उच्छेद'। उ०—निराकार तें वेद आदि भेद जाने नही, पडित करत उछेद, मने वेद के जग चले।—कवीर सा०, पृ० १४।

उछेदना^१—क्रि० सं० [सं० उच्छेदन] उच्छेद करना। नष्ट करना। प्रभावित करना। उ०—सत्य शब्द मन देई उछेदी। मन चीन्हे कोई विरले भेदी।—कवीर सा०, पृ० २१६।

उछोह^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उत्सव] उत्सव। उछाह। आनन्द। उ०—बाबा मंगलदास का रामचंद्र परमोह, पवराए गुरु पादुका कीये बहुत उछोह। सुदर ग्र०, भा० १, पृ० १२३।

उछछ^१—वि० [सं० उच्छ, प्रा० उच्छ = हीन] दे० 'ओछा'। उ०—बहु दिवस सोम नृप हुज सुपग। किम उछ वत कद्वी मुपंग।—पृ० रा० ८१४।

उछछप^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उत्सव, प्रा० उच्छव] दे० 'उत्सव'।

उछछरना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'उछलना'। उ०—मनो तरक्क विछछुरे मिलत चद उछछुरे। पृ० रा० २५१५५।

उछछारना^१—क्रि० सं० [हि०] दे० 'उछारना'। उ०—वीर मत्र उच्चार लोह ऊछिछन उछछारै।—पृ० रा० २४१ १८१।

उजक—सञ्ज्ञा पुं० [तु० उजक] शाही जमाने की बड़ी मुहर।

उजका^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० उजकना] त्रियडे और घास फूस का पुतला जो खेत में चिड़ियों को दूर रखने के लिये रखा जाता है। विजखा।

उजगी^१—वि० [उज्जगृत] जागी हुई। जागती रहनेवाली। उ०—वच उच्चरै वैन निसि की उजगी। मनो कोकिला भाप संगीत लग्यो।—पृ० रा० ६१४२८।

उजट^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उटज] झोडा। पर्याय ला।

उजड़ना—क्रि० प्र० [सं० अव—उ=नहीं + जड़ना=जानना अथवा देशी उज्जड] [वि० उजाड़] १ उखड़ना पुखड़ना। उच्छिन्न होना। ध्वस्त होना। २ गिर पड़ जाना। त्रिखरना। तितर बितर होना। जैसे,—यह घर एक ही बरसात में उजड़ जायगा। ४ बरबाद होना। तबाह होना। नष्ट होना। वीरान होना। उ०—(क) कई प्राणिशों के मर जाने से उनका घर उजड़ गया। (ख) यह गाँव उजड़ गया।

उजडवाना—क्रि० सं० [हि० उजडना का प्रे० रूप] किसी को उजाड़ने में प्रवृत्त करना।

उजड़ा—वि० [हि० उजड़ना] [वि० स्त्री० उजड़ी] १. उजड़ा हुआ।

उच्छ्वासी--वि० [स० उच्छ्वासिन्] [वि० स्त्री० उच्छ्वासिनी] १ साँस लेनेवाला । २ आह भरनेवाला । ३ मरने, विलीन होने या मुरझानेवाला (की०) । ४ कनेवाला (की०) । आगे आनेवाला (की०) । विभक्त (की०) ।

उछक^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० उत्सग, प्रा० उच्छग] दे० 'उत्सग' । देटी राजा भोज की उठई उछकि लेई अकमाय ।--वी० रासो, पृ० ५० ।

उछग^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उत्साङ्ग प्रा० उच्छग] २ गोद । क्रोड । कोरा । उ०—(क) स्तुति करि वे गए स्वर्ग को अमय हाथ करि दीन्हो, वधन छोरि नदवालक को लै उछग करि लीन्हो ।--सूर (शब्द०) (ख) जननी उमा बोलि तर लीन्ही, लेइ उछग सुंदर सिख दीन्ही । तुलसी (शब्द०) । २ समीप । अतिनिकट । उ०—जानि कुयवर प्रीति दुराई, मखि उछग वैठी पुनि जाई ।--मानस १।६८ । ३ हृदय ।

मुहा०—उछग लेना=आनिगन करना । हृदय से लगना । उ०—मैं हारी त्यो ही तुम हारी चरन चापि स्म मेढौंगी । सूर स्याम ज्यो उछग लई मोहि त्यो मैं हूँ हँसि मेढौंगी ।--सूर १० । ११४७ ।

उछल^७—वि० [सं० उत् + चल = उच्चल] उछलनेवाला । उ०—अलवैला सु उछलल अनभी अवनदा ।--पृ० रा० २५।२३६ ।

उछकना^७—क्रि० अ० [हि० उचकना, उचकना=चौकना] चौकना । चेतना । चेत में आना । उ०—डर न टरै, नीद न परै, हरै न काल विपाकु, छिनकु छाकि उछकै न फिरि खरो विपमु छवि छाकु ।--विहारी २०, दो० ३१८ ।

उछकना^७—वि० पुं० स्त्री० [हि० उचकना] १ जगह जगह उछलता फिरनेवाला । २ कुलटा । दुश्चरित्रा ।

उछटना—क्रि० अ० [सं० उत् + √चाट् + चल्] छूटना । गिरना । छटककर गिरना । उ०—हैजाम हुज्ज सिर उच्छटी, बीजलि के अवर अरी । क्रान्त मजि पु परि पला, मही अगि उछटी परी ।--पृ० रा०, १२ । १४८ ।

उजरग^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि० उछाह] उत्साह । उमग । उ०—सअत जली भलहल नप सागे, अष्ट निकट गायण उछरगे ।--रा० ह०, पृ० १८ ।

उछरना^७—क्रि० अ० [सं० उच्छलन] दे० 'उछलना' । उ०—जमत उढत ऐँडत उछरत पंजनी वजावत ।--प्रेमधत्त०, भा० १ पृ० ११ ।

उछरना^७—क्रि० स० [हि० उछाल + ना (प्रत्य०)] वमन या उल्टी करना ।

उछल कूद—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० उछलना + कूदना] १. खेलकूद । २ हलचल । अधीरता । चंचलता ।

मुहा०—उछल कूद करना=आवेग और उत्साह दिखाना । बढ़ बढ़कर बातें करना । जैसे,—बहुत उछल कूद करते थे, पर इस समय कुछ करते नहीं बनता ।

उछलना—क्रि० अ० [सं० उच्छलन] १ नीचे ऊपर होना । वेग से ऊपर उठना और गिरना । जैसे—समुद्र का जल पुरसो उछलता

है । २ झटके के साथ एकवारगी शरीर को क्षण भर के लिये इस प्रकार ऊपर उठा लेना जिसमें पृथ्वी का लगाव छूट जाय । कूदना । जैसे—उस लड़के ने उछलकर पेड़ से फल तोड़ लिया ।

विशेष—अत्यंत प्रसन्नता के कारण भी लोग उछलते हैं । जैसे, यह बात सुनते ही वह खुशी के मारे उछल पड़ा ।

३ अत्यंत प्रसन्न होना । खुशी से फूटना । जैसे, जब मैं उन्होंने यह खबर सुनी है तभी से उछल रहे हैं । ४ चिह्न पडना । उपटना । उमडना । जैसे, (क) उसके हाथ में जहाँ जहाँ बँत लगा है, उछल आया है । (ख) तुम्हारे माथे में चदन उछला नहीं । (ग) इस मोहर के अक्षर ठीक उछले नहीं । उ०—वैठ भँवर कुच नारँग लारी, लागे नख उछरै रंग धारी ।--जायसी (शब्द०) । ५ उतराना । तरना । उ०—(क) चोर चुराई तूँबडी गाडी पानी माहि । वह गाडे ते ऊठलै यो करनी छपनी नाहि । कवीर (शब्द०) । (ख) वीरो विन काज बूडि बूडि उछरत वह बडे बस विरद बडाई सो बडायती । निधि है निधान की परिधि प्रिय प्रान की सुमन की अवधि वृषमान की लडायती ।--देव (शब्द०) ।

उछलवाना—क्रि० स० [हि० उछलना का प्रे० रूप] उछालने में प्रवृत्त करना ।

उछला—वि० [हि० उचला] उचला । छिछला । कम गहरा ।

उछलाना—क्रि० स० [हि० उछालना का प्रे० रूप] दे० 'उछलवाना' ।

उछलित^७—वि० [सं० उच्छलित] दे० 'उच्छलित' । उ०—अति रसमत्त वदत नहि काहू उछलित रस आवेसा ।--भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ५३२ ।

उछव^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उत्सव, प्रा० उच्छव] दे० 'उच्चव' । उ०—प्रथम जामि निसि रज्ज कज्ज है मैं दिप्पत लगि, दुतिय जाम सगीत, उछव रस किति काव्य जमि ।--पृ० रा०, ६ । ११ ।

उछट्टना—क्रि० अ० [हि० उछाह में नाम०] दे० 'उछलना' । उ०—जत गरल कठ दीसदति वीय, जम चित प्रगट सासार नीय । सारग उछह तिन पान पानि, दिव तुग जाल जब जवनि मानि ।--पृ० रा०, ७ । ६ ।

उछाँट—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उच्चाट] दे० 'उजाट' । उ०—जिस वस्तु आदमी का दिल उछाँट होता है उस वस्तु उनको किसी की बात अच्छी नहीं लगती ।--श्रीनिवास ग्र०, पृ० ५८ ।

उछाँटना^७—क्रि० स० [सं० उच्चाटन, हि० उवाटना] उवाटना । उदासीन करना । विरक्त करना । उ०—हर किशोर ने हरमोविद की तरफ से आपका मन उछाँटने के लिये यह तदवीर की हो तो भी कुछ आश्चर्य नहीं ।--परीक्षागुरु (शब्द०) । २ उखाडना । उगाटना ।

उछाँटना^७—क्रि० स० [हि० छाँटना] छाँटना । चुनना । उ०—अकिल अरग सो ऊनरी विधिना दीन्ही बाँटि, एक अभागी रह गया एक न लई उछाँटि ।--कवीर (शब्द०) ।

उछार^७—स्त्री० पुं० [सं० उच्छाल] सहसा ऊपर उठने की क्रिया । उछाल । २ ऊपर उठने की हृद । ऊँचाई जहाँ तक कोई वस्तु उछल सकती है । ३ ऊँचाई । उ०—यक लख योजन भानु तें, है शशि लोक उछार । योजन अडतालिस सहस्र में ताको

जैसे—यहाँ के पीछे सब उच्छिन्न कर दिए गए । ३ निर्मूल ।
नष्ट । जैसे—चार पीछी के पीछे वह वश ही उच्छिन्न हो
गया । उ०—यदि नियम न हो, उच्छिन्न सभी हो कवके ।
—साकेत, पृ० २१३ ।

उच्छिन्नसन्धि—सञ्ज्ञा औ० [स० उच्छिन्नसन्धि] वह संधि जो उपजाऊ
या खनिज पदार्थों से परिपूर्ण भूमि का दान करके की जाय ।
उच्छिन्नोद्भूत—सञ्ज्ञा पुं० [स० उच्छिन्नोद्भूत] कुकुरमुत्ता या रामछता जो
वरसात में भूमि फोड़कर निकलता है । छत्रक ।

उच्छिष्ट^१—वि० [सं०] १ किसी के खाने से बचा हुआ । जिसमें खाने
के लिये किसी ने मुँह लगा दिया हो । किसी के आगे का बचा
हुआ (भोजन) । जूठा । जैसे—वह किसी का उच्छिष्ट भोजन
नहीं खा सकता ।

विशेष—धर्मशास्त्र में उच्छिष्ट भोजन का निषेध है ।

२ दूसरे का बर्ता हुआ । जिसे दूसरा व्यवहार कर चुका हो ।
३ जूठे मुँहवाला । जिसके मुख में जूठन लगी हो (को०) । ४
परित्यक्त । छोड़ा हुआ (को०) । ४. एक दिन पूर्व का ।
बासी (को०) ।

उच्छिष्ट^२—सञ्ज्ञा पुं० १ जूठी वस्तु । २ मधु । शहद ।

उच्छिष्ट गणेश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गणपति का एक तथोक्त रूप (को०) ।

उच्छिष्ट चाडालिनी—सञ्ज्ञा औ० [म०] मातंगी देवी (को०) ।

उच्छिष्ट भोक्ता—वि० [सं० उच्छिष्टभोक्तृ] उच्छिष्ट या परित्यक्त वस्तु
खानेवाला । नीच (व्यक्ति) (को०) ।

उच्छिष्ट भोजन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ जूठी वस्तु का भक्षण । जूठन
खाना । २. देवपित प्रसाद या पंचमहायज्ञ से बचे हुए अन्न का
भोजन (को०) ।

उच्छिष्ट भोजी—वि० [सं० उच्छिष्टभोजिन्] [वि० औ० उच्छिष्ट-
भाजिनी] उच्छिष्ट खानेवाला । जूठन खानेवाला ।

उच्छिष्टमोदन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मोम (को०) ।

उच्छोर्षक^१—वि० [सं०] उन्नत या उठे हुए सिरवाला (को०) ।

उच्छोर्षक^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ शिरोपवान । तकिया । २. उत्तमग
सिर (को०) ।

उच्छुल्क^१—वि० [सं० उत् + शुल्क] कौटिल्य के अनुसार विना चुगी
या महसूल का (माल, वस्तु) ।

उच्छुल्क^२—क्रि० वि० विना चुगी या महसूल दिए ।

उच्छुल्क—वि० [सं०] शुल्क । सूँचा हुआ (को०) ।

उच्छू—सञ्ज्ञा औ० [सं० उत् + श्वस् > उच्छ्वस् > उच्छ, उच्छ्व प०
उत्थू] एक प्रकार की खाँसी जो गले में पानी इत्यादि के
रुकने से आने लगती है । सुनसुनी ।

उच्छून—वि० [म०] १ बड़ा हुआ । २ फूटा हुआ । सूजा हुआ ।
स्यूल । ३ मारी ऊँचा (को०) ।

उच्छृंखल—वि० [सं० [सं० उच्छृंखल] १ जो शृंखलावद्ध न हो ।
क्रमविहीन । अडबड़ा । २ वधनविहीन । निरकुल । स्वेच्छा-

चारी । मनमाना काम करनेवाला । उ०—ग्रन्थ में नव-
योग्य उच्छ्रय, किन्तु वैद्या लावण्यपाश से नञ्ज सहस्र अचञ्चल ।
—ग्रन्थामिका, पृ० ५० । ३ उद्दृष्ट । अव्यवस्थित । किसी का
दबाव न माननेवाला ।

उच्छृंखलता—सञ्ज्ञा औ० [सं० उच्छृंखलता] उच्छृंखल होने का
भाव । निरकुलता । उ०—वह प्रविकार गहन-मुख-दुःख-गूह,
वह उच्छृंखलता उद्दाम ।—ग्रन्थ, पृ० ११० ।

उच्छ्रेय—वि० [सं०] उच्छ्रेय के योग्य । उखाड़ने के योग्य । निर्मूल
करने के योग्य ।

विशेष—राजनीति और धर्मशास्त्र में राजाओं के चार प्रकार के
शत्रु माने गए हैं । उनमें से उच्छ्रेय वह है जो व्यसनी और
सेना दुर्ग से रहित हो तथा जिसके वश में न हो ।

उच्छ्रेता—वि० [सं० उच्छ्रेतृ] उच्छ्रेय करनेवाला । नाशक । विध्वंसक ।

उच्छ्रेद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ उखाड़ पड़ा । विरूपण । खडन ।
२ नाश ।

क्रि० प्र०—करना । —होना ।

यो०—मूलोच्छेद ।

उच्छेदन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] २० 'उच्छेद' ।

उच्छेदवाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उच्छेद + वाद = सिद्धान्त] [वि० उच्छेद-
वादी] आत्मा के अस्तित्व को न माननेवाला दार्शनिक सिद्धान्त ।

उच्छेदित—वि० [सं० उच्छेद + इत (प्रत्यय)] १ खडित । २ उत्पा-
टित । ३ विनाशित । उ०—हम उन्मूलित हैं, उच्छेदित हम
जगती के ।—रजत०, पृ० ३२ ।

उच्छेदी—वि० [सं० उच्छेदिन्] उच्छेद या विनाश करनेवाला ।

उच्छेप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. अवशिष्ट । बचा हुआ । २ भोजन का
बचा हुआ अन्न (को०) ।

उच्छेपण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] २० 'उच्छेप' ।

उच्छोपण^१—वि० [सं०] शुष्क करनेवाला । सुखानेवाला । शोषक
(को०) ।

उच्छोपण^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सुखाना । रस खीचना (को०) ।

उच्छ्रय उच्छ्रय—सञ्ज्ञा औ० [सं०] १ उदय । उगना । २ उन्नयन ।
उत्थान । ३ उच्चता । ऊँचाई । प्रकर्ष । उत्कर्ष । ४ विकास
वृद्धि । ५ घमड़ । गर्व । ६ एक प्रकार का स्तन (को०) ।

उच्छ्रवसन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ साँस लेना । गहरी साँस लेना । ग्राह
भरना । २ शिथिलीकरण (को०) ।

उच्छ्रवसित—वि० [सं०] १ उच्छ्रवासयुक्त । २ जिसपर उच्छ्रवास
का प्रभाव पड़ा हो । ३ विकसित । प्रफुल्लित । फूला हुआ ।
४ जीवित । ५ बाहर गया हुआ । ६. आशा या मरौसे से
भरा हुआ । ढाढ़स बँधाया हुआ (को०) । ७ निश्चित । सतुष्ट ।
(को०) ।

उच्छ्रवास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० उच्छ्रवासित, उच्छ्रवसित, उच्छ्र-
वासी] १. ऊपर की खींची हुई साँस । उमास । २ साँस ।
श्वास । उ०—धूम उठे हैं शून्य में, उमड़ घुमड़ घनघोर, ये
किसके उच्छ्रवास से छापे हैं सब ओर ।—साकेत, पृ० २७१ ।

यो०—शोकोच्छ्रवास ।

३ ग्रंथ का विभाग । प्रकरण । ४ सात्वता (को०) । ५
प्रोत्साहन (को०) । ६ मरण (को०) । ७ हवा की नतिका
(को०) । ८. फैलाव । वृद्धि (को०) । ९ भाग ।

उच्छ्रवासित—वि० [सं०] १ थका हुआ । आत । २ विपुल । अधिक ।
३ २० 'उच्छ्रवासित' (को०) ।

श्रीर व्यजनयुक्त शब्द निकालना । जैसे (क) वह लडका शब्दों का ठीक ठीक उच्चारण नहीं कर सकता । (ख) बहुत से लोग वेद के मन्त्रों का उच्चारण सबके सामने नहीं करते ।

विशेष—गद्य में मनुष्य ही की बोली के लिये इस शब्द का प्रयोग होता है । मानव शब्द के उच्चारण के स्थान से संबद्ध मनुष्य हैं—उर, कठ, मूर्द्धा, जिह्वा, स्थरतन्त्री, काकल, अभिकाकल, जिह्वामूल, वत्सं, दांत, नाक, ओठ और तालु ।

२ यावर्ण्य शब्दों को बोलने का ढग । तलपफुज । जैसे—बगालियों का संस्कृत उच्चारण अच्छा नहीं होता ।

उच्चारणीय—वि० [सं०] उच्चारण करने योग्य । बोलने लायक । मुँह से निकालने लायक ।

उच्चारणा—क्रि० सं० [सं० उच्चारण] (शब्द) मुँह से निकालना । उच्चारण करना । बोलना । उ०—कैं मुख करि भूगन मिस अस्तुति उच्चारत । भारतेन्दु ग्र०, भा० १।पृ० ४५५ ।

उच्चारित—वि० [सं०] जिसका उच्चारण किया गया हो । बोला हुआ । कहा हुआ ।

उच्चार्य—वि० [सं०] दे० 'उच्चारणीय' ।

उच्चार्यमाण—वि० [सं०] जिसका उच्चारण किया जाय । बोला जानेवाला ।

उच्चावच—वि० [सं०] १ ऊँचा नीचा । २ ऊबड़ खावड़ । विपम । ३ छोटा बड़ा । ४ अनेक रूप या प्रकार का । विभिन्न । विविध [को०] ।

उच्चिगट—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उच्चिगट] १ भावाविष्ट या क्रुद्ध व्यक्ति । २ एक प्रकार का केकड़ा । ३ एक जाति का फ़िगुर [को०] ।

उच्चित—वि० [सं०] चूना हुआ । एकत्र किया हुआ । पुजीकृत ।

उच्चित्र—वि० [सं०] स्पष्ट रूप से बने हुए, विशेषतः उभरे हुए, चित्रों के साथ [को०] ।

उच्चूड, उच्चूल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ ध्वज या उसका ऊपर का भाग । २ ध्वज के ऊपरी हिस्से की सजावट [को०] ।

उच्चे—वि० [सं० उच्च वा उच्चे] ऊँचा । उ०—जल जत्र छुटे उच्चे सबध । हम्मीर रा०, पृ० ६३ ।

उच्चे—अव्य० [सं०] २ ऊँचा । नीचा का उलटा । २ ऊँचे स्वर से । जोर से । ३. बहुत अधिक । ज्यादा [को०] ।

विशेष—समास में या स्वतन्त्र रूप में इसका विशेषण की तरह भी प्रयोग होता है ।

उच्चैश्चरा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उच्चैश्चरस्] इन्द्र का सफेद घोड़ा जिसके खड़े खड़े कान और सात मुँह थे । यह समुद्र में से निकले हुए चौदह रत्नों में था । उ०—एक बेर सूर्यपुत्र उच्चैश्चरा अश्वारूढ होकर विष्णु के दर्शनार्थ वैकुण्ठ को गया । कबीर ग्र०, पृ० १८८ ।

उच्चैश्चरा—वि० ऊँचा सुननेवाला । बहुरा ।

उच्छटना—क्रि० अ० [सं०] उत्क्षिप्ति > प्रा०* उच्छट् > हि० उच्छड, उछल या उतु + शल] उछलना । छटना । पड़ना । गिरना । उ०—हेजाम हुज्ज सिर उच्छटी । बीजलि के अबर अरी । कनान भजि पुष्परि पला । मही अगि उछटी परी ॥—पृ० रा०, १३ । १४८ ।

उच्छत्त—वि० [सं०] १ दबा हुआ । लुप्त । २. खड़ा हुआ । आवरण

रहित । अनावृत (को०) । ३ नष्ट । विध्वस्त । उच्छिन्न । काटा हुआ [को०] ।

उच्छरना—क्रि० अ० [सं० उच्छेलन] दे० 'उछरना' और 'उछलना' । उ०—के बहुत रजत चकई चलत कै फुहार जल उच्छरत ।—भारतेन्दु ग्र०, भा० १, पृ० ४५६ ।

उच्छल—वि० [सं०] ऊपर की ओर उछलनेवाला । आगे की ओर बढ़नेवाला ३ लहरानेवाला । तरगायित । उ०—कुछ माँग रही इठना इठना, निज उच्छल गरिमा से निकला, चंचल कपोल की नृत्य कला ।—इत्यलम्, पृ० ६६ ।

उच्छलन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] उछलने या तरगायित होने की क्रिया या भाव । उ०—परम प्रेम उच्छलन इक, बढयो जु तन मन मैन । ब्रज वाला विरहिन भई, कहति चंद सौं वैन ॥—नद० ग्र०, पृ० १६२ ।

उच्छलना—क्रि० अ० [सं० उच्छलन] दे० 'उछलना' । उ०—सिंधु जल उच्छलयो गिरे पर्वत शिखर वृक्ष जड सो सर्व दिये उजारी । भारतेन्दु ग्र०, २ पृ० ४३७ ।

उच्छलित—वि० [सं०] १ उछलता हुआ । छलकता हुआ । तरगायित । २ हिलता डुलता हुआ । कपित [को०] । ३ गया हुआ । गत (को०) ।

उच्छव—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उत्सव, प्रा० उच्छव] उत्सव । उ०—बोली सर्व गोकुल की वाला । उच्छव कियो महा तत्काला ।—नद० ग्र०, पृ० २४१ ।

उच्छवृत्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० उच्छवृत्ति] दे० 'उछवृत्ति' ।

उच्छादन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अक्छादन] १ आच्छादन । ढकना । २. सुगंधित द्रव्यों को शरीर पर मलना । लेपना ।

उच्छाव—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उत्साह, प्रा० उच्छाह] १. उत्साह । उमग । २ धूमधाम ।

उच्छास—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उच्छ्वास, प्रा० उच्छास, ऊसास] दे० 'उच्छ्वास' ।

उच्छासन—वि० [सं०] प्रतिवध शासन में न रहनेवाला । अनियंत्रित । निरकुश [को०] ।

उच्छ्वासित—वि० [सं०] १ उच्छ्वासयुक्त । २ जिसपर साँस का प्रभाव पड़ा हो । ३ प्रफुल्लित ।

उच्छास—वि० [सं०] १ शास्त्रविरुद्ध । नियम या समाजविरुद्ध । २ शास्त्रविरोधी आचरण करनेवाला (को०) ।

यो०—उच्छासवर्ती = शास्त्रानुकूल आचरण न करनेवाला ।

उच्छाह—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उत्साह प्रा० उच्छाह] दे० 'उछाह', । उत्साह । उ०—उच्छाह सहित उठि सेख तब, आनंद मगल वपियउ ।—हमीर रा०, पृ० ५३ ।

उच्छिघन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उच्छिघ्न] नाक से साँस लेना । खरटि भरना [को०] ।

उच्छिख—वि० [सं०] १ चूड़ायुक्त, शिखासहित । २ जिसकी लपट ऊपर की ओर जा रही हो । ३ चमकीला । प्रकाशमान [को०] ।

उच्छित्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] विनाश । उच्छेद [को०] ।

उच्छिन्न—वि० [सं०] १. कटा हुआ । खटित । २. उखाड़ा हुआ ।

यो० २-उच्चाशय । उच्चकुल । उच्चकोटि । उच्चपद ।

विशेष--ज्योतिष मे मेष का सूर्य उच्च (दश अंशों के भीतर परम उच्च) वृष का चंद्रमा उच्च (६ अंशों के भीतर परम उच्च), मकर का मंगल उच्च (२८ अंशों के भीतर परम उच्च), कन्या का बुध उच्च (१५ अंशों के भीतर परम उच्च), कर्क का बृहस्पति उच्च (५ अंशों के भीतर परम उच्च), मीन का शुक्र उच्च (२७ अंशों के भीतर परम उच्च), तुला का शनि उच्च (२७ अंशों के भीतर परम उच्च), इसी प्रकार उच्चराशि से सातवीं राशि पर होने से वह नीच होता है, जैसे, मेष का सूर्य उच्च और तुला का नीच होता है ।

उच्चक--वि० [सं० उच्च + क] उच्चतम । सबसे अधिक ऊँचा ।

उच्चकित--वि० [सं०] दे० 'चकित' ।

उच्चक्षु--वि० [सं० उच्चक्षु] १. उपर की ओर देखनेवाला । २. अघ्रा । बिना आँख का [को०]

उच्चगिर--वि० [सं०] जोर से बोलनेवाला । जिसकी आवाज बुलंद हो [को०] ।

उच्चधन--संज्ञा पु० [सं०] छिपी हुई । वह हँसी जो चेहरे पर व्यक्त न हो [को०] ।

उच्चटा--संज्ञा स्त्री (सं०) १. एक प्रकार की घास । २. घमड़ [को०] । ३. अम्यास । परपरा [को०] । ४. गुजा [को०] । ५. एक प्रकार का लहसुन [को०] । ६. चुडाला [को०] । ७. भूम्या-मलकी [को०] । ८. नागरमुस्ता । नागरमोथा [को०] ।

उच्चतम^१--वि० [सं०] सबसे ऊँचा ।

उच्चतम^२--संज्ञा पु० संगीत मे एक बनावटी सप्तक जो 'तार' से भी ऊँचा होता है और केवल बजाने के काम मे आता है ।

उच्चतर--वि० [म०] अपेक्षाकृत अधिक ऊँचा ।

उच्चतर--संज्ञा पु० [सं०] १. ऊँचा या लंबा पेड़ । २. नारियल का पेड़ [को०] ।

उच्चता--संज्ञा स्त्री [म०] १. ऊँचाई । २. श्रेष्ठता । बड़ाई । बढापन । ३. उत्तमता ।

उच्चताल--संज्ञा पु० [सं०] भोज या पान गोष्ठी के अवसर पर होनेवाला नाच, गाना [को०] ।

उच्चल--संज्ञा पु० [सं०] दे० 'उच्चल' । उ०--और जब सावन बुनावन बरस घाया, उन्हें निज उच्च पर जब तरस आया ।--हिम० पृ० २ ।

उच्चन्यायालय--संज्ञा पु० [सं० उच्च + न्यायालय = अ० हाईकोर्ट] राज्य का सर्वोच्च न्यायालय जिसमें उन मुकदमों पर विचार होता है, जिनपर जिले का न्यायालय निर्णय दे चुकता है । गंभीर महत्व के कुछ अन्य मुकदमे भी इसमें ले जाए जाते हैं । उच्चय^१--संज्ञा पु० [म०] १. सपूज । समूह । ढेर । २. (पुष्पादि) चुनने की क्रिया । ३. नीवीवध । ४. अभिवृद्धि । अमृदय ५. नीवार धान्य । ६. त्रिभुज का उलटा भाग [को०] ।

उच्चय^२④--वि० [सं० उच्चय] दे० 'ऊँचा' । उ०--कवहु हृदय उमगि बहुत उच्चय स्वर गावें--सुंदर० ग्र०, भा० १, पृ० ३६ ।

उच्चयापचय--संज्ञा पु० [सं०] उत्थान और पतन [को०] ।

उच्चरण--संज्ञा पु० [सं०] [वि० उच्चरणीय, उच्चरित] १. कठ, तालु, जिह्वा आदि के प्रयत्न से शब्द निकलना । मुँह से शब्द फूटना । २. उपर या बाहर आना [को०] ।

उच्चरना④--क्रि० सं० [सं० उच्चरण] उच्चारण करना । बोलना । उ०--वेदमंत्र मुनिवर उच्चरहीं । जय जय जय सकर सुर करही ।--मानस, १।१०१ ।

उच्चरित^१--वि० [सं०] १. कथित । कहा हुआ । २. बाहर आया हुआ [को०] ।

उच्चरित^२--संज्ञा पु० मल । विष्ठा [को०] ।

उच्चल^१--वि० [सं०] गतिवान । चलायमान । उ०--तोता मारु माँह गुण, जेता तारा अम्भ । उच्चलचित्ता साजणै, कहि क्यउं दाखउं सम्भ ।--ढोला०, दू० ४८७ ।

उच्चल^२--संज्ञा पु० मन [को०] ।

उच्चलन्--संज्ञा पु० [सं०] गमन । रवाना होना । जाना [को०] ।

उच्चलित--वि० [सं०] १. जाने के लिये उद्यत । प्रस्थान करनेवाला । २. गया हुआ । ३. फटका हुआ [को०] ।

उच्चलव--संज्ञा पु० [सं० उच्चलव] दे० 'उच्चलव' । उ०--मनु उच्चलव के वधु, आवर्त चक्र सु कधु ।--हम्मीर रा० पृ० १२४ ।

उच्चाट--संज्ञा पु० [सं०] १. उखाड़ने या नोचने की क्रिया । २. चित्त का न लगना । अनमनापन । विरक्ति । उदासीनता ।

उच्चाटन--संज्ञा पु० [सं०] [वि० उच्चाटनीय, उच्चाटित] १. लगी या सटी हुई चीज को अलग करना । विश्लेषण २. उखाड़ना । उखाड़ना । नोचना । ३. किसी के चित्त को कहीं से हटाना । तत्र के ६ अभिचारों या प्रयोगों मे से एक । उ०--मारन मोहन उच्चाटन और स्तमन इत्यादि सब वन वेदमंत्रों मे है ।--कवीर ग्र०, पृ० ३४ । ४. चित्त का न लगना । अनमनापन । विरक्ति । उदासीनता ।

उच्चाटनीय--वि० [सं०] १. उखाड़ने योग्य । उखाड़ने के लायक । २. उच्चाटन प्रयोग के योग्य । जिसपर उच्चाटन प्रयोग हो सके ।

उच्चाटित--वि० [सं०] १. उखाड़ा हुआ । उखाड़ा हुआ । २. जिसपर उच्चाटन प्रयोग किया गया हो ।

उच्चना④--क्रि० म० [हि० उचाना] दे० 'उचाना' । उ०--दौरि राज पृथ्वीराज सु आयो, पमापमा अष्य उच्चायो ।--गृ० रा०, ४।४॥

उच्चार--संज्ञा पु० [सं०] १. कथन । शब्द मुँह से निकलना । बोलना । उ०--सकल सुख दैनहार तारु करो उच्चार कहत हों बार बार जिनि भुलावो । नद० ग्र०, पृ० ३२८ ।

क्रि० प्र०--करना । होना ।

यो०--गोत्रोच्चार । मत्रोच्चार । शाखोच्चार ।

१. मन्त्र पुरीष ।

उच्चारक--वि० [सं०] उच्चार करनेवाला । कहनेवाला [को०] ।

उच्चारण--संज्ञा पु० [सं०] [वि० उच्चारणीय, उच्चारित, उच्चार्य, उच्चार्यमाण] १. कठ, तालु, श्रोत्र, जिह्वा आदि के प्रयत्न द्वारा मनुष्यों का व्यक्त और विभक्त ध्वनि निकलना । मुँह से स्वर

उच्चारई- सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० उच्चार + आई (प्रत्य०)] १ उच्चारण करने की क्रिया या भाव । २ उच्चारण करने या कुछ बतलाने का पारिश्रमिक ।

उच्चलना—क्रि० अ० [हि०] दे० 'उच्चलना' ।

उच्चाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ऊँचाई' । उ०—सागर में गहिराई, मेरू में उच्चाई, रत्ननाथ में रूप की निकाई निरधारिण ।—मति० ग्र०, पृ० ३७२ ।

उच्चाकु^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० उच्चाट या सं० उत्तक = भ्राति] उच्चाट । उ०—नींदो जाइ, भूखी जाइ, जियहू में जाइ जाइ, उरहू में आइ आइ लागत उच्चाकु सो ।—गग०, पृ० १३ ।

उच्चाट—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उच्चाट] १ मन का न लगना । विरवित । उदासीनता । अनमनापन । उ०—(क) न जाने कथो आजकल चित्त उच्चाट रहता है । (ख) सुर स्वारथी मलीन मन, कीन्ह कुमत्र कुठाटु । रचि प्रपंच माया प्रबल, भय, भ्रम, अरति उच्चाटु ॥ —मानस, २।२६४ । (ख) प्रयग कुमति करि कपट सकेला । सो उच्चाट सब के सिर मेला ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) मोहन लला को सुन्यो चलत विदेस भयो मोहनी को चारु चित निपट उच्चाट मे ।—मतिराम (शब्द०) ।

उच्चाटन^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उच्चाटन] दे० 'उच्चाटन' । उ०—भारन मोहन उच्चाटन वसिकरन मनहि माहि पठिताई ।—कवीर श०, भा० २, पृ० २८ ।

उच्चाटना—क्रि० सं० [सं० उच्चाटन] उच्चाटन करना । हटाना । ध्यान तोड़ना । विरवत करना । जैसे—उसने हमारा चित्त उच्चाट दिया ।

उच्चाटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० उच्चाट, हि० उच्चाट + ई (प्रत्य०)] उच्चाट । उदासीनता । अनमनापन । विरवित । उ०—दामरयो लिखमण सुत दशरथ, दोऊ सुणै सिधारे दशरथ । दीह उच्चाटी कीधे दशरथ, दीधो प्राण पठाडी दशरथ ॥—रघु०, पृ० ११२ ।

उच्चाटी—वि० [हि० उच्चाट + ऊ (प्रत्य०)] १ उच्चाट करनेवाला । मन को उदास करनेवाला । २ उदास । अनमना ।

उच्चाडना—क्रि० सं० [हि० उच्चाडना] १ लगी या सटी हुई चीज को अलग करना । नोचना । २ उखाडना ।

उच्चाढी^३—वि० स्त्री० [सं० उच्चटित] उच्चाट । उदासीन । अनमना । विरवत । उ०—सखी सग की निरवति यह छवि भई व्याकुल मनमय की डाढ़ी । सूरदास प्रभु के रसवस सब भवन काज तें भई उच्चाढी ॥—सूर०, १०।७३६ ।

उच्चान—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ऊँचान' ।

उच्चाना^४—क्रि० सं० [हि०] १ उठाना । 'ऊँचाना' । उ०—मोहन मोहनी रस भरे । दरकि कचुकि, तरकि माला, रही धरणी जाइ । सूर प्रभु करि निरखि करुणा तुरत लई उच्चाइ ।—सूर (शब्द०) । २ ऊपर उठाना । ऊँचा करना । उ०—सुनि यह श्याम विरह भरे । मखिन तव मुज गहि उच्चाए वावरे कत होत । सूर प्रभु तुम चतुर मोहन मिलो अपने गोत ।—सूर (शब्द०) ।

उच्चापता, उच्चापति—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] १ बनिए का हिसाब किताब । उठान । लेखा । उ०—मूल दास सौ बहुत कृपाल ।

करै उच्चापति सौपै माल—प्रघ०, पृ० २ । जो चीज बनिए के यहाँ से उधार ली जाय ।

उच्चार^५—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उच्चार] कथन । उच्चारण । उ०—मानुस देही पाप का, किया न नाम उचार ।—दरिया० बानी, पृ० ८ ।

उच्चारन^६—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उच्चारण] दे० 'उच्चारण' ।

उच्चरना^७—क्रि० सं० [सं० उच्चारण] उच्चारण करना । मुँह से शब्द निकालना । बोलना । उ०—पकरि लियो छन माँझ असुर दल डारयो नखन विदारी । रुधिर पान करि माल आँत धरि जय जय शब्द उचारी ।—सूर (शब्द०) ।

उच्चरना^८—क्रि० सं० [सं० उच्चाटन] उखाडना । नोचना । उ०—(क) वृक्ष उचारि पेड़ि सो लीन्ही । मस्तक झार तार मुख दीन्ही ।—जायसी (शब्द०) । (ख) ऋषी क्रोध करि जटा उचारी । सो कृत्या भइ ज्वाला भारी ।—सूर (शब्द०) ।

उच्चालना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'उच्चाडना' ।

उच्चावा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उच्चावच] सपने में वकना । वरना ।

उच्चास—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ऊँचा + आस (प्रत्य०)] उँचाई । ऊँचास । उ०—जण अणाय गया तारण जग चित्रकूट गिर सिखर उच्चास ।—रघु०, पृ० १३० ।

उचित—वि० [सं०] [सञ्ज्ञा औचित्य] १ योग्य । ठीक । उपयुक्त । मुनासिब । वाजिव । २ परपरित (को०) । ३ सामान्य (को०) । ४ प्रशसनीय (को०) । ५ आनंदकर (को०) । ६ अनुकूल (को०) । ७ ज्ञात (को०) । ८ विश्वसनीय (को०) । ९ आह्वय (को०) । १० सुविधाजनक (को०) ।

यो०—उचितज्ञ = उचित या विहित का ज्ञाता ।

उचिष्ट^९—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उच्छिष्ट] दे० 'उच्छिष्ट' । उ०—(क) अनेक ग्रथ तिन वरन वत यों उचिष्ट मति में लहिए ।—पृ० रा०, १।१५ । (ख) सत उचिष्ट वार मन भेता । दुरलभ दीन दुहेला ।—घट०, पृ० २०१ ।

उच्चेडना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'उच्चाडना' ।

उच्चेरना, उच्चेलना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'उकेलना', 'उच्चाडना' । उ०—देह आप करि मानिया महा अज्ञ मतिमद । सुदर निकसै छीलकै जबहि उच्चेरे कद ॥—सुदर० ग्र०, भा० २, पृ० ७८० ।

उच्चैहा^{१०}—वि० [हि०] दे० 'उच्चौहा' ।

उच्चौहा, उच्चौहा^{११}—वि० [हि० ऊँचा + औहा (प्रत्य०)] [स्त्री० उच्चौही] ऊँचा उठा हुआ । उभड़ा हुआ । उ०—आजु कालि दिन दूक तें भई और ही भाँति । उरज उच्चौहैं दै उरु तनु तकि तिया अन्हाति ।—पदमाकर (शब्द०) ।

उच्चंड—वि० [सं० उच्चण्ड] १. चंड । उग्र । २ तेज । तीव्र । ३ अत्यंत क्रुद्ध । ४ उतावला (को०) ।

उच्चंद्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उच्चन्द्र] रात्रि का अंतिम भाग जब चंद्रमा नहीं रहता । रात्रिशेष (को०) ।

उच्च—वि० [सं०] १ ऊँचा । २. श्रेष्ठ । बड़ा । महान । उत्तम । जैसे,—(क) यहाँ पर उच्च और नीच का विचार नहीं है । (ख) उनके विचार बहुत उच्च हैं । ३ तार नाम का सप्तक जो शेष दोनो सप्तको से ऊँचा होता है (संगीत) । ४ प्रभाव-शील । ५. उच्चपदासीन (को०) ।

उचकन—संज्ञा पुं० [सं० उच्च + कृत् > हिं० उचक से उचकन] ईंट, पत्थर आदि का वह टुकड़ा जिसे नीचे देकर किसी चीज को ऊँची करते हैं। जैसे, चूल्हे पर चढ़े हुए वरतन के पदे के नीचे दिया हुआ खपडेल का टुकड़ा अथवा खाते समय थाली को एक ओर ऊँचा करने के लिये पेंदी के नीचे रखी हुई लकड़ी।

उचकना^१—क्रि० अ० [सं० उच्च = ऊँचा + करण = करना] १. ऊँचा होने के लिये पैर के पंजों के बल ऐंड़ी उठाकर खड़ा होना। कोई वस्तु लेने या देखने के लिये शरीर को उठाना और सिर ऊँचा करना। जैसे,—(क) दीवार की आड़ से क्या उचक उचककर देख रहे हो। (ख) वह लड़का टोकरे में से आम निकालने के लिये उचक रहा है। उ०—मुठि ऊँचे देखत वह उचका। दृष्टि पहुँच पर पहुँच न सका।—जायसी (शब्द०)। २. उछलना। कूदना। उ०—यो कहिकै उचकी परजक ते पुरि रही दूग वारि की बूंदे।—देव (शब्द०)।

उचकना^२—क्रि० सं० उछलकर लेना। लपककर छीनना। उठाकर चल देना। जैसे—जो चीज होती है तुम हाथ से उचक ले जाते हो।

संयो० क्रि०—ले जाना।

उचकना^३—संज्ञा पुं० उचकने की क्रिया या भाव।

उचका^४—क्रि० वि० [हिं० उचक या अचका] अचानक। सहसा। उ०—ज्यो हरनिन की होत हैंकाई, उचका उठै बाघ विरभाई।—लाल (शब्द०)।

उचकाना—क्रि० सं० [हिं० 'उचकना'] उठाना। ऊपर करना। उ०—...स्याम लियो गिरिराज उठाइ। सत्य वचन गिरि देव कहत हैं कान्हू लेहि मोहि कर उचकाइ।—सूर०, १०। ५७१।

उचकैयाँ^५—वि० [हिं० उचक + ऐया (प्रत्य०)] उछलद्युक्त। उचकता हुआ। उ०—जा गिर तें चढि कुलाच लीनी उचकैयाँ।—नंद० ग्र०, पृ० ३२२।

उचकौही^६—वि० [हिं० उचक + औही (प्रत्य०)] उचकनेवाली। उ०—लचकौहीं सो लक उर, उचकौही सो ऐन, विहसौहे से वदन मैं, लसत नचौहैं नैन।—मति० ग्र०, पृ० ४४६।

उचक्का—संज्ञा पुं० [हिं० उचकना से] [खी० उचक्की] १. उचककर चीज ले भागनेवाला। चाई। ठग। जैसे, मेलो में चोर उचक्के बहुत जाते हैं। २. बदमाश। लुच्चा। उठाईगीरा। उ०—बटपारी, ठग, चोर, उचक्का, गाँठिकट, लठवाँसी।—सूर०, १। १५६।

उचटना—क्रि० अ० [सं० उच्चाटन] १. उचड़ना। जमी हुई वस्तु का उखड़ना। उ०—लक लगाई दई हनुमत विमान वचे आत उच्चखी ह्वै। पाचि फटै उचटै बहुधा मनि रानी रटै पानी पानी दुखी ह्वै।—केशव (शब्द०)। २. अलग होना। पृथक् होना। छूटना। उ०—अति अगिनि भार भमार धुधार करि उचटि अगार भमार छायो।—सूर०, १०। ५९६। ३. भड़कना। विचकना। जैसे,—तुम्हारा गाहक उचट गया। ४. विरक्त होना। हटना। जैसे—जो उचटना (शब्द०) ५. खुलना। उ०—जागहु जागहु नदकुमार। रवि बहु चढ़यो रैनि सब निघटी उचवे सकल किवाय।—सूर०, १०। ४०८।

उचटाना^७—क्रि० सं० [सं० उच्चाटन] १. उचाड़ना। अलग करना। विखेरना। नोचना। २. पृथक् करना। छुड़ाना। ३. उदासीन करना। खिन्न करना। विरक्त करना। उ०—नैननि हरि कौं निठुर कराए। चुगली करी जाइ उन आगै हमतें वै उचटाए। सूर०, १०। २३३४। ४. भड़काना। विचकाना। उ०—चहती उचटायो, सोर मचायो, सब मिलि यासो बीचु हरै।—गुमान (शब्द०)।

उचटावना^८—क्रि० सं० [हिं० उचटाना] १. दे० 'उचटाना'।

उचडना—क्रि० अ० [सं० उच्चारण, प्रा० उच्चाडण] १. सटी या लगी हुई चीज का अलग होना। पृथक् होना। २. किसी स्थान से हटना या अलग होना। जाना। भागना। जैसे—कौआ, यदि हमारे मँया आते हो तो उचड़ जा (स्त्री०)।

विशेष—जब घर का कोई विदेश में रहता है तब स्त्रियाँ शकुन द्वारा उसके आने का समय विचारा करती हैं। जैसे, यदि कौआ खपडेल पर आकर बैठता है तो उससे कहती हैं कि यदि 'अमुक आते हो तो उचड़ जा'। यदि कौआ उड़ गया तो समझती हैं कि विदेश गया हुआ व्यक्ति शीघ्र आएगा।

उचना^९—क्रि० अ० [सं० उच्च से नामिक घातु] १. ऊँचा होना। ऊपर उठना। उचकना। उ०—अँगुरिन उचि, भर भीति दै, उलमि चितै चख लोल, हवि सो दुहँ दुहँनु के चमे चाच कपोल।—विहारी २०, दो० ५०५। २. उठना। उ०—(क) इतर नृपति जिहि उचत निकट करि देत न मूठ रिती।—सूर० (शब्द०)। (ख) औचक ही उचि ऐंचि लई गहि गोरे बड़े कर कोर उचाइकै।—देव (शब्द०)।

उचना^{१०}—क्रि० सं० [सं० उच्च] ऊँचा करना। ऊपर उठाना। उठाना। उ०—(क) हँसि ओठनु विच, कइ उचै, कियँ निचौहैं नैन, खरें अरे प्रिय के प्रिया लगी विरी मुख देंन। विहारी २०, दो० ६२७। (ख) भौह उचै आँचर उगटि मोरि मोरि मुहँ मोरि। नीठि नीठि भीतर गई दीठि दीठि सौ जोरि।—विहारी (शब्द०)।

उचनि^{११}—संज्ञा स्त्री० [सं० उच्च] उमाड़। उठान। उ०—(क) परी दृष्टि कुच उचनि पिया की वह सुख कट्यो न जाई। अगिया नील माँडनी राती निरखत नैन चुराई। सूर० (शब्द०)। (ख) चिबुक तर कठ श्रीमाल मोतीन छवि कुच उचनि हेम गिरि अतिहि लाजै। सूर० (शब्द०)।

उचरना^{१२}—संज्ञा पुं० [हिं० उछरना + अण] उड़नेवाला कीड़ा। पतंग। फतिगा।

उचरना^{१३}—क्रि० सं० [सं० उच्चारण] उच्चारण करना। बोलना। मुँह से शब्द निकालना। उ०—चढि गिरि शिखर शब्द इक उचरयो गगन उद्यो आघात, कपत कमठ शेष वमुधा नम रवि-रथ मयो उतपात।—सूर० (शब्द०)।

उचरना^{१४}—क्रि० अ० १. शब्द होना। मुँह से शब्द निकालना।

उचरना^{१५}—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'उचड़ना'।

उचरना^{१६}—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'उछलना'। उ०—ग्रांथु धरन हित दुष्ट मँजारी, मो परि उचरि परी दइमारी।—नंद० ग्र० पृ० १४८।

उघटा^१—वि० [हि० उघटना] उघटनेवाला । किए हुए उपकार को बार बार कहनेवाला । एहसान जतानेवाला । जैसे—नकटे का खाइए उघटे का न खाइए ।

उघटा^२—सज्ञा पुं० [स०] उघटने का कार्य ।

उघटना—क्रि० अ० [स० उद्घाटन प्रा० उग्घाडण] १ खुलना । आवरण का हटना । (आवरण के सबध मे) । २ खुलना । आवरण रहित होना । (आवृत के सबध मे) । उ०—सुपन मे हरि दरस दीन्हो, मैं न जाणयो हरि जात । नैन म्हारा उघड आया, रही मन पछतात ।—सतवाणी०, पृ० ७० । ३ नगा होना ।

मुहा०—उघडकर नाचना=खुलमखुल्ला लोकलज्जा छोडकर मनमाना काम करना ।

४ प्रगट होना । प्रकाशित होना । ५ भडा फूटना ।

मुहा०—उघड पडना=खुल पडना । अपने असल रूप को खोल देना । भेद प्रकट कर देना । दे० 'उघटना' ।

उघटनी—सज्ञा [स० उद्घाटिनी, हि० उघारिनी] ताली । कुजी । चाभी ।

उघरना^१—क्रि० अ० [स० उद्घाटन, प्रा० उग्घाडण] १ खुलना । आवरण का हटना (आवरण के सबध मे) । उ० (क) जैसे—मपनो सोइ देखियत तैसो यह ससार । जात विलय ह्वै छिनक माय मे उघरत नैन किवार ।—सूर० (शब्द०) । (ख) सूरदास जसुमति के आगे उघरि गई कलई ।—सूर० (शब्द०) । २ खुलना । आवरणरहित होना (आवृत के सबध मे) । उ०—उघरहि विमल विलोचन ही के ।—मानस, ६११ नगा होना ।

मुहा०—उघरकर नाचना=लोकलज्जा छोडकर खुलमखुल्ला मनमाना काम करना । उ०—(क) अब हौं उघरि नच्यो चाहत हौं तुमहि विरद विन करिहौं ।—सूर०, (विनय) १३४ । (ख) दुविधा उर दूरि भई गई मति वह काँची । राधा तैं आपु विवस भई उघरि नाँची ।—सूर, १०१ १६१० । ४ प्रकट होना । प्रकाशित होना । उ०—(क) छती नेहु कागर हिये भई लखाइ न टाँकु । विरह तचें उघरघौ सु अब सेढुड कैसे आँकु ।—विहारी २०, दो० ४५७ । (ख) ज्यो ज्यो मद लाली चढै त्यो त्यो उघरत जाय ।—विहारी (शब्द०) । ५ असली रूप मे प्रकट होना । असलियत का खुलना । भडा फूटना । उ०—(क) चरन चोच लोचन रगो चलो मराली चाल । छीर नीर विवरन समय बक उघरत तेहि काल ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) उघरहि अत न होइ निवाह । कालनेमि जिमि रावन राह ॥—मानस, ११७ । (ग) दाई आगे पेट दुरावति, बाकी बुद्धि आजु मैं जानी । हम जातहि वह उघरि परंगी दूध दूध पानी सो पानी—सूर०, १०१७२३ ।

उघरनी—सज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'उघनी' ।

उघरानी—सज्ञा स्त्री [स० उदग्रहण *अप० उगहरण] दे० 'उगाही' ।

उ०—म्हारी । शगरी उघराणी डूब जाती ।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ५७ ।

उघरारा^१—सज्ञा पुं० [हि० उघड़ना, उघरना] [स्त्री० उघरारी] खुला

हुआ स्थान । उ०—(क) पावस वरपि रहे उघरारें, सिसिर समय वसि नीर मझारें ।—पद्माकर (शब्द०) । (ख) रग गयो उखरि कुरग भयो परे परे, डारे उघरारे मारे फूक के उडत है । काशी राम राम सो परशुराम ऐसो कहतो तोरते धनुष ऐसे ऐसे बलकत है ।—हनुमन्नाटक (शब्द०) ।

उघरारा^२—वि० खुला हुआ । खुला रहनेवाला ।

उघरावना—क्रि० स० [हि०] दे० 'उगाहना' । उ०—अटक गोपी मही दाण उघरावजै पावजै अघर रस गोरधन पास ।—बाँकी ग्र० अ० ३, पृ० ११६ ।

उघाई—सज्ञा स्त्री [हि० उगाही] दे० 'उगाही' । उ०—माडे और उघाई आदि की भूली भुलाई रस्मो को लोग ऊपर चट कर जाते थे ।—श्रीनिवास० ग्र०, पृ० ३७४ ।

उघाडना—क्रि० स० [सं० उद्घाटन, प्रा० उग्घाडण, उघाडण] १ खोलना । आवरण का हटना (आवरण के सबध मे) । २ खोलना । आवरणरहित करना (आवृत के सबध मे) । ३ नगा करना । ४ प्रकट करना । प्रकाशित करना । ५ गुप्त बात को खोलना । भडा फोडना ।

उघाना^१—क्रि० स० [सं० उद्ग्रहण] 'उगाहना' । उ०—सो तहाँ वंणवन सो जाइकै मिलंगो तव वंणव तोको भेंट उघाय देखे ।—दो सो बावन, भा० २, पृ० ११६ ।

उघार^१—सज्ञा पुं० [हि० उघारना] उघारने की क्रिया या भाव । उघार^२—सज्ञा पुं० [हि० ओहार] परदा । आवरण ।

उघारना^१—क्रि० स० [सं० उद्घाटन, प्रा० उग्घाडण] १ खोलना । ढाँकनेवाली चीज को दूर करना (आवरण के सबध मे) । उ०—आवत देखहि विषय वयारी । ते हटि देहि कपाट उघारी ॥—मानस, ७११८ । २ खोलना । आवरणरहित करना । नगा करना (आवृत के सबध मे) । उ०—(क) तव शिव तीसर नयन उघारा, चितवत काम भयेउ जरि छारा ।—मानस, ११८७ । (ख) विदुर शस्त्र सब तही उतारी, चलयो तीरथनि मुड उघारी ।—सूर० (शब्द०) । (ग) मनहुँ काल तरवारि उघारी ।—तुलसी (शब्द०) । ३ प्रकट करना । प्रकाशित करना । ४ कुआँ खोदने के लिये जमीन की पहली खोदाई ।

उघारा—वि० [हि० उघारना] उघडा हुआ । आवरणहीन । नंगा । निर्वस्त्र ।

उघेडना^१—क्रि० स० [हि०] दे० 'उघाडना' ।

उघेलना^१—क्रि० स० [हि० उघारना] खोलना । उ०—कित तीतिर वन जीभ उघेना । सो कित हेकरि फाँद गिउँ मेला ।—जायसी ग्र०, पृ० २८ ।

उचत—सज्ञा पुं० [हि० उचाना=उठाना, लेना] ऊपर ही ऊपर लेन देन करना । ऊपर ही ऊपर सामान्य लिखापढ़ी पर धन लेना ।

उचतखाता—सज्ञा पुं० [हि० उचत+खाता] वही या पत्र मे वह खाता जिसमे उचत मे दिया गया धन लिखा जाता है ।

उच^१—वि० [सं० उच्च] दे० 'उच्च' । उ०—कसे कचुकी मैं दुवौ उच कुच करत विहार, गुमज के गजकुम के गरभ गिरावन-हार —सं० सप्तक, पृ० ३५३ ।

उगैरा—प्रत्य० [हि०] दे० 'वगैरह'। उ०—मारी अगै उगैरा भारत,
हेकण जीम प्रताप हुवा।—वांकीदास ग्र०, ३। १०३।

उग(उ)—वि० [स० उग्र, प्रा० उग] दे० 'उग्र'। उ०—तजो अग
उग असेप सुमाव। करो सव उपपर क्षोभ सुचाव॥—हम्मीर
रा०, पृ० ८।

उगना(उ)—क्रि० अ० [स० उद्गमन, प्रा० उगमण, उगवण, उगण]
दे० 'उगना'। उ०—पच्छिम सूरज उगवै, उलटि गंग वह
नीर।—हम्मीर रा०, पृ० ५७।

उगरना(उ)—क्रि० अ० [स० उद्गरण] दे० 'उगरना' उ०—इते
उगरे कदल चद कव्वी। पृ० रा०, २५। ७६४।

उगार(उ)—संज्ञा पुं० [स० उद्गार, प्रा० उग्गार] दे० 'उद्गार'।

उग्गाहा—संज्ञा पुं० [स० उद्गाया, प्रा० उग्गाहा] आर्या छंद के
भेदों में से एक। इसका दूसरा नाम गीति भी है। इसके
विषम चरणों में १२-१२ मात्राएँ और सम चरणों में
१८-१८ मात्राएँ होती हैं। विषम गणों में जगण न
होना चाहिए। उ०—रामा रामा रामा, आठो जामा जगो
यही नामा। त्यागो सारे कामा पैहो अत हरी जु को घामा
(शब्द०)।

उग्र^१—वि० [म०] १ प्रचंड। उत्कट। २ तेज। तीव्र। ३. कडा।
प्रबल। ४ घोर। रोद्र। ५ कोपनशील। उ०—कोई उग्र कोई
क्षुद्र कहावै कोई जीव कोई नरिपर खावै।—कवीर सा०, पृ०
६। ३। ६ उच्च (को०)। ७ परिश्रमी (को०)।

उग्र^२—संज्ञा पुं० [को० उग्रा] १ महादेव। रुद्र। २ वत्सनाग विप।
वच्छनाग जहूर। ३ क्षत्रिय पिता और शूद्रा माता से उत्पन्न
एक सकर जाति। ४ उग्र सज्ञक पाँच नक्षत्र अर्थात् पूर्वा-
फाल्गुनी, पूर्वाषाढ़, पूर्वाभाद्रपद, मघा और भरणी। ५ सहजन
का पेड़। मुनगा। ६ केरल देश। ७ एक दानव का नाम।
८ धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। ९ विष्णु। १०। सूर्य। ११।
रोद्र रस (को०)। १२ वायु। पवन (को०)।

उग्रक—वि० [स०] वीर। शक्तिशाली (को०)।

उग्रकर्मा—वि० [स० उग्रकर्मन्] भयकर काम करनेवाला। क्रूरकर्मा
(को०)।

उग्रकांड—संज्ञा पुं० [स० उग्रकाण्ड] करैला।

उग्रगध^१—संज्ञा पुं० [स० उग्रगन्ध] १. लहसुन। २. कायफल। ३.
हींग। ४. बवंरी। ममरी। ५. चपा।

उग्रगध^२—वि० [स०] तीव्र गधवाला। तेज महकनेवाला।

उग्रगधा—संज्ञा स्त्री० [सं० उग्रगन्धा] १ अजवायन। २ आजमोदा
३ वच। ४ नकछिकनी।

उग्रचंडा—संज्ञा स्त्री० [स० उग्रचण्डा] दुर्गा (को०)।

उग्रचारिणी—संज्ञा स्त्री० [स०] दुर्गा (को०)।

उग्रज—संज्ञा पुं० [सं०] कस (को०)।

उग्रजाति—वि० [स०] नीच वंश में उत्पन्न। जारज (को०)।

उग्रता—संज्ञा स्त्री० [स०] तेजी। प्रचंडता। उद्दता। उत्कटता। उ०—
२-२

इधर उग्रों को उग्रता की टेव सी पड गई।—प्रेमघन०, भा०
२, पृ० ३०६।

उग्रतारा—संज्ञा स्त्री० [स०] एक देवी (को०)।

उग्रतेजा—वि० [स० उग्रतेजस्] प्रचंड तेजस्वी। भीषण तेज से युक्त
(को०)।

उग्रदंड—वि० [स० उग्रदण्ड] कठोरतापूर्वक शासन करनेवाला।
कठोर। क्रूर। निर्दयी (को०)।

उग्रदर्शन—वि० [स०] जो देखने में भयकर या डरावना हो (को०)।

उग्रधन्वा—संज्ञा पुं० [स० उग्रधन्वन्] १ इन्द्र। २ शिव।

उग्रनासिक—वि० [स०] जिसकी नाक बड़ी हो (को०)।

उग्रपथी—वि० [सं० उग्र + हि० पंथी] उग्र विचारोवाला। क्रान्तिकारी
विचारोवाला।

उग्रपुत्र^१—वि० [स०] शक्तिशाली वंश में उत्पन्न होनेवाला (को०)।

उग्रपुत्र^२—संज्ञा पुं० [स०] कार्तिकेय (को०)।

उग्ररेता—संज्ञा पुं० [स० उग्ररेतस्] रुद्र का एक रूप (को०)।

उग्रवादी—वि० [स० उग्र + वादिन्] दे० 'उग्रपथी'।

उग्रवीर्य—संज्ञा पुं० [स०] हींग।

उग्रशेखरा—संज्ञा स्त्री० [स०] शिव के मस्तक पर रहनेवाली गंगा।

उग्रसेन—संज्ञा पुं० [स०] १ मयुरा का राजा, कंस का पिता। २
राजा परीक्षित का एक पुत्र।

उग्रह—संज्ञा पुं० [स० उद्ग्रह] ग्रहण से मुक्त होने का भाव।
मोक्ष।

उग्रहना(उ)—क्रि० स० [हि० उग्रह] छोड़ना। मुक्त करना। त्यागना।
उगलना।

उग्रा—संज्ञा स्त्री० [स०] १ दुर्गा। महाकाली। २ अजवायन। ३.
वच। ४ नकछिकनी। ५ उग्र स्वभाव की स्त्री। ६ धनिया।
७ कर्कशा स्त्री। ८ निपाद स्वर की दो श्रुतियों में से
पहली श्रुति।

उघटना—क्रि० अ० [स० पा० उत्कथन, उक्कथन अथवा उद्घाटन,
पा० उग्घाटन] १ संगीत में ताल की जाँच के लिये मात्राओं
की गणना करके किसी प्रकार का शब्द या संकेत करना।
तान देना। सम पर तान तोड़ना। उ०—(क) सग गोप गोधन-
गंव लीन्हें, नागा गति कौतुक उपजावत। कोउ गावत कोउ
नृत्य करत कोउ उघटत कोउ करताल वजावत। सूर०, १०।
४७६। (ख) उघटत स्याम नृत्यति नारि। घरे अघर अपंगउपजै
लेत है गिरधारि।—सूर०, १०। १०५६। २ गई बीती बात
को उठाना। दबी दवाई बात को उभाड़ना। कभी के किए
अपने उपकार या दूसरे के अपराध को बार बार कहकर ताना
देना। जैसे (क) नकटे का खाइए उघटे का न खाइए। (ख) जो
बात भूल चूक से एक बार हो गई उसे क्या बार बार उघटते
हो। ४ किसी को भला बुरा कहते कहते उसके वाप दादे को
भी भला बुरा कहने लगना। उ०—सब दिन कौ मरि लेउँ आबु
ही तब छाडी मैं तुमको। उघटति हौ तुम मातु पिता लौ
नहि जानति हौ हमको। सू० १०। १५०८।

होना । उ०—उगरीय जीय मानिकक तन्न ।—पृ० रा० ५७ । २१७ ।

उगलना—क्रि० स० [स० उदगरण, पा० प्रा० उगिलन] १. पेट में गई हुई वस्तु को मुँह से बाहर निकालना । कै करना । जैसे—जो खाया पिया था सो सब उगल दिया । २. मुँह में गई वस्तु को बाहर थूक देना जैसे—देखो निगलना मत, उगल दो । ३. पचाया माल विवश होकर वापस करना । जैसे, यार माल तो पच गया था, पर ऐसे फेर में पड़ गए कि उगल देना पड़ा । ४. किसी बात को पेट में न रखना । जो बात छिपाने के लिये कही जाय उसे प्रकट कर देना । जैसे—यह बड़ा दुष्ट मनुष्य है, जो कुछ यहाँ देखता है सब जाकर शत्रुओं के सामने उगलता है । ५. विवश होकर कोई भेद खोल देना । दवाव या सकट में पड़कर गुप्त बात बता देना । जैसे—जब अच्छी मार पड़ेगी, तब आप ही सब बातें उगल देगा ।

स० क्रि०—देना ।—पडना ।

६. बाहर निकालना । जैसे—ज्वालामुखी पहाड़ आग उगलते हैं । मुहा०—जहर उगलना=ऐसी बात मुँह से निकलना जो दूसरे को बहुत बुरी लगे या हानि पहुँचावे ।

उगलवाना—क्रि० स० [हि० गलना] दे० 'उगलाना' ।

उगलाना—क्रि० स० [हि० 'उगलना' का उ० रूप] १. मुख से निकलवाना । २. इकठ्ठा कराना । दोष को स्वीकार कराना । ३. पचे हुए माल को निकलवाना । ४. डर, दवाव आदि से विवश कर भेद खलवाना ।

उगवना—क्रि० स० [हि० उगना] १. उगाना । उदय करना । २. उत्पन्न करना ।

उगसाना—क्रि० स० [हि०] दे० 'उकसाना' ।

उगसारना—क्रि० स० [हि० उकसाना] वधान करना । कहना । प्रकट करना । बोलना । उ०—सगै राजा दुख उगसारा । जियत जीव ना करी निरारा ।—जायसी (शब्द०) ।

उगहन—सच्चा पु० [हि० उगना] उदित या प्रकट होने का भाव । उ०—अगहन गहन समान, गहिमत मोर शरीर ससि । दीजै दरसन दान, उगहन होय जु पुन्यवल ।—नद० ग्र०, पृ० १६६ ।

उगहना—क्रि० प्र० [सं० उग्रह] दे० 'उगना' । उ०—मारु सी देखी नहीं, अणमुख दोष नयणाँह । थोड़ो सो भोले पडइ, दणयर उगहनाँह ।—ढोला०, दू० ४७८ ।

उगहना—क्रि० स० [हि०] "उगाहना" ।

उगहनी—सच्चा स्त्री [हि० उगाहना] उगाहने में प्राप्त किया गया द्रव्य या वस्तु । चदा । उगाही ।

उगाना—क्रि० स० [हि० उगना] १. जनाना । अकुरित करना । (पीछा या अन्न आदि) उत्पन्न करना । २. उदय करना । प्रकट करना । उ०—ज्यो जल मधि सो लहिर उगाई, तिमि परमातम आतम आई ।—कबीर सा०, पृ० १००० ।

उगाना—क्रि० स० [स० उद्घात प्रा० उग्घात्र] मारने के लिये कोई वस्तु उठाना । तानना । उग्राना ।

उगार—सच्चा पु० [हि०] १. दे० 'उगाल' । २. धीरे धीरे निचुड़कर इकठ्ठा हुआ पानी । ३. निचोड़ा हुआ पानी । ४. कपड़ा रंगने

पर वचा हुआ रंग जो फेंके दिया जाता है । ५. मुख में चवाई हुई वस्तु । उ०—सो ताही समै श्री गुसाई जी आप अपने चबित उगार हरिजी को दिए ।—दो सो वावन०, भा० १, पृ० १५० ।

उगारना—क्रि० स० [स० उद्धार] उद्धार करना । रक्षा करना । उवारना । वचाना । उ०—मवै दुष्ट भजे सुसेवक उगारे । करे काम निज धाम नरहर पधारे ।—पृ० रा०, २।२१२ ।

उगारना—क्रि० स० [स० उद्गलन] कुँए की मिट्टी या खराब पानी आदि निकालकर सफाई करना ।

उगारना—क्रि० स० [हि०] दे० 'उकासना' ।

उगाल—सच्चा पु० [स० उद्गाल, पा० उग्गाल] १. पीक । थूक । खखार । उ०—अभी उगाल दास को दीजे, जन को परम कल्याण ।—धरम०, पृ० ३० । २. पुराने कपड़े (ओ की बोली) ।

उगालदान—सच्चा पु० [हि० उगाल + फा० दान (प्रत्य०)] थूकने या खखार आदि गिराने का व्रतन । पीकदान । उ०—आप जो मेरी डाढ़ी को अपना उगालदान समझते थे और मुझे ठीक इस तरह ठोकर मारते थे जैसे कोई अपनी देहली पर अज्ञान कुत्ते को मारता है ।—भारतेंदु ग्र०, १, पृ० ५६७ ।

उगाला—सच्चा पु० [हि० उगाल] एक प्रकार का कीड़ा जो अनाज की फसल को हानि पहुँचाता है ।

उगाला—सच्चा स्त्री [हि० उगाल] वह जमीन जो सर्वदा पानी से तर रहे । पनमार ।

उगाहना—क्रि० स० [स० उद्ग्रहण, प्रा० उग्गाहण] १. वसूल करना । बहुत से आदमियों से स्वीकृत नियमानुसार अलग अलग धन आदि लेकर इकठ्ठा करना । उ०—(क) वह चपरासी चदा उगाहने गया है । (ख) लेखी करि लीजै मन-मोहन दूध दही कछु खाहु । सदाखन तुम्हरेहि मुखलायक, लीजै दान उगाहु ।—सूर०, १० । १५६५ । २. चदा करना । सार्वजनिक कार्य के लिये द्रव्य एकत्रित करना ।

संयो क्रि०—डालना ।—देना ।—लेना ।

उगाहो—सच्चा स्त्री [हि० उगाहना] १. भिन्न भिन्न लोगों से उनके स्वीकृत नियमानुसार अन्न धन आदि लेकर इकठ्ठा करने का कार्य । रुपया पैसा वसूल करने का काम । वसूली । २. वसूल किया हुआ रुपया पैसा । ३. जमीन का लगान । ४. एक प्रकार का रुपए का लेन देन जिसमें महाजन कुछ रुपए देकर श्रद्धा से तब तक महीने महीने या सप्ताह सप्ताह कुछ वसूल करता रहता है जब तक उसका रुपया व्याज सहित वसूल न हो जाए । ५. चदा आदि के रूप में एकत्रित किया गया द्रव्य ।

उगिलना—क्रि० स० [स० उद्गिरण प्रा० उगिरण] दे० 'उगलना' उ०—ब्राह्मण ज्यो उगिल्यो उरगारि हों त्यो ही तिहारे हिये न हितहों ।—तुलसी ग्र०, पृ० २२२ । १ ।

उगिलवाना—क्रि० स० [हि० उगिलना का प्रे० रूप] दे० उगलवाना ।

उगिलाना—क्रि० स० [हि० उगिलना का प्रे० रूप] दे० 'उगलाना' ।

दाहिने पैर को अपने दाहिने पैर में फँसाकर कमर तक ऊपर उठाते हैं और अपना दाहिना हाथ विपक्षी की पसलियों से ले जाकर उसकी गर्दन पर चढ़ाते हैं और दबाकर चित करते हैं।

४. विपक्षी को गिराने के लिये उसकी टाँगों में घुस जाना।
मुहा०—उखाड़ पछाड़=(१) बदल बदल। इधर का उधर। उलट पलट। उ०—इसका उखाड़ पछाड़ ठीक नहीं। प्रेमघन०, भा० २, पृ० २११ (२) इधर की उधर लगना। अगाई लुतरी चुगलखोरी।

उखाड़ना—क्रि० स० [हि० उखड़ना] किसी जमी, गद्दी या बँठी वस्तु को स्थान में पृथक् करना। उत्पाटन करना। जैसे (क) हाथी ने बाग के कई पेड़ उखाड़ डाले। (ख) उसने मेरी अँगूठी का नगोना उखाड़ दिया। २ अंग के जोड़ से अलग करना। जैसे दुश्मनी में एक पहलवान ने दूसरे की कलाई उखाड़ दी। ३ जिम कार्य के लिये जो उद्यत हो उसका मन सहसा फेर देना। भड़काना। विचकाना। जैसे तुमने आकर हमारा गाहक उखाड़ दिया। ४. तितर बितर कर देना। जैसे, उस दिन मेहने मेला उखाड़ दिया। ५. हटाना। टालना। जैसे, उसे वहाँ से उखाड़ो तब तुम्हारा रंग जमेगा। ६ नष्ट करना। ध्वस्त करना। उ०—मुजाब्राँ से बैरियों को उखाड़नेवाले दिनीप।
—लक्ष्मण (शब्द०)।

मुहा०—कान उखाड़ना=(१) किसी अपराध के दंड में जोर से कान मलना या खींचना। कान गरम करना। (२) धमकाना। विशेष—विशेषकर शिक्क और माँ बाप नटखट लड़कों के कान मलते हैं।

गड़े मुँह उखाड़ना=पुरानी बातों को फिर से छेड़ना। गई बीती बात को उमाड़ना। पैर उखाड़ देना=स्थान से विचलित करना। हटाना। भगाना। जैसे—सिक्खों ने पठानों के पैर उखाड़ दिए।

उखाड़ू—वि० [हि० उखाड़ना] १ उखाड़नेवाला। २ चुगलखोर। इधर की उधर लगानेवाला।

उखारना(उ)—क्रि० स० [हि० उखाड़ना] १ 'उखाड़ना'। उ०—लोन्हो उखारि पहार बिसाल चल्थो तेहि काल बिलव न लायो। तुलसी ग्र०, पृ० १९६।

उखारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० ऊख] ईख का खेत। उ० तप मृगसिरा विलखे चारि। वन बालक ओ भैंस उखारि। (शब्द०)।

उखालिया—सञ्ज्ञा पुं० [स० उप + काल] प्रातःकाल का भोजन। सहरगही। मरगही।

उखाव—सञ्ज्ञा पुं० [हि० उख] १ उखारी।

उखेड—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] १ 'उखाड़'।

उखेड़ना—क्रि० स० [हि०] १ 'उखाड़ना'। उ० (क) मेरे संवाद जालिम ने उखेड़े वालों पर अपने। कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६६२। (ख) काम हो कान के उखेड़े जो। तो घुमेडें न पेट में छूरी। चुपते०, पृ० ५४।

उखेड़वाना—क्रि० स० [हि० उखड़ना का प्रेर० रूप] उखड़ने के लिये नियुक्त करना। उखड़वाना।

उखेरना(उ)—क्रि० स० [हि० उखेड़ना] नोचकर अलग करना। उ०—(क) इतनी सुनत जसोदानदन गोवर्धन तन हेरी। लियो उठाइ, सैल भुज गहि के, महि तें पकरि उखेरी। सूर०, १०। ८६८। (ख) ज्यों दिवाल गीजी पर काँकर डारत ही जु गडे रे। मूर लटकि लागे अँग छवि, पर निठुर न जात उखेरे। सूर०, १०। २२२३।

उखेरा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ईक्ष] ईख। ऊख।

उखेलना(उ)—क्रि० स० [सं० उल्लेखन] उरेहना। लिखना। तस्वीर खींचना। उ०—चचा चित्र रचो बहु भारी चित्रही छोटि चेतु चित्रकारी। जिन यह चित्र विचित्र उखेला। चित्र छोटि तू चेत चितेला।—कवीर (शब्द०)।

उख्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ढाँड़ी में पकाया मांस जिनकी आहुतियाँ यज्ञों में दी जाती थी।

उगजोआ—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] परतेले के रंग में कपड़े को बार बार डुबाने की क्रिया।

उगटना(उ)—क्रि० अ० [सं० उद्घाटन] १ उघटना। बार बार कहना। उ०—उगटहि छद प्रबंध गीत पद राग तान बधान। सुनि किन्नर गधर्व सराहत विथकहि विबुध विमान।—तुलसी (शब्द०)। २ ताना मारना। बोली बोलना।

उगदना—क्रि० अ० [सं० उद् + गद = कहना, हि० उकटना] कहना। बोलना। (दलाल)।

उगना—क्रि० अ० [सं० उद्गमन, पा० उग्वन] १ निकलना। उदय होना। प्रकट होना। जैसे—वह देखो सूरज उगा। उ०—भन विद्यापति उगत सेविअ मदन चितयु आउ।—विद्यापति, पृ० २२७। २. जमाना। अकुरित होना। जैसे—खेत में धान उग आए।

संयो०—क्रि० घाना।—उठना।—जाना।—पड़ना।

३. उपजना। उत्पन्न होना। उ०—विछुरता जब भेटे मो जानि जेहि नेह। सुख सुहेला उगवै दुख भरै जिमि मेह। जायसी (शब्द०)। ४. अधिक आकर्षक प्रतीत होना। शोभित होना। सुंदर लगना।

उगनीस—वि० [सं० एकोनविंशति, प्रा० अजणवीस, एगूणवीस, हि० उन्नीस] उन्नीस। एक कम बीस। उ०—नव गज दस गज गज उगनीसा, पुरिया एक तनाई। सात सूत दे गड बहतरि, पाट लगी अधिकाई॥—कवीर ग्र०, पृ० १५३।

उगमना—क्रि० अ० [सं० उद्गमन प्रा० ऊगमण] उगना। उदित होना। उ०—सूरज पछिम किम उगमई।—बी० रासो०, पृ० ६०।

उगमन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उद्गमन] पूर्व दिशा, जिधर से सूरज निकलता है।

उगरना^१—क्रि० अ० [न० अग्र या उद्गरण] १ सामने घाना। निकलना। उ०—गवन करै कहै उगरै कोई। सनमुख सोम लाम बड़ होई।—जायसी (शब्द०)। २. कुएँ के खान के पानी का बाहर आना। जैसे कुआँ उगरना।

उगरना^२—क्रि० अ० [हि० उबरना] बचना। रक्षा होना। सुरक्षित

उक्थ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ मित्र मित्र देवताओं के वैदिक स्तोत्र । २ यज्ञ में वह दिन जब उक्थ का पाठ होता है । ३ प्राण । ४ ऋषभक नाम की ऋष्टवर्गीय ओषधि ।

उक्थी—वि० [सं० उक्थिन्] स्तोत्रो का पाठ करनेवाला [को०] ।

उक्ता—सञ्ज्ञा पुं० [अ० उक्ताह] १ ग्रथि । गाँठ । २ भेद । रहस्य । उ०—यह वह उक्ता है जो किसी से अब तक नहीं खुला प्यारे ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० २०३ ।

उक्षाण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ जल छिड़कने की क्रिया । २. जल से अभिवेक करना [को०] ।

उक्षा—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य । २. वैल । ३. सोम (को०) । ४ मस्त (को०) । ५ अग्नि (को०) । ६ ऋषभक नामक ऋष्टवर्गीय ओषधि (को०) ।

उक्षाल^१—वि० [सं०] १ तेज । क्षिप्र । वेगयुक्त । २ विशाल । श्रेष्ठ [को०] ।

उक्षाल^२—सञ्ज्ञा पुं० कपि । वदर [को०] ।

उक्षाल^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० उछाल] उछाल । छलांग । कूद । उ०—पलाने तहाँ तेज ताजी तुरगा । परे उच्च उक्षाल मानो कुरगा ।—पं० रा०, पृ० १६७ ।

उखटना^१—क्रि० अ० [सं० उत्कर्षण] १ उखड़ाना । चलने में इधर उधर परे रखना ।

उखटना^२—क्रि० सं० [उत्खण्डन, प्रा० उक्खडण] खोटना । कुतरना ।

उखडना—क्रि० अ० [सं० उत्कृष्ट, पा० उक्कव्ख अथवा सं० उत्खनन, पा० उक्खडन] १ किसी जमी या गड्ढी हुई वस्तु का अपने स्थान से अलग हो जाना । जड़ सहित अलग होना । खुदना । जमना का उल्टा । जैसे—ग्राँधी आने से यह पेड़ जड़ से उखड़ गया । २ किसी दृढ़ स्थिति से अलग होना । जैसे—अंगूठी से नगीना उखड़ गया । ३ जोड़ से हट जाना । जैसे—कुश्ती में उसका एक हाथ उखड़ गया । ४ (घोड़े के सवध में) चाल में भेद पड़ना । तार या सिलसिले का टूटना । जैसे—यह घोड़ा थोड़ी ही दूर में उखड़ जाता है । ५ सगीत में वेताल और वेमुर होना । जैसे—वह अच्छा गवैया नहीं है, गाने में उखड़ जाया करता है । ६ ग्राहक का भड़क जाना । जैसे—दलालों के लगने से गाहक उखड़ गया । ७. एकत्र या जमा न रहना । तितर बितर हो जाना । उठ जाना । जैसे—वर्षा के कारण मेला उखड़ गया । ८ हटना । अलग होना । जैसे—जब वह वहाँ से उखड़े तब तो किसी दूसरे की पहुँच वहाँ हो । ९ टूट जाना । जैसे—तुक्कल हत्ये पर से उखड़ गई । १० सीवन या टीके का खुलना ।

सयो० क्रि०—आना ।—जाना ।—पडना ।

११ परस्पर की बातचीत में क्रोध या आवेश में आना (बोल०)

मुहा०—उखड़ी उखड़ी बातें करना—बेनोस बातें करना । उदासीनता दिखाते हुए बात करना । विरक्तिसूचक बात करना । उखड़ी पुखड़ी सुनाना—ऊँचा नीचा सुनाना । अडबड़ सुनाना । उखाड़ी उखाड़ना—कुछ किया हो सकना । जैसे—पक्षी तुम्हारी कुछ भी उखाड़ी न उखड़ेगी । तबीयत या मन का

उखडना—किसी की ओर से उदासीनता होना । विरक्ति होना । दम उखडना = (१) बँधी हुई साँस टूटना । (२) गाते गाते या बात करते करते स्वरभंग होना । (३) दम निकलना । प्राण निकलना । पर या पाँव उखडना = (१) ठहर न सकना । एक साथ परे जमा न रहना । जैसे—नदी के बहाव से पाँव उखड़े जाते हैं । लड़ने के लिये सामने न खड़ा रहना । भागना । जैसे—वैरियों के धावे से उनके पाँव उखड़ गए

उखडवाना—क्रि० सं० [हि० उखाड़ना का प्रे० रूप] किसी को उखाड़ने में प्रवृत्त करना ।

उखद^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० ओषधि, हि० ओखध] दे० 'ओषधि' । उ०—चतुरविध वेद प्रणीत चिकित्सा । सप्त उखद मंत्र तैज सुवि ।—वैलि०, दू० २८४ ।

उखना^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० उपण] मिरच । काली मिरच [को०] ।

उखभोज^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० ऊख + सं० भोज] ईख की बोआई का पहला दिन । इस दिन किसान उत्सव मनाते हैं ।

उखम^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ऊम्] गरमी । ताप ।

उखमज^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ऊम्मज] १ ऊम्मज जीव । झुड़ कीट । उ०—पिण्डज ब्रह्म न लोन्ह बनाई । उखमज सब विशू ते आई ।—सं० दरिया, पृ० ६ । २ भगड़ा, बखेड़ा या उपद्रव करने के लिये मन में आनवाला कुविचार (बोल०) ।

उखर^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० ऊख] ईख वो जाने के पीछे हल पूजने की रीति । हरपुजी ।

उखरना^१—क्रि० अ० [हि० उखड़ना] दे० 'उखडना' ।

उखराजा^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० ऊख + राज] ईख की बोआई का पहला दिन । इस दिन किसान उत्सव मनाते हैं ।

उखरैया^१—[हि० उखरना + ऐया (प्रत्य०)] उखाड़नेवाला । उ० भूमि के हरैया उखरैया भूमिधरनि के विधि विरचे प्रमाउ जाको जमजई है ।—तुलसी ग्र०, पृ० ३१२ ।

उखर्वल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की घास [को०] ।

उखली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० उद्भल, उलूखल, पा० उच्छल, प्रा० उक्खल उऊखल, उऊहल] मोढ़े के आकार का लकड़ी का बना हुआ एक पात्र । ओखली । फाँड़ी ।

विशेष—इसके बीच में एक हाथ से कुछ कम गहरा गड्ढा होता है । इस गड्ढे में डालकर मूसीवाले अनाजों की मूसी मूसल से कूटकर अलग की जाती है । कहीं कहीं ऊखली पत्थर की भी बनती है जो जमीन में एक जगह गाड़ दी जाती है ।

उखा^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] देग । घटनोई ।

उखा^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० उपा] दे० 'उपा' ।

उखाड—सञ्ज्ञा पुं० [हि० उखाडना] १ उखाड़ने की क्रिया । उत्पादन । २ कुश्ती के पेंच का तोड़ । वह युक्ति जिससे कोई पेंच रद्द किया जाता है । ३ कुश्ती का एक पेंच । उखेड । ऊचकाव ।

विशेष—यह उस समय काम में लाया जाता है जब विपक्षी पठ होकर हाथ और परे जमीन में अड़ा लेता है । इसमें विपक्षी के

उकाव उड़ रही है कि महाराज साहेब जापान जानेवाले हैं। — (शब्द०) ।

उकार—सञ्ज्ञ पुं [मं] १ 'उ' स्वर । २. शिव [को०] ।

उकारात्—वि० [सं उकारान्त] वह शब्द जिसके अंत में उ हो, जैसे साधु ।

उकालना^७—क्रि० सं० [हि० उकलना] दे० 'उकेलना' ।

उकासा^१—सञ्ज्ञ स्त्री [हि० उकासना] उकासने की क्रिया या भाव ।

उकासना^७—क्रि० सं० [हि० उकासना] उभाड़ना । ऊपर को फेंकना । ऊपर को धींचना । उ०—गैयां विडरि चली जित तित को सखा जहाँ तहाँ घेरें । वृषभ शृंग सो धरनि उकासत बल मोहन तन हरे ।—सूर० (शब्द०) ।

उकासी^७—सञ्ज्ञ स्त्री [हि० उकासना] सामने से परदे का हट जाना । खुल जाना । उ०—राखी ना रहत जऊ हाँसी कसि राखी देव नैमुक उकासी मुख ससि से उलसि उठै ।—देव (शब्द०) ।

उकासी^३—सञ्ज्ञ स्त्री [मं अवकाश] छुट्टी । फुरसत ।

उकिठा^७—वि० [हि० उकठा] दे० 'उकठा' । उ०—उकिठा वन फूँ हुरियाय ।—कबीर श०, भा० १, पृ० १२ ।

उकिडना^१—क्रि० अ० [हि० उकलना] दे० 'उकलना' ।

उकिरना^७—क्रि० अ० [सं उत्कीर्ण] उभड़ना । ऊपर होना ।

उ०—रस सरम कुच कहि चद । उर उकिर आनंद कद ॥—पृ० रा०, १४१५२ ।

उकिलना^१—क्रि० अ० [हि०] दे० 'उकलना' ।

उकिलवाना^१—क्रि० म० [हि०] दे० 'उकलवाना' ।

उकिसना^१—क्रि० अ० [हि०] दे० 'उकसना' ।

उकीरना—क्रि० सं० [सं उत् + √कृ > उत्किरण = ऊपर फेंकना, उभारदार लिखना] १ उभाड़ना । उखाड़ना । २. उचाड़ना । उकेलना । ३. खोदना । ४. नक्काशी करना । उकेरना । उ०—इंद्र के उदोत तें उकीरी ऐसी काढ़ी सब सारस सरस सोमानार तें निकारी सी ।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० १६० ।

उकील—सञ्ज्ञ पुं [अ० वकील] दे० 'वकील' । उ०—प्रवल उकील नूँ जी आदर कुख दे अवधेस ।—रघु० ह०, पृ० ८१ ।

उकुण—सञ्ज्ञ पुं [सं] दे० 'उकुण' [को०] ।

उकुति^७—सञ्ज्ञ स्त्री [सं उक्ति] दे० 'उक्ति' । उ०—मनहि विद्यापति एही रम गाव । अभिनव कामिनि उकुति बुझाव ।—विद्यापति, पृ० २१० ।

उकुति जुगुति^७—सञ्ज्ञ स्त्री [सं उक्ति युक्ति] दे० 'उक्ति युक्ति' । उ०—सञ्ज्ञ पुं [सं उत्कुटुघ, प्रा० उक्कुटुघ] दे० 'उकडूँ' ।

उकुरु—सञ्ज्ञ पुं [हि०] दे० 'उकुडूँ' । उ०—भूत पाट की डोरी गहे पडुनी पर बैठन ज्यों उकुरु की ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ३६१ ।

उकुसना^७—क्रि० सं० [हि० उकासना] उजाड़ना । उखेड़ना । उ०—उकुसि कुटी तेहि छन तृण काटी । मूरति चढ़ै कित पायर पाटी ॥—रघुराज (शब्द०) ।

उकेरना—क्रि० सं० [सं उत् + √कृ > किर, प्रा० उक्किटर] नकदी, पत्थर लोहा आदि कड़ी चीजों पर छेनी इत्यादि से नक्काशी करना । चित्र बनाना । विशेष रूप से वेलवूटे इत्यादि बनाना ।

उकेलना—क्रि० सं० [हि० उकलना, दे० उक्केल्लाविय] १ उचाड़ना । तह या पर्त से अलग करना । नोचना । जैसे—वहाँ का चमड़ा मत उकेलो, पक जायगा । २ लिपटी हुई चीज को छुड़ाना या अलग करना । उखेड़ना । जैसे—चारपाई की पटिया से रस्सी उकेल लो ।

उकेला^१—सञ्ज्ञ पुं [देश०] बाना ।

विशेष—गडरिए कवल बुनने में बाना को उकेला बोलते हैं ।

उकेला^३—क्रि० सं० [हि० उकेलना] 'उकेलना' क्रिया का भूत-कालिक रूप ।

उकौय,† उकौया†—सञ्ज्ञ पुं [हि०] दे० 'उकवय' ।

उकोना†—सञ्ज्ञ पुं [सं उत्क + ओना (प्रत्य०); देशी० ओक्किय, हि० ओकाई ?] गर्भवती स्त्री में होनेवाली अनेक प्रकार की प्रवल इच्छाएँ । दोहद ।

क्रि० प्र०—उठना ।

उक्कत^७—सञ्ज्ञ स्त्री [सं उक्ति] दे० 'उक्ति' । उ०—पग मुक्कत उक्कत लिपिय । निप निय नयन निहारि ॥—पृ० रा० ६६।२४० ।

उक्कती†^७—सञ्ज्ञ स्त्री [सं उक्ति] दे० 'उक्ति' । उ०—उर भरम छेह लैणो अगम असकस उद्यम उक्कती । कर भाव पार गुण सर करण माची नामे सरस्वती ॥—रा० ह०, पृ० ६ ।

उक्त^१—वि० [सं] कथित । कहा हुआ ।

उक्त^३^७—सञ्ज्ञ स्त्री [सं उक्ति] दे० 'उक्ति' । उ०—कहै मछ कवि जिकरणूँ उक्त सदाहिज आण ।—रा० ह०, पृ० ३८ ।

उक्तनिर्वाह—सञ्ज्ञ पुं [सं] अपनी कही हुई बात की रक्षा या समर्थन [को०] ।

उक्तप्रत्युक्त—सञ्ज्ञ पुं [सं] १ लास्य के दस अंगों में से एक । २ (नाट्य शास्त्र के अनुसार) उक्ति प्रतियुक्ति से युक्त, उपालभ के सहित,—अलीक (अप्रिय या मिथ्या) सा प्रतीत होनेवाला और विलासपूर्ण अर्थ से सुसपन्न मान ।

उक्तवाक्य^१—वि० [सं] जो अपना विचार या कथन कह चुका हो [को०] ।

उक्तवाक्य—सञ्ज्ञ पुं निर्णय । फंसला [को०] ।

उक्तानुशासन—सञ्ज्ञ पुं [सं] आदेशप्राप्त व्यक्ति । वह व्यक्ति जिसको आदेश मिला हो [को०] ।

उक्ति—सञ्ज्ञ स्त्री [सं] १ कथन । वचन । २ अनोखा वाक्य । जैसे—कवियों की उक्ति । उ०—काव्य का सारा चमत्कार उक्ति में ही है, पर कोई उक्ति काव्य तभी है जब उसके मूल में भाव हो ।—रस०, पृ० ३ । ३. महत्वपूर्ण कथन [को०] । ४. घोषणा [को०] । ५. अभिव्यक्ति [को०] ।

उक्तियुक्ति—सञ्ज्ञ स्त्री [सं] समति और उपाय । सहाह और तदरीर ।

क्रि० प्र०—भिड़ाना ।—लगाना ।

उकठना—क्रि० अ० [सं अ० = अ० प०, सूखा + < काठ = लकड़ी] । जेमे कठियाना = कड़ा होना। सूखना । सूखकर कड़ा या चीमड़ हो जाना । सूखकर ऐंठ जाना । उ०—(क) कीन्हेसि कठिन पढाइ कुपाठू । जिमि न नवइ पुनि उकठि कुकाठू ॥—मानस, २।२० । (ख) मधुवन तुम कत रहत हरे ? कौन काज ठाढ़े रहे वन मे काहे न उकठि परे ।—सूर (शब्द०) ।

उकठा—वि० [अ० = बुरा + काष्ठ = लकड़ी] शुष्क । सूखा । सूखकर ऐंठा हुआ । उ०—छोह ते पलुहहि उकठे रूखा । कोह ते महि सायर सब सूखा ॥—जायसी (शब्द०) ।

यो०—उकठा काठ ।

मुहा०—उकठे काठ को हरा भरा बना देना = मरे हुए को जिला देना । मुर्दे को जिंदा कर देना ।

उकड़ू—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उत्कृष्ट, प्रा० उक्कुडुग, उक्कुडुय = आसन-विशेष] घुटने मोड़कर बैठने की एक मुद्रा जिसमे दोनों तलवे जमीन पर पूर बैठते हैं और चूतड़ एंडियों से लगे रहते हैं ।

क्रि० प्र०—उकड़ू बैठना ।

उकटना—क्रि० अ० [सं० उकृष्ट > उकड़ + ता] दे० 'कड़ना' । उ०—तुरग कुदाइ आये उकड़ि अरिगन मे गयो ।—पद्माकर यह कहि प्र०, पृ० १६ ।

उकत^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० उक्ति] दे० 'उक्ति' । उ०—थाकी मत लखत न वनत जाकी मखी विचित्र । वनत न मन श्रीरे उकत चुकत चितेरे चित्र ।—सं० सप्तक, ३७१ ।

उकत^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उक्ति] डिगल मे एक प्रकार की वणनपद्धति । उ०—मिथत मांही मांही मिल, बाँधे उकत विशेष ।—रघु० क०, २।४८ ।

उकताना—क्रि० अ० [सं० अ० कुलन पू० हि० अकुलाना] १ उबना । उ०—रोज पूड़ी खाते खाते जी उकता गया । (शब्द०) । २ धवडाना । आकुल होना । जल्दी मचाना । उतावली करना । उ०—उकताते क्यों हो, ठहरो, थोड़ी देर में चलते हैं ।

सयो० क्रि०—उठना । जाना । पडना ।

उकताहट—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० उकताना] अघोरता । व्याकुलता । जल्दबाजी ।

उकति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० उक्ति] दे० 'उक्ति' । उ०—तन सुवरन सुवरन वरन सुवरन उकति उछाह । धनि सुवरनमय ह्वै रही सुवरन ही की चाह ।—पद्माकर प्र०, पृ० १०६ ।

उकवा—सञ्ज्ञा पुं० [अ० उक्कवह] प्रलय का दिन । उ०—करामत कश्फ हक तुमना देवेना भोत कुछ न्यामतौ दर रोजे उकवा । भरै ॥—दक्खिनी० पृ० ११५ ।

उकल—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'उकल' । उ०—उकल नहि बैठत भुमि—हम्मौर रा०, पृ० ४५ ।

उकलना—क्रि० अ० [सं० उत्कलन = खुलना] [क्रि० सं० उकेलना, प्रे० क्रि० उकलवाना] १. तह से अलग होना । उचड़ना । पृथक् होना । २ लिपटी हुई चीज का खुलना । उघड़ना । बिखरना । उ०—ग्रीष्म ऋतु क्रीडत सुजान । पिति उकलत पेह नम साजन ॥—पृ० रा०, २५।२ ।

उकलवाना—क्रि० सं० [हि० उकेलना का रूप] दूसरे को उकेलने के लिये नियुक्त करना ।

उकलाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० उद्गिरण, प्रा० उग्गाल] कै । उलटी । वमन । मचली ।

उकलाना^१—क्रि० अ० [हि० उकलाई] उलटी करना । वमन करना । कै करना ।

उकलाना^२—क्रि० अ० [हि०] दे० 'अकुलाना' ।

उकलेसरी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उत्कल अथवा हि० अकलेश्वर] उकलेसर (अकलेश्वर) का बना हुआ कागज । (उकलेसर दक्षिण में है) ।

उकलैदिस—सञ्ज्ञा पुं० [अ० यू०] १ एक यूनानी गणितज्ञ जिसने रेखागणित निकाला था । २. रेखागणित ।

उकवत—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उत्कोय] दे० 'उकवय' ।

उकवय—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उत्कोय] एक प्रकार का चर्मरोग जो प्रायः पैर में घुटने के नीचे होता है । इसमें दाने निकलते हैं जिनमें घाज होती है और जिनमें से चप बहा करता है ।

उकसना—क्रि० अ० [सं० उत्कषण] १ उभरना । ऊपर को उठना । उ०—(क) पुनि पुनि मुनि उकसहि मकुनाई ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) सेज सो उकसि वाम स्याम सो लपटि गई होति रति रीति विपरीति रस तार की ।—रघुनाथ (शब्द०) । २ निकलना । अकुरित होना । उ०—नाम्यो आनि नवेलियहि मनसिज वान । उकसन लाग उरोजवा, दूग तिरछान ॥—रहीम (शब्द०) । ३ सीवन का खुलना । उघड़ना । ४ दूसरे के द्वारा प्रेरित होना (को०) ।

उकसनि—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० उकसना] उभाड़ । उ०—दूग लागे तिरछे चलन पग मद लागे, उर मे कछूक उकसनि सी कड़ै लगी ।—(शब्द०) ।

उकसवाना^१—क्रि० सं० [हि० 'उकासना' का प्रे० रूप] किसी दूसरे से उकासने की क्रिया कराना ।

उकसाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० उकासना] १ उकासने की क्रिया में भाव । २ उकासने की मजदूरी ।

उकसाना—क्रि० सं० [हि० 'उकसना' का प्रे० रूप] १ ऊपर को उठाना । २ उभाड़ना । उत्तेजित करना । उ०—ये लोग तुम्हारे ही उकसाए हुए हैं ।—(शब्द०) । ३ उठा देना । हटा देना । उ०—गाढ़े ठाढ़े कुचनु ढिलि पिय हिय को ठहराइ । उकसौहि ही तो हियें दई सर्व उकनाइ ॥—विहारी २० दो० ४६२ । ४. दिए की वस्ती बढ़ाना या खसकाना ।

उकसाहट—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० उकसाना] १. उकसाने का भाव या क्रिया । २ उत्तेजना ।

उकसौहां^१—वि० [हि० उकसना + औहां (प्रत्य०)] [स्त्री०] उकसौहां] उभड़ता हुआ । उठता हुआ । उ०—उर उकसौंह उरज लखि धरत क्यों न धनि धीर । इन्हि विलोकि विलोकि—यतु सौतिन के उर पीर ।—पद्माकर प्र०, पृ० ८५ ।

उकाव^१—सञ्ज्ञा पुं० [अ० उकाव] बड़ी जाति का एक मिट्ट । गहड़ ।

उकाव^२—सञ्ज्ञा स्त्री० अफवाह । उड़ती खबर । उ०—प्रायकल ऐसी

उमरा—सङ्घा पुं० [अ० उमरा] दे० 'उमराव' । उ०—बोलि उमरा
मीर सब । यों ज्यो सुरतान । अब कै पग गढ़े गही । भजो
पेत परान ॥—पृ० रा०, १३।३८ ।

उं—अव्य०—एक प्राय अव्यक्त शब्द जो प्रश्न, अवज्ञा क्रोध तथा
स्वीकृति सूचित करने के लिये व्यवहृत होता है । इसका प्रयोग
उस अवसर पर होता है जब बोलनेवाला आलस्य से, ग्रथवा
मुह फंसे रहने या और किसी कारण से नहीं बोल पाता ।

उंखारी—सङ्घा स्त्री० [हि० ऊख] दे० 'उखारी' ।

उंगनी—सङ्घा स्त्री० [दे० अंगना] बेलगाड़ी के पहिए में तेल देने
की क्रिया ।

उंगलाना—क्रि० स० [हि० उंगली से नाम०] हैरान करना ।
सताना ।

उंगली—सङ्घा स्त्री० [सं० अङ्गुलि] हथेली के छोरों से निकले हुए
फलियों के आकार के पाँच अवयव जो वस्तुओं को ग्रहण करते
हैं और जिनके छोरों पर स्पर्शज्ञान की शक्ति अधिक होती है ।
उंगलियों की गणना अंगुष्ठ से आरंभ करते हैं । अंगुष्ठ के
उपरात तर्जनी, फिर मध्यमा, फिर अनामिका और अत मे
कनिष्ठिका है । अनामिका इन पाँचों उंगलियों में निर्वल
होती है ।

मुहा०—(पाँचों) उंगलियाँ धी में होना=सब प्रकार से लाभ
ही लाभ होना । जैसे—तुम्हारा क्या, तुम्हारी तो पाँचों
उंगलियाँ धी में हैं । उंगलियाँ चमकाना=वातचीत या
लड़ाई करते समय हाथ और उंगलियों को हिलाना या
मटकाना ।

विशेष—ग्रह विशेषकर स्त्रियों और जनकों की मुद्रा है ।

उंगलियाँ नचाना=दे० 'उंगलियाँ चमकाना' । उंगलियाँ फोडना
=दे० 'उंगलियाँ चटकाना' । (पाँचों) उंगलियाँ बराबर नहीं
होती=एक जाति की सब वस्तुएँ समान गुणवाली नहीं होती ।
(सीधे) उंगलियों धी न निकलना=सिध्दाई के साथ काम
न निकलना । भलमंसाहत से कार्य सिद्ध न होना । उंगलियों
पर दिन गिनना=उत्सुकता से किसी (दिन) की प्रतीक्षा
करना । उ०—दिन फिरेंगे या फिरेंगे ही नहीं । अब दिन हैं
उंगलियों पर गिन रहे ॥—चुभते०, पृ० ३ । उंगलियों पर
नचाना=जिस दशा में चाहे उस दशा में करना, अपनी इच्छा
के अनुसार ले चलना । अपने वश में रखना । तग करना ।
जैसे—अजी तुम्हारे ऐसों को तो मैं उंगलियों पर नचाता हूँ ।
(किसी पर या किसी की ओर) उंगली उठाना=(किसी
का) लोगो की निंदा का लक्ष्य होना । निंदा होना । बदनामी
होना । (किसी पर या किसी की ओर) उंगली उठाना=(१)
निंदा का लक्ष्य बनाना । लाछित करना । दोषी बताना ।
उ०—चाहे काम किसी का हो पर लोग उंगली तुम्हारी ही
ओर उठाते हैं । (२) तनिक भी हानि पहुँचाना । टेढ़ी नजर
से देखना । उ०—मजाल है कि हमारे रहते तुम्हारी ओर कोई
उंगली उठा सके । उंगली करना=हैरान करना । सताना ।
दम न लेने देना । आराम न करने देना । उ०—जितना काम
फरो उतना ही वे और उंगली किए जाते हैं । उंगली

चटकाना=(१) उंगलियों को इस प्रकार खींचना या दवाना
कि उनसे चट चट शब्द निकले । (२) शाप देना । (स्त्री०) ।

विशेष—जब स्त्रियाँ किसी पर बहुत कुपित होती हैं तब उलटें
पजो को मिलाकर उंगलियाँ चटकाती हैं और इस प्रकार के
शाप देती हैं—'तेरे बेटे मरें, भाई मरें' इत्यादि ।

उंगली दिखाना=घमकाना । डराना । उ०—जो तुम्हें उंगली
दिखाए मैं उमकी आँखें निकलवा लूँ । (हलक में) उंगली
देकर (माल) निकालना=बड़ी छानबीन और कड़ाई के साथ
किमी हजम की हुई वस्तु को प्राप्त करना । जैसे—वे रुपए
मिलनेवाले नहीं थे, मैंने हलक में उंगली देकर उन्हें निकाला ।
(कानों में, उंगली देना—किसी बात से विरक्त या उदासीन
होकर उसकी चर्चा बचाना । किसी विषय को न सुनने का
प्रयत्न करना । अनसुनी करना । जैसे—हमने तो अब कानों
में उंगली दे ली है, जो चाहे सो हो । (दाँतों में) उंगली देना
या दवाना, दाँत तले उंगली दवाना=चकित होना । अचभे
में आना । जैसे—उस लड़के का साहम देख लोग दाँतों में
उंगली दवाकर रह गए । उंगली पकड़ते पहुँचा पकड़ना=
किसी व्यक्ति से किसी वस्तु का थोड़ा सा भाग पाकर साहस-
पूर्वक उसकी सारी वस्तु पर अधिकार जमाना । थोड़ा सा
सहारा पाकर विशेष की प्राप्ति के लिये उत्साहित होना ।
जैसे—मैंने तुम्हें बरामदे में जगह दी अब तुम कोठरी में भी
अपना असबाब फैला रहे हो । भाई, उंगली पकड़ते पहुँचा
पकड़ना ठीक नहीं । उंगली पर पहाड़ उठाना=असंभव कार्य
कर दिखाना । उ०—सिर उठाना उन्हे पहाड़ हुआ । जो
उठाते पहाड़ उंगली पर ॥—चुभते०, पृ० २५ । (किसी कृति
पर) उंगली रखना=दोष दिखलाना । ऐव निकालना ।
जैसे—भला आपकी कविता पर कोई उंगली रख सकता है ।
उंगली लगाना=(१) छूना । जैसे—खबरदार, इस तसवीर
पर उंगली मत लगाना । (२) किसी कार्य में हाथ लगाना ।
किमी कार्य में थोड़ा भी परिश्रम करना । जैसे—उन्होंने इस
काम में उंगली भी न लगाई पर नाम उन्ही का हुआ ।

उंगलीमिलाव—सङ्घा पुं० [हि० उंगली+मिलाव] नाच की एक
गत । इसमें दोनों हाथ सिर के ऊपर उठाकर उनकी उंगलियाँ
मिला दी जाती हैं ।

उँघाई—सङ्घा स्त्री० [हि० ऊँघना] १ ऊँघने की क्रिया या भाव ।
२. निद्रागम । भ्रमकी ।

क्रि० प्र०—आना ।—लगना ।

उँचा—वि० [हि० ऊँच] दे० 'ऊँच' । उ०—'तुका' 'सूदा' बहुत
फहावे लडत विरला कोय । एक पावे ऊँच पदवी एक खोसो
जोय । दक्खिनी०, पृ० १०८ ।

उँचनाव—सङ्घा पुं० [देश०] एक किस्म का चारखाने का कपड़ा ।

उँचाई—सङ्घा स्त्री० [सं० उच्च, हि० ऊँच+आई (प्रत्य०)]
१ बलदी । ऊँचापन । उ०—हिय न समाई दीठि नहि
आनहुँ ठाढ़ सुमेर । कहँ लगि कहौँ उँचाई कहँ लगि बरनौँ
फेर ॥—जायसी ग्र०, पृ० १५ । २ वडप्पन । महत्व ।

उँचान—सङ्घा स्त्री० [हि० उँचा+आन (प्रत्य०)] उँचाई ।
बलदी ।

हिंदी शब्दसागर

उ

उ—१ हिंदी वर्णमाला का पाँचवाँ अक्षर। इसका उच्चारणस्थान ओष्ठ है। यह तीन मुख्य स्वरों में है। इसके ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत तथा सानुनामिक और निरनुनामिक भेद से १८ भेद होते हैं। 'उ' को गुण करने से 'ओ' और वृद्धि करने से 'औ' होता है।

उं कुण—सङ्घा पुं [मं० उङ्कुण] खटमल [को०]।

उं गल—सङ्घा पुं [मं० अङ्गुलि] दे० 'अगुल'।

उं गलि—सङ्घा पुं [मं० अङ्गुलि] दे० 'अगुल'। उ०—मैंसत उ गलि बाई खेलु। मनि सचु अहार करि (तासो) मेलु ॥—प्राण०, १।६६।

उ च (उ)—वि० [हिं० ऊँचा] १ ऊँची। अधिक। २. उपयुक्त। ३. योग्य। उ०—यो वरप्य दुष विति गय। अइअ वंस वर उ च।—पृ० रा०, २५।१७६।

उ चन—सङ्घा खी० [सं० उदञ्चन = ऊपरखींचना या उठाना] अदवायन। अदवान। वह रस्सी जो खाट के पायतान की तरफ बुनावट से छूटे हुए स्थान को भरती है और जिसको खींचकर कसने से बुनावट तनकर कड़ी हो जाती है।

उ चना—क्रि० सं० [सं० उदञ्चन] अदवान तानना। उ चन कसना। अदवान खींचना।

उंचास—वि० [हिं० उतचास] दे० 'उतचास'।

उच्छाहे (उ)—वि० [सं० उत्साह] उत्साहपूर्वक। उत्साह से। उ०—वीर पुरुष कइ जमअइ नाह न जपइ नाम। जइ उच्छाहे फुर कहहि हजो आकण्डन काम ॥—कीर्ति०, पृ० ६।

उछ—सङ्घा खी० [सं० उञ्छ] मालिक के ले जाने के पीछे खेत में पड़े हुए अन्न के एक एक दाने को जीविका के लिये चुनने का काम। सीला बीनना।

यौ०—उछवर्ती। उछवृत्ति। उछशील।

उछन—सङ्घा पुं [मं० उञ्छन] गल्ले की मंडी में भूमि पर गिरे हुए दानों को बीनने का कार्य [को०]।

उछवृत्ति सङ्घा खी० [मं० उञ्छवृत्ति] खेत में गिरे हुए दानों को चुनकर जीवननिर्वाह करने का कर्म।

उछशील—सङ्घा पुं [सं० उञ्छशील] उछवृत्ति।

उछशील—वि० [सं० उञ्छशील] उछवृत्ति पर निर्वाह करनेवाला।

उक्षट—सङ्घा पुं [देखी०] दे० 'अक्षट'। उ०—सौ उक्षट में उलझों को कैसे कै सुलभाऊ ॥—प्रेमघन०, १।१६१।

उट (उ)—सङ्घा पुं [हिं० ऊँट] दे० 'ऊँट'। उ०—सै पचदिन अति उट अछ। कत्तार भार फक्कार कच्छ ॥ दोइ सै दिन दासो सुचग। झनकत। ताम द्रपन सुअग ॥—पृ० रा०, ४।११।

उं ड (उ)—[सं० उण्डुक] शरीर का अंग—पेट। उ०—पंड हृथ नर उ ड। अष्ट अगुल अर्घ वपु ॥—पृ० रा०, १।२४४।

उं डले (उ)—सङ्घा पुं [सं० उण्डुक] १. शरीर का एक भाग—पेट। उ०—उचाय घाय उडले। हिरन्नकस्य खडले ॥ छूटत कट्टि ठुम्मर। उठत मुछछ धुम्मरं ॥—पृ० रा०, २।१७३। २. मच। मचान। उच्चामन। ३. आँत का आवरण।

उं डुक—सङ्घा पुं [सं० उण्डुक] १. कुष्ठ रोग का एक भेद। २. जाल। ३. शरीर का हिस्सा—पेट [को०]।

उं दन—सङ्घा पुं [सं० उन्दन] गीला करना। भिगोना [को०]।

उं दर—सङ्घा पुं [सं० उन्दुर] दे० 'उदुर'। उ०—ज्यो उरगह मुप उदर परै। यो सुदेह नाहर कहै ॥ भवतव्य वात मिट्टै नहीं। नाम एक जुगजुग रहै ॥—पृ० रा०, ७।१५०।

उं दरी—सङ्घा खी० [सं० उन्दुर] चुहिया। उ०—स्यध बैठा पान कतरै, धूस गिलौरा लावे। उदरी वपुरी भगल गावै कछू एक आनद सुलावै ॥—कवीर ग्र०, पृ० ६२।

उं दुर—सङ्घा पुं [सं० उन्दुर] चूहा। मूसा। उ०—(क) उदुर राजा टीका बैठे विप्रहर करै खचामी। श्वान बापुरो धरनि ठाकुरो विल्ली घर में दामी ॥—कवीर (शब्द०)। (ख) कीन्हेसि लोवा उंदुर चाँटी। कीन्हेसि बहुत रहहि खनि माटी ॥—जायसी (शब्द०)।

उं दुरकर्णिका—सङ्घा खी० [सं० उन्दुरकर्णिका] दे० 'उदुरकर्णी'।

उं दुरकर्णी—सङ्घा खी० [सं० उन्दुरकर्णी] एक प्रकार की लता [को०]।

उं नंगनो (उ)—क्रि० अ० [सं० उल्लघन] दे० 'उलघना'। उ०—उंनगे सुरतान दल। सारु डै चतुरग ॥—पृ० रा०, १३।६२।

उं पत (उ)—क्रि० अ० दे० 'ओपना'। उ०—चालुक चातु वीर वर। जिन उ पत मुदव पानि ॥—पृ० रा०, ५।३०।

उं वर उ दुर—सङ्घा पुं [मं० उम्बर, उम्बुर] चौखट की ऊारी लकड़ी जिसे मरेठा भी कहते हैं [को०]।

उं वी—सङ्घा खी० [मं० उम्बी] गीली घास की आग पर पकाई हुई जो गेहूँ की बाल। चिकित्सा में इसका प्रयोग किया जाता है [को०]।

यो०	योगिक	सक० रूप	सकर्मक रूप
राज०	राजस्थानी	सधु०	सधुवकढी भाषा
लश०	लशकरी	स्पे०	स्पेनी भाषा
सा०	लाक्षणिक	स्त्रि०	स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
लै०	लैटिन	स्त्री०	स्त्रीलिंग
व० क०	वर्तमान कृत	हि०	हिंदी
वि०	विशेषण	ॐ	काव्यप्रयोग, पुरानी हिंदी
वि० द्वि० मू०	विषमद्विक्तिमूलक	>	व्युत्पन्न
वै०	वैदिक	†	प्रातीय प्रयोग
व्या०	व्याकरण	‡	ग्राम्य प्रयोग
शब्द०	शब्दसागर	✓	घातुविहिन
सं०	संस्कृत	*	सभाव्य व्युत्पत्ति
संयो०	संयोजक अव्यय	?	अनिश्चित व्युत्पत्ति
सयो० क्रि०	संयोजक क्रिया		
सं०	सकर्मक		

हिम्मत०	हिम्मतवहादुर विरुवावली, लाला भगवान्	हुमायूँ	हुमायूँ नामा, अनु० बजरत्नदास, ना० प्र०
हिलोल	दीन, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०	हबय०	सभा, वाराणसी, द्वि० सं०
	हिलोल, शिवमंगल सिंह 'सुमन', सरस्वती		हृदयतरंग, सत्यनारायण कविरत्न
	प्रेस, बनारस, द्वि० सं०		

[व्याकरण, व्युत्पत्ति आदि के सकेताक्षरो का विवरण]

अं०	अंग्रेजी	तु०	तुर्की
अ०	अरबी	द०	दूहा या दूहला
अक० रूप	अकर्मक रूप	दे०	देखिए
अनु०	अनुकरण शब्द	देश०	देशज
अनुध्व	अनुध्वन्यात्मक	देशी	देशी
अनु० मू०	अनुकरणार्थ मूलक	धर्म०	धर्मशास्त्र
अनुर०	अनुरणनात्मक रूप	नाम०	नामधातु
अप०	अपभ्रंश	ना० धा०	नामधातुज क्रिया
अर्ध मा०	अर्ध मागधी	नामिक धातु	नामिक धातु
अल्पा०	अल्पार्थक	ने०	नेपाली
अव्य०	अव्यय	न्याय०	न्याय या तर्कशास्त्र
इव०	इवरानी	पं०	पंजाबी
उ०	उदाहरण	परि०	परिशिष्ट
उच्चा०	उच्चारण सुविधार्थ	पो०	पाली
उद्दि०	उद्दिष्ट	पु०	पुलिग
उप०	उपसर्ग	पुर्त०	पुर्तगाली
उभ०	उभयलिङ्ग	पु० हि०	पुरावी हिंदी
एकव०	एकवचन	पू० हि०	पूर्वी हिंदी
कहावत	कहावत	पृ०	पृष्ठ
काव्यशास्त्र	काव्यशास्त्र	प्रत्य०	प्रत्यय
[को०], (को०)	अन्य कोश	प्र०	प्रकाशकीय या प्रस्तावना
कौंक०	कौंकली	प्रा०	प्राकृत
क्रि०	क्रिया	प्रे०	प्रेरणार्थक रूप
क्रि० अ०	क्रिया अकर्मक	फ०	फरसीसी भाषा
क्रि० प्र०	क्रिया प्रयोग	फकीर०	फकीरों की बोली
क्रि० वि०	क्रिया विशेषण	फा०	फारसी
क्रि० सं०	क्रिया सकर्मक	बंग०	बंगला भाषा
कव०	कवचित्	बरमी०	बरमी भाषा
गीत	लोकगीत	बहुव०	बहुवचन
गुज०	गुजराती	हु० ख०	हुदेल ख०ह की बोली
ची०	चीनी भाषा	बोल०	बोलचाल
छं०	छंद	भाव०	भाववाचक सभा
जापा०	जापानी	भू०	भूमिका
जावा०	जावा द्वीप की भाषा	भू० क०	भूत कृत
जी०, जीवन०	जीवनचरित्	मरा०	मराठी
ज्या०	ज्यामिति	मल०	मलयाली या मलयालम भाषा
ज्यो०	ज्योतिष	मला०	मलायम भाषा
द्वि०	द्विगल	मि०	मिलाइए
त०	तमिल	मुसख०	मुसलमानों द्वारा प्रयुक्त
तर्क०	तर्कशास्त्र	मुहा०	मुहावरा
		यू०	यूनानी

सं दर्शन	समीक्षादर्शन, रामलालसिंह, इडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०	सैर कु०	सैर कुहसार, पं० रतननाथ 'सरदार', नवल-किशोर प्रेस, लखनऊ, च० सं०, १९३४ ई०
सत्यार्थप्रकाश (शब्द०)	सत्यार्थप्रकाश	सौ भोजान०	सौ भोजान श्री एक सुजान
सवल (शब्द०)	सवलमिह चौहान	स्कद०	स्कदगुप्त, जयशकर प्रसाद, भारती भंडार-लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
सभा० वि० (शब्द०)	सभाविलास	स्वर्ण०	स्वर्णकिरण, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
सं शास्त्र	समीक्षाशास्त्र, सीताराम चतुर्वेदी, अखिल भारतीय विक्रम परिषद, काशी, प्र० सं०	हंस०	हंसमाता, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, ० सं०
सं सप्तक	सप्तसई सप्तक, सं० श्यामसुंदरदास, हिंदू-स्तानी एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०	हकायके०	हकायके हिंदी, ले० मोर प्रबुल वाहिक, प्र० सं० 'ग्रं' काशिकेय, ना० प्र० समा, काशी प्र० सं०
सहज०	सहजो वाई की वानी, वेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद, १९०८ वि०	हनुमान (शब्द०)	हनुमन्नाटक
साकेत	साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगांव, काशी, प्र० सं०	हम्मीर०	हम्मीरहठ, सं० जगन्नाथदास 'रत्नाकर', इडियन प्रेस लि०, प्रयाग
सागरिका	सागरिका, डा० गोपालशरण सिंह, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०	ह० रासो	हम्मीर रासो, मं० डा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० समा काशी, प्र० सं०
साम०	सामवेनी, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयावल, पटना, द्वि० सं०	हरिदास (शब्द०)	स्वामी हरिदास
सा० दर्पण	साहित्यदर्पण, संपा० शांतिग्राम शास्त्री, श्री मृत्युंजय भोपवालय, लखनऊ, प्र० सं०	हरिश्चंद्र (शब्द०)	भारतेंद्रु हरिश्चंद्र
सा० लहरी,	साहित्यलहरी, सं० रामसोचनशरण विहारी, पुस्तक भंडार, लहेरियासराय, पटना, प्र० सं०	हरी घास०	हरी घास पर क्षण भर, प्रज्ञेय, प्रगति प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९४६ ई०
सा० समीक्षा	साहित्य समीक्षा, काशिदास कपूर, इडियन प्रेस, प्रयाग	हर्ष०	हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, वासुदेव-शरण अग्रवाल, बिहार राष्ट्रीय परिषद्, पटना, प्र० सं०, १९५३ ई०
साहित्य०	साहित्यालोचन	हालाहल	हालाहल, हरिवंश राय बच्चन, भारती भंडार प्रयाग, १९४६ ई०
सुंदर० ग्रं०	सुंदरदास ग्रंथावली [दो भाग], सं० हरिनारायण शर्मा, राजस्थान रिसर्च सोसायटी, कलकत्ता, प्र० सं०	हिंदी भा०	हिंदी आलोचना
सुखदा	सुखदा, जैनद्रकुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०	हि० भा० प्र०	हिंदी काव्य पर प्रांगल प्रभाव, रवींद्रशहाय शर्मा, पद्मजा प्रकाशन, कानपुर, प्र० सं०
सुधाकर (शब्द०)	सुधाकर द्विवेदी	हि० क० का०	हिंदी कवि श्रीर काव्य, गणेशप्रसाद द्विवेदी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १९३६ ई०
सुजान०	सुजानचरित (सूदनकृत), सं० राधाकृष्ण, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, प्र० सं०	हिंदी प्रदीप (शब्द०)	हिंदी प्रदीप
सुनीता	सुनीता, जैनद्रकुमार, साहित्यमंडल, बाजार सीताराम, दिल्ली, प्र० सं० १	हिंदी प्रेमो०	हिंदी प्रेमोक्त्यानाक काव्यसंग्रह, सं० डा० कमल कुलश्रेष्ठ, चौधरी भानसिंह प्रकाशन, कचहरी रोड
सूत०	सूत की माला, पंत श्रीर बच्चन, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०	हि० प्र० चि०	हिंदी काव्य में प्रकृतिचित्रण, किरणकुमारी गुप्त, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग
सूदन (शब्द०)	सूदन कवि (भरतपुरवाले)	हि० सा० भू०	हिंदी साहित्य की भूमिका, हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, तृ० सं०, १९४८
सूर०	सूरसागर, [दो भाग], ना० प्र० समा, द्वितीय सं०	हिंदु० सम्प्रदा	हिंदुस्तान की पुरानी सम्प्रदा, बेनीप्रसाद, हिंदुस्तान एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०
सूर० (शब्द०)	सूरदास	हिम कि०	हिमकिरीटिनी, माखनलाल चतुर्वेदी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, तृ० सं०
सूर (राधा०)	सूरसागर, सं० राधाकृष्णदास, वैकटेश्वर प्रेस, प्र० सं०	हिम त०	हिमतरंगिणी, माखनलाल चतुर्वेदी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
सेवासदन	सेवासदन, प्रेमचंद, हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, द्वि० सं०		

रस क०	रसकलन, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिप्रौढ',	विशाख	विशाख, जयशंकर प्रसाद, लोहर प्रेम, प्रयाग,
रसखान०	हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, तृतीय सं०	विश्राम (शब्द०)	त० सं०
रसखान (शब्द०)	रसखान श्री घनानंद, सं० वा० अमीरसिंह,	वीणा	विश्रामनागर
रस र०	ना० प्र० सभा, द्वि० सं०	वेनिस (शब्द०)	वीणा, सुमित्रानंदन पंत, इंदिरा प्रेम, नि०
रसनिधि (शब्द०)	सैयद इमाम	वैशाली०, वं० न०	प्रयाग, द्वि० सं०
रहीम०	रमरतन, सं० तिवप्रसाद सिंह, ना० प्र०	वो दुनिया	वेनिस का चौका
रहीम (शब्द०)	सभा, वाराणसी, प्र० सं०	व्ययार्थ (शब्द०)	वैशाली की नगर श्रृंखला चतुर्सेन शास्त्री,
राज० इति०	राजा पृथ्वीसिंह	व्यास (शब्द०)	गोतम बुद्धिपो, दिल्ली, प्र० सं०
रा० ह०	रहीम रत्नावली	शं० दि० (शब्द०)	वो दुनिया, यमपाल, विप्लव कार्यालय, लख-
रा० वि०	प्रहलदहीम छानखाना	शंकर०	नऊ, १९४१ ई०
राज्यश्री	राजप्रताप का इतिहास, गोरीशंकर हीराचंद	शकुं०	व्ययार्थ कीमुदी
राम ब०	श्रीमा, भजमेर, १९६७ वि०, प्र० सं०	शकुनला	शक्तिदास व्यास
राम० धर्म	राजस्थान, संपा० पं० रामचरण, ना० प्र०	शकुनला	शंकराद्विजय
राम० धर्म० सं०	सभा, प्र० सं०	शकुनला	शंकरमहेश्वर, म० हरिगंकर शर्मा, गयाप्रसाद
रामरसिका०	राजदिलास, सं० मोती लाल मेनारिया, ना०	शकुनला	एड संस, प्रागरा, प्र० सं०
रामानंद	प्र० सभा, वाराणसी प्र० सं०	शकुनला	शकुंतला, मैथिलीनरुण गुप्त, साहित्य सदन,
रामाश्व०	राज्यश्री, जयशंकर प्रसाद, लोहर प्रेम, इना-	शकुनला	विरगांव, भौरी
रेणुका	हवादा, सातवां सं०	शकुनला	शकुनला नाटक, अनु० राजा लक्ष्मणसिंह,
रेणुका	संक्षिप्त रामचंद्रिका, सं० लाला भगवानदीन,	शकुनला	हिंदी साहित्य समेनन, प्रयाग, चतु० सं०
रे० बानी	ना० प्र० सभा, वाराणसी, पृष्ठ सं०	शकुनला	शकुनला नाटक, टी० नीताराम शास्त्री,
रत्नसिंह (शब्द०)	रामस्नेह धर्मप्रकाश, सं० मालचंद्र जी शर्मा	शकुनला	मूवई बैभव मद्रास लय, सं० १९७१
रत्नलाल	चौकनराम जी (सिंहवल), बहा रामद्वारा,	शकुनला	सिखर वशीलति, सं० पुरोहित हरिनारायण
रत्नलाल	वीकानेर।	शकुनला	शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०,
रत्नलाल	रामस्नेह धर्म संग्रह सं० मालचंद्र जी शर्मा,	शकुनला	सं० १९८५
रत्नलाल	चौकनराम जी (सिंहवल), बहारामद्वारा,	शकुनला	शकुन अभिनदन ग्रंथ, मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य
रत्नलाल	वीकानेर।	शकुनला	समेनन
रत्नलाल	रामरसिकावली [भक्तमाल]	शकुनला	शकुन सत० (शब्द०) शृंगार सतसई
रत्नलाल	रामानंद की हिंदी रचनाएँ, सं० पीतावरदत्त	शकुनला	शेर श्री सुखन
रत्नलाल	बडवाल, ना० प्र० सभा, प्र० सं०	शकुनला	शंली, कल्याणपति शिवाठी
रत्नलाल	रामाश्वमेध, ग्रंथकार, मन्नालाल द्विज, त्रिपुरा	शकुनला	श्यामास्वप्न, सं० डा० कृष्णलाल, ना० प्र०
रत्नलाल	भरद्वी, वाराणसी, १९३६ वि०	शकुनला	सभा, काशी, प्र० सं०
रत्नलाल	रेणुका, रामधारी सिंह 'दिनकर', पुस्तकमंदार,	शकुनला	श्रीनिवास प्र० श्रीनिवास ग्रंथावली, सं० डा० कृष्णलाल,
रत्नलाल	लहेरिया सराय, पटना, प्र० सं०।	शकुनला	ना० प्र० सभा, काशी प्र० सं०
रत्नलाल	रैदास बानी, बेलवेडियर प्रेम, इलाहाबाद।	शकुनला	चंद्रकाता संतति, देवकीनंदन खत्री, वाराणसी
रत्नलाल	राजा लक्ष्मणसिंह	शकुनला	संत तुरसीदाम की शब्दावली, बेलवेडियर
रत्नलाल	संतलाल	शकुनला	प्रेम, इलाहाबाद।
रत्नलाल	सहर, जयशंकर प्रसाद, भारतीय मंडार, इलाहा-	शकुनला	सं० दरिया, संत दरिया सत कवि दरिया, सं० धर्मेंद्र ग्रहमचारी, बिहार
रत्नलाल	वाद, पंचम सं०	शकुनला	राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, प्र० सं०
रत्नलाल	लालकवि (छत्रप्रकाशवाले)	शकुनला	संत रविदाम शेर सनका काव्य, स्वामी
रत्नलाल	वर्णरत्नाकर	शकुनला	रामानंद शास्त्री, भारतीय रविदाम सेवासंघ
रत्नलाल	विद्यापति, सं० ग्रंथद्वारा मित्र, यूनाइटेड	शकुनला	हरिद्वार, प्र० सं०
रत्नलाल	प्रेस लि०, पटना	शकुनला	संतवाणी०, संत० सार० सतवाणी-भार-संग्रह [२ भाग], बेलवेडियर
रत्नलाल	विनयपत्रिका, टी० पं० रामेश्वर भट्ट, इंडियन	शकुनला	प्रेम, इलाहाबाद
रत्नलाल	प्रेस लि०, प्रयाग, तृ० सं०	शकुनला	संन्यासी, नैयामी इलाचंद्र जोशी, भारतीय मंडार,
		शकुनला	लोहर प्रेम, प्रयाग, प्र० सं०
		शकुनला	संपूर्ण० अभि० प्र० संपूर्णानंद अभिनदन ग्रंथ, सं० भाचार्य नरेंद्र-
		शकुनला	देव, ना० प्र० सभा, वाराणसी

भारत०	भारतभारती, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव, भाँसी, न० सं० १	मानस	रामचरितमानस, सपा० शम्भुनारायण चौबे, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
भारत० नि०, भा० भू०	भारत भूमि और उसके निवासी, जयचन्द्र विद्यालंकार, रत्नाश्रम, आगरा, द्वि० सं० १९८७ वि०	मिट्टी०	मिट्टी और फूल, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९६६ वि०
भारतीय०	भारतीय राज्य और शासनविधान	मिलन०	मिलनयामिनी, हरिवंश राय 'वच्चन' भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्र० सं०, १९५० ई०
भारतेडु ग्र०	भारतेडु ग्रथावली [४ भाग], सपा० ब्रजरत्न-दास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	मुशी अभि० ग्र०	मुशी अभिनदन ग्रथ, सं० डा० विश्वनाथप्रसाद, हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
भा० शिक्षा	भारतीय शिक्षा, राजेंद्रप्रसाद, आत्माराम, एंड सस, दिल्ली, १९५३ ई०	मृग०	मृगनयनी, वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, भाँसी
भाषा शि० भिखारी ग्र०	भाषा शिक्षण, सीताराम चतुर्वेदी भिखारीदास ग्रथावली [दो भाग], सं० विश्वनाथ-प्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी प्र० सं० १	मैला०	मैलामाँचल, फणीश्वर नाथ 'रेणु', समता प्रकाशन, पटना-४, प्र० सं०
भीखा श०	भीखा शब्दावली	मोहन०	मोहनविनोद, सं० कृष्णविहारी मिश्र, इलाहा-वाद ला जर्नल प्रेस, प्र० सं०
भूपण ग्र०	भूपण ग्रथावली, सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, साहित्य सेवक कार्यालय, काशी, प्र० सं०	यशो०	यशोधरा, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, भाँसी, प्र० सं०
भूपण (शब्द०) भोज० भा० ना०	कवि भूपण त्रिपाठी भोजपुरी भाषा और साहित्य, डा० उदय-नारायण तिवारी, विहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना प्र० सं०	यामा०	यामा, महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, प्रयाग, प्र० सं०
मति० ग्र०	मतिराम ग्रथावली, कृष्णविहारी मिश्र, गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, द्वि० सं०	युग०	युगवाणी, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
मतिराम (शब्द०) मधु०	कवि मतिराम त्रिपाठी मधुकलश, हरिवंशराय 'वच्चन', सुपमा निकुंज, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९३६ ई०	युगपथ युगात	युगपथ " " " युगात, सुमित्रानंदन पंत, इद्र प्रिंटिंग प्रेस, अल्मोडा, प्र० सं०
मधुज्वाल	मधुज्वाल, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९३६ ई०	रगभूमि	रगभूमि, प्रेमचंद, गंगा ग्रथागार, लखनऊ, प्र० सं०, १९८१ वि०
मधु मा०	मधुमालती वार्ता, सं० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र०	रघु० रू०	रघुनाथ रूपक गीतारो, सं० महतावचंद्र खारंड, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
मधुशाला	मधुशाला, हरिवंश राय 'वच्चन', सुपमा निकुंज, इलाहाबाद, प्र० सं०	रघु० दा० (शब्द०) रघुनाथ (शब्द०) रघुराज (शब्द०) रजत०	रघुनाथदास रघुनाथ महाराज रघुराजमिह, रीवांनरेश रजतशिखर, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २००८ वि०
मन विरक्त० मनु० मलूक० (शब्द०) महा०	मन विरक्त करन गुटका सार (चरणदास) मनुस्मृति मलूकदास महाराणा का महत्व, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०	रज्जव०	रज्जव जी की बानी, ज्ञानसागर प्रेस, बबई, १९७५ वि०
महामारत (शब्द०) माधव०	महामारत माधवनिदान, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, चतुर्थ सं०	रतन०	रतनहजारा, सपा० श्री जगन्नाथप्रसाद श्रीवास्तव, भारतजीवन प्रेस, काशी प्र० सं०, १९८२ ई०
माधवानल०	माधवानल, कामकदला, बोधा कवि, नवल-किशोर प्रेस, लखनऊ, प्र० सं०, १८९४ ई०	रति०	रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९५३ ई०
मान० मानव०	मानसरोवर, प्रेमचंद, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद मानवसमाज, राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० सं०	रत्न० (शब्द०) रत्नाकर रस०	रत्नसार रत्नाकर [दो भाग], ना० प्र० सभा, काशी, चतुर्थ और द्वि० सं० रसमीमासा, सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०

पृ० रा० (उ०)	पृथ्वीराज रासो [४ खंड], सं० कविराज मोहननिह, साहित्य संस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर, प्र० सं०	विल्ले०	विल्लेसुर बकरिहा, निराला, युगमंदिर, उन्नाव, प्र० सं०
पोद्दार अभि० ग्रं०	पोद्दार अभिनंदन प्र०, सं० वासुदेवशरण अग्रवाल, अखिल भारतीय ब्रज साहित्यमंडल, मथुरा, सं० २०१०	विहारी २०	विहारी रत्नाकर, सं० जगन्नाथदास 'रत्नाकर' गंगा प्रथागार, लखनऊ, प्र० सं०
प्रताप प्र०	प्रतापनारायण मिश्र प्रथावली, सं० विजय-शंकर मल्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०	विहारी (शब्द०)	कवि विहारी
प्रताप (शब्द०)	प्रतापनारायण मिश्र	वी० रासो	वीसलदेव रासो, सं० सत्यजीवन वर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
प्रबन्ध०	प्रबन्धपद्य, 'निराला', गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, प्र० सं०	वीसल० रास	वीसलदेव राम, सं० माताप्रसाद गुप्त, प्र० सं०
प्रभावती	प्रभावती, 'निराला', सरस्वती भंडार, लखनऊ, प्र० सं०	वी० श० महा०	वीसवीं शताब्दी के महाकाव्य, डा० प्रतिपाल-सिंह श्रीरिएटल बुकडिपो, देहली, प्र० सं०
प्राण०	प्राणसंगीत, संपा० सत संपूर्णसिंह, बेल-वेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०	बुद्ध च०	बुद्धचरित, रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
प्रा० भा० प०	प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास, डा० रागेय राघव, आत्माराम एंड सन्स, दिल्ली, प्र० सं०, १०५३ ई०	वृहत्	वृहत्संहिता
प्रिय०	प्रियप्रवास, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, पण्ड सं०	वृहत्संहिता (शब्द०)	वृहत्संहिता
प्रिया० (शब्द०)	प्रियादास	वेनी (शब्द०)	कवि वेनी प्रवीन
प्रेम०	प्रेमपदिक, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, तृ० सं०	वेला	वेला, 'निराला', हिंदुस्तानी पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, प्र० सं०
प्रेम० और गीतों,	प्रेमचंद और गीतों, संपा० शचीरानी गुट्ट, राजकमल प्रकाशन लि०, बंबई, १९५५ ई०	वेलि०	वेलि किमन रुक्मिणी री, सं० ठाकुर रामसिंह, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९३१ ई०
प्रेमघन०	प्रेमघन सर्वस्व, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग प्र० सं०, १९६६ वि०	व्रज०	व्रजविलास, सं० श्रीकृष्णदास, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, तृ० सं०
प्रे० सा० (शब्द०)	प्रेमसागर	व्रज० प्र०,	व्रजनिधि प्रथावली, सं० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
प्रेमांजलि	प्रेमांजलि, डा० गोपालशरण सिंह, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, १९५३ ई०	व्रजमाधुरी०	व्रजमाधुरी सार, सं० वियोगीहरि, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, तृ० सं०
फिसाना०	फिसाना ए आजाद [चार भाग] प० रतननाथ 'सरशार', नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, चतुर्थ सं०	भक्तमाल (प्रि०)	भक्तमाल, टीका० प्रियादास वेंकटेश्वर प्रेस. बंबई १९५३ वि०
फूल०	फूलों का कुर्ता, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, प्र० सं०	भक्तमाल, (श्री०)	भक्तमाल, श्री भक्तिसुधाविदु स्वाद, टीका० सीतारामशरण, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, द्वि० सं०, १९८३ वि०
वगाल०	वगाल का काल, हरिवंश राय 'वच्चन', भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४६ ई०	भक्ति०	भक्तिसागरादि, स्वामीचरण, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, सबत् १९६० वि०
वांकी० प्र० वांकीदास प्र०	वांकीदास प्रथावली [तीन भाग], संपा० राम-नारायण दुग्ग, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	भक्ति प०	भक्ति पदार्थ वर्णन, स्वामी चरणदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, सं० १९६०
वदन०	वदनवार, देवेंद्र सत्यार्थी, प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, १९४९ ई०	भस्मावृत०	भस्मावृत चिनगारी, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४६ ई०
वद०	वदमाशदर्पण, तेगबली, भारतजीवन प्रेस, बनारस, प्र० सं०	भा० इ० रू०	भारतीय इतिहास की रूपरेखा, जयचंद्र बिद्याल-लकार, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९३३ ई०
वागिदरा	वागिदरा	भा० प्रा० लि०	भारतीय प्राचीन लिपिमाला, गौरीशंकर हीराचंद श्रीका, इतिहास कार्यालय, राज मेवाड़, प्र० सं०, १९५१ वि०

दीक्षु०	श्री दादूदयाल की बानी, स० सुधाकर द्विवेदी, ना० प्र० सभा, वाराणसी	नागयज्ञ	जनमेजय का नागयज्ञ, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सप्तम स०
दादूदयाल ग्र०	दादूदयाल ग्र थावली	नागरी (शब्द०)	नागरीदाम
दादू० (शब्द०)	दादूदयाल	नील०	नीलकुसुम, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, प्र० स०
दिनेश (शब्द०)	कवि दिनेश	नेपाल०	नेपाल का इतिहास, प० बलदेवप्रसाद, वैकुण्ठेश्वर प्रेस बम्बई, १९६१ वि०
दिल्ली	दिल्ली, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, प्र० स०	पचवटी	पचवटी, मैथिलीकरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, भाँसी, प्र० स०
दिव्या	दिव्या, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४५ ई०	पजनेस०	पजनेस प्रकाश, सपा० रामकृष्ण वर्मा, भारत-जीवन यंत्रालय, काशी, प्र० स०
दीन० ग्र०	दीनदयाल गिरि ग्र थावली, सपा० श्याम-सुंदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०	पदमावत	पदमावत, स० वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य मदन, चिरगांव, भाँसी, प्र० स०
दीनदयालु (शब्द०)	कवि दीनदयालु गिरि	पदु०, पदुमा०	पदुमावती, स० सूर्यकांत शास्त्री, पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर, १९३४ ई०
दीप०	दीपशिखा, महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, इलाहाबाद, प्र० स०, १९४२ ई०	पद्माकर ग्र०	पद्माकर ग्र थावली, स० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०
दी० ज०	दीप जलगा, उपेन्द्रनाथ अशक, नीलाम प्रकाशन गृह, प्रयाग	पद्माकर (शब्द०)	पद्माकर भट्ट
दूलह (शब्द०)	कवि दूलह	प० रा०, प० रासो	परमाल रासो, न० श्यामसुन्दरदाम, ना० प्र० सभा- प्र० स०
देव० ग्र०	देव ग्र थावली, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०	परमानन्द०	परमानन्दसागर
वेव (शब्द०)	देव कवि (मैनपुरीवाले)	परिमल	परिमल, 'निराला', गंगा ग्र थागार, लखनऊ, प्र० स०
देशी०	देशी नाममाला	पदे०	पदे की रानी, इलाचंद्र जोशी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० स० १९६६ वि०
दैनिकी	सियारामशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगांव, भाँसी, प्र० स०, १९६६ वि०	पलटू०	पलटू साहब की बानी, तेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०७ ई०
दो सौ बावन०	दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता [दो भाग] शुद्धाद्वैत एकेडमी, काँकरीली, प्रथम स०	पल्लव	पल्लव, सुमित्रानंदन पंत, इडियन प्रेस लि० प्रयाग, प्र० स०
द्वंद्व०	द्वंद्वगीत, रामधारी सिंह 'दिनकर', पुस्तक भंडार, लहेरियासराय, पटना, प्र० स०	पाणिनि०	पाणिनीकालीन भारतवर्ष, वासुदेवशरण अग्रवाल, मोतीलाल बनारसीदाम, प्र० स०
द्वि० अभि० ग्र०	द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ, ना० प्र० सभा वाराणसी	परिजात०	परिजातहरण,
द्विवेदी (शब्द०)	महावीरप्रसाद द्विवेदी	पार्वती	पार्वती, रामानन्द तिवारी शास्त्री, भारती-नंदन, मंगलभवन, नयापुरा, कोटा (राजस्थान), प्र० स०, १९५५ ई०
घरनी० वा०	घरनी साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद, १९११ ई०	पा० सा० मि०	पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धांत, लीला-घर गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० स०, १९५२ ई०
घरम० शब्दा०, घरम०	घरमदास की शब्दावली	पिजरे०	पिजरे की उडान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४६ ई०
घूप०	घूप और घूमाँ, रामधारी सिंह 'दिनकर' अजंता प्रेस लि०, पटना ४	पू० म० भा०	पूर्वमध्यकालीन भारत, वासुदेव उपाध्याय भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० स०, २००६ वि०
नद ग्र०, नददास ग्र०	नददास ग्रंथावली, स० वज्ररत्नदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०	पृ० रा०	पृथ्वीराज रासो [५ खंड], स० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० स०
नई०	नई पौध, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद प्र० स०, १९५३,		
नट०	नटनागर विनोद, सपा० कृष्णविहारी मिश्र इडियन प्रेस, इलाहाबाद, प्र० स०		
नदी०	नदी के द्वीप, 'अज्ञेय', प्रगति प्रकाशन दिल्ली, प्र० स०, १९५१ ई०		
नया०	नया साहित्य नए प्रश्न, नददुलारे बाजपेयी विद्यामंदिर, वाराणसी, २०११ वि०		

चंद०	चंद हसीनो के खतूत, 'उग्र', हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, प्र० सं०	जायसी (शब्द०)	मलिक मुहम्मद जायसी
चंद्र०	चंद्रगुप्त, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, नवां सं०	जिप्सी	जिप्सी, इलाहाबाद-जोशी, सेंट्रल बुक डिप्टी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०
चक्र०	चक्रवाल, रामधारीसिंह, 'दिनकर', उदयाचल, पटना, प्र० सं०	ज्ञानदान	ज्ञानदान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ १९४२ ई०
चरणचंद्रिका (शब्द०)	चरणचंद्रिका	ज्ञानरत्न	ज्ञानरत्न, दरिया साहव, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
चरण० वानी	चरणदास की वानी, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०	झरना	झरना, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवां सं०
चांदनी०	चांदनी रात और अजगर, उपेंद्रनाथ अशक, नीलाम प्रकाशन गृह, प्रयाग, प्र० सं०	झाँसी	झाँसी की रानी, वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झाँसी, द्वि० सं०
चिता	चिता, अज्ञेय, सरस्वती प्रेस, प्र० सं०, १९४० ई०	टंगोर०	टंगोर का साहित्यदर्शन, अनु० राधेश्याम पुरोहित, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०
चितामणि	चितामणि [२ भाग], रामचंद्रशुक्ल, इंडियन प्रेम लि०, प्रयाग	ठंडा०	ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, साहित्य भवन लि०, प्रयाग, प्र० सं०, १९५२ ई०
चितामणि (शब्द०)	कवि चितामणि त्रिपाठी	ठाकुर०	ठाकुर शतक, सपा० काशीप्रसाद, भारत-जीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०, सवत् १९६१
चित्रा०—	चित्रावली, स० जगन्मोहन वर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	ठेठ	ठेठ हिंदी का ठाठ, अयोध्यासिंह उपाध्याय, खड्गविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०
चुमने०	चुभते चौपदे, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरि-श्रीधर', खड्गविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०	ढोला० दू०	ढोला मारू रा दूहा, सपा० रामसिंह, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०
चोखे०	चोखे चौपदे, " " "	तितली	तितली, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवां सं०
चोटी०	चोटी की पकड़, 'निराला', किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०	तुलसी	तुलसीदास, 'निराला', भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, चतुर्थ सं०
छंद	छंद प्रभाकर, भानु कवि, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०	तुलसी ग्रं०	तुलसी ग्रंथावली, सपा० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, काशी, तृतीय सं०
छत्र०	छत्रप्रकाश, सं० विलियम प्राइस, एजुकेशन प्रेस, कलकत्ता, १८२९ ई०	तुलसी श०, तुलसी श०	तुलसी साहव की शब्दावली (हाथरसवाले) वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०६, १९११
छिताई	छिताई बातें, सपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०	तेग० (शब्द०)	तेगवहादुर
छीत०	छीत स्वामी, सपा० ब्रजभूषण शर्मा, विद्या विभाग, अष्टछाप स्मारक समिति, कांकरोली, प्र० सं०, २०१२	तेज०	तेजविदूषनिपट
जग० वानी	जगजीवन साहव की वानी, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०६, प्र० सं०	तोप (शब्द०)	कवि तोप
जग० श०	जगजीवन साहव की शब्दावली	त्याग०	त्यागपत्र, जैनेंद्रकुमार, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, प्र० सं०
जनानी०	जनानी ड्योढी, अनु० यशपाल, अशोक प्रकाशन, लखनऊ	द० सागर	दरिया सागर, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०
जय० प्र०	जयशंकर प्रसाद, नंददुलारे वाजपेयी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०, १९६५ वि०	दक्खिनी०	दक्खिनी का गद्य और पद्य, स० श्रीराम शर्मा, हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद, प्र० सं०
जायसी ग्रं०	जायसी ग्रंथावली, स० रामचंद्रशुक्ल, ना० प्र० सभा, द्वि० सं०	दरिया० वाग्नी	दरिया साहव की वानी, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, द्वि० सं०
जायसी ग्रं० (गुप्त)	जायसी ग्रंथावली, स० माताप्रसाद गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५१ ई०	दश०	दशरूपक, स० डा० भोलाशंकर व्यास, चौखम्बा निद्याभवन, वाराणसी, प्र० सं०
		दशम० (शब्द०)	मापा दशम स्कंध,
		दहकते०	दहकते अगारे, नरोत्तमप्रसाद नागर, अभ्युदय कार्यालय, इलाहाबाद

कठ० उ० (शब्द०)	कठवल्ली उपनिषद्	कीर्ति०	कीर्तितता, सं० वावूराम सक्सेना, ना० प्र०
कडी०	कडी मे कोयला, पाट्टेय वेचन शर्मा 'उग्र', गऊघाट मिर्जापुर, प्र० स०	कुकुर०	सभा, वाराणसी, तृ० म०
कवीर ग्र०	कवीर ग्र थावली, सपा० श्यामसु दरदास, ना० प्र० ममा०, काशी	कुणाल	कुकुरमुत्ता, 'निराला', युगमदिर, चन्नाव
कवीर वानी	कवीर साहव की वानी	कृषि०	कुणाल, मोहनलाल द्विवेदी
कवीर वीजक	कवीर वीजक, कवीर ग्रथप्रकाशन समिति, वारावकी, २००७ वि०	केशव (शब्द०)	कृषिशास्त्र
कवीर वी०	कवीर वीजक, सपा० हसदाग, कवीर ग्रथ प्रकाशन समिति, वारावकी, २००७ वि०	केशव ग्र०	केशवदाम
कवीर म०	कवीर मसूर [२ भाग], वेंकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस ववई, सन् १९०३ ई०	केशव० ग्रमी०	केशव ग्र थावली, सपा० ५० विश्वनाथप्रसाद
कवीर रे०	कवीर साहव की ज्ञानगुदडी व रेन्ने, वेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद	कौटिल्य ग्र०	मिश्र, हिदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० स०
कवीर श०	कवीर साहव की शब्दावली [४ भाग]	क्वासि	कौटिल्य का अर्थशास्त्र
कवीर (शब्द०)	कवीरदास	खानखाना (शब्द०)	क्वासि, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजवमल प्रकाशन, ववई, १९५३ ई०
कवीर सा०	कवीरसागर [४ भा०] सपा० स्वा० श्री युगलानंद विहारी, वेंकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, ववई	खालिक०	अब्दुर्रहीम खानखाना
कवीर सा० स०	कवीर साखी सग्रह, वेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद, १९१२ ई०	खिलौना	खालिकवारी, सपा० श्रीराम शर्मा, ना० प्र०
करुणा०	करुणालय, जयशकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० स०	खुदराम	सभा, वाराणसी, प्र० सं०, २०२१ वि०
करुण०	सेनापति करुण, लक्ष्मीनारायण मिश्र, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० स०	गग ग्र०	खिलौना (मामिक)
कविता कौ०	कविता कौमुदी [१-४ भा०], सपा० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मंदिर, प्रयाग, तृ० स०	गदाधर०	खुदराम और चंद हसीनो के खतून, पाट्टेय वेचन शर्मा उग्र, गऊघाट, मिर्जापुर, आठवां स०
कवित्त०	कवित्तरत्नाकर, सपा० उमाशकर शुक्ल, हिंदी परिषद् विश्वविद्यालय, प्रयाग	गवन	गग कवित्त [ग्र थावली], सपा० वट्टकृष्ण, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० म०
कानन०	काननकुसुम, जयशकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, पंचम स०	गालिव०	श्रीगदाधर भट्ट जी की वानी
कामायनी	कामायनी, जयशकर प्रसाद, नवम स०	गालिव०	गवन, प्रेमचंद, हस प्रकाशन, इलाहाबाद, २६वां स०
काया०	कायाकल्प, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस, ९वां स०	गि० दा०, गि० दास (शब्द०)	गालिव की कविता, सं० कृष्णदेवप्रसाद गौड़, वाराणसी
काले०	काले कारनामे, 'निराला', कल्याण साहित्य मंदिर, प्रयाग, २००७ वि०	गिरिधर (शब्द०)	गि० दा०, गि० दास (शब्द०) गिरिधरदास (वा० गोपालचंद्र)
काव्य० निबध	काव्य और कला तथा अन्य निबध, जयशकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, चतुर्थ स०	गीतिका	गिरिधर राय (कुडलियावाले)
काव्य० य० प्र०	काव्य, यथार्थ और प्रगति, डा० रागेय राघव, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्र० स०, २०१२ वि०	गुजन	गीतिका, 'निराला', भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० स०,
काश्मीर०	काश्मीर सुपमा, श्रीधर पाठक, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद	गुमान (शब्द०)	गुजन, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० स०
किन्नर०	किन्नर देश में, राहुल सांकृत्यायन, इंडिया पब्लिशर्स, प्रयाग, प्र० स०	गुलाल०	गुमान मिश्र
		गोदान	गुलाल वानी, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०
		गोपाल० (शब्द०)	गोदान, प्रेमचंद सरस्वती प्रेस बनारस, प्र० स०
		गोरख०	गिरिधर दास (गोपालचंद्र)
		ग्राम०	गोरखवानी, स० डा० पीतावरदत्त बड़थाल, हिंदी साहित्य समेलन, प्रयाग, द्वि० स०
		ग्राम्या०	ग्राम साहित्य, स० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मंदिर, प्रयाग, प्र० सं०
		घट०	ग्राम्या, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० स०
		घनानंद	घट रामायण [२ भाग], सतगुरु तुलसी साहिब, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० स०
		घाघ०	घनानंद, सपा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रसाद परिषद्, चाण्डीबितान, ब्रह्मनाल, वाराणसी घाघ और भट्टरी, हिदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद

संकेतिका

[उद्धरणों में प्रयुक्त संदर्भग्रन्थों के इस विवरण में क्रमशः ग्रन्थ का संकेताक्षर, ग्रन्थनाम, लेखक या संपादक का नाम और प्रकाशन के विवरण दिए गए हैं]

अंधेरे०	अंधेरे की भूख, डा० रागेय राघव, किताब	अर्घ०	अर्घकथानक, संपा० नाथूराम प्रेमी, हिंदी
अकवरी०	महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण	अष्टाग (शब्द०)	अष्टाग योगसंहिता
	अकवरी दरवार के हिंदी कवि, डा० सरजूप्रसाद	आंधी	आंधी, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहा- बाद, पंचम सं०
	अग्रवाल, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, स० २००७	आकाश०	आकाशदीप, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
अग्नि०	अग्निशस्त्र, नरेंद्रशर्मा, भारती भंडार, इलाहा- बाद, प्र० सं०	आचार्य०	आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चंद्रशेखर शुक्ल, वाणी- वित्तान, वाराणसी, प्र० सं०
अजात०	अजातशत्रु, जयशंकर प्रसाद, १६वां सं०	आदि०	आदिभारत, अर्जुन चौधे काश्यप, वाणी विहार, बनारस, प्र० सं०, १९५३ ई०
अणिमा	अणिमा, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', युग मंदिर, उन्नाव	आधुनिक०	आधुनिक कविता की भाषा
अतिमा	अतिमा, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०	आनंदधन (शब्द०)	कवि आनंदधन
अनामिका	अनामिका, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' प्र० सं०	आराधना	आराधना, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', साहित्यकार संसद, इलाहाबाद, प्र० सं०
अनुराग०	अनुरागसागर, संपा० स्वामी, युगलानंद विहारी, वैकुण्ठेश्वर प्रेस, ववई, प्र० सं०	आर्द्रा	आर्द्रा, सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, भाँसी, प्र० सं०, १९८४ वि०
अनेक (शब्द०)	अनेकार्थ नाममाला (शब्दसागर)	आर्य भा०	आर्यकालीन भारत
अनेकार्थ०	अनेकार्थमंजरी और नाममाला, संपा० बलभद्र- प्रसाद मिश्र, युनिवर्सिटी ऑफ इलाहाबाद स्टडीज, प्र० सं०	आर्यों०	आर्यों का आदिदेश, संपूर्णानंद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९६७ वि०, प्र० सं०
अपरा	अपरा, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग	इंद्र०	इंद्रजाल, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहा- बाद, प्र० सं०
अपलक	अपलक, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, प्र० सं०, १९५३ ई०	इंद्रा०	इंद्रावती, संपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
अभिषिप्त,	अभिषिप्त, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४४ ई०	इशा०	इशा, उनका काव्य तथा रानी केतकी की कहानी, संपा० ब्रजरत्नदास, कमलमणि ग्रंथ- माला, बुलानाला, काशी, प्र० सं०
अतीत०	अतीत स्मृति, महावीरप्रसाद द्विवेदी, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९३०	इतिहास०	हिंदी साहित्य का इतिहास, पं० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, नवां सं० ।
अमृतसागर (शब्द०)	अमृतसागर	इत्यलम्	इत्यलम्, 'अज्ञेय', प्रतीक प्रकाशन केंद्र, दिल्ली
अयोध्या (शब्द०)	अयोध्यामिह उपाध्याय 'हरिऔध'	इरा०	इरावती, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०
अरस्तू०	अरस्तू का काव्यशास्त्र, डा० नरेंद्र, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, २०१४	उत्तर०	उत्तररामचरित नाटक, अनु० पं० सत्यनारायण कविरत्न, रत्नाश्रम, आगरा, पंचम, सं०
अर्चना	अर्चना, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', कला- मंदिर, इलाहाबाद	एकात०	एकातवासी योगी, अनु० श्रीधर पाठक इंडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०, १९८६ वि०
अर्थ०	अर्थशास्त्र [५ खंड], संपा० आर० शाम शास्त्री, गवर्नमेंट आर्च प्रेस, मंसूर, प्र० सं०, १९१९	ककाल	ककाल, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सप्तम सं०

प्रयोग किया गया है, किंतु हिंदी की ओर हमारी सीमा है। यद्यपि हम ग्रंथ और व्युत्पत्ति का ऐतिहासिक क्रमविकास भी प्रस्तुत करना चाहते थे, तथापि साधन की कमी तथा हिंदी ग्रंथों के कालक्रम के प्रामाणिक निर्धारण के अभाव में वैसा कर सकना संभव नहीं हुआ। फिर भी यह कहने में हमें नकोच नहीं कि अद्यतन प्रकाशित कोशों में शब्दसागर की गरिमा आधुनिक भारतीय भाषाओं के कोशों में अनुलनीय है, और इस क्षेत्र में काम करनेवाले प्रायः सभी क्षेत्रीय भाषाओं के विद्वान् इससे आधार ग्रहण करते रहेंगे। इस अवसर पर हम हिंदी जगत् को यह भी नम्रता पूर्वक सूचित करना चाहते हैं कि सभा ने शब्दसागर के लिये एक स्थायी विभाग का सकल्प किया है जो बराबर इसके प्रवर्धन और सजोवन के लिये कोशशिल्प सबधी अद्यतन विधि से यत्नशील रहेगा।

शब्दसागर के इस सशोधित प्रवर्धित रूप में शब्दों की सख्या मूल शब्दसागर की अपेक्षा दुगुनी से भी अधिक हो गई है। नए शब्द हिंदी साहित्य के आदिकाल, सत एव सूफी साहित्य (पूर्व मध्यकाल), आधुनिक काल, काव्य, नाटक, आलोचना, उपन्यास आदि के ग्रंथ इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, वाणिज्य आदि और अभिनदन एव पुरस्कृत ग्रंथ, विज्ञान के सामान्य प्रचलित शब्द और राजस्थानी तथा डिंगल, दक्खिनी हिंदी और प्रचलित उर्दू शैली आदि से सकलित किए गए हैं। परिशिष्ट खंड में प्राविधिक एव वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दों की व्यवस्था की गई है।

हिंदी शब्दसागर का यह सशोधित परिवर्धित संस्करण कुल दस खंडों में पूरा होगा। इसका पहला खंड पीप, सवत् २०२२ वि० में छपकर तैयार हो गया था। इसके उद्घाटन का समारोह भारत गणतंत्र के प्रधान मंत्री स्वर्गीय माननीय श्री लालबहादुर जी शास्त्री द्वारा प्रयाग में ३ पीप, स० २०२२ वि० (१८ दिसंबर, १९६५) को बड़े ही भव्य रूप से सजे हुए पडाल में काशी, प्रयाग एवं अन्यान्य स्थानों के परिष्ठ और सुप्रसिद्ध साहित्यसेवियों, पत्रकारों तथा गण्यमान्य नागरिकों की उपस्थिति में संपन्न हुआ। समारोह में उपस्थित महानुभावों में विशेष उल्लेख्य माननीय श्री प० कमलापति जी त्रिपाठी, हिंदी विश्वकोश के प्रधान संपादक श्री डा० रामप्रसाद जी त्रिपाठी, पद्मभूषण फयियर श्री प० सुमित्रानंदन जी पंत, श्रीमती महादेवी जी वर्मा

ना० प्र० सभा, काशी
१७ पीप, स० २०२३

}

आदि प्रमुख हैं। इस सशोधित सर्वधित संस्करण की सफल पूर्ति के उपलक्ष्य में इसके समस्त संपादकों को एक एक फाउटेन पेन, ताम्रपत्र और ग्रंथ की एक एक प्रति माननीय श्री शास्त्री जी के करकमलों द्वारा भेंट की गई। उन्होंने अपने सक्षिप्त सारगर्भित भाषण में इस सभा की विभिन्न प्रवृत्तियों की चर्चा की और कहा 'सार्वजनिक क्षेत्र में कार्य करनेवाली यह सभा अपने ढंग की अकेली सस्था है। हिंदी भाषा और साहित्य की जैसी सेवा नागरीप्रचारिणी सभा ने की है वैसी सेवा अन्य किसी सस्था ने नहीं की। भिन्न भिन्न विषयों पर जो पुस्तकें इस सस्था ने प्रकाशित की हैं वे अपने ढंग के अनूठे ग्रंथ हैं और उनसे हमारी भाषा और साहित्य का मान अत्यधिक बढ़ा है। सभा ने समय की गति को देखकर तात्कालिक उपादेयता के वे सब कार्य हाथ में लिए हैं जिनकी इस समय नितात आवश्यकता है। इस प्रकार यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि भाषा और साहित्य के क्षेत्र में यह सभा अप्रतिम है'।

संपादक मंडल के प्रत्येक सदस्य ने यथासामर्थ्य निष्ठापूर्वक इसके निर्माण में योग दिया है। श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़ नियामित रूप से नित्य सभा में पधार कर इसकी प्रगति की गति विशेष गंभीरतापूर्वक देते रहे हैं और प० करुणापति त्रिपाठी ने इसके संपादन और संयोजन में प्रगाढ़ निष्ठा के साथ धर पर, यहाँ तक कि यात्रा पर रहने पर भी पूरा कार्य किया है। यदि ऐसा न होता तो यह कार्य संपन्न होना संभव न था। हम अपनी सीमा जानते हैं। संभव है हम सबके प्रयत्न में त्रुटियाँ हो, पर सदा हमारा परिनिष्ठित यत्न यह रहेगा कि हम इसको और अधिक पूर्ण करते रहें क्योंकि ग्रंथ का कार्य अस्थायी नहीं सनातन है।

अतः मैं शब्दसागर के मूल संपादक तथा सभा के संस्थापक स्व० डा० श्यामसुंदरदास जी को अपना प्रणाम निवेदित करते हुए, यह सकल्प हम पुनः दुहराते हैं कि जब तक हिंदी रहेगी तब तक सभा रहेगी और उसका यह शब्दसागर अपने गौरव से कभी न गिरेगा। इस क्षेत्र में यह नित नूतन प्रेरणादायक रहकर हिंदी का मानवर्धन करता रहेगा और उसका प्रत्येक नया संस्करण और भी अधिक प्रभोज्य होना रहेगा।

सुधाकर पांडेय

प्रकाशन मंत्री

प्रकाशिका

‘हिंदी शब्दसागर’ अपने प्रकाशन काल से ही कोश के क्षेत्र में भारतीय भाषाओं के दिशानिर्देशक के रूप में प्रतिष्ठित है। तीन दशकों तक हिंदी की मूर्धन्य प्रतिभाओं ने अपनी सतत तपस्या से इसे सन् १९२८ ई० में मूल रूप दिया था। तब से निरंतर यह ग्रंथ इस क्षेत्र में गंभीर कार्य करनेवाले विद्वत्समाज में प्रकाशस्तम्भ के रूप में न्यायित हो हिंदी की गौरवगरिमा का आन्वयान करता रहा है। अपने प्रकाशन के कुछ समय बाद ही इसके खड़े एक एक कर अनुपलब्ध होते गए और अग्रपत्र ग्रंथ के रूप में इसका मूल्य लोगों को सहज मुद्राओं से भी अधिक देना पड़ा। ऐसी परिस्थिति में अभाव की स्थिति का लाभ उठाने की दृष्टि से अनेक कोशों का प्रकाशन हिंदी जगत् में हुआ, पर वे सारे प्रयत्न इसकी छाया के ही बल जीवित थे। इसलिये निरंतर इसकी पुनः अवतारणा का गंभीर अनुभव हिंदी जगत् और इसकी जननी नागरीप्रचारिणी सभा करती रही। किंतु साधन के अभाव में अपने इस कर्तव्य के प्रति सजग रहती हुई भी वह अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वह न कर सकने के कारण मर्मांतक पीड़ा का अनुभव कर रही थी। दिनोत्तर उसपर उत्तरदायित्व का श्रृंखला नकवृद्धि सूद की दर से इसलिये और भी बढ़ता गया कि इस कोश के निर्माण के बाद हिंदी की श्री का विकास बढ़े व्यापक पैमाने पर हुआ। साथ ही हिंदी के राष्ट्रभाषा पद पर प्रतिष्ठित होने पर उसकी शब्दसंपदा का कोश भी दिनोत्तर गतिपूर्वक बढ़ते जाने के कारण सभा का यह दायित्व निरंतर गहन होता गया।

सभा की हीरक जयंती के अवसर पर, २२ फाल्गुन, २०१० वि० को, उसके स्वागताध्यक्ष के रूप में डा० संपूर्णानंद जी ने राष्ट्रपति राजेंद्रप्रसाद जी एवं हिंदी जगत् का ध्यान निम्नांकित शब्दों में इस ओर आकृष्ट किया—‘हिंदी के राष्ट्रभाषा घोषित हो जाने से सभा का दायित्व बहुत बढ़ गया है। ‘हिंदी में एक अच्छे कोश और व्याकरण की कमी खटकती है। सभा ने आज से कई वर्ष पहले जो हिंदी शब्दसागर प्रकाशित किया था उसका वृहत् संस्करण निकालने की आवश्यकता है।’ आवश्यकता केवल इस बात की है कि इस काम के लिये पर्याप्त धन व्यय किया जाय और केंद्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों का सहारा मिलता रहे।’

उसी अवसर पर सभा के विभिन्न कार्यों की प्रशंसा करते हुए राष्ट्रपति ने कहा—‘वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दकोश सभा का महत्वपूर्ण प्रकाशन है। दूसरा प्रकाशन हिंदी शब्दसागर है जिसके निर्माण में सभा ने लगभग एक लाख रुपया व्यय किया है। आपने शब्दसागर का नया संस्करण निकालने का निश्चय किया है। जब से पहला संस्करण छपा, हिंदी में बहुत बातों में और हिंदी के अलावा संसार में बहुत बातों में बड़ी प्रगति हुई है। हिंदी भाषा भी इस प्रगति से अपने को वंचित नहीं रख सकती। इसलिये शब्दसागर का रूप भी ऐसा होना चाहिए जो यह प्रगति प्रतिबिंबित कर सके

और वैज्ञानिक युग के विद्यार्थियों के लिये भी साधारणतः पर्याप्त हो। मैं आपके निश्चयों का स्वागत करता हूँ। भारत सरकार की ओर से शब्दसागर का नया संस्करण तैयार करने के सहायतार्थ एक लाख रुपए, जो पाँच वर्षों में बीस बीस हजार करके दिए जाएँगे, देने का निश्चय हुआ है। मैं आशा करता हूँ कि इस निश्चय से आपका काम कुछ सुगम हो जाएगा और आप इस काम में अग्रसर होंगे।’

राष्ट्रपति डा० राजेंद्रप्रसाद जी की इस घोषणा ने शब्दसागर के पुनः संपादन के लिये नवीन उत्साह तथा प्रेरणा दी। सभा द्वारा प्रेषित योजना पर केंद्रीय सरकार के शिक्षामंत्रालय ने अपने पत्र सं० एफ। ४—३१५४ एच० दिनांक ११/११/५४ द्वारा एक लाख रुपया पाँच वर्षों में, प्रति वर्ष बीस हजार रुपए करके, देने की स्वीकृति दी।

इस कार्य की गरिमा को देखते हुए एक परामर्शमंडल का गठन किया गया, इस संबंध में देश के विभिन्न क्षेत्रों के अधिकारी विद्वानों की भी राय ली गई, किंतु परामर्शमंडल के अनेक सदस्यों का योगदान सभा को प्राप्त न हो सका और जिस विस्तृत पैमाने पर सभा विद्वानों की राय के अनुसार इस कार्य का संयोजन करना चाहती थी, वह भी नहीं उपलब्ध हुआ। फिर भी, देश के अनेक निष्णात अनुभवसिद्ध विद्वानों तथा परामर्शमंडल के सदस्यों ने गंभीरतापूर्वक सभा के अनुरोध पर अपने बहुमूल्य सुझाव प्रस्तुत किए। सभा ने उन सबको मनोयोगपूर्वक मथकर शब्दसागर के संपादन हेतु सिद्धांत स्थिर किए जिनसे भारत सरकार का शिक्षामंत्रालय भी सहमत हुआ।

उपर्युक्त एक लाख रुपए का अनुदान बीस बीस हजार रुपए प्रति वर्ष की दर से निरंतर पाँच वर्षों तक केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय देता रहा और कोश के संशोधन, संवर्धन और पुनः संपादन का कार्य लगातार होता रहा, परंतु इस अवधि में सारा कार्य निपटाया नहीं जा सका। मंत्रालय के प्रतिनिधि श्री डा० रामधन जी शर्मा ने बड़े मनोयोगपूर्वक यहाँ हुए कार्यों का निरीक्षण परीक्षण करके इसे पूरा करने के लिये आगे और ६५०००) अनुदान प्रदान करने की सत्सुति की जिसे सरकार ने कृपापूर्वक स्वीकार करके पुनः उक्त ६५०००) का अनुदान दिया। इस प्रकार संपूर्ण कोश का संशोधन संपादन दिसंबर, १९६५ में पूरा हो गया।

इस ग्रंथ के संपादन का संपूर्ण व्यय ही नहीं, इसके प्रकाशन के व्ययभार का ६० प्रतिशत बोझ भी भारत सरकार ने वहन किया है। इसीलिये यह ग्रंथ इतना सस्ता निकालना संभव हो सका है। उसके लिये शिक्षा मंत्रालय के अधिकारियों का प्रशमनीय सहयोग ही प्राप्त है और तदर्थ हम उनके अतिशय प्रामाण्य हैं।

जिस रूप में यह ग्रंथ हिंदी जगत् के समुख उपस्थित किया जा रहा है, उसमें अद्यतन विकसित कोशशिल्प का यथासामर्थ्य उपर्युक्त

इस संस्करण के संबंध में

हिंदी शब्दसागर हिंदी का सबसे प्रामाणिक कोश है, जो भारतीय भाषाग्रो का दिशा निर्देशक है। इसका परिवर्धित, सशोधित, नवीन संस्करण स० २०२३ में १९६७ ई० में निकला था। इसके भाग ५ के रूप में इसका मूल्य लागू है। क्रमसः अनुपलब्ध हासिली में अभाव प्रेषित है। इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित हिंदी एफ। ४—३१५४ इसकी निरंतर उपलब्धता बनी रहे। द्वितीय भाग का यह वर्षों में, प्रति वर्ष में उपलब्ध कराया जा रहा है। इसके (प्रो।) भागों के इस कार्य की गरिमामयी भारत सरकार ने २०१६, ६५७-५० द्वितीय सहायता प्रस्तुत की, शतक लिये सभा भारत सरकार की आभारी है। यह सहयोग यदि भारत सरकार से न मिलता तो इसे प्रस्तुत करा सकना सभा के लिये संभव नहीं था। एतदर्थ सरकार के हम आभारी हैं।

आशा है, अपने गुण धर्म के कारण इस कोश का उपयोग और प्रयोग हिंदी जगत् निरंतर करता रहेगा।

दीपावली
स० २०४४ वि०

सुधाकर पांडेय
प्रधान मंत्री
ना० प्र० सभा, वाराणसी।

भारत सरकार की वित्तीय सहायता से प्रकाशित

परिवर्धित, सप्तम संस्करण (दूसरी बार)

शकाब्द १९८७ ई० स० २० व०

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी भागो का ६७८)७५
मूल्य २५०)

प्रकाशक—नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

मुद्रक—श्रीनारायण, नागरी मुद्रण, ना० प्र० सभा, वाराणसी

प्रतियाँ—३१००

शुद्ध. विनोद चन्द्र पाण्डे स
की स्मृति में उत्तमधिकारी से
प्राकृत भारती अकादमी जयपुर
सन्दर्भ पुस्तकालय को भेंट करके प्राप्त ।

हिंदी शब्दसागर

हिंदी शब्दसागर

द्वितीय भाग

“उ” से “क्वैलिया” तक, शब्दसंख्या—२०,०००]

मूल संपादक

श्यामसुंदरदास, बी० ए०

मूल सहायक संपादक

बालकृष्ण भट्ट	रामचंद्र शुक्ल
अमीरसिंह	जगन्मोहन वर्मा
भगवानदीन	रामचंद्र वर्मा



संपादकमंडल

संपूर्णानंद	कमलापति त्रिपाठी
मंगलदेव शास्त्री	धीरेंद्र वर्मा
कृष्णदेवप्रसाद गौड़	रामधन शर्मा
हरवल्लभ शर्मा	शिवनदनलाल दत्त
शिवप्रसाद मिश्र	गोपाल शर्मा
भोलाशंकर व्यास (सह० सयो०)	सुधाकर पांडेय
करुणापति त्रिपाठी (संयोजक, संपादक)	

सहायक संपादक

त्रिलोचन शास्त्री	विश्वनाथ त्रिपाठी
-------------------	-------------------

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी